



पंडित भीमसेन शर्मा

# समर्पण

कालिदास-ग्रथावलीका यह संस्करण

श्रीत-स्मार्त्त कर्मकाण्डके अद्वितीय विद्वान् तथा काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयके  
ग्राह्य-विद्या-विभागमें वेद तथा पौरोहित्यके आचार्य पूज्य पितृ-  
चरण पंडित गीमसेनजी वेदपाठीजीको सादर श्रद्धाके साथ  
समर्पित, जिनके पुण्यसे मैंने विद्या प्राप्त की, जिनकी  
श्रेयणा और सहायतासे इसका द्वितीय संस्करण  
प्रकाशित हुआ था और जो इसके प्रकाशनके  
पूर्व ही सहसा स्वर्लोक चले गये ।

# महर्षिकल्प धर्ममूर्ति

महामना पंडित मदनमोहन मालवीयजीकी

पुण्य स्मृतिमें

अपरिमित श्रद्धा तथा निःसीम आदर के साथ

समर्पित

जिन्होंने इस ग्रन्थकी रचनाके लिए प्रेरणा, प्रोत्साहन, सहायता और प्राशोर्वादि दिया और जिसकी महती स्नेहमयी अनुकम्पासे मैं विश्वके कविकुल-पुत्र कालिदासकी सम्पूर्ण रचनाओंकी उनकी अभीष्ट तरल नागरी भाषामें अनुवाद करके प्रस्तुत करनेमें सफलता प्राप्त कर सका ।



महामना पंडित मदनमोहन मालवीय

कालिदास-ग्रन्थावलीका सम्पादक-मंडल

मूल प्रेरक

महामना पंडित मदनमोहन मालवीयजी

प्रधान सम्पादक

साहित्याचार्य पंडित सौताराम चतुर्वेदी, एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी, पालि  
प्रत्न भारतीय इतिहास तथा संस्कृति ), बी० टी०, एल्-एल्०, बी०

सम्पादक-मण्डल

पंडित महादेव शास्त्री, कवि-तात्त्विक-चलन्वर्त्ता (अब स्वामी श्री १०८ महेशानन्दजी)

व्याकरणशास्त्री, साहित्यशास्त्री पंडित कच्छनाथति त्रिपाठी, एम० ए०

डा० पंडित गोवर्धननाथ शुक्ल, एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) बी० टी०, पी-एच० डी०

साहित्य-दर्शनाचार्य एव० पंडित ईशदत्त पाण्डेय "श्रीश"

शुभी सुमति सरमुकदम, एम० ए० (संस्कृत)

पंडित गवाप्रसाद ज्योतिषी, एम० ए०

एव० पंडित नानेश उपाध्याय, एम० ए० (संस्कृत, प्रत्न भारतीय इतिहास तथा  
ज्योतिषाचार्य )

पंडित शिवप्रसाद मिश्र "उद्भ", एम० ए०, बी० टी०

पंडित राधाबिनोद गोस्वामी, एम० ए०

न्याय-व्याकरण-साहित्याचार्य पं० रामगोविन्द शुक्ल

साहित्यरत्न पं० राजाराम तिवारी, एम० ए०

साहित्यरत्न पं० अक्षयनारायणधर द्विवेदी

सहायक-मण्डल

साहित्यशास्त्री पं० वसुदेव मिश्र, एम० ए० (संस्कृत)

व्याकरणशास्त्री पं० नृसिंह मिश्र

साहित्यशास्त्री पं० इन्द्रजीत पाण्डेय (विशारद)

साहित्यशास्त्री पं० भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र

पंडित जयशंकर चतुर्वेदी, एम० ए०

# विषय-सूची

भूमिका

## प्रथम खण्ड ( काव्य )

रघुवंश	...	...	...	१-२२८
कुमारसम्भवम्	...	...	...	२२९-३८८
मेघदूतम्	...	...	...	३८९-४२४
श्रुतसंहारम्	...	...	...	४२५-४५६

## द्वितीय खण्ड ( नाटक )

धर्मज्ञान-शाकुन्तलम्	...	...	...	१-१५०
विश्वामित्र-दीप	...	...	...	१५१-२५८
मालविकाग्निमित्रम्	...	...	...	२५९-३५८

## तृतीय खण्ड ( समीक्षा-निबंध )

विश्वामित्र-दीप	डा० राजबली पाण्डेय	...	...	१-१३
विश्वामित्र-दीप	उनके मकरन्द—पंडित ईशदत्त शास्त्री "श्रीश"	...	...	१४-२०
कालिदासके प्रबंधोंकी उपादेयता—	पं० सीताराम जयराम जोशी	...	...	२१-३९
कालिदासके शब्द-प्रयोग—	पं० भग्विकाप्रसाद उपाध्याय	...	...	३२-३५
कालिदासके कविताकी पूर्णता—	स्व० श्री गो० दामोदरदासजी	...	...	३६-४२
कालिदासकी कविता—	प० वलदेव उपाध्याय	...	...	४३-४८
कालिदास और प्रकृति—	पं० बरणाप्रति त्रिपाठी	...	...	४९-५८
निर्गमन-शाकुन्तला—	डा० बेलवेन्कर	...	...	५९-७०
योगबलिष्ठमें मेघदूत—	डा० श्रीरामदास धानेय	...	...	७१-७३
मेघदूतकी मृत्ता—	भाभायं सीताराम चतुर्वेदी	...	...	७४-९३
मेघदूतकी एक समयका : निवृत्त स्वल्प—	डा० वामुदेवजगरण धरवाल	...	...	९४-१०६
मृत्तिका कालिदासकी उपमाओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन—	डा० पी० के० मोहं	...	...	१०७-११८
कालिदासकी दूरदोषोन्नता—	पी० पं० रामगोविन्द शुक्ल	...	...	१२०-१२१
धर्मज्ञान-दीप—	( कालिदासके पाठ्योंमें धारु हुए व्यक्तियों, जोषों, यशुषों और स्थानों का परिचय )	पं० सीताराम चतुर्वेदी	...	१२९-१८६
कालिदास-सम्बन्धी प्रश्नों, सैद्धों तथा पत्रोंकी सारणी—	डा० रामकुमार चौधे	...	...	१८६-१९२
कालिदास-सम्बन्धी भारतीय भारतका मानविद्य	...	...	...	संक्षेप

# कालिदास-ग्रन्थावली

PRESENTED BY

सीताराम चतुर्वेदी

अखिल भारतीय विक्रम-परिषद्

काशी के लिए

भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ द्वारा प्रकाशित

सं० २०१६ वि०

तृतीय संस्करण

ज्ञान होकर योगधर्मके !  
एव मंदिरके अधिष्ठाता

प्रकाशक—  
बन्दीप्रसाद शर्मा  
भारत प्रकाशन मन्दिर, बलीगढ़



PAF-11 154  
Ministry of Education  
.. Govt of India ..

इस प्रकाशनी के किली एक या सब ग्रन्थो के सम्बन्ध प्रकाशन का पूर्ण अधिकार  
पण्डित सीताराम चतुर्वेदी को है।

मूल्य—बीस रुपया

मुद्रक—  
चन्द्रप्रकाश शर्मा  
आदर्श प्रेस, बलीगढ़।



## तृतीय संस्करण का संपादकीय निवेदन

सन् २००० विक्रमाब्दमें जब भारत भरमें विक्रमद्विसहस्राब्दी मनाई जा रही थी समय महामना मातृवीयजी महाराजके आदेशसे काशीमें अखिल भारतीय-विक्रम-परिषद्की हुई, जिसकी योजनामें सार्वजनिक समारोहके अतिरिक्त अकारि-विक्रमादित्यके नवरत्नमें रत्न कविमुल-गुप्त कालिदासके सब ग्रन्थोंका अनुवाद, अभिनव नाट्यशास्त्र, समीक्षाशास्त्र कौटिल्यका अर्थ-शास्त्र आदि ग्रन्थोंका प्रकाशन करके अत्यन्त कम मूल्यमें सर्व-साधारणके लिये सुलभ करना भी था। यद्यपि संपादक महलमें अनेक महानुभाव थे, किन्तु मातृवीयजी १९९५ मेरा निवा हुमा अनुवाद ही अर्थात् सारा और मुझे उन्होंने आदेश दिया कि "पूरा अनुवाद प्रकाशनी सरल, सुपोष और सर्वगम्य भाषामें कर डालो।" उनका आदेश मेरे लिए वेद-व्यास था। तदनुसार मैंने सभी ग्रन्थोंका अनुवाद कर डाला और उन्हें शुभा भी डाला। जहाँ-जहाँ उन्होंने परिवर्तन या व्याख्या या विस्तार करनेका सुझाव दिया वह भी कर दिया। उन्होंने यह भी आदेश दिया था कि मूल अक्षर तथा अनुवाद अलग रखा जाय। उनकी आज्ञाके अनुसार प्रथम १२ इत्नी प्रकार प्रकाशित हुमा और केवल पाँच रुपयेमें पूर्ण निर्विघ्न ब्राह्मणको दे दिया गया।

सोढ़े ही दिनेमि द्वितीय संस्करणकी आवश्यकता पड़ गयी। परिषद् न तो व्यापार की थी और न पैसा ही संचित करती थी। कागज और छपाईकी महत्वता थी। पाठकोंका आग्रह कि मूल और अनुवाद साफ-साफ हो, आकार बड़ा कर दिया जाय, कागज भी अच्छा लयाया जाय। इतर साधनोंका पूर्ण अभाव था। मेरे परम पूज्य पितृचरण स्व० पंडित भीमसेनजी १९९५ जब मेरी इस विषयताका ज्ञान हुमा तो उन्होंने अत्यन्त स्वाभाविक वास्तव्यवादसे मुझका व्यय देनेकी कृपा की। किन्तु वे उसके प्रकाशनसे पूर्व दिवंगत हो गए। द्वितीय संस्करण की बात की बातमें समाप्त हो गया और तृतीय संस्करणकी माँग होने लगी। यह संस्करण बड़ी दैवी तथा नाटकीय परिस्थिति में प्रकाशित हुमा है।

बार वर्ष पूर्व सन् १९५८ के जनवरी मासमें अत्यन्त अस्वस्थ अवस्थामें काशीमें पढ़ा हुआ कल्याणके सन्त भवनका पारामण्य कर रहा था। उसी समय मुझे अन्तःप्रेरणा हुई कि अपने शिक्ष्य गोवर्धननाथ शुक्लके साथ श्री गिरिराजजीके दर्शन किए जायें। मैंने शुक्लजीको लिखा दिया और उन्होंने अत्यन्त अस्वास्थ्यके स्वीकृति भी दे दी। तत्रत्य एक वर्षे तक यह सफल ही पड़ा रहा। अक्टूबर सन् १९५९ के जुलाई मासमें शुक्लजीने लिखा कि "आपादस्य 'दिवसे' के उपलक्ष्यमें अलीगढ़ विश्वविद्यालयमें महाकवि कालिदास पर आचार भाषण दीजिए। श्रीगिरिराजजीके दर्शनया लोभ भी उन्होंने साथ ही दिया था। इसलिए निमन्त्रण स्वीकार करनेमें आपत्तिका प्रश्न ही नहीं था। यों तो शुक्लजीका गुणपर इतना अधिक आदरपूर्ण प्रेम है कि उनके आग्रह की अग्रश में किसी भी प्रकार नहीं कर सकता था।

अलीगढ़ विश्वविद्यालयमें भाषण दे चुकने पर अगले दिन हम लोग सयान होकर गोवर्धनके दर्शनके लिए चल पड़े। सयोंपदस साधने अलीगढ़स्थ भारत प्रकाशन मंदिरके अधिष्ठाता

पं० यशोप्रसाद शर्मा भी थे । गोवर्धन पर्वतके दर्शन कर चुकने पर प्रसंगवश कालिदास ग्रन्थावलीका प्रयोग छिद्र गया । मैंने अपनी विवशता प्रकट की किन्तु तत्काल पंडित बदरीप्रसाद शर्मनि उसके प्रकाशनका भार स्वीकार कर लिया । श्रीगिरिराजके दर्शनका यह प्रत्यक्ष और सचकल था । काशी या बलियामें बैठकर इसका संशोधन संभव नहीं था किन्तु पंडित गोवर्धननाथ मुसलमान मत्तन्त्र तत्परताके साथ यह भार-बहन करनेकी स्वीकृति देकर मुझे निश्चिन्त कर दिया ।

**मुमूक्षुः** उन्होंने और उनके अग्रज पंडित चिरजीवसाल रावतने जिस परिचय, जिस मनोयोग, धर्म और उदासीके साथ इस ग्रन्थको सर्वोपरि मुद्रित कराने का प्रयत्न किया है उसका महत्त्व मैं मन्व्यवारके औपचारिक सम्बन्धि परिमित नहीं करना चाहता । हाँ, मैं हृदयसे उनको इसके लिए भाषीर्वादि देता हूँ ।

**रघुवंश**  
**कुमार**  
**मेघदूत** मुझे उत्तम और हर्ष है कि श्री यशोप्रसाद शर्मनि महामना पंडित गवतमोहन प्रमुखाजीकी जन्म-ज्योति-संस्मरणसे इसे कम मूल्यमें प्रकाशित करके अपना औरव सर्वाधिक किया है ।

इस संस्करणमें कुछ लेख और भी बढ़ा दिए गये हैं । मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस संस्करणसे कालिदास प्रेमियोको अधिक उत्तम होगा । अत्यन्त सजग और सावधान रहने पर भी कि कुछ मुद्राश्रमोंकी दयासे कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं और कुछ पन्नोंके प्रहारसे माथामें छूट जानेसे मान-कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं । इपया पाठनमें सुधारकर पाठयण प्रारम्भ करें ।

भारत तथा भारतके बाहरके जिन अनेक विद्वानों, मनीषियों, पंडितों, विद्यापियों और विद्वानोंके दिव्यदुर्गागणोंने इस ग्रन्थके प्रति इतनी आत्मीयता और नमता प्रदर्शित की है उसके लिए मैं उनका हृदयसे कृतज्ञ हूँ और उनकी इस सहृदयताकी ही अपने परिश्रमका सबसे बड़ा पुरस्कार मानता हूँ । यदि इस संस्करण के सम्बन्धमें वे कुछ सुझाव भेजेंगे तो मैं बादरपूर्वक उनका आगे का संस्करणमें उपयोग करनेका प्रयत्न करूँगा ।

श्री सौदी गिरौरी, काशी  
श्री गोवर्धन-शुभा सं० २०१६

—सीताराम चतुर्वेदी

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

## —रघुवंशम्—

॥ प्रथमः सर्गः ॥

वागधीविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।  
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥१॥  
ऋ सूर्यप्रभवो वंशः ऋ चाल्पविषया मतिः ।  
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुद्धुपेनास्मि सागरम् ॥२॥  
मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।  
प्रांशुलम्ये फले लोभादुद्गाहुरिव वामनः ॥३॥  
अर्धमा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसुरिभिः ।  
मणौ वज्रसमुत्कीर्णं सत्रस्येवास्ति मे गतिः ॥४॥

### पहला सर्ग

[वाणी और अर्थ जैसे अलग कहनाते हुए भी एक ही है, वैसे ही पार्वतीजी और शिवजी भी कहनेकी दो रूप है, पर है वे सबमुन एक ही । इसलिये] वाणी और अर्थको अपने बरामे करने के लिये, [उनकी ठीक समझने और उनका ठीक व्यवहार करनेके लिये] मैं सप्तारकी माता पार्वतीजी और पिता शिवजीको प्रणाम करता हूँ जो शब्द और अर्थके समान परस्पर मिले हुए एक रूप हैं ॥१॥ [मैं रघुवंशका वर्णन तो करते बंटा हूँ पर मैं देख रहा हूँ कि] वहाँ तो सूर्यसे उत्पन्न हुआ यह [तिजस्वी] वंश, [जिसमे रघु और राम—जैसे पराक्रमी उत्पन्न हुए हो और] नहीं मोटी बुद्धिवाला मैं । [मैं यह भली भाँति जानता हूँ कि मैं रघुवंशका पार नहीं पा सकता फिर भी मेरी मूर्खता तो देखिए कि] तिनकोसे धनी छोटी-सी नाव लेकर अपार समुद्रको पार करनेकी बात सोच रहा हूँ ॥२॥ देखा, मैं हूँ तो मूर्ख, पर मेरी साथ यह है कि, बड़े-बड़े कवियोंमे मेरी गिनती हो । यह सुनकर लोग मुझपर अवश्य हँसेंगे, क्योंकि मेरी यह बरती बँसी ही है जैसे कोई बोना अपने नन्हें नन्हें हाथ ऊपर उठाकर उन फलोंको तोड़ना चाहता हो जो केवल सम्वे हाथवाले ही पा सकते हो ॥३॥ पर [मुझे एक बड़ा भारी मरोछा यही है कि] धार्मिक आदि मुझसे पूर्वके नवियोंने इस सूर्यवंशपर [सुन्दर काव्य] लिखकर वाणीका द्वार, पहले ही खोल दिया है । इसलिये उसमे पंठ जाना [और इस बरामा फिरसे वर्णन करना] मेरे लिये बँसा ही [सरल] हो गया है जैसे हीरेकी कनीसे लिये

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ।  
 आसमुद्रचितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ॥५॥  
 यथानिधिहुताग्नीनां यथाकामाचिंतिार्थिनाम् ।  
 यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ॥६॥  
 त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।  
 यशसे विजिगीषुषां ब्रजायै गृहमेधिनाम् ॥७॥  
 शौशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विपर्ययिणाम् ।  
 चार्द्धके मुनिपृथ्वीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥८॥  
 रघूणामन्ययं वक्ष्ये तनुवान्निभवोऽपि सन् ।  
 तद्गुणैः कर्षमागत्य चापलाय प्रचोदितः ॥९॥  
 र्तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्रथक्तिहेतवः ।  
 हेम्नः संलक्ष्यते बन्धु विशुद्धिः श्यामिकापि वा ॥१०॥  
 वैवस्वतो मनुनामि माननीयो मनीषिणाम् ।  
 आसीन्महीक्षितामाधः श्रयवश्छन्दसामिव ॥११॥

हुए मणिमे डोरा पिरोना ॥५॥ मैं जानता हूँ कि मुझे कुछ माता-जाता नहीं है, फिर भी मैं उन [प्रतापी] रघुवक्षियोंका वपुन करने बैठा हूँ, जिसके चरित्र जन्मसे लेकर अन्ततक शुद्ध और पवित्र रहे, जो किसी कानको उठाकर उसे पूरा करके ही छोड़ते थे, जो समुद्रके धोर-धोर तक फैली हुई धरतीके स्वामी थे, जिनके रथ, पृथ्वीसे स्वयंसेवक सीमे जामा-माया करते थे, जो [सास्त्रोंके] नियमके अनुसार ही मग्न करते थे, जो मानने वालोंको मन-बाह्य दान देते थे, जो [अपराधियोंकी] अपराधके अनुसार ही दण्ड देते थे, जो भवसर देखकर ही काम करते थे, जो दान करनेके लिये ही धन इकट्ठा करते थे, जो राज्यकी रक्षाके लिये बहुत कम बोलते थे [कि जितना बहूँ उतना कर भी दियाई], जो [द्रुसरोका राज हृष्यके या ब्रह्मरक्षके लिये नहीं बरज] अपना यश बढानेके लिये ही दूसरे देश जीतते थे, जो [भोग-बिलासके लिये नहीं बरज] सन्तान, उत्पन्न करनेके लिये ही विवाह करते थे, जो बालनर्पणमे पढते थे, तस्मिन्नि ससारके भोषोका प्रानन्द लेते थे, बुढापेमे 'गुनियोंके समान [जगत्तमि रहकर] तपस्या करते थे और अन्तमे योगके द्वारा [ब्रह्म या परमात्माका ध्यान करते हुए] अपना संसार छोड़ते थे । [सब प्रिये तो] रघुवक्षियोंके, इन गुणोंमे ही मुझे मह काव्य लिखनेकी दिशाई करने को उबसाया है ॥५-१॥ इन काव्यको सुननेके अपिबारी भी वे ही सज्जन है जिन्हे मने-चुरेकी मन्त्री परछ है क्योंकि सोनेवा खरणन या खोटपन अगमे 'डालनेपर ही जाना जाता है ॥१०॥ जैसे वेदके छन्दोमे सर्वो पहले अकार है वैसे ही राजायोग्य सबसे पहले, सूर्यके पुत्र वैवस्वत मनु हुए जिनका मांवर नडे-बडे निदान लोभ भी निया बरते थे ॥११॥ लक्ष्मी वैवस्वत

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः ।  
 दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधानिव ॥१२॥  
 व्यूहोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाशूलः ।  
 आत्मकर्मक्षमं देहं चात्रो धर्म इवाश्रितः ॥१३॥  
 सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोभिमाविना ।  
 स्थितः सर्वोन्नतेनोर्षा क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना ॥१४॥  
 आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः ।  
 आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः ॥१५॥  
 भीमकान्तैर्नृपगुणैः स वभूवोपजीविनाम् ।  
 अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवाख्यैः ॥१६॥  
 रेखाभात्रमपि सुखादादनोर्दर्मनः परम् ।  
 न व्यतीद्युः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः ॥१७॥

मनुके उज्ज्वल वस्त्रे राजासौम्य चन्द्रमाये समान सबको सुख देनेवाले तथा धरन्त शुद्ध चरित्रवाले  
 राजा दिलीपको बंसे ही जन्म लिया जैसे क्षीरसागरमें, चन्द्रमाने जन्म लिया था ॥१२॥ [राज  
 दिलीपका रूप देखने ही योग्य था ।] उनकी नौजी छाती, साँढकेसे जैसे घोर, गारी कबे, शालके  
 वृष-जैसी लंबी मुजाएँ भीर उनकी धार तेज देखकर ऐसा जान पटता था भागो सन्धियोंका धर्म  
 [वीरत्व] उनके शरीरमें यह सम्भव था ठटा हो कि [सज्जनोकी रक्षा घोर दुर्जनोके नाश करनेका  
 जो] भेदा काम [ही वह] इस शरीरसे प्रवृत्त हुए हो सकैया ॥१३॥ जैसे गुनेर पर्वतने अपनी  
 दृढतासे ससारके सब दृढ पर्वतोंको दबा दिया है, अपनी चमकता सब चमकीली  
 यक्षुमोनी चमक पटादी है, अपनी ऊँचाईसे सब ऊँची बरतुपोंको नीचा दिया दिया है  
 और अपने फैलावसे सारी पृथ्वीको ढक लिया है वैसे ही राजा दिलीपने भी अपने बल, तेज और  
 धील-धीलवाले शरीरसे सबको नीचा दिसानर सारी पृथ्वीको अपनी मुठ्ठीमें भर लिया ॥१४॥  
 जैसा सुन्दर उनका रूप था, वैसी ही तीली उनकी बुद्धि थी, जैसी तीली बुद्धि थी वैसी ही  
 सीधतासे उन्होंने सब शास्त्र पढ़ डाले थे । इसीलिये वे शास्त्रके अनुसार ही किसी कामका हाथ डालते  
 थे और [सब यह होता था कि उन्हें] वैसी ही [बड़ी] सफनता थी [सदृश्य] हाथ लगती  
 थी ॥१५॥ [जैसे परिष्कृत और मगरमच्छोंके डरसे सोम समुद्रमें पैठनेके डरते हैं, वैसे ही]  
 राजा दिलीपसे भी उनके सेवक डरते थे क्योंकि वे न्यायमें बड़े बडोर भी थे [और किसीका  
 पक्षपात नहीं करते थे ।] किन्तु समुद्रके सुन्दर और मनोहर रत्नानो पानके निर्य जैसे सोम समुद्र  
 में पैठ ही जाने हैं वैसे ही राजा दिलीप, इतने देवानु, उदार और सुखानानी भी थे कि उनके धर्म  
 उनकी कृपा पानके लिये सदा उभवा मुँह खोलते रहते थे ॥१६॥ जैसे बहुत सारकी जब रस  
 चलाता है सब रसके पहिले बाहर नी कीचने बाहर नहीं हा पाने वैसे ही राजा दिलीप रस

प्रजानामेव भृत्यर्थं म ताम्यो बलिमग्रंहीत् ।  
 महसगुणस्युत्सृष्टमाटचे हि रसं रविः ॥१८॥  
 मेना परिच्छदस्तस्यद्वयमेवार्थसाधनम् ।  
 शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्माँवी धनुषि चावता ॥१९॥  
 तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारोक्तिवस्य च ।  
 फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव ॥२०॥  
 जुगोपात्मानमप्रस्तो भजे धर्ममनातुरः ।  
 अगुञ्जुराददे सौर्ज्यमसक्तः सुखमन्वभूत् ॥२१॥  
 ज्ञाने मौनं समा शक्तौ त्यागे श्लाघानिर्पणयः ।  
 गुणा गुणानुपन्धित्वात्तस्य संप्रसवा इव ॥२२॥

अच्छे इगते प्रजाकी रक्षणाल ही नि प्रजाका बोर्दे की व्यक्ति मनुके पनाए हुए नियमोवि  
 बहुरपर चल नहीं करवा था । [सब लोग 'जहाँ धीर प्राथमिके नियमोके अनुसार ही अपने  
 परमका पावन करते थे] ॥१७॥ जैसे सूर्य अपनी किरणोंके वृष्णीका जो जल सोखता है उसका  
 तद्व्यपुना करता देता है, वैसे ही राजा दिलीप भी अपनी प्रजाको भसादि खानेके लिये ही राजा  
 प्रजामे पर लेते थे ॥१८॥ [जैसे धीर राजाओंके पास बड़ी शारी सेवा होती थी वैसे ही] राजा  
 दिलीपने पास श्री बटो शारो सेना की पर वह सेना केवल योग्यके लिये ही थी [उसके बोर्दे  
 काम राजा दिलीप करी लेते थे] क्योंकि शास्त्रोक्त उन्हें बहुत अच्छे ज्ञान था धीर धनुष  
 बसानेमे भी वे एक ही थे । इसलिये वे अपना सब काम शारी तीखी बुद्धि धीर धनुषपर शरी  
 हुई शरी-इस की से ही निबाल लेते थे । [उन्हें किसी कामके किसी धीरको बढ़ावापता नहीं लेनी  
 'पढ़ती थी] ॥१९॥ राजा दिलीप ने जो अपने मनका भेद किशोको बताते थे धीर न अपनी  
 भावमणीते ही शाने मनकी बात निनीको जानने देते थे । जैसे इत जनपके किसीके [धुषी  
 या धुषी] जीयनको देवावर लोग समझते हैं कि उसने, जिसने जन्मके क्या [अच्छे या बुरे] काम  
 किए थे वैसे ही राजा दिलीपके मनकी बात भी सोच लगी जान पाते थे अब वह काम ही  
 बुलवा था, [उसके पहले 'नहीं] ॥२०॥ वे निरर हीवर अपनी रक्षा करते थे, बने धीरवके  
 साथ अपने धर्मका पालन अच्छे से, शीघ्र हीवर मन इच्छा करते थे धीर मोह शीघ्रकर संसारके  
 धुल भोगते थे ॥२१॥ [जो लोग बहुत विष-युक्त जाते हैं वे अपनी विद्याका द्विदोष पीतते हैं,  
 जो बलवान होते हैं वे दूसरीको तकनेके अपनी बढाई समझते हैं, जो लोग दास देते हैं या  
 किसीके लिये ब्रह्म त्याग करते हैं वे चाहते हैं कि शारो और ह्याय पास हो । पर राजा दिलीपने  
 वह बात नहीं थी ] वे सब ब्रह्म जानवर भी शुभ करते थे, धनुषीके बरसा सेनेकी शक्ति पड़े  
 हुए भी उन्हें शाना कर देते थे धीर दान देकर या त्याग करने भी अपनी प्रजा करानेकी  
 इच्छा नहीं करते थे । [उनके इस गर्वके लिये स्वर्गको देवावर नहीं पान पढवा था कि] शुभ  
 रहने, शाना करल धीर प्रजाकी दूर भागनेके शुभ भी उनमें ज्ञान, शक्ति धीर, त्यागके साथ

अनाकुलस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः ।  
 तस्य धर्मरतेरासीदुद्वृद्धत्वं जरसा चिना ॥२३॥  
 प्रजानां विनयाधानाद्द्रव्याद्भद्रस्यादपि ।  
 सं पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥२४॥  
 स्वित्यै दस्यद्वयतो दसदृशान्परिणेतुः प्रसूतये ।  
 अप्यर्धकामी तस्यास्तां धर्म एव मनीषिणः ॥२५॥  
 'दुदोह गां स यज्ञाय तस्याय भधवा दिवम् ।'  
 संपद्विनिमयेनोमौ , दधतुर्भुवनद्वयम् ॥२६॥  
 न किलानुययुस्तस्य राजानो रवितुर्यशः ।  
 प्यावृत्ता यत्परस्येभ्यः श्रुती तस्करता स्थिता ॥२७॥

ही साप उल्लस हृप थे ॥२३॥ संसारके भोगोंको वे अपने पास नहीं पटकते देने थे, छोटी विद्याओं-  
 को उन्होंने मुहूर्ति कर, किया था और अपना जीवन वे दिनरात धर्मके कामोंमें ही लगाने थे ।  
 छोटी ही धर्मस्थानों वे इतने क्रूर हो गए थे कि बिना बुझाया चाप ही उनको गिनती धरे-बूझोमें  
 हीने लगी ॥२३॥ जैसे पिता अपने पुत्रोंको घुरे बान करनेमें रोजता है, मध्ये बाण करनेकी  
 सीख देता है, एवं प्रजाको उसकी रक्षा करता है और उनको पाल-पोषणकर बड़ा करता है वैसे ही  
 राजा क्षत्रीय भी अपनी प्रजाको घुरे मार्गपर जानेमें रोजते थे, प्रच्छा बाण करनेकी उदाहारित  
 करते थे, विपत्तिपक्षि उनको रक्षा करते थे और [उनके लिये धन्न, धन्य, धन तथा विद्याका  
 प्रदान करते] उनका पालन-पोषण करते थे । इस प्रकार वे ही अपनी प्रजाके सच्चे पिता थे,  
 पिता बहूजामेबाले धर्म्य लोग ही केवल जन्म देने भरके पिता थे ॥२४॥ [अपराधीको दण्ड देना  
 राजाका धर्म है । यथोक्ति] अपराधीको दण्ड दिए बिना राज्य टूट नहीं सकता, इनलिये वे  
 अपराधीको उचित दण्ड देते थे । [बड़ा चलाना भी अनुप्यया धर्म है । इनलिये] एतान् उल्लस  
 करते वत यमानेकी दृच्छते ही उन्होंने विवाह किया था, कोई भोग विलासने लिये नहीं । [इस  
 प्रकार दस्य] दण्ड और विवाह वास्तवमें धर्मशास्त्र और कामशास्त्रके विषय हैं फिर भी उनके  
 हाथोंमें पट्टेभरकर वे धर्म ही उन गए थे ॥२५॥ राजा क्षत्रीय प्रजाके जी बर लेते थे पर दस्यकी  
 प्रसन्न करनेके लिये यज्ञमें समा देने थे [यथोक्ति यज्ञ करनेमें देवता प्रसन्न और पुष्ट होते हैं] ।  
 उपर दस्य भी इनके प्रसन्न होकर चाँदासकी दुस्वर जन बरमाना या त्रिगुण भेज धनके  
 अद जाने थे । इस प्रकार राजा क्षत्रीय और दस्य एक दूसरेको सहानुभूति करने दोनों मोहोका  
 पालन करते थे ॥२६॥ क्षत्रीयकी छोड़कर और कोई भी राजा अपनी प्रजाको रक्षा करनेमें  
 नाम न बना सता यथोक्ति [समीचे नहीं बभी-बभी चोरी-दफती हो ही जाती थी । पर राजा  
 क्षत्रीयका अपने राज्यमें रेमा दबदबा था कि] चोरीका, दण्ड बेचन बहूने-मुदोको ही ए एका था,  
 [उस राज्यमें कोई भी जिनोका धन नहीं हुआ पात्र था] ॥२७॥ जैसे रोगी पर दण्डकार क्षीणकी

द्वेष्योऽपि संमतः शिष्टस्तस्यार्त्तस्य यथौषधम् ।  
 त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीद्द्गुलीवोरगच्छता ॥२८॥  
 तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना ।  
 तथाहि सर्वे तस्यासन्पराथैकफला गुणाः ॥२९॥  
 स वेलावप्रवलयां परिस्त्रीकृतसाम्भ्राम् ।  
 अन्नन्यशासनाश्रुर्वी शशासैकपुरीमिव ॥३०॥  
 तस्य दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना मगधवंशजा ।  
 पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा ॥३१॥  
 कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि ।  
 तयां भेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाधिपः ॥३२॥  
 तस्यामात्मानुरूपायामात्मजन्मसमुत्सुकः ।  
 विलम्बितफलैः कालं स निनाप मनोरथैः ॥३३॥  
 मंतानाधौप विधये स्वभुजादवतारिता ।  
 तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिचिपे ॥३४॥

भी पैजा है कि इसमें भी भयंकर हो जाऊंगा वैसे ही राजा दिल्ली भी उन बंदियोंको अपना लेते थे जो  
 भेने होने थे और जैसे ताँबे के काटनेपर लोग अपनी उँगली भी काटकर फेंक देते हैं वैसे ही राजा  
 दिल्ली अपना उन लगे प्यारे लोगोंको भी निकाल बाहर करते थे जो दुष्ट होते थे ॥२८॥ बहाने  
 निरुत्तम ही महाराज दिल्लीपर [पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन] पाँच तत्वोंसे ही बनाया  
 था क्योंकि [जैसे वे तत्व निरन्तर गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द इन गुणोंसे सारी सृष्टिको ढँका  
 करते हैं । वैसेही] राजा दिल्लीपरने सब मुखसि भी वेबल दूखरोना उपकार ही होता था ॥२९॥  
 [जैसे कोई राजा किसी ऐसी नगरीपर शासन करे जिसके चारों ओर परकोटा और खाई हो  
 वैसे ही] दिल्ली पर दक्षिण पर्वतोंपर भेनेने राज्य करते थे जिसका परकोटा समुद्रका तट था और  
 जिसकी गाईरा काम स्वयं समुद्र करता था ॥३०॥ जैसे यज्ञकी पत्नी दक्षिणा प्रियदा दे देते ही  
 भगवत्पदम उत्पन्न मुदक्षिणा नामकी उनकी पत्नी भी समारम्भे अपनी चतुरतासे जिये प्रियदा  
 थी ॥३१॥ जैसा तो राज्य दिल्लीपर बहूत ही समियाँ थी, पर वे यदि अपनेको श्रेयोयत्ना सबभने  
 थे तो गदमीके समान मगधिनको जेबल अपनी पत्नी मुदक्षिणासे बाहर ही ॥३२॥ उनकी बड़ी  
 दक्षिणी थी कि जैसी प्यासे पत्नीके भेने-जैसा पुत्र ही, पर दिन बीतने चने जाते थे और उनकी  
 नाम पूर्ण नहीं हो पा रही थी ॥३३॥ तब उन्होंने निरुत्तम किया कि समान उत्पन्न करनेका  
 दुष्ट न दुष्ट जाय करता ही दाक्षिण्य । उम्हेंसे परता काम तो, पर निष्ठा कि पृथ्वी पावनका मुक्त  
 भाग समन क्योंकि उत्तरपर बंदियोंको छोड़ दिया ॥३४॥ राज्यकी चिन्तासे मन्त्री वाकर नयित



अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्रकाम्यया  
 तौ दम्पती वशिष्ठस्य गुरोर्जग्मतुराश्रमम् ॥३५॥  
 स्निग्धगम्भीर निर्घोषमेकं स्पन्दनमास्थितौ ।  
 प्रावृषेस्यं पयोवाहं विद्युदैरात्तामिव ॥३६॥  
 मा भूदाश्रमपीडेति परिमेयपुरःसरैः ।  
 अनुभावनिशेषाद्यु सेनापरिवृतामिव ॥३७॥  
 सेव्यमानौ सुखस्पर्शैः शालनिर्यामिगन्धिभिः ।  
 पुष्परेसूत्तिकरैर्वर्तिरावृतवनरालिभिः ॥३८॥  
 मनोभिरामाः शृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुक्तैः ।  
 पद्मजसंबादिनीःकेका द्विधा भिजाः शिखंडिभिः ॥३९॥  
 परस्पराचिसादृश्यमद्रोज्ज्वलतन्मसु  
 मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्पन्दनामद्दृष्टिषु ॥४०॥  
 भ्रेशीवन्धाद्वितन्यद्भिरस्तम्भां तोरशस्रजम् ।  
 सारसैः कलनिर्हार्दैः कचिदुन्नमिताननौ ॥४१॥

गनसे राजा दिलीप और देवी सुदक्षिणाने पुत्रकी इच्छासे पहले बह्याजीवी पूजा की और फिर वे दोनों पति पत्नी बहति धपने कुसुमक बलिष्णुकीके आश्रमकी ओर चले ॥३५॥ जिस रूपपर वे दोनों बंटे हुए थे वह भीठी भीठी परपरहट करता हुआ बना था रहा था । उस पर बंटे हुए वे दोनों ऐसे जाल पडते थे मानो बपकि बावतपर ऐतवत और विजली दोनों चडे पाले जा रहे हो ॥३६॥ उन्होंने अपने साथ रोवक नहीं लिए क्योंकि उन्हें स्पाम था कि बहुत भीड़भाड़ ले जानेसे आश्रमके काममें बाधा होगी, पर उनका प्रयाप और तेज ही इतना अधिक था कि उससे जान पडता था माना साचये बडी भारी खेता बली आ रही हो ॥३७॥ धुले मार्गमें सातने मोदकी गन्धमें बसा हुआ, फूलोके पराग उबता हुआ और उनके वृक्षोकी पांतोको पीरे-पीरे संपाता हुआ पवन, उनके शरीरको सुख देता हुआ उनकी सेवा करता चल रहा था ॥३८॥ राजा दिलीप और देवी सुदक्षिणाने इधर उधर दृष्टि भ्रुमाई और देखा कि कहीं तो खली पनपनाहट सुनकर बहुतसे मोर इस जगमें धपना मुंह उमर उठा उठाकर दुहरे मनोहर पद्म शब्दसे पूक रहे हैं कि कहीं ऊपर बादल तो नहीं गरज रहे है ॥३९॥ कहीं वे देखते हैं कि हिरणोके जोडे मागसे कुछ हटकर रखकी ओर घुनटक देखा रहे है । उनकी सरल चित्तवतकी राजा दिलीपने सुदक्षिणाने नेत्रोके समान समझा और सुदक्षिणाने राजा दिलीपके नेत्रोके समान ॥४०॥ जब वनी वे श्रांख उठाकर ऊपर देखते तो मानासमे उठते हुए मोर भीडे सोलने-बास दगले भी उन्हें दिखाई पड जाते जो पतित उठत हुए ऐसे मान पडते थे मानो सम्भेके बिना ही मन्दनवार टंगे हुई हो ॥४१॥ पवन भी उनसे अनुकूल चल रहा था और यह सचेत वे

पवनस्थानुहूलत्वात्प्रार्थनासिद्धिशंभिनः ।  
 रजोभिन्तुरगोत्कीर्णैरस्सृष्टालकवेष्टनी ॥४२॥  
 मरगांघ्ररविन्दानां चीचिविघोमशीतलम् ।  
 ध्यामोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिःश्वामानुकारिणम् ॥४३॥  
 शोभेष्वान्मरिमृष्टेषु शूपचिह्नेषु यज्वनाम् ।  
 धूमोषाः श्रुतिगृह्णन्तावर्घ्यानुषदमाश्रियः ॥४४॥  
 ईयंगर्वाणामादाय . घोषवृद्धानुषस्थितान् ।  
 नामधेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम् ॥४५॥  
 काप्यभिरग्न्या तपोरामीद्भ्यजतोः शुद्धवेपथोः ।  
 हिमनिर्मुक्तघोषेभि चिप्राचन्द्रमतोरिव ॥४६॥  
 नत्तद्भूमिपतिः पत्न्यैर्दर्शयन्प्रियदर्शनः ।  
 शपि ललितमध्याह्नं युयुधे न युषोपमः ॥४७॥  
 म दुष्प्रापयशाः प्रापदान्मर्म भ्रान्तवाहनः ।  
 सायं भयमिनस्तस्य महर्षेर्महिषीस्रगुः ॥४८॥  
 वनान्तरादुषार्तः समित्तुशकलादरैः ।  
 सूर्यमाराभट्टयान्निप्रत्युयार्त्तमपस्विभिः ॥४९॥

आकीर्णमृषियत्नीनामुटजहारोधिभिः ।  
 अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगैः ॥५०॥  
 सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्त्वणोज्ज्वितवृक्षकम् ।  
 विधासाय विहंगानामालवालाभ्युपायिनाम् ॥५१॥  
 आतपात्ययसंसिप्तनीवारान्हु निपादिभिः ।  
 मृगैर्वतितरोमन्धमुटनाङ्गनभूमिषु ॥५२॥  
 अभ्युत्थिताग्निपिशुनैरतिथीनाश्रमोन्मुखान् ।  
 पुनानं पवनोद्भूतैर्धूमैराहुतिगन्धिभिः ॥५३॥  
 अथ यन्तारमादिश्य धुर्यान्विश्रामयेति सः ।  
 तामवारोहयत्पत्नीं रथादवतंतार च ॥५४॥  
 तस्मै सभ्याः सभार्याय गोप्त्रे गुप्ततमेन्द्रियाः ।  
 अर्हन्नामर्हते चक्रुर्मुनयो नयचक्षुषे ॥५५॥  
 विधेः सार्यतनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम् ।  
 अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेय इविर्भुजम् ॥५६॥  
 तयोर्जगृहतुः पादान् राजा राज्ञी च मागंधी ।  
 तौ गुरुर्गुरुपत्नी च प्रीत्या प्रतिननन्दतुः ॥५७॥

वे देखते क्या हैं कि सध्याके धमिनहोत्रके लिये बहुतछे तंपरबी हावते सविषा, कुशा और फल  
 लिए हुए जगलोयि लाँट रहे हैं ॥५६॥ बहुतसे मृग वहाँ आश्रममे इधर-उधर परांगुठियोंके द्वार  
 रोके खड़े हुए थे क्योंकि उन्हें श्री ऋषि-पत्नियोंके शष्णोके सनान तिन्नीके दाने रानेका सम्यास  
 पड गया था ॥५०॥ ऋषिकन्याएँ वृक्षोंकी जड़ोमे पानी दे-देकर वहसि हट गई थी जिससे  
 आश्रमके पक्षी उन वृक्षोंके बाँवलोका वस निदर होकर भी सकें ॥५१॥ धूपमे सुतानेके लिये  
 जो तिन्नीका अन्न पीलाफा हुआ था, वह दिन छिपते ही समेटकर कुटियाके आँगनमे ढेर बनाकर  
 रख दिया गया था और वही आँगनमे बहुतसे हरिण सुतसे पैठे जुगानी भर रहे थे ॥५२॥  
 हवन-शामश्रीकी गणसे भरा हुआ अग्निहोत्रका जो धुंधा पवनके कारण चारों ओर फैल जाता था  
 उध धूरेंने आश्रमकी ओर आते हुए इन अतिथियोंको जो पवित्र कर दिया ॥५३॥ तब राजा  
 दिलीपने अपने सारथीको आज्ञा दी कि थोथोको उडा करो। तब सहारा देकर पहले तो  
 उन्हेंने अपनी पत्नीको रखके चलारा फिर स्वयं भी रखते उतर पडे ॥५४॥ जब वह समानार  
 आश्रमवालोको भिजा तब वहाँके सम्य सयनी मुनियोंने अपने रखक, प्रादरणीय तथा  
 नीतिके अनुसार चलनेवाले सपत्नीक राजा दिलीपका सम्मानके साथ स्वागत किया ॥५५॥  
 जब सध्याकी सज कन्याएँ हो चुकी तब उन्हेंने उन तपस्वी महामुनि वशिष्ठको देता  
 जिनके पीछे देवी सरन्वतीजी भी उती प्रारर बैठे थी जैसे धमिके पीछे स्वाहा ॥५६॥

तमातिथ्यक्रियाशान्तरंशचोभपरिश्रमम् ।  
 पप्रच्छ कुशलां राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः ॥५८॥  
 अथाथर्वनिघेस्तस्य विजितारिपुरः पुरः ।  
 अथ्यामर्षपतिर्वाचमाददे वदतां वरः ॥५९॥  
 उपपद्यं ननु, शिवं सप्तस्वङ्गेषु यस्य मे ।  
 दैवीनां मानुषीणां च प्रतिहर्ता त्वमापदाम् ॥६०॥  
 तव मन्त्रकृतो मन्त्रैर्दृरात्प्रशमितारिमिः ।  
 प्रत्यादिश्यन्त इव मे दृष्टलक्ष्यभिदः शराः ॥६१॥  
 हविरावर्जितं होतस्त्वया विधिवदग्निषु ।  
 घृष्टिर्भवति सस्यानामवग्रहविशोपिष्याम् ॥६२॥  
 पुरुषायुपजीविन्यो निरासङ्गा निरीक्षयः ।  
 यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद्ब्रह्मवर्चसम् ॥६३॥  
 त्वयैवं चिन्त्यमानस्य गुरुणा ब्रह्मयोनिना ।  
 सानुवन्धाः कथं न स्युः संपदो मे निरापदः ॥६४॥

राजा दिलीप और मगधकी राजकुमारी सुदक्षिणाने बरल छूकर उन्हें प्रणाम किया और गुरु  
 वसिष्ठ तथा उनकी पत्नीने बड़े दुनारसे उनका स्वागत किया ॥५८॥ पहले तो वशिष्ठजीने  
 उनका इतना आतिथ्य सरकार किया कि रघुकी हृदयसे जो उन्हें बकापट हुई थी वह सब दूर हो  
 गई और तब मुनि वसिष्ठने राजपि दिलीपसे पूछा—बहिए। आपके राज्यमें सब कुशल तो है न ॥५९॥  
 राजा दिलीपने जहाँ अपने की रीतसे बड़ोप्राने नगर जीते थे और धनपति धने थे वहाँ वे  
 बालपीत करनेकी कलासे भी बड़े चतुर थे, इसलिये उन्होंने अपनेबड़ेदेके रक्षक वसिष्ठजीके उत्तरमें  
 अपनी अर्ध-भरी बाणोंमें कहा ॥५९॥ आपकी वृषसे इस राज्यमें [ राजा, मंत्री, मित्र, राजकोष,  
 राज्य, दुर्ग और सेना से ] सबो अन्न भरपूर है। [ भग्नि, जल, महामारी और प्रवाल  
 मृत्यु इन] देवी विपत्तियों और [भोर, डानू, शत्रु आदि] मनुष्यों आपत्तियोंको दूर करनेवाले  
 तो आप बँटे ही है ॥६०॥ आप मनीके रक्षित हैं। आपके मन ही इतने दक्षिणाली है  
 कि मुझे अपने वाग्म-पैतृलेकी आश्चर्यवता नहीं पड़ती, क्योंकि अपने बाणोंसे तो मैं केवल  
 उन्हें ही बेष सबता हूँ जो मेरे आगे आते हैं, पर आपके मन तो यहाँ बँटे-बँटे दूरसे ही  
 शत्रुओंको नष्ट कर देते हैं ॥६१॥ हे यज्ञ करनेवाले ! आप जब आत्मीय विधिसे अग्निमें  
 रवि छोड़ते है तो आपकी आहुतियां अनाहुतिये मुखे हुए पानने सेतोपर जलवृष्टि होकर  
 बरसने लगती हैं ॥६२॥ यह आपने ब्रह्मतेजना ही तो बस है कि मेरी प्रणामे कोई भी न सो  
 तो बरससे कम आयु पाता है और न किसीको ईति [नाद, सूखा, जूझ, शीता, राज-जलह,  
 मेरीभी चढ़ाई आदि] तथा विपत्तियां डर रहता है ॥६३॥ जब आप स्वयं ब्रह्माके पुत्र ही

किन्तु वर्षां तवैतस्यामदृष्टसदृशप्रजम् ।  
 न मामवति सद्दीपा रत्नसरपि मेदिनी ॥६५॥  
 नूनं मत्तः परं-वंश्याः पिण्डविच्छेददर्शिनः ।  
 न प्रक्रमभुजः श्राद्धे स्वषासंग्रहतत्पराः ॥६६॥  
 मत्परं दुर्लभं मत्त्वा नूनमावर्जितं मया ।  
 पयः पर्वैः स्वनिःधासैः क्वोष्णमुपमुज्यते ॥६७॥  
 सोऽहमिज्याविशुद्धारमा प्रजालोपनिमीलितः ।  
 प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः ॥६८॥  
 लोकान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम् ।  
 संततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे ॥६९॥  
 'तया हीनं विधातर्मा कथं पश्यन्न दूयसे ।  
 सिक्तं स्वयमिव स्नेहाद्रन्ध्यमाश्रमघृत्तकम् ॥७०॥  
 असह्यपीडं भगवन्नृष्णमन्त्यमवेहि मे ।  
 अर्कतुदमिवालानमनिर्वाणस्य दन्तिनः ॥७१॥

हमारे कुलगुह होकर सदा हमारा कल्याण करने के लिए बैठे हैं तब हमारी सम्पत्ति भ्रष्टा निविघ्न  
 पयो न रहे ॥६५॥ पर देव ! मायवी प्रती की कृपा होते हुए भी जब आपकी इस बहू [मेरी परनी]  
 के गर्भसे मेरे समाग लेजस्वी पुत्र नहीं हुआ तब रत्नको पंदा करने वाली, कई हीनोमे फैली हुई  
 मपने राज्यकी यह पृथ्वी भी मुझे कंसे अच्छी सब सकती है ॥६६॥ अब तो मुझे ऐसा जान पडने  
 लगा है कि मेरे पीछे कोई मुझे पिण्ड देनेवाला भी नहीं रहे जायगा । इसी दु खते हमारे पितर मेरे  
 दिए हुए श्राद्धके प्रभुको भरपेट न खाकर उरवा भाग भागेके सिमे इकट्ठा करने लग गए हैं ॥६९॥  
 जब मैं सर्पणके समय जलदान देने लगता हूँ, तब मेरे पितर यह सोचकर दु खकी शीतें लेने लगते हैं  
 कि 'इसके पीछे हम जल कीन देना और यह सोचकर वे अपनी साँसोसे परम हुए जनको ही पी डालते  
 हैं ॥६७॥ जिस प्रकार लोकालोक नामका पर्वत एक ओरसे सूर्यका प्रकाश पडनेसे चमकता है और  
 दूसरी ओर प्रकाश न पडनेसे अधिवायरा रहता है, उसी प्रकार सदा यज्ञ करनेसे मेरा चित्त प्रसन्न  
 रहता है किन्तु पुत्र न होनेसे सदा शोकसे भरा रहता है ॥६८॥ देव ! तपस्या करनेसे और  
 ब्राह्मणो तथा दीनोको दान देनेसे जो पुण्य मिलता है वह वेगल परलोकोमे मुख देता है पर अच्छी  
 सन्तान [शिवा सुधुपा करके] इस लोकमे यो सुख देती ही है साथ ही [तपस्य और पिण्डदान प्रादि  
 करके] परलोकमे भी सुख देती है ॥६९॥ हे मुन्वेव ! जैसे अपने हाथसे प्रेमसे सींचे हुए  
 प्राश्रमके वृक्षोंमे पत्त लगता न देखकर मरवा दु ख होता है वैसे ही जब आप मुझ कृपा पायको  
 सन्तानहीन देखते है तो क्या आपको दु ख नहीं होता ॥७०॥ हे भगवन् ! जिस प्रकार हाथीको  
 उसका खंटा भरपेट चष्ट देता है वैसे ही पुत्र न होनेके फलरूप जो विनयना भार मेरे सितर

तस्मान्मुच्ये यथा तात संविधार्तुं तथार्हसि ।  
 इत्वाकृष्णां दुरापेऽर्थे त्वदधीना हि सिद्धयः ॥७२॥  
 इति विद्यापितो राजा ध्यानस्तिमितलोचनः ।  
 तत्रमात्रमृषिस्तस्थौ सुप्तमीन इव हृद्रः ॥७३॥  
 सोऽपस्यत्प्रशिष्यानेन संततेः स्तम्भकारणम् ।  
 भावितात्मा भुवो भर्तुरर्थेन प्रत्यवोधयत् ॥७४॥  
 पुराशंक्रमुपस्थाय तवोर्वी प्रति यास्यतः ।  
 आसीत्फलपतकञ्छायामाश्रिता-सुरभिः पथि ॥७५॥  
 धर्मलोपंभयाद्राक्षीमृतुस्नातामिमं स्मरन् ।  
 प्रदक्षिणक्रियाहर्ष्यां तस्यां त्वं साधु नाचरः ॥७६॥  
 ध्वजानासि मां यस्मादतस्ते न भविष्यति ।  
 मत्प्रसूतिमनराध्य प्रजेति त्वां शशाप सा ॥७७॥  
 स शापो न त्वपाराजन्त्रच सारथिना श्रुतः ।  
 नदत्याकाशगङ्गायाः स्रोतस्युद्दामदिग्गजे ॥७८॥

षडा रक्षा है वह भी मुझे बहुत पीटा दे रहा है ॥७२॥ एसीतिये हे प्रभो ! जब कोई ऐसा  
 उपाय बताए जिससे मेरे पुत्र रत्न हो और मैं अपने पिता-ऊँघने मुक्त हो जाऊँ क्योंकि  
 इक्ष्वाकुवंशी राजाभेदी सभी कठिनाइयाँ यस्की छपाए सब दूर होनी रही हैं ॥७२॥ राजाकी  
 बात सुनकर वशिष्ठजीने अपनी शीलें बन्द करके क्षण भरके लिये ध्यान लगाया । उस समय वे  
 उस तालके समान स्थिर और निरन्तर हो गए जिसकी सब बल्लभियाँ सो गई हो ॥७३॥  
 वशिष्ठजीने अपने योगके बलसे ध्यान किया कि पवित्र आत्मावाले राजाके पुत्र भयो नहीं हुआ  
 और ध्यान कर चुनेपर वे राजाको समझाने लगे ॥७४॥ हे राजन् ! बहुत दिन हुए एक  
 बार जब तुम स्वर्गसे इन्द्रकी सेवा करके पृथ्वीको नीट रहे थे, तब माथेके बल्लभियाँके छायामे  
 कामधेनु बँधी हुई थी ॥ ७५ ॥ उस समय तुम्हारी पत्नीने रजस्वला होनेपर स्नान किया था  
 और तुम सोचते जा रहे थे कि [यदि इस समय उसके साथ सम्भोग नहीं करूँगा तो] गृहस्थका  
 धर्म विगठ जायगा । एसी विचारमें पड़े रहनेके कारण तुमने कामधेनुकी ओर तनिक भी ध्यान  
 नहीं दिया । यह बात तुमने ठीक नहीं किया, क्योंकि तुम्हें चाहिए था कि उसकी पूजा  
 और प्रदक्षिणा करते हुए लौटते ॥७६॥ इसीसे रष्ट होकर कामधेनुने तुम्हें शाप दिया कि  
 तुमने जो मेरा तिरस्कार किया है इसका दंड गही है कि जनतब तुम मेरी सन्तानकी सेवा नहीं करोगे  
 तबतक तुम्हें पुत्र नहीं होगा ॥७७॥ उस समय बड़े-बड़े गतवाले दिग्गज आकाशगामे खेलते हुए  
 बहुत गिप्याक रहे थे, इसलिये उन शापको न तो तुम ही सुन पाए, न तुम्हारा सारथी ही ॥७८॥

ईप्सितं तदवज्ञानाद्विद्धि सर्गलमात्मनः ।  
 प्रतिवध्नांति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः ॥७६॥  
 हविषे दीर्घसंत्रस्य सा चेदानीं प्रचेतसः ।  
 भुजंगपिहितद्वारं पातालमधितिष्ठति ॥८०॥  
 मुतां तदीयां सुरभेः कृत्वा प्रतिनिधिं शुचिः ।  
 आराधय सपत्नीकः प्रीता कामदुधा हि सां ॥८१॥  
 इति चादिन एवास्य होतुराश्रुतिसाधनम् ।  
 धनिन्धा नन्दिनी नाम धेनुराववृते वृनात् ॥८२॥  
 ललाटोदयमांभुग्नं पल्लवास्निग्धपाटला ।  
 विभ्रती श्वेतरोमाङ्कं संध्येव शशिनं नवम् ॥८३॥  
 भुधं कोप्येन कुराडोष्णी मेघ्येनावभृथदपि ।  
 प्रस्रवेनाभिघर्पन्ती वत्सालोकप्रवर्तिना ॥८४॥  
 रजःकयैः सुरोद्भूतैः स्पृशद्भिर्गात्रमन्तिकात् ।  
 तीर्थाभिषेकजां शुद्धिमादधाना महीक्षितः ॥८५॥

इसलिये तुम्हारे पुत्र न होनेका कारण गृही है कि तुमन वासवेपुत्रा तिरस्कार किया है देखो, जो मुख्य मन्त्रे पूज्योकी पूजा नहीं करता है उसका शुभ धारोम विघ्न पडता ही है ॥७६॥  
 अब इस समय कामधेनु तो मिला ही सकती क्योंकि वसुदेव पातालमे बहुत बड़ा मन्त्र कर रहे है। उस मन्त्रमे प्राहुतिनी सागरी देवने लिये कामधेनु भी पाताल खोव पत्नी गई है और उस सोवने द्वारोपर बडे-बडे विपथर खंभे रखवान भी बंठ है ॥८०॥ [ चाहिए तो गदो या कि पहले तुम कामधेनुकी ही प्रमत्न करते पर इस समय तो उनका दर्शन दुर्लभ है। ]  
 इसलिये तुम इनकी पुत्री नन्दिनीको ही उनका प्रतिनिधि समझ तो और अपनी रानीव साथ कुछ मनसे उसकी सेवा करो, क्योंकि यदि वह प्रसन्न हो जायगी तो वह दुरन्त इच्छित फल अल्प दे देगी ॥८१॥  
 इधर बलिष्ठभी यह कह ही रहे थे कि उन्की प्राहुतिने उिये पुत्र प्रादि पुत्रानेवासी सुलक्षणा नन्दिनी भी बनले तोउपर सा पहुँची ॥८२॥ नन्दिनीभी देह गये पत्तने समान बीमल और लाल थी। उसके माथेपर बनी हुई भूरे कालोकी टेढी रेखा ऐसी जान पडती थी जैसे लाल सध्याने माथेपर द्वितीयाना चन्द्रमा पड जाया हो ॥८३॥ अपना बध्ना देखने ही उसने बहुत समान बडे-बडे बनोति वह धरम-धरम दूध पिबलकर पृथ्वीवर टपनन लगा जो यज्ञके परचाद् किए हुए धवभृथ स्नानके जलसे भी अधिक पवित्र था ॥८४॥  
 नन्दिनीने प्राते समय उसके धुरोसे उठे हुई भूतके सगनेसे राजा द्वितीय बीते ही पवित्र हो गए जैसे निची सोधने स्नान करने लोटे हो। शत्रुन जाननेवाले तपस्वी बलिष्ठभीने यह उस

तां पुण्यदर्शनां ऋष्या निमित्तज्ञस्तपोनिधिः ।  
 याज्यभाशंसितावेन्ध्यप्रार्थनं पुनरब्रवीत् ॥८६॥  
 अदूरवर्तिनीं सिद्धिं रावन्विगलयात्मनः ।  
 उपस्थितेयं कल्याणीं नान्नि कीर्तित एव यत् ॥८७॥  
 वन्यघृत्तिरिमां शखदात्मानुभमनेन गाम् ।  
 विद्यामंथ्यसनेनेव प्रसादयित्तुमर्हसि ॥८८॥  
 प्रस्थितायां प्रतिष्ठेयाः स्थितायां स्थितिमाचरेः ।  
 निपण्णायां निपीदास्यां पीताम्भसि पिवेरपः ॥८९॥  
 वधूर्भक्तिमती चैनामर्चितामांतपोवनात् ।  
 ग्रयता प्रातरन्वेतु सार्यं प्रत्युद्ब्रजेदपि ॥९०॥  
 इत्याप्रसादादस्यास्त्वं परिचर्यापरो भव ।  
 अविघ्नमस्तु ते स्थेयाः पितेव धुरि पुत्रिणाम् ॥९१॥  
 तथेति प्रतिजग्राह प्रीतिमान्सपरिव्रहः ।  
 आदेशं देशकालज्ञः शिष्यः शासितुरानतः ॥९२॥

गौरी देवा, जिसके दर्शनसे ही पुण्य मिलता है, तब वे अपने यजमान उक्त राजा विनीतसे बोले  
 जो अपनी प्रार्थना सफल करानेके लिये वहाँ आए हुए थे ॥८६॥ हे राजन् ! तुम्हारा मनोरथ  
 बहुत क्षीघ्र ही पूरा होगा क्योंकि यह कल्याण करनेवाली नन्दिनी नाम लेते ही मा पहुँची  
 है ॥८७॥ जैसे विद्यार्थी [ सब सुखोंको छोड़कर ] लगनसे पढ़कर विद्या प्राप्त कर  
 लेता है वैसे ही यदि तुम भी [ सब भोगोंको छोड़कर ] कन्द-मूल-फल खाते हुए सदा इस  
 गौरी सेवा करोगे तो वह भी तुमपर प्रसन्न हो कर तुम्हारी इच्छा धरम पूरी करेगी ॥८८॥  
 जब यह बले तब तुम भी इसके पीछे-पीछे चलने लगना, जब सारी हो जाय तभी तुम भी सडे हो  
 जाना, जब बँडे तभी तुम भी बँटना और जब यह पानी पीने लगे तभी तुम भी पानी पीना ॥८९॥  
 तुम्हारी रानी सुदर्शिकाके आहिए कि वे निरय प्रातःकाल बडी भक्तिसे इसकी पूजा विद्या करें  
 और जब यह बननी भाने लगे तब वे तपोवनके वादेतन उसके पीछे-पीछे जायें और सायंकाल  
 सोते समय वहाँसे घगवानो करने उठे आश्रमसे ले आने ॥९०॥ जबतक यह गौ प्रसन्न न हो जाय  
 तबतक तुम इसी प्रकार इसकी सेवा करते रहो । ईश्वर करे तुम्हें कोई बाधा न हो और जिस  
 प्रकार तुम अपने पिताके योग्य पुत्र हो वैसे ही सुयोग्य पुत्र तुम्हें भी प्राप्त हो ॥९१॥ राजा  
 दिलीप यह सोचकर मनमें बहुत प्रसन्न हुए कि सभ्याके समय हवनकी अग्निसे सामने बैठकर  
 वशिष्ठजीने जो मुझ वहा है यह अवश्य मत्य होगा । तब बडी नम्रतासे उन्होंने वशिष्ठजीसे कहा  
 कि 'एम् ऐसा ही करो' और यह बट्वर उन्होंने और उनकी पत्नीने मुद्रासे इस प्रत्ये लिये  
 माता की ॥९२॥ रात हो चली थी । विद्वान्, शय्यवसा, ब्रह्मणे पुत्र वशिष्ठजीने राजा दिलीपको



अथ प्रदोषे दोषज्ञः संवेशाय विशांपतिम् ।

स्रुतुः स्रुतवानस्रुष्टुर्विसर्जोर्जितथियम् ॥६३॥

सत्पामर्षिं तपःसिद्धौ नियमापेक्षया मुनिः ।

कल्पवित्कल्पयामास वन्यामेवास्य संविद्याम् ॥६४॥

निर्दिष्टां कुलपतिना स्रु पृथुशालामध्यास्य प्रयत्नपरिग्रहद्वितीयः ।

तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां संविष्टः कुशशपनें निशां निनाय ॥

इति महाकवि श्रीकालिदासकृतौ रघुवज्जे.महाकाव्ये

वसिष्ठायमाभिमनो नाम प्रथम सर्ग ॥

जाकर सोनेकी छाता दे दी ॥६३॥ यद्यपि वशिष्ठजी चाहते तो अपनी तपस्याके प्रभावसे ही राजा विलीपके योग्य भोजन और सोनेका उपिठ प्रवण्य कर सकते थे पर वे व्रतके नियमोंको जानते थे इसलिये उन्होंने राजाके व्रतके योग्य [कल्पमूलके भोजन और कुशकी चटाईका] ही प्रवण्य किया था ॥६४॥ कुलपति वशिष्ठजीने जो पणकुटी बटाई उसीमे राजा विलीप ब्रह्मपरमका पालन करते हुए रानी मुदक्षिणाके साथ कुशाकी चटाईपर ही सो गए और प्रातःकाल ही जब वशिष्ठजीने अपने शिष्योंको वेद पढाना प्रारंभ किया तब उसकी ध्वनि मानने पडते ही राजा विलीप उठ बैठे ॥६५॥

महानवि श्रीकालिदासके रचे हुए रघुवज्जे महाकाव्यका वशिष्ठके ध्यात्रमने माभिमन नामका पहला सर्ग समाप्त हुआ ॥

पुक्तस्तुपारैर्गिरिनिर्भराणामनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी ।  
 तमातपक्लान्तमनातपत्रमाचारपूर्तं पवनः सियेवे ॥१३॥  
 शशाम वृष्ट्यापि विना दवाग्निरामीदृशोपाफलपुष्पवृद्धिः ।  
 ऊनं न सत्त्वेष्यधिको बवाघे तस्मिन्वनं गोप्तरि गाहमाने ॥१४॥  
 संचारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम् ।  
 प्रचक्रमे पल्लवरागताभ्रा प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च घेनुः ॥१५॥  
 तां देवतापिप्रतिथिक्रियार्थामन्वम्ययौ मध्यमलोकपालः ।  
 यमौ च सा तेन सतां मतेन अद्भेव साक्षाद्विधिनोपपन्ना ॥१६॥  
 स पल्लवोत्तीर्णवराहयूथान्यावासपृचोन्मुखवर्हियानि ।  
 ययौ मृगाध्यासितशाहलानि श्यामापमानानि बनानिपरयन् ॥१७॥  
 आपीनभारोद्ग्रहनप्रयत्नाद्गृष्टिर्गुरुत्वद्भृषो नरेन्द्रः ।  
 उभावलंचक्रतुरञ्चिताभ्यां तपोवनाद्भृषो गताभ्याम् ॥१८॥  
 वशिष्ठधेनोरनुयायिनं तमावर्चमानं वनिता वनान्तात् ।  
 पपी निमेषालसपक्ष्मपङ्क्तिरुपोपिताभ्यामिव लोचनाभ्याम् ॥१९॥

कारण मधुर स्वर निकल रहे थे ॥१३॥ पहली भरनोकी ठबी फुहारोते लदा हुमा धीर मन्-  
 मन्द कोंपाए हुए वृक्षोंके फूलोंकी गन्धमे बसा हुआ चातु उन सदाचारी राजा दिलीपको ठकक वेता  
 चता रहा था जिन्हे छत्र न होनेके कारण प्रभते बप्ट हो रहा था ॥१३॥ राजा दिलीप प्रजापालक  
 थे इसीलिये उनके जगतमे पहुँचते ही वपकि विना ही उनकी छाग ठबी हो गई, वहाँके देव भी  
 फल धीर फूलोंके छद गए धीर वहाँके बड़े जीवोंने छोटे जीवोंको सताना भी छोड़ दिया ॥१४॥  
 दिन बलनेपर नये पत्तोंकी सलाईने सामने सूर्यकी सलाई चारों धोर फँलवर सब दिसाओंकी  
 पवित्र करके प्रद विश्राम करने लीट चली । उधर जान रगवी नन्दिनी भी अपने धुरोंके स्वर्णसे  
 मार्गकी पवित्र करती हुई तपोवनकी धीर लीट पडी ॥१५॥ वृष्ठीका पालन करनेवाले राजा  
 दिलीप भी वनिष्ठ ऋषिके यज्ञ, याज्ञ, अतिथि पूजा आदि धर्मके कामोंके लिये दूध देनेवाली उस  
 नन्दिनीके पीछे-पीछे लौटते हुए ऐसे भले लग रहे थे जैसे ब्रह्माची पुत्री अदाके साथ सदाचार सोमा  
 देता हो ॥१६॥ राजा दिलीप देखते हुए चले जा रहे थे कि वही लो छोटे-छोटे तालोंमेंसे मूमरोंके  
 झुंड निकल-निकल कर चले जा रहे हैं, पहली धोर अपने वल्लेरी भी धोर उडे जा रहे हैं, कहीं  
 हरिण हरी-हरी घासों पर घनकर बैठ गए हैं और धीरे-धीरे सँभल रोनेसे उनकी सारी चरती  
 धुपसी पडती जा रही है ॥१७॥ नन्दिनी धीर दिलीप दोनों धीरे-धीरे चले जा रहे थे । नन्दिनी अपने  
 पनवे भारी होनेसे धीरे-धीरे चल रही थी और राजा दिलीप भारी सरीर होनेके कारण धीरे-धीरे  
 चल रहे थे । उन दोनोंकी धीरे-धीरे चलते देखकर तपोवनका मार्ग बस देखते ही बगता था  
 ॥१८॥ जब सँभलो राजा दिलीप नन्दिनीके पीछे-पीछे लौटे तब मुदसिखा अपलक नेत्रोंसे उन्हें देखती

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।  
 तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनचपामध्यगतेव संध्या ॥२०॥  
 प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं तां सुदक्षिणा साचतपात्रहस्ता ।  
 प्रणम्य चानर्च विशालमस्याः शृङ्गान्तरं द्वारमिवार्थसिद्धेः ॥२१॥  
 वत्सोत्सुकापि स्तिमिता सपर्या प्रत्यग्रहोत्प्रेति ननन्दतुस्तौ ।  
 भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि ॥२२॥  
 गुरोः सदारस्य निपीड्य पादौ समाप्य सांध्यं च विधिं दिलीपः ।  
 दौहावसाने पुनरेव दोग्ध्रीं मेजे भुजोच्छ्वरिपुनिपण्याम् ॥२३॥  
 तामन्तिक्रम्यस्तबलिप्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः ।  
 क्रमेण सुप्तमनु संविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत् ॥२४॥  
 इत्थं व्रतं धारयतः प्रजार्थं समं महिष्या महनीयकीर्तिः ।  
 सप्त व्यतीयुस्त्रिगुणानि तस्य दिनानि दीनोद्धरणोचितस्य ॥२५॥

यह गद्दे नामो उसकी धाँसे राजा दिलीपका रूप पीनेको प्यासी हो ॥१९॥ माधमके मार्गमे शीवे पीछे राजा दिलीप के और भागे भगवानीके निम्ने रानी सुदक्षिणा खड़ी थी । इन दोनोंके बीचमे वह सात रणपाली नन्दिनी ऐसी सोभा के रही थी जैसे दिन और रातके बीचमे साँझकी लताई ॥२०॥ पहले तो सुदक्षिणाने हावमे प्रकृत आदि सामग्री लेकर नन्दिनीकी पूजा करके प्रदक्षिणा की, फिर प्रणाम करके उसकी सीपों के बीचमे माथेपर चन्दन-मसत लगाया क्योंकि उन्होंने समझ लिया था कि यह सीपों का मध्य नहीं वरन् मेरी पुत्र-कामना पूरी करने का द्वार है ॥२१॥ मद्यपि नन्दिनी उस समय प्राणा बद्धा देखनेके लिये बहुत उत्तापती थी फिर भी वह रानीके पूजा करनेके लिये खड़ी हो गई । नन्दिनीका यह प्रेम देखकर वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि नन्दिनीके समान मनोरथ पूर्ण करनेवाले यदि भक्तपर प्रसन्न हो जाय तो शक्य लगे कि काम पूरा हो गया ॥२२॥ गौकी पूजा हो चुकने पर शत्रुओंके सहारक राजा दिलीपने पहले बशिष्ठजी और भरुच्युतीजीके चरणोंको चन्दन की और फिर अपने सन्ध्याके निरत्य बर्न पूरे किए । जब नन्दिनीका दूध दुह लिया गया और वह बैठ गई तब राजा दिलीप फिर उसकी सेवामे लग गए ॥२३॥ प्रजापावन राजा दिलीप अपनी पत्नीके साथ बहुत देरतक नन्दिनीकी सेवा और पूजा करते रहे । जब यह सो गई तब ये दोनों भी सोने चले गए और ज्योही वह सोकर उठी त्योंही इन दोनों की नींद भी टूट गई ॥२४॥ इस प्रकार सन्तान प्राप्तिके लिये अपनी पत्नीके साथ यह कठोर व्रत करते हुए दोनोंके रक्त परम कीर्तिवाली राजा दिलीपके इच्छोप्त दिन बीत गए ॥२५॥ तब नन्दिनीने सोचा कि मैं अपने सेवक राजा दिलीपकी परीक्षा क्यों न लूँ कि वे सच्चे भावसे सेवा कर रहे हैं या केवल स्वार्थ भावसे । इसीलिये राजा दिलीप जब बाईसवें दिन उसे वनमे ले गए तो वह ऋतु हिमासवकी उम्र बुकामे बैठ गई जिसपरसे

शन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं विजाममाना मुनिहोमधेनुः ।  
 गद्गाप्रपातान्तविरुद्धशब्धं . गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश ॥२६॥  
 ना द्यप्रवर्षा मनमापि हिंसैरित्यद्रिशोभाप्रहितेनखेन ।  
 थलजिताम्पुत्पन्नो नृपेण प्रमल्ल सिंहः किल तां चक्षुर्ष ॥२७॥  
 तदीयमाक्रन्दितमार्तमाधोर्गुहानिवद्धप्रतिशब्ददीर्घम् ।  
 रश्मिपिवादाय नगेन्द्रसक्तां निवर्तयाभास नृपस्य दृष्टिम् ॥२८॥  
 स पाटलायां गवि तस्थिवांमं घनुर्घरः केसरिणं ददर्श ।  
 अधिन्यकाषामिव घातुमय्यां लोघ्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम् ॥२९॥  
 ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः ।  
 जानाभिपद्भो नृपतिनिपद्गादुद्धर्तुमच्छत्रप्रसमोद्धृत्तारिः ॥३०॥  
 यामेतरस्तस्य वरः प्रहर्तुर्नक्षप्रमाभूपितकङ्कपत्रे ।  
 नक्ताद्गुलिः सायकशुद्ध एव चित्रापितारम्म श्वावतस्थे ॥३१॥  
 पाहुप्रतिष्ठम्भविषुद्धमन्युरभ्यर्णमागस्कृतमस्पृशद्भिः ।  
 राजा स्वतेजोभिरदत्तान्तर्भागीय मन्त्रीपधिरद्वर्षीर्यः ॥३२॥

तमार्यगृहं निगृहीतधेनुर्मनुष्यवाचा मनुवंशकेतुम् ।  
 विस्माययन्विस्मितमात्मवृत्तौ सिंहोरुसत्त्वं निजगाद सिंहः ॥३३॥  
 अलं महीपाल तव श्रमेषु प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात् ।  
 न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ॥३४॥  
 कैलासगौरं वृषमारुरुचोः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम् ।  
 अवेहि मां किंकरमष्टमूर्धेः कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम् ॥३५॥  
 अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषमध्वजेन ।  
 यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः ॥३६॥  
 कण्डूयमानेन कटं कदाचिद्वन्यद्विपेनोन्मथिता त्वगस्य ।  
 अथैनमद्रेस्तनया शुशोच सेनान्यमालीढमिषासुरास्त्रैः ॥३७॥  
 तदाप्रभृत्येव वनद्विपानां त्रासार्थमस्मिन्नहमद्रिकुचौ ।  
 व्यापारितः शूलभृता विधाय सिंहत्वमङ्गागतसत्त्ववृत्ति ॥३८॥  
 तस्यालमेया क्षुधितस्य वृत्त्यै प्रदिष्टकाला परमेस्वरेण ।  
 उपस्थिता शोणितपारवा मे सुरद्विपरचान्द्रमसी सुधेव ॥३९॥

से वंधा हुआ साँप ॥३२॥ सज्जनोके मित्र, मनुवंशके शिरोमणि श्रीर सिंहके समान पराक्रमी राजा  
 दिलीप बड़े आश्चर्यसे पडे हुए थे श्रीर जब वह सिंह मनुष्यकी बोलीसे बोलने लगा तब ही उनके  
 आश्चर्यका ठिकाना ही नहीं रहा ॥३३॥ सिंह बोला—हे राजन् ! तुम मुझे मारनेका जतन मत  
 करो क्योंकि मुझपर जो भी अस्त्र चलाओगे वह व्यर्थ जायगा । देखो ! वायुका जो वेग वृक्षोंको  
 जबसे उखाड केक सकता है वह पर्वतका कुछ भी नहीं बिगाड सकता ॥३४॥ [मुझे तुम  
 साधारण सिंह न समझना] मैं सर्वशक्तिशाली शंकरजी का शूपायाग सेवक श्रीर कुम्भोदर नागका  
 गण हूँ श्रीर शिवजीके शक्तिशाली गण निकुम्भका मित्र हूँ । जब शंकरजी कैलास पर्वतके समान  
 राजसे नन्दीपर चढे है तब पहले अपने अरुणोत्ते भेरी पीठ पधिर करते है ॥३५॥ श्रीर  
 यह जो तुम्हारे सामने यडा सा देवदारु का पेड दिखाई दे रहा है इसे शंकरजी अपने पुत्रके समान  
 भागतो है क्योंकि स्वयं पार्वतीजीने अपने सोनेके घटरूपी स्तनोके रससे सीच-सींचकर इसे इतना  
 बडा किया है ॥३६॥ [तुम जानते नहीं हो कि पार्वतीजी इसे कितना प्यार करती हैं ।] एक  
 बार एक जगती हाथी आकर इससे रस-रगड़कर अपनी कनपटी सुजानाने लगी । उससे इसकी  
 थोडी छान छिल गई । बस, इतनेपर ही पार्वतीजीको ऐसा शोक हुआ जैसा दैत्योके बाणो से पापल  
 स्वामिकाविकेयको देखकर हुआ था ॥३७॥ तबसे शंकरजीने जगती हाथियोको डरानेके लिये मुझे  
 यहाँ पहाडके ढालपर रसवाना बनाकर रस छोडा है और मेघ पेट करनेके लिये मुझे माता दे दी  
 है कि यहाँ जो जीव आवे उसे मारकर खा जाया करो ॥३८॥ जैसे चन्द्रनाग अमृत राहुको

स त्वं निर्वर्तस्व विहाय लज्जां गुरोर्मवान्दर्शितशिष्य भक्तिः ।  
 शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्षरत्तं न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति ॥४०॥  
 इति प्रगल्भं पुरुषाधिराजो मृगाधिराजस्य वचो निशम्य ।  
 प्रत्याहतास्रो गिरिशप्रभावादात्मन्यवज्ञां शिथिलीचकार ॥४१॥  
 प्रत्यब्रवीच्चैनमिषुप्रयोगे तत्पूर्वभङ्गे वितथप्रयत्नः ।  
 जडीकृतस्त्र्यम्बकवीचखेन वज्रं मुमुक्षुश्चिन्तय वज्रपाणिः ॥४२॥  
 संरुद्धचेष्टस्य मृगेन्द्रं कामं हास्यं वचस्तघदहं विवक्षुः ।  
 अन्तर्गतं प्राणभृतां हि वेद सर्वं भवान्मायमतोऽभिधास्ये ॥४३॥  
 मान्यः स मे स्यात्वरजङ्गमानां सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः ।  
 गुरोरपीदं घनमाहिताग्नेर्नश्यत्पुरस्तादनुपेक्षणीयम् ॥४४॥  
 स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद ।  
 दिनामसानोत्सुकप्रालवत्मा विसृज्यतां घेनुरियं महर्षेः ॥४५॥  
 अथान्धकारं गिरिगह्वराणां दंष्ट्रामयूरीः शकलानि कुर्वन् ।  
 भूयः स भूतेश्वरपार्श्ववर्ती किञ्चिद्विहस्यार्थपतिं वभापे ॥४६॥

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च ।  
 अल्पस्य हेतोर्वहु हातुमिच्छन्विचारमूढः प्रतिमासि मे त्वम् ॥४७॥  
 भूतानुकम्पा तव चेदियं गौरेका भवेत्स्वस्तिमति त्वदन्ते ।  
 जीवन्पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि ॥४८॥  
 अथैकधेनोरपराधचण्डाद्गुरोः कृशानुप्रतिमाद्भिर्मेपि ।  
 शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुंगाः कोटिशाः स्पर्शयताघटोध्नीः ॥४९॥  
 तद्रक्ष कल्याणपरम्पराणां भोक्तारमूर्जस्वलमात्मदेहम् ।  
 महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नमृद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः ॥५०॥  
 एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्रे प्रतिस्वनेनास्य गुहागतेन ।  
 शिलोच्चयोऽपि क्षितिपालमुच्चैः प्रीत्या तमेवार्थमभापतेव ॥५१॥  
 निशम्य देवानुचरस्य वाचं मनुष्यदेवः पुनरप्युवाच ।  
 धेन्या तदध्यासितकातराख्या निरीक्ष्यमाणः सुतरां दयालुः ॥५२॥  
 क्षतात्किल प्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भ्रुवनेषु रूढः ।  
 राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपकोशमलीमसैर्वा ॥५३॥

बोला ॥४५॥ हे राजन् ! जान पड़ता है कि तुममें यह सोचनेकी शक्ति नहीं रह गई कि मुझे क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए, क्योंकि तुम एक साधारण-सी गौके पीछे इतना बड़ा राज्य, जीवन और ऐसा सुन्दर शरीर खोबनेपर उतारू हो गए हो ॥४७॥ यदि तुम केवल प्राणियोपर दया करनेके विचारके ही ऐसा कर रहे हो तो भी यह त्याग ठीक नहीं है, क्योंकि इस समय यदि तुम मेरे भोजन बनते हो तो केवल एक बीनी रखा होगी, पर यदि जीते रहो तो पिताके समान तुम अपनी पूर्ये प्रजाकी रक्षा कर सकोगे ॥४८॥ और यदि तुम गौके स्वाधी और अग्निके सामान अपने तेजस्वी गुरूजीसे बरते हो तो उन्हें बड़े-बड़े धनोवाली करोड़ों गौएँ देकर तुम उन्हें बना सकते हो ॥४९॥ देखो ! सभी तुम्हारे खेलने-खानेके दिन हैं । इसलिए तुम अपने बलवान् शरीरकी रक्षा करो, क्योंकि विद्वानोंने कहा है कि कुछ और समुद्रिरो मरा हुआ राज्य पृथ्वीपर ही स्वर्ग बन जाता है । उस स्वर्गसे इस स्वर्गसे इतना ही अन्तर होता है कि यह भूमिका स्वर्ग होता है और यह देवलोकाका ॥५०॥ जब इतना कहकर सिंह चुप हो गया तब पर्वतकी कन्दरा से भी सुनाई पडनेवाली उसकी गूँज ऐसी जान पडी मानो पर्वतने भी प्रखण्ड होकर सिंहकी ही धातिका समर्थन किया हो ॥५१॥ राजाने एक और सिंहकी बातें सुनी और दूसरी ओर देखा कि सिंहके नीचे दबी हुई गौ क्षत्र नेत्रोसे रक्षाकी भीख माँग रही है । दयालु राजा दिलीपका भी भर भावा और वे बोले—॥५२॥ हे सिंह ! क्षत्रिय शब्दका अर्थ ही है कि दूसरोंको नष्ट होनेसे बचावे । यदि मैंने यह नाम नहीं किया तो मेरा राज्य करना ही किस कामका और अपायक लेकर जीते रहना

कथं न शक्योऽनुनयो महर्षेर्निश्चायनाच्चान्यपयस्विनीनाम् ।  
 इमामनूनां सुरभेरवेद्दि रुद्रौवसा तु प्रहृतं त्वयास्याम् ॥५४॥  
 सेयं स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण न्याय्या मया मोचयितुं भवतः ।  
 न पारणा स्याद्विहता तवैवं भवेदलुप्तश्च मुनेः क्रियार्थः ॥५५॥  
 भवानपीदं परवानरैति महान्हि यत्नस्तव देवदारी ।  
 स्यात्तुं नियोक्तुर्नहि शक्यमग्रे विनाश्य रक्ष्यं स्वयमन्नतेन ॥५६॥  
 किमप्यहिंस्पस्त्र चेन्मतोऽहं यशःशरीरे भव मे दयालुः ।  
 एकान्तविष्णंसिषु मन्निधानां पितृद्वेषनास्था खलु भौतिकेषु ॥५७॥  
 संनन्धमाभाषणपूर्वमाहुर्धृचः स नौ संगतयोर्वनान्ते ।  
 तद्भूतनाथानुग नार्हसि त्वं सम्बन्धिनो मे प्रणयं विहन्तुम् ॥५८॥  
 तथेति गामुक्तवते दिलीपः सद्यः प्रतिष्टम्भविमुक्तराहुः ।  
 स न्यस्तशस्त्रो हरये स्वदेहमुपानयत्पितृद्वेषमिवापिपस्य ॥५९॥  
 तस्मिन्क्षणे पालयितुः प्रजानामुत्पश्यतः सिंहनिपातमुग्रम् ।  
 शवाद्मुखस्योपरि पुष्पवृष्टिः पपात रिधाधरद्वस्तमुक्ता ॥६०॥

ही विजय वामना ॥५३॥ तुम रामभरो हो कि इनके बदलेमे दूसरी गोर् देकर नी महर्षि बसिष्टको  
 बना लुगा । यह हो नहीं सक्ता । तुम इस गोको नहीं पहचान रह हो । यह विजय भी प्रेकार  
 रामभेनुमे कम नहीं है । आज शकटजीका बल लेकर ही तुमने इधर आक्रमण किया है; नहीं तो  
 तुममें इनकी शक्ति नहीं [ कि इसका जान नी जाना कर करो ] ॥५४॥ इसलिये भी अपना  
 शरीर देकर भी इसे दृढाङ्गा बसोकि ऐसा करनेसे तुम्हारी भुग नी मिट जायगी और गोके  
 ग रूनेके बसिष्टजीकी जो गल-क्रियायें इन जातीं, वे भी न रहेंगे ॥५५॥ देणो भाई ! तुम  
 भी इनके सेवन हो और छोड़ सनने देवदार के वृक्ष की रक्षा कर रहे हो । तुम यह जानते होने  
 कि जिसकी रक्षाका भार मेवकको मिलता है यदि वह मरट हो जाय और सेवन छोटा रह जाय तो  
 राजाको यह अपने स्वामीके भागे नीन भूह लेकर जायगा ॥५६॥ यदि तुम किसी कारणसे मरे  
 ऊपर क्या करना चाहते हो तो मेरे बसकी रक्षा करो, क्योंकि तुम जैसे लोगो को पश्य-तत्त्वमे वी इस  
 दरार शरीर का ठनिक भी भोह नहीं होगा ॥५७॥ देणो भाई ! वातबोग चतानेरे माते हम दोनों  
 मित्र हो गए हैं, इसलिये हे शिवके सेवक ! अपने मित्रकी प्रायश्चा म दुःखराषी ॥५८॥ यह मुझपर  
 जिह बोला—अच्छी बात है, यही सती । तबतम दिगीपना हाम तुम गया और राजा दिगीप  
 को अपने सेवन करने निकके ममान सिंहके भागे या चले ॥५९॥ नीया भूह करने राजा  
 दिगीप यह गोप हो रह थे कि अब यह उत्तर दूटो जाना है कि इनको ही प्रवा पतक



तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य ।  
 ग्रहर्षिचिह्नानुमितं प्रियायै शशांस वाचा पुनरक्तयेव ॥६८॥  
 स नन्दिनीस्तन्यमनिन्दितात्मा सद्ब्रह्मलो वत्सहुतावशेषम् ।  
 पपौ वशिष्ठेन.. कृताभ्यनुवृत्तः शुभ्रं यशो मूर्चमिवातितृष्णः ॥६९॥  
 प्रातर्प्योक्तव्रतपारणान्ते प्रास्थानिकं स्वस्त्ययनं प्रयुज्य ।  
 तौ दंपती स्वां प्रति राजधानीं प्रस्थापयामास वशीवशिष्ठः ॥७०॥  
 प्रदक्षिणीकृत्य हुतं हुताशमनेन्तरं मर्तुररन्धतीं च ।  
 धेनुं सवत्सां च नृपः प्रतस्थे सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः ॥७१॥  
 श्रोत्राभिरामप्यनिना रथेन स धर्मपत्नीसहितः सहिष्णुः ।  
 ययायनुद्धातसुखेन मार्गं स्वेनेव पूर्णेन मनोरथेन ॥७२॥  
 समाहितौत्सुक्यमदर्शनेन प्रजाः प्रजार्थव्रतकृशिताङ्गम् ।  
 नेत्रेः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिर्नवोदयं नायमिवौपधीनाम् ॥७३॥

पदी ॥६७॥ निर्मल चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाने राजाधिराज दिलीप जब वशिष्ठजीके पास पहुँचे तब उनका प्रसन्न मुख देखते ही वशिष्ठजी सब बातें पहलेसे समझ गए। इसलिये राजाने जो समाचार सुनाया वह उन्हें ऐसा लगा मानो दुहराया या रहा हो। गुरुजीसे वह बुकनेपर राजा दिलीपने यह समाचार सुवक्षिणाने भी वह सुनाया ॥६८॥ जब बछड़ा दूध पी चुका और हवन भी हो चुका तब राजाजीके प्यारे प्रसन्नगीय राजा दिलीपने वशिष्ठजीकी आज्ञासे नन्दिनीका दूध ऐसे पी लिया मानो उन्हें बड़ी प्यास लगी हुई हो। उध दूधके उतलेपरका तो पहना ही क्या। उनकी जान पडा मानो स्वयं उजला या ही दूध धन प्राया हो ॥६९॥ दूसरे दिन प्रातःकाल त्रितेन्द्रिय वशिष्ठजीने समझ लिया कि गौकी सेवाका व्रत तो पूरा हो ही गया इसलिये उन्होंने राजा और रानी दोनों को आज्ञाकीदिया कि तुम्हारा मार्ग धानरुते बटे और उन्हें भरोप्याके विषे बिदा कर दिया ॥७०॥ बिदा लेते समय राजाने पहले हवन-कुण्डकी, फिर शुद्ध वशिष्ठजी, तब माता भरुप्यतीकी और सपथे पीछे बरहूँके साथ बड़ी दृढ़ नन्दिनीकी परिक्रमा की। मर्हपिये आजीर्वाद पानेसे उनका तेज और भी अधिक बढ़ गया ॥ ७१ ॥ सहनशील राजा दिलीप अपनी धर्मपत्नीने साथ जिष्ट रथपर चढ़कर प्रयोप्यारी पथे उसकी ध्वनि बानोको बड़ी मीठी लग रही थी और वह ऐसा प्रसन्न था कि उत्तमें नामकी भी हचन नहीं लगती थी। इसलिये उसपर सुगन्धे पडार पाते हुए वे ऐसे लगते थे मानो वे अपने गहन मनोरथपर बैठे हुए जा रहे ह, रथपर नहीं ॥७२॥ राजाकी प्रयोप्यासे गए बहुत दिनों हो गए थे इसलिये प्रजा उनके दर्शने निम्ने तरफ रही थी। पुत्रकी उत्पत्तिके निम्ने जो जगती धन लिया था उससे वे कुछ दुबले हो गए थे। अत्र एतने दिनों बाद सोतेसे उनकी प्रजा उन्हें ऐसी एवढक होकर देखन लगी जैसे सोय द्वितीयाने चन्द्रमाने उदय होनेपर

पुरंदरश्रीः पुरमुत्पंताकं प्रविश्य पौरैरभिनन्द्यमानः ।

भुजे भुजंगेन्द्रसमानसारे भूयः स भूमेधुरमाससज्ज ॥ ७४ ॥

अथ नपनसमुत्थं ज्योतिरत्रेति चैः

सुरसरिदिव तेजो बह्विनिश्वतमैशम् ।

नरपतिबुलभूत्यै गर्भमाषत्त राज्ञी

गुरुभिरभिनिर्विटं लोकपालानुभावैः ॥ ७५ ॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवशे महाकाव्ये  
नन्दिनीवरप्रदानो नाम द्वितीय सर्गः ॥

उसे ध्यानसे देखते हैं ॥ ७३ ॥ इन्द्रके समान सम्पत्तिस्वामी राजा दिलीपने प्रजाका भादर पाकर अपनी उस झरोख्या नगरीमें प्रवेश किया जिसमें उनके स्वागत के लिये भजे कंधे कर दिए गए थे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने रोपनाशके समान अपनी बसबती भुजाप्रोसे फिर राजकाज संभाल लिया ॥ ७४ ॥ जैसे शक्ति श्रद्धिके नेत्रसे निकली हुई चन्द्रमालसे ज्योतिको धाकाधने धारण किया और जैसे स्कन्दको उत्पन्न करनेवाले सकरजीके उस तेजको बगजीने धारण कर लिया जिसे अग्नि भी नहीं संभाल सकी थी, वैसे ही राजा सुदक्षिणाने राजा विलीपका वश चसानेके लिये [बाठे विश्वाभोने ] लोचपातोसे समान तेजस्वी पुरुषके तेजसे भरा हृष्य यम धारण किया ॥ ७५ ॥

महाकवि श्रीकालिदासके रचे हुए रघुवश महाकाव्यका नन्दिनी वर-प्रदान नामक  
दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ।

दिशः प्रसेदुर्मरुतो वयुः सुखाः प्रदक्षिणां चिह्नविरग्निराददे ।  
 वभूव सर्वं शुभशंसि तत्त्वथं भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ॥१४॥  
 अरिष्टशय्यां परितो विसारिणा सुजन्मनस्तस्य निजेन तेजसा ।  
 निशीयदीपाः सहसा हतत्वपो वभूवुरालेख्यसमर्पिता इव ॥१५॥  
 जनाय शुद्धान्तचराय शंसते कुमारजन्मामृतसंमिताचरम् ।  
 अदेयमासीत्त्रयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुमे च चानरे ॥१६॥  
 निचातपन्नस्तिमितेन चञ्चुपा नृपस्य कान्तं पिवतः सुताननम् ।  
 महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शनाद्गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि ॥१७॥  
 स ज्ञातकर्मण्यखिले तपस्विना तपोचनादेत्य पुरोधसा कृते ।  
 दिलीपस्यनुर्मणिराफरोद्भवः प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं धर्मौ ॥१८॥  
 सुखश्रवा मङ्गलतूर्यनिस्वनाः प्रमोदनृत्यैः सह वारयोपिताम् ।  
 न केवलं सन्ननि मागधीपतेः पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि ॥१९॥

\*मन्त्राला] ये भयल सम्पत्ति या सेवा है वैसे ही इन्द्राणीके सपान तेजवाली सुदक्षिणाके भी वह पुत्र उत्पन्न किया जिसके सोमाम्ययासी होनेकी सूचना वे पाँच छुम यह दे रहे थे जो उस समय उष्य स्थानपर थे और सायने भूयके न होने से फल देने से समर्पण थे ॥१५॥ बालकके उत्पन्न होनेके समय आकाश धुल गया, शीतल मन्द-सुगन्ध वायु चलने लगा और हवनकी प्रतिनीक सपटें दक्षिण की ओर घूमकर हवनपी सामप्रियां सेने लगी । सभी एकजु बच्चे हो रहे थे [और यह उचित भी था] क्योंकि ऐसे बालक सप्तर के कल्याणके लिये ही उत्पन्न होते हैं ॥१५॥ उस भाम्ययाचु बालकका तेज शौरी-परमे चारो ओर इतना छाया हुआ था कि बायीं रातके समय धरमे रखे हुए शीशिका प्रकाश-भी दकदम लीका पढ गया और वे ऐसे जान पड़ने लगे मानो चित्रमे बने हुए हों ॥१५॥ भट्ट पन्त पुरके सेवकने राजा दिलीप के पास आकर पुत्र होनेका समाचार सुनाया । यह सुनकर वे इतने प्रसन्न हुए कि छत्र और दोनो बँवर लो न दे सकें [क्योंकि वे राजपितृ थे] शेष सब प्राभूपण उन्होंने उत्तारकर उसे दे डाले ॥१६॥ वे तत्काल भीतर गये और जैसे वायुके एक जानेपर कामस निश्चल हो जाता है वैसे ही वे एकटक होकर अपने पुत्रका मूँह देखने लगे । जैसे चन्द्रमाको देखकर महासमुद्रमे ज्वार भा जाता है वैसे ही पुत्रको देखकर राजाको इतना अधिक मानन्द हुआ कि वह उनके हृदयमें समा न सका ॥१७॥ पुरोहित वशिष्ठजीने भी जब यह धुन समाचार पाया तब वे भी तपोवनसे चला भा गए और स्वभावसे ही सुन्दर उस बालकके जातकमें आदि संस्कार किये । संस्कार ही जानेपर वह बालक बड़े ही सुन्दर अपने लगा जैसे खानसे निकालकर सरदा हुआ हीरा ॥१८॥ वह बालक लो सप्तरका कल्याण करनेवाला था इसलिये उसके जन्म लेनेपर केवल सुदक्षिणाके पति दिलीपके ही राजमन्दिरमे मनीहर जाने और वेरयाधोवे नाच आदि उत्सव नहीं हो रहे थे वरन् आकाशमे देवताओंके चला भी नाच-बान हो रहा था ॥१९॥ [जब राजकुमार का जन्म होता है तब बन्दी-गुली

न सपतस्तस्य बभूव रचितुर्विसर्जयेद्य सुतज्जन्महर्षितः ।  
 ऋणाभिधानात्स्वमेव केनल तदापितृणांमुमुचे स बन्धनात् ॥२०॥  
 श्रुतस्य यायादयमन्तमर्मकस्तथा परेषां युधि चेत्तिथार्थिनः ।  
 अवेक्ष्य धातोर्गमनार्थमर्थविचकार नाम्ना रघुमात्मसंभवम् ॥२१॥  
 पितुः प्रयत्नात्स समग्रसंपदः शुभैः शरीरावयवैर्दिने दिने ।  
 पुपोप वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः ॥२२॥  
 उमाष्टपाङ्कौ शरज्जन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरंदरौ ।  
 तथा नृप सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ ॥२३॥  
 रथाङ्गनाम्भोरिव भावबन्धनं बभूव यत्प्रेम परस्पराश्रयम् ।  
 विभक्तमप्येकसुतेन सचयोः परस्परस्योपरि पर्यचीयत ॥२४॥  
 उवाच धात्र्या प्रथमोदितं बभूव ययौ तदीयामवलम्ब्य बाह्वगुलिम् ।  
 अभूच्च नम्रः प्रथिपातशिक्षया पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्मकः ॥२५॥  
 तमङ्कमारोप्य शरीरयोगजैः सुरैर्निपिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि ।  
 उपान्तसंभीलितलोचनो नृपधिरात्सुतस्पर्शरसज्ञतां ययौ ॥२६॥

हे बन्धी छोट दिए जाते हैं पर राजा दिलीपके राज्यका ऐसा बन्धा प्रबन्ध था कि कोई भयराय ही नहीं करता था । इसलिये] राज्यमे कोई धरदा ही नहीं था जिसे ये पुत्र-जन्मकी प्रसन्नतामें छोड़ते । इसलिये उन्होंने यही समझा कि पुत्र न होनेसे जो मैं पितरोंके ऋणके बन्धनमे था उस बन्धनसे भाग मैं ही छूट गया हूँ ॥२०॥ [शब्दोंके ठीक] धर्म पहचाननेवाले राजाने (रधि) पातु-का 'जाना' धर्म समझकर अपने पुत्रका नाम इसलिये रघु रक्ता कि वह सम्पूर्ण शास्त्रोंके पार पहुँच जायगा और मुद्दक्षेत्रमे दानुमीके स्मृतीके तोड़कर उनके भी पार बला जायगा ॥२१॥ जैसे पुत्र पक्षी प्रतिपदाका चन्द्रमा सूर्यकी किरणों पार दिन दिन बढ़ने लगता है वैसे ही बालक रघुके भ्रम भी सम्प्रतिशासी पिताकी देखरेखमे दिन दिन बढ़ने लगे ॥२२॥ जैसे वातिकेपने समान पुनको पाकर टाकर और पार्वतीको भयन्त प्रसन्नता हुई थी और जयन्त जैसे प्रतापी पुत्रको पाकर इन्द्र और राची प्रसन्न हुए थे वैसे ही राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा भी उन दोनोंने ही समान तेजस्वी पुत्र पाकर बड़े प्रसन्न हुए ॥२३॥ राजा और रानीमे चकना और चकदिके समान गाढा प्रेम था । वह प्रेम यद्यपि एकमात्र पुत्र रघुपर बँट गया था फिर भी उनके परस्पर प्रेममे कमी नहीं हुई, उनटे यह बटा ही गया ॥ २४ ॥ जब बालक रघु कुछ बड़े हुए तब थायने उन्हें नोकुच शिक्षाया उसे ये अपनी तोतली बौनीमे बोसने लगे, उसकी जंगली पबटवर चतने लगे और तिर झुकाकर बडोकी प्रणाम करना भी सीख गए । राजा दिलीप अपने पुत्रको ये बालचीत्तारे देखकर पूने नहीं समाले थे ॥२५॥ जब राजा उसे मोदमें उठाते तब उसका शरीर झूने ही उन्हें ऐसा जान बढता था मानो उनके शरीरपर भ्रमृत्वो फुहारें बरस रही हो । उस

अयंस्त चानेन परार्घ्यजन्मना स्थितेरभेत्ता स्थितिमन्तमन्त्रयम् ।  
 स्वमूर्तिभेदेन गुणाप्रयवर्तिनापति प्रवानामिव सर्गमात्मनः ॥२७॥  
 स वृत्तचूलश्लकाकपचकैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः ।  
 लिपेर्यथावद्ग्रहणेन बाहूमयं नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत् ॥२८॥  
 अथोपनीतं विधिवद्विपश्चितो विनिन्दुरेनं गुरवा गुरुप्रियम् ।  
 अबन्ध्ययत्नाथ बभूवुरत्र ते क्रिया द्विवस्तूपहिता प्रसीदति ॥२९॥  
 धियः समग्रं स गुरुरेददारधीः क्रमाच्चतस्रथतुरर्णवोपमाः ।  
 सतार द्विधाः पवनातिपातिभिर्दिशो हरिर्द्विर्हरितामिवेक्षरः ॥३०॥  
 त्वर्चं स मेध्यां परिवाय रौरवीमशिषतास्रं पितुरेव मन्त्रवत् ।  
 न केनलं तव्गुरुरेकपार्थिवः क्षितावभूदेकधनुर्धरोऽपि सः ॥३१॥  
 महोक्षतां वत्सतरः स्पृशन्निव द्विपेन्द्रभावं फलभः श्रयन्निव ।  
 रघुः क्रमाद्यौघनभिन्नशैशवः पुपोप गाम्भीर्यमनोहरं वपुः ॥३२॥  
 अथास्य गोदानविधेरनन्तरं विवाहदीक्षां निरवर्तयद्गुरुः ।  
 नरेन्द्रकन्यास्तमवाप्य सत्पतिं तमोनुद दक्षसुता श्वानभुः ॥३३॥

मयं प्रति यन्म वरने ये बहुत देर तक यह प्रानन्द लेते ही रह जाते थे ॥२६॥ जैसे प्रजापति  
 ब्रह्मणे भगने सतोगुणवाले भगने विष्णुके प्रकट होनेपर यह समझ लिया कि अब हमारी सृष्टि-अमर  
 हो गई, जैसे ही सर्वादात्मित्व दितीवने भी यह समझ लिया कि रघुने भी कर्मवत् सदा चतता  
 रहेगा ॥२७॥ सुपुत्र सत्कार ही जानेपर धने खचल लड़नेवाले तथा सभान भायुवाले भवियोंने पुत्रोके  
 साथ पहले पर्यामाता लिसना-बढ़ना सोचा और फिर धारण तथा वाच्य वा धध्ययन प्रारम्भ कर  
 दिया मानो नदीके मुहानेके हीकर समुद्रमें बँठ गए ही ॥२८॥ बसोपवीत हो सुबनेपर रघुने वपुः  
 पण्डित को सत्र विद्यार्थे भी पढ़ाने लगे । इसमें गुरुभोगे सारा परिश्रम सफल ही गया क्योंकि चतुर  
 क्षिप्रणे को विद्या दी जाती है वह अवश्य फलती ही है ॥२९॥ जैसे सूर्य भगने सरपट शैशवेवाले  
 घोड़ेकी सहायतासे घोड़े ही सगवम चारों दिशाओकी पार कर लेता है जैसे ही बुद्धिमान् रघुन धरणी  
 तीव्र बुद्धिकी सहायतासे घोड़े ही चार समुद्रों के सभान विस्तृत [थायोधिनी, भगी, वार्ता तथा दक्ष-  
 नीति के] चारों दिशाए लोख लीं ॥३०॥ पवित्र दक्ष मृगया चर्म पहनकर रघुने मन्त्रयुक्त फलोकी  
 विद्या धरने पिताके ही प्राप्त की क्योंकि उनके पिता देवल परब्रह्मों राजा ही नहीं थे वरन् अद्वितीय  
 अनुप धरनेवाले भी थे ॥३१॥ जैसे मायका बछड़ा बड़ा हुआपर लौट ही जाता है और हाथीका  
 बच्चा बचकर बकराज हो जाता है जैसे ही जब रघुने को स्वयंय विद्यापर कुशावतयोके पंर रफता  
 एवं उनका सरोर और भी पिय उठा ॥३२॥ राजने गोदान सम्भार करके स्वयं विवाह कर  
 दिया । जैसे दशांगी [ अश्विनी यादि ] बन्ध्याएँ बन्धुमा-जैसे पतिवो पाकर प्रगल्भ हुई थीं वैसे ही  
 राजकुमारिणी भी रघु जैसा प्रतापी पति पाकर प्रगल्भ हुई ॥३३॥ युवावस्थाके कारण रघुने मुनाएँ

युवा युगव्यायतवाहुरसलः कृपाठवत्ताः परिखद्गुधरः ।  
 वपुः प्रकर्षादजयद्गुरुं रघुस्तथापि नीचैर्विनयाददृश्यत ॥३४॥  
 ततः प्रजानां चिरमात्मना घृतां नितान्तगुर्वी लघयिष्यता धुरम् ।  
 निसर्गसंस्कारविनीत इत्यसौ नृपेय चक्रे युवराजशब्दभाक् ॥३५॥  
 नरेन्द्रमूलायतनादनन्तरं तदास्पदं श्रीयुवराजसंज्ञितम् ।  
 अगच्छद्दंशेन गुणामिलापिषी नवायतारं कमलादिवोत्पलम् ॥३६॥  
 विभावसुः सारधिनेव वायुना धनव्यपायेन गभस्तिमानिव ।  
 बभूव तेनातिरां सुदुःसहः कृत्प्रभेदेन करीव पार्थिवः ॥३७॥  
 नियुज्य तं होमतुरंगरक्षणे धनुर्धरं राजसुतैरनुद्रुतम् ।  
 अपूर्णमेकेन शतक्रतूपमः शतं क्रतूनामपविघ्नमाप सः ॥३८॥  
 ततः परं तेन मखाय यज्वना तुरंगमत्सृष्टमनर्गलं पुनः ।  
 धनुर्भूतामग्रत एव रचिणां जहार शकः किल गूढविग्रहः ॥३९॥  
 विपादलुप्तप्रतिपत्ति विस्मितं कुमारसैन्यं सपदि स्थितं च तत् ।  
 वशिष्ठधेनुश्च यदृच्छयागता श्रुतप्रभावा ददृशेऽथ नन्दिनी ॥४०॥

हजने पुएके समान इव धीर लन्वो हो गई, धाती चीटी होवाई धीर कग्ने भारी हो गए । इस प्रकार बील बील बढ जानेके कारण रघु अपने बूढे पितासे भी ऊँचे धीर लगते लखते थे, फिर भी वे इतने गम्भ थे कि उन्होंने कभी अपना बडापन प्रकट नहीं होने दिया ॥३४॥ जब राजा दिलीप ने देखा कि शिक्षा भादि सास्कारो से रघु नम्र हो गए है धीर भली भाँति राज्य संभाल सकते हैं तब उन्होंने सोचा कि बहुत दिनों से जो राज्य मैं चला रहा हूँ उसे रघुको क्यों न सौंप दूँ । यह विचारकर उन्होंने रघुको युवराज बना दिया ॥३५॥ जैसे सुन्दरतानी देवी मुरझाए हुए कमलको छोड़कर नये कमलपर चढ जाती है वैसे ही राज्य लक्ष्मी भी बूढे दिलीपको छोडकर धीरे धीरे रघुपर चढ़ गई ॥३६॥ जैसे वायुको सहायतासे धूमि, धारद् ऋतुके सुते हुए आकाशको पककर सूर्य धीरे धीरे मढ देनेके कारण हाथी प्रकट हो जाता है वैसे ही प्रतापी रघुकी सहायतासे दिलीप भी इतने शक्तिशाली हो गए कि उनसे सधु उनसे माँगने लगे ॥३७॥ इन्द्रके समान प्रधानशाली दिलीपने यज्ञसे घोडेकी रथापर भार रघु धीर भन्व धनुर्धर राजकुमारो को सौंपकर नित्यानले अश्वभेध यज्ञ विना वाषाणे पूरे कर लिए ॥३८॥ तब दिलीपने सौर्षा यज्ञ करनेसे लिये घोडा छोडा । इन्द्रको यह बात लटकी धीर उन्होंने प्रपनेको छिपाकर धनुषधारी रथकोने देखते देखते उस घोडेको चुरा लिया ॥३९॥ जब घोडेको रथा करनेवालो रघुकी सेनागे देला नि घोडा देखते देखते महत्त्व होगया तब वे बडे घबराए मोर उन्हेँ आश्रय भी हुया । ठीक उसी समय वहाँ बसिष्ठ ऋषिको प्रभावशालिनी गौ नन्दिनी भूमती धामती चली आई ॥४०॥ सज्जनो

तदङ्गनिस्पन्दजलेन लोचने प्रमृज्य पुण्येन पुरस्कृतः सताम् ।  
 अतीन्द्रियेष्वप्युपपन्नदर्शनो बभूव भावेषु दिलीपनन्दनः ॥४१॥  
 स पूर्वतः पर्वतपक्षशातनं ददर्श देवं नरदेवसंभवः ।  
 पुनः पुनः स्रुतनिपिद्धचापलं हरन्तमरवं रथरश्मिसंयतम् ॥४२॥  
 शतैस्तमद्दशामनिमेषवृचिमिर्हरिं विदित्वा हरिभिश्च वाजिभिः ।  
 अघोचदेनं गंगानस्पृशा रघुः स्वरेण धीरेण निवर्तयन्निव ॥४३॥  
 मखांशभाजां प्रथमो मनीषिभिस्त्वमेव देवेन्द्र सदा निगद्यसे ।  
 अत्रस्रर्दीक्षाप्रपतस्य मद्गुरोः क्रियाविघाताय कथं प्रवर्तसे ॥४४॥  
 त्रिलोकनाथेन सदा मखद्विपस्त्वया नियम्या ननु दिव्यचक्षुषा ।  
 स चेत्स्वयं कर्मसु धर्मचारिणां त्वमन्तरायो भवसि च्युतो विधिः ॥४५॥  
 तदङ्गमायं मघवन्महाक्रतोरसुं तुरंगं प्रतिमोक्तुमर्हसि ।  
 पथः श्रुतेर्दर्शयित्वा ईश्वरा मलीमत्सामाददते न पद्धतिम् ॥४६॥  
 इति प्रगल्भं रघुणा समीरितं वचो निशम्पाधिपतिर्दिवीकसाम् ।  
 निवर्तयामास रथं सविस्मयः प्रचक्रमे च प्रतिवक्तुमुत्तरम् ॥४७॥

इस प्रकार सम्मानित रघुके तत्काल नन्दिनीका भूमि प्रपनी भाँसोसे सगामा नियते उन्हे उन सब वस्तुमोकी  
 देल सपनेकी पक्ति भागई जो किसी भी इन्द्रियके किसीको नहीं ज्ञात होती ॥४१॥ इस प्रकार दिव्य  
 शक्ति प्राप्त करके रघु देखते क्या है कि पर्वतके पक्ष नाटनेवाले इन्द्र रथयं उस पौढ़ेको लिए बजे जा  
 रहे है धीर यह घोडा भी उनके रथके पीछे बंधा हुआ, गुटावर भातने या दल कर रहा है जिसे  
 अन्नका छाटकी बार बार संभ्रान्तनेका चल कर रहा है ॥४२॥ रघुने धीरे गटावर देखा कि घोडा  
 गुटावर लेमाने बानेके धीरेरथर भाँसे ही भाँसे है, उन धीरेकी पलके भी नहीं गिरती ॥ धीर उनके  
 रथके मोठे भी हरे-रूरे हैं। यह रघुने समझ लिया कि ही न हो ये इन्द्र ही हैं धीर ये जैसे वभीर स्वखे  
 इस प्रकार इन्द्रके बोले मानो उन्हे लोटनेको सलवार रहे हो ॥४३॥ हे देवेन्द्र ! विद्वानोंका कहना  
 है कि पशुका भाग सबसे पहले धापको ही मिलता है। मेरे पिताजी भी धाप लोगोंके लिये ही यत  
 कर रहे हैं फिर न जाने क्यों धाप सबसे विघ्न डाल रहे हैं ॥४४॥ उनसे धापको तो यह चाहिए कि  
 समारमे जो कोई भी यज्ञमें विघ्न डाले उसे धाप स्वयं दब दे, क्योंकि धाप तो तीनों लोकोंके स्वामी  
 हैं, धीर जब स्वयं धाप ही यज्ञमें विघ्न डालने लगे तो समारमे धर्म ही लुप्त हो जायगा ॥४५॥  
 इतिगिरे हे इन्द्रदेव ! धाप मेरे पिताके धामनेप यज्ञमें लिये द्य पौढ़ेको छोड़ दीजिए। वेदका  
 मार्ग दिखानेवाले महारथार्योंके ऐसा बोधा नाम करता धोना नहीं देता ॥४६॥ रघुके पत्रिमाह-  
 नरे दन समानोंका सुनकर इन्द्रको बड़ा आश्चर्य हुआ धीर अपना रथ लीटावर के मोठे—॥४७॥ 'हे

यदात्य राजन्यकुमार तत्तथा यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः ।  
जगत्प्रकाशं तदशेषमिज्यया मवद्गुरुर्लक्षपितुं ममोद्यतः ॥४८॥  
हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतो महेश्वरस्यम्बक एव नापरः ।  
तथा विदुर्मा मुनयः शतक्रतुं द्वितीयगामी न हि शब्द एष नः ॥४९॥  
अतोऽयमश्वः कपिलानुकारिणा पितुस्त्वदीयस्य मयापहारितः ।  
अलं प्रयत्नेन तवान्न मा निधाः पदं पदध्यां सगरस्य संततेः ॥५०॥  
ततः ग्रहस्यापभयः पुरंदरं पुनर्बभाषे सुरगस्य रक्षिता ।  
गृहाण शस्त्रं यदि सर्ग एष ते न खल्वनिर्जित्य रघुं कृती भवान् ॥५१॥  
स एषमुत्स्वा मध्वन्तमुन्मुखः करिष्यमाणः रंशरं शरासनम् ।  
अतिष्ठदालीढविशेषशोभिना वपुःप्रकर्षेण विडम्बितेश्वरः ॥५२॥  
रघोरवट्मभमयेन पत्त्रिणा हृदि क्षतो गोत्रमिदप्यमर्षणः ।  
नद्याम्बुदानीकमुहूर्त्लाञ्छने धनुष्यमोघं समधत्त सायकम् ॥५३॥  
दिलीपसूनोः स वृद्धद्रुजान्तरं प्रविश्य भीमासुरशोषितोचितः ।  
पपावनास्वादितपूर्वमाशुगः कुतूहलेनेव मनुष्यशोषितम् ॥५४॥

राजकुमार ! तुम जो कहते हो वह सब ठीक है । पर हम यशस्विषोका यह भी कर्त्तव्य है कि जो अपनेसे होर करे उसके अपने यशकी रक्षा भी करे । मैंने तो यज्ञ करनेका जो यज्ञ पाया है उसे तुम्हारे पिता मुझसे छीनना चाहते हैं ॥४८॥ देखो ! जिस प्रकार पुष्पोत्तम केवल विष्णु ही हैं, अम्बक केवल शकर ही है वैसे ही मुनि लोग शतक्रतु ( तो यज्ञ करनेवाला ) केवल मुझे ही कहते हैं । जिन नामोंसे हम लोग प्रसिद्ध हैं वे नाम दूसरे नहीं रख सकते ॥४९॥ इसलिए जैसे कपिल मुझसे तुम्हारे गुरुसे सगरके घोड़ेकी हर लिया था वैसे ही मैंने तुम्हारे पिताके इस घोड़ेको हर लिया है । तुम इसे छुड़ानेका प्रयत्न मत करो, नहीं तो जैसे कपिल मुझसे 'श्लोभसे सगरके साठ साहस्र पुत्र मरम् हो गए थे वैसे ही हमारे श्लोभसे तुम भी मरम् हो जाओगे ॥५०॥ यह सुनकर शश्वके रक्षक रघुने निठर होकर हँसते हुए दृढ़से कहा—यदि आपने यही निश्चय किया हो तो शस्त्र उठाएँ और युद्ध कीजिए । रघुने भीते बिना आप घोडा लेकर नहीं जा सकते ॥५१॥ यह कहकर रघुने धनुषपर बाण चढ़ाया और पंखरा सायकर इन्द्रकी ओर ऊपर मुँह करके खड़े हो गए । उस समय वे ऐसे लग रहे थे मानो इन्द्रसे युद्ध करने के लिए स्वयं शकर मयकाद् प्रा डटे हो ॥५२॥ रघुने खमके समान दृढ़ एक बाण इन्द्रकी छातीमें मारा । इससे इन्द्र बड़े क्षोभित हुए और अपने धनुषपर ऐसा बाण चढ़ाया जिसका वार कभी चूकता नहीं । इन्द्रका यह धनुष इतना मुन्दर था कि थोड़ी देरके लिये उसने नए बादली में इन्द्र-धनुष जैसे रंग भर दिए ॥५३॥ बड़े-बड़े राक्षसोंका रक्त पीनेवाले उस बाणने रघुकी छातीमें पुसकर वहाँका रक्त बड़े चावसे पिया क्योंकि उसे मनी तक मनुष्यके रक्तका स्वाद तो कभी मिला ही नहीं था ॥५४॥ नातिनयके समान पराक्रमी रघुने भी अपने



हरेः कुमारोऽपि कुमारविक्रमः सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गलौ ।  
 भुजे शचीपत्रविशेषकाङ्किते स्वनामचिह्नं निचखान सायकम् ॥५५॥  
 जहार चान्येन मयूरपत्त्रिणा शरेण शक्रस्य महाशनिध्वजम् ।  
 चुकोप तस्मै स भृश सुरश्रियः प्रसन्न केशच्यपरोपणादिव ॥५६॥  
 तयोस्पान्तस्थितसिद्धसैनिकं गत्तमदाशीविपभीमदर्शनैः ।  
 बभूव युद्धं तुमुलं जयैषिणोरंधोमुसैरूर्ध्वमुखैश्च पत्त्रिभिः ॥५७॥  
 अतिप्रगन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिस्तमाश्रयं दुष्प्रसहस्य तेजसः ।  
 शशाक निर्घोषयितुं न बासवः स्वतश्च्युतं बद्धिमिवाद्भिरभ्युदः ॥५८॥  
 ततः प्रसोभे हरिचन्दनाङ्किते प्रमथ्यमानार्थवधीरनादिनीम् ।  
 रघुः शशांकार्धमुखेन पत्त्रिणा शरासनज्यामलुनाद्विद्वौजसः ॥५९॥  
 स चापमुत्सृज्य विवृद्धमत्सरः प्रथाशनाय प्रबलस्य विद्विपः ।  
 महीध्रपक्षच्यपरोपणोचितं स्फुरत्प्रमामण्डलमस्रमाददे ॥६०॥  
 रघुर्भृशं वचसि तेन ताडितः पपात भूमौ सह सैनिकाश्रुभिः ।  
 निमेषमात्रादवधूय तद्व्यथा सहोत्थितः सैनिकहर्षनिःस्वनैः ॥६१॥

नाम बुद्धि हूमा एक बाण इन्द्रकी उस वाई मुनामे मारा जितकी उंगलिया ऐरावतको बार-बार  
 धपपाने से पड़ी होगई थी और जितपर शकीने कुनू मारिते कुछ चित्रकारी कर दी थी ॥५५॥  
 फिर रघुने मोरने पक्षवाले दूसरे बाणसे इन्द्रकी बज्र-जंजीर ध्वजारो काट गवासा । उल्ले इन्द्रको ऐसा  
 प्रोष हूमा मानो किसीने बलपूर्वक देवताओंकी राज्य-सम्पत्तिके सिरके बाल काट लिए ही ॥५६॥  
 रघु और इन्द्र दोनों ही अपनी अपनी बात चाहते थे और दोनों युद्धके समान ठोसे बाणोंसे मयकर  
 युद्ध कर रहे थे । रघुकी सदाय बनाकर इन्द्र नीचेकी ओर अपने बाण चलाते थे और इन्द्रकी ताक  
 ताककर रघु ऊपर बाण चला रहे थे । ऊपर वेगता और नीचे रघुके रैगिन इस अनरज भरे युद्धको  
 देख रहे थे ॥५७॥ जैसे बादल घोर वर्षा करके भी अपने हृदयमे उत्पन्न विजयीको नहीं बुझा सकता  
 जैसे ही इन्द्र भी अपने मनसे पैदा हुए रघुको बाणोंकी वर्षासे नहीं हरा पा रहे थे ॥५८॥ तब रघुने  
 अर्ध-वन्दने आकारके बाणसे इन्द्रकी डीन-बत्तार्दके पास अनुपवी गह डोरी काट डाली जितमेंसे बाण  
 चलाते समय ऐसा प्रचण्ड शब्द होता था जैसे मधे जानेके समय और सपुत्रमे होता था ॥५९॥  
 अनुपवी डोरी गट जानेसे इन्द्रको बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने अनुपवी तो दूर फेंका और अपने प्रजल शत्रु  
 रघुको मारनेके लिये पर्यंतके पक्ष काटनेवाला धूमिके समान लमचपलाता बज्र उठा लिया ॥६०॥  
 उस बज्रकी मारसे रघु धृन्धीपर विर पड़े । उनमें गिरते ही उनके धर्मिभने रोना-भीटना आरम्भ कर  
 दिया । निरतु शल भरण ही वे समरकर उठ खड़े हुए और उनमें बाण ही बनने सैनिकोंकी जयजय-  
 वार भी आवाजमें गुंज उठी ॥६१॥ बज्रकी चोटसे शल भरने समरकर रघु फिर लड़नेके लिये आ

तथापि शस्त्रव्यवहारनिष्ठुरे विपद्यभावे चिरमस्य तस्थुषः ।  
 तुतोप वीर्यातिशयेन वृत्रहा पदं हि सर्वत्र गुह्यंनिधीयते ॥६२॥  
 अस्मद्मद्रिष्वपि सारवचया न मे त्वदन्येन विसोढमायुधम् ।  
 अवेदि मां प्रीतमृते तुरंगमात्किमिच्छसीति स्फुटमाह वासवः ॥६३॥  
 ततो निपङ्गादसमग्रमुद्धृतं सुवर्णपुद्गद्युतिरञ्जिताङ्गुलिम् ।  
 नरेन्द्रसन्तुः प्रतिसंहरन्निपुं प्रियंवदः प्रत्यवदत्सुरेश्वरम् ॥६४॥  
 अमोच्यमश्वं यदि मन्यसे प्रभो वतः समाप्तेविधिनैव कर्मणि ।  
 अजस्रदीक्षाप्रयतः स मद्गुरुः क्रतोरशेषेण फलेन युज्यताम् ॥६५॥  
 यथा च वृत्तान्तमिमं सदोगतस्त्रिलोचनैकांशतया दुरासदः ।  
 तवैव संदेशहराद्रिशांपतिः शृणोति लोकेश तथा विधीयताम् ॥६६॥  
 तथेति कामं प्रतिशुश्रुवात्रघोर्यथामतं मातलिसारथिर्ययी ।  
 नृपस्य नातिप्रमनाः सदोगृहं सुदक्षिणासुररपि न्यवर्तत ॥६७॥  
 तमभ्यनन्दत्प्रथमं प्रबोधितः प्रजेरवरः शासनहारिणा हरेः ।  
 परामृशन्हर्षजडेन पाणिना तदीयमङ्गं कुलिशव्रणाङ्कितम् ॥६८॥

ङटे । उनकी इस मद्रितीय वीर्याको देखकर इन्द्र बड़े सतुष्ट हुए । ठीक भी था, क्योंकि गुणोप  
 भावर सर्वत्र होता ही है ॥६२॥ इन्द्रने कहा—'हे राजकुमार ! पर्वतोंके पक्ष काटनेवाले मेरे बडो  
 बलकी शोढको तुम्हें छोड़कर आज-तक किसीने नहीं रहा । मैं तुम्हारी वीर्यापर प्रसन्न हूँ । तुम हा  
 पोढेकी जोखर घोर जो कुछ मुझसे माँगना चाहो, माँग लो ॥६३॥ इन्द्रके ये बचन सुनकर  
 रघुने तूणीरते भावे निकाले हुए उस बाणको फिरसे उसमे डाल दिया जिसके सुनहरे पक्षकी पनकां  
 रघुकी लँगटिमीने नख भी चमक उठे थे और फिर वे इन्द्रसे बोले ॥६४॥—'हे इन्द्र ! यदि हा  
 पोढेकी नहीं देना चाहते है तो यही बरदान दीजिए कि मेरे पिता विधिपूर्वक यज्ञको समाप्त करे  
 इस घोडेके बिना ही ठी अश्वमेध यज्ञ करनेका फल पा जायें ॥६५॥ हे लोकेश ! मेरे पिता यज्ञ  
 मध्यमे मद्रुमूर्ति शिवजीके एक अश्वमेध रूपमे बँडे हुए हैं भत, वहाँ इस समय हम लोगोमेसे को  
 पहुँच गही सक्ता । इसलिये ऐसा उपाय कीजिए जिससे शापका ही कोई दूत जाकर उनको यह  
 समाचार सुना भावे ॥६६॥ इन्द्रने कहा—'ऐसा ही होण । यह कहकर जिस मार्गसे वे आए थे  
 उसी मार्गसे चले गए । सुदक्षिणाके पुत्र रघु भी अपने पिता राजा दिलीपको समामे लौट आए । वे  
 दडे सिद्ध थे क्योंकि इन्द्रसे मुझमे जीतनेपर भी अश्वमेध का घोडा लौटा न पानेवा उन्हे बडा दुःख  
 था ॥६७॥ रघुके पहुँचनेके पहले ही इन्द्रके दूतने राजा दिलीपको सर वृत्तान्त सुना दिया था ।  
 इसलिये जब रघु वहाँ आए तब राजा दिलीपने उनकी बडी प्रशंसा की और जहाँ उन्हे बन्ध लमा था  
 वहाँ पीरे-पीरे सहजाने लगे ॥६८॥ इस प्रकार जिस दिलीपकी भाजा कोई दान नहीं सक्ता था

इति द्वितीशो नवतिं नवाधिकं महाकतूनां महनीयशासनः ।  
समारुरुद्धुर्दिवमायुषः क्षये ततान सोपानपरम्परामिव ॥६६॥

अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि स्रुत्वे  
नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम् ।  
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तथा सह शिश्रिये  
श्लितवपसामिन्वाकूषामिदं हि कुलव्रतम् ॥७०॥

इति महाकविश्रीकाशिदासकृतौ रघुवदे महाकाव्ये  
रघुराज्याभिषेको नाम तृतीयः सर्गः ॥

उन्होंने माता स्वर्ग जानेके लिये निम्नान्वये यज्ञोक्ती सींटी सी बनाती थी ॥६६॥ तब ससारके सब विषय छोड़कर राजा दिलीपने अपने नवयुवक पुत्र रघुको शास्त्रोंके अनुसार छत्र, शंकर घादि राजपिहू भी सींच दिए और देवी मुवतिछाये साथ तप करनेके लिये जगन्नी राह ती स्त्रीवि इदवायु-वसाने राजाप्रैमि यही परम्परा चली आई है कि वे बूढ़े होनेपर जगत्तमे जाकर तपस्या किया करते हैं ॥७०॥

महाकवि श्रीकाशिदासके रचे हुए रघुवद महाकाव्यके रघुका राज्याभिषेक नामक तीसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥

## ॥ चतुर्थः सर्गः ॥

स राज्यं गुत्था दत्तं प्रतिपद्याधिकं वसी ।  
 दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः ॥ १ ॥  
 दिलीपानन्तरं राज्ये तं निशम्य प्रतिष्ठितम् ।  
 पूर्वं प्रभूमितो राज्ञां हृदयेऽग्निरिवोत्थितः ॥ २ ॥  
 पुरुहूतध्वजस्येव तस्योन्नयनपटुक्तयः ।  
 नवाभ्युत्थानदर्शिन्यो ननन्दुः सप्रजाः प्रजाः ॥ ३ ॥  
 सममेव समाक्रान्तं द्वयं द्विरदगामिना ।  
 तेन सिंहासनं पिभ्यमखिलं चारिमण्डलम् ॥ ४ ॥  
 छायामण्डललक्ष्येण तमदरया किल स्वयम् ।  
 पद्मा पद्मातपत्रेण मेजे साम्राज्यदीचितम् ॥ ५ ॥  
 परिकल्पितसानिध्या काले काले च बन्दिपु ।  
 स्तुत्यं स्तुतिभिरभ्याभिरुपतस्थे सरस्वती ॥ ६ ॥  
 मनुप्रभृतिभिर्मान्यैर्मुक्ता यद्यपि राजभिः ।  
 तथाप्यनन्यपूर्वेव तस्मिन्नासीद्वसुंधरा ॥ ७ ॥

### श्रीवा सर्ग

जैसे सांकेतिक रूपसे तेज सेकर प्राण जमक उठती है वैसे ही अपने पितासे राज्य पाकर रघु धीरे  
 धीरे अधिक तेजस्वी हो गए ॥१॥ जब दूसरे राजाघोने सुना कि दिलीपके पीछे रघु राजा भू. गार्. मत्.  
 उनके हृदयमें धीरेधीरे सुलग रही थी वह मानो भटक उठी ॥२॥ राजा रघु जब  
 अपने ऊंचे सिंहासनपर बैठते थे तब उनकी प्रजाके सब बूढ़े बच्चे उनकी पीर भाल उठाकर देखते हुए  
 वैसे ही प्रसन्न होते थे जैसे आनासमे उठे हुए नये दन्द्रधनुषको देखकर जोग प्रसन्न होते हैं ॥३॥  
 हाथीके समान मस्त चालसे चलनेवाले राजा रघुने पिताके सिंहासनपर धीरे अपने दातुभीपर एक  
 साथ अधिकार कर लिया ॥४॥ जब वे सिंहासनपर बैठते थे उस समय उनके चारों ओर प्रकाशका  
 एक घेरसा बन जाता था, जैसे देखकर ऐसा लाभ पड़ता था मानो लक्ष्मी स्वयं छिपकर उनको कमल-  
 का छत्र लेकर उनके पीछे खड़ी हो ॥५॥ समय-समयपर-सरस्वती भी उनके चारों ओर कठोमें बैठ-  
 कर भयंभरा विरद सुनाकर उन प्रशंसनीय राजा रघुका गुण गाती थी ॥६॥ यो तो रघुसे पहले मनु  
 आदि बहुतेके प्रतापी राजा पृथ्वीका भोग कर चुके थे पर रघुके हाथमें पहुँचकर वही पृथ्वी ऐसी नई  
 जान पड़ने लगी मानो पहले-पहल रघुके ही हाथों में आई हो ॥७॥ जैसे बसंतका वायु बहुत शीघ्र था

स हि सर्वस्य लोकस्ययुक्तदण्डतया मनः ।  
 आददे नातिशीतोष्णो नभस्वानिव दक्षिणः ॥ ८ ॥  
 मन्दोत्कण्ठाः कृतास्तेन-गुणाधिकतया गुरौ ।  
 फलेन-सहकारस्य पुष्पोद्गम इव प्रजाः ॥ ९ ॥  
 नयचिह्निनचे राज्ञि सदसचोपदर्शितम् ।  
 पूर्वं एवाभयत्पवस्तस्मिन्नाभवदुचरः ॥ १० ॥  
 पञ्चानायपि भूतानामुत्कर्षं पुपुषुर्गुणाः ।  
 नचे तस्मिन्महीपाले सर्वं नयमिवाभवत् ॥ ११ ॥  
 यथा-प्रह्लादनाचन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा ।  
 तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥ १२ ॥  
 कामं कर्णान्तविश्रान्ते विशाले तस्य लोचने ।  
 चञ्चुमंसा तु शास्त्रेण वृत्तमकार्यार्थदर्शिना ॥ १३ ॥  
 लब्धप्रशमनस्वस्थमर्थेन समुपस्थिता ।  
 पार्थिवश्रीर्द्वितीयेव शरत्पङ्कजलक्षणा ॥ १४ ॥

बहुत गरम न होनेके कारण रावको भाषा है [बड़े ही रघु गी ५ तो अधिक कठोर बड़ देते थे न अधिक  
 फोमल] जो जैसा अचर्याप करता था उसको वंसा ही दंड देते थे । इस प्रकारके ब्यापसे जनकी प्रजा  
 भी डलसे बड़ी प्रसन्न थी ॥८॥ और जैसे धामके सुन्दर फल देखकर लोग उसके घोरको भूल जाते हैं  
 वैसेही रघुने राधा दिलीपसे अधिक गुण देखकर लोग दिलीपको भूलसे गए ॥९॥ नीति जाननेवाले  
 मनिमो ने यद्यपि रघुको सरल और कुटिल दोनों प्रकारकी नीतियों से राज्य चलानेकी विधियाँ सिखाई  
 थी, किन्तु उस धर्मात्मा राजाने सीधी नीतिको ही अपनाया, डेटी नीतिको छोड़ दिया ॥१०॥ रघुके  
 सिंहासनपर बैठते ही जलकी मिठास अधिक हो गई, फूलोंकी सुगन्ध बढ़ गई और [पृथ्वी, जल,  
 अग्नि, वायु, आकाश इल] पाँचों तत्वोंके गुण भी बढ़ने लगे । ऐसा जान पड़ने लगा मानो नये राजा-  
 को पाकर सभी बस्तुएँ नई हो गई हो ॥११॥ जैसे रावको आनन्द देखकर चन्द्रमाले अपना चन्द्र नाम  
 सार्थक कर दिया और सबको लपकर सुवर्ने अपना 'वपन' नाम सार्थक किया, वैसे ही रघुने भी प्रजाका  
 रत्न करके, उन्हें सुख देकर अपना 'राजा' नाम सार्थक कर दिया ॥१२॥ यद्यपि रघुके नेत्र वानो-  
 तक फंसे हुए और बहुत बड़े-बड़े थे पर इन्हें अधिक भरोसा अपने उस शास्त्र-बस्तुपर था जिससे वे  
 दृष्टसे सूक्ष्म बातको भी समझ जाते थे ॥१३॥ जब रघुने अपने राज्यके शान्ति स्थापित करली और  
 जनका चित ठिकाने हुआ तभी दूसरी राज्य-सदमी के समझ वह शरद् ऋतु आ गई जिसमें चारों  
 ओर सुन्दर वस्त्र धित गए थे ॥१४॥ वर्षा नीत चुकी थी, वाहन हट गए थे और जैसे खुले

निर्वृष्टलघुभिर्मैघैर्गुक्त्वर्त्मा सुदुःसहः ।  
 प्रतापस्तस्य मानोश्चयुगपद्दृष्यान्शो दिशः ॥१५॥  
 वार्षिकं संजहारेन्द्रो घनुर्वैत्रं रघुर्दधौ ।  
 प्रजार्थसाधने तौ हि पर्यायोद्यत्कर्तुर्गौ ॥१६॥  
 पुण्डरीकातपत्रस्तं विक्रमत्काशचामरः ।  
 श्रुत्वर्षिहम्बयामास न पुनः प्राप तच्छ्रियम् ॥१७॥  
 प्रसादसुपुत्रे तस्मिन्शब्द्रे च विशदप्रभे ।  
 तदा चक्षुष्मतां प्रीतिरासीत्समरसा द्वयोः ॥१८॥  
 हंसश्रेणीषु तारासु कुमुदस्यु च वारिषु ।  
 विभूतयस्तदीयानां रर्यस्ता यशसामिव ॥१९॥  
 इक्षुच्छायनिपादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम् ।  
 आकुमारकथोद्गतं प्रालिगोप्यो जगुर्यशः ॥२०॥  
 प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः ।  
 रघोरभिभवाशङ्कि चुचुमे द्विपतां मनः ॥२१॥  
 मदोदग्राः ककुब्जन्तः सरितां कूलसुद्रुजाः ।  
 लीलाखेलमनुप्राप्तुर्महोद्वास्तस्य विक्रमम् ॥२२॥

मानासमें चमकते हुए प्रचण्ड सूर्यका प्रकाश चारों ओर फैल गया था वैसे ही शत्रुओंके नष्ट हो जाने-  
 पर रघुका प्रचण्ड प्रताप भी चारों ओर फैल गया ॥१५॥ इन्होंने जब अपनी बर्षा-शत्रु बाला इन्द्र-  
 धनुष हटाया तब रघुने अपना बिजबी धनुष हाथमें उठा लिया क्योंकि ये दोनों ही वारी-वारीमें प्रजा-  
 की भलाई किया करते थे ॥१६॥ शरद शत्रु भी रघुके अत्र और नैवरको देखकर कपलके ध्वज और  
 फूलें हुए काँचके बँवर लेकर रघुसे होठ करने बसी, पर तब क्रुद्ध करके भी उनकी घोभा नहीं पा सकी  
 ॥१७॥ शरद शत्रुने रघुके खिलाे हुए मुख और उनसे चन्द्रमा दोनोंको देखकर दर्राकीकी एक सा  
 प्रागन्द मियाता था ॥१८॥ उनसे हसोकी उठती हुई पाँवों, रातमें चिल्ले हुए टिमाटिमाते चारों  
 ओर तालीमें खिली हुई कोहँको देखकर यह जान पड़ता था कि रघुकी कीर्ति ही इतने रूप बनाकर  
 फँसी हुई है ॥१९॥ [प्रजाको वे इतने प्यारे थे कि] धानके खेतोंकी रखवाली करनेवाली किसानों-  
 की शिखा, ईश्वरी क्षामासे बँठकर प्रजापालक राजा रघुकी बचपनसे तबतकनी गुणकथाओं के नीव  
 पना-बनापर गाती थी ॥२०॥ इधर ही चमकीले अथस्त्य तारेके निकलनेसे जल निर्मल हो  
 गया, उधर शत्रुओंके मनमें यह जानकर खलबली मच गई कि अब न जाने कब रघु चढाई कर  
 बैठे ॥२१॥ उस शत्रुने ऊँचे-ऊँचे कपोवाले मतवाले साँव नदियोंके कथार बाँधे हुए ऐसे लगते थे मानों  
 वे रघुके सङ्कल्पनके खेलनाखेला अनुभव रख कर रहे हों ॥२२॥ (शरद शत्रुने चारों ओर) छतियनने

प्रसवैः सप्तपर्शानां मदगन्धिमिराहताः ।  
 अस्त्रयथेव तन्नागाः सप्तधैव प्रसुस्तुवुः ॥२३॥  
 सरितः कुर्वती गाधाः पथधारयानकर्दमान् ।  
 यात्रायै चोदयामास तं शक्तेः प्रथमं शरत् ॥२४॥  
 तस्मै सम्यग्पुत्रो वह्निर्वाजिनिराजनाविधौ ।  
 प्रदक्षिणाचिर्व्याजिनं हस्तेनेव जयं ददौ ॥२५॥  
 स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिपरयान्वितः ।  
 पङ्क्तिवधं यत्नमादाय प्रसस्ये दिग्जिगीषया ॥२६॥  
 अवाफिरन्ययोष्टुदास्तं लाजैः पौरयोपितः ।  
 पृषतैर्मन्दरोद्भूतैः क्षीरोर्मय इवाच्युतम् ॥२७॥  
 स ययौ प्रथमं प्राचीं तुल्यः प्राचीनबर्हिषा ।  
 अहितानंनिलोद्भूतैस्तर्जयन्निव केतुभिः ॥२८॥  
 रजोभिः स्यन्दनोद्गर्जैश्च घनसंनिभैः ।  
 भ्रुवस्तलमिव व्योम कुवेन्व्योमेव भ्रुवलम् ॥२९॥

जो फूल फूले हुए थे उनकी मद-जैसी गन्ध पाकर [रघुके हाथियोने सोचा कि ये भी हाथी हैं और हुनसे होठ करके मद बहा रहे हैं । इसलिये वे भी] रीसके पारे अपनी सूँठके नथनेसे दोनों कपोतो-सै, कनरसे और दोनों भालोंसे मद बहाते सगे ॥२३॥ अरुके प्राते ही नदियोका पानी उतर गया और मार्गका कीचड़ भी सूख गया, मानो शरत् ऋतुने रघुके सगेबनेसे पहले ही उन्हें विभ्रजय करनेको उकसा दिया हो ॥२४॥ यात्राके लिये चलनेसे पहले घोड़ोंकी पूजाके लिए हवन हीने मना और हवनकी अग्नि भी दाहिनी ओर पुसती हुई उठ रही थी मानो अपनी हाथ उठा-उठाकर रघुको बँहनेसे ही विजय दे रही हो ॥२५॥ वीभाग्यशास्त्री रघुने पहले राजपानी और सीनाके गडोंकी रक्षाका प्रवन्ध किया फिर शुभ मूर्तियों [चूड़सवार, हाथी, रथ, वैद्य, गुप्तावर और शत्रुके राक्षसके भागंको जाननेवाले दम ] छद्म प्रकारकी सेनाओंको लेकर वे विजयके लिये चल रहे ॥२६॥ जैसे मन्दरा चलसे मण्डे समथ धीरसागरकी सहरोकी चक्षुसती हुई सबको पुहारें विष्णु भगवान्के ऊपर बरस रही थी वैसे ही मगरपी बड़ी-बूटी स्थियोने विजय-भागाके लिये जाते हुए रघुके ऊपर घातकी सीलें बरसाईं ॥ २७ ॥ इन्द्रके समान प्रतापी राजा रघु पहले विम्बत्रयके लिये पूर्वकी ओर पले । यानु सगनेसे सेनाकी जो ऋद्धिवाँ फरफरा रही थी वे मानो शत्रुओंको जँभली उठा-उठाकर डाट रही थी ॥ २८ ॥ रघुके रणोके चलनेसे जो धूल ऊपर उठी उसने आकाशको पृथ्वी बना दिया । इधर पुरभीपर चलती हुई सेनाके बाले-बाले हाथी बारल-जैसे लग रहे थे जिससे पृथ्वी भी आकाश जैसी सगने लगी थी ॥२९॥ [रघुना प्रताप इतना अधिक था कि सेनाके पहुँचनेसे पहले ही शत्रु काँप

प्रतापोऽग्रे ततः शब्दः परागस्तदनन्तरम् ।  
 ययौ पारश्चद्रथादीति चतुःस्कन्धेव सा चमूः ॥३०॥  
 मरुष्ट्यान्वुदम्भांसि नाव्याः सुप्रतरा नदीः ।  
 विपिनानि प्रकाशानि शक्तिमत्त्वाच्चकार सः ॥३१॥  
 स सेनां महतीं कर्षन्पूर्वसागरगामिनीम् ।  
 धर्मौ हरजटाभ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः ॥३२॥  
 त्याजितैः फलमुत्प्राप्तैर्भग्नैश्च बहुधा नृपैः ।  
 तस्यासीदुल्लस्यो मार्गः पादपैरिव दन्तिनः ॥३३॥  
 पौरस्त्यानेवमाक्रमेस्तांस्ताञ्जनपदाङ्गयी  
 प्राप तालीवनरयाममुपकण्ठं महोदधेः ॥३४॥  
 अन्नप्राणां समुद्धर्तुस्तस्मात्सिन्धुरयादिव ।  
 आत्मा संरक्षितः सुप्रैर्धृतिमाश्रित्य वैतसीम् ॥३५॥  
 यद्भानुत्प्राय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान् ।  
 निचरान् जयस्तम्भान्नाङ्गास्रोतोन्तरेषु सः ॥३६॥

जाते थे । ] इस प्रकार भागे-भागें उनका प्रयाप चलता था, पीछे उनकी सेनाका कोलाहल सुनाई पड़ता था, उन धूल उड़ती दिखाई देती थी और सबसे पीछे रथ आदिकी सेना चली जा रही थी मानो रघुवी सेना इस प्रकारके चार भागोंमें बँटी हुई चल रही थी ॥३०॥ रघुके पास ऐसे साधन थे कि मरुभूमिमें भी जलभी पायाएँ वहने लगे, वहीं नदियोंपर पुल बँध गए और घने जंगलों में घुले मार्ग बन गए ॥३१॥ अपने विद्याय सेनाके साथ जब वे पूर्वी समुद्रकी ओर जा रहे थे उस समय वे ऐसे सग रहे थे मानो लकरजीवी जटासे निकली हुई गंगाजीकी साथ लिए हुए भगीरथजी [पूर्वी समुद्रकी ओर] चले जा रहे हो ॥३२॥ जैसे कोई बलवान् जंगली हाथी किसी वृषभो पङ्का मारकर छोड़ देता है, किसीको उखाड़ फेंकता है और किसीको तोड़ देता है वैसे ही रघुमें भी किसी राजासे कर लेकर उसे छोड़ दिया, किसीका राज्य उखाड़ फेंका और किसीको सजाईमें पसल कर डाला । इस प्रकार शत्रुओंको नाश करके उन्होंने अपने भागके सब रीते दूर कर डाले ॥३३॥ विजयी राजा रघु पूर्वी राज्योंको जीतते हुए उस समुद्रके किनारे पहुँचे जो तटपर एडे हुए वाक्ये वृषोती छान्ना पठनेसे काला दिखाई पड़ रहा था ॥३४॥ जैसे वैतकी शालाएँ नदीकी पारमें झुक कर जड़ी रह जाती हैं वैसेही मुद्ग देशके राजाओंने अभिमानियोंको उखाड़ फेंकनेवाले रघुकी मर्दानता चुपचाप कान दबाकर मान ली और अपने प्रणु बचा लिए ॥३५॥ फिर सेनानायक रघुने उन बगानी राजाओंको जानकर हारया जो बलसेनातेकर लड़नेमाएँ थे, उन्हें जीतकर रघुने गङ्गासागर के द्वीपोंमें अपने विजयका अङ्क गाढ दिया ॥३६॥ [ जैसे एक सेनासे उखाड़ उखाड़कर दूसरे



आपादपन्नप्रणता. कलमा इव ते रघुम् ।  
 फलैः संवर्षयामासुस्त्वातप्रतिरोपिता ॥३७॥  
 स तीर्त्वा कृपिशां सैन्यैर्वद्भिरदसेतुभिः ।  
 उत्कलादर्शितपथः कलिङ्गाभिमुखो ययौ ॥३८॥  
 स प्रतापं महेन्द्रस्य मूर्ध्नि तीर्त्सन्न्यवेशयत् ।  
 अङ्गुशं द्विरदस्येव यन्ता गम्भीरवेदिनः ॥३९॥  
 प्रतिजग्राह कालिङ्गस्तमस्त्रैर्गजसाधनः ।  
 पञ्चच्छेदोपतं शकं शिलाशर्पाव पर्वतः ॥४०॥  
 द्विषां विषम काकुत्स्थस्तत्र नाराचदुर्दिनम् ।  
 सन्मङ्गलस्नात इव प्रतिपेदे जयश्रियम् ॥४१॥  
 ताम्बूलीनां दलैस्तत्र रचिताऽऽपानभूमयः ।  
 नारिकेल्लासर्व योधाः शात्रवं च पपुर्यशः ॥४२॥  
 गृहीतप्रतिमुक्तस्य स घर्मविलयी नृपः ।  
 श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु भेदिनीम् ॥४३॥

सेतने से जाकर रोपते हुए ] मानके पीछे किस्तानका धर घनते भर देते हैं जैसे ही रघुने उन राजामौकी फिर राजपर बैठा दिया जो उनके परोपर भावर फिर पडे थे श्रीर जिन्होंने मनुसस घनघान्म मेंटमे देकर रघुका राज्यकोप बढ़ाया था ॥३७॥ वहाँसे बलकर रघुने हाथियोंका पुल बनान्कर अपनी पूरी सेवाको कृपिशा नदीसे पार कर दिया । वहाँ उड़ीसाके राजाओंने सपीमता तो स्वीकार की ही साथही माये वा मार्ग भी बताया और बलिङ्ग देवा जीतनेके लिये रघु भागे बडे गए ॥३८॥ जैसे मतवाले हाथीके माथेमें हाथीबाण प्रकृत गडता है वैसे ही रघुने भी महेन्द्र पर्वत पर पहुँचकर उसकी चोटोपर खपना पडाव जमा दिया ॥३९॥ जैसे पत्थर बरसानेवाले पहाड़ने पत्थर बरसाने पर पर्वतके पथ काटनेवाले इन्द्रका सामना किया था वैसे ही बलिङ्ग-नरेणने हाथियोंकी सेना लेकर श्रीर अस्त्र बरसानेकर रघुका सामना किया ॥४०॥ जैसे तीर्थके जलसे स्नान करान्कर राजामौका राज्यभोगेक होता है और उन्हें राज्य-सधमी मिलती है वैसे ही रघुने भी शत्रुओंके बाणोंकी बपलसे स्नान करके विजय पाई ॥४१॥ लडाई हो चुकनेपर रघुके और सैनिकोंने महेन्द्र पर्वत-पर पानके पत्ते बिछाकर पदिरासव बनाया और वहाँ चाण्डालकी पदिरासे साधु-धाय मानो दाधुओं का पथ भी पौ गए ॥४२॥ राजा रघु जो घर्म-बुट करते थे इसलिये उन्होंने महेन्द्र पर्वतके राजापरे अन्धी ती बना लिया पर जब उसने इनकी शयीनता स्वीकार करनी तब उसे छोड भी दिया । इस प्रकार उन्होंने महेन्द्रके राजानी "राज्यश्री तो लेनी पर राज्य उन्हीको लौटा दिया ॥४३॥ पूर्व दिशाको जीतकर निम्नवी रघु समुद्रके उठ तट पर होते हुए दक्षिण दिशाको गए जिसपर पकी हुई

ततो वेलातटेनैव फलवत्पूगमालिना ।  
 अगस्त्याचारितामाशामनाशास्यजयो ययौ ॥४४॥  
 स सैन्यपरिमोक्षेण गजदानसुगन्धिना ।  
 कावेरीं सरितां पत्युः शङ्कनीयामिवाकरोत् ॥४५॥  
 बलैरघ्युपितास्तस्य विजिगीषोर्गताध्वनः ।  
 मारीचोद्भ्रान्तहारीता मलयाद्रेरुपत्यकाः ॥४६॥  
 ससञ्जुरस्वङ्गुणानामेलानाम्मुत्पतिष्णवः ।  
 तुल्पगन्धिषु मन्मथकटेषु फलरेखवः ॥४७॥  
 भोगिवेष्टनमार्गेषु चन्दनानां समर्पितम् ।  
 नास्रसत्करिणां ग्रैधं त्रिपदीच्छेदिनामपि ॥४८॥  
 दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि ।  
 तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विपेहिरे ॥४९॥  
 ताम्रपर्णासमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः ।  
 ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वभिव संचितम् ॥५०॥  
 स निर्निश्य यथाकाम तटेष्वालीनचन्दनौ ।  
 स्तनाविन दिशस्तस्याः शैली मलयदर्दुरौ ॥५१॥

गुणारिथोके पैठ लगे हुए थे ॥४४॥ जब वे कावेरीके तटपर पहुँचे तब राजा रघुके सैनिकोंने जी भर  
 मह्ना गहाकर जलको मथ डाला । फिर हाथियोंके महानेते तबकी कर्तली गन्ध भी जलमे घाते  
 लगी । प्रचार कावेरी नदीकी उहोंने ऐसी दुर्गति करदी कि जब वह प्रगने पति समुद्रके पास जाय  
 तो उधे उसके चरित्रमे सदेह होने लगे ॥४५॥ वहाँसे चलते चलते वे बहुत दूर निकल गए और बिजय  
 चाहते वाले रघुने सैनिक मलयाचलकी उस तराईमे जा उतरे जहाँ कावेरी भिचकी भाडियोम हरे हरे  
 सुगन्धे इधर उधर उठ रहे थे ॥४६॥ वहाँ पृथ्वीपर गिरे हुए सौंके बीज पौडोको टापोसे गिस्कर  
 पायुके सहारे हाथियोंके उन मालो पर चिपक गए जहाँ उहोंके गन्ध जँबी मदकी गन्ध निकल रही  
 थी ॥४७॥ सौंपोने रावा लिपटे रहनेसे वहँके चन्दनके पेडोके चारो ओर गहरी रेखाएँ बन गईं  
 थी जिनमे बँधे हुए रस्सोको वे हाथी भी न तोड सके जो परके रस्सोको भटनेसे तोड डालते  
 थे ॥४८॥ दक्षिण दिशामे जानेपर महाप्रतापी सूर्यवा तेज भी मन्व पड जाता है पर रघुना तेज  
 इतना प्रबल था कि वहँके पाण्ड्य राजा भी इनके सामे न ठहर सके ॥४९॥ दक्षिणके पाण्ड्य राजामोंने  
 ताम्रपर्णा और समुद्रके लगमले जितने गोवी बटोरे थे वे सब उहोंने रघुको ऐसे सौंप दिए मानो  
 प्रगना बटोरा हुआ यरा ही उन्हें दे वाला हो ॥५०॥ उहे भीतर महाप्रतापी रघुने उन मलय  
 और दर्दुर नामकी पहाडियोंपर बहुत दिनों तक पडाव डाला जिनपर चन्दनके पैठ लगे थे और जो  
 ऐसे बिसाई पडते थे मानो चन्दन लगे हुए दक्षिण दिशामे वो स्तन हो ॥५१॥ फिर वे सह्यकी

असह्यविक्रमः सह्यं दूरान्मुक्तमुदन्वता ।  
 नितम्बमिव मेदिन्या स्रस्तांशुकमलङ्घयत् ॥५२॥  
 तस्यानीकैर्विसर्पद्भिरेपरान्तजयोद्यतैः ।  
 रामास्रोत्सारितोऽप्यासीत्सह्यलग्न इवार्शवः ॥५३॥  
 भयोत्सृष्टविभूपाशां तेन केरलयोपिताम् ।  
 अलकेषु चमूरेषु रचूर्णप्रतिनिधीकृतः ॥५४॥  
 मुरलामारुंतोद्भूतमगमत्कैतकं रजः ।  
 तद्योधवारवाणानामयत्नपटवास्ताम् ॥५५॥  
 अम्यभूयत बाहानां चरसां गात्रशिञ्जितैः ।  
 वर्मभिः पथनोद्भूतराजतालीवनध्वनिः ॥५६॥  
 सर्जरीस्कन्धनद्धानां मदोद्गारसुगन्धिषु ।  
 कटेषु करिणां पेतुः पुंतागोम्यः शिलीमुखाः ॥५७॥  
 अवकाशं किलोदन्वान् रामापाम्यर्थितो ददौ ।  
 अपरान्तमहीपालव्याजेन रघवे करम् ॥५८॥  
 मत्ते भरदमोत्कीर्णव्यक्तविक्रमलक्षम् ।  
 त्रिकूटमेव तत्रोच्चैर्जयस्तम्भं चकार सः ॥५९॥

इस पहाड़ीको पार करने के आगे वडे जो समुद्रके दूर हट जानेसे ऐसी दिखाई पड़ती थी मानी वह  
 बुद्धीमा नितब ही जिस परसे कपड़ा हट गया हो ॥५२॥ वरुण परपुरामने मरने परसे ही  
 समुद्रको सह्य पर्वतसे हटा दिया था फिर भी उसके पाससे जाती हुई रघुकी सेना ऐसी लगती थी  
 जनी समुद्र फिर सहायिके पास ही लहरें से रहा हो ॥५३॥ रघुके भयसे जो कौण देवनी सिंघिया  
 तान-झिगाड छोडकर मरने भाग खडी हुई थी उनके बाओपर रघुकी सेनाके चलनेसे उठी हुई जो  
 बल बँठ गई थी वह ऐसी लगती थी मानी कस्तूरीका चुरा सया हुआ हो ॥५४॥ मुरला नदीकी  
 शोरसे धानेवाले वायुके कारण जो कंबुके फूलोकी मूक उट रही थी यह संनिषोके रचवो पर बँठ-  
 कर दिना मजने ही सुगन्धिन चूर्णका काम देने लगी ॥५५॥ चलते समय घोडोके धारीपरने रचव  
 ऐसे जैसे स्वरसे लनघना रहे थे कि वायुके चलनेसे जो बडे-बडे ताडके पेडोसे ध्वनि निकल रही थी  
 यह भी उसके आगे फोकी पट गई ॥५६॥ नागकेसरके फूलोपर बँठे हुए घोरोको जेतोही खड्गकी  
 टाओसे बँधे हुए हाथियोके बपोवोसे टपकते हुए मदनकी गन्ध मिली कि वे उन्हे छोडकर इनपर ही  
 भा हूटे ॥५७॥ पच्छिमके राजाघोने जो रघुके प्रापीन होवर उन्हे कर दिया था वह मानी लहोने  
 नहीं वरु उस प्रवापी समुद्रने ही कर दिया जिसने बहुत प्रायश्चा करनेपर परपुरामनीको घोडी सी  
 भूमि दी थी ॥५८॥ वहाँ रघुके भतवाले हाथियोने अपने दाँतोको चोटोसे त्रिकूट पर्वतपर जो रेखाएँ

पारसीकांस्ततो 'जेतुं' प्रतस्थे स्थलवर्त्मना ।  
 इन्द्रियाख्यानिव रिपूँस्तत्वज्ञानेन संयमी ॥६०॥  
 यवनीमुखपदानां सेहे मधुमदं न सः ।  
 बालातपमिवाब्जानामकालज्वलदोदयः ॥६१॥  
 संग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्यैरस्वसाधनैः ।  
 शाङ्गं कृजितविज्ञेयप्रतियोधे रत्नस्यभूत् ॥६२॥  
 भण्णलापवर्जितैस्तेषां शिरोमि रमश्रुस्रैर्महीम् ।  
 तस्तार सरधान्याप्तैः सचौद्रपटलैरिव ॥६३॥  
 अपनीतशिरस्त्रायाः शेषास्तं शरशं ययुः ।  
 प्रशिपात्तप्रतीकारः सरम्भो हि महात्मनाम् ॥६४॥  
 विनयन्ते स्म तद्यौधा मधुमिर्विजयश्रमम् ।  
 ध्यास्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षाबलयभूमिषु ॥६५॥  
 ततः प्रतस्थे कौबैरीं मास्यानिव रघुर्दिशम् ।  
 शरैर्ललैरिचोटीच्यानुद्धरिष्यन्घसानिव ॥६६॥

यनादी भी उनसे वह पर्यंत ऐसा लगने लगा मानो वह रघुकी विजयका स्मरण दिवागिवाजा जय-  
 स्तम्भ दृष्ट हो जिसपर रघुकी विजय-कथा मिली, हुई हो ॥५९॥ जैसे कोई मोती इन्द्रियरूपी  
 शत्रुको भीतनेके लिये तत्वज्ञानवा सहारा लेता है वैसे ही रघुने भी पारसी राजाओंको भीतनेके  
 लिये स्थल-भार्य पमडा ॥६०॥ जैसे असमयमे उठे हुए बादलोसे प्रभातकी धूपमे खिले-धूप  
 कमलोकी चमक जाती रहती है वैसे ही रघुके अवाक्य शाकमणुसे मरिदरते लाल गालों वाली  
 पवनियोंके मुख कमल मुखभ्रम गए ॥६१॥ वहाँ पच्छिम देशके पुंड्रसवार राजाओं से रघुकी  
 पतधोर लड़ाई हुई । सेनाके अचनेसे इतनी धूल उठी कि आस पास कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था,  
 केवल धनुषकी टखारसे ही सैनिक लोग शत्रुको पहचान पाते थे ॥६२॥ मधुमक्षियोंसे भरे हुए  
 छत्तेके समान बाढ़ियोंवाले यवनोंके शिरोको मत्स्य नामके बाणोंसे काट काट कर रघुने पृथ्वी पाट  
 दी ॥६३॥ उनमेंसे जो जीते बच गए उन्होमे अपने लोहेके टोप उतार उतारकर रघुके चरणोंमे  
 रख दिए नमोकि महापुरुषात्मी कृपा प्राप्त करनेका सही उपाय है कि उनको शरणमें पहुँच जाया  
 जाय ॥६४॥ रघुके सैनिक दासनी लताधरो शिरो हुई पृथ्वीपर युद्धवती मृगछानाएँ बिछाकर  
 चनेसे बैठ गए घोर मदिरा पी पीकर नयाईकी शवावट मिताने लगे ॥६५॥ जैसे सूर्य अपनी तीक्ष्ण  
 किरणोंसे पृथ्वीका जल खींचनेके लिये उत्तरकी घोर धूम बाता है वैसे ही रघु भी उत्तरके राजाओंको  
 जीतनेके लिये उत्तर धूम पड़े ॥६६॥ सिन्धु नदीके तटपर पहुँचकर रघुके पीछे, वहाँकी रेतोंमे

विनीताष्वभ्रमास्तस्त सिन्धुतीरविचेष्टनैः ।  
 दुधुधुर्वाजिनः स्कन्धौल्लङ्घनकुङ्कुमकेसराम् ॥६७॥  
 तत्र हृणावरोधानां मर्तुषु व्यक्तविक्रमम् ।  
 कपोलपाटलादेशि वभूव रघुचेष्टितम् ॥६८॥  
 क्वाभ्योजाः समरे सोढंत्वस्य वीर्यमनीश्वराः ।  
 गजालानपरिक्रिष्टैरचोटैः सार्धमानताः ॥६९॥  
 तेषां सदश्वभूपिष्ठास्तुङ्गा द्रविणराशयः ।  
 उपदा विविशुः शश्वन्नोत्सेकाः कोशलेश्वरम् ॥७०॥  
 ततो गौरीगुरुं शैलमारुरोहाश्वसाधनः ।  
 वर्धयन्निव तत्कृटानुदूतैर्धातुरेषुभिः ॥७१॥  
 शशंस तुल्यसच्चानां सैन्यघोषेऽप्यसंभ्रमम् ।  
 गुहाशयानां सिंहानां परिवृत्त्यायलोकितम् ॥७२॥  
 भूर्जेषु मर्मरीभृताः कीचकष्यनिहंतवः ।  
 गङ्गाशीकरियो मार्गे मरुतस्तं सिपेविरे ॥७३॥  
 विशभ्रमुर्नमेरुणां छायास्वध्यास्य सैनिकाः ।  
 एषदो घासितोत्सङ्गा निपस्फुसृगनाभिभः ॥७४॥

सरलासक्त मातङ्गग्रैवेयस्फुरितत्विषः ।  
 आसन्नोपधयो नेतुर्नकमस्नेहदीपिकाः ॥७५॥  
 तस्योत्सृष्टनिवासेषु कण्ठरज्जुचतत्वचः ।  
 गजवर्ष्म किरातेभ्यः शशंसुर्देवदारवः ॥७६॥  
 तत्र जन्यं रघुर्योरं पर्वतीयैर्गणैरभूत् ।  
 नाराचचेपक्षीयाश्मनिष्पेपोत्पतितानलम् ॥७७॥  
 शरैरुत्सवसंकेतान्स कृत्वा विस्तोत्सवान् ।  
 जयोदाहरणं बाह्योर्गाययामास किन्नरान् ॥७८॥  
 परस्परेश्च विज्ञातस्तेषूपायनपाणिषु ।  
 राज्ञा हिमवतः सारो राज्ञः सारो हिमाद्रिणा ॥७९॥  
 तत्राक्षोभ्यं यशोराशिं निवेश्यावरुरोह सः ।  
 पौलस्त्यतुलितस्याद्रेरादधान इव हियम् ॥८०॥  
 चक्रम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन्प्राग्ज्योतिषेश्वरः ।  
 तद्गजालानतां प्राप्यै सह फालागुरुद्रुमैः ॥८१॥  
 न प्रसेहे स रुद्रार्कमधारावर्षदुर्दिनम् ।  
 रथवर्तमरज्जोऽप्यस्य कुत एव पताकिनीम् ॥८२॥

जो सकल पत्नी यो के रतयो चमकनेवासी बूढियाक प्रकारसे चमचमा उठती थी और इस प्रका-  
 रण बूढियोने रघुने लिये बिना लेसके ही दीपक जला दिए ॥७५॥ जब रघुने बर्हाव अपनी सेनापर  
 पहाच हटा लिया तब यहाँ देवदारवी ऊँची-ऊँची शालामापर हाथियोने गलेकी साँवलां से बर्ण  
 रीताप्रोकी देखकर ही जगली किरातीने रघुके हाथियोकी ऊँचाईका अनुमान कर लिया ॥७६॥ पहाड  
 सेनामोसे रघुकी सेनानी घनघोर लडाई हुई । रघुकी सेना चला चलाती थी और पहाडी लो-  
 परपर बसाती थी । इस प्रकार जब कोई और पत्थरकी चिन्तन ही जाती थी तो कभी-कभी प्रा-  
 उत्पन्न हो जाया करती थी ॥७७॥ रघुने घुर्घाघार बाण भरतानर उरसव सनेस मानव पहाडियोने  
 धक्के छुटा दिए । इसपर चिन्नरोने मित्तवर रघुकी कीरताने बटलसे भीत गए ॥७८॥ पहाड  
 रानामोने रत्नो के डेर रघुको भेंटमे दिए जिसे देखकर रघुने हिमालयके पतुल घनना अनुमान किया  
 और हिमालयने भी मुद्रमे रघुके पराक्रमका अनुमान कर लिया ॥७९॥ हिमालयपर प्रपता नडा  
 गाढवर प्रागे संसारकी और न बडकर रघु लौट पडे । इससे बँलास पर्वतकी इस वादकी लजा हुई  
 कि एव बार टापणने मुझे क्या उठा लिया कि सभी मुझे हारा हुआ समझने लगे ॥८०॥ सोहित्य  
 नदीकी पार करके रघु प्राग्ज्योतिष या प्रसममे जा पहुँचे । वहाँ हाथियोके बँपलके ऊँचे बालागुरके  
 पेड बँपले मे वैसे ही, प्राग्ज्योतिषके राजा भी रघुके नयके बँपने लगे ॥८१॥ बर्हनि राजनि  
 देता कि वादलोके बिना ही बेबल रघुकी सेनानी भूलके शून्य दिए गया । अब इस भूलसे ही यह

तमीशः कामरूपाणामत्याखण्डलविक्रमम् ।  
 भेजे मिनकटैर्नागैरन्यानुपस्रोध यैः ॥८३॥  
 कामरूपेश्वरस्तस्य हेमथीठाधिदेवताम् ।  
 रत्नपुष्पोपहारेण च्छायामानर्च पादयो ॥८४॥  
 इति जित्वा दिशो विष्णुर्न्यवर्तत रथोद्धतम् ।  
 रजो विश्रामयन्नाह्वां ह्यत्रशून्येपुमौलिपु ॥८५॥  
 स विश्वजितमाजह्ये यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम् ।  
 आदानं हि विसर्गाय सतां चारिभुचामिव ॥८६॥  
 सत्त्रान्ते सचिवसखःपुरस्क्रिपाभिर्गुर्वीभिःशमितपराजयव्यलीकान् ।  
 काकुत्स्थश्चिरविरहोत्सुकाधरोघात्राजन्त्यान्स्वपुरनिवृत्तयेऽनुमेने ॥८७॥  
 ते रेखाध्वजकुलिशातपत्रचिह्नं सभाजश्वरक्षयुगं प्रसादलभ्यम् ।  
 प्रस्थानप्रणतिभिरङ्गुलीपु चक्रुर्मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुगौरम ॥८८॥  
 इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये  
 रघुविजयजयो नाम चतुर्थं सर्गं ॥

हृत भवत्वा गवा सो फिर सेनाछे लडता ही न्या ॥८२॥ तब यत्नके राजाने जिन हाथियोंको  
 नेश्वर बदे-बदे पानुभोको हरत दिया था वे ही हाथी उसने इन्द्रसे भी अधिक पराक्रमी रघुको  
 भेटने दे जाने ॥८३॥ और जैसे कोई भक्त फूल-माला आदिसे भक्तिपूर्वक देवताकी पूजा करता  
 है वैसे ही कागहनै करेजाने पाँव-पीठेपर पड़ी हुई रघुने चरणोंकी छायाका रजसि पूजा ॥८४॥  
 इस प्रकार विजयी रघु जब सारी पृथ्वीने जीतकर अपनी राजधानी मगधव्याको लौटने लगे तो उनके  
 एके पहिलेजि उठी हुई धूल पीछे पीछे चलनेवाले हारे हुए राजाओंके ध्वज रहित मुकुटोपर बैठती चलती  
 थी ॥८५॥ दिग्विजयसे लौटकर रघुने विश्वविद् नामका यज्ञ किया जिसमे उन्होंने अपनी सारी  
 सम्पत्ति दक्षिणामे दे दी । जैसे बादल पृथ्वीसे जल लेकर फिर पृथ्वीपर बरसा देते हैं वैसे ही महारना  
 लोग भी धनको दान करनेके लिये ही इच्छुक कथे हैं ॥८६॥ यज्ञ समाप्त हो चुकनेपर रघुने और  
 उनके मन्त्रियोंने हारे हुए राजाओंका बड़ा सत्कार किया और उनके मगधे हारनेकी जो लाज थी  
 उसे दूर कर दिया । फिर अपनी रानियालि बहुत दिनसे विदुषे हुए उन राजाओंको उन्होंने अपने  
 धन देतोमें जानेकी आज्ञा दे दी ॥ ८७ ॥ जाते समय उन राजाओंने रघुके उन चरणोंमें भुक्तकर  
 प्रणाम किया जिसपर ध्वज, बन्ध और लज आदिनी रेखाएँ बनी हुई थी । उस समय उन राजाओंके  
 सिरकी मालामोसे जो पराम गिर रहा था उससे रघुके चरणोंकी जैवलिर्षा गोरो हो गई ॥८८॥

महानवि कालीदासके रचे हुए रघुवंश महाकाव्यमे रघु विजयजय  
 नामक चौथा सर्ग समाप्त हुआ ।

## ॥ पञ्चमः सर्गः ॥

तमध्वरे विश्वजिति चितीशं निःशेषविश्राणितकोपजातम् ।  
 उपात्तविद्यो गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः ॥१॥  
 स मृगमये पीतहिरण्मयत्वात्पात्रे निघायार्घ्यमनर्घशीलः ।  
 श्रुतप्रकाशं यशसा प्रकाशः प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयः ॥२॥  
 तमर्चयित्वा विधिवद्विधिज्ञस्तपोधनं मानघनाग्रयायी ।  
 निशांपतिर्विष्टरभाजमारात्कृताञ्जलिः कृत्यविदित्युवाच ॥३॥  
 अप्यग्रणीर्मन्त्र कृतमृषीणां कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते ।  
 यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं लोकेन चैतन्यमिवोष्णरश्मेः ॥४॥  
 कायेन वाचा मनसापि शश्वद्यत्संमृतं वासवर्षैर्यलोपि ।  
 आपाद्यते न ध्ययमन्तरायैः कचिन्महर्षेस्त्रिविधं तपस्तत् ॥५॥  
 आधारबन्धप्रमुक्तैः प्रयत्नैः संरक्षितानां सुतनिर्निशेषम् ।  
 कच्चिन्नवाय्वादिरुपप्लवो वः श्रमच्छ्रद्दामाश्रमपादपानाम् ॥६॥  
 क्रियानिमित्तेष्वपि वत्सलत्वादभग्नकामा मुनिभिः कुशेषु ।  
 तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला कचिन्मृगीशामनघा प्रसूति ॥७॥

### पाचवाँ सर्ग

जिस समय रघु विश्वजित् यज्ञने मचना सब कुछ दान किए बैठे थे उसी समय परतन्तुने  
 शिष्य कौत्स ऋषि गुरुदक्षिणार्थके सिधे घन माँगनेको उनके पास आ पहुँचे ॥१॥ प्रतिधिका रात्कार  
 करनेवाले, घत्सन्त शीलवान् और यशस्वी रघु मिट्टीका पान लेबर विदाव् प्रपिनि [ कौत्स ऋषि ]  
 की पूजा करने चले क्योंकि छोने खाँसीके पास तो उन्होने सब दान ही कर जाले थे ॥ २ ॥ तपस्वी  
 औरस कृष्णके आसनपर बैठ हुए थे । शास्त्रके जाननेवाले सम्माननीय रघुने वही विधिसे उनकी पूजा  
 की और हाथ जोड़कर उनसे कहा—॥३॥ हे बुद्धिमान् ! जैसे सूर्य अपने प्रकाशसे सोए हुए सप्तारको  
 जगा देता है वैसेही जिस मुझे आपकी ज्ञानकी ज्योति देकर जगाया है और जो मन्त्र दृष्टा ऋषिमोमे  
 सर्वगुण हैं वे आपके गुरु कुशलतासे तो हैं न ॥४॥ उन्होने शरीर, मन और बचन तीनों  
 प्रकारका जो कठिन तप करना प्रारम्भ किया था और जिसे देखकर दन्द्र भी पबरा उठे थे, वह तप तो  
 ठीक चल रहा है न ॥५॥ आप लोगो ने भावमके जिन वृत्तोंके बान्ते बाँधकर उन्हें पुत्रके  
 समान जतनसे पाला है और जिनसे पत्थिबनेको छाया मिलती है उन वृत्तोंके बाँधोपावोंसे कोई हानि  
 तो नहीं पहुँची है ॥६॥ हरिणियोंने वे छोटे-छोटे छीने तो कुशलसे हैं न, जिन्हें ऋषि लोग  
 बड़े प्यारसे गोदीमें बैठाकर खिलाते हैं, जिनकी नामिका नाम ऋषियोंकी मोहन ही सूखकर गिरता  
 है और जिन्हें ऋषि लोग बलके सिधे बटोरी हुई कुशा पवानेसे भी नहीं टोकते ॥७॥



निर्वर्त्यते यैर्निवमाभिषेको येभ्यो निवापाञ्जलयः पितृणाम् ।  
 तान्युञ्ज्यप्राङ्कितसैकतानि शिवानि वस्तीर्यजलानि कश्चित् ॥८॥  
 नीवारपाक्रादि कर्हंशरीरैरासृश्यते जानपदैर्न कश्चित् ।  
 कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागां कन्यं शरीरस्थितिसाधनं यः ॥९॥  
 अथि श्रत्तन्नेन महर्षिणा त्वं सम्यग्निनीयानुमतो गृहाय ।  
 कालो ह्ययं संक्रामितुं द्वितीयं सर्वोपकारचममाश्रमं ते ॥१०॥  
 तयार्हतो नाभिगमेन हृष्टं मनो नियोगक्रिययोत्सुकं मे ।  
 अप्याह्वयाशासितुरात्मना वा प्राप्तेऽसि संभावयितुं वनान्माम् ॥११॥  
 इत्यर्घ्यपात्रानुमितन्ययस्य रघोरुदारामपि गां निशम्य ।  
 स्वार्थोपपत्तिं प्रति दुर्बलाशस्तमित्यवोचद्वरतन्तुशिष्यः ॥१२॥  
 सर्वत्र नो वार्तामवेहि राजन्नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम् ।  
 ह्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ॥१३॥  
 भक्तिः ऽतीचक्षेण कुलोचिता ते पूर्वान्महाभाग तपतिशेषे ।  
 व्यतीतकालस्त्वहमभ्युपेतस्त्वामर्थिभावादिति मे विपादः ॥१४॥

ही, जन नवियोगा बल तो ठीक है व, जिसमे आप लोग प्रतिदिन स्नान, सन्ध्या, उपवास आदि करते हैं और जिसकी रीतिपर आप लोग अपने कुने हुए धन्वका छठा भाग राजाका भग समभर रख छोड़ते हैं ॥८॥ जिसीके जिस धन्य और जिग फलसे आप लोग कतिपिनोपा एत्पार करते हैं और जिन्हे धाकर ही आप लोग रह जाते हैं उन्हे भास-भासके पाँचदि पशु तो नहीं मानर कर जाते ॥९॥ क्या ऋषिने आपकी विद्वत्तासे प्रसन्न होकर आपको गृहस्थ बन जानेकी आज्ञा दे सी है, क्योंकि आपकी इतना मयत्वा भी हो गई है कि आप विवाह करें और सबका भला करने-वाले गृहस्थाश्रममे प्रवेश करें ॥१०॥ आप जैसे पूजनीय महात्माने जाने भरसे पेश जी नहीं भय, मुझे कुछ सेवा करनेकी आज्ञा भी सोजिए और यह बताइए कि आपने केवल अपने गुरुजीकी आज्ञासे ही नहीं आपर मुझे श्रुतार्थ किया है या अपनी इच्छासे ही आपने कृपा की है ॥११॥ नौराजने ध्यान से रघुजी उदार वार्ते सुनी पर देखा कि उनक हाथमे केवल विद्वीकरा पात्र बचा है । उन्होने समझ लिया कि रघुने पात्र एक चौकी भी नहीं है । उनका मुँह उतर गया और उन्होने समझ लिया कि यहाँ हमारा नाम नहीं बनेगा । यह सोचकर भरतन्तुने निष्य नौराज बोले— ॥१२॥ 'हे राजन् ' आपके राज्यमे हमें सब प्रकारका सुख है । जैसे सूर्यके खड़े हुए बँबेरा नहीं टहर पाता जैसे ही आपने राजा रहनेपर प्रजापे दुःखका नाम भी नहीं है ॥१३॥ हे भाग्यशाली ! बढाकी पूजा करता आपके भजना ही धर्म है और आप तो इस बातमे अपने पूर्वजोके भी भाये बड़े हुए हैं । मैं आपके पाग कुछ माने आपा था पर मैं समझता हूँ कि मुझे मानेमे कुछ विसम्भ हो गया है, रघुजीका मुझे पेश १ ॥१४॥ हे राजन् ! आपने अपना सब धन मन्त्रे लीगोनी दे दाता है और केवल यह उरीर

शरीरमात्रेण नरेन्द्र तिष्ठन्नाभासि तीर्थप्रतिपादितद्धिः ।  
 आरण्यकोपाचफलप्रसूतिः स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः ॥ १५ ॥  
 स्थाने भवानेकनराधिपः सन्नकिञ्चनत्वं मखजं व्यनक्ति ।  
 पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः ॥ १६ ॥  
 तदन्यतस्तापदनन्यकार्यो गुर्वर्थमाहर्तुमह यत्पिथ्ये ।  
 स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं शरद्धनं नार्दति चातकोऽपि ॥ १७ ॥  
 एतायदुक्त्वा प्रतियातु कामं शिष्यं महर्षेर्नृपतिर्निषिध्य ।  
 किं वस्तु विद्वन्गुरवे प्रदेयं त्वया कियद्वेति तमन्वयुहक्त ॥ १८ ॥  
 ततो यथावद्विहिताध्वराय तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय ।  
 यर्थाश्रमाणां गुरवे स यर्था विचक्षणाः प्रस्तुतमाचचचे ॥ १९ ॥  
 समाप्तविद्येन मया महर्षिर्विज्ञापितोऽभूद्गुरुदक्षिणायै ।  
 स मे चिरायास्खलितोपचारां तां भक्तिमेवागच्छयत्पुरस्तात् ॥ २० ॥  
 निर्बन्धसंज्ञासकृपार्थकार्यमचिन्तयित्वा गुरुणाहमुक्तः ।  
 विचस्य विद्यापरिसंख्यया मे कोटीयत्सो दश चाहरेति ॥ २१ ॥  
 सोऽहं सपर्याविधिभाजनेन मत्वा भवन्तं प्रभुशब्दशेषम् ।  
 अभ्युत्सहे संप्रति नोपरोद्धमल्पेतरत्वाच्छ्रुतनिष्कयस्य ॥ २२ ॥

भर प्रापके पास बचा है । इससे प्राप उस तिन्नीके पीथकी दूठ-जैसे रह गए है जिसके दाने उपस्त्वियो ने फाड़ लिए हो ॥ १५ ॥ चक्रवर्ती होते हुए भी यज्ञमे सब कुछ देकर घोर ब्रिज होकर भी प्राप उस चन्द्रनाके समान बड़े सुन्दर लग रहे हैं जिसकी सारी नलाई पीरे-पीरे वेवतामोने पी जाती हो ॥ १६ ॥ प्रापके पास तो कुछ है नहीं, इसलिये मैं अब किसी दूसरे धनीका द्वार लटलटाता हूँ क्योंकि पपीहा भी बिना जनवाले दादनीसे पानी नहीं माँगता । प्रापका बन्धास हो ॥ १७ ॥ ऐसा नहकर कीत्स उठकर चलने लगे । रघुने उन्हें रोका और पूछा— 'प्राप गुरुजीको क्या घोर कितना देना चाहते हैं, कुछ बहिए भी तो' ॥ १८ ॥ ब्रह्मचारी कीत्सने देखा कि विस्ववित् यज्ञ करनेपर भी रघुको सममान पू नहीं गया इसलिये वर्षों घोर घ्राभ्रमकी रक्षा करनेवाले रघुसे उन्होंने अपने भगनी बात कहनी प्रारम्भ की— ॥ १९ ॥ "राजन् ! विद्या पर चुकनेपर मैंने गुरुजीसे कहा कि प्राप गुरुसे गुरु-दक्षिणा माँगिए । गुरुजीने कहा— मैं तुम्हारी गुरुभक्तिसे ही बहुत प्रसन्न हूँ फिर गुरु-दक्षिणा लेकर क्या होगा । मैंने बड़ी भक्तिसे जो उनकी सेवा की थी उसे ही उन्होंने गुरु-दक्षिणा समझ लिया था ॥ २० ॥ पर जब मैंने बार-बार दक्षिणा माँगनेके लिये उनसे हठ किया तो वे विगड खड़े हुये और मेरी दरिद्रताका विचार किए बिना ही बोल उठे— मैंने तुम्हें चौबट विद्याएँ पढाई है इसलिये मुझे चौबट करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ लाकर दो ॥ २१ ॥ प्रापके हाथमे गिट्टी का पात्र देखकर ही मैं समझ गया

इत्थं द्विजेन द्विजराजकान्तिरावेदितो वेदविदां वरेण ।  
 एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिरेनं जगद् भूपो जगदेकनाथः ॥२३॥  
 गुर्वर्थमर्थां श्रुतपारदृश्वा रयोः सकाशादनवाप्य कामम् ।  
 गतो वदान्यान्तरमित्ययं मे मा भूत्परीवादनवावतारः ॥२४॥  
 स त्वं प्रशस्तो महिते मदीये वसंश्चतुर्याऽग्निरिवाग्न्यगारे ।  
 द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्यवघते साधयितुं त्वदर्थम् ॥२५॥  
 तथेपि तस्यावितथं प्रतीतः प्रत्यग्रहीत्संगरमग्रजन्मा ।  
 गामात्तसारां रघुरप्यवेक्ष्य निष्क्रण्डुमर्थं चकमे कुयेरात् ॥२६॥  
 यशिष्ठमन्त्रोच्चणजात्प्रभावादुदन्वदाकाशमहीधरेषु ।  
 महत्सखस्येषु बलाहकस्य गतिर्विजघ्ने न हि तद्रथस्य ॥२७॥  
 अथाधिशिश्ये प्रयत्तः प्रदोषे रथं रघुः कल्पितशस्त्रगर्मम् ।  
 सामन्तसंभावनयैव धीरः कैलासनार्थं तरसा जिगीषुः ॥२८॥  
 प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै सविस्मयाः कोपगृहे निपुक्ताः ।  
 हिरण्यमर्यां कोपगृहस्य मध्ये वृष्टिं शशंशुः पतितां नमस्तः ॥२९॥  
 तं भूपतिर्मासुरहेमराशिं लब्धं कुवेरादभियास्यमानात् ।  
 दिदेश कौरमाय समस्तमेव पादं सुमेरोरिव वज्रभिनाम् ॥३०॥

किं मानने पाप 'राजा' शब्दको छोटकर छोटा कुछ भी नहीं बचा है । इपर मेरी गुरु-दीक्षणा भी हतनी  
 पहरी है कि मय मेरा मन ही नहीं करता कि आपसे कुछ माँगूँ ॥२३॥ जब वैदिक शास्त्रार्थमें सर्वश्रेष्ठ  
 बौलने यह बात यह पन्द्रवाने गमान मुन्दर परम पापिय रघु बोले—॥२३॥ प्राय जैते वैदवाटी  
 शास्त्राण गुरु-दीक्षणाके निम्ने हमारे नाम धार्ये धीर वृत्ति निरखन सोदकर विपरी दुखरेका द्वार भावे,  
 यह नहीं ही गवना ॥२४॥ इगतिसे प्राय हमारी यज्ञभानाये पणिए । वही [गार्गाय, दारिणाण्य  
 धीर पाणनीय—] वे तीन पूत्रनीय धामि स्थापिन है । धार भी पोयो धमिने गमन पूत्रनीय  
 होकर दो बार दिन दृष्टिए, तदरथ में आपकी गुरु-दीक्षणाके निम्ने कुछ न कुछ जगन बगना ॥२५॥  
 पर मुन्दर भीय बडे प्रमन हूँ धीर उर्योरे शब्दवादी रघुकी याग मानयो । रघुने भी देगा कि  
 पूर्वापर ही धन है नही, इगतिसे उर्योरे निरखन विद्या कि कुवेरने ही धन दिया जाल ॥२६॥  
 भेदे पापके कोराने मय करी भी जा गवना है मने ही वलित्योके मन्तोमे पणिन विद्या हुआ  
 रघुना रथ भी मनु, आकाश धीर दर्येन करी भी आ-या सवना था ॥२७॥ रघुने मोला कि उगी  
 स्वारर परकर में धरें 'स' ही मगजलाके बंधानके स्थानी कुवेरकी छोटके मगजने मपान गजने में ही  
 नृदा । पर निरपर करने के गीन होने ही धमन लख टीक करने मय ही शरकर ही गृहे ॥२८॥  
 उगी दिन मदां भेदे ही रघु न मनेको हूँ बडे ही सखकोरने रघुनेके धार पर धपान-धप  
 नवापर दिना कि कोरके बट्टा देर मय कोरके वरी होनी रह्य है ॥२९॥ [मय पर हूँ भी कि]

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसञ्चौ ।  
 गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ॥३१॥  
 अथोष्ट्रवामीशतत्राहितार्थं प्रजेश्वरं प्रीतमना महर्षिः ।  
 स्पृशन्करेखानतपूर्वकायं संग्रस्थितो वाचमुवाच कौत्सः ॥३२॥  
 किमत्र चित्रं यदि कामस्र्मूर्ध्वृत्ते स्थितस्याधिपतेः प्रजानाम् ।  
 अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषितं चौरपि येन दुग्धा ॥३३॥  
 आशास्यमन्यत्पुनरुक्तभूतं श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुपस्ते ।  
 पुत्रं लभस्यात्मगुणानुरूपं भवन्तमीदृवं भवतः पितेव ॥३४॥  
 इत्थं प्रयुज्याशिषमग्रजन्मा राज्ञे प्रतीयाय गुरोः सकाशम् ।  
 राजापि लेभे सुतमाशु तस्मादालोकमर्कादिव जीवलोक ॥३५॥  
 ब्राह्मे सुहृते, किल तस्य देवी कुमाररूप सुपुत्रे कुमारम् ।  
 अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्ना तमात्मजन्मानमर्जं चकार ॥३६॥

रघुकी बहाई की बात कानमे पड़ेही फुवरेले राठवो ही सोनेवी वर्पा कर दी थी । वह सोनेका डेर  
 ऐसा चमका रहा था जैसे किसीने बज्जते सुमेरु पर्वतका एक टुकड़ा काटकर गिरा दिया हो ।  
 रघुने यह सारा सोना कौरवको भेंट कर दिया ॥३०॥ [उन्हे देखकर कौरवने कहा—मैं इतना सोना  
 लेकर क्या करूँगा । मुझे तो मुस्क-दक्षिणा चुकाने भरवो धन चाहिए । इसपर रघु बोले—यह नहीं  
 हो सकता । यह सारा धन आप ही ले जाइये ।] अयोध्या-निवासिबोने इन दोनोही बड़ी प्रशंसा  
 की क्योंकि उन दोनो मे एक तो इतना उन्तोपी था कि प्रावश्यकतासे अधिक एक कौडी लेनेको  
 उद्यत नहीं था और दूसरा इतना बड़ा दाता था कि माँससे अधिक धन देनेपर तुला हुआ था  
 ॥३१॥ रघुने उस सारे धनको सँकड़ो ऊँटो और खच्चरोपर लदवा दिया और जब कौत्स चलने  
 लगे तब राजाने बड़ी नम्रतासे उन्हे प्रणाम किया । कौत्स बड़े प्रसन्न थे और उन्होने राजाके सिर-  
 पर हाथ भरते हुए कहा ॥३२॥ धर्मात्मा राजाबोके लिए यदि पृथ्वी उनकी इच्छाने अनुसार धन है  
 तो नोई मन्त्रज नहीं है, पर तुम्हारे प्रभावको देखकर तो रात्रिमुख बड़ा आश्चर्य होता है क्योंकि  
 सुमने तो स्वर्गसे भी जितना चाहा उतना धन ले लिया ॥३३॥ ब्रह्मरकी सभी वस्तुएँ, तुम्हे प्राप्त  
 हो सकती है इसलिये तुम्हे उनके लिये आशीर्वाद देना तो ब्यर्थ है तो भी मैं तुम्हें यह आशीर्वाद  
 देता हूँ कि जैसे तुम्हारे पिता द्वितीपको तुम्हारे जैसा श्रेष्ठ पुत्र मिला वैसे ही तुम्हें भी तुम्हारे ही  
 समान प्रतापी पुत्र प्राप्त हो ॥३४॥ राजावो यह आशीर्वाद देकर ब्राह्मण सौत्स को अपने सुपुत्रीके पास  
 लसे गए और जैसे सूर्यसे सतारको प्रकाश मिलता है वैसे ही ब्राह्मणने आशीर्वादसे थोड़े ही दिनमे रघुको  
 भी पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ ॥३५॥ रघुकी यनीकी पोखरे तबके ब्राह्मणभूतंम कातिरेयके समान तेजस्वी  
 पुत्र जनमा तो ब्राह्मण सुहृत्तमे जन्म होनेसे पिताने ब्रह्माके नामपर पुत्रवा नाम अज रख दिया ॥३६॥

रूपं तदोजसि तदेव वीर्यं तदेव नैमर्गिस्सुखतत्वम् ।  
 न कारणान्स्वादिमिदं कुमारः प्रवर्तितो दीपश्चप्रदीपात् ॥३७॥  
 उपानयितं विधिवद्गुणम्भ्यस्तं यौवनोद्देदपिशेषान्तम् ।  
 श्रीः माशिलापापि गुणोनुत्तं धीरेव कन्या पितुगचकाद् ॥३८॥  
 अथेपरैग प्रथमैःशिवानां स्वयंवराथे स्वमुनिन्दुमत्याः ।  
 आतः शुभागतयनोत्सुकेन भोजेन दूतो रघवे सिम्हः ॥३९॥  
 नं श्लाघ्यमंरन्धमनीं विचिन्त्य दारप्रियायोग्यदशं चपुत्रम् ।  
 प्रस्थापयामास नर्मन्पमेनमृदां विदुर्भाधिपराजधानीम् ॥४०॥  
 नम्योपशार्याग्नितोपचारा वन्येतरा ज्ञानपदोपदाभिः ।  
 मार्गं निराया मनुजेन्द्र एनोर्दभृत्पुद्गानप्रिहारकन्याः ॥४१॥  
 न नर्मदागोचनि गीरराट्टैर्मरिद्रिरानतिनक्तमाने ।  
 निररायामास प्लिद्धिताप्या कनानं रजोधूमकेतु मैन्यम् ॥४२॥  
 अथोपरिष्ठादुक्षमं भ्रं मद्भिः प्राक्चरितान्तःमलिनप्रवेष्टः ।  
 निर्पातदानामनगण्टभिर्चिरन्यः गरितो गज उन्ममज्ज ॥४३॥

निःशेषविज्ञालितधातुनापि वप्रक्रियामृत्तवतस्तटेषु ।  
 नीलोर्ध्वरेखाश्वलेन शंसन्दन्तद्वयेनाश्मविकुण्ठितेन ॥४४॥  
 संहाराविज्ञेपलघुक्रियेण हस्तेन तीरामिमुखः सशब्दम् ।  
 वभौ स भिन्दन्वृहतस्तरंगान्वार्यर्गलाभङ्ग इव प्रवृत्तः ॥४५॥  
 शैलोपमः शैवलमञ्जरीणां जालानि कर्पन्नुरसा स पश्चात् ।  
 पूर्वं तदुत्पीडितवारिराशिः सरित्प्रवाहस्तटमुत्सर्प ॥४६॥  
 तस्यैकनागस्य कपोलमिष्योर्बलावगाहक्षयमात्रशान्ता ।  
 धन्येतरानेकपदर्शनेन पुनर्दिदीपे मददुर्दिनश्रीः ॥४७॥  
 सप्तच्छदचरिणकदुप्रवाहमसखं माघाय मदं तदीयम् ।  
 विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्नाः सेनागजेन्द्रा विमुखा वभूयुः ॥४८॥  
 स च्छिन्नप्रन्धद्रुतयुग्यशून्यं भग्नाक्षपर्यस्तस्थं क्षणेन ।  
 रामापरिव्राणविहस्तयोध सेनानिवेशं तुष्टुलं चकार ॥४९॥  
 तमापतन्तं नृपतेरध्व्यो वन्यः करीति श्रुतवान्कुमारः ।  
 निवर्तयिष्यन्निशिखेन कुम्भे जघाम नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः ॥५०॥

पुन तथा वा ॥४३॥ यद्यपि नहानेसे उसके दाँतोमे लगी वैष्ठी लाली हो छूट गई थी फिर भी  
 टीलोपर टक्कर मारनेसे उसकी दाँतोपर जो नीली-नीली रेखाएँ बन गई थी उनसे जान पड़ता था  
 कि उसने ऋक्षवान पर्वतकी शिलाप्रोम टक्करें मारी हैं ॥४४॥ वह हाथी ज्यों-ज्यों उठनी धोर बढ़ने  
 लगा त्यों त्यों धपनी धूँड फँला धोर सिकोडकर चिन्घाटता हुआ जलकी लहरोंको धीरने  
 लगा । उस समय वह ऐसा जान पड़ता था मानो वह धनालकी साँघें तोड़ रहा हो ॥४५॥  
 वह पहाड़के समान लम्बा-चौड़ा हाथी धपनी छातीसे सेवारकी धपने साथ लीचटा हुआ तटपर धा  
 पहुँचा । इससे जलने जो लहरें उठी थी वे उठते भी पहले तटपर पहुँच चुकी ॥४६॥ यद्यपि  
 नदीमे नहानेसे उस हाथीके माथेका सब मद धुल चुका था । फिर भी प्रजकी सेनाके हाथियोंको  
 देखकर वह मलवानु हाथी ज्येष्ठे तमतमा उठा धोर उसके माथेसे फिर धुसांपार मद धरसने लगा  
 ॥४७॥ जब भजके हाथियोंके धिनवमके दुषके समान कर्सेसे मदको गन्ध पाई तब वे  
 हाथीवानोंके बार-बार रोवनेपर भी इपर-उपर भाग चले ॥४८॥ उस विजाल जगती हाथीको  
 देखते ही सब थोड़े भी रसा नुदा-नुदाकर भाग बने । इस भगदडमे जिन रथोंके धुरे टूट गए वे जहाँ-  
 जहाँ निर पड़े थे । उस भङ्गते हाथीने सेनामे इतनी भयदड भयावी निःशोक धपनी धपनी सिंघोरों  
 दिपानेके लिये सुरसित स्थान ढूँढने लगे ॥४९॥ वह हाथी धपनी धोर चला धा रहा था बिन्दु  
 धपने सोचा कि वह जगती हाथी है । इसको मारना ठीक नहीं है । इसलिए उन्होंने धपने धनुषको मोड़ा

स विद्वामत्रः किल नागरूपमुत्सृज्य तद्विस्मितसैन्यदृष्ट ।  
 स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यवर्ति कान्तं वपुर्ज्योमचरं प्रपेदे ॥५१॥  
 अथ प्रभाषोपनतैः कुमारं कल्पद्रुमोत्थैरवकीर्य पुष्पैः ।  
 उवाच वाम्नी दशनप्रभाभिः संवर्धितोरःस्यलतारहारः ॥५२॥  
 मत्तद्गशापादवलेपमूलादवाप्तवानस्मि मत्तद्गजत्वम् ।  
 अवेहि गन्धर्वपतेस्तनूजं प्रियंवदं मां प्रियदर्शनस्य ॥५३॥  
 स चानुनीतः प्रथतेन पथान्मपा महर्षिर्मुदुतामगच्छत् ।  
 उष्णत्वमग्न्यातपसप्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य ॥५४॥  
 इच्छाकुवंशप्रभवो यदा ते मेत्स्यत्यजः कुम्भमयोमुखेन ।  
 संयोच्यसे स्वेन वपुर्महिम्ना तदेत्यवोचत्स तपोनिधिर्मां ॥५५॥  
 संमोचितः सच्चवता त्वपाहं शापाधिरप्रार्थितदर्शनेन ।  
 प्रतिप्रियं चेद्भवतो न कुर्यां वृथा हि मे स्वात्स्वपदोपलब्धिः ॥५६॥  
 संमोहनं नाम सखे ममास्त्रं प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रम् ।  
 गान्धर्वमादत्स्व यतः प्रयोक्तुर्न चारिहिंसा विजयश्च हस्तो ॥५७॥

या जीवकर एक बाल उसके मस्तकमे इसलिये मारा कि वह लौट जाय ॥५०॥ बाण लगते ही वह  
 अपना हाथीका शरीर छोड़कर देवतामीके समान सुन्दर और तेजपूर्ण शरीर वाला बनकर उड़ा हो  
 गया । यह देखकर राजके सैनिक तो प्रायः फाड़कर मारने लगे वेलते हुए जहाँके उहाँ खड़े रह गए ॥५१॥  
 उस वैवताका वेप मारण करनेवाले पुरुषने अपने प्रभावसे मल्लवृक्षके फूल मँगाकर अजमे ऊपर बरसाए  
 और जब उसने बोलनेके लिए मुँह सोला तब उसके शरीरकी चमकने लगे गलेमे पटा हुआ हार  
 बनक उठा ॥५२॥ [ यह बोला ] मैं गन्धर्वोंके राजा प्रियदर्शनका पुत्र प्रियम्बद हूँ । एक बार मैंने  
 प्रभिवानमे आकर मत्तग ऋषिका प्रपमाल कर दिया था उन्होंने के शापसे मैं हाथी हो गया ॥५३॥ जब  
 मैंने ऋषिके बहुत हाथ-पाँव लोड़े तब उन्हें दया या भई क्योंकि जल तो प्राणकी गर्मी पाकर ही गर्म  
 होता है, उसका मथना स्वभाव तो ठंडा ही होता है ॥५४॥ तब प्रबल होकर उस तपस्वीने  
 कहा—इच्छाकु वरामे सब नामके कुमार उत्पन्न होंगे जब वे सुन्दरने धायेपर लोहेके फलवाला  
 बाण मारेंगे तब तुम्हें फिरसे अपना वास्तविक शरीर प्राप्त हो लगे ॥५५॥ उसी दिनसे मैं हाथी  
 होया और तबसे सदा आपके धानकी बात देखा करता था । जोड़े बड़े नामसे आपने आकर मुझे  
 धापसे छुड़ा दिया । इस उपकारके बदलेमे यदि मैंने आपकी कोई भलाई न की तो मेरा यह शरीर  
 पाना व्यर्थ ही है ॥५६॥ देखिये ! मेरे पास यह सम्मोहन नामका गन्धर्वोत्पन्न है, जिसके चलाने और  
 रोकनेके प्रलम्ब-प्रलय मन्त्र हैं । इस दुर्लभ मन्त्रको आप से लीजिए । इसमे यह विशेषता है कि जब  
 आप इसे चलाने तब आप शत्रुके प्राण लिए बिना ही उसे जीत लेंगे ॥५७॥ जान पड़ता है कि

धूलं हिया मां प्रति यन्मूर्तुर्दयापरोऽभूः प्रहरन्नपि त्वम् ।  
 तस्मादुपच्छन्दयति प्रयोज्यं मयि त्वया न प्रतिपेधरौक्ष्यम् ॥५८॥  
 तथेत्युपस्पृश्य पयः पवित्रं सोमोद्भवायाः सरितो नृसोमः ।  
 उदह्मुखः सोऽस्रविदस्रमन्त्रं जग्राह तस्माच्चिगृहीतशापात् ॥५९॥  
 एवं तयोरध्वनि दैवयोगादासेदुपोः सख्यमंचिन्त्यहेतु ।  
 एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान्तौराज्यरम्यानपरो विदर्भान् ॥६०॥  
 तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे तदागमारूढगुस्प्रहर्षः ।  
 प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रध्वन्त्रं प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली ॥६१॥  
 प्रघेस्य चैनं पुरमग्रयायी नीचैस्तयोपाचरदपितृश्रीः ।  
 मेने यथा तत्र जनः समेतो वैदर्भमागन्तुमजं शृदेशम् ॥६२॥  
 तस्याधिकारपुत्रपैः प्रसृतैः प्रदिष्टां प्राग्द्वारवेदि विनिवेशितपूर्णाङ्गुभ्याम् ।  
 रम्यां रघुप्रतिनिधिः स नवोपकार्या वास्यात्परा मिव दशां मदनोऽध्युवास ॥६३॥  
 तत्र स्वर्षवरसमाहृतराजलोकं कन्याललाम कमनीयमजस्य लिप्तोः ।  
 भावावबोधकलुपा दयितेव रात्रौ निद्रा चिरखे नयनाभिमुखी बभूव ॥६४॥

आपने जो मेरे ऊपर बाण चलाया है उससे आपके मनमें कुछ सकोच हो रहा है । पर इसमें लजाने-  
 की क्या बात है, क्योंकि बाण चलाने समय जो आपने मनमें मुझे मारनेकी इच्छा तो थी नहीं ।  
 आपने जो दया करके ही बाण चलाया था । अब मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूँ कि आप यह भ्रम  
 से लीजिए, धामा-कामी न कीजिए ॥५८॥ चन्द्रमणि सपान सुन्दर भजने गणपतिका कहना मान  
 लिया । उन्होंने पहले चन्द्रमासे निकली हुई नर्मदाके जलका आचमन किया और फिर उत्तर की ओर  
 मुंह करके आपसे छूटे हुये उस गणपतसे यह प्रश्न ले लिया और उतके चलाने और रोकनेका मन्त्र भी  
 सीखा लिया ॥५९॥ इस प्रकार दैवयोगसे भज और प्रियम्बदकी मार्गमें ही मित्रता हो गई । वहाँसे  
 प्रियम्बद जो बुधरेके निमरस नामक उपवनकी ओर चल गया और भज उस विदर्भ देशकी ओर  
 चल पडे जो मन्ते हासनके कारण बड़ा सुन्दर हो गया था ॥६०॥ जब विदर्भके राजाको समाचार  
 मिला कि भज आगए हैं तब वे बड़े प्रसन्न हुए और जैसे समुद्र अपनी लहरें ऊँचे उठाकर पन्द्रमाका  
 स्वागत करता है वैसे ही उन्होंने भी मन्तरेके बाहर ध्वजके पताबजे जाकर उनका स्वागत किया ॥६१॥  
 राजा भोज अपने साथ भजको नगरमें ले गए और वहाँ उन्हें अपना सब कुछ खेंद करके ऐसी नम्रताके  
 साथ उनका सत्कार किया कि लोग मही समझने लगे कि भज ही इस घरके स्वामी हैं और भोज  
 प्रतिनिधि हैं ॥६२॥ वहाँसे भोज-राजके सेवक, भजकी बधो मधताये उस मनोहर राज-मन्दिरमें ले  
 गए जिसके द्वारकी चौकियोपर जलसे भरे मयल-बसख रखे हुए थे । उस भवनमें रघुके प्रतिनिधि  
 भज ऐसे रहने लगे मानो कामदेवने अपना वचन बिताकर जवानिमें पैर धरा हो ॥६३॥ अब भजको  
 यह चाह हुई कि किसी प्रकार उस कन्याको प्राप्त करें जिसे पानेके लिये सबदो राजा स्वयम्बरमें आए



सं कर्ष्यभूषणनिपीडितपीवरांमं शय्योत्तरच्छदविमर्दकशाङ्गरागम् ।  
 यत्तात्मजाः सवयसः प्रथितप्रबोधं प्राशोधयन्नुपसि चाग्भिरुदारवाचः ॥६५॥  
 राश्रिर्गता भतिमतांवर मुञ्च शय्यां धात्रा द्विर्ध्वननु धूर्जगतो विभक्ता ।  
 तामेकतस्तव विभक्तिं गुरुर्विन्द्रिस्तस्या भवानपरधुर्यपदावलम्बी ॥६६॥  
 निद्रावशेन भवताप्यनवेक्ष्यमाणा पर्युत्सुकत्वमवला निशि स्रष्टिडतेव ।  
 लक्ष्मीविन्दोदयति येन दिग्न्तलम्बी सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः ॥६७॥  
 तद्वलगुना युगपदुन्मिषितेन तावत्सद्यः परस्परतुलामधिरोहतां द्वे ।  
 प्रस्पन्दमानपरुपेतारमन्तश्चुस्तव प्रचलितभ्रमरं च पयम् ॥६८॥  
 घृन्ताच्छ्लथं हरति पुष्पमनोकहानां संसृज्यते सरसिर्जररुणांशुभिर्भैः ।  
 स्वामाधिकं परगुणेन विभातवायुः मौरस्यमौप्सुरिव ते मुक्तमारुतस्य ॥६९॥  
 तान्नोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु निर्धातहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः ।  
 आभाति लब्धपरभागतयाधरोष्ठे लीलास्मितं सदृशनाचिरिव त्यदीयम् ॥७०॥

है । इती उज्ज्वलने पडे रत्नेके बररुण रघुवी चाँगोमे राजको उती प्रकार बहूत विलयमे नीद भाई  
 यैमे पपने पदिरे समको न जाननेसाली नई बहू पपने पतिके पास विलयमे जातो है ॥६५॥ एक  
 बरबट गेनेरे बररुण अजमे मरे हुए कण्ठोपर कुण्डलमे दहमेसे उठका बिहू पट गया और विद्योनेकी  
 रणङ्गे उती चरीउर वणा हुआ समराम भी बुँद गया । हिन विषयमें ही उज्ज्वी समान प्रवृत्तपावते  
 और मगुर सोतनेसले गुराँके पुत्र यह रघुवि जा-भावर बुद्धिमान बनको पगाने लगे ॥६६॥

है परम बुद्धिमान । राज बन गई है, सब चम्पा छोड़िए । बहाने गृष्वाका भाद केवल दो  
 भागोंमें बाँटा है, जिसे एक और तो तुम्हारे पिता तथा तजव होकर सँभालने है और दूसरी और  
 तुम्हें यादकर मे मानना है ॥६६॥ देखो, तुम्हारे मौरस्य-मौरसोने जब यह देगा कि तुम जिज्ञा की  
 दूसरी रानीके यज्ञमें ही उठ कर तुम्हें पाहो रत्नेकर भी गूट होकर तुम्हारे ही मुग्धने समान  
 मुग्ध चम्पामें नाम लगी गई की पर इस समय चम्पामें भी मयिन हो गया है और रत्नके बहू  
 मौरस्य-मौरसो केताही निराधार हो गई है, [क्योंकि तुम्हारे मुग्धकी बराबरी करवेंसाला और कोई  
 मुग्ध बरुण भी है नहीं, जिसके पास बहू जा गये ] रत्नके यादकर मुग्ध जगे फिर जानासो  
 ॥६७॥ इस समय तुम्हारी बन्त चाँगोमे पुनविषी बूद रही है और लामोके कपकोने भीतर  
 भी लूट रहे है । इस समय बड़ो लो मुग्ध विषयने पर तुम्हारे नेत्र और स्वयत् एक साथ मिलकर  
 एक जैसे मुग्ध भाँगे लगे ॥६८॥ प्रायः जानकर जब गृष्वाका चामरकोडर चूने कोने छोड़े  
 कोसल । गृष्वाका दिवसा हुआ मुग्धकी बिरुलोने गिरे हुए कपकोकी छत्रा हुआ पल रहा है माने  
 मुग्ध ब्रह्म हुआ न देवकर बहू तुम्हारे मुग्धकी बराभाँविक मुग्धके दूसरोमे जेने का प्रयाग कर रहा हो  
 ॥६९॥ पपने उज्ज्वी सोचियेने मुग्ध जिर्मव छोलेके बल मुग्धके साम साम चामोडर निरुपर बंधे हो  
 मुग्ध का यह है जैसे मुग्धके उँकोके मपप मुग्धके काज-भात कोडर परे हुई मुग्धके कोलीकी

यावत्प्रतापनिधिराक्रमते न मानुरह्वाय तावदरुणेन तमो निरस्तम् ।  
 आयोधनाग्रसरतां त्वयि वीर याते किं वा रिपूँस्तव गुरुः स्वयमुच्छिनत्ति ॥७१॥  
 शय्यां जहत्पुभयपक्षविनीतनिद्राः स्तम्बेरभा मुरारशृङ्गलकर्पिणस्ते ।  
 येषां विभान्ति तरुणास्तरामयोगाद्भिन्नाद्रिगैरिक्तवटा इव दन्तकोशाः ॥७२॥  
 दीर्घेष्वमी नियमिताः पटमसृष्टपेषु निद्रां विहाय वनञ्चाच्च वनायुदेस्याः ।  
 धक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति पुरोगतानि लेखानि सैन्धवशिलाशकलानि घाहाः ॥७३॥  
 भवति विरलभक्तिम्लानिपुष्पोपहारः स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः प्रदीपाः ।  
 श्रयमपि च गिरं नस्त्वस्त्रप्रबोधप्रशुक्तामनुषदति शुक्रस्ते मञ्जुवायपङ्कजस्थः ॥७४॥  
 इति विरचितवाग्भिर्वन्दिपुत्रः कुमारः सपदि विगतनिद्रस्तल्पसुज्जम्बाचक्रार ।  
 मदपदुनिनदद्भिर्बोधितो राजहंसैः सुरगज इव गाङ्गं सैकतं सुप्रतीकः ॥७५॥  
 अथ विधिमवसाय्य शास्त्रदृष्टं दिवसमुखोचितमश्विताविपक्षमा ।  
 कुशलविरचितानुकूलवेषः क्षितिपसमाजमगात्स्वयंवरस्थम् ॥७६॥  
 इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवशो महाकाव्ये अजस्वयवराभिगमनो नाम पञ्चमः सर्गः ॥

चमक सुन्दर लगती है ॥७०॥ सुयंके उदय होनेके पहले ही उनका चतुर सारथी भरण सत्तारसे  
 भेदे की भगा देता है । यह ठीक भी है, क्योंकि जब सेवक चतुर रहता है तब स्वामीको स्वयं कार्य  
 करनेका शक्य नहीं उठाना पड़ता । देखो, जब तुम्हारे जैसे योग्य पुत्र युद्धमें जानर लड़ते हैं तब  
 तुम्हारे पिताजीको क्या कभी शत्रुओंको स्वयं मारनेका शक्य उठाना पड़ता है, कभी नहीं ॥७१॥  
 तुम्हारी सेनाके हाथी, घोने और करवटें बदलकर खनखनाती हुई खिन्न सीचते हुए उठ खड़े हुए  
 हैं । बाल हर्मको किरणें पड़नेसे उनके दाँत ऐसे लगते हैं मानो वे अभी गेरु का पहाड़ छोड़े चले  
 भा रहे हों ॥७२॥ हे कमभके समान नेत्रवाले ! बड़े बड़े पट मङ्गोके बंधे हुए तुम्हारे बगानु (काहुल)  
 देशके घोड़े नींद छोड़कर संधे नमकके उब टुकड़ोको अपने मुँहकी भापसे मँवा कर रहे हैं जो पादनेके  
 लिये उनमें माने रखे हुए हैं ॥७३॥ रातकी सजावटके फूल मुरझाकर झड़ गए हैं । उजासा ही  
 जानेके कारण वीपकका प्रकाश भी अब अपनी सीसे बाहर नहीं जाता और विजरेमें ईंठा हुआ  
 मोठी बोरी बोलनेवाला तुम्हारा यह सुग्गा भी हमारी ही बातें दुहर रहा है ॥७४॥ जैसे  
 भाग्यलक्षणाकी रीतिमें जेटा हुआ सुप्रतीक नामका देवताओंका हाथी, राजहंसोका शब्द सुनकर जाग  
 उठता है वैसे ही चारण्योकी सुरक्षित वाणी सुनकर राजकुमार भजकी नींद खुल गई और वे उठ  
 बैठे ॥७५॥ सुन्दर पसकोवाले राजकुमार अपने उठकर शास्त्रसे बताई हुईं प्रातःकालकी मूल उचित  
 क्रियायें की और फिर उनके चतुर सेवकोंने उन्हें बहुत सुन्दर वस्त्र पहनाए । इस प्रकार सब धनकर  
 वे स्वयम्बरसे राज-समाजकी ओर चल दिए ॥७६॥

महानदि कामिदासके रचे हुए रघुवश महाकाव्यमें अजवरा स्वयम्बर यमन नामका  
 पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

## ॥ षष्ठः सर्गः ॥

॥ तत्र मञ्चेषु मनोज्ञवेपान्तिहासनस्थानुषचारवत्सु ।  
 वैमानिकानां मरुतापमश्यदाकृष्टलीलाभरलोकपालान् ॥ १ ॥  
 रतेर्गृहीतानुनयेन कामं प्रत्यर्पितस्त्राङ्गमिवेश्वरेण ।  
 काकुत्स्थमालोकयतां नृपाणां मनो बभूवेन्दुमतीनिराशम् ॥ २ ॥  
 वैदर्भनिर्दिष्टमसौ कुमारः बलृप्तेन तोषानपयेन मश्वम् ।  
 शिलाविर्भगैर्भृगराजाशावस्तुङ्गं नगोत्संगमिवारुरोह ॥ ३ ॥  
 परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नमासेदिवात्रत्नवदासनं सः ।  
 भूयिष्ठमासीदुपमेयकान्तिर्मयूष्मथापिण्यां गुहेन ॥४॥  
 तस्यु श्रिया राजपरम्परासु प्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः ।  
 सहस्रधात्मा व्यरुचद्विभक्तः पयोमुचां पंक्तिषु विद्युतेव ॥५॥  
 तेषां महाहासनसंस्थितानामुदारनेपथ्यभृतां स मध्ये ।  
 रराज धाम्ना रघुघ्नजुरेव कल्पद्रुमाणामिव पारिजातः ॥६॥  
 नेत्रग्रजाः पौरजनस्य तस्मिन्निहाय सर्वान्नुपतीन्निपेतुः ।  
 मदोत्कटे रेचितपुष्पघृत्वा गन्धद्विपे वन्य इव द्विरेफाः ॥ ७ ॥

## छठा सर्ग

[स्वयम्बरकी सभामे जाकर अजने देखा कि] सजे हुए बंकोपर बंठे हुए राजा लोग ऐसे सुन्दर लग रहे हैं जैसे विमानोंपर देवता बंठे हुए हों ॥१॥ जब दूसरे राजाओंने धनको देखा तब उन्होंने इन्दु-मतीको पानेकी सब आशाएँ छोड़दी क्योंकि अब ऐसे लग रहे थे भागो सासात् कामदेव हो, जिसे दिग्भ्रमीने रतिकी प्राणनापर फिरसे जीवित कर दिया हो ॥२॥ जैसे सिद्धवा वन्या एक-एक शिलापर पैर रखता हुआ महाद्वपर चढ जाता है नैसे ही राजकुमार अब भी सुन्दर छोड़ीपर चढकर भोजके पताए हुए मगर जाकर बैठ गए ॥३॥ जिस छिहासनपर वे जाकर बंठे, यह सोनेका बना हुआ था, उनमे रान जड़े थे और उनपर रंज-द्विरगे वस्त्र विधे हुये थे । उनपर बंठे हुए वे ऐसे सुन्दर लग रहे थे मानो स्वयं कानिषेय ही अपने मोरपर चढे बंठे हो ॥४॥ वहाँ बंठे हुए राजाओंके ठाट-बाट और उनकी लटक-भङ्क देखाकर धर्षिते धीपिया जाती थीं और देखा जान पड़ता था मानो लक्ष्मीने अपनी सोमा उन लोगोंमें उमी प्रचार बोट दी हो जैसे विजली अपनी चमक वादचोमे बोट देती है ॥५॥ जैसे मन्दन बलके वृषोमे पारिजात ही गण्डे धार्मिक सुन्दर हैं वैसे ही बहुमूय छिहासनोंपर बंठे हुए और बंठे ठाट-बाटसे सजे हुए राजाओंके बीचमे अनेके धक् हो मिल रहे थे ॥६॥ जैसे पूजवाले वृषोकी छोड़कर मद वहानेवाले जंगली हाथियोंपर घोरि भुक्त-भुक्त पड़ते हैं, बंठे ही नारदासियोंकी

अथ स्तुते बन्दिभिरन्वयज्ञैः सोमार्कवंश्ये नरदेवलोके ।  
संचारिते चागुरुमारयोनी धूये समुत्सर्पति वैजयन्तीः ॥ ८ ॥  
पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणां कलापिनामुद्धतनृत्यहेती ।  
प्रध्मातशङ्गे परिवो दिगन्ताँस्तूर्पस्वने,मूर्च्छति मद्गलार्थे ॥ ९ ॥  
मनुष्यवालं चतुरस्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि ।  
विवेश मञ्चान्तरराजमार्गं पतिवरा क्लृप्तविवाहवेया ॥१०॥  
तस्मिन्निधानातिशये विधातुः कन्यामये नेत्रशतैकलक्ष्ये ।  
निपेतुरन्तःकरशैर्नरेन्द्रा देहैः स्थिताः केवलमासनेषु ॥११॥  
तां प्रत्यभिध्यक्तमनोरथानां महीपतीनां प्रणयाग्रदूत्यः ।  
प्रवालशोभा इव पादपानां शृङ्गारचेष्टा विविधा बभूवुः ॥१२॥  
कश्चित्कराम्यामुपगूढनालमालोलपत्राभिहतद्विरेफम् ।  
रजोभिरन्तःपरिवेषयन्धि लीलारविन्दं भ्रमयाँचकार ॥१३॥  
विलस्तर्मसादपरो विलासी रत्नानुविद्वाद्गदकोटिलम्नम् ।  
प्रालम्बमुत्कृष्य यथावकाशं निनाय साचीकृतचारुक्त्र ॥१४॥

गाँवें सब राजामोसे हुटपर भजपर ही जा टिकी थी ॥७॥ इतनेमें सब राजामोका बस जाननेपाले भाटोंने सूर्य और चन्द्रके पक्षमें उत्पन्न होनेवाले उन सब राजामोके प्रसन्न प्रारम्भ करली। उधर भगवके सारसे बनाई हुई धूप बलियोका पुँमा चारो ओर उड़ता हुआ पहचती हुई कडियोतक चढ गया ॥८॥ जिग खल्लो और मगल बाजोके बजनेपर नवरत्ने भाग पाएली भवराइपर्योँ रहनेवाले मोर उरो भादल वा गरजना सगककर मान उठने हैं उन बाजोकी ध्वनिले दसो दिशाएँ गूँज उठी ॥९॥ इसी बीच धर धुननेके लिये विवाहके समयका वेदा धारण किए हुए इन्दुमती, पालकीपर चढपर मधोके बीचपाले राजमार्गसे भाई । यह पालकी मनुष्य दौ रहे थे और उखने जाय ओर दासियाँ पैदल चलती या रही थी ॥१०॥ वह कन्या क्या थी सद्गावी रपनावन बडा ही सुन्दर बौघल था जिसे सँबडो भाँवें एक्कट होकर देल रही थी । उसकी सुन्दरता देखते ही सब राजामोके मन तो उखने पास थले गए, वैवल उनके शरीर भर मधोपर रह गए ॥११॥ राजामो ने अपना प्रेम जतानेके लिये जो वृत्तोंने पत्तोंने समान मनेन प्रकारने भौह मादि पनावर शृङ्गार-वेष्टाएँ कीं वे मानो उनके प्रेमको इन्दुमतीक पहुँचानेवाली वृत्तियाँ थी ॥१२॥ कोई राजा हाथमे सुन्दर बमल लेकर उखनी डल्ल पकडकर घुमाने लगा । उसके घुमनेसे भीरे तो इधर-उधर भाग गए पर उत्तम जो पदम मरु टूपा था, उखने फैलनेमे कमलने भीतर चारो ओर एक कुच्छली सी बन गई । [उसे घुमानर यह वह प्रकट करता था कि विवाह कर लेनेपर हृष भी तुम्हारे हाथमे इसी प्रकार गान सक्ने हैं] ॥१३॥ दूसरा एक विलासी राजा, घोडा मुँह घुगाकर कन्धसे सरकी हुई और भुजकन्धमे उलथी हुई रत्नोकी माला उठाकर फिर उखे गनेमे ढीकसे पहनने लगा । [इससे उखने खनेत किया कि मैं सदा तुम्ह पलेगा

आकुञ्चिताग्राह्मुलिना ततोऽन्यः किञ्चित्समावर्जितनेत्रशोभः ।  
 तिर्यग्भिसंसर्पिनस्त्रप्रभेस्य पादेन हैमं विलिलेख षोडशम् ॥१५॥  
 निवेश्य वामं भुजमासनार्धे तत्सनिवेशादधिकोन्नतांसः ।  
 कश्चिद्विवृत्तत्रिकभिक्षहारः सुहृत्समाभाषतत्परोऽभूत् ॥१६॥  
 विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रमापाण्डुरं केतकवर्हमन्यः ।  
 प्रियानितम्बोचितमनिवेशैर्विपाटयामास युवा नरराश्रयैः ॥१७॥  
 ह्यशेषयाताम्रतलेन कश्चित्करेण रेखाध्वजलाञ्छनेन ।  
 रत्नाङ्गुलीयप्रभयास्तुबिद्धास्तुदीरयामास सलीलमहान् ॥१८॥  
 कश्चिद्यथाभागमवस्थितेऽपि स्वसंनिवेशाद्द्वयविलङ्घिनीव ।  
 वजांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रमेकं व्यापतयामास करं किरिटे ॥१९॥  
 ततो नृपाणां श्रुतवृत्तवंशा पुत्रत्रयमल्पा प्रतिहाररक्षी ।  
 प्राक्संनिकर्षं मगधेश्वरस्य नीत्वा कुमारीमवदत्सुनन्दा ॥२०॥  
 असौ शरण्यः शरण्योन्मुरगानामगाधसत्त्वो मगधप्रतिष्ठ ।  
 राजा प्रजारञ्जनलब्धवर्ष्यः परंतपो नाम यथार्थनामा ॥२१॥

हार बनाए रखलूंगा ॥१४॥ तीसरा राजा भी है मटककर, पैरकी जंगलियां गौडकर, पैरके नखों की पमक तिरछी झालटे हुए पैरकी जंगलियोंसे सोमेके पांव पीकेपर कुछ लिख रहा था । [ इस सकेतसे वह इन्दुमतीको अपने पास बुला रहा था ] ॥१५॥ कोई राजा सिंहासनके एक ओर बाईं भुजा टेककर बैठा था और अपने पांव बँडे हुए भिजसे इस प्रकार दाख करने लगा कि उसका दायां कन्धा सठ गया और गलेकी माला भी पीठपर लटक गई । [ इससे उसने यह सकेत किया कि मैं सदा तुम्हें अपनी बाईं ओर बिठाऊंगा ] ॥१६॥ एक दूसरा युवा राजा था, जिसके नख मालों प्रियाके निताम्बपर चिह्न बनानेके लिये ही देने थे । यह उन नखोंसे केतकीके उन घीसे पत्तोंको मोच रहा था जो किसी विलासी स्त्रीके शृङ्गारके लिये कामके आभूषणके रूपमें कटे हुए थे । [ इस सकेतसे उसने प्रकट दिया कि हम इसी प्रकार तुम्हारे नितम्बोपर नख-बिह्न लगावेंगे ] ॥१७॥ एक दूसरे राजा थे, गिनकी हथेली कमलके समान साफ थी और जिसपर ध्वानाकी रेखाएँ बनी हुई थी । वे अपने हावने पासे उल्लास रहे थे और जगो भंगुलीकी कपक पासोपर पड रही थी । [ वे सकेत कर रहे थे कि तुम्हारे साथ विवाह होनेपर हम दिन-रात तुम्हारे साथ बासा सेवास करेंगे ] ॥१८॥ एक दूसरा राजा बार-बार अपने हाथोंसे उग्र मुटुको सीसा कर रहा था जो पहलेसे ही सीसा था । ऐसा करनेसे उसके हाथोंकी जंगलियोंके बीचका भाग रगलोंकी निरखोसे धमक उठता था । [ इससे यह सकेत करता था कि मैं तुम्हें सदा तिर-प्रांखोपर बिठाए रखूँगा ॥१९॥ इसी बीच पुरुषोंके समान डीठ और राजाओंके यशोंकी कथा जाननेवाली रविनासनी प्रतिहारो सुनन्दा, सबसे पहले इन्दुमतीको मगध-नरेशके प्रागे ले गई और बोली ॥२०॥ वे राजा बडे पराक्रमी हैं और अपनी शरणमें आनेवालोंको रक्षा करते हैं । अपनी प्रजाको मुख देकर इन्दुमन्दा नाम कमाया है । इनका नाम

कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।  
 नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ॥२२॥  
 क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणामजस्रमाहृतसहस्रनेत्रः ।  
 शच्याश्विरं पाण्डुकपोललम्बान्मन्दारशून्यानलकथकार ॥२३॥  
 अनेन चेदिच्छसि गृह्यमाणं पाणिं वरेण्येन कुरु प्रवेशे ।  
 प्रासादवाचायनसंधितानां नेत्रोत्सवं पुष्पपुराङ्गनानाम् ॥२४॥  
 एवं तयोक्ते तमवेक्ष्य किञ्चिद्विस्त्रंसिद्वाङ्गमधूकमाला ।  
 ऋजुप्रणामक्रिययैव तन्वी प्रत्यादिदेशैनमभापमोखा ॥२५॥  
 तां तैव क्षेत्रग्रहणे नियुक्ता राजान्तरं राक्सुतां निनाय ।  
 समीरखोत्तमेव तरङ्गलेखा पद्मान्तरं मानसराजहंसिम् ॥२६॥  
 जगाद् चैनामयमङ्गनाद्यो सुराङ्गनाप्रार्थितयौवनश्रीः ।  
 विनीतनामः किल ध्वजकारैरैन्द्र पदं भूमियतोऽपि भुङ्क्ते ॥२७॥  
 अनेन पर्यासयताशुबिन्दुमुक्ताफलस्थूलतमान्स्तमेपु ।  
 प्रत्यर्पिताः शत्रुविलासिनीनामुन्मुच्य सन्नेत्रे विनैव द्वाराः ॥२८॥

परतप है भीर ये सबमुच पर-तप [ दानुषोको ताप देनेवाले ] है ॥२१॥ जैसे तारो, प्रहो भीर नक्षत्रोंसे भरी रहनेपर भी रात तभी चांदनी रात पहलाती है जब चन्द्रमा सित्ता हुआ हो, जैसे ही यद्यपि सद्यारत्ने सहस्रो राजा हैं किन्तु पृथ्वी इन्हीने रहनेसे राजापाती पहलाती है ॥२२॥ इन्होंने एकपर एक यज्ञ करके बार-बार इन्द्रको अपने वहाँ बुलाया जिसका फल यह हुआ कि इन्द्राणीके सिरकी मोटी मत्पत्रुसके कुम्बोका शृङ्गार न होनेसे पीले गालोपर झूलने लगी, [ क्योंकि पतिके पास न रहनेसे उम्होने शृङ्गार करना ही छोड़ दिया था ] ॥२३॥ यदि इनके साथ तुम मित्राह करना चाहती हो तो धबक्ष्य करो । क्योंकि जब तुम बिवाह करके इनके साथ इनकी राजधानी [ पाटलिपुत्रमें ] पहुँचोगी तब राजाकी स्त्रियाँ भरोखोभे बँठकर तुम्हें देखेंगी भीर तुम्हारी सुन्दरता देखकर उनकी भाँषोको सुख मिलेगा ॥२४॥ सुमन्दाकी बात सुनकर इन्द्रमतीने तनिक सी भाँस उठाकर राजाको देखा । उसके हाथकी दूबमें शुभी हुई बहूएकी माला कुछ खरब गई भीर बिना कुछ बड़े-सुने सोधा-सा प्रलाम करने उसे अस्वीकार करती हुई वह भागे धड गई ॥२५॥ जैसे वायुसे जड़ी हुई सहस्रे सहारे मानसरोवरकी राजहसिनी एक रूपसे दूसरे कमलतक पहुँच जाती है, उसी प्रकार सुमन्दा भी राजकुमारी इन्द्रगतीको दूबसे राजाके भागे पहुँचाकर खड़ी हो गई ॥२६॥ भीर बोली-ये भग देखके राजा हैं । इनके यौवनको देवताओंकी स्त्रियाँ भी चाह्य करती हैं । हाथियोंकी बिद्याके बड़े-बड़े गुणी लोग इनके हाथियोंको सिखाते हैं । ये पृथ्वीपर रहते हुए भी इन्द्र ही समके जाते हैं ॥२७॥ [ इन्होंने जिन राजाओंको युद्धमें मार डाला था ] उनकी स्त्रियोंमें अपने पतिकोके खोबमें मोतियोंके हार ली उतार फेंके थे पर उनके रोनेसे उनमें स्तनोपर गिरती हुई भाँसुओंकी बूँदें बड़े-बड़े मोतियोंके समान लगती थी उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो

निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च ।  
 कान्त्या गिरा स्रजुतया च योग्या त्वमेव कल्याणितयोस्तृतीया ॥२६॥  
 अथाङ्गराजादवतार्य चञ्चुर्याहीति जन्यामवदत्कुमारी ।  
 नासौ न काम्यो न च वेद सम्यग्द्रष्टुं न सा भिन्नरुचिर्हि लोकः ॥३०॥  
 ततः परं दुष्प्रसहं द्विपद्भिर्नृषं नियुक्ता प्रतिहारभूमौ ।  
 निदर्शयामास विशेषदृश्यमिन्दुं नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै ॥३१॥  
 अयन्तिनाथोऽयमुदग्रबाहुर्विशालवह्नास्तनुवृत्तमध्यः ।  
 आरोप्य चक्रभ्रममुष्णतेजास्त्वप्रेव यत्नोल्लिखितो विभाति ॥३२॥  
 अस्य प्रयागेषु समग्रशक्तेरग्रेसरैर्बाजिभिरस्थितानि ।  
 कुर्वन्ति सामन्तशिखामखीनां प्रमाप्ररोहास्तमयं रजांसि ॥३३॥  
 अतौ महाकालनिकेतनस्य वसभदूरे किल चन्द्रमौलेः ।  
 तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिज्योत्स्नायतो निर्विशतिप्रदोपान् ॥३४॥  
 अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु कचिन्मनसो रुचिस्ते ।  
 सिप्रातरङ्गानिलकम्पितासु विहर्तुं मुद्यानपरम्परासु ॥३५॥

इन्होंने शत्रुघ्नकी स्त्रियोके गलेसे मोतियोंके हार उतार कर उन्हें बिना डोरवाले [ भासुमोके ]  
 हार पहना दिये हो ॥२८॥ यो हो तुम जानती हो कि सखी और सरस्वती दोनोंने कमी नहीं  
 धनती, पर इनके पास दोनों ही मिलकर रहती हैं । इसलिये हे कल्याणी ! तुम सुन्दर भी हो और  
 सुन्दारी गहुर बाखी भी है, तुम उन दोनोंके साथ खीसरी बनकर पहुँच सकती हो ॥२९॥  
 इन्दुमतीने जब धँग देखने राजापरसे आँखें हटाई और मुनन्दाने कहा थागे चलो—यह बात  
 नहीं थी कि वह राजा सुन्दर न हो और न यही बात थी कि इन्दुमतीने उसे ठीकसे देखा न हो ।  
 पर उसकी रूपनी अपनी लज ही थी है [किसीको कोई अच्छा लगता है किसीको कोई] ॥३०॥ यहाँसे  
 प्रागे बढकर प्रतिहारी मुनन्दाने एक दूतके राजाको दिखाया जिससे राव धम् कोपते थे और जिसका  
 रूप और यौवन पूतोंके उजले हुए चन्द्रमाके समान सुन्दर था । उसे दिखाकर मुनन्दा बोली ॥३१॥  
 देखो, ये जो लम्बी मुजा, चौड़ी छाती और पतली गोल कमरवाले राजा सूर्यके समान चमक रहे हैं,  
 ये धनन्तीदेवने राजा हैं और ऐसा जान पड़ता है कि विश्वकर्मणि अपने घात बढ़ानेके अक्षर इन्हें  
 मरे यलसे खराद दिया है ॥३२॥ जब ये शक्तिशाली राजा शत्रुघ्नपर चढ़ाई करते हैं तब सेनाके  
 धाने बननेवाले घोड़ोंको टापसे उठो हुई धूसले शत्रुघ्नके मुकुटोको चमक धुँपली पड़ जाती है  
 ॥३३॥ इनका राज-भवन महाकाल मन्दिरके बँटे हुए और तिरपर चन्द्रमा धारण करेवाले शिवजीके  
 पास हो है । इसलिये धँधरे पाससे भी शिवजीके तिरपर बने हुए चन्द्रमानी चंदनीसे ये अपनी  
 स्त्रियोके साथ सदा उजले पासका ही भानन्द लेते हैं । नेलेके धम्भेके समान [चिकनी और डलवा]  
 ज़ाँपयानी इन्दुमती ! क्या तुम धनन्तीके उन जघानोंके विहार करना चाहती हो जिनके दिन-

तस्मिन्नभिद्योतितबन्धुपद्मे प्रतापसशोपितशत्रुपङ्के ।  
 बन्ध सा नोत्तमसौकुमार्या कुमुद्वती मानुमतीव भावम् ॥३६॥  
 तामग्रतस्तामरसान्तराभामनूपराजस्य मुखैरनुनाम् ।  
 विधाय सृष्टिं ललितां विधातुर्जगाद भूयः सुदतीं सुनन्दा ॥३७॥  
 सद्ग्रामनिर्विष्टसहस्रनाहुरष्टादशद्वीपनिखातपूपः ।  
 अनन्यसाधारणराजशब्दो बभूव योगी किल कार्त्तवीर्यः ॥३८॥  
 अकार्यचिन्तासमकालमेव प्रादुर्भवंश्चापवरः पुरस्तात् ।  
 अन्त शरीरेष्वपि यः प्रजानां प्रत्यादिदेशाविनयं विनेता ॥३९॥  
 ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेन यस्य विनिःश्वसद्वक्त्रपरम्परेण ।  
 फारागृहे निर्जितवासवेन लङ्कैरवरेणोपितमाप्रसादात् ॥४०॥  
 तस्यान्वये भूपतिरेष जातः प्रतीप इत्यागमद्बृद्धसेवी ।  
 येन श्रियः संश्रयदोपरूढं स्वभावलोलेत्यपशः प्रमृष्टम् ॥४१॥  
 श्रायोधने कृष्णगतिं सहायमवाप्य यः क्षत्रियकालरात्रिम् ।  
 धारां शितां रामपरश्वधस्य संभावयत्युत्पलप्रसाराम् ॥४२॥

रात सिन्ना मदीका ठडा कायु हरहराना रह्या है ३५॥ सुनन्दाकी बात सुनकर भी सुकुमारी इन्दुमती-  
 की यह मित्रोकी प्रसन्न करनेवाला और शत्रुओकी मारनेवाला प्रतापी राजा उसी प्रकार प्रच्छा नहीं  
 सगा जैसे कुमुदिनीको वह सूर्य नहीं जाता जो कमलको खिलाता और कीचड़को सुखा देता  
 है ॥३६॥ कामलके समान सुवरी, बड़ी मुखबती, विधाताकी सुन्दर रचना और सुन्दर बाँतोवाली  
 इन्दुमतीको बहूँसे अनूप राजाके आगे ले जाकर सुनन्दा बोली—॥३७॥ 'बहुत दिनोंकी बात है,  
 एक कार्त्तवीर्य नामके बड़े योगी हो गये है । उनमें बड़ी भारी बात यह थी कि जब वे लडने जाते  
 थे तब उनके सहस्री हाथ निकल जाते थे । उन्होने अठारह श्रोपोसे जाकर पहले अपने पाठ दिए  
 थे । वे ऐसे प्रतापी थे कि उनके सामने कोई अपनेको राजा ही नहीं कह सकता था ॥३८॥ उनके  
 समयमें यदि कोई पाप करनेका विचार भी करता था तो वे धनुष बसल लेकर उसके शिरपर जा  
 चढ़ते थे । इस ढंगसे उस दम्भारीने सब लोगोंके मनसे पाप निकल वाला था ॥३९॥ जिस रावणने  
 इन्द्रकी भी जीत लिया था उसको भी उन्होने अपने कारागारमें बन्दी रल छोटा था । उन्होने  
 रावणकी भुजाएँ दस प्रकार धनुषकी छोरसे कसकर बाँध दी थी कि वह बेचारा दिनरात उहाँसे  
 भरता रहता था और जबतक कार्त्तवीर्य उसपर प्रसन्न नहीं हुए जबतक उन्होने उसे छोटा नहीं ॥४०॥  
 उन्हीं प्रसिद्ध राजाके दसमें थे उत्पन्न हुए हैं, वे वेदो और बड़े-बूढ़ो [अथवा वेदके पण्डितो] की बड़ी  
 सेवा करते हैं । लक्ष्मीको जो चंचलतावा दोष समझा जाता था उनका वह दोष भी सबसे मुक्त गया  
 जबसे वह इनके हाथ रहने लगे [क्योंकि लक्ष्मी तो उसी पुरुषको छोड़कर चंचल होकर जाती  
 है जो व्यवसी होने है । इसमें कोई व्यसन नहीं, इसलिये इन्हें कभी छोड़कर जायें] ॥४१॥ वे राजा  
 इतने बलवान् है कि अग्निनी सहायता था देनेसे, वे पशुधमकीके उद्य करनेकी तेज धाराकी भी



अस्याङ्गलक्ष्मीर्भव दीर्घवाहोर्माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम् ।  
 प्रासादजालैर्जलवेशिरम्यां रेवां यदि प्रेक्षितुमस्ति कामः ॥४३॥  
 तस्या प्रकामं प्रियदर्शनोऽपि न स चितीशो रचये बभूव ।  
 शरत्प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधः शशीव पर्याप्तकलो नलिन्याः ॥४४॥  
 सा शूरसेनाविपतिं सुपेणमुद्दिश्य लोकान्तरगीतकीर्तिम् ।  
 आचारशुद्धोभयवंशदीपं शुद्धान्तरच्या जगदे कुमारी ॥४५॥  
 नीपान्वयः पार्थिव एष यज्वा गुणैर्यमाश्रित्य परस्परेण ।  
 सिद्धाश्रमं शान्तमिवैत्य सत्त्वैर्नैसर्गिकोऽप्युत्सृजे विरोधः ॥४६॥  
 यस्यात्मगेहे नयनाभिरामा कान्तिर्हिमांशोरिव सनिषिष्टा ।  
 हर्म्याग्रिसंरुद्धतृणाङ्कुरेषु तेजोऽविपद्यं रिपुमन्दिरेषु ॥४७॥  
 यस्यापरोधस्त्वानन्दनानां प्रचालनाद्धारिविहारकाले ।  
 कलिन्दकन्या मधुरां गतापि गङ्गोर्मिससक्तजलेव भाति ॥४८॥  
 व्रस्तेन तात्पर्यात्किल कालिपेन माणं विसृष्टं यमुनौकृमा यः ।  
 वहःस्थलच्यापिरुचं दधानः सकौस्तुभं ह्येपयतीव कृष्णम् ॥४९॥

कमलकी पक्ष्मीके समान कोमल सगञ्जते हैं जिसने युद्धमें क्षत्रियोका महामोहार कर वाला था ॥४३॥  
 तुम यदि राजभयनके भरोसासे उस सुन्दर सहरोवाकी नर्मदा का मनोहर दृश्य देखना चाहो जो  
 माहिष्मती नगरीके चारों ओर तगडी-बैली घूम गई है तो इस महाबाहु राजासे विवाह करलो ॥४३॥  
 जैसे खुले प्राकाशवाली शरदऋतुका मनोहर चन्द्रमा भी कमलिनीबगे नहीं जाता जैसे ही वह सुन्दर  
 राजा भी इन्द्रुगतोके मगने नहीं जैसे ॥४४॥ तब रनिवासकी सेविका सुनन्दा, राजकुमारीको मधुराके  
 उस राजा सुपेणके प्रागे ले गई जिसकी कीर्ति स्वर्गके देवता भी गाते थे और जिसने अपने  
 युद्ध करिये माता और पिताके दोनों मुखोको उजागर कर दिया था । उन्हें विजाकर सुनन्दा  
 बौली— ॥४५॥ 'ये राजा बड़ी विधिसे यज्ञ करते हैं और प्रसन्ननीय ब्रह्ममें उत्पन्न हुए हैं । जैसे  
 ऋषियेके धान्त आश्रममें सब जीव बँर छोडकर एक साथ रहते हैं जैसे ही विद्वत्ता और मौन रहना  
 ये परस्पर विरोधी गुण भी इनमें एक साथ रहते हैं ॥४६॥ चन्द्रमाकी चाँदीके समान प्राँडोको  
 गुप्त वेनेवाला इनका प्रवास तो चरमे रहता है और सूर्य के समान प्रजण्ड छेज क्षत्रियोके उन राज-  
 भवनीपर दिखाई देता है जिसके उबड जानेपर उनमें घास जम घाई है ॥४७॥ जब ये जल-  
 विहार करते हैं और इनकी रानियोके स्तनोपर लगा हुआ चन्द्रन जलमें मिसकर यमुनामें बहने  
 लगता है उस समय मधुराके भी यमुनानीनर रथ ऐसा प्रतीत होता है मानो बहीपर उनका  
 गयाजीकी सहरोसे स्रग्म हो गया हो ॥४८॥ जब ये अपने गलेमें वह मणि पहन लेते हैं, जो  
 उन्हें उस कानिय नागने दी थी जो गरुडके डरते यमुनाके जलमें रहने लगा था, तब इनकी  
 शोभाके प्रागे कौस्तुभ मणि पहले हुए श्रीकृष्णजीकी शोभा भी गीनी पड जाती है ॥४९॥

संभान्य भर्तारममुं युवानं मृदुप्रवालौचरपुष्पशय्ये ।  
 वृन्दावने चैत्ररथादन्वने निर्विस्यतां सुन्दरि यौवनश्रीः ॥५०॥  
 अध्यास्य चाम्भः पृपतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि शिलातलानि ।  
 कलापिनां प्रावृषि परय नृत्यं कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु ॥५१॥  
 नृप तमावर्चमनोज्ञनाभिः सा व्यत्यगादन्यवधूर्मवित्री ।  
 महीधरं मार्गवशाद्दुपेतं स्रोतोपहा सागरगामिनीव ॥५२॥  
 अथाङ्गदारिल्लष्टभुजं भुलिष्या हेमाङ्गदं नाम कलिङ्गनाथम् ।  
 आसेदुषीं सादितशत्रुपचं बालामबालेन्दुसुरीं वभापे ॥५३॥  
 असौ महेन्द्राद्रिसमानसारः पतिर्महेन्द्रस्य महोदधेश्च ।  
 यस्य क्षरत्सैन्यगजच्छलेन यात्रासु यातीव पुरो महेन्द्रः ॥५४॥  
 ज्याघातरेखे सुभ्रुवो शुभ्राम्यां विभर्ति यश्चापभृतां पुरोगः ।  
 रिपुशियां साञ्जनवाप्यसेके वन्दीकृतानामिव पदती द्वे ॥५५॥  
 यमात्मनः सपानि संनिकृष्टो मन्द्रध्वनिस्पाजितयामतूर्यः ।  
 प्रासाटवात्तायनदृश्यवीचि प्रबोधयत्यर्वा एव सुप्तम् ॥५६॥

हे सुन्दरी! इनके साथ पिताहृदयक आप पुत्रके चैत्ररथ नामके उद्यानसे भी बरबर सुन्दर वृन्दावनमे  
 मोमल पत्तों और फूलोंकी सज्जाशोपर विहार करत ॥५०॥ और तर्पण दिनोंमे गोवर्धन पबलकी  
 सुहायनी पुष्पाशोमे पानीकी मुहारोते भीगी हुई दिस जाती थी ॥ ५१॥ ५२॥ वही दादियोंपर बैठकर  
 मोरोंका नाच देखता ॥५१॥ पानीकी बरबरक समान गहरो नाभिवाली और किसी प्रणयसे पिताहृ  
 दयने भी इच्छावाली इन्दुमती, राजा सुदण्डको छोड़कर उसी प्रकार बाल बट गई जैसा समुद्रकी और  
 बडती हुई नदी बीचमे पड़ते हुए पडाडको धोड जाती ॥ ५२॥ वहाँमे सुमन्दा बायीं पूरुगे  
 पद्मनाक समान मुखवाली इन्दुमतीको उस कल्पि देशके राजा हेमङ्गदके आग ल गई थी प्रपनी  
 माँहमे भुजबन्ध पहने हुए वे और जि होत दगो समभावो नष्ट कर डालत ॥ ५३॥ उन्हे विद्याती हुई  
 सुमन्दा बोली ॥५३॥ इनका देखाती है । ये महेन्द्र नगर स्थान शक्तिवात है और महेन्द्र  
 पर्वत और समुद्र दोनोंपर इनका अधिपार है । जब ये शत्रुके निवे जाने हैं उस समय इनके प्राण-  
 प्राये चलने वाले मायाव हाथी एते तयत हे माना हाथियाका रूप बनकर स्वयं महेन्द्र पर्वत पर  
 जा रहा हो ॥५४॥ इनको देखाती हो न, नसी सुन्दर इनकी मुजाएँ इ योंरे धनुषधारियोंमे लो  
 इनसे बरबर गई ही नहीं इनकी मुजागारर जो दो नाती नाती रेखाएँ धनुषकी टारी सीचनेसे  
 बन गई हैं, वे ऐसी जान पडती हैं मानो वे धनुषोंके उस राज्य लक्ष्मीके यानेकी दो पाददियां हैं जो  
 अन्होने धनुषोंसे लीन लो हो और जिसके गजारे वेगसे मदे आँसुओंके राखण ये पाद पड गए हो  
 ॥५५॥ ठीक इनके रात्रभवनमे नीचे ही समुद्र टिकोरें नेता है । उसकी लहरें रात्रभवनमे फरोपति  
 स्पष्ट दिखाई देती है । जब ये प्रपने रात्रभवनमे सेते हैं तब यह समुद्र ही नगाडेकी ध्वनिके भी

अस्याङ्गलक्ष्मीर्मव दीर्घवाहोर्माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम् ।  
 प्रासादजालैर्जलवेशिरम्यां रेवां यदि प्रेक्षितुमस्ति कामः ॥४३॥  
 तस्या प्रकामं प्रियदर्शनोऽपि न स चितीशो रचये वभूव ।  
 शरत्प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधः शशीव पर्याप्तकलो नलिन्याः ॥४४॥  
 सा शूरसेनाधिपतिं सुपेक्षुशुदिरय लोकान्तरगीतकीर्तिम् ।  
 आचारशुद्धोभयवंशदीर्घं शुद्धान्तरच्या जगदे कुमारी ॥४५॥  
 नीपान्वयः पार्थिव एष यज्वा गुणैर्यमाश्रित्य परस्परेश ।  
 सिद्धाश्रमं शान्तमिवैत्थ सत्त्वैर्नैसर्गिकोऽप्युत्ससृजे विरोधः ॥४६॥  
 यस्यात्मगेहे नयनाभिरामा कान्तिर्हिमांशोरिव सनिविष्टा ।  
 हर्म्याग्रसरूढवृक्षाङ्कुरेषु तेजोऽविषद्यं रिपुमन्दिरेषु ॥४७॥  
 यस्यावरोबस्तनचन्दनानां प्रवालनाद्वारिविहारकाले ।  
 कलिन्दकन्या मथुरां गतापि गङ्गोर्मिससक्तजलेव भाति ॥४८॥  
 व्रस्तेन तात्पर्यात्किल क्षालियेन मर्षि विसृष्टं यमुनौकमर यः ।  
 वज्रःस्थलव्यापिरुचं दधानः सकौस्तुभं ह्येपयतीव कृष्णम् ॥४९॥

कमलकी पक्षडीके समान गोमन समभते हैं निचने युद्धमे सत्रियोका महारोहार कर जाता था ॥४२॥  
 तुम यदि राजभवनके भरोकोसे उस सुन्दर लहरोवाली नर्मदा का मनोहर दृश्य देखना चाहो जो  
 माहिष्मती नगरीके चारो ओर लगी जैसी धूम गई है तो इन महाबाहु राजासे विदाह करलो ॥४३॥  
 जैसे छुले प्राकानवाभी छरदरुतुका मनोहर चन्द्रमा भी कालिनीको नहीं भाता वैसे ही यह सुन्दर  
 राजा भी इन्दुमतीके मनमें नहीं जंचा ॥४४॥ तब रनिवासका सेनिका सुनन्दा, राजकुमारीको मथुराके  
 उष राजा सुपेक्षके धामे ले गई जिसकी कीर्ति स्वर्गक देवता भी करते थे और जिसने अपने  
 छुड चरित्रसे नाता और पिताके दोनो कुलोको उनापर कर दिया था । उन्हे दिक्कार सुनन्दा  
 मौली—॥४५॥ ये राजा बडी विधिले यज्ञ करते हैं और प्रवासनीय यज्ञमे उत्पन्न हुए हैं । जैसे  
 ऋषिकेके दान्त प्राश्रमाम सब जीव बंद छोडकर एक साथ रहते हैं वैसे ही विद्वत्ता और मोन रहना  
 ये परस्पर विरोधी गुण भी इनमे एक साथ रहते हैं ॥४६॥ चन्द्रगानी चान्दीके तमान प्राक्षिको  
 गुल देनेवाला इनका प्रभाव तो परमे रहता है और सूर्य के समान प्रबल तेज शत्रुकाके मन राज-  
 भवनोपर दिवाई देता है जिनके उजड जानेपर उनमे मास जम आई है ॥४७॥ जब ये कल-  
 विहार करते हैं और इनके सत्रियोके स्तनोपर लगा हुआ चन्दन जलम मिलकर यमुनामे बहने  
 लगता है उस समय मथुरामे भी यमुनाजीवा रग ऐसा प्रतीत होता है मानो वहीपर उनका  
 गगाजीको लहरोके समान हो गया हो ॥४८॥ जब ये अपने भलेमे बह मखि पहल लेते हैं जो  
 उन्हें उस कालिम मागने दो भी जो गरुडके बरसे यमुनाके जलमे रहने लगा था, तब इनकी  
 घोभाने आगे वास्तुम मखि पहने हुए शीरृष्णजीकी शोभा भी कीकी यह जाती है ॥४९॥

ताम्बूलवल्लीपरिखट्टपूगास्वेलालतालिक्रितचन्दनासु ।  
 तमालपत्रास्तरस्यासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्यलीषु ॥६४॥  
 इन्दीवरश्यामतनूर्त्तपोऽसौ त्वं रोचनागौरशरीरपट्टिः ।  
 अन्योन्यशोभापरिवृद्धये वां योगस्तद्विचोयदयोरिवास्तु ॥६५॥  
 स्वसुर्विदर्भाधिपतेस्तदीयो लेभेऽन्तरं चेतसि नोपदेशः ।  
 दिवाकरादर्शनवद्वकोशे नक्षत्रनायांशुरिवारविन्दे ॥६६॥  
 संभारिणीदीपशिखेवराश्रौयं यं व्यतीपायपतिवरा सा ।  
 नरेन्द्रमार्गाद्दृश्व प्रपेदे विचर्यभावं स स भूमिपालः ॥६७॥  
 तस्यां रघोः ह्यनुरुपस्थितायां वृषीत मानेति समाकुलाऽभूत् ।  
 शमेतरः संशयमस्य बाहुः फेयूरबन्धोच्छ्वसितैर्नुनोद ॥६८॥  
 तं प्राप्य सर्वावयवानवद्यं व्यवर्त्तान्योपगमात्कुमारी ।  
 न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं कालूचतिपट्टपाली ॥६९॥  
 तस्मिन्समावेशितचित्तवृत्तिमिन्दुप्रभामिन्दुमतीमवेक्ष्य ।  
 प्रचक्रमे धक्तुमनुक्रमज्ञा सविस्तरं वाक्यमिदं सुनन्दा ॥७०॥

गृष्पीकी कील बन जायो जिसकी लगभग स्वयं रत्नोसे भरा समुद्र है ॥६३॥ यदि तुम सदा मलय  
 पर्वतकी उन घाटियों में विहार करना चाहो, जिनमें पानकी वेमसि बके हुए सुपारीके पेठ लड़े हैं,  
 इलायचीकी बेनीसे लिपटे हुए चन्दनके पेठ लगे हैं और स्थान-स्थानपर ताड़के पत्ते फँसे हुए हैं, तो  
 तुम इनसे विवाह कर लो ॥६४॥ फिर वे नील कमलके समान साँवले हैं और तुम गौरोवन जैसी  
 गोरी हो, इसलिये यदि तुम दोनोका विवाह हो जायगा तो तुम ऐसी सुन्दर लगोगी जैसे बादलके  
 साथ विजली ॥६५॥ सुनन्दाकी बातें इन्दुमतीके मनमें बँसे ही नहीं घर कर सकी जैसा सूर्यके न दिलाई  
 देनेपर बन्द कमलके भीतर चन्द्रमाकी किरणें नहीं पहुँच पाती ॥६६॥ रातको जब हम दीपक  
 लेकर चलते हैं तब जो-जो राजमार्गके भवन पीछे छूटते लपते हैं वे अँधेरेमें पटककर धुँधले पड़ते जाते  
 हैं, वैसे ही जिन-जिन राजाओंको छोड़कर इन्दुमती आने बढ गई उनका मुँह उवास पढ गया ॥६७॥  
 जब वह रघुके पुत्र राजके प्रागे आकर खड़ी हुई सब अजके मनमें भी यह धुवधुकी होने समी कि यह  
 मुझे बरेगी या नहीं । पर उसी समय बुजबन्धके पास उनकी दाईं जुवा फड़क उठी जिससे उनकी  
 संका दूर हो गई ॥६८॥ इन्दुमतीमें जब उन सर्वाङ्ग-सुन्दर राजा अजकी देखा तब वह वही स्त-  
 गई और फिर किसी राजाके प्रागे नहीं जा सकी क्योंकि जब गौरिका भुञ्ज भावके वृक्षपर पहुँच  
 जाता है तब उन्हे दूसरे गृक्षोंके पास जानेकी चाह नहीं रहती ॥ ६९ ॥ सुनन्दा तो बात पत्तानेका  
 बड़ा डंग जानती थी इसलिये जब उसने देखा कि पन्द्रमाके समान मुखवाली इन्दुमती राजके रूपपर

इच्छादुर्वश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहितलक्ष्योऽभूत् ।  
 काकुत्स्थशब्दं यत्त उन्नतेच्छाः श्लाघ्यं दधत्युत्तरकोशलेन्द्राः ॥७१॥  
 महेन्द्रमास्वाय महोत्तरुपं यः संयति प्राप्तपिनाकिलीलः ।  
 चकार वा शैस्तुराङ्गनानां गण्डस्थलीः प्रोषितपत्रलेयाः ॥७२॥  
 ऐरावतास्फालनविश्वर्यं यः संघट्टयन्नद्दमद्भेदेन ।  
 उपेयुषः स्वामपि मूर्तिमश्यामधर्मिनं गोत्रभिदोऽधित्पटी ॥७३॥  
 जातः कुलो तस्य किलोरुकीर्तिः कुलप्रदीपो नृपतिर्दिलीपः ।  
 अतिष्ठदेकोनशतक्रतुत्वे शक्राम्यस्रयाविनिष्टुत्तये यः ॥७४॥  
 यस्मिन्महीं शासति वाणिनीनां निद्रां विहारार्धपथे गतानाम् ।  
 पातोऽपि नासंसघदंशुकानि को लम्नपेदाहरणाय हस्तम् ॥७५॥  
 पुत्रो रघुन्तस्य पदं प्रशास्ति महाक्रतोविश्रजितः प्रयोक्ता ।  
 चतुर्दिगानजितमभृतां यो मृत्पाप्रशेषामकरोद्विभूतिम् ॥७६॥  
 आरूढमद्रीनुदधीन्वितीर्णं मुजगमानां वसतिं प्रविष्टम् ।  
 ऊर्ध्वं गतं यस्य न चानुगन्धि यशः परिच्येत्तुमियत्तयालग् ॥७७॥

श्रसौ कुमारस्तमजोऽनुजातस्त्रिविष्टपस्येव पतिं जयन्त ।  
 गुर्वीं धुरं योम्वनस्य पित्रा धुर्येषु दम्यः सदरां निभर्ति ॥७८॥  
 कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयग्रधानैः ।  
 त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृषीष्वरत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ॥७९॥  
 ततः सुनन्दावचनामसाने लज्जां तनूकृत्य नरेन्द्रकन्या ।  
 दृष्ट्या प्रसादामलया कुमारं प्रत्यग्रहीत्सवरणस्रजेव ॥८०॥  
 सा यूनि तस्मिन्नभिलाषबन्ध शशाकशालीनतया नवकुम् ।  
 रोमाञ्चलक्ष्येण सगात्रयष्टि भित्त्वनिराक्रामदरालकेरयाः ॥८१॥  
 तथागतायां परिहासपूर्वं सरूयां सन्धी चेत्रभृदाशभापे ।  
 धार्ये प्रजामोऽन्यत इत्यथैनां धधूरस्रयाकुटिलं ददर्श ॥८२॥  
 सा चूर्णगौरं रघुन्दनस्य घात्रीकराभ्यां करभोपमोरुः ।  
 आसज्जपामास यथाप्रदेशं कण्ठे गुण मूर्च्छमिवानुरागम् ॥८३॥  
 तथा सजा मङ्गलपुष्पमय्या विशालवत्स्थललम्बया सः ।  
 धर्मस्त कण्ठार्पित्वाहुपाशां विदर्भराजावरजां वरेण्यः ॥८४॥

शशिनमुपगतेय कौमुदी; मेघमुक्तं जलनिधिमनुरूप जङ्घुकन्यावतीर्णा ।  
 इति समगुणयोगप्रीतयस्तत्रपीराः श्रवणकद्व नृपाणामेकवाक्यं विद्युः ॥८५॥

मे घोर भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों नामोंमें सब कही तो उनका यत् फौज हुआ है ॥७७॥ जैसे हादके पुत्र जयन्त बड़े प्रजापी हुए थे वैसे ही कुमार भक्त भी उन्हीं प्रजापी रघुके पुत्र हैं घोर ये भी अपने प्रजापी पिताके समान ही राज्यका सब काम संभालते हैं ॥७८॥ इनका कुल, रूप, यौवन, घोर नम्रता भावि गुण सब सुन्दर ही होते हैं । तुम इनसे प्रथम विवाह करो जिस रत्न घोर सोनेका ठीक-ठीक मेल हो जाय ॥७९॥ जब सुनन्दा कह चुकी तब इन्दुमतीने तबसे छोड़पर अपनी हँसती हुई भाँसे भजपर डाली घोर घाली भाँसोमें इस प्रकार उन्हे घर तिया नामो वह दृष्टि ही स्वयंवरकी माता हो ॥८०॥ लाजके मारे इन्दुमती अपने प्रेमकी बात भवसे कह तो न सकी पर उस प्रेमके कारण उसे रोमान हो ध्यावा घोर धुंधराले बालोबाली इन्दुमतीके हृदयपर वह प्रेम छिपाने पर भी न छिप सका मानो खड़े हुये रोमेटोने रूपमें वह प्रेम घरीर फोड़कर निकल आया हो ॥८१॥ सुनन्दा ने इन्दुमतीकी यह दशा देखकर ठिठोली करती हुए कहा—धार्य, चलिए आगे बढ़िए । इसपर इन्दुमतीने भाँसे वरेरकर सुनन्दाकी घोर देखा ॥८२॥ हाथी की सूँडके समान जवामोवाली इन्दुमतीने सुनन्दाके हाथो रघुके पुत्र भजके गलेमें वह स्वयंवरकी माता पहनवा दी जिसके बारेमें लगी हुई रोनी साक्षात् धनुरागके समान ही सोना दे रही थी ॥८३॥ जब प्रपके गलेमें वह फूलो की मगल माता पड़ी घोर उन्नी चौड़ी छातीपर मूज गई तब उसे देखकर भजने मही समझा

प्रमुदितवरपक्षमेकतरस्तत्त्विदितिपतिमण्डलमन्यतो वितानम् ।  
उपसि सर इव प्रफुल्लपत्रं कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रमासीत् ॥८६॥

इति महाकविश्रीचालिदासकृतो रघुवंशे महाकाव्ये  
स्वयंवरवर्णनो नाम पष्ठ सर्गः ॥

—

मानो इन्दुमतीने मेरे मलेमें अपनी भुजाएँ ही टास दीं हों ॥८४॥ जब वहाँके नगरवासियोंने देखा कि यमनान गुणवाले भज और इन्दुगतीका सम्बन्ध हो गया तब वे एक साथ बोल उठे—'यह तो चाँदनी और चन्द्रमा का भेल हुआ है और बगानों समूहमें मिल गई हैं।' दूसरे राजा लोग ज्यो-ज्यो ये सब बातें सुनते जा रहे थे, त्यो-त्यो मनमें डुबते जा रहे थे ॥८५॥ स्वयंवरके मठमें एक और मजके साथी हँसते हुए सबे से और दूसरी ओर उदास मुँहवाले राजा लोग । उस समय यह मण्डप प्राङ्गणके उस सरोवर जैसा समाने लगा जिसमें एक घोर सिले हुए कमल दिखाई दे रहे हों और दूसरी ओर मुँहे कुमुदोका झुण्ड सड़ा हो गया हो ॥८६॥

महाकवि चालिदासके रचे हुए रघुवंश महाकाव्यमें इन्दुमती-स्वयंवर नामका छठा सर्ग समाप्त हुआ ।

—

## ॥ सप्तमः सर्गः ॥

अथोपयन्त्रा सदृशेन युक्तां स्कन्देन साक्षादिव देवसेनाम् ।  
 स्वसारमादाय विदर्भनाथः पुरप्रवेशाभिमुखो बभूव ॥ १ ॥  
 सेनानिवेशान्पृथिवीक्षितोऽपि जग्मुर्विमातृग्रहमन्दमासः ।  
 भोज्यां प्रति व्यर्धमनोरयत्वाद्वृषेषु वेषेषु च साम्यस्रयाः ॥ २ ॥  
 सांनिध्ययोगात्किल तत्र शच्याः स्वयंवरचोमकृतामभावः ।  
 क्राकृतस्यमुदिरय समत्सरोपि शशाम तेन क्षितिपाललोकः ॥ ३ ॥  
 तावत्प्रकीर्णाभिनवोपचारमिन्द्रायुधघोतितवतोरणाङ्गम् ।  
 वरः स बभूव सह राजमार्गं प्राप ध्वजच्छायनिवारितोष्णम् ॥ ४ ॥  
 ततस्तदालोकनतत्परायां सौधेषु चामीकरजलावस्तु ।  
 यभूवुरित्थं पुरसुन्दरीणां त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि ॥ ५ ॥  
 श्रालोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमात्म्यः ।  
 यदुं न संभावित एव तावत्करेण रुद्रोऽपि च केशपाशः ॥ ६ ॥

### सप्तमः सर्गः

स्वपत्नर हो चुकने पर योग्य पतिसे न्याही हुई अपनी बहन इन्दुमतीको साथ लेकर विदर्भ-  
 रिसा नगरकी ओर चले । अपनी पत्नी इन्दुमती के साथ जाते हुए अब ऐसे तब रहे थे मार्गो साक्षात्  
 स्वसेना के साथ स्कन्द जा रहे हो ॥१॥ दूसरे राजा लोग भी प्रातःकालने तारोकि हमान अपना  
 दास मूँड़ लेकर अपने अपने देरो मे यह कहते हुए सोट गए कि जब इन्दुमती ही नहीं मिली  
 अब हम लोगोबा यह रूप और यह बेश रहा किस कामका ॥२॥ उस स्वयंवर मे स्वयं इन्द्राणी  
 लस्थित थी इसलिये वहाँ किसीका साहस नहीं हुआ कि कुछ बहबदी कर सके । जो तो जितने  
 गे हुए राजा वे वे सभी भजसे मन ही मन कुबते थे किन्तु इन्द्राणोके रहनेसे उनका भी कोप  
 पडा पठ गया ॥३॥ उस राग्य अब अपनी पत्नीके साथ नगरके बीचते राजपथपर चले जा रहे  
 । स्थान-स्थानपर मन्दर नये फूल उनपर बरसाए जा रहे थे और इन्द्रधनुषके समान राग बिरगे  
 ोरण उनके स्वागतमे सजाए गए थे । नगरमें इतनी ऋषिडर्या भगाई गई थी कि धूप भी एक गई  
 ॥४॥ उनको देखतेके लिये नगर की सुन्दरियां अपना अपना काम छोडकर अपने अपने भवनों के  
 दरवाजो की ओर दौड पडी ॥५॥ एक सुन्दरी उहे देखने के लिये जब करोसेनी ओर लपकी तब  
 हला उसका जूटा चुन गया । उस हत्यबडीमे अपना जूटा नापनेकी भी उसे सुध न रही और वह  
 अपने केश हाथमे धामे ही शिडकीपर गड्डन गई । बालो के बीले पर जानेसे उनमे पुषे हुए फूल



प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाचिष्य काचिद्द्रवरागमेव ।  
 उत्सृष्टलीलाभतिरामत्राद्यादलककाङ्क्षा पदवीं ततान ॥७॥  
 विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन संभोज्य तद्वञ्चितवामनेत्रा ।  
 तथैव वातायनसंनिकर्षे यथौ शलाकामपरा वहन्ती ॥८॥  
 जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न वधन्व नीवीम् ।  
 नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेष हस्तेन तस्यावबलम्ब्य वासाः ॥९॥  
 अध्राञ्चिता सत्त्वरमुत्थितायोः पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती ।  
 कस्याश्चिदासीद्दशना तदानीमद्गुणमूलापितृवृत्तशेषा ॥१०॥  
 तासां सुरैरासवगन्धर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रदृष्टहलानाम् ।  
 विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाद्याः सहस्रपत्राभरणा इवासन् ॥११॥  
 ता राघवं दृष्टिभिरापिरन्त्यो नार्यो न जग्युर्निर्पयान्तराणि ।  
 तयाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा ॥१२॥  
 स्थाने दृता भूपतिभिः परोक्षैः स्वयंवरं साधुमर्मेस्त भोज्या ।  
 पद्मेव नारायणमन्यथासी लभेत कान्तं कथमात्मतुल्यम् ॥१३॥

दरद्विरे नीचे गिरते जति ये ॥६॥ एकं दूखरी स्त्री अपनी भुङ्गोर करलेवाली वांसीसें पंरोमि महाबर  
 लगवा रही थी । वह भी अपने पैर लीचकर गीले पैरो से ही भरोखेकी घोर दौड पडी जिससे  
 भरोखेक लाल पैरो के छापनी पाँठ-सी बनवी चली गई ॥७॥ एक तीसरी स्त्री अपनी बाँसो में  
 मौजने लगी रही थी । बाईं मौजमे तो गया चुनी थी पर बाईं मौज मे मौजन लगाए बिना ही  
 वह सलाई हाम मे लिए भरोखेकी घोर दौड पडी ॥८॥ एक घोर स्त्री भरोखेमे मौज लगाए खडी  
 थी । उसका नाँवां खुल गया था पर उसे बाँसने पी गुप ही उठे नहीं थी । बहूँ अपने कपडे हापसें  
 घामे इस प्रकार खडी थी कि उसके हावने धामुपसोकी चमक उसनी नाभितक पहुँच रही थी  
 ॥९॥ एक स्त्री वैठी हुई मणियो की तगडी गूथ रही थी जिसवा एक छोर उसने एक पैर के  
 सेगुठेमे बाँध रखा था । वह चभी आयी हो पिये पाई थी कि सहसा उठकर भजको देखतेके लिये  
 भरोखे की घोर लपनी चली गई । फल यह हुआ कि वहाँ पहुँचते पहुँचते मल्लि तो छव निकल-  
 निकलनेर इपर उपर बिस्तर गए, केवल थोर-भर पाँवमे बँधा रह गया ॥१०॥ मदिराकी  
 गन्धसे गुवाहित मुखोवाली, भरोखोमे उत्पुकुताके साप जगती हुई वे स्त्रियो ऐसी जान पडती थीं  
 मानो भरोखोमे बहुतसे वमल खडे हुए हो और उनपर बहुत से भेरि मा बँटे हो लोकि  
 उनवे मुन्दर मुखोपर आँसि ऐसी जान पडती थी जैसे वमलपर भेरि बँटे हो ॥११॥  
 ये स्त्रियाँ ऐसी एक्टव होकर अपने नेत्रोमे भजका रूप भी रही थी कि उनका ध्यान  
 किसी घोर कामकी घोर गया हो नहीं मानो उननी सब इन्द्रियोकी शक्ति एव मौजोमे  
 हो या वगी हो ॥१२॥ [स्त्रियो घापकमे कह रही थी] यो जो बडुससे राजाघनि अपने

परस्परेण स्पृहणीयशोभ न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत् ।  
 अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां वितथोऽभविष्यत् ॥१४॥  
 रतिस्मरौ नूनमिमावभूतां राज्ञां सहस्रेषु तथाहि बाला ।  
 गतेयमात्मप्रतिरूपमेव मनो हि जन्मान्तरसङ्गतिज्ञम् ॥१५॥  
 इत्युद्रताः पौरवधृमुन्मेम्यः शृण्वन्कथाः श्रोत्रसुखाः कुमारः ।  
 उद्भासितं मङ्गलमंविधाभिः संवधिन्नः सद्य समामसाद ॥१६॥  
 ततोऽवतीर्षाशु करेणुकायाः स क्लामरूपेस्वरदत्तहस्तः ।  
 वैदर्भनिर्दिष्टमथो विवेश नारीमनांसीव चतुष्कमन्तः ॥१७॥  
 महार्हसिंहामनसंस्थितोऽसौ सरत्नमर्ष्यं मधुपर्कमिश्रम् ।  
 भोजोपनीतं च दुकूलयुग्मं जग्राह सार्धं वनिताकटाक्षैः ॥१८॥  
 दुकूलवासाः स वधूसमीपं निन्ये त्रिनीतैरवरोधरक्षैः ।  
 वेलासकाशं स्फुटफेनराजिर्नयैस्दन्वानिव चन्द्रपादैः ॥१९॥  
 तत्रार्चितो भोजपतेः पुरोधा हुत्वाग्निमाज्यादिभिरग्निकल्पः ।  
 तमेव चाधाय त्रिधाहसाक्ष्ये वधुवरौ संगमयांचकार ॥२०॥

प्रायः प्रायः इन्दुमतीसे विवाहकी आरंभका की थी, पर राजकुमारीने स्वयवर करके ही अपना विवाह करना उचित समझा थीर गद्द ठीक थी क्रिया । जैसे स्वयवरमे लक्ष्मीने नारायणको घर लिया वैसे ही इन्दुमतीगे भी धनको घर लिया है । बताया तो बिना स्वयवरके उसे ऐसा योग्य घर कैसे मिल पाता ॥१३॥ यदि बहुत बड़े गुन्दर जोशो न भिन्नाते तो इन दोनोंको सुन्दर बनानेका उतना सय परिश्रम ही व्यर्थ जाता ॥१४॥ ये दोनों पिछले जन्ममे रति और कामदेव ही रहे होंगे । इसीलिये दो सहस्रो राजासोके बीचमे इन्दुमतीने उन्हें प्राप्त कर लिया क्योंकि पिछले जन्मके सन्ध्यावधौ मन तो भली भाँति पहचान ही लेता है ॥१५॥ नगरकी महिलासोने मुहसे इस प्रथाकी बातें सुनते हुए कुमार भजन अपने सन्ध्याधी भोजके उस राज भजनमे या पशुके जो नगल सामप्रियोकी राजावटके जन्मगा रहा था ॥१६॥ वहाँ पहुँचकर वे ऋष्ये ह्यिनीसे नीचे उतरे और कामरूपके राजाके हाथमे हाथ देकर विदर्भराजके वताये हुए भीतरी चौकमे ऐसे पंठ गये मानो वे वहाँकी स्थियोके मन मे भी पंठ गए हों ॥१७॥ वहाँ वे सुन्दर बहुमूल्य सिंहासनपर जानकर बैठ गए । भोजने सन्दे रोगी वस्त्रोने एव जोड़ेके साथ जो [दही, मधु और घी मिला हुआ] मधुपर्क भेंट दिया उसे उठे उठे वहाँकी केलियो की बाँकी चितवनक साथ साथ स्वीकार कर लिया १८॥ चन्द्रावती नई गिराएँ सगुदकी उजली आगवासी लहरोको शोचकर दूर किनारेक ले धावी है वैसे ही रनिवासके नम्र हेतक सबको इन्दुमतीके पास ले गये ॥१९॥ वहाँ विदर्भराजके अग्निके समान तेजस्वी पुरोहितने भी प्रादि धामप्रियो से हवन करने और उसी अग्निनी साथी बनाकर पर पशुदा

हस्तेन हस्तं परिगृह्य बध्वाः स राजसूनुः सुतरां चक्रासे ।  
 अनन्तराशोकलताप्रवाल प्राप्येव चूतः प्रतिपल्लवेन ॥२१॥  
 ग्रासीद्वरः कण्टकितप्रकोष्ठः स्वित्वांगुलिः संवृते कुमारी ।  
 तस्मिन्द्वये तत्त्वद्यमात्मवृत्तिः समं विभक्तेव मनोभवेन ॥२२॥  
 तयोरपाङ्गप्रतिसारितानि क्रियासमापचिनिवर्तितानि ।  
 हीयन्वणामानशिरै मनोज्ञामन्योन्यलोलानि विलोचनानि ॥२३॥  
 प्रदक्षिणप्रक्रमखात्कृशानोरुदक्षिपस्तन्मिथुनं चक्रासे ।  
 मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम् ॥२४॥  
 नितम्बगुर्वीं गुरुणा प्रयुक्ता बधूर्विधात्प्रतिभेन तेन ।  
 चकार सा मत्तचकोरनेत्रा लज्जावती लाजविसर्गमग्नौ ॥२५॥  
 हविःशमीपल्लयलाजगन्धी पुण्यः कृशानोरुदियाय धूमः ।  
 कपोलससर्पिंशिखः स तस्या मूर्हूर्तकणोत्पलतां प्रपेदे ॥२६॥  
 तदञ्जनक्रोदसमाकुलात्वं प्रभ्लानवीजाङ्कुरकर्णपूरम् ।  
 वधुमुखं पाटलगण्डलेखमाचारधूमग्रहणाद्बभूव ॥२७॥  
 तौ स्नातकैर्वन्धुमता च राज्ञा पुरंधिभिश्च क्रमशः प्रयुक्तम् ।  
 कन्याकुमारौ कनकासनस्यावाद्राक्षितारोपणमन्वभूताम् ॥२८॥

गैदजोवा कर दिया ॥२०॥ जैसे ग्रामका वेड भयनी पतिमोके साथ-साथ भयोक लताकी लाल पतिमो के  
 मिल जानेसे मनोहर लगता है वैसे ही जब भयने अपने बहूका हाथ धामा तब वे भी बहुत सुन्दर  
 लगने लगे ॥२१॥ बहूके हाथ धामनेसे भयके गट्टेके पाठ रोमाञ्च हो भावा घोर इन्दुमती की  
 लैगलियोमें पसीना भाते लगा । उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो फायदेवने अपने प्रेमका भाव  
 उन दोनोंमें बराबर बाँट दिया हो ॥२२॥ वे कनखियोसे एक दूसरेकी घोर देखते वे घोर भाँसे  
 पार होते ही एक दूसरेको देखकर लज्जासे धाँसे नीची कर लेते थे । उनका यह लाजमरा सकीप देख-  
 नैवालोका मन मोहे दे रहा था ॥२३॥ भय घोर इन्दुमती दोनों जब हयनकी अग्निके फेरे देने लगे  
 उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो दिन घोर रातका जोटा मिलकर सुभेक पर्वतकी फेरी दे रहा  
 हो ॥२४॥ तब बड़े-बड़े नितम्बोवाली गत्त चकोरके गगन भाँखोवाली, लजीभो इन्दुमतीने बहूके  
 समान पूर्य पुरोहितके कहनेसे अग्निमें धामकी धौलें छोड़ी ॥२५॥ धो धमीके पत्तो घोर धानकी  
 सीवोकी गन्धसे भरा हुआ पवित्र धुआँ अग्निसे निकलकर जब इन्दुमतीके कपोलतक पहुँचा तब ऐसा  
 जान पड़ा मानो इन्दुमतीने नीले कमलका बरसाँफूल पहन लिया हो ॥२६॥ उस विवाहकी अग्निका  
 धुआँ लगनेसे इन्दुमतीकी भाँखोसे आँखन मिला हुआ आँसू रहने लगा, कानोके कण्ठफूल कुन्हला  
 गए घोर गाल लाल हो गए ॥२७॥ फेरे हो चुकनेपर सोनेके सिंहासनपर बैठे हुए बर-बधूके ऊपर  
 स्नातकोंने, कुटुम्बियोनि, भोबराने घोर पुरोहितजीने वारी-वारीसे अथवा गीते छोड़कर घासीदाँद

इति स्वसुर्भाञ्जलप्रदीपः संपाद्य पाणिग्रहणं स राजा ।  
 महीपतीनां पृथग्दर्शार्थं समादिदेशाधिकृतानधिष्ठीः ॥२६॥  
 लिङ्गैर्मुदः संवृतविक्रियास्ते हृदाः प्रसन्ना इव गूढनक्राः ।  
 वैदर्भमामन्व्य ययुस्तदीयां प्रत्यर्प्य पूजामुपदाच्छलेन ॥३०॥  
 स राजलोकः कृतपूर्वसंविदारम्भसिद्धौ समयोपलभ्यम् ।  
 आदास्यमानः प्रमदामिषं तदावृत्य पन्थानमजस्य तस्थौ ॥३१॥  
 भर्चापि तावत्क्रयकैशिकानामनुष्ठितानन्तरजाविवाहः ।  
 सत्त्वानुरूपाहरणीकुतश्रीः प्रास्यापयद्राघवमन्वगाञ्च ॥३२॥  
 तिलस्त्रिलोकः यित्तेन सार्धमजेन मार्गे पसतीरुपित्वा ।  
 तस्मादपावर्तत कुण्डिनेशः पर्वत्यये सोम इवोष्णरश्मेः ॥३३॥  
 प्रमन्ययः प्रागपि कोशलेन्द्रे प्रत्येकमात्तस्वतया बभूवुः ।  
 अतो नृपाश्चक्षुमिरे समेताः स्त्रीरत्नसार्धं न तदात्मजस्य ॥३४॥  
 तमुद्धहन्तं पथि भोजकन्यां रुरोध राजन्यगणः स दसः ।  
 पलिप्रदिष्टां श्रियमाददानं त्रैविक्रमं पादमिवेन्द्रशत्रुः ॥३५॥

दिष्ट ॥३५॥ उस भोज-कुलके दीपक, सक्षमीशानु राजाने अपनी बहन का विवाह-सन्तार पूरा करके सेवकों को आज्ञा दी कि वे अलग-अलग सब राजाओं का आदर-सत्कार करें ॥२६॥ जैसे शासक के निर्मल जलके भीतर ही पशियाल भी रहते हैं वैसे ही वृत्तरे राजा भी कररहे तो बड़े प्रसन्न दिखाई देते थे पर मनने बड़े कुटे हुए थे । वे सब विदर्भराजसे आज्ञा लेकर उनकी ही हुई सामग्रीको घंटके बहानेसे लौटा-लौटाकर अपनी-अपने देशोंको लौट चले ॥३०॥ इन राजाओंने मिलकर पहले ही निश्चय कर लिया था कि जब धन इन्दुपतीको लेकर चलें तो उन्हें घेर लिया जाय और उनसे सुन्दरी इन्दुपतीको छीन लिया जाय इसलिये वे सब मिलकर धामे धनका मार्ग रोककर बीचमें डहक गए ॥३१॥ इधर छोटी बहिनका विवाह करके विदर्भ-राजने भी अपने सामर्थ्यके अनुसार धन लेकर रघुके पुत्र प्रजको बिदा दी और उनके साथ-साथ जाकर कुछ दूरतक उन्हें पहुंचा भाए ॥३२॥ कुम्भिनपुरके राजा भोजने चीनों लोकोमें विस्थाव प्रजके साथ मार्गमें तीन रातें बिताई और फिर वैसे ही छोट भाए जैसे अमावस्या होनेपर सूर्यके पासते चन्द्रमा लौट जाता है ॥३३॥ जो राजा मार्ग रोकें उन्हें हुए थे, उनका कोशलपति रघुने विमिन्यके समय धन छीन लिया था इसलिये वे तो पहलेसे ही उनसे जले बँठे थे । इसीलिये वे यह भी नहीं सह सके कि रघुवा पुत्र हम लोगोंके रहते हुए स्त्रियोंमें रत्न इन्दुपतीको लेकर चला जाय ॥३४॥ जब धन इन्दुपतीको साथ लिए चले जा रहे थे उस समय उन अभिमानी राजाओंने धनको उसी प्रकार रोक लिया जैसे इन्द्रके शत्रु वृत्रासुरने धामनके चरणोंके उच्च समय रोक लिया था जब वे बलिकी राज्य-सक्षमी लेकर चले थे ॥३५॥

तस्याः स रक्षार्थमनल्पयोधमादिरथ पित्र्यं सचिवं कुमारः ।  
 प्रत्यग्रहीत्पार्थिववाहिनीं तां मागीरथीं शोण इवोत्तरगः ॥३६॥  
 पतिः पदातिं रथिनं रथेशस्तुरङ्गसादी तुरगाधिरुद्धम् ।  
 यन्ता गजस्याभ्यपतद्गजस्थं तुल्यप्रतिद्वान्द्रि बभूव युद्धम् ॥३७॥  
 नदत्सु तूर्य्यं च विभाव्यवाचो नोदीरयन्ति स्म कुलोपदेशान् ।  
 बाणाक्षरैरेव परस्परस्य नामोर्वितं चापभृतः शशंसुः ॥३८॥  
 उत्थापितः संयति रेणुररवैः सान्द्रीकृतः स्पन्दनवंशचक्रैः ।  
 विस्तारितः कुञ्जरकर्णतालैर्नेत्रक्रमेणोपरुरोध सूर्यम् ॥३९॥  
 मत्स्यध्वला वायुवशाद्दिदीर्घैर्मुस्रैः प्रवृद्धध्वजिनिरजांसि ।  
 वभ्रुः पिबन्त परमार्थमत्स्याः पर्याविलानीव नवोदकानि ॥४०॥  
 रथो रथाङ्गघनिना विजहो विलोलघण्टाक्वणितेन नाभः ।  
 स्रग्भर्तृनामग्रहणाद्भ्रूव सान्द्रे रजस्यात्मपरावबोधः ॥४१॥  
 आश्रयतो लोचनमार्गमावी रजोऽन्धकारस्य विजृम्भितस्य ।  
 शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा -वालारुणोऽभ्रुधिरप्रवाहः ॥४२॥

प्रजने अपने पिताने मर्षीको आज्ञा दी कि थोड़ेसे योद्धा बाण लेकर इन्द्रमुसीकी रक्षा करो और वे  
 स्वयं उस सेनाको रोककर उसी प्रकार सजे हो गए जैसे बादले दिनेमि ऊंची तरगोवाला घोंघानव  
 तालाजीकी पाराकी रोश लेता है ॥३६॥ सटाई छिड़ गई। पंवल पंवलसे ले निड गये, रथवाले  
 रथवालो से शूभ गए, पुटसवार पुटसवारी से चलन पड़े, हाथी सवार हाथी सवारी पर टूट पड़े ।  
 इस प्रकार बरगदर औरकी सटाई होने लगी ॥३७॥ वहाँ इतनी तुरहीयरी बज रही थी कि निसीको  
 पुछ गुनाई गरी देता था । इसलिये अनुपपारी धपभा कुन धोर नाग भी नहीं पुकार रहे थे ।  
 पर वे जो बाण चला रहे थे उनपर पुदे हुए अक्षरोंके ही उनसे माधोवः जान ही जाता  
 था ॥३८॥ युद्ध-क्षेत्रमें थोड़ीकी टापों से जो धूल उठी, उसमें रथके पहियोंके चक्के हुई धूल  
 गिलवर भोर भी पनी ही गई। हाथियोंके बानोंके हुतालंके ऐसी धूल चारों धोर फेंक  
 गई गानो सूर्यको कपड़ेके टुक दिया गया हो ॥३९॥ नाबुने करल सेनाकी मछलीके  
 धारारवाती मादियोंके मुँह धुल गये थे । उनमें जब धूल पुस रही थी तब वे ऐसी  
 जान पड़ती थी मानो मर्षीका नदला पानी पीती हुई लक्ष्मी मछलियाँ हो ॥४०॥  
 धूल इतनी गहरी छा गई थी कि उस युद्ध क्षेत्र में पहियोंका धन्द गुनवर हो वे समझ पाते  
 थे कि रथ मा रहा है और धपना-परामा तत्र समझे थे जब दोनों धोरके छंनिव धपने-प्रपने राजा-  
 शोवा नाम के-ले-र युद्ध बज्जे थे ॥४१॥ शीतोने धाने शंभेय छा देनेवाणी धोर युद्धभूमिमें  
 थी हुई पुनवे शीपयारंभ, धस्त्रोने धायल पांढी, हाथियों धोर थोडाथोने धपेलेने निवसा हुआ

स च्छिन्नमूलः क्षतजेन रेणुस्तस्योपरिष्ठात्पवनावधृतः ।  
 अङ्गारशेषस्य हुताशनस्य पूर्वोत्थितो धूम इवावभासे ॥४३॥  
 प्रहारमूर्च्छापगमे रथस्था यन्तृनुपालम्य निवर्तिताश्रान् ।  
 यैः सादिता लक्षितपूर्वकेतुस्तानैव सामर्पतया निजन्तुः ॥४४॥  
 अप्यर्धभागं परवाणालूना धनुर्मृतां हस्तवतां पृषत्काः ।  
 संप्रापुरेयात्मजवानुवृत्त्या पूर्वार्धभागैः फलिभिः शरव्यम् ॥४५॥  
 आघोरखानां गजसंनिपाते शिरांसि चक्रैर्निशितैः क्षुराग्रैः ।  
 हुतान्यपि रथेनरत्नाग्रकोटिभ्यासक्तकेशानि चिरेण पेतुः ॥४६॥  
 पूर्वं प्रहर्ता न जघान भूयः प्रतिप्रहाराक्षममथसादी ।  
 तुरङ्गमस्कन्धनिपणखदेहं प्रत्याश्वसन्तं रिपुमाचक्राङ्क्ष ॥४७॥  
 तनुत्पजां बर्मभृतां विकोर्षुशैहत्सु दन्तेष्वसिभिः पतद्भिः ।  
 उघन्तमग्निं शमयांनभूवुर्गजा विविग्नाः करशीकरेण ॥४८॥  
 शिलीमुखोत्कृत्तशिरः फलाढ्या च्युतैः शिरस्त्रैश्चपकोत्तरेण ।  
 रणवितिः शोखितमघकुल्या रराज मृत्योरिब पानभूमि ॥४९॥

लहू, प्रात वासने सूर्यकी लाली भंसा समने लगा ॥४२॥ पृथ्वीपर इतना रक्त बहा कि नीचेकी धूल खव गई और जो धूल उठ चुकी थी वह वायुके सहारे ऊपर-ऊपर फैलकर उस धुँए जैसी लगने लगी जो अग्निसे उठकर ऊपर फैल चुका हो और नीचे केवल अगारे बचे रह गये हो ॥४३॥ जो मोट्टा चोट लगनेसे मूर्च्छित हो गये थे उनको उनके सारथी रथपर ढालकर लौटा लाए । पर जब उनकी मूर्च्छा दूर हुई तो वे अपने सारथियोंको बहुत बुरा भला कहने लगे और जिनकी मारसे वे घायल हुए थे उन्हे रथके भ्रष्टोंसे पहचान पहचानकर मारने लगे ॥४४॥ जिन यन्त्रुपारियोंके हाथ बाण घनानेम सधे हुए थे उनके बाण यद्यपि यन्त्रुओंके बाणोंसे क्षीण-ही से टूट हो जाते थे फिर भी उनमें इतना वेग होता था कि उनका फल लगा हुआ अगला भाग लक्ष्यपर पहुँच ही जाता था ॥४५॥ जहाँ हाथियोंका युद्ध हो रहा था वहाँ पंजे छुरेवाले चक्रोंसे जिन हाथीवागोंके सिर बट गए थे वे सिर बहुत देरसे पृथ्वीपर बिखरे थे, क्योंकि उनके लम्बे लम्बे शाल बाजों के नलों में उलझनेसे बहुत देरतक ऊपर ही टंगे रह जाते थे ॥४६॥ एक घुड़सवारने अपने यन्त्रु घुड़सवारपर पहले चोट थी । चोट खातेही वह घोड़ेके बन्धेपर झुक गया और उसने इतनी भी शक्ति न रही कि सिरतक उठा सके । जिस घुड़सवारने प्रहार किया था उसने यह देखकर फिर उसपर हाथ नहीं उठाया, उससे यह मनाते लगा कि यह फिरसे जी उठे [और फिर उससे लडा जाय क्योंकि मरेको मारना कायरता है] ॥४७॥ जो बबचधारी मोट्टा अपने प्राण हथेली पर लिए लड रहे थे, उन्होंने नगो तलवारसे जब हाथियोंके दाँतोंपर चोट की तब चिनगारी निकलने लगी । उस चिनगारी से हाथी इतने डर गए कि वे अपनी सूँढ़के जलसे उस आगको बुझाने लगे ॥४८॥ वह युद्धलेख मृत्यु

उपान्तयोर्निष्कृपितं विहंगैराक्षिप्य तेभ्यः पिशितप्रियापि ।  
 केयूरकोटिन्नततालुदेशा शिवा भुलच्छेदमपाचकार ॥५०॥  
 कश्चिद्द्विपत्खङ्गहृतोचमाङ्गः सद्यो विमानप्रसुतासुपेत्य ।  
 वामाङ्गसंसक्तसुराङ्गनः स्वं नृत्यत्कवन्धं समरे ददर्श ॥५१॥  
 अन्योन्यसूतोन्मथनादभूतां तांवेव सूतौ रथिनौ च कौचित् ।  
 व्यथौ गदाध्यायतसंप्रहारौ भग्नासुधौ बाहुविमर्दनिष्ठौ ॥५२॥  
 परस्परेश्च क्षसयोः प्रहत्रोरुत्क्रान्तवाग्धोः समकालमेव ।  
 अमर्त्यभावेऽपि कयोधिदासीदेकाप्सरःप्राथितयोर्विवादः ॥५३॥  
 ष्यूहाधुभौ तावितरेतरस्माद्भङ्गं ज्वरं चापतुरव्यवस्थम् ।  
 पश्चात्पुरोमाहृतयोः प्रष्टुद्वौ पर्यायवृत्त्येव महार्थबोर्मा ॥५४॥  
 परेश्च भग्नेऽपि वले महौजा ययावजः प्रत्यरिसैन्यमेव ।  
 धूमो नियत्येत समीरथेन यतस्तु क्वचस्तव एव बद्धिः ॥५५॥  
 रथी निपङ्गी क्वचची धनुष्मान्दत्तः स राजन्यकमेकवीरः ।  
 निवारयामास महावराहः कल्पवयोदृत्तमिवास्वयाम्भः ॥५६॥

वेबके उस मंदिरालय-सा जान पड़ने लगा निरामें वायुसे कटे हुए खिर ही मानो फल हो, चतुर्दर गिरे हुए षूँचे ही मानो प्याले हो और बहता हुआ रक्त ही मानो मदिरा हो ॥५६॥ एक स्थानपर किसीके बाँहका टुकड़ा कटा पड़ा था, जिसे मिट्टा आदि पक्षियोंने नोच रक्खा था । उसे माँसके जोभसे सियारिल चीच ले गई, पर पगोही उसने उसपर मूँह मारा।सोही बाँहमे बँधे हुए युद्धव्यय को नोकते उरफा लासू खिन्न गया और उसने उसे वहीपर छोड़ दिया ॥५०॥ एक योद्धाका गिर चुभुनी तलवारसे कट गया । युद्धमे मृत्यु होनेसे वह देवता हो गया और अपने साथ एक अम्बर लिए हुए विमानपर बैठकर प्राकारसे यह देवने लगा कि मेरा वध रघुभूमिमे किस प्रकार साध रहा है ॥५१॥ दो योद्धामोके सारथी मारे जा चुके थे धूलिले वे अपने आप रथ भी चला रहे थे और सट भी रहे थे । पर जब उनके घोड़े भी मारे जा चुके तब वे रथसे उतरकर बंदन ही गदा लेकर लड़ने लगे और जब एदाएँ भी हूट गई तब वे मरुत-मुद्ध करने लगे ॥५२॥ दो वीर एक दुसरेके प्रहारसे एक साथ मारे गए । दोनों देवता होकर जब स्वर्गमे पहुँचे तब वहाँ एक ही अम्बरपर दोनो रोऊ गए और वहाँ भी वे आपसमे झगड़ने लगे ॥५३॥ जैसे समुद्रकी दो सहरें प्रागे-पीछे भोज्य लेनेवाले वायुसे हटती-बटती रहती हैं वैसे ही वे दोनो देवाएँ भी कभी लौटती थी और कभी हारती थी ॥५४॥ यद्यपि वनप्राने पञ्चकी सेनाको मारकर भवा बिबा था पर मरुषियरुकी प्रब, शत्रुकी सेनामे बहते ही चले गए क्योंकि वायु धुँरेकी भले ही उड़ा दे पर प्राग सो उसके सहारे पासफूलागे पकड़ती हो चली जाती है ॥५५॥ जैसे प्रतमके समय बराह गगनावृ उमुद्धके बड़े हुए जलकी पीरते हुए चलते थे वैसे ही घोड़ेपर चढ़े

स दक्षिणं तूष्णमुखेन वामं व्यापारयन्हस्तमलक्ष्यताजौ ।  
 आकर्ण्यकृष्टा सकृदस्य योद्धमौर्वीव वाणान्सुपुवे रिपुघ्नान् ॥५७॥  
 स रोपदष्टाधिकलोहितौष्ठैर्न्यकोर्ध्वरेखा त्रु कुटीर्वहद्भिः ।  
 तस्तार मां भल्लनिकृत्तकण्ठैर्हुंकारगर्भैर्द्विपतां शिरोभिः ॥५८॥  
 सर्वैर्वलाङ्गैर्द्विरदग्रघानैः सर्वायुधैः कङ्कटमेदिभिश्च ।  
 सर्वप्रयत्नेन च भूमिपालास्तस्मिन्प्रजहुर्बुधि सर्व एव ॥५९॥  
 सोऽस्त्रत्रजैरक्षत्रयः परेषां ध्वजाग्रमात्रेण बभूव लक्ष्यः ।  
 नोहारमग्नो दिनपूर्वभागः किञ्चित्प्रकाशेन विवस्वतेव ॥६०॥  
 प्रियंवदात्प्राप्तमसौ कुमारः आयुङ्क्त राजस्वधिराजस्रजुः ।  
 गान्धर्वमस्रं कुसुमास्त्रकान्तः प्रस्वापनं स्वप्ननिवृत्तलीव्यः ॥६१॥  
 ततो धनुष्कर्षशमूढहस्तमेकांसपर्यस्तशिरस्त्रजालम् ।  
 तस्थौ ध्वजस्तम्भनिपण्णदेहं निद्राविधेयं नरदेवसैन्यम् ॥६२॥  
 ततः प्रियोपात्तरसेऽधरोष्ठे निवेश्य दध्मौ जलजं कुमारः ।  
 तेन स्वहस्ताजितमेकवीरः पिवन्पशो मूर्तमिवावभासे ॥६३॥  
 शङ्खस्यनामिह्वतया निवृत्तास्तं सञ्चशत्रुं ददशुः स्वयोधाः ।  
 निमीलितानामिव पङ्कजानां मध्ये स्फुरन्तं प्रतिमाशशङ्खम् ॥६४॥

हृष्टीर बाधे स्वाभिमानो धीर अत्र प्रकृते ही शत्रुमोकी सेनाको चीरते चले जा रहे थे ॥५६॥ वे इतनी  
 कुर्तीये बाण पता रहे थे कि यह पता ही नहीं चलता था कि उन्होंने कब अपनी हाथ तूशीरने जाला  
 धीर बाध बाण निकाला । वरम् ऐसा जान पड़ता था कि वे जब कानतक धनुषकी डोरी खींचते थे तब  
 उसीमेसे शत्रुमोका नाश करनेवाले बाण गिनगते चले जा रहे थे ॥५७॥ जिन राजाजीने लीधले चम-  
 चबाकर मोठोको माल कर लिया था धीर को मीहे साथ-साथकर हुंकार करते हुए भागे पड रहे थे उनके  
 सिर फाट-काट पर अपने पृथ्वी घाटदी ॥५८॥ अब उन राजाजीने यह देखा तब वे रथ, घोड़े धीर वैदक  
 मेकर कचधतक काट देनेवाले धने अस्त्रोके पुरा बल सहाकर एव साथ अजपर प्रहार करने लगे ॥५९॥  
 इन राजाजीने अजपर इतने धन्य बरसाए कि उनका रथ टक गया । जैसे कोहरेके दिन प्रभात होनेवा  
 ज्ञान धुंधले सूर्यकी देखकर होता है वैसे ही ध्वजका पता उनके रथकी पतावापि सिरको देखकर ही  
 मिलता था ॥६०॥ तब महाराज रघुके पुत्र, कागदेवके समान सुन्दर, सावधान भजने प्रियंवदका  
 दिना हुमा यह गमन अस्त्र राजाधोपर लीखा जिससे निद्रा प्रा जाती है ॥६१॥ अस्त्र छोडते  
 ही उन राजाजीको सेनाके हाथ ऐसे रुक गए कि वे अपने धनुषतक न खींच पाए । उनकी पण्डिया  
 विरकर कन्धीपर मूल गर्द धीर गारी सेना ऋद्धियोके बडोके यहारे सो गर्द ॥६२॥ उस समय  
 इन्दुमतीके पुत्रवका रथ लेनेवाले अपने मोठोसे शख फूडते हुए अज ऐसे जान पडते थे मानो अपने  
 धाडूवतसे उरपन्न किए हुए मूर्तिमान यज्ञको ही भी रहे हो ॥६३॥ अस्त्रकी ध्वनिको पहचानकर



सशोखितैस्तेन शिलीमुखाग्रैर्निक्षेपिताः केतुषु पार्थिवानाम् ।  
 यशोऽहृतं दुसंप्रति राघवेण न जीवितं वः कृपयेति चर्षाः ॥६५॥  
 स चापकोटीनिहितैकवाहुः शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः ।  
 ललाटवद्धश्रमवारिविन्दुर्भोतां प्रियामेत्य वचो बभापे ॥६६॥  
 इतः परानर्मकद्वार्यशस्त्रान्वैदर्भि पर्यानुमता मयासि ।  
 एवंविधेनाहवचेष्टितेन त्वं प्रार्थ्यसे हस्तगता ममैभिः ॥६७॥  
 तस्याः प्रतिद्वन्द्वमवादिपादात्सद्यो विमुक्तं मुखमावभासे ।  
 निःश्वासवाष्पापगमात्त्रयन्त्रः प्रसादमात्मीयमिवात्मदर्शः ॥६८॥  
 हृष्टापि सा ह्रीविजिता न साक्षाद्वाग्भिः सस्त्रीनां प्रियमग्धनन्दत् ।  
 स्थली नवाग्भःपृषताभिष्टृष्टा मयूरकेकाभिरिवाभ्रशृन्दम् ॥६९॥  
 इति शिरसि स वार्य पादमाधायराज्ञा-  
 मुदवहदनवर्षां तामवधादपेतः ।  
 रथतुरगरजोभिस्तस्य रूचालकाग्रा  
 समरविजयलक्ष्मीः सैव मूर्त्ता बभूव ॥७०॥

भ्रजके मोढ़ा लोट धार । छोटे हुए लड्डुघोके बीच ध्रज उन्हें ऐसे सगे भागो मूँवे हुए कमलोंके बीचमे चन्द्रमा चमक रहा हो ॥६५॥ तब उन भूदित पडे हुए राजाघो की ध्वजामोपर शरिस्ते सवे दाएकी ओरकोसे यह जिस दिशा गया—हे राजाघो ! इस समय राजकुमार शत्रुने तुम लीनों का यश तो दे लिया पर क्या करके प्राण नहीं लिए ॥६५॥ बनने अपने सिरका कूट उतारा तो उनके बाल छितरा गए, उनके भाषेपर पसीना छा गया और धनुषके एक छोरपर बाँह टेककर वे इन्दुमतीके पास आकर बोले ॥६६॥ 'इन्दुमती ! चलो देखो, युद्धभूमि मे राजा शीघ्र इस प्रकार सोए पडे है कि बालक भी उनके पास खीन लावें । देखो, इसी बलपर ये तुम्हें मेरे हाथोंसे छीनने पडे थे ॥६७॥ जब इन्दुमतीको विश्वास हो गया कि अब मारे गए सब उसका मूँह उस दर्पणके समान सुन्दर लगने लगा जिसपर लकी हुई सौवर्णी भाग मोछ दी गई हो ॥६८॥ अपने पतिका पराक्रम देखकर इन्दुमती प्रसन्न तो हुई पर वह इतनी लजा गई कि उसके धुँहगे उनके अभिनन्दन के लिए शब्द तक निकले । पर जैसे नये बादलोंकी बूँदोंसे भीनी हुई पृथ्वी गोर के चन्देसे मेघोपरा स्वागत करती है वैसे ही उसनी ससियोंने जो भ्रजकी प्रदक्षा की वह मानते इन्दुमतीने ही उनका अभिनन्दन किया हो ॥६९॥ इस प्रकार पवित्र ध्रज उन राजाघोके सिरपर बायाँ पैर रखकर सुन्दरी इन्दुमतीनी लेकर चले । उनके रचने पोढ़ोकी टापोसे उठी हुई क्षणसे इन्दुमतीके वेश भर गए थे

प्रथमपरिगतार्थस्तं रघुः संनिघृत्तं  
 विजयिनमभिनन्द्य श्लाघ्यवायारामेतम् ।  
 तदुपहितबुद्धयः शान्तिमार्गोत्सुकोभूत्  
 न हि सति कुलधुर्ये सूर्यवंश्या गृहाय ॥७१॥

इति महाकवि श्रीकालिदासकृतौ रघुवक्षे महाकाव्ये अजेनेन्दुमतीपाणि-  
 ग्रहणो नाम सप्तमः सर्गः ॥

और वह साक्षात् विजयसदमी जैसी जान यह रही थी ॥७०॥ रघुको यह समाचार पहले ही मिल  
 चुका था इसलिये उन्होंने सुन्दरी पत्नी के साथ भाए हुए विजयी अजना स्वागत किया और फिर  
 उन्हें बुद्धयवा भाए सौपनर मोटावी छापनामे लग गए, क्योंकि सूर्यवंशी राजाओ का यह नियम है  
 कि जब पुत्र कुलका भार संभालने के योग्य हो जाता है तब वे चरने नहीं रहते ॥७१॥

महाकवि श्रीकालिदासने रचे हुए रघुवक्ष महाकाव्यमे अजना विवाह  
 नामक सातवां सर्ग समाप्त हुआ

## ॥ अष्टमः सर्गः ॥

अथ तस्य विवाहकौतुकं ललितं विभ्रत एव पार्थिवः ।  
 वसुधामपि हस्तगामिनीमकरोदिन्दुमतीमिवापराम् ॥१॥  
 दुरितैरपि कर्तुमात्मसात्प्रयतन्ते नृपक्षनवो हि यत् ।  
 तदुपस्थितमग्रहीदजः पितुराज्ञेति न भोगतृष्यया ॥२॥  
 अनुभूय वशिष्ठसंभृतैः सलिलैस्तेन सहाभिषेचनम् ।  
 विशदोच्छ्वसितेन मेदिनीं कययामास कृतार्थतामिव ॥३॥  
 स यभूव दुरासदः परैर्गुरुणार्थविदा कृतक्रियः ।  
 पवनान्गिनसमागमो ह्ययं सहितं ब्रह्म यदस्त्रतेजसा ॥४॥  
 रघुमेव निघृत्तपौषिनं तममन्यन्त नवेश्वरं प्रजाः ।  
 स हि तस्य न केवलां धियं प्रतिपेदे सकलान्गुणानपि ॥५॥  
 अधिकं शुश्रुभे शुभं युना द्दितयेन द्वपमेव सङ्गतम् ।  
 पदमृद्धमजेन पैतृकं निनयेनास्य नवं च यौवनम् ॥६॥  
 सदयं बुभुजे महाभुजः सहसोद्वेगमियं ब्रजेदिति ।  
 अचिरोपनतां स मेदिनीं नवपाणिग्रहणां वधुमिव ॥७॥

## आठवाँ सर्ग

इसी भजने विवाह का सुन्दर मङ्गल-सूत्र उतारा भी नहीं था कि रघुने भजने के हाथोंसे सारी पृथ्वी इस प्रकार सौंप दी मानो वह भी दूतनी इन्दुगती हो ॥१॥ जिस राज्यको पानेके लिये दूतने राजपुत्रको छोड़े अपनासारा प्रयोग करनेसे भी नहीं सकोच करते, वसी राज्यको भजने केवल भजने, पिताकी आज्ञा मानकर ही स्वीकार कर लिया, भोगकी इच्छासे नहीं ॥२॥ जिस समय भजना राज्याभिषेक हुआ उस समय वशिष्ठजीने उनके ऊपर जो पवित्र जल छिड़का वह पृथ्वीपर भी पड़ा । उसके कारण पृथ्वीसे जो आप निकसी वह मानो यह सूपित करती थी कि उसे भी भजने राजा होनेसे सन्तोष है ॥३॥ प्रदर्वेदने जाननेवाले वशिष्ठजीने जब उनका राज्याभिषेक कर दिया तब ये इतने तेजस्वी हो उठे कि उनसे सब सब भाँप गए क्योंकि जब श्राव्य तेजसे सत्य ब्रह्मतेज मिल जाता है तब वह बसा ही बलरानी हो जाता है जैसे वायुका सहारा पाकर धूमि ॥४॥ वहाँकी प्रजापति भी भजने राजा होनेपर मही समझ मानो रघु ही पिरसे युवा हो गये हो क्योंकि भजने केवल रघुकी राज्य-उपनीका ही नहीं पाया था वरन् रघुने सब कुछ भी उनसे प्राप्त गए थे ॥५॥ उस समय सतारने केवल दो ही बरतुएँ एक दूसरेसे मिलकर सुन्दर बँबी, एव दो पिताना भरपूरा राज्य पाकर भज धोर दूसरे भजकी नम्रता पाकर उनका नया यौवन ॥६॥ महाबाहु भजने नई पाई हुई पृथ्वीका पावन यह समझकर दयालुतासे साथ करना प्रारम्भ किया कि नहीं पवित्र बटोरताका व्यवहार

अहमेव मतो महीपतेरिति सर्वः प्रकृतिष्वचिन्तयत् ।  
 उदधेरिव निम्नगाश्वतेष्वमवन्नास्य विमानना क्वचित् ॥ ८ ॥  
 न खरो न च भूयसा मृदुः पवमानः पृथिवीरुहामिव ।  
 स पुरस्कृतमध्यमक्रमो नमयामास नृपाननुद्धरन् ॥ ९ ॥  
 अथ वीच्य रघुः प्रतिष्ठितं प्रकृतिष्वात्मजमात्मव्रचया ।  
 विपयेषु विनाशधर्मसु त्रिदिवस्येष्वपि निःस्पृहोऽभवत् ॥ १० ॥  
 गुणवत्सुतरोपितश्रियः परिणामे हि दिलीपवंशजाः ।  
 पदर्षीं सरुवल्कवाससां प्रयताः संयमिनां प्रपेदिरे ॥ ११ ॥  
 तमरस्यसमाश्रयोन्मुखं शिरसा वेष्टनशोभिना सुतः ।  
 पितरं श्लिषत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः ॥ १२ ॥  
 रघुरश्रुमुखस्य तस्य उत्कृतवानीप्सितमात्मजप्रियः ।  
 न तु सर्प इव त्वचं पुनः प्रतिपेदे व्यपवर्जितां श्रियम् ॥ १३ ॥  
 स किलाश्रममन्त्यमाश्रितो निवसन्नावसथे पुराद्रहि ।  
 समुपास्यत पुत्रभोग्या स्तुपयेवाविकृतेन्द्रियः श्रियाः ॥ १४ ॥

करनेसे वह भी उसी प्रकार न पबरज जाय जैसे नई व्याही हुई वह कठोर व्यवहार से घबरा जाती है ॥७॥ वे अपनी प्रजाको बहुत प्यार करते थे । इससे सब लोग अपने-पपने मनमें मही सोचते थे कि वे हमे ही सबसे अधिक मानते हैं । बात यह थी कि जैसे समुद्र बँकड़ी नवियोसे एवसा ही व्यवहार करता है जैसे ही वे भी न किसीका गुदा चाहते थे न किसीसे घोर करते थे ॥८॥ वे न तो बहुत कठोर थे और न बड़े कोमल । उन्होने बीषका मार्ग पकडा था और अपने शत्रु राजाओंको राजगद्दीसे उतारे बिना ही उनके उसी प्रकार नष्ट कर दिया जैसे नक्षत्र गतिसे महनेवाला वामु वृषोको उखाडता तो नहीं पर मुका व्यवस्था वेता है ॥९॥ जब रघुने देखा कि हमारे पुत्र मरुका प्रजामे बडा घाबर है और वह भली-भाँति राज कर रहा है- तब उन्हे इतना भारमज्ञान हो गया कि स्वर्गके उन गुलामी की भाँह भी उन्होने छोड़ दी जो कभी न कभी नष्ट हो ही जाते हैं ॥१०॥ दिलीप के वशमे जितने राजा हुए वे मुदौतीमे सब राज-काज अपने गुणवानु पुत्रको सौंपकर विषमसे पेड़की छाज का बहन पहननेवाले सन्यासियोंके समान जगलमे चले जाते थे ॥११॥ इसलिये जब राजा रघु जगलमे जाने को उद्यत हुए तब मजने मनोहर पगड़ी-वासा अपना हिर उगने भरखो मे नवाकर प्रार्थना की कि आप मुझे छोड़कर न जाइये ॥१२॥ अपने पुत्र मरुको रघु बहुत प्यार करते थे, इसलिये मरुकी माँसमे घाँसु देलकर वे रुक तो गए पर जैसे सौर अपनी केशुली छोडकर फिर उसे नहीं ग्रहण करता जैसे ही उन्होने जिस राक्ष-नक्षत्रीको एक बार छोड़ दिया फिर स्वीकार नहीं किया ॥१३॥ वे संन्यास लेकर नगरके बाहर एक कुटियामे रहने लगे । जिस भूमिपर उनके पुत्र राज्यकर रहे थे वह जितेन्द्रिय रघुको वन-भूम देकर उसी

प्रशमस्थितपूर्वपार्थिवं कुलमभ्युद्यतनूतनेश्वरम् ।  
 नभसा निभृतेन्दुना तुलाप्लुदितार्केण समासरोह तत् ॥१५॥  
 यतिपार्थिवलिङ्गधारिणौ दृष्ट्याते रघुराध्वौ जनैः ।  
 अपवर्गमहोदयार्थयोर्भुवमंशाखि धर्मयोगीतौ ॥१६॥  
 अजिताधिगमाय मन्त्रिभिर्युजे नीतिविशारदैरुजः ।  
 अनपायिपदोपलब्धये रघुराप्तैः समियाय योगिभिः ॥१७॥  
 नृपतिः प्रकृतीरवेक्षितुं व्यवहारासनमाददे युवा ।  
 परिचेतुमुपांशु धारणां कुशपूतं प्रवयास्तु विष्टरम् ॥१८॥  
 अनयत्प्रभुशक्तिसंपदा वशमेको नृपतीननन्तरान् ।  
 अपरः प्रणिधानयोम्यया मरुतः पञ्च शरीरगोचरान् ॥१९॥  
 अक्रोदचिरेश्वरः क्षितौ द्विपदारभ्रफलानि भस्मसात् ।  
 शूरो दहने स्वकर्मणां वष्ट्रे ज्ञानमयेन वह्निना ॥२०॥  
 पयधन्वमुखान्गुणानजः पदुपायुङ्क्त समीक्ष्य तत्फलम् ।  
 रघुरप्यजयवृगुणध्वर्यं प्रकृतिस्थं समलोप्यकाञ्चनः ॥२१॥

प्रकार सेवा कर रही थी मानी जनकी पतीह ही ही ॥१५॥ उच समय सूर्य वध उस आकाशके  
 समान लग रहा था जिससे एक घोर पन्द्रमा खिस रहे हो घोर दूसरी घोर सूर्य निकल रहे हो, [यवोवि  
 एव घोर राजा रघु सन्यास लेकर शान्तिका जीवन पिठा रहे थे घोर दूसरी घोर ऐश्वर्यशापी  
 भ्रज राजा बनकर गहीपर बैठे थे] ॥१५॥ सन्यासी बने हुए रघु घोर राजा बने हुए भ्रजको दैतकर  
 खोमोने यह समझ लिया कि मोक्ष घोर ऐश्वर्य देनेवाले क्योंके दो घट पृथ्वीपर साय-साय बने  
 थाए हैं ॥१६॥ एक घोर भ्रज नीति जाननेवाले मन्त्रियोंके साथ दिव्यजपका विचार करने लगे,  
 दूसरी घोर रघु भी मोक्ष पद पाने के लिये तत्वदर्शी योगियोंके साथ जास्र चर्चा करने लगे ॥१७॥  
 इपर युवा राजा भ्रज जनताके कामोकी देखभाल करनेके लिये न्यायके पासपर बैठे थे, इपर  
 दूडे रघु अपने मनको साधनेका अभ्यास करनेके लिये धनेकेमें कुशाधे पवित्र आसनपर बैठते थे ॥१८॥  
 भ्रजने ही अपने प्रभुत्व घोर अपनी शक्तिसे प्राप्त प्राप्त के शत्रु राजाधोवो पत्रमे कर लिया घोर रघुने  
 अपने योगबलसे शरीरके भीतर रहनेवाले [प्राण, अपान, समान, उदान घोर ध्यान इन ] पाँवों  
 पवनोवो अपने वशमे कर लिया था ॥१९॥ भ्रजने पृथ्वीपर शत्रुधोवो सब चालें गप्ट कर डाली  
 घोर रघुने जानकी मन्त्रिसे अपने सारे क्यों को रास कर शाना ॥२०॥ एक घोर भ्रज [ सधि,  
 विग्रह, यान, पाहन, धायध घोर द्वीधोभाव इन ] छह नीतियोंका परिष्कार समझन प्रयोग करते  
 थे, दूसरी घोर मिट्टी घोर सोना दोनोनी बरबर सभभनेवाले रघुने भी प्रकृतिये सत्व, रज घोर

न नवः प्रभुराफलोदयात्स्विक्रमा विरराम कर्मतः ।  
 न च योगविधेर्नवेतरः स्थिरधीरा परमात्मदर्शनात् ॥२२॥  
 इति शत्रुषु चेन्द्रियेषु च प्रतिपिद्धप्रगरेषु जाग्रती ।  
 प्रसिताबुदयापवर्गयोर्हर्ष्यां मिद्धिसुभावशापतुः ॥२३॥  
 अथ काश्चिदज्यपेक्षया गमयित्वा ममदर्शनः ममाः ।  
 तमसः परमापदव्ययं पुरुषं योगममाधिना रघुः ॥२४॥  
 श्रुतदेहविसर्जनः पितृश्रिमश्रूणि विमुच्य राघवः ।  
 विदधे विधिमस्य नष्टिकं यतिभिः सार्धमनग्निमग्निचित् ॥२५॥  
 अफरोत्स तर्दीर्घदैहिकं पितृभदत्या पितृकार्यदल्पदित् ।  
 न हि तेन पथा तनुत्यजस्तनयार्जितपियडकाट्टन्निष्णः ॥२६॥  
 स परार्घ्यगतेरशोच्यतां पितुरुद्दिश्य सदर्थवेदिभिः ।  
 शमिताधिरधिज्यकार्मुकः कृतयानप्रतिशाननं जगत् ॥२७॥  
 क्षितिरिन्दुमती च भामिनी पतियासाय तमउपपीरुपम् ।  
 प्रथमा यहुरत्नमूरभूदपरा वीरमजीजनत्सुतम् ॥२८॥

तम इत्येव हीन गुणोक्तो जीत तिया ॥२१॥ इदं प्रतिपादयति अत्र त्रय विधौ वानयो उद्योते ये तौ  
 उद्ये त्रयतय मही द्योदते ये त्रयतय मह पूरा नही हो जाया था, बंगे ही स्थिर पित्तयाने रघुने भी  
 त्रयतय-वीरभ्रिया नही द्योदी जयतय उन्हें परमात्मावा दर्शन नही हो गया ॥२२॥ एव प्रवार एव  
 और मन सारे सचारपे ऐश्वर्यको प्राप्त करनेके लगे हुए थे और दूरी घोर रघु मोक्ष प्राप्त करनेके  
 मन लगाए हुए थे । करने करने शत्रुघोरा बहना खोकर घोर रघुने इन्द्रियाको समान करने अपनी-  
 अपनी मिथ्या प्राप्त कर ली ॥२३॥ सबको समान समानोक्ताने रघुने अत्र च कहने हुए परं गगारमें  
 और बिलाए । फिर योगवर्षके लया प्रकाशमान, ध्वनिवाली परमात्माय सीन हो गए ॥२४॥ अपने  
 पिताने देहत्यागका समाचार पाकर अग्निहोत्र करनेवाले अत्र बहूने रहे । उन्होंने अपने पिताके  
 शरीरका दाहनकरार नही किया बल्क योगिवर्षके माप उनके शरीरको ले जाकर दृष्टीके समाधि दे  
 दी [क्योंकि सन्यासिवीरा दाहत्यागकर नही किया जाता ] ॥२५॥ यद्यपि रघु बंगे-यो महात्मा योग  
 यतके शरीर त्याग करने मुक्त हो जाने हैं उन्हें अपने पुत्रों के निन्दान की आश्चर्यकरा नही रहनी,  
 फिर भी अत्र तो यह जानते ही थे कि पिताका समाचार किस प्रकार करना चाहिये । इसलिये उन्होंने  
 बड़ी भक्तिसे अपने पिताके आत्मा प्राप्ति मन्त्रार किए ॥२६॥ अन्तर्जाली पम्पिणों जन अत्रको समझना  
 कि सुन्दारे पिताने मोक्ष या तिया है सब उन्हें औरत हुआ और उनका एक चक्र हुआ । सब के  
 धनुष-शाल लेकर सारे गगारपर प्रबल राज करने लगे ॥२७॥ पूर्वी घोर इन्दुमती योगों अत्र बंगे  
 महापराश्रमीकी पतिने रूपके पाकर बड़ी प्रगमन हुई और करनेके दृष्टीके बहूने रत्न उपायन किए

कुसुमान्यपि गात्रसंगमात्प्रभवन्त्यायुरपोडितुं यदि ।  
 न अघिष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यता विधेः ॥४४॥  
 अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः ।  
 हिमसेकविषत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता ॥४५॥  
 सगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।  
 विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥४६॥  
 अथवा मम भाग्यविप्लवाद्दशनिः कल्पित एष वेधता ।  
 यदनेन सरुर्न पातितः क्षपिता तद्धिटपाश्रिता लता ॥४७॥  
 कृतवत्यसि नावधीरशामपराद्धेऽपि यदा चिरं मयि ।  
 कथमेकपदे निरागसं जनमाभाष्यमिमं न मन्यसे ॥४८॥  
 ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते विदितः कैतववत्सलस्तव ।  
 परलोकमसंनिषुक्तये यदनापृच्छथ गतासि मामितः ॥४९॥  
 दयितां यदि तापदन्वगाद्विनिषृषं किमिदं तथा विना ।  
 सहतां हतजीवितं मम प्रबलामात्कृतेन वेदनाम् ॥५०॥  
 सुरतश्रमसंभृतो मुखे ध्रियते स्वेदलवोद्गमोऽपि ते ।  
 जय चास्तमिता त्वमात्मना धिगिमां देहमृतामत्तारताम् ॥५१॥

राम ! जब फूल भी धरौरीको छूकर प्राण में चकते हैं तब तो चंब चाहे किट वस्तु से किसी की भी मार सकता है ॥४४॥ या संभवत कोमल वस्तुको मारनेके लिये देव कोमल वस्तुका ही प्रयोग करता हो, क्योंकि मीने पहने ही देख लिया है कि नलिनीको नष्ट करनेके लिये पाला ही बहुत होता है ॥४५॥ और यदि इस मासामे ही प्राण हरनेकी शक्ति है तो जो मैं भी इसे छापी पर रखे लेता हूँ पर यह मुझे क्यों नहीं मार जानती है । यह ईश्वरकी इच्छा ही तो है, वही विष भी ममृत ही जाता है और वही ममृत भी विष हो जाता है ॥४६॥ या यह मेरा दुर्भाग्य ही सम्भला चाहिए कि पिपासामे इस मानाको ऐसी बिजली बनाकर चिरण्या है जिसने पेटयो तो छोड़ दिया पर उसके साथ निषटी हुई नताने जला दिया ॥४७॥ हे इन्दुमती ! मैंने बहुत अपराध किए पर तुमने कभी मेरा तिरस्कार नहीं किया फिर आज एनाएक विना अपराधमे ही तुम मुझे वात करने के योग्य भी क्यों नहीं समझ रही हो ॥४८॥ हे मधुर हँसो हँसनेवाली ! चुपने सचमुच यह समझा है कि मैं तुमसे भूखा भ्रम करता हूँ इसीलिये तो तुमने बिना पूछे तुम सदाके लिये परलोचकी चखदी ॥४९॥ मेरे ये नीच प्राण जब प्रियाने साथ-साथ एक बार चले गए थे तब ये जोट क्यों गए । जब इनकी करने ही ऐसी है तब ये भोगें कुछ । मैं क्या कर सकता हूँ ॥५०॥ धनो तुम्हारे मूर्खपत्ते सम्भोगकी शवानटने पसीनेकी दूँधे भी नहीं सूखी और तुम चल बसी । धिक्कार है मनुष्यकी इस नस्वरत्ताको ॥५१॥ मैंने कभी मनसे भी तुम्हारी थुपाई नहीं की, फिर

मनसापि न विप्रियं मया कृतपूर्वं तव किं जहासि माम् ।  
 ननु शब्दपतिः क्षितेरहं त्वयि मे भावनिबन्धना रतिः ॥५२॥  
 कुसुमोत्पचितान्वलीभृतश्चलयन्मृङ्गरुचरस्तवालकान् ।  
 करभोरु करोति मारुतस्त्वदुपावर्षनशङ्कि मे मनः ॥५३॥  
 तदपोहितमर्हसि प्रिये प्रतिबोधेन निषादमाशु मे ।  
 ज्वलितेन गुहागतं तमस्तुहिनाद्रेरिव नक्तमोपधिः ॥५४॥  
 इदमुच्छ्वसितालकं मुखं तव विश्रान्तकथं दुनोति माम् ।  
 निशि सुप्तमिर्वैकपङ्कजं विरताभ्यन्तरपट्टदस्वनम् ॥५५॥  
 शशिनं पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचरं पतत्रिणम् ।  
 इति तौ विरहान्तरण्मौ कथमत्यन्तगता न मां दहेः ॥५६॥  
 नक्षपल्लवसंस्तरेऽपि ते सृष्टु दूयेत यदङ्गमर्षितम् ।  
 तदिदं विपहिष्यते फथं वद वामोरु चिताधिरोहणम् ॥५७॥  
 इयमप्रतिबोधशाधिनीं रशना त्वां प्रथमा रहःसखी ।  
 गतिविभ्रसादनीरवा न शुचा नानुमृतेव लक्षते ॥५८॥  
 फलमन्यभृतासु भाषितं फलहंसीषु मदालसं गतम् ।  
 पृपतीषु विलोलमीक्षितं पयनाभृतलतासु विभ्रमाः ॥५९॥

तुम मुझे क्यों छोटे जा रही हो । [उत्पन्न प्रती तो] मैं पृष्ठीका पति तो नाम भरषी हूँ, मेरा सब्बा प्रेम तो बैचल तुमसे ही है ॥५२॥ हे सुन्दर भाषोवासी ! फूलोंसे बुंधी शीर भीरो के समान काली तुम्हारी सटे जब दापुसे हियती हैं तब मेरे मनमे यही घासा होने लगती है कि तुम मबरम जी छोडोगी ॥५३॥ इसप्रिये हे प्रिये ! जैसे रातमे चमकनेवाली इक्षिणी ग्रहमे प्रकाशसे हिंस्रजपकी घोड़ेरी गुफामे भी जादनी कर देती है वैसे ही तुम भी फिरसे जागकर मेरा दुःख मिलाओ ॥५४॥ मौन भीरोरो भरे हुए शीर रातमे मुंदे अवेले कमलके अंश सधनेवाला तुम्हारा मिलरो भलकॉसे हका मौन भुत्त देवाकर मेरा हृदय फटा जा रहा है ॥५५॥ देखो नन्दमाको रात्रि फिर मिल जाती है, चनवेको चनवी भी प्राप्त मिल ही जाती है इसलिये उन्हें बिलोहकम दुःख थोरो ही देखलक रहता है पर तुम तो तबके लिये चली जा रही हो, फिर बताओ मैं विरहकी भागमे जनकर नयो न मसम हो जाऊँ ॥५६॥ कौमल पल्लवोका बिलोना भी जिसके शरीरमे चुबता था, हे सुन्दर जपावाली ! बताओ वही शरीर बितापर कैसे चढ सकेगा ॥५७॥ क्या तुम नहीं देख रही हो कि तुम्हारी हावभरी बालके बन्द हो जानेसे तुम्हारी एकान्त सखी यह लगती भी तुम्हे सदाके लिये शोवी देवपर तुम्हारे शोभमे मरी सी दिखाई दे रही है ॥५८॥ तुम्हारी मोठी बोली बोगलोंने ले ली, तुम्हारा धीरे-धीरे चलना कलहृत्तिनयोंने ले लिया, तुम्हारी चनस चितवन हरिणियोंको मिल गई मौन तुम्हारा चुल-



त्रिदिवोत्सुक्याप्यवेक्ष्य मां निहिताः सत्यममी मुग्धास्त्वया ।  
 विरहे तव मे गुरुच्यर्थं हृदयं न त्ववलाम्बितुं क्षमाः ॥६०॥  
 मिथुनं परिकल्पितं त्वया सहकारः फलिनी च नन्विमौ ।  
 अविधाय विवाहसत्क्रियामनयोर्गम्यत इत्यसांप्रतम् ॥६१॥  
 कुसुमं कृतदोहदस्त्वया यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति ।  
 अक्षमाभरणं कथं नु तत्तव नेष्यामि निवापमाल्यताम् ॥६२॥  
 स्मरतेव सशन्दनपुरं चरणानुग्रहमन्यदुर्लभम् ।  
 अमुना कुसुमाश्रुचपिंशा त्वमशोकेन मुग्धात्रि शोच्यसे ॥६३॥  
 तव निःश्वसितानुकारिभिर्नकुलैर्घर्षचितां समं मया ।  
 असमाप्य विलासमेखलां किमिदं किञ्चरकण्ठि सुप्यते ॥६४॥  
 सद्गुणःप्रसुरः सखीजनः प्रतिपञ्चन्निभोऽयमात्मजः ।  
 ब्रह्मेकरसस्तथापि ते व्यवसायः प्रतिपचिनिष्ठुरः ॥६५॥  
 धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरतं गेषमृतुर्निरुत्सवः ।  
 गतमाभरणप्रयोजनं परिशून्यं शयनीमथ मे ॥६६॥

तुलापन वापुसे हिलती हुई सताप्रो मे पहुँच गया ॥६६॥ अपने स्वर्ग जानेकी उतावलीमे यद्यपि तुमने मुझे ब्रह्मानेके लिए अपने गुण यही छोड़ दिए हैं पर तुम्हारे बिछोहमे तो मैं इतना धीर हो गया हूँ कि इन सबसे मेरे हृदयको किसी प्रकार भी छत्रोप नहीं मिल रहा है ॥६०॥ त्रिये । तुमने उस धाम धीर प्रियगुलताका विवाह करना पक्का किया था । इन दोनोंका विवाह किए बिना तुम्हारा जाना ठीक नहीं ॥६१॥ देखो । जिस प्रसोकको तुमने अपने चरणोकी ओकर लगाई थी वह अब प्रागे चलकर फूटेगा तब तुम्हारे केसोको सजानेवाले उनके फूलोकी री जलदानकी प्रकृतिये कैसे ले सकूँगा ॥६२॥ हे सुन्दरी । तुम्हारे म्रुतमुनावे विदुमोवाले चरणकी ओकर निचोको नहीं मिलती पर तुमने यही कृपा करके उस राजोवनी ओकर लगाई थी । अब उन तुम्हारे चरणोकी कृपाकी स्मरण करके ही यह मजोव वृत्त फूटोके भीमू बरखाकर तुम्हारे लिए रो रहा है ॥६३॥ हे मधुर-भाषिणी । अपने दवासके समाज सुगम्य वाले मौबसिरीमे फूलोकी री गुन्दर माता मुम मेरे साथ गूँप रही थी उसे अपनेभी ही छोडकर क्या सो रही हो ॥६४॥ तुम्हारे मुखदुखकी साधिन मे यद्यपि खरी है, गुल वरके चन्द्रमाके समान प्रखल मुखनासा तुम्हारा मुम भी यही है धीर तुम्हारा वह अनन्य प्रेमी मैं भी तुम्हारे साथ हूँ, फिर हम लोकोकी छोडकर चने जानेकी ओ तुमने ठान ली है तुम्हारी यही बडोरता है ॥६५॥ अब मेरा धीरज छूट गया, मानन्द जाता रहा, गाना-वजाना हट चला गया, शत्रुएं पीकी बर गई, पहनना छोडना बेचाम हो गया धीर लय्या भी सूती हो गई ॥६६॥

गृहिणी सचिवः सखी मित्रः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।  
 करुणाविमुक्तेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ॥६७॥  
 मदिराक्षि मदाननार्पितं मधु पीत्या रसवत्कथं नु मे ।  
 अनुपास्यसि बाष्पद्रुपितं परलोकोपनतं जलाञ्जलिम् ॥६८॥  
 विभवेऽपि सति त्वया विना सुखमेतावदजस्य गण्यताम् ।  
 अहृतस्य विलोभनान्तरैर्मम सर्वे विपयास्त्वदाश्रयः ॥६९॥  
 विलपन्निति कोशलाधिप करुणार्थग्रथितं प्रियां प्रति ।  
 अफरोत्पृथिवीरुहानधि सुतशास्त्रारसबाष्पद्रुपितान् ॥७०॥  
 अथ तस्य कथंचिदङ्कतः स्वजनस्तामपनीय सुन्दरीम् ।  
 विमत्तर्जं तदन्त्यमण्डनामनलायागुरुचन्दनैधसै ॥७१॥  
 प्रमदामनु संस्थितः शुचा नृपतिः सन्निति वाच्यदर्शनात् ।  
 न चकार शरीरमग्निसात्सह देव्या न तु जीविताशया ॥७२॥  
 अथ तेन दशाहतः परे गुणशेषामुपदिश्य भामिनीम् ।  
 विदुषा विधयो महर्द्धयः पुर एवोपवने समापिताः ॥७३॥  
 स विवेश पुरीं तथा विना क्षयदापायशाशाङ्कदर्शनः ।  
 परिवाहमिधायलोकयन्स्वशुचः पौरवधुमुखाश्रुपु ॥७४॥

तुम्ही मेरी स्त्री थी, सम्मति देनेवाली मित्र थी, एकान्तकी सखी थी और गाल बिद्या मादि कलाप्रो-  
 के ललित कलाप्रोमे शिष्या थी । तुम्ही बताओ तुम्हें मुझसे छीनकर निर्दयी विभाठाने मेरा क्या नहीं  
 छीन लिया ॥६७॥ हे मवभरे नयनवाली ! तुमने मेरे मुँहसे छूटे हुए स्वादिष्ट भासवकी पीया है,  
 मधु, तुम बाँसुप्रोके जलसे गिली हुई गंदगी जलाञ्जलिनो परलोकमे कैसे पी सकोगी ॥६८॥ इतना  
 देववर्ष होनेपर भी तुम्हारे बिना अजका सारा सुख मिट्टी हो गया हे क्योंकि मुझे और किसी वस्तुसे  
 तो प्रेम है नहीं, मेरे तो सब सुखोना केन्द्र तुम्ही थी ॥६९॥ जब शौचलनरेश अज अवनो प्रियाके  
 सिये इस प्रकार शोक करके रो रहे थे उस समय उन्हें देखकर कृश भी मानो अवनो शाखाप्रोसे रस  
 बहाकर रोने लगे ॥७०॥ इन्द्रमियीने अजकी गोदीसे ज्यो ल्यो करके इन्द्रमतीका शरीर हटाया और  
 उसी पुष्पमालासे उसका श्रुद्धार करके अजर और चन्दनकी अकडियोसे उनका दाह-संस्कार किया  
 ॥७१॥ अवनो परलोकके विद्योगमे राजा अज इतने व्याकुल हो गए कि उन्हें जीनेकी साथ जाती  
 रही किन्तु वे इन्द्रमतीके साथ इसलिये चितापर नहीं पडे कि कहीं लोग यह न कहने लगे कि राजा  
 अजने विद्राव होकर भी अवनो स्त्रीके पीछे प्राण दे दिए ॥७२॥ जिस इन्द्रमतीके केवल गुण भर  
 वने रह गए थे उस प्रियाके सब क्रिया-वर्ष साध जाननेवाले अजने बस दिन पीत जानेपर उसी  
 उपवनमे बडे धूम-धामसे पूरे किए ॥७३॥ इन्द्रमतीके विद्योगमे अज ऐसे उदास लगने लगे जैसे  
 रात घीत जानेपर चन्द्रमा मन्द पड जाता है । जब वे गगरमे धुले सब उन्हें देखकर नगर भरकी

अथ तं सवनाय दीक्षितः प्रशिष्यानाद्गुरुराश्रमस्थितः ।  
 अमिपङ्कजदं विलङ्घिवानिति शिष्येषु किलान्वबोधयत् ॥७५॥  
 अस्ममाप्तविधिर्यतो मुनिस्त्वव विद्वानपि तापकारणम् ।  
 न भवन्तमुपस्थितः स्वयं प्रकृतौ स्थापयितुं पथश्च्युतम् ॥७६॥  
 मयि तस्य सुवृत्तं वर्तते लघुसंदेशपदा सरस्वती ।  
 शृणु विश्रुतमच्चसारं तां हृदि चैनामुपधातुमर्हसि ॥७७॥  
 पुरपस्य पदेष्वजन्मनः समतीतं च भवच्च भावि च ।  
 स हि निष्प्रतिवेन चक्षुषा त्रितयं ज्ञानमयेन पश्यति ॥७८॥  
 चरतः किल दुश्चरं तपस्तृणविन्दोः परिशङ्कितः पुरा ।  
 प्रलिषाय समाधिभेदिनीं हरिरस्मै हरिणीं सुराङ्गनाम् ॥७९॥  
 स तपःप्रतिबन्धमन्युना प्रमुखाविष्कृतचारुविभ्रमाम् ।  
 अशपद्भ्य मानुपीति तां शमपेलाप्रलपोर्मिषा भुवि ॥८०॥  
 भगवन्परवानयं जनः प्रतिकूलाचरितं क्षमस्व मे ।  
 इति चोपनतां क्षितिस्पृशं कृतवाना सुरपुष्पदर्शनात् ॥८१॥  
 क्रथकैशिकवशमंभया तव भूत्वा महिषी चिराप सा ।  
 उपलब्धवती दिवश्च्युतं विवशा शापनिवृत्तिकारणम् ॥८२॥

खिनी फूट फूटकर रोने लगी मानी अजना घोष इतनी धीकीसे वह निकला ही ॥७५॥ उन दिनी  
 बसिष्ठजी पक्ष कर रहे थे । उन्होंने आश्रममें ही योगबलसे राजाके योगका कारण जान लिया और  
 एक क्षिप्यसे भ्रजने पात संदेश भेजा । क्षिप्यने भ्रजने प्रकार कहा—॥७५॥ 'बसिष्ठ मुनिजा पत  
 समाप्त नहीं हुआ है इसलिये आपके दुःखको जानते हुए भी न तो वे या ही सवे और न आपकी इस  
 क्षोभमें पीरज ही बँपा सके ॥७६॥ हे अचरित राजा ! मैं उनका एक छोटासा सन्देश लाया हूँ,  
 जैसे आप पीरज रहकर सुनिए और समझिए ॥७७॥ वे अपने ज्ञानसे नेत्रोंसे तीनी लोकोनी धोती  
 हुई, होती हुई और होनेवाली सभी बातें जानते हैं ॥७८॥ एक बार तृणविन्दु नामक ऋषि तप कर  
 रहे थे । उनकी तपस्यासे हरकर इन्द्रने उनका तप भंग करने में लिये हरिणी नामकी भप्परा भेजी  
 ॥७९॥ जैसे प्रलय कालकी सहर समुद्र तटको टाह देती है वैसे ही ऋषिका तप टिपानेके लिये वह  
 भप्परा भी वहाँ पहुँची । भप्पराको देखते ही मुनिने क्रोधित होकर धाप दिया कि जा तू सत्तारने मनु-  
 प्यरी स्त्री ही ॥८०॥ ताप सुनते ही भप्परा धररा उठी । वह हाथ जोड़कर गिबगिहाकर बोली—  
 हे भगवन् ! मैंने दूखों के बहनेसे यह काम किया है, भेरा इसमें कुल भी क्षोभ नहीं है, मुझे क्षमा  
 कीजिये । इसपर ऋषिने कहा—जन सब तुम्हें स्वर्गीय पुण्य नहीं दिखाई पड़ेंगे अततक तुम्हें पृथ्वीपर  
 रहना ही पड़ेगा ॥८१॥ बड़ी भप्परा क्रयंक्षिप (विदमं) नेचमें जम्मा लेकर तुम्हारी रानी हुई और  
 इन्द्रने दिनीमाद जैसे ही उसे स्वर्गीय पुण्य दिखाई पड़े, वैसे ही वह सारासे दूखर धरीर छोड़कर बनीगई

तदलं तदपायचिन्तया विपद्रुत्पत्तिमतामुपस्थिता ।  
 वसुधेयमवेक्ष्यतां त्वया वसुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः ॥८३॥  
 उदये मदवाच्यमुज्ज्वता श्रुतमाविष्कृतमात्मवच्चया ।  
 मनसस्तदुपस्थिते ज्वरे पुनरङ्गीव्रतया प्रकाश्यताम् ॥८४॥  
 रुदता कुत एव सा पुनर्भवता नानुमृतापि लभ्यते ।  
 परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम् ॥८५॥  
 अथशोकमनाः कुटुम्बिनीमनुगृहीष्व निवापदत्तिभिः ।  
 स्वजनाश्रु फिल्लाविसंततं दहति प्रेतमिति प्रचचते ॥८६॥  
 मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जायितमुच्यते युधैः ।  
 ज्ञानमप्यचतिष्ठते स्वमन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानमी ॥८७॥  
 अवनच्छति मूढचेतनः प्रियनाशं हृदि शल्पमपितम् ।  
 स्थिरधीस्तु तदेष मन्यते कुशलद्वारतया समुद्रतम् ॥८८॥  
 स्वशरीरशरीरिणाथपि श्रुतसंयोगविपर्ययौ यदा ।  
 विरहः किमिवानुतापयेद्बद्ध बाह्वौ विपर्ययैर्निपदिचतम् ॥८९॥

॥८२॥ इसीलिए प्रथम प्राप उसकी मृत्युवा शोक न कीजिए, क्योंकि जो जन्म लेता है वह मरता ही है । इसलिये भय शोक छोड़कर तापपान होकर प्राप पृथ्वीवा पालन कीजिए, क्योंकि राजाभौ भी सच्ची सहस्रमंचारिणी तो पृथ्वी है ॥८३॥ ऐश्वर्य पाकर राजा लोग मतबाले हो जाते हैं, किन्तु प्राप गुलके बिनोमि भी इस सपवसने बने रहे और प्रथिमाल छोड़कर प्रापन भगने आत्मज्ञानका परिचय दिया । वही ही इस दु राके समयमे भी धीरव परवर प्राप फिर उसी सप्यात्मज्ञानका प्रकाश कीजिए ॥८४॥ रोने की तो बात ही क्या, यदि प्राप मर भी जायें तब भी इन्दुगती प्रापकी नहीं मिल सकती, क्योंकि मरनेपर तब प्रारणी धपने धपन कर्मका अनुगार प्रवेद-प्रसव मार्गमे जाते हैं ॥८५॥ प्रथम प्राप सब शोक छोड़कर विशुद्धात्मा प्रादि करने धपनी पलीका परलोक मुधारिए क्योंकि शास्त्र कहते हैं कि जब कुटुम्बी बहुत रोते हैं तब उखमे प्रेतात्माको बडा चष्ट होत है ॥८६॥ देखिए, जिसने देह धारण की है उसका मरना जो स्वाभाविक है । विद्वानोंका तो यह कहना है कि वास्तवमे जीना ही बडा भारी विहार है । इसलिये प्राणी जितना शक्य जो जाय उतनेमे ही उसे सन्तोष करना चाहिए ॥८७॥ प्रियजानो मृत्युको भूरां शोक बंसा ही कष्टवारव मानने हैं जैसे धातोमे पील मर गई हो, पर विद्वान् लोग यह समझते हैं कि जो मर गया वह गव भन्तों मे घूट गया । जनकी समझमे मृत्युमे वंसा ही मुख मिसवा है जैसे हृदयेमे गरी हुई कील निवारतने ॥८८॥ प्रापही बताइए कि जब शरीर और धा-धा भी धापन मे विपुद्धने जाते मले गए हैं, तब पुत्र, स्त्री प्रादि बाहरी सम्बन्धियों के विद्वान्मे विद्वानोंको नयो दुःख हो ॥८९॥ और फिर प्राप तो त्रिभेन्द्रियों के

न पृथग्जनवञ्छुचो वशं वशिनामुत्तम गन्तुमर्हसि ।

द्रुमसानुमतां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः ॥६०॥

स तथेति विनेतुर्द्वारमतेः प्रतिगृह्य वचो विससर्ज मुनिम् ।

तदलञ्चपदं हृदि शोकधने प्रतिपातमिन्नान्तिकमस्य गुरोः ॥६१॥

तेजाष्टौ परिगमिता समाः कथंचिद्ब्रालत्वादवितथस्तृतेन मूनोः ।

सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनैः प्रियायाः स्वप्नेषु क्षणिकसमागमोत्सर्वैश्च ॥६२॥

तस्य प्रसन्न हृदयं किल शोकशंकुः प्लवप्ररोह इव सौधतलं विभेद ।

प्रायान्तहेतुमपि तं भिषजामसाध्यं लाभं प्रियानुगमने त्वरया स मेने ॥६३॥

सम्पत्प्रिनीतमथ वर्महरं कुमारमादिश्य रक्षयिषीं विधिघटप्रजानाम् ।

रोगोपसृष्टतानुदुर्यसति मृशुचुः प्रायोपवेशनमतिर्नृपतिर्वभूव ॥६४॥

तीर्थेतोयच्यतिफरभवे जह्नु कन्यासरथ्योर्देहत्वागादमरगणनालेख्यमासाद्य सद्यः ।

पूर्वाकाराधिकतररुचा संगतः कान्तयासौ लीलागारेष्वरमत पुनर्नन्दनाभ्यन्तरेषु ॥६५॥

इति महाकविधोकालिदासकृती रघुवंशे महाकाव्ये

अजयितापो नाम अष्टमः सर्गः ॥

सर्वधेच्छे ह । प्राय सागारणु भोगोंके समान लोक मत कीजिए । यदि पर्वत भी वृक्षकी भाँति भाँधीसे  
हिस उठेगा तो उन दोनोंमें अन्तर ही क्या रहा ॥६०॥ विद्वान् धियाक पुत्र धनिष्कजीवा उपदेश  
राजनि स्त्रीभार विधा और उनके सिप्यको इस प्रकार विदा किया मानो अपने लोकमें हृदयमें स्थान  
न दे क्षणनेमे समया उपदेश हो सोटा दिया हो ॥६१॥ प्रिय, सबभाषी करने अपने पुत्रके वचन  
का ध्यान करके और प्रियाके विषयो देखनेकर तथा स्वप्नमें प्रियाको क्षणमरके समागमना  
मानस्य तैर निर्वा-प्रकार माठ सपने काट दिए ॥६२॥ कहा जाता है कि जेटे पर्वती कहाँ अथवा  
की तपस्वी देवदर गोले पुत्र जाती है वैसे ही सोनकी वल्लीने राजा के हृदयको बलपूर्वक धारदार  
वेप दिया था । वर अपनी प्रियाके पीछे प्राण देनेको ये इतने उत्सुकते थे कि उन्होंने प्राण हट  
लेनेवाली और वलीमें अच्छी न होने वाली उस सोनकी वल्लीको भी गहामक ही समझा ॥६३॥  
तय मुनिप्रित्त कचवधारी कुमार वपरपने धाम्भनं धनुनार प्रजापता, पावन करनेवा उपदेश देकर  
वे रोगी शरीरमें पुटकारा जाने के लिये प्रवृत्त करने लगे ॥६४॥ जोड़े दिनोंमें ही गंगा और सरयूके  
गणपतर उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया और मरना देना बनकर पढ़ने शरीरमें भी अधिक  
गुनर शरीरवाली आनके साथ मन्त्र उनके विलास-भवनो में बिहार करने लगे ॥६५॥

महाकवि कालिदासने रचे हुए रघुवंश महाकाव्यमें

अजयितापो नाम वा मादर्श सपने समान हुआ ।

## ॥ नवमः सर्गः ॥

पितुरनन्तरमुत्तरकोशलान्समधिगम्य समाधिजितेन्द्रियः ।

दशरथः प्रशशात्त महारथो यमवतामवतां च धुरि स्थितः ॥ १ ॥

अधिगतं विधिवद्यदपालयत्प्रकृतिमण्डलमात्मश्लोचितम् ।

अभयदस्य ततो गुणवत्तरं सनगरं नगरन्ध्रकरीजसः ॥ २ ॥

उभयमेव वदन्ति मनीषिणः समयवर्षितया कृत्तकर्मणाम् ।

बलनिपूदनमर्थपतिं च तं श्रमनुदं मनुदण्डधरान्वयम् ॥ ३ ॥

जनपदे न गदः पदमादधावभिभवः झुत् एष सपत्नजः ।

चित्तिरभूत्फलवत्यजनन्दने शमरत्तंऽमरतेजसि पार्थिवे ॥ ४ ॥

दशादिगन्तजिता रघुखा यया श्रियमपुष्पदजेन ततः परम् ।

तमधिगम्य तथैव पुनर्वभौ न न महीनमहीनपराक्रमम् ॥ ५ ॥

समतया वसुष्टुष्टिसर्वज्ञैर्वर्णियमनादसतां च नराधिपः ।

अनुययी यमपुरायजनेयरी भवरुणावहणाग्रसरं रुचा ॥ ६ ॥

### नवमं सर्गं

समयसे अपनी इन्द्रियोकी जीत लेनेवाले योगियोमें और प्रजावा पालन करनेवाले राजाओंमें सर्वश्रेष्ठ दशरथजीने अपने पिताके पीछे उत्तर कोशलका राज्य रानी योग्यतासे मँगाया ॥१॥ कौश्ल पहाड़की पाठ देनेवाले कर्त्तव्यके समान के बलवान् थे । उन्होंने अपने पुत्रोंमें पाई हुई राजपानी-और मण्डलीका ऐसे अच्छे ढंगसे पालन किया कि उसी प्रजा उन्हें पहलेसे सभी राजाओंमें बदुपर मानमें लयी ॥२॥ विद्यामोना कहना है कि उसीसे दो ही तो ऐसे हुए हैं जिन्होंने कर्त्तव्य-पालन करनेवाले लोगोंको उनके परिश्रमका ठीक-ठीक मुत्सार दिया है । उनमें से एक तो हैं दण्ड जिन्होंने समयपर दर्पा करके जिनामोंका परिश्रम सफल किया और दूसरे हैं मनुयसी दण्डण, जिन्होंने गुणमियोकी धन देकर उनका पालन-पोषण किया ॥३॥ दशरथजी देवताओं के समान वेदद्वी के धीरे उनका मन भी तब प्रकारसे शान्त था । राज्यकी हाथमें लेते ही उनका देश घन-धान्यके भर गया, रोग भी उनके राज्यकी सीमामें पैर न रख सके, फिर शत्रुओंके आक्रमणकी तो समाप्ता हो गई थी ॥४॥ जैसे दसों दिशाओं के जीतनेवाले रघुने और उनमें पीछे उनके पुत्र अपने पृथ्वीकी दोभा घडाई थी उसी प्रकार उन्हीं दोनों के समान कर्त्तव्यकी गहापरश्रमों दशरथको पावर पृथ्वीकी दोभा न बड़ी हो गई बात नहीं है ॥५॥ जैसे यम सबको एक समान समझते हैं जैसे ही वे भी उसी एव-सा व्यवहार करते थे, जैसे कुंभर धन खरसाने हैं वैसे ही वे भी धन बाँटने थे, जैसे वरुण दुष्टोंको दण्ड देते हैं वैसे ही वे भी दुष्टोंको दण्ड देते थे और जैसे मूर्खका बड़ा वेद है वैसे ही उनका भी तेज था ॥६॥

न मृगयाभिरतिर्न दुरोदरं न च शशिप्रतिमाभरणं मधु ।  
 तमुदयाय न वा नवपौत्रना प्रियतमा यत्तमानमपाहरत् ॥७॥  
 न कृपणा प्रभवत्यपि वासने न वितथा परिहामकथास्त्रपि ।  
 न च सपत्नजनेऽपि तेन बागपरुषा परुषाचरमीरिता ॥८॥  
 उदयमस्तमयं च रघूद्बहादुभयमानशिरे वसुधाधिपाः ।  
 स हि निदेशमलह्वयतामभृत्युहृदयोहृदयः प्रतिगर्वताम् ॥९॥  
 अजयदेकरथेन स मेदिनीमुदधिनेमिमघिज्यशरासनः ।  
 जयमयोपयदस्य तु केवल गज्वती जवतीग्रहया चमूः ॥१०॥  
 ध्वनिमेकरथेन वरुधिना जितवतः किल तस्य धनुर्मृतः ।  
 पित्रयदुन्दुभितां ययुर्गर्वा घनरवा नरवाहनसंपदः ॥११॥  
 शमितपक्ष्वलः शतकोटिना शिखरिणां कुलिशेन पुरंदरः ।  
 सशरपृष्टिमृचा धनुषा द्विषां स्वनवता नवतामरसाननः ॥१२॥  
 चरणापोनं सरागसमृद्धिभिर्मुकुटरस्नमरीचिभिरस्पृशन् ।  
 नृपतपः शतशो मस्तो यथा शतमत्तं तमखण्डितपौरुषम् ॥१३॥  
 निवृत्ते स महार्यवरोधमः सचिवकारितशालयुताञ्जलीन् ।  
 ममनुकम्प्य सपत्नपरिग्रहाननलकानलकानवर्मां पुरीम् ॥१४॥

ताशारिष ऐश्वर्यको घटोरनेम ये मेमे सगे हृये ये नि यागितवा व्यवन, जूपका वेन, चन्द्रमाकी परछाहीं  
 पही हुई मदिना घोर नमयोवना गली, कीई भी उहे न तुमा सवा ॥७॥ ये इतने मनहवी ये कि  
 इन्द्रताने प्राये दे कभी नहीं गिटगिशाए, हँतीमे भी उहँले मूठ नहीं बोला भीर कोगित होनेकी लो  
 बाा ही हूर है, उहँले मपने धनुकी भी कीई भी घटोर उर नही पटा ॥८॥ उन रघुजमाने श्रेष्ठ  
 दगरपने हाथो बनुर्गते राजा बने घोर बहुतसे विगड़े यथोकि जो उगवा रहा मान मेने ये उहँ लो  
 ये दया करते छांड देते ये पर जो मुँठकर उनो टगर मेने प्राये धाते ये उहे ये निटाकर ही छोडते ये  
 ॥९॥ एम धनुष मेकर घोर धनेने एम रथपर धनुष ही उहँले समुद्रतप कौनी हुई शारी पृथ्वी  
 लीय ली । बेगले यतनेपाने हाथो घोहोनी उननी सेना तो केवल जय-व्यवहार भर करती थी ॥१०॥  
 तिम ममय मनेने मुक्तिर रथपर श्रेष्ठ कुँरेले ममान सम्भक्तिपानी धनुषधारी दगरपनी पृथ्वी जीतते  
 हुए चउते ये उत समय घाटपने समान गरजता हूषा ममुद्र उननी विनाय-दुन्दुभी यराता था ॥११॥  
 येमे इन्द्रने धनी लो लोकोपाने वयने पर्वताने पर बाट दिवे ये सेन ही नये कमलने समान गुन्दर  
 मुगवाने दगरपनेमे मपन बाण बरखानेवाँ धनुगे धनुषधारी मारबने विधा दिया ॥१२॥ घोर  
 येमे देवता लोग इन्द्रने धरन हूँते येमे ही मेकडले पराक्रमी दगरपने परखोनेर धरने  
 ये मुद्र बाँ गिर रग दिग् विगत मणि दगरपनीने परखे नयोनी सनाई ये दमक उठने ये ॥१३॥  
 उहँले शिवा जिन देवके सवाधोको मार जाला था उनको शनिवी धरने पुषोकी तेकर राजा दग-

उपगतोऽपि च मण्डलनामितामनुदितान्यसितातपवारणः ।  
 श्रियमवेक्ष्य स रन्ध्रचक्षाममूदनलसोऽनलसोमसमद्युतिः ॥१५॥  
 तमपहाय ककुत्स्थकुलोद्भवं पुरुषमात्मगर्भं च पतिव्रता ।  
 नृपतिमन्यमसेवत देवता सकमला कमलाधवमर्षिषु ॥१६॥  
 तमलभन्त पतिं पतिदेवताः शिस्वरिणामिव सागरभाषगाः ।  
 मगधकोशलकेक्यशासिनां दुहितरोऽपितरोपित्तमार्गणम् ॥१७॥  
 प्रियतमाभिरसौ तिसृभिर्धर्मौ तिसृभिरेव भुवं सह शक्तिभिः ।  
 उपगतो धिनिनीपुरिव प्रजा हरिहयोऽरिहयोगविचक्षणः ॥१८॥  
 स किल संयुगमूर्ध्नि सहायतां मघवतः प्रतिपद्य महारथः ।  
 स्वभुजवीर्यमगापयदुच्छ्रितं सुरवधूरवधृतमयाः शरैः ॥१९॥  
 क्रतुषु तेन विसर्जितमौलिना भुजसमाहृतदिम्बसुना कृताः ।  
 कनकपूपसमुच्छ्रयशोभिना वितमसा तमसातरयूढटाः ॥२०॥

रथके प्रागे धार्ईं और उन देशके मनिवोके उन राजपुत्रोको दशरथके प्रागे ह्यप जोकर लड़ा कर  
 दिया । उन सुते केशवाली शत्रुघोकी रानिवोके साथ दशरथजीने वडी दशावा व्यवहार किया और  
 उस महासमुद्रके तटसे वे अपनी उस भयोप्या राजधानीको लौट आए जो दुयेरकी राजधानी मलकासे  
 किसी प्रकार कम नहीं थी ॥१५॥ पारो औरके राजाओका गण्डव उनके हाथमे आ गया जिहसे वे  
 अग्नि और पन्द्रमाके समाप्त वेणुसी लगने लगे । उनका प्रताप इतना बढ गया कि उनके प्रागे कोई  
 भी द्वारा राजा बनेत छत्र नहीं लगा सकता था । पर अक्रवर्ती हो जानेपर भी मालवयोके वे अपने  
 पास नहीं पटकने देते थे क्योंकि वे जानते थे कि जहाँ एक भी दोष प्राया कि लक्ष्मी हने छोडकर  
 भायी ॥१६॥ और फिर भगवाम् विष्णु और दशरथको छोडकर और दूसरा राजा ही कौन-सा था,  
 जिसके यहाँ हाथमे कमल धारण करनेवाली पतिव्रता लक्ष्मी स्वयं जाकर रहती ॥१६॥ जैसे पूर्वतो-  
 से निकलनेवाली नदिनी समुद्रको वा लेती है वैसे ही कौशल, मगध और केक्य देशके राजाओकी  
 कौशल्या, गुमित्रा और कैकेयी नामकी बन्ध्यायो ने शत्रुघोपर बाण बरसानेवाले दशरथजीको पहिके  
 रूपमे वा लिया ॥१७॥ शत्रुघोका नाथ करनेवाले दशरथजी अपनी तीनों रानिवोके साथ ऐते जान  
 पढते थे मानो पृथ्वीपर राज्य करनेके लिये स्वयं इन्द्र ही [भ्रमाव, उत्साह और मय नामकी] अपनी  
 तीनों शक्तियोके साथ व्यवहार लेकर चले भाये हो ॥१८॥ कह्य जाता है कि महारथी दशरथने  
 युद्धमे इन्द्रकी सहायता करवे और अपने वाणो से उनवे शत्रुघोरा नाथ करके देवताओकी सिरोंका  
 सब डर दूर कर दिया और वे सब दशरथजीके वरदुबलके श्रेष्ठ माने लगे ॥१९॥ उन्होने अपने  
 माह्यलसे चारो औरवा घन लाकर दकट्टा किया था और उनमे नामको भी लामधी माप नहीं था ।  
 उन्ही राजा दशरथने अपना भुवुट उतारकर धक्केमे यज्ञ करते समय तमसा और तरयूके किनारे



अजिनदस्त्रभृतं कुशमेखलां यत्तगिरं मृगशृङ्गपरिश्रद्धाम् ।  
 अधिवसंस्तनुमध्वरदीचितामसमभासयभासयदीधरः ॥२१॥  
 अथभृथप्रयतो नियतेन्द्रियः सुरसमाजसमाक्रमणोचितः ।  
 नमयति स्म स केवलमुन्नतं वनमुचे नयुचेरये शिरः ॥२२॥  
 अस्मकृदेकरथेन तरस्विना हरिहयाग्रसरेण धनुर्भुता ।  
 दिनकराभिमुख्या रथरेणवो रुरुधिरे हृधिरेण गुरद्विषाम् ॥२३॥  
 अथ समावृते कुमुदंनर्वस्तमिव सेवितुमेकराधिपम् ।  
 यमकुचेरजलेखरवज्जिष्ठां समधुरं मधुरश्चितविक्रमम् ॥२४॥  
 जिगमिपुर्धनपाच्युपितां दिशं रथयुजा परिवर्तितवाहनः ।  
 दिनमुखानि रविर्दिग्निग्रहं विमलयन्मलयं नगमत्यजत् ॥२५॥  
 कुमुमजन्म ततो नपपल्लवास्तदनु पट्पदकोक्लिहृजितम् ।  
 इति पंथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीभवतीर्य वनस्थलीम् ॥२६॥  
 नयगुणोपचितामिह भूपतेः सद्गुणकरफलां श्रियमर्धिनः ।  
 अमिययुः सरसो मधुर्नमृतां कमलिनीमलिनीरपवतिश्रयः ॥२७॥

कुसुममेव केवलमार्तवं नवमशोक्तरोः स्मरदीपनम् ।  
 किमलयप्रसवोऽपि विलासिनां भद्रयिता दयिताश्रवणार्पितः ॥२८॥  
 विरचिता मधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषकाः ।  
 मधुलिहां मधुदानविशारदाः कुरवका रवकारखतां ययुः ॥२९॥  
 सुवदनावदनासवसंभृतस्तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गमः ।  
 मधुकरं रक्तरोन्मधुलोनुपैर्वकुलमाकुलमायतङ्किभिः ॥३०॥  
 उपहितं शशिरापगमश्रिया मुकुलजालमशोभत किंशुके ।  
 प्रणयिनीं नखच्छतमण्डनं प्रमदया मदयापितलज्जया ॥३१॥  
 प्रसगुरुप्रमदाधरदुसहं जघननिर्विपयीकृतमेखलम् ।  
 न खलु तावदशेषमपोहितुं रविरत्नं विरत्नं कृतवान्हिमम् ॥३२॥  
 अभिनयान्परिचेतुमिबोधता मलयमास्तकम्पितपल्लवा ।  
 अमदयरसहकारलता मनः सकलिका कलिकामजितामपि ॥३३॥  
 प्रथममन्यभृतामिरुदीरिताः प्रविरला इव मुग्धवधूकथाः ।  
 सुरभिगन्धिषु शुश्रुविरे गिरः कुसुमितासु मिता वनराजिषु ॥३४॥

फूलोपो बेलवर ही कामोद्दीपन नहीं होता था वरन् कामियोको मतवाला बनानेवाले जो कौमल कोप-  
 र्णोके गुच्छे स्त्रियोने प्रपने कामोपर रख लिए थे उन्हें देखकर भी मन हावसे निकल जाता था ॥२८॥  
 वनमे खड़े हुए कुरवकावे पेड़ ऐसे जान पड़ते थे मानो बसठमे वनभीके शरीरपर बेलबूटे बीतकर उलका  
 शृङ्गार किया गया हो । उन पेड़ोसे इतना मधु बह रहा था कि भीरे मस्त होकर उन्हीपर गुनागुना रहे  
 थे ॥२९॥ बगुलके जो वृक्ष सुन्दरी स्त्रियोके मुसकी मदिराके छीटेके फूल उठे थे और जिसमे उन्हीं  
 स्त्रियोके समान गुण भी भरे थे, उनको कुण्डमे उठते हुए मधुबे बोभी भीरोने बसा ककभोर  
 ॥३०॥ बसठमे मानोसे पत्तासमे फूट निकली हुई कलियाँ ऐसी जान पड़ती थी मानो कामके  
 आवेदने साज दौटकर किसी वरमिनोने अपने प्रियतमके शरीरपर प्रपने नख-शत कर डाले  
 हो ॥३१॥ अभी यह ठक गनी प्रवार दूर नहीं हुई थी जिसमे पतियोवे रीतोसे घायल हुए स्त्रियो  
 के झोठ बुद्धा करते हैं और स्त्रियाँ अपनी कमरली तगली भी ठण्ठी होनेके कारण उतार टाकती हैं ।  
 पर हाँ, सूर्यने कुछ जाटा कथ भवस्य कर दिया था ॥३२॥ नये बीरे हुए घामके वृक्षोकी टालियाँ  
 मलयके सामुसे झूम उठी माओ उन्हीने अगिनय सीतला प्रारम्भ कर दिया हो । उन्हें देखकर राग-  
 द्वेषको जोतने वाले योगियोका मन भी वनल जटा ॥३३॥ जिस समय मनहर सुगन्धवासी वनकी  
 लतामोपर बँटकर कौमलने शूक सुनाई तो ऐसा जान पडा मानो वही मोई गुग्गा नायिका ही बेल

श्रुतिसुरभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो वसुः ।  
 उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाण्डिभिः ॥३५॥  
 ललितविभ्रमवन्धविचक्षुं सुरभिगन्धपराजितकेसरम् ।  
 पतिषु निर्विंविशुर्मधुमङ्गनाः स्मरसखं रसखण्डनवर्जितम् ॥३६॥  
 शुशुभिरे स्मितचारुतरानना स्त्रिय इव श्लथशिञ्जितमेखलाः ।  
 विकचतामरसा गृहदीर्घिका मदकनोदकलोलविहंगमाः ॥३७॥  
 उपययौ तनुतां मधुराण्डिता हिमकरोदयशय्यमुखच्छविः ।  
 सदृशमिष्टसमागमनिर्वृतिं वनितयानितया रत्ननीचधुः ॥३८॥  
 अपतुपारतया विशदप्रभै सुरतसङ्गपरिश्रमनोदिभिः ।  
 कुसुमचापमतेज्यदंशुभिर्हिमकरो मकरोर्जितकेतनम् ॥३९॥  
 हुतहुताशनदीप्तिंवनश्रियः प्रतिनिधिः कनकाभरखस्य यत् ।  
 युवतयः कुसुमं दधुराहित तदलके दलकेमरपेशलम् ॥४०॥  
 अलिभिरञ्जनचिन्दुमनोहरैः कुसुमपद्मिक्तनिपातिभिरङ्कित ।  
 नखल्लुशोभयति स्म वनस्थलीन तिलकस्तिलकः प्रमदामिव ॥४१॥

चली हो ॥३४॥ वनके किनारे घड़ी हुई जताएँ ऐसी सजीव-सी जान पड़ती थी वानों कानोंकी मुख देनेवाली भीरोकी गुञ्जर ही उनके गीत ही, मिले हुए कोमल फूल ही उनकी हँसीके वीर ही और वायुसे हिली हुई शाकाभोवाले हाथोंके वे अनेक प्रकारके हाव भाव दिख रही हो ॥३५॥ चितवन प्रायः मधुर हाव भाव करनेकी उज्जानेवाले और वक्रुतको भी अपनी मध्यसे धरानेवाले कामदेवके साथी मद्यको स्त्रियोने अपने पविके प्रेम्णि बिना बाधा दिए ही वो लिया ॥३६॥ लोकोके परोके भीतर घनी हुई वायुधियोमें जो कमल खिले हुए वे और वहाँ मधुर ध्वज करते हुए जो जल पक्षी तैर रहे वे उनसे वे भावनिर्वा ऐसी सुन्दर जान पड़ती थी मानो उनसे मुसकराती हुई सुन्दर मुखवाली और डीभी होनेके कारण वनकी हुई तपती (करयनी) वानी स्त्रियाँ विहार कर रही हो ॥३७॥ जैसे अपने प्रियतमसे समागम न होनेके कारण सजित नायिका सूखती जाती है वैसे ही राजि रूपी नायिका भी वधवत्के आगेते छोटी होती पली गई और उसका चन्द्रमावाला मुख भी गीता पटला गया ॥३८॥ पाला दूर हो जानेसे चन्द्रमा निर्मल हो गया । सभोगयो पकावटको दूर करनेवाली उसकी ठठी किरणो से कामदेवके फूलोंके धनुषको मानो और भी अधिक बन मिल गया हो ॥३९॥ हृदयकी अग्निने समान भगकटे हुए कर्नरके फूल वनलक्ष्मीके वानोंके कर्णपूल जैसे जान पड़ते थे । अपने प्रियतमोंके हाथोंसे जूटोमें लीसे हुए वे सुन्दर पक्षी और पक्षगवाले फूल स्त्रियोंके केशोमे बड़े सुन्दर लग रहे थे ॥४०॥ तिलकके वृक्षने भी वनस्थलीकी कम धोमा नहीं बढ़ाई । जैसे किली युवतीके श्रुंगारके लिये उसका मुँह चोता जाता है वैसे ही उस तिनक बुधके फूलोपर पँडराते हुए काजलकी ध्रुवोंके समान सुन्दर और ऐसे जान पड़ते थे मानो वनस्थलियोका मुख भी चोत दिया गया हो

अमदयन्मधुगन्धसनाथया किसलयधरसंगतया मनः ।  
 कुसुमसंभृतया नवमल्लिका स्मितरुचा तरुचारुविलासिनी ॥४२॥  
 अरुखारागनिपेधिभिरंशुकैः श्रवणालब्धपदैश्च यवांकुरैः ।  
 परभृताविरुतैश्च विलासिनः स्मरवलैरवलैकरसाः कृताः ॥४३॥  
 उपचितावपचा शुचिभिः कर्षैरलिकदम्बकयोगमुपेपुषी ।  
 सदृशकान्तिरलक्ष्यत भञ्जरी तिलकजालकजालकमौक्तिकैः ॥४४॥  
 ध्वजपटं मदनस्थ धनुर्भूतरङ्गशिकरं मुखचूर्णमृतुश्रियः ।  
 कुसुमकेसररेणुमलिप्रजाः सपवनोपवनोत्थितमन्वयुः ॥४५॥  
 अनुभवन्नदोलमृत्सर्वं पडुरपि प्रियकण्ठजिघृक्षया ।  
 अनयदासनरज्जुपरिश्रहे भुजलतां जलतामवलोजनः ॥४६॥  
 त्यजत मानमलं यत विग्रहैर्न पुनरेति गतं चतुरं वयः ।  
 परभृताभिरितीव निवेदिते स्मरमते रमते स्म वधुजनः ॥४७॥  
 अथ यथासुखमार्तवद्युत्सवं समनुभूय विलासवतीसखः ।  
 नरपतिशक्रे सृग्यारतिं स मधुमन्मधुमन्मयसंनिभः ॥४८॥

॥४१॥ वहाँ वृधोकी सुन्दरी नाविका नवमल्लिका सता भी थी । वह अपने बकरन्द-रूपी मद्यको गन्धो  
 भरी लाल-लाल-पत्तोंके झोलेपर फूंगोपी मुमकान लेकर देखते बालोको भी बालल यथाए हाल रही  
 थी ॥४२॥ प्रातः कानकी ललाईके श्री अधिक लाल बल्लोके, बागवर रन्धे हुए जीके अकुरीने श्रीर  
 कोमलकी फूफोकी रोना लेकर बलनेवाने कामदेवने ऐसा जाल विछापा कि सभी विलासी पुरुष पुनती  
 लियोंने प्रेमने सुप-सुप छो बैठे ॥४३॥ तिलकके फूलोके गुण्डे उजले परागते भरे वड़ चुके थे ।  
 उनपर मँडराते हुए भीरोके झुण्डके कारण वे ऐसे सुन्दर अपने सखे जैसे किन्ती स्त्रीने अपने तिरवर  
 मौतियोकी जाली पहन ली हो ॥४४॥ उपवनके फूलोका पराग जो वायुने उड़ाया हो भीरोके झुण्ड  
 भी उनके पीछे-पीछे उड़ चले । वह उड़ना हुआ पराग ऐसा जान पहना था मानो मनुष्यधारी काम-  
 देवका भग्ना हो या वनतप्रीके मुखपर समानेवा मृद्गा-रूखें हो ॥४५॥ जो स्त्रियाँ वसन्तोत्सवने सखे  
 झूलोपर सावधान होकर झूठ रही थीं वे भी अपने हाथने पकड़ी हुई रस्तीको हस्तिये धोला छोड़  
 देती थी कि हाथ झूटनेपर हमारे प्रियजन हमें धाम हो लेंगे और इस प्रकार हम उनके गलेसे भी धाम  
 पायेंगी ॥४६॥ उन दिनों कोयलकी बून मानो कामदेवका यह आदेश सुना रही थी कि हे लियो !  
 सटना छोड़ दो, जराई-भगड़ा छोड़ो, बाना हुआ यौवन फिर हाथ नहीं पाता । यह सुन-सुनकर  
 सभी स्त्रियाँ अपने पतियोंके साथ फिर रमता करने लगी ॥४७॥ किष्णुके समान पराक्रमी, वसंत  
 ऋतुके समान प्रसन्न और कामदेवके समान सुन्दर द्धारवलीने भी सुन्दरी स्त्रियोके हाथ वर्तत मनुवा

परिचयं चललच्यनिपातने भयरपोश्च तदिङ्गितत्रोधनम् ।

श्रमजयात्प्रगुणां च करोत्यसौ तनुमतोऽनुमतः सचिवैर्ययौ ॥४६॥

मृगवनोपगमचमवेपमृदिपुलकण्ठनिपकशरासनः ।

गगनमश्वसुरोद्धतरेणुमिर्भूतसविता स वितानमिवाकरोत् ॥४७॥

ग्रथितमौलिरसौ वनमालया तरुपलाशसवर्णतनुच्छदः ।

तुरगवल्गनचञ्चलकुण्डलो विरुच्ये रुच्येष्टितभूमिषु ॥४८॥

तनुलठाविनिवेशितविग्रहा भ्रमरसंक्रमितेक्षणवृचयः ।

ददशुरध्वनि त वनदेवताः सुनयनं नयनन्दितकोशलम् ॥४९॥

श्वगणिवारुणिकैः प्रथमास्थितं ध्यपगतानलदस्यु त्रिवेश सः ।

स्थिरतुरंगमभूमि निपानवन्मृगवयोगवयोपचितं वनम् ॥५०॥

अथ नभस्य १४ त्रिदशायुधं कनकपिङ्गतडिद्रुणसंप्रुतम् ।

धनुराधिज्यमनाधिरुपाददे नरवरो रवरोपितकेसरी ॥५१॥

तस्य स्तनप्रणयिभिर्मुहुरेखशावैर्व्याहृन्पमानहरिणीगमनं पुरस्तात् ।

आविर्भव कुशगर्भसुरं मृगाणां यूथं तदग्रसरगर्वितकृष्णसारम् ॥५२॥

मानन्द तिया घोर फिर उसके मनमें आश्रित करनेकी इच्छा होने लगी ॥४५॥ आश्रितसे पहले साम भी होते हैं । पहली बात तो यह है कि उससे पसन्द हुए सस्वरो वेषनेका अभ्यास हो जाता है । फिर उससे जीवी के भय घोर क्षीप भादि भावोंकी पहचान हो जाती है घोर परिधम करनेके क्षीर भी मनी प्रचार गठ जाता है । इसलिये मत्रियोके सम्मति लेकर के आश्रितके लिये निकल पडे ॥४६॥ जब महेरीबा वेष धनाकर, मगने ऊँचे बन्धेपर धनुष टंगि, तेजस्वी राजा वधरथ घोडेपर चढकर पले तय उनने मोहोशी टापोति स्तनी पूल उठी कि आवातमे बंदोवा सा तन गया ॥४७॥ उनके कैशो-ने वनमाला गुंथे हुई थी । वे जूझने पवोंने समान गहरे रववा कबच पहने हुए थे शीर घोडेके वेगसे चलनेके कारण उनने वानोके कुण्डल भी हिल रहे थे । इस वेषमे पसन्द-पसन्द के उस जगलमे जा पहुँचे जहाँ पर जातिके हरिण बहुत पूमा करते हैं ॥४८॥ गोमल लताधारा रूप धारण करके शीरी की मालोति पनदेवता भी उन सुन्दर नेत्रवाले शीर बोलालकी प्रभावो सदा सुख पहुँचानेवाले राजा वधरथको देखने के लिये यहाँ पहुँच गए ॥४९॥ सत्र के उस जगल मे पहुँचे जहाँ पहलेसे ही जाल घोर सारारी मूलतः लेकर उनने लेकर पहुँच चुने थे । यहाँ न तो मग्निवर भय वा न चोरो वा । यहाँ की पृष्ठी मोहोने लिये पानी थी । यहाँ बहूतसे जाल थे जिनने पारो घोर बहुवसे हरिण, पक्षी घोर चौकी गहरे पूमा करती थी ॥५०॥ सत्र उस सुन्दर स्वस्व राजने प्रपता वह पदा दृष्या धनुष उठाया जिसकी टबार मुनकर सिंह भी गरज उठे । उस ममय मे उस भादोति गहीनेके समान लग रहे थे जिनमे इन्द्रानुप विजला दृष्या ही घोर जिसमें मोनेके रगवो पीलीविजली की छोरी बंधींही ॥५१॥ उन्होंने देखा कि धावे हरिणो वा मुण्ड चारा वा रहा है जिनमे बहूत सी हरिणियाँ भी हैं जो अपने

त्प्राथितं जवनयाजिमतेन राज्ञा तूष्णीमुखोद्धृत्शारेण विशीर्षपटक्ति ।  
 यामीचकार वनमाकुलदृष्टिपातैर्वतिरितोत्पलदलप्रकरैरिवाद्रैः ॥५६॥  
 त्दयीकृतस्य हरिणस्य हरिप्रभावः प्रेक्ष्य स्थितां सहचरीं व्यवधाय देहम् ।  
 राक्षर्णकृष्टमापि कामितया स धन्वी वार्ष्णेक्यामृदुमनाः प्रतिर्सजहार ॥५७॥  
 स्यापरेष्वपि मृगेषु शरान्मृगुक्षोः कर्णान्तमेत्य विभिदे निविहोऽपि गृष्टिः ।  
 आसातिमात्रचटुलैः स्मरयत्सु चैत्रैः श्रौढप्रियानयनभिभ्रमचेष्टितानि ॥५८॥  
 त्तस्पुषः सपदि पल्लवपङ्कमध्यान्मृस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णम् ।  
 प्राह स द्रुतचराहकुलस्यमार्गं सुव्यक्तमार्द्रपदपटक्तिभिरायताभिः ॥५९॥  
 ग्राह्नादवनतोत्तरफलयमीपद्विध्यन्तमुद्धतसटाः प्रतिहन्तुमीपुः ।  
 आत्मानमस्य विविदुः सहसा वराहा वृक्षेषु विद्धमिपुभिर्जवनाश्रयेषु ॥६०॥  
 नाभिघातरमसस्य विकृष्य पत्री वन्यस्य नेत्रविचरे महिषस्य मृक्तः ।  
 नेर्भिय विग्रहमशोखितलिप्तपुह्वस्त पातयां प्रथम मास पपास पश्चात् ॥६१॥

न छीमो के कारण रकती बसती है जो बुरा बघाते बघाते अपनी माँके स्तनोसे दूध पीनेके लिये  
 च-धीचमे खड़े हो जाते हैं । इस भ्रुष्णके भागे भागे एक वर्षीला कबला हरिण भी बला जा रहा  
 ( ॥५६॥ राजाने ज्योही अपने बेल्गामो पोडेपर चढकर और अपने तूखीरजे से बाण निकालकर  
 तथा पीछा किया कि वह भ्रुष्ट तितर-वितर हो गया और उनको बहराई हुई शीजोसे भग हुआ  
 इ क्षारा जगल ऐसा लगने लगा मानो पायुने नीचे कमलकी पक्षिपियाँ लाकर वहाँ बिलेरे भी हो  
 ५६॥ इन्द्र के समान शक्तिशाली चतुर भगुपधारी राजा बघारकने देखा कि वे जिस हरिणको मारना  
 इहेते वे जगली हरिणी बीचमे आकर लडी हो गई । वे स्वय भी प्रेमी थे । अपने हरिणके लिए  
 रिखका यह प्रेम देखकर उनका हृदय भी दयासे भर आया और उन्होने कानतक बीचो हुआ भी  
 पना बाण उतार लिया ॥५७॥ वे दूसरे हरिणोपर बाण चमामा चाहते थे और उन्होने बाणपी  
 टकी कानतक बीच भी ली भी पर जब उन्होने उन हरिणोकी टरी हुई माँगोकी देखा तो उन्ह  
 पनी गुवर्ता प्रियतयाके चलने नेत्रोका स्पर्श हो आया और उनके हाथ डीरे पड गए ॥५८॥ उन्हो  
 नेठकर दशरथजी उपर मूम पडे जिधर भाषे वने हुए गोबकी घासके मुट्टे स्थान-स्थान पर दिखरे  
 डेये और रँरकी गीली छापोकी पाँतको देखकर जान पडता था कि तासाके पीचडसे निबल निकलकर  
 नैले सूमरोका भ्रुष्ट उपरको भागा है ॥५९॥ ज्यो ही ज-रोन पोडेपर चडे हुए अपने शरीरको भागे  
 लाकर उन सूमरोपर बाण चलाए ज्योही वे भी अपने नडे बाण खडे करने खाया दशरथपर भ्रुष्ट पडे  
 ल्नु उन्होने तलास ऐसे कसनर बाण मारे कि सूमरोको जान ही नही पडा कि वे उन पेडोम बाणके  
 पय भव चिपक गए जिनके सहारे वे खडे थे ॥६०॥ इतनेमे ही उन्होन देखा कि एक जगली भंभा  
 नवी और भगटा पला आरहा है । उन्होने उसकी माँसमे ऐसा बाण मारा कि वह भंतेके शरीरमे से  
 तनी घुर्तसे पार होगया कि बाणने पलम तनिक सा भी रक्त नही तथा धी-विदेपता यह भी कि बाण

प्रायो विपासापग्निमोक्षलवृत्तमाद्धान्वयद्वाँधरार नृपतिर्निशितैः क्षुरप्रैः ।  
 शृङ्गं मत्स्यनिपाधिकृतः परेषामत्युन्दित्रं न ममृषे न तु दीर्घमायुः ॥६२॥  
 व्याघ्रानगीरभिमुखोत्पतितान्गुहाभ्यः फुल्लामनाग्रमिटपानिव वायुस्त्वान् ।  
 शिवाविशेषलघुहस्ततथा निमेषाचूर्णाचकार शरपूरितमम्बरन्वान् ॥६३॥  
 निर्घातोर्ग्रैः बुद्धिर्नानाञ्जिघांसुज्यानिर्घोषैः क्षोभयामास मिहान् ।  
 नूनं तेषामभ्यग्न्यापरोऽभृष्टीषोदये राजजन्टे मृगेषु ॥६४॥  
 तान्दत्त्वा गजदुलरद्धतीर्नरान्कारुत्स्यः कुटिलनग्नाग्रलग्नमुक्तान् ।  
 प्रान्नानं गच्छतदमरुतां गजानामानृश्यं गतमिदं मार्गैर्यैरभैस्त ॥६५॥  
 चमरान्पग्नितः प्रवर्तितारुः क्वचिदारुरिच्छेभज्यर्षी ।  
 नृपतीनि तान्त्रियोज्य नद्यः नितरात्तद्व्यलनैर्बगाम शान्तिम् ॥६६॥  
 अपि तुरगानमीषादुत्पन्नं मयूरं न गच्छिरक्लापं रागलक्ष्मीचकार ।  
 सपदि गतमनस्त्रिभ्रमास्यानुनीरैरतिनिगलितरन्ध्रे केशपाशे प्रियायाः ॥६७॥

तस्य कर्कशविहारसंभवं स्वेदमाननविलम्बजालकम् ।

प्राचचाम सतुपारशीकरो भिन्नपल्लवपुटो वनानिलः ॥६८॥

इति विस्मृतान्यकरणीयमात्मनः सचिवात्त्वलम्बितधुरं धराधिपम् ।

परिवृद्धरागमनुबन्धसेवया मृमया जहार चतुरेव कामिनी ॥६९॥

स ललितदुमुमप्रवालशय्यां ज्वलितमहौषधिदीपिकासनधाम् ।

नरपतिरतिवाह्यांभूव क्वचिदसमेतपरिच्छदस्त्रियामाम् ॥७०॥

उपसि स गजयूथकर्णतलैः पद्मपटहृषनिभिर्विनीतनिद्रः ।

शरमत मधुराणि तत्र शृण्वन्विहगविकूजितबन्दिमङ्गलानि ॥७१॥

अथ जातु कुरोर्मुहीतवर्मा विपिने पार्श्वचरैरलक्ष्यमाणः ।

श्रमफेनमुचा तपस्विगाढां तमसां प्राप नदीं तुरंगमेण ॥७२॥

कुम्भपूरणभवः पदुरुच्चैरुद्यचार निनदोऽम्भसि तस्याः ।

तत्र स द्विरद्वृंहितशङ्की शब्दपातिनमिर्षु विसनर्ज ॥७३॥

नृपतेः प्रतिपिद्धमेव तत्कृतवान्पद्क्त्रिथो विलहय पत् ।

अपये पदमर्षयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः ॥७४॥

हा तातेति क्रन्दितमाकर्ण्य विपणस्तस्यान्विव्यन्वेतसगूढ प्रभवं सः ।

शल्पप्रोतं प्रेक्ष्य सकुम्भं मुनिपुत्रं तापाटन्तःशल्य इवासीत्चित्पिपोऽपि ॥७५॥

स्मरण हो जाता था ॥६७॥ कठिन परिश्रमसे उनके मुँहपर जो पसीना छा गया था उसे उनके उस बापुने सुखा दिया जो उनके कण्ठसे छीलत होकर पत्ती घोर कसियोको गिराता चल रहा था ॥६८॥ इस प्रकार अपना सव काम भुले हुए और राज्यका भार मत्रियोपर छोड़कर बगमे भाए हुए राजा दक्षदयका मन भाषेटके व्यसनने उसी प्रकार मुभा लिया जैसे कोई स्त्री अपने पतिची सेवा करने उसे अपने बशमे कर लेती है ॥६९॥ यह भाषेटका व्यसन उन्हे ऐसा लगा कि कभी कभी उन्हा सारी रात फूल पत्तीकी साँवरपर, रातको बगकनेवाली मृटियोके प्रकाशके सहारे, जिना किसी सेबन्दे धनेले ही काटनी पडती थी ॥७०॥ और प्रात काल जब नगाडो के समान शब्द नरनवान हाधियोके वार्तोकी पटपट होती थी तब उनकी भाँसे सुनती थी और उस समय जाने पत्ती चारणोके समान जो मद्दल-गीत गाते थे उन्हे सुनकर ही वे मगन हो जाते थे ॥७१॥ एक दिन जगसमे हर मृगका पीडा करते हुए वे अपने सापियोसे बहुत दूर भटक गए । खानटके नारख उनका पीडा मुँहसे भाग फँकने लगा, पर उसी पर चडे हुए वे तपसा नदीके उध गटपर निवल गए जहाँ बहुतसे तपस्वियोके धाधम बने हुए थे ॥७२॥ वहाँ चलने कोई पडा भर रहा था, उन्होंने समझा कि यह कोई हाथो है । बाए निजाता और दावपर सटप करने उन्होंने भट शब्दवेधी बाए जाता ही तो दिया ॥७३॥ हाथियो मारना धातनके विरुद्ध है । इसलिये दक्षरथने जो किया यह राजाके लिये ठीक नहीं था पर कभी-कभी विद्वान् लोग भी जब भावेशसे अचे हो जाते हैं तब वे भी उलटा काम कर ही बैठे हैं ॥७४॥ सहसा कोई



तेनावतीर्य तुरगात्प्रथितान्वयेन पृथान्वयः स जलकुम्भानिपयण देहः ।  
 तस्मै द्विजेतरतपस्विसुतं स्पलद्भिरात्मानमचरपदैः कथयांभूव ॥७६॥  
 तच्चोदितश्च तमनुद्धृतशल्यमेव पित्रोः सकाशमवसन्नदृशोर्निनाय ।  
 ताम्भ्यां तथागतमुपेत्य तमेकपुत्रमज्ञानतः स्वचरितं नृपतिः शशंस ॥७७॥  
 तौ दंपती बहु विलप्य शिशोः प्रहर्त्रां शल्यं निघ्रातमुदहारयतामुरस्तः ।  
 सोऽभूत्परासुरश्च भूमिपतिं शशाप हस्तापिर्वैर्यनवारिभिरेव दृढः ॥७८॥  
 दिष्टान्तमाप्स्यति भवानपि पुत्रशोकादन्त्ये वयस्यहमिवेति तमुक्तयन्तम् ।  
 आक्रान्तपूर्वमिव मुक्तविपं भुजंगं प्रोवाच कोशलपतिः प्रथमापाद्ः ॥७९॥  
 शापोऽप्यष्टतनपाननपन्नशोभे सानुग्रहो भगवता मयि पातितोऽयम् ।  
 कृप्यां दहन्नपि खलु चित्तिमिन्धनेद्धो बीजप्ररोहजननीं ज्वलनः करोति ॥८०॥  
 इत्थंगते गतघृणः किमयं विधत्तां वध्यस्तपेत्यभिहितो वसुधाधिपेन ।  
 एधान्हुताशनवतः स मुनिर्ययाचे पुत्रं परासुमनुगन्तुमनाः सदारः ॥८१॥

चित्लावा—हाय पिता ! यह मुनवर हनका माया टनका धीर वे भट उसे बूढ़ने बड़ चले । पागे  
 बढते ही वेपते क्या हैं कि नखटपी आठियो में बरिसे विषा हुआ, पडेवर मुफा हुआ बिची मुनि  
 या पुत्र पदा है । उसे देतकर उनको ऐसा बप्ट हुआ माने इन्हें भी बाए सग गया हो ॥७५॥  
 जब श्रेष्ठ बना वाले राजा दशरथने पडेपर भुने हुए मुनि-पुत्रसे उसका वध-परिचय पूछा तब उसने  
 लडखवाती बाणीसे बताया कि मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, मेरे पिता वैश्य हैं और मेरी भरता दूता हैं ॥७६॥  
 उसने राजा दशरथने कहा कि मुझे मेरे बंधे माता-पिताने पास ले बसो । राजा दशरथने उस  
 बाएसे विषे मुनि पुत्रको उठाया और उनके माता-पिताके पास ले गए । यहाँ पहुँचकर उन्होंने  
 उनसे सब कथा बता दी कि भूलने मेंने आपने एवसीते पुत्रपर बिना प्रचार बाए पला दिया है  
 ॥७७॥ यह मुनने ही वे दोनो तो डाढ़ मारकर रोने लगे और उन्होंने अपने पुत्रके हाथानेको माता  
 दी कि मेरे पुत्रकी मातीमेंने माया निकान लो । बाए निकानते ही मुनि-कुमारने प्राण भी निबल  
 गए । इस पर मुझे तपस्वीने अपने धर्मियोने अपनी अजली भरवर राजारो साथ दिया—॥७८॥  
 'हे राजा ! जाओ मुम भी हमारे ही समान बुढ़ापेमें पुन-लोकेसे प्राण छोडोगे ।' परते अपनेपर  
 एमें जंने विष उगतकर पान्न हो जाता है वैसे ही आप देकर जब वे बूड़े मुनि शान्त हो गए तब  
 पहले पहन धपराप बरिेकाले राजा दशरथ उनसे बोले—॥७९॥ 'हे मुनि ? मुझे धारतण पुत्रने  
 मुस कमलना दर्शन-उन नहीं हुआ है, इसलिये मैं आपने आपको बरदान ही समझता हूँ क्योंकि  
 इसी बहाने मुझे पुत्र तो प्राप्त होगा । अजली लखलीकी भाग बाहे एव बार पृथ्वी को मले ही  
 जला दे बिलु यद पृथ्वी को इतनी उषजाऊ बना देती है कि धाने उषमें बनी अन्धी उपज होती  
 है ॥८०॥ यह बहवर राजारो फिर उनसे कहा—'मैं सो इसी योग हूँ कि आप मेरा वध करें ।  
 अब मुझे नीनवे निने आपकी क्या प्राणा होती है ।' यह मुनवर उस मुनिने कहा कि 'हम और  
 हमारी स्त्री सब अपने पुत्रके साथ ही पछेर छोड देंगे । इसलिये अब हमारे लिए ईपन और अग्नि

प्राप्तानुगः सपदि शासनमस्परराजा

संपाद्य पातकविलुप्तश्रुतिनिवृत्तः ।

अन्तर्निविष्टपदमात्मविनाशहेतुं

शापं दधज्ज्वलनमौर्वमिवाम्बुराशिः ॥८२॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये  
मुगयावर्णनो नाम नवमः सर्गः ॥

जुटाओं ॥८१॥ राजा दशरथके अनुचर भी तबतक पहुँच गए थे । तत्काल ईश्वर और अग्नि जुटा  
थी गई । जैसे रामुदके हृदयमे बडवानस जता करता हे वैसे ही, अपने पापसे अघोर हृदयमे मुनिके  
शापकी ज्वाला घाग किए हुए वे [मिचो-मिचो प्रकार] पर लौटे ॥८२॥

महाकवि श्रीकालिदासके रचे रघुवंश महाकाव्यमे आठेठ-बर्णन  
नामक नवीं सर्ग समाप्त हुआ ॥

## ॥ दशमः सर्गः ॥

पृथिवीं शासतस्तस्य पाकशासनतेजसः ।  
 किञ्चिद्नमन्नद्वैः शरदामयुतं ययौ ॥ १ ॥  
 न चोपलेभे पूर्वोपाभूयनिर्मोक्षसाधनम् ।  
 सुताभिधानं स ज्योतिः सद्यः शोक्तमोषहम् ॥ २ ॥  
 श्रतिष्ठत्प्रत्ययापेक्षसंततिः स चिरंरूपः ।  
 प्राङ्मन्थादनमिव्यक्तरत्नोत्पत्तिरिबार्णवः ॥ ३ ॥  
 शृण्व्यशृङ्गादयस्तस्य सन्तः संतानकाङ्क्षिणः ।  
 धारेभिरे जितात्मानः पुत्रीयामिष्टिमृत्विजः ॥ ४ ॥  
 तस्मिन्नयसरे देवाः पौलस्त्योपप्लुता हरिम् ।  
 अमिजगृह्णन्दिघातार्शिक्षापावृष्टमिवाध्वगाः ॥ ५ ॥  
 ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः ।  
 अच्यत्तेषो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम् ॥ ६ ॥  
 भोमिभोगासनासीनं ददृशुस्त्वं दिवौकसः ।  
 सत्फणामण्डलोदर्चिर्मणियोतितविग्रहम् ॥ ७ ॥  
 श्रियः पद्मनिपण्णयाः क्षौमान्तरितमेखले ।  
 अष्टौ निक्षिप्तचरणमास्तीर्णकरपदलवे ॥ ८ ॥

### दसवां सर्गं

अर्धर घनवाति और इन्द्रके समान ठेकरवी राजा दशरथके पृथ्वीपर राज करते-करते जनमय दस सहस्र शत्रु बीत गए ॥१॥ पर तब भी पितरोके श्रेष्ठसे युद्धकारा दितानेवाली और शौरके बंधेरेकी दूर करनेवाली वह अभीति उन्हें नहीं मिल सकी बिधे पुत्र कहते हैं ॥२॥ जैसे समुद्रकी रत्न उत्पन्न करनेके लिये मने जानेतक उड़रना पड़ा था वैसे ही संतानके लिये उपाय होनेतक राजा दशरथकी भी उड़रना पड़ा ॥३॥ तब शृण्व्यशृङ्गा आदि जितेन्द्रिय और सत्त यज्ञ करनेवाले श्रुषियोंने संतान चाहनेवाले राजा दशरथके लिये पुत्रेष्टि यज्ञ करना प्रारंभ किया ॥४॥ ठीक उसी समय रावणके पत्माचारसे पबराकर देवता लोग उसी प्रकार विष्णुकी शरणमें गए जैसे भूपते श्वाशुन पथिक बड़गर छायावाले वृक्षके नीचे पहुँच जाते हैं ॥५॥ ज्यों ही देवता लोग शीघ्र सामरंभ पहुँचे त्यों ही विष्णु भगवान् भी योग-विदाते खाम उठे । यामने देर न होना ही उसके पुरे होनेका सबसे बड़ा लक्षण है ॥६॥ देवताओंने देखा कि विष्णु भगवान् शेष-शम्पापर सेठे हुए हैं और शेषके फणोंकी मणियोंसे उनका शरीर और जो अधिक घनक उठा है ॥७॥ उन्होके पास कमसर भदगी बँठी हुई थी जिनकी कमरसे देवता वस्त्र पड़ा हुआ था

प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षं चालातपनिभांशुकम् ।  
 दिवसं शारदमिव प्रारम्भसुरदर्शनम् ॥ ६ ॥  
 प्रभानुलिप्तश्रीवत्सं लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम् ।  
 कौस्तुभाख्यमपां सारं विभ्राणं बृहत्तोरसा ॥ १० ॥  
 बाहुभिर्विन्टपाकारैर्दिव्याभरणभूषितैः ।  
 आविर्भूतमपां मध्ये पारिजातमिवापरम् ॥ ११ ॥  
 दैत्यस्त्रीगणदलेखानां मदरागविलोपिभिः ।  
 हेतिभिरचेतनावद्भिरुदीरितजयस्वनम् ॥ १२ ॥  
 मृक्तशेषविरोधेन कुलिशत्रयलक्ष्मणा ।  
 उपस्थितं प्राक्षलिना विनीतेन गरुत्मता ॥ १३ ॥  
 योगनिद्रान्तविशदैः पावनैरवलोकनैः ।  
 भृन्वादीननुगृह्णन्तं सौखशायनिकानृपीन् ॥ १४ ॥  
 प्रणिपत्य सुरास्तस्मै शमयित्रे सुरद्विषाम् ।  
 अथैनं तुष्टयुः स्तुत्यमवाद्मनसगोचरम् ॥ १५ ॥

श्रीर जो विष्णु भगवान्के करण अपनी गोदमे लेकर पहाट रही थी ॥८॥ जैसे चिते हुए कमलो-  
 से श्रीर व-वारासिने सूर्य से शरद ऋतु के प्रारम्भिन दिन वने सुहावने सघटे हैं वैसे ही जिले हुए  
 कमल जैसी प्राप्ति पाते, प्रात कालकी धूपने समान सुनहले बस्त्र पहने श्रीर ध्यानमग्न योगियोको घर-  
 लतासे बर्छंग देतेवाले, विष्णु भी वने सुन्दर लग रहे थे ॥९॥ उनसे चौड़े बक्षस्वतपर वह कौस्तुभ गण  
 चमक रहा था जिससे लक्ष्मीजी शृङ्गारसे सम्यक् भयवा हाव भाव करते हुए अपना मुँह देखा सकती हैं  
 श्रीर जिसकी चमकसे मृगुने पचरणके प्रहारसे बचा हुआ शीवत्य चिन्ह भी चमक उठता था ॥१०॥  
 प्राभूपणोसे राजी हुई उनकी बहो-बहो मुजाएँ वृक्षणी दासाओके समाप्त थी श्रीर उनसे वे ऐसे लगते  
 थे मानो समुद्रमे दूसरा कल्पवृक्ष निकल आया हो ॥११॥ असुरोको मारकर उनकी दिग्गोने यानोंसे  
 मदकी क्षाती मिटानेवाले उनके चक्र, मदा आदि ध्वज राजीव होकर उनकी जयजयकार कर रहे  
 थे ॥१२॥ शेषनागसे स्वान्नायिक विरोध छोड़कर इन्द्रके नक्षत्री खोदक विह्वल धारण किए हुए गण-  
 जो बनी नम्रतासे हाथ जोड़कर उनकी सेवामे लगे थे ॥१३॥ वे योग-निद्रासे उठकर अपनी स्वच्छ  
 श्रीर पवित्र चितवनसे उब श्रु घ्रादि श्रुपियोको अनुगृहीत कर रहे थे जो उनसे पूछ रहे थे—‘भगवद्  
 प्राप्त सुखसे तो सोए है ॥१४॥ तब देवता लोग दैत्योके नाश करनेवाले विष्णु भगवान्को  
 प्रणाम करने के उन प्रशसनीय विष्णुकी स्तुति करते लगे जिनका न तो बालो ही पहुँचती है  
 श्रीर न तो मन हो पहुँच सकता है। वे बोले—॥१५॥ विजयने वनाले, पावन करने श्रीर

## ॥ दशमः सर्गः ॥

पृथिवीं शासतस्त्वस्य पाकशासनतेजसः ।  
 किञ्चिद्गुणमनूयतेः शरदामयुतं ययौ ॥ १ ॥  
 न चोपलेभे पूर्वेषामृणनिर्मोक्षसाधनम् ।  
 मुताभिधानं स ज्योतिः सद्यः शोकतमोपहम् ॥ २ ॥  
 अतिष्ठत्प्रत्ययापेक्षसंततिः स चिरंनृपः ।  
 प्राङ्मन्थादनभिव्यक्तरत्नोत्पत्तिरिवार्थवः ॥ ३ ॥  
 शृण्वन्मृद्गादयस्त्वस्य सन्तः संतानकाङ्क्षिणः ।  
 आरेभिरे जिज्ञात्मानः पुत्रीयाभिष्टिमृत्विजः ॥ ४ ॥  
 तस्मिन्नवसरे देवाः पौलस्त्योपप्लुता हरिम् ।  
 अभिलग्मुनिंदाघातारिह्यायावृक्षमिवाध्वगाः ॥ ५ ॥  
 ते च प्रापुरदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुयः ।  
 श्रव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्पसिद्धेर्हि लक्षणम् ॥ ६ ॥  
 भोगिभोगासनासीनं दृष्टुस्तं दिवौकसः ।  
 तत्फणामण्डलोदधिर्मणियोतितविग्रहम् ॥ ७ ॥  
 श्रियः पद्मनिपस्यायाः द्यौमान्वरितमेखले ।  
 श्रद्धे निक्षिप्तचरणमास्तीर्णकरपल्लवे ॥ ८ ॥

### दसवां सर्गं

अपार मनवलि शीर इन्द्रके समान तेजस्वी राजा दशरथको पृथ्वीपर राज करते-करते लगभग पक्ष रहल बाद बीत गए ॥१॥ पर सब भी पितरोंके श्रद्धसे दुटाकारा दिलानेवाली शीर शोकके धँबरेकी दूर करनेवाली वह ज्योति जन्ही नहीं मिल सकी जिसे पुत्र महते हैं ॥२॥ जैसे श्रुद्धको रत्न उत्पन्न करनेके लिये मये जानेतक दृष्टधा पड़ा था वैसे ही संतानके लिये उपाय होनेतक राजा दशरथको भी ठहरना पड़ा ॥३॥ जब श्रुण्वन्मृद्गा आदि जितेन्द्रिय शीर सन्त यज्ञ करनेवाले श्रुण्विपेनि संतान चाहनेवाले राजा दशरथके लिये पुत्रेष्टि यज्ञ करना शारभ किया ॥४॥ ठीक उसी समय रामएके भत्याचारसे भवराकर देवता लोग सभी प्रकार विष्णुकी धारणने गए जैसे घुपसे व्याकुल पथिक बहकर स्यायावाले वृक्षके नीचे पहुँच जाते हैं ॥५॥ ज्यों ही देवता लोग शीर धारणने पहुँचे त्यों ही विष्णु भगवान् श्री यौगन्दिशे जाय उठे । कामने देर न होना ही जतके पूरे होनेका सबसे बड़ा लक्षण है ॥६॥ देवताओंनि देखा कि विष्णु भगवान् शेष-तय्यापर जेठे हुए हैं और शेषके पक्षोभी मणियोति जनका शरीर शीर भी अधिक चमक उठा ॥ ७॥ उन्हीके पास नगलपर भस्वी बंठी हुई थी जिनको कमरसे देखनी वस्त्र पटा हुआ था

प्रबुद्धपृष्टरीकाचं      वालातपनिभांशुकम् ।  
 दिवसं शारदमिव      प्रारम्भसुखदर्शनम् ॥ ६ ॥  
 प्रभानुलिस्रवीवत्सं      लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम् ।  
 कौस्तुभाख्यमपां      सारं विभ्रान्तं बृहतोरसा ॥ १० ॥  
 बाहुभिर्विंटपाकोरैर्विव्याभरणभूपितैः ।  
 आविर्भूतमपां      मध्ये पारिजातमिवापरम् ॥ ११ ॥  
 दैत्यस्त्रीगण्डलेखानां      मदरामविलोपिभिः ।  
 हेतिभिस्चेतनावद्भिरुदीरितजयस्वनम्      ॥ १२ ॥  
 मुक्तशेषविरोधेन      कुलिशत्रयलक्ष्मणा ।  
 उपस्थितं प्राञ्जलिना      विनीतेन गरुत्मता ॥ १३ ॥  
 योगनिद्रान्तविशदः      पावनैरवलोकनैः ।  
 भृग्वादीननुगृह्यन्तं      सौखशायनिकानृपीन् ॥ १४ ॥  
 प्रणिपत्य सुरास्तस्मै      शमयित्रे सुरद्विपाम् ।  
 अथैनं तुष्टुः      स्तुत्यमवाद्मनसगोचरम् ॥ १५ ॥

श्रीर जो विष्णु भगवान्के चरख अपनी गोदमे लेबर पतोटे रही थी ॥६॥ जैसे खिले हुए कमलों-  
 से श्रीर कन्याराशिके सूर्य से शरद ऋतु के प्रारम्भिय दिन बने सुहावने लगते हैं वैसे ही खिले हुए  
 कमल जैसे प्राणी बाले, प्रातः कालकी सुषके समान सुबहले वस्त्र पहने श्रीर ध्यानमग्न योगियोंको सर-  
 लतासे दर्शन देनेवाले, विष्णु भी बड़े सुन्दर लग रहे थे ॥६॥ उनके चौड़े वस्त्रस्वरपर वह कौस्तुभ मणि  
 चमक रहा था जिसमे लक्ष्मीजी मृदुलारने समस्त प्रपन्ना हाव भाव करते हुए अपना मुँह देता करती हैं  
 श्रीर जिसकी चमकसे भृगुने शरदके प्रहारसे बना हुआ शीवरस धिग् भी चमक उठता था ॥१०॥  
 माभूपणोसे सजी हुई उनकी बढी बढी भुजाएँ मूलकी शाखाओंके समान थी श्रीर उनसे वे ऐसे लगते  
 थे मानो समुद्रमे दूधरा कल्पवृक्ष निकल आया हो ॥११॥ असुरोषो भारकर उनकी स्त्रियोंके गालोंसे  
 मदकी लाली मिटातेवाले उनके चक्र, गदा आदि शस्त्र सजीव होकर उनकी जयजयकार कर रहे  
 थे ॥१२॥ शेषनागसे स्वाभाविक विरोध छोडकर दन्द्रके वज्रकी चोटका चिह्न धारण किए हुए गहद-  
 जी बढी मन्त्रवासे हाथ जोडकर उनकी सेवामे सडे थे ॥१३॥ ये लीय निद्रासे उठकर अपनी स्वच्छ  
 श्रीर पवित्र चित्तवत्से उन मृगु आदि ऋषियोंको धनुशहीत कर रहे थे जो उनसे पूछ रहे थे—भगवन्  
 थाप मुझसे तो सोए है ॥१४॥ उन देवता सोए दैत्योंके नाश करनेवाले विष्णु भगवान्को  
 प्रणाम करके उन प्रशसनीय विष्णुकी स्तुति करने लगे जिनताप न तो बाली ही पहुँचती है  
 श्रीर न तो मन ही पहुँच सकता है । वे बोले—॥१५॥ विद्वदोंके बनाने, पालन करने श्रीर

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु विभ्रते ।  
 अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधास्थितात्मने ॥१६॥  
 रसान्तराण्येकरसं यथा दिव्यं पयोऽङ्गुते ।  
 देशे देशे गुणेष्वेवमवस्थास्त्वमविक्रियः ॥१७॥  
 श्रमेयो मितलोकस्त्वमनर्था प्रार्थनावहः ।  
 अजितो जिष्णुरत्यन्तमव्यक्तो व्यक्तश्चराम् ॥१८॥  
 हृदयस्थमनासन्नमकामं त्वां तपस्विनम् ।  
 दयालुमनघस्पृष्टं पुराणमजरं विदुः ॥१९॥  
 सर्वज्ञस्त्वमविज्ञातः सर्वयोनिस्त्वमात्मभूः ।  
 सर्वप्रभुरनीशस्त्वमेकस्त्वं सर्वरूपमाह् ॥२०॥  
 सप्तसामोपगीतं त्वां सप्तारविज्ञेयम् ।  
 सप्तार्चिर्मुत्समाचक्षुः सप्तलोकैकंश्रयम् ॥२१॥  
 चतुर्वर्गफलं ज्ञानं कालानस्याधतुर्गुणाः ।  
 चतुर्वर्गमयोलोकस्त्वचः सर्वं चतुर्हृत्वात् ॥२२॥

उदधेरिव रत्नानि तेजांसीव विरस्वतः ।  
 स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते ॥३०॥  
 अत्रवाप्तमवाप्तव्यं न ते किञ्चन विद्यते ।  
 लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः ॥३१॥  
 महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संहियते वचः ।  
 श्रमेण तदशाप्त्या वा न गुणानामियचया ॥३२॥  
 इति प्रसादयामासुस्ते सुरास्तमधोक्षजम् ।  
 भृतार्थव्याहृतिः सा हि न स्तुतिः परमेष्ठिनः ॥३३॥  
 तस्मै कुशलमंप्रश्नव्यञ्जितप्रीतये सुराः ।  
 मयमप्रलयोद्देल्लादाचर्युनैर्ऋतोदधेः ॥३४॥  
 अथ वेलासमासन्नगैलरन्ध्रानुनादिना ।  
 स्वरेणोवाच भगवान्परिभूतार्णवध्वनिः ॥३५॥  
 पुराणस्य ऋवेस्तस्य धर्मस्थानरमीरिता ।  
 यमव कृतमंस्कारा चरितार्थैव भारती ॥३६॥  
 यमो सदशनज्योत्स्ना सा विभोर्दनोद्भवा ।  
 निर्यातशेषा चरणाद्भ्रूयोर्ध्वप्रवर्तिनी ॥३७॥

चिरलें गिनी नहीं वा सकती पैसे ही स्तुति करने आपके पूरे परितका चलन नहीं हो सकता ॥३०॥  
 सकारमे प्राप्त करने कोय नोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो आपने हाथमे न हो । फिर भी आप जो  
 काम लेते हैं और काम करते हैं उनका एक मात्र उद्देश्य यही है कि आप सकारपर अनुग्रह  
 करना चाहते हैं ॥३१॥ आपकी महत्ताकी प्रशंसा करने जो हम चुप हो रहे हैं, इसका  
 यह कारण नहीं है कि हमने आपकी चय गुण बरताने वाले, बरत इसका कारण नहीं है  
 कि हम वा गए हैं और भागे कोलोकी शक्ति हममें नहीं रह गई है ॥३२॥ जो भगवान् किसी  
 भी इन्द्रियमे प्राप्त नहीं होते हैं उनको स्तुति करने देवतायोन उन्हें प्रसन्न कर लिया । यह स्तुति भी  
 उनकी भूयो प्रशंसा नहीं थी बरत सब बातें उनको ही थी ॥३३॥ विष्णु भगवान्ने प्रसन्न होकर  
 उनमे कुशल-मंगल पूछा, जिसने उत्तरमे देवतायोन कहा कि भाग्य-कर्म ऐसे राक्षस चलाने हो गए हैं  
 जिन्होंने जिना प्रथम नाम ध्याए ही नारे सकारकी भर्षाया भय करने चाये और हाहाकार मचा दिया  
 है ॥३४॥ यह सुनकर समुद्रमे भी शत्रुत्व नभोर ध्वनिमे जब भगवान् उतर देने लगे तब शीर-  
 सागरमे तटपर राठे हुए पहाड़ोकी गुफाओमे उनका शब्द सुन लठे ॥३५॥ विष्णु भगवान् ही सबको  
 पुराने पदि है इसलिए जब उनमे मुग्धमे भीतर बन्ध, ताजु, शीत, धौठ आदि उच्चारणमे स्थानमे भी  
 भीति बालुं निवनी तब याने अस्वर्तने धर्ममे जन्म लेनका वचन पालिया ॥३६॥ उनमे दीर्घोकी चमक  
 मे जयमवाती हुई जनकी भारी मुग्धमे निवनी हुई ऐसी घोषा देने सयो मानो उनमे परलौकि



जाने वो रचसाक्रान्तावनुभावपराक्रमौ ।  
 अङ्गिनां तमसेरोमौ गुणौ प्रथममध्यमौ ॥३८॥  
 विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम् ।  
 अकामोपनतेनेन साधोर्हृदयमेनसा ॥३९॥  
 कार्येषु चैककार्यत्यादस्यर्थोऽस्मि न वज्रिणा ।  
 स्वयमेव हि वातोऽग्नेः सारथ्यं प्रतिपद्यते ॥४०॥  
 स्वासिधारापरिहृतः कामं चक्रस्य तेन ये ।  
 स्थापितो दशमो मूर्धा लम्बांश इव रक्षसा ॥४१॥  
 स्रष्टुर्वरातिसर्गाचु मया तस्य दुरात्मनः ।  
 अत्यारूढं रिपोः सोढं चन्दनेनेव भोगिनः ॥४२॥  
 धातारं तपसा प्रीतं ययाथे स हि राक्षसः ।  
 दैवात्सर्गादिवध्यत्वं मर्त्येऽप्यास्यापराङ्मुखः ॥४३॥  
 सोऽहं दाशरथिर्भूत्वा रथभूमेर्लिङ्गमम् ।  
 करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैस्तच्छिरः कमलोन्मयम् ॥४४॥  
 अचिराद्यज्वभिर्भागं कल्पितं विधिवत्पुनः ।  
 मायाविभिरनालीढमादास्यध्वे निशाचरैः ॥४५॥

निरुक्तकर गंगाजी ऊपरको जा रही हो ॥३७॥ विष्णु भगवान् बोले— हे देवतामो ! जैसे सभारके जीवोके सत्त्वगुण प्रीर रजोगुणको उन्नय तमोगुण दबा लेता है वैसे ही आपने तेज प्रीर वलको राक्षस दबा रखा है ॥३८॥ मैं यह भी जानता हूँ कि जैसे अनजानमे किए हुए पापसे सज्जनका मन पयरा जाता है वैसे ही सारा सभार रागएने अत्याचारसे पयरा उठा है ॥३९॥ इसलिए राक्षसको मिटा सभानेका काम जैसा इन्द्रका है वैसा ही मेरा भी है । इसके लिये दन्त्रने जो मेरी प्रार्थना की है उसको मैं कोई भावरयगता नहीं समझता हूँ क्योंकि आपकी सहायतावे सिय पापुसे पहना नहीं पडता, वह तो स्वयं भागको उन्नाह देता है ॥४०॥ शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये राक्षसने अपने नी सिर काटकर चढा दिए थे । अब जान पडता है कि उस राक्षसने अपना दसवाँ सिर मेरे चक्रके काटे जाने के लिये रख जोड़ा है ॥४१॥ ब्रह्माजीने जो उसे नरदान दे दिया है उसीसे मैंने उस दुष्टका दिन दिन ऊपर चढना उसी प्रकार सहा है जैसे अपने ऊपर चढत हुए माँगचो चन्दनका गेह सह लेता है ॥४२॥ अब ब्रह्माजी उसको तपस्याके प्रयत्न हुए सब उसने यही नरदान माँगा कि मैं देवताओके हाथसे न मारा जा सकूँ क्योंकि मनुष्योको जो वह कुछ समझता ही नहीं है ॥४३॥ इसलिये मैं राजा दशरथके यहाँ जन्म लेकर अपने लीखे वालोंसे उसके सिरको नमलके समान उतारकर रथभूमिओ मेंट चढाऊँगा ॥४४॥ हे देवताओ ! यजमान लोग जो विधिसे दिया हुआ यज्ञका भाग तुम्ह दे द्ये उसे अब राक्षस लोग धीनकर नहीं छा

वैमानिकाः पुण्यकृतस्त्यलन्तु मरुतां पथि ।  
 पुष्पकालोकसंचोमं मेघावरणतत्पसः ॥४६॥  
 मोक्षध्वे स्वर्गवन्दीनां वेणीवन्धानदूषितान् ।  
 शापयन्त्रितपौलस्त्यवलात्कारकचग्रहैः ॥४७॥  
 रावणावग्रहक्लान्तमिति वागमृतेन सः ।  
 अभिष्टुष्य मरुत्सस्यं कृष्णमेषस्तिरोदधे ॥४८॥  
 पुरुहूतप्रभृतयः सुरकार्योद्यतं सुराः ।  
 अंशैरनुययुर्विष्णुं पुष्पैर्वासुभिष द्रुमाः ॥४९॥  
 अथ तस्य विशांपत्युरन्ते काम्यस्य कर्मणः ।  
 पुरुषः प्रबभूवाग्नेर्विस्मयेन सहर्तिवजाम् ॥५०॥  
 हेमपाप्रगतं दोर्म्यामादघानः पयश्चरुम् ।  
 अनुप्रवेशादाद्यस्य पुंसस्तेनापि दुर्वहम् ॥५१॥  
 प्राजापत्योपनीतं तदन्नं प्रत्यग्रहीन्नुपः ।  
 वृषेव पयसां सारमाविष्कृतमुदन्वता ॥५२॥  
 अनेन कथिता राज्ञो गुणास्तस्यान्यदुर्लभाः ।  
 प्रसूतिं चकमे तस्मिन्नैलोक्यप्रभवोऽपि यत् ॥५३॥

रक्षेगि । अब प्राप लोकोको ही मिलेगा ॥४१॥ अब प्राप लोग दिखर  
 होकर अपने-अपने विमानोंपर चढ़कर आकाशमें घूमिए और रावणके पुष्पक विमानको  
 देखकर और उससे डरकर वादलोंमें छिपना छोड़ दीजिए ॥४६॥ रावणने स्वर्गकी जिम  
 झिपोकौ अपने महाँ बन्यो किया है उनके बूढोको नलपूवरके शापके डरसे उचने हाथ नहीं  
 साग्या है । अब प्राप लोग ही उन बन्दी झिपोकै बूढे अपने हाथेसि लोलेंगे ॥४७॥ जैसे बूढेके  
 दिनोंमें धागके सेतपर कोई बादल नल बरछाकर निकल जाय वैसे ही रावणके डरसे सूखे हुए  
 देवताओंपर अपने मधुर वचन बरछावर विष्णु भगवान् भी बन्तर्षाव हो गए ॥४८॥ जैसे वायुके  
 चलनेपर उनके वृक्ष स्वयं उसके पीछे न जाकर अपने फूल उसके साथ भेज देते हैं वैसे ही अब  
 भगवान् विष्णु देवताओंका नायं करनेके लिये चले तब इन्द्र आदि देवताओंने भी अपने-अपने  
 प्रस उनके साथ भेज दिए ॥४९॥ इतर ज्यो ही राजा दशरथका पुत्रेष्टि यज्ञ समाप्त हुआ त्यों ही  
 यज्ञकी अग्निमेंसे एक पुस्य प्रकट हुआ जिसे देखकर यज्ञ करनेवाले सभी ऋषि बड़े प्रचरणमें पढ़  
 गए ॥५०॥ उस पुस्यके हाथमें खीरसे मरा हुआ सोनेका कटोरा था । उस खीरमें सारे ब्रह्माण्डको  
 संभालनेवाले विष्णु भगवान् पड़े हुए थे इसलिये वह दिव्य पुस्य भी उस कटोरेको मन्ही कठिनाईसे  
 संभाल पा रहा था ॥५१॥ जैसे इन्द्रने समुद्रमेंसे निकले हुए अमृतके कतदाको नाम लिया था  
 वैसे ही राजा दशरथने भी उस दिव्य पुस्यके हाथसे वह खीर ले ली ॥५२॥ उस दिव्य पुस्यने

स तेजो वैष्णवं पत्न्योर्विभेजे चरुसंज्ञितम् ।  
 वाधापृथिव्योः प्रत्यग्रमहर्षतिरिवात्तपम् ॥५४॥  
 अर्चिता तस्य कौशल्या प्रिया केकयवंशजा ।  
 अतः संभावितां ताम्भ्यां सुमित्रामैच्छदीश्वरः ॥५५॥  
 ते बहुशस्य चित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीवितः ।  
 चरोरर्धाधर्मगाभ्यां तामयोव्यतामुभे ॥५६॥  
 सा हि प्रणयवत्यासीत्सपत्न्योरुभयोरपि ।  
 भ्रमरी वारणस्येव मदनिस्सन्दरेस्त्रयोः ॥५७॥  
 ताभिर्गर्भः प्रजाभृत्यै दध्नेदेवांशसंभवः ।  
 सौरीभिरिव नाडीभिरमृताख्याभिरम्मथः ॥५८॥  
 सममापन्नसच्चास्ता रेजुरापाएद्वरत्विपः ।  
 अन्तर्गतफलारम्भाः सस्यानामिव संपदः ॥५९॥  
 गुप्तं ददृशुरात्मानं सर्वाः स्वप्नेषु वामनैः ।  
 जलजासिगदाशाङ्गचक्रलाञ्छितमूर्तिभिः ॥६०॥  
 हेमपद्मप्रभाजालं गगने च वितन्वता ।  
 लघन्ते स्म सुपर्णेन वेगाकुट्टपयोमुखा ॥६१॥

राजा वरुणके असाधारण गुणोंको इतनी प्रशंसा की कि विष्णु भगवाद्को भी उनके पार्श्व जन्म लेनेकी इच्छा होने लगी ॥५६॥ जैसे सूर्य अपनी नई रूप पृथ्वी और आकाश दोनोंमें बाँट देता है वैसे ही वीरके रूपमें पाये हुए विष्णुके तेजको राजाने कीञ्चलता और कँकेयीमें बराबर बाँट दिया ॥५४॥ कीञ्चलता उनकी मनी रागी थी और कँकेयी उनकी प्यारी रागी थी इसलिये वे चाहते थे कि वे दोनों रानियों ही अपने-अपने भागमेंसे स्वयं कुछ भाग देकर सुगिन्नाका सम्मान करें ॥५५॥ सब कुछ जाननेवाले राजा वरुणकी उन दोनों रानियोंसे अपनी-अपनी सौरका आधा-आधा भाग सुनित्राको दे दिया ॥५६॥ जैसे हाथीके दोनों कानोंसे निकलनेवाली भवकी दोनों धाराओंसे भौरी बराबर प्रेम करती है वैसे ही सुगिन्ना भी अपनी दोनों सौतो से बराबर प्रेम करती थी ॥५७॥ जैसे प्रसूत नामकी जल बरसानेवाली सूर्यकी फिरछें सत्कारके बल्लारणके लिये जल लिए रहती हैं वैसे ही उन तीनों रानियोंने लौनके कल्याणके लिये विष्णुके अक्षयि भरा कर्म धारण किया ॥५८॥ एक साथ गर्भ धारण करनेवाली रानियाँ गर्भसे पीली पड़नेके कारण घनाजनी उन वासोंके समान पीली जगती थी जिनमें दाने पड़ गए हो ॥५९॥ उन्हें यह स्वप्न दिखाई देता था कि कमल, तलवार, गदा, शङ्ख धनुष और चक्र लिए हुए कोई बीना-सा पुरुष बराबर हमारी रक्षाकर रहा है ॥६०॥ और अपने सीनेके पक्षोंसे प्रकाश फैलता हुआ अपने नेत्रके बरुण अपने साथ वादलोंकी भी खींचकर ले जाता

त्रिभ्रत्वा कौस्तुभन्यासं स्तनान्तरविलम्बिनम् ।  
 पर्युपास्यन्त लक्ष्म्या च पञ्चन्यजनहस्तया ॥६२॥  
 कृताभिपेकैर्दिव्यायां त्रिस्रोतसि च सप्तभिः ।  
 यदापिभिः परं ब्रह्म गृणद्भिरुपत्तस्थरे ॥६३॥  
 ताभ्यस्तथाविधान्स्वप्नाञ्छ्रुत्वाप्रीतो हि पार्थिवः ।  
 मेने परार्धमात्मानं गुरुत्वेन जगद्गुरोः ॥६४॥  
 विभक्तात्मा विभ्रुस्तासामेकः कुक्षिप्यनेकधा ।  
 उवास प्रतिमाचन्द्रः प्रसन्नानामयामिव ॥६५॥  
 अथाउयमहिषी राज्ञः प्रवृत्तिसमये सती ।  
 पुत्रं तमोपहं लेभे नक्तं ज्योतिरिवीपधिः ॥६६॥  
 राम इत्यभिरामेष वपुषा तस्य चोदितः ।  
 नामधेयं गुरुश्रुके जगत्प्रथममङ्गलम् ॥६७॥  
 रघुर्षशप्रदीपेन तेनाप्रतिमतेजसा ।  
 रक्षागृहगता दीपाः प्रत्यादिष्टा इवाभयन् ॥६८॥  
 शय्यागत्येन रामेण माता शातोदरी बभौ ।  
 सैकताभ्योजवलिना जाह्नवीव शरत्कृशा ॥६९॥

हुआ गल्ल हूँ माकासमे उधरकर से जा रहा है ॥६१॥ श्रीर वधास्यलपर कौस्तुभमणि पहले  
 हुए लक्ष्मी भी हाथों कमलया पक्षा लेबर हमारी सेवा कर रही है ॥६२॥ इतना ही नहीं, भाषाश-  
 गङ्गा मे स्नान करके सप्तभि भी वेद पाठ करते हुए हमारी ही उपासना कर रहे हैं ॥६३॥ जब  
 रामियोंने राजाको अपने वे स्वप्न सुनाए तब वे बड़े प्रसन्न हुए श्रीर उन्होंने रामके लिया कि अब  
 सत्कारमे मुझे बटबर कोई नहीं है क्योंकि मैं सत्कारमे गुरु विष्णुजी का भी पिता बन रहा हूँ ॥६४॥  
 यद्यपि विष्णुवा एव ही रूप है पर जैसे निर्मल जलमे चन्द्रभागे बहुतेके प्रतिबिम्ब पड जाते हैं वैसे  
 ही वे भी तीनों रामियोंने कभी ये कलम धवन नियास कर रहे थे ॥६५॥ जैसे पर्वतकी बहुतेकी  
 दृष्टियोंमे रातको प्रवेरा दूर परलेवाला प्रवाल भा जाता है वैसे ही राजाको पटरानी यौगल्याने  
 तमोपुगपी दूर परलेवाला पुत्र उल्लस दिया ॥६६॥ उस वासकवा मनोहर शरीर, देलकर धियागुनीने  
 उदवा सत्कारमे सबसे अधिक महत्सकारी नाम 'राम' रख दिया ॥६७॥ रघुवराको उजागर करनेवाले  
 उस बालकवा इतना तेज था कि सोरी धरने सब दीपको भी ज्योति जगने धामे मन्द पड गई ॥६८॥  
 प्रसव से दुबली माता चौकल्या, नन्हेंने रामको लिए हुए पलम पर लेती हुई ऐसी सुन्दर जान पडती  
 थी जैसे भरद् श्रुमे पतली धारवाली गङ्गाजीने तट पर विनीता चरवाया हुआ नीला कमल रखा

दंकेय्यास्तनयो जज्ञे भरतो नाम शीलवान् ।  
 जनयित्रीमलंचक्रे यः प्रथ य इव धियम् ॥७०॥  
 सुती लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रा सुपुत्रे धर्मा ।  
 सम्पगाराधिता विद्या प्रबोवनिनपात्रि ॥७१॥  
 निर्दोषममभत्सर्वमाविष्कृतगुणं जगत् ।  
 अन्दगादिष हि स्वर्गा गां गतं पुरुषोत्तमम् ॥७२॥  
 तस्योदये चतुर्भूतैः पौलस्त्यचक्रितेधराः ।  
 विरजस्कैर्नभस्वद्भिर्दिश उच्छ्र्वसिता इव ॥७३॥  
 कृशानुरपधूमत्यात्प्रसन्नत्यात्प्रभाकरः ।  
 रत्नोविप्रकृतावास्तामपविद्भुचात्रिव ॥७४॥  
 दशाननकिरीटेभ्यस्तत्त्वखंरावसश्रियः ।  
 मणिध्व्याजेन पर्यस्ताः पृथिव्यामश्रुविन्दवः ॥७५॥  
 पुत्रजन्मप्रवेशानां तूयाणां तस्य पुत्रिणः ।  
 धारम्भं प्रथमं चक्रुर्देवदुन्दुभयो दिवि ॥७६॥  
 संतानक्रमयी पृष्टिर्भवने चास्य पेतुषी ।  
 सन्मङ्गलोपचाराणां सैवादिरचनाभवत् ॥७७॥

दृष्या हो ॥६६॥ कंकेयीने भरतको जन्म दिया । उन्हे पावर बे देगी गोभरा बे र्ही यी जैके संवत्तिये  
 ताप आदर दोभा देला है ॥७०॥ जये धन्याम ने पाई हुई विद्या मे ज्ञान और विनय दोनो मिल  
 जावे है बीसे ही सुमित्रादि लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामके दो पुत्रयो पुत्र उत्पन्न हुए ॥७१॥ जग समस्त  
 ससारके तारे दोष नाम गए और चारों ओर गुण ही गुण फैल गए मानो विष्णु भगवान् के माण-  
 शास स्वर्ग भी पृथ्वी पर उतर आया हो ॥७२॥ दसो दिशाओंमे विनाश करने के लिये अथवा पालने  
 सगरी यह ऐसी सगरी की मानो रावणमे टरे हुए कुवेर आदि दिग्गजोंने पृथ्वीपर पार पणों से धावे  
 हुए भगवान्को पावर सन्तोष की साँत लीं हो ॥७३॥ उबलमे पीसा पावे हुए भस्मिदेवता पृथ्वी निकल  
 गया और मूरं भी निर्मल हो गए मानो दोनो वा शोक दूर हो गया हो ॥७४॥ उयो समय रावणके  
 सुपुत्रके कुछ मरिच पृथ्वीपर निकर बड़े मानो राक्षसो की लक्ष्मणे आँसू ही टपक पड़े हो ॥७५॥  
 पुत्रवान् रामा दत्तपत्नके यही पुत्र-जन्मके समय, मणिके आदि मणिके पीछे चढ़े, पदों देखाएँगे हो  
 स्वर्गमे गपारकी दुन्दुभी दबाई ॥७६॥ और उनो राजभवनपर आजाओ बन्धुगोदि पुत्रोंकी को  
 र्पण हुई उतीमे उनके आहुतिव मन्वागे वा आरभ दृष्या ॥७७॥ जानवने आदि अन्वार हो

विभ्रत्या क्रीस्तुमन्यासं स्तनान्तरविलम्बिनम् ।  
 पर्युपास्थन्त लक्ष्म्या च पद्मव्यजनहस्तया ॥६२॥  
 कृताभिपेकैर्दिव्यायां त्रिस्रोतसि च सप्तभिः ।  
 ब्रह्मर्षिभिः परं ब्रह्म गृणद्भिरुपतस्थिरे ॥६३॥  
 ताम्यस्तथाविधानस्वप्नाञ्छ्रुत्वा प्रीतो हि पार्थिवः ।  
 मेने परार्ध्वमात्मानं गुरुत्वेन जगद्गुरोः ॥६४॥  
 विभक्तात्मा विश्रुस्तात्तामेकः कृत्स्निष्वनेकवा ।  
 उवास प्रतिमाचन्द्रः प्रसन्नानामपामिव ॥६५॥  
 अथाप्यमहिषी राज्ञः प्रभृतिसप्तमे सती ।  
 पुत्रं तमोपहं लेभे नक्तं ज्योतिरिवीपधिः ॥६६॥  
 राम इत्यभिरामेण यपुषा तस्य चोदितः ।  
 नामधेयं गुरुश्वके जगत्प्रथममङ्गलम् ॥६७॥  
 रघुवंशप्रदीपेन वेनाप्रतिमतेजसा ।  
 रक्षागृहगता दीपाः प्रत्यादिष्टा इवामवन् ॥६८॥  
 शय्यागतेन रामेण माता शतोदरी बभौ ।  
 सैकताभोजवलिना जाह्नवीव शरत्कृशा ॥६९॥

हृमा गल्ल हनें भाकाहमे उटाकर से जा रहा है ॥६१॥ और यद्यत्पलपर कौस्तुभमणि पहले हुए सप्तमी भी हासनं बगलका पंखा लेकर हमारी सेवा कर रही है ॥६२॥ इतना ही नहीं, आकाश-पद्मा ने स्नान करके सन्धि भी वेद-पाठ करते हुए हमारी ही उपासना कर रहे हैं ॥६३॥ जब रात्रियोंने राजाको अपने ये स्वप्न सुनाए तब वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने समझ लिया कि अब ससारने मुझे बड़कर कोई नहीं है क्योंकि मैं संसारके गुरु विष्णुजी का भी पिता बन रहा हूँ ॥६४॥ यद्यपि विष्णुका एक ही रूप है पर जैसे निर्मल जलमें चन्द्रमाके बहुतेसे प्रतिबिम्ब पड़ जाते हैं वैसे ही वे भी तीनो रात्रियोंने कर्माँ में अलग-अलग निवास कर रहे थे ॥६५॥ जैसे पर्वतकी बहुतसी छुट्टियोंमें रातको छेंकेट दूर करनेवाला प्रकाश भा जाता है वैसे ही राजाकी पटरानी कोनल्याने तमोगुणको दूर करनेवाला पुत्र उत्पन्न किया ॥६६॥ उस बालकका मनोहर शरीर देखकर वशिष्ठजीने उनका ससारने सबसे अधिक मङ्गलकारी नाम 'राम' रख दिया ॥६७॥ रघुवशकी उजागर करनेवाले उस बालकका इतना तेज था कि छोरी परके सब दीपको की ज्योति उसके प्राये मन्द पड़ गई ॥६८॥ प्रसव से दुबली माता चौकल्या, नन्हेंगे रागको लिए हुए पलंग पर लेटी हुई ऐसी सुन्दर जान पड़ती थी जैसे धरद मृतुमें मत्सी पारवासी बङ्गाबोके तट पर किशोरा चढ़ावा हुआ नीला कमल रसता

कैकेय्यास्तनयो जज्ञे भरतो नाम शीलवान् ।  
 जनयित्रीमलंचक्रे यः प्रथ प इव त्रियम् ॥७०॥  
 सुतो लक्ष्मणशत्रुघ्नी सुमित्रा सुपुत्रे यमा ।  
 सम्यगाराधित्वा विद्या प्रयोवनिनपाविर ॥७१॥  
 निर्दोषममरत्सर्वमारिष्कृतगुणं जगन् ।  
 अन्वगादिव हि स्वर्गो गां गतं पुरुषोत्तमम् ॥७२॥  
 तस्योदये चतुर्भूतेः पौलस्तपचक्षिनेयगः ।  
 विरजस्कर्त्तमस्वद्विदिश उच्छ्रमिता इव ॥७३॥  
 कृशानुरपधूमत्पारप्रसन्नत्वात्प्रभाकरः ।  
 रत्रोरिप्रकृतागस्तामपरिद्वगुचागिर ॥७४॥  
 दशाननरिरीटिभ्यस्तत्त्वसंरावसथियः ।  
 मखिष्याजेन पर्यस्ताः पृथिव्यामश्रुनिन्दयः ॥७५॥  
 पुत्रजन्मप्रवेशानां तृषाणां तस्य पुत्रिणः ।  
 आरम्भं प्रथमं चन्द्रदेवदुन्दुभयो दिशि ॥७६॥  
 गंतानकमयीं पृष्टिर्गवने चास्य पंतुपी ।  
 मन्मद्ग्लोषचाराणां मैत्रादिरचनाभवन ॥७७॥

कुमाराः कृतसंस्कारास्ते घात्रीस्तन्यपायिनः ।  
 आनन्देनाग्रजेनेव समं ववृधिरे पितुः ॥७८॥  
 स्वाभाविकं विनीतत्वं तेषां विनयकर्मणा ।  
 मुमुञ्च्य सहजं तेजो हविषेव हविर्भुजाम् ॥७९॥  
 परस्परविरुद्धास्ते तद्रघोरनभं कृतम् ।  
 अलमुद्दं शोतथामासुर्देवारण्यमिवर्तवः ॥८०॥  
 सप्तानेऽपि हि सौभ्रात्रे यथोभौ रामलक्ष्मणौ ।  
 तथा भरतशत्रुघ्नौ प्रीत्या इन्द्र षभूवतुः ॥८१॥  
 तेषां द्वयोर्द्वयोरैक्यं विभिदे न कदाचन ।  
 यथा वायुपिनावस्वोर्यथा चन्द्रसमुद्रयोः ॥८२॥  
 ते प्रज्ञानां प्रजानाथास्तेजसा प्रथमेण च ।  
 मनो लह्नुर्निदाघान्ते श्यामाभ्रा दिवसा इव ॥८३॥  
 स चतुर्धा वमौ व्यस्तः असवः पृथिवीपतेः ।  
 धर्माधिक्यममोक्षाणामवतार इवाङ्गभाक् ॥८४॥  
 गुणैराराधयामासुस्ते गुरुं गुरुवत्सलाः ।  
 तमेव चतुरन्तेशं रत्नैरिव महार्णवाः ॥८५॥

चुकने पर धायका रूप पी-पीवर जैसे-जैसे राजकुमार बढ़ने लगे वैसे ही वैसे राजा दशरथका आनन्द भी बढ़ने लगा गानों में आनन्द उन चारों राजकुमारों का बड़ा भाई हो ॥७८॥ जैसे भी मादि पदनेसे हृदयकी प्रतिरक्षा स्वाभाविक लेव बढ़ जाता है वैसे ही शिक्षा पानसे उन चारों राजकुमारों भी स्वाभाविक नम्रता और भी अधिक बढ़ गई ॥७९॥ जैसे ऋतुरे मन्दशयनको चमका देती हैं वैसे ही परस्पर प्रेमसे उन चारों कुमारोंने पवित्र रघुनुलको उन्नत कर दिया ॥८०॥ यद्यपि चारोंमें परस्पर बहुत प्रेम था, फिर भी विशेष प्रेमके कारण जैसे राम और लक्ष्मणको एक जोड़ ही गई वैसे ही भरत और शत्रुघ्नकी भी जोड़ हो गई ॥८१॥ जैसे बाघ और शम्भिका तथा चन्द्रमा और समुद्रका जोड़ा कभी मल्ल नहीं होता वैसे ही राम और लक्ष्मणका तथा भरत और शत्रुघ्नका साथ कभी नहीं छूटा ॥८२॥ सब प्रजापति स्वामी राजकुमारोंने अपने तेज और नम्र व्यवहारसे अपनी प्रजाका मन उठा प्रवार हर लिया जैसे गर्मके अतमे काले बादल लोपोके मन धावृष्ट कर लेते हैं ॥८३॥ राजाकी चारों संतानें ऐसी जोभा दे रही थी मानो, धर्म, धर्म, काम और मोक्ष चारोंने अकठार से निपा हो ॥८४॥ चारों पितृगत राजकुमारोंने राजा दशरथको अपने गुणोंसे उसी प्रकार प्रसन्न कर लिया जैसे चारों समुद्रोंने रत्न देकर चारों दिशाओंके स्वामी राजा दशरथ को



सुरराज इव दन्तैर्भग्नदैत्यासिधारै

र्नय इव पणबन्धव्यक्तयोगैरुपायैः ।

हरिरिव युगदीर्घैर्दोभिरंशैस्तदीयैः

पतिरवनिपतीनां तैश्चक्राशे चतुर्भिः ॥८६॥

इति महाकविश्लोकालिदासकृतौ रघुवशे महाकाव्ये  
रामावतारो नाम दशमः सर्गः ॥

प्रसन्न कर लिया था ॥८५॥ जैसे अगुरोकी ललवारोकी चार कुठ्ठा करनेवाले अपने चार दाँतोसे देरावत शोभा देता है, जैसे छाम, वाग, बण्ड और भेव इन चार उपयोसे राजगीति शोभा देती है और जैसे रत्नके गुणके समान अपनी लम्बो-लम्बी चार भुजाओसे विष्णु भगवाद् शोभा देते है वैसे ही राजा बदारम भी अपने चार सुयोग्य पुत्रोसे सुशोभित हुए ॥८६॥

महाकवि कालिदासके रचे हुए रघुवश महाकाव्यमे  
रामावतार नाम का दसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

## ॥ एकादशः सर्गः ॥

कौशिकेन स किल त्रितीक्षरो राममध्वरविषातशान्तये ।  
 काकृपत्तधरमेत्य याचितस्तेजसां हि न वयः समीच्यते ॥ १ ॥  
 कृच्छ्रलब्धमपि लब्धवर्णभाक्तं दिदेश मुनये सलक्ष्मणम् ।  
 अप्यमुप्रणयिनां रथोः कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता ॥ २ ॥  
 यावदादिशति पार्थिवस्तयोर्निर्गमाय पुरमार्गसंस्त्रियाम् ।  
 तावदाशु चिदधे मरुत्सखैः सा सपुष्पजलवर्षिभिर्धनैः ॥ ३ ॥  
 तौ निदेशकरणोद्यतो पितुर्धन्विनौ चरणयोर्निपेततुः ।  
 भूपतेरपि तयोः प्रवृत्स्यतोर्नप्रयोरुपरि वाप्पबिन्दवः ॥ ४ ॥  
 तौ पितुर्नयनजेन धारिणा किञ्चिदुच्चितशिक्षण्डकाद्युभौ ।  
 धन्विनौ तमृषिमन्वगच्छतां पौरदृष्टिकृतमार्गतोरखौ ॥ ५ ॥  
 लक्ष्मणानुचरमेव राघवं नेतुमैच्छदपिरित्पत्नी वृषः ।  
 धारिषं प्रयुज्ये न बाहिनीं मा हि रचयविधौ तपोः धमा ॥ ६ ॥  
 मातृवर्गचरणस्पृशौ मुनेली प्रपद्य पदर्यां महौजसः ।  
 रैजतुर्गतिवशात्प्रवर्तिनौ भास्करस्य मधुमाधवाविव ॥ ७ ॥

### ग्यारहवां सर्ग

एक दिन विराडभिषेकी राजा दशरथने काम धार घोर उग्रीने कहा कि मेरे यक्षी राजाके  
 लिये गावपशु-धारी रामरो हृदये साथ भेज दीजिए । ठीक ही है, जो राजसी होते हैं, उनके लिये  
 यह नहीं विचार किया जाता कि वे छोटे हैं या बड़े ॥१॥ मगधके दशरथजीने राम घोर लक्ष्मणको  
 बड़ी गरम्याके साथ मा पर के विदागोने इतने मऊ थे कि उन्हेने नराल राम-लक्ष्मणको पुनिके  
 साथ भेज दिया क्योंकि रघुजन्मी राजाने यह सोचि रही है कि यदि कोई प्राण भी मरे तो उसे  
 विष्णु मरी सोचने ॥२॥ अभी राजा दशरथ जनकी विदागोने लिये मद्य राजानेको आज्ञा अपने  
 मेरकोंके दे ही रहे थे कि इतनेमें याकुने पुन घोर वाटगोने-रुम सावर लक्ष्मणके गरम्य ही ही  
 दिने ॥३॥ विराडी आज्ञा जानन करनेको प्रकृत होकर दोनों राजकुमार अपने पिताके परामर्श  
 प्रमाण मानेको चुके ही थे कि दशरथजीकी आज्ञाके उन दोनों पर अग्नि टपक पड़े ॥४॥ घोर उन  
 जागृषो मे दोनों राजकुमारोंको सोचिवां भोग गई । शिव गरम्य यक्षु मेकर दोनों राजकुमार विरा-  
 दिकेकोके पीछे-पीछे पडे आ रहे थे उन गरम्य उग्री देगोने हुए पुरवादिगोको सोचो लेगी आज पक्षी  
 की मानो मेरीको बदनधरे कोष ही गई ही ॥५॥ विराडभिषेकी केदर राम घोर लक्ष्मणको ही मे  
 आज्ञा पक्षी थे । अब, राजाने उनको मगधराजे के मऊका पालोवोने ही दिया, भेजा नहीं । क्योंकि  
 राजा पालोवोने ही उग्री ग्यारने विष्णु परमेश्वर ॥६॥ मलायोंने परम दृष्टर दोनों राजकुमार उन

धीचिलोलभ्रजयोस्तयोर्मतं शैशवाच्चपलमत्यशोभत ।  
 तोयदागम इवोद्धथमिद्ययोर्नामधेयमदृशं विचेष्टितम् ॥ ८ ॥  
 तौ घलातिवलयोः प्रभावतो विद्ययोः पथि मुनिप्रदिष्टयोः ।  
 मम्लतुर्न मथिक्कुट्टिमोचितौ मातृपार्श्वपरिवर्तिनाविव ॥ ९ ॥  
 पूर्ववृत्तकथितैः पुराविदः सानुजः पितृसखस्य राघवः ।  
 उल्लमान इव बाहनोचितः पादचारमपि न व्यभावयत् ॥ १० ॥  
 तौ सरांसि रसवद्भिरभ्युभिः कूजितैः श्रुत्सिद्धैः पतत्रिणः ।  
 वायवः सुरभिपुष्परेणुभिस्त्रयायया च जलदाः सिपेविरे ॥ ११ ॥  
 नाम्भसां कमलशोभिनां तथा शाखिनां च न परिश्रमच्छिदाम् ।  
 दर्शनेन लघुना यथा तयोः प्रीतिमापुरुभयोस्तपस्विनः ॥ १२ ॥  
 स्थाणुदग्धपुपस्तपोवनं प्राप्य दाशरथिरात्तकार्मुकः ।  
 विग्रहेण मदनस्य चारुणा सोऽभवत्प्रतिनिधिर्न कर्मणा ॥ १३ ॥  
 तौ सुकेतुसुतया खिलीकृते क्रीशिकाद्विदितशापया पथि ।  
 निन्यतुः स्थलनिवेशिताटनी लीलर्यैश्च धनुषी अधिज्यताम् ॥ १४ ॥

तेजस्वी मुनिके पीछे चलते हुए ऐसे घोषित होते थे मानो सूर्यके पीछे-पीछे चैन और वैशाख मास चलते पा रहे हो ॥७॥ बचपनके कारण सहरोके समान बचल बाहोबाले राजकुमारोका चुलबुलानन ऐसा सुन्दर लग रहा था मानो बर्षा ऋतुमें दोनो उदय्य और मित नदियाँ सह्यती उल्लाती तटोको डाली हुई बली जा रही हो ॥८॥ [माजलक उन बालबोने परसे बाहर गये पर रक्सा ही न था, इसलिये] मार्ग में ही विश्वामित्रजीने उन्हे बना और अतिबला नामनी दोनो बियाएँ सिला दी जिससे उदय-छावट बनके मार्गमें चलते हुए उन्हे यमान नहीं हो रही थी और बँसा हो मुल हो रहा था जैसे वे भणियो से जटे हुए भ्रमने भ्रमनी में अपनी माताके पासपास घूम रहे हो ॥९॥ जो राम और लक्ष्मण सदा विषय रघोपर चढकर चलते थे उन्हे तबिक भी पकावट नहीं हुई क्योंकि उनके पिताने मित्र विश्वामित्रजी उन्हे मार्गमें पुरानी कर्णाएँ सुनाते चले जा रहे थे ॥१०॥ सरोवरोंमें अपनी मीठा बल पिलाकर, पक्षियोंने मधुर गीत सुनाकर, वायुने सुगन्धित पराग फँकाकर और बादलोंने शीतल छाया देकर मार्गमें उन दोनो की बडी सेवा की ॥११॥ कमजोरी परे हुए सरोवरों-तथा पकावट हरनेवाले वृक्षोंको छापाको देखकर भी प्राथमके तपस्वी उतने प्रसन्न बभी नहीं हुए थे जिताने इन दोनो राजकुमारोंको देखकर प्रसन्न हुए ॥१२॥ जिस तपोवनमें शिवजीने कामदेवकी भस्म निया था वहाँ जब सुन्दर शरीरवाले राम धनुष उठाए हुए पहुँचे तब जान पडा मानो वे यहाँ कामदेवकी सुन्दरता के प्रतिनिधि बनकर आए ह्ये, उधके बायों के नहीं ॥१३॥ वही मार्गमें उन्हे यह सुनेतु की कथा हाइना राक्षसी मिसी जिसने सारे मार्गको उखाड बना दिया था और जिसने शापकी कथा महीप विश्वामित्रने पहले ही रामको सुना दी थी । उसे देखते ही उन दोनो माइयोंने अपने, धनुषोंको गृध्रोंपर

ज्यानिनादमथ गृह्णीती तयोः प्रादुरास बहुलचपाङ्गविः ।  
 ताडका चलकपालकुण्डला कालिकेन निविटा पलाकिनी ॥१५॥  
 तीव्रवेगधृतमार्गदृक्षया श्रेतचीवरवसा स्वनोग्रया ।  
 अभ्यभावि भ्रताग्रजस्तया वात्ययेव पितृकानमोत्थया ॥१६॥  
 उद्यतैकभुजयष्टिमायतीं श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम् ।  
 तां विलोक्य यनितावधे घृष्णां पत्त्रिणा सह मुमोच राघवः ॥१७॥  
 यच्चकार विवरं शिलाघने ताडकोरसि स रामसायकः ।  
 अप्रविष्टविषयस्य रक्षसां द्वारतामगमदन्तकस्य तत् ॥१८॥  
 पाणभिरहृदया निपेतुषी सा स्वकाननस्रुवं न केवलाम् ।  
 धिष्टपत्रपपराजयस्थिरां रावणश्रिपमपि व्यकम्पयत् ॥१९॥  
 राममन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी ।  
 गन्धवद्गुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा ॥२०॥  
 नैश्वर्यतश्नमथ मन्त्रयन्मुनेः प्रापदस्त्रमवदानतोपितात् ।  
 ज्योतिरिन्धननिपाति भास्करात्सूर्यकान्त इव ताडकान्तकः ॥२१॥  
 यामनाश्रमपदं ततः परं पावनं श्रुतमृषेरूपेयिवान् ।  
 उन्मनाः प्रथमजन्मत्रेष्टितान्यस्मरन्नपि बभूव राघवः ॥२२॥

टेककर शोभा चढाती ॥१५॥ उन्ने घटुपकी सोरीकी टकार मुन्ने ही, धानेनि लटकी हुई मनुष्यकी  
 सोपबिर्वाता मुन्नेल हिसाती हुई समबात्तानी राधिके समन वाली बभूती ताडका उन्ने साने भावर  
 दस प्रकार लटकी हो गई मानो बगुलाकी पानीने भरती वाली बरनी हो ॥१५॥ बड़े वेगसे मार्गके वृक्षोकी  
 छाती हुई प्रेतोंके बल पढ़ने हुई, घोर भयकर गरजनेवाली तथा एपसामने उठे हुए बबहरके समान  
 पाटुनि वाली ताडका, रामने ज्वर दूट पयो ॥१६॥ बृक्षकी सागसके समान मपनी पीह उठाती हुई  
 घोर भयकरने छातोकी लटकी (परस्पर) बहने हुई उक्त नाबबाको देगार समने श्रीको मारनेकी पुटा  
 घोर बाग दोनों एक साथ छोड़े ॥१७॥ रामने उक्त बाखुने रावणकी पट्टनके समान बटोर ताडकाकी  
 धानीमें जो देह लिया पढ़ मानो राससोने उक्त देहमें यमराजके प्रवेश करनेके लिये द्वार खोल दिया  
 हो जहाँ समीपक यह जा नहीं पाया पा ॥१८॥ रामने बाखुने ताडकाको समीप लट गई घोर बहु  
 नीचे गिरी तब उल्लेने बह जङ्गल ही बहने बरन् सीनो सोबोको जीतनेके बाद हुई रावणकी  
 राजनसो भी बर्न उठी ॥१९॥ रामने बाखुके विषकर दुर्गन्धपरे गिराके निपटी हुई ताडका हम  
 प्रकार सोपे मन्मथके चर्न गई मानो बामने बागले पावन हुई कोई परिभाषिता चन्दनका मेष  
 करने करने प्रियने पर जा रही हो ॥२०॥ बड़े मूर्ख, मरही नमानेबा क्षेत्र मूर्खान्त नगिनको दे  
 देता है बड़े ही ताडकाके मरनेके मरनि किष्किन्न इने प्रकृत हुए कि उन्नेने रामको राशनीका  
 सृष्टार जानेवाला इत्ये मन्मथ-महिा दे दिया ॥२१॥ बहने रामचन्द्रकी कामनेके लय पथिक

आससाद मुनिरात्मनस्ततः शिष्यवर्गपरिकल्पितार्हक्षम् ।  
 बद्धपल्लवपुटाञ्जलिद्रुमं दर्शनोन्मुखमृगं तपोवनम् ॥२३॥  
 तत्र दीक्षितमृषिं ररक्षतुर्विघ्नतो दशरथात्मजौ शरैः ।  
 लोकमन्धतमसात्कर्मोदितौ ररिमगिः शश्विदिवाकराविव ॥२४॥  
 वीक्ष्य वेदिमथ रक्तविन्दुभिर्विन्दुजीवपृथुभिः प्रदूषिताम् ।  
 सभ्रमोऽभवदपोढकर्मणामृत्विजां च्युतत्रिकङ्कतसुचाम् ॥२५॥  
 उन्मुखः सपदि लक्ष्मणाग्रजो पाणमाश्रयमुखात्समुद्ररन् ।  
 रक्षसां बलमपश्यदम्बरे गृध्रपक्षपवनेरितध्वजम् ॥२६॥  
 तत्र यावधिपती भरद्विषां तौ शरव्यमकरोस्त नेतरान् ।  
 किं महोरगधिसर्पिविक्रमो राजिलेषु गरुडः प्रवर्तते ॥२७॥  
 सोऽह्मप्रजवमस्रफोविदः संदधे धनुषि चायुर्द्वैवतम् ।  
 तेन शैलगुरुमप्यपातयत्पांडुपत्रमिव ताडकासुतम् ॥२८॥  
 यः सुवाहुरिति राक्षसोऽपरस्तत्र तत्र विससर्प मायया ।  
 तं क्षुरप्रशकलीकृतं कृती पत्त्रिखां व्यभजदाश्रमाद्बहिः ॥२९॥

प्राथम्ये गए जितके विषयमे विधागिनजीमे जगहे सब बला दिसा बा । वहाँ अपने पूर्व जन्मके  
 घामनाबतारकी सीतामौका ठीक-ठीक स्मरण न होनेपर भी वे कुछ उत्कण्ठितसे हो गए ॥२३॥  
 वहाँसे मुनि अपने उस आश्रमपर पहुँचे जहाँ विष्णोने पूजाकी सब सामग्री इकट्ठी कर रखी थी, जहाँ  
 वृष भी अपने पत्नीकी मञ्जलि पाँपे जड़े के और जहाँ मृग भी बड़ी उत्सुकतासे इन लोपोपो देख  
 रहे थे ॥२३॥ जैसे सूर्य और चन्द्रमा बाधे-बाधीसे अपनी किरणोंसे पृथ्वीका प्रभेदा बुर करते हैं  
 वैसे ही आश्रमके बाधे-बाधीसे राम और लक्ष्मण यज्ञ करनेवासे शृणिके विघ्न बुर कर रहे थे ॥२४॥  
 इतनेमें ही मशली वेदीपर गन्धुनीव (दुपहरिया) के फूलके समान बड़ी-बड़ी रक्तकी धुँदें देखकर  
 शृणिकोको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने यज्ञ करना बन्द करके अपने-अपने धरके स्रुये रक्त  
 दिए ॥२५॥ उतौ समय रामने अपने लुण्ठोरसे बाण निकाले और ऊपर मुँह करके धावाशकी और  
 देखा कि गिद्धके पत्नीके समान हिलती हुई पञ्जामोवासी राक्षतोकी सेना बड़ी बड़ी है ॥२६॥  
 रामने और सबको छोडकर जन्ही दो राक्षसोंके बाण मारे जो उस सेनाके सेनानायक थे और जो  
 यज्ञसे घृणा करते थे क्योंकि नला बड़े-बड़े सर्पोंपर आक्रमण करनेवाला घट्ट क्या कभी जलके  
 छोटे-छोटे सर्पोंपर आक्रमण किया करता है ॥२७॥ दिव्य धनु चलातेमें रामका हाथ ऐसा  
 मधा हुआ था कि उन्होंने मूठ अपने धनुषपर पायथ्य मन्त्र चढाया और ध्वंसे भी बड़े ताडकाके  
 धुन मारीचकी उस बाणसे उठाकर जैसे ही दूर फेंक दिया जैसे कोई सूखा पत्ता उठा दिया हो ॥२८॥  
 सुवाह नामका जो दूधर राक्षस अपनी मायासे इधर-उधर भ्रम रहा था उसे भी रामने अपने बाणोंसे  
 दुकड़े-दुकड़े करने आश्रमके बाहर मार विरगया जिसे पक्षियोंन दण भरमें बाँट धामा ॥२९॥

इत्यपास्तमखविघ्नयोस्तयोः सांयुगीनमभिनन्द्य विक्रमम् ।  
 ऋत्विजः कुलपतेर्यथाक्रमं वाग्यतस्य निरवर्तयन्क्रियाः ॥३०॥  
 तौ प्रणामचलकाकचक्रौ भ्रातराववसृथाप्नुतो मुनिः ।  
 आशिषामनुपदं समस्पृशद्वर्मपाटिततलेन पाणिना ॥३१॥  
 तं न्यमन्त्रयत संभृतक्रतुमैथिलः स मिथिलां व्रजन्वशी ।  
 राघवावपि निनाय विभ्रतौ तद्भुजुःश्वशजं कुतूहलम् ॥३२॥  
 तैः शिवेषु वमतिर्गताच्चभिः सायमाश्रमतुरुष्वगृह्यत ।  
 येषु दीर्घतपसः परिग्रहो वागवक्ष्यकलत्रतां ययौ ॥३३॥  
 प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनरचाकृ गौतमवधुः शिलामयी ।  
 स्वं वपुः स किल किल्बिपच्छिद्रां रामपादरजसामनुग्रहः ॥३४॥  
 राघवान्वितमुपस्थितं मुनिं तं निशम्य जनको जनेश्वरः ।  
 अर्थकामसहितं सपर्यया देहवद्धमिव धर्ममभ्यगात् ॥३५॥  
 तौ विदेहनगरीनिवासिनां गां गताविच दिवः पुनर्वसू ।  
 मन्यते स्म पिबतां विलोचनैः पद्मपातमपि वञ्चनां मनः ॥३६॥

जब यज्ञ करनेवाले ऋषिगोत्रे देखा कि शोठे हों समझने समझे सब विघ्न दूर कर दिए तो उन्होंने  
 राम और लक्ष्मणके पराक्रमकी बड़ी प्रशंसा की और गौतम धारण किए विश्वामित्रजीने विधिसे  
 साय घापना यज्ञ पूरा कर लिया ॥३०॥ यज्ञ पूर्ण होने पर, स्नान करने गह्वरि विश्वामित्रने जब  
 राम और लक्ष्मणको बरा भानीबाद दिया बिनकी सटें प्रणाम करते समय झूक रही थी । ऋषिने  
 दुयासे धिती हुई अपनी हथेली उनके तिरपर रखकर उनपर अपना बड़ा स्नेह दिखाया ॥३१॥  
 उन्हें विनी राजा जनपते वपुय यज्ञ ठान रखता था जिसने उन्होंने मुनिदोषो भी निमग्न  
 दिया था । वपुययज्ञ की बात सुनकर दोनो राजकुमारोको बड़ा कुतूहल हुआ, इसलिये विश्वामित्रजी  
 का दोनो की साथ लेकर मिथिलापुरीकी ओर चल दिये ॥३२॥ वे कुछ दूर चले हीन कि  
 साँक हो गई और वे उस माश्रमके सुन्दर वृषोके ठले टिक गए रहें महातपस्वी गौतमजी  
 श्री अहिल्या सोरी देरके तिये इन्द्रकी पत्नी बन गई थी ॥३३॥ रामके परलोकी धूल  
 सब पायो वो हरनेवालो भी इसलिये उसने दूते ही पतिने साथसे परधर बनो हुई प्रहत्या की  
 फिर दाने दिना पादे वही महलेवाला सुन्दर शरीर मिन गया ॥३४॥ जब राजा जनकजीको  
 मह मायापार मिला कि विन्वानित्रजीके साथ राम और लक्ष्मण भी घाये हुए हैं तब  
 वे पूजाकी सामग्री लेकर उनकी प्रणवानीने भिये मिलने थले । जनकजीको वे ऐसे गये मानो  
 धर्मके साथ धर्म और काम ही चले आए हो ॥३५॥ वे दोनो राजकुमार लेने सुन्दर जन रहे थे  
 मानो दो पुनर्मनु नरेश ही पूजापर उतर घाने हो । जनकपुरने निवासो पेंसे मगन होकर अपनी  
 प्रांगणे उनना रूप थी रहे वे कि जनको मिला भी उन्हें बरा घगर रहा था ॥३६॥

यूपरत्यवसिते क्रियाविधौ कालवित्कुशिकवंशवर्द्धनः ।  
 राममिध्वसनदर्शनोत्सुकं मैथिलाय कथयावभूव सः ॥३७॥  
 तस्य धीच्य ललितं वपुः शिशोः पार्थिवः प्रथितवंशवन्मनः  
 स्वं विचिन्त्य च धनुर्दुरानम पीडितो दुहितृशुल्कसंस्थया ॥३८॥  
 अन्नवीच्य भगवन्मतङ्गजैर्यद्वृहद्भिरपि कर्म दुष्करम् ।  
 तत्र नाहमनुमन्तुमुत्सहे मोघवृत्ति क्लमस्य चेष्टितम् ॥३९॥  
 हे पिता हि पहवो नरेस्वरास्तेन तात धनुषा धनुर्भूतः ।  
 ज्यानिघातकठिनत्वचो भुजान्स्वान्विधूय धिगिति प्रतस्थिरे ॥४०॥  
 प्रत्युशाच तमृषिर्निशम्यतां सारतोऽयमथवा गिरा कृतम् ।  
 चाप एव भवतो भविष्यति व्यक्तशक्तिरशनिर्गिराविव ॥४१॥  
 एवमाप्तवचनास्स पौरुष काकपच्चक्रधरेऽपि राघवे ।  
 श्रद्धे त्रिदशगोपमात्रके दाहशक्तिमिव कृष्णवर्त्मनि ॥४२॥  
 व्यादिदेश गणशोऽथ पार्श्वगान्कार्मुकामिहरणाय मैथिलः ।  
 तैजसस्य धनुषः प्रष्टुत्तये सोयदानिव सहस्रलोचनः ॥४३॥  
 तत्प्रसुप्तभुजगेन्द्रभीषणं वीच्य दाशरथिराददे धनुः ।  
 विद्रुतक्रतुमृगानुसारिणं येन शाश्वमसृजद्वृषपञ्चजः ॥४४॥

जब धनुषपञ्चकी सब क्रियाएँ समाप्त हो गई तब ठीक भवसर समझकर विश्वामित्रजीने जनकजीसे कहा कि राम भी यह धनुष देखना चाहते हैं ॥३७॥ जब जनकजीने एक घोर प्रसिद्ध ब्रह्मे उत्पन्न हुए बालक रामके बोलन शरीरको देखा और दूसरी घोर भ्रमने उस बटोर धनुषपर दृष्टि डाली जिसे बड़े-बड़े वीर भी नहीं मुका सके थे, तब उन्हे इस बातका यत्ना पछतावा हुआ कि मैंने अपनी पत्न्याके विवाहके लिये यह धनुष तोड़नेका घटना क्यों लया दिया ॥३८॥ ये विश्वामित्रजीसे बोले— 'हे भगवन्' जो कैय बड़े बड़े मतवाले हाथी गद्दी बर सकते उसे हाथीके दण्डसे कराना स्वर्णका होलवाह है । इसलिए मेरा मन तो नहीं चाहता कि इनके धनुष उठवाया जाय ॥३९॥ इस धनुषके उठाने मे बड़े-बड़े धनुषधारी राजा अपना-सा मुँह लेकर रह गए और अपनी उन भुजाओंकी धिकारते हुए चले गये जिनपर धनुषकी डोरीकी फटकारसे बड़े-बड़े घट्टे पड़े हुए थे ॥४०॥ यह सुनकर मुनि बोले— 'राजन्' इनकी शक्ति में आपको बतलाता हूँ । पर कहनेसे होश क्या है । जैसे यक्षकी शक्तिकी परीक्षा पहारूपर होती है वैसे ही इनकी शक्तिकी परीक्षा धनुषपर ही हो जायगी, ॥४१॥ मुनिने कहनेसे जनकजीको कुछ कुछ विश्वास होने लगा कि जैसे वीरवहूटीके बराबर नहीं सी चिनचारीमे भी जवानेकी शक्ति छिपी रहती है वैसे ही काकपक्षधारी राममे भी धनुष उठाने की शक्ति अवश्य होगी ॥४२॥ इसलिए जनकजीने अपने सेवकोंको उत्सोहकार धनुष चानेकी आज्ञा दी जैसे इन्द्र भगवाद् बादलोंको अपना धनुष प्रकट करने की आज्ञा देते हैं ॥४३॥ धनुष सामा गया । यह देता जान

आततज्यमकरोत्स संसदा विस्मयस्तिमितनेत्रमीक्षितः ।  
 शैलसारमपि नातियत्नतः पुष्पचापमिव पेशलं स्मरः ॥४५॥  
 भज्यमानमतिमात्रकर्षणाचेन वज्रपरुपस्वनं धनुः ।  
 भार्गवाय दृढमन्यवे पुनः क्षत्रमुद्यतमिव न्यवेदयत् ॥४६॥  
 दृष्टसारमय रुद्रकार्मुके वीर्यशुल्कमभिनन्द्य मैथिलः ।  
 राघवाय तनयामयोनिजां रूपिणीं श्रियमिव न्यवेदयत् ॥४७॥  
 मैथिलः सपदि सत्यसङ्करो राघवाय तनयामयोनिजाम् ।  
 संनिधौ द्युतिमतस्तपोनिषेरग्निसाक्षिक इधातितृष्टवान् ॥४८॥  
 प्राहियोञ्च महितं महाद्युतिः कोशलाधिपतये पुरोधमम् ।  
 भृत्यभावि दुहितुः परिग्रहादिरयतां कुलमिदं निमेरिति ॥४९॥  
 अन्वयेप सदृशीं स च स्नुषां प्राप चैनमनुकूलवाग्द्विजः ।  
 सद्य एव सुकृतां हि पच्यते कल्पवृक्षफलधर्मि काङ्क्षितम् ॥५०॥  
 तस्य कल्पितपुरस्क्रियाविधेः शुश्रुवान्वचनमग्रजन्मनः ।  
 उचचाल यत्नभित्सखो वशी सैन्यरेखुमुपितार्कदीधितिः ॥५१॥

पढता था मानो कोई बड़ा भारी धनुषर सोया हुआ हो । रामने देपते देपते शङ्करजीने उस धनुषको  
 उठा लिया जिसे हाथने लेकर शङ्करजीने मूमने रूपमे दोऊनीयाने यज्ञदेवताके ऊपर धारण कीके थे ॥४५॥  
 यह देलकर १५ उभासदोको मठा आदर्ये दृष्टा जब रामने उस पर्वतके समान भारी धनुषपर बैसी ही  
 सरलताके डोरी बना दी जैसे रामदेव अपने पुरोहि पधुषपर डोरी चढाता है ॥४६॥ रामने धनुषको  
 दृष्टता तान लिया कि यह बचाने समान भयदूर शब्द करने इस प्रकार बढाहाता हुआ दृष्ट गया,  
 मानो उसने महाक्रोधी परशुरामको सूचना दे दी हो कि क्षामिने अब फिर फिर उठाना प्रारम्भ कर  
 दिया है ॥४६॥ राजा जनकने जब देखा कि धनुष तोडकर रामने कपवास्यराक्रम रिलता दिया  
 है तब उन्हीने रामका बडा आदर लिया और पृथ्वीसे उत्पन्न हुई अपनी बम्पा कामकी उठी प्रकार  
 रामने हाथ सँपि दी मानो ताशात् अपनी चढगी ही उन्हे दे डाली हो ॥४७॥ सत्य प्रतिज्ञा  
 करनेवाले जनकने विदवागिपजीको ही विवाह का साक्षी धर्मि समन लिया और तत्काल उन्हीने  
 माने रामको सीता समर्पित कर दी ॥४८॥ तब पदार्थकेस्वी राजा जनकने अपने पूज्य पुरोहितसे  
 दत्तारयजीने पास पढसा भेजा कि मेरी पुत्री सीताको स्वीकार करने इस निमित्त तुजपर बैसी ही  
 वृषा कीदिए जैसी प्राप अपने मकलपर करते हैं ॥४९॥ अगर दत्तारय यह विचार हीरेदे थे कि योग्य  
 पतोहू हमारे परमे साथे कि इतनेमें जनकजीने पुरोहित भी राजा दत्तारयकी को इच्छा पूरी होनेका  
 उमाचार लेकर जा ही तो पहुँच । और जो है, पुण्यवानोकी कमिलाया बलवृत्तके समान तत्काल उस  
 देवेशको होती भी है ॥५०॥ इन्नेमिध, जितेन्द्रिय दत्तारयने पुरोहितकीरा बडा सत्कार किया ।  
 उनकी वाते मुनवर के इतनी केना लेकर चले कि उतने उठे हुई धुपके पूर्व जो बढ गया ॥५१॥



आससाद मिथलां स वेष्टयन्पीडितोपवनपादपां चलैः ।  
 प्रीतिरोधमसद्विष्ट सा पुरी स्त्रीव कान्तपरिभोगमायतम् ॥५२॥  
 तौ समेत्य समये स्थिताबुभौ भूपती वरखवासवोपमौ ।  
 कन्यकातनयकौतुकक्रियां स्वप्रभावसदृशीं वितेनतुः ॥५३॥  
 पार्थिवीमृदयहृद्घुद्धो लक्ष्मणस्तदनुजामयोर्मिलाम् ।  
 यौ तयोरवरजौ वरोजसौ तौ कुशध्वजसुते सुमध्यमे ॥५४॥  
 ते घतुर्थसहितास्त्रयो बभुः सूनयो नववधूपरिग्रहाः ।  
 सामदानविधिभेदनिग्रहाः सिद्धिमन्त इष- तस्य भूपतेः ॥५५॥  
 ता नराधिपसुता नृपात्मजैस्ते च तामिरगमनकृतार्थताम् ।  
 सोऽभवद्वरवधूसमागमः प्रत्ययप्रकृतियोगसन्निभः ॥५६॥  
 एवमात्तरतिरात्मसंभवांस्तान्निवेरय चतुरोऽपि तत्र तः ।  
 अध्वसु त्रिषु विसृष्टमैथिलः स्वां पुरीं दशरथो न्यवर्तत ॥५७॥  
 तस्य जातु मरुतः प्रतीपगा घल्मसु ध्वजतरुप्रमाथिनः ।  
 चिक्लिशुर्भृशतया वरूथिनीमुत्तटा इव नदीरयाः स्थलीम् ॥५८॥  
 स्रक्ष्यते स्म तदनन्तरं रविर्वद्भीमपरिवेपमण्डलः ।  
 चैनतेयशमितस्य भोगिनो भोगवेष्टित इव च्युतो मणिः ॥५९॥

वे इस डाठ-जाटसे मिथिला पहुँचे मानो उसे घेरते हुए घाये हो । बाहर मिथिलाके उपवनको तो उनकी सेनाके पीछे ही जाता । पर इस प्रेमके घेरको उस नवरीने उतों प्रकार सत्तम विद्या जैसे कोई स्त्री अपने प्रियतमके बठोर सभोगको सत्तम करती है ॥५२॥ वरख और इन्द्रके समान उन दोनों प्रतापी राजाओंके मितरर शास्त्रकी विधिसे अपने ऐश्वर्यके अनुकूल अपने पुत्रो घोर कन्याओंका विवाह कर दिया ॥५३॥ रामका सीतारो घोर लक्ष्मणका सीताओंको छोटी बहन उमिलारो दियाह हुआ । भरत और वासुदेवः विवाह जमनाओंके छोटे भाई कुतघरजकी माण्डवी घोर श्रुतिरीति नामकी कन्याओंसे हुआ ॥५४॥ वे चारो भाई नई यद्गुओंके साथ ऐसे सुगोभित हुए मानो राजा दशरथके साम, दाम, दण्ड और भेद, इन चारो उपायोंसे सिद्धियाँ मिल गईं हो ॥५५॥ उन चारो राज-कुमारोंको पानर राजकन्याएँ घोर राजकन्याओंको पाकर राजकुमार निहाल हो गए । यह पर घोर वधुधोका मिलन ऐसा हुआ जैसे शरके मूल रूपोसे प्रत्यक्ष जुड़ गए हो ॥५६॥ इस प्रकार दशरथने चारो पुत्रोंका विवाह करके तीन पदाय पहुँचकर बहूँसे जनकजीको लौटा दिया और स्वयं बड़े प्रसन्न मनसे अयोध्याको घोर बड़े ॥५७॥ जैसे बड़ी हुई नदीकी धारा घास-गासकी भूमिको उजाड़ देती है वैसे ही एक दिन मार्गमे सेनाके चर्यास्त्री कृशोंको अन्नभीषेजाने वापुने चारो सेनाको ह्यात्रुत कर दिया ॥५८॥ उससे युवकें चारो घोर एक बड़ा भारी मण्डल बन गया घोर यह ऐसा सगले सगा जैसे गरदके माठ हुआ कोई साथ अपने छिस्ते गिरी हुई मलिके चारो घोर कुण्डलो

रघेनपक्षपरिधूसरालकाः सांध्यमेघरधिरार्द्रवाससः ।  
 अद्भना इव रजस्यला दिशो नो बभूवुरखलोकनक्षमाः ॥६०॥  
 भास्करश्च दिशमभ्युवाम यांतां श्रिताः प्रतिमयं वयासिरे ।  
 क्षत्रशोणितपितृक्रियोचितं चोदयन्त्य इव भार्गवं शिवाः ॥६१॥  
 तत्प्रतीपपयनादि वैकृतं त्रेक्ष्य शान्तिमधिकृत्य कृत्यवित् ।  
 अन्यपुङ्क गुरुमीश्वरः क्षितेः स्वन्तमित्यलघयत्स तद्रथयाम् ॥६२॥  
 तेजसः सपदि राशिरुत्थितः प्रादुरास क्लिब वाहिनीमुखे ।  
 यः प्रमृज्य नयनानि सैनिकैर्लज्जणीयपुत्पाकृतिशिरात् ॥६३॥  
 पित्र्यमंशामुपवीतलक्षणं मातृकं च घनुरुर्जितं दधत् ।  
 यः मसोम इव धर्मदीधितिः स द्विविह्व इव चन्दनद्रुमः ॥६४॥  
 येन रोपपरुपात्मनः पितुः शासने स्थितिभिदोऽपि तस्धुपा ।  
 वेपमानजननीशिरश्छिदा प्रागजीयत घृणा ततो सही ॥६५॥  
 यक्षवीजवलयेन निर्बभौ दक्षिणश्रवणसंस्थितेन यः ।  
 क्षत्रियान्तकरणैकविंशतेर्व्याजपूर्वगणनामिषोद्वहन् ॥६६॥

मारे पदा हुआ हो ॥६६॥ जैसे रूखे, जैसे यानोवाली तथा रतसे लाल कपटोवाली रजस्वला स्त्री  
 देलनेमे घण्घो नहीं लगती उसी प्रकार उस समय चारो ओरकी वे दिशाएँ नो प्रौसोको नक्षी सुहा  
 रही थी जिनमे मटमंते बाबाके पक्ष इपर उपर उठ रहे थे और सन्ध्याके लाल बादल छाए हुए  
 थे ॥६०॥ जिधर सूर्य या उपर ही तिमरिनिया भयानक रूपसे रोते सगी मानो क्षत्रियो के रस्ते  
 बनने पिताका तर्पण करनेवाले परशुरामको वे पुकार-पुकारकर बुला रही ह्ये ॥६१॥ विरोधी पवनके  
 चलने आदि अघाकुन होते देखकर उसको क्षातिके लिये दक्षरथवीने अपने गुप्से पूछा कि अथ क्या करना  
 चाहिए । इस पर गुरुजीने कहा-निन्ताकी कोई बात नहीं है । इसका फल अच्छा ही होगा । यह सुनकर  
 दक्षरथवीके मनमे कुछ ठाठठ खँपा ॥६२॥ इसी बीच अचानक एक ऐसा प्रकाशका कुछ सेनाके  
 प्रागे उड़ता दिखाई दिया जिसे देखकर सब सैनिकोकी शींसे चौंघिया गई । प्राँसे मलकर  
 क्षेतने पर वह प्रकाशका कुछ सासात् गुप्सके रूपमे दिखाई देने लगा ॥६३॥ उस तेजस्वी पुत्पके  
 शरीरपर ब्राह्मण पिताके सशका सूचक यज्ञोपवीत शोभा दे रहा था और कन्धेपर क्षत्रिय माताका  
 प्राद सूचित करनेवाला घनुर जटक रहा था । इस वेशमे वे ऐसे बाव पडते थे जैसे सूर्यके साम  
 चन्द्रमा हो या चन्दनके फलसे राँप लिपटे हो ॥६४॥ उन्होने बिध समय क्रोपसे कठोर  
 हृदयवाले और उच्चित-अनुचितका विचार छोड देनेवाले अपने पिताकी आज्ञा मानकर अपनी नाँपती  
 हुई माताका सिर काट लिया था उस समय उन्होने पहले जो घृणाको खोत लिया और फिर पृथ्वीको  
 जीत लिया था ॥६५॥ उनके दाएँ नानपर इङ्गीस दानेकी ब्रह्मक्षकी माता जटक रही थी मानो वह  
 इक्षीप बार क्षत्रियोके नाथ करनेकी विनवी करनेके लिये ही उन्होने पहल रखी हो ॥६६॥

तं पितुर्वधभवेन मन्मुना राजवंशनिधनाय दीक्षितम् ।  
 बालधनुस्वलोक्त्य मार्गवं स्वां दशां च विपसाद पार्थिवः ॥६७॥  
 नाम राम इति तुल्यमात्मजे वर्तमानमहिते च दारुणे ।  
 हृद्यमस्य भयदायि चाभवद्रत्नजातमिव हारसर्पयोः ॥६८॥  
 अर्घ्यमर्घ्यमिति वादिनं नृपं सोऽनवेच्य भरताग्रजो यतः ।  
 हृत्त्रकोपदहनार्चिषं ततः संदधे दृशमुदग्रतारकाम् ॥६९॥  
 तेन कार्मुकनिपक्तमुष्टिना राघवो विगतभीः पुरोगतः ।  
 अङ्गुलीविषरचारिणं शरं कुर्वता निजगदे युयुत्सुना ॥७०॥  
 हृत्त्रजातमपकारवैरि मे तन्निहत्य बहुशः शमं गतः ।  
 सुप्तसर्प इव दण्डघट्टनाद्रोपितोऽस्मि तव विक्रमश्रवात् ॥७१॥  
 मैथिलस्य धनुस्वपाथिवैस्त्वं किलानमितपूर्वमज्ञयोः ।  
 तन्निशम्य भवता समर्थये वीर्यभृद्गमिव भग्नमात्मनः ॥७२॥  
 अन्यदा जगति राम इत्ययं शब्द उच्यते एव मामगात् ।  
 ग्रीडमावहति मे स संप्रति व्यस्तवृत्तिरुदयोन्मुखे त्वयि ॥७३॥  
 विभ्रतोऽस्त्रमचलेऽप्यकुण्ठितं द्वौ रिपू भम मती समागतौ ।  
 धेनुवत्सहरणाच्च हैहयस्त्वं च कीर्त्तिमपहर्तुमुद्यतः ॥७४॥

जब दशरथजीने उन परशुरामको देखा जिन्होंने अपने पिताके बारे जानेपर जोधते क्षत्रियोका गारा करने की प्रतिज्ञा कर ली थी तब दशरथजीको अपनी दशा देखकर बड़ी चिन्ता हुई क्योंकि उनके पुत्र अभी बच्चे ही थे ॥६७॥ उनके पुत्र श्रीर परशुराम दोनोमे राम नाम था । इसलिये जैसे गणके हार श्रीर सर्प दोनोमे रहनेवाली मछि भानन्द भी देती है श्रीर भय भो, वैसे ही अपने पुत्र श्रीर परशुराम दोनोमे प्राप्त हुए रामनामसे उन्हें भय भी हुआ श्रीर भानन्द भी ॥६८॥ दशरथजी अभी बच्चे ही रहे गए कि आपके सहकारके लिये यह अर्घ्य है, यह अर्घ्य है किन्तु परशुरामजीने उधर ध्यान भी न देकर क्षत्रियोको जलानेवाली अपनी टेढी चितवनसे रामको देखा ॥६९॥ युद्धके लिये उद्यत श्रीर मुट्टीमे धनुष पकड़कर उँगलियोमे दाण्ड बटाते हुए परशुरामजीने अपने अपने निडर खड़े हुए रामसे कहा ॥७०॥ मेरे पितान् यय करने क्षत्रियोने मुझसे खत्रुता मोल ले ली है । उन्हें बहुत बार मारकर मुझे कुछ शान्ति मिली थी । पर जैसे ठंडेसे छेद देनेपर राँव पुषकार उठता है वैसे ही तुम्हारा पराक्रम सुनकर मेरे शरीरमे भी आग लग गई है ॥७१॥ जनकजीके जिस धनुषको कोई राजा झुका भी न सका उसीने तुमने तोट दिया है । यह युद्धर मेने यही समझा है कि आजतन जो मैं सबसे बढकर धलवान् उगभा जाता था वह यश मानो आज नष्ट हो गया हो ॥७२॥ पहले सवारमे राम बहनेसे लोग मुझे ही समझते थे पर ज्यो-ज्यो तुम ऊँचे चढते चले जा रहे हो त्यो-त्यो वह धर्य तुम्हारे नामके साथ लगता जा रहा है । यह सब देखकर मुझे लज्जा लगने लगी है ॥७३॥ ब्रिय परशुरामके प्रत्य

वत्त्रियान्तकरणोऽपि विक्रमस्तेन मामवति नाजिते त्वयि ।  
 पावकस्य महिमा स गण्यते क्ववज्ज्वलति सागरेऽपि यः ॥७५॥  
 विद्धि चात्तवलमोजसा हरेरैश्वरं घनुरभाजि यच्चया ।  
 सातमूलमनिलो नदीरयैः पातयत्यपि मृदुस्तटद्रुमम् ॥७६॥  
 तन्मदीयमिदमायुधं ज्यया सङ्गमय्य सशरं विकृप्यताम् ।  
 तिष्ठतु प्रधानमेवमप्यहं तुल्यचाहुतरसा जितस्त्वया ॥७७॥  
 कातरोऽसि यद्वि बोद्धतार्चिषा तर्जितः परशुधारया मम ।  
 ज्यानिघातकठिनाङ्गुलिर्दृष्या बध्यतामभययाचनाञ्जलिः ॥७८॥  
 एवमुक्तवति भीमदर्शने भार्गवे स्मितविकम्पिताधारः ।  
 तद्गुणुर्धृष्टमेष राघवः प्रत्यपद्यत समर्थमुत्तरम् ॥७९॥  
 पूर्वजन्मधनुषा समागतः सोऽतिमात्रलघुदर्शनोऽभवत् ।  
 केयलोऽपि सुभगो नवाम्युदः किं पुनस्त्रिदशचापलाञ्छितः ॥८०॥  
 तेन भूमिनिहितैककोटि तरकार्मुकं च वलिनाधिरोपितम् ।  
 निम्नमश्च रिपुरास भूसृतां धूमशेष इव धूमकेतनः ॥८१॥

पहाडोति टपराकर भी फुटिठत नही होते उराके दो ही मनु भ्राजतव समान अपराप करणेवाले हुए हैं, उनमे पहला तो पा सहजवाह जो मेरे पितासे कामधेनुका बधहा छीनकर ले गया था और दूसरे ही तुम, जो मेरी शक्ति छीननेपर तुले बैठे हो ॥७५॥ इसलिये क्षत्रियोका नाश करनेवाला मेरा पराक्रम सबताप मुझे अच्छा नहीं लगता जयतव मैं तुम्हें जीत न लूँ क्योंकि घनिना प्रताप ठनी सराहनीय होता है जब वह समुद्रन भी बँधे ही भद्रकर जले जैसे सूखी भावके बेरमे, ॥७५॥ तुम्हें यह समझ रखना चाहिए कि दिवजीने जिस धनुषकी तोडकर तुम एँठ रहे हो उसकी कठोरता तो विष्णुजीने पहले ही हर ली थी । इसलिये उसे तोडकर तुमने कोई बोरताना काम नहीं किया है, क्योंकि जिस वृक्षकी जड़ नदीकी प्रवणध धाराने पहले ही खीखली कर दी हो उसे वातुके तनितसे झोकने ही वह जानेमे क्या बर लगती है ॥७६॥ देवी राम । युद्ध तो पीछे होगा, पहले तुम मेरे इस धनुषपर डोरी चढाकर इसे बांधने साथ खींचो तो । यदि तुम इतना भी नर लोने तो मैं सपनांगा कि तुम मेरे ही समान बभराद हो और मैं इतनेमे ही हार मानकर बोट जाऊँगा ॥७७॥ और यदि तुम मेरे फरसेकी बचकती हुई धारकी देतवर टर गए हो तो अपने उन हाथोको जोडकर धमकी मिठा माँगो जिनकी उँवविषोमे धनुषकी डोरीकी पटकारमे व्यर्थ ही पट्टे पट गए हैं ॥७८॥ मजदूर बेसपारी परधुसामजोन जब यह कहा तो रामने हँसते-हँसते इस प्रकार वह धनुष हथोमे ले लिया मानो परधुसामजीने बचनोका बडी डीव उत्तर हो ॥७९॥ बँधे ही उन्होंने अपने पिछने बनावाला वह धनुष हाथमे लिया त्योंही उसकी छोसा और भी बड़ गई, क्योंकि एक तो नया बादन था ही मुन्दर लगता है, फिर यदि उममे दूध धनुष भी बन जाय सब तो उसकी छोसाता बढता ही गया ॥८०॥ पराममी रामने उस घणुषकी एक छोरे पृथ्वीपर टेनकर बँधे ही उत्तर डोरी चढाई बँधे ही क्षत्रियोने दानु

तावुभाषपि परस्परस्थितौ वर्षमानपरिहीनतेजसौ ।  
 पश्यति स्म अनता दिनात्यये पार्वशौ शशदिवाकराविव ॥८२॥  
 तं कुपामृदुरवेच्य भार्गवं राघवः स्वस्तिववीर्यभात्मनि ।  
 स्वं च संहितममोघमाशुगं न्याजहार हरसूनुसंनिभः ॥८३॥  
 न प्रहर्तुमलमस्मि निर्दयं विप्र इत्यग्निमघत्यपि त्वयि ।  
 शंस किं गतिमनेन पत्त्रिणा हन्मि लोकमुत्तते मत्सार्जितम् ॥८४॥  
 प्रत्युवाच तस्यपिर्न तच्चतस्त्वां न वेद्मि पुरुषं पुरातनम् ।  
 गां गतस्य तव घाम बैष्णवं कोपितो ह्यसि मया दिदृक्षुष्या ॥८५॥  
 भस्मसात्कृतवतः पितृद्विपः पात्रसाच वसुधां ससागराम् ।  
 आहितो जघविपर्ययोऽपि मे श्लाघ्य एव परमेष्ठिना त्वया ॥८६॥  
 तद्गतिं मत्तिमतां चरेप्सितां पुण्यतीर्थगमनाय रक्ष मे ।  
 पीडयिष्यति न मां खिलीकृता स्वर्गपद्धतिरभोगलोलुपम् ॥८७॥  
 प्रत्यपद्यत तथेति राघवः प्राङ्मुखश्च विससर्ज सायकम् ।  
 भार्गवस्य सुकृतोऽपि सोऽभवत्स्वर्गमार्गपरिधौ दुरत्ययः ॥८८॥

परशुरामजी उसी क्षणिके समान निस्तेज हो गए जिसने केवल धुआँ भर रह गया हो ॥८१॥  
 घामने-सागने लगे हुए राम और परशुरामनेते एकरा तेज बढ गया और वृषरैका घट गया और  
 दस प्रकार के दोनो ऐसे जान पडने लगे जैसे वे सन्ध्या खमरके चन्द्रमा और सूर्य हीं  
 ॥८२॥ कार्तिकेयके समान तेजस्वी द्वातु रामचन्द्रजीने एक बार निरतेज परशुरामजीको  
 और फिर धनुषपर बडे हुए अपने प्रभूक बाणको देखा और बोले ॥८३॥—'यद्यपि भापने हमारा  
 प्रयमान किया है पर भाप ब्राह्मण हैं, इतलिये मैं निर्दय होकर भापको मारूँगा नहीं। पर यह  
 बताइए कि जब इस बाणसे मैं भापकी गति रोकूँ या भापका जन दिव्य शोकोंने पहुँचना रोक दूँ  
 जो भापने यह करने कीत लिए है ॥८४॥ यह सुनकर परशुरामजी बोले—'यह बात नहीं है कि  
 भापको देजते ही मैं पहचान न गया हूँ कि भाप ही साक्षात् पुरातन पुरुष हैं, किन्तु मैंने यह जाननेके  
 लिए भापको कष्ट दिया था कि देखूँ आप विष्णुका किन्तना तेज लेकर पृथ्वीपर उतरे हैं ॥८५॥  
 पिताके समुद्रोत्थान नाश करनेवाले और सागरतक फँसी हुई पृथ्वी ब्राह्मणोंको राज देनेवाले मुझ  
 परशुरामके लिए भाप परम पुरुषके हाथी हारना भी गौरवकी ही बात है ॥ ८६॥ इसलिये भाप  
 मेरी गति न रोकिए जिससे मैं पवित्र तीर्थोंमें जा सकूँ। मुझे भोगने तो इच्छा है नहीं इसलिये  
 यदि मुझे स्वर्ग न भी मिले तो कुछ दुख नहीं होगा' ॥८७॥ रामने परशुरामजीका कहना मान  
 लिया और प्रपकी और मुँह करके बाण छोड दिया। यद्यपि परशुरामजीने बहुत पुण्य किए थे  
 विन्तु वह बाण सदाके लिये परशुरामजीके स्वर्गना मार्ग रोककर पडा हो गया ॥८८॥ तब रामने

राघवोऽपि चरन्तौ तपोनिधेः क्षम्यतामिति वदन्समस्पृशत् ।  
 निर्जितेषु तरसा तरस्विनां शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्तये ॥६६॥  
 राजसत्क्षमवधूय मातृर्कं पित्र्यमस्मि गमितः शर्म यदा ।  
 नन्दनिन्दितफलो मम त्वया निग्रहोऽप्ययमनुग्रहीकृतः ॥६७॥  
 साधवाम्यहमविघ्नमस्तु ते देवकार्यमुपपादयिष्यतः ।  
 छञ्चिवानिति वचः सलक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजमृषिस्तिरोदधे ॥६८॥  
 तस्मिन्नाते विजयिनं परिरभ्य शमं स्नेहादमन्यत पिता पुनरेव जातम् ।  
 तस्याभवत्क्षयाशुचः परितोपलामः कृष्णाग्निलङ्घिततरोरिव धृष्टिपातः ॥६९॥  
 अथ पथि गमयित्वा क्लृप्तस्योपकार्ये कतिचिद्वनिपालः शर्वरीः शर्वकल्पः ।  
 पुरमविशदपोष्पां मैथिलीदर्शिनीनां कुवलयितगवाक्षां लोचनैरङ्गनानाम् ॥६३॥

इति महाकविश्रीकानिदासकृता रघुवंशे महाकाव्ये  
 सीता विवाहवर्णनो नामकादशः सर्गः ॥

परशुरामजीसे क्षमा मांगते हुए उनके चरणोंमें प्रणाम किया; क्योंकि जब कोई पराक्रमी अपने बनसे अपने शत्रुको भीत करता है तब यदि वह भयता भी दिखावे तो उसकी कीर्ति ही बढ़ती है ॥६६॥  
 परशुरामजी बोले—'मापने मुझे यह वषट्क लेकर मेरा बड़ा भारी उपकार किया है । इससे मेरा बड़ा भारी लाभ हो यह हुआ कि आपने क्षत्रिय मातासे पाए हुए मेरे रजोगुणको दूर करके मुझे पिताका सत्वगुण प्रदान कर दिया ॥६७॥ मैं अब जाता हूँ । आप देवतामाँका जो कार्य करनेके लिए आए हैं वह विना विघ्नके पूरा हो । राम और लक्ष्मणसे यह कहकर परशुरामजी प्रत्यर्पण हो गए ॥६८॥ उनके पास जानेपर विजयी रामको दशरथजीने सबसे लगा लिया और वे स्नेहमें भरकर यह मन्त्रले लगे कि रामका दुःख जन्म हुआ है । इस बोधी देखके दुःखके पश्चात् उन्हें ऐसा सतीव मिला जैसे जंगल की भाँसे मुँहमें पेड़के बर्षाका जल मिल जाय ॥६९॥ तब द्वािके समान राजा दशरथने कुछ रातों को राग माँगमें बिताई जहाँ उनके लिए सुन्दर डेरे बने हुए थे । फिर वे उन प्रयोग्या नगरीमें पहुँचे जहाँ सीताजीको देखनेके लिए अल्लुख, नगरकी सुन्दर विजयीकी भाँसे ऊरोक्षोंमें मयतके समान उत्तरी दिखाई पड़ रही थी ॥६३॥

महानवि श्रीकानिदासके रचे हुए रघुवंश महाकाव्यमें सीताजीके विवाहका  
 वर्णन नामका ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

## ॥ द्वादशः सर्गः ॥

निर्विष्टविषयस्नेहः स दशान्तमुपेयिवान् ।  
 आसीदासन्ननिर्वाणः प्रदीपार्चिरिवोपरि ॥ १ ॥  
 तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति ।  
 कैकेयीशङ्कयेवाह पलितच्छत्रना जरा ॥ २ ॥  
 सा पौरान्पौरकान्तस्य रामस्याभ्युदयश्रुतिः ।  
 प्रत्येकं ह्लादयांचक्रे कुल्येवोद्यानपादपान् ॥ ३ ॥  
 तस्याभियेकसंभारं कल्पितं क्रूरनिश्चया ।  
 दूषयामास कैकेयी शोकोष्णैः पार्थिवश्रुभिः ॥ ४ ॥  
 सा किंत्वाश्वासिता चण्डी भर्त्रा तत्संश्रुतौ वरौ ।  
 उद्धवामेन्द्रसिक्ता भूर्विलमज्ञावियोरगौ ॥ ५ ॥  
 तपोश्रुतुर्दशैकेन रामं प्रात्राजयत्समाः ।  
 द्वितीयेन सुप्तस्यैच्छद्वैधव्यैकफलां श्रियम् ॥ ६ ॥  
 पित्रा दत्तां रुदन्रामः प्राह्महीं प्रत्यपद्यत ।  
 पश्चाद्दनाय गच्छेति तदाज्ञां मुदितोऽग्रहीत् ॥ ७ ॥

### बारहवाँ सर्ग

राजा दशरथने सत्कारके सब सुख भोग लिए और बूढ़े हो चले । अब उनकी दशा प्रातः कालके उस दीपक जैसी हो गई थी जिसका तेल चुरा गया हो और बस वह धुनने ही बाना हो ॥१॥ उनकी कनपटीके पास बाल पक गए थे मानो मुठापा भी कैकेयीसे सक्त होकर राजाके बानने भाकर रह रह रहा ही कि अब रामको राज्य सौंप ही देना चाहिए ॥२॥ जैसे पानीकी बूलसे सिक्कर पूरे उद्यानके वृक्ष हरे-भरे हो जाते हैं वैसे ही नगरवासियोंके प्यारे रामने राज्याभिषेकका समाचार सुनकर मनोप्याके लोग फूले नहीं समाए ॥३॥ पर निठुर कैकेयीने ऐसा बक बूलाया कि राज्याभिषेकका सारा उत्सव शोकसे रापे हुए राजा दशरथके श्रांतुओंसे लिप गया ॥४॥ जब राजा दशरथने उस कठोर स्वभाववाली कैकेयीको बहुत मनाया तब उसने ये दो बर भांगि जिनके हिये राजा दशरथ पहनेके ही वचन दे चुके थे । ये दो बर ऐसे ही थे जैसे कपडि भीनी हुई पृथ्वीके छेदोमेरे दो सौंप निकल पडे हो ॥५॥ कैकेयीने एक बर तो यह भांगि बि चौबहु बर्पके हिये राम वनमे धले जायें और दूसरा यह कि मेरे डेटे भरतको राज्य मिले । पर इस बर माँगनेका एवमात्र फल यही निकला कि कैकेयी विधवा हो गई ॥६॥ जब दशरथकी रामको राजगद्दी दे रहे थे उस समय रामने श्रांतोभि धामू भरवर उये तबीबार किया था और जब उनसे कहा गया कि वन चले जाओ तब रामने इस

दधतो मङ्गलवीमे वसानस्य च वल्कले ।  
 ददृशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः ॥८॥  
 स सीतालक्ष्मणसखः सत्याद्गुरुमलोपयन् ।  
 विवेश दण्डकारख्यं प्रत्येकं च सतां मनः ॥९॥  
 राजाऽपि तद्वियोगार्तः स्मृत्वा शापं स्वकर्मजम् ।  
 शरीरत्यागमात्रेण शुद्धिलाभममन्यत ॥१०॥  
 विप्रोपितकुमारं तद्रान्यमस्तमितेश्वरम् ।  
 रन्धान्वेषणदक्षाणां द्विषामामिपतां ययौ ॥११॥  
 अथानाथाः प्रकृतयो मातृवन्धुनिवासिनम् ।  
 मौलैरानाययामासुर्भरतं स्तम्भिताश्रुभिः ॥१२॥  
 श्रुत्वा तथाविधं मृत्युं क्लैर्यातनयः पितुः ।  
 मातुर्न केवलं स्वस्या त्रियोऽप्यासीत्पराङ्मुखः ॥१३॥  
 ससैन्यथान्वगाद्रामं दशितानाश्रमालयैः ।  
 तस्य पश्यन्सतीमित्रेहृद्भुर्वसतिर्गुमान् ॥१४॥  
 चित्रकूटवनस्थं च कथितस्वर्गतिर्गुरोः ।  
 लक्ष्म्या निमग्रयांचक्रे तमंस्तुच्छिष्टसंपदा ॥१५॥

मामारो हँलते-हँलते निर माये पदा तिया ॥८॥ यह देतार लोकोके धान्नयंका विपाना न रहा  
 कि रामने भूँषा भाव अँसा राम्याभिनेके देवी बरन पर्वने समय था ठीक बँधा ही बन जानेके  
 लिये पेटकी छातके बदन पहँले समय नी था ॥८॥ भाने विपाने बचन मरन करनेके लिए ये छोटा  
 घोर लक्ष्मणने साथ बँधन इन्द्रक बनने ही नहीं बँडे बरनू भरने इए संख भ्यरहाखे उन्हीने सज्जनोके  
 मनने भी पर पर तिया ॥९॥ उनके विपोगने राजा दशरथको बड़ा दुःख हुआ । उन्हें मुनिरा धार  
 स्वरण ही माया घोर उन्हीने सगळ तिया कि सब प्राण देपर हो देये पुडि होगी ॥१०॥ दशरथ-  
 लीके शत्रु तो ऐने भयकरकी ताबने ही थे । जब उन्हीने देखा कि धमोप्यारे राजा स्वर्ग चरे गए  
 घोर रात्रकुमार भी राजव छोकर बल शिष्ट तो उन्हीने जट धमोप्यार पावा बोन दिया ॥११॥  
 मर देतार धमोप्यारी धनाय प्रयाने उन मुत-भन्निबयोरो भेबर भरनरो जनकी ननिहालये युताया  
 त्रिर्दो घाने धाँगू निबाने नही दिए थे ॥१२॥ जब भरनकोकी पाने पिताकी मृत्युका सब  
 गमावार निना तब थे बँधन धनकी मणि ही नहीं बरनू धमोप्यारी राज-नरभोगे भी बडे बिड गए  
 ॥१३॥ उन्हीने अपने माय देव ली घोर राजकी दूँइने निबन पडे । जब मायके  
 धारमवागिनी उन्हीं के दूख शिगाए त्रिकके तँ राम घोर लक्ष्मण जनि हुए टिके ये तो उनकी  
 पालोने धाँगू एतए माए ॥१४॥ उन दिनें उन निगूड-बननें दूँके थे । यहाँ नरक



स हि प्रमत्तरिमन्मकृतश्रीपरिग्रहे ।  
 परिवेत्तारमात्मानं मेने स्वीकरणाद्भवः ॥१६॥  
 तमशक्यमपाक्रष्टुं निदेशात्स्वर्गिणः पितुः ।  
 ययाचे पादुके पश्चात् कर्तुं राज्याधिदेवते ॥१७॥  
 स विसृष्टस्तथेत्युक्त्वा आत्रा नैवाविशत्पुरीम् ।  
 नन्दिग्रामगतस्तस्य राज्यं न्यासमिवाभ्युनक् ॥१८॥  
 दृढभक्तिरिति ज्येष्ठे राज्यतृष्णापराद्भुवः ।  
 मातुः पापस्य भरतः प्रायश्चित्तमिवाकरोत् ॥१९॥  
 रामोऽपि सह वैदेद्या वने वन्येन वर्तयन् ।  
 चत्वार सानुजः शान्तो वृद्धेच्चाकुव्रतं युवा ॥२०॥  
 प्रभावस्तम्भितच्छायमाश्रितः स वनस्पतिम् ।  
 कदाचिदङ्गे सीतायाः शिष्ये किंचिदिव भमात् ॥२१॥  
 ऐन्द्रिः किल नखैस्तस्या विददार स्तनौ द्विजः ।  
 प्रियोपभोगचिह्नेषु पौरोभाग्यमिवाचरन् ॥२२॥

भरतजीने उन्हे बहारषजीकी मृत्युका समाचार सुनाया और कहा कि भयोध्याकी राजलक्ष्मीकी मेने छुपा भी नहीं है, आप ही उसे चत्कर रोभालिए ॥१६॥ क्योंकि जिस राज्यको बड़े भाईने स्वीकार नहीं किया उसे सेना में उठना ही बड़ा पाप समझता हूँ जितना बड़े भाईके अभिवाहित रहनेपर छोटे भाईका विवाह कर सेना ॥१६॥ निन्तु राम अपने स्वर्गीय पिताकी आज्ञासे तनिव भी टकसे मस नहीं हुए । तब भरतजीने उनसे प्रार्थना की कि आप मुझे अपनी खटाके दे दीजिए जिन्हे मैं आपके स्थानपर रखकर राज्यका काम चलाऊँ ॥१७॥ रामने अपनी खटाके दे दी । उसे लेकर भरतजी लौटे तो सही पर भयोध्यामे नहीं पाए । उन्होंने नन्दिग्राममे डेरा बाला और वहीसे भयोध्याके राज्यकी उत्ती प्रणय रक्षा कीमाने अपने भाईकी परोहर सौभाल रहे हो ॥१८॥ इस प्रकार अपने बड़े भाईमे भक्ति निभाकर और राजपदको टुकराकर माने भरतजीने अपनी माताके पापका प्रामथित कर टाला ॥१९॥ तब राम भी सीता और लक्ष्मणके साथ कन्द मूल फल खाते हुए युवायस्थामे ही बह व्रत करने लगे जो इन्वानुबन्धवाले बुढापेमे किया करते हैं ॥२०॥ एव बार के पके हुए सीताजीकी गोदीमे सिर रखे एक ऐसे वृषके नीचे लेटे हुए थे जिसकी छाया उन्होंने अपने भलीविक प्रभावसे बाँध दी थी ॥२१॥ इसी बीच इन्द्रका पुत्र जयन्त कौला बनकर प्राया और उसने अपने नखोसे सीताजीके स्तनोपर ठूँप मारी माने वह सीताजीके स्तनोपर रामके हाथसे बने हुए नखोको प्रवट कर अपनी बह धान बतल रहा हो कि मेरा काम ही दूसरोका दोष

तस्मिन्नास्थदिपीकास्त्रं रामो रामावबोधितः ।  
 आत्मानं मृशुचे तस्मादेकनेत्रव्ययेन सः ॥२३॥  
 रामस्त्वासन्नदेशत्वाद्भरतागमनं पुनः ।  
 आशङ्क्योत्सुकसारङ्गां चित्रकूटस्थलीं जहौ ॥२४॥  
 प्रयायातिथेयेषु वसन् ऋषिकुलेषु सः ।  
 दक्षिणां दिशसृत्तेषु वापिकेष्विव भास्करः ॥२५॥  
 बभौ तमनुगच्छन्तीं विदेहाधिपतेः सुता ।  
 प्रतिपिद्वापि कैकेय्या लक्ष्मीरिव गुणोन्मुखी ॥२६॥  
 धनसूयातिसृष्टेन पुण्यगन्धेन काननम् ।  
 सा चकाराङ्गरागेण पुष्पोद्बलितपट्पटम् ॥२७॥  
 संभ्याभ्रकपिशस्तस्य विराधो नाम राक्षसः ।  
 अतिष्ठन्मार्गमाष्टय रामस्पेन्दोरिव ग्रहः ॥२८॥  
 स जहार तयोर्मध्ये मैथिलीं लोकशोषणः ।  
 नभोनभस्ययोर्धृष्टिमवग्रह इवान्तरे ॥२९॥  
 तं विनिष्पिष्य काकुत्स्थीं पुरा दृपयति स्थलीम् ।  
 गन्धेनाशुचिना चेति वसुधायां निचलन्तुः ॥३०॥

ईडना है ॥२२॥ भट्ट सीताजीने रामको जगया । तत्काल रामने उसपर धीकका बाण छोडा ।  
 उससे बचनेके लिये वह शीघ्र बहुत दूधर-उधर चक्कर काटता रहा पर जबतक उसने अपनी एक प्राण  
 नहीं दे दी तबतक उसे मृतकार्य नहीं मिला ॥२३॥ मोठे दिवो पीछे ही रामने चित्रकूटका बड़े  
 धाधम छोड दिया जहाँके हरिण उनसे इतने हिलमिल गए थे कि दिन-रात उनसे ही देखते रहते थे ।  
 रामने इस उरसे चित्रकूट छोडा कि कसोप्या पासमे ही है, ऐसा न हो कि भारत फिर वहाँ पहुँच  
 वार्य ॥२४॥ जैसे कपिके इस नक्षत्रमे उहरता हुआ सूर्य दक्षिणको घूम जाता है वैसे ही  
 प्रतिपि-अन्कार करनेवाले ऋषिके धाधममे टिकते हुए राम भी दक्षिणकी ओर बढ़ जते ॥२५॥  
 यद्यपि कैकेयीने रामको राजसदसीसे हटा दिया था फिर भी उनके पीछे पीछे चलनेवाली सीता ऐसी  
 जान पटती थी भागो जुगोके पीछे चलनेवाली साक्षात् लक्ष्मी ही हो । २६॥ अग्नि ऋषिके मालमने  
 जब वे पहुँचे तब उनकी भस्वी धनसूयाजीने सीताजीके धरीरमे ऐसा सुगन्धित भङ्गराम लगाया  
 कि जलकी पवित्र गन्ध पाकर और भी जगली कुलसे उबड़ककर उधर ही हट पडे ॥२७॥ जैसे  
 चन्द्रनाभा मार्ग राहु रोक लेता है वैसे ही सन्ध्याके बादलक समान साध रगवाला विराध राक्षस  
 भी रामका मार्ग रोककर रुका हो गया ॥२८॥ जैसे कोई छोटा ग्रह सावन और भाद्रपद महीनोंके  
 दोषसे वर्षाको ले बीतता है, वैसे ही उस राक्षसने राम और लक्ष्मणके बीचसे सीताजीको हट दिया  
 ॥२९॥ पर राम-लक्ष्मणने उसे तत्काल मार डाला और यह सोचकर उसे पृथ्वीमे धाड़ दिया कि

पञ्चवय्यां ततो रामः शासनात्कुम्भजन्मनः ।  
 अनपोढस्थितिस्तस्यौ किन्ध्याद्रिः प्रकृताविव ॥३१॥  
 रावणावरजा तत्र राघवं मदनातुरा ।  
 अभिपेदे निदाघार्ता व्यालीव मलयद्रुमम् ॥३२॥  
 सा सीतासंनिधावेव तं वज्रे कथितान्वया ।  
 अत्यारूढो हि नारीस्थामकालज्ञो मनोभवः ॥३३॥  
 फलप्रदानहं घाले फनीयांसं भजस्व मे ।  
 इति रामो घृपस्यन्तीं घृपस्कन्धः शशास ताम् ॥३४॥  
 ज्येष्ठाभिगमनात्पूर्वं तेनाप्यनमिनन्दिता ।  
 साभूद्रामाश्रयाभूयो नदीषोभयकूलभाक् ॥३५॥  
 संरम्भं मैथिलीहासः च्छसौम्यां निनाय ताम् ।  
 निघातस्तिमितां वेलाम् चन्द्रोदय इवोदधेः ॥३६॥  
 फलमस्योपहासस्य सद्यः प्राप्स्यसि पश्य माम् ।  
 मृग्या परिभवो व्याघ्रयामित्यवेहित्वया कृतम् ॥३७॥

कहीं इसके धुरीरकी दुर्गन्धि इस देशमें न फैल जाय ॥३०॥ जैसे मयस्तयजीवी मायासे किन्ध्यावल  
 भपनी मर्यादाने ही यह क्या या जैसे ही राम भी मर्यादापूर्वक पञ्चवटीमें रहने लगे ॥३१॥ जैसे  
 घृपसे पयटाकर कोई नागिन चन्द्रमने घेटने पास पहुँच गई हो जैसे ही कामदेव पीडित रावणकी  
 छोटी बहन दूर्णलसा रामसे पास वा पहुँची ॥३२॥ पहले तो उसने अपने कुलवा परिकष्य दिया और  
 फिर सीताजीके सामने ही रामसे पहले लषी कि मैं तुम्हें अपना प्रति मानती हूँ क्योंकि जियाँ जय  
 बहुत अधिक कामासक्त हो जाती हैं तब उन्हें इस बातका ध्यान ही नहीं रहता कि हमें किस  
 समय क्या करना चाहिए क्या न करना चाहिए ॥३३॥ कामासक्त दूर्णलसापी यह बात सुनकर  
 हाँकते जैसे कन्योदाले राम बोले—याने ! मेरा तौ विवाह हो चुका है । तुम मेरे छोटे भाईके  
 पास जाओ ॥३४॥ यह अट लदमणके पास पहुँची । लदमणने उसमें कहा—तू पहले मेरे यडे  
 भाईके पास विवाहकी इच्छासे जा चुकी है इसलिये तू मेरी मातासे लगान है । मैं तुमसे  
 विवाह नहीं कर सकता । यह सुनकर वह फिर रामसे पास पहुँची । राम और लदमणके पास  
 भाते-जाते उसकी दया उस नदीसे लगान हो गई जो वारी-वारीसे अपने दोनों तटोको छूती  
 हुई बह रही हो ॥३५॥ जैसे वायुके रुने रहनेसे शान्त समुद्रपर लट चन्द्रमाने निवतनेपर हिलोरे  
 सेने लगता है जैसे ही सीताजीको हँसते देखकर धण-भरसे लिये सुन्दर रूप धारण करनेवाली  
 यह कुरूप दूर्णलसा भी एबदम बिगट राठी हुई ॥३६॥ और बोली—'अच्छा ! तुम्हें इस  
 हँसीका फल मानी बरदाती हूँ । तुमने जैसे ही मेरा प्रपमान किया है जैसे कोई हरिणी किसी  
 वाघिनका भ्रममान करे । समझी ! ॥३७॥ सीताजी तो यह सुनते ही डरके मारे रामकी

इत्युक्त्वा मैथिलीं भर्तुरङ्गेनिविशतीं भयात् ।  
 रूपं शूर्पणखा नाम्नः सदृशं प्रत्यपद्यत ॥३८॥  
 लक्ष्मणः प्रथमं श्रुत्वा कोकिलामञ्जुवादिनीम् ।  
 शिवाघोरस्यनां पथाद्बुबुधे विकृतेति वाम् ॥३९॥  
 पर्णशालामथ चित्रं विकृष्टासिः प्रविश्य सः ।  
 वैरूप्यपौनरुक्त्येन भीषणां तामयोजयत् ॥४०॥  
 सा वक्रनखाधारिण्या वेणुकर्कशपर्वया ।  
 अङ्कुशाकारवाहगुल्या तावतर्जयदम्बरे ॥४१॥  
 प्राप्य चाशु जनस्थानं खरादिभ्यस्तथाविधम् ।  
 रामोपक्रममाचख्यौ रक्षः परिभवं नवम् ॥४२॥  
 सुरावयवलूनां तां नैर्ऋता यत्पुरो दधुः ।  
 रामाभियायिनां तेषां तदेवाभूदमङ्गलम् ॥४३॥  
 उदायुधानापततस्तान्दक्षान्प्रेक्ष्य राघवः ।  
 निदधे विजयाशंसां चापे सीतां च लक्ष्मणे ॥४४॥  
 एको दाशरथिः क्रमं यातुधानां सदस्रशः ।  
 ते तु यावन्त एवाजी तामोश्च ददशो स तैः ॥४५॥

हमे जा छिपी और शूर्पणखाने अपने नामके अनुसार [ रूपके समान बड़े बड़े नखवाला ]  
 यवता भयङ्कर रूप प्रकट कर दिखाया ॥३८॥ जब लक्ष्मणने देखा कि धनी तो यह कौबलके  
 समान मधुर मोल रही थी और अब सिवारिके समान हुआ-हुआ कर रही है तब उन्होंने  
 रामको लिया कि यह कौबली यही छोटी है ॥३९॥ और यह समझने ही के भट अपनी कुटियामें  
 गए और वहाँके हलदार सागर उन्होंने शूर्पणखाने नाक-कान काट लिए । नाक-कान कट जानेपर  
 वह और भी घबिघ कुम्प दिखाई देने लगी ॥४०॥ नवटी-नूपी होकर वह प्राणालमें लकी और  
 प्रकृत-बैसी टेढे-टेढे नखवाली और चौकनेसे भड़े पोरोवाली घपनी उँपसिपी चमका-चमकाकर  
 राम-लक्ष्मणको घमकाने लगी ॥४१॥ वहाँसे चलकर वह उत्तमल जनस्थानमें पहुँची और खर प्रादि  
 रासालोकी उभाठा वि भाव पहली बार रामने इस प्रकार रासालोका घपमान बिधा है ॥४२॥  
 घामि-घामे नवटी-नूपी शूर्पणखा और उसके पोछे पीछे से सब रासस रापठे सढने निवत्त पडे  
 पर इस नवटीको घामे बरने उन सोगने पहले ही घपना सगुन दिगाठ सिधा ॥४३॥ रामने  
 दूरसे देखा कि हाथने जख उछाने घमण्डी रासस घामे बडे चले घा रहे हैं तो उन्हें विश्वास हो  
 गया कि इन्हें तो हम घनेसे अपने घनुपडे ही नीत बेंवे । इसलिये उन्होंने सीताकी रक्षाका  
 भार लक्ष्मणको सौंप दिया ॥४४॥ राम घनेसे ये और रासस सहज्जे ये पर राम इस प्रकार  
 सढ रहे थे कि यहाँ जितने रासस थे उन्हें उठने ही राम दिखाई पढ रहे थे ॥४५॥ जिस प्रकार

असञ्जनेन काकुत्स्थः प्रयुक्तमथ दूषणम् ।  
 न चक्षमे शुभाचारः स दूषणमिवात्मनः ॥४६॥  
 तं शरैः प्रतिजग्राह खरत्रिशिरसौ च सः ।  
 क्रमशस्ते पुनस्तस्य चापात्सममिवोग्रसुः ॥४७॥  
 तैस्त्रयाणां शितैर्नीलैर्यथापूर्वविशुद्धिभिः ।  
 आयुर्देहातिगैः पीत रुधिरं तु पवत्रिभिः ॥४८॥  
 तस्मिन्मशरोत्कृचे बले महति रक्षसाम् ।  
 उत्थितं ददृशेऽन्यच्च क्वन्धेभ्यो न किञ्चन ॥४९॥  
 सा बाणघर्षिणं रामं योधयित्वा सुरद्विपाम् ।  
 अप्रवोधाय सुप्ताय शृङ्गच्छाये वरुधिनी ॥५०॥  
 राघवास्त्रविदीर्णानां राघणं प्रति रक्षसाम् ।  
 तेषां शूर्पणखैर्वैका दुष्प्रवृत्तिहराऽभवत् ॥५१॥  
 निग्रहात्स्वसुराप्तानां वधाच्च धनदानुजः ।  
 रामेण निहितं मेने पदं दशसु मूर्धसु ॥५२॥  
 रक्षसा मृगरूपेण वञ्चयित्वा स राघवी ।  
 जहार सीतां पत्नीन्द्रप्रयासचण्विम्बितः ॥५३॥

राधाचारी दूषण मपने ऊपर, नीच पुरुषो-न्दारा समाया हुमा दूषण या बलकू नहीं सह सवने  
 बैसे ही राम भी मुझने दूषण उलसना आना नहीं सह सने ॥४६॥ उन्होने दूषण, खर और  
 विशिरावर मधुपि एक एक करके बाण चलाए तथापि अत्यन्त हीघ्नतासे बलाए जानेके कारण  
 वे बाण ऐसे जान पड़ते थे मानो वे एक साथ वनपसे छूटे ही ॥४७॥ वे बाण उनके घरीरको  
 छेद कर इतने वेगसे बाहर निकल गए कि उनमें रक्त भी नहीं लग सका, क्योंकि बाण तो उनकी  
 प्रायु पीनेके लिये गये थे, उनका रक्त तो पिघा पक्षियोने ॥४८॥ रामने मपने बाणोंसे राक्षसीकी  
 पूरी सेनाको इस प्रकार बाट बनाया कि युद्ध-भूमिमें राक्षसीके पक्षको छोड़कर और कुछ भी नहीं  
 दिखाई दे रहा था ॥४९॥ बाण बरसानेवाले रामसे नरकर वह खरखोकी सेना तो गिद्धो-  
 के पक्षीकी आगमें सदाके लिए सो गई ॥५०॥ और रामके अस्त्रों में मारे हुए उन राक्षसीकी धृष्टुवा  
 समाचार उबलाने पास पहुँचानेके लिये बकेसी शूर्पणखा ही बच रही ॥५१॥ बहुतका घपमान और  
 खर दूषण मारि मपने सन्निवधोका बच, राधणको इतना घपमानजनक जान पड़ा मानो रामने  
 उसके दसो तिरोंपर बंद रख दिया हो ॥५२॥ तब उसने भारीचको माना-भृग बनाया और राम-  
 सहमणको भोखा देकर सीताजीको छुटकर सद्गम ले गया । मार्गमें युद्धराज जटापु उलझे जटा भी

तौ सीतान्वेषिणौ गृध्रं लूनपक्षमपरयताम् ।  
 प्राणैर्देशरथप्रतिरनृणं कण्ठवर्तिभिः ॥५४॥  
 स रावणहृतां ताभ्यां वचसाचष्ट मैथिलीम् ।  
 आत्मनः सुमहत्कर्म व्रणैरावेद्य संस्थितः ॥५५॥  
 तयोस्तस्मिन्नवीभूतपितृव्यापत्तिशोकयोः  
 पितरीवाग्निं संस्कारात्परा वष्टतिरे क्रियाः ॥५६॥  
 वधनिर्धृतशापस्य कवन्धस्योपदेशतः ।  
 ह्यमूर्च्छं सख्यं रामस्य समानव्यसने हरौ ॥५७॥  
 स हत्या बालिनं वीरस्तत्पदे चिरकाङ्क्षिते ।  
 धातोः स्थान इवादेशं सुग्रीवं संन्यवेशयत् ॥५८॥  
 इतस्ततश्च वैदेहीमन्वेष्टुं मर्तृचोदिताः ।  
 कपयश्चेरुहार्तस्य रामस्येव मनोरथाः ॥५९॥  
 प्रपृचावुपलब्धायां तस्याः संपातिदर्शनात् ।  
 मारुतिः सागरं तीर्थः संसारमिव निर्ममः ॥६०॥

पर वह कुछ कर न सका ॥५४॥ राम और लक्ष्मण धन सीताको ढूँढने निकले । उन्होंने मार्गमें जटा-  
 युकी पड़े देखा जिसके पंख कट गए थे और जिसके प्राण बच्छ-तक घायल थे पर उसने सीताके खुरा ले  
 जाने वाले रावणसे लड़कर अपने मित्र दशरथका श्रेण चुना दिया था ॥५५॥ वह राम-लक्ष्मणसे  
 बोला कि सीताजीकी रावण से गया है । जटायुके पावोंको ही देखकर वह स्पष्ट था कि वह कितने  
 जी-जानसे रावणसे लड़ा था ॥५६॥ केवल इतना ही कह कर जटायु बेचारा चल बसा । उसके  
 मरनेसे राम-लक्ष्मणकी उटना ही लोक हुआ जिसना उन्हें अपने पिताके मरनेपर हुआ था । उसका  
 विधिबद्द बाह-संस्कार करके उन्होंने उभवा श्राद्ध प्रादि किया ॥५६॥ यहाँसे वे प्रागे बढ़े तो उन्हें  
 बवन्ध मिला जो किसी ऋषिके शापसे राक्षस हो गया था । रामने उसकी माहे नाट डाली जिससे  
 उसका शाप छूट गया और वह फिर देवता हो गया । उसने प्रसन्न होकर सुग्रीवका ठिकाना बताया ।  
 इस सुग्रीवके राजम और उसकी स्त्रीको उटना बड़ा भाई धालि छीन ले गया था,  
 इसलिये उसने स्वर्गसे त्रिपुरे हुए रामसे वीर्य ही विप्रता कर सी ॥५७॥ पराक्रमी  
 रामने यातिका मारकर उसके सिंहासनपर सुग्रीवकी बेंसे ही बैठ दिया जैसे कोई बैवाकरण, निट्ट-  
 मुट्ट प्रादि नगरोंमें भव् पातुके करने भू पातुकी बेंडा देना है ॥५८॥ सुग्रीवने जानकारोंको  
 माना दो कि जानकी और जानर सीताजीनी खोज लगायो । जैसे विरही रामका मन सीताजीकी  
 खोजमें हृद-उपर भटवता था वैसे ही जानर भी हृद-उपर भूमपर सीताजीकी खोज करने लगे  
 ॥५९॥ मार्गमें जटायुके भाई मम्पातीसे जनकी भेंट हुई । उनने बतलाया कि उमूट पार मरूटाडोपका  
 राजा रावण सीताजीनी हर ले गया है । यह सुनकर हनुमानकी उसी प्रकार समुद्रको त्राप गए जैसे

दृष्टा विचिन्वता तेन लङ्कायां राक्षसीवृता ;  
जानकी विपवल्लीभिः परीतेव महौषधिः ॥६१॥  
तस्यै भर्तुरभिज्ञानमद्गुलीयं ददौ कपिः ।  
प्रत्युद्गतमिवानुष्णैस्तदानन्दाश्रुविन्दुभिः ॥६२॥  
निर्वाप्य प्रियसंदेशैः सीतामचवधोद्धतः ।  
स ददाह पुरीं सङ्गां क्षणसोढारिनिग्रहः ॥६३॥  
प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामायादर्शयत्कृती ।  
हृदयं स्वयमायात वैदेहा इव मूर्तिमत् ॥६४॥  
स प्राप हृदयन्यस्तमणिस्पर्शनिमीलितः ।  
अपयोधरसंसर्गा प्रियालिङ्गननिर्वतिग् ॥६५॥  
श्रुत्वा रामः प्रियोदन्तं मेने सत्सङ्गमोत्सुकः ।  
महार्णवपरिच्छेपं लङ्कायाः परिखा लघुम् ॥६६॥  
॥ प्रतस्येऽरिनाशाय हरिसैन्यैरनुद्धतः ।  
न केवलं भुव पृष्ठे व्योम्नि सबाधवर्त्मभिः ॥६७॥  
निविष्टमुदधेः कृत्वे तं प्रपेदे विभीषणः ।  
स्नेहाद्राक्षसलक्ष्म्येव बुद्धिमादिश्य चोदितः ॥६८॥

निर्गोही पुरुष सप्तार-सागरको गार गर जाता है ॥६०॥ सङ्ग्रामे पहुँचकर हुँकते दालते उन्होने एक स्थानपर सीताजीको देखा । चारों ओर राक्षसियोंसे घिरी हुई वे ऐसी लग रही थीं जैसे विपनी सदाशोक कीचमे सधीबनी वृटी हो ॥६१॥ उनके पास जानर हनुमानजीने रामकी प्रँगुठी उन्हे दी, जिसका स्वागत सीताजीने आनन्दसे उन्हे हासुप्रोसे किया ॥६२॥ पहले तो उन्होने राम-चन्द्रजीका स्मार-भरत सन्देश सुनाकर सीताजीको उल्लास नैषाम फिर राणएके पुरु मलयको मर जाता और बोधी देर तक शत्रुप्रोसे हाथ बन्धी रहकर उन्होने सङ्ग्राम प्राप लगायी ॥६३॥ फिर सीताजीसे मिलनेकी पहचानके बिन्दे उनसे बूढामणि लेकर वे रामको पास लौट आए, वह मणि पाकर रामको बँसा ही आनन्द हुमा मानो साक्षात् सीताजीवा हृदय ही स्वय चला आया हो ॥६४॥ उस मणिकी हृदयसे लगानर वे सुख-सुख भूलकर मग्न हो गए । उन्हे उस समय बँसी ही प्रसन्नता हो रही थी मानो स्तनसे स्पर्शको छोडकर सीताजी ही हृदयसे था सथी हो ॥६५॥ प्रियाका संदेश सुनकर राम उनसे मिलनेके लिये उतावले हो गए । इस उल्लाहसे उन्हे सङ्ग्रामे चारों ओर वा चौंरा ओर गहरा समुद्र फाड़ते भी कम चींरा जान पडने लगा ॥६६॥ वे जानरोकी अपार सेना लेकर धनुका सहार करने लगे । वह सेना इतनी अधिक थी कि पृथ्वीको कौन कहे, आनासमे भी बधी कठिनाईसे चल पाती थी ॥६७॥ जब राम समुद्रसे उटपर पहुँचे तो रावणका भाई विभीषण उनसे मिलने आया मानो राक्षसोंकी राजसङ्गमीने उसकी बुद्धिसे पैठवर मह समभा

तस्मै निशाचरैश्वर्यं प्रतिशुश्राव राघवः ।  
 काले खलु समागच्छाः फलं वध्नन्ति नीतयः ॥६६॥  
 स सेतुं बन्धयामास प्लवगैर्लवणाम्भसि ।  
 रसातलादिवोन्मग्नं शेषं स्वप्नाय शार्ङ्गिण्यः ॥७०॥  
 तेनोत्तीर्य पथा लङ्कां रोधयामास पिङ्गलैः ।  
 द्वितीयं हेम प्राकारं कुर्वद्भिरिव वानरैः ॥७१॥  
 रणः प्रचवृत्ते तत्र भीमः प्लवगरक्षसाम् ।  
 दिग्विजम्भितकाकुत्स्थपौलस्त्यजयघोषणः ॥७२॥  
 पादपाविद्धपरिचः शिलानिष्पिष्टमुद्गरः ।  
 अतिशस्त्रनसन्न्यासः शैलरुग्णमर्तगजः ॥७३॥  
 अथ रामशिरश्छेददर्शनोद्भ्रान्तचेतनाम् ।  
 सीतां मापेति शसन्ती विजटा समजीवयत् ॥७४॥  
 कामं जीवति मे नाथ ऽति सा विजहौ शुचम् ।  
 प्राह्मत्वा सत्यमस्यान्तं जीवितास्मीति लज्जिता ॥७५॥

दिया ही कि धब रामकी घरखमे जाने पर ही तुम्हारा बन्ध्याण होगा ॥६६॥ रामने भी  
 उससे यह प्रतिज्ञा करली कि हम तुम्हे राक्षसीका राजा बना देंगे । ठीक भी है ।  
 समयपर नाममे साईं हुईं छूट नीति धागे बतकर प्रवेश्य ही फल देती है ॥६६॥ रामने  
 वानरो को लगाकर समुद्रपर जो पत्थरीक। पुस बंधयाया वह ऐसा जान पटता था भागो विष्णुको  
 प्रपने ऊपर तुलानिके लिए स्वयं शेषताय ही उतर आए हो ॥७०॥ उस पुससे समुद्र पार  
 परसे पीले-पीले वानरोंने लङ्काकी चारो ओरसे घेर लिया । उनसे चिरी हुई लङ्का ऐसी जान  
 पडती थी भागो लङ्काने चारो ओर सोनेका एन दूसरा परसोटा बन गया हो ॥७१॥ वहाँ वानरो  
 और राक्षसीका ऐसा भयङ्कर गूड होने लगा कि राम और रावणकी जय-जयकारोसे दिसाएँ पडी  
 पड रही थी ॥७२॥ उत बुद्धमे वानर पडोसे मार-मारकर राक्षसीकी लोहेकी पदार्थों लोटे  
 डाल रहे थे, पत्थर बरखानर उनके मुद्गर पीछे डाल रहे थे, प्रपने नलोसे ऐसे  
 भयङ्कर धाव कर रहे थे कि राक्षसी भी बँसे पाव नहीं हो सकने थे और लडाकू  
 हाथियोके सिरोपर बडी चट्टानें पटक-पटककर उनका पचुपर टिकाव देते थे ॥७३॥  
 उनी समय एन राक्षसे नामते रागका सिर बनाकर सीताजीने धागे ला पटका । उजे देखते  
 हो सीताजी मूर्च्छित होकर गिर पडी । पर जब विजटाने उन्हें समझाया कि यह सब राक्षसी नामा  
 है तब सीताजीकी जानमे जान पाई ॥७४॥ यह जानकर उनका जोर तो छूट गया कि मेरे  
 पतिपन जीवित है पर उन्हें इस बातकी बडी चन्ना हुई कि पतिने मेरे जानेका समाचार मुनकर भी



गस्तापातविश्लष्टमेघनादास्त्रवन्धनः ।  
 दाशरथ्योः क्षणक्लेशः स्वमवृचः, उवाभवत् ॥७६॥  
 ततो विभेदः पौलस्त्यः शक्त्या वचसि लक्ष्मणम् ।  
 रामस्त्वनाहतोऽप्यासीद्विदीर्णहृदयः शुचा ॥७७॥  
 स मारुतिसमानीतमहौषधिहृतव्यथः ।  
 लङ्कास्त्रीणां पुनश्चक्रे विलापाचार्यकं शरैः ॥७८॥  
 स नातं मेघनादस्य धनुश्चेन्द्रायुधप्रभम् ।  
 मेघस्येव शरत्कालो न किञ्चित्पर्यशेषयत् ॥७९॥  
 कुम्भकर्षः कपीन्द्रेण तुल्यावस्थः स्वसुः कृतः ।  
 रुरोध रामं शृङ्गीव दृङ्च्छिन्नमनःशिलः ॥८०॥  
 अकालेऽबोधितो भ्रात्रा प्रियस्वप्नो वृथा भवान् ।  
 रामेपुभिरितीवासी दीर्घनिद्रां प्रवेशितः ॥८१॥  
 इतराण्यपि रचांसि पेतुर्वानरकोटिषु ।  
 रजांसि समरोत्यानि तच्छ्रोषितनदीष्विव ॥८२॥  
 निर्ययावथ पौलस्त्यः पुनर्युद्धाय मन्दिरात् ।  
 अराधयामरामं वा जगदघोति निश्चितः ॥८३॥

मैं जीवित रह गई, मरौ गही ॥७५॥ उसी समय मेघनादने राम और लक्ष्मणको मातृपासने बांध  
 लिया पर तभी मरने का वर कह कर कदा तुरत काट दिया, वास्तव में धनेना वह क्षण भरका क्लेश भी उन  
 दोनों भाइयोंको ऐसा जान पडा मानो स्वप्नमे हुआ हो ॥७६॥ तब मेघनादने बीचकार लक्ष्मणको  
 छातीमे धक्ति-बाण मारा । लक्ष्मण गिर गए और उन्हे देखकर रामका हृदय झोकते फटने लगा ॥७७॥  
 हनुमानजी तत्काल हिमालयसे जानर सबीघनी वृटी ले आए, जिसके पिलाते ही लक्ष्मणकी सारी पीडा  
 जाती रही और फिर उठकर उन्हीने धपने बाणोंसे अनगिनत राक्षसोंको मारकर लङ्कामे कुहराम मचा  
 दिया ॥७८॥ जैसे शरद ऋतुने आनेपर न तो बादलका गर्जन रह पाता है न दृष्टधनुष ही दिखाई  
 देता है वैसे ही लक्ष्मण भी मेघनादके गर्जनको और इन्द्रधनुषके समान धनुषको क्षणभरमे ले नीते  
 ॥७९॥ उधर सुग्रीवने कुम्भकर्णकी नाक-काटकर उसे धूर्पणलाके समान बना दिया था और वह  
 रामका मार्ग रोककर उधी प्रकार सदा हो गया जैसे टाँबीसे बटी हुई कोई मँवसिलकी चट्टान प्रा गिरी  
 हो ॥८०॥ रामने वाणोंसे घायल होकर वह गिरकर मर गया, मानो रामके वाणोंने उसे वह बह-  
 कर गहरी नीचमे घुसा दिया हो कि सुभको नीच बडो प्यारी है, तुम्हारे मर्दाने धर्म ही तुम्हे प्रसमय-  
 मे जगा दिया ॥८१॥ और भी बहुतसे राक्षस बरीबे बानरोंकी सेनाके बीचमे इस प्रकार गिर रहे थे  
 मानो राक्षसोंके रक्षत्री गदीमे रखलेत्रसे उठी हुई पुल पड रही हो ॥८२॥ जब राजगने सब काण्ड  
 गुना तब वह धपने राजभवनसे निकलकर रण-भूमिमे चला आया । उसने मनमे ठान लिया था कि आज

तेन मन्त्रप्रयुक्तेन निमेषार्घादिपातयत् ।  
 स रावणशिरः पद्भिकमन्नातत्रणवेदनाम् ॥६६॥  
 बालार्कप्रतिमेवाप्सु वीचिभिन्ना पतिष्यतः ।  
 रराज रक्षःकायस्य कण्ठच्छेदपरम्परा ॥१००॥  
 मरुतां पश्यतां तस्य शिरांसि पतितान्यपि ।

मनो नातिविशथास पुनः संधानशङ्किनाम् ॥१०१॥

अथ मदगुरुपदैर्लोकपालहृदिपानामसुगतमलिशुन्दैर्गण्डभिर्चीर्षिहाय ।  
 उपनतमण्डिबन्धे मूर्ध्नि पौलस्त्यशश्रोः सुरभि सुरविमुक्तं पुष्पवर्षं पपात् ॥१०२॥  
 यन्ता हरेः सपदि संहतकार्मुकज्यमापृच्छथ राघवमनुष्ठितदेवकार्यम् ।  
 नामाङ्गरावणशराङ्कितकेतुयष्टिर्ध्वं रथं हरिसहस्रयुजं निनाय ॥१०३॥

रघुपतिरपि जातवेदोविशुद्धां प्रगृह्य प्रियां

प्रियसुहृदि विभीषणे संगमय्य श्रिवैरिणः ।

रघिसुतसहितेन तेनानुयातः ससौमित्रिणा

भुजविजितविमानरत्नाधिरुढःप्रनस्ये पुरीम् ॥१०४॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृती रघुवंशे महाकाव्ये

रावणखण्डो नाम द्वादशः सर्गः ॥

धमनीला गण्डस्य सिद्धं हृदं दीपनाग ही उत्तरं प्राणं हे ॥६५॥ मन्त्रेण पलायं हृदं उत प्रह्लाजिते रामने  
 रावणने दसो शिरांको प्राणे पक्षमे काटकरं धृवीपरं गिरा दिया विसरे रावणको तनिक भी बधु न  
 हुमा ॥६६॥ रावणने मिर कटकर गिरते हृदं ऐते मन्त्रे संगते ये जैसे बधुल सहरोमे प्रातः-नालके  
 सूर्यया प्रतिविम्बं घोभा देता है ॥१००॥ रावणके बटे हृदं सिररो देसकर भी देयतामोको विश्वास  
 मही हुमा क्योकि उन्हे यह टर था कि कही ये फिर न जुड जायें ॥१०१॥ जिस रामपर राव्याभिषेक  
 का जल धिक्का जालेवाया था उन्हीके निदपर देयतामोने ये कूड बरसाए जिनकी मुगध पाकर  
 मदसे भोगी हृदं पांलोमते भेरे दिनामंकि हाथियेके मद बहानेवाले कयोलीको छोडकर रत लेने  
 उनने पीछे पीछे पीठ पडे ॥१०२॥ रामने अनुपवी डोही उतार दी क्योकि उन्हीने देयतामोका नाम  
 पूरा कर दिया था । इन्हे सारथी मातसि उनसे प्राजा नेकर अपना सहस्रो पोरोसामा रथ नेकर  
 स्वर्गमे चला गया । उस रथकी ध्वजापर धमनीतक रावणने नाम खुदे हृदं थालोने चित्त पडे हृदं ये  
 ॥१०३॥ रामने रावणकी राज्यथी विभीषणको सौंप दी थीर फिर सीताजीको पणिने सुद्ध करने  
 मुषीय, विभीषण थीर सहस्रणके साथ अपने वाहुवतसे जीते हृदं पुष्प विमानपर चडकर कयोध्याकी  
 थीर लोट पते ॥१०४॥

महाकवि श्रीकालिदासने रचे हृदं रघुवंश महाकाव्यमे रावण-वय नामका

बारहवां सर्गं समाप्त हुमा ॥

## ॥ त्रयोदशः सर्गः ॥

प्रथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः ।  
 रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः ॥ जायां रामाभिधानो हरिरिष्टिवाच ॥१॥  
 वैदेहि पश्यामलयादिभक्त मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम् ।  
 छायापधेनेन शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम् ॥२॥  
 गुरोर्विपद्योः फणिलेन मेघ्ये रसातलं संक्रमिते तुरंगे ।  
 सदर्धमुर्वीमयदारयद्भिः पूर्वेः किलायं परिवर्धितो नः ॥३॥  
 गर्भं दधत्यर्कमरीचपोऽस्माद्विष्टुद्विमश्रास्नुवते वसन्ति ।  
 अविन्धनं वह्निमसौ विभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन ॥४॥  
 तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना ।  
 विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा ॥५॥  
 नाभिप्ररुद्धाम्बुरुहाम्बनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा ।  
 अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान्पुरुषोऽभिषेते ॥६॥

### तेरहवां सर्ग

जिसका गुण शब्द है उस भावनासे विमानपर चढ़े जाते हुए गुणी तथा राम कह-  
 लानेवाले विष्णु भगवान्, समुद्रको देखकर सोलाजोसे एकात्म्ये बोले ॥१॥ हे सीते ! इस क्रमसे भरे  
 हुए समुद्रको ही देखो जिते भेरे बनाए हुए पुलने गलत पर्वततक दो भागमें बँटे ही बाँट दिया  
 है जैसे सुन्दर सारोसे भरे हुए खरद फलुके खुले आकाशको आकाशपद्मा दो भागमें बाँट देती  
 है ॥२॥ [ जागती ही समुद्र कँठे बना है । ] जब हमारे पुरसे महापद्मा सगर अश्वमेध यज्ञ  
 कर रहे थे तब फणिली उनका धोखा पाताल लोकमें घुरा ले गए । उस समय सगरजीके  
 पुत्रोंने पीडेकी चीज करनेके लिये जो सारी पृथ्वी छोड़ डाली थी उधरसे यह इतना लम्बा-बोझा  
 समुद्र बन गया है ॥३॥ [ यह समुद्र है बड़े कामका । ] देखो इसीमसे सूर्यको किरणें गल खींचती  
 हैं और [ पृथ्वीपर बरसाती है । ] इसीमे रत्न बढते हैं, अपने धनु बरवानलको भी यह  
 धपनी गोदमें पासता है और सुलकारी प्रकाशवाला चन्द्रमा भी इसीमेसे उत्पन्न हुआ है ॥४॥  
 यह धपना रूप भी सदा बदलता रहता है और यह इतना बड़ा है कि सभी दिशाओंमें दूरतक  
 फैला हुआ है । इसलिये जैसे विष्णु भगवान्को विषयमें नहीं बहल जा सकता कि वे ऐसे और  
 इतने बड़े हैं जैसे ही इसके विषयमें भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह ऐसा है या इतना बड़ा  
 है ॥५॥ जब प्रादियुद्ध विष्णु भगवान् तीनों लोकोंका सहार कर चुकते हैं तब यही पद्वैचकर  
 योगनिद्रामें सोते हैं और इनकी नाभिसे निकले हुए बगलसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्माभी सदा

पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धाः शरण्यामेनं शतशो महीत्राः ।  
 नृपा इवोपप्लविनः परेभ्यो धर्मोत्तरं मध्यममाश्रयन्ते ॥७॥  
 रसातलादादिभवेन पुंसां भुवः प्रयुक्तोद्बहनक्रियायाः ।  
 अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहूर्तवक्त्राभरणं वभूव ॥८॥  
 मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरङ्गाधरदानदक्षः ।  
 अन्नन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धुः ॥९॥  
 सप्तस्यमादाय नदीमुखाम्भः संमीलयन्तो विद्वृत्ताननत्वात् ।  
 अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रैरूर्ध्वं विसन्वन्ति जलप्रवाहान् ॥१०॥  
 मातङ्गनक्रैः सहस्रोत्पतद्भिर्भिन्नान्द्रिघ्ना पश्य समुद्रफेनान् ।  
 कपोलसंसर्पितया य एषां ब्रजन्ति कर्णचक्षुचामरत्वम् ॥११॥  
 वेलानिलाय प्रसृता भुजङ्गा महोर्मिविस्फूर्जधुनिर्विशेषाः ।  
 सूर्याशुसंपर्कसमृद्धरागैर्व्यज्यन्त एते मणिभिः फणस्यैः ॥१२॥  
 तथाधरस्पधिषु बिद्रुमेषु पर्यस्तमेतत्सहस्रोर्मिवेगात् ।  
 ऊर्ध्वाङ्गुरप्रोतमुखं कर्णचित्कलेशादपक्रामति शङ्खयूथम् ॥१३॥  
 प्रवृत्तमात्रेण पवासि पातुमारचवेगाद्भ्रमता घनेन ।  
 आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेषु भूयः ॥१४॥

इनके हुए गया करते हैं ॥६॥ जो अनुयोके उरसे रागा लोग किसी धर्मात्मा और तटस्थ राजाकी शरण लेते है वैसे ही उन सैकड़ो पहाडोवे भी इसकी शरण ली थी जिनके पक्ष इन्द्रन काट दिए थे और जिनका अभिमान इन्द्रने चूर कर दिया था ॥७॥ गृष्टिने प्रारम्भमे जब बराह भगवाव् पृथ्वीको पातालसे ले बाखड़े थे उस समय प्रलयसे बचा हुआ इतना स्वच्छ जल क्षण भरके लिये उनका पूंफट बन गया था ॥८॥ देखो ! हुतरे लोग केवल जियो का प्रघरपान करते हैं, अपना भ्रमर उन्हे नहीं पिलाते । पर समुद्र इस बातमे भी धोरेसे बढकर है क्योंकि जब गदियां बीठ होकर चुम्बनके लिये अपना मुख इसके सामने बढाती हैं तब यह बढी चतुराईसे अपना तरङ्ग-रूपी भ्रमर उन्हे पिलाता और उनका भ्रमर स्वय पीता है ॥९॥ यह देखो ये बढे-बढे मगरमच्छ अपना मुंह खोलकर मछलियो को लिए-दिए समुद्रका जब पी जाते है और फिर मुंह बन्द करते अपने सिरके छेदोसे पानीकी जल-घाराएँ छोडने लगते है ॥१०॥ इन मगरमच्छो ने अचानक उठते समुद्रकी फटो हुई फेनको ली देखो । इनका गलोवर बाण भरके लिए सभी हुई यह फेन ऐसी दिखाई देती है पानो इनके कानोपर खेंबर टंगे हुए हो ॥११॥ तटपर बढी बढी सहरोके जैसे दिखाई देने वाने ये सार्प है जो तटका चापु पीनेके लिए बाहर निकल आए हैं । पर जब सूर्यकी किरणोसे इनके मणि चमक जाते हैं तब ये पहचानमे आ जाते है ॥१२॥ देखो, सहरोकी भौंममे तुम्हाएँ भयरोने समान लाल-लाल मूंगेकी चट्टानो टकल बानेसे इन जीवित दाखो ने मुंह छिद्र मए है और उस पीडासे ये देकारे बढी बढाईये दगर-उबर बस था रहे हैं ॥१३॥ गू देना ! बाले वाने बाधन समुद्रका पानी

दूरादयश्चक्रनिमस्य तन्वी तमालतालीधनराजिनीला ।  
 आभाति चेत्ता लवशाम्बुराशेर्घारानिवद्धेव फलद्गरेखा ॥१५॥  
 वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते संभावयत्याननमायतादि ।  
 मामक्षमं मण्डनकालहानेर्वेचीव विम्बाधरबद्धतृष्णम् ॥१६॥  
 एते धयं सैकतभिन्नाशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः ।  
 प्राप्ता मुहूर्त्तेन विमानवेगात्कूलं फलाचलितपूगमालम् ॥१७॥  
 कुरुष्व तावत्करभोरु पथान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातम् ।  
 एषा विदूरीभवतः समुद्रात्सकानना निष्पततीव भूमिः ॥१८॥  
 क्वचित्पथा संचरते सुराणां क्वचिद्धनानां पततां क्वचिच्च ।  
 यथाविधो मे मनसोऽभिलापः प्रवर्तते पश्य तथा विमानम् ॥१९॥  
 असी महेन्द्रद्विपदानगन्धिस्त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः ।  
 आकाशयापुर्दिनयौवनोत्थानाचामति स्वेदस्तवान्मुखे ते ॥२०॥  
 करेण वातायनलम्बिते नस्पृष्टस्त्वया चरिष्ठ कुतूहलिन्या ।  
 आमुञ्चतीवाभरणं द्वितीयमुद्भिन्नविद्युत्सरो घनस्ते ॥२१॥

लेने प्राद हैं और समुद्रकी भँवरके साथ साथ बड़ी तीव्र गतिसे चक्कर काट रहे हैं । इस समय  
 यह समुद्र ऐसा जाग पड़ रहा है मानो मन्दराचल फिर इसे मये डाल रहा हो ॥१५॥ देखो ! दूर  
 होनेसे पहिएकी हालके समान बहुत पतला और लाल तथा तमाल आदि लुकीके कारण नीला  
 दिनाई देनेवाला समुद्र छट ऐसा जाग पड़ रहा है जैसे बड़की धारपर मुर्चा बग गया हो ॥१६॥  
 हे मुनीचने ! समुद्रतटवा वायु तुम्हारे मुखपर केतकीषा पराग छिड़क रहा है मानो यह यह जान  
 गया है कि मैं तुम्हारे मधुरीकी पूजने ही जाता हूँ और अब अधिक शृङ्गारकी बात नहीं देखूँगा ॥१७॥  
 यह देखो हन लोग विमानके तीव्र चलनेके कारण क्षण भरमे ही समुद्रके उस तटपर पहुँच गए जहाँ  
 बादलपर सीबोने फल जानेसे मोती बिखरे पड़े हैं और फलोके भारसे सुपारीके पट मुके लटे हैं ॥१८॥  
 हे कबलीके समान बांधोवाली मृगमयी ! पीछेकी ओर तो देखो ! दूर निकल मानेसे यह जगलेंगे  
 भरो हुई नूमि ऐसी दिनाई पड़ रही है मानो समुद्रमेसे अभी अचानक निकल पड़ी हो ॥१९॥ देखो !  
 मैं जियर चाहता हूँ ऊपर ही यह विमान घूम जाता है । यह कभी तो देवतायोके मार्गमे उड़ता  
 चलता है, कभी बादलोके मार्गमे पहुँच जाता है और कभी पक्षियोंके मार्गमे उड़ने लगता है ॥२०॥  
 ऐरावतके मदकी गन्धमे बस हुआ और आकाशमङ्गलाकी लहरोसे ठण्डाया हुआ आकाशका वायु  
 तुम्हारे मुखपर दोपहरकी गर्माँछि छाई हुई पसीनेकी बुँदोकी पीता चढ़ रहा है ॥२०॥ हे चण्डी !  
 जब तुम शैल खेलमे अपना हाथ विमानमे बाहर निवालकर बादलको छू लेती हो तब तुम्हारे  
 मण्डिगन्धने चारो ओर बिजली कीप जाती है । उस समय ऐसा जाग पड़ता है मानो बादल तुम्हारे  
 हाथमे दूसरा कगन पटना रहे हो ॥२१॥ नीचे देखो ! रावण आदि गलतोंने मारे जानेकी बात

पक्षच्छिदा गोत्रभिदानगन्धाः शरण्यमेनं शतरो महीत्राः ।  
 नृपा इवोपप्लविनः परेभ्यो धर्मोचरं मध्यममाश्रयन्ते ॥७॥  
 रसातलादादिभवेन पुंसां भुवः प्रयुक्तोद्बहनक्रियायाः ।  
 अस्याच्छ्रमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहूर्तवक्त्राभरणं वभूव ॥८॥  
 मुरार्येषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरङ्गाघरदानदत्तः ।  
 अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च मिन्धुः ॥९॥  
 सप्तश्वमादाय नदीमुखाम्भः संमीलयन्तो विष्टताननत्वात् ।  
 अमी शिरोभित्तमयः सरन्ध्रैरूर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहान् ॥१०॥  
 मातङ्गनक्रैः सहस्रोत्पतद्भिर्भिन्तान्द्विधा परथ समुद्रफेनान् ।  
 कपोलसंसर्पितया य एषां व्रजन्ति कर्षक्षयचामरत्वम् ॥११॥  
 वेलानिलाय प्रसृता भुजङ्गा महोर्मिस्फूर्जधुनिर्विशेषाः ।  
 सूर्याशुसंपर्कसमृद्धरागैर्ध्वज्यन्त एते मणिभिः फणशयैः ॥१२॥  
 तवाघरस्पर्धिषु विद्रुमेषु पर्यस्तमेतत्सहस्रोर्मिवेगात् ।  
 ऊर्ध्वाङ्गुरप्रोत्सुखं कथंचित्क्लेशादपक्रामति शङ्खयूथम् ॥१३॥  
 प्रवृत्तमात्रेण पयोसि पातुमावर्चवेगाद्भ्रमता घनेन ।  
 आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिखेव भूयः ॥१४॥

इनके गुण गाया करते हैं ॥६॥ जैसे शम्भुको दखते राजा सोय किसी धर्माला और तदल्प  
 राजानी धारण लेते है जैसे ही उन संबन्धी पहाडोने भी इसकी सरण ली थी जिनके पल इन्तने वाट  
 दिए थे और जिनका धर्ममान इन्तने बुर कर दिया था ॥७॥ सृष्टिने धारम्भमे जब बराह भगवाव  
 पृथ्वीको पाताखसे ले जाखे थे उस समय प्रलयसे बड़ा हुवा इसका स्वच्छ जल क्षण भरने लिये बनना  
 भूषट बन गया था ॥८॥ देखो ! बुन्दरे सोय केवल छियो का प्रधरण करते हैं, अपना प्रधर उर्ध्व  
 नहीं पिताने । पर समुद्र इम बातम भी धोरसे बढकर है क्योंकि जय मदिया दीठ होकर पुम्भनक  
 लिये अपना मुख इसके सामने बढाती है तब यह बडी क्षतुरादसे अपना तरङ्ग-रूपी प्रधर उर्ध्व पिलाता  
 और बनना प्रधर स्वय पीता है ॥९॥ यह देखो ये बटे-बटे मगरमच्छ अपना मुंह खोलकर मधुलिमो  
 की लिए-लिए समुद्रना जल पी जाते है और फिर मुंह बन्द करने अपने बिरके छेदसे पानीकी जल-  
 पाराए छोडने लगते है ॥१०॥ इन मगरमच्छो के प्रचानक उठनेसे समुद्रकी फटी हुई फेनको छो  
 देतो । इन मगरोपर दण्ड भरण लिए सगो हुई यह फेन ऐसी दिखाई देती है मानो इनके पानोपर  
 चँवर टंगे हुए हो ॥११॥ तदपर बडी-बडी लहरोके जैसे दिखाई देने वाले वे साँव है जा तदका  
 सायु पीनेके लिए बाहर निकल आए हैं । पर जब सूर्यकी किरणाले इनके मणि चमक जाते हैं  
 तब ये पहचानमे आ जाते है ॥१२॥ दक्षा, लहरोकी भोजमे तुम्हारे प्रधरोके समान साल-साल  
 मूषिकी पट्टानले टकर जानेसे इन जीवित राखो वे मुंह छिद गए है और उस पीशासे वे बेवारे  
 बडी बटिनाईम इधर-उधर चल पा रहे है ॥१३॥ बट देतो ! वाले वाले वादल समुद्रना पानी

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनरात्रिनीला ।  
 आभाति वेला लवणाम्बुराशेषारानिवद्धेव कलङ्करेसा ॥१५॥  
 वेलानिलः केतकरेणुमिस्ते संभावयत्याननमायताचि ।  
 मामचमं मण्डनकालहानेर्वेचीव विम्बाधरबद्धतुण्डम् ॥१६॥  
 एते वयं सैकतमिन्वशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः ।  
 प्राप्ता मुहूर्त्तेन विमानवेगात्कूलं फलावर्जितपूगमालम् ॥१७॥  
 कुरुष्व तावत्करभोरु पश्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातम् ।  
 एषा विदूरीभवत्तः समुद्रात्सकानना निष्पततीव भूमिः ॥१८॥  
 प्वचिन्पथा संचरते सुराणां क्वचिद्धनानां पततां क्वचिच्च ।  
 यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्तते पश्य तथा विमानम् ॥१९॥  
 असी महेंद्रद्रिपदानगन्धिस्त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः ।  
 आकाशवायुर्दिनयौवनोत्थानाचामति स्पेदलयान्मुखे ते ॥२०॥  
 करेण वातायनलम्बिते नस्पृष्टस्त्वया खण्डि कुतूहलिन्या ।  
 आमुञ्चतीवाभरणं द्वितीयमुद्भिन्नविद्युद्वलयो धनस्ते ॥२१॥

जेने घ्राट है और समुद्रकी भँवरके साथ साथ वही तीव्र गतिसे पनकर बाट रहे हैं । इस समय यह समुद्र ऐसा जान पड़ रहा है मानो मन्दराचल फिर इसे मधे डाल रहा हो ॥१५॥ देखो ! दूर होनेसे पहिएपी हालमें तमाल बहुत गतला और ताड तथा तमाल घ्राट वृक्षोंके कारण नीला दिखाने देनेवाला समुद्र तट ऐसा जान पड़ रहा है जैसे पत्रकी धारपर मुर्चा जम गया हो ॥१६॥ हे गुलोजने ! समुद्रतटका वायु तुम्हारे मुखपर केतकीरु । पराग छिन्नक रहा है मानो यह यह जान गया है कि मैं तुम्हारे अधरोक्तो धूमने ही वाता हूँ और प्रथम शक्ति शृङ्गारकी बाट नहीं देखूँगा ॥१६॥ यह देखो हम लोग विमानमें तीव्र चलनेके कारण क्षण भरमें ही समुद्रके उस तटपर पहुँच गए जहाँ बाहूँपर सौभोके कँल जानेसे मोती बिल्वे पडे है और पत्तोंके भारसे सुपारीके पड भुके खडे है ॥१७॥ हे कदलीके समान सर्पोंवाली मृगनयनी ! पीछेकी ओर तो देखो ! दूर निकल जानेसे यह जगलेंसे भरी हुई भूमि ऐसी दिखाई पड रही है मानो समुद्रसेसे अशी शपानक निकल पडी हो ॥१८॥ देखो ! मैं जिपर चाहता हूँ उधर ही यह विमान भूम जाता है । यह कभी तो देवताओंके मार्गमें चढता चलता है, कभी बादलोंके मार्गमें पहुँच जाता है और कभी पदियोंके मार्गमें उडने लगता है ॥१९॥ ऐरावतके मदकी गन्धमें बरस हुआ और आनास्रगङ्गाकी सहरोसे ठण्डाया हुआ प्राकाशका वायु तुम्हारे मुखपर दीपहृत्की गर्भारि छाई हुई पत्तीनेकी नूँदोनी पीता चल रहा है ॥२०॥ हे चण्डी ! जब तुम घेल-खेलमें अपना हाथ विमानके बाहर निवालकर बादलको छू लेती हो उस तुम्हारे मण्डितकर्मके चारो ओर बिल्वी पौध जाती है । उस समय ऐसा जान पडता है मानो बादल तुम्हारे हाथमें दूसरा फगन पहना रहे हो ॥२१॥ नीचे देखो ! राबल घाटि गलसोके गारे जानेकी धात

अमी तनस्थानमपोढविन्नं मत्वा समारब्धनवोटजानि ।  
 अध्यासते चीरभृतो यथास्वं चिरोज्जिह्वतान्याश्रममण्डलानि ॥२२॥  
 सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां अष्टं मया नूपुरमेकमुष्यम् ।  
 अदृश्यत त्वच्चरखारविन्दगिरिलेपदु स्तादिव बद्धमौनम् ॥२३॥  
 त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता त मार्गमेताः कृपया लता मे ।  
 अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्यः शाराभिरावर्जितपल्लवाभिः ॥२४॥  
 मृगयथ दर्माङ्कुरनिर्व्यपेक्षास्तयागतिज्ञं समबोधयन्माम् ।  
 व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पत्तराजीनि विलोचनानि ॥२५॥  
 एतद्विरेमस्यवत्तः पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखि शृङ्गम् ।  
 नवं पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाशु समं विसृष्टम् ॥२६॥  
 गन्धश्च धाराहतपत्नलानां कादम्बमर्धेद्गतकेसरं च ।  
 स्निग्धाश्च केकाः शिसिनां बभूवुर्यस्मिन्नसखानि विना स्वया मे ॥२७॥  
 पूर्वानुभूत स्मरता च यत्र कम्पोत्तरं भीरु तरोपगूढम् ।  
 गुहाविसारीख्यतिग्राहितानि मया कथंचिद्धनगर्जितानि ॥२८॥  
 आसारसिक्तचित्तिप्राप्पयोगान्मामक्षिणोद्यत्र विभिन्नक्रोशैः ।  
 निडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः ॥२९॥

चुनकर इन कीरपारी लगभगवो न समझ लिया है कि अब कोई खटना नहीं रहा और इसलिये वे नहीं कुटिया बना बनाकर, लगीवनमे तुमसे बखने संगे हैं ॥२२॥ देखो ! यह वही स्थान है जहाँ तुम्हें बँधते हुए मैंने पृथ्वीपर पडा हुआ तुम्हारा विजुषा देखा था । चुपचाप पडा हुआ वह ऐसा लग रहा था मानो तुम्हारे चरणोत्तमलन हो जानेके दुःखसे चुप हो गया हो ॥२३॥ हूँ भीरु ! तबएव तुम्हें जिस मार्गसे तो गया था उस मार्गकी खताएँ मुझे दिखा करके तुम्हारे जानेका मार्ग बताया चाहती थी पर बोस न सनन के कारण उन्हीन मपनी पत्नीवासी बालियाँ ही उभर भुकाकर मुझे तुम्हारा टिपता दिया था ॥२४॥ हरिलालमै भी अब देखा कि मुझे तुम्हारे जानेके पापंका ज्ञान नहीं है तब वे अपनी उठी हुई पल्लवोवाली माँके बक्षिण दिखाने और करने मुझे मार्ग समझाने समी थी ॥२५॥ देखो ! वह जो प्रागे मात्मवान् पर्वतकी ऊँची चोटी दिखाई देती है, यहाँ अब घाटखोने नया जल बरसाना प्रारम्भ किया, उस समय तुम्हारे न रहनेसे मेरी माँके भी जल बरसाने लगी थी ॥२६॥ उस समय वपनि पायल पोसरोमेस उठी हुई साथी कण, प्रपत्तिली मर्त्यरिपोवाले नदम्बके पूत और भीरुके मतोहर स्वर तुम्हारे विना मुझे बडे डरते ॥२७॥ अब वादन करनेके वे और गुफामोमे उसकी प्रतिध्वनि होने लगती थी तब मुझे वे दिन स्मरण हो आए तब वादलोने गर्बनेके डरकर तुम मुझसे लिपट जाती थी । तुम समझ नहीं सनती कि मात्मवान् पर्वतपर वे पादखने दिन मैंने जिनके कण्ठसे दिया ॥२८॥ वपनि कारण यहाँकी परकीसे जो भाप निकले, उससे कदमियोकी बालियाँ दिला उठी और वही



उपान्तमानीरवनोपगूडान्मालक्ष्यपारिप्लवसारसानि ।  
 दूरानतीर्णं पिपतीम खेदादमूनि पम्पासलिलानि दृष्टिः ॥३०॥  
 श्रान्नावियुक्तानि रथाङ्गनाम्नामन्योन्यदचोत्पल्लकेमराणि ।  
 इन्द्रानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये सस्पृहमीक्षितानि ॥३१॥  
 इमां तटाशोकलता च तन्वीं स्तनामिरामस्तनकाभिनश्राम् ।  
 त्वत्प्राप्तितुद्गथा परिरन्धुकामः सौमिनिष्ठा साश्रुरहं निषिद्धः ॥३२॥  
 अमूर्तिमानान्तरलम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं काञ्चनकिङ्किणीनाम् ।  
 प्रत्युद्यजन्तीव समुत्पतन्त्यो गोदावरीसारसपङ्क्तयस्त्वाम् ॥३३॥  
 एषा त्वया पेशलमध्ययापि घटाम्युत्सवर्धितमालचूता ।  
 श्रानन्दयत्युन्मुखकृष्णसारा दृष्ट्वा चिरारूपपञ्चवटी मनो मे ॥३४॥  
 श्रानानुगोदं मृगयानिष्टतस्तरंगयातेन विनीतस्येदः ।  
 रहस्त्वदुत्सङ्गनिपणायूर्धा स्मरामि वानीरगृहेषु सुतः ॥३५॥  
 भ्रूभेदमात्रेण पदान्मघोनः प्रभ्रंशया यो नक्षुर्पं चकार ।  
 तस्याविलाम्भः परिशुद्धिहेतोर्भौमो मुनेः स्थानपरिग्रहोऽयम् ॥३६॥

ही माल माल ही गई जैसे विवाहवे समय ह्यनका धुर्मा जगनेसे तुम्हारी भाँसे माल ही गई थी । मत  
 उन्हे देखपर तुम्हारा स्मरणही मानेसे मैं बेचैन होजाता था ॥३१॥ देखो ! बहुत जँघेसे देखनेसे वारण  
 शीर बँतवे जगलोसे बने होनेसे वारण पम्पा शरीरका जल ठीक ठीक दिखाई नहीं दे रहा है। फिर भी  
 जलपर तँरते हुए सारस कुछ-तुड दिव्याई पटवाते है ॥३०॥ हेप्रिये ! यहाँ जलका-जलबोके जोसे एष  
 दूसरेको प्रेमपूर्वा पागलका गसर दिया करते थे, तुमसे दूतनी दूर होनेके कारण उन्हे देख-देखकरो यही  
 सोचा करता था कि मुझे भी ये दिन कब देखनेको मिलेंगे ॥३१॥ तुम्हारे विषोगमे मैं ऐसा पागल हो  
 गया था कि एक दिन स्तनके समान पुच्छीवाली इस पतनी बसोके सताने सेने यह समझकर गले  
 लगाना चाहा था कि तुम ही हो । जैसे ही मैं उसे गले लगाने जाता तो मेरा यह पागलपन देखकर  
 रोते हुए संशयाने मुझे बर्हासे हटा लिया ॥३२॥ यह देखो ! विमानके नीचे लटकती हुई सोनेकी  
 किङ्किणीकी शब्द सुनकर गोदावरी नदीने सारसोकी पति ऊपर उडी चली प्रा रही है मानो ये  
 तुम्हारी मगधानी करने का रही हो ॥३३॥ आज बहुत दिनोपर इस पञ्चवटीको देखकर मेरा जो  
 खिल उठा है । यह देखो ! वहाँके मृष ऊपर सिर उठाकर विमानको देख रहे हैं । वहीपर तो तुमने  
 अपनी पतली वस्त्रपर धरे से लेकर ग्रामके वृक्षोकी छीनकर पाला-पोसा था ॥३४॥ मुझे वे दिन  
 स्मरण हो रहे हैं जब मैं यहाँ एतान्ते- बँतकी मोपवीमे तुम्हारी चादमे सिर रखकर सोया करता था  
 और गोदावरीका ठण्डा वायु मेरे प्रासेटकी चकावट मिटाया करता था ॥३५॥ यह देखो ! आगे ही  
 उन तपस्वी अगस्त्य श्रुषिका आथग है, जिन्होंने केवल गँहि वागकर ही राजा नहुषको हत्यने पदसे  
 नीचे टोल दिया था । ये ही जब उदय होते हैं तब वर्षना सब भँदना जल स्पन्द कर देते हैं ॥३६॥

त्रेताग्निभृमाग्रमनिन्द्यकीर्तस्नस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम् ।  
 घ्रात्वा हविर्गान्धि रज्जोविमुक्तः सशुभते मे लधिमानमात्मा ॥३७॥  
 एतन्मुनेर्मानिनि शाक्तकर्मैः पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि ।  
 आभाति पर्यन्तवर्जं विदूरान्मेघान्तरालस्यमिवेन्दुबिम्बम् ॥३८॥  
 पुरा स दर्भाद्गुरमात्रवृत्तिश्चरन्मृगैः सार्धमृषिर्मघोना ।  
 समाधिभीतेन किलोपनीतः पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम् ॥३९॥  
 तस्यायमन्तर्हितमौधभाजः प्रगक्तसंगीतमृदङ्गघोषः ।  
 वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः चखं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति ॥४०॥  
 हविर्भुजाभेधवतां चतुर्णां मध्ये ललार्तपसप्तसप्तिः ।  
 असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्तः ॥४१॥  
 अमुं सहासप्रहितेष्वथानि व्याजार्धसंघर्षितमेखलानि ।  
 नालं विकृतं जनितेन्द्रशङ्कं सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि ॥४२॥  
 एषोऽक्षमालाकलय मृगाणां करदृयितारं कुशसंचिलावम् ।  
 सभाजने मे भुजमूर्ध्वाद्वाहुः सव्येतरं प्राध्वमितः प्रसुहक्ते ॥४३॥  
 वाचंयमत्वात्प्रणतिं ममैष कम्पेन किञ्चित्प्रतिगृह्य मूर्ध्नः ।  
 दृष्टिं विमानव्यवधानमुक्तां पुनः सहस्राभिपि संनिधये ॥४४॥

इसी यज्ञस्त्री ऋषिणी, गार्हपत्य घोर आहवनीय अग्नियोगे हवन तापघोषी गन्धो मिला हुआ वह  
 पुष्पा विमानके पासतक उड़ बला था रहा है जिसे सुँपते ही मेरा प्राणमा वधिप हो गया है ॥३७॥  
 हे भाषिणी । यह भाग्ये शाकवर्णी ऋषिणा पञ्चाप्सर नामका कीटा-सरोवर है जो चारो घोर जाले-जाले  
 जङ्गलसे मिरा हुआ दूरसे ऐसा दिखाई पठ रहा है मानो वादलोंके बीचमें कुछ-कुछ दिखाई देनेवाले  
 अङ्गुली हों ॥३८॥ पहले के महर्षि तपस्या करते समय मृगोंके साथ भाग करा करते थे । इनकी  
 ऐसी तपस्या देखकर इन्द्रको यह भय हुआ कि नहीं ये हमारा इन्द्रासन न छीन लें, इसलिये इनका  
 तप डिगानेके लिये इन्द्रने, एवं साथ पाँच अप्सराघोषका आस इनपर फेंका घोर ये देवारे फँस गए  
 ॥३९॥ यह जो नाथ-नामा मुनाई वे रहा है यह जसने गीतर बने हुए उन्हीके गदनका है । महीके  
 मृदङ्गको ध्वनि आवाजके पुष्पक-विमानकी छत्ररीसे टकराकर बूँब रही है ॥४०॥ यह जो चार  
 धनिपोंके बीचमें घोर ऊपर मूर्ध्वी निरखोति तपने हुए तपस्वी बँडे हैं इनका नाम ही सुतीक्ष्ण  
 [धर्मात् बड़ा तीका] है पर ये हैं बडे तीये ॥४१॥ इनने तपने करकर इन्द्रने इनके पास भी  
 अप्सराप्रोषो भगा । वे मुखर-मुखरकर इनपर तिरछी चितवन बलाती थीं घोर निश्री न निश्री  
 बहान प्रणी सगरी श्री उपाधर इन्हें दिम्बा देती थीं पर उनकी यह सब पटन-मटन इन्हें न सुभा  
 राती ॥४२॥ देवी ! वे मुझे देवार मद्राशपी माला बंधो हुई, मृगोंकी सहलानेवाली घोर कुछ  
 उगादनेवाली घपनी दालिबी भुजा बलतर मेरा रवागत कर रहे ॥४३॥ ये मौल रहते हैं इसलिये

अदः शरस्यं शरभङ्गनाम्नस्तपोवनं पावनमाहिताग्नेः ।  
 चिराय संतर्प्य समिद्धरिग्निं यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत् ॥४५॥  
 छायाविनीताञ्चपरिश्रमेषु भूयिष्ठसंभाव्यफलेष्वमीषु ।  
 तस्यातिथीनामधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु ॥४६॥  
 धारास्वनोद्धारिदरीमुखोऽसौ शृङ्गागलम्नाम्युदवप्रपङ्कः ।  
 वध्नाति मे वन्धुरगात्रि चर्तुर्दृप्तः कुकुद्गानिव चित्रकूटः ॥४७॥  
 एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्धिदूरान्तरभावतन्वी ।  
 मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावलीकस्यठगतेषु भूमेः ॥४८॥  
 अय सुजातोऽनुगिरं तमालः प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य ।  
 यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोमी भयावतसः परिकल्पितस्ते ॥४९॥  
 धनिग्रहप्रासविनीतसच्यमपुष्पलिङ्गात्फलयन्धिवृक्षम् ।  
 वनं तपःसाधनमेतदत्रेराविष्कृतोदग्रतरप्रभावम् ॥५०॥  
 अत्राभिषेकाय तपोधनानां सप्तर्षिहस्तोद्धतहेमपद्माम् ।  
 प्रवर्तयामास किलानस्रया त्रिस्रोतसं त्र्यम्बकमौलिमालाम् ॥५१॥

केवल फिर हिलाकर ही इन्होंने मेरे प्रणामको स्वीकार किया है । विमानके बीचमे भ्राजानेरो जो इनकी  
 दृष्टि सूर्यसे प्रसंग हो गई थी वह फिर इन्होंने सूर्यमे लगा ली है ॥४५॥ यह भाषे शरस्यपातकी  
 रक्षा करनेवाले प्रमिद्धोत्री शरभङ्ग ऋषिका तपोवन है जिन्होंने बहुत दिनोंतक प्रमिद्धोत्रीके समिधासे वृत्त  
 करते अन्तमे अपना पवित्र शरीरभी उसमे हवन कर दिया था ॥४६॥ जैसे सुपुत्र अपने पिताके  
 धर्मका पालन करते हैं वैसे ही प्रतिभि-सेवाका काम उनके शरीरे य शशयमके वृक्ष करते हैं जिसकी  
 छायासे बँठकर ऋषिक अपनी शकावट दूर करते हैं और जिसमे बड़े बड़े बड़े फल भी लगते हैं ॥४७॥  
 हे सुन्दरी । मन्त्र साँडके समान यह चित्रकूट पर्वत मुझे बड़ा मुहानवा लग रहा है । इसकी मुफा ही  
 इसका मुख है, इससे निकलनेवालीजलकी धाराका शब्द ही साँडकी ठकार है, इसकी पीठी ही  
 उसकी सीमें हैं और उसपर छाए हुए वादल ही मानो सींगेपर सर्गो हुई कीचट है ॥४८॥ यह लो  
 मन्दाकिनी का गई । इनका जल कैसा स्नान्य और पीरे पीरे यह रहता है । दूर होनेके कारण मे कितनी  
 पसली दिखाई दे रही हैं । चित्रकूट पर्वतके नीचे बहती हुई ये ऐसी जान पड़ती हैं मानो पृथ्वी-रूप  
 नायिकाके गलेमे शीतियोकी माला पड़ी हुई हो ॥४९॥ पहाडके ढालपर जो तमालका वृक्ष दिखाई  
 दे रहा है मर वही है जिसकी लोपलका कर्णफूल बनाकर मैंने तुम्हारे कानमे पहनाया था और जो  
 तुम्हारे ओके प्रकुरके समान पीले शालीपर सटकता हुआ बड़ा सुन्दर लगता था ॥५०॥ यह माने  
 अग्नि मुनिका तपोवन है जहाँके सिंह आदि पशु बिना मारे-पीटे हो ऐसे सोधे हो गए हैं कि कियोके  
 वृक्ष धोके नहीं । यह तपोवन इतना प्रभावशाली है कि यहाँ बिना फूल आए ही वृक्षोमे फल लग  
 जाते हैं ॥५१॥ अग्निकी पत्नी अनस्रयाकी ऋषियोके स्थानके लिये उन त्रिपयगा यज्ञाजीको यह!

वीरासनैर्घ्यानिजुषामृषीणाममी समध्यासितवेदिमध्याः ।  
 निवातनिष्कम्पतया विमान्ति योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि ॥५२॥  
 त्वया पुरस्तादुपपाचितो यःसोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः ।  
 राशिर्मखीनामिव गारुडानां सपञ्चरागः फलितो विभाति ॥५३॥  
 यवचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ।  
 अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरं ॥५४॥  
 यवचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बमंसर्गवतीव पङ्क्तिः ।  
 अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा मक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥५५॥  
 यवचित्प्रभा चान्द्रमसीतमोभिरञ्जायाविलीनैः शबलीकृतेषु ।  
 अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विनालचपनभः प्रदेशा ॥५६॥  
 यवचित् कृष्णोरगभूपशेषे भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।  
 पश्यानवघाङ्गि विभाति गङ्गा मिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः ॥५७॥  
 समुद्रत्न्योर्जलसंनिपाते पूतात्मनामत्र किलाभिपेकात् ।  
 तत्त्वावयोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः ॥५८॥

ले आई हैं जिससेते सप्तपिपासा स्वर्ण भगल चुना करते हैं और जो खिबजीके छिरपर मालाके समान सुन्दर लगती हैं ॥५२॥ इस आशयके वृक्षांके तले बैदियोपर तपस्वी लोग बीरासन लगा-लगाकर ध्यान करते हैं और यहकि वृक्ष भी वायु न चलनेके कारण ऐसे स्थिर खड़े हैं यानी वे भी योग साध रहे हो ॥५३॥ यह बाला-बाला वही बटका पेड़ है जिसकी तुमने बनौती मानी थी । इसमें जो माल-माल यव-बीपनिदां फली है उनसे यह पेड़ ऐसा लग रहा है जैसे नीलमके डेरमें बहुतसे माल भरे हो ॥५४॥ हे सुन्दरी ! देखो यमुनाकी साँवली सहरोते मिली हुई उबली तहरोबाली गङ्गाजी कौसी सुन्दर लग रही है । कही तो ये धमकनेवाली इन्द्रनील यखिषोते मुँधी हुई माला-जैसी लगती हैं, बहो, नीले और श्वेत कमलोंकी मिली हुई माला-जैसी दिखई पढ रही हैं ॥५५॥ बड़ी साँवले रंगके हंसोंने मिले हुए उनसे रंगके खबहसोनी पाँके समान शोभा दे रही है, बही श्वेत चन्दनसे धोती हुई पृष्ठीपर बीच-बीचमें काले धमरसे धोती हुई-सी लग रही हैं ॥५६॥ बहो बहो ये वृक्षके नीचेकी उष प्राँवनीके समान लगती हैं जिसके बीच-बीचमें पत्तोंकी छाया पड़े हो और बही बही पर पर रङ्ग क्रतुके उन उजले बादलोंके समान धान पड़ती हैं जिनके बीच-बीचमें नीला मानास नामक रहा हो ॥५७॥ और बहीपर मम्म पुले हुए निवजीके तरीके समान दिखई पढ रही हैं जिसपर माले-माले सप्त पिपटे हुए हो ॥५८॥ समुद्रकी इन दो पत्तियोंके धर्मन् यद्वा-यमुनाके सङ्गममें जो स्नान करने पवित्र होते हैं वे तत्त्वज्ञानी न होनेपर भी ससारके बन्धनसे छूट जाते हैं ॥५८॥

पुर निपादाधिपतेरिदं नद्यस्मिन्मया मौलिमणिं विहाय ।  
जटासु वद्धास्वस्वदत्सुमन्त्रः कैकेयि कामाः फाल्गुतास्तवेति ॥५६॥  
पयोधरैः पुण्यजनाङ्गनां निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु यस्याः ।  
ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाध्यक्तमुदाहरन्ति ॥६०॥  
जलानि या तीरनिखातयूषा बहत्ययोध्यामनु राजधानीम् ।  
तुरंगमेधावभृथावतीरैरिच्छाङ्गभिः पुण्यवरीकृतानि ॥६१॥  
यां सैकतोत्सङ्गसुरोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम् ।  
सामान्यधात्रीमिव मानसं मे संभावयत्सुचरकोशलानाम् ॥६२॥  
सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयुर्वियुक्ता ।  
दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मा तरंगहरतैरुपगूहणीय ॥६३॥  
विरक्तसंध्याकपिशं पुरस्ताद्यतो रजः पाथिवसुज्जिह्वीते ।  
शङ्के हनूमदकथितप्रवृत्तिः प्रत्युद्गतो मां भरतः सरैन्यः ॥६४॥  
अद्वा धिर्यं पालितसंगराय प्रत्यर्पयिष्यत्यनघां स साधुः ।  
हत्वा निवृत्ताय मृधे सरादीन्संरचितां त्वामिव लक्ष्मणो मे ॥६५॥

यह भागो वही निपादराज गुह्य नगर है जहाँ मैंने मुकुटमणि उतारकर प्रदा दी थी थी और जिसे देखकर सुमन्त्र यह कहकर रोने लगे थे कि हे कैकेयी ! तेरी इच्छा सफल हो गई ॥५६॥ जैसे ऋषि लोग कहते हैं कि अमृतसे [सर्वात् प्रकृतिसे] बुद्धि उत्पन्न हुई जैसे ही यह सरयू नदी भी उस मानसरोवरसे निकली है, जिससे कालिका परग मन्तोनी खिर्वा प्रपने स्वर्गमे लगती है ॥६०॥ यह नदी इन्ध्यायुवशी राजधानी अयोध्यासे लगी बहती है । इतने तटपर जहाँ तहाँ यज्ञोके कर्ममे गडे हुए हैं जिनमे बांधकर पशुधोकी बलि दी जाती थी । अस्वमेव वरनेके अन्तमे सूर्यवशी राजधानीमे जो इसमे स्नान किया गया है उससे इसना जल पवित्र हो गया है ॥६१॥ मैं इस नदीका घटा धावर करता हूँ पशुके यह उत्तरलोडनमे राजाश्रीओ काय है । इसीके बालुमे देन-देनपर वे रात्र पलते हैं और इसीका भीडा जल पीवर पुष्ट होते हैं ॥६२॥ माननीय महाराज बधरपते विष्णुओ हुई मेरी माताके ही समान यह सरयू प्रपने ठडे बाधुवाले तरंग रूपी हाथ उठा रही है मानो इतने ऊँचे परसे ही मुझे गले लगाना चाहती हो ॥६३॥ देखो ! खाल सन्ध्याके समान जो धूल पृथ्वीसे उठ रही है उससे जान पडता है कि हनुमानजीसे मेरे भानेका समाचार सुनकर भरतजी सेना लेकर मेरा स्वागत करने धा रहे हैं ॥६४॥ सर दूषण आदि राक्षसोने मारकर मैं जब लौटा था उस समय जैसे लक्ष्मणने तुम्हे मेरे हाथ सुरक्षित रूपसे यौव दिया था वैसे ही अद्य मैं प्रवधि पूरा करने जो लौटा हूँ तो जान पडता है कि सन्धन भरत मुझे सुरक्षित राज्यसदमी शीघ्र देगे ॥६५॥ और वहने, वेदव जसते हुए हाथमे पूजारी भाषणो किए मन्त्रयोके

सौमित्रिणा तदनु संससृजे स चैनमुत्थाप्य नम्रशिरसं भृशमालिलिङ्ग ।  
रुढेन्द्रजितप्रहरणव्रणकर्कशेन किर्यन्निवास्य भुजमध्यमुरःस्थलेन ॥७३॥  
रामाज्ञया हरिचमूपतयस्तदानीं कृत्वा मनुष्यवपुरारुहर्गुजेन्द्रान् ।  
तेषु चरत्सु बहुधा मदवारिधाराः शैलाधिरोहणसुखान्युपलोभिरे ते ॥७४॥  
सानुसवः प्रभुरपि क्षणदाचराणां मेजे रथान्दशरथप्रभवानुशिष्टः ।  
मायाविकल्परचितैरपि ये तदीयैर्न स्यन्दनैस्तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः ॥७५॥  
भूयस्ततो रघुपतिर्विलसत्पताकमध्यास्त कामगति सावरजो विमानम् ।  
दोषातनं बुधवृहस्पतियोगदृश्यस्तारापतिस्तरलविद्युदिवाभृष्टन्दम् ॥७६॥  
तत्रेश्वरेश जगतां प्रलयादिवोर्वा वर्षात्ययेन रुचमभ्रघनादिवेन्दोः ।  
रामेण मैपिलसुतां दशकण्ठकृच्छ्रात्प्रत्युद्धृतां धृतिमयीं भरतो वयन्दे ॥७७॥  
लङ्केध्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतं तद्वर्ण्यं युगं चरखयोर्यज्जनामनायाः ।  
ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं च शिरोऽस्य साधोरन्योन्यपावनमभूदुभय समेत्य ॥७८॥

किया ॥७३॥ तब भरतजी लक्ष्मणसे मिले और प्रणामके लिये झुका हुआ लक्ष्मणका सिर उठाकर मैपनादके प्रहारसे नठोर हुई उनकी छातीकी छपनी धुनाधोसे रबाले हुए जड़े छपनी छातीसे सवा दिया ॥७३॥ रामके कहनेसे वानरो और भालुभोके सेनापति मनुष्योका बेश बना-  
बनाकर हाथियोपर चढ़ गए । उन हाथियोने मस्तकसे मदवी धारा गढ़ रही थी, इसलिये उनपर लठले समय उनकी बही आनन्द गिला मानो भरजोवाले पहारोपर ही चढे हुए हो ॥७४॥  
रामकी आज्ञासे विभीषण और उनके साथी भी रथोपर चढ़ गए । वे रथ बदधि मनुष्योने बनाए थे फिर भी वे इतने सुन्दर थे कि राक्षसोकी आयासे बनाए हुए रथ भी उनकी सुन्दरताके भागे पानी भरले थे ॥७५॥ जैसे बुध और बृहस्पतिका साथ होनेसे विषेय दर्शनीय चन्द्रमा सन्ध्याको बिजलीवाले बादलोपर बैठता है वैसे ही रामकी भरत और लक्ष्मणने साथ पतरनाधोसे सजे हुए और इच्छानुसार चरनेवाले पुष्पक विमानपर चढ़ गए ॥७६॥ जैसे आदि वराहने प्रलयसे पृथ्वीको उधार लिया था, जैसे वर्षा बौतनेपर शरद ऋतु बादलोसे चाँदनी छीन लेती है वैसे ही रामने रावण-रूपी सद्गुणसे जिसे उधार लिया था उस विमानसे चले हुए सीताजीको भरतजीने बाकर प्रणाम किया ॥७७॥ सीताजीके जिन पवित्र चरणोने रावणकी प्रणय-प्रायनाको दृढतापूर्वक टुकरा दिया था उनपर जब भरतजीने बड़े भार्दवी शक्तिके धरख बली हुई जटावाला छपना सिर रखा तो इन दोनोंने पापसमे मिलकर एक दूसरेको पवित्र कर दिया ॥७८॥ प्रागे-प्रागे त्रयोप्याकी जगता चल

क्रोशार्धं प्रकृतिपुरःसरेण गत्वा काकुत्स्थः स्तिमितज्वेन पुष्पकेषु ।  
शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यमार्यः साकेतोपवनसुदारमधुवास ॥७६॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये  
दण्डकात्प्रत्यागमनो नाम त्रयोदशः सर्गः ॥

रही थी और पीछे-पीछे वह पुष्पक विभाग घीरे-घीरे चला जा रहा था जिसपर राम बैठे हुए थे ।  
इस प्रकार प्रायः कौतुकक चलकर उन्होंने शत्रुघ्नाके इस सुन्दर उपवनमें देखा जमाया जिसे पहलेसे  
ही शत्रुघ्नेने भती-भ्रांति बना दिया था ॥७६॥

महाकवि श्रीकालिदासके रचे हुए रघुवंश महाकाव्यमें दण्डकवनसे लौटना  
नामका तेरहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥

## ॥ चतुर्दशः सर्गः ॥

भर्तुः प्रणाशादथ शोचनीयं दशान्तरं तत्र ममं प्रदन्ने ।  
 अयश्यतां दाशरथी जनन्यो छेदादिवोषध्नतरोर्व्रतत्यौ ॥१॥  
 उमाबुभभ्यां प्रणतौ हतारी यथाक्रमं विक्रमशोभिनां तौ ।  
 विस्पष्टमस्त्रान्धतया न दृष्टौ ज्ञातौ सुतस्पर्शसुगोपलम्भात् ॥२॥  
 आनन्दजः शोकजमश्रु-शाम्पस्तयोरशीतं शिशिरो विभेद् ।  
 गङ्गासरन्ध्रोर्जलमुष्णतप्तं हिमाद्रिनिस्यन्द इवावतीर्णः ॥३॥  
 ते पुत्रयोर्नैश्चतशास्त्रमार्गानाटानिवाङ्गे सदयं स्पृशन्त्यौ ।  
 अपीप्सितं चत्रकुलाङ्गनानां न वीरस्रशब्दमकमयेताम् ॥४॥  
 क्लेशाबहा भर्तुरलक्षणाहं सीतेति नाम स्वमुदीरयन्ती ।  
 स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोर्महिष्यावभक्तिभेदेन वधूर्वन्दे ॥५॥  
 उत्तिष्ठ वस्ते ननु सानुजोऽयौ वृचेन भर्ता शुचिना तवैप ।  
 कृच्छ्रं महत्कीर्णं इति प्रियार्हा ताम्चतुस्ते प्रियमप्यभिभ्या ॥६॥  
 अयाभिपेकं रघुवंशकेतोः प्रारब्धमानन्दजलैर्जलन्योः ।  
 निर्वर्तयामासुरमात्यपृद्वास्तीर्थाहृतैः काश्वनकुम्भतोयैः ॥७॥

### चौदहर्षां सर्गं

इस उपवनमे पहुँचकर राम अपने माताप्रीति मिले जो उसी प्रकार उदात्त लय रही थी  
 जैसे वृषाके बट जानेपर जलने सट्टारे पटी हुई सताई मुरझ जाती है ॥१॥ पराक्रमी राम और  
 सशमलने बारी बारीसे कीसत्या और सुमित्रानो प्रणाम किया । अपने पुत्रोंकी देगने ही दोनों  
 माताप्रीती भाँसिमे भाँसू छलछला भाए इसलिये ये भाँस कर उग्रे देत तो नही लयी पर पुत्रोंकी  
 धारसे पुत्रवारसे समय उन्हें पहचान गई ॥२॥ जैसे गर्मीके दिनोमे हिवालयका शीतल जल पग  
 और सपूके गर्म जलको ठंडा कर देता है वैसे ही जल दोनों माँसिपोकी धारोमे बहे हुए मानन्दके  
 ठंडे भाँसुप्रीने शीतने गरम भाँसुप्रीको ठंडा कर दिया ॥३॥ पुत्रोंके लठोरके दिन अयोपर  
 राधाप्रीके रासोके पाव बने ये वहाँ दोनों माताएँ इस प्रकार सहलाने लयी माने पाव अपनी रहे  
 ही हों । इस समय अपने पुत्रोंकी बोटें देलकर ये इतनी व्याकुल हो गई कि उन्हें और पुत्रोंकी भाँ  
 पहलाना भी अच्छा नही लगा ॥४॥ ये ही पतिओ बट्ट देवेवाली बुलछाया भीता हैं-पट्ट करने  
 हुए सीताजीने एव-भी भाँसिमे रङ्गवाली मसुरकी दोनों रासियोके चरगु एए ॥५॥ माताप्री  
 सीताप्रीने उठाते हुए बड़ी प्यारी और मन्की बात कही-‘उठो बेटो ! तरे ही पालिचरने प्रभावसे  
 राम और लक्ष्मण इस बडे भाँसि सजटने पार लू है ॥६॥ जिस राम्याधिनेरवा धारम्भ माताप्री  
 हर्ष-मरे भाँसुप्रीने हुआ था, उग भाँसिपरकी सोनेके पडोमे बरे सीपनि काए हुए जलने सपरी



सरित्समुद्रान्सरसीश्च गत्वा रक्षाःकपीन्द्रैरुपपादितानि ।  
 तस्यापतन्मूर्ध्नि जलानि जिप्शोर्विन्ध्यस्य मेषप्रभवा इवापः ॥८॥  
 तपस्विवेषक्रिययापि तावद्यः प्रेक्षणीयः सुतरां बभूव ।  
 राजेन्द्रनेपथ्यविधानशोभा तस्योदिताऽऽसीन्पुनरुक्तदोषा ॥९॥  
 समौलरक्षोहगिः ससैन्यस्तूर्यस्वनानन्दितयौरवर्गः ।  
 विवेश सौधोद्गतलानवर्षामुत्तोरखामन्वयराजधानीम् ॥१०॥  
 सौमित्रिणा सावरजेन मन्दमाधृतपाल्यजनी रथस्थः ।  
 धृतातपत्रो भरतेन साक्षादुपायमघात इव प्रघृष्टः ॥११॥  
 प्रासादकालागुरुधूमराजिस्तत्याः पुरो वायुवशेन भिक्षा ।  
 वनान्निवृत्तेन रघूत्तमेन मृक्ता स्वयं वैशिरिवावभासे ॥१२॥  
 श्वभूजनानुष्ठितधारुषेपां कुर्यांश्चस्यां रघुवीरपत्नीम् ।  
 प्रासादवातायनदृश्यबन्धैः साकेतनार्योऽञ्जलिभिः प्रथेष्टुः ॥१३॥  
 स्फुरत्प्रभामशङ्कलमानुस्रय सा विभ्रती शारवतमङ्गरागम् ।  
 राजा शुद्धेति पुनः स्वपुत्र्यै संदर्शिता वह्निगतेव भवती ॥१४॥

तद्दशावर बूढे मन्त्रियोने पूरा कर दिया ॥७॥ राक्षसी घोर शारदके नायकीने त्रियो, समुद्रो  
 भीर तालोले जो जल सागर दिया वह अनियेकके समय रामके शिरपर बैसे ही भरत रहा था जैसे  
 विन्ध्याचलकी घोटीपर घादलोक लामा हुआ जल बरसा करता है ॥८॥ जो राम तपस्वीके वेद्यने  
 भी बहुत सुन्दर लगते थे वे इस समय राजसी बसन पहनकर भीर भी सुन्दर लगने लगे ॥९॥  
 बूढे मन्त्रियो, राक्षसी भीर वानरीकी छाव सेकर रामने अपनी सेनाके साथ उठा राजधानी धयोष्याने  
 गैर रक्ते जो पारो भीर बन्दनवारोसे सजाई गई थी, वहकि इवत भवतोपरने धानकी सीसे बरता  
 रही थी घोर जहाँके निपासी तुरही आदि वानोको तुल सुनकर बने प्रसन्न हो रहे थे ॥१०॥  
 लक्ष्मण भीर शत्रुधन रामपर बरत हुआ रहे थे भीर भरत शत्रुके धन लिए हुए थे । उठा प्रगर जब  
 राम अपने भाइयोके साथ धयोष्याने प्रविष्ट हुए तब भारी भाई ऐसे जान पडे रहे थे मानो धान,  
 धान, दण्ड भीर भेद थे पारो उपाय इन्द्रो ही गए हो ॥११॥ बनोके उपर वायुसे दितराया  
 हुआ जाने प्रगरका मुभी ऐसा लग रहा था मानो वनसे सीटकर रामने धयोष्यापुरीका बूढा ही  
 अपने हावसे खोलकर छितरा दिया हो ॥१२॥ मनोके करीबीने हाथ बाँधे दितार्ई पडनेवाली  
 धयोष्याकी महिमाओने हाथ जोडकर उन सीताओको प्रणाम विवा जो उस समय पालकीपर बैठे  
 चल रही थी भीर जिन्हे सीताल्या आदि साधोने बडे मनोहर उभरे वरु घोर आहूणोसि सजा  
 रता था ॥१३॥ सीताओके शरीरपर भव भी अमित बान्तिवाला शङ्करण लगा हुआ था  
 जो अनन्याओने उनसे शरीरके लगा दिया था । उभरे अनिके सपान प्रकाशमान उनका  
 शरीर ऐसा विशाई पडे रहा था मानो पुरवासियोको सीताओकी सुदृढा दितरावेके लिये रामने उन्हे

चेशमानि रामः परिचर्हवन्ति विश्राण्य सौहार्दनिधिः सुहृद्भ्यः ।  
 वाष्पायमाख्यो बलिमन्त्रिकेतमालेख्यशेषस्य पितृविवेश ॥१५॥  
 कृताञ्जलिस्तत्र यदभ्य सत्पान्नाभ्ररयत स्वर्गफलाद्गुहर्नः ।  
 तच्चिन्त्यमानं सुकृतं तत्रेति जहार लज्जां भरतस्य मातुः ॥१६॥  
 तथैव सुग्रीवविभीषणादीनुपाचरत्कृत्रिमसंविधाभिः ।  
 संकल्पमात्रोदितसिद्धयस्ते क्रान्ता यथा चेतसि विस्मयेन ॥१७॥  
 समाजनायोपगतान्स दिव्यान्मुनीन्पुरस्कृत्य हतस्य शत्रोः ।  
 शुभाय तेभ्यः प्रभवादि वृत्तं स्वधिक्रमे गौरवमादधानम् ॥१८॥  
 प्रतिप्रयातेषु तपोवनेषु सुखादनिज्ञातगार्धमासान् ।  
 सीतास्त्रहस्तोपहृताऽप्यपूजान् रघुःकपीन्द्रान्विससर्ज रामः ॥१९॥  
 तथात्मचिन्तासुलभं धिमानं हृतं सुरारैः सह जीवितेन ।  
 कैलासनाथोद्बहनाय भूयः पुष्पं दिवः पुष्पक्रमन्वमैस्त ॥२०॥  
 पितृनिर्योगाद्भनवासमेधं निस्तीर्य रामः प्रतिपन्नराज्यः ।  
 धर्मार्थकामेषु समां प्रपेदे यथा तथैवावरलेषु वृत्तिम् ॥२१॥

फिर अग्निमें बैठ कर दिया ही ॥१५॥ मित्र-प्रेमी रामने पहले तो सुग्रीव आदि मित्रोंको एक प्रकारकी सामग्रीसे सजे मनमोमे ढहराया और तब वे अपने पिताजीके पूजाघरमें गए । वहाँ दशरथजीका मन्त्रालय चित्र देखकर रामकी आँसुमें आँसु आ गए ॥१६॥ कँकेयी वहाँ उवाच बँटी हुई थी । रामने हाथ जोड़कर कँकेयीसे कहा—'मा' तुम्हारे ही पुष्पके प्रतापसे हमारे पिताजी उध लपके नहीं छिपे जिससे स्वयं मिलती है । यदि तुम उमसे बरदान न माँगती तो उन्हीने जो तुम्हें बरदान देनेकी प्रतिज्ञा की थी वह भूटी ही जाती । यह मुनकर कँकेयीके मनमें जो आसमागलिन भरी हुई थी कि राम मेरे लिये न जाने क्या चीजते होंगे और मैं उन्हे कँके मूढ़ दिलाऊँगी, वह सब जाती रही ॥१६॥ वहाँसे आकर उन्हीने सुग्रीव और विभीषण आदि मित्रोंके भनी-भालि स्वागत सत्कार किया । उन लौकीको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि हम जो कुछ चाहते हैं वह भट बिना कहे ही मिल जाता है ॥१७॥ तब रामने उन अणस्य आदि ऋषियोंका उत्कार किया जो उन्हे धर्माई देने आये थे । फिर उन ऋषियोंसे उन्हीने अपने शत्रु रावणके जन्मसे मृत्यु तकका वह धृतांत सुना जो उन्हीका गौरव बढ़ाने वाला था ॥१८॥ ऋषियोंके चले जाने पर उन राक्षसों और दानर-रोनापतिमोंकी विदा किया जो मयोध्यामें इतने आनन्दसे रहे कि उन्हे वही न ज्ञात हो पाया कि आधा मरीना कब बौत गया । पहले समय सीताजीने स्वयं अपने हाथोंसे उनकी पूजा की ॥१९॥ तब रामने उस स्वर्गके पूजके समान पुष्पविधानको भी कुबेरके पास जानेकी आज्ञा दे दी जो सदा इच्छा करते ही उनकी सेवाके लिये आ जाता था और जिसे उन्हीने रावणके प्राणके साथ-साथ उससे छीन लिया था ॥२०॥ इस प्रकार पिताकी आज्ञासे बनवासकी अवधि बितारकर रामने अपने पिताका राज्य फिरसे पाया । जँता वे धर्म, धर्म और कामके साथ समान व्यवहार करते थे उसी प्रकार वे अपने भाइयोंके साथ भी समान प्रेमका व्यवहार करते ॥२१॥ जैसे स्वामिकातिक्रम्य

सर्वास्तु मातृष्वपि वत्सलत्वात्स निर्विशेषप्रतिपत्तिरासीत् ।  
 पटाननापीतपयोधरासु नेता चमूनामिव कृत्तिकासु ॥२२॥  
 तेनार्थवाँल्लोमपराङ्मुखेन तेन ध्वता विघ्नमयं क्रियावान् ।  
 तेनास लोकः पितृमान्बिनेत्रा तेनैव शोकापनुदेन पुत्री ॥२३॥  
 स पौरकार्याणि समीक्ष्य काले रेमे विदेहाधिपतेर्दुहित्वा ।  
 उपस्थितश्चारु वपुस्तदीयं कृत्योपभोगोत्सुकयेव लक्ष्म्या ॥२४॥  
 तयोर्यथाप्राथितमिन्द्रियार्थानासेदुपोः सन्नसु चित्रवत्सु ।  
 प्राप्तानि दुःखान्यपि दण्डकेषु संचिन्त्यमानानि सुखान्यभूवन् ॥२५॥  
 अथाधिकस्निग्धविलोचनेन मुखेन सीता शरपाण्डुरेण ।  
 श्रानन्दयित्री परिणेतुरासीद्दिनचरव्यञ्जितदोहदेन ॥२६॥  
 तामङ्कमारोप्य कृशाङ्गपिं वर्यान्तराक्रान्तपयोधराग्राम् ।  
 विलज्जमानां रहसि प्रतीतः पप्रच्छ रामां रमखोऽभिलापम् ॥२७॥  
 सा दष्टनीवारवलीनि हिंस्रैः संश्रद्धवैखानसकन्यकानि ।  
 ह्येष भूयः कुशवन्ति गन्तुं मागीरयीतीरतपोवनानि ॥२८॥  
 तस्यै प्रतिश्रुत्य रघुप्रवीरस्तदीप्सितं पार्ष्वचरानुयातः ।  
 आलोकयिष्यन्मुदितामयोध्यां प्रासादमभ्रं लिहमारुरोह ॥२९॥

धरने छ मुलैति छमो वृत्तिवाचीना स्तन पीकर समान रूपसे प्रेम दिखलते थे, बँसे ही रामचन्द्रजी भी सभी मातामोको बराबर प्यार करते थे ॥२२॥ वे नितोष थे इसीलिए उन्हीने प्रजापर कोई कर नहीं लगाया । जब यह हुआ कि बाँसे ही दिनेमि प्रजा पनी हो गई । वे नहीं भी बिम्ब माने ही नहीं देते थे, इसलिये सब लोग प्रगल्भतासे यज्ञ भादि क्रियाएँ करने लगे । वे सबको ठीक मांगपर पताते थे इसलिये सब उन्हें पिताके समान मानते थे और बिपत्ति पडनेपर वे सबकी सहायता करते थे इसलिये वे प्रजाके पुत्र भी थे ॥२३॥ वे ठीक समझपर प्रजाका नाम देल-मालबर सीताजीके साथ रमण भी करते थे । ऐसा जान पडता था मानो राजस्यलक्ष्मीने ही रामके साथ रमण करनेकी इच्छासे सीताका मुँदर रूप धर लिया हो ॥२४॥ वे दोनों उस भवनेमे इच्छागुस्वार बिलान करते थे, बिसमं बलबासने समयके चित्र टेंगे हुए थे । उन चित्रोंको देखकर बनबासने दुःखोका स्मरण करने भी उन्हें सुख ही 'भितता था ॥२५॥ पीरे पीरे सीताजीने नैनाँकी गोमा बटने लगी पीर उनका मुख पने सरपतके समान पीला पटने लगा । इन बर्षेने लक्षणोको देखकर राम बडे प्रगल्भ हुए ॥२६॥ जब उन्हें पक्का विश्वास हो गया कि सीताजी बसिगी हैं तब वे दुपत्ती तथा बाली दुष्टोंके सजोबालो सबीसी सीताजीको एवान्तरमे योदमे बँडापर पूछन लगे—'वताप्रो, तुम्हें क्या-क्या चाहिए' ॥२७॥ सीताजी बोलीं—'मैं यज्ञाजीके तटके उन उपवनोँ को देखना चाहती हूँ जहाँने हिंस्र वन्तु माँग व खाकर नीवार ही खाने हैं, जहाँ मेरी सखियाँ उपस्वियोकी बन्याएँ रहती हैं पीर जहाँ मुजगी भोगलियाँ पाये पीर गयी हैं ॥२८॥ रामचन्द्रजीने कहा—

ऋद्धापणं राजपथं स पश्यन्निगाह्यमानां सरयुं च नौभिः ।  
 विलासिभिश्चाधुपितानि पौरैः पुरोपकण्ठोपवनानि रेमे ॥३०॥  
 स किञ्चदन्तीं वदतां पुरोगः स्वट्टचमुदिरय विशुद्धवृत्तः ।  
 सर्पाधिराजोरुभ्रुलोऽपसर्पं पप्रच्छ भद्रं विजितारिभद्रः ॥३१॥  
 निर्वन्धपृष्टः स जगाद सर्वं स्तुवन्ति पौरारचरितं त्वदीयम् ।  
 अन्यत्र रघोभवनोपितायाः परिग्रहान्मानवदेव देव्याः ॥३२॥  
 क्लृप्तनिन्दागुरुणा किलैवमभ्याहृतं कीर्तिविपर्ययेषु  
 अयोधनेनाप इवभातप्तं वैदेहिबन्धोर्हृदयं विदग्धे ॥३३॥  
 किमात्मनिर्वादकस्यामुपेक्षे ज्ञायामदोषामुक्त संत्यजामि ।  
 इत्येकपदाश्रयविक्रान्त्वादासीत्स दोलाचलच्चिचवृत्तिः ॥३४॥  
 निश्चित्य चानन्यनिष्पत्ति-कार्यं त्यागेन पत्न्याः परिमार्ष्टुमैच्छद् ।  
 अपिस्वदेहात्किमुतेन्द्रियार्थाधिशोधनानां हि यशो गरीयः ॥३५॥  
 स संनिपात्यावरजान्हतौजास्तद्विक्रियादर्शनलुप्तदर्पान् ।  
 कौलीनमात्माश्रयमाचचक्षे तेभ्यः पुनरचेदमुवाच वाक्यम् ॥३६॥

'मच्छी याग है । इन मुन्हे उस तपोवनमे अग्रजय भेजेगे ।' बहसि उठकर वे अपने तपवनेके साथ  
 मुन्हेर अयोध्याकी छटा निहारनेके लिये आनासके बावें करनेवाले अपने जैसे राजभवन-  
 की छतपर जा बटे ॥२८॥ बहसि उठने देखा कि राजभाषंरी दुबानें पनपान्यके मती हुई हैं,  
 सरयूमे नावें चल रही हैं और अयोध्याके उद्यानोव विलासों पुरवाओ प्रसन्न होकर निताम कर रहे  
 हैं ॥३०॥ नगरीकी यह घोमा देखकर मुन्हेर बोलनेवाले, सदापारी और योगवापके समान बड़ी-  
 बड़ी थाही और जांभीवाले जानुविजयी रामने अपने भद्र नामके दूतके पूछा—'बहो भद्र ! हमारे विषय-  
 मे प्रभा क्या कहती है' ॥३१॥ पहले तो भद्र चुप रहा पर जब राम बार-बार उसने पूछने लगे  
 तब वह बोला—'हे नरसिंह ! जनता आषकी सब बातोंकी प्रशंसा करती है, किन्तु आपने राधाके  
 परमे रहनेवाली देवी सीताको फिरके ग्रहण कर लिया है, उसे भोग चण्ड नहीं समझते ॥२९॥  
 अपनी पत्नीपर लगाए हुए इस भीषण बलशुको मुनकर सीतापति रामरा हृदय बंधे ही पट क्या जैसे  
 पनरी चोटते लपाया हुआ सोहा पट जाता है ॥३३॥ वे मनमें सोचने लगे कि सब ही ही उगाप  
 है । या तो मैं इस बातकी अज्ञानी ही कर दूँ और टाक जाऊँ या फिर निर्दोष परतीको सदाके लिये  
 छोड़ दूँ । उस समय उनका चित्त हिंदोला बना हुआ था वे निरचम ही नहीं कर पा रहे थे कि इन  
 दोनोंमें क्या करना चाहिए क्या नहीं ॥३५॥ पर उस बलशुकी मिटावेका कोई दूतका कार्य नहीं  
 था । इसलिये उन्होंने निश्चय कर लिया कि सीताकी त्याग कर ही यह बलक मिटाना चाहिए क्यों  
 कि पगदिवसोंको अपना यज्ञ करने लगेरहे भी अधिक त्याग होता है फिर भी आरि भोगकी  
 बस्तुको तो तो बात ही क्या ॥३५॥ उदात्त बूढ़के रामने आशुको मुताप गो वे भी उनकी

राजपर्विवशस्य रविप्रसूतेरुपस्थितः पश्यत कीदृशोऽयम् ।  
 मत्तः सदाचारशुचैः कलङ्कः पयोदचातादिव दर्पणस्य ॥३७॥  
 पौरैषु सोऽहं बहुलीभवन्तमपां तरङ्गेष्विव तैलविन्दुम् ।  
 सोढुं न तत्पूर्वमवर्णमीशे आलानिकस्याण्डमिव द्विषेन्द्रः ॥३८॥  
 तस्यापनोदाय फलप्रवृत्तागुपस्थितायामपि निर्व्यपेवः ।  
 त्यक्ष्यामि वैदेहसुतां पुरस्तात्समुद्रनेमिं पितुराज्ञयेव ॥३९॥  
 आद्यैमि चैनामनयेति किंतु लोकापवादो बलान्मतो मे ।  
 छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः ॥४०॥  
 रक्षोऽधान्तो न च मे प्रयासो व्यर्थः सर्वैरप्रतिमोचनाय ।  
 अमर्षणः शोषितकाङ्क्षया किं पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः ॥४१॥  
 तदेष सर्गः करुणार्द्रचित्तैर्न मे भगद्भिः प्रतिषेधनीयः ।  
 यद्यर्थिता निर्वृत्तवाच्यशल्यान्प्राणान्मया धारयितुं चिरं वः ॥४२॥  
 इत्युक्तवन्तं जनकात्मजायां नितान्तरुक्षाभिनिवेशमीशम् ।  
 न कश्चन भ्रातृषु तेषु शक्तो निषेदुमासीदनुमोदि वार्तुं ॥४३॥

इसा देहाकर सन रह गए। अपने भाइयोंसे राम बोले—॥३६॥ 'यद्यपि मैं सदाचारी होनेके कारण पवित्र हूँ फिर भी जैसे भाप बहनेसे स्वच्छ वस्त्र भी धुँबना हो जाता है, वैसे ही देतो, मूर्खवर्गी राजपर्विवि बुलम मेरे कारण फैला बसकू सा रहा है ॥३७॥ जैसे पानीकी लहरोंके ऊपर तैलकी बूँद फैल जाती है वैसे ही इस समय घर-घर मेरी निन्दा फैल रही है। इस-तिमे जैसे हमारी अपने अमानते सीक कर उठे उताड़नेकी चेष्टा करता है वैसे ही मैं भी अपने इस बलकूको भय नहीं यह समता ॥३८॥ इस समय यद्यपि सीतानी पुत्र होनेवाला है तो भी अपने बलकूको मिटानेके निम्मे मैं सन मोह तोड़कर जमे वैसे ही छोड़ देना जैसे पितानी भाइयोंसे मैंने राज्य छोड़ दिया था ॥३९॥ मैं जानता हूँ कि यह निर्दोष है पर बदनामी सत्यमे भी अधिक बल-वती होती है। देखो ! निर्मल पत्र बिम्बके ऊपर पड़ी हुई पृथ्वीकी क्षायारी लोग खन्नमाना बलकू करते हैं धीर झूठ होनेपर भी सारा समार इसे ही ठीक मानता है ॥४०॥ तुम यह कहोगे कि यदि ऐसा ही था तो राधासीको क्यों मारा। उमना उत्तर यह है कि सीतानी लुटानेके निम्मे मैं जो राधासीको मारा वह मेरा प्रयत्न सीतानी मित्राल देनेसे बेकार नहीं बड़ा जायगा क्योंकि यह तो मैंने अपनी खींचे हृदयका उन राधासीसे बदला लिया है। क्योंकि जब कोई सच पौरने नीचे दस जाता है तब यह रक्तो लोगन खाँचे ही डँगना है, वह तो बदला देनेके निम्मे ही देखना है ॥४१॥ इसनिमे यदि तुम लोग इस बलकूके बाणों से हृदयसे निरासकर मुझे जीवित रक्षना चाहते हो तो केवल सीतानी दगापर दस करने उमना परा नेबर तुम मेरे इस निश्चयका विरोध मत करो ॥४२॥ जब भाइयोंसे देगा कि सबा हानी निरुत्तर करता चाहते ? तब भाइयोंमें न तो कोई उमना

स लक्ष्मणं लक्ष्मणपूर्वजन्मा विलोक्य लोकजयगीतकीर्तिः ।  
 सौम्येति चामाप्य ययार्थभाषी स्थितं निदेशे पृथगादिदेश ॥४४॥  
 प्रजावती दोहदशमिनी ते तपोविनेषु स्पृहयालुरेव ।  
 स त्वं रथीत द्व्यपदेशनेयां प्रापय्य वास्त्रीक्षिपदं त्यर्जनाम् ॥४५॥  
 स शुश्रुवन्मातङ्गि भार्गवेण पितृनियोगात्प्रहृतं द्विपद्वत् ।  
 प्रस्यग्रहीदग्रजशामनं तदाज्ञा गुरूणां शविचारणीया ॥४६॥  
 अध्यानुकूलश्रवणप्रतीतामत्रस्नुभिर्धुक्तधुरं तुरंगैः ।  
 रथं सुमन्त्रप्रतिपन्नरश्मिमारोप्य वैदेहसुतां प्रतस्थे ॥४७॥  
 सा नीयमाना रुचिरान्प्रदेशान्प्रियं करो मे प्रिय इत्यनन्दत् ।  
 नासुद्ध कल्पद्रुमतां विहाय जातं तमात्मन्यमिपत्रवृत्तम् ॥४८॥  
 जुगूह तस्याः पथिलक्ष्मणो यत्सच्येतरंण स्फुरता तदच्छा ।  
 आरुपातमस्यं गुरु भावि दुःखमत्यन्तलुप्तप्रियदर्शनेन ॥४९॥  
 सा दुर्निमित्तोपगताद्विपादात्मयः परिम्लानमुद्यारविन्दा ।  
 राक्षः शिषं साधरजस्य भूयादित्याशशंसे करणैरवातैः ॥५०॥

यमर्षन ही कर तारा, न विरोध ही ॥४३॥ तीनों जोरोंसे प्रसिद्ध यमस्वी, अपनी बातने परने रागने जब देखा कि लक्ष्मण उनको भाजा माननेवां उत्तर है तब वे लक्ष्मणसे बहने लगे—'लक्ष्मण ! तुम यज्ञे यन्ते हो ।' और यह कहकर उन्हें उनका-तम से गए और बोले—'॥४४॥ 'सुन्दरी गभिली भाभी तपोवन केतना गाहती ही है इसलिये तुम उन्हें इनी बहनेसे रथपर सेनाकर वास्त्रीक्षिपदोंके आश्रय-तप पड़वानर छोड़ जाओ' ॥४५॥ लक्ष्मणने मुन ही खराब वा कि पिताको भाजा पाकर परसुतापत्रीने अपनी माननेवां यंत्रे ही निर्दयताके साथ मार डारा जैसे कोई अपने यन्त्रको मारे । इसलिये उन्होंने पिताके लक्ष्मण रामकी भाजा सिद्ध पड़ा थी, योनि उठोने आश्रय मीन-नेत्र निरालना डीर नहीं है ॥४६॥ सीताजी यह सुनाकर बड़ी प्रसन्न हुई कि लक्ष्मण हमें तपोवन लिये ले जा रहे हैं । लक्ष्मणजी उन्हें लक्ष्मण पड़ाकर ले यथ जिन स्वयं गुप्तन ही रहे थे और जिसके पीछे ऐसे लगे हुए थे कि रथन चले समस्त गभिली सीताका लिये भी रूपक गरी लयने पारी थी ॥४७॥ मन्नाहर प्रदोषसे रथपर जाती हुई सीताको यह सोचकर बड़ी प्रसन्न हुई कि मेरे आश्रयित तदा मेरे मनरी ही बात करना है । वे क्या जानती थी कि इस समय वे मेरे जिन मनोरथ पूरा करनेवाले बन्धुत्वसे बहने उस गभिलयने गुप्तने समान पट्टापर ही गए हैं जिसके पने लक्ष्मणसे समान फेंगे हो ॥४८॥ लक्ष्मणने सीताको मार्गसे वृद्ध भी गरी जनाया कि लक्ष्मण यज्ञ निरति जानेरानी है पर सीताजीके दाहिने नेत्रने पड़कर पार्श्व जानेराने दुखारी सुवप दे ही लो लो ॥४९॥ यह समझने होते ही उनका मुँह उदास हो गया और वे मन ही मन मनाने लगी कि बादलोंके साथ रात्रा सुगने रहे, उभरने कोई भाव न लगे ॥५०॥ यमर्षन यज्ञको पड़े । उनमें जो लक्ष्मण उठ रहे ली वे बड़े भारी

गुरोर्नियोगाद्घनितान्नान्ते सार्धं सुमित्रातनयो विहास्यन् ।  
 अवार्य तेषोत्थितवीचिहस्तैर्जहोर्दुहित्रा स्थितया पुरस्तात् ॥५१॥  
 रथात्स यन्त्रा निगृहीतवाहाचां भ्रातृजायां पुलिनेऽवतार्य ।  
 गङ्गा निपादाहृतनौविशेषस्तत्तार संघामिव सत्यसंधः ॥५२॥  
 अथ व्यवस्थापितवाक्कथंचित्सौमित्रिरन्तर्गतवाष्पकण्ठः ।  
 औत्पातिको मेघ इचारमवर्ष महीपतेः शासनमुज्ज्वगार ॥५३॥  
 ततोऽभिपङ्गानिलविप्रविद्धा -प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना ।  
 स्मृतिंलाभप्रकृतिं धरित्रीं क्षतेव सीता सहसा जगाम ॥५४॥  
 इच्छाकुर्वशप्रभवः कथं त्वां त्यजेदकस्मात्पतिरार्यवृत्तः ।  
 इति क्षितिः संशयितेव तस्यै ददौ प्रवेशं जननी न तावत् ॥५५॥  
 सा लुप्तसंज्ञा न विचेद दुःखं प्रत्यागतासुः समत्प्यतान्तः ।  
 तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धो मोहादभूत्कण्ठतरः प्रबोधः ॥५६॥  
 न चापदद्भर्तुरवर्षमार्या निराकारिष्णोर्दृजिनाद्वेऽपि ।  
 आत्मानमेव स्थिरदुःखभाजं पुनःपुनर्दुष्कृतिनं निनिन्द ॥५७॥  
 आश्वास्य रामावरजः सती तामाख्यातवाल्मीकिनिकेतमार्गः ।  
 निघ्नस्य मे मर्तुं निदेशरौच्यं देवि चमस्वेति बभूव नम्रः ॥५८॥

भाग्ये पतिव्रता सीताको बनमे छोड़नेके लिये मे जाते हुए लक्ष्मणसे मानो हाथ हिलाकर कह रही थी कि ऐसा न करो, ऐसा न करो ॥५१॥ गङ्गाजीके तटपर पहुँचकर सारथीने रात खीच ली । सच्ची प्रतिज्ञा करनेवाले लक्ष्मणने सीताजीको देखीपर उतार लिया और केवटने पो नाव लाकर दी उसपर बैठकर सीताजीके साथ गङ्गाजीसे भी पार हो गए और अपनी उच प्रतिज्ञासे भी पार हो गए जो उन्होंने सीताको गङ्गापार छोड़नेके लिये रामसे की थी ॥५२॥ पार पहुँचकर लक्ष्मणने मांसू रोककर, दँधे हुए गलेसे सीताजीको राजाकी आज्ञा इस प्रकार सुनाई जैसे कोई भयङ्कर बादल झोलि बरसा रहा हो ॥५३॥ जैसे जू लगनेके अताके फूल ऋट जाते है और यह सूखकर पृथ्वीपर गिर पड़ती है वैसे ही दम अग्रमानजनक बातको सुनकर सीताके आभूषण भी गिर पड़े और वे भी अपनी मां पृथ्वीकी गोदमे गिर पड़ी ॥५४॥ उस समय पृथ्वीने सीताजीको मानो दुविधाके कारण अपनी गोदमे नहीं समा लिया कि इक्ष्वापु-वंशी उवाचारी पति इस प्रकार सीताजीको अज्ञानक नयाँ छोट देगे ॥५५॥ मूर्छा या जानसे उन्हे उच समय तो दुख नहीं हुआ पर जब वे मूर्छा जगी तब उनके हृदयमे बड़ी व्यथा हुई । लक्ष्मणने प्रयत्न नरके जो उनकी मूर्छा दूर की यह बात उन्हे मूर्छासे भी अधिक कष्ट देनेवाली जान पड़ी ॥५६॥ वे इतनी साध्वी थी कि निरपराध अपनीको निकालनेवाले अपने पतिको उन्होने कुछ भी बुरा-भसा नहीं कहा । बरन् बार-बार वे अपने भाग्यको ही कोसने लगी ॥५७॥ लक्ष्मणने उन्हे बहुत समझाया-बुझाया और वाल्मीकिना प्राथम दिशाकर कहा—देवि ! मैं पराधीन हूँ । इसलिये स्वामीकी आज्ञासे मैंने आपके साथ जो बडोर व्यवहार

सीता तमुत्थाप्य जगाद वाक्यं प्रीतास्मि ते सौम्य चिराय जीव ।  
 विडौजसा विष्णुरिवाग्रजेन भ्रात्रा यदित्थ परवानसि त्वम् ॥५६॥  
 श्वश्रूजनं सर्वमनुक्रमेण विज्ञापय प्रापित्तमत्प्रशामः ।  
 प्रजानिपेकं मयि वर्तमानं ह्यनोरनुध्यायत चेतसेति ॥६०॥  
 वाच्यस्त्वया मदचनान्त्म राजा बद्धौ विशुद्धामपि यत्समक्षम् ।  
 मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य ॥६१॥  
 कल्याणबुद्धेरथवा त्वार्यं न कामचारो मयि शङ्कनीयः ।  
 ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जधुरप्रसङ्गः ॥६२॥  
 उपस्थितां पृथमपास्य लक्ष्मीं वनं मया सार्धमसि प्रपन्नः ।  
 तदास्पदं प्राप्य तयातिरोपात्सोढास्मि न त्वद्भवने वसन्ती ॥६३॥  
 निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां तपस्विनीनां भवतः प्रसादात् ।  
 भूत्वा शरण्या शरणार्थमन्य कथं प्रपत्स्ये त्वयि दीप्यमाने ॥६४॥  
 किंवा तात्पन्तवियोगमोवे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन् ।  
 स्याद्द्रक्षणीयं यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः ॥६५॥  
 साहं तपः सूर्यनिघिष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेथरितुं यतिप्ये ।  
 भूयो यथा मे जनान्तरेऽपि त्यमेव भर्ता न च विप्रयोगः ॥६६॥

किया है उसे आप जमा कीजिए ॥५६॥ पीताजी उठी घोर लक्ष्मणसे बोली । मैं तुमपर प्रपन्न हूँ । तुम बहुत दिन तक जियो क्योकि जैसे इन्द्रके छोटे भाई विष्णु सदा भगने बड़े भाईकी आज्ञा मानते हैं वैसे ही तुम भी अपने बड़े भाईकी आज्ञा माननेवाले हो ॥५६॥ तुम जाकर तमी खासोसे मेरा प्रशाम कहकर निवेदन करना कि मेरे गर्भमें आपने पुत्रवा वेज है । इसलिये आप लोग हृदयसे उसकी कुशल मनाते रहिएगा ॥६०॥ श्रीर राजासे जाकर तुम मेरी ओरसे कहकर कि आपने अपने सामने ही मुझे मग्निमें छुड़ पाया था इस समय भपजस्ये इरते जो आपने मुझे छोड़ दिया है वह क्या उस प्रसिद्ध कुलकी धोभा देता है जिससे आपने जन्म लिया है ॥६१॥ पर नहीं, आप ही लक्ष्मी मलाई करनेवाले हैं आप अपने मनसे हमारे साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते । यह सब मेरे पूर्व जन्मके पापोंवा ही पता है ॥६२॥ जान पड़ता है कि कुछ समय पहले आप जिस राजसदानी का तिरकार करते मेरे साथ वनमें चले गए थे वह राज्यतदी मुझसे शष्ट हो गई थीर वह आपके घरमें मेरा प्रतिष्ठा-पूर्वक रहना देता नहीं सकी ॥६३॥ पिछली बार आपकी वृषासे मैंने वनवासके समय बहुतसी ऐसी तपस्विनियोंको अपने यहाँ आश्रय दिया था जिनके पतियोंकी राससोनि सता रहता था । अब आप ही बताइये कि आपने रहते हुए मैं जिस मुँहसे जह्ये तपस्विनियोंकी आश्रिता होकर रह्यो ॥६४॥ यदि मेरे गर्भमें माया हुआ आपका वह तेज वापा न देता जिसकी रक्षा करना आवश्यक है, तो मैं आपसे उदाके लिये बिगुडे हुए अपने प्राण भी छोड़ देती ॥६५॥ पर तुम हो जानेपर मैं सूर्यमें दृष्टि बाँधकर



नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्न एव धर्मो मनुना प्रणीतः ।  
 निर्वासिताप्येवमतस्त्वयाहं तपस्विसामान्यमवेच्छीया ॥६७॥  
 तथेति तस्याः प्रतिगृह्य वाचं रामानुजे दृष्टियथं व्यतीते ।  
 सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभाराच्चक्रन्द विद्वा इरुरीव भूयः ॥६८॥  
 नृत्यं मयूराः कुसुमानि घृत्वा दर्मानुपाचान्विजहूर्द्धरिण्यः ।  
 तस्याः प्रपन्ने समदुःखमावमत्यन्तमार्गीद्भुदित वनेऽपि ॥६९॥  
 तामभ्यगच्छद्रुदितानुमारी कविः ह्यशेध्माहरणाय यातः ।  
 निपादविद्वाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य श्लोकः ॥७०॥  
 तमथु नैत्रायरखं प्रसृज्य सीता विलापाद्विगता ववन्दे ।  
 तस्यै मुनिर्दोहदल्लिङ्गदर्शी दाद्यान्सुपुत्राशिषमित्पुत्राच ॥७१॥  
 ज्ञाने विसृष्टां प्रखिद्यानतस्त्वां मिथ्यापवादबुभितेन भर्त्रा ।  
 तन्मा व्यधिष्टा विषयान्तरस्थं प्राप्तामि वैदेहि पितृनिर्केतम् ॥७२॥  
 उत्सातलोकत्रयकण्ठकेऽपि सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकल्पनेऽपि ।  
 त्वां प्रत्यकस्मात्कल्पप्रवृत्तावस्त्येव मनुर्भरताग्रजे मे ॥७३॥  
 तवोरुकीर्तिः श्वशुरः सखा मे सतां भवोच्छेदकरः पिता ते ।  
 धुरि स्थिता त्वं पतिदेवतानां किं तत्र येनामि समान्कम्प्या ॥७४॥

देवी तपस्या करुणो कि प्रपन्ने जन्ममे भी प्राप ही मेरे पति हो, पापसे मुझे छलना न होना पड़े ॥६९॥  
 मनुने कहा है—राजाप्रीका धर्म पलों और धारणकी रक्षा करना है इतकिये परते निकाल देने-  
 पर भी प्राप यह समझकर मेरे देख-भाल करते रहिएगा कि सीता भी प्रापकी प्रजा और  
 तपस्विनी है ॥६७॥ यह सुनकर सत्यमण बोले—'मैं सच कह दूँगा' । यह कहकर ज्योंही वे बहसि  
 चलकर प्रांसि भोजन हुए कि विपत्तिके भारसे व्यापुज होकर सीताजी, दरी हुई कुररीने समान हाड  
 मार-मारकर रोने लगी ॥६८॥ उनका रोना सुनकर गोरने नाचना बन्द कर दिया, वृत्त फूलके  
 पाँसू गिराने लगे और हरिश्चिमेनि मूँहमे भरी हुई घासका नीर गिरा दिया । सीताजीके दुःखसे दुखी  
 होकर साधु बगल रोने लगा ॥६९॥ जिन महाहृत्पालु बाल्मीकि ऋषिजा घोम व्यापके हापसे मारे  
 हुए क्रौंचको देखकर श्लोक बजकर निरन्तर पडा था वे उस समय कुछ उपपठने निकले थे । रोनेका  
 शब्द सुनकर वे सीताजीकी ओर आए । उन्हें देखकर सीताजीने भाँसू गोदकर पुन-पुन उन्हें प्रणाम  
 किया । ऋषिने गर्भके चिह्न देखकर उन्हें प्राणीर्वाद दिया कि तुम पुत्रवती हो । प्राणीर्वाद देकर  
 वे बोले—॥७१॥ 'देवी ! मेरे योग्यतसे जान लिया है कि तुम्हारे पतिने भूँडे भपजतसे बरकर तुम्हें  
 परते निकाल दिया है । देवी ! यहाँ भी तुम अपने पिताका ही घर समझे और शोक छोड दो ॥७२॥  
 यद्यपि राम तीनों नोगोवा कुछ दूर बरनेवाले हैं, अपनी प्रतिज्ञाने धर्म हैं और अपने मूँहसे अपनी  
 बजाई भी नहीं करते फिर भी तुम्हारे साथ जो उन्होंने यह भद्रा व्यवहार किया है इसे देखकर  
 मुझे उनपर बड़ा क्रोध था रहा है । तुम्हारे बाल्मीक भगुरजी मेरे मित्र थे और तुम्हारे पिता

तपस्विसंसर्गविनीतसत्त्वे तपोवने धीतमया वसास्मिन् ।  
 इतो भविष्यत्यनघप्रयत्नेरक्त्यसंस्कारमयो विधिस्ते ॥७५॥  
 अशून्यतीरां मुनिसंनिवेशैस्तमोपहर्त्र्यां तमसां वगाह्य ।  
 तत्सैकतोत्सङ्गबलिक्रियाभिः संपत्स्यते ते मनसः प्रसादः ॥७६॥  
 पुष्पं फलं चार्तवमाहरन्त्यो बीजं च बालेयमकृष्टरोहि ।  
 विनोदगिष्यन्ति नवामिषङ्गाभुदारवाचो मुनिकन्यकास्त्वाम् ॥७७॥  
 पयोघटैराश्रमबालानुद्धान्संवर्षयन्ती स्वबलात्तरूपैः ।  
 अशंसशयं प्राकृतनयोपपत्तेः स्तनंधयप्रीतिमवाप्स्यसि त्वम् ॥७८॥  
 अनुग्रहप्रत्यश्रिनन्दिनीं तां बाल्मीकिरादाय दयार्द्रचेताः ।  
 सायं मृगाध्यासितवेदिपार्ष्वं स्वमाश्रमं शान्तमृगं निनाय ॥७९॥  
 तामर्पयामास च शोकदीनां तदाश्रमप्रीतिषु तापसीषु ।  
 निर्विष्टसारां पितृभिर्हिमांशोरन्त्यां कृतां दर्श इवैपधीषु ॥८०॥  
 ता इद्गुदीस्नेहकृतप्रदीपमास्तीर्णमेध्याजिनतल्पमन्तः ।  
 तस्यै सपर्याप्तुपदं दिनान्ते निवासहेतोरुदञ्जं वितेहः ॥८१॥

जनकजी भी ज्ञानोपदेश देकर बहुतसे विद्वानोंको सत्कारके बंधनसे सुजाते रहते हैं, तुम स्वयं पतिव्रताधीने  
 सर्वश्रेष्ठ हो और फिर तुममें ऐसा योग ही बोन-सा है जो मैं तुम्हारे ऊपर कृपा न करूँ ॥७५॥  
 देखो, तपस्विनीने साथ रहते-रहते यहोंने सब जीब बड़े खोपे हो गए हैं । ये किसीसे कुछ कहते सुनते  
 नहीं । इसी आश्रममें तुम निर्भय होकर रहो । तुम्हारी पवित्र सतानके जातकर्म आदि सत्कार  
 मैं यहीं करूँगा ॥७६॥ राय मिटानेवाली जिस तपसाके निवारने तपस्वी लोग क्षया सन्ध्या पूजा  
 करते हैं उसमें स्नान करने तुम उसकी देतीपर देवताओंको बलि दिया करो, इससे तुम्हारा मन  
 प्रसन्न रहेगा ॥७६॥ यहाँ की मुनि कन्याएँ तुम्हें सब ऋतुभोगे उत्पन्न होनेवाले फूल-पत्त और  
 पूजाके योग्य अन्न लाकर रख दिया करेंगी और भीठी भीठी बात करके तुम्हारा मन भी बहलाया  
 करेंगी ॥७७॥ जो जलके घड़े तुमसे उठ सकें उन्हें लेकर तुम धार्यदके पीपानो प्रेमसे सीखा करो ।  
 इससे बड़ा भान यह होगा कि यथा होनेके पहले ही तुम यह सोच जाओगी कि बचोले कैसे प्रेम  
 करना चाहिए ॥७८॥ सीताजीने जननी कृपाने बहुत सहाय और दयालु बाल्मीनिके साथ उनके  
 आश्रममें चली गई । सीता ही जानेके कारण बहुतसे मृग यहाँ वेदीको घेरकर बंटे हुए थे और सिंह  
 आदि जन्तु भी पुपचाप आँख मूँदे बटे थे ॥७९॥ जैसे मृगावास्या जहाँ बूटियों और लता-वृक्षोंकी  
 पन्द्रमायी वह सारहीन सन्निभ बचा सौं देती है जिसवा भयूर पितर खीच लेते हैं, वैसे ही  
 ऋषिने भी धोके ब्याकुल सीताको आश्रमकी जन उपस्विनिनीने हाथ खोप दिया जो सीताजीके  
 यहाँ आ जानेसे बड़ी प्रसन्न हो गई थी ॥८०॥ पूजा ही शुकनेपर उन उपस्विनिनीने सीताके रहनेके  
 सिने एव पराकी कुटिया दे दी जिसमें हिमोठके तेलवा दीया जन रहा था और जिसमें नीने

तत्राभिपेक्षयता वसन्ती प्रयुक्तपूजा विधिनातिथिम्यः ।  
 वन्येन सा बल्कलिनीं शरीरं पत्युः प्रजासंततये वभार ॥८२॥  
 अपि प्रभुः सानुशयोऽधुना स्वात्किमुत्सुकः शकजितोऽपि हन्ता ।  
 शशंस सीतापरिदेवनान्तमनुष्ठितं शासनमग्रजाय ॥८३॥  
 वभूव रामः सहसा सत्राप्यस्तुपारवर्षां सहस्यचन्द्रः ।  
 कौलीनर्मतिेन गृहाभिरस्ता न तेन वैदेहमुता मनस्तः ॥८४॥  
 निगृह्य शोकं स्वयमेव धीमान्वर्णाथमावेवखजागरुकः ।  
 स भ्रातृसाधारणभोगमृद्धे राज्यं रजोरिक्तमनाः शशास ॥८५॥  
 तामेकभार्यां परिवादभीरोः सार्ध्वीमपि त्यक्तवतो नृपस्य ।  
 वच्चस्यमंघड्मुखं वसन्ती रंजे सपत्नीरहितैव लक्ष्मीः ॥८६॥  
 सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयमे यदन्यां  
 तस्या एव प्रतिहृतिसखी यत्कतूनाजहार ।  
 वृत्तान्तेन श्वण्यधिपयप्रापिषा तेन मर्तुः  
 सा दुर्वारं कथमपि परित्यागदुःखं विपेदे ॥८७॥  
 इति महाकविश्रीकालिदासकृती रघुवंशे महाबाह्ये  
 सीतापरिरयागे नाम चतुर्दशः सर्गः ॥

## पञ्चदशः सर्गः

कृतसीतापरित्यागः स रत्नाकरमेखलाम् ।  
 बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केरलाम् ॥१॥  
 लवणेन विलुप्तोज्यास्तामित्तेषु तमभ्ययुः ।  
 मृनयो यमुनामाजः शरण्यां शरस्थार्थिनः ॥२॥  
 अवेक्ष्य रामं ते तस्मिन् प्रजहूः स्वतेजसा ।  
 श्लाघामावे हि शापास्त्राः कुर्वन्ति तपसो व्ययम् ॥३॥  
 प्रतिशुभाव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम् ।  
 धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः ॥४॥  
 ते रामाय षोडशोपायमाचर्युर्विदुषद्विषः ।  
 दुर्जयो लवणः शूली विशूलः प्रार्थयतामिति ॥५॥  
 आदिदेशाथ शत्रुघ्नं तेषां क्षेमाय राघवः ।  
 करिष्यन्निव नामास्य वधार्थमरिनिग्रहात् ॥६॥  
 यः कश्चन रघूणां हि परमेकः परंतपः ।  
 अपवाद इवोत्सर्गं व्यापतयितुमीश्वरः ॥७॥

### पञ्चहर्षा सर्ग

सीताजीको छोट देखेपर राजा रामचन्द्रजीने केवल समुद्रेके घिरी हुई पृथ्वीका ही भोग किया  
 किसी दूसरी स्त्रीसे विवाह नहीं किया ॥१॥ इसी बीच एक दिन यमुना-तटपर रहनेवाले कुछ  
 तपस्वी, शरणाग्रनकरके रामके पास सरल मीनके प्राण, क्योंकि लवणानुर लवणके उपकरणके कारण  
 उनकी मत्त प्रादि क्रियाएँ बन्द हो गई थी ॥२॥ वे तपस्वी यदि चाहते तो अपने तेजसेही लवणानुरकी  
 मत्त कर सकते किन्तु उन्होने ऐसा करना ठीक नहीं समझा क्योंकि जिन सोमोंने दाप देकर मत्त  
 करनेकी शक्ति होती है वे तपस्यासे बढोरे हुए तेजकी ऐसे कामसे लभी लगाते है, जब कोई दूसरा  
 उनका रसक न हो ॥३॥ रामने उनके बिध्न दूर करनेकी प्रतिज्ञा की क्योंकि धर्मनो रक्षाके लिये  
 ही तो वे सकारने अग्रहार लेते हैं ॥४॥ जब मुनियोंने रामको बताया कि जबतक लवणानुरके  
 हाथमे भाला घुंटा लवण लवण हारना बठिन है इसलिये उसपर ऐसे समय प्राक्रमण करना  
 चाहिए जब उसके हाथमे भाला न हो ॥५॥ रामने उन मुनियोंकी रक्षाकर भार शत्रुघ्नको सीपा  
 मानो शत्रुघ्नके हाथो शत्रुका संहार करकर उनका शत्रुघ्न नाम लखा कर देना चाहते हो ॥६॥  
 जैसे व्याकरणमें कोई अपवादवाला शब्द व्यापन नियमवाले मुखको भी छलट देता है वैसे ही रघुके  
 वधना बन्धा-बन्धा इतना लवणाग्र होता था कि वह शत्रुको पछाद सन्तता था ॥७॥ जब शत्रुघ्न

अग्रजेन प्रयुक्ताशीस्ततो दाशरथी रथी ।  
 ययौ वनस्वल्हीः पश्यन्पुष्पिताः सुरभीरभीः ॥८॥  
 रामादेशादनुगता सेना तस्यार्थसिद्धये ।  
 पश्चादप्ययनार्थस्य घातोरधिरिचामवत् ॥९॥  
 आदिष्टवर्त्मा मुनिभिः स गच्छेत्तपतां वरः ।  
 विरराज रथप्रष्ठैर्वालिखिल्यैस्त्रिंशुमान् ॥१०॥  
 तस्य मार्गविशादेका बभूव वसतिर्यतः ।  
 रथस्वनोत्कण्ठमृगे वाल्मीकीये तपोवने ॥११॥  
 तमृषिः पूजयामास कुमारं बलान्तवाहनम् ।  
 तपःप्रभासिद्धाभिर्विशेषप्रतिपत्तिभिः ॥१२॥  
 तस्यामेवास्य यामिन्यामन्तर्त्नी प्रलाभती ।  
 सुतावसूत मंपन्नौ कोशदण्डाविव चितिः ॥१३॥  
 संतानश्रवणद्भ्रातुः सौमित्रिः सौमनस्यवान् ।  
 प्राङ्गलिर्धुनिमामन्थ्य प्रातर्युक्तरथो ययौ ॥१४॥  
 स च प्राप मधूपध्नं कुम्भीनस्याथ कुच्चिवः ।  
 घनात्करमिवादाय सस्वराशिसुपस्थितः ॥१५॥

निदर होकर रथपर चढ़े तब रामने उन्हें आशीर्वाद दिया और वे सुगन्धित यनोंकी छटा  
 निहाले हुए चल पड़े ॥८॥ रामकी आज्ञासे शत्रुघ्नके साथ जो सेना गई वह वैसे ही व्यर्थ थी जैसे  
 सम्ययन शब्दमें 'इद्' शत्रुके साथ तथा हुआ 'प्रधि' उपसर्ग । [यद्यपि 'इद्' का ही अर्थ सम्ययन  
 होता है, उसमें अधिसे कोई विशेषता नहीं रहती । ] इसी प्रकार सख्याश्रुको शत्रुघ्न प्रकृत जीत  
 सन्ते थे, पाड़े ऐसा जाती या न जाती ॥९॥ जैसे रथपर चढ़े हुए सूर्यको बालिलिय नामके  
 ऋषि लोग मार्ग दिखाते चलते हैं वैसे ही रथपर चढ़े हुए शत्रुघ्नको भी मुनि लोग आगे-आगे मार्ग  
 दिखाते चले ॥१०॥ मार्गमें जाते हुए उन्होंने पहली रात को वाल्मीकिजीके उस आश्रममें बिताई  
 जहाँके मृग उनके रथके शब्दको सुनकर चढ़े चाबड़े उधर देखन लगे थे ॥११॥ शत्रुघ्नजीके घोड़े  
 भी मक मए के इसलिये रुचना आवश्यक हो गया । तब वाल्मीकिजीके प्रपती तपस्याके प्रभावसे  
 प्रातिप्यकी सब सामग्री जुटाकर शत्रुघ्नका बड़ा सत्कार किया ॥१२॥ उसी रातको इनको गंगिणी  
 माभी सीताने दो तेजस्वी पुत्रोंको उसी प्रकार जन्म दिया जैसे पूथ्वी अपने राजाके लिये धन और  
 संन्य उत्पन्न करती है ॥१३॥ माईने पुत्र होनेकी बात सुनकर शत्रुघ्नका जी सित गया और  
 अगले दिन उसके ही के हाथ जोड़कर मुनिसे आज्ञा लेकर रथपर चढ़कर आगे बढ़े ॥१४॥ जिस  
 समय वे मधूपध्न नगरमें पहुँचे, उसी समय रावणकी गहन कृम्भीनसेना बेटा मन्मथामुन बहुरथे

धूमधूमो वसागन्धी ज्वालावधु शिरोरुहः ।  
 क्रव्याद्वृणपरीवारश्चिताशिरिव अंगमः ॥१६॥  
 अथशूल तमासाद्य लवणं लक्ष्मणाजुजः ।  
 रुरोध ममुप्रीनो हि जपो रन्ध्रप्रहारिणाम् ॥१७॥  
 नातिपर्याप्तमालक्ष्य मत्कुचेरथ भोजनम् ।  
 दिष्टया त्वमसि मे घात्रा भीतेनेवोपपादितः ॥१८॥  
 इति संतर्ज्यं शत्रुघ्नं राक्षसस्तज्जिवांसया ।  
 प्रांशुमुत्पाटयामाम मुस्तास्तभ्यमिष द्रुमम् ॥१९॥  
 सौमित्रेर्निशितैर्वाशैरन्तरा शकलीकृतः ।  
 गात्रं पुष्परजः प्राप न शाखी नैर्ऋतेरितः ॥२०॥  
 विनाशात्तस्य वृक्षस्य रक्षस्तस्मै महोपलम् ।  
 प्रजिषाय कृतान्तस्य मृष्टिं पृथगिव स्थितम् ॥२१॥  
 पेन्द्रमस्रमुपादाय शत्रुघ्नेन स ताडितः ।  
 सिकतात्वादपि परां प्रपेदे परमाणुताम् ॥२२॥

पशुमोको गारुडर बनसे इस प्रकार लौटा चला था रहा था मानो बनने उठे यह सब भेड़मे दिया  
 हो ॥१६॥ उसका रग घुँरे जैसा काला था, उसकी देहसे चर्बीकी गन्ध निकल रही थी, मापकी  
 लपटोंने समान उसने विजरे हुए बग के घोर गाँस लानेवाले राक्षस उसके चारों घोर बन रहे थे ।  
 इस प्रकार यह उस चिताकी अग्निने समान लग रहा था वो घुँरेसे धुँपती ही, जिससे चर्बीकी  
 गन्ध निकलती हो, जिससे लपटें निकल रही हो घोर जिसके आसपास कुत्ते घोर पिढे आदि नईस  
 भक्षी पशु-पक्षी पुग रहे हो ॥१६॥ शत्रुघ्नेने देखा कि यह प्रवसर ठीक है क्योंकि इसके हाथने  
 भाता नहीं है । मस्र ऋष्ट उन्होंने सक्तासुरकी घेर लिया क्योंकि जो शत्रुके अतिहीन होनेपर प्रहार  
 करता है वह अवश्य विजयी होता है ॥१७॥ शत्रुघ्नको देखकर सक्तासुर गरब उठा—साज  
 मेरे भोजनकी सामग्री कम थी, यह देखकर सक्ताने डरकर मेरा भोजन पूरा करनेके लिये तुम्हे यहाँ  
 भेज दिया है ॥१८॥ यह कहकर उसने शत्रुघ्नकी आरनेके लिये एक बस्य भारी पेठ एते धीरेसे  
 उखाड़ लिया जैसे भीचा उखाड़ खिया जाता है ॥१९॥ सक्तासुरने ज्योंही वह वृक्ष शत्रुघ्नपर  
 फेंका त्योंही उन्होंने उसे बीचमे ही टुकड़े-टुकड़े कर डाला । इस प्रकार वह वृक्ष तो उनके शरीरतक  
 नहीं पहुँच सका केवल उसके फूलोंका परागभर उजतक पहुँच पाया ॥२०॥ उस वृक्षसे टुक टुक  
 हो जानेपर उस राक्षसने एक ऐसी भयङ्कर शिला उठाकर शत्रुघ्नपर फेंकी मानो वह यमराजकर धूँस  
 ही हो ॥२१॥ पर शत्रुघ्नेने ऐ-द अस्त्र चलाकर उसे चूर-चूर कर दिया ॥२२॥ तब यह राक्षस

तमुपाद्रवदुद्यम्य दक्षिणं दोर्निशाचरः ।  
 एकताल इवोत्पातपवनप्रेरितो गिरिः ॥२३॥  
 काष्ण्येन पत्रिणा शत्रुः स भिन्नहृदयः पतन् ।  
 धानिनाय भुवः कम्पं जहाराश्रमवासिनाम् ॥२४॥  
 वयसां पङ्क्तयः पेतुर्हतस्योपरि विद्विषः ।  
 तत्प्रतिद्वन्द्विनो मूर्ध्नि दिव्याः कुसुमकृष्टयः ॥२५॥  
 स हत्वा लवणं वीरस्तदा मेने महौजसः ।  
 आतुः सोदर्यमात्मानमिन्द्रविद्वधशोमिनः ॥२६॥  
 तस्य संस्तूपमानस्य चरितार्थैस्तपस्विभिः ।  
 शुशुभे विक्रमोदग्रं व्रीहयावनतं शिरः ॥२७॥  
 उपकूलं स कालिन्ध्याः पुरीं पौरुषभूपथाः ।  
 निर्ममे निर्ममोऽर्थेषु मथुरां मथुराकृतिः ॥२८॥  
 या सौराज्यप्रकाशाभिर्बभौ पौरविभूतिभिः ।  
 स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वेवापनिवेशिता ॥२९॥  
 तत्र सौभगतः पश्यन्पशुनां चक्रवाकिनीम् ।  
 हेमभक्तिमती भूमेः प्रवेणीमेव पिप्रिये ॥३०॥  
 सखा दशरथस्यापि जनकस्य च मन्त्रकृत् ।  
 संनस्कारोभयप्रीत्या मैथिलेयौ यथाविधि ॥३१॥

अपना बाहिना हम ऊपर उठाये हुए धनुष्णकी घोर भ्रष्टा । उस समय वह ऐसा लया मानो बबंदर  
 से उठाया हुआ कोई ऐसा पहलू बना था रहा ही जिसकी पीठीपर हाकका पेड़ लगा हो ॥२३॥  
 बैष्णव बाण सगते ही वह राक्षस पृथ्वीपर जा गिरा । उसके गिरनेसे ऐसी धमक हुई कि धरती काँप  
 उठी, पर ही, प्रायःश्रवणियाका कौनवा दूर हो गया ॥२४॥ मरे हुए शत्रुके ऊपर गिद्ध प्रादि पक्षी  
 हूट पड़े और धनुष्णके ऊपर स्वर्गसे धूनोकी वर्षा होने लगी ॥२५॥ धनुष्णजी जब लवणासुरको  
 मार चुके तब उन्हें यह सन्तोष हुआ कि अब मैं मेघनादको मारनेवाले तेजस्वी लक्ष्मणका सचमुच  
 सखा भाई हूँ ॥२६॥ जब तपस्विमोका नाम पुरा हो गया तब वे धनुष्णको बढाई करने लगे । प्रपत्नी  
 प्रसांसा गुनकर धनुष्णजी दीनके मारे सजा गए ॥२७॥ तब पराक्रमी, संयमी और सुन्दर धनुष्णने  
 यमुनाके किनारे मथुरा नामकी नगरी बसाई ॥२८॥ धन्वरा राजा या जानेसे उस नगरीके लोग ऐसे  
 धनी और सुखी हो गए मानो स्वर्गमें जनसंख्या बढ जानेके कारण वहकि कुछ लोग यहाँ लाकर बसा  
 दिए गए हो ॥२९॥ धनुष्णने मथुराके एक ऊँचे भवनपर चढ़कर उस नीले जलवाली यमुनाको देखा  
 त्रिभुजे बहुतसे नक़्के चहचहा रहे थे । उस समय यमुना उल्टे ऐसी सुन्दर दिलाई पड़ी मानो वह  
 गुनहरी पृन्दीवानी पृथ्वीकी पीठी हो ॥३०॥ इपर मन्वद्रष्टा वाल्मीकिजीने दशरथ और जनक दोनोंके

म ती वृजलये तृगर्भस्तेषु तदाव्यया ।  
 वरिः वृजलयावेर चराव इति नामनः ॥३२॥  
 गाङ्गं च वेदमप्याप्य इतिदृग्जानार्जगरी ।  
 रयति गापरामाम इतिवामपदतिम् ॥३३॥  
 रामभ्य मधुरं दृष गावन्ती मातृग्रतः ।  
 तद्वियोगप्यरा इतिचिन्त्रितीचरतुः मुती ॥३४॥  
 इतरेऽपि रघोरन्याम्यमत्रेताम्रितेभ्यः ।  
 तत्रोगात्पतिरर्नापु पत्नीपानन्दित्वनयः ॥३५॥  
 जनुघानिति जनुध्नः मुवाती च बहुश्रुते ।  
 मधुगरिदिगे धन्वोर्निदधे पूर्वोत्सुहः ॥३६॥  
 मय्यन्तपोव्ययो मा मृडाल्मीकेरिति मौज्यगतान् ।  
 मैथिलीतनयोऽतीतनिस्पन्दमृगमाश्रमम् ॥३७॥  
 वशी रिवेश चायोष्या रथानम्भारगोभिर्नाम् ।  
 लस्यस्य वचान्परिगीवतीऽत्यन्तगौरवम् ॥३८॥  
 न ददर्श ममामस्यै ममावृत्तिरप्यम्बितम् ।  
 रामं गीतापत्तिन्यागादमामान्यपति भुवः ॥३९॥



तमभ्यनन्दत्प्रसूतं लवणान्तकमग्रजः ।  
 कालनेमिवधात्प्रीतस्तुरापाडिव शार्ङ्गिणम् ॥४०॥  
 स पृष्टः सर्वतो वार्तमाख्यद्राजे न गंततिम् ।  
 अत्यर्षयिष्यतः काले कवेराद्यस्य शासनात् ॥४१॥  
 अथ जानपदो विग्रः शिशुमन्नाप्तयौवनम् ।  
 अकतापाङ्गशय्यास्थं द्वारि चक्रन्द भूपतेः ॥४२॥  
 शोचनीयामि वमुचे या त्वं दशरथाच्च्युता ।  
 रामहस्तमनुप्राप्य कष्टात्कष्टतरं गता ॥४३॥  
 भ्रुत्वा तस्य शुचो हेतुं गोप्ता जिहाय गणवः ।  
 न राकालभवो मृत्युरित्त्वाकुषदमस्पृशद् ॥४४॥  
 स मुहूर्तं क्षमस्वेति द्विजमाधास्य दुःखितम् ।  
 यानं मस्मार कौवेरं धैवस्वतजिगीषया ॥४५॥  
 आनशमस्तदप्यस्य प्रस्थितः न रघूदहः ।  
 उच्यते पुरस्तस्य गूढरूपा नरस्वती ॥४६॥  
 राजन्प्रजायु ते कश्चिदपनागः प्रवर्षते ।  
 तमन्दिष्य प्रशमयेर्भवितामि ततः कृती ॥४७॥

इत्याप्तवचनाद्रामो विनेष्यन्वर्णविक्रियाम् ।  
 दिशः पपात पत्रेषु वेगानिष्कम्पकेतुना ॥४८॥  
 अथ धूमाभिताम्राचं घृक्षशाखावलम्बिनम् ।  
 ददर्श कचिर्दत्त्वाकस्तपस्यन्तमघोषुखम् ॥४९॥  
 पृष्टनामान्वयो राज्ञा स किलाचष्ट धूमपः ।  
 आत्मानं शम्बुकं नाम शूद्रं सुरपदार्थिनम् ॥५०॥  
 तपस्यनधिकारित्वात्प्रजानां तमधावहम् ।  
 शीर्षच्छ्रेयं परिच्छेद्य नियन्ता शस्त्रमाददे ॥५१॥  
 स तद्वक्त्रं हिमाङ्गिष्टकिञ्चलकमिव पङ्कजम् ।  
 ज्योतिष्कणाहतश्मश्रु कण्ठनालादपातयत् ॥५२॥  
 कृतदण्डः स्वयं राज्ञा लेभे शूद्रः सतां गतिम् ।  
 तपसा दुश्चरेश्यापि न स्वमार्गविलासिना ॥५३॥  
 रघुनाथोऽप्यगस्त्येन मार्गसंदर्शितात्मना ।  
 महौजसा संयुयुजे शरत्काल इवेन्दुना ॥५४॥  
 कुम्भयोनिरत्सकारं तस्मै दिव्यपरिश्रहम् ।  
 ददौ दत्तं समुद्रेण पीतेनेवात्मनिष्कयम् ॥५५॥

गया है उसे लौकिकर हार करो, रामी तुम्हारा उद्देश्य पूरा होवा ॥४७॥ इस विभास-भरे वचनको सुनकर वेगसे चलनेके कारण कौपती हुई ध्वजाबाने पुष्पक विमानपर चढ़कर राम यह देशनेके लिये गया-विद्यापीठे चक्कर काटने लगे कि क्या धार्मिक कर्मा दोष प्राया है ॥४८॥ घूमते-घूमते एक स्थानपर राम क्या देखते हैं कि एक पेठकी छायापर उलटा सटका हुआ एक मनुष्य नीचे जलती हुई प्रागवा घुसी पी पीकर तप कर रहा है और घुसी लगतेले उसकी आँखें खाम हो गई हैं ॥४९॥ रामन उद्यते पूछा—'प्रायश्चा नाम क्या है और प्राय किस बंधन है । वह तपस्वी बोकल—'मैं देवपद पानेके लिये तप कर रहा हूँ । मेरा नाम शम्बुक है और मैं शूद्र हूँ ॥५०॥ घुडोकी तप करनेका परिहार नहीं है । इसी अनिधिहार नामने करनेसे प्रजाने पाप फल रहा था । इसलिये रामने निश्चय कर लिया कि इसका वप करना ही होवा । उन्होंने हाथमे शस्त्र चला लिया ॥५१॥ और उसका तिर उठी प्रहार मते परसे काट दिया जैसे कमलकी डली परसे कमल उतार दिया गया हो । प्रागकी चिनगारियोले मुलसी दाहीबाना उमका सिर ऐसा नम रहा था जैसे पालेसे जखी हुई केसरबाला कमलपट्टा हो ॥५२॥ राजासे दण्ड पानेने कारण शूद्रको वह सद्गति मिल गई जो वह अपने उस बडोर तपसे कभी न पाता जो वह अपने बर्ष-बर्षका उत्लङ्घन करने चाह रहा था ॥५३॥ जैसे चन्द्रमा शरद् श्रुतसे मिलता है वैसे ही रामको मार्गमे प्रगस्त्य श्रुति भी मिले ॥५४॥ श्रुतिने उन्हे दे सुन्दर प्राणुपण दिए जो उन्हें समुद्रे उल समय दण्डके रूपमे दिए थे, जब उन्होंने समुद्रको पी डाला था ॥५५॥ रामने

तं दधन्मैथिलीकस्थनिर्व्यापारेण वाहुना ।  
 पथाश्रिवधुते रामः प्राक्परासुद्विज्वात्मजः ॥५६॥  
 तस्य पूर्वोदितां निन्दां द्विजः पुत्रममागतः ।  
 स्तुत्या निवर्तयामास त्रातुर्वैवस्वतादपि ॥५७॥  
 तमध्वराय मुक्ताश्वं रत्नःऋपिनरेश्वराः ।  
 मेघाः शश्वमिवाग्भोभिरभ्यवर्षन्नुपायनैः ॥५८॥  
 दिग्भ्यो निमन्त्रिताश्चैनमभिजग्मुर्महर्षयः ।  
 न भौमान्येव धिप्सयानि हित्वा ज्योतिर्मयान्यपि ॥५९॥  
 उपशस्यनिविष्टैस्तैश्चतुर्द्वारमुखी बभौ ।  
 अयोध्या सृष्टलोकेव सद्यः पैतामही तनुः ॥६०॥  
 श्लाघ्यस्त्यागोऽपि वैदेह्याः पत्युः प्राग्यशवासिनः ।  
 अनन्यजानेः सैवासीद्यस्माज्जायाहिरण्ययी ॥६१॥  
 चिधेरधिकमंभारस्ततः प्रचधुते मरुः ।  
 आसन्न्यत्र क्रियाविघ्ना राक्षसा एव रक्षिणः ॥६२॥  
 अथ प्राचेतसोपह्वं रामायणमितस्ततः ।  
 मैथिलेयौ कुशलयौ जगत्तुर्गुरुषोदितौ ॥६३॥

वे धामूपण केपर प्रपनी उन भुजाभोमि बाध त्रिये जो सीताजीके बन बने जानेसे सीताजीके कण्ठसे  
 पटलेसे पपित हो रहे थे । जब राम भयोध्या लीठे तब उन्हें ज्ञान हुआ कि उनके घातेके पहले  
 ही ब्राह्मणका पुत्र जी उठा था ॥५६॥ पुत्रके जी उठनेपर उस ब्राह्मणने रामकी यकी स्तुति की और  
 पहले जी निन्दा की थी उसे अपनी स्तुतिसे भी डाला क्योंकि रागने उसने पुत्रको यमराजके हाथसे  
 छुटाया था ॥५७॥ कुछ दिव पीछे रामने प्रथमेय यज्ञके सिद्ध बोध छोडा । जैसे बादल धामके  
 छेतपर जल बरसाते हैं वैसे ही सुग्रीव-विभीषण आदिने धाकर रामके घाते मेंठके घनकी वर्षा कर  
 दी ॥५८॥ यज्ञके त्रिये रामने लीने लीको के ऋषियोकी धामन्त्रित किया था । वे ऋषि पृथ्वीसे  
 ही नहीं, परन्तु सप्तमि-मण्डल आदि दिव्य स्थानसे भी रामके पास आए ॥५९॥ वे लोग धापर  
 नगरके आस पासके देहातीमें टिने हुए थे । जब वे भयोध्याके चारों द्वारोंके नगरमें पंठे तब धार  
 दारोवाली यह भयोध्या ऐसी जान पडने लगी मानो तत्काल सृष्टि करनेवाले ब्रह्माकी चतुर्मुखी मूर्ति  
 ही ॥६०॥ सीताने स्वयंसे रामकी एक यह भी प्रशंसा हुई कि रामने किसी दूरी से धिधे यपना  
 विवाह नहीं किया । इसलिये यज्ञके सोमकी सीता बनानर रामने अपनी पत्नीके स्थानपर उसे बैठा  
 दिया ॥६१॥ इस प्रकार वह शिष्ट यज्ञ प्रारम्भ हुआ जिसमें भावश्यकतासे अधिक तो सामग्री  
 इकट्ठी हुई थी और विधीपटा यह भी कि यज्ञ क्रियामें विघ्न करनेवाले राक्षस ही उठाकी रखवाली  
 कर रहे थे ॥६२॥ तब वास्वीविभीषी आशसे सीताजीके पुत्र सब और कुछ जनना बनाया हुआ

वृत्तं रामस्य वाल्मीकिः कृतिस्ती किन्नरस्वनी ।  
 किं तथेन मनो हर्तुमलंस्यातां न शृण्वताम् ॥६४॥  
 रूपे गीते च माधुर्यं तयोस्तज्जैनिवेदितम् ।  
 ददर्श सानुजो रामः शुश्राव च कुतूहली ॥६५॥  
 तद्गीतश्रवणंकाशा मंसदश्रुमुखी बर्मा ।  
 हिमनिष्यदिनी प्रातर्निर्वातेच वनस्थली ॥६६॥  
 वयोरेपविमंवादी रामस्य च तयोस्तदा ।  
 जनता प्रेक्ष्य सादर्यं नादिकम्पं व्यतिष्ठित् ॥६७॥  
 लभयोर्न तथा लोकः प्राचीष्यन् वितिम्भये ।  
 नृपतेः प्रीतिदानेषु वीतसृष्टवपा यथा ॥६८॥  
 नेमे को नु विनेता वां कस्य चेधं कृतिः कवेः ।  
 इति राज्ञा स्वयं पृष्टी तौ वाल्मीकिमशंमताम् ॥६९॥  
 अथ सावरजो रामः प्राचेतममुपेयिवान् ।  
 ऊरीकृत्यारमनो देहं राज्यमस्नैन्ववेदयत् ॥७०॥  
 स तावाग्याय रामाय मैथिलेर्षा तदान्मजी ।  
 क्षयिः काहणिको बभूव भीतायाः मंपरिग्रहम् ॥७१॥

ताव शुद्धा समर्च नः स्तुपा ते जातवेदसि ।  
 दौरात्म्याद्ब्रह्मसस्तां तु नात्रत्याः श्रद्धुःप्रजाः ॥७२॥  
 ताः स्वचारित्र्यमुद्दिश्य प्रत्याययतु मैथिली ।  
 ततः पुत्रवतीमेनां प्रतिपत्स्ये त्वदक्षया ॥७३॥  
 इति प्रतिश्रुते राज्ञा ज्ञानक्रीमाश्रमान्मृनिः ।  
 शिष्यैरानापयामास स्वसिद्धिं नियमैरिव ॥७४॥  
 अन्येद्युरथ काकुत्स्थः संनिपात्य पुरौक्यः ।  
 कविमाहाययामास प्रस्तुतप्रतिपत्तये ॥७५॥  
 स्वरसंस्कारघत्थासौ पुत्राम्यामथ सीतया ।  
 ऋचेवोदचिपं सूर्यं रामं मुनिरुपस्थितः ॥७६॥  
 कापायपरिवीतेन स्वपदार्षितचक्षुषा ।  
 अन्वमीयत शुद्धेति शान्तेन वपुषैव सा ॥७७॥  
 जनास्तदालोक्यथात्प्रतिमंहतचक्षुषः ।  
 तस्युस्तेऽघाद्मृषाः सर्वे फलिता इव शालयः ॥७८॥  
 तां दृष्ट्विपिये भर्तुर्मुनिरास्वितविष्टरः ।  
 कुरु निःशय वरसे स्ववृषे लोकमित्यशात् ॥७९॥

सब तुम्हें बाह्य कि सीताजीको स्वीकार कर लो ॥७१॥ रामने कहा कि आपकी पत्नी ही सीता हमारे सामने ही धीनेसे छुट हो चुकी है, पर रावणकी दुष्टताका विचार करते यहाँकी प्रजाको विश्वास नहीं होता ॥७२॥ इसलिये यदि सीता अपनी दुष्टताका प्रमाण देकर प्रजाको विश्वास दिलावे, तब मैं आपकी आज्ञासे पुत्रोंके साथ उन्हें प्रहृत्य कर लूँगा ॥७३॥ रामकी ऐसा प्रतिज्ञा सुनकर वाल्मीकिजीने शिष्योंको लेकर सीताजीको इस प्रकार बुलाया मानो वे नियोजने द्वारा अपनी सिद्धि बुला रहे हों ॥७४॥ दूसरे दिन रामने इस कामके लिये प्रजाको इकट्ठा करके वाल्मीकिजीको बुलाया ॥७५॥ वाल्मीकिजी सब, कुछ और सीताजीको साथ लेकर रामके आगे उपस्थित हुए । पुत्रोंके साथ रामके पास जाती हुई सीताजी ऐसी समती थी मानो स्वर और सस्तरोंके साथ गायत्री, सूर्यके पास जा रही हों ॥७६॥ गेरए यत्न पहले और अपनी धार्मिक नीची लिए हुए सीताजी अपने शान्त शरीरसे ही परित्र दिखाई देती थी ॥७७॥ उन्हें देखने ही सब लोगोंने उसी प्रकार अपनी धार्मिक नीची कर ली जैसे फले हुए धानके बलम भुज जाते हैं क्योंकि उन्हें लगता सभी कि हम लोगोंने धर्म ही इस माध्यमपर बलम लगाया ॥७८॥ आसपर बैठे हुए वाल्मीकिजीने सीताकोसे कहा—वेदों ! जनमानसे मनसे तुम्हारे धर्मके विषयमें जो सन्देह है वह मुझ अपने पतिसे धारने ही मिटा दो ॥७९॥ वाल्मीकिजीने निम्नने पत्रिक तब सागर सीताजीको दिया और उगता धावमन करके सीताजीने यह

अथ वाल्मीकिशिष्येण पुण्यमत्त्वर्जितं पयः ।  
 आचम्योदीरयामास सीता सत्यां सरस्वतीम् ॥८०॥  
 बाह्मनःकर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे ।  
 तथा विश्वंभरे देवि मामन्वर्षातुमर्हसि ॥८१॥  
 एषमुक्ते तया साध्व्या रन्त्रात्सद्योभवाद्भुवः ।  
 शातहृदमिव ज्योतिः प्रभामण्डलमुद्ययौ ॥८२॥  
 तत्र नागफलोत्सिप्तसिंहासननिपेदुषी ।  
 समुद्ररशना साक्षात्प्रादुरासीद्भ्रुवंधरा ॥८३॥  
 सा सीतामहूमारोप्य मर्तृप्रणिहितेवशाम् ।  
 मा मेति व्याहरत्येव तस्मिन्पातालमग्यात् ॥८४॥  
 धरायां तस्य संरम्भं सीताप्रत्यर्षणैपिणः ।  
 गुरुर्विधिवलापेक्षी शमयामास धन्विनः ॥८५॥  
 ऋषीन्धिसृज्य यज्ञान्ते सुहृदथ पुरस्कृतान् ।  
 रामः सीतागतं स्नेहं निदधे तदपत्ययोः ॥८६॥  
 युधाजितश्च संदेशात्स देशं सिन्धुनामकम् ।  
 ददौ दत्तप्रभावाय भरताय भृतप्रजः ॥८७॥  
 भरतस्तत्र गन्धर्वान्पुधि निर्जित्य केवलम् ।  
 आतोद्यं ग्राहयामास समत्याजयदायुधम् ॥८८॥

हाय वचन कहा ॥८०॥—यदि मैंने मन, वचन, कर्म किसी प्रकारसे भी अपनी पतिव्रत भङ्ग न किया ही तो दे भरती माता । तुम मुझे अपनी गोदमे ले लो ॥८१॥ पतिव्रता सीताके ऐसा कहते ही पृथ्वी घबराकर फट गई और उसमेंसे विजलोकें उमान चमकीला एक तेजोमण्डल निकला ॥८२॥ उधमेरो नागके पक्षपर रखे हुए सिंहासनपर बैठी हुई, समुद्रको तबडो पहने साक्षात् भरती माता प्रकट हुई ॥८३॥ उन्होंने उन सीताजीको अपनी गोदमे ले लिया जो रामजी और दकटकी बाँधे थीं । राम कहते ही रह गए—हैं हे ! यह क्या करती हो, यह क्या करती हो, पर वे सबके देखते-देखते पातालमें उमा गई ॥८४॥ रामको पृथ्वीपर बड़ा श्रेष्ठ भाया और पृथ्वीके सीताको लौटा लेनेके लिये उन्होंने अपना धनुष चलाया । पर ब्रह्माजी तो सब कुछ जानते ही थे, उन्होंने चाकर रामको समझाया और उनका श्रेष्ठ शान्त किया ॥८५॥ किसी प्रकार यज्ञ समाप्त हुआ और यज्ञ हो जानेपर रामने ऋषियोंको छुट्टी दी । अब वे अपने पुत्रोंसे उतना ही प्रेम करने लगे जितना सीताजीसे करते थे ॥८६॥ प्रजापालक रामने भरतके मामा युधाजित्के कहनेपर सिन्धु देशका राज्य प्रगावसानी भरतको दे दिया ॥८७॥ भरतने गन्धर्वों को जीतकर उनके हाथमे वेपथ बीणा तो रहने दी किन्तु

स तत्पुष्कलौ पुत्रौ राजधान्यास्तदाख्ययोः .  
 अभिषिञ्च्यामिपेकार्हे रामान्तिकमगात्पुनः ॥८६॥  
 अद्भुतं चन्द्रकेतुं च लक्ष्मणोऽप्यात्मसंभवौ ।  
 शासनाद्रघुनाथस्य चक्रे कारापथेश्वरी ॥८७॥  
 इत्यारोपितपुत्रास्ते जननीनां जनेश्वराः ।  
 भर्तृलोकप्रपन्नानां निवापान्विदधुः क्रमात् ॥८८॥  
 उपेत्य मुनिषेपोऽथ कालः प्रोषाच राघवम् ।  
 रहः संवादिनौ परयेदायां यस्तं त्यजेरिति ॥८९॥  
 तथेति प्रतिपद्याय विवृतात्मा नृपाय सः ।  
 आचक्षुयौ दिवमध्यास्य शामनात्परमेष्ठिनः ॥९०॥  
 विद्वानपि त्रयोर्द्वाःस्थः समयं लक्ष्मणोऽभिनत ।  
 भीतो दुर्वाससः शापाद्भ्रामर्मदर्शनार्थिनः ॥९१॥  
 स गत्वा, सरयुतीरं देहत्यागेन योगवित् ।  
 चकारावितथां भ्रातुः प्रतिज्ञां पूर्वजन्मनः ॥९२॥

मनुष्य दुःखना दिया ॥८६॥ उन्होमे तस्य श्रीर पुष्कल नामक योग्य पुत्रोती, तस्य श्रीर पुष्कल राज-  
 धानिषोका राजा बना दिया श्रीर स्वयं रामके पास लोट भाए ॥८६॥ रामकी आज्ञासे लक्ष्मणने  
 अद्भुत श्रीर चन्द्रकेतु नामके अपने दोनो पुत्रोती कारापथना राजा बना दिया ॥८७॥ इस प्रकार  
 पुत्रोती राम देवद उन पारोने अपनी स्वर्गोका मातापोकके धाढ भादि उत्कार किए ॥८८॥ यह  
 राघ हो जानेपर एक दिन रामने पास मुनिबा वेम बनाकर बाल धाया श्रीर बोला—'मैं आपसे  
 एनातमे कुछ बातें करना चाहता हूँ । जो भी कोई हम लोकोकी बलासे बीचमे पावे उसे आप देख-  
 निजाना दे दीजिए ॥८९॥ रामने कहा—'बन्दो बात है ।' तब उमने अपना सच्चा रूप दिखाया  
 श्रीर कहा कि प्रज्ञाकी आज्ञा है कि अरु आप बलकर बहुतमे रह ॥९०॥ यह बात हो ही रही थी  
 कि इसी बीच दुर्वासकी कर्तव्य का धारने । उन्होने डारणर बडे हुए लक्ष्मणसे, कहा कि अभी,  
 चार रामके कठो कि मैं आया हूँ, नहीं तो तुम्हारे पुत्रोती अभी आपसे भस्म कर दूंगा । लक्ष्मण-  
 जो जानने ही थे कि जो इस समय रामके पास जावना उमे देह-निजाना होना फिर भी बातपोत्रके  
 योगमे ही परसर उहंका भ्रामर दे ली ॥९१॥ यहि भीतर योगमार्गके जानेवाले लक्ष्मणो,  
 परतने विचार करे बलकर राघ बलम गरीर छोडकर बडे जाईकी प्रतिज्ञाकी रखा कर ली ॥९२॥ अपने-

तस्मिन्नात्मचतुर्गणे प्राह्नुकमधितस्युपि ।  
 राघवः शिथिलं तस्यौ भुवि धर्मस्त्रिपादिव ॥६६॥  
 स निवेश्य कुशावत्यां रिपुनागाङ्कशं कुशम् ।  
 शरावत्यां सतां हृत्कर्जन्तिताश्रुलमं लंभम् ॥६७॥  
 उदक्प्रतस्थे स्थिरधीःसानुजोऽग्निपुरःसरः ।  
 अन्विंतः पतिवात्सल्याद्गृहवर्जमयोर्ष्यया ॥६८॥  
 जगृहस्तस्य चित्तज्ञाः पदवीं हरिराजसाः ।  
 कदम्बमुकुलस्थूलैरभिष्टुष्टां प्रजाभूमिः ॥६९॥  
 उपस्थितविमानेन तेन भक्तानुकम्पिना ।  
 चक्रे त्रिदिवनिश्रेणिः सरयूरनुपायिनाम् ॥१००॥  
 यद्गोप्रतरकल्पोऽभूत्संमर्दस्तत्र मज्जताम् ।  
 अतस्तदारुणया तीर्थं पावनं भुवि पप्रथे ॥१०१॥  
 स विभ्रुर्विबुधांशेषु प्रतिपन्नात्ममूर्तिषु ।  
 त्रिदशीभूतपौराणां स्वर्गान्तरमकल्पयत् ॥१०२॥

श्रीमद् ईश्वर लक्ष्मणके स्वर्ग चले जानेपर राम उसी प्रकार हीसे पठ गए जैसे पृथ्वीपर भेता युग्मे हीन वैरवाला धर्म हीला पठ जाता है ॥६६॥ स्थिर बुद्धिवाले रागने कद्रु-रूपी हाथियोंके लिये मङ्कुरके समान भयदायक नुसकी कुशावतीका राज्य दे दिया और अपने मधुर वचनोंसे सज्जनोकी प्राँसोसे प्रामुखी पार बहानेवाले सबको उन्होंने शरावतीका राजा बनाया ॥६७॥ फिर अग्नि-होत्रकी अग्नि प्रागे करके भाइयोंके साथ वे उत्तरकी ओर चले । जब सगोष्पापासिमौने यह सुना तो रामके प्रेममे वे सब भी केवल अपने-अपने घर पीछे छोडकर उनके साथ हो लिए ॥६८॥ रामके मगकी बात जाननेवाले जानर और राक्षस भी उनके पीछे-पीछे चले । जिस मार्गसे राम चले जा रहे थे वह मार्ग रामके पीछे-पीछे जाने वाली जनताके आँसुधरो गीला हो चला ॥६९॥ अक्तोपर कुपा करनेवाले राम विमानपर चढकर स्वर्ग चले गए और सरयूको उन्होंने अपने पीछे आनेवालोंके लिये स्वर्गकी सीढ़ी बना दिया [अर्थात् जो सरयूमे स्नान करता था वह तुल्य स्वर्ग चला जाता था] ॥१००॥ वहाँ रनाज करनेवालोंकी बँसी ही भीड हुई जैसी पौधोंको पार कराते समय होती है, इसलिये उस पवित्र तीर्थका नामही सगरमे गौप्रतर प्रसिद्ध हो गया ॥१०१॥ देवताओंके संशयारी रोख, जानने भी अपना देवकल्प पारख कर लिया इसलिये इतने लोग स्वर्गमे पहुँच गए कि सगर्ध्वनाली रामको देवपद प्राप्त करनेवाले अयोध्यावासियोंके रहनेके लिये एक



निर्वर्त्यैवं दशमुत्तशिरस्त्रेदकार्यं सुराणाम्  
 विष्वक्सेनः स्वतनुंमविशत्सर्वलोकप्रतिष्ठाम् ।  
 लङ्कानाथं पवनतनयं चोभयं स्थापयित्वा  
 कीर्तिस्तम्भद्वयमिव गिरौ दक्षिणे चोत्तरे च ॥१०३॥

इति महाकविधीवालिदासवृत्तौ रघुवशे महाकाव्ये  
 रामस्वर्गारोहणो नाम पञ्चदशः सर्गः ॥

हृष्टरा स्वर्गं यवता पठा ॥१०३॥ विष्णु भगवान्ने हत प्रवार रावणवा दम करने देवताओंका  
 कार्य पूरा किया और उत्तरतिरि हिमासवपर हनुमानजीको तथा दक्षिणतिरि प्रहूटगर विभीषणजीको  
 अपने दो कीर्तिस्तम्भोंके द्वायें स्थापित करने लीं। तोहोको धारण करनेवाले गणयायु अपने विराट्  
 घरीरमें सीन हो गए ॥१०३॥

महाकवि धीवालिदासने रणे हुए रघुवश महाकाव्यमें रामरा स्वर्गारोहण  
 नामका पन्द्रहवां सर्ग समाप्त हुआ ॥

## ॥ षोडशः सर्गः ॥

अथेतरे सप्त रघुप्रचीरा ज्येष्ठं पुरोजन्मतया गुणैश्च ।  
 चक्रुः कुर्वां रत्नविशेषभाजं सौमित्रमेपां हि कुलानुसारि ॥१॥  
 ते सेतुपार्चांगजबन्धगुरुर्यैरभ्युच्छ्रिताः कर्मभिरप्यबन्धैः ।  
 अन्योन्यदेशप्रविभागसीमां वेलां समुद्राश्च न व्यतीयुः ॥२॥  
 चतुर्भुजांशप्रभवः स तेषां दानप्रवृत्तेरनुपारतानाम् ।  
 सुरद्विपानामिव सामयोनिभिन्नोऽष्टधा विप्रससार वंशः ॥३॥  
 अथार्धरात्रे स्तिमितप्रदीपे शय्यागृहे सुप्तजने प्रयुद्धः ।  
 कुशः प्रवासस्थकलत्रवेपामदृष्टपूर्वा वनितामपश्यत् ॥४॥  
 सा साधुसाधारणपार्थिवर्जैः स्थित्वा पुरस्तात्पुरुहूतभासः ।  
 जेतुः परेषां जयशब्दपूर्व तस्याञ्जलि बन्धुमतो बबन्ध ॥५॥  
 अधानषोढार्गलमप्यगारं छायामिवादर्शतलं प्रविष्टाम् ।  
 सविस्मयो दाशरथेस्तनूजः प्रोवाच पूर्वार्धविसृष्टरूप ॥६॥  
 लब्धान्तरा सावरयोऽपि मेहे योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते ।  
 विभर्षिं चाकारमनिर्घृतानां मृणालिनी हैममिबोपरागम् ॥७॥

### सोलहवां सर्ग

अब आदि सात रघुवली कीरने अपने सबो बडे गार्ई कुशको अपना मुलिया बनाया क्योकि धातुप्रेम तो लगने कुलका मर्म ही था ॥१॥ ये सभी पुल बांधने, कृपिकी रक्षा करने और हाथियो को इनहा करनेमे कुशल थे । फिर भी जैसे समुद्र अपने तटपा उलझन नहीं करता है, वैसे ही उनमेसे किसीने भी अपने राज्यकी सीमा लांघकर दूसरे भाईके राज्यकी सीमामे प्रवेश करनेका कल्प नहीं किया ॥२॥ जैसे सागवेदने तुलसे उत्पन्न मतवाले दिग्गोका कुल छाठ भागोमे बंट गया था वैसे ही विष्णुके अक्षते उत्पन्न हुए रामका दानी कुल भी छाठ भागोमे फँसा ॥३॥ एक दिन धार्मी रातको, जब क्षमन गृहना बीच टिमटिमा रहा था और सब लोग सोए हुएथे, कुशको एक स्त्री दिखाई दी । उसे अहोने पहले कभी नहीं देखा था पर उसका चेहरा देखनेसे आन पडता था कि उसका प्रति परदेश चला गया है ॥४॥ अपनी सम्पत्तिसे सज्जकोवा उपहार करनेवाले, दृष्टके क्षमन देखस्वी और शत्रुकोको जीतनेपले कुलके घाते यह स्त्री हाथ जोडकर सही हो गई ॥५॥ जैसे वपंगमे मूँहका प्रतिबिम्ब पँठ जाता है, वैसे ही द्वार बन्द रहनेपर भी यह स्त्री अपने अंतर का गर्द थी । उसे देख पर कुशको बडा आश्चर्य हुआ । ये क्षम्यापर आये उठकर उसको बोले ॥६॥ तुम हमारे इस बन्द भवनमे कुछ तो माई हो, पर कुम्हारने मुझसे यह नहीं प्रकट होता कि तुम मोहिनी हो, क्योकि तुम पासेरो गारी हुई क्षमतिनीके समान उदाया दिखाई दे रही हो ॥७॥ हे शुभे ! तुम नीच हो । कुम्हारने

का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा किंवा मदम्यागमकारणं ते ।  
 थाचच्च मत्वा वशिनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुञ्चप्रवृत्ति ॥ ८ ॥  
 तमवर्वात्सा शुरुखानवद्या या नीतपीरा स्वपदोन्मुञ्चैन ।  
 तस्याः पुरः संग्रति वीतनाथां जानीहि राजव्रधिदेवतां माम् ॥ ९ ॥  
 वस्वौकसारामभिभूय साहं सौरान्यवद्धोत्सवया विभूत्या ।  
 समग्रशक्तौ त्वयि सूर्यवंश्ये सति प्रपन्ना करुणामवस्थाम् ॥ १० ॥  
 विशीर्णतल्पाद्दृशतो निवेशः पर्यस्तशालः प्रमुखा विना मे ।  
 विडम्ब्यस्यस्तनिमग्नसूर्ये दिनान्तमुग्राविलभिन्नमेघम् ॥ ११ ॥  
 निशासु भास्वत्कलनूपुराणां यः संचरोऽभूदभिसारिकाणाम् ।  
 नदन्मुखोल्लासिचित्तामिषाभिः स वाहते राजपथः शिवाभिः ॥ १२ ॥  
 आस्फालितं येत्प्रमदाकराग्रैर्मृदङ्गधीरध्वनिमन्वगच्छत् ।  
 वन्यैरिदानीं महिषैस्तदम्भः शृङ्गाहतं क्रोशति दीर्घिकाणाम् ॥ १३ ॥  
 घृणेशया यष्टिनिवासमङ्गान्मृदङ्गशब्दापगमादस्तास्याः ।  
 प्राप्ता दबोस्काहृतशेषवर्हाः क्रीडामयूरां वनर्हिषात्मम् ॥ १४ ॥  
 सोपानमार्गेषु च येषु रामां निविस्रवत्यश्वरथान् संरागोन् ।  
 सद्यो हतन्यङ्कुभिरक्षदिग्धं ध्यात्रः पदै तेषु निधीयते मे ॥ १५ ॥

पतिका क्या नाम है और मेरे पास किस लिए आई हो। तुम वह समझकर मुंह खोलना कि रघु-  
 र्विजयोका विस पराई स्त्रीपी और कभी नहीं जाता ॥८॥ उस स्थीने उत्तर दिया-हे राजन् । अब  
 संगवोन् राम बंधुच्छ जाने लगे, सब जिस निर्दोष प्रयोप्यापुरीके निवातियोको वे अपने साथे मेले गए  
 संती मनाय प्रयोप्यापुरीकी भी नगरदेवी हैं ॥९॥ पहले प्रच्छ राज होवेके बौरलं में हतनी पैदवर्षे  
 शातिनी होगई थी कि मेरे भागे पुत्रेवरी प्रतकगपुरी भी लीनी सगती थी श्रावसंत्तं तुम्हारे ऐसे प्रतापी  
 राजाके रहते हुए भी मेरी बहुत मुठे दशा हो गई है ॥१०॥ स्वाधोकेन रहनेसे बोटे बेटारियोके हुँट  
 जानेसे मेरी निवासभूमि प्रयोप्या ऐसी उदास सगती है जैसे सूर्यास्तके संगेवनी वह सन्ध्या।  
 जिसमे मायुके वेगसे क्षण-क्षणर दिनराण् हुए बादल बिताई देते हों ॥११॥ रातके समयमें पहले जिन  
 सठबौर पर शमनते हुए विडुषोवातो अभिगारिकाएँ जसती थीं, ऊँहीपर श्रावसंत्त ऐसी निवारिनें प्रमती  
 है जिनके मुठते पित्लाते समय जिनवारियो निवसती है ॥१२॥ नगरकी जिन बोवत्रियोका जस पहले  
 जनकीडा करनेवाती मुग्गरियोके हाथने थोकेथि भुवङ्गने समान शम्धीर पन्द करते था, वह संज्ञे-  
 क्त जङ्गली भेतोके तीनोंकी चोटोके वान बोके डालता है ॥१३॥ बंदोके हुँट जानेके संज्ञोके  
 मोर धव वृधोपर जाकर बैठने है और मृदङ्ग न बजनेके कारण ऊँहोने नानना भी पन्द कर दिया है  
 धव के उन जगती मोरोके समान सगते हैं, जिनकी पूछे बनरी छावने जन पैद हों ॥१४॥ और  
 क्या बहें, पहले जिन सोड़ियोपर मुग्गरियो अपने महावर सवे साज-सजात परे रेशोनी  
 पसती थी, ऊँहीपर मृग मारनेके बाप धाने रहते गने पास पर रहते सगते है ॥१५॥

चित्रद्विपाः पञ्चवनावतीर्णाः करेणुभिर्दत्तमृशालभङ्गाः ।  
 नखाङ्कुशाघातविभिन्नकुम्भाः सर्व्यसिंहप्रहृतं वहन्ति ॥१६॥  
 स्तम्भेषु योषित्प्रतिपातनानामुत्क्रान्तवर्षक्रमधूसराणाम् ।  
 स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति सङ्घान्निर्मोकपट्टाः फण्णिभिर्मिमुक्ताः ॥१७॥  
 कालान्तररयामसुधेषु नक्तमितस्ततो रूढतृणाङ्कुरेषु ।  
 त एव मुक्तागुणशुद्धयोऽपि हर्म्येषु मूर्च्छन्ति न चन्द्रपादाः ॥१८॥  
 श्रावर्ज्यशाखाः सदयं च यासां पुष्पाण्युपाचानि विलासिनीभिः ।  
 वन्यैः पुलिन्दैरिव चानरैस्ताः स्फिरयन्त उद्यानलता मदीयाः ॥१९॥  
 रात्रावनाविष्कृतदीपभासः कान्तासुरप्रथीवियुता दिवापि ।  
 तिरस्क्रियन्ते कृमिस्तनुबालैर्विच्छन्नधूमप्रसरा गवाक्षाः ॥२०॥  
 पलिक्रियायजितसैकतानि स्नानीयसंसर्गमनाप्नुवन्ति ।  
 उपागतवानीरगृहाणि दृष्ट्वा शून्यानि द्ये सरयूजलानि ॥२१॥  
 तदर्हसीमां वसतिं विसृज्य मामभ्युपैतुं कुलराजधानीम् ।  
 हित्या तनुं कारणमाजुर्षी तां यथा गुरुस्ते परमात्मभूतिम् ॥२२॥

जिन चित्रोमे ऐसा दिखामा गया था कि हाथी कमलने तालम उतर रहे हैं और हथिनियां उन्हें सूँझते मामलके बण्टल तोड़कर दे रही हैं, उन चित्रित हथिनियोंके मस्तकीको सिंहोंने सच्चे हाथीका मस्तक समझकर मगोसे फाट दिया है ॥१६॥ जिन बहुतसे खधोमे स्त्रियोंकी भूतिमां बनी हुई थी प्राजकल उन भूतियोंवा रग उठ गया है । उन खधोको चन्दमका वृक्ष समझकर जो लीप उनसे लिपटे हैं उनकी वैशुलं छूटकर उन भूतियोंसे सट गई हैं और वे ऐसी लगती हैं माती दुम पक्ष्णकी स्त्रियोंके स्तन टकनेके जिसे कोई कपडा डाल लिया हो ॥१७॥ जिन मदनोपर कभी मीठीकी मालाके समान शुभ्र चांदनी चमका करती थी उनपर अब चांदनी भी नहीं चमकती यथोक्ति बहुत दिनोंसे मरममम होनेके कारण कोठोके जूनेवा रग बाजा पड गया है और उनपर जहाँ तहाँ घास जम आई है ॥१८॥ पहले उद्यानको जिन लताओंको धीरेसे मुकाकर सुन्दरी जियां फूल उतारा करती थी उन मेरी प्यारी लताओंको जमली म्लेच्छोंके समान उपाती चन्दर भगमोरे डाल रहे हैं ॥१९॥ आनजन मटारियोंके करोखोसे न छो रावको दीपकोंकी चिरखें निकलती हैं न दिनमे सुन्दरियोंका मुख दिखाई देता है और न बहीसे धरकरा धूँआ हो निकलता है । अब वे भरोसे मकड़ियोंके जालोंसे डब गए हैं ॥२०॥ मुझे यह देखकर बड़ा दुः होता है कि अब न तो सरयूके पाटीपर देवताओंके निभे बनि दी जाती है और न स्त्रियोंके स्नाग परनेके उससेके भगवतम प्रादिको, गण्य ही नियम रही है । सरयूके तटपर बनी हुई बरानी भोपठियां भी सूनी पडी रहती हैं ॥२१॥ हथिनिय जैसे तुम्हारे पिता रामने रासखोको मारनेके निभे जो मनुष्य शरीर धारण किया था उसे छोडकर परमस्वामि पहुँच गए वैसे ही तुम भी, दुख नई राजपाती कुशावतीको छोडकर गपती कुन-

तथेति तस्याः प्रखर्यं प्रतीतः प्रत्यग्रहीत्प्राग्रहरो रघूणाम् ।  
 पूरप्यभिव्यक्तमुखप्रसादा शरीरवन्धेन तिरोबभूव ॥२३॥  
 तदद्भुतं संसदि रात्रिवृत्तं प्रातर्द्विजेभ्यो नृपतिः शशंस ।  
 श्रुत्वा त एनं हुलराजधान्याः साचात्पतित्वे वृतमम्यनन्दन् ॥२४॥  
 कुशावर्ती श्रोत्रियसात्स कृत्वा यात्रानुकूलेऽहनि सावरोधः ।  
 अनुद्भूतो वायुरिवाभ्रवृन्दैः सैन्यैरयोध्याभिमुखः प्रतस्थे ॥२५॥  
 सा केतुमालोपवना वृहद्भिर्विहारशैलानुगतेव नागैः ।  
 सेना रथोदारगृहा प्रपाखे तस्याभवञ्जंगमराजवानी ॥२६॥  
 तेनातपत्रामलमण्डलेन प्रस्थापितः पूर्वनिवासभूमिम् ।  
 वभौ पलौघः शशिनोदितेन चेलामुदन्वानिव नीयमानः ॥२७॥  
 तस्य प्रयातस्य वरूथिनीनां पीडामपर्याप्तयतीव सोढुम् ।  
 वसंधरा विष्णुपर्दं द्वितीयमध्याहरोहेव रजरङ्गलेन ॥२८॥  
 उघच्छमाना गमनाय पश्चात्पुरो निवेशे पथि च व्रजन्ती ।  
 सा यत्र सेना दृश्ये नृपस्य तत्रैव सामायमतिं चकार ॥२९॥  
 तस्य द्विपानां मदचारिसंकात्पुराभिषाताश्च तुरंगमाख्याम् ।  
 रेणुः प्रपेदे पथि पङ्कभावं पद्भोऽपि रेणुत्वमियाय नेतुः ॥३०॥

परंपरायी राजधानी मयोप्यामे चलकर रह्ये ॥२३॥ कुचने उधरी प्रार्यना स्वीकार करती थी  
 बह—देहा ही करेग । यह मुनवर मयोप्याकी मगरदेवी थी मन्तर्पान हो गई ॥२३॥ राजा  
 रातकी यह मपरजभरी घटना प्रातःप्रातः सनामे शाहखोसि बही । यह मुनवर ब्राह्मणानि बन  
 यरी प्रसमा की कि बाप धन्य है, जिन्हें कुच-राजधानीके मपनी दरवासे मपना पति पुना है ॥२४॥  
 इन्होंने कुशावरी को वेदपाठी ब्राह्मणोंकी सोप दी थीर जैसे वायुके पीछे-पीछे बादल चलते हैं  
 ही पीछे चलनेवाली सेनाके साथ पुन मुद्रांमं मयोप्याके सिधे प्रत्यान गया ॥२५॥ यात्राके समय  
 चलती हुई कुचकी सेना चलती चिखतो राजधानीके समान लगती थी क्योंकि उधवा ध्वजाधोमाता  
 भाग मनावाने डारकी जंगल सग रहा था, बड़े-बड़े हाथी बनाबटी पर्वतों-जैसे जान पड़ते थे और  
 रम लंरी-लंरी बटारिखो-जैसे सग रहे थे ॥२६॥ जैसे पन्द्रमा उदित होकर समुद्रको तटगत  
 शीव माता है, वैसे ही शेत धनधारी कुच मपनी सेनाको रघुजुनकी पुरानो राजधानी मयोप्याकी  
 धोर से घने ॥२७॥ मपको मयप कुचकी सेनाका मर पूर्यो मही मंगल सरी, इयोसिधे उर्यी  
 हुई पूल देगी जान पड़ रही थी मपको पूर्यो विष्णुके दूनेके पद [पावना] के पड़ेव गई हो । २८॥  
 कुचकीके पत्रकी हुई या मपके पडावर पड़ेकी हुई या मपके चलनेवाली नितनी थी कुचकी  
 सेनाकी दुर्गमिं थी, ये सब पूरी नेता हो प्रतीत होती थी ॥२९॥ कुचने हामिचोके मद्रकसे

मार्गैपिखी सा कटकान्तरेषु वैन्ध्येषु सेना बहुषा विभिन्ना ।  
 चकार रेवेव महाविरावा वद्धप्रतिश्रुन्ति गुहाम्बुसानि ॥३१॥  
 स धातुभेदास्त्रायाननेमिः प्रभुः प्रयाश्चघनिमिश्रतूर्यः ।  
 व्यलङ्घयद्विन्ध्यमुपायनानि पश्यन्पुलिन्दैरुपपादितानि ॥३२॥  
 तीर्थे तदीये गजसेतुवन्वात्प्रतीपगामुचरतोऽस्य गङ्गाम् ।  
 अयत्नवाल्लव्यजनीवभूर्बुर्हसा नभोलह्नलोलपङ्खाः ॥३३॥  
 स पूर्वजानां कपिलेन रोपाङ्गस्मावशेषीकृतविग्रहायाम् ।  
 सुराऽलयप्राप्तिनिमित्तमम्भस्त्रैस्तोतसं नौ लुलितं ववन्दे ॥३४॥  
 इत्यध्वनः क्रैभिदहोभिरन्ते कूलं समासाद्य कुशः सरध्वाः ।  
 वैदिप्रतिष्ठाञ्चिताध्वराणां यूपानपश्यच्छतशो रघूयाम् ॥३५॥  
 आधुय शाखाः कुसुमद्रुमाणां स्पृष्ट्वा च शीतान्तरयूतरङ्गान् ।  
 तं बलान्तसैर्न्य कूलराजधान्याः प्रत्युज्जगामोपवनान्तवायुः ॥३६॥  
 अयोपशत्ये रिपुमग्नशल्यस्तस्याः पुरः पौरसखः स राजा ।  
 कुलध्वजस्तानि चलध्वजानि निवेशयामास बली बलानि ॥३७॥  
 तां शिल्पिसंघाः प्रभुश्या नियुक्तास्तथागतां संभृतसाधनरथात् ।  
 पुरं नक्षीचक्रुरर्षां विसर्गान्मेघा निदाघम्लपितामिवोर्ध्वान् ॥३८॥

मार्गकी पुल बीच बन गई और कीचट भी बीशेकी टायीसे पुल बन गई ॥३०॥ मार्ग भूल जाके कारण वह सेना विन्ध्यापर्वत प्राय-पाठ मार्ग देंदने सभी घोर कई भागमें बँट गई । उस सेनाने समंदाके समान जो गम्भीर गर्जन किया उरसे पर्वतकी गुफाएँ भी नून उठी ॥३१॥ गैर प्रावि धातुभेदे जिनके रथके पहिए सात ही थे और जिसकी चलती हुई सेनाके शब्दसे पुरहीके शब्द भी बस गए थे वह कुश विन्ध्याचलवासी क्रियतोके हाथसे पाई हुई भट की सामग्रियाँ देखते हुए प्राये बड़ चले ॥३२॥ वहाँ पाठ ही उत्तरी पश्चिमकी ओर बहनेवाली गङ्गाजीपर हावियोंका पुल बनाकर वे पार उतरने लगे । उस समय आकाशमें जो चञ्चल पक्षीवाले हथ उरते थे वे कुशपर डुलते हुए चौरके समान लग रहे थे ॥३३॥ कुशने नागोंने चलनेसे चलन बसवाची गङ्गाजीकी प्रणाम किया क्योंकि नचितने कोपते चले हुए उनके पूर्वज सगरने पुल उठी जलकी कृपासे स्वर्ग पहुँचे थे ॥३४॥ इस प्रकार मार्गमें कुछ दिन बितानकर कुश भी सरयूके किनारे पहुँचे । वहाँ उन्हें बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले रघुवशी राजाघोने गाढ़े हुए सँकटी यज्ञके लम्बे दिखाई दिए । ३५॥ अयोध्याके उपधर्मोंमें पूजे हुए वृषीकी दालियोंकी हिलाता हुआ तथा सरयूके शीतल जलके स्पर्शसे ठण्डे वायुने धामे बढकर सेनाके हाथ बने हुए नुसवा स्थानत किया ॥३६॥ शत्रुधिनानाथ प्रजा-हितैषी राजाने पहुराती हुई ध्वजावाली अपनी सेनानों नगरके पास पासवे स्थानोंमें ठहरा दिया ॥३७॥ जैसे इन्द्रकी पाताले बादल, जल बरवाकर नरमीसे सभी हुई पृथ्वीकी हत्या-मरदा कर देते हैं, वैसे ही वृषवी

ततः सपर्या सपशूपहारां पुरः परार्ध्वप्रतिमागृहायाः ।  
 उपोषितैर्वास्तुविधानविद्धिनिर्वर्तयामास रघुप्रवीरः ॥३६॥  
 तस्याः स राजोपपदं निशान्तं कामीव कान्ताहृदयं प्रविश्य ।  
 यथार्हमन्यैरनुजीविलोकं संभावयामास यथाप्रधानम् ॥४०॥  
 सा मन्दुरासंश्रयिभिस्तुरंगैः शालाविधिस्तम्भगतैश्च नार्गैः ।  
 पूरावभासे विपणिस्थपण्या सर्वाङ्गनद्गाभरशेव नारी ॥४१॥  
 वसन्त तस्यां वसती रघूणां पुराणशोभामधिरोपितायाम् ।  
 न मैथिलेयः स्पृहयावभूव भवे दिवो नाप्यलकेधराय ॥४२॥  
 अथास्य रत्नग्रथितोत्तरीयमेकान्तपाण्डुस्तनलम्बिहारम् ।  
 निःधासहार्याशुकमाजगाम धर्मः प्रियावेषमिवोपदेष्टुम् ॥४३॥  
 अगस्त्यचिह्नादयनात्समीपं दिगुत्तरा मास्वति संनिष्टे ।  
 आनन्दशीतामिव वाप्पृष्टिं हिमन्वति हँमवतीं समर्ज ॥४४॥  
 प्रघृद्धतापो दिवसोऽतिमात्रमत्यर्थमेव क्षणदा च तन्वी ।  
 उभौ विरोयक्रियया विभिर्भौ जायापती सानुशपाविधास्ताम् ॥४५॥  
 दिने दिने शैवलपन्त्यधस्तात्सोपानपर्वाणि विमुञ्चदम्भः ।  
 उदण्डपद्मं गृह्णीर्षिक्राणां नारीनिवम्यद्वयमंभूव ॥४६॥

मानासे बारीगरीने अपने धर्मोकी सहामनासे कर्माध्यासा कायापनट कर दिया ॥३६॥ फिर वह  
 घोर उपवास करनेपाने बालु-विद्याने पण्डितोंने रघुवीर बुझने धनमोल भूतिपांसे भरे परोंबाली  
 यवोप्यावा विपिपूर्वक पूजन कराया घोर अनुभोरा बलिदान भी कराया ॥३६॥ जैसे वामी पुण्य  
 स्त्रीके हृदयमें पंड बना है वैसे ही बुरा भी यवोप्याके राजभयनमें प्रविष्ट हो गए घोर उन्हांने अपने  
 मन्त्रों। मादिने रत्नेके लिये दूसरे बहुलसे भवन दे दिए ॥४०॥ यवोप्याकी हाटीमें मुन्दर-मुन्दर  
 बस्तुएँ बिजनेकी मन्त्री हुई थीं, घुटभानमें पीके बंधे हुए थे, हृत्प्यारोंके गम्भीरे हाथी बंधे हुए थे ।  
 इस प्रकार वह नगरी ऐसी मुन्दर सजने लगी जैसे गारे बारीरथर गत्या पढ़ने हुए कोई स्त्री हो ॥४१॥  
 यवोप्या फिर पढ़ने जैसे मुन्दर सजने लगी । जन्मे त्रिप्रास करने जानकीभोने पुत्र बुदाको ऐसा  
 मुग विना कि न गो उन्हे मुन्दर-मुन्दर कन्तराधोसे भरे हर्मने हाथी बननेकी दृष्ट्या उह गई घोर  
 न मण्डन रत्नोंवाली धनवापुरीकी ही सेने की ॥४२॥ हातेमें बोल्य ऋषु पाई त्रिपाने मानो इन्हें  
 अपने जग त्रिप्रास समस्त कर दिया त्रिपरी घोड़ुनीमें रत्न पाने हो, त्रिगके गोर-गोर रत्नोंपर  
 मोतियोंका हार सजवा ही घोर जो मौनसे उठनेपाने गरीन करने पढ़ने हुए हो ॥४३॥ गर्मिं  
 जो हिन सजने लगी वह ऐसा मज्जा या मानो बलिष्ठ दिशासे मुँके भीट मानेकी प्रगल्भतामें उत्तर  
 दिशासे मानन्दके ठडे घोड़ुनीके समान लानेकी ठडी धारा हिवाचने बहाई हो ॥४४॥ मण्डन  
 सजाने भरे दिन घोर कान्त्य छोटी सने, मे सेनी उन पदपान हुए, बन्दिगालीने उभाल दियाई  
 देने सेने जो धारणने भयदा करने एव दूसरेके कः बडे हो ॥४५॥ गर्मके बाण्य परकी दाव विप्य

वनेषु सायंतनमल्लिनां विलम्बसोऽन्विषु बुद्धमलेषु ।  
 प्रत्येकनिचितपदःसशब्दं संख्यामिषैषां भ्रमरश्चकार ॥४७॥  
 स्वेदानुविद्धार्दनरत्नताङ्गे भूयिष्ठमंदशिरसं कपोले ।  
 च्युतं न कर्णादपि कामिनीनां शिरीषपुष्पं सहसा पपात ॥४८॥  
 यन्त्रप्रवाहैः शिशिरैः परीतान् रसेन धौतान्मलतोद्भवस्य ।  
 शिलाविशेषानधिशय्य निन्धुर्धारागृहेष्वातपमृद्धिमन्तः ॥४९॥  
 स्नानार्द्रमुक्तेऽनुधूपवासं विन्यस्तसायंतनमल्लिकेषु ।  
 कामो वसन्तात्ययमन्दवीर्यः केशेषु लेभे वलमङ्गनानाम् ॥५०॥  
 आपिञ्जरा वद्धरजःकणत्वान्मङ्गर्जुंदारा शुशुभेऽर्जुनस्य ।  
 दग्ध्वापि देहं गिरिशेन रोपाल्खण्डीकृत्वा ज्येष्ठ मनीमथस्य ॥५१॥  
 मनोज्ञगन्धं सहकारभङ्गं पुराणशीघ्रं नवपाटलां च ।  
 संवध्न्ता कामिजनेषु दोषाः सत्रे निदाघावधिना प्रमृष्टाः ॥५२॥  
 जनस्य तस्मिन्समये विगाढे यभूवतुर्द्वै सविसेपकान्ती ।  
 तापापनोदत्तमग्रादसेवी स चोदयस्थौ नृपतिः शशी च ॥५३॥  
 शयोर्मिलोलोन्मदराजहंसे रोधोलतापुष्पवहे सरय्याः ।  
 विद्वर्तुमिच्छा वनितासरस्य तस्याम्भसि ग्रीष्मसुखे बभूव ॥५४॥

भी सेवार जमी हुई सोविषोको छोडकर पीछे हटने लगी [भयति उभवा पानी सूखने लागे] जनम  
 कमलकी उडिया दिताई देने लगी और पानी पटक कर खिचोको कमर तक खू गया ॥४६॥ धर्मि  
 पमेमी पिल गई और उलकी सुगन्ध जारी और कँवने लगी । सन्ध्याको गुनगुनाते हुए मरि चकने  
 एक-एक फूल पर बैठकर मानी पूत्रोकी गिनती करने लगे ॥४७॥ खिचोकि पातोपर प्रियतमके  
 हाथोते बने मलमलतोपर वतीनेकी बँदे फँस जाती थी और जानपर रखे हुए सिरसने पूत्रोका केसर  
 चकने सब पारत पर । इच्छाके रूप के फूल राज परते गिरते भी ये तो हृद्या पृष्कोपर नहीं गिर  
 पाते थे ॥४८॥ पनी लीज गर्मिं ठही रहनेवासी जन विशेष प्रकारकी शिलाओपर सोबर दुपहरी  
 धिताते थे जो पश्चनसे मुली होतो थी और जिनने पारो और जल पाराएँ धूतनी रहती थी ॥४९॥  
 यान्त बीत जानेके कारण जो कामदेव मन्द पद गया था वह स्थियोके जन केसोमे जाकर दग गया  
 जो स्नान करनेपर पील दिए जाते थे और जिसमे सुषसे सुगन्धित करने कामको पूत्रनेवासी पमेसीके  
 सुगन्धित पूत्र सोस दिए जाते थे ॥५०॥ परगते मरी कुप पीली-नीली धर्जुनकी मञ्जरी ऐसी  
 सगली थी गानो कामदेवका शरीर नस्य करनेके पन्नाद् शिवजीके हाथमे तोडो हुई कामदेवने पनुपकी  
 डोरी हो ॥५१॥ मनोहर गन्धवाली कामकी वीर, पुरानी मदिरा और नये पदतके पूत्र ताकर ग्रीष्म  
 ऋतुने कामी पुस्कोकी सब बगी पूरने कर दो ॥५२॥ उस कठिन ग्रीष्म समयमे उदित होकर दो ही तो  
 प्रजावे पहुच प्यारे हुए । एक दो मेवासे प्रसन्न होकर निर्वन्ता भादि सन्धाओको दूर करनेवाले राजा  
 पुन और दूसरे शीतल किरणो से गर्मिं ताप दूर करनेवाले पद्म्या ॥५३॥ एक दिन कुचकी



स तीरभूमौ विहितोपकार्यामानायिभिरस्तामपकृष्टनक्राम् ।  
 विगाहितुं श्रीमहिमानुरूपं प्रचक्रमे चक्रधरप्रभावः ॥५५॥  
 सा तीरसोपानपथावतारादन्योन्यकेयूरविचङ्चिनीभिः ।  
 सनूपुरक्षोभपदाभिरासीदुद्विग्रहंसा सरिदङ्गनाभिः ॥५६॥  
 परस्पराभ्युच्चस्रतत्पराणां तासां नृपो मञ्जनरामदर्शी ।  
 नौसंश्रयः पार्व्वगतां किरातीमुपात्तवालव्यजनां वभासे ॥५७॥  
 पश्यावरोधैः शतशो मदीयैर्विगाह्यमानो गलिताङ्गरामैः ।  
 संघ्योदयः सात्र इवैष वर्ष्यं पुष्यत्यनेकं सरयुप्रवाहः ॥५८॥  
 विलुप्तमन्तःपुरसुन्दरीणां यदञ्जनं नौललिताभिरङ्घ्रिः ।  
 तत्रध्वतीभिर्मदरागशोभां विलोचनेषु प्रतिमुक्तमाशाम् ॥५९॥  
 एता गुरुश्रोत्रिपयोधरत्वादात्मानमुटोडुमशक्नुवत्पुः ।  
 गाढाङ्गद्वैर्बाहुभिरप्सु बालाः फ्लेशोचरं रागवशात्प्लवन्ते ॥६०॥  
 अमी शिरीषप्रसवायतंसाः प्रम्रंशिनी वारिविहारिणीनाम् ।  
 पारिप्लवाःस्रोतसि निम्नगायाःशैवाललोलांश्छलपन्ति मीनान् ॥६१॥  
 आसां जलास्फालनतत्पराणां मुक्ताफलस्पर्षिषु शीकरेषु ।  
 पयोधरोत्सर्पिषु शीर्यमाणः संलक्ष्यते न च्छिद्रोऽपिहारः ॥६२॥

इच्छा हुई कि नहरोंके सहारनेसे मतपाने वगे हुए हवीबाले, तटकी सतामोके झलोकी बहानेवाले  
 और गर्मीमें कुछ बनेवाले सरयूके जलमें अपनी रानियोंके साथ विहार करें ॥५५॥ यह निश्चय  
 करके विष्णुके समान प्रभाववाली कुछ सरयूके जलमें विहार करने लगे । सरयूके तटपर डेरे डाल  
 दिये गए और मल्लाहोंने जाल डालकर प्राह धावि सब जीव-जन्तु उसमेंसे निकाल डाले ॥५६॥  
 जब कुराकी रानियां भीठियोंसे पानीमें उतरने लगी, उस समय उनके भुजबन्ध एक दूसरेसे रगड़  
 ळाने लगे, पैरोंके दिसुए बजने लगे और इन छन्दोंके सुन-सुनकर सरयूके हल मचल उठे ॥५७॥  
 रानियां एक दूसरेपर जमके छीटे उड़ाने लगी । उन रानियोंके स्नानकी शोभा देखकर नामपर  
 बैठे हुए राजा, पासमें खंवर सेवर दखी हुई बिरातिमसे कहने लगे ॥५८॥ देल तो ! मेरे रजवास  
 की संतुकी रानियोंके स्नान करनेसे और उनके शरीरसे धुले हुए धपारके मिल जानेसे सरयूकी  
 धारा ऐसी रम-विरंशी लगने लगी है जैसे बादलोंसे भरी सन्ध्या ॥५९॥ नादोंके चलनेसे  
 जलमें जो नहरें उठती हैं उन्होंने इन सुन्दरियोंकी घांसोरा प्रञ्जन शो दिया है और उसके बदलेमें  
 मत्पानने समयकी लानी इलनी बालोंमें भरती है ॥६०॥ भारी नितम्बों और स्तनोंके शरण  
 ये रानियां अपनी भाति तैर रही पारोंफिर भी खेलमें सम्मिलित होनेने बारख ये अपने मोटे-मोटे भुज  
 बन्धोंवाली बांहोंसे जलमें खड़ी कठिनाईसे तैर रही हैं ॥६०॥ इन जल-क्रीडा करनेवाली रानियोंके  
 गानोंसे किरने बरुणपुत्र पितृकनर नदीमें गिरकर तैर रहे हैं । इनकी देखकर महत्तियोंकी  
 सेवारना भ्रम हो रहा है और ये इनपर मुंह मारनेकी भाट रही हैं ॥६१॥ देख, जलक्रीडामें

श्रवर्तशोभा नतनाभिकान्तेर्भङ्गो श्रुवां द्वन्द्वचराः स्तनानाम् ।  
 जातानि रूपवयवोपमानान्यदूरवर्तीनि विलासिनीनाम् ॥६२॥  
 तीरस्थलीवर्हिं मिरुत्कलापैः प्रस्निग्धकेकैरभिनन्दमानम् ।  
 श्रोत्रेषु समूर्च्छति रक्तमासां गीतानुगं वारिमृदङ्गवाद्यम् ॥६४॥  
 संदृष्टवस्त्रेष्वत्रलानितम्नेष्वित्दुग्रकाशान्तरितोद्भुतुल्याः ।  
 अमी जलापूरितस्रग्मार्गा मौनं भजन्ते रशनाकलापाः ॥६५॥  
 एताः करोत्पीडितवारिधारा दर्पात्सखीभिर्दनेषु सिक्ताः ।  
 वक्त्रेतराग्रैरलक्षैस्तरुण्यश्रुर्खारुणान्वारिस्रवान्वमन्ति ॥६६॥  
 उद्वन्धकेशश्च्युतपत्रलेखो विरलेपिमुक्ताफलपत्रवेष्टः ।  
 मनोज्ञ एष प्रमदामुखानामम्भोविहाराकुलितोऽपि वेषः ॥६७॥  
 स नौविमानादवतीर्य रेमे विलोलहारः सह ताभिरप्सु ।  
 स्कन्धावलम्बोद्धृतपद्मनीफः करेणुभिर्बन्धु इव द्विपेन्द्रः ॥६८॥  
 ततो नृपेणानुर्भताः स्त्रियस्ता आजिष्णुना सातिशयं विरेजुः  
 प्रागेव मुक्ता नयनाभिरामाः प्राप्येन्द्रनीलं किमुतोन्मयूखम् ॥६९॥

सगी हुई इन रानियोंकी यह भी नहीं गुप्त है कि हगारे हर दृष्ट वष है और गोती बिलर गए हैं ।  
 मोतियोंके समान बूंदोंकी ही गोती मानवर वे समझे बंधे हैं कि हर दृष्टा नहीं है ॥६२॥ देख,  
 सुन्दरी स्त्रियोंके शरीरके अगोबे समान जो वस्तुएँ सतारने प्रसिद्ध हैं वे सब इन सुन्दरियोंके  
 प्राय पास छुट आई हैं । वे पानोंकी बँवरें इनकी गहरी बाधिके समान हैं, सहर्ष इनकी भीटिके  
 समान हैं और बजपा-पकवी इनके स्तनके समान है ॥६३॥ वे गानातर जो मुग्ध बजानेके  
 समान अपनी दे-देकर जल ठोक रही हैं उसे सुनकर बैठे हुए मोर अपनी पूँछ लठाकर और  
 बोलकर उनका अभिनन्दन कर रहे हैं ॥६४॥ इन रानियोंके अपने मिथुन्योपर द्येव वस्त्र लपेट  
 लिया है जिसके नीचे तगडीके पूँधुरु ऐसे दिखाई देते हैं जैसे बौदनीके बने हुए तारे हो । तगडीके  
 छोरोंके बल भर जानेसे इन स्त्रियोंके इधरसे उधर शीघ्रोंपर भी ये बज नहीं रहे हैं ॥६५॥ जब  
 इनकी राशियाँ इनके मुँहपर पानी डालती हैं और वे झूठारसे अपनी सन्धियोंपर पानी उछालती हैं  
 तब इनके सीधे लटने हुए बालोंके कुटुम्ब मिली हुई सात रबनी बूँदें नूचे लगती हैं ॥६६॥ यद्यपि  
 स्नानके कारण पान सुल जानेसे, मुँह पर और स्तनोपर जनी हुई चिबरातीके पुल जानेसे, तथा  
 मोतियोंके बर्खास्तल जानेसे निवस जानेसे इन स्त्रियोंका वेध बेढगा हो गया है फिर भी देख, वे  
 चित्तनी मनोहर लग रही हैं ॥६७॥ यह कहकर पुन भी पानीमें उतर पड़े और जैसे कर्पणियोंकी  
 उचावर वन्द्येपर सटका कर हाथी अपनी हँसियोंके साथ जलकोटा करता है जैसे ही वे भी उन  
 स्त्रियोंके साथ जल बिहार करने लगे ॥६८॥ उस बान्धुमात्र राजाके साथ झोटा करती हुई वे  
 रानियाँ पहलेसे भी अर्पित सुन्दर लगने लगी क्योंकि मोती तो यों ही सुन्दर होना है और फिर

वर्योदकैः काञ्चनशृङ्गमुक्तैस्तमायताच्यः प्रणयादसिञ्चन् ।  
 तयागतः सोऽतितरां वभासे सघातुनिष्पन्द इवाद्रिराजः ॥७०॥  
 तेनावरोधप्रमदासखेन विगाहमानेन सरिद्धरां ताम् ।  
 आकाशगङ्गारतिरप्मरोभिर्वृतो मरुत्वाननुयातलीलः ॥७१॥  
 यत्कुम्भयोनेरधिगम्य रामः कुशाय राज्येन समं दिदेश ।  
 तदस्य जैत्रामरणां विहर्तुरज्ञातपातं सलिले ममज्ज ॥७२॥  
 स्नात्वा यथाकाममसौ सदारस्तीरोपकार्या गतमात्र एव ।  
 दिव्येन शून्यं बलयेन बाहुमपोढनेपथ्यविधिर्दर्श ॥७३॥  
 जयश्रियः संवननं यतस्तदमुक्तपूर्वं गुरुणा च यस्मात् ।  
 सेहेऽस्य न भ्रंशमतो न लोभात्स तुल्यपुष्पाभरणो हि धीरः ॥७४॥  
 ततः समाज्ञापयदाशु सर्वानानापिनस्तद्विचये नदीप्लान् ।  
 घन्ध्यश्रमास्ते सरयूं विगाह्य तमूनुरम्लानमुखप्रसादाः ॥७५॥  
 कृतः प्रयत्नो न च देव लब्धं भग्नं पयस्याभरणोचर्म ते ।  
 नागेन लौल्यात्कुमुदेन नूनश्रुपात्तमन्तर्हृदवासिना तत् ॥७६॥  
 ततः स कृत्वा धनुराततव्यं धनुर्धरः कोपविलोहिताक्षः ।  
 गारुडमत्तं तीरगतस्तरस्वी भुजंगनाशाय समाददेऽस्त्रम् ॥७७॥

यदि वह इन्द्र नीलमणिके साय गुंभ दिया जाय तब तो कहना ही क्या ॥६९॥ ये रिपवाँ सोनेकी  
 विनवारिपण्डि रज घोड-घोडवर उन्हें भिजोने लगी । उस समय वे ऐसे राज्य लने जैसे पर्यतराज  
 हिमामय परते गेरुका करना गिर रहा हो ॥७०॥ निषोने साय सरयूमे जल, क्रीडा करते समय  
 कुत ऐसे सगते थे मानो देवराज इन्द्र अपाराधोनि साय आकाशगङ्गामे बलक्रीडा कर रहे हो ॥७१॥  
 रामकी परस्पर श्रुतिमे जैत्र [भर्षात् सदा बितानेवासा] जो धाभूपण दिया था उसे रामने राज्यके  
 साय ही गुणको वे दिवा था जल-क्रीडा करते समय वह धाभूपण पानीमे फिर पडा घोर किसीको  
 दृष्टा मान भी नही हुआ ॥७२॥ रानिपणिके साय इच्छानुसार बल-क्रीडा करके जय कुत बाहर  
 निजने घोर डरेमे गए तब कपडे बदलनेके पहले ही उन्होंने देखा कि गुनापर यह दिव्य धाभूपण  
 नही है ॥७३॥ बुद्धिमान् राजा बुद्ध, पून घोर धाभूपण दोनोंको बखबर समभते थे । अत उन्हें  
 उन धाभूपणके सोनेवा इगणिके कुछ नहीं था कि यह बहुमूल्य था, वरन् रमणिके कुछ हुआ कि वह  
 धाभूपण विशय-वदनी प्राप्त करनेवासा था घोर पिताया बिल्क था ॥७४॥ तब उन्होंने सम धीवरोको  
 धाभूपण दूँदनेकी आज्ञा दी । बहुत देखकर उन सोनेके पानी कोरत कर उनका शत्रु परिश्रम  
 व्यर्थ गया । वे बुजने पात प्राकर बोले—॥७५॥ हे देव ! बहुत परिश्रम करनेपर भी हम सोने  
 जतमे पडा हुआ धाभुपण धाभूपण नहीं पा गये । जान पडता है कि हम जतमे रहनेराने कुमुद  
 मापने नागने सोभसे उमे चुरा लिया है ॥७६॥ यह सुनने ही बुजकी धीमे कोपने पात ही गई

तस्मिन्हृदः संहितमात्र एव क्षीमात्समाविद्धतरङ्गहस्तः ।  
 रोधांसि निध्नन्नवपातमग्नः करीष वन्यः परुषं ररास ॥७०॥  
 तस्मात्समुद्रादिव मध्यमानादुद्धृत्तनक्रात्साहसोन्मज्ज ।  
 लक्ष्म्येव सार्धं सुरराजवृद्धः कन्यां पुरस्कृत्य भुवंगराजः ॥७१॥  
 विभषणप्रत्युपहारहस्तस्तमुपस्थितं वीक्ष्य विशांपतिस्तम् ।  
 सौपर्णमस्त्रे प्रतिसंजहार प्रह्वेष्वनिर्वन्धरूपो हि सन्तः ॥७२॥  
 त्रैलोक्यनाथप्रभवं प्रभावात्कुशं द्विपामङ्कशमस्रविद्वान् ।  
 मानोन्नतेनाप्यभिवन्ध मूर्ध्ना मूर्धाभिपिक्तं वृंमुदो वभाषे ॥७३॥  
 ध्रुवैमि कार्यान्तरमानुषस्य विष्णोःसुताख्यामपरां तनुं त्वाम् ।  
 सोऽहं कथं नाम तवाचरेयमाराधनीस्य धृतेर्विधातम् ॥७४॥  
 कराभिघातोत्थितकन्दुकैपमालोक्य बालातिक्रान्तुहलेन ।  
 हृदास्पतज्ज्योतिरिवान्तरिक्षादादत्त जैत्राभरणं त्वदीयम् ॥७५॥  
 तदेतदाज्ञानुबिलम्बिना ते ज्याघातरेखाकिणलाञ्छनेन ।  
 भुजेन रक्षापरिषेण भूमेरुपैतु योगं पुनरंसलेन ॥७६॥  
 इमां स्वसारं च यवीयसीं मे कुमुदतीं नाहसि नानुमन्तुम् ।  
 आत्मापराधं नुदतीं चिराय शुभ्रूपया पार्थिव पादपोस्ते ॥७७॥

शौर यही तटपर लडे होकर उन्होने मनुषयो ठीक किया और उसपर नागेशा भाव करनेवाला गार्हवात्स चढ़ाया ॥७७॥ उनके मनुष्य नैदाते ही यहीका पल, खलबलाता हुआ, धवने तरंग-रूपी हाथ जोड़े हुए, तटको छोटता हुआ ऐसे बरबने लगा जैसे गर्दमे पल हुआ कोई हाथी चिम्पाट रहा हो ॥७८॥ उस लसकी समुद्रके समान गया जाता देसपर पहियाल घाघि शीव धररा उठे । इतनेमे ही उस जलमेठे मवानक एक कन्याको धामे किए हुए वापरराज कुमुव दत्त प्रणार मिलने मानो लक्ष्मीको साथ लेकर कल्पवृक्ष निकल धाया हो ॥७९॥ कुमुने देसा नि कुमुदने हापमे यही भाभूपण है, इसलिये उन्होने मनुषपरठे गार्हवात्स उठार लिया क्योंकि लगन लोग उनपर श्लेष नहीं करते जो नन्न होकर उनके धामे धाते है ॥८०॥ दिलोकीनाथ रामके पुत्र तथा मद्रुमोको मकुरके समान दुग देनेनाले राजा कुशके धामे मानसे उठा हुआ धपना तिर नगकर पुमुदने प्रणाम निमा यदोनि यह कुशके बालकी शक्ति मनी भांति जानता था । प्रणाम करके यह बोला — ॥८१॥ 'मैं यह जानता हूँ कि आप राखमोना नाच करनेके लिये मनुष्यका लघेर पारण करनेवाले विष्णुके ही दुन्दरे रूप धर्मात् पुत्र हैं, इसलिये आप पूजनीय हैं । फिर मैं भला धापये वंसे बर कर राखता हूँ ॥८२॥ यह मेरी मन्था नन्द खेल रही थी । इसकी धपनीसे नन्द ऊपर उछल गई । उसे देखनेके लिये उठने जो ऊपर धाखें उठाई तो देसा कि भागरासे गिरते हुए तारेके समान धापना धापूपण नीचे बसा सा रहा है । इसने ऋट जसे पकक लिया ॥८३॥ आप इने लोजिए और धपनी उस मोटी और पुटने लक सानी भुशामे फिर बाप लोजिए जिसमे मनुषयो दोरीकी फटकारते पट्टे पद गए हैं और जो मृत्वीकी रक्षा करती है ॥८४॥ हे राजन् ! यह मेरी छोटी बहन कुमुदती

इत्यूचिधानुपहृताभरणः त्रितीशं  
 श्लाघ्यो, भवान्स्वजन इत्यनुभाषितारम् ।  
 संयोजयां विधिवदास समेतवन्धु,  
 कन्यामयेन कुमुदः कुलभूपथेन ॥८६॥  
 तस्याः स्पृष्टे मनुजपतिना साहचर्याय हस्ते,  
 माङ्गल्योर्षाविलयिनि पुरः पावकस्योच्छ्रिखस्य ।  
 दिव्यस्तूर्यध्वनिरुदचरव्यूहरनुवानो दिगन्तान्,  
 गन्धोदग्रं तदनु वज्रपुः पुष्पमाश्चर्यमेघाः ॥८७॥  
 इत्थं नागस्त्रिभुवनगुरोरौरसं मैथिलेयं,  
 लब्ध्वा वन्धुं तमपि च कुशः पंचमं तचकस्य ।  
 एकः शङ्कां पितृवधरिपोरस्यजद्वैनतेया,  
 च्छान्तव्यासामवनिमपरः पौरकान्तः शशास ॥८८॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये  
 कुमुदतोपरिणयो नाम षोडशः सर्गः ॥

जीवन भर आपकी सेवा करके प्रपना उपराम मिटाना चाहती है, इसलिये आप इसे अपनी पत्नीके रूपमें ग्रहण कर लीजिए ॥८६॥ यह कहकर कुमुदने बहू आभूषण कुशको दे दिया । कुश बोले—'भाजसे आप मेरे भादरणीय सम्बन्धी हुए' । यह सुनकर कुमुदने अपने कुटुम्बिको बुलाया और बड़ी धूमधामसे अपनी कन्या कुशको ब्याह वी ॥८६॥ जब रात्र कुशने प्राणिके प्राये उत्त कम्पाका ऊनी कगल बेपा हुआ हाथ पकड़ा, उस समय तुरही प्रादि वागोंकी ध्वनिते दिशाएँ पूरे उठी और विविध प्रकारके त्रेषोने आकर आकाशसे सुगन्धित फूल बरसा दिए ॥८७॥ इस प्रकार मागराज कुमुदने त्रिलोकीनाथ विष्णु मर्षाव् रामके सन्ने पुत्र कुशको प्रपना सम्वाधी बनाकर गरुडसे उरना छोड दिया क्योंकि अब वह उसके सम्बन्धीके पिताकर बहिन माध था । कुशने भी नागराज उसाके पाँचवें पुत्र कुमुदको सम्बन्धी बना लिया जिससे सपं दान्त हो गए और कुश पृथ्वीपर भली भाँति राज करने लगे ॥८८॥

महाकवि श्रीकालिदासने रचे हुए रघुवंश महाकाव्यमें कुमुदतीका विवाह नामका सोलहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥

सप्तदशः सर्गः

अतिथिं नाम ककुत्स्थात्पुत्रं प्राप कुमुद्वती ।  
 पश्चिमावामिनीपामात्प्रसादमिव चेतना ॥१॥  
 स पितुः पितृमान्दंशं मातृश्वानुपमद्युतिः ।  
 अपुनत्सवितेवोभौ मार्गावुत्तरदक्षिणौ ॥२॥  
 तमादौ कुलावेद्यानामर्यमर्षविदां वरः ।  
 पश्चात्पार्थिवकन्यानां पाणिमग्राहयत्पिता ॥३॥  
 जात्यस्तेनाभिजातेन शूरः शौर्यवता कुशः ।  
 अमन्यत्तैकमात्मानमनेकं वशिना वशी ॥४॥  
 स कुलोन्नितमिन्द्रस्यसहायकमुपेयिषान् ।  
 जघान समरे दैत्यं दुर्जयं तेन चावधि ॥५॥  
 तं स्वसा नागराजस्य कुमुदस्य कुमुद्वती ।  
 अन्वगात्कुमुदानन्दं शशाङ्कमिव कौमुदी ॥६॥  
 तयोर्दिवस्पतेरासीदेकः सिंहासनार्थमाक् ।  
 द्वितीयापि सखी शूच्याः पारिजातांशभागिनी ॥७॥  
 तदात्मसंभवं राज्ये मन्त्रिशूद्राः समादधुः ।  
 स्मरन्तः पश्चिमामाज्ञां मर्तुः संग्रामयापिनः ॥८॥

ते तस्य कल्पयामासुरभियेकाय शिल्पिभिः ।  
 विमानं नवमुद्देदि चतुःस्तम्भप्रतिष्ठितम् ॥६॥  
 तत्रैनं हेमकुम्भेषु संसृतं स्तीर्थवारिभिः ।  
 उपतस्थुः प्रकृतयो मद्रपीठोपवेशितम् ॥१०॥  
 नदद्भिः स्निग्धगम्भीरं तूर्पैराहतपुष्करैः ।  
 अन्वमीयत कल्याणं तस्याविच्छिन्नसंततिः ॥११॥  
 दूर्वायवाङ्कुरप्लक्षस्वगभिन्नपुटोत्तरान् ।  
 ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्तान्स मेजे नीराजनाविधीन् ॥१२॥  
 पुरोहितपुरोगास्तं त्रिष्णुं जैत्रैरथर्वभिः ।  
 उपचक्रमिरे पूर्वमभिषेक्तुं द्विजातयः ॥१३॥  
 तस्यौषमहती सूध्नि निपतन्ती न्यरोचत ।  
 सशब्दमभिषेकश्रीर्गङ्गेव त्रिपुरद्विपः ॥१४॥  
 स्तूपमानः चण्डे तस्मिन्मलच्यत स वन्दिभिः ।  
 प्रवृद्ध इव पर्जन्यः सारङ्गैरभिनन्दितः ॥१५॥  
 तस्य सन्मन्त्रपूताभिः स्नानमद्भिः प्रतीच्छतः ।  
 वष्टुषे वैद्युतस्याग्नेर्षष्टिसेकादिव द्युतिः ॥१६॥  
 स तावदभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौ वसु ।  
 यावतैषां समाप्तेरन्यथाः पर्याप्तदक्षिणाः ॥१७॥

मभियेने उक्तने मभियेकके तिये वारीगरेमे पार संभोरा नवा मठप वनवाया ॥६॥ प्रजाने  
 मद्रपीठपर बँडे हुए राजा भतिथिनी सोनेने चरौमे मरे हुए तीर्थोने जलते नहताया ॥१०॥ थाप गहने  
 पर मृदव घादि वाजोसे जो गीटा घोर मन्धोर शब्द निराल रहा या यह यह मृपना दे रहा या कि  
 राजा भतिथिवा सदा कल्याण होया ॥११॥ दूब, जोके मयुर बन्धी छात घोर मनुष्य के फूल दोनोंमे  
 रखार मृकने वृद्धोने जो मारती भी, जसे राजा भतिथिने बडे पादरले त्योवार किया ॥१२॥  
 तब पुरोहितजीको भागे करने ब्राह्मण थाए घोर उन्हेने निजभी राजाको प्रयत्नेदके उन मन्त्रीको  
 पदवर नहलाना प्रारम्भ किया जिनसे विजय प्राप्त होनी है ॥१३॥ उनके तिरपर गिरती हुई  
 मभियेकने जलभी पारा ऐसी मुन्दर लगती थी मानो शिवजीने तिरपर मन्त्रीको पारा गिर  
 रही हो ॥१४॥ उस समय भाट घोर पारख जब उनका विरद दरानने लगे तो ऐसा लगना या  
 मानो बहाने पातक मिलवर बादरने कुछ भा रहे हो ॥१५॥ मन्त्रीमे मन्त्रिण हुए जलने स्नान  
 करते समय उनके शरीरका तेज मँने जो उद्यथा जैसे वर्षाके जलमे निजभीकी चगन बर  
 जाती है ॥१६॥ मभियेको पश्चात् उन्हेने पार करानेपाने ब्राह्मणकोरो इतना धन दिया कि उस

ते प्रीतमनसस्तस्मै यामाशिषमुर्दरयन् ।  
 सा तस्य कर्मनिर्वृचैर्दरं पथात्कृता फलैः ॥१८॥  
 वन्धच्छेदं स वद्भानां वधाहंशामवध्यताम् ।  
 धुर्याणां च धुरो मोक्षमदोहं चादिशद्भवाम् ॥१९॥  
 क्रीडापतत्रिणोऽप्यस्य पञ्जरस्थाः शुकादयः ।  
 लब्धमोक्षास्तदादेशायधेष्टगतयोऽभवन् ॥२०॥  
 ततः कल्पान्तरन्यस्तं गजदन्तासनं शुचिः ।  
 सोत्तरच्छदमध्यास्त नेपथ्यग्रहणाय सः ॥२१॥  
 तं धृपायानकेशान्तं तोयनिर्षिक्तपाणयः ।  
 आकल्पसाधनैस्तैस्तैरुपसेदुः प्रसाधकाः ॥२२॥  
 तैऽस्य मुक्तागुणोन्नतं मौलिमन्तर्गतस्रजम् ।  
 प्रत्यूषुः पद्मरागेण प्रभामण्डलशोभिना ॥२३॥  
 चन्दनेनाङ्गरागं च मृगनाभिसुगन्धिना ।  
 समापय्य ततश्चक्रुः पथं विन्यस्तरोचनम् ॥२४॥  
 आमुक्ताभरणः स्रग्वी हंसचिह्नदुकूलवान् ।  
 आसीदतिशयप्रेक्ष्यः स राज्यधीवधृवरः ॥२५॥

पनसे वे स्वयं गहरो बक्षिणा हे-देकर अपना एक-एक यज्ञ कर करने से ॥१७॥ ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर उन्हें जो मासीर्वादि दिया उस मासीर्वादिसे फलोभूत होनेके लिये बहुत दिन बेलने पडे क्योंकि मासीर्वादिने समय तो राजा प्रतिधि अपने पूर्ण जन्मके सरकमी का ही फल भोग रहे थे, [ मासीर्वादिका फल तो उस फलके समाप्त होनेपर प्रारम्भ होता ] ॥१८॥ राज्याभिषेककी प्रसन्नतासे प्रतिधिने माया दी कि बन्धियोंको छोड़ दिया जाय, मृत्यु-दण्ड पाए हुए मारे न जायें, बौध्द होनेवाले पशुओंके बन्धेपरसे कुछ उतार लिए जायें और गोधोषा दूष दक्षदीवी पीनेके लिये छोड़ दिया जाय ॥१९॥ उनकी मायासे विजयके सुखे आदि पक्षी भी छोड़ दिए गए जो अपने मनसे इधर-उधर उड़ कर घूमने लगे ॥२०॥ तब वह अपना राजसी त्तियार करानेके लिये हाथी-दाँतके बने उस सिंहासनपर बैठा जो राज्यजनमें एक धोर रखता हुआ था धोर जिसपर विद्यावन जिज्ञा हुआ था ॥२१॥ मिशरियोंने स्वच्छ हाथोंसे, धूपसे मुग्धपित बेसजाले राजा प्रतिधिसे उग्र प्रणामसे सत्रा दिया ॥२२॥ पून धोर प्रतिधियोंकी मालामाले गर्बे हुए राजाके तिरपर उन्हीने यह पधराम मल्लि गोमा जिसने सुन्दर चमक चारों धोर फैल गई ॥२३॥ तब उन्हीने बरूरीसे बने हुए चन्द्रवत्ता धमराम सगापर गोरोचनसे राजाका मुँह पीठा ॥२४॥ आभूषण धोर माता करने हुए, हंस दया हुआ दुपट्टा छोड़े हुए राजा प्रतिधि उग्र



नेपथ्यदर्शिनश्छाया तस्यादर्शे हिरण्यमे ।  
 विरराजोदिते सूर्ये मेरौ कल्पतरोरिव ॥२६॥  
 स राजककुदव्यग्रपाणिभिः पार्श्ववर्तिभिः ।  
 ययाजुदीरितालोकः सुधर्मान्वमां समाम् ॥२७॥  
 विहाजसहितं तत्र भेजे पैरुक्रमासनम् ।  
 शूडामणिभिर्हृद्दृष्टपादपीठं महीक्षिताम् ॥२८॥  
 शुशुभे तेन चाक्रान्तं मङ्गलायतनं महत् ।  
 श्रीवत्सलक्षणं वक्षः कौस्तुभेनेव कैशवम् ॥२९॥  
 बभौ भूयः कुमारत्वादाधिराज्यमवाप्य सः ।  
 रेखाभाषादुपारूढः सामग्र्यमिव चन्द्रमाः ॥३०॥  
 प्रसन्नमुखरामं तं स्मितपूर्वाभिभाषिणम् ।  
 मूर्तिमन्तमभ्यन्त निस्वासमनुजीविनः ॥३१॥  
 स पुरं पुरुहूतश्रीः कल्पद्रुमनिमग्धलाम् ।  
 क्रममाणश्चक्रार धां नागैर्नैराशतौलसा ॥३२॥  
 तस्यैकस्योच्छ्रितं छत्रं सूर्ध्नि तेनामलत्विषा ।  
 पूर्षराजविषोमौष्यं कृत्स्नस्य जगतो हृत् ॥३३॥

समय ऐसे सुन्दर दिखाई देते थे मानो राजतन्त्रीरूपी बहूके दूहे हो ॥२५॥ सोनेके-चौलटेवाले  
 वर्षणमे जब थे प्रपत्नी सजावट देखने लगे उत समय उनका प्रतिबिम्ब ऐसा भग रहा था मानो  
 सुमोदमके समय गुनेह पर्वतपर कल्पवृक्षका प्रतिबिम्ब पठ रहा हो ॥२६॥ तब थे प्रपत्नी उत सभा-  
 नी भीर चले जो किन्ही भी प्रकार देवतामोकी समाने कम नहीं थी । उनके पीछे-पीछे बहूतसे सैपक  
 हाथसे चेंदर हुलते भीर जव-जवकार करते चल रहे थे ॥२७॥ वहाँ बंदोवा लगे हुए प्रपत्ने पूरे  
 पुरघोके सिंहासनपर थे तत्काल जा बैठे । उनके पंरके नीचे रज्जुका हुआ पीडा प्रणाम करनेवाले  
 राजामोके चिरवी मणिवीची रगटसे पिछ गया ॥२८॥ जैसे भुजके चरखणी चोटसे बने हुए श्रीवत्सके  
 विह्वलाता विष्णुना यज्ञ स्थल कौस्तुभ मणिले चमक उठना है वैसे ही राजा पतिपिने बैठनेसे बहू  
 सभा-भवन भी जगमगा उठा ॥२९॥ राजा प्रतिपिने मुखराज बन्देबा भवतर हो नहीं धामा  
 बयोवि थे कुमार भद्रस्थाने पन्थाव् दुपन्त ही इस प्रकार महाराज हो गए मानो एक बलाबाले  
 चन्द्रमामे तुम्ह सोलहो बवारें था गई हो ॥३०॥ उनका मुख सदा प्रसन्न रहता था भीर  
 थे सपसे हँसकर बोलने थे इसलिये उनके लेवक उन्हें साक्षात् विद्यारथने समान मानते थे  
 ॥३१॥ इन्द्रने समान ऐश्वर्यछाप्ती राजा धर्तिधि जब प्रेयवत्ने समान बलवान् हाथीपर  
 चडकर धयोध्यानि प्रगंभ निजले तब कल्पवृक्षने समान ध्वजासोवाली प्रयोध्या नगरी स्वर्गके  
 समान लगने लगी ॥३२॥ यद्यपि राज-रत्न केवल प्रतिपिने चिरपर ही तथा हुआ था पर

धृमादग्नेः शिखाः पश्चादुदयादंशवो रवेः ।  
 सोऽस्तीत्य तेजसां वृत्तिं समवेवोत्थितो मुखैः ॥३४॥  
 तं प्रीतिनिशद्वैर्त्रैरन्वयुः पौरयोपितः ।  
 शरत्प्रसन्नैर्ज्यातिर्मिर्विभावर्य इव ध्रुवम् ॥३५॥  
 अयोध्यादेवताश्चैनं प्रशस्तायतनार्चिताः ।  
 अनुदधुरनुध्येयं सानिध्यैः प्रतिभागतैः ॥३६॥  
 यावन्नाश्यायते वेदिरभिपेकजलाप्लुता ।  
 तापदेनास्य बेलान्त प्रतापः प्राप दुःसहः ॥३७॥  
 वशिष्ठस्य गुरोर्मन्त्राः सापकास्तस्य धन्विनः ।  
 किं क्षत्साध्यं यदुभये साधयेयुर्न संगताः ॥३८॥  
 स धर्मस्थसह्यः शश्वदर्थिप्रत्यर्थिनां स्वयम् ।  
 ददर्श संशयच्छेद्यान्व्यवहारानतन्द्रितः ॥३९॥  
 ततः परमभिव्यक्तसौमनस्यनिवेदितैः ।  
 युयोज पाफाभिमुखैर्भृत्यान्विज्ञापनाफलैः ॥४०॥  
 प्रजास्तदुगुरुणा नद्यो नभसेष विवर्धिताः ।  
 तस्मिंस्तु भूयसीं पृष्टिं नभस्ये ता इवापयुः ॥४१॥

उस वृक्ष रणके छानने सारे सभारके उस तापकी हूर कर दिया जो कुशाके विषोमसे उत्पन्न हो गया था ॥३३॥ मागकी लपटें घुमा निकलनेके पीछे उठती है और किरणें सूर्यके उदय होनेके पीछे दिखाई देती है पर अतिथिने इव तेजस्विभोके नियगोको भी उलट दिया क्योंकि इनके गुण उनके राजा मनके साम साम प्रकट हो गए ॥३५॥ जैसे शरद् ऋतुकी निर्मल रातीके सारे ध्रुवके चारों ओर घूमते हैं, वैसे ही नगरकी स्त्रियोंकी प्रेम-भरी भाँसें भी अतिथिपर लट्टू हो गई ॥३५॥ अयोध्याके बड़े-बड़े मन्दिरोंके तिन देवताओंकी पूजा की गई उन्होंने भयनी मूर्तिभोके पंठ-पंठकर छुपानेके योग्य राजा अतिथिपर नदी कृपा की ॥३६॥ अभी अभिपेकके जलसे भोगी हुई वेदी सूखने भी न पाई थी कि जलका दुग्धहू प्रताप समुद्रके तटतक पहुँच गया ॥३७॥ गुरु वशिष्ठके मन और धनुषवादी राजाके बाण दोनोंने, कोई ऐसा कार्य नहीं था जिसे मिलकर पूरा न कर सका हो ॥३८॥ चर्मत्यागोके मित्र राजा अतिथि, मालस्य छोड़कर वारी-प्रतिपादियोंके पेचीदे गलबड़े स्वयं निपटाते थे ॥३९॥ जैसे वृक्षको फूला हुआ देखकर यह जान लिया जाता है कि इगळे इतने फल मिलनेके वैसे ही राजा अतिथिके प्रसन्न मुखको देखकर ही उनने सेवक जान जाते थे कि हमे इतना धन मिलेगा ॥४०॥ कुशाके समयमें जो प्रजा सायनक नदीके समान भरी-पूरी रहती थी वह फिर अतिथिके राज्यमें भादोकी नदीके समान और भी

पदुवाच न तन्मिथ्या यद्दौ न जहार तत् ।  
 सोभूद्भग्नव्रतः शत्रुनुद्धृत्य प्रतिरोपयन् ॥४२॥  
 वयोरूपविभूतीनामेकैकं मदकारणम् ।  
 तानि तस्मिन्समस्तानि न तस्योत्तिपिचे मनः ॥४३॥  
 इत्थं जनितरागासु प्रकृतिष्वनुवासरम् ।  
 अक्षोभ्यः स नवोऽप्यासीद्दृढमूल इव द्रुमः ॥४४॥  
 अनित्याः शत्रवो बाह्या विप्रकृष्टाश्च ते यतः ।  
 अतः सोऽप्यन्तराचित्यान्पदपूर्वमजयद्रिपून् ॥४५॥  
 प्रसादाभिमुखे तस्मिंश्चपत्तापि स्वभावतः ।  
 निकपे हेमरेखेव श्रीरासीदनपायिनी ॥४६॥  
 कातर्यं केवला नीतिः शौर्यं स्वापदचेष्टितम् ।  
 अतः सिद्धिं समेताभ्यामुभाभ्यामन्ययेप सः ॥४७॥  
 न तस्य मण्डले राज्ञो न्यस्तप्रखिधिदीधितेः ।  
 अट्टममवर्त्किचिद्द्वयधस्येव विवस्वतः ॥४८॥  
 रात्रिदिवविभागेषु यदादिष्ट महीचिंताम् ।  
 तत्सिपेवे नियोगेन स विफल्पपराद्भुजः ॥४९॥

अधिक उत्तरने लगी ॥४२॥ राजा प्रतिपिने भूहले जो कह दिया उसे पूरा कर दिलाया, जिसे जो वे दिया करते फिर लिया नहीं। पर हाँ, शत्रुघोषो उसादकर उन्हे फिर जमाते समय उन्होंने यह नियम टोट दिया था ॥४२॥ योवन, सीमर्य और ऐश्वर्य, इनमेसे एक भी बस्तु जिसके पास होती है वह मतवाला हो जाता है, पर राजा प्रतिपिके पास ये सभी थे फिर भी उन्हे अनिमान सू तक न गया था ॥४३॥ इस प्रकार प्रजा उनसे दिनपर दिन अधिक प्रेम करने लगी और नये राजा होनेपर भी वे गहरी जटवाले मृक्षके समान अचल हो गए ॥४४॥ यह सोचकर कि बाहरी शत्रु तो सदा होते गही और होते भी हैं तो दूर रहते हैं, इसलिये उन्होंने शरीरने भीतर घुसा रहनेवाले उन्हे [बाम, क्षीप, मोम, मोह, मद, मत्सर] शत्रुघोषने पहले ही जीत लिया ॥४५॥ स्वभावसे अचल मरुती जो प्रमन्न मुखवाले प्रतिपिके पास थापर उसी प्रकार अचल होपर बैठ गई जैसे बरौंटीपर बनी हुई खोनेकी सकीर बननी होकर बैठ जाती है ॥४६॥ वेदल दूटनीजिसे बाम लेना नाकरता है और मारजाटये जीतना हिसक पशुघोषा स्वभाव है, इसलिये उन्होंने दूटनीति और मारजाट दोनोंकी मिलाकर शत्रुघोषो जीता ॥४७॥ जैसे कुले आनाजमे मूर्यकी निरखोने फल जानने कुय भा दिया नहीं रह जाता, वैसे ही प्रतिपिने पारो और दूतीका ऐसा जान विष्णु दिया कि प्रजाकी कोई बात उनसे छिपी नहीं रह पाती थी ॥४८॥ बाह्यने राजाप्रति लिए दिन और रातने जो बर्तव्य निर्धारित किए हैं

मन्त्रः प्रतिदिनं तस्य बभूव सह मन्त्रिभिः ।  
 स ज्ञातुं सेव्यमानोपि गुप्तद्वारो न सूच्यते ॥५०॥  
 परेषु स्वेषु च चिप्टरैर्विज्ञातपरस्परैः ।  
 सोऽपसर्वैर्जलागार यथाकालं स्वपत्रापि ॥५१॥  
 दुर्गाणि दुर्ग्रहाण्यासंस्तस्य रोद्धुरपि द्विषाम् ।  
 न हि सिंहो गजास्कन्दी भवाद्भिरिगुहाशयः ॥५२॥  
 भव्यमुत्प्याः समारम्भाः प्रत्यवेक्ष्या निरत्ययाः ।  
 गर्भशासिसधर्माणस्तस्य गृहं विपेचिरे ॥५३॥  
 अपथेन प्रवृत्ते न जातूपचितोऽपि सः ।  
 वृद्धौ नदीसुरेनैव प्रस्थानं सवयाम्भसः ॥५४॥  
 कामं प्रकृतिवैराग्यं सद्यः शमयितुं क्षमः ।  
 कस्य कार्यः प्रतीकारः स तन्नैवोदपादयत् ॥५५॥  
 शपयेष्वेवाभवद्यात्रा तस्य शक्तिमतः सतः ।  
 समीरणसहायोऽपि नाम्भःप्रार्थी दवानलः ॥५६॥

उन सबको राजा प्रतिदिन बिस्वामित्रे साथ नियमपूर्वक पातते थे ॥५६॥ वे प्रतिदिन मन्त्रियोंके साथ राज्यकी बातें करते थे, पर वे बातें इतनी गुप्त रखी जाती थी कि प्रतिदिन व्यवहारमें जानेपर भी किसीकी जनना ज्ञान नहीं हो जाता था ॥५०॥ उन्होंने अपने कर्मचारियों तथा तानुश्रीका भेद जानेके लिये ऐसी चतुराईसे उनके पीछे दूत लगा रखे थे कि वे दूत भी धारणमें एक दूसरेको नहीं पहचान पाते थे । उन दूतोंके सत्र समाचार मिलते रहनेके कारण वे सोने हुए भी भानी जागते रहते थे ॥५१॥ यद्यपि वे मुट्ठम ही शत्रुओंको घेरते थे फिर भी उन्होंने राजधानीके चारों ओर बहुत बड़े-बड़े दुर्ग बना दिये थे क्योंकि हाथियोंकी मारनेवासा सिंह गुफामें टापियोंने भयसे नहीं सोता है परन्तु उसका स्वभाव हाँ वीसा होता है ॥५२-॥ वे जो काम करते थे सब कल्याणकारी होते थे । वे कोई काम करने परने उसपर भलीभाँति विचार भी करते थे । इसलिए उसने किसी प्रकारकी घापा नहीं पड़ती थी । जैसे धानका दाना भीतर ही भीतर पर जाता है वैसे ही जनना काम भी गुप्त रूपसे ही धारण होकर पूरा हो जाता था ॥५३॥ ऐश्वर्यवाली होकर भी उन्होंने छोटे भागमें संर नहीं परा क्योंकि उधारके समय भी जब समुद्र बढ़ता है तब नदियोंके मार्गसे ही बड़ता है दूसरे मार्गसे नहीं ॥५४॥ जनमें इतनी शक्ति थी कि ज्ञानमें यदि किसी कारण अज्ञानता हो तो उसे क्षण भरमें दूर कर दें पर उन्होंने प्रजाके कोई ऐसा धर्मोप उलान ही नहीं होने दिया जिसे दूर करने की आवश्यकता पड़े ॥५५॥ वे अज्ञानसे ही ज्ञानवादी राजाओंपर ही गमाई करते थे, दुर्बलोंपर नहीं क्योंकि बाजुकी गह्यना मिलने पर भी जनमें लगी

न धर्ममर्थकामाम्यां ववाधे न च तेन तौ ।  
 नार्थं कामेन कामं वा सोऽर्थेन सदृशस्त्रिषु ॥५७॥  
 हीनान्यनुपकवृत्तिं प्रवृद्धानि विकुर्वते ।  
 तेन मध्यमशक्तीनि मित्राणि स्थापितान्यतः ॥५८॥  
 परात्मनोः परिच्छिद्य शक्तयादीनां बलाबलम् ।  
 यथावेभिर्दलिष्टश्चेत्परस्मादास्त सोऽन्यथा ॥५९॥  
 कोशेनाश्रयणीयत्वमिति तस्यार्थसंग्रहः ।  
 अभ्युगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्दते ॥६०॥  
 परकर्मापहः सोऽभूदुद्यतः स्वेषु कर्मसु ।  
 श्रावृणोदात्मनोरन्ध्रं रन्ध्रेषु प्रहरन्निपून् ॥६१॥  
 पित्रा संवर्धितो नित्यं कृतात्मः सांपरायिकः ।  
 तस्य दण्डवतो दण्डः स्वदेहात्त व्यशिष्यत ॥६२॥  
 सर्पस्येव शिरोरत्नं नास्य शक्तित्रयं परः ।  
 स चर्क्य परस्माच्चदयस्कान्त इवायसम् ॥६३॥  
 वापीष्विव स्रवन्तीषु वनेषूपवनेष्विव ।  
 सार्थाः स्वैरं स्वकीयेषु चैरुर्वेश्मस्त्रिषु ॥६४॥

हुई प्राण, कामी पानीकी नहीं जलाती ॥५६॥ उन्होंने अर्थ और कामके लिये कमी परमकी नहीं छोड़ा  
 और धर्मके अंधकर अर्थ और कामकी नहीं छोड़ा और न धर्मके कारण कामकी या कामके कारण  
 धर्मकी छोड़ा बरदू धर्म, अर्थ और काम तीनोंके साथ वे एक-सा व्यवहार करते थे ॥५७॥ यदि  
 नीच मित्र मिल जाते हैं तो कुछ न कुछ लोट अवश्य करते हैं यदि धनी मिल जाते हैं तो कुछ न  
 कुछ पापा डालते हैं, इसलिए उन्होंने ऐसे लोगोंकी मित्र बनाया जो न नीच ही थे, न धनी ही  
 थे ॥५८॥ बढ़ाई करनेके पहले वे अपने और अपने शत्रुके बस और बृटिको भलीभाँति तील लेते थे ।  
 जब शत्रुके अपने बस अधिक देखते थे तभी उसपर आक्रमण करते थे नहीं तो चुप बैठ रहे थे ॥५९॥  
 उन्होंने इसलिये मन इकट्ठा किया कि एक तो इससे सावर होता है और दूसरे, दीन लोग आकर  
 भाष्य लेते हैं क्योंकि चाकर उन्ही वादलाका स्वागत करते हैं जिनके पानी भरा होता है ॥६१॥  
 शत्रुकी उद्योग नष्ट करनेके वे अपने उद्योगके सब गए । उन्होंने शत्रुकीके शेषों का नाम उठाकर  
 उन्हें नष्टकर दिया और अपने लोग दूर कर लिए ॥६१॥ युद्धके प्रयत्नसे ही बड़ी हुई सलाख चलाना  
 जाननेवाली और मुढ़ करनेके समर्थ जो उनकी सेना थी उसे दण्डपर प्रतिधि अपने शरीरके सनात  
 सेनाल कर रखते थे ॥६२॥ जैसे सर्पके सिरके मणि नहीं निकाली जा सकती वैसे ही शत्रु उनके  
 प्रभाव, उत्साह और मन्त्र इन तीन शक्तियोंको अपनी और नहीं खींच सके । पर जैसे धुमक लोहेको  
 अपनी और खींच लेता है वैसे ही उन्होंने शत्रुकीके उन तीनों शक्तियोंको अपनी और खींच लिया  
 ॥६३॥ अतिथिवा इतना प्रताप था कि व्यापारी लोग ऐसे वै-रोक-टोक व्यापार करते थे कि यदि

तपो रक्षन्स विघ्नेभ्यस्तस्करेभ्यश्च संपदः ।  
 यथास्वमाश्रमैश्चक्रे वक्षैरपि पटंशभाक् ॥६५॥  
 खनिभिः सुषुवे रत्नं क्षेत्रैः सस्थं वर्नैर्गजान् ।  
 दिदेश क्षेत्रं तस्मै रक्षासदृशमेव भूः ॥६६॥  
 स गुणानां बलानां च पक्ष्णांपक्ष्णस्रविक्रमः ।  
 बभूव विनियोगज्ञः साधनीयेषु षस्तुषु ॥६७॥  
 इति क्रमात्प्रमुञ्जानो राजनीतिं चतुर्विधाम् ।  
 आतीर्थ्यादप्रतीघातं स तस्याः फलमानशे ॥६८॥  
 कूटयुद्धविधिज्ञेऽपि तस्मिन्सन्मार्गयोधिनि ।  
 भेजेऽभिसारिकावृत्तिं जयश्रीर्वीरगामिनी ॥६९॥  
 प्रायः प्रतापमग्नत्वादरीणां तस्य दुर्लभः ।  
 रथो गन्धद्विपस्येव गन्धभिन्नाल्पदन्तिनः ॥७०॥  
 प्रवृद्धौ हीयते चन्द्रः समुद्रोऽपि तथाविधः ।  
 स तु तत्समवृद्धिरच न चामूत्ताविव क्षयी ॥७१॥

इनके लिए आवश्यकें जैसी धरेलू मन भी उपाय जैसे सुलवर, तीर, पहाव धरने भवन जैसे सुगम हो गये ॥६४॥ उन्होंने विघ्नोंके तपस्वियोंके तपनी रक्षा की, चौरासे प्रजाकी सर्वात्मको बचाया और नारी प्राश्रयो तथा चारों बल्लिसे उनके धनके अनुसार छटा भाग पाया ॥६५॥ किस प्रकार वे रक्षा कर रहे थे उसी प्रकार पृथ्वी भी उन्हें ऐश्वर्य देती जा रही थी । खानोंके रत्न दिए, क्षेत्रोंके खान दिए और बनोंके लकड़ें हाथी दिए ॥६६॥ कार्तिकेयके समान पराक्रमी राजा अतिथि यह भलीभाँति जानते थे कि [ सन्धि, विग्रह, मान, धासन सथय और वंशीभाव इन ] छह राजगुणों को कैसे व्यवहारमें लाना चाहिए तथा छह प्रकारकी सेनाधोने साथ फंदा बताने करना चाहिए ॥६७॥ इस प्रकार साम, दाम, दम्ब, भेद इन चार उपायोंन साथ राजनीति चलाते हुए उन्होंने मन्त्रियों आदिनी सहायतासे उन उपायोंका निश्चित फल पा लिया ॥६८॥ वे नरद युद्ध भी जानते थे पर युद्धक्षेत्रमें वे धर्मकी सहायता ही करते थे, इसलिये वीरोंकी सली विजयकी सन्ने पाठ अभिसारिकाके समान चुपकेसे पहुँच जाती थी ॥६९॥ युद्ध क्षेत्रमें अतिथिनी देखते ही शत्रुओंके छक्के छूट जाते थे और वे प्राण भेकर भाग छूटे होते थे, इसलिये जैसे जिना घटवाले हाथी, मतवाले हाथीसे नहीं लड़ पाते वैसे ही प्रतापी राजा अतिथिसे लड़नेवा बोंई साहस ही नहीं करता था ॥७०॥ पूरा वह बुननेपर बन्दगा घटने लक्षता है और समुद्रनी भी यही दया होती है, पर अतिथिने खाद्य बात उलटी थी । वे चन्द्रमा और समुद्रने समान बटे तो सही पर उनने समान घटे नहीं ॥७१॥

सन्तस्तस्यामिगमनादत्यर्थं महतः कृशाः ।  
 उद्धेरिव जीमता प्राप्नुदन्तित्वमर्थिनः ॥७२॥  
 स्तूयमानः स विहाय स्तुत्यमेव समाचरन् ।  
 तथापि बहुधे तस्य तत्कारिद्वेषिणो यशः ॥७३॥  
 दुरितं दर्शनेन वृत्तचार्येण नुदन्तमः ।  
 प्रजाः स्वतन्त्रयांचक्रे शश्वत्सूर्य उद्योदितः ॥७४॥  
 इन्द्रोत्गतयः पद्मे सूर्यस्य कुमुदोऽश्वः ।  
 गुणास्तस्य विपक्षेऽपि गुणिनो ज्येभिरुन्तरम् ॥७५॥  
 पराभिमंथानपरं यद्यप्यम्य विचेष्टितम् ।  
 जिगीषोरथमेधाय धर्म्यमेव यभूव तत् ॥७६॥  
 एवमुद्यन्प्रभाषेण शास्त्रनिर्दिष्टवर्त्मना ।  
 घृपेव देवो देवानां रात्रां रात्रा वभूव सः ॥७७॥  
 पञ्चमं लोकपालानामृचुः साधर्म्ययोगतः ।  
 भूतानां महतां पष्टमष्टमं कुलभूभृताम् ॥७८॥  
 दूरापवजितच्छत्रैस्तस्याज्ञां शासनापिताम् ।  
 दधुः शिरोभिर्भूपाला देवाः पौरंदरीमिव ॥७९॥

जैसे बिना पानीके भेष समुद्रके पास जाते हैं और वह उन्हें शय्या बस दे देता है कि वे सारा भरको जल बाँटने लफटे हैं, वैसे ही जो बहुतसे निर्बल विद्वान् प्रतिधिके पास जाते हैं उन्हें वे इतना धन दे देते थे कि वे विद्वान् स्वयं भी दूतरोको वाव देने लगते थे ॥७२॥ उनके सभी काम प्रशस्तानके योग्य होते थे पर पाप कोई उनकी प्रशस्त करता था तब वे शत्रुका जाते थे पर प्रशस्तानी इच्छा न करनेपर भी उनका धन बढ़ता ही गया ॥७३॥ जैसे निकलने हुए सूर्यके दर्शनसे पाप दूर हो जाते हैं वैसे ही उनके दर्शनसे पाप भाग जाते थे । वे शस्त्री भी वे इसलिये थे दूतरोको तरब-ज्ञान सिखाकर भक्तानका भँवरा भी मिटाते थे । इसलिये उन्होंने प्रजाको सब प्रकारसे प्रपन्नो मुट्टीमे कर लिया ॥७४॥ वन्द्यमात्रो विरह्यो वमसोमे तथा सूर्यका विरह्यो कुमुदमे नहो पंठ पातो, पर प्रतिधिके गुणोने शत्रुमोके हृदयमे भी घर कर लिया और शत्रु भी उनके गुणोका लोहा मानते थे ॥७५॥ ध्रुवमेघके लिए ध्वज वे दिग्बिजय करने निवले तब इन्का नाम यद्यपि शत्रुधोरो जित्त-तिस प्रकर हराना ही था पर उस समय भी उन्होंने परमसे ही नाम लिया, नूतनीति ययता धनसे नहीं ॥७६॥ इस प्रकार शास्त्रोने अनुसार चलनेसे प्रतिधिका प्रभाव बढ गया और जैसे इन्द्र देवतामोके देवता हैं वैसे ही वे भी राजामोके राजा हो गए ॥७७॥ इन्द्र आदि चारो लोकपालोके समान पराक्रम होनेके कारण लोग उन्हें पाँचवाँ लोकपाल कहते लगे थे [ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्राणात्त इत ] पाँचो तत्वोके समान नहान होनेके कारण लोग उन्हें छत्र तत्त्व कहते थे और हिमालय आदि साठ कुल पर्वतोके समान विरासत होनेके कारण वे स्रष्टव-मुल पर्वत कहलते थे ॥७८॥ जैसे देवता लोग

ऋत्विजः स तथाऽऽनर्च दक्षिणाभिर्महाकृतौ ।

यथा साधारणीभूतं नामास्य घनदस्य च ॥८०॥

इन्द्राद्दृष्टिर्नियमितगदोद्रेकवृत्तिर्यमोऽम्

द्यादोनाथः शिष्यजल्पथः कर्मथे नौचराणाम् ।

पूर्वापेक्षी तदनु विदधे कोपवृद्धिं कुबेर

स्तस्मिन्दृष्टोपनतचरितं मेजिरे लोकपालाः ॥८१॥

इति महाकविश्रीकालिदासवृत्तौ रघुवशे महाकाव्ये

श्रुतिविवर्णनो नाम सप्तदशः सर्गः ॥

इन्द्रकी प्राप्ति मानते है वैसे ही राजालोच भी अपने लज्ज उतारकर उनकी प्राप्ति अपने सिर-धामे बताते थे ॥७९॥ प्रद्वेषके समय जिन द्राष्टाणोने यज्ञ कराया था उनका अतिथिने इतना सरवार किया कि लोग इन्हें भी दूसरा कुबेर कहने लगे ॥८०॥ इन्द्रने अपने साक्षात्पुत्र वर्णाक्षी, यमराजने रोषोका बढना रोका, वरुणने नाव चलानेवालोंके लिये जसके मार्ग खोल दिए और कुबेरने इनका राज-कोश भर दिया । इस प्रकार इन्द्र आदि लोगपाल मानो इन्के प्रतापसे ही डरकर इनकी सेवा कर रहे थे ॥८१॥

महाकवि श्रीकालिदासके रचे हुए रघुवश महाकाव्यमे श्रुतिविवर्णन

नामका सप्तहर्षा सर्ग समाप्त हुआ है ।



## ॥ अष्टादशः सर्गः ॥

स नैपथ्यस्यार्थपतेः सुतायामुत्पादयामास निपिद्वशत्रुः ।  
 अनूनसारं निपधानगेन्द्रात्पुत्रं यमाहुर्निपथास्वमेव ॥१॥  
 तेनोरुचीर्येषु पिता प्रजायै कल्पिष्यमाणेन ननन्द यूना ।  
 सुवृष्टियोगादिषु जीवलोकः सस्येन संपत्तिफलोन्मुखेन ॥२॥  
 शब्दादि निर्विंशत्य सुखं चिराय तस्मिन्प्रतिष्ठापितराजशब्दः ।  
 कौमुद्व्रतेषुः कुमुदावदातैर्घामिर्जितां कर्मभिरारुरोह ॥३॥  
 पौत्रः कुशास्यापि कुशेशयावः ससागरां सागरधीरचेताः ।  
 एकात्पत्रां भुवमेकधीरः पुरार्गलादीर्घभुजो बुभोज ॥४॥  
 तस्यानलौजास्तनयस्तदन्ते वंशत्रियं प्राप नलाभिधानः ।  
 यो नद्वलानीव गजः परेषां बलान्पृष्टद्वलानाभवक्त्रः ॥५॥  
 नभश्चरैर्गीतयशाः स क्षेमे नमस्तलश्यामतनुं तनूलम् ।  
 ख्यातं नभःशब्दमयेन नाम्ना कान्तं नभोमासमिव प्रजानाम् ॥६॥  
 तस्मै विमृज्योत्तरकोशलानां धर्मोत्तरस्तत्प्रभये प्रभुत्वम् ।  
 मृगैरज्यै जरतोपदिष्टमदेहधन्वाय पुनर्वयन्ध ॥७॥

## शठारहवां सर्ग

धनुष्मोक्षा नाथ करनेवाले राजा प्रतिविभी रानी निपथ-राजकी पुत्री थी । उस रानीसे प्रतिपिने  
 निपथ पर्वतके समान बलवान् पुत्र उत्पन्न किया और उसका नाम भी निपथ रखा ॥१॥ जैसे  
 रामकी हृषिके फले हुए अनाजके सेतीनी देखकर ससारके प्राणी प्रसन्न हो जाते हैं, वैसे ही भरतन्त्र  
 प्रतापी सुवराज निपथकी देखकर राजा प्रतिवि भी प्रसन्न हुए ॥२॥ कुमुद्व्रतीके पुत्र प्रतिविने बहुत  
 दिनोत्तक सुख भोग और फिर निपथको राजपाट छीपकर अपने पुष्योके बलसे पाए हुए स्वर्गलोकमें  
 सुख भोगने लगे गए ॥३॥ कमलके समान नेत्रवाले, समुद्रके समान चम्भीर बिलवाले और नगरके  
 प्रधान फाटवकी अमलाके समान लकी-लकी बाहोवाले अद्वितीय और निपथने भी सागरतक फैली हुई  
 पृष्ठीका भोग किया ॥४॥ उनके पीछे उनके धर्मिके समान तेजस्वी पुत्र नल राजा हुए ।  
 उस कमलके समान सुन्दर भुलवाले राजाने धनुष्मोके बसकी बंरो ही तोड़ बला जैसे हाथी  
 गरकटके गर्दुकी तोड़ डालता है ॥५॥ वे इतने यत्नकी थे कि आकाशमें पञ्चवें लोग उनका  
 यश गाते थे । उन्हें धान(धक)के समान सविला नभ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ जो लोगोंको बैसा ही प्यारा  
 लगा जैसे धानका महीना ॥६॥ यमरिया मलने उस पुत्रको उत्तर कोशलका राज्य सौंप दिया  
 और स्वयं बुद्धिपके कारण जगत्में जाकर मृत्योके साथ स्वयंसे रहने लगे कि फिर ससारमें जन्म

तेन द्विपानामिव पुण्डरीको राज्ञामजस्योऽजनि पुण्डरीकः ।  
 शान्ते पितर्याहृतपुण्डरीका यं पुण्डरीकाक्षमिव श्रिता थीः ॥८॥  
 ॥ क्षेमघन्वानममोघधन्वा पुत्रं प्रजाक्षेमविधानदक्षम् ।  
 क्षमां लम्भयित्वा क्षमयोपपन्नं वने तपः क्षान्ततरश्चचार ॥९॥  
 अनीकिनीनां समरेऽग्रयायी तस्यापि देवप्रतिमः सुतोऽभूत् ।  
 व्यश्रूयतानीकपदावसान देवादि नाम त्रिदिकेषु यस्य ॥१०॥  
 पिता समाराधनतत्परेण पुत्रेण पुत्री स यथैव तेन ।  
 पुत्रस्तथैवात्मजवत्सलेन स तेन पित्रा पितृमान्यभूव ॥११॥  
 पूर्वस्तपोरात्मसमे चिरोढामात्मोद्भवे वर्णचतुष्टयस्य ।  
 पुरं निधायैकनिधिर्गुणानां जगाम यज्या यजमानलोकम् ॥१२॥  
 वशी सुतस्तस्य वशंवदत्वात्स्वैपामिवासीद्विपतामपीष्टः ।  
 सकृद्विविग्नानपि हि प्रयुक्तं माधुर्यमीष्टे हरिणान् ग्रहीतुम् ॥१३॥  
 अहीनगुर्नाम स गां समग्रामहीनवाहुव्रविण्णः शशास ।  
 यो हीनसंसर्गपराङ्मुखत्वाद्युवाप्यनर्थैर्व्यसनैर्विहीनः ॥१४॥  
 गुरोः स क्षान्तरमन्तरज्ञः पुंसां पुमानाद्यश्चावतीर्थाः ।  
 उपक्रमैरस्खलितैश्चतुर्भिश्चतुर्दिगीशश्चतुरो बभूव ॥१५॥

न तेना वसे ॥७॥ नभको पुण्डरीक नामका पुत्र हुआ और जैसे हाथियोसे पुण्डरीक नामका हाथी सर्वश्रेष्ठ है वैसे ही उस समयके राजाप्रोमे वे ही सर्वश्रेष्ठ थे । पिताके स्वर्ग गले जानेपर कमल धारण करनेवाली सक्षमीने उन्हे ही विष्णु मानकर बर सिखा ॥८॥ उन सप्त धनुषधारी पुण्डरीकने प्रजाका कल्याण करनेसे सर्वश्रेष्ठ और शास्य स्वभाववाले अपने पुत्र क्षेमघन्वाको राज सौंप दिया और स्वयं शान्त होकर जङ्गलमें तपस्या करने चले गए ॥९॥ उस क्षेमघन्वाको भी इंद्रके समान पुत्र हुआ जो युद्धमें सेनाके आगे-आगे चलता था और जिसका देव शब्दसे प्रारम्भ होनेवाला और मनीक शब्दसे अन्त होनेवाला देवानीक नाम स्वर्गमें भी प्रसिद्ध हो गया ॥१०॥ जैसे इस पितृभक्त पुत्रको पाकर क्षेमघन्वा सुपुत्रवान् हुए, वैसे ही पुत्रको प्यार करनेवाले पिताको पाकर देवानीक भी पितावाले हुए ॥११॥ बड़े-बड़े व्रत करनेवाले गुणी क्षेमघन्वा अपने हा समान तेजस्वी पुत्रको चारों बलोंकी रक्षाका भार सौंपकर स्वर्ग चले गए ॥१२॥ उनके बिलेन्द्रिय पुत्र देवानीक इतना मधुर बोलते थे कि शत्रु भी उनका वेंग ही प्रार्थन करते थे जैसे मित्र । क्योंकि मधुर वचनसे ऐसा प्रभाव होता है कि एक बार उदाए हुए हरिण भी व्रतमें हो जाते हैं ॥१३॥ देवानीकके पुत्रका नाम ग्रहीनग था । उनकी बहि बड़ी पाण्डि-शासिनी थी । उन्होंने कभी नीच लोगोंका साथ नहीं किया, इसलिये व्यसनीसे दूर रहकर युवास्वामि ही वे सारी पृथ्वीपर वासन करने लगे ॥१४॥ वे बड़े चतुर थे और सबके मनकी बाटें जान लेते थे । पिताके पीछे राजा होकर वे सकलताके साथ साम-दाम-दंड भेदका प्रयोग करके शीघ्र ही विष्णुके समान चारों दिशाओंके

तस्मिन्प्रयाते परलोकयात्रां जेत्यरीणां तनयं तदीयम् ।  
 उच्चैःशिरस्त्वाज्जितपारियात्रं लक्ष्मीःसिपेवे किल पारियात्रम् ॥१६॥  
 तस्याभवत्तनुरुदारशीलः शिलाः शिलापट्टविशालवक्षाः ।  
 जितारिणोऽपि शिलीमुखैर्यः शालीनतामत्रजटीव्यमानः ॥१७॥  
 तमात्मसंपन्नमनिन्दितात्मा कृत्वा युवानं युवराजमेव ।  
 सुखानि सोऽभुङ्क्त सुखोपरोधि वृत्तं हि राज्ञागुपकृद्भृत्तम् ॥१८॥  
 तं रागवन्धिष्ववितृप्तमेव भोगेषु सौभाग्यविशेषभोग्यम् ।  
 बिलासिनीनामरतिक्षमापि जरा वृथा मत्सरिणी जहार ॥१९॥  
 उन्नाभ इत्युद्गतनामधेयस्तस्यायथार्थोन्नतनाभिरन्ध्रः ।  
 सुतोऽभवत्पङ्कजनामकल्पः कृत्स्नस्य नाभिर्नृपमण्डलस्य ॥२०॥  
 ततः परं वज्रधरप्रभायस्तदात्मजः संयति वज्रधोपः ।  
 बभूव वज्राकरभूपत्यायाः पतिः पृथिव्याः किल वज्रलाभः ॥२१॥  
 तस्मिन्मते द्यां सुकृतोपलब्धां सत्संभवं शङ्खणमर्षवान्ता ।  
 उत्खातशत्रुं वसुधोपतस्थे रत्नोपहारैरुदितैः खनिभ्यः ॥२२॥  
 तस्यावसाने हरिदश्वधामा पित्र्यं प्रपदे पदमधिरूपः ।  
 वेलातटेपृषितसैनिकाश्वं पुराविदो यं व्युपिताथमाहुः ॥२३॥

स्वामी ही गए ॥१५॥ उस शत्रुविजयी राजाके स्वर्ण चने जानेपर भयोप्याकी राज लक्ष्मी उन  
 प्रतापी पुत्र पारियात्रकी सेवा करने लगी जिन्होंने अपने सिरकी अंचाईसि पारियात्र पर्वतकी  
 नीचा बिला बिना था ॥१६॥ उन्हें शिल नामका बड़ा शीलवात् पुत्र हुआ जिसकी छापी पास  
 पाटी जैसी चौड़ी थी । यद्यपि उन्होंने वाखांसे शत्रुधोको जीत लिया फिर भी स्वयं वे नम्र  
 रहे ॥१७॥ कुछ चरित्रवाले पारियात्रने बुद्धिभाव जिसको युवराज बनानेपर ही मुल भोगना प्राप्त  
 किया, क्योंकि राजा रहते हुए उन्हें इतके अधिक काम थे कि उन्हें सुख भोगनेवे लिये अक्षर ही क  
 मिलता था ॥१८॥ वे अपनी गोगोसे अर्षाए नहीं थे और गुन्दरी स्थियोसे भोग कर ही रहे थे ।  
 उन्हें उस वृथावस्थाने सा बेरा जो स्वयं भोगने योग्य न होनेपर भी सुन्दरियोंसे ध्यर्ष ही ईद  
 करती है ॥१९॥ जिसको उन्नाभ नामका प्रशिद्ध पुत्र हुआ जिनकी नाभि पहरी थी और  
 विष्णुके समान पराक्रमी होनेके कारण उसरके सभी राजाधोके मुखिया बन गए ॥२०॥  
 उनके पीछे उनके पुत्र पञ्चनाभ, हीरेकी रानोका भुषण पहननेवाली पृथ्वीके स्वामी हुए । वे इन्द्र  
 समान प्रभायपानी थे और मुदक्षेत्रम वन्दने समान गरजते थे ॥२१॥ उन्होंने अपने पुष्य  
 यत्से स्वर्ण प्राप्त किया और उनके पीछे शरलक्ष नामका उनका शत्रुविनाशक पुत्र धारी पृथ्वीके  
 पासक हुआ ॥२२॥ उनके पीछे उनके अस्त्रिनीकुमारके समान सुन्दर और सूर्यके समान तेजः  
 पुत्र राजा हुए जिन्होंने सब देवोको जीतकर अपनी मेना और पीठोको समुद्रके तटपर ठहराया  
 इसलिये वृद्धोंने उनका नाम व्युपितात्व [अर्थात् बहुत दूरतक घोडोको ले जानेवाला] रखा ॥२३॥

आराध्य विश्वेश्वरमीश्वरेण तेन चित्तेभिश्चसहो विजज्ञे ।  
 पातुं सहो विश्वसह्यः समग्रां विश्वंमरामात्मजमूर्तिरात्मा ॥२४॥  
 अंशे हिरण्याक्षरिपोः स जाते हिरण्यनामे तनये नपत्नः ।  
 द्विपामसह्यः सुतरां वस्त्रां हिरण्यरेता इव सानिलोऽभूत् ॥२५॥  
 पिना पितृणामनृणस्तमन्ते वयस्यनन्तानि सुप्तानि लिप्सुः ।  
 राजानमाजानुविलम्बिवाहुं कृत्वा कृती वल्कलान्भूव ॥२६॥  
 कौशक्ष्य इत्युचारकोशलानां पत्युः पतङ्गान्वयभूपणस्य ।  
 तस्यौरसः सोमसुतः सुतोऽभून्नेत्रोत्सवः सोम इव द्वितीयः ॥२७॥  
 यशोभिराम्रसमं प्रकाशः स ब्रह्मभयं गतिमाजगाम ।  
 ब्रह्मिष्ठमाधाय निजेऽधिकारे ब्रह्मिष्ठमेवं स्वतनुप्रसूतम् ॥२८॥  
 तस्मिन्कुलापीडनिमे विपीडं सम्यङ्महीं शासति शासनाङ्काम् ।  
 प्रजाक्षिरं सुप्रजसि प्रजेशे ननेन्दुरानन्दजलाविलाक्ष्यः ॥२९॥  
 पाप्रीकृतात्मा गुरुसेवनेन स्पष्टाकृतिः पत्नरथेन्द्रकेतोः ।  
 तं पुत्रिणां पुष्करपत्रनेत्रः पुत्रः समारोपयदग्रसंख्याम् ॥३०॥  
 वंशस्थितिं वंशकरेण तेन संभाव्य भावी स सखा भवोनः ।  
 उपस्पृशन्स्पर्शनिवृत्तलौल्यस्त्रिपुष्करेण त्रिदशत्वमाप ॥३१॥

उन्हीने पाप्रीके विष्वेस्वरणी आराधना करने विश्वसह नामक पुत्र पाया जो सत्कारमे बड़े प्रिय हुए  
 और जिन्हीने सारी पुष्पीपर शासन किया ॥२४॥ उस नीतित्त विश्वसह्यको हिरण्यनाम नामक  
 पुत्र उत्पन्न हुआ जो सहाय विष्णुका भय था । ऐसे पुत्रको पाकर विश्वसह्य तनुभोगे निन्दे ईसेही  
 भयकर हो गए जैसे वायुकी सहायता पाकर कृशोके निन्दे भयि भयकर हो उठती है ॥२५॥  
 भय वै विहाके श्रुते उन्हीने ही गए और बहुत मुख भोगकर वृद्धायस्थाम पुत्रको राज्य देकर  
 स्वयं बलकन पहनकर घनमे चले गए ॥२६॥ उत्तर बोधकने स्वामी और सूर्यकुलने भूपण  
 उन हिरण्यनामकी कौशक्ष्य नामका पुत्र हुआ, जो सखी पौत्रोको उसी प्रकार धान्य  
 देनेवाला था मानो दूसरा चन्द्रमा ही हो ॥२७॥ कोशलनाका यश ब्रह्मणी तथा एक प्रतिद  
 हो गया । ब्रह्मावस्थामे उन्हीने ब्रह्मिष्ठ नामके अपने ब्रह्मजानी पुत्रको राम्य दे दिया  
 और स्वयं ब्रह्म प्राप्तिके लिये यन्त्रे उप करने चले गए ॥२८॥ भती सन्तानवाले ब्रह्मिष्ठ  
 भी अपने कुलके शिरोमणिले थे । उन्हीने बड़ी योग्यतासे शासन दिया । उनके सुन्दर  
 शासनको देखकर प्रजाको धान्यके आसु था जाते थे । उनके धान्यमे प्रजा बहुत दिनोतक मुख  
 भोगती रही ॥२९॥ उनमें सुपुत्रने उन्हें पुत्रधानोका शिरोमणिल बना दिया । पितानी सेवाधुधूपा  
 करनेके वै बड़े योग्य हो गए थे । वे शरद्व्यन विष्णुके यमान सुन्दर थे और उन नामलतीचनना  
 नाम भी पुत्र ही था ॥३०॥ विषय वासनाकोसे दूर रहकर दृढ़के भावी मित्र ब्रह्मिष्ठने अपनी कुल  
 प्रतिष्ठा अपने पुत्र नामकाले पुत्रको शीघ्र ही और स्वयं त्रिपुष्कर क्षेत्रमे स्नान करने स्वयं चले गए ॥३१॥

तस्य प्रभानिर्जितपुष्परागं पौष्यां त्रिथौ पुष्यमहत्त पत्नी ।  
 तस्मिन्नपुष्यन्नुदिते समग्रां पुष्टिं जनाः पुष्य इव द्वितीये ॥३२॥  
 महीं महेश्वरः परिकीर्य सूनौ मनीषिणे जैमिनयेऽर्पितात्मा ।  
 तस्मात्सयोगादधिगम्य योगमजन्मनेऽकल्पत जन्मभीरुः ॥३३॥  
 ततः परं तत्प्रभवः प्रपदे ध्रुवोपमेयो ध्रुवसंधिर्ध्रुवम् ।  
 यस्मिन्नभूज्यायसि सत्यसंधे संधिर्ध्रुवः संनमतामरीशाम् ॥३४॥  
 सुते शिशावेव सुदर्शनाख्ये दशात्ययेन्दुप्रियदर्शने सः ।  
 मृगायताद्यो मृगयाविहारी सिंहादवापद्विपदं नृसिंहः ॥३५॥  
 स्वर्गाभिनस्तस्य तमैकमत्यादमात्यवर्गः कुलतन्तुमेकम् ।  
 अनायदीनाः प्रकृतीरवेद्य साकेतनाथं विधिवच्चकार ॥३६॥  
 नवेन्दुना तन्नभसोपमेयं शार्वकसिंहेन च काननेन ।  
 रघोः कुलं कुहमलपुष्करेण तोयेन चाप्रौढनरेन्द्रमासीत् ॥३७॥  
 लोकेन भावी पितुरेव तुल्यः संभावितो मौलिपरिग्रहात्सः ।  
 दृष्टो हि धृष्टवन्कलभप्रमाखोऽप्याशा. पुरोवातमवाप्य मेघ ॥३८॥  
 तं राजवीथ्यामधिहस्ति चान्तमाधोरशालम्बितमःपवेशम् ।  
 पद्वर्षदेशीयमपि प्रयुत्वात्प्रैचन्त पौरा पितृगौरवेण ॥३९॥

राजा पुत्रकी पत्नीसे पूसकी पूर्णिमाके दिन बधराय मल्लिसे भी अधिक चान्तिमान् पुष्य नामक पुत्र  
 हुआ । उसके जन्म होनेसे प्रजा उसी प्रकार धन-धान्यसे भरपूर हो गई मानो पूसका पुष्य नक्षत्र ही  
 निकल आया हो ॥३२॥ राजा पुत्र वडे उबार हृदयबाले थे । वे ससारे फिद जन्म लेना नहीं चाहते  
 थे इसीनिसे उन्होंने पुष्यकी मार अपने पुत्र पुष्यकी छीप दिया और स्वयं जैमिनि ऋषिके शिष्य  
 होकर उनसे योग सीखकर आवागमनसे मुक्त हो गए ॥३३॥ पुष्यके पीछे उनके ध्रुवके समान  
 गिबल पुत्र भूवसन्धि राजा हुए जिनसे डरकर सन्मुखि सन्धि कर ली । उनका लिखा हुआ सन्धिपत्र  
 पत्रका होता था क्योंकि वे अपनी बातने प्रवी थे ॥३४॥ उनके नेत्र भृगोके नेत्रोके समान बडे-बडे  
 थे और वे पुष्योसे सिंहके समान थे । एक दिन वे जगत्तमे घाघेत करते हुए मारे गए । उस समय-  
 तक द्वितीयाके चन्द्रमाके समान सुन्दर लगनेवाला सुदर्शन नामका उनका पुत्र बालक ही था ॥३५॥  
 उन स्वर्गाामी राजाके मन्त्रिभने राजाके न होनेसे प्रजाकी दीनदशा देखकर सर्वसम्मतिसे उनके  
 इकतीसे पुत्र सुदर्शनको विधिपूर्वक साकेतका स्वामी बना दिया ॥३६॥ इस बालकसे राजा रघुना  
 कुल वंश ही शोभा देने लगा जैसे द्वितीयाके चन्द्रमासे आवाज, सिंहके बच्चेसे धन और कमलकी  
 पत्नीसे ताल शोभा देता है ॥३७॥ उस बालक सुदर्शनने थव सिरपर मुकुट धारण किया तभी  
 प्रजाने ध्यान लिया कि यह पिताके समान ही तेजस्वी होगा, क्योंकि हामीके बच्चेके समान छोटा  
 दिखाई देनेवाला बादल भी पुरवा पवनका सहारा पाकर चारों दिशाओसे फैल जाता है ॥३८॥  
 जब वे छह वर्षके छोटेसे राजा हाथीपर चढ़कर राज-भारसे निवृत्तते थे तब हृवीवान उनके राजसी

कामं न सोऽकल्पत पैतृकस्य सिंहासनस्य प्रतिपूरणाय ।  
 तेजोमहिम्ना पुनरावृतात्मा तच्छाप चामीकरपिञ्जरेण ॥४०॥  
 तस्मादधः किञ्चिदिवावतीर्णविसंस्पृशन्तौ तपनीयपीठम् ।  
 मालककौ भूपतयः प्रसिद्धैर्वचन्दिरे मौलिभिरस्य पादौ ॥४१॥  
 मयौ महानील इति प्रमावादल्पप्रमाणेऽपि यथा न मिथ्या ।  
 शब्दो महाराज इति प्रतीतस्तथैव तस्मिन्पुत्रेऽर्भकेऽपि ॥४२॥  
 पर्यन्तसंचारितचामरस्य कपोललोलोभयकाकपञ्जात् ।  
 तस्याननादुच्चरितो विवादश्चस्त्राल वेलास्वपि नार्शवानाम् ॥४३॥  
 निर्धृञ्जाम्बूनदपद्मशोभे न्यस्तं ललाटे तिलकं दधानः ।  
 तेनैव शून्यान्यरिसुन्दरीणां मुखानि स स्मेरमुखश्चकार ॥४४॥  
 शिरीषपुष्पाधिकमौकुमार्यः खेदं स यायादपि भूपणेन ।  
 नितान्तगुर्गमपि सोऽनुभावाद्भ्रं धरित्र्या विभ्रंशमभूव ॥४५॥  
 न्यस्ताक्षरामक्षरभूमिकायां कास्त्र्येन गृह्णाति लिपिं न यावत् ।  
 सर्वाणि तावच्छ्रुतद्वययोगात्फलान्युपायुक्त् स दखडनीतिः ॥४६॥  
 उरस्यपर्याप्तनिवेशभागा प्रौढीभविष्यन्तमुदीक्षमाणा ।  
 संजातलज्जेव तमातपत्रच्छायाच्छ्लेनोपजुगूह लक्ष्मीः ॥४७॥

बसोके कोनेकी बाने रलता था कि कही ये बिर न पड । उस समय मो उन्हूँ देखकर जनता अपने  
 पिताके समान ही उठका आदर करती थी ॥३६॥ ये छोटे थे इसलिये जब वे अपने पिताके  
 सिंहासनपर बैठते थे तो वह पूरा भरता नहीं था । पर उनके धरीरखे जो मुखरोंने समान सेव निभलता  
 था उसके वह सिंहासन भर सा ही जान पड़ता था ॥४०॥ उस सिंहासनसे उनके पैर लटकते रहते  
 थे क्योंकि छोटे होनेके कारण पाद पीठतक पहुँच नहीं पाते थे पर राजा लोग अपने प्रसिद्ध मुकुटके  
 उन महावर समे धरीया बगन करते रहते थे ॥४१॥ जैसे छोटा होनेपर भी मणिका महानील  
 नाम गिरधंभ नहीं होता, वैसे ही श्रावक राजा सुदर्शनका महाराज नाम भी उन्हूँ पद्मा पवता था  
 ॥४२॥ उनके धारा पाम बैपर जुलाए जाते थे और उनके गालोपर लठें लटकती रहती थी । इस  
 श्रावक अवस्थाम भी उन्होंने जो आज्ञाएँ दी उन्हे समुद्रके तटजाने लोपोने भी नहीं टाला, फिर पास  
 रहनेवालोकी लो बात ही क्या ॥४३॥ सोनेका पट्टा वैसे हुए अपने सलाखपर वे स्वयं तिलक लगाते  
 थे और सदा हंसमुख रहते थे, पर सभामने धनुषीको नष्ट करके उन्होंने धनुषीकी छिपोंके मुख-  
 परका तिलक और उनकी मुस्कराहट दोनों छीन ली ॥४४॥ वे सिरखके फूलसे भी अधिप सुकुमार  
 के इसलिये यद्यपि उन्हे गहने पहननेने लो कष्ट होता था फिर भी उनके यातव्यतकि इतनी लो पि  
 उन्होने पृथीवे मत्पन्न शरीर भारको संभाल लिया ॥४५॥ धरती के पटिपापर भली भाँति  
 प्रक्षर भी ललता नहीं सोस पाए थे कि किटानोंने सभभंसे वे दण्डनीति और राजनीतिकी  
 सारी बातें जान गए ॥४६॥ बानव राजाने हृदयकी यमी छोटा लगनकर सस्मी

अनश्नुवानेन युगोपमानमवद्वमौर्वीकिखलाञ्छनेन ।  
 अस्पृष्टसङ्गत्सरुखापि नामीद्रचावती तस्य भुजेन भूमिः ॥४८॥  
 न केवलं गच्छति तस्य झले ययुः शरीरावयवा विवृद्धेम् ।  
 वंश्या गुणाः खल्वपि लोककान्ताः प्रारम्भसूत्रमाः प्रथिमानमापुः ॥४९॥  
 स पूर्वजन्मान्तरदृष्टपाराः स्मरन्निवाकलेशकरो गुरूणाम् ।  
 तिस्रस्त्रिवर्गाधिगमस्य मूलं जग्राह विधाः प्रकृतीश्च पित्र्याः ॥५०॥  
 ध्यूष्य स्थितः किञ्चिदिवोचरार्धसुन्नद्वृद्धोऽञ्चितसव्यजानुः ।  
 आकर्णमाकृष्टसवाखधन्वा व्यरोचतास्त्रेषु विनीयमानः ॥५१॥

अथ मधु वनितानां नेत्रनिर्वेशनीयं मनसिजतरुपुष्पं रागरन्ध्रप्रवालम् ।  
 अकृतकविधि सर्वाङ्गीणमाकल्पजातं विलसितपदमार्द्यं यौवनं स प्रपेदे ॥५२॥  
 प्रतिकृतिरचनाभ्यो दृत्तिसंदर्शिताभ्यः समधिकतररूपाः शुद्धसंतानकर्मैः ।  
 अधिविद्विदुरमात्यैराहृतास्तस्य यूनः प्रथमपरिगृहीते श्रीभुवो राजकन्याः ॥५३॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये  
 वंशानुक्रमो नागाष्टादशः सर्गः ॥

उनके मुखा होनेकी माया जगए बंटी थी पर बीच-बीचमें छबकी छया बनकर जगवा भालिङ्गन पर  
 ही लेती थीं मानो छोटा पति होनेके कारण उनसे गुलबंद गले लगनेमें लजा रही हो ॥४७॥  
 यद्यपि उनकी मुखा झुएके समान मोटी और लम्बी नहीं हुई थी, धनुषकी बोरी लीपनेसे बची भी नहीं  
 हो गई थी और तलवारकी मूठ भी नहीं लू सरी थी फिरभी उतने पृष्ठीकी रसा भली भाँति करली  
 ॥४८॥ कुछ ही दिनोंमें केवल उनके चरीके भा ही नहीं बड़े चरन् उनके से यद्य परम्परावाले  
 गुण भी बड़े जो पक्षे छोटे ही थे और जो प्रजाती बहुत प्यारे सगले थे ॥४९॥ उन्होंने धर्म, धर्म  
 और नाम कप देनेवाले पत्नी (तीनों वेद), वार्ता (इति) और दण्डनीति तीनों विद्याओंकी हस्तनी  
 सीप्राप्तिसि सीप्रा विद्या मानो पूर्वं जन्ममें ही वे उन्हें पत्र पुत्रे हो । साथ ही अपने पिताकी प्रजाकी भी  
 उन्होंने अपने वसने पर निगा ॥५०॥ जब वे धनुषविद्या सीखते समय अपने शरीरका ऊपरी भाग  
 कुछ मानि बढ़ा देने में, धान ऊपर बाँध लेते थे, चाई जाँच कुछ कुरा लेने थे और बाएँ चढ़ापर  
 धनुषकी बोरी मानतक सीखते थे उस समय वे बड़े सुन्दर सगले थे ॥५१॥ तब मुदगाने शरीर में  
 यह पयानी मा गई जो त्रिषोनी धाँसोनी मदिरा होनी है, शरीरकी स्वाभाविक शोभा होती है और  
 विलासता महता महदा होता है ॥५२॥ दृष्टियाँ भिन्न-भिन्न राजधानियोंके जाकर सुन्दर-सुन्दर  
 राजकुमारियों का चित्र ले चाई और राजाकी सतान होनेकी इच्छासे त्रिषोने विपले बढ़कर सुन्दरी  
 उन राजकुमारियोंका विवाह महाराज मुदगाने करा दिया । विवाह हो जानेपर वे सब राजकुमारियाँ,  
 राजाकी दृष्टी रानिसेनी, पृष्ठीकी और सततदीवीरी मोषो समान हो गई ॥५३॥

महाकवि श्रीकालिदासके रचे हुए रघुवंश महाकाव्यमें नव्यानुक्रम  
 नामका अष्टादशो सर्ग समाप्त हुआ ॥

## एकोनविंशः सर्गः

अग्निवर्णमभिषिच्य राषवः स्वे पदे तनयमग्निंते जसम् ।  
 शिश्रिये श्रुतवत्तामपश्चिमः पश्चिमे वपसि नैमिषं वशी ॥ १ ॥  
 तत्र तीर्थसलिलेन दीर्घिकास्तल्पमन्तरितभूमिभिः कुशैः ।  
 सौधवासमुदजेन विस्मृतः संचिकाय फलनिःस्पृहस्तपः ॥ २ ॥  
 लब्धपालनविधौ न तत्सुतः रोदमाप गुरुणा हि मेदिनी ।  
 भोक्तुमेव भुजनिर्जितद्विषा न प्रसाधयितुमस्य कल्पिता ॥ ३ ॥  
 सोऽधिकारमभिकः कुलोचितं काश्चन स्वयमवर्तयत्समाः ।  
 संनिवेश्य सखिवेपृतः परं स्त्रीविधेयनवयौवनोऽभयत ॥ ४ ॥  
 कामिनीसहचरस्य कामिनस्तस्य वेश्मसु मृदङ्गनादिषु ।  
 ऋद्धिमन्तमधिकार्द्धरुचरः पूर्वमुत्सवमपोद्दुत्सवः ॥ ५ ॥  
 इन्द्रियार्थपरिशून्यमक्षमः सोऽनुमेकमपि स क्षणान्तरम् ।  
 अन्तरेय विहरन्दिधानिशं न व्यपैक्षत समुत्सुकाः प्रजाः ॥ ६ ॥  
 गौरवाद्यादपि जातु मन्त्रिणां दर्शनं प्रकृतिकाङ्क्षितं ददौ ।  
 तदभाच्चषिवरावलम्बिना केवलान् धरणेन कल्पितम् ॥ ७ ॥

### उन्नीसवां सर्ग

पिताद् राजा सुवर्णने मुद्रापेमे अपने अग्निके अज्ञान लेखस्वी पुत्र अग्निवर्णकी राजा बना दिया और स्वयं नैमिषारण्यमें रहने लगे ॥१॥ वहाँ वे तीर्थ-जलके प्राये परकी बावलियोंकी, भूमिपर विद्ये हुए कुशके प्राये राजसी गर्लवकी तथा कुटियाके प्राये बड़े-बड़े महलको भूल गये और पलकी इच्छा छोड़कर उप करने लगे ॥२॥ पितासे पाई हुई पुष्पीका पासन करनेमें अग्निवर्णकी कोई कठिनाई नहीं हुई क्योंकि उनके पिताने शत्रुओंको पहने ही हरा दिया था । इसलिये दग्ध तो केवल भोग करनेके लिये ही राज्य मिला था, राज्यके शत्रुओंकी मित्रानेके लिये नहीं ॥३॥ इसका फल यह हुआ कि अग्निवर्ण कामुक हो गए । कुछ दिनोंतक तो उन्होंने स्वयं राजकाज देखा पर फिर अग्निवर्ण पर राज्यका भार डालकर जवानोंका रस लेने लगे ॥४॥ वह वामी राजा मन्त्रियोंके साथ उन भवनों में दिन रात पड़ा रहने लगा जिसमें बराबर मृदंग बजते रहते थे और प्रतिदिन एकसे एक यद्यत् ऐसे उत्सव होते रहते थे कि प्रायते दिनोंके उत्सवके धूम मटारके के प्राये पहले विवना उत्सव फीका पड़ जाता था ॥५॥ उसे ऐसा चक्का लग गया कि वह क्षण भर भी भोगविभाषने बिना नहीं रह सकता था । इसलिये वह सदा रनिवाहके भीतर रहकर ही विहार करने लगा । उसके दर्शनके लिये जनता मधीर रहती थी पर वह कभी जननी सुख नहीं लेता था ॥६॥ यदि कभी मन्त्रियोंके कहने-सुननेसे वह प्रजाको दर्शन गी देता तो अब इतना ही कि शरोसेसे एक पर बाहर सदका देता था ॥७॥



तं कृतप्रश्रययोऽनुजीविनः क्रोमलात्मनखरागरूपितम् ।  
 भेजिरे नवदिवाक्रातपस्पृष्टपङ्कजतुलाधिरोहणम् ॥८॥  
 यौवनोन्नतविलासिनीस्तनक्षोभलोलकमलाश्च दीर्घकः ।  
 गूढमोहनगृहास्तदम्बुभिः स व्यगाहत विगाढमन्मथः ॥९॥  
 तत्र सेकहृतलोचनाञ्जनैर्घांतरामपरिपाटलाधरैः ।  
 अङ्गनास्तमधिकं ध्यलोभयन्नर्पितप्रकृतकान्तिभिर्मुसैः ॥१०॥  
 घ्राणकान्तमधुगन्धकर्षिणीः पानभूमिरचनाः प्रियासखः ।  
 अभ्यपद्यत स वासिताः पुष्पिता कमलिनीरिव द्विषः ॥११॥  
 सातिरेकमदकारणं रहस्तेन दत्तमभिलेपुरङ्गनाः ।  
 ताभिरप्युपहृतं मुखसत्रं सोऽपिवद्वङ्गलतुल्यदोहदः ॥१२॥  
 अङ्गमङ्गपरिवर्तनोचिते तस्य निन्यतरशून्यतामुभे ।  
 वल्लकी च हृदयङ्गमस्वना बल्लगुवागपि च वामलोचना ॥१३॥  
 स स्वयं ग्रहत्पुष्करः कृती लोलमाच्यवलयो हरन्मनः ।  
 नर्तकीरभिनयातिलङ्घिनीः पार्श्ववतिषु गुरुष्वलज्जयत् ॥१४॥  
 चारु नृत्यनिगमे च तन्मुखं स्येदमिन्नतिलकं परिश्रमाद् ।  
 प्रेमदत्तवदनानिलः पित्रन्नत्यजीवदमरालकेधरौ ॥१५॥

राजकर्मचारी उनके नसीबी सानीयाने उस घरखुदा नमस्कार करके धारणपना करते थे जो प्रभातकी  
 पाल किरणोंके भरे हुए कमलक समान था ॥८॥ यह महानारी राजा उन क्षाणियोंके सुन्दर स्त्रियों  
 के साथ बिहार करता था जिनने किनास-पर भी बने हुए थे । स्त्रियोंके ऊँचे-ऊँचे स्तन जब बायसीके  
 कमजोसे टकराते थे तब वे कमल हिलने लगते थे ॥९॥ जसमे स्नाथ करनेसे जब उन स्त्रियोंकी  
 माँतोना माँन छूट जाता था और धोखेपर जगो हुई तारी धूल जानी थी तब उनकी स्वाभाविक  
 सुन्दरतानो देपकर वह और भी अधिक मोहित हो उठता था ॥१०॥ हाथी जैसे स्त्रीकी हुई  
 कमलिनियोंकी गन्धसे भरे सरीसृपके श्वाभियोंके साथ घंटा है, वैसे ही धनिवणुं भी सुन्दरी स्त्रियोंके  
 साथ मद्यके मद्यमे वसी हुई पानलावा या भदिराधरमे पहुँचता था ॥११॥ यहाँ वे स्त्रियाँ धनिवणुंका  
 जूटा गदबारी घासय बढ़े प्रेम्से पीती थी । जैसे मोलसिरीका पेठ स्त्रियोंके मुणका धासव पानेको  
 सरता करता है उसी प्रकार उन स्त्रियोंके मुणमे धासव पीनेकी इच्छा करनेवाला धनिवणुं भी उनके  
 मूँहवा प्राणय पिया करता था ॥१२॥ गोदमे बँडने योग्य दो ही तो बस्तुएँ हैं—एक तो मनोहर  
 वाशवली पीला और दूसरी मपुर-भाण्डो वासिनी । इन दोनोंने उसकी गोदको सदा भरपूर रक्ता  
 ॥१३॥ जब नर्तकियोंने भास्ते समय वह स्वयं मूँदंन बनाने लगता था तब उसके गलेकी मासा  
 त्रि उठती थी । उस समय वह ऐसा सुन्दर लगता थाकि नर्तकियाँ मुप-बुध खोकर नाचना भी भूल  
 पाती थीं । दागा पन यह होगा था कि उन्हें नाचना सिगानेपाने उनके जो मुह बहाँ बँडे रहते थे  
 उनमे दागे के धपनी दस बावपर सजा जाती थी ॥१४॥ जब नृत्य समाप्त हो जाता था और

तस्य सावरखड्गसंघयः काम्यवस्तुषु नवेषु सङ्गिनः ।  
 वल्लभामिरुपसृत्य चक्रिरे सामिश्रुक्तविषयाः समागमाः ॥१६॥  
 अङ्गुलीकितलयाग्रतर्जनं म्रूविमङ्गकुटिलं च वीक्षितम् ।  
 मेरुललाभिरसकृच्च बन्धन बन्धयन्त्रखयिनीरवाप सः ॥१७॥  
 तेन दृतिविदित निषेदुषा शृणुतः सुरतवाररात्रियु ।  
 शुश्रुवे प्रियजनस्य कातरं विप्रसुम्भपरिशङ्किनो वचः ॥१८॥  
 सौन्यमेत्य गृह्णीपरिग्रहान्नर्तकीप्रसुलभासु तद्वपुः ।  
 घर्तते स्म स कथंचिदालिखन्नङ्गुलीकरखसन्नवर्तिकः ॥१९॥  
 प्रेमगर्वितविषयमत्सरादायताच्च मदनान्महीक्षितम् ।  
 निन्युरुत्सवविधिच्छलेन तं देव्य उज्ज्वितरुपः कुतार्थताम् ॥२०॥  
 प्रातरेत्यपरिभोगशोभिना दर्शनेन कुतरखण्डनव्यथाः ।  
 प्राङ्गलिः प्रणयिनी प्रसादयन्सोऽधुनोत्प्रणयमन्धर पुन ॥२१॥

नाचमके परित्यजते उनके मुखपर पक्षीनेकी बूँद छा जाती थी तब राजा धनिवर्ण प्रेमपूर्वक फूक मार-  
 मारकर उनके मुखको छूमने लगता था । उस समय वह समझता था कि मैं इन्द्र प्रीर बुझेते भी  
 बढकर सुखी प्रीर भाग्यवान् हूँ ॥१६॥ वह क्या नई नई भोगकी खानप्रिया चाहता था । जिस  
 वस्तुसे उसका मुँह खुलता था उसे वह पीठ दता था इसलिये दिश्या भोगके समय राजाके  
 मुँह से वह प्राण निकलता ही होता, पूरी नहीं । क्योंकि उन्हें घर था कि यदि राजा पूर्णरूपसे कृप  
 का एक बाण  
 धपनी मात-नात उर्गलिया चमना-चमककर धमराती थी, भीह सररेती  
 थी प्रीर राजाकी  
 रथनीसे बाँध देती थी ॥१७॥ जिस दिन रातको उसे किसी स्त्रीसे समोग  
 करने जाना होता तो उस रातें बतानर वह पास ही छिपकर बैठ जाता । वह जो जब धाती  
 प्रीर विप्रसुम्भ नामिकाके समान डूतीसे बिरहकी (इस प्रकार) बात करन लगती [कि पता नहीं  
 वे कब धाँसे, धर्मिकक भाए क्यो नहीं इत्यादि,] तब वह उन बातोंको छिप छिपे वषे प्रेमसे सुनता  
 था ॥१८॥ जब कभी उसे रातियाँ रोव लेती, उस नर्तनियोने न मिकनेसे बिरह-वातर हो जाता  
 प्रीर हाथम नृतिका लेकर किसी नर्तकीका चित्र बनान लगता था । उस समय उसे वह नर्तकी स्मरण  
 हो जाती थी प्रीर किसी उरसवका महाना करके राजाको अपने यहाँ बुलाकर उठने साथ धपनी  
 तपन बुझाती थी ॥२०॥ रातमे बाहर किसी स्त्रीसे समोग करके जब राजा प्रात बाल घर  
 लौटता था तब रातके भोगवाले सुन्दर वेशमे उसे देखकर उसकी प्रतिकारण राडिता  
 नायिकाके समान धाँसू बहान लगती थी प्रीर राजा हाथ जोडकर उन्हें मना नेता था ।

स्वप्नकीर्तितविपक्षमङ्गनाः प्रत्यभैत्सुरवदन्त्य एव तम् ।  
 प्रच्छदान्तगलिताश्रुभिन्दुभिः क्रोधभिन्नवलपैर्विवर्तनैः ॥२२॥  
 फलस्यपुष्पशयनल्लितागृहानेत्य दूतिकृतमार्गदर्शनः ।  
 अन्यभूत्परिजनाङ्गनारत्नं सोऽवरोधमयवेपथूत्तरम् ॥२३॥  
 नामवल्लमजनस्य ते मया प्राप्य भाग्यमपि तस्य काङ्क्ष्यते ।  
 लोलुपं ननु मनो ममेति तं गोत्रपिस्त्रलितमृचुरङ्गनाः ॥२४॥  
 चूर्णत्रुलुलितस्रगाकुलं छिन्नमेखलमलककाङ्कितम् ।  
 उत्थितस्य शयनं विलासिनस्तस्य विभ्रमरतान्यपापृणोत् ॥२५॥  
 स स्वयं चरखरागमादधे योपितां न च तथा समाहितः ।  
 लोभ्यमाननयनः श्लथांशुकैर्मेषलागुणपदैर्नितम्बिभिः ॥२६॥  
 चुम्बने निपरिचरिताधरं हस्तरोधि रशनाविघट्टने ।  
 विधितेच्छमपि तस्य सर्वतो मन्मथेन्धनममूहधूरतम् ॥२७॥  
 दर्पणेषु परिभोगदर्शिनीर्नर्मपूर्वमनुपृष्टसंस्थितः ।  
 छायाया स्मितमनोज्ञया बधूहीनिमीलितमुखीशकार सः ॥२८॥

पर जब रातकी पकावटके कारण वह उनसे भरपूर प्रेम नहीं करता था तो वे फिर व्याकुल हो  
 उठती थी ॥२२॥ जब स्त्रियाँ देखती कि राजा स्वप्नसे बहबगते हुए किसी दूसरी स्त्रीकी बगई  
 कर रहा है तब वे कामियों बिना बोले ही विस्तरके कोनपर साँवु गिरती थीं, जोमसे कौन लौट  
 कर उनसे पीठ फेरकर सी जाती थी और इस प्रकार उनसे स्त्र जाती थी ॥२३॥ जब वे जी बूझते  
 राजाको मार्ग दिखाती हुई उस स्थान पर ले जाती जहाँ सतामोंके बीचमे सम्प्रलियोके सुन्दरीका  
 देज बिछी रहती थी । उस समय उसे यह डर होता कि कहीं ये दासियाँ आकर उनसे न कह  
 दें । इसलिये दासियोंके धुससानेके लिये गट्ट उन दासियोंसे सम्मोष करके उन्हें प्रसन्न कर  
 देता था ॥२४॥ कभी-कभी वह भ्रुवसे स्त्रियोंके भागे किसी माहरी प्रेमिकाका नाम ले लेता ।  
 उसे सुनकर वे स्त्रियाँ कहने लगती कि क्या अच्छा हुआ जो भागने वाली प्रेमिकाका नाम बता दिया ।  
 धन्य है उसका भाग्य ! पर क्या करें, हमारा भी तो लोभी मन नहीं भागता । भावको कैसे छोड़  
 दें ? ॥२५॥ जब वह सोकर उठता तब उसका पलक, फँसे हुए कैसरके पूँछते सुनहरे बिलारई  
 देता था । उसपर फूलोंकी मसली हुई मानाएँ और टूटी हुई तपस्वियाँ पडी रहती थी और जहाँ तहाँ  
 महावरकी छाप पडी रहती थी, जिसे देखकर प्रकट होता था कि वह कितना विलासी है ॥२६॥  
 कभी कभी वह स्त्रियोंके पंरोसे स्वयं महावर लगाने बैठ जाता । पर उसी समय उसकी दृष्टि स्त्रियोंके  
 उन नितम्बापर पड़ जाती थी त्रिनपरसे बपडा सरका हुआ रहता था । उन्हें देखकर वह ऐसा मुग्ध  
 हो जाता कि भनीमोति महावर भी नहीं लगा पाता था ॥२६॥ सम्मोषके समय जब वह स्त्रियोंके  
 धोठ चूमने लगता तब वे मुँह फेर लेती थी और जब कमरका नाडा सोलने लगता तब हाथ धाम  
 लेती । इस प्रकार वह जो कुछ करना चाहता, स्त्रियाँ कुछ भी नहीं करन देती थी, फिर भी उसका  
 काम बढ़ता ही गया ॥२७॥ जब कभी स्त्रियाँ दर्पणके आगे खडी होकर दाँत नाटने या चूँटने आदि

कण्ठसक्तमृदुबाहुबन्धनं न्यस्तपादतलमग्रपादयोः ।  
 प्रार्थयन्त शयनोत्थितं प्रियास्तं निशात्यपविशर्गञ्जुमनम् ॥२६॥  
 प्रेक्ष्य दर्पणतलस्थमात्मनो राजवेशमतिशकशोभिनम् ।  
 विध्रिये न स तथा यथा युवा व्यक्तलक्ष्म परिभोगमण्डनम् ॥३०॥  
 भिन्नकृत्यमपदिश्य पार्श्वतः प्रस्थितं तमनवस्थित प्रियाः ।  
 विद्य हे शठ पलायनच्छलान्यज्जसेति रुद्रधुः कचग्रहैः ॥३१॥  
 तस्य निर्दयरतिभ्रमाससाः कण्ठसूत्रमपदिश्य योषितः ।  
 अध्यशेरत घृहङ्गुजान्तरं पीवरस्तनविलुप्तचन्दनम् ॥३२॥  
 संगमाय निशि गूढचारिणं चारदृत्तिकथितं पुरोगताः ।  
 बद्ध्यिष्यसि कुतस्तमोदृतः कामुकेति चक्रपुस्वमङ्गनाः ॥३३॥  
 योषितामुदुपतेरिवाचिषां स्पर्शनिर्दृष्टिमसाववाप्नुवन् ।  
 आरुरोह कुमुदाकरोपमां रात्रिजागरपरो दिवाशयः ॥३४॥  
 वेष्टुना दशनपीडिताधरा वीक्षया नखपदाङ्कितोरवः ।  
 शिल्पकार्य उभयेन वेजितास्तं विजिह्वनयना व्यलोभयन् ॥३५॥

सभोगके चिल्लोको देखने लगती थी, ठग राजा उनके पीछे चुपकेसे आकर सदा ही जाता और  
 मुनकर देता । जब बर्षछमे उसका प्रतिविम्ब झियाँ देख लेती तब वे भँपकर मूढ़ नीचा नर लेती  
 थी ॥२६॥ जब वह प्रातः काल पर्वणसे उठकर जाने लगता तब झियोको इच्छा होती कि विदुष्यके  
 पहले राजा एक बार गलेमे बाँधे हासकर चुम ले ॥२६॥ यह राजा इतके चलोसे भी मुन्दर  
 अपने राजसी बल्लोके दर्पणमे देखकर उठना प्रयत्न नहीं होता था जितना सभोगके चिल्लोको देखकर  
 ॥३०॥ कभी कभी शयनी रानियोके पास बैठे-बैठे उसके मनमे किसी प्रियवभाके पास जानेकी  
 इच्छा होती ता वह यह कहकर उठने लगता—धरे मुझे एक मिनसे मिलने जाना है । यह मुनकर  
 रानियाँ ताठ जाती और कहने लगती कि हूँ भी भलीभाँति जानती है कि तुम किसे मिनके यहाँ  
 जा रहे हो और फिर शत पकटक उधे रोक लेती ॥३१॥ जब कभी उसके साथ बहुत देरतक समोष  
 करनेके कारण दिनवाँ भनसा जाती थी तब वे अपने मोटे धोटे स्तनोसे राजाकी छातीके घन्दनको  
 पीछली हुई उसके पक्ष स्पलपर इस प्रकार खी जाती थी याने वे समोषका वह कठपुन नामका भासन  
 साज रही हो जिसमे झियाँ पठिके ऊपर खेकर अपने स्तनोसे धीरे धीरे अपने प्रियतमकी छातीको  
 अपनेवै हुँद ससकर छातीसे लिपट जाती हैं ॥३२॥ रातको यह समोषकी इच्छासे झिपकर जब  
 बाहर जानेकी होता था तो दृष्टियोसे समाचार पाकर उसकी झियाँ उसके घाने पहुँच जाती थी और  
 यह कहते हुए खीच जाती थी कि कहिए एकमा देकर रातको बिचर पने ॥३३॥ स्त्रियोके स्पर्शसे  
 उसे वैसा ही मानन्द मिलता था जैसा चन्द्रपाकी फिरलोसे । यह वह बुधुकोके उमान रातभर  
 जागता रहता और दिनभर सोता रहता ॥३४॥ उसने यानेवाती स्त्रियोके ओठोपर अपने दाँतके और  
 ऊपरी जाँघोपर चूट-चूटकर नखोके ऐसे घाव नर दिए थे कि जब वे अपने अधरोपर बाँधुरी और

अङ्गमच्चवचनाश्रयं मिथः स्त्रीषु नृत्यमुपधाय दर्शयन् ।  
 स प्रयोगनिपुणैः प्रयोक्तृभिः संजघर्ष सह मित्रसन्निवौ ॥३६॥  
 अंमलम्लिकुटजाजुनस्रजस्तस्य नीपरजमाङ्गरागिणः ।  
 प्राश्रुपि प्रमदवर्हिषेणभृत्कृत्रिमाद्रिषु विहारविभ्रमः ॥३७॥  
 विग्रहाञ्च शयने पराङ्मुषीर्नानुनेतुमनलाः स तत्त्वरे ।  
 आचकाह्व चनशब्दविम्वास्ता विवृत्य मिशतीर्भुजान्तरम् ॥३८॥  
 कार्तिस्त्रीषु सवितानहर्म्यभाग्यामिनीषु ललिताङ्गनास्रगः ।  
 अन्वभृङ्क्त सुरतश्रमापहां मेघमुक्तगिशदां न चन्द्रिकाम् ॥३९॥  
 सैफतं च सरयूं विवृण्वतीं श्रोणिविम्बमिव हंसमेखलम् ।  
 स्वप्रियाविलसितानुकारिणीं सौधजालविपरैर्ध्वलोकयत् ॥४०॥  
 मर्मरैरगुरुधूपगन्धिमिर्व्यक्तहेभरशनैस्तमेकतः ।  
 जह्नु राग्रथनमोक्षलोलुपं हैमनैर्निवमर्नः सुमध्यमाः ॥४१॥  
 अपितस्तिमितदीपदण्डयो गर्भवेदमसु निवासकुक्षिषु ।  
 तस्य सर्वसुरतान्तरचमाः साचितां शिशिरराजयो ययुः ॥४२॥

नाँपर नीणा रलती तय उन्ह वडा कण्ट होता घोर वे डेडी भाँहासे राजाकी घोर देखने लगती थी  
 [कि यह सब धागकीही करतूतहै ।] उनकी यह भावभगी देखकर राजा घोर भी रोभा उठना था ॥३६॥  
 इतना ही गही, जब वह एकात्मने द्विगोत्री धागिक, यात्विन घोर याचिक तीनों प्रवारणा प्राभ्रम  
 तिलाकर अपने मित्रोके घाने उनका प्रवचन करता था उस समय यह बडे-बडे नाट्यशास्त्रियोके  
 भी काम वाडता था ॥३७॥ यहाँ श्रुतमें वह मुटव घोर मर्बुनकी याता गतेमे पहगकर तथा  
 शरीरमे बदम्यने पराङ्का मगराग लयानर, मतयाले मोरसे भरे हुए श्रीडा पर्बतोपर बिहार किया  
 करता था ॥३८॥ जब फलंगपर सौई हुई खिया रुठपर पीठ फेरकर सो जाती थी तब राजा उन्ह  
 मताना नहीं चाहता था, करतू यह चाहता था कि निती प्रवार थापत गरज उठे जिससे डरकर  
 ये मेरी शक्तीसे घा चिपटें ॥३९॥ कार्तिककी रातोमे वह राजभवनके ऊपर नंदीवा लगवा देता  
 था घोर सुन्दरियोके साथ उस चाँदीनका धानद सेता था जो समोदका थम दूर करती है घोर  
 की यादतोके न रत्नेसे बराबर फँबी रहती है ॥३९॥ यह अपने राजभवनके भरीसे से गरमूकी  
 देखना था जिनके तटपर खलने हवोकी पातें बँठी रहती थी । यह दृश्य ऐसा दिखाई देना मानो  
 समू, उन सुन्दरियोका धनुकरण कर रही हो जिनके नितम्बोपर लगदी पडी हो ॥४०॥  
 पतनी कमरगानी द्विवाँ भाँवेने ऐसे कपडे पहनती थी जो माडीव बारखु बरबरति में घोर जिनके  
 नीचे झलवती हुई सोनकी तवटीकी बाँधा घोर सोनेके सिध सासाधित रहोयासा यह राजा  
 मोहित हो जाता था ॥४१॥ सब प्रवारकी समीर श्रीडा करने सोम्य हेमन्त श्रुतुपी बडी यदी  
 शनोके नर शर भवानी भीनती कीठियोमें बिहार किया करता था ॥४२॥

दक्षिणेन पवनेन संभृतं प्रेत्य चूतकुसुमं सपल्लवम् ।  
 अन्वनेपुरवधूतविग्रहास्तं दुरुत्सहवियोगमङ्गनाः ॥४३॥  
 ताः स्वमङ्गधिरोष्य दोलया प्रेह्यन्परिजनापविद्रया ।  
 मुक्तरज्जु निविडं भयच्छलात्कण्ठवन्धनमवाप बाहुभिः ॥४४॥  
 त पयोधरनिपिक्तचन्दनैर्मौक्तिकग्रथितचारुभूपयैः ।  
 ग्रीष्मवेपविधिभिः सिपेविरे श्लोखिलम्बिमशिभेरलैः प्रियाः ॥४५॥  
 यत्स लज्जसहकारमात्मवं रक्तपाटलसमागमं पयौ ।  
 तेन तस्य मधुनिर्गमात्कृशश्चित्तयोनिरभवत्पुनर्नयः ॥४६॥  
 एवमिन्द्रियसुरानि निर्विंशानन्यकार्यविमुखाः स पार्थिवः ।  
 आत्महाक्यनिषेदिताद्भूतन्यवापयदनङ्गवाहितः ॥४७॥  
 तं प्रमत्तमपि न प्रभावतः शेकुराक्रमितुमन्यपार्थिवाः ।  
 ध्रामयस्तु रतिरागसंभवो दक्षशाप इव चन्द्रमक्षिणोत् ॥४८॥  
 दृष्टदोषमपि तन्न सोऽत्यजत्सङ्गवस्तु भिषजामनाश्रवः ।  
 स्वादुभिस्तु निपर्यैर्दृत्स्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवार्यते ॥४९॥  
 तस्य पाण्डुवदनाल्पभूपस्था सायलम्बगमना मृतुस्वना ।  
 रालयचमपरिहानिराययौ कामयानसमवस्थया तुलाम् ॥५०॥

दीप थे जो पायुके न घानेसे एणटक होकर सवनी देल रहे थे ॥४२॥ मलय पर्वतसे प्राए हुए  
 उण पवनसे घानेमे घोर छागए जिहे देखकर प्रेमिनाथोने कामोन्मत्त होकर राजाके कठना  
 ३ दिया घोर उगने विरहमे व्याकुल होकर स्वयं उन्हे डूबने सवी ॥४३॥ उन स्मितीको गोचरे  
 १कर वह उन भूलोमे भूलने लगा जिहे कौर कुला रहे थे । राजाके एक वार भूलोको जो भटना  
 ११ तो उन क्षियोने भयका बहाना करके रस्ती छोड दी और राजाके गलेमे बँह बासकर उनसे  
 २१ रट गई ॥४४॥ ग्रीष्म ऋतुमे स्तनीवर चन्दन लगाकर, मोतियोला घाभूपण पहनकर घोर  
 ३१ म्यपर मणिकी तगडी लटकाकर वे स्त्रियाँ उस राजाके साथ वधोगे नरके उसे प्रसन्न करती  
 ४१ ॥४५॥ उस समय वह घामकी घोर घोर पाटलका साथ फूल पात्रम लगाकर घासव पीता  
 ५१ जिससे बसत बीतनेसे मर पडा हुआ उसका काम फिर जाग उठता था ॥४६॥ इस प्रकार वह  
 ६१ से राजा राग-वान छोडकर इन्द्रिय-भूलोका रस सेता हुआ ऋतुएँ बिचरने लगा । वह काम-  
 ७१ शने लिपे भिन्न भिन्न ऋतुओ मे भिन्न-भिन्न प्रकारका वेग बलाया करता था, इसलिये उसने  
 ८१ जो देखकर घात हो जाता था कि किस समय कौनसी ऋतु है ॥४७॥ इतना व्यसनमे लीन  
 ९१ पर भी दूसरे राजा उसके राज्यपर आक्रमण नही करते थे । फिर भी जैसे दसके घापसे चन्द्रमाको  
 १०१ रोग हो गया था वैसे ही क्षयिक योग-विलास करनेसे उसे भी दाय रोग हो गया घोर घीरे-घीरे  
 ११ ने लगा ॥४८॥ बँदोके घार-घार रोवनेपर भी उसने कठमको जयानेवाली ये वस्तुएँ नही छोडी  
 १२१ कि जब इन्द्रियाँ एक वार विषयोमे फँस जाती है तब उन्हे रोकना कठिन हो जाता है ॥४९॥  
 १३१ घीरे उसका शरीर पीता पड गया, दुर्बलत्वाने कारण उसने घाभूपण पहनना भी छोड दिया,

द्योम पश्चिमकलास्थितेन्दु वा पङ्कशेषमिव धर्मपल्लवम् ।  
 राक्षि तत्कुलमभूत्त्वयातुरे धामनाचिरिव दीपभाजनम् ॥५१॥  
 वाढमेव दिवसेषु पार्थिवः कर्म साधयति पुत्रजनने ।  
 इत्यदर्शितरुजोऽस्य मन्त्रिणः शशदक्षुरघशङ्किनीः प्रजाः ॥५२॥  
 स त्यनेकवनितासखोऽपि सन्पावनीमनवलोदय संततिम् ।  
 वैद्ययत्नपरिभाबिनं गदं न प्रदीप इव चायुमत्यगात् ॥५३॥  
 तं गृहोपयन एष संगताः पश्चिमक्रतुविदा पुरोधसा ।  
 रोगशान्तिमर्षदिश्य मन्त्रिणः संमृते शिखिनि गूढमादधुः ॥५४॥  
 तैः कृतप्रकृतिगुल्फसंग्रहैराशु तस्य सहधर्मचारिणी ।  
 साधु दृष्टशुभगर्मलक्षणा प्रत्यपघत नराधिपश्रियम् ॥५५॥  
 तस्यास्तथाविधनरेन्द्रविपक्षिशोका ।

दुष्पौर्विलोचनजलैः प्रथमाभितप्तः ।

निर्वापितः कनककुम्भमुखोज्ज्वितेन ।

वंशाभिपेक्षविधिना शिशिरेण गर्भः ॥५६॥

यह मौकटोके कन्धेपर सहारा देकर चलने लया, उसकी जोती धीमी पठ गई और यक्ष्मा रोगसे  
 सूतपर यह ठीक बिरहियोके समान दिखाई देने लगा ॥५०॥ राजाके क्षय रोगसे रोगी होनेपर  
 पूर्वजुत ऐसा रह गया जैसे एक कला भर बचा हुआ कृष्ण पक्षकी चतुर्विंशतिका चन्द्रमा हो या  
 कौशठ-भर बचा हुआ गर्मीके दिनोका तास हो या सक्क-सी बची हुई बोपककी ली हो ॥५१॥  
 जब प्रजा पूछती थी कि राजाको कोई भयानक रोग तो नहीं है, उस समय मन्त्री लोग प्रजाको यह  
 कहकर समझते थे कि राजा इस समय पुनोत्पत्तिके लिये व्रत धारि कर रहे हैं, इसलिये दुर्बल होते  
 जा रहे हैं। इस प्रकार वे लोग राजाके रोगकी बात जनतासे छिपा रहे थे ॥५२॥  
 अनेक रागिनोके होने हुए भी यह राजा पुत्रवा मुंह नहीं देल सका और बँध लोग राजाको भयानक  
 नहीं कर सके। जैसे वायुके आने दीपकका कुछ भी नश नहीं करता वैसे ही राजा भी रोगसे  
 नहीं बचाया जा सका ॥५३॥ अन्त्येष्टिकी विधि जाननेवाले पुरोहितसे मिलकर मरिचोने रोग  
 दान्तिके बहानेसे राजाके शवको राजभवनके उपवनमे ही चुपचाप जलती मग्निमे रख दिया कि वही  
 वाहर से जानते यह रोग प्रजामे न फैल जाय ॥५४॥ मन्त्रियोने चौध ही प्रजाके नेताघोको इन्द्रा  
 दिया और उनकी सम्मतिमे राजाकी उस पटराजोकी सिंहासनपर बैठा दिया जिसमे गर्भके सुभ चिन्ह  
 दिखाई दे रहे थे ॥५५॥ राजाकी ऐसी दुःख मृत्युमे महाराजोकी धाँलोके परम-नरम श्मशानमे  
 तपे हुए गर्भपर जब कुल-नराम्यराने अनुसार होनेवाले धर्मिणके समय धोनेके धरेसे शीतल जल  
 पड़ा तब वह गर्भ शीतल हो गया ॥५६॥ जैसे साननेमे बोए हुए मुट्टी भर बीजोको पृथ्वी छिपाए

तं भायार्थं प्रसवसमयः ज्ञाङ्क्षिणीनां प्रजाना ।  
 मन्तुर्गृहं चित्तिरिव नभोबीजमुष्टिं दधाना ।  
 प्रौलैः सार्धं स्थविरसचिवैर्होमसिंहासनस्था ।  
 राज्ञी राज्ञ्यं विधिवदशिपुर्दुर्तुरव्याहताज्ञा ॥५७॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवन्धे महाकाव्ये  
 अग्निवर्णं शृङ्गारो नामंकोनविंशः सर्गः ॥

॥ इति रघुवंशम् ॥

रहती है वैसे ही महारानी भी अपनी उस प्रजापति जताईके लिये बर्ष धारण किये हुए भी  
 जो पुत्र उत्पन्न होनेकी बात जोह रही थी । इस प्रकार जिसका कल्याण कोई बात नहीं सकता  
 था वह गर्भवती महारानी बड़े मन्त्रियोंकी सम्पत्तिके यतुसार राजधान पलाये सर्ग ।

महाकवि श्रीकालिदासके रचे हुए रघुवन् महाकाव्यके अग्निवर्णका शृङ्गार  
 नामका अन्तीसवां सर्ग समाप्त हुआ ।

॥ रघुवंश महाकाव्य समाप्त हुआ ॥



॥ कुमारसम्भवम् ॥

## ॥ कुमारसम्भवम् ॥

॥ प्रथमः सर्गः ॥

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।  
 पूर्वापरौ तोषनिघीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥१॥  
 यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदले ।  
 भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुर्धरित्रीम् ॥२॥  
 अनन्तरत्नप्रभरस्य यस्य द्विमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।  
 एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरयोष्विवाहूः ॥३॥  
 पश्चात्सरोविभ्रमण्डनानां संपादयित्रीं शिखरैर्विमर्ति ।  
 बलाहकच्छेदविभक्तारागामकालसंख्यामिव धातुमत्ताम् ॥४॥  
 आमेत्सलं संचरतां घनानां क्षायामघःसानुगतां निषेव्य ।  
 उद्वेजिता वृष्टिभिराभयन्ते शृङ्गाणि यस्यात्पवन्ति सिद्धाः ॥५॥

॥ पहला सर्ग ॥

भारतके उत्तरमे देवताने समान पूजनीय हिमालय शरदपर बडा भारी पहाड है । यह पूर्व और पश्चिमके समुद्रों तक फैला हुआ ऐसा लम्बा है मानो यह पृथ्वीके नापते तौलनका मापदण्ड हो ॥१॥ राजा पृथुके कहतेसे सब सर्वताने मिलकर इसे बड़डा बनाया और दुहनेमे चतुर मेघ पर्वतकी पत्नी बनकर पृथ्वी की गैसे पर्वतकीले रत्न और जडी-बूटियां सुरकर निकाल ती ॥२॥ शान्तिगत रत्न उत्पन्न करनेवाले इस हिमालयकी शोभा हिमके कारण कुछ कम नहीं हुई क्योंकि जहाँ बड़से गुण ही नहीं यदि एक प्राय भवगुण भी था जाय तो उसका बैसे ही पता नहीं पड़ता जैसे चन्द्रमाकी निरखीमे उसका कलक छिप जाता है ॥३॥ हिमालयके कुछ चोटियोंपर पेर प्रादि घातुओंकी प्रकृत रंग-बिरंगी चट्टानें हैं । इसलिये कभी कभी उन चट्टानोंके पास पहुँचे हुए बादलोंके टुकड़े उनके रंगकी छाया पर्वतसे सन्ध्याके बादलोंजैसे रंग बिरंगे दिखाई पड़ने लगते हैं । उन्हें देखकर सन्ध्या होनेके पहले ही जहाँकी प्रत्यराओंको यह भ्रम हो जाता है कि सन्ध्या हो गई और इस हृदयहीमे वे सायबलके नाच-गानेके लिये अपना शृङ्गार करना प्रारम्भ कर देती हैं ॥४॥ इसकी कुछ चोटियां इसनी ऊँची उठी हैं कि मेघ भी उनके बीचोंबीच ही पहुँचकर रह जाते हैं, उनके ऊपरका भाग भाग मेघोंके ऊपर निकला रहता है । इसलिये निचले भागमे संध्याका आनन्द लेनेवाले सिद्ध तोष अब अधिक वर्षा होनेसे घबरा उठते हैं, तब वे बादलोंके ऊपर उठी हुई उन चोटियोंपर जाकर उठने लगते हैं जहाँ उस समय

पदं तुपारस्रतिधौतरक्तं यस्मिन्नदृष्ट्यापि इवद्विषानाम् ।  
 विदन्ति मार्गं नपरन्त्रगुक्तैर्मुक्ताफलैः केमरिणां किराताः ॥६॥  
 न्यस्ताचरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुञ्जरविन्दुशोशाः ।  
 व्रजन्ति त्रिधाधरसुन्दरीणाभनङ्गलेपक्रिययोपयोगम् ॥७॥  
 यः पूरयन्कीचकरन्भ्रमागान्दरीशुश्रोत्थेन ममीरथेन ।  
 उद्गास्पतामिच्छति किन्नराणां वानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ॥८॥  
 कपोलकण्ठः करिभिर्विनेतुं विघडितनां सरलद्रुमाणाम् ।  
 यत्र स्रुतकीरतया प्रसूतः सान्नि गन्धः सुरभीकरोति ॥९॥  
 धनेचराणां धनितामरानां दरीगृहोत्सङ्गनिपक्तभासः ।  
 भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः ॥१०॥  
 उद्वेजयत्यद्गुलिपाण्डिभामान्मार्गं शिलीभृतहिमेऽपि यत्र ।  
 न दुर्वहश्रोणिपयोधरातां भिन्दन्ति मन्दां गतिमस्वमुख्यः ॥११॥  
 दिवाकराद्रक्षति यो गुह्यासु लीनं दिवाभीतमिगान्वकारम् ।  
 क्षुद्रेऽपि नूनं शरणां प्रपन्ने ममत्वमुच्चैःशिरसां सतीव ॥१२॥

धुन बनी रहती है ॥११॥ यहाँके सिंह जब हाथियोंका मारकर चले जाते हैं तब रक्तमे लाल उनके पञ्जीकी पत्तों हुई छाप दिग्बनी धारसे धुन जाती है । फिर भी उन सिंहोंके नखोंसे गिरि हुई गज-मुक्तामोको देखकर ही यद्गुके किरात जान लेते हैं कि सिंह बियर गए हैं ॥६॥ इस पर्वतपर उत्पन्न होनेवाले जिन भोज-पत्रोपर लिखे हुए मखर हाथीकी सूँवर बनी हुई लाल बुँदवियो-जैसे बिसाई पढ़ने हैं उन्हें निष्कारियां भाले प्रेम पर लिखनेके काममे साया करती हैं ॥७॥ इस महाद्वार ऐसे देवतासे बाँस बहुतामत्तसे होते हैं जो बामु भर जानेपर बजने लगते हैं । तब ऐसा जान पड़ता है मानो जैसे स्वर्गसे मानेवाले किन्नरोंके गीतोंने साय से सगत कर रहे हो ॥८॥ जब यहाँके हाथी अपनी कतपटी मुजसानेके लिये देवदाहने पैदंगि माया रमयते हैं तब उनसे ऐसा मुगन्धित रूप बहने लगता है कि उसकी महबसे इस पर्वतकी सभी षोडियां एक साथ गमक उठनी हैं ॥९॥ यहाँकी गुफाओंमे रातको चमकनेवाली जड़ी-बूटियां भी बहुत होती हैं । इसलिये यहाँके निराज लोग जब अपनी-अपनी शिपतमाओंके साथ जब गुफाओंमे विहार करते जाते हैं तब ये चमकती जड़ी बूटियां ही उनकी काम-ब्रीडाने समय बिना लेकने दीपक बन जाती हैं ॥१०॥ यहाँकी किन्नरियां जब जमे हुए हिमने मार्गोंपर चलती हैं तब उनकी उँगलियां और एडियां एँट जाती हैं, पर ये नहीं गया । अपने भारी नितम्बों और स्तनोंके बोगने मारे ये बेचारी सोझासे थल नहीं पाती और चाहने हुए भी ये अपनी स्वाभाविक मन्द गतिको छोड़ नहीं पाती ॥११॥ हिमालयकी सम्यो गुफाओंमे दिनमे भी संघेरा छाया रहता है । ऐसा लगता है मानो संघेरा भी दिनमे उरनवाले उत्तुके सामान हलकी गहरी गुफाओंमे जानर दिनमे छिद्र जाता है और हिमालय उठे अपनी गोदमे धरकर दे देखा है क्योंकि जो मरुत होते हैं ये अपनी धरलमे घाए हुए नीच बोगाने भी बैसा ही अपनापन बनाए रहने हैं जैसा सज्जनोंके साथ ॥१२॥

लाङ्गुलविद्येपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचिमौरैः ।  
 यस्यार्थपुक्तं गिरिराजशब्दं कूर्षन्ति बालव्यजनैश्चमर्यः ॥१३॥  
 यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किंपुरुषाङ्गनानाम् ।  
 दरीगृहद्वारविलम्बिन्नास्तिरस्करिस्थो जलदा भवन्ति ॥१४॥  
 भागीरथीनिर्भरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः ।  
 यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते गिन्नशिखण्डिग्रहः ॥१५॥  
 सप्तपिंहस्तावधितायशोपायघो विवस्वान्परिवर्तमानः ।  
 पद्मानि यस्याग्रसरोरुहाशि प्रबोधयत्पूर्ध्वमुखैर्मयूखैः ॥१६॥  
 यज्ञाङ्गपोनिस्त्वमवेक्ष्य यस्य सारं धरित्रीभरश्चमं च ।  
 प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत् ॥१७॥  
 स मानसीं मेरुसखः पितृणां कन्यां कुलस्य रिथतये स्थितितः ।  
 भेनां सुनीनामपि माननीयान्मानानुरूपां विधिनापयेमे ॥१८॥  
 कालक्रमेणाथ तयोः प्रपृच्छे स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसङ्गे ।  
 मनोरमं यौवनमुद्ग्रहन्त्या गर्भोऽभवद्भूधरराजपत्न्याः ॥१९॥

जिन हिरण्यपोषी पूंछोके खँवर बगते है वे चमरी हरिणियाँ जब यहाँ चन्द्रमाकी किरणोके समान  
 अपनी धौली पूंछोकी द्धर-उपर घुमाती हुई चलती है तब ऐसा प्रतीत होता है मानो वे द्धत पर्वत-  
 राजापर पूंछोके खँवर दुलाकर इतना गिरिराज नाम सक्ता वर रही हो ॥१३॥ जब यहाँकी गुफा-  
 मोमे विन्दियाँ अपने अग्रतमके साथ काम क्रीडा करती रहती है उत तमम जब वे शरीरपरसे बहम  
 हट जानेके कारण सजाने लगती है तब बाबल उन गुफामोके द्वारोपर घाँकर धौट करके प्रवेरा कर  
 देते हैं ॥१४॥ मनाजीके भरनोरी कुहारीसे लदा हुआ, बार-बार देवदारुके गुफाको कँपानेवाला  
 धीर किरातीकी देटीमे बंधे हुए गोरपखोको फरफराने वाला यहाँका शीतल-मद-सुगन्ध पवन उब  
 किरातीकी यकाम मिटाता चलता है जो भूमोकी लोत्रमे हिमालयपर द्धर-उपर घुमते रहते हैं ॥१५॥  
 द्धतकी ऊँची बोटियोपरके तातोसे खिलनेवासे कमसोकी स्वय सप्तपिण्ड पूजाके लिये अपने सप्तपि  
 मण्डलके प्राकर तोह ले जाया करते हैं । उनके घुमनेसे जो कपस बन रहते हैं उन्हें नीचे उदय  
 होनेवाला सूर्य अपनी किरणें ऊँची करके चिताया करता है ॥१६॥ यज्ञपत्रम पानेवाली सामप्रि-  
 योकी उत्पन्न करनेके कारण <sup>पुत्र</sup> पृथ्वीको धँवाले रतनेवी शक्ति होनेके कारण इस हिमालयको स्वयं  
 प्रजाजीने इन पर्वतोका स्वामी बना दिया जिन्हे यज्ञमे भाग पानेका अधिकार पिला हुआ है ॥१७॥  
 सुनेखे मित्र धीर मर्यादा जाननेवासे हिमालयने अपना बस चलानेके लिये मेना नामकी उस पत्न्यासे  
 शास्त्रे अनुयाय विवाह किया जो पितरोंके मन्ते उत्पन्न हुई थी, जिसका मुनि लोग भी प्रादर करते  
 हैं धीर जो हिमालयके समान ही ऊँचे कुल धीर प्रोखवाती थी ॥१८॥ विवाह हो जानेपर हिमालय धीर  
 मेना दोनोने मनचाहा भोग-विवासा किया धीर कुछ दिनोंके हिमालयकी यह सुन्दर धीर सुखी पत्नी

असूत मा नामवधूपभोग्य मैनाक्रमम्भोनिधिवद्भसख्यम् ।  
 क्रुद्धेऽपि पक्षच्छिदि वृत्रशत्राववेदनाज्ञं कुलिशचतानाम् ॥२०॥  
 अथावमानेन पितुः श्रुक्ता दक्षस्य कन्या भवपूर्वपत्नी ।  
 सती सती योगविसृष्टदेहा तां कन्मने शैलवधुं प्रपेदे ॥२१॥  
 सा भूधराशामधिपेन तस्यां समाधिमत्यामुदपादि भव्या ।  
 सम्पद्यप्रयोगादपरिचितायां नीताविवोत्साहगुणेन संपत् ॥२२॥  
 प्रसन्नदिकषांस्तुविविक्तघातं शतस्वनानन्तरपुष्पवृष्टि ।  
 शरीरिण्यां स्थावरजंगमानां सुखाय तज्जन्मदिनं शभूय ॥२३॥  
 तथा दुहित्रा सुतरां सवित्री स्फुरत्प्रभामगदलया चकासे ।  
 विदूरभूमिर्नवमेघशब्दाहुङ्गिचया रत्नशलाकयेव ॥२४॥  
 दिने दिने सा परिवर्धमानालम्बोदया चान्द्रमसीव लेप्ता ।  
 पुपोपलावण्यमयान्विशेषाञ्ज्योत्स्नान्तराणीन क्लान्तराणि ॥२५॥  
 तां पार्वतीत्याभिजनेन नाम्ना ग्रन्थुप्रियां शन्धुजनी जुहाव ।  
 उमेति मात्रा तपमो निपिद्धा पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम ॥२६॥

मैना गर्भवती हो गई ॥११॥ मैनाके उस गर्भसे मैनाक नामका वह प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने नाग-  
 कन्याके साथ विवाह किया, समुद्रके साथ मिश्रण भी और पर्वतोंके पर कान्तेवाले इन्द्रके शृणु  
 होनेपर भी उनके यन्त्रकी शोच अपने शरीर पर नहीं लपने दी ॥२०॥ मैनाकके जन्मके कुछ ही  
 दिनों पीछे ऐसा हुआ कि महादेवजीकी पहली पत्नी और दक्षकी कन्या परम माधवी सतीने  
 अपने पिताके अपमानित होनेके कारण योग-बलसे अपना शरीर छोड़ दिया और दूसरा जन्म  
 लेनेके लिये वे मैनाकी गोदमें जा बनी ॥२१॥ और जैसे टीक-और कामके सार्द जानेसे न  
 बिगड़नेवाली नीति जिस प्रकार उरसाहका केन पाकर बड़ी सम्पत्ति उत्पन्न करती है, उन्ही प्रकार  
 हिमालयने पवित्रता मैना के द्वारा उस कल्याणकी जन्म दिया ॥२२॥ उनके जन्मके दिन आकाश  
 खुला हुआ था । पञ्चमे पूजन नाम भी नहीं था, धाराधने पर चलने साथ-साथ पूज करत रहे  
 थे और घर-घर सभी जगह जन्मके प्रसन्न हो उठे थे ॥२३॥ जैसे जैसे मैनाके गर्जनेपर विदूर  
 पर्वतने रत्नोप सुपुर पूट माने है और उनमें प्रपाउसे विदूर पर्वतकी भूमि चमक उठनी है  
 जैसे ही तेजोग्ज्वलने भरें मुरखानी उम कन्याको गोदमें पाकर नाम्नी हिल उठी ॥२४॥ पीरे-  
 पीरे पार्वतीजी पन्द्राजने समान दिन दिन बढ़ने लगी, और जैसे चौरवीके घटनेने साथ-साथ  
 पन्द्रमारी पीर गभी बगाएँ भी बढ़ने लगी ? जैसे ही ज्यो-ज्यो पार्वतीजी बढ़ने लगी त्यो-त्यो  
 उनके पुत्र पर भी सुधीय होकर बढ़ने लगे ॥२५॥ पर्वतने उत्पन्न होकर कारण पिताने और  
 कुटुम्बिकाने करनी हुआगे सम कन्या ही पार्वती करकर पुत्रारना सम्भव कर दिया । पीछे जब पार्वती  
 को उनकी माताके उमा [उ=दे (पक्ष) मा=(सय मठनरो १)] कहकर अपना करनेसे रोना था

महीभृतः पुत्रवतोऽपि दृष्टिस्तस्मिन्नपत्ये न जगाम वृक्षिम् ।  
 अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेषसङ्गा ॥२७॥  
 प्रभामहत्या शिखयेर दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः ।  
 संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तथा स पूतश्च विभूषितश्च ॥२८॥  
 मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः सा कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च ।  
 रेमे मुहुर्मध्यगता सप्तोनां क्रीडारसं निर्विशतीव शाल्ये ॥२९॥  
 तां हंसमालाः शरदीव गङ्गां महीपथिं नक्तमिवात्मभासः ।  
 स्थिरोपदेशामुयदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः ॥३०॥  
 असंभृतं मण्डनमङ्गप्टेरनासवारूपं करणं मदस्य ।  
 कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं शल्पपात्पर साथ वयःप्रपेदे ॥३१॥  
 उन्मौलितं तुलिकयेव चित्रं सूर्याशुभिर्मिन्मिवारविन्दम् ।  
 यभूय तस्यारचतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन ॥३२॥  
 अम्बुधराङ्गुणसप्रभाभिर्निसेपणाद्रागमिवोद्विरन्तौ ।  
 भ्राजहृतस्तच्चरयौ पृथिव्यां स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम् ॥३३॥

तबसे उनका नाम जमा पढ गया था ॥२६॥ जैसे श्रीरंगी गीते बसन्तके देरो कुलोको छोटकरे  
 मामरी मजरीखेपर ही मंड्यतो रहते हे जैसे ही बनेक सवानेके होते हुए भी हिमवानकी मर्से  
 पार्वतीपर ही मंडकी रहती थी ॥२७॥ जैसे मत्स्यत प्रकाशमान सोने पाकर दोषक, मन्दाकिनीको पावार  
 स्वर्गका मार्ग और व्याकरसके चुटु काठी पाकर विद्या लोच पवित्र और सुन्दर लगने लगते हैं ।  
 जैसे ही पार्वतीजीको पाकर हिमवान् भी पवित्र और सुन्दर हो गए ॥२८॥ पार्वतीजी अपने ससियों  
 के साथ कभी तो गंगाजीके वनुए तटपर बेविद्या जाती थी, वभी पद सेतती थी और कभी पुष्टियाँ  
 बना-बनाकर सजाती थी । इस प्रकार सेल-बूबद उनका पुरा वचपन बीत गया ॥२९॥ जब  
 मत्स्यत तीव्र बुद्धिवासी पार्वतीजीके पढना प्रारम्भ किया उस समय पूर्वं जन्मकी तारी विद्याएँ  
 उन्हें तारी प्रशार अपने गए स्मरण हो आई जैसे यरव ऋतुके याजविषर गंगाजीमे हस भा  
 आते है या जैसे अपने भाप चमकनेवालो जठो वृटियोंमे रातको चमक भा जाती है ॥३०॥ इस  
 प्रकार धीरे धीरे उनका वचपन बीत गया और उनके शरीरमे वह यौवन फूट पडा जो शरीरकी  
 सताका स्वाभाविक सिगार है, जो यदिरानके बिना ही मनको मतवाला बना देता है और जो  
 वामदेवका बिना कुलोयाला बाण है ॥३१॥ जैसे कुँबीसे ठोक-ठीक रग भरनेपर चित्र लिल उठता है और  
 सूर्यकी किरणोका परस पाकर नमलका झूल हँस उठता है जैसे ही पार्वतीजीका शरीरमे नया  
 यौवन पावर बहुत जिल उठा ॥३२॥ जब वे चलती थी तब उनके स्वाभाविक जाल और कोमल  
 पैरोंके उठे हुए मैगूठीके मधोमे निवसनेवाली चमकने देखकर ऐसा जान पडता था मानो वे पर  
 ललाई उगल रहे हो और जब वे अपने इन परणोकी उठा उठानर ग्यती चलती थी तब तो ऐसा

सा राजहंमैरिच संनताङ्गी गतेषु लीलाञ्चितविक्रमेषु ।  
 व्यनीयत प्रत्युपदेशलुब्धैरादित्सुभिर्नृपुरमिञ्जितानि ॥३४॥  
 वृत्तानुपूर्वे च न चातिदीर्घे जह्ते शुभे सृष्टवतस्तदीये ।  
 शेषाङ्गनिर्माणविधौ विधातुर्लावण्य उत्पाद्य इवास यतनः ॥३५॥  
 नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैत्यात्कदलीविशेषाः ।  
 लब्ध्यापि लोके परिग्राहि रूपं वातास्तदूर्वरुपमानवाह्याः ॥३६॥  
 एतावता नन्वनुभेयशोभि क्वाञ्चीगुणस्थानमनिन्दितायाः ।  
 आरोपितं यद्गिरिशेन पश्चादनन्यनारीकमनीयमङ्गम् ॥३७॥  
 तस्याः प्रगिष्टा नतनाभिरन्ध्रं रराज तन्वी नवलोमराजिः ।  
 नीवीमतिक्रम्य मितेतरस्य तन्मेखलामध्यमखेरिवाचिः ॥३८॥  
 मध्येन ना वेदविलग्नमध्या वलित्रयं चारु वभार वाला ।  
 आरोहणार्थं नश्रयौवनेन कामस्य तोपानमिव प्रयुक्तम् ॥३९॥  
 अन्योन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं पाएडु तथा प्रवृद्धम् ।  
 मध्ये यथा श्याममुरसस्य तस्य मृणालसूत्रान्तरगम्पलम्बम् ॥४०॥

जान पड़ता था मानो वे पग पगपर स्थल कमल उपाती चल रही हो ॥३३॥ यौवनके भारसे झुकी हुई जब वे हाव-भावतो चलाती थी उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उनके विद्युधोसे निकलनेवाली मधुर ध्वनिकी सीखनेके लिए ललचाये हुए राजहंसोंके अपनी हाव-भरी चाल उन्हें पहले ही बढ़नेमें तिलादी ही ॥३४॥ उनके दृष्टके शरीरको सुन्दर बगानेके लिये प्रसूने सुन्दरताकी जितनी सामग्रियां इकट्ठी की थी वे सब तो उनकी शत्रव उत्तारवाली, गोल और ठीक मोटाईवाली लौकीके बनानेमें ही समाप्त हो गईं । इसलिये सेप भगोशो बनानेके लिये सुन्दरताकी और सामग्रियां फिर जुटानेमें बह्याग्रीको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा ॥३५॥ पार्वतीको उन दोनों मोटी लौकीकी उपमा दो ही वस्तुओंसे दी जा सकती थी—एक तो हाथीके सूंके और दूसरे केलेके खन्नेसे । पर हाथीकी सूंके कड़ी होती है और केलेका पत्रा बड़ा टपटा होता है इसलिये पार्वतीकी बड़ी बड़ी लौकीके जोड़की कोई भी ठीक वस्तु न मिल सकी ॥३६॥ उन धरमन्त सुन्दर भगोवतीने नितम्ब विलने सुन्दर रहे होंगे यह तो इती बातसे मान्य जा सकता है कि विवाह करनेपर स्वयं शिवजीने उन नितम्बोंको अपनी उस गोदमें रक्ता जहाँ उन पहुँचनेकी कोई और स्त्री साथ भी नहीं कर सकती ॥३७॥ नाडेके ऊपर गहरी नाभितल पहुँची हुई और नये यौवनके आनेके कारण यानोकी जो नई उगी पतली रेखा बन गई थी उस देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो नाडेके ऊपर बंधी हुई उनकी उगबीने यौवनीय जटा हुआ नीलम चमक उठा हो ॥३८॥ उन पतली कमरवाली और नये यौवनवालीके पेटपर जो तीन विद्युडन भी रखाएँ पड़ी हुई थी उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेवकी ऊपर स्तन यादि भगोवन चढ़ा लेजानेके लिये नये यौवन की लो बनादी हो ॥३९॥ उन कमलके समान शौनोवानी पार्वतीने, शिवकी पुंड्रिकोवाके गारे गीरे दोनों स्तन बढ़कर आपसमें इतने सट गये थे कि उनमें यौवने इतना भी स्थान नहीं रह गया कि कमलकी नासना एक

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति मे वितर्कः ।  
 पराजितेनापि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन ॥४१॥  
 कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य युक्ताकलापस्य च निस्तलस्य ।  
 अन्योन्यशोभाजननाद्भवूव साधारणो भूपगम्भ्यभावः ॥४२॥  
 चन्द्रं गता पद्मगुणाच्च मुहुक्तेष्वश्रिता चान्द्रमसीमभिर्याम् ।  
 उषामुलं तु प्रतिपद्य लोलो द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः ॥४३॥  
 पुष्पं पद्मसोपहितं यदि रयान्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम् ।  
 ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्णस्तकचः स्मितस्य ॥४४॥  
 स्परेण तस्याममृतस्रुतेव प्रजल्पितायामभिजातवाचि ।  
 अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना ॥४५॥  
 प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषमधीरविप्रेक्षितमायताक्ष्या ।  
 तथा गृहीतं तु मृगाङ्गनाभ्यस्ततो गृहीतं तु मृगाङ्गनाभिः ॥४६॥  
 तस्याः शलाकाञ्जननिर्मितेषु फान्तिर्भ्रुवोरायतलेक्षयोर्षी ।  
 तां धीक्ष्य लीलाचतुरामनङ्गः स्वचापसौन्दर्यमदं मुमोच ॥४७॥

सूत भी उत्तम सत्ता सके ॥४०॥ मेरी समझमें पार्वतीजीकी मुजाएँ सिरस्के फूलसे भी अधिक कोमल थी, इसीलिये तो फूलोंके बदनवाले कामदेवने चित्रजीसे हार जानेपर उनके गलेमें इन्हीं मुजा-प्रोका फला बनाकर डाल दिया था ॥४१॥ पार्वतीजीका पोल-पोल गला घौर उगनेसे उनके ऊँचे स्तनोपर लटका हुआ गोख मोतियौना हार, दोनों एक दूसरेकी लोभा बढ़ा रहे थे । पार्वतीजीके कण्ठीकी लोभा हार बढा रहा था और उस हारकी लोभा उनका कण्ठ बढा रहा था ॥४२॥ [जबतक वे उत्पन्न नहीं हुई थी तबतक] जबस लोभावाली लक्ष्मी बड़ी बुलियासे पगी रहती थी क्योंकि रातकी जय वे चन्द्रमामे पहुँचती थी तब उन्हें कमलका ध्यानन्द नहीं मिल पाता था और जब दिनमें वे कमलमें था जपती थी तब रातके चन्द्रमाका ध्यानन्द उन्हें नहीं मिल पाता था । पर जबसे वे [चन्द्रमा और कमल दोनोंके गुणवाले] पार्वतीजीके मुसम था वसी तबसे उन्हें [चन्द्रमा और कमल] दोनोंका ध्यानन्द एक साथ मिलने लगा ॥४३॥ उनके लाल-लाल श्रोत्रोपर फँसी हुई उनकी मुस्कराहटका उजवाफन ऐसा सुन्दर लगता था जैसे चास चोपलमें कोई उजना फूल रखा हुआ हो या स्वर्ण मूँचेके बीचमें मोती जडा हुआ हो ॥४४॥ वे यधुर बालीवाली जब बोलने लगती थी तब गानो प्रभृतीका धारा फूल बिललती थी । उनकी धोती बोलीके साथे कोयलकी बूक कागोको ऐसी कडवी लगती थी जैसे किसी प्रनासीने अनमिली चीखाने केमुने तार छेद दिए हो ॥४५॥ उन बड़ी बड़ी प्राँखोवालीकी चितवन, प्राँधीसे हिलते हुए नीले नगलोके समान चल भी । उसे देखकर यह पता ही नहीं चल पाता था कि यह क्या उन्होंने हरिश्चर्यसे भोली थी या हरि-चर्यसे ही उनसे रोली थी ॥४६॥ उनकी लकी घोर मनोहर भौंहे ऐसी लगती थी जैसे किसी ने तूलिका केकर बनाई हो । वे भौंहे इतनी सुन्दर थी कि नामदेव भी अपने धनुषकी सुन्दरताका



लज्जा तिरथां यदि चेतसि स्वादमरायं पर्वतराजपुत्र्याः ।  
 तं केशपाशं प्रसमीच्य कुर्युर्बालप्रियत्वं शिथिलं चमर्यः ॥४८॥  
 सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशतेन ।  
 सा निर्मिता विश्वसृजा प्रवत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्ष्येव ॥४९॥  
 तां नारदः कामचरः कदाचित्कन्यां किल प्रेक्ष्य पितुः समीपे ।  
 समादिदेशैष्वधूं भवित्रीं प्रेम्णा शरीरार्चहरां हरस्य ॥५०॥  
 गुरुः प्रगल्भेऽपि वयस्यतोऽस्यास्त्वस्थौ निवृत्तान्पचराभिलाषः ।  
 श्रुते कृशानोर्न हि मन्त्रपूतमर्हन्ति तेजोऽस्यपरासि हृष्यम् ॥५१॥  
 श्रयाचितारं नहि देवदेवमद्रिः सुतां ग्राहयितुं शशक ।  
 श्रम्यर्थनाभङ्गभयेन सापुर्माध्यस्थमिष्टेऽप्यवलम्यतेऽर्थे ॥५२॥  
 यदैव पूर्वं जनने शरीरं सा दक्षरोपात्सुदती मसर्ज ।  
 तदाप्रभृत्येव विमुक्तसङ्गः पतिः पशुनामपरिग्रहोऽभूत् ॥५३॥

जो मन्त्र लिए किरते थे वह इन मौहोके प्राये पूर पूर हो गया ॥४८॥ उनके बाल इतने गुन्दर  
 थे कि यदि बहु-पक्षियों भी समुप्यके समान सज्जा हुआ करती तो अपने बालोंपर इतरांगेवासी  
 शरीर हुरिगिया भी उनके बाल देकर अपने श्वरोंपर इतरांगी भूल जाती ॥४९॥ पार्वतीजीको  
 देवदेव ऐसा जान पड़ता था कि सत्तरको बनादेवाने ब्रह्माजी पुस्वीवरकी सारी गुन्दरता एक ही  
 देवता पाहते थे । इसीलिये तो उन्होंने सुन्दर मन्त्रोंकी उपमासे धारणरती सब वस्तुओंकी उत्तमसे  
 शरीरपर उगे सब मन्त्रोंपर बवास्वान मन्त्राकर सुन्दरताकी मूर्ति पार्वतीजीको बनाया था ॥४९॥  
 अपने माते देकर उपर पुगनेवासे नारदजी एक दिन प्रमते पागते शिवलक्ष्मणे वहाँ पहुँके तो क्या  
 वेगते हैं कि हिमालयसे पाग उगती कन्या जी बँठी हुई है । उन्हें देखते ही नारदजीने यह भविष्य-  
 वाणी कर दी कि यह कन्या अपने देगते शिवजीके प्राये शरीरको स्वापिनो और उनकी धनेली  
 पत्नी बनकर रहेगी ॥५०॥ यद्यपि पार्वतीजी सयानी होती चली रा रही थी पर नारदजीकी बातसे  
 हिमालय इतने निश्चिन्त हो गए कि उन्होंने दूररा वर सोननेकी विना ही छोड़ दी क्योंकि  
 जैसे मन्त्रसे ही है हवनकी सामग्री, अग्निकी छोटकर और कोई नहीं ले सता जैसे ही  
 महादेवजीको छोडकर पार्वतीजीके और अल्प ही मीन कर सता था ॥५१॥ पर हिमालयके  
 सोचा कि जबतक समय महादेवकी ही कन्या मीन नहीं जाते तबतक अपने प्राप उन्हें पन्ना देगे  
 जाना ही नहीं जँगा । इसीलिये जहाँ सगन सोनोकी निरादरता डर होता है वहाँ के अपने  
 कामसे किसी दिनवर्तने माय के भेगे हैं ॥५२॥ इसर जबसे सारा अपने पितर दशमे हाथों महा-  
 देवकीका समान होकर छोड करके सतकी अग्निके अपना शरीर छोडा था तभीते महादेवजीने

स कृत्विवासास्तपसे यथात्मा गङ्गाप्रवाहोवितदेवदारु ।  
 प्रस्थं हिमाद्रेःसृग्मनाभिर्गंधि किञ्चित्क्वणत्किन्नरमध्युवास ॥५४॥  
 गणा नमेरुप्रसवावतंसा भूर्जत्पत्रः स्पर्शवतीर्दधानाः ।  
 मनःशिलाविच्छुरिता निपेदुः शैलेयनद्वेषु शिलातलेषु ॥५५॥  
 तुषारसंघातशिलाः सुरार्थैः समुल्लिखन्दर्पकस्तः ककुब्जान् ।  
 दृष्टः कथंचिद्भवयैर्विविग्नेरसोढसिंहध्वनिरुन्ननाद ॥५६॥  
 तत्राग्निभाधाय समित्समिद्धं स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्तिः ।  
 स्वयं विधाता तपसः फलानां केनापि कामेन तपश्चचार ॥५७॥  
 अन्ध्र्यंमध्यंश्च तमद्रिनाथः स्वर्गोक्तसामर्चितमर्चयित्वा ।  
 आराधनायास्य सखीसमेता समादिदेश प्रयसां तनुजाम् ॥५८॥  
 प्रत्यर्धिभूतामपि तां समाधेः शुभ्रपभाणां गिरिशोऽनुमेने ।  
 विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ॥५९॥

भी सप भोग-विनाश छोड़ दिए थे और दूसरा विवाह नहीं किया था ॥५३॥ इतना ही नहीं  
 अपनी इन्द्रियोकी जीतनेवाले और घाल छोड़नेवाले भगवान् वायुदेवी बल्लुकीको मन्पने यही हुई  
 हिमालयकी एक ऐसी मुन्दर पोटोपर जाकर तप करने लगे जहाँके देवदारुके वृक्षोको यगगीको  
 धारा बराबर हीचली थी और नगर्बं दिन-रात गाते रहते थे ॥५४॥ उनके पास ही तिरपर  
 नमेरुके बोनल पुत्रोकी माता बाँधे, धरीपर मोक्षपत्र लपेटे और संकलितने रङ्गते अपने धारीर रंगे  
 हुए उनके प्रमथ भादि गगन भोग शिलाजीतने पुत्री हुई श्टानोपर बँठे बहस देते रहते थे ॥५५॥  
 उनके पास ही उनका गर्वीला नन्दी सखि भी रहता था जो बरजते हुए गिह्वी महाद्वी न सह  
 सफनेके कारण अब अपने पुरोंति द्विगकी श्टानोको लुंइता हुआ उबार उटवा था तन नीलगाईं  
 पदमार उते देसती रहे जाती थी कि यह सिंह-वंसा बरजनेवाला दुखस बोन प्रा पहुँचा ॥५६॥  
 उनी पोटोपर सत्र तपस्यापोना स्वयं फन देवेवाले दिवनीने अपना ही दूसरो मूर्ति भन्निने  
 तानिघाते जगावर न जाने किस कलकी इच्छाने तप करना प्रारम्भ कर दिया था ॥५७॥ बिन  
 महादेवकीही स्वयंके देवता पूजते हैं, उनकी पूजाके लिये हिमालय पर्वतो पुत्रीके साथ महादेवकी-  
 की सेवामें बहुमूल्य पुजाकी सामग्री लेकर पहुँचे । पहले उन्होंने स्वयं उनकी पूजा की और फिर  
 अपनी बन्वाको आज्ञा दी कि अपनी कृतिभोके साथ जाकर निचोके पूजा करे ॥५८॥ यद्यपि  
 पार्वतीकीके वहाँ रहतेसे निचोके तपसे बाधा पड़ सकती थी, फिर भी उन्हेन पार्वतीकीही सेवा  
 की, क्योंकि उनका और महात्मा उन्हें ही सम्भनन चाहिये जिनका धन बिचर उरकन करनेवालो

अथचित्तवलिपुष्पा वेदिसंमार्गदत्ता  
 नियमविधिजलानां बर्हिषां चोपनेत्री ।  
 गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा मुकेशी  
 नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः ॥६०॥

इति महाकवि धोकातिदासकृती कुमारसंभवे महाकाव्ये  
 उद्योत्पत्तिर्नाम प्रथमः सर्गः ॥

यस्तुभ्रोकें बीच रहकर भी तिलभर न दिये ॥७६॥ सुन्दर दातोवासी पार्वतीजी वहाँ रहकर नियमसे  
 प्रति-दिन पूजाके लिये फूल चुनकर बड़े झच्छे डबसे बेदीको धो-पाँछकर और गीत्य नमंके लिये जल  
 और मुस लाकर बिना धवाबट गाने उनसी सेवा किया करती क्योंकि महादेवजीके माथेपर सँठे  
 हुए चन्द्रमाकी ठण्डी किरणें पार्वतीजी थफान तथा मिटाती रहती थी ॥६०॥

महाकवि धोकातिदासके ऐसे हुए कुमारसंभव नामके महाकाव्यमे समाप्त जन्म  
 नामकी पहला सर्ग समाप्त हुआ ।

## ॥ द्वितीयः सर्गः ॥

तस्मिन्विप्रकृताः काले तारकेण दिवौकसः ।  
 तुरासाहं पुरोधाय धाम स्वार्पंशुवं ययुः ॥१॥  
 तेषामाविरभृद्ब्रह्मा परिम्लानमुखधियाम् ।  
 सरसां सुप्तपदानां प्रातर्दीधितिमानिव ॥२॥  
 अथ सर्गस्य धातारं ते सर्वे सर्वतोमुखम् ।  
 वागीशं वाग्भिरभ्यर्थाभिः प्रथिपत्योपस्यिरे ॥३॥  
 नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सप्तैः केवलात्मने ।  
 गुणत्रयविभागाय पश्चान्द्देदमुपेयुषे ॥४॥  
 यद्मोघमयामन्तरुप्तं वीजमज त्वया ।  
 अतश्चराचरं विश्वं प्रभवस्तस्य वीयसे ॥५॥  
 तिसृभिस्त्वमवस्थाभिर्महिमानमुदीरयन् ।  
 प्रलयास्थितिसर्गायामेकः कारणां गतः ॥६॥  
 स्त्रीपुंसावात्मभागी ते भिन्नपूर्तेः तिसृचया ।  
 प्रसूतिभाजः सर्गस्य तावेन पितरौ स्मृतौ ॥७॥

### दूसरा सर्ग

उन्ही दिनों तारक नामके राक्षसने देवताओंको इतना सता रखा था कि वे छप इन्द्रको धामे करके ब्रह्माजीके पास पहुँचे ॥१॥ उदात्त मूर्त्याने देवताओंके सामने ब्रह्माजी उसी प्रकार धावर प्रवृत्त हो गए जैसे उसने सोए नमस्कोने धामे प्रातःकालका सूर्य भिक्षुका है ॥२॥ ब्रह्माजीकी सामने देवता ही वे सब देवता धार मुँहवाले और सारे जगत्की बनानेवाले ब्रह्माजीको प्रणाम करके बड़े भेद-भरे शब्दोंमें यह स्तुति करने लगे ॥३॥ 'हे भगवन् ! सतारको रचनेके पहले एव ही रूपम रहनवाले और यद्यार रचते समय, सत्त्व, रज और तम तीन गुण उत्पन्न करने ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामके तीन रूपके बन जानवाले आपको प्रणाम है ॥४॥ हे ब्रह्मन् ! आपने सबसे पहले जन्म उत्पन्न करने उनमें ऐशा जोज जो दिया जो अभी धराएय नहीं जाता और जिसमें एव और वे यजु, यधी, मनुष्य आदि बसनेवाले जीव और दूसरी और वृक्ष, पहाड़ आदि न चलनेवाला अणु उत्पन्न हुआ है । इसीविषय आपकी ही सब शोण सतारका उत्पन्न करनेवाला बताते हैं ॥५॥ आप ही त्रिव, विष्णु और द्विरूपयुक्त इन तीन रूपोंके अपनी एक प्रवृत्त करके सतारका नम, धारन और उत्पादन करते हैं ॥६॥ आप ही जय श्री और पुरापुरी मूर्ति करने चलते हैं, जब समय आपने ही श्री और पुष्प दो रूप बन जाते हैं । वे ही दोनों रूप

स्वकालपरिमाणेन व्यस्तरात्रिन्दिवस्यते ।  
 यौ तु स्वप्नावयोधौ तौ भूतानां प्रलयोदयौ ॥८॥  
 जगद्योनिरयोनिस्त्वं जगदन्तो निरन्तकः ।  
 जगदादिरनादिस्त्वं जगदीशो निरीश्वरः ॥९॥  
 आत्मानमात्मना वेत्सि सृजस्यात्मानमात्मना ।  
 आत्मना कृतिना च त्वमात्मन्येव प्रलीयसे ॥१०॥  
 द्रवः संधातकठिनः स्थूलः सूक्ष्मो लघुर्गुरुः ।  
 व्यक्तोव्यक्तेतरश्चासि प्राक्काम्यं ते विभूतिषु ॥११॥  
 उद्धातः प्रखवो यासां न्यायैस्त्रिभिरुदीरणम् ।  
 कर्म यज्ञः फलं स्वर्गस्तासां त्वं प्रभवो भिराम् ॥१२॥  
 त्वामामनन्ति प्रकृतिं पुरुषार्थप्रवर्तिनीम् ।  
 तद्दर्शिनमुदासीनं त्वामेव पुरुषं विदुः ॥१३॥  
 त्वं पितृश्यामपि पिता देवानामपि देवता ।  
 परतोऽपि परश्चासि त्रिधाता वेद्यसामपि ॥१४॥  
 त्वमेव हव्यं होता च भोज्यं भोक्ता च शाश्वतः ।  
 वेद्यं च वेदिता चासि ध्याता ध्येर्यं च यत्परम् ॥१५॥

धारे सत्कारके माता-पिता कहे जाते हैं ॥७॥ प्रापने समयकी जो याप बना रखी है उसके भगुच्चार  
 जो बिन धीर रात होते हैं, उसमे जब प्राप सोते हैं तब सत्कारका महाप्रलय हो जाता है धीर जब  
 याप जागते हैं तब सत्कारकी सृष्टि होती है ॥८॥ सत्कारको भापने उत्पन्न किया है पर भापको  
 कितनी उत्पन्न नहीं किया । भाप सत्कारका अन्त करते हैं पर भापका कोई अन्त नहीं कर सकता ।  
 भापने सत्कारका प्रारम्भ किया है पर भापका अभी प्रारम्भ नहीं हुआ । भाप सत्कारके स्वामी हैं पर  
 भापका कोई स्वामी नहीं है ॥९॥ भाप, भापनेको भापनेमे ही जानते हैं और भापने भाप अपनेको  
 उत्पन्न करते हैं और जब भापना काम पूरा कर चुकते हैं तब भापनेको भापनेमे ही लीन कर  
 लेते हैं ॥१०॥ भाप तरल भी हैं, कठोर भी, छोटे भी हैं, बड़े भी, छोटे भी हैं, बड़े भी, भाप  
 बिसाई भी देते हैं और नहीं भी बिसाई देते । इस प्रकार बितनी भी सिद्धियाँ हैं वे सब भापके  
 हाथ मे हैं । भाप जैसा चाहें वैसा बन सकते हैं ॥११॥ भापने ही वेदकी वह याज्ञी उत्पन्न की है  
 जिसका प्रारम्भ अन्कारके होता है, जिसका उच्चारण उवाच, अनुदात्त धीर रचरित इन तीनों  
 स्वरोंसे होता है और जिसके मन्त्रोंसे यज्ञ करने योग्य स्वर्ग प्राप्त कर लेते हैं ॥१२॥ भापको ही धर्म,  
 धर्म, काम और मोक्षके लिये मनुष्यको उबसनेवाली मूल प्रवृत्ति बहते हैं और भाप ही उस प्रवृत्ति  
 का दर्शन करनेवाले उदासीन पुरुष भी मान जाते हैं ॥१३॥ भाप पितरोंके भी पिता, देव-  
 ताओंके भी देवता, प्रच्छोसे भी प्रच्छे और सृष्टि करनेवाले प्रजापतियोंकी भी सृष्टि करनेवाले  
 हैं ॥१४॥ भाप ही सदा हवनकी सामग्री भी हैं और भाप ही हवन करनेवाले भी हैं । भाप ही

इति तेभ्यः स्तुतीः श्रुत्वा यथार्था हृदयंगमाः ।  
 प्रमादामिमुग्धो वेधाः प्रत्युवाच दिवौकसः ॥१६॥  
 पुराणस्य फलेस्तस्य चतुर्मुखसमीरिता ।  
 प्रवृत्तिरासीञ्छब्दानां चरितार्था चतुष्टयी ॥१७॥  
 स्वागतं स्वानधीकारान्प्रभावैरवलम्ब्य वः ।  
 युगपद्युगवाहूम्यः प्राप्तेभ्यः प्राज्यविक्रमाः ॥१८॥  
 किमिदं घृतिमात्मीयां न विभ्रति यथा पुरा ।  
 हिमञ्जिष्टप्रकाशानि ज्योतीषीषि मुखानि वः ॥१९॥  
 प्रशमादचिंपामेतदनुद्गीर्णपुरापुषम् ।  
 वृत्रस्य हन्तुः कुलिशं कुण्डिवा श्रीव लक्ष्यते ॥२०॥  
 किञ्चायमरिदुर्वारः पाशौ पाशः प्रचेतसः ।  
 माग्नेश्च हतवीर्यस्य फणिनो दैन्यमाश्रितः ॥२१॥  
 कृषेरस्य मनःशल्यं शंसतीष परामघम् ।  
 अपविद्मगदो वाङ्मूर्ध्नशास इव द्रुमः ॥२२॥  
 यमोऽपि विलिपन्भूमिं दंडेनास्तमितस्विपा ।  
 हृत्तेऽस्मिन्नमोघेऽपि निर्वाण्यस्तात्लाघवम् ॥२३॥

भोगकी वस्तुएँ भी है और भाप ही भोग करने वाले भी है । भाप ही जाननेके योग्य है और भाप ही जाननेवाले हैं । भाप ही ध्यान करनेवाले हैं और भाप ही वह सर्वधेण्ड हैं जिगवा ध्यान भी किया जाता चाहिए ॥१६॥ देवतामंसि सब्जी और मन्त्रावली स्तुति सुनकर दयालु ब्रह्माजी जिस समय देवताजी से बोलेने लगे ॥१६॥ उस समय सबसे पुराने कवि ब्रह्माजीके चारो मुँहोंसे मित्रकी हुईं बाणीने प्रपना चार [परा, परमपती, पथ्यमा और बंसरी] रूपोवाला होना सूचना कर दिया ॥१७॥ ब्रह्माजी बोले - एष साय मिलकर भाप हुए अपनी वाकिले प्रपने-प्रपने प्रविकारोकी रक्षा करनेवाले और बड़ी-बड़ी वाहोवाले हे शक्तिशाली देवताओ । मैं भाप लोगोका स्वागत करता हूँ ॥१८॥ पर यह जो बताइए कि भाप लोगोके मुँहकी पहले बासी कान्ति कहाँ लगी गई । भाप लोग घुटरेले होने हुए धुँसले तारले समान उदास क्यों दिखाई दे रहे हैं ॥१९॥ वृत्रको मारने वाला और इन्द्रगनुषो समान चमकोला वज्र भी आज चमक खोकर कुण्डिलवा क्यों दिखाई दे रहा है ॥२०॥ समुद्रको नाश करनेवाला यह बरुछदेवके हाथवा फन्दा बंधे हुए सौंपके सामान हतना दीन क्यों दिखाई दे रहा है ॥२१॥ कुवेरका यह बाहु भी गदाके घिना ऐसा क्यों लग रहा है जैसे बटी हुईं धापायाला वृषाका सूट हो । यह बता रहा है कि किसी बड़े तपसे शत्रुसे हार जानेका नाटा इनके हृदयमें गसक रहा है ॥२२॥ अपने निस्तेज दण्ड से पृथ्वीको कुदेदते हुए मनराज ऐसे क्यों बन रहे हैं मानो जनका बारा दण्ड भी मुझी हुईं लुक खंसा बेकाम हो गया है ॥२३॥

अमी च कथमादित्याः प्रतापचतिशीतलाः ।  
 चित्रन्यस्ता इव गताः प्रकामालोकनीयताम् ॥२४॥  
 पर्याकुलत्वान्मरुतां वेगमद्भोऽनुमीयते ।  
 अभ्यसामाघसंरोधः प्रतीपगमनादिव ॥२५॥  
 आवर्जितजटामौलिविलम्बिशशिकोटयः ।  
 रुद्राणामपि भूर्धानः क्षतहुंकारशंसिनः ॥२६॥  
 लब्धप्रतिष्ठाः प्रथमं यूयं किं बलमचरैः ।  
 अपवादैरिवोत्सर्गाः कृतव्याघ्रचयः परैः ॥२७॥  
 तद्भ्रूत वत्साः किमितः प्रार्थयध्वं समागताः ।  
 मयि सृष्टिर्हि लोकानां रक्षा युष्मास्यवस्थिता ॥२८॥  
 ततो मन्दानिलोद्धतकमलाकरशोभिना ।  
 गुरुं नेत्रसहस्रेण नोदयामास वासवः ॥२९॥  
 स द्विनेत्रं हरेरचक्षुः सहस्रनयनाधिकम् ।  
 पाचस्पतिरुवाचेदं प्राञ्जलिर्बलवासनम् ॥३०॥  
 एवं यदात्य भगवन्नामृष्टं नः परैः पदम् ।  
 प्रत्येकं विनियुक्तात्मा कथं न ज्ञास्यसि प्रभो ॥३१॥

यह वारह आदित्य भी अपना तेज गँवाने के लिये तैयार हो रहे हैं, ऐसे निच निच से घोर मदे पर्वों खिलाई दे रहे हैं कि कोई भी जबतक चाहे उन्हें जीव बचाकर देता रहे जाय ॥२४॥ जैसे ऊँची घोर बहनेवाले जलवा बहक भीमा पठ जाता है जैसे ही उनका सो पवन ऐसे पर्वों खिलाई पठ रहे हैं जैसे वे भी पबराहटवे मन्दे पठ गये हो ॥२५॥ सुली जटामौले सटवती और हारके दु पसे भ्रुवी हुई चन्द्रपतामौलाने ग्यारह पंक्ति माये भी बता रहे हैं कि उनकी हुनार करनेकी शक्ति भी जाती रही है ॥२६॥ जैसे व्याकरण आदि शास्त्रोंमें विभी व्यापक नियमको अपवादवाला नियम व्यर्थ कर देता है जैसे ही क्या आप लोग भी जिसो पराक्रमो पायुने अपना अपना परिचार सुटवा बैठे है ॥२७॥ हे देवतायो ! मुझे बताइए कि आप लोग केरे पास इन्द्रों होकर क्या कहनेके लिये आए हैं, क्योंकि हमारा काम तो बेयम सगारको सृष्टि करना भर है, उषवी रक्षा करना तो आप ही लोगोरे हममें है ॥२८॥ ब्रह्माजीको यह बात सुनकर इन्द्रने अपने सहस्र नेत्रोंको इस प्रकार चलाकर बृहस्पतिजीको बोलनेके लिये सनेत्र किया जैसे मन्द पवनके चलनेपर कमलवा पन हिल उठता है ॥२९॥ जिनके दो नेत्रोंमें ही इन्द्रने सहस्र नेत्रोंमें भी मजबूर देनेकी शक्ति थी वे बृहस्पतिजी, हाथ जोड़कर ब्रह्माजीके करने लगे ॥३०॥ हे ब्रह्मन् ! आप जो कुछ करते हैं यह सब सत्य है : हम लोगके सब स्थान पायुंनि अपने हाथमें कर लिए हैं । आप, तो

भवल्लम्भवरोदीर्णस्तारकाख्या महासुरः ।  
 उपस्रवाय लोकानां धूमकेतुरिवोत्थितः ॥३२॥  
 पुरे तावन्तमेवास्थ तनोति रविरातपम् ।  
 दीर्घिकाकमलोन्मेषो यावन्मात्रेण साध्यते ॥३३॥  
 सर्वाभिः सर्वदा चन्द्रस्तं कलाभिर्निपेवते ।  
 नादचे केवलां लेखां हरचूडामणीकृताम् ॥३४॥  
 व्याघ्रचगतिरुवाने कुमुमस्तेयसाध्वसात् ।  
 न नाति वायुस्त्वत्पारवें तालघृन्तानिलाधिकम् ॥३५॥  
 पर्यायसेवामुत्सृज्य पुष्पसंभारतत्पराः ।  
 उद्यानपालसामान्यमृतवस्तमुपासते ॥३६॥  
 तस्योपायनयोग्यानि रत्नानि सरितांपतिः ।  
 कथमप्यम्भसामन्तरानिष्पचेः प्रतीचते ॥३७॥  
 ज्वलन्मणिशिखारचैर्न वासुकिप्रमुखा निशि ।  
 स्थिरप्रदीपतामेतय मूर्जंगाः पर्युपासते ॥३८॥  
 तत्कृतानुग्रहापेक्षी तं मुहुर्दतहारिवैः ।  
 अनुकूलयतीन्द्रोऽपि धल्पद्रुमविभूषणैः ॥३९॥

उसके घट-घटमे रमे हुए हैं, भसा घापते कोई बात छिपी घोडे रहती है ॥३१॥ हे भगवन् ।  
 आपका वरदान पाकर तारक नामका शक्ति की प्रकर सिर उठाता बला वा रहा है जैसे  
 सतारका नाश करनेके लिये पुष्पक (धूमकेतु) तारा निकल आया हो ॥३२॥ प्रचण्ड किरणोबाला  
 सूर्य भी उसके इश्वर उरता है कि उसके नगरपर यह केवल उतनी हो किरणें फैलाता है बिना  
 तालके कमल भर सित उठे ॥३३॥ चन्द्रमा यहाँ पूरे महीने भर अपनी पूरी बला लेकर चमका  
 करता है, केवल उस एक कलाको छोड़ देता है बिना बिबनीने अपने मस्तकका मणि बना  
 लिया है ॥३४॥ पवन भी उसके पास पक्षके वायुके अधिक वेगसे नहीं बहता क्योंकि उसे  
 डर है कि वही तारनासुरकी पुत्रवारोके फूल भङ्ग जायें और उसे चोरका दण्ड भोगना पड़े ॥३५॥  
 शत्रुने पशुपुर्ण अपने समझा बिचार छोड़कर एव साथ कुलवारोकी मातृकोके समान एव  
 दूसरी शत्रुने फूलोकी बिना छोड़े हुए अपने-अपने शत्रुने फूल उपजाकर तारकासुरकी सेवा करती  
 हैं ॥३६॥ तगुड भी उसके पास भँटके योग्य रत्न भेजनेके लिये तबतक उसके भीतर बाट जोड़ता  
 रहता है जबतक कि वे रत्न ठीक वङ्ग न जायें ॥३७॥ चमकते हुए मणिके मलकाते पाशुणि आदि  
 बड़े-बड़े साँप रातकी अपने मणिकोके न बुझनेवाले दीप ले-लेकर उसके सेवा किया करते हैं ॥३८॥  
 इन्द्र भी उसकी कृपा पानेके लिये बार-बार अपने दूतोंने हाम वल्लवृताके सुन्दर रत्न उसके



इत्थमात्ताप्यमानोऽपि क्लिप्नाति भुवनत्रयम् ।  
 शाभ्येत्प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्बनः ॥४०॥  
 तेनामरचघृहस्तैः सदयालूनपल्लवाः ।  
 धमिन्नारछेदघातानां क्रियन्ते नन्दनद्रुमाः ॥४१॥  
 वीज्यते स हि संसृप्तः श्वाससाधारणानिलैः ।  
 चामरैः सुखन्दीनां वाष्पमीकरवर्षिभिः ॥४२॥  
 उत्पाद्य मेरुशृङ्गाणि क्षुण्णानि हरितां सुरैः ।  
 आक्रीडपर्वतास्तेन कल्पिताः स्वेषु वेरमसु ॥४३॥  
 मन्दकिन्याः पयः शेषं दिग्धारणमदाविलम् ।  
 हेमाभोरुहसस्यानां तद्भाष्यो धाम सांप्रतम् ॥४४॥  
 भुवनालोकनप्रीतिः स्वर्गिभिर्नानुभूयते ।  
 खिलीभूते विमानानां तदापातभयात्पथि ॥४५॥  
 यजत्रभिः संभृतं हृष्यं विततेष्वधरेषु सः ।  
 जातवेदोमुखान्मायी मित्तामाच्छिनत्ति नः ॥४६॥  
 उच्चैरुच्चैःश्रवास्तेन हृषरत्नमहारि च ।  
 देहपद्ममिवेन्द्रस्य चिरकालार्जितं यशः ॥४७॥

पास भेजकर उसे प्रसन्न रखता करते हैं ॥४६॥ इतनी सेवा करनेपर भी वह असुर स्त्रीने भुवनीवने पीडा देखा जा रहा है क्योंकि मातके देवता बाठते नहीं मानते ॥४०॥ नन्दन वनके शिशु बृकोके कोमल पत्तकी देवताशोकी स्त्रियां बड़ी कोमलता के साथ अपने कनफूल बनानेके लिये तोडा करती थी ऊन्हीको वह रादास बड़ी निर्दयतासे काट-काटकर गिरा रहा है ॥४१॥ जब वह सोया करता है उस समय देवताशोकी बन्दी स्त्रियां गरम-गरम उरति लेती और धाँधू बहाती हुई ब्रह्मपर शैवर हुआया करती है ॥४२॥ सूर्यके घोसेसे डीली पड़ी हुई मेरुकी श्रोत्रियोको उत्पाड-उत्पाडकर उसने अपने धरमे लेजा-लेनाकर खेलके पहाड बना डाले हैं ॥४३॥ मन्दाकिनोके सोनकमल उल्लाड-उल्लाडकर उसने अपने धरकी आवसिमोमे लगा लिए है और इतीसिये मन्दाकिनोमे प्राण-वत्त वेवल दिग्गशोके मड से गेंदसा चल भर दिखाई दिया करता है ॥४४॥ पहले देवता लोग विमानोपर बढकर इस लोचसे उस सोधमे घूमते फिरते थे, पर अब उसके प्राक्रमणके डरसे प्राणाशमे निकलना जो दुःखर हो गया है ॥४५॥ वह ऐसा भापी-छलिया है कि जब यज्ञमे यजमान हूग लोगोको धाहुति देता है तब वह हूय शोकोके देखते देखते धमिनेके भूँहसे हवारा भाग छीन छेता है ॥४६॥ उसने ऊर्ध्व श्रवा नामका वह सुन्दर घोड्य छीन लिया है जो बहुत दिग्गशे

तस्मिन्नुपायाः सर्वे न- क्रूरे प्रतिहतक्रियाः ।  
 धीर्यवन्त्यौपधानीव विकारे सान्निपातिके ॥४८॥  
 जयाशा यत्र चास्माकं प्रतिघातोत्थिताचिंसा ।  
 हरिचक्रेश तेनास्य कण्ठे निष्क्रमिवापितम् ॥४९॥  
 तदीयास्तोयदेष्वद्य पुष्करावर्तकादिषु ।  
 अभ्यस्यन्ति तटाघातं निर्जितैरावता गजाः ॥५०॥  
 तदिच्छामो विमो स्रष्टुं सेनान्यं तस्य शान्तये ।  
 कर्मबन्धच्छिदं घर्मं गरस्येव मुमुक्षुवः ॥५१॥  
 गोमारं सुरसैन्यानां यं पुरस्कृत्य गोत्रभिः ।  
 प्रत्यानेप्यति शत्रुभ्यो घन्दीमिजयभियम् ॥५२॥  
 वचस्यवसिते तस्मिन्सर्वं गिरमात्मभूः ।  
 गर्जितानन्तरां शृष्टिं सौभाग्येन जिगाय सा ॥५३॥  
 संपत्स्यते वः कामोऽयं कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ।  
 न त्वस्य सिद्धौ यास्यामि सर्गव्यापारमात्मना ॥५४॥  
 इतः स दैत्यः प्राप्तश्रीनेत एवार्हति क्षयम् ।  
 विपवृक्षोऽपि संबर्ध्मं स्वयं छेत्तुमसांप्रथम् ॥५५॥

षष्ठे विष्ट हुए दम्बके मरुके समान ही महादू वा ॥४७॥ जैसे सन्निपातमे बड़ी-बड़ी शोपधिनी  
 को काम नहीं कर जाती उसी प्रकार हम भी उस गुप्तको मारनेके लिये जितने उपाय करते हैं वे सब  
 व्यर्थ होते जा रहे हैं ॥४८॥ विष्णुके जिस चक्रपर हम लोग जीतपरी प्राप्त लगाए बंटे थे, वह भी  
 जब उसमें गलेपर जाकर टकराता है तब उसमेंसे निकली हुई विषगारियाँ ऐसी काम पड़ती हैं  
 मानी उस राजसूने गलेमें माला पहना दी गई है ॥४९॥ आज ऐरावतकी भी हरा देनेवाले उसने  
 हार्थी पुष्करावर्तन आदि बादलोसे टक्कर ले-लेकर घबरा टीले ढाहनेवा सेतवाउ किया करते हैं ॥५०॥  
 इसलिये हे प्रभो ! जिस प्रकार मोक्ष पानेकी इच्छा करनेवाले लोग जन्म मरत्यसे छूटनेके लिये-कर्मके  
 बन्धनों को काटीजाना उपाय सोचा करते हैं जैसे ही हम लोग भी उस राजसूको नष्ट करनेके  
 लिये एक ऐसा सेनापति उत्पन्न करना चाहते हैं ॥५१॥ जिसे देवतायोंकी सेनाका रक्षक बनाकर  
 और उसे सेनाके प्राणे करने भगवान् इन्द्र, समुद्रोंके हाथमें बन्धीने समान पत्नी हुई दिव्य धीकी  
 लौटा मावे ॥५२॥ उनसे वह चुपनेपर बहानी ऐसी मधुर बाणी बोले जो मेघने गर्जनके पीछे  
 होनेवाली वपनि समान मनी समती थी ॥५३॥ वे बोले प्राण लीगोवै इच्छा तो पूरी हो ही  
 जायगी पर प्राण लीगोको थोड़े दिन और नाट जोहती पडेगी बयोकि तारकामुखको मारनेके लिये  
 मैं स्वयं प्रवृत्त ले नहीं सकता ॥५४॥ क्योंकि उस राजसूको मैंने ही उपदान दिया है  
 इसलिये अपने हाथसे उसे मारना मुझे ठीक नहीं लगता । अपने हाथसे लगाए हुए विष्णुके

वृचं तेनेदमेव ग्राह्मया चास्मै प्रतिश्रुतम् ।  
 वरेण शमितं लोकानलं दग्धुं हि तत्रपः ॥५६॥  
 संयुगे सांयुगीनं तमुद्यतं प्रसहेत कः ।  
 अंशादृते निषिक्तस्य नीललोदितरेतसः ॥५७॥  
 स हि देवः परंन्योतिस्तमः पारे व्यवस्थितम् ।  
 परिच्छिन्नप्रभाचर्द्दिर्न मया न च विष्णुना ॥५८॥  
 उमारूपेण ते ध्रुवं संयमस्तिमितं मनः ।  
 शंभोर्यतध्वमाक्रुद्दुमयस्कान्तेन लौहवत् ॥५९॥  
 उमे एव क्षमे वोढुमुभयोर्जीजमाहितम् ।  
 सा वा शंभोस्तदीया वा सूर्तिर्जलमयी मम ॥६०॥  
 तस्यात्मा शितिकण्ठस्य सैनापत्यमुपेत्य वः ।  
 मोक्ष्यते सुरवन्दीनां चेखीर्वीर्यविभूतिभिः ॥६१॥  
 इति व्याहृत्य विषुधान्विध्वयोनिस्तिरोदधे ।  
 मनस्याहितकर्षव्यास्तेऽपि देवा दिवं ययुः ॥६२॥  
 तत्र निश्चित्य कन्दर्पमगमत्पाकशासनः ।  
 मनसा कार्यसंसिद्धौ त्वराद्विगुणरंहसा ॥६३॥

पेटवो भी अपने ही हाथसे काटना ठीक नहीं होता ॥५६॥ उसने मुझसे उस समय जो  
 बरदान मांगा था यदि मैं उसे न देता तो उसकी तपस्यासे सारा ससार जल उठता  
 ॥५६॥ महादेवजीने शीर्षसे उत्पन्न होनेवाले पुत्रसे प्रतिरिक्त उस मुद्द-भूमिसे सहनेवाले  
 प्रसिद्ध लडाके धारकागुरका नाम धीर कोई दुसरा नहीं कर सकता ॥५७॥ क्योंकि साकर भगवान्  
 अन्धकारने पार दग्धनेवाले ये परम तेज हैं किन्हे भविष्या छू नहीं पाती । इसलिये हम धीर विष्णु  
 भी उनकी महिमाका ठिगाना भयतक नहीं खा पाए हैं ॥५८॥ अब धाप लोग कोई ऐसा जतन  
 कीजिए कि जैसे चुम्बकसे लोहा लिये जाता है वैसे ही समाधि लगाए हुए शरजीवा मम भी  
 पार्वतीजीने रूपको धीर धिन धामे ॥५९॥ क्योंकि हमारे धीर शिवजीने शीर्षको धारण करना  
 कोई हँसी-ठट्टा नहीं है । शिवजीने शीर्षको केवल पार्वतीजी धारण कर सकती हैं धीर हमारे  
 शीर्षको जसका रूप धारण करनेवाली शिवजीकी मूर्ति धारण कर सकती है ॥६०॥ उन्ही पार्व-  
 तीजीसे शरजीवा जो पुत्र होगा वही धाप लोकोका सेनापति होकर अपने पराक्रमसे ह्यताशंकी  
 बन्दी क्रियोको छुड़ाकर उनके उनके हुए बास मुनम्न सनेगा ॥६१॥ उसारको उत्पन्न करनेवाले  
 प्रज्ञाको ह्या पट्टकर धारते प्रोम्न हो गए धीर देना योग भी धामेवा नाम सोव-विधारण  
 स्वर्गलोचने धते गए ॥६२॥ इत्यने स्वर्गलोचने वट्टेशर भती भक्ति सोच विचारकर अपने नामसे

अथ स ललितयोपिद्मं लताचारुशृङ्गं

रतिवलयपदाङ्गे चापमासज्य कण्ठे ।

सहचरमधुहस्तन्यस्तघृताङ्कुरास्त्रः

शतमस्यमुपतस्थे प्राञ्जलिः पुष्पधन्वा ॥६४॥

इति महाकवियोकामिदासकृतौ कुमारसर्गवे महाकाव्ये

ब्रह्मसाक्षात्कारो नाम द्वितीयः सर्गः ॥

मिये बेगसे दौड़नेवासे मनमें कामदेवकी स्मरण किया ॥६३॥ स्मरण करते ही रतिके कंगनकी छाप पड़े हुए गलेमें सुन्दर लीकी भौंहोंके समान सुन्दर धनुष कंधेपर सटकाकर और धपते साथी बसन्तके हाथमें धामके बीरका बाण देकर, कामदेव हाथ जोड़कर इन्द्रके भागे धा खड़ा हुआ ॥६४॥

महाकवि योकामिदासके रचे हुए कुमारसंनद महाकाव्यमें ब्रह्मसि भेंद

नामका दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥

## ॥ तृतीयः सर्गः ॥

तस्मिन्मधोनिस्त्रिदशान्विहाय सहस्रमच्छां युगपत्पपात् ।  
 प्रयोजनापेक्षितया प्रभूषां प्रायश्चलं शौरवमाश्रितेषु ॥ १ ॥  
 स वासवेनासनसंनिकृष्टमितो निपीदेति विसृष्टभूमिः ।  
 भर्तुः प्रसादं प्रतिनन्द्य मूर्ध्ना ववतुं मिथः प्राक्रमतैवमेनम् ॥ २ ॥  
 आज्ञापय ज्ञातविशेषं पुंसां लोकेषु यचे करणीयमस्ति ।  
 अमुग्रहं संस्मरन्प्रवृत्तमिच्छामि संवद्वितमाज्ञया ते ॥ ३ ॥  
 केनाभ्यसूया पदकाटसिखाते नितान्तदीर्घैर्जनिता तपोभिः ।  
 यावद्भवत्याहितसायकस्य मत्कर्मकस्यास्य निदेशवती ॥ ४ ॥  
 अस्मत्तः कस्तव मुक्तिमार्गं पुनर्भवक्लेशभयात्प्रपद्यः ।  
 षड्धिरं तिष्ठतु सुन्दरीणामारेचितभ्रूचतुरैः कटावैः ॥ ५ ॥  
 अथ्यापितस्योरानसापि नीतिं प्रबुक्तरामप्रत्यिधिर्त्रिषस्ते ।  
 कस्यार्थधर्मो वद षीडयामि सिन्धोस्तटावोच इव प्रष्टुदः ॥ ६ ॥  
 कामेकपत्नीयतदुःखशीलां लोलं मनश्चारुतया प्रविष्टाम् ।  
 नितम्बिनीमिच्छसि मुक्तललां कण्ठे स्वयंप्राहनिपत्कयाहुम् ॥ ७ ॥

### तीसरा सर्ग

वामदेवके भाते ही इन्द्रकी रहली थीसँ देवताधोपरये हटकर एक साय प्रादरके साथ वामदेवकी ओर प्रेम गई क्योंकि प्रायः ऐसा होता है कि स्वामीकी धपने सेयकोसे जब जैसा नाम निकालना होगा है उसीके अनुसार वे उनका प्रादर भी किया करते हैं ॥१॥ इन्द्रने वामदेवके कहा—‘प्राप्तो यहाँ बैठे’ । यह कहकर उसे धपने पास ही बैठा विषय । उसने भी तिर झुमाकर इन्द्रकी कृपा स्वीकार करली और उनसे गुण-शुभ बातचीत करने लगा ॥२॥ वह बोला—सपके गुणोको पहचाननेवाले हे स्वामी । आप प्राप्ता दीजिए, तीनों लोकमें ऐसा बोलना नाम है जो आप गुप्तो कराना चाहते हैं क्योंकि मुझे रमरख करके आपने जो कृपा की है उसे मैं आपकी आज्ञाका पालन करने और भी बढ़ाना चाहता हूँ ॥३॥ कहिए तो ऐसा मीन पुरुष उत्पन्न हो गया है जिसने बहुत बड़ी-बड़ी तपस्याएँ करके आपने मनमें ईर्ष्या जगा दी है । आप मुझे उसका नाम भर बतला दीजिए फिर तो मैं सभी जाकर उसे धपने दूँ याएँ उसे हुए पुत्रपते बातकी बातमें जीति लाता हूँ ॥४॥ बताइए तो ऐसा, मीन पुरुष है जो आपका धनु बनकर ससारके कष्टों से धरखकर मोक्षारी घोर पल पसा है । मैं उसे सभी उन सुन्दरियोके नेत्रोंमें बहुत दिनोंके लिये फँसाएँ देता हूँ जो वकी नितवन चलाने में बड़ी चतुर है ॥५॥ आपका वह धनु यदि मुझाचार्य से भी नोतिधान्य पढ़कर आया होगा तो भी अत्यन्त भोगवी इच्छाकी ऐसा दूँ बनाकर मैं उसके पास भेजता हूँ जो उसका धर्म घोर धर्म दोनों उनी प्रकार नाश कर देगा जैसे वरदात्मने बड़े हुई बड़ीका गहाव बोगो लोको वह से जाता है ॥६॥ या मीन ही ऐसी

कयासि कामिन्सुरतापराधात्पादानतः कोपनयावधृतः ।  
 तस्याः करिष्यामि दृढानुतापं श्रवालाशय्याशरखं शरीरम् ॥८॥  
 प्रसीद विश्राम्यतु वीर वज्रं शरैर्भदीर्यैः कतमः सुरारिः ।  
 विभेत्तु मोघीकृतनाहुवीर्यैःस्त्रीभ्योऽपि कोपस्फुरिताऽधराम्यः ॥९॥  
 तव प्रसादात्कुसुमायुधोऽपि सहायमेकं मधुमेव लब्ध्वा ।  
 कुर्या हस्पापि पिनाकपाशैर्धैर्यच्युतिं के मम घन्विनोऽन्वे ॥१०॥  
 अधोरुदेशादवतार्य पादभाक्रान्तिसंभावितपादपीठम् ।  
 संकल्पितार्थं विधृतात्मशक्तिमाख्यडलः काममिदं वभापे ॥११॥  
 सर्वं सखे स्वय्युपपन्नमेतदुभे, ममास्त्रे कुलिसं भवोश्च ।  
 वज्रं तपोवीर्यमहत्सु कुण्डं त्वं सर्वतोगामि च साधकं च ॥१२॥  
 अवेमि ते सारमतः खलु त्वां कार्ये गुरुपयात्मसमं नियोच्ये ।  
 व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य कृष्येन देहोद्ग्रहनाय शेषः ॥१३॥  
 आशंसता मायगतिं शृपाङ्गे कार्ये त्वया नः प्रतिपन्नकल्पम् ।  
 निघोष यद्वांशशुजामिदानीमुच्यैर्द्विपामीप्सितमेतदेव ॥१४॥

सुन्दरी और हठीली प्रतिवृत्ता आपके ज्ञान मनमे बँठ गई है। मैं अभी उठ सुन्दरी-  
 पर ऐसा बाल पताता है कि यह सब साम-सील छोड़कर आपके यन्त्रे या लगे ॥७॥  
 हे रामी ! ऐसी कील ली ली है जो आपका समोच न जानेपर कोप करके आपके इतनी कठी  
 बँठी है कि वैरोपर गिरकर मनानेपर भी अभी तक नहीं लगी है। मैं उसके मनमे ऐसा पछ-  
 ताया उत्पन्न करता हूँ कि यह अपने आप आकर माल रोपनोके ठग्ये निछोनेपर लेट जायगी ॥८॥  
 हे वीर ! आप जिनका छोड़कर अपने बखरी जो विश्राम कर लेने दें। मुझे बताइए  
 यह कील-सा दैत्य है जो मेरे बालोकी मारते ऐसा खण्डिनी हो जाना चाहता है कि कोपसे  
 बँधते हुए छोड़ोवाही गारी तब उसे डरा दें ॥९॥ आपकी कृपा हो तो मैं केवल दसन्तकी  
 अपने साम लेकर अपने कृपके बालोसे ही पिनाक धारण करलेवाले स्वय महादेवजीके धरके  
 पुत्रा हैं, फिर और दूतरे धनुषवारियोकी ली गिनती ही क्या ॥१०॥ यह बात सुनकर इन्द्रजी  
 मुख बाँडत हुआ और उन्होंने अपने पर तोसकर पाँच वीर्यर रखे और जिस कामदेवो  
 उनके लोचे हुए काममे अपने आप इनका उत्साह दिखाया था उससे बोले—॥११॥ हे मित्र !  
 तुम सब कुञ्ज पर तकते हो क्योंकि तुम और वज्र, ये ही तो मेरे दो प्रख हैं। पर इनमेसे वज्र  
 की धार जो शत्रुओ की तपस्थाने उत्तार दी है। अब तुम्ही ऐसे बच रहे हो जो वैरोप-टोक सब  
 और जा गे सकते हो और हमार काम भी कर ला सकते हो ॥१२॥ मैं तुम्हारी शक्ति  
 भली-भरति जानता हूँ, इसलिये मैं तुम्हें अपने बँसा मानकर हथ बढे काममे लगाना चाहता  
 हूँ। जानते हो, प्रलय होनेपर अपने सोनेके लिये भगवानने रोपनी ही अपनी दग्गा क्यो बनाया  
 था ? क्योंकि वे देव शूी थे कि रोपनाग जब पृथ्वीको धारण कर सकते हैं तो गिरा कोक भी  
 सह लेते ॥१३॥ अभी-अभी तुमने कहा है कि हम अपने बालोसे तकरनीओ भी बसने कर

## ॥ तृतीयः सर्गः ॥

तस्मिन्मघोनस्त्रिदशान्निहाय सहस्रमर्त्यां युगपत्पपात ।  
 प्रयोजनापेक्षितया प्रभृषां प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु ॥ १ ॥  
 स वासवेनासनसंनिकृष्टमितो निपीदेति विसृष्टभूमिः ।  
 भर्तुः प्रसादं प्रतिनन्द्य भूर्ध्नां यवतुं मिथः प्राक्रमतैवमेनम् ॥ २ ॥  
 आज्ञायय ज्ञातविशेषं पुंसां लोकेषु यत्ते करणीयमस्ति ।  
 धनुग्रहं संस्मरन्प्रवृत्तमिच्छामि संवद्वितमाज्ञया ते ॥ ३ ॥  
 केनाभ्यद्वया पदकाङ्क्षिणाते नितान्तदीर्घैर्जनिता तपोभिः ।  
 याचञ्ज्वत्स्याहितसायकस्य मत्कार्मुकस्यास्य निदेशवती ॥ ४ ॥  
 असम्मतः कस्तव मुक्तिमार्गं पुनर्भवक्लेशमयात्प्रपद्यः ।  
 बद्धधिरं तिष्ठतु सुन्दरीषामारं चित्तं चतुरैः कटाक्षैः ॥ ५ ॥  
 ध्रुव्यापितस्योशनसापि नीतिं त्रयुक्तराशप्रखिधिर्द्रिषस्ते ।  
 कस्यार्थधर्मो वद पीडयामि सिन्धोस्तटावांघ इव प्रवृद्धः ॥ ६ ॥  
 कामेकपत्नीव्रतदुःखशीलां लोलं मनश्चारुतया प्रविष्टाम् ।  
 नितम्बिनीमिच्छसि मुक्कलजां कण्ठे स्वयंप्राहनिपक्तवाहुम् ॥ ७ ॥

### तीसरा सर्ग

कामदेवके प्राप्ति ही इन्द्रकी सहस्रों प्राणों देवताप्रोपरसे हटकर एक साधु प्रादरके साथ कामदेवकी और भूम गई क्योंकि प्रायः ऐसा होता है कि स्यामीको अपने सेवकोंसे जब बैठा पाम निकालना होता है उसीके अनुसार वे उनका प्रादर भी किया करते हैं ॥१॥ इन्द्रने कामदेवसे कहा—‘प्राप्तो यहाँ बँठो’ । यह कहकर उसे अपने पास ही बैठा लिया । उतने ही छिर झुकाकर इन्द्रकी कृपा स्वीकार करती और उनसे गुण-गुण बातचीत करने लगा ॥२॥ वह बोला—‘सबके गुणोंको पढ़वानेवाले हे स्वामी । आप प्राज्ञा दीजिए, तीनो लोकोंमें ऐसा कीर्तना काम है जो प्राय मुझसे कराया जायने ही क्योंकि मुझे स्मरण करके आपने जो कृपा की है उसे मैं आपकी प्राज्ञावा वातन करके और भी बढ़ाना चाहता हूँ ॥३॥ कहिए तो ऐसा कीर्तन पुरुष इन्द्रपत्नी हो गया है जिसने बहुत बड़ी-बड़ी उपकार्य करके आपके मनमें ईर्ष्या जगा दी है । आप मुझे उसका नाम भर बतला दीजिए फिर तो मैं अभी जाकर उसे अपने इस पाण्डे चड़े हुए पुरुषमें वातची बातमें जीवि जाता हूँ ॥४॥ बताइए तो ऐसा कीर्तन पुरुष है जो आपका सन् बनकर ससारके बेटों से घबरकर मोक्षती और पक्ष पड़ा है । मैं उसे अभी उन सुन्दरिबोने नेत्रोंमें बहुत दिनोंके लिये छँसाए देता हूँ जो दाँकी धिलवन पमाने में बड़ी चतुर है ॥५॥ आपका वह सन् यदि मुक्तप्रायं से भी मोक्षशास्त्र पढ़कर प्राया होता तो भी धरत्यन्त भोगको इच्छाकी ऐसा दूध बनाकर मैं उसको पास भेजता हूँ जो उसका घर्म और घर्म दोनों उसी प्रकार नाश कर देगा जैसे सरगातमें बर्दः हुई नदीका बहाव दोनों तटोंकी बंध से जाता है ॥६॥ या कीर्तनी ऐसी

कयासि कामिन्सुरतापराधात्पादानतः कोपनयावधृतः ।  
 तस्याः करिष्यामि दृढानुतापं प्रनालशय्याशरखं शरीरम् ॥८॥  
 प्रसीद विश्राम्यतु वीर वज्रं शरैर्मदीयैः कृतमः सुरारिः ।  
 विभेत्तु मोघीकृतनाहुवीर्यैः स्त्रीभ्योऽपि कोपस्फुरिताऽधराभ्यः ॥९॥  
 तव प्रसादात्कुसुमायुधोऽपि सहायमेकं मधुमेव लब्ध्वा ।  
 कुर्या हरस्यापि पिनाकपाशेर्धैर्यच्युतिके मम धन्विनोऽन्ये ॥१०॥  
 अधोरुदेशादवतार्य पादमाक्रान्तिसंभावितपादपीठम् ।  
 संकल्पितार्थे विघृतात्मशक्तिमास्रखल्लः काममिदं वभाषे ॥११॥  
 सर्वं सखे त्वय्युपपन्नमेतद्गुणे ममास्त्रे कृतिसं भवार्थं ।  
 वज्रं तपोवीर्यमहत्सु कुण्ठं त्वं सर्वतोगामि च साधकं च ॥१२॥  
 अर्धमि ते सारमतः खलु त्वां कार्ये गुरुययात्मसमं नियोज्ये ।  
 व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य कृष्णेन देहोद्ग्रहनाय शेषः ॥१३॥  
 आशंसता वाण्यगतिं घृषाङ्गे कार्यं त्वया नः प्रतिपन्नकल्पम् ।  
 निबोध यज्ञाशुभुजामिदानीमुच्चैर्द्विपामीप्सितमेतदेव ॥१४॥

गुप्तरों घोर हठीनी प्रतिधृता घापके पञ्चल मनमे बैठ गई है । मैं अभी उस गुप्तरों-  
 पर ऐसा बड़ा पताता हूँ कि वह सब साज-सौल छोड़कर घापके शरीर में जा लगे ॥७॥  
 हे वामी ! ऐसी कौल तो छोड़ो जो घापका सभोग न जानेपर कौल करके घापसे इतनी कटी  
 बँठी है कि पैरोंपर गिरकर मनानेपर भी अभी तक नहीं मानी है । मैं उसके मनमें ऐसा पक्ष-  
 ताया डारण करता हूँ कि वह अपने घाप घाकर सात कोपको ठण्डे बिछोनेपर लेट जायगी ॥८॥  
 हे वीर ! घाप पिन्धा छोड़कर अपने बखरी भी विश्राम कर लेने दें । मुझे यथावत्  
 वह कौल-सा दंश्य है जो मेरे बाणोंकी मारसे ऐसा शक्तिहीन हो जाता पास्ता है कि कोपसे  
 बाँधते हुए मोठोवाली नारी तक उसे बरा दें ॥९॥ घापकी कृपा हो तो मैं केवल बलवत्को  
 घापने साय नेकर अपने फूलके बाणोंसे ही पिनाक पारण करनेवाले स्वयं महादेवकीके छत्रके  
 छत्रा दे, फिर घोर दूसरे धनुषपारिणीकी तो गिनती ही क्या ॥१०॥ यह बात सुनकर इन्द्रको  
 कुछ डाँडत हुआ घोर उन्हीने अपने घंर पौलणकर पौल वीरवर रखी घोर जित कामदेवने  
 इनके लीने हुए काममें अपने घाप इनका उत्साह दिखाया था उखले बोले—॥११॥ हे मित्र !  
 तुम सब कुछ कर सकते हो क्योंकि तुम घोर वज्र, ये ही तो मेरे दो अस्त्र हैं । पर इनमेंसे वज्र  
 की धार तो धनुषी की तपस्थाने उधार दी है । अब तुम्हीं ऐसे वज्र रहे हो जो बेरोक-टोक सब  
 घोर जा भी सकते हो घोर हुगारा काम भी कर सा सकते हो ॥१२॥ मैं तुम्हारी शक्ति  
 भली-भाँति जानता हूँ, इच्छित्ये मैं तुम्हें अपने-जैसा मानकर इस बड़े काममें लगाना चाहता  
 हूँ । जानते हो, प्रलय होनेपर अपने सोनेके लिये भगवानने शेषकी ही अपनी सम्पत्ता क्यों बनाया  
 था ? क्योंकि वे देव चुके थे कि शेषनाम जब पृथ्वीको पारण कर सकते हैं तो मेरा वीर भी  
 सहस्ये ॥१३॥ अभी-अभी तुमने कहा है कि हम अपने बाणोंसे शंकरजीको भी अपने कर



अमी हि वीर्यप्रभवं भवस्य जयाय सेनान्यमुशन्ति देवाः ।  
 स च त्वदेकेषुनिपातसाध्यो ब्रह्माङ्गभूर्ब्रह्मणि योवितात्मा ॥१५॥  
 तस्मै हिमाद्रेः प्रयतां तनूजां यतात्मने रोचयितुं यतस्व ।  
 योपित्सु तद्वीर्यनिपेकभूमिः सैव क्षमेत्यात्मश्रुवोपदिष्टम् ॥१६॥  
 गुरोर्नियोगाच्च नमेन्द्रकन्यास्थाणुं तपस्यन्तमधित्यकायाम् ।  
 अन्यास्त इत्यप्सरसां मुखेभ्यः श्रुतं भया मत्प्रशिक्षिधिः सवर्गः ॥१७॥  
 तद्रच्छ सिद्धैश्च कुरु देवकार्यमर्थोऽयमर्थान्तरभाव्य एव ।  
 अपेक्षते प्रत्ययसूचमं त्वां वीजाङ्कुरः प्रागुदयादिवान्मः ॥१८॥  
 अस्मिन्सुराणां विजयाभ्युपाये तवैव नामास्त्रगतिः कृती त्वम् ।  
 अप्यप्रसिद्धं यशसे हि पुंसामनन्यसाधारणमेव कर्म ॥१९॥  
 सुराः समभ्यर्थयितार एते कार्यं त्रयाणामपि विष्टपानाम् ।  
 चापेन ते कर्म न चातिहिंस्रमहो ब्रह्मासि स्पृहणीयवीर्यः ॥२०॥  
 मधुश्च ते मन्मथ साहचर्यादुसाचलुक्तोऽपि सहाय एव ।  
 समीरणो नोदयिता भवेति व्यादिरयत्ते केन ह्युताशनस्य ॥२१॥

सकते हैं। इसलिये एक प्रकारसे तुमने हमारा काम करनेका बीजा ही उठा लिया है। इसलिये समझ लो कि बलनाशु शत्रुसे उठाए हुए बीर करे हुए देवता तुमसे यही काम करना चाहते हैं ॥१५॥ ये देवता लोग चाहते हैं कि शत्रुको जीतने के लिये शिवजी के धीरसे हमारा सेनापति बाल्यन हो। इसलिये मन्मथके बलसे ब्रह्मने ध्यान लगाए हुए महादेवजीकी समाधि तुम्ही अपने एक बाणसे तोड़ सकते हो ॥१६॥ अब तुम ऐसा जतन करो कि समाधिमें बैठे हुए महादेवजीके मनमें हिमालयकी कन्या पार्वतीके लिये प्रेम उत्पन्न हो जाय, क्योंकि ब्रह्माजीने स्वयं यह बात बतलाई है कि शिवजीने ये ही एक ऐसी ही जो शिवजीका वीर्य पारण कर सकती है ॥१९॥ तुमचरका काम करनेवाली अपनी अप्सराओंके मुखसे हमने सुना, है कि पार्वतीजी अपने पिताकी आज्ञासे हिमालय पहाड़पर तप करते हुए महादेवजीकी सेवा कर रही हैं ॥१७॥ इसलिये तुम जाओ और देवताओंका यह काम कर डालो क्योंकि इस काममें वस एक कारखाना चाहिए था। जैसे बीजको शकुर खननेके लिये जलकी आवश्यकता पड़ती है वैसे ही यह काम भी तुम्हारी सहायताके भरोसे ही शक्य हुआ था ॥१८॥ देवताओंकी जीत तुम्हारे ही बाणसे ही बनती है। तुम सचमुच सबे भाग्यधानी हो क्योंकि सभारमें ऐसा बसाधारण काम करनेसे ही मन मिलता है जिसे कोई दूसरा कर न सके ॥१९॥ और फिर एक तो सब देवता लोग तुमसे इस कामके लिये भीख मांग रहे हैं इससे यह कार्य तीनों ही लोकवासीका है और तीसरी बात यह है कि यद्यपि इस काममें तुम्हारा बहुत काम आवेगा सही, पर इससे किसीकी हिंसा नहीं होगी। भाव तुम्हें 'देसवर' सबके मनमें यह दृष्टि जग उठी है कि हमें भी तुम्हारी जैसी ही क्षति मिल जाय ॥२०॥ हे कामदेव ! हमने तुम्हारी सहायताके लिये बसन्तका नाम इसलिये नहीं लिया कि यह तो तुम्हारा सापी है ही।

तथेति शेषामिव भर्तुराज्ञामादाय मूर्ध्ना मदनः प्रतस्थे ।  
 ऐरावतास्फालनकर्कशेन हस्तेन परपर्शं तदङ्गमिन्द्रः ॥२२॥  
 स माधवेनाभिमतेन सख्या रत्या च साशङ्कमनुप्रयातः ।  
 अङ्गव्यपप्रार्थितकार्यसिद्धिः स्थाय्याश्रमं हैमवतं जगाम ॥२३॥  
 तस्मिन्वने संपमिनां मुनीनां तपः समाधेः प्रतिकूलवर्ती ।  
 संकल्पयोनेरभिमानभूतमात्मानमाधाय मधुर्नजृम्भे ॥२४॥  
 कुबेरगुप्तां दिशमुत्पररेमौ गन्तुं प्रवृत्ते समयं विलङ्घ्य ।  
 दिग्दक्षिणा गन्धर्वहं मुखेन व्यलीकनिःश्वासमिवोत्सराजं ॥२५॥  
 अन्वृत सद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धास्प्रभृत्येव सपल्लवानि ।  
 पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां संपर्कमासिञ्जितनूपुरेण ॥२६॥  
 सद्यः प्रवालोद्गमचारुपत्रे नीते समाप्तिं नवचूतयाणे ।  
 निवेशयामास मधुर्द्विरेफाक्षामाक्षराणीव मनोभवस्य ॥२७॥  
 वर्षाप्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः ।  
 प्रायेण सामद्रयविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसूजः प्रवृत्तिः ॥२८॥  
 बालेन्दुयक्षत्राण्यधिकसभावाद्भुः पलाशान्यतिलोहितानि ।  
 सद्यो वसन्तेन समागतानां मखचतानीव वनस्यस्तीनाम् ॥२९॥

क्योंकि शला पत्तनको बही यह बोधे ही कहा जाता है कि तुम जाकर प्राणकी सहायता करो । यह तो प्राणकी भक्तकाता ही है चाहे कोई नहे या न कहे ॥२१॥ कामदेव बोला—'जली प्राणा' । और जैसे कोई उपहारने दी हुई शला सेकर सिरपर कडा लेता है वैसे ही कामदेवने इन्द्रकी प्राणा सिर परवा ली । जब वह चलने लगा तब इन्द्रने उसकी पीठपर अपना वह हाथ फेरकर उसे उल्लाहित किया जो ऐरावतको अनुश लगाते-लगाते कडा पड गया था ॥२२॥ उसने निरन्ध्र कर लिया कि प्राण देकर भी मैं देयताप्रीति काम करूंगा । फिर वह वरन्तकी साव लेकर उपर चल दिया जिधर शिवजी बैठे तपस्या कर रहे थे । इनके पीछे पीछे देवारी दति भी मनमे डरती लगी ब्या रही थी कि प्राण न जाने क्या होनेवाला है ॥२३॥ उस वनमे पहुँचकर मुनिगोके तपनी समाधिको डिगानेवाला और कामदेवका सहायक बननेका धमका करनेवाला वरन्त अपना पूरा रूप खोलकर चारो ओर छाय गया ॥२४॥ वरन्तके आते ही प्रथममे ही सूर्य भी दक्षिणायनसे उत्तरायण चले गए । उस समय दक्षिणसे बहता हुआ मलय पवन ऐसा प्रतीत होता था मानो अपने पति सूर्यके चले जानेपर दक्षिण दिशा हुआ झीवर अपने मुँहसे लम्बी-लम्बी उल्लासों छोड रही हो ॥२५॥ अशोपवा वृष भी तत्काल नीचे से ऊपरतक पुल-पत्तोसे सद गया और मन-गनाते बिछुषोवाली सुन्दरियोके चरणोके प्रहारकी घाट भी उराने लही देखी ॥२६॥ सुन्दर वसन्तने नई कोपलोने पल लगाकर प्राणकी मञ्जरियोके बाण तंगार कर दिए । उनपर उसने जो औरें बैठाए थे ऐसे लपटे थे मानो उन बाणोपर वामदेवने नामके अक्षर लिखे हुए हो ॥२७॥ वहाँ फूले हुए कण्ठवार देखनेमे तो सुन्दर के पर गन्ध न होके काग्ल बनरी भाते न थे । इत्याकी कुछ ऐसी वान ही पट गई है कि वे किसी भी वस्तुमे पूरे गुण भरते ही नहीं ॥२८॥ वसन्तके आते ही दूजके चन्द्रमाके समान टेके, धत्यन्त-

लम्बद्विरेफाञ्जनमक्तिचित्रं मुखे मधुश्रीस्तिलकं प्रकाश्य ।  
 रामेण बालारुणकोमलेन चूतप्रवालोग्णमलंचकार ॥३०॥  
 मृगाः प्रियालद्रममञ्जरीणां रजःकण्ठैर्विघ्नितदृष्टिपाताः ।  
 मदोद्धताः प्रत्यनिलाः विचेरुर्नस्थलीर्मर्मरपत्रमोचाः ॥३१॥  
 चूताङ्कुरास्वादकपायकण्ठः पुंस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज ।  
 मनस्विनीमानविघातदत्तं तदेव जात वचनं स्मरस्य ॥३२॥  
 हिमव्यपायाद्विशदाधराणामापाण्डुरीमृतसुरच्छवीनाम् ।  
 स्वदोद्रमः किम्पुरुषाङ्गनानां चक्रे पदं पत्रविशेषकेषु ॥३३॥  
 सपस्विनः स्थाणुवनौकसस्तामाकालिकीं वीक्ष्य मधुप्रवृत्तिम् ।  
 प्रयत्नसस्तम्भितविक्रियाणां कथंचिदीशा मनसां बभूवुः ॥३४॥  
 तं देशमारोपितपुष्पचापे रतिद्वितीये मदने प्रपन्ने ।  
 काष्ठागतस्नेहरसानुविद्धं द्वन्द्वानि भावं क्रियया विवद्मः ॥३५॥  
 मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वागनुवर्चमानः ।  
 शृङ्गेण चस्पर्शनिमीलितार्चीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ॥३६॥  
 दपौ रसात्पङ्कजरेणुगन्धिं गजाय गण्डपजलं करेणुः ।  
 शृङ्गोपभुक्तेन वित्सेन जायां संभावयामास-रथाङ्गनामा ॥३७॥

बाल-बाल घघघिले टेपूके फूल धनभूमिमे फँसे हुए ऐसे सप रहे ये मानो बसन्तमे वनस्पतियोंके  
 साथ बिहार करते उनपर अपने नलोकके नये चिह्न बना दिये हो ॥३०॥ वहाँ उठते हुए भौंरे खिले  
 हुए तिलकके फूल और प्रातः कासके सूर्यके सान्नीत्ये चमकनेवासी कोपलें ऐसी लगती थी मानो  
 यस्तन्तवी शोभा रूपी स्त्रीने भरि-रूपी आजन्तये अपना मूँह चोंतकर, अपने माथेपर तिलकके फूलका  
 तिलक लगाकर और प्रातः कासके सूर्यकी कोमल सान्नीत्ये चमकनेवासे चामकी कोपलोंसे अपने मोठ  
 रण लिए हो ॥३०॥ आँखोंमें प्रियालके फूलोंके परावके उड-उठकर पकनेसे जो मद्यवाले हरिण भस्मी-  
 भीति देश नहीं पा रहे थे वे पवनसे भङ्गे हुए सूखे पत्तोंमें मर्मर करती हुई वनकी भूमिपर ह्वर-  
 ह्वर दौड़ते फिर रहे थे ॥३१॥ आमकी मञ्जरियाँ सा तेनेसे जिरा कोकिलका कठ गीटा हो गया  
 था गह जध, मीठे स्वरसे कूँक उठता था तब उसे सुन-सुनकर कठी हुई स्त्रियाँ अपना रटना भी भूल  
 जाती थी ॥३२॥ जाड़ेके बीजने और गर्मीके सा जानेसे कोमल मोठो और सुन्दर गोंरे मुखीवाली  
 किन्नरियोंके मुखपर भीती हुई चित्रकारीपर पसीना आने लगा ॥३३॥ महादेवजीके साथ उस वनमें  
 रहनेवाले ताप्ती लोगोंने असमयमें बसन्तकी आया हुआ देखकर अपना मन विकारोंसे हटाकर दही  
 कठिनाईसे रोक रखता था ॥३४॥ फिर जब अपने फूलके धनुषपर बाल पड़कर रतिवो साथ लेकर  
 कामदेव आया तब नर और घघरोकी अत्यन्त बढी हुई सम्भोगकी इच्छा जनमें दिखाई देनेलगी ॥३५॥  
 गौरा अपनी प्यारी भारीके साथ एक ही फूलकी कटोरीमें मकरन्द पीने लगी । वासा हरिण अपनी  
 उस हरिणीको सींगसे खुजलाने लगा जो उसके सार्णका मुख लेती हुई घाल मुँदे बँठी थी ॥३६॥  
 ह्यिनी बड़े प्रेमसे कनकके परावसे बसा हुआ सुगन्धित जब अपनी सूँडसे निकालकर अपने हाथीको

गीतान्तरेषु श्रमवारिलेशैः किञ्चित्समुच्छ्वासितपत्रलेखम् ।  
 पुष्पासवाघृणितनेत्रशोभि प्रियामुखं किम्पुस्तपश्चतुस्रम् ॥३॥  
 पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालौष्ठमनोहराभ्यः ।  
 लतावधूम्यस्तरवोऽप्यवापुर्निनम्रशाखाभुजबन्धनानि ॥३६॥  
 श्रुताप्सरोमीतिरपि च्छेऽस्मिन्महः प्रसंख्यानपरो वभूव ।  
 आत्मेधराणां नहि जातु विह्वलाः समाधिभेदप्रभञ्जो भवन्ति ॥४०॥  
 लतागृहद्वारगतोऽथ नन्दी वामप्रकोष्ठापितहेमवेत्रः ॥  
 मुरारिपितैकाङ्गुलिसंज्ञयैव मा चापलायेति गणान्वयनैपीत् ॥४१॥  
 निष्कम्पवृक्षं निभृतद्विरेफं सूक्ष्मलज्जं शान्तमृगप्रचारम् ।  
 तच्छ्लासनात्काननमेव सर्वं चित्रार्पितारम्भमिवावतस्थे ॥४२॥  
 दृष्टिप्रपातं परिहृत्य तस्य कामः पुरः शुक्रमिव प्रयागे ।  
 प्रान्तेषु संसक्तनमेरुशाखं ध्यानास्पदं भूतपतेर्षिवेश ॥४३॥  
 स देवदारुद्रुमषेदिकायां शार्दूलचर्मन्यवधानवत्याम् ।  
 आसीनमात्तन्नशरीरपातस्त्रियम्बकं सयमिनं ददर्श ॥४४॥  
 पर्यङ्कबन्धस्थिरपूर्वकायमृज्वायतं सन्नमितोभयांसम् ।  
 उत्तानपाण्ड्वयसन्निवेशात्प्रफुल्लराजीवमिवाङ्गमध्ये ॥४५॥

पिलाने सभी धीर चन्दा भी बापी कुठरी हुई कगलकी नाव लेकर बरवीकी भेंट करने लगा ॥३७॥ किन्तु लोग भीषोने भीषने ही अपना प्रियाप्रोने वे मुक्त चुपने लगे जिनपर यकावटके कारण पतीना छा गया था, जिनपर भीषी हुई चिककारी लिए गई थी धीर जिनके मैत्र फूलोकी मदिरासे मगवाले होनेके कारण बड़े सुभावने लग रहे थे ॥३८॥ बृक्ष भी अपनी मुरी हुई इतियोंने फंसा फंसाकर उन लताप्रोने निपटने लगे जिनके बड़े-बड़े फूलोंने मुच्छोके रूपमें स्तन लटक रहे थे धीर पत्तोके रूपमें जिनके सुन्दर प्रोठ हिल रहे थे ॥३९॥ इसी भीष मन्सरामोने भी अपना नाव माना भारम्भ कर दिया पर महादेवजी उसके मत्त न हुए धीर अपने ध्यानमें ही गम्य रहे क्योंकि जो लोग अपना मन वचन वर सते है उनकी समाधि क्या भला कोई सुडा सकता है ॥४०॥ उस समय नन्दी अपने वाए हाथमें सोनेका डडा लिए हुए लता-मध्यके द्वारपर बैठा मूह्वर जंगली रत्नकर सब यकोको सवेससे मना कर रहा था कि तुम लोग मटलपत्र छोडकर चुपचाप बंठो ॥४१॥ उसकी आज्ञा पाते ही वृत्तोंने हिलना बन्द कर दिया, धीरोने मूजना बन्द कर दिया सब जीव-जन्तु चुप हो गए धीर गधु भी जहाँके तहाँ खड़े रत्न गए, यहाँ उन कि साय वा उस एव ही सवेसमें ऐसा अपने लगा मानो जिनमें लिखा हुआ हो ॥४२॥ जैसे श्याम करनेके लम्ब लोच सामनेके एकत्री दृष्टि बनाते हैं वैसे ही कामदेव भी नन्दीजी मारें बचावर नमेरवी राजाप्रोने धिरे हुए उस स्थानमें जा चुका जहाँ महादेवजी समाधि लगाए बंठे थे ॥४३॥ धोकी ही देखते मुरमुने मूह्वे मूह्वेनेनात्ता यह कामदेव बैसता क्या है कि देवदारके पंठवी जड़में पत्परवी पाटियोसे नवी हुई चोबोपर बापम्बर बिछा हुआ है धीर उसपर महादेवजी समाधि लगाए बंठे हुए हैं ॥४४॥ उन्होने चोरासन लगा रख्या है, अपना घट सीधा धीर मत्त

भुजंगमोन्नद्धजटाकलापं कर्णविसक्तद्विगुणाचसूत्रम् ।  
 कण्ठप्रभासद्गविशेषनीलां कृष्णत्वचं ग्रन्थिमतीं दधानम् ॥४६॥  
 किञ्चित्प्रकाशस्तिमितोन्नतारैर्भ्रविप्रियायां विरतप्रसङ्गैः ।  
 नेत्रैरविस्पन्दितपद्ममालैर्लक्ष्मीकृतघ्राणमधोमयूरैः ॥४७॥  
 अघृष्टिभरम्भामिवाभ्युवाहमपाभिवाधारमनुचरंगम् ।  
 अन्तश्चराणां मरुतां निरोधान्निर्वातनिष्कम्पमिव प्रदीपम् ॥४८॥  
 कपालनेत्रान्तरलब्धभागैर्ज्योतिःप्ररोहैरुदितैः शिरस्तः ।  
 मृगालसूत्राधिकसौकुमार्यां बालस्य लक्ष्मीं ग्लपयन्तमिन्दोः ॥४९॥  
 मनो नयद्वारनिपिद्धवृत्तिं हृदि व्यवस्थाप्य समाधिवरयम् ।  
 यमचरं क्षेत्रविदो विदुस्तमारमानमात्मन्यवलोकयन्तम् ॥५०॥  
 स्मरस्तथाभूतमयुग्मनेत्रं परयन्नन्दुरान्मनसाप्यशृष्यम् ।  
 नालक्षयत्साध्मसन्नहस्तः स्रस्तं शरं चापमपि स्वहस्तात् ॥५१॥  
 निर्वाणभूयिष्ठमथास्य वीर्यं संपुञ्जयन्तीव वपुर्गुणेन ।  
 अनुप्रयाता वनदेवतान्पामहश्यत स्थावरराजकन्या ॥५२॥  
 अशोकनिर्मलितपद्मरागमाकृष्टहेमद्युतिवर्षिकारम् ।  
 मुक्ताकलापीकृतसिन्दुवारं वसन्तपुष्पाभरणं वहन्ती ॥५३॥

कर लिया है और अपने दोनो कंधे झुकाकर अपनी गोदम कमलके समान दोनो हृदयको को ऊपर किए थे बिना हिले-डुले बंठे हैं ॥४५॥ साँसें उनकी जटा बँधी हुई हैं। बाहिने बानपर डुङ्गी दहादकी माला टँगी है और गलेकी नीली चमक से और भी अधिक ताँबो दिखाई पड़नेवाली मृगघ्राणा उनके शरीरपर गौठ मारकर बची हुई हैं ॥४६॥ भीह ताँबकर कुछ कुछ प्रकाश देनेवाली, निम्बल, उस तारोवाली और अपनी किरणों नीचे बालनेवाली भाँसोते नाकके अगले भागपर दृष्टि यमाए वे बंठे हुए हैं ॥४७॥ और शरीरके भीतर चलनेवाले सब पदकोको रोएकर वे ऐसे अचल हुए बंठे हैं जैसे न दरअनेवाला घादल हो, बिना सहरोवाला निम्बल वाल हो या पत्तल रहित स्थानके खड़ी लो दावा दीपक हो ॥४८॥ उस समय उनके चिर और नेत्रोंसे जो तेज निकल रहा था उसके अगले कमलके तन्तुसे भी अधिक कोमल वास चन्द्रमाकी ओम्हा भी कुछ नहीं की ॥४९॥ वहाँ समाधिम बंठे हुए शरकी अपने उस अविनाशी आत्मकी ज्योतिवी अपने भीतर देख रहे थे जिसे शानी लोग अपनी नवो इन्द्रियोंके द्वार रोएकर मनको समाधिसे अलग करने हृदय मे रखकर जाने पाठे हैं ॥५०॥ तीन क्षेत्रवाले शरकी का जो रूप बुद्धि और मनसे भी परे था उसी रूपको इतने पासले देवावर कामदेवके हाथ डरके मारे ऐसे झोले पढ गए कि वह यह भी न जान सका कि मेरे हाथसे यगुण बाध छूटकर चिर पत्र गए ॥५१॥ डरके मारे कामदेवकी शक्ति लो मल्ट हो गई थी पर अब उठने मांतिनी और विजया नामकी वन-देवियोंके साथ अत्यन्त सुवरी पार्वतीवा मनोहर रूप देखा सब मानो अपनी सोई हुई शक्ति फिर जाय चठी ॥५२॥ उस समय

थावजिता किंचिदिव स्तनाभ्यां वासो यसाना तत्स्यार्करागम् ।  
 पर्याप्तपुष्पस्तवकावनम्रा ' संचारिणी पन्त्वविनी लतेव ॥५४॥  
 सस्तां नितम्बादवलम्बमाना पुनः पुनः केसरदामकाशीम् ।  
 न्यासीकृतां स्थानविदा स्मरेथ मौर्वीद्वितीयामिव कार्मुकस्थ ॥५५॥  
 सुगन्धिनिश्वासविवृद्धतृष्णं विम्बाधरामञ्जरं द्विरेफम् ।  
 प्रतिचयं संभ्रमलोलदृष्टिर्लालारविन्देन निवारयन्ती ॥५६॥  
 तां वीक्ष्य सर्वावयवानवयां रतेरपि ह्रीपदमादधानाम् ।  
 जितेन्द्रिये शूलिनि पुष्पचापः स्वकार्यमिद्धि पुनराशशंस ॥५७॥  
 भविष्यतः पत्सुरुमा च शंभोः समाससाढ प्रतिहारभूमिम् ।  
 योगास्त चान्तः परमात्मसंज्ञं दृष्ट्वा परं ज्योतिस्पास्त्राम ॥५८॥  
 ततो भुजंगाधिपतेः फलाग्रैरधः कथंचिद्रूपभूमिभासः ।  
 शनैः कृतप्राणविमुक्तिगीशः पर्यङ्कनन्धं निविडं विभेद ॥५९॥  
 तस्मै शशंम प्रणिपत्य नन्दी शुश्रूषया शैलसुतामुपेताम् ।  
 प्रवेशयामास च भर्तुरेनां भ्रूक्षेपमात्रानुमतप्रवेशाम् ॥६०॥

पार्वतीजीने शरीरपर साल महिषको मज्जित करनेवाले प्रसौको पत्तोके, योनेकी पगव को घटानेवासी  
 पण्डितारने फूलोके शीर मोक्षियोपी मातावे समान उजले सिन्धुवारने वासन्ती पूतोके धाभूपण सने  
 हुए थे ॥५३॥ स्तनोमे घोभले भुके हुए शरीरपर प्रात पालके सूर्यने समान लाल पपये पहने हुए  
 थे ऐसी लम रही थी जैसे फूलोके गुच्छेने भारते भुगी हुई नई साल साल भोवलोवाली पलती-  
 फिरती लता हो ॥५४॥ उगली पगवने पडी हुई केसरने पूलोकी लवडी (करधनी) जव-जव नितम्बते  
 नीचे जिसक वाली थी तब तब के उछे अपने हाथने पकटक ऊपर धरका लेती थी । वह लमबी ऐसी  
 लगी थी मानो वहाँ गया पहनना चाहिए इस बातको जाननेवाले कामदेवने अपने हाथसे उनकी  
 कनरने अपने धनुषकी दूसरी डोरी पहना दी हो ॥५५॥ कामदेवने देखा कि अपनी सुगन्धित  
 साँसपर लगेने हुए शीरे जव-जव उठने साल साल छोठोके पास धाते हैं तब तब वे पदराहटसे  
 मालें गपती हुई छोटे-छोटे गपलोते गरुडर उन्दे लगा देती है ॥५६॥ कामदेवने जब रतिको भी  
 सजानेवासी, मयिन सुपर मनोवाली पार्वतीजीको देखा तब उसने मन्म नितन्द्रिय महादेवजीको  
 सजने परकी भाशा फिर हरी हो उठी ॥५७॥ इसी बीच पार्वतीजी भी अपने भारी पति साकरजीके  
 आश्रयके द्वारपर धा पहुँची । डीन उसी समय महादेवजीन भी परमात्माकी परम ज्योतिव  
 दर्शन करके अपनी समाधि छोडी ॥५८॥ प्राँते लोतवर उन्नीने शीरे-शीरे साँस लेना प्रारम्भ कर  
 दिया शीर अपनी गठोर पलकी भी लोल दी । इसीलिये उनका वह शरीर को समाधिसे समय बहुत  
 हलका हो गया था मब इतना भारी हो गया कि उनके मँठोकी भूमिको धेप भयवान बडी बटिनाइते  
 अपने पणोपर, संभल पाए ॥५९॥ उनकी समाधि पुत्ती देसपर नन्दीने जाकर उ-हे प्रणाम करके  
 कहा कि आपकी सेवा करनेने लिये पार्वतीजी आई हुई हैं । महादेवजीने अपनी भौहोते उन्हे

तस्याः सखीभ्यां प्रणिपातपूर्वं स्वहस्तलूनः शिशिरात्पयस्य ।  
 व्यकीर्यत त्र्यम्बकपादमूले पुष्पोचयः पल्लवमङ्गभिन्नः ॥६१॥  
 उमापि नीलालङ्कमध्यशोभि विस्त्रंसयन्ती नवकण्ठिकारम् ।  
 चकार कर्ष्युत्पल्लवेन मूर्ध्ना प्रणामं वृषभध्वजाय ॥६२॥  
 अनन्यभाजं पतिमाप्नुहीति सा तथ्यमेवाभिहिता मवेन ।  
 न हीश्वरव्याहृतयः कदाचित्पुष्पान्ति लोके विपरीतमर्थम् ॥६३॥  
 कामस्तु वाणावसरं प्रतीक्ष्य पतङ्गवद्बहिर्मुखं विविक्षुः ।  
 उमासमक्षं हरबद्धलक्ष्यः शरासनव्यां ह्युराममर्श ॥६४॥  
 अथापनिन्ये गिरिशाय गौरी तपस्विने ताग्ररुचा करेण ।  
 विशोपितां मातुमतो मयूखैर्मन्दाकिनीपुष्करशीजमालाम् ॥६५॥  
 प्रतिग्रहीतुं प्रणयिप्रियत्वात्त्रिलोचनस्तामुपपन्नकामे च ।  
 संमोहनं नाम च पुष्पधन्वा घनुष्पमोचं समधत्त शाणम् ॥६६॥  
 हरस्तु किञ्चित्परितुमर्धैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।  
 उमासुखे विम्बफलाघरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ॥६७॥

मुनाकेका सनेत किया और पार्वतीजीकी नन्दी भीतर ले गए ॥६०॥ पहले पार्वतीजीकी दोनों  
 सखियोंने शबरजीको प्रणाम किया और फिर अपने हाथसे चुने हुए, पत्तोंके टुकड़े मिले हुए बासन्ती  
 फूलोंका डेर उनके परोपर पड़ा दिया ॥६१॥ पार्वतीजीने भी शिवजीको प्रणाम करनेके लिये  
 खोही अपना सिर झुकाया खोही उनके कले-कामे वालोंम मुँहे हुए कैलिकारके कृपण और क्रान्तपर  
 करे हुए वसे वृष्ठीवर गिर पड़े ॥६२॥ प्रणाम करती हुई पार्वतीजीको भगवान् तकरने वह सत्य  
 प्राणीवाद दिया कि तुम्हें ऐसा पति मिले जो किसी भी स्त्रीको न भिन्ना सका हो । ठीक ही है, ऐसे  
 देवसंतालिषोकी शशी कभी सूठी सोके ही होती है ॥६३॥ जैसे कोई पतया प्राणके झूटनेकी  
 उतावला हो जैसे ही कामदेवने भी सोचा कि वस वाण छोडनेका यही ठीक अवसर है । वस  
 वह पार्वतीजीके भाने वेंडे हुए शिवजीपर ताक ताककर घनुष्पकी डोरी धीचने ही तो तथा ॥६४॥  
 उन्कर पार्वतीजीने प्रणाम करने समाधिसे जये हुए शबरजीने गलेम धूपमे सुताये हुए  
 मन्दाकिनीके कमलने सोनीकी माला अपने लाल लाल हाथसे पहना दी ॥६५॥  
 शिवजीने शरपर प्रेम करनेके लिये पार्वतीजीकी वह माला पहनी ही थी कि कामदेवने भी  
 समोहन नामका मयूख वायु अपने घनुष्प पर चढ़ा लिया ॥६६॥ जैसे चन्द्रमाके निकलनेपर  
 समुद्रमें ज्वार भा जाता है वैसे ही पार्वतीजीकी देखकर महादेवजीने हृदयमें भी कुछ हलचल-सी  
 होने लगी और वे पार्वतीजीके विम्बाके समान नाम लान लोठोपर अपने ललचाई लीं

विवृण्वती शैलसुतापि भावमङ्गैः स्फुरद्भालकदम्यकल्पैः ।  
 साचीकृता चारुतरेण तस्थौ गुप्तेन पर्यस्तविलोचनेन ॥६८॥  
 अथेन्द्रियक्षोभमयुग्मनेत्रः पुनर्वशित्वाद्बलवन्निगृह्य ।  
 हेतुं स्वनेतोविकृतेर्दिदृक्षुर्दिशाभ्युपान्तेषु ससर्ज दृष्टिम् ॥६९॥  
 स दक्षिणापाङ्गनिविष्टमुष्टिं नतांसमाकुञ्चितसव्यपादम् ।  
 ददर्श चक्रीकृतचारुचापं प्रहर्षुमभ्युद्यतमात्मयोनिम् ॥७०॥  
 तपःपरामर्शनिवृद्धमन्योर्भङ्गदुष्येक्ष्यमुपस्य तस्य ।  
 स्फुरन्मुदचिः सहसा तृतीयादच्छाः कृशानुः किल निष्पपात ॥७१॥  
 क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्भिरः खे मरुतां चरन्ति ।  
 तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ॥७२॥  
 तीव्राभिपङ्गप्रभषेण घृत्तिं मोहेन संस्तम्भपतेन्द्रियाणाम् ।  
 अज्ञातमर्तुव्यसना मुहूर्तं कृतोपकारेव रतिर्बभूव ॥७३॥  
 तमाशु विघ्नं तपसस्तपस्वी वनस्पतिं वज्र इवावभज्य ।  
 स्त्रीसंनिकर्षं परिहर्तुमिच्छन्नन्तर्दधे भूतपतिः समूतः ॥७४॥

बालने जगे ॥६७॥ और पार्वतीजी भी कले हुए नये बचकने समान पुलकित भगति प्रेम जतवाती हुई,  
 लजीली भाँखीति प्रपना अत्यन्त सुन्दर मुख कुछ तिरछा करके लड़ी रह गई ॥६८॥  
 पर महादेवजी तरवाल संभल गए । उभयी होनेके कारण उन्होंने तत्काल इन्द्रियो की चपततापी  
 चलपूर्वक रोक लिया और यह देखनेके लिये चारी और दृष्टि डीखाई कि येरे मनमें यह विचार थाया  
 कौन ॥६९॥ शकरजी देखते क्या है कि प्रपना पशुव चीतकर मोल गिये हुए, दाहिनी  
 भाँजकी कोरलक डुटकीसे डोरी लीये हुए, दाहिना कन्धा कुत्तरर बाएँ वरका घुटगा मारे हुए  
 कामदेव मुझपर बाण चताने ही बाजा है ॥७०॥ अपने उपमे बाधा डालनेवाले कामदेवपर  
 महादेवजीको इतना क्रोध थाया कि उनकी चडी भोँलेके नीक थाया जेन देता नहीं जाता था ।  
 ऋट जनका वह तीसरा जेन खुला और उधमेसे सहसा जतती हुई धागकी लपटे निकल पड़ी ॥७१॥  
 यह देखते ही एक साथ सब देवता आवाकामे चित्ला उठे-ई, हैं, रोणिए रोणिए प्रपने कोपनी प्रभो ।  
 पर इतनी देरने तो महादेवजीकी धीँखीसे निकलनेवाली उस धाकने कामदेवको अलापर राख  
 ही पर डाला ॥७२॥ अपने शिरपर धाई हुई इस भारी विपत्तिने देवपर कामदेवकी  
 स्त्री तो मूर्च्छित होकर गिर पडी, उतकी इन्द्रियो स्तम्भ हो गई और ऐसा अत्र पदा गलो भगवाणो  
 शृणु करके उतनी देखने लिये पतिनी मृत्युका जान हर कर उसे दुःखसे बचाए रखा ॥७३॥ प्रेते  
 विजती किसी वेडपर गिरकर जगे लोड डालती है उसी प्रकार अपनी तपस्यागे बाधा डालनेवाले  
 कामदेव को जलाकर शिवजी ने निःश्रय किया कि इन्द्रियो का साथ छोड़ देना चाहिए । इसलिये  
 तपस्वी महादेवजी तत्काल प्रपने भूतो प्रेतोको साथ रोकर अन्तर्धाँ ही गए ॥७४॥



स्मरसि स्मर मेखलागुणैरुत गोत्रस्खलितेषु बन्धनम् ।  
 च्युतकेशरदृषितेक्षणान्यवतंसोत्पलताडनानि वा ॥ ८ ॥  
 हृदये वससीति मत्प्रियं यदवोचस्तदवैमि कैतवम् ।  
 उच्यते उपचारपदं न चेदिदं त्वमनङ्गः कथमचता रतिः ॥ ९ ॥  
 परलोकनयप्रवासिनः प्रतिपत्स्ये पदवीमहं तव ।  
 विधिना जन एष वञ्चितस्त्वदधीनं खलु देहिनां सुखम् ॥ १० ॥  
 रजनीतिमिराचमुच्छित्ते पुरमार्गे घनशब्दधिक्लवाः ।  
 वसतिं प्रिय कामिनां प्रियास्त्वदृते प्रापयितुं क ईश्वरः ॥ ११ ॥  
 नयनान्यरुणानि घूर्णयन्वचनानि स्खलयन्पदे पदे ।  
 अस्ति त्वयि वारुणीमदः प्रमदानामधुना विहस्यना ॥ १२ ॥  
 अत्रगन्ध कथीकृतं वपुः प्रियवन्धोस्तत्र निष्कलोदयः ।  
 गहुलेऽपि गते निशाकरस्तनुतां दुःखमनङ्ग मोक्षयति ॥ १३ ॥  
 हरितारुणचारुबन्धनः कल्पेस्कोकिलशब्दद्वयितः ।  
 यद संप्रति कस्य वाशतां नवचूतप्रसवो गमिष्यति ॥ १४ ॥

दासी । फिर बिना बातके ही मुझ विससती हुईको तुम दर्शन क्यों नहीं दे रहे हो ॥७॥ हे कामदेव । पहले एकबार जब भूलसे तुमने अपनी किसी दूसरी प्यारीका नामले दासा या उदपर मीने जो तुम्हे अपने लगामसे बांध दिया था, क्या वही स्मरण करके तो तुम मुझसे नहीं रुठ बैठे हो ! या जब मीने अपने घावमे पहले हुए दमनसे तुम्हे धोटा या उत समय उखला पराम पत्र जाने से जो तुम्हारी छाँवें छुलने लगी थी, क्या उससे स्मरण करके तो मुझने नहीं रुठ गए हो ॥८॥ तुम मुझने जो यह भीठी-भीठी बात बनाया करते थे कि तुम मेरे हृदयमे सदा रहती हो वह सब मेरी सम्भने झूठ थी, क्योंकि यदि वह बात केवल मेरा मन रखने भरकी न होती तो तुम्हारे राज हो जानेपर तुम्हारी यह रति भला कैसे जीती बकी रह जाती ॥९॥ तुम अभी-अभी स्वर्णको गए हो, मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे वही बली आ रही हूँ । ग्रहाने मुझे भुँदित करके बस धोखा दे दिया, नहीं तो मैं उठी समय तुम्हारे साथ चल देती क्योंकि मेरा ही नहीं वरन् सारे सत्कारका सुख सुभ अपने साथ लिए बने गए हो ॥१०॥ बताओ प्यारे ! जब नर्पके दिनोमे रातकी घनी घोंघियारोसे भरे उदरने नगरके मार्गमे विजलीकी कटकडाहटसे डर उठनेवाली कामिनियोके उनके प्यारोके पर तुम्हारे बिना कौन पहुँचावेगा ॥११॥ अपने लाल-लाल नेत्र प्रभाती हुई और एक एक धन्वर रुक-रुककर बोलती हुई प्रमदाधोका मदिरा पीना अब तुम्हारे न रहनेपर भला किस कामका होगा ॥१२॥ हे मनव ! तुम चन्द्रमाके बडे प्यारे मित्र थे । अब उसे ज्ञात होगा कि तुम्हारा परोर केवल रहानी भर रह गया है तब वह अनगरथ उगा हुआ बन्द्या गुप्त पक्षमे गी बडी कठिनाईसे अपना दुबलापन छोट पावेगा ॥१३॥ सुन्दर, हरे और लाल रगमे बँधा हुआ और नीयलकी भीठी लूकेसे गुँजा हुआ आगना नया बौर, बताओ अब किसका बाख बना करेगा ॥१४॥

अलिपंक्तिरनेकशस्त्वया गुणकृत्ये धनुषो नियोजिता ।  
 विस्तैः करुणस्वनैरियं गुरुशोकामसुरोदितीव माम् ॥१५॥  
 प्रतिपद्य मनोहरं वपुः पुनरप्यादिश तावदुत्थितः ।  
 रतिदूतिपदेषु कोकिलां मधुरालापनिर्गर्गण्ण्डिताम् ॥१६॥  
 शिरसा प्रण्वित्य याचितान्युपगृह्णानि सवेषश्रुति च ।  
 सुरत्वानि च तानि ते रहः स्मर संस्मृत्य न शान्तिरस्ति मे ॥१७॥  
 रचित रतिपण्डित त्वया स्वयमङ्गेषु ममेदमार्तशम् ।  
 श्रियते कुसुमप्रसाधनं तव तच्चारु वपुर्न दृश्यते ॥१८॥  
 विचुर्षरति यस्य दारुणैरसमाप्ते परिकर्मणि स्मृतः ।  
 तमिमं कुरु दक्षिणोत्तरं चरणं निर्मितरागमेहि मे ॥१९॥  
 अहमेत्य पतङ्गचर्तना पुनरङ्गाश्रयणी भवामि ते ।  
 चतुरैः सुरकामिनीजनैः प्रिय यावन्न विलोभ्यसे दिवि ॥२०॥  
 मदनेन पिनाकृता रतिः क्षणमात्रं किल जीवितेति मे ।  
 वचनीयमिदं व्ययस्थितं रमण त्वामनुयामि यद्यपि ॥२१॥  
 क्रियतां फथमन्त्यमण्डनं परलोकान्तरितस्थ ते मया ।  
 सममेव गतोऽस्यत्तर्कितां गतिमङ्गलं च जीवितेन च ॥२२॥

जिन गीरोकी पातोकी तुम अपने धनुषकी डोरी बना चुके हो उनकी कुलमयी गुमारमम ऐसी जान पड़ती है मानो ये भी मुझ दुःखमें कित्तखती हुईके साथ साथ रो रही हो ॥१५॥ हे काम ! तुम अपने दस राखने शरीरकी छोड़कर पहले जैसा सुन्दर शरीर प्राप्त करने स्वभावसे ही मधुर बोलनेसे चतुर इस बीयलको भागा दो कि यह अपनी मधुर कृपसे प्रेमियोंको मिलनेका स्वागत वताना प्रारम्भ कर दे ॥१६॥ हे कामदेव ! मुझ स्त्री हुईकी मनानेके लिये जब तुम मेरे पंरो पड़कर जाँपते हुए मुझे गनाकर गलसे लगाया करते थे और फिर मेरे साथ अनेक प्रकारसे सयोग किया करते थे, अब उन यातोका स्मरण कर-करके मेरा जो फटा जाता है ॥१७॥ हे काम श्रीवामोम चतुर ! तुम अपने हाथोंसे मेरा जो बाँधती विचार किया था वह तो अभी न्योका स्थो बना हुआ है पर तुम्हारा सुन्दर शरीर अब कहीं देखनेको नहीं मिल रहा ॥१८॥ अभी थोड़ी देर पहले जब तुम मेरे पंरोमें महावर लगाने बैठे थे और बेबल दाहिने पाँवमें हो गया थाएँ ये कि इसी बीच कठोर हृदयवाले देवताभोजे तुम्हें अपने कामके लिये बुला भेजा था । अब याकर मेरे इस बाएँ पैरमें भी महावर क्यों नहीं लगा जाते ॥१९॥ हे प्यारे ! जबतक स्वर्गकी चतुर शय्याएँ तुम्हें अपने रूपसे चुमावें उससे पहले ही मैं प्राणमें जसकर तुम्हारी गोदमें जा पहुँचती हूँ ॥२०॥ हे रण ! यह तो निश्चय है कि मैं तुम्हारे पीछे पीछे भा रही हूँ, फिर भी मुझपर यह कबबना टीका तो उसके लिये लग ही गया कि कामदेवके न रहनेपर रति थोड़ी देर तक जीवी रह गई ॥२१॥ मुझे इसी यातका शोक है कि तुम अपना शरीर और प्राण दोनों एक साथ खेरकर स्वर्ग चले गए अब मेरी लगजमें ही

ऋजुतां नयतः स्मरामि ते शरमुत्सङ्गनिपयस्यधन्वनः ।  
 मधुना सह सस्मितां कथां नयनोपान्तविलोकितं च तत् ॥२३॥  
 क्व नु ते हृदयङ्गमः सखा कुमुमायोजितकार्मुको मधुः ।  
 न खलूग्ररुपा पिनाकिना गमितः सोऽपि सुहृद्गतां गतिम् ॥२४॥  
 अथ तैः परिदेविताचरैर्हृदये दिग्धशरैरिवाहतः ।  
 रतिमभ्युपपत्तुमातुरां मधुरात्मानमदर्शयत्पुरः ॥२५॥  
 तमवेक्ष्य रुरोह सा भृशं स्तनमंवाघमुरो जघाम च ।  
 स्वजनस्य हि दुःसमग्रतो विष्टतद्वारमिवोपजायते ॥२६॥  
 इति चैनमुवाच दुःखिता सुहृदः परय वमन्त किं स्थितम् ।  
 तदिदं कणशो विकीर्यते पवर्नर्मस्म कपोतकर्णुरम् ॥२७॥  
 अयि संप्रति देहि दर्शनं स्मर पर्युत्सुक एष माधवः ।  
 दयितास्वनवस्थितं नृणां न खलु प्रेम चलं सुहृजने ॥२८॥  
 अमृता ननु पार्वर्वर्तिना जगदाज्ञां ससुरामुहं तव ।  
 प्रिसतन्तुगुणस्य कारितं धनुषः पेलवपुष्पपत्त्रिणः ॥२९॥  
 गत एव न ते निवर्चते स सखा दीप इवानिलाहतः ।  
 अहमस्य दशैव परय मामविपक्षव्यसनेन धूमिताम् ॥३०॥

मही धा रहा है कि तुम्हारे परलोक चले जानेपर मैं तुम्हारे शरीरका अतिम सिगार बँसे फूट ॥२२॥  
 तुम्हारा यह गीरमे धनुष रखकर बाण सीधा करना, बसन्तके साथ हँस हँसकर बातें करना और बीच  
 बीचमे मेरी ओर तिरछी धितवन्तसे देखना मुझे बूझता मही है ॥२३॥ अब कहाँ गया वह तुम्हारे  
 सिधे फूलोवा धनुष धनानिवाला प्यारा मित्र बसन्त ! कहीं वह भी महादेवजीसे सीखे लोभणी भ्रमने  
 भ्रमने मित्रके साथ साथ भस्म हो नहीं हो गया ॥२४॥ वह गुनते ही विलसती हुई दियोगिनी  
 रतिनी डाढ़त बंधानेके लिये बसन्त वहाँ धा खडा हुआ । वह ऐसा दुःखी जान पड रहा था मानो  
 उससे हृदयको रतिने विलाषो बचनोने बाणोंनि बीच डाला हो ॥२५॥ बसन्तको देखकर वह धीर  
 भी फूट-फूटकर धीर टाती पीट-पीटकर रोने लगी क्योंकि दुःखमे भ्रमने स्वजनको देखते ही  
 दुःख उठी प्रवार बड जाता है जैसे स्त्री बस्तुनी बाहर निकालनेके लिये बडा भारी द्वार मित  
 याम ॥२६॥ बट रोती हुई बसन्तके बोली—हे बसन्त ! बताओ जो, तुम्हारे मित्रनी यह दशा  
 कँते हो गई । यह देखो ! तुम्हारा मित्र रात बना हुआ पडा है । धीर देखो ! बहूतरने पतने समान  
 उग्रनी भूरी राधरी बट पवन दपर-उधर बिलेर रहा है ॥२७॥ हे वामदेव ! तुम्हारा मित्र बसन्त  
 तुम्हें देखनेके लिये बडा उतावला है, धावर दमे दर्जन जो दो । क्योंकि पुरय भ्रमनी स्वीते प्रेम  
 बरनेमे मते ही टिनाई कर दे पर भ्रमने प्रेमी मित्रोमे तो उग्रता प्रेम घटन ही होता है ॥२८॥  
 तुम्हारे दम साधी बसन्तने ही धारण तो ये सय देवता धीर उग्रय तुम्हारे कमलनी हातुने यनी हुई  
 दोरीपाते दूबोने धारणाने धनुषका मोहा माने थे ॥२९॥ हे बसन्त ! देखो तुम्हारा मित्र पवनने

विधिना कृतमर्द्धवैशसं ननु मां कामवधे विमुञ्चता ।  
 अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजमग्ने पतनाय बल्लरी ॥३१॥  
 तदिदं क्रियतामनन्तरं भवता बन्धुजनप्रयोजनम् ।  
 विधुरां ज्वलनातिसर्जनाद्ननु मां प्रापय पत्पुरन्तिकम् ॥३२॥  
 शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तदित्प्रलीयते ।  
 प्रमदाः पतियर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ॥३३॥  
 अमुनैव फपायितस्तनी सुभगेन प्रियगात्रभस्मना ।  
 नवपञ्चनसंस्तरे यथा रचयिष्यामि तनुं विभावसौ ॥३४॥  
 कुसुमास्तरणे सहायतां यदुशः सौम्य गतस्त्वमावयोः ।  
 कुरु संप्रति तावदाशु मे प्रखिपातञ्जलियाचितश्रिताम् ॥३५॥  
 तदनु ज्वलनं मदपितं स्वरयेर्दक्षिणावात्तवीजनैः ।  
 विदितं सल्लु ते यथा स्मरः क्षणमप्युत्ताहते न मां विना ॥३६॥  
 इति चापि विधाय दीपतां सलिलस्याञ्जसिरेफ एव नौ ।  
 अग्निभज्य परत्र तं मया सहितः पास्यति ते स बान्धवः ॥३७॥

भोगे से बुझे हुए दीपकके समान जाकर धब लौटता नहीं है । धब चलान्त बुझने भरी हुई में उद्य बुझे हुए दीपककी पृथग्भाती हुई बली भर बची रह गई है ॥३०॥ हे बल्लरी ! क्या तुम समझते हो कि प्रह्लादे मुझे जीता छोड़कर मेरे साथे शम कामदेवका बंध बरने केवल आधा ही बंध विधा है । जमने मुझे भी मार डाला है क्याकि तुम्ही बतायी भवा हाथीकी टङ्करसे वृद्धके हूट जानेपर उसने सहारे बढी हुई लता क्या बंधी बपी रह पाती है ॥३१॥ धब तुम बन्धु होनेके नाते मेरे लिये इतना तो कर दो कि मेरा दाह बरने मुझे मेरे पतिसे धान पहुँचा दो ॥३२॥ देखो ! चाँदनी चन्द्रमाके साथ चली जाती है, विजली बादलसे साथ ही क्षिप जाती है इसलिये पतिके साथ जाना तो जमीने भी गामा जाता है फिर मैं चेतन होकर अपने पतिसे बाँध क्यों न जाऊँ ॥३३॥ धब मैं अपने सामने पड़े हुए प्यारेके शरीरकी सुन्दर भरमसे अपने स्तनोका शृङ्गार करके चिताकी धामने पढ़कर उसी प्रकार लोट रहूँगी जैसे कोई नदी गई जाल कोपनोसे रागी हुई खेज पर जा सोये ॥३४॥ हे यमना ! तुमने बहुत बार हम लोगोको फूलके बिछोने बनानेसे सहायता दी है धब मैं तुमसे हाथ ओढ़कर वैसा पढ़कर यह भीष माँगती हूँ कि तुम मेरे लिये शीघ्र ही चिता रच डालो ॥३५॥ और फिर शीघ्रतसे दक्षिण पवनका पक्षा कानकर उखमें बढी सपटें भी उड्य दो जिससे मैं अत्यन्त शीघ्र जलकर राख हो जाऊँ, क्योंकि तुम जानते ही हो कि मेरा प्यारा कामदेव मेरे बिना एक क्षण नहीं रह सकेगा ॥३६॥ और धब मैं जल जाऊँ तब तुम हम दोनोके लिये एक साथ जलते तपण ॥३७॥ जिससे परलोचने क्या हुआ तुम्हारा मित्र मेरे ही साथ जल पी गये ॥३७॥

ऋक्षतां नयतः स्मरामि ते शरमुत्सङ्गनिपण्णधन्वनः ।  
 मधुना सह सस्मितां कयां नयनोपान्तविलोक्रितं च तत् ॥२३॥  
 प्व नु ते हृदयङ्गमः सखा कुसुमायोजितकामुर्को मधुः ।  
 न खल्लूग्ररुपा पिनाकिना गमितः सोऽपि सुहृद्गतां गतिम् ॥२४॥  
 अथ तैः परिदेविताचरैर्हृदये दिग्धशरैरिवाहतः ।  
 रतिमभ्युपपत्तुमातुरां मधुरात्मानमदर्शयत्पुरः ॥२५॥  
 तमवेचय रुरोद सा धृशं स्तनसंवाघमुरो बघान च ।  
 स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ॥२६॥  
 इति चैनमुवाच दुःखिता सुहृदः पश्य वसन्त किं स्थितम् ।  
 तदिदं कणाशो विकीर्यते पवनैर्भस्म कपोतकर्णुश्म् ॥२७॥  
 अयि संप्रति देहि दर्शनं स्मर पर्युत्सुक एष माधव ।  
 दयितास्वनवस्थितं नृणां न खलु प्रेम चलं सुहृद्गने ॥२८॥  
 अमृना ननु पार्श्वपतिना जगदाज्ञां ससुरासुरं तव ।  
 विसतन्तुगुणस्य कारितं धनुषः पैलरपुष्पपत्त्रिणः ॥२९॥  
 गत एव न ते निवर्चते स सखा दीप इवानिलाहतः ।  
 अहमस्य दशैव पश्य मामविपद्यव्यसनेन धूमिताम् ॥३०॥

नही मा रहा है कि तुम्हारे परलोक चले जानेपर मैं तुम्हारे शरीरका प्रतिम विचार कैसे करूँ ॥२२॥  
 तुम्हारा यह गोदमे बनूप रतकर वाण सीधा करना, वसन्तके साथ हँस हँसकर बातें करना और बीच  
 बीचमें मेरी ओर तिरछी बिलकनसे देखना मुझे भूलता नहीं है ॥२३॥ अब कहाँ गया वह तुम्हारे  
 लिये फूलोका धनुष बनानेवाला प्यारा मित्र वसन्त । कहीं वह भी महादेवजीये लोके क्रोधकी आगमे  
 अपने मित्रके साथ साथ भग्न हो नहीं हो गया ॥२४॥ वह सुनते ही बिलकती हुई बिप्योपिती  
 रतिकी डाढ़त बँधानेके लिये वसन्त वहाँ प्रा खडा हुआ । वह ऐसा दुःखी जान पट रहा था मानो  
 उसके हृदयकी रतिके बिलापके वचनोये बाणों ब बीच टाता हूँ ॥२५॥ वसन्तको देखकर धृ और  
 भी फूट-फूटकर और छाती पीट-पीटकर रोने लगी क्योंकि दुःखमें अपने स्वजनकी देखते ही  
 दुःख उसी प्रकार बढ़ जाता है जैसे रानी वस्तुकी बाहर निकालनेके लिये बड़ा भारी द्वार मिल  
 जाय ॥२६॥ वह रोती हुई वसन्तसे बोली—हे वसन्त । बताओ तो, तुम्हारे मित्रकी यह क्या  
 कंठे हो गई । यह देखो । तुम्हारा मित्र राख बना हुआ पटा है । और देखो । क्यूतरने पक्षमे समाप्त  
 उसकी भूरी राफ्तकी यह पवन द्वार उभर बिलोरे रहा है ॥२७॥ हे मायदेव । तुम्हारा मित्र वसन्त  
 तुम्हें देखनेके लिये बड़ा उतावला है, आकर इसे दर्शन तो दो । क्योंकि पुरप अपनी स्त्रीसे प्रेम  
 करनेमे भले ही बिलाई कर दे पर अपने प्रेमी मित्रोसे तो उठना प्रेम प्रदल ही होता है ॥२८॥  
 तुम्हारे इस साथी वसन्तके हूँ कारण तो ये राख देवता और राखस तुम्हारे कमलकी तातुसे यही हुई  
 ठोरीवाले फूलोंके वाणवाते धनुषका सोहा मानते थे ॥२९॥ हे वसन्त । देखो तुम्हारा मित्र वसन्त

विधिना कृतमर्द्धवैशसं ननु मां कामवधे विगृञ्चता ।  
 अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभङ्गे पतनाय बल्लरी ॥३१॥  
 तदिदं क्रियतामनन्तरं भवता बन्धुजनप्रयोजनम् ।  
 विधुरां ज्वलनातिसर्जनाजनु मां प्रापय पत्पुरन्तिकम् ॥३२॥  
 शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तद्धितप्रह्वीयते ।  
 प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ॥३३॥  
 ध्रमुनैव कपापितस्तनी सुभगेन प्रियगात्रभस्मना ।  
 नवपञ्चलसंस्तरे यथा रचयिष्यामि तनुं विभावसी ॥३४॥  
 कुसुमास्तरणे सहायतां बहुशः सौम्य गतस्त्वभावयोः ।  
 कुरु संप्रति तावदाशु मे प्रशिपाताञ्जलियाचितधिताम् ॥३५॥  
 तदनु ज्वलनं मदपितं त्वरयेद्विखावास्तधीजनैः ।  
 विदितं खलु ते यथा स्मरः क्षणमप्युत्सहते न मां विना ॥३६॥  
 इति चापि विधाय दीयतां सलिलस्याञ्जलिरेक एव नौ ।  
 अविभज्य परत्र तं मया सहितः पास्यति ते स बान्धवः ॥३७॥

भोके से मुझे हुए दोषकके समान जाकर मय लौटता नहीं है । अब प्रत्यन्त दुःखमे भरी हुई मैं उस मुझे हुए दोषककी क्षुण्णमाती हुई सती भर दबी रह गई हूँ ॥३०॥ हे वसन्त । क्या तुम समझते हो कि प्रकृताने मुझे जीता छोड़कर मेरे साथे धग कामदेवका बंध करके बंधल प्राया ही पथ किया है । उतने मुझे भी मार डाला है क्योंकि तुम्ही बताओ क्या हाथीकी टङ्करते बृशके हूट जानेपर उसके सहारे चली हुई सता क्या कभी बची रह पाती है ॥३१॥ अब तुम वस्तु होनेके नाते मेरे लिये इतना तीकर दो कि मेरा दाह करके मुझे मेरे पतिके पास पहुँचा दो ॥३२॥ देखो । चाँदनी शब्दवाके साथ बनी जाती है, बिचनी वादसके साथ ही छिप जाती है, इसलिये पतिके साथ जाना तो बहोमे भी जाना जाता है फिर मैं चेतन होकर अपने पतिके पास क्यों न जाऊँ ॥३३॥ अब मैं अपने सामने लगे हुए प्यारेके खरीरकी सुन्दर भस्ममे अपने स्तनोका शृङ्गार भरके जितकी धायमे चढ़कर उठी प्रणार लोट रहूँगी जैसे कोई नई-नई जाल कोपलसि सभी हुई सेज पर जा सोये ॥३४॥ हे वसन्त । तुमने कहल नार हम लोगोको फूलके बिलोने बनानेगे सहायता दो हे अब मैं तुमसे हाथ जोडकर पैरो पढ़कर यह भील माँगती हूँ कि तुम मेरे लिये दीध ही चिठा रच डालो ॥३५॥ घोर फिर भीप्रपाथे दिशण पवनका पक्षा ककर उसमे बड़ी सपटें भी उठा दो जिससे मैं धरवन्त दीध जलकर राख हो जाऊँ, क्योंकि तुम जानते हो कि मेरा प्यारा कामदेव मेरे बिना एक क्षण नहीं रह सकता है ॥३६॥ घोर जब मैं जल जाऊँ तब तुम हम दोनोंके लिये एक साथ जलसे उपण करना जिससे परलोके गया हुआ तुम्हारा भिय मेरे ही साथ जन पो सके ॥३७॥

परलोकविधौ च माधव स्मरमुदिस्थ विलोलपल्लवाः ।  
 निवपेः सहकारमञ्जरीः प्रियचूतप्रमवो हि ते सखा ॥३८॥  
 इति देहविमुक्तये स्थितां रतिमाकाशमवा सरस्वती ।  
 शफरीं हृदशोपविक्लानां प्रथमा वृष्टिरिवान्वकम्पयत् ॥३९॥  
 कुसुमायुधपत्नि दुर्लभस्तव भर्ता न चिराद्भविष्यति ।  
 शृणु येन स कर्मणा गतः शलभत्वं हरलोचनार्चिपि ॥४०॥  
 अमिलागमुदीरितेन्द्रियः स्वसुतायामकरोत्प्रजापतिः ।  
 अथ तेन निगृह्य विक्रियामभिशासः फलमेतदन्वभूत् ॥४१॥  
 परिशेष्यति पार्वतीं यदा तपसा तत्प्रवर्णीकृतो हरः ।  
 उपलब्धसुखस्तदा स्मरं वपुषा स्वेन नियोजयिष्यति ॥४२॥  
 इति चाह स धर्मयाचितः स्मरशापावधिदां सरस्वतीम् ।  
 अशनेरमृतस्य चाभयोर्वशिनश्चाम्बुधराश्च योनयः ॥  
 तदिदं परिरक्ष शोभने भवितव्यप्रियसंगमं वपुः ।  
 रविपीतजला तपात्यये पुनरोषेन हि युज्यते नदी ।

हे वरान्त ! जब तुम कामदेवका आद्व करना सब जनके लिये पतोवाली भागकी मज ॥२२॥  
 क्योंकि तुम्हारे भिन्नको धामकी मञ्जरी बहुत प्यारी थी ॥३८॥ जैसे अचानक बरत वीप  
 पहली बूँदें मूलते हुए चालावकी श्याकुल मछलियोंको बिना देती हैं वैसे ही तुम्हारे  
 पहलेवाली आकाशवाणीने भी प्राण छोड़नेको उताव रतिपर वह कृपाकी धाणी भागमे  
 हे कामदेवकी परती । तुम्हारा पति तुम्हें छोड़े ही दिनेमें मिल जावेगा । यह महादोगिनी  
 ज्वालामे पतन बनकर कैसे जला यह पुनो ॥४०॥ ब्रह्माजीने सृष्टि करते समय मानो  
 स्वप्न किया था उस समय कामदेवने उनमें मनमें ऐसा पाप भर और  
 सरस्वतीके रूपपर मोहित हो गए और उससे सम्भोग करनेकी इच्छा करने लगे ही  
 ही वे कामदेवकी काली करजुत जान गए और उन्होंने अपने मनमें  
 कामदेवकी शाप दिया कि जाओ, तुम धिवजीके तीसरे नेत्रको छिनसे जलका  
 जाओगे । उसीका यह सब पक्ष है ॥४१॥ पर जब धर्मने ब्रह्माजीसे सृष्टिकी ग  
 कामदेवकी जितानेकी शर्तना की सब ब्रह्माजीने कहा कि जब पार्वतीजीकी तपस्यासे प्र  
 महादेवकी उनमें साथ विवाह कर लेंगे तब कामदेवको अपना सहायक समझकर  
 जैसा शरीर दे दोगे और सभी हवाय शाप भी सूर्य जायेगा । सत्य है जैसे बादलों  
 और जल दोनों साथ-साथ रहते हैं वैसे ही समयमें तोषिक मनमें क्रोध और समा द  
 ही रहते हैं ॥४२-४३॥ इसलिये हे सुन्दरी ! अपने प्यारेमें मिलनेके लिये तुम भ  
 की रक्षा करो । देखो ! जो नदियाँ गर्ममें सूखकी निरखीकी अपना जल पिनाकर

इत्थं रतेः किमपि भूतमदृश्यरूपं  
 मन्दीचकार मरुत्पवसायबुद्धिम् ॥  
 तत्रत्ययाच्च कुमुमायुधवन्दुरेना  
 माथासयत्सुचरितार्थपदैर्बचोगिः ॥४५॥  
 अथ मदनवधुरूपस्रवान्तं  
 व्यसनकृशा परिपालयांबभूव ॥  
 शशिन इव दिवातनस्य लेखा  
 किरणपरिचतधूसरा अदोषम् ॥४६॥

इति महाकवि श्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये  
 रतिविलासो नाम चतुर्थः सर्गः ॥



## ॥ पञ्चमः सर्गः ॥

तथा समक्षं दहता मनोमत्रं पिनाकिना भङ्गमनोरथा सती ।  
 निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती त्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥ १ ॥  
 इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः ।  
 अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः ॥ २ ॥  
 निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां सुतां गिरीशप्रतिसक्तमानसाम् ।  
 उवाच मेना परिरम्य वक्षसा निवारयन्ती महतो मुनिप्रतात् ॥ ३ ॥  
 मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः क्व वस्ते ॥ च तावकं वपुः ।  
 पदं सहेतुं भ्रमरस्य पेल्लवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतन्निवृणुः ॥ ४ ॥  
 इति ध्रुवेच्छामनुशामती सुतां शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात् ।  
 क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥ ५ ॥  
 कदाचिदासन्नमस्तीमुत्सेन सा मनोरथञ्जं पितरं मनस्विनी ।  
 अयाचतारण्यनिवासमात्मनः फलोदयान्ताय तपःसमाधये ॥ ६ ॥

## पाँचवाँ सर्ग

महादेवजीने देवते-देवते कामदेवको भस्म कर डाला । यह देखकर पार्वतीजीकी सब  
 भासार्ह मूलमे भिन्न गई और वे भी भरकर अपनी सुन्दरताको कोसने लगी, क्योंकि जो सुन्दरता  
 अपने प्यारेको ॥ दिखा सके उसका होना व होना दोनों बराबर है ॥१॥ यह उगहोने टाक  
 लिया कि जिसे मैं रूपसे नहीं दिखा सकी उसे अब सच्चे मनसे तपस्या करके पाऊँगी । बात  
 भी ठीक है क्योंकि ऐसा निराला प्रेम और ऐसा निराला पति बिना तपस्याके भी नहीं मिलता  
 करता है ॥२॥ अब उनकी माँ मेनाने गुना बि हमारी पुत्री शिवजीपर रोगर उन्ने सिधे  
 तप करनेपर तुली हुई है तब पार्वतीजीको मनेसे लगाकर उन्हे इतनी बड़ी तपस्या करनेसे  
 बरजता हुई वे धोली ॥३॥ वस्ते । तुम्हारे धरमे ही इतने उदे-उदे देवता हैं कि तुम जो पाही  
 उनसे माँग लो । फिर तपस्या करना कोई हँसो लेल खोदे ही है । बताओ, कहीं तो तरन्या  
 और कहीं तुम्हारा पीअल जगेर । देखो ! तिरोपके पूनपर गीरे गले ही मानर बैठ जायें  
 पर यदि कोई पशु उगपर धाकर बँटने लगे तब तो यह नहीं सा पून भड हो जायगा ॥४॥  
 पर अब कुछ सम्भानेपर भी वे अपनी पुत्रीकी देव नहीं टाक पाई क्योंकि अपनी बातने  
 पती लोभोका मन और नीचे बिरते हुए पानीवा बेग जसा गीन टाक मचता है ॥५॥  
 हिमाचय हो पार्वतीजीके मनकी बात जानते हो थे । इसी बीच एर दिः पार्वतीजीने अपनी  
 प्यारी सगीने कृत्यापर अपने विताजीके गुदनाया कि गया मैं तज्जरेने सिधे वनमे जाकर  
 तपस्या कर सकती हूँ जबतक निवृती मुम्पर प्रगन न हो जायें ॥६॥ अब हिमाचयने समक

अथानुरूपाभिनिवेशतोपिषा कृताग्यनुज्ञा मुख्या गरीयसा ।  
 प्रजासु पश्चात्प्रथितं तदारुयया जगाम गौरीशिरः शिरसिडम् ॥ ७ ॥  
 विमुच्य सा हारमहार्यनिशया विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम् ।  
 वन्द्य चालारुणवभ्रु वरुहलं पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति ॥ ८ ॥  
 यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैर्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम् ।  
 न यत्पदश्रेणिभिरेव यद्भ्रजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते ॥ ९ ॥  
 प्रतिक्षणं या कृतरोमविक्रियां व्रताय मौञ्जीं त्रिगुणां वमार याम् ।  
 अकारि तत्पूर्वनिघट्टया तथा सराममस्था रशनामुष्णास्पदम् ॥ १० ॥  
 तिस्रष्टरागादधराश्वत्थितस्तनाङ्गरागाकृषिताञ्च कन्दुकात् ।  
 कुशाङ्गरादानपरिचृताद्गुलि कृतोऽधसूत्रप्रक्षयी तथा फरः ॥ ११ ॥  
 महाहेशय्यापरिवर्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैरपि या स्म द्यते ।  
 अशेत सा माहुलतोपधायिनी निपेदुषी स्थण्डिल एव केतले ॥ १२ ॥  
 पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया तथा द्वयेऽपि नित्येपि ह्वापिर्त द्वयम् ।  
 सतासु तन्वीपु विलासचेष्टितं विलोलदण्डं हरिष्याङ्गनासु च ॥ १३ ॥

जिया कि पावंतीजी अपनी सखी टेकते दिवेंगी नही तब उन्होने पावंतीजीको तप करने की आज्ञा दे दी । अपने पूज्य पितासे आज्ञा पाकर वे हिमालयकी एक चोटीपर तप करने पहुँची वर्षापर बहुतसे मोर रहा करते थे और बीसे जिसका नाम उन्हीके नामपर गौरीशिरः पत्र गया ॥७॥ अपनी टेकनी बहो पावंतीजीने अपना वह शूर उतार केबा जिसके सवा हिलते रहनेसे उनकी छाती परका हरिचन्दन उससे पुञ्ज कर तथा हुआ था । उसके स्थानपर उन्हीने प्रायः पाणके सूर्यके समान लाल लाल बत्कन सपेट लिया ॥८॥ जटा रख लेवेपर भी उनकी मुख बैसा ही प्यारा लगता था जैसा पहले सभी हुई देखियो वे लगता था । क्योंकि केवल चोटीसे ही शर्मल शब्दा नही लगता बरजु सेबासे निपटा होनपर भी वह बैसा ही सजीला लगता है ॥९॥ उन्हीने तपस्याके लिये अपनी बमरमे जो मूँचकी तिलहरी रंगकी बाँध रखी थी वह उनके शीमल शरीरपर इतनी झुमती थी कि उससे बड़ी पत्रो के कीप उठती थी और पहले पहले उसे पहननेसे उनकी सारी बमर लाल पड़ गई थी ॥१०॥ कहाँ तो वे अपने हाथोसे थोठ रंग करती थी और स्तनके प्रसरकसे बाल रँगी हुई गेद खेला करती थी, वहाँ उन शोभन हाथोमे उन्हीने पटादकी माला ले ली और कुधाके पकुर उखादकर अपने उन्ही हाथोमे जँगतियो के पाय कर लिए ॥११॥ अपने पिताके घर पर ठाट बाटके राजे हुए पत्तणपर करवटें लेते समय अपने मातोसे भजे हुए फूलोके बन्देसे जो पावंतीजी सी सी कर उठती थी वे ही अपने हाथोका तबिया बहालर बिना बिधो हुई भूमिपर बँडो-बँडी सो जाती थी ॥१२॥ तपके समय वे ऐसी खान्त हो गई थी मानो तप करनेके समय तकके लिये उन्हीने अपना हाव भाव पोमल सताओतो और अपनी चचल चितवन हरिणियोको धरोहर बनाकर दे दी हो ॥१३॥ यासस छोडकर उन्हीने वहाँके जिन छोटे-छोटे पीषोको अपने

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृत्तकान्घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत् ।  
 गुहोऽपि येषां प्रथमाप्तजन्मनां न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति ॥१४॥  
 अरस्यत्रीजाङ्गलिदानलालितास्तथा च तस्यां हरिणा विश्वसुः ।  
 यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात्पुरः सखीनाममिमीत लोचने ॥१५॥  
 कृताभिपेक्षां हुतजातवेदसं त्वगुचरासङ्गवतीमधीतिनीम् ।  
 दिदृक्ष्वस्तामृषयोऽभ्युपागमन्न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ॥१६॥  
 विरोधिसन्धोजिह्वतर्प्यमत्सरं द्रुमैरभीष्टप्रसवाचिंतातिथि ।  
 नवाटजाम्यन्तरमंशृतानलं तपोवनं तच्च चंभूव पावनम् ॥१७॥  
 यदा फलं पूर्वतपःसमाधिना न तावता लभ्यममैस्त काङ्क्षितम् ।  
 तदानपेक्ष्य स्वशरीरमार्दवं तपो महत्ता चरितुं प्रचक्रमे ॥१८॥  
 क्लमं ययौ कन्दुकलीलयापि या तथा मुनीनां चरितं व्यगाह्यत ।  
 ध्रुवं यदुः काञ्चनपद्मनिर्मितं मृदु प्रकृत्या च समारमेव च ॥१९॥  
 शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा ।  
 विजित्य नेत्रप्रतिष्ठातिर्नां प्रमामनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत ॥२०॥

स्तनां के पीसे पहोने जसते सोच-सोचकर पास था उन्हें ये पुत्रोके समान इतना प्यार करती थी कि  
 पीडे जब स्वामी काचित्केववा जन्म हो गया तब भी उनका वारसत्व प्रेय ह्य ग्रीषो पर कम नहीं  
 हुआ ॥१४॥ वहनि जिन हरिणोंको उन्हीने अपने हाथसे तिल्लीके राने मिला मिलाकर पास पास  
 था वे इतने परच गये थे कि कभी-कभी मन बह्लावने लिए अपनी सतियोके भागे उन्हें लाकर वे उन  
 हरिणोंके नेत्रोंके अपने नेत्र माफ करती थी ॥१५॥ यद्यपि पार्वतीजी छोटी-सा ही थी फिर भी वे स्नान  
 करते, हवन करते, यज्ञसर्वा श्रौतनां श्रौतकर बंठी पाठ पूजा किया करती थी, उस समय उन्हें देवोंके  
 लिये दूर-दूरेके घड़े-घड़े ऋषि-मुनि उनके पास आया करते थे । एवोकि जो धर्मका बीजन वितानेमें  
 यद्दे चढ़े होते हैं उनके लिए फिर यह नहीं देखा जाता कि वे छोटे हैं या बड़े ॥१६॥ उस तपोवनमें  
 रहनेवाले सब पशु-पक्षियोंके अपना पिछना प्राप्तवा बंद छोड़ दिया था, यहीने कृश इतने पर पूरते  
 पर गए थे कि भाए हुए अनिधि जो चाहते थे वही उन्हें मिल जाता था और यह! नई पशुपुटीके  
 सदा हवनकी पानि जलती रहा करती थी । इन सब बातोंसे वह तपोवन बड़ा पवित्र हो गया था ॥१७॥  
 पार्वतीजीने जब देखा कि इन प्रार्थनके नियमोंके नाम नहीं संभवा तब उन्होंने अपने शरीरको कोम-  
 लता वा ध्यान छोड़कर बड़ी बठोर तपस्या आरम्भ कर दी ॥१८॥ जो पार्वतीजी पहले सेंद  
 सेनेमें भी पर जाया करती थी उन्होंने ही जब मुनियोंका बठोर बनाते दे दिया तब देखा जान  
 पढ़ने लगा मानो उनका शरीर सोनेके बमलोंने बना था, जो बमलने बने होनेसे कारण स्वभावसे  
 मोमल भी था पर नाम ही नाम सोनेका बना होनेसे देखा पकता भी था कि तपस्याके कर्मना न  
 सबे ॥१९॥ पतली कमरवाली हंसमुख पार्वतीजी शरभोके दिवोंके अपने पारों पोर प्राग जमाकर  
 उसीके बीच गरी रहों सभी और पवाचीय करनेवाले मूर्खोंके प्रजाजनों की ओकर वे मूर्खोंकी

तथात्तितप्तं सवितुर्गमस्तिभिर्मुक्षं तदीयं कमलत्रियं दधी ।  
 अवाङ्गयोः केवलमस्य दीर्घयोः शनैः शनैः श्यामिक्रया कृतं पदम् ॥२१॥  
 अयाचितोपस्थितमभ्यु केवलं रसात्मकस्योद्गातेश्च रश्मयः ।  
 बभूव तस्याः क्लिप्तपारखाविधिर्न वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः ॥२२॥  
 निकामतप्ता विविधेन वह्निना नमश्चरेखेन्धनसंभृतेन सा ।  
 तपान्यये वारिभिरुचिता नवैर्मुवा सहोष्माक्षममुश्चदूर्ध्वगम् ॥२३॥  
 स्थिताः क्षणं पचमसु ताटिताधराः पयोधरोत्सेवनिपातचूण्विताः ।  
 बलीषु तस्याः स्वलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोद्बिन्दवः ॥२४॥  
 शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु ।  
 व्यलोक्यस्मृन्मिपितैस्तडिन्मर्यैर्महाक्षयः साक्ष्य इव स्थिताः क्षयाः ॥२५॥  
 निनाय सात्यन्तहिमोत्किरानिलाः सहस्यरात्रीत्दवासतत्परा ।  
 परस्पराक्रन्दिनि चक्रवाकयोः पुरो विद्युक्ते मिथुने कृपावती ॥२६॥  
 मृष्टेन सा पद्मसुगन्धिना निशि प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना ।  
 तुषारवृष्टिस्तपन्नसंपदां सरोजसन्धानमिवाकरोदपाम् ॥२७॥

भोर एकटक होकर देखती रहने लगी ॥२०॥ इस प्रकार तप करते रहनेपर भी उनका मुल  
 सुपंजी बिरछोति तपकर कुम्हलाया नहीं बरन् कमलके समान रिक्त उठा । हाँ, इतना प्रपन्न  
 हुआ कि उनकी बड़ी-बड़ी आँसुकी कोरोंमें धीरे-धीरे कुछ साँवलापन आने लगा ॥२१॥ फिर  
 वपनि बिकोने वे एक तो बिना गौंने अपने प्राण बरसे हुए अलको पीकर धीरे धीरे प्रगृहने मरी  
 चन्द्रमाकी बिरछोती पीकर ही रह जाती । वह यह समझ लीजिये कि उन दिनों पार्वतीजीका  
 रसना पीना बहो या जो वृजोना होता है ॥२२॥ वर्षा होनेपर नहर तो गर्मिसे तरो हुई पृथ्वीके  
 भाग निरल ठहो धीरे धीरे ईनकी आन तथा सुर्वदी गर्मिसे तपे हुए पार्वतीजीके शरीरसे भाग  
 निरल उठी ॥२३॥ उनसे सिर धर जो वर्षाना जल पड़ता था वह पलभर तो उनकी पलभोंमें  
 टिकता था फिर बहूँसे कुलकर उनसे छोड़ोपर जा पड़ता था, बहूँसे उनके शरीर रतनोपर  
 गिरकर सूँद सूँद बनकर टिकता जाता था धीरे धीरे उनसे गेटपर यनी हुई सितुठानोम हीता हुआ  
 वह बड़ी देरसे आभित्तक पहुँच पाता था ॥२४॥ जिन दिनों पन्नोर वपनि ताप-गाथ रात-  
 रातभर आधिर्मा चला करती थी उन दिनों भी ये धुले मैदानमें पत्थरकी पटियापर ही पड़ी  
 रहा करती थी भोर खँबेरो खँबे अपनी दिखतीकी आँखें सोत-सोपकर इस प्रकार उन्हें  
 देखा करती थी मानो वे उनके गठोर तपकी साक्षी हो ॥२५॥ पुसरी जिन रातोंम बहूँसा मरुतरता  
 हुआ पवन पाये भोर हिम ही हिम विखेरता चतता था, उन दिनों वे रात रातभर तापे बँधी निगा  
 देती थी भोर उनसे सामने ही नरवे धीरे चकवीना जो जोटा एक दूसरेसे चिपुटा हुआ चित्ताया  
 करता था उन्हें वे डाढळ बँयावा करती थी ॥२६॥ उन जाते भी रातोंमें बरने ऊपर पार्वतीजीका  
 मुँह भर रिखाई पड़ता था जावेसे उनसे मोठ काँपते थे भोर उनकी आँसे पल्लकी गन्धने समान  
 जो सुगन्ध निरता रही थी उसरी गमक पाये भोर फँव जाती थी । उस गमक बनने राठी हुई वे

स्वयं विशीर्षद्रुमपर्णवृत्तिता परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः ।  
 तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां वदन्त्यपस्विति च तां पुराविदः ॥२८॥  
 मृशालिकापेलवमेवमादिभिर्वतैः स्वमङ्गं ग्लपयन्त्यहर्निशम् ।  
 तपः शरीरैः कठिनैरुपाजितं तपस्विनां दूरमघश्चकार सा ॥२९॥  
 अथाजिनापाटधरः प्रगल्भवाग्ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा ।  
 विवेश क्वञ्जिटिलस्तपोवनं शरीरवद्भूः प्रथमाश्रमो यथा ॥३०॥  
 तमातिथेयी बहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती ।  
 भवन्ति साम्पेऽपि निविष्टचेतसां वपुर्विशेष्वतिगौरवाः क्रियाः ॥३१॥  
 विधिप्रयुक्तां परिगृह्य सत्क्रियां परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम् ।  
 उमां स पश्यन्वृञ्चुनैव चक्षुषा प्रचक्रमे वक्तुमनुजिम्भनक्रमः ॥३२॥  
 अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं जलान्यपि स्नानविविक्तमाणि ते ।  
 अपि स्वयाक्त्या तपसि प्रवर्तसे शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ॥३३॥  
 अपि त्वदावर्जितवारिसंभृतं प्रवालमासामनुवन्धि वीरुधाम् ।  
 चिरोज्जिम्भतालकक्रपाटलेन ते तुलां यदारोहसि दन्तवाससा ॥३४॥

ऐसी लगती थी मानो पालेसे मारे हुए कमलके जल जानेपर उनके मुलके कमलने ही उस टालकी  
 कमलवाला बनाए रखता हो ॥२७॥ अपने घाप भङ्गपर गिरे हुए पत्तोंको छाकर रहना ही तपकी  
 परकाष्ठा रागभी जाती है पर पार्वतीजीने पत्ते खाने भी छोड़ दिए, इसीलिए, मधुर भाविणी पार्व-  
 तीजीको पण्डित लोग बोधे पत्ते न खानेवाणी अर्थात् भी कहने लगे ॥२८॥ कनकिलीके समान अपने  
 कोमल धनुको इस प्रकारकी तपस्यासे रक्त दिन सुखाकर पार्वतीने बजोर शरीरवाले तपस्वियोंको भी  
 लजा दिया ॥२९॥ इसी बीच एक दिन ब्रह्मचर्यके तेजसे चमकता हुआ-सा हिरण्यकी छाल छोड़े और  
 पलासका बंट हाथमे लिए हुए, गठीले शरीरवाला और बतुराईके माप बोलनेवाला एक जटाधारी  
 ब्रह्मचारी उत तपोवनमे आया । वह ऐसा जान पड़ता था मानो साक्षात् ब्रह्मचर्याश्रम ही उठा चला  
 आ रहा हो ॥३०॥ अतिथिना सरकार करनेवाली पार्वतीजीने बड़े आदरसे आगे बैठकर उत्तरी पूजा  
 की, क्योंकि अिन्होंने अपने मनको शरीर प्रकार साथ लिया है वे यदि अपनी बराबरकी व्यवस्थावाले  
 तेजस्वी पुरुषसे भी मिलते हैं तो बड़े आदरसे मिलने हैं ॥३१॥ उस ब्रह्मचारीने मँड-पूजा लेकर और  
 पलभर अपनी पकानट बिटाकर पार्वतीजीकी ओर एकटक देखते हुए बिना रके बोलना प्रारम्भ  
 कर दिया ॥३२॥—कहिए, आपको इस तपोवनमे हवनके लिये सभिधा, कुछ और स्नान करने  
 योग्य जल तो मिल जाता है न ! और अपने शरीरकी सत्तिके अनुहार ही रूप कर रही हैं न ! क्यों  
 कि देखिए ! धर्मके जितने काम हैं उनमे शरीरकी रक्षा करना सबसे पहला काम है ॥३३॥  
 हाँ, आपके हाथसे सीजी हुई द्रव तटाधारी कोमल जाल-जाल पतिपोंवाणी के वीपलें जो  
 फूट साईं होगी आपके उन श्रोतोंसे होड़ करती होगी वो बहुत दिनोंसे महावस्त्र न रंगे  
 जानेपर भी लाल है ॥३४॥ और हे कमलनयनी ! आपके हाथसे अपने मुझा छीनकर खानेवाले

अपि प्रसन्नं हरिखेषु ते मनः करस्वधर्मप्रणयापहारिषु ।  
य उत्पन्नाति प्रचलैर्विलोचनैस्तवाचित्सादृश्यमिव प्रयुञ्जते ॥३५॥  
यदुच्यते शर्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः ।  
तथाहि ते शीलमुदारदर्शने तपस्विनामप्युपदेशतां गतम् ॥३६॥  
विकीर्णसप्तपिबलिप्रहासिभिस्त्वथा न भाङ्गैः सलिलैर्दिवश्च्युतैः ।  
यथा त्वदीयैश्चरितैरनाविलैर्महीधरः यावित एव सान्वयः ॥३७॥  
घनेन धर्मैः सविशेषमद्य मे त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनि ।  
त्वया मनोनिर्विषयार्थकामया यदेक एव प्रतिगृह्य सेव्यते ॥३८॥  
प्रयुक्तसत्कारविशेषमात्मना न मां परं संप्रतिपत्तुमर्हसि ।  
यतः सतां सत्पतमाग्नि संगतं मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते ॥३९॥  
अतोऽप्र किञ्चिद्भवती बहुसुमां द्विजातिभावादुपपन्नचापलः ।  
अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने न चेद्रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि ॥४०॥  
कुले प्रवृत्तिः प्रथमस्य वेषसखिलोकसौन्दर्यमिवोदितं वपुः ।  
अमृग्यमैरपर्यसुखं नवं वयस्तपःफलं स्यात्किमतः परं वद ॥४१॥  
भवत्यनिष्टादपि नाम दुःसहान्मनस्विनीनां प्रतिपत्तिरीदृशी ।  
विचारमार्गप्रहितेन चेतसा न दृश्यते तच्च कुशोदरि त्वयि ॥४२॥

इन हरिखेमे तो आपका मन बहता रहता है न, जिनकी भाँसें आपकी भाँसेके समान ही चंचल हैं ॥३५॥ हे पार्वतीजी ! यह ठीक ही कहा जाता है कि सुन्दरता पापकी भोर कभी नहीं झुलती, क्योंकि हे सुन्दरी ! आपका ही रहन-सहन देखें तो यह इतना सच्चा है कि मड़े-बड़े तपस्वी भी सबसे लोक से सकते हैं ॥३६॥ जो तो सत्पद्मपिप्लोके हाथसे चढ़ाए हुए पूजाके फूल और धानाससे उठरी हुई गमाकी पाराई हिमालयपर गिरती है, पर इन सबसे भी हिमालय उठना पवित्र नहीं हुआ जितना आपके पवित्र रहन-सहनसे हुआ है ॥३७॥ हे देवि ! आपके इस भाषणसे ही मैं समझ रहा हूँ कि धर्म, धर्म और काम 'इन तीनोंमे धर्म ही सबसे बढकर है क्योंकि आप धर्म और कामसे मरने मनको हटाकर शकते धर्मका पक्का साधनर उत्तकी सेवा कर रही हैं ॥३८॥ हे सुन्दरी ! यह कहा जाता है कि सज्जन लोगोकी पक्षी ही मँदमे उनकी मित्रता पक्की हो जाती है, इसलिये आपने भी मेरा सत्कार किया है उसीसे यह सिद्ध है कि आप मुझे कोई पराया नहीं समझती ॥३९॥ हे तपस्विनी ! यदि उसी अपनेपनके नाते मे ब्राह्मण होनेकी हिताई करके आपसे कुछ ऐसी वैसे बातें पूछ बैठूं तो आप बुरा न मानिएगा और यदि कोई क्षिपानेनी बात न हो तो आप कृपा करके उत्तर भी दे दीजिएगा ॥४०॥ मैं यही पूछना चाहता हूँ कि ब्रह्माके ब्रह्ममे तो आपका जन्म, शरीर भी आपका ऐसा सुन्दर मानो लोगो लोगोकी सुन्दरता आपमें ही जाकर भरी हो, घनका सुख इतना कि कुछ पूछना हो नहीं और जबानी तो सभी फूट ही रही है, फिर वताए कि आपको तप करनेकी आवश्यकता क्या प्रा पदी ॥४१॥ हाँ, कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अपने पंरोसे बढला सेवेके लिये भी भाजिनो त्रियां कठोर

अलभ्यशोकमिभवेयमाकृतिरिमानना सुभ्रु इतः पितुर्गृहे ।  
 परामिमर्शो न त्वास्ति कः करं प्रसारयेत्पन्नगरत्नवृचये ॥४३॥  
 किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वथावाद्भृकशोभिवत्कलम् ।  
 वद् प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभाचरी यथरुषाय कल्पते ॥४४॥  
 दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः ।  
 अथोपयन्तारमलं समाधिना न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ॥४५॥  
 निवेदितंनिधसितेन सोष्मया मनस्तु मे संशयमेव गाहते ।  
 न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते भविष्यति प्रार्थितदुर्लभः कथम् ॥४६॥  
 अहो स्थिरः कोऽपि तवेप्सितो युवाचिराय कर्णोत्पलशून्यतां गते ।  
 उपेक्षते यः श्लथलग्निनीर्जटाः कपोलदेशे क्लमाग्रपिङ्गलाः ॥४७॥  
 ह्युनिव्रतैस्त्वामतिमात्रकशितां दिवाकरप्लुटविभूषणास्पडाम् ।  
 शशाङ्गलेपामिव पश्यतो दिवा सचेतसः कस्य मनो न दृपते ॥४८॥

तपस्या कर बैठती है पर जहाँतक मैं समझता हूँ, ऐसी भी कोई बात आपने साप नहीं है ॥४२॥  
 क्योंकि हे सुन्दर माँहोपासी ! आपका रूप ही ऐसा है कि न तो आपपर कोई क्रोध ही कर सकता  
 है न-आपका निरादर । क्योंकि पिताके परम तो आपका निरादर करनेवाला कोई है नहीं,  
 और यह भी नहीं हो सकता कि कोई जन्म लेकर आपका अपमान करे, क्योंकि ऐसा कौन माईका  
 लाल जन्मा है जो सौपकी मणि लेके लिये उसपर हाथ बालेगा ॥४३॥ इसलिये हे गौरी ! आप  
 यह तो बताइए कि इस गरी जवानोके आपने सुन्दर गहन श्रोत्रकर मे बुद्धियोवाले बल्कल  
 क्यों पहन लिए हैं । बताइए भला बटती हुई रातकी स्याबट खिने हुए चन्द्रमा और तारंति होती  
 है या खेरेरेके सूर्यकी लालीसे ? ॥४४॥ और यदि आप स्वर्ग पानेकी इच्छासे तप कर रही हो तब  
 तो आपका सारा परिश्रम श्रानरथ है क्योंकि आपने पिता हिमालय का जितना राज्य है उतनेमे ही तो  
 सब देवता रज्जु है, और यदि आप अपने योग्य पति पाओसे लिये तपस्या करती हो तब भी  
 तपस्या व्यर्थ है क्योंकि मणि किसीको खोजने नहीं जाता, उल्टे मणिको ही लोग खोजते फिरते  
 हैं ॥४५॥ आपने जो मन्वी साँस ली है इससे मैं समझ रहा हूँ कि आप योग्य पति पानेके लिये ही तपस्या  
 कर रही हैं, पर मेरे जीमे यह बड़ा भारी सन्देह उठ खड़ा हुआ है कि भला आप जिसे चाहती हो वह  
 आपको न मिले, वह बात हो गँठे सबकी है, क्योंकि मुझे तो सखारप कोई ऐसा पुरुष नहीं जँचता  
 जिससे पीछे आपकी दोऊना पड़े ॥४६॥ यह शचमुच बड़े अचरजकी बात है कि जिसे सुवक्त्रो  
 आप चाहतीं हों वह ऐसा हूँ हो कि बहुत दिनोंसे बरगुप्तसे गुने आपके बालोपर लटकी हुई इन  
 पानके मालोके समान पीली बटाघोरो देखकर भी न पिपसता हो ॥४७॥ ऐसा कौन शीतल-जागता  
 पुरुष होगा जिसका जो तपस्यासे अत्यन्त लूते हुए आपके इस घरीरको देखकर रो न पड़े जिसपर  
 आपभूषण पहनने से भ्रम सूर्यकी विरल्लोसे भुजग गए हैं और जो दिनर चन्द्रमाको लेखाने समान  
 उदास दिताई यह रहा है ॥४८॥ मैं समझता हूँ कि आप जिसे प्यार करती हैं वह अपनी  
 सुन्दरताका भूटा यमण्ड लिए फिरता है नहीं तो उसे भयकर यहाँ शरर आपने नूँहको आपकी

अथैमि सौभाग्यमदेन वञ्चितं तत्र प्रियं यश्चतुरावलोकिनः ।  
 करोति लक्ष्यं चिरमस्य चक्षुषो न वक्त्रभात्मीयमरालपद्मणः ॥४६॥  
 क्रियच्चिरं श्राम्यसि गौरि विद्यते ममापि पूर्वाश्रमसंचितं तपः ।  
 तद्द्वर्द्धभागेन लभस्व काङ्क्षितं वरं तमिच्छामि च साधु वेदितुम् ॥५०॥  
 इति प्रविश्याभिहिता डिञ्जन्मना मनोमत्तं सा नशशाक शंसितुम् ।  
 अथो वयस्यां परिपार्श्ववर्तिनीं विवर्तितानजननेत्रमैक्षत ॥५१॥  
 सखी तदीया तमुवाच वयिनं निबोध साधो तत्र चेत्कृतहृलम् ।  
 यदर्धमम्भोजमिवोप्युवाच कृत तपः साधनमेतया वपुः ॥५२॥  
 इयं महेन्द्रप्रभृतीन्धिभ्रियश्चतुर्दिग्भीशानवमत्य मानिनी ।  
 अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात्पिनाकपाणिं पतिमाप्नुमिच्छति ॥५३॥  
 असादाहुंकारनिवर्तितः पुरा पुरारिमप्राप्तमुखाः शिलीमुखः ।  
 इमां हृदि ध्यायत्पातमचिष्योद्विशीर्षमूर्तेरपि पुष्पधन्वनः ॥५४॥  
 तदाप्रभृत्युन्मटना पितुर्गृहे खलाटिकाचन्दनधूसरालका ।  
 न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिं तुपारसंघातशिलातलेष्वपि ॥५५॥

कदोसो भौहोवाले सुन्दर मनोवा लक्ष्य बनाना चाहिए वा ॥४६॥ अच्छा, यह तो बताइए नौरीजी !  
 कि आप क्या तब यह तपस्या करती रहेंगी ? देखिए, ब्रह्मपर्यकी धवस्यामि मने  
 बहुत तो तपस्या झगट्टीकर रखती है । उसका बाधा भाग आप ले लीजिए और आपकी जो भी सार्थ  
 हो, तब उनसे पूरा कर लीजिए । पर हाँ, इतना तो कमसे कम बता दीजिए कि वह है क्यों ॥५०॥  
 उस बाह्यजने इस कण्ठे वालें बहूँ मानने पार्वतीजीके हृदयमे बैठकर सब बातें जान ली हों ।  
 उन्हें सुनकर पार्वतीजी ऐसी सजा गई कि वे अपने मनकी बात भी अपने मूँहसे यह न पाई ।  
 हृदयमे अपने मित्त मानल जगे नेत्र पास बैठी हुई सखीकी ओर पुवाकर उन्होंने उसे धोतनेके  
 सिधे सनेत किया ॥५१॥ तब पार्वतीजीकी सखी उस ब्रह्मचारीसे बोली—हे साधो ! यदि आप  
 सुनना ही चाहते हो तो मैं बताती हूँ कि कैसे कोई धूप यथाज्ञेके सिधे कमलका छाता लगा ले  
 बीधे ही इन्होंने भी अपना मोमल खरीर कलेर तपस्यामि क्यों लगा दिया ॥५२॥ महेन्द्र यदि  
 महेन्द्रे पारी दिग्पालीकी छोड़कर ये मानिनी उन महादेवजीसे विवाह करनेपर तुली हुई हैं जो  
 धव कामदेवके नष्ट हो जानेपर केवल रूप दिसाकर नहीं रिजाए जा सकते ॥५३॥ उस समय  
 कामदेवने शिवजीसे ऊपर जो बात पताया वा यह उस समय तो उनकी हुंकार सुनकर ही लौट  
 गया पर उस जलकर राख बने हुए कामदेवका यह बाण मेरी सखीके हृदयमे लगकर बसा भारी  
 पाव कर गया है ॥५४॥ सखीसे ये बेचारी अपने पिताके घर इतनी प्रेयकी पीछासे व्याकुल  
 हुई पकी रहती थी कि माथेपर पुते हुए अन्दनसे बाल भर जानेपर भी और जमे हुए हिंगवो  
 पट्टीवीपर लेटे रहनेपर भी उन्हें पैन नहीं मिलती थी ॥५५॥ अब ये महादेवजीके गीत माने



उपात्तवर्णं चरिते पिनाकिनः सवाष्पकखलस्त्रलितैः पदैरियम् ।  
 अनेकशः किञ्चरराजकल्पका वनान्तसंगीतसखीररोदयत् ॥५६॥  
 त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं निमीन्य नेत्रे सहसा व्यवुध्यत ।  
 क नीलकण्ठ ब्रह्मसौत्यलक्ष्यवामिसत्यकण्ठार्पितब्राह्मवन्धना ॥५७॥  
 यदा बुधैःसर्वगतस्त्वमुच्यसे न वेत्सि भावस्यमिमं कथं जनम् ।  
 इति स्वहस्तोन्मिलितस्त्वमुग्धया रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखरः ॥५८॥  
 यदा च तस्याभिगमे जगत्पतेरपश्यदन्यं न त्रिधिं विचिन्वती ।  
 तदा सहास्माभिरनुज्ञया गुरोरियं प्रपन्ना तपसे तपोवनम् ॥५९॥  
 द्रुमेषु सख्या कृतजन्मसु स्वयं फलं तपःसाक्षिपु दृष्टमेव्यपि ।  
 न च प्ररोहाभिमुखोऽपि दृश्यते मनोरथोऽस्याः शशिमौलिसंश्रयः ॥६०॥  
 न वेत्ति स प्रार्थितदुर्लभः कदा सखीभिरसौचरमीक्षितामिमाम् ।  
 तपःकृशामभ्युपपत्स्यते- सखीं वृषेव सीतां तद्वब्रह्महताम् ॥६१॥  
 भ्रगूढसद्भावमितीकृतज्ञया निवेदितो नैष्ठिकसुन्दरस्तया ।  
 अयीदमेवं परिहास इत्युमामपृच्छदन्पञ्जितहर्षलक्ष्यः ॥६२॥

लगती थी तब वे बगवाहिनी किन्नरी राज-कुमारियाँ भी इनके वँधे हुए गलेसे निकले हुए शब्दोंकी सुन-सुनकर बहुत चार रो देती थी जो इनकी यंगीवकी सखियाँ थी ॥५६॥ रातके पहले ही पहूरमें लाग भरके लिये छाँख लगी नहीं कि बिना बातके ये धौंककर बरखराती हुई जाग उठती थी कि हे नीलकण्ठ ! तुम कहाँ जा रहे हो और उसी उपनेके धोखेमें ये अपने हाथ ऐसे फँसाती थी मानो शिपजीके गलेमें हाथ डालकर उन्हें रोक रही हो ॥५७॥ इस प्रकार नीदमें उठकर ये अपने हाथसे बनाए हुए शंकरजीके चित्रको ही खन्ने शंकरजी समझकर उन्हें यह कह कहकर उलाहना देने लगती थी कि आपके लिये पकित सोय तो कहते हैं कि आप घट-घटकी भाँटे जानते हैं फिर आप मेरे जीकी जल्लज क्यों नहीं जान पाते जो आपको खन्ने मन्ने प्यार करती है ॥५८॥ जब उन संसारके स्वामी शिवजीको पानेका उन्हें कोई दूसरा उपाय न सूझा तो ये अपने पिताकी आज्ञा लेकर हम सोयके साथ तप करनेके लिये यहाँ तपोवनमें खसी आई ॥५९॥ हमारी सखीकी यहाँ उपस्था करके हुए इतने दिन हो गए कि इनके हाथके रोपे हुए जिन वृक्षोंने इनके तपको लड़े-लड़े देखा है वे भी फल गए पर महादेवजीको पानेकी जो इनकी साम थी उसमें अभी शँकर भी नहीं फूट पाये ॥६०॥ अपने इन्हे ऐसा सुझा दिया है कि इन्हे देखकर हमारी सखियोंकी मौलें भी रुदबवा धाती हैं । इतने पर भी जिस दुर्लभ वरको पानेके लिये ये इतनी साँसत भोग रही हैं यह देखें बच हमारे सखीपर उसी प्रकार कृपा बरसाता है जैसे जुती हुई होनेपर भी पानी न बरसनेसे सूखी हुई घरतीपर इन्द्र पानी बरसा देते हैं ॥६१॥ इस प्रकार पार्यतोके मनकी बात जाननेवाली राजोंने तपस्या करनेका ठीक-ठीक वाखण बता दिया । यह सुनकर उस ब्रह्मचारी और सुन्दर पुराने अपने मुखपर प्रसन्नताकी एक रेखा भी नहीं पढ़ने दी और उलटे पार्यतीजीसे

अयाग्रहस्ते मुकुलीकृताङ्गुलौ समर्पयन्ती स्फटिकाक्षमालिकाम् ।  
 कथञ्चिदद्रेस्तनया मिताक्षरं चिरव्यवस्थापितवाग्भाषत ॥६३॥  
 यथा भूतं वेदविदां वर त्वया जनीऽयमुच्चैः पदलङ्घनोत्सुकः ।  
 तपः क्लिष्टं तदवाप्तिसाधनं मनोरथानामगतिर्न विद्यते ॥६४॥  
 अथाह वर्यां विदितो महेश्वरस्तदर्पिणी त्वं पुनरेव वर्चसे ।  
 अमङ्गलाभ्यासरतिं विचिन्त्य त त्वानुष्टुचिं न च कर्तुमुत्सहे ॥६५॥  
 अवस्तुनिर्ग्रन्धपरे कथं नु ते करोऽयमाप्तुक्तविवाहकौतुकः ।  
 करेण शमोर्बलयीकृताहिना सहिष्यते तरप्रथमाऽलम्बनम् ॥६६॥  
 स्वयेऽ तावत्परिचिन्त्य स्वयं कदाचिदेते यदि योगमर्हतः ।  
 षष्टदुर्कालं क्लृप्तसलक्ष्णं गजाजिनं शोखितरिन्दुवर्षिं च ॥६७॥  
 चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः परोऽपि को नाम तथानुमन्यते ।  
 अस्तक्तक्राद्धानि पदानि पाटयोरिंकीर्णकेशासु परेतभूमिषु ॥६८॥  
 अयुक्तरूपं किमतः परं यद् अिनेत्रवक्षःसुलभं तवापि यत् ।  
 स्तनद्वयेऽस्मिन्हरिचन्दनास्पदे पदं चितामस्मरजः करिष्यति ॥६९॥

पूछने लगा कि ये जो कुछ कह रही हैं यह क्या सत्य है, या ये हँसी कर रही हैं ॥६२॥  
 बहुत देर तक तो पार्वतीजी सावधे धारण कुछ भी नहीं बोलीं पर उन्होंने अपनी अनुभियोक्तो  
 समेटकर स्फटिकाक्षी माता हाथमें पहन ली और बड़े बड़े तुले प्रसरोमें वे किसी किसी प्रकार बोली  
 ॥६३॥ हे वैदके परम पति ! धारण जैसा मुना है मेरे मनमें वैसा ही ऊँचा पर पानेकी साथ  
 जाग उठी है और यह तप भी मैं उन्हीकी पानेके लिये कर रही हूँ, क्योंकि मनुष्य-ताप नहीं तक  
 पहुँचती है इसका कोई ठिकाना तो है ही नहीं ॥६४॥ पार्वतीजीकी वाय सुनकर बह्मचारी बोला  
 कि जिसने पहले ही मापके प्यारको दुपरा दिया, उसके पानेके लिए क्या धारण करने प्रभी तप  
 साथ धनी हुई है ? जब मैं उन भोटे वेसवाले शिवजीका विचार करता हूँ तब मेरा मन तो  
 नहीं करता कि मापको इसके लिये यत्नति दूँ ॥६५॥ पार्वतीजी ! धारण भी जिस शैलुके  
 मैन करने अभी हैं । यथाइए तो, पालिशहलके समय विवाहके समय सूत्रके राजा हुआ  
 धारण यह हाथ तारकीके साथ लिपटे हुए हाथको कैसे छू पावेगा ? ॥६६॥ धारण स्वयं  
 सोचिए कि नहीं तो हल छपी हुई पुँदरो धोके हुए धारण और नहीं रखती बूँद टपनाती  
 हुई महादेवकीके रूपपर पड़ी हुई हाथकी सास । असा ये दोनो नहीं मेल पा सकते हैं ॥६७॥  
 धारण अभी तक फूल बिछे हुए पीपमें चलती आई हैं । अब बताइए धारण अपने  
 महावरसे रंगे पंढरोको उस भ्रमज्ञानकी भूमिमें कैसे रखेंगी जहाँ इपर उपर भूत प्रेतोंके  
 बाल बिलारे पड़े होयें । यह बात तो धारणरा शत्रु भी धारण लिये नहीं चाहेगा ॥६८॥ और  
 यथाइए, यदि शिवजी, धारणको मिल भी जायें तो भी इससे बढकर भदो और क्या बात होगी  
 कि धारणने जिन रत्नोपर हरिचन्दन पुता हुआ है तपर चिताकी अस्म -कर पोती जाय ॥६९॥  
 और सबसे बड़ी हँसीकी बात तो तब होगी जब धारण हाथी छोडकर उन्में बड़े रसपर चढकर अपनी

इयं च तेऽन्या पुरतो विहम्बना यद्ब्रूया वारणराजहार्यया ।  
 विलोक्य वृद्धोच्चमधिष्ठितं त्वया महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति ॥७०॥  
 द्वयं गतं संप्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया पिनाकिनः ।  
 कला च सां कान्तिमती कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी ॥७१॥  
 यपुर्विरूपाद्यमलच्यजन्मता दिग्भ्रवरत्वेन निवेदितं वसु ।  
 वरेषु यद्बालमृगाच्चि सृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने ॥७२॥  
 निवर्तयास्तादसदीप्सितान्मनः क्व तद्विषस्त्वं क्व च पुण्यलक्षणा ।  
 अपेक्षते साधुजनेन वैदिकी रमशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया ॥७३॥  
 इति द्विजातौ प्रतिब्रूलवादिनि प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया ।  
 विकृश्वितभ्रूलतमाहिते तया विलोचने तिर्यगुपान्तलोहिते ॥७४॥  
 उवाचचैत्रं परमार्थतो हरं न चेत्सि नूनं यत एवमास्थ माम् ।  
 अलोकतामान्यमचिन्त्यहेतुकं द्विपन्ति मन्दाधरितं महात्मनाम् ॥७५॥  
 विपत्प्रतीकारपरेण मङ्गलं निपेव्यते भूतिसमुत्सुकेन वा ।  
 जगच्छरयस्य निराशिषः सतः किमेभिराशोपहतात्मवृत्तिभिः ॥७६॥

सत्पुत्रको चर्छंगी और नगरके भलेमानुस सब प्राणकी देखकर तासियां बजायेगे ॥७०॥  
 मैं तो समझता हूँ कि शिवजीको पापके घोरमे दोके भाप फूट गए, एक जो चन्द्रमाकी कक्षाके,  
 जो उनके माथेपर है और दूसरे प्राणके जो तमारेके नेत्रोको सिलानेवाली हैं ॥७१॥  
 और देखिए, तीन तो उनके प्राण, जन्मजा उनके कोई ठिकाना नहीं, और उनके सदा गये रहनेके  
 ही प्राण समझ सकती होगी कि उनके घरमें क्या होगा। इसलिये हे मृगके छीनेकी प्राण जैसी  
 प्राणवाली पार्वतीजी ! परमे जी गुण सोचि जाते हैं उनमेसे एक भी तो महावेपवीमे नहीं है।  
 [ न कन है, न पुत्र है और न धन है ] ॥७२॥ इसलिये प्राण प्रपने मनसे यह भोवी इच्छा हटा  
 ही कीजिए। वहाँ तो महादेव और कहीं सुन्दर लक्ष्मणवाली प्राण। देखिए, सूली देनेके लिये  
 इनमानने जो लमा गड़ा रहता है उससे जिस प्रकार सज्जन लोग पशुके लमेका काम नहीं लेते  
 हैं वैसे ही इन महादेवजीगे पति बनाना भी प्राणकी सोभा नहीं देता ॥७३॥ उदा प्राहाणको  
 ऐसी जस्टी-सीमे वातें सुनकर पार्वतीजीके शोठ क्रोधते कांपने लगे, उनकी प्राणें साल हो गई  
 और उन्होंने भीहें सादकर उस भ्रूलचारीकी और भासिं उदरेकर देखा ॥७४॥ और बोधी—  
 तब प्राण महादेवजीको भली प्रकार जानते ही नहीं जो मुमसे इस प्रकार यह रहे हैं। जो सोटे  
 लोग होने ? वे उन महाप्राणोके जन्मसे नामोको बुझा बताते ही हैं जिन्हें पहचाननेकी उनमे  
 योग्यता नहीं होती ॥ ७५ ॥ लोग जो मन्व प्रादि मगन वस्तु नाममे जाते हैं उभवा कारण  
 यह है कि या तो वे मगन दूर करनेके लिये ऐसा करते हैं या फिर प्राणों तटक-भटक दिसतानेके  
 लिए पर जो तीनों लोकोनी रता करनेवाले हैं और जिनके मनमे कोई इच्छा ही नहीं रहती  
 वे संकरवी इन परशुधोको लेबर करने ही क्या ? ॥ ७६ ॥ पासमे बुद्ध न होते हुए भी शारी

अकिञ्चनः सन्प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृसन्नगोचरः ।  
 स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ॥७७॥  
 विभूषणोद्भासि पिनद्धमोगि वा गबाजिनालम्बि दुकूलधारि वा ।  
 कपालि वा स्यादयकेन्दुशेखरं न विद्यमूर्तेरवधार्यते वपुः ॥७८॥  
 तदङ्गसंसर्गमवाप्य कल्पते ध्रुवं गिताभस्म रजोविशुद्धये ।  
 तथाहि नृत्वाभिनयक्रियाच्युतं विलिप्यते मौलिभिरम्बरीकसाम् ॥७९॥  
 असम्पदस्तस्य शृपेण गच्छतः प्रभिन्नदिग्दारशवाहनो वृषा ।  
 करोति पादाङ्गुणम्य मौलिना विनिद्रमन्दाररजोरुणाङ्गुली ॥८०॥  
 विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम् ।  
 यमामनन्त्यात्मभ्रुवोऽपि कारणं कथं स लक्ष्यप्रभवो भविष्यति ॥८१॥  
 अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः ।  
 ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं न कामवृत्तिर्वचनीयमीदृते ॥८२॥  
 निवार्यतामालि किमप्ययं बहूः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः ।  
 न केवलं यां महताऽपभापते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ॥८३॥

सम्पत्तियां उन्हीते उरपन्न होती है, हमदानमे रहते हुए भी वे तीनों तीनों स्वामी हैं और  
 उरपाने दिखाई देनेपर भी वे सवया कल्याण करनेवाले बड़े जाते हैं, इसलिये उनका सच्चा रूप  
 सकारमे कोई ठीक ठीक समझ नहीं पाता है ॥७७॥ सकारमे जितने रूप दिखाई दैते हैं  
 वे सब उन्हीने होते हैं इसलिये उनका शरीर गहनतम अमरता हो या संपत्ति लिपटा हुआ हो,  
 हाथीकी टांग लटकाए हुए हो या बख मोटे हुए हो, नलेम खोपडियोकी मरणा पहले हुए हो या  
 माथेपर अन्द्रमा राजाये हुए हो पर उरपर यह विचार नहीं किया जाता कि यह क्या है कंसा  
 नहीं ॥७८॥ उनके शरीरमे सगवर चिताकी रास भी पवित्र हो जाती है इसलिये तो जब वे  
 सादप नृत्य करने लगते हैं उस समय उनके शरीरमे भङ्गी हुई भस्मको देवता लोग बड़ी श्रद्धासे  
 अपने भाथे चढाते हैं ॥७९॥ जिन्हें आप दरिद्र बताते हैं वे जब अपने जैनपर चङ्गपर चलने  
 लगते हैं तब गलबाले ऐरावतपर अहनेवाला इन्द्र भी साबर उनके पंरोपर मस्तक नगामा करता  
 है और पूजे हुए मत्स्यवृक्षमे परागसे उनमे पंरोकी उंगलियां रेंवा करता है ॥८०॥ आपने अपने  
 हुए स्वभावसे कहते कहते फमसे कम एक बात तो उनके लिये ठीक बह दो नि जो प्रहृ तनको  
 उरपन्न करनेवाला बताया जाता है उस ईश्वरने जन्म और मुक्तको कोई जानती कैसे करता है ॥८१॥  
 इसलिये, प्रप यह भ्रमडा जाने बीजिए । आपन उन्हे बेसा सुना, वे बंरो ही गरी पर मेरा मन  
 तो उन्हीमे रग गया है । जब किसीका मन नितोपर लग जाता है तब वह निहोये कहने सुननेपर  
 ध्यान पोत्रे ही देता है ॥८२॥ इतनेमे उन्हीने देखा कि ब्रह्मचारी बुद्ध और बोलना चाहता है ।  
 यह देखकर वे अपनी सतीसे बोली-देतो सती । हा ब्रह्मचारीसे थोठ पटा रहे हैं । वे फिर  
 बुद्ध कहना चाहते हैं । इनके बह दो नि प्रप एव बात भी न बोलें क्योंकि जो बडो भी निदा

इतो गमिष्याम्यथवेति वादिनी चचाल बाला स्तनभिन्नवल्फला ।  
स्वरूपमास्थाय च तां कृतस्मितः समाललम्बे वृषराजकेतनः ॥८४॥

तं वीक्ष्य वेषयुमती सरसाङ्गयष्टि  
निक्षेपस्थाय पदमुद्धृतमुद्धहन्ती ।

मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः  
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्यौ ॥८५॥

अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः  
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौली ।

अहाय सा नियमर्जं फलममुरत्ससर्ज  
बलेशः फलेन हि पुनर्नवतां विषचे ॥८६॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृतो कुमारसंभवे महाकन्ये  
तपःफलोदयो नाम पञ्चमः सर्गः ॥

करता है केवल बही पापी नहीं होता चरन जो मुनता है उसे भी पाप लगता है ॥८३॥  
या तो मैं ही पहचि उठकर चली जाती हूँ । यह कहकर वे उठी । इस हृदयहीने उनके स्तनपर  
पडा हुआ बलकल फट गया और ज्योही उन्होंने चलनेको पैर बढ़ाया त्योही महादेवजीने अपना  
राजा रूप धारण करके मुस्कराते हुए उनका हाथ धाम लिया ॥८४॥ महादेवजीको देखते ही  
पार्श्वतीजीके शरीरने कँपकँपी छूट गई । वे पसीने-पसीने हो गई और आगे चलनेको उठाए हुए,  
अपने पैरको उठोने जहाँका तहाँ रोका लिया । जैसे धाराके बीचमे पहाड पड जानेसे न तो नदी  
आगे बढ़ पाती है न पीछे हट पाती है वैसे ही हिमावतकी कन्या भी न तो आगे ही बढ़ पाई  
न खड़ी ही रह पाई ॥८५॥ शिवजी बोले—हे कोमल शरीरवाली ! आओ तुम मुझे तपसे  
मोल लिया हुआ अपना दास समझे । इतना मुनता भर था कि तपस्याके पार्श्वतीजीको जितना  
कष्ट हुआ था वह सब जाता रहा क्योंकि अब काम पूरा हो जाता है तब उसके लिये किया हुआ  
कष्ट फिर खटकता नहीं ॥८६॥

महाकवि श्रीकालिदासके रचे हुए कुमारसंभव महाकाव्यमे तपपा  
पञ्च नामक पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

## ॥ षष्ठः सर्गः ॥

अथ विस्वात्मने गौरी संदिदेश मिथः सखीम् ।  
 दाता मे भूसृतां नाथः प्रमाथीक्रियतामिति ॥१॥  
 तथा व्याहृतसंदेशा सा वभौ निमृता प्रिये ।  
 चूत यदिरिवाग्याशे मधौ परसृतोन्मुखी ॥२॥  
 स तथेति प्रतिज्ञाय विसृज्य कथमप्युमाम् ।  
 श्रुपीञ्ज्योतिर्मयान्सप्त सस्मार स्मरशासनः ॥३॥  
 ते प्रमामण्डलैर्व्योम द्योतयन्तस्तपोधनाः ।  
 साहस्रतीकाः सपदि प्रादुरासन्पुरः प्रभोः ॥४॥  
 श्याञ्जुतास्तीरमन्दारकुसुमोत्किरवीचिषु ।  
 व्योमगङ्गाप्रवाहेषु दिङ्नागमदगन्धिषु ॥५॥  
 मुक्तायज्ञोपवीतानि विप्रतो हैमवल्कलाः ।  
 रत्नाक्षत्राः प्रव्रज्यां कल्पवृक्षा इवाश्रिताः ॥६॥  
 अधः प्रस्थापिताम्वेन सभावर्जितकेतुना ।  
 सहस्ररश्मिना साक्षात्सप्रमाणमुदीक्षिताः ॥७॥

### छठा सर्ग

सब पार्वतीजीने, षष्ठ षष्ठमे रमनेवाले शकरजीको भयनी सलीके गृहते भीरेते नहनाया कि वेरा विवाह करने या न करनेवाले मेरे पिता हिमालय हैं, इसलिये यदि प्राप मुझसे विवाह करना चाहते हो तो पहले उन्हें जानर मना नीविए ॥१॥ प्रेममे पयी हुई पार्वतीजी भयनी सलीके गृहते महादेवजीको यह संदेश कहलाती हुई बैठी थी सुमोहित हुई जैसे कोपलकी बोलीने बरगत्तने पाए अपना संदेश गेलती हुई आभकी दास सोमा देती है ॥२॥ महादेवजीने कहा — अच्छी बात है और उन्होने गौरी मनले पार्वतीजीको किसी न किसी प्रकार घर जानेकी आज्ञा दी । पार्वतीजी के जले जानेपर उन्हीने वेप्रसे जयमगानेवाले सप्त श्रुपियोंको ऋषे स्वरण किया ॥३॥ स्मरण करते ही अपने तेजोमण्डलोटे उजाला भरते हुए अरुणतीकी छाप लेकर तत्काल शकरजीके प्रागे वे जाती तपस्वी धारकर खडे हो गए ॥४॥ उन्होने उस आकाश मगाने स्थान कर रक्षता या जो प्रपने तीरपर विरे हुए कल्पवृक्षके फुलीको भयनी सहरोपर पलासती बसती है और जिसके जलमें दिग्गजोंके मवकी युगन्ध आया करती है, ॥५॥ उनके कन्धोपर मोतीके यज्ञोपवीत छटक रहे थे, पीठपर सोनेके बत्कन पडे हुए थे, हाथमे रत्नोकी सातारें थी और जो इस वेरा मे ऐसे जान पडते थे मानो कल्पवृक्षोने सम्पास के सिया हो ॥६॥ उनके छत्तेसे जाटा हुआ सूर्य अपने मोडे नीचे रोककर और भडी उठारकर बडी नम्रतासे उन्हे ऊपर धरि उठाकर प्रणाम किया करता है ॥७॥

आसक्तवाहुलतया सार्धमुद्धृतया युवा ।  
 महावराहदंष्ट्रायां विश्रान्ताः प्रलयापदि ॥८॥  
 सर्गशेषप्रणयनाद्विश्वयोनेरनन्तरम् ।  
 पुरातनाः पुराविद्धिर्घातार इति कीर्तिताः ॥९॥  
 प्राक्तनानां निश्चुद्धानां परिपाकसुपेयुषाम् ।  
 तपसासुपभुञ्जानाः फलान्यपि तपस्विनः ॥१०॥  
 तेषां मध्यगता साध्वी पत्युः पादापितेक्षणा ।  
 साक्षादिषु तपः सिद्धिर्बभासे बह्वस्त्वती ॥११॥  
 तामगौरवभेदेनमुनींश्चापश्यदीश्वरः ।  
 स्त्रीपुमानित्यनास्थैषा वृत्तं हि महितं सताम् ॥१२॥  
 तद्दर्शनादभूच्छंभोर्भूपान्दारार्यमादरः ।  
 क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम् ॥१३॥  
 धर्मेषां पदं शर्वे कारिते पार्वती प्रति ।  
 पूर्वापराधभीतस्य कामस्योच्छ्वसितं मनः ॥१४॥  
 अथ ते मुनयः सर्वे मानयित्वा जगद्गुरुम् ।  
 इदमुचुरनूचानाः प्रीतिक्रयटकितत्वचः ॥१५॥

जो प्रलयके समय बराह भगवानके जबदोसे उवारी हुई पृथ्वीके साथ धपना हाथ कपी  
 लता लगाए रखनेके कारण पृथ्वीके साथ ही उनके जयदोसे विद्याम किया करते हैं उनके लिये  
 लीप कहते हैं कि ब्रह्माके सृष्टि कर चुकनेपर इन्ही श्रमियोने ही सृष्टि की थी और इसीलिए उन्हें  
 इतिहास जाननेवाले पुराने लीप विधाता कहा करते हैं ॥९॥ वे अपने पूर्व जन्मकी तपस्या  
 और पुण्य कर्मों का फल भोगते रहनेपर भी श्रवतक तपस्या करते चले जाते हैं ॥१०॥ उनके  
 बीचमे, अपने पति विश्विष्टजीके घरलोकी और निहारती हुई सती भरतपती ऐसी लगती  
 थी मानो क्षमात् तपकी विधि ही भाकर खटी हो गई हो ॥११॥ शकरजीने प्रकृतीजीकी  
 और श्रमियाकी बिना स्त्री-पुरुषके भेद भाव किए समान आदरसे देखा क्योंकि सज्जन  
 लोगोंके व्यवहार करते समय यह नहीं देखा जाता कि यह पुण्य है या लो, वरत् नहीं-विचार  
 किया जाता है कि इनका चरित्र कैसा है ॥१२॥ शिवजीने जब शकृतीजीको देखा तब  
 उनके मनमें यह बात और भी पक्की जम गई कि बिना पतिव्रता पत्नीके, विवाह किए पानिक  
 क्रियाएँ पूरी नहीं हो सकती ॥१३॥ शकरजीके मनमे पार्वतीजीसे विवाह करनेकी इच्छा  
 देखकर उस कामदेवने मनमें भी कुछ-कुछ डारव होने लगा जो अभी तब अपने एक  
 चारके लिए हुए प्रपरापसे डरा बैठा था ॥१४॥ तब वेद-वेदाङ्गकी जाननेवाले और प्रेमसे पुलकित

यद्व्रह्म सम्यग्गाम्नातं यदज्ञौ विधिना हुतम् ।  
 यच्च तप्तं तपस्तस्य विपकं फलमद्य नः ॥१६॥  
 यदध्यक्षेण जगतां वप्रमारोषितास्त्वया ।  
 मनोरथस्याविषयं मनोविषयमात्मनः ॥१७॥  
 यस्य चेतसि वर्तेथाः स तावत्कृतिनां वरः ।  
 किं पुनर्ब्रह्मयोनेर्यस्तव चेतसि वर्तते ॥१८॥  
 सत्यमर्काद्य सोमाद्य परमध्यास्महे पदम् ।  
 अद्य तूच्चैस्त्वरं ताभ्यां स्मरणानुग्रहाच्च ॥१९॥  
 त्वत्संभाषितमात्मानं बहुमन्यामहे वयम् ।  
 प्रायः प्रत्ययमाद्यचे स्वगुणेषूचभादरः ॥२०॥  
 या नः प्रीतिर्विरूपाद्य त्वदनुष्यानसंभवा ।  
 सा किमावेद्यते तुभ्यमन्तरात्मासि देहिनाम् ॥२१॥  
 साक्षाद्दृष्टोऽसि न पुनर्विद्यस्त्वां वपमञ्जसा ।  
 प्रसीद कथयात्मानं न द्वियां पथि वर्तसे ॥२२॥  
 किं येन सृजसि व्यक्तमुत येन विमर्षि तत् ।  
 अथ विश्वस्य संहर्ता भागः क्वतम एष ते ॥२३॥

शरीरबाले सततद्विद्योने शबरजीवा पूजन करके उनसे कहा कि भली प्रकारवेद पढ़नेवा, विधिपूर्वक हुनन करनेका शीर लप करनेवा जो कुछ भी फल हो सक्ता है वह सब प्राय हमे मिल गया ॥१६॥ क्योंकि आपके जित मनतक विसीदी इच्छायें भी नहीं पहुँच सकती उसी मनसे आप राक्षारके स्वामीके रूप शोभोको स्मरण किया ॥१७॥ जो तो आप जिसके मनमें बसते हैं वही बसते बसा पुण्यात्मा है, पर जो आपके पित्तमें भाकर बसता हो उसका तो फिर कहना ही क्या ॥१८॥ यद्यपि हम सोच सूर्य शीर चन्द्रमा दोनोंही यो ही ऊपर रहते हैं पर आज आपने स्मरण करके हमे उनसे शीर भी ऊँचा पाड़ा दिया है ॥१९॥ आपके यह आदर पाकर हम अपने मनमें पूते नहीं रामाते क्योंकि अपने गुणोपर शोभोको तमी सन्धा विश्वास होता है जब सज्जन लोभ उसके गुणोका आदर करें ॥२०॥ हे शिष्यजी ! आपने हमको जो स्मरण किया है उससे हमारे मनमें आपके लिये जो प्रेम उत्पन्न हुआ है उसे हम अपने मुँहसे आपके आगे क्या कहे, क्योंकि आप तो पट-पटकी जाननेवाले हैं ॥२१॥ हे देव ! यद्यपि हम आपको अपनी श्रौतिके आगे बड़ा देख रहे हैं फिर भी हम आपका भेद ठीक-ठीक जान नहीं पा रहे हैं इसलिये आप क्या करके अपना स्वरूप तो बताइए क्योंकि हमारी बुद्धि तो आप तक पहुँच नहीं जाती ॥२२॥ यह तो बताइए कि आपकी जो मूर्ति हम देता रहे हैं, यह क्या कहो है जिससे आप सृष्टि उत्पन्न करते हैं, या वह है जिससे पावन करते



अथवा सुमहत्पेपा प्रार्थना देव तिष्ठतु ।  
 चिन्तितोपस्थितास्तावच्छाधि नः कृत्वाम क्रिय् ॥२४॥  
 अथ मौलिगतस्येन्दोर्विशदैर्दशनांशुभिः ।  
 उपचिन्वन्प्रभां तन्वीं प्रत्याह परमेधरः ॥२५॥  
 विदितं वो यथा स्वार्था न मे काञ्चित्प्रवृत्तयः ।  
 ननु मूर्तिभिरष्टाभिरित्यंभूतोऽस्मि ह्यचितः ॥२६॥  
 सोऽहं तृष्णातुरैर्वृष्टिं विद्युत्त्वानिव चातकैः ।  
 अरिविप्रकृतैर्देवैः प्रक्षतिं प्रति याचितः ॥२७॥  
 अत आहर्तुमिच्छामि पार्वतीमात्मजन्मने ।  
 उत्पत्तये हविर्मोक्षुर्यजमान इवारणिम् ॥२८॥  
 तामस्मदर्थे युष्माभिर्याचितव्यो हिमालयः ।  
 विक्रियायै न कल्पन्ते संवन्धाः सदनुष्ठिताः ॥२९॥  
 उन्नतेन स्थितिमता धुरमुद्रहता भुवः ।  
 तेन योजितसंवन्धं त्रिषु मामप्यवञ्चितम् ॥३०॥  
 एवं वाच्यः स कन्यार्थमिति वो नोपदिश्यते ।  
 भवत्प्रणीतमाचारमामनन्ति हि साधवः ॥३१॥

है वा वह है जिससे ससारका संहार करते हैं ॥२१॥ पर देव ! यह तो बड़ी लम्बी कथा है । इसे मनी पढ़ने कीबिध और पहले यह बताए कि आपने हमें इस समय किस कामके लिये स्मरण किया है । कहिए, हमें क्या करना होगा ॥२५॥ अपनी मन्त्र हँसीके कारण चमकते हुए दाँतोंकी दमकसे सिस्पर बँडे हुए बाल चन्द्रमाकी मन्दी चमकको बताते हुए महादेवजी उन छप्ताश्रुपिणोंसे बोले ॥२५॥ हे मुनियो ! आप लोग तो जानते हो हैं कि हम अपने लिये कुछ नहीं करते और हमारी मातृ मूर्तियाँ—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, धामाध, सूर्य, चन्द्र और होला—(हवन करनेवाले) इस बातके साक्षी भी हैं ॥२६॥ जैसे प्यासे चातक, वादलोसे जलकी बुँदें माँगते हैं वैसे ही समुद्रसे सताए हुए देवता लोग भी मुझसे पुत्र उत्पन्न करना चाहते हैं ॥२७॥ इसलिये पुत्र उत्पन्न करने की इच्छासे मैं पार्वतीजीको उसी प्रकार, सावा चाहता हूँ जैसे अग्नि उत्पन्न करनेके लिये यजमान अरणि (रगड़कर भाग लज्जानेवाली लकड़ी) लाता है ॥२८॥ तो आप लोग मेरी ओरसे जाकर हिमालयसे पार्वतीजीको माँग लीजिए क्योंकि उज्ज्वल लोग बीचमें पड़कर जो सम्बन्ध कर देते हैं उसमें फिर किसी प्रकारकी रुझट नहीं होती ॥२९॥ फिर ऐसी जँची प्रतिष्ठावाले और पृथ्वीको धारण करनेवाले हिमालयसे सम्बन्ध करके मैं भी अपनेको पण्य समझूँगा ॥३०॥ आप लोगोंको यह तो समझाना नहीं है कि कन्याको माँगनेके लिये ऐसे कहिएगा । क्योंकि इस प्रकारके सिष्टाचारकी जो बातें दूसरे पण्डित लोग काममें ला रहे हैं वे सब आप ही लोगोंने तो बनाई हैं ॥३१॥

आर्याप्यरुन्धती तत्र व्यापारं कर्तुमर्हति ।  
 प्रायेखैवंविधे कार्ये पुरंध्रोणां प्रगल्भता ॥३२॥  
 तत्प्रयातौपधीप्रस्थं सिद्धये हिमवत्पुरम् ।  
 महाकोशीप्रपातेऽस्मिन्संगमः पुनरेव नः ॥३३॥  
 तस्मिन्संगमिनाभाधे जाते परिशयोन्मुखे ।  
 जहुः परिग्रहग्रीडां प्राजापत्यास्तपस्विनः ॥३४॥  
 ततः परममित्युक्त्वा प्रतस्थे । मुनिमण्डलम् ।  
 भगवानपि संप्राप्तः प्रथमोद्दिष्टमास्पदम् ॥३५॥  
 ते चाकाशमसिरयाममुत्पत्थ परमर्षयः ।  
 आसेवुरोपधिप्रस्थं मनसा समरंहसः ॥३६॥  
 अलकामतिवाह्यैव वसन्ति वसुसंपदाम् ।  
 स्वर्गाभिष्यन्दप्रमनं कृत्वेषोपनिवेशितम् ॥३७॥  
 गङ्गास्रोतः परिषिप्तं वप्रान्तर्ज्वलितौपधि ।  
 घृहन्मणिशिलासालं युप्तावपि मनोहरम् ॥३८॥  
 जितसिंहगया नागा यत्राथा विलयोनयः ।  
 यद्वाः किम्पुरुषाः पौरा योपितो वनदेवताः ॥३९॥

है, भार्या महापती भी इस काममें सहायता कर सकती है क्योंकि इन बातोंमें प्रायः किसी क्षयिक चतुर होती हैं ॥३२॥ इसलिये अब प्रायः लोग हिमालयके औपधिप्रस्थ नगरमें जाकर काम बनाइए और वहाँसे छोटकर महाकोशी नदीके भरनेपर घागर प्रायः लोग मुझमें मिल लीजिएगा ॥३३॥ कायः सत्यः श्रुतिर्द्विदिक्षः त्रिदिक्षः सुप्रसिद्धोऽस्य श्रेष्ठः शत्रुमेवभी ही जित्वाऽप्ये जित् १५५५ न्यावन्ते हैं तत्र नन लोकोके मनमे विवाहकी बातेंलि निष्पन्न हुआ करती थी वह सब जाती रही ॥३४॥ अब श्रुति लोग ६६ कहकर चल दिए और भगवान् जाकर भी वहाँ पहुँच गए जहाँ उन्होंने अधियोंके मिननेको कहा था ॥ ५॥ मनमे समाप्त वेगसे चलनेवाले के वरम श्रुति लोग कृपाएने समान मोले प्राकारमें चढ़ते हुए औपधिप्रस्थ नगरमें पहुँच गए ॥३६॥ वह नगर ऐसा बरापुरा था मानो उसने धन-गम्पतिसे भरी हुई धतकाको भी नीचा दिखा दिया हो और ऐसा जान पड़ता था मानो स्वर्गका बड़ा हुआ धन निवालनर द्रुमों ही सा भरा गया हो ॥३७॥ उस नगरके धारी और गयासोपी पाएएँ वहती थी, धमकनेवाली जडी-झुटियाँ वहाँ प्रचारा करती थी और मणियाँके ऊँचे-ऊँचे परकोटोंमें दिपे रहने पर भी वह नगर बड़ा सुन्दर लग रहा था ॥३८॥ वहन्कि हाथी ऐसे लगते थे कि सिंहको भी पावें तो पछाह दें, और घोड़े तो सभी बिल जातिने थे । यहाँन नामतिक भी या तो यय थे या बिलर, और किसी तो सब वनदेवियाँ ही थी ॥३९॥ इस नगरके धरोपर दिन-रात

शिखरासक्तमेघानां व्यज्यन्ते यत्र वेश्मनाम् ।  
 अनुगर्जितसंदिग्धाः करशैर्भुरजस्वनाः ॥४०॥  
 यत्र कल्पद्रुमैरेव विलोलविटपांशुकैः ।  
 गृहपन्त्रपताकाश्रीरपौरादरनिर्मिता ॥४१॥  
 यत्र स्फटिकहर्म्येषु नक्तमापानभूमिषु ।  
 ज्योतिषां प्रतिबिम्बानि प्राप्नुवन्त्युपहारताम् ॥४२॥  
 यत्रौपधीप्रकाशेन नक्तं दर्शितसंचराः ।  
 शनभिद्वास्तमिसायां दुर्दिनेष्वभिसारिकाः ॥४३॥  
 यौवनान्तं वयो यस्मिन्नान्तकः कुसुमायुधात् ।  
 रतिखेदसमुत्पन्ना निद्रा संज्ञाविपर्ययः ॥४४॥  
 भ्रूमेदिभिः सकम्पोष्टैर्लिताङ्गुलितवर्जनैः ।  
 यत्र कोपैः कृताः स्त्रीणामाप्रसादार्थिनः प्रियाः ॥४५॥  
 संतानकवल्कुलायासुप्तार्चिताध्वगम् ।  
 यस्य चोपवनं वाह्यं गन्धवद्गन्धरसहृदम् ॥४६॥  
 अथ ते ह्यनयो दिव्याः प्रेक्ष्य हैमवतं पुरम् ।  
 स्वर्गाभिसंधिसुकृतं वञ्चनामिव मेनिरे ॥४७॥

बावत छाप रहते थे और जब कभी उन घरोंमें मृदय बनने लगता था तब लोगोंको पहले यहीं भ्रम  
 होने लगता था कि यह वादसौकी गरजकी गूँज है पर फिर उनकी तालसे समझ जाते थे कि ये बावत  
 नहीं गरजते वरन् मृदय बन रहे हैं ॥४०॥ कल्पवृक्षकी चञ्चन शाखाएँ ही उस नगरीकी ऋषियाँ  
 थीं और वरुण उन्हें किसी नागरिक ने बनाया नहीं था फिर भी वे ऐसी लग रही थीं मानो घरोंपर  
 डटे खड़े करके उनमें ऋषियाँ बाँध दी गईं हों ॥४१॥ स्फटिकके भवनोंमें सजे हुए मन्दिरालयपर  
 रातकी जब तारोंकी परछाई पड़ती थी तब ऐसा जान पड़ता था मानो किसीने फूल बितेर दिए हों  
 ॥४२॥ वरसातके दिनोंमें रातको चमकने वाली जड़ी-बूटियाँ ऐसा प्रकाश देती थीं कि बहानोंकी प्रति-  
 साकाराओंको वरसातकी घनी ओंधियारोमें भी ओंधेरका पता नहीं चलता था ॥४३॥ वहाँके लोग  
 सदा जबान थे, कामदेवकी छोटकर और कोई किसीको धारता नहीं था और रामोयकी यकावटसे जो  
 नीद आती थी वही वहाँकी मूर्खा थी ॥४४॥ जो सो वहाँ कोई किसीको अटता-उपटता नहीं था पर  
 हाँ, वहाँकी स्त्रियाँ भी बड़ा-बड़ाकर, मोठ कोंपा-कोंपाकर और सुन्दर जेंगलियाँ चमका-चमकाकर  
 अपने प्रेमियोंको लपकक घबराय डौंटतीं थी जब तक वे प्रेमी मागेके लिये कान न पकड़ें ॥४५॥  
 गन्धमादन नामका सुगन्धित पर्वत ही उस नगरके बाहरका उपवन था जिसने कल्प-वृक्षोंकी छाया-  
 में विद्याधर लोग चलते चलते थकनेपर नीद लेते थे ॥४६॥ हिमालयकी उस राजधानीको देशकर  
 उन दिव्य मुनिगणोंको सोचा कि स्वर्गके लिए इतनी लक्ष्म्या नरके ह्रम भोग ठीक ही गए ॥४७॥ चित्रमे

ते सन्ननि गिरेर्वेगादुन्मुखद्वाःस्थवीचिताः ।  
 अबतेरुर्जटाभारैर्लिखितानलनिश्रलैः ॥४८॥  
 गगनादवतीर्या सा यथावृद्धपुरस्सरा ।  
 तोयान्तर्भास्करालीव रेजे मुनिपरम्परा ॥४९॥  
 तानर्घ्यानर्घ्यमादाय दूरात्प्रत्युद्ययौ गिरिः ।  
 नमयन्सारगुरुभिः पादन्यासैर्वगुंभराम् ॥५०॥  
 धातुताम्राधरः प्रांशुर्देवदारुपृहद्गुजः ।  
 प्रकृत्यैव शिलोरस्कः सुव्यक्तो हिमवानिति ॥५१॥  
 विधिप्रयुक्तसत्कारैः स्वयं मार्गस्य दर्शकः ।  
 स तैराक्रमयामास शुद्धान्तं शुद्धकर्मभिः ॥५२॥  
 तत्र वेत्रासनासीनान्कृतासनपरिग्रहः ।  
 इत्युवाचेश्वरान्याचं प्राज्ञलिर्भूधरेस्वरः ॥५३॥  
 अपगेषोदयं वर्षमदष्टकुसुमं फलम् ।  
 अतर्कितोपपन्नं चो दर्शनं प्रतिभाति मे ॥५४॥  
 सृष्टं बुद्धमिवात्मानं हैमीभूतमिवायसम् ।  
 भूमेर्दिवमिवारूढं मन्ये भेददनुग्रहात् ॥५५॥

यनीं हुई प्राग्वही मिश्रल लपटोके समान धपनी जगाएँ सिध-विष् जब वे बडे बेगसे हिमालयके भवन  
 पर उतरे तब हिमालयके द्वार-रक्षक ऊपर मूँह उठा-उठाकर उन्हे अचरबके साथ देखने लगे ॥४८॥  
 आकाशसे एण-एण बरके उतरते हुए ये मुनि ऐसे सोभा बेटे थे जैसे चलते हुए जलमे पत्नी हुईसूर्यकी  
 बहुत सी परछाईयाँ हो ॥४९॥ उन्हे देखकर हाथमे बरबं पाश लेकर दूरतो ही उनकी पूजा  
 करनेके लिये जब हिमालय अपने टोप धोखीले पैर बड़ाता हुआ चला तो उसके पैरोकी धमकसे  
 पृथ्वी भी पक्क-पक्कपर झुकती पली ॥५०॥ मुनियोने देखते ही पहचान लिया कि यह वेद  
 प्रादि पातुषोकी लाज पट्टानोके से ओठोवाला, देवदारुके बडे-बडे वृक्षोकी भुजाओवाला और  
 स्वभावसे ही परधरणी शिलाओवाली चौटी और पक्की छातोवाला हिमालय ही है ॥५१॥ हिमा-  
 लयने बड़ी विधिये साथ उन ऋषियोकी पूजा की और उन सत्कर्म करनेवाले ऋषियोको मार्ग  
 दिखावा हुआ उन्हे अपने साथ रनिवास मे लेगया ॥५२॥ हिमालयने इन ऋषियोकी ब्रँतके  
 आशतोपर ब्रँडा दिया और फिर हाथ जोडकर उनसे कहा ॥५३॥ आपना इस प्रकार अचानक  
 याना मुझे ऐसा लग रहा है जैसे बिना वादलोने वर्षा हो गई हो या बिना फूलने आए ही  
 फल निकल आया हो ॥५४॥ मैं अपनेको साथ ऐसा समझ रहा हूँ यगो मुझ भूषको  
 ज्ञान मिल गया हो, सोढेले योग बन गया हूँ और पृथ्वीपर रहते हुए भी स्वर्गमे नड गया

अथ प्रभृति भूतानामभिगम्योऽस्मि शुद्धये ।  
 पदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते ॥५६॥  
 अथैमि भूतमात्मनं द्रयेनैव द्विजोचमाः ।  
 मूर्ध्नि गङ्गाप्रपातेन घौतपादाम्भसा च वः ॥५७॥  
 जङ्गमं प्रैष्यभावे वः स्थावरं चरणाङ्कितम् ।  
 विभक्तानुग्रहं मन्ये द्विरूपमपि मे वपुः ॥५८॥  
 भवत्संभावनोत्थाय परितोषाय मूर्च्छते ।  
 अपि व्याप्तदिगन्तानि नाङ्गानि प्रभवन्ति मे ॥५९॥  
 न केवलं दरीसंस्थं मास्वतां दर्शनेन वः ।  
 अन्तर्गतमपास्तं मे रजसोऽपि परं तमः ॥६०॥  
 कर्तव्यं वो न पश्यामि स्याच्चेत्किं नोपपद्यते ।  
 मन्ये मत्पात्रनाथैव प्रस्वानं भवतामिह ॥६१॥  
 तथापि तावत्कस्मिन्निदाज्ञां मे दातुमर्हथ ।  
 विनियोगप्रसादा हि किङ्कराः प्रभविष्णुषु ॥६२॥ -  
 एते वयममी दाराः कन्येयं कुलजीवितम् ।  
 श्रुत्वा येनात्र वः कार्यमनास्था बालवस्तुषु ॥६३॥

॥५५॥ मैं धावते अपनेको ऐसा बड़ा भारी तीर्थ समझने लगा हूँ जहाँ प्राते ही लोग  
 घुब हो जायें, क्योंकि सज्जन लोग जहाँ आकर बस जायें वही तीर्थ ही जाता है ॥५६॥  
 हे ब्रह्मन्दिपियो ! मैं अपने को दो प्रकार से पवित्र मानता हूँ, एक तो तिरस्पर पगाजीकी धारा  
 गिरनेसे, दूसरे प्राप लोगोंके चरखकी घोबन वा लेनेसे ॥५७॥ हे मुनियो ! मुझे ऐसा  
 जान पड़ता है कि आप लोगोंके मेरे चल और बचल दोनों शरीरों पर प्रलय-प्रलय कृपा की  
 है क्योंकि मेरे चल शरीरकी तो आपने अपना दास बना लिया है और मेरे चल शरीरपर आपने  
 अपने पवित्र चरण परे हैं ॥५८॥ आप लोगोंके यहाँ आकर जो कृपा की है उससे मुझे इतनी  
 प्रसन्नता हो रही है कि दूर दूर तक फंसे हुए अपने इन बड़े अज्ञोंमें भी मैं भूला नहीं सम-  
 रहा हूँ ॥५९॥ आप-जैसे तेजस्वियोंके दर्शनसे केवल मेरी मुक्ताप्रोक्षा ही धँसेरा नहीं  
 भिटा वरगु मेरे हृदयके अज्ञानका अंधेरा भी जाता रहा ॥६०॥ मेरी समझमें आप किसी  
 कामसे तो परां आए नहीं होभे । क्योंकि आपमें तो स्वयं इतनी शक्ति है कि किसी भी  
 कामको पावकी बातमें पूरा करलें । इसलिये मैं तो यही समझता हूँ कि भैरव मुझको  
 पवित्र करनेके लिये ही आप लोगोंके यहाँ आनेवा कष्ट किया है ॥६१॥ पर जब आप  
 प्रा ही गये हैं तो मेरे लिए कोई सेवा बतानिए । स्वामीको सभी प्रसन्न समझता चाहिए जब  
 वे सेवकको कुछ काम करनेको कह ॥६२॥ यहाँ आपकी आज्ञानु पावन करनेके लिये

इत्युचिर्वोस्तमेवार्थगुहामुखविसर्पिणा ।  
 द्विरिव प्रतिशन्देन व्याजहार हिमालयः ॥६४॥  
 अथाङ्गिरसमग्रप्यमुदाहरणवस्तुषु ।  
 ऋषयो नोदयामासुः प्रत्युवाच स भूषणम् ॥६५॥  
 उपपन्नमिदं सर्वमतः परमपि त्वयि ।  
 मनसः शिखराणां च सदृशी ते समुन्नतिः ॥६६॥  
 स्याने त्वां स्थावरात्मानं विष्णुमाहुस्तथा हि ते ।  
 धराधराणां भूतानां कुचिराधारतां मतः ॥६७॥  
 गामधास्यत्कथं नामो मृशालमृदुभिः फलैः ।  
 आरसातलमूलाचमवालम्बिभ्यथा न चेत् ॥६८॥  
 अच्छिन्नमालसंतानाः समुद्रोर्म्यनिगारिताः ।  
 पुनन्ति लोकान्पुण्यत्वात्कीर्तयः सरितश्च ते ॥६९॥  
 यथैव श्लाघ्यते गङ्गा पादेन परमेष्ठिनः ।  
 प्रभवेण द्वितीयेन तथैवोच्छिरसा त्वया ॥७०॥

मैं आपसे प्राप्ति लक्ष हो है, वे मेरी जियां हैं और यह मेरे घर भरकी प्यारी कन्या है ।  
 इनमेसे जिससे भी आपका नाम पने उसे प्राप्ति दीजिए, क्योंकि धन-सम्पत्ति आदि जिसकी  
 माहरी वस्तुएं हैं वे तो आपकी सेवाने लिये तुच्छ हैं इसलिये उनका नाम लेते हुए भी  
 मुझे हितक ही रहती है ॥६३॥ हिमालयके यह बुकनेपर गुणाप्रोपे से जो गूब निकली यह ऐसी  
 जान पड़ती थी मानी हिमालयके अपनी बात फिरसे दुहरा भी हो ॥६४॥ तब ऋषियोने  
 महादेवजीका संवेध हिमालयके गहनेके लिये अपनेमेसे उन अगिरा ऋषिको उकराया औ  
 बालभीत करनेके बड़े शत्रु मे । तब अगिरा ऋषिने हिमालयसे कहा ॥६५॥ हे हिमालय !  
 जो वृक्ष आपने कहा है यह और उससे भी अधिक जो कुछ कहा जाय, सब आपको शोभा  
 देता है । क्योंकि आपका मन वेला ही जैसा है जैसी आपकी कोटियां ॥६६॥ आपको जो सब  
 भयल पदार्थों का विष्णु कहा जाता है, वह जीक ही है, क्योंकि धर और अथर सब आपको  
 गोदते ही सहारा पाते है, जितने रत्न है वे सब आपको गोदमे होते हैं और आपको ही  
 गोदसे निकली हुई नदियोके आर्वावर्त भी रहते है ॥६७॥ यदि आप पातालके नीचेतक  
 पृथ्वीकी अपने योभते न दबाए रहे तो बताइए अपना नाम अपने लयलकी मालके समान कोमल  
 फलोंपर पुष्पोंको कैसे संभालते ॥६८॥ जैसे आपने यहूषि निकलती हुई, निरन्तर बहुतो हुई  
 और समुद्रकी लहरसे भी टकड़र लेनेवाली निर्भल नदियां अपनी पवित्रतासे सारे उदारको पवित्र  
 करती है वैसे ही आपको भी सब लोकोंको पवित्र करती है ॥६९॥ जैसे गंगाकी विष्णुके,  
 परशोसे निवतनर अपनेको बहुत बड़ा मानती है उती प्रकार आपके शिखरसे निवतनर

तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च व्यापको महिमा हरेः ।  
 त्रिविक्रमोद्यतस्यासीत्स तु स्वाभाविकस्तव ॥७१॥  
 यज्ञभागभृजां मध्ये पदमातस्थुपा त्वया ।  
 उच्चैर्हिरण्यमयं शृङ्गं मुमेरोर्वितथीकृतम् ॥७२॥  
 काठिन्यं स्थावरे काये भयता सर्वमर्पितम् ।  
 इदं तु ते भक्तिनम्रं सतामाराधनं वपुः ॥७३॥  
 तदागमनकार्यं नः शृणु कार्यं तवैव तत् ।  
 श्रेयसामुपदेशाच्च वयमप्रांशुभागिनः ॥७४॥  
 अग्निमादि गुणोपेतमंसृष्टपुरुषान्तरम् ।  
 शब्दमीश्वर इत्युच्चैः सार्द्धचन्द्रं विभक्तिं यः ॥७५॥  
 कलितान्योन्यसामर्थ्यैः पृथिव्यादिभिरात्मभिः ।  
 येनेदं त्रियते विश्वं धुर्यैर्गनिमिवाध्वनि ॥७६॥  
 योगिनो यं विचिन्वन्ति चेशाम्यन्तरवर्तिनम् ।  
 अनाद्युत्तिमयं यस्य पदमाहुर्मनीषिणः ॥७७॥  
 स ते दुहितरं सादात्साक्षी विश्वस्य कर्मणाम् ।  
 धृणुते वरदः शंशुरस्मत्संक्रामितैः पदैः ॥७८॥

पहलेमें भी ये धरणी बड़ाई ही समझती है ॥७०॥ भववान् विष्णुकी महिमा सत्कारमें तब  
 कैसी जब उन्हीन ऊपर, नीचे और तिरछे वर रखकर वागन धरतर पररण करने तीन लोकोकी  
 माप डाला, पर धरणी महिमा तो पहलेसे ही तीनो लोकोमें कैसी हुई है ॥७१॥ यज्ञका भाग  
 पानेवाले देवताकोमें स्थान धरकर धरने सुमेरु पर्वतकी सुनहरी धोर ऊपर पोटिको भी मीथा  
 दिया ॥७२॥ धरने धरणी सारी बढोरता धरने धरन धरणीमें भर ली है । धरणा यह  
 धर धरिभ भक्तिमें ऐसा मुका हुआ है कि धरन लोग आ-धरन्त इतनी पूजा दिया करते हैं  
 ॥७३॥ इनलिमें हम धरणी धरनेका कारण बताते हैं और यह काम ऐसा है जिसमें धरणी  
 ही बनाई है और यह अनो वाप धरणी समझाने बहान हम लोकोमें भी बोडी ली बड़ाई मिस  
 जायगी ॥७४॥ धर वो जानने ही होंगे कि धरिना धरि धरणी विद्विपोने जो धरामी हैं, जिन्हे  
 धरकर धरणी कोई इतर बहना नही सकता, जिनके माधेपर धरणा धरमा बना हुआ है, जो  
 धरने धरणी-जब धरि उन धरणी धरणीसे धरणीकी जिसपर रहते हैं जो एक धरणीकी धरि  
 धरनेवाले धर सत्कारको इस प्रकार दोहरे धरनेवाले हैं जैसे धरि धरणीमें धरणी लोकोमें  
 रहने हैं, जिन्हे धरणी लोग धरणी धरणीमें धरणी बंधा हुआ धरि है और धरनेके लिये धरणीका  
 बहना है कि ये धरणी-धरणीमें धरणीके बाहर ही है, जहाँ धरणी धरने धरणीको धरणीके  
 धर धर धरनेके धरणी-नीचे हम लोकोमें धरणीके धरणीमें धरणी धरने धरणीके धरणीके

तमर्थमिव भारत्या सुतया योक्तुमर्हसि ।  
 अशौन्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता ॥७६॥  
 यावन्त्येतानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।  
 मातरं कल्पयन्त्वेनामीशो हि जगतः पिता ॥८०॥  
 प्रहस्य शितिकण्ठाय विबुधास्तदनन्तरम् ।  
 चरशौ रक्षयन्त्वस्याश्चूडामशिमरीचिभिः ॥८१॥  
 उमा बधूर्भवान्दाता याचितार इमे वयम् ।  
 वरः शंभुरलं ह्येष त्वत्कुलोद्भूतये विधिः ॥८२॥  
 अस्तोतुः स्तूयमानस्य बन्धस्यानन्यवन्दिनः ।  
 सुतासंबन्धविधिना भव विश्वगुरोर्गुरुः ॥८३॥  
 एष वादिनि देवर्षो पार्ष्वे पितुरधोमुखी ।  
 लीलाकमलपत्राणि अणयामास पार्वती ॥८४॥  
 शैलः संपूर्णकामोऽपि मेनामुत्सुमुदैवत ।  
 प्रापेद्य गृहिणीनेत्राः कन्यार्थेषु कुहुम्बिनः ॥८५॥  
 मेने मेनापि तत्सर्वं पत्युः फार्यमभीप्सितम् ।  
 भवन्त्यव्यभिचारियो भर्तुरिष्टे पतिव्रताः ॥८६॥

पृथ्वी पार्वती मांभी है ॥७५-७६॥ इतलिये आप खिनजीते अपनी पुत्रीका बँसे ही बहुत सम्बन्ध कर दीजिए जैसे कालीका भर्षसे हो गया है, क्योंकि अच्छे पतिसे कन्याका विवाह हो जाय तो पिताकी चिन्ता मिट जाती है ॥७६॥ आप यह सम्बन्ध लीजिए कि महादेवजी सत्कारके पिता हैं इतलिये पार्वतीजी भी सत्कारके घर और अचर सब प्राणियोंकी माता बन पार्वती और फिर इतनी पूजनीय हो जायेंगी कि देवता जोप महादेवजीको प्रणाम करके अपने घरपर घरे हुए शक्तिशेनी किरणोंसे पार्वतीजीके ही चरण रँगा करेंगे ॥८०-८१॥ और समीप तो देखते कि उमा हो बहू, आप हो कन्या दान करनेवाले, हम ही विवाहके लिये कहनेवाले और महादेवजी हो वर । बताओ, सुन्हारे कुसके लिये इतले धरकर और मौन-सी प्रतिष्ठाकी बात होगी ॥८२॥ और फिर, उनसे अपनी पुत्रीका विवाह करते आप उन महादेवजीके भी बने बन जाइए जो स्वयं किसी की स्तुति नहीं करते पर सत्कार जिनकी स्तुति करता है और जो स्वयं किसीकी कन्दना नहीं करते पर सत्कार जिनकी कन्दना करता है ॥८३॥ देखिए लोग जिस समय यह कह रहे थे उस समय पार्वतीजी अपने पिताके पाठ नीचा रूँह किए खिलौनेके फलके पत्ते बँटी गिन रही थी ॥८४॥ यद्यपि हिमात्म्य स्वयं तो इससे बहुतत थे फिर भी उन्होंने इसका उत्तर पाने के लिये मेनाकी ओर देखा क्योंकि जब कभी कन्याके सम्बन्धकी कोई बात होती है तो गृहस्थ लोग अपनी खिसे ही सम्पत्ति लिया करते हैं ॥८५॥ मेनाने भी अपने



इदमत्रोत्तरं न्याग्र्यमिति बुद्ध्या विमृश्य सः ।  
 आददे वचसामन्ते मङ्गलालङ्कृतं सुताम् ॥८७॥  
 एहि विश्वात्मने वत्से भिक्षासि परिकल्पता ।  
 अर्थिनो मुनयः प्राप्तं गृहमेधिफलं मया ॥८८॥  
 एतावदुक्त्वा तनयामृषीनाह महीधरः ।  
 इयं नमसि वः सर्वासिलोचनवधूरिति ॥८९॥  
 ईप्सितार्थक्रियोदारं तेऽभिनन्द्य गिरैर्वचः ।  
 आशीर्षिरेधयामासुः पुरःपाकामिरम्बिकाम् ॥९०॥  
 तां प्रणामादरस्रस्तजाम्बूनदवतंसकाम् ।  
 अङ्गमारोपयामास लज्जमानामरुन्धती ॥९१॥  
 तन्मातरं चाश्रुमुखीं दुहितृस्नेहनिक्लवाम् ।  
 वरस्पानन्यपूर्वस्य निशोकामकरोद्गुणैः ॥९२॥  
 वैवाहिकीं तिथिं पृष्टास्तत्त्वयं हरबन्धुना ।  
 ते अग्रहार्ध्वमाख्याय चैरुक्षीरपरिग्रहाः ॥९३॥  
 ते हिमालयमामन्व्य पुनः प्राप्य च शूलिनम् ।  
 सिद्धं चास्मै निवेद्यार्थं तद्विसृष्टाः समुद्रपुः ॥९४॥

पतिनी हीं मे हीं मिमावर भव धातें पामती क्योकि जो सती जिया हुषा भरती ॥  
 ये निरा भी मातमे पतिमे बाहर नही होती ॥८६॥ ऋषियोसे यह कुम्भेपर हिमालयने  
 गुन्दर नावलिक वस्त्रोमे सत्री हुई अपनी बन्धारी सुताया धोर कहा-यही प्राप्ती वत्से !  
 देगी, घट-घटमे रमनेवासे तियत्रीन मुम्भे कुम्भे माया है भोर यह मिमा लेनेके लिये ये छतऋषि  
 सोम धार हुम् हीं सवमुच प्राय मुम्भे गृहस्थ होनेका सज्जा कन निरा है कि ऐसे मागनेवाले  
 मेरे डारवर पपारे ॥८७-८८॥ अपनी पुत्रोसे इनाता कहकर ये ऋषियोसे बोले—  
 यह महादेवकी वती धापकी प्रणाम करती है ॥८९॥ अपना बाग पूरा हुषा देखकर  
 सतऋषियोसे हिमालयकी प्रणाम की । उन्होने धम्बिवाको ऐसे प्राप्तीवादे दिए जो तत्काल पत्त  
 दोवाले ही ॥९०॥ ऋषियोको प्रणाम करनेके लिए पार्वतीजी ज्योंही सजाली हुई मुर्वा कि उनके  
 बालोसे सोनेका कुम्भ तियाव गया धोर धरन्पत्रीने उम्भे घट उठाकर अपनी गोदमे बँठा  
 निपा ॥९१॥ मैना धरती पुत्रोके स्नेहमे इतनी धधीर हो गई कि उनकी धालें खटखटा धारे पर  
 धरन्पत्रीने उम्भे धनोने करके पुण्य मुना मुकावर क्या पीरन वैषया ॥९२॥ विवाहकी तिथि  
 पूरे जानेपर सतऋषियो वताया कि तीन दिन पीछे विवाह करना टोक रोगा यह कहकर ये सत  
 ऋषि पहि निरा हो गए । ॥९३॥ हिमालयमे बिदा होकर उन्होने महादेवकी जाकर यताया कि

पशुपतिरपि तान्यहानि कृच्छ्राद्-

गमयदद्रिसुतासमागमोत्कः ।

कमपरमवशं न विप्रदुर्गु

विभ्रमपि तं यदमी स्पृशन्ति भावाः ॥६५॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये

उत्ताप्रदानो नाम पष्ठ. सर्ग ॥



सब डीक हो गया है और फिर उनसे आशा लेकर वे भावाव्यये चक गए ॥६५॥ पार्वतीजीसे मिसनेके लिये महादेवजी चलने उतावले हो गए कि सोन दिग भी उन्होंने यकी यकी कठिनाईसे काटे । अताएए जब महादेवजी जैसोकी प्रेममें यह ख्या हो जाती हो तब भला दूसरे लोग अपने मनको कैसे संभाल सकते हैं ॥६५॥

महाकवि श्रीकालिदासके रचे हुए कुमारसम्भय नामके महाकाव्यमे पार्वतीजीकी रंगनी नायका छठा सर्ग समाप्त हुआ ।



## ॥ सममः सर्गः ॥

अथौपधीनामधिपस्य वृद्धौ तिथौ च जामित्रगुणान्वितायाम् ।  
 समेतबन्धुहिंसवान्सुताया विवाहदीक्षाविधिमन्वतिष्ठत् ॥ १ ॥  
 वैवाहिकैः कौतुकसंविधानैर्गृहे गृहे व्यग्रपुरन्ध्रवर्गम् ।  
 आसीत्पुरं सानुमतोऽनुरागादन्तःपुरं चैककूलोपमेयम् ॥ २ ॥  
 संतानकाकीर्णमहापथं तघीनांशुकैः कल्पितकेतुमालम् ।  
 भासोज्ज्वलत्काञ्चनतोरणानां स्थानान्तरं स्वर्गं इवाब्रभासे ॥ ३ ॥  
 एकैव सत्यामपि पुत्रपहृक्तौ चिरस्य इष्टेव मृतोत्थितेव ।  
 आसन्नपाणिग्रहणेति पित्रोरुमा विशेषोऽङ्गवसितं बभूव ॥ ४ ॥  
 अङ्गाद्यपावङ्गमुदीरिताशीः सा मण्डनान्मण्डनमन्वभुङ्क्त ।  
 संबन्धिभिन्नोऽपि गिरेः कुलस्य स्नेहस्तदेकायतनं जगाय ॥ ५ ॥  
 मैत्रे मुहूर्ते शशलाञ्छनेन योगं गतासूचरफल्गुनीषु ।  
 तस्याः शरीरे प्रतिकर्म चक्रुर्बन्धुस्त्रियो याः पतिपुत्रवत्यः ॥ ६ ॥  
 सा गौरसिद्धार्थनिवेशवद्भिर्दूर्वाप्रघालैः प्रतिभिन्नशोभम् ।  
 निर्नाभिं कौशेयमुपात्तवागमभ्यङ्गनेपथ्यमलञ्चकार ॥ ७ ॥

## सातर्था सर्ग

तीन दिन पीछे हिमालयने सजते रातवें घरमे पडी हुई दुःख पदाकी शुभ तिथियो प्रपने भाई-  
 बन्धुप्री को बुलाकर शकरजीने साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया ॥१॥ वहाँके सब लोग  
 हियालपसे ऐसा प्रेम करते थे कि उस नगरके घर-घरमे सब स्त्रियाँ बढी भूमधापके साथ विवाहका  
 जसब मना रही थी । घर घोर बाहरके तीर्थ ऐसे हितमितकर काम कर रहे थे मानो सब एक  
 ही कुलके ही ॥२॥ बडी-बडी सठकोबर कल्प वृक्षके फूल बिछे हुए थे, सोनो घोर रेशमी ऊँचियाँ  
 पाताने टँगी हुई थी घोर डार-डार पर सोनेके बन्दनवार बंधे हुए थे । इन सबकी जमपसे जगम-  
 गाता हुआ वह नगर ऐसा जान पड़ता था मानो स्वर्ग ही उतर कर वहाँ जता गया हो ॥३॥  
 यद्यपि हिमालयके मद्रुतसे पुत्र थे फिर भी उस समय हिमालय घोर भेवा, दोनों को पार्वतीजी ऐसी  
 प्राणसे बहनार प्यारी लग रही थी मानो बहुत दिनोंपर मिली हो या यभी जी बर उठी हो क्योंकि  
 विवाह हो जाने पर वे अभी बहसि चली जाने बाघी थी ॥४॥ सब दुःखिबयोने पार्वतीजीको घारी-  
 घारीसे अपनी-अपनी गोदी मे बँटाकर आशीर्वाद दिया घोर एक-से-एक बढकर गहने दिए । ऐसा  
 जान पड़ता था मानो हिमालयने सब दुःखिबयोका स्नेह पार्वतीजीमे ही धार कर भर गया हो ॥५॥  
 सूर्य निरतनके तीन मुहूर्त पीछे उत्तरा फल्गुनी नक्षत्रमे कुटुम्बकी शुक्लानि घोर पुत्रवती स्त्रियाँ  
 पार्वतीजी का तिहार करने लगी ॥६॥ पहले दूबके मकुर्से घोर सरसोपि बानोंसे उनका तिहार  
 किया गया फिर उन्हे नागितक ऊँची रेशमी साटी पहना कर उपमे एष बाण रीत दिया गया ।

बभौ च संपर्कशुपेत्य बाला नवेव दीक्षाविधिसायकेन ।  
 करेण भानोर्बहुलावसाने संधुक्ष्यमाशेव शशाङ्करेखा ॥८॥  
 तां लोभ्रकन्केन हृताङ्गर्तैलामारयानकालेयकृताङ्गराम् ।  
 वासो वसानामभियेकयोर्म्यं नार्यश्चतुष्कामिमुखं व्यनैषुः ॥९॥  
 विन्यस्तवैर्दृश्यशिलातलेऽस्मिन्नावद्धमुक्ताफलमक्तिचित्रे ।  
 ध्यावर्जिताष्टापदकुम्भतोयैः सतूर्यमेनां स्नपयांश्चभुवुः ॥१०॥  
 सा मङ्गलस्नानविशुद्धभात्री शृहीतपत्युद्गमनीयवस्त्रा ।  
 निर्घत्तपर्जन्यजलाभियेका प्रफुल्लकाशा वसुधेव रेजे ॥११॥  
 तस्मात्प्रदेशाच्च वितानवन्तं युक्तं मण्डिस्तम्भचतुष्टयेन ।  
 पतिप्रताभिः परिगृह्य निन्ये क्लृप्तासनं कौतुकवेदिमध्यम् ॥१२॥  
 तां प्राहमुखीं तत्र निवेश्य तन्वीं चर्षं स्पलम्बन्त पुरोनिपण्णाः ।  
 भूतार्थशोभाह्वियमाणनेत्राः प्रसाधने सन्निहितेऽपि नार्यः ॥१३॥  
 धूपोष्मणा त्पांजितमार्द्रभावं फेरान्तमन्तःकुसुमं तदीयम् ।  
 पर्याक्षिपत्काचिदुदारघन्धं दूर्वावता पाण्डुमधुकदम्बा ॥१४॥  
 विन्यस्तशुक्लागुरु चक्रुरङ्गं गोरोचनापत्रविभक्तमस्याः ।  
 सा चक्रवाकाङ्कितसैकतापास्त्रिस्रोतसः कान्तिमतीत्य तस्थौ ॥१५॥

इस प्रकार शैल सवाकर विंगार करनेकी राजावट पूरी हो गई ॥८॥ इस नवे विवाह का बाखु शमरने  
 लौचकर पार्वतीजी ऐसे चमकने लगी जैते युक्त पक्षमे सूर्यकी किरण पाकर चन्द्रमा चमकने लगता है  
 ॥९॥ यह सुहागिन खिमेने उनके शरीरपर बने हुए तेलकी लीयकी बुकनीसे सुलाया और कुछ-  
 कुछ घोसा गुनगिषत लेफ निबर उनका शरीर रंगा । सब स्नान करनेका कपडा पहनाकर वे उठे  
 चौकीर स्नानपरमें लिका से गई ॥९॥ उय स्नानपरमे नीलमखिणी एक सुन्दर चौकी बिछी हुई थी  
 और चारों ओर रंग विरगी मौतियोकी माला लगी हुई थी उस चौकीपर उन खिदोने जनाकी वैद्या  
 और गावे-जजाते हुए सोनेके बडोके जलसे पार्वतीजीको नहला दिया ॥१०॥ भगत स्नान करनेसे  
 पार्वतीजीका शरीर प्रत्य-त निर्मल हो गया और उन्होंने विवाहके कक्ष पहन लिए । उस समय वे ऐसे  
 लगने लगी भागो गरजते हुए वादलके जलसे धुली हुई और कौषके फूलोसे भरी हुई परती घोभा दे  
 रही हो ॥११॥ यो नहला-धुनाकर वे सुहागिनी पतिप्रताएँ पार्वतीजीको सहारा देकर उस एवान्त  
 भवनने से गई जहाँ मण्डिपोके चणोपर चंदबा लना हुआ था, बीचमे बसल-नेदी बनी हुई थी और  
 उसपर राजा हुआ आशुन विद्या हुआ था ॥१२॥ वहाँ उन्होंने पार्वतीजीको पूरवकी ओर मुँह  
 करके बंठा दिया । विंगारकी सब वस्तुएँ पासमें होनेपर भी वे सब पार्वतीजीकी स्वामाधिक  
 गोभापर ही इतनी लट्टू हो गई कि कुछ देरतक तो वे मुखवुष मूलकर उनको ओर एकटक निहारती  
 हुई बंठी रही ॥१३॥ फिर, खिदोने तो चयर-चन्दनके घुएँसे उनके बाल सुलाकर कालोमें फूल  
 पूंसे और फिर हवमे पिरोई हुई पीसे महुएके फूलोकी माला उनके जूबेमे लपेटो ॥१४॥ खिदोने

## ॥ सप्तमः सर्गः ॥

अथीपधीनामाधिपस्य वृद्धौ त्रिथौ च जामित्रगुणान्वितायाम् ।  
 समेतत्रन्धुर्हिभवान्सुताया विवाहदीक्षाविधिमन्वतिष्ठत् ॥ १ ॥  
 वैवाहिकैः कौतुकसंविधानैर्गृहे गृहे व्यग्रपुरन्ध्रवर्गम् ।  
 आसीत्पुरं सानुमतोऽनुरागादन्तःपुरं चैककुलोपमेयम् ॥ २ ॥  
 संतानकाकीर्णमहापथं तचीनांशुकैः कल्पितकेतुमाहम् ।  
 भासोज्ज्वलत्काञ्चनसोरणानां स्थानान्तरं स्वर्गं इवावभासे ॥ ३ ॥  
 एकैव सत्यामपि पुत्रपद्वक्तौ चिरस्य दृष्टेव मृतोत्थितेव ।  
 आसन्नपाणिग्रह्येति पित्रोरुमा विशेषोच्छ्वसितं बभूव ॥ ४ ॥  
 अद्वायपत्वद्दुसुदरिताशीः सा मण्डनान्मण्डनमन्थभृङ्क्त ।  
 संवन्धिभिन्नोऽपि गिरेः कुलस्य स्नेहस्तदेकायतनं जगाय ॥ ५ ॥  
 मैत्रे सुहृते शशलाञ्छनेन योगं गतासूचरकस्त्रुनीपु ।  
 तस्याः शरीरे प्रतिकर्म चक्रुर्वन्धुस्त्रियो याः पतिपुत्रवत्यः ॥ ६ ॥  
 सा गौरसिद्धार्थनिवेशवज्रिर्दुर्वाप्रियालैः प्रतिभिन्नशोभम् ।  
 निनीभि कौशेयमुपात्तवाणमभ्यङ्गनेपथ्यमल्लञ्चकार ॥ ७ ॥

## सातव्यां सर्तं

तीन दिन पीछे हिमालयने लम्बे सातवें पारने पढी हुई बुद्ध पदकी घुम विधियो मपने भाई-  
 मन्धुमो को बुलाकर शहरजीवे सप्तमपनी पुत्रीका विवाह कर दिया ॥१॥ वहाँके सब लोग  
 हिमालयके ऐसा प्रेय करते थे कि उस नगरके घर-घरके सब स्त्रियाँ बड़ी धूमधामके साथ विवाहका  
 उत्सव मना रही थी । पर घोर बाहरके लोग ऐसे हितवित्तकर नाम कर रहे थे मानो तब एक  
 ही बुलके हो ॥२॥ बड़ी-बड़ी सड़कोपर बन्द-बूतके फूल बिछे हुए थे, दोनों और रेशमी ऊँटियाँ  
 पालोके टेंगी हुई थी और झर-झर कर सोनेके बन्दनदार बँचे हुए थे । इन सबकी धमधमे जपन-  
 पाता हुआ वह नगर ऐसा जान पड़ता था मानो स्वर्ग ही उतर कर वहाँ पड़ा प्राया हो ॥३॥  
 यद्यपि हिमालयके बहुतने पुत्र थे फिर भी उस समय हिमालय और मेवा दोनों को पार्वतीजी ऐसी  
 प्राणुते चक्रुर्वन्धुस्त्रियो मग रहो थी मानो बहुत दिनोंपर मिली हो या अभी ली कर उठी हो क्योंकि  
 विवाह हो जाने पर वे अभी नहीं पत्नी जाने बानी थी ॥४॥ सप्त बुद्धिबोधने पार्वतीजीको बाटी-  
 धारीके मपनी-मपनी गोदी में बँठाकर आनीबंदि दिया और ध्व-मे-ध्व बज्जर करने दिए । ऐसा  
 जान पड़ता था मानो हिमालयके सप्त बुद्धिबोधना स्नेह पार्वतीजीमें ही धारण भर गया हो ॥५॥  
 सूर्य निकलनेके तीन मूर्तमें पीछे उत्तरा पात्सुनी नक्षत्रने बुद्धिबोधी मुहागिन और पुत्रवती स्त्रियाँ  
 पार्वतीजी का मियार करते सभी ॥६॥ पहले बूबके अक्षुरों और मरुतोंके दानोंमें उनका मियार  
 दिया गया फिर उन्हें नाभिलक ऊँची रेशमी सादी पहना कर उसमें एक बाणु धोता दिया गया ।

वभौ च संपर्कमुपेत्य गाला नवेव दीक्षाविधिसायकेन ।  
करेण भानोर्बहुलावसाने संधुत्त्वमाणेव शशाङ्कुरेखा ॥८॥  
तां लोभ्रकन्केन हृताङ्गितैलामारयानकालेयकृताङ्गरागाम् ।  
वासो वसानामभिपेकयोग्यं नार्यश्चतुष्कामिमुखं व्यनैपुः ॥९॥  
विन्यस्तवैदूर्यशिलातलेऽस्मिन्नावद्भुक्ताफलभक्तिचित्रे ।  
ध्यावर्जिताष्टापदकुम्भतोयैः सतूर्पमेनां स्नपयांबभूवुः ॥१०॥  
सा मङ्गलस्तानविशुद्धगात्री गृहीत्वपस्युद्गमनीयवस्त्रा ।  
निर्वचपर्जन्यजलाभिपेका प्रफुल्लकाशा वसुधेव रजे ॥११॥  
तस्मारप्रदेशाच्च वितानवन्तं युक्तं मणिस्तम्भचतुष्टयेन ।  
पतिप्रताभिः परिगृह्य निन्ये क्लृप्तासनं कौतुकवेदिमध्यम् ॥१२॥  
तां प्राङ्मुखीं तत्र निधेरथ तन्वीं चर्षं व्यलम्बन्त पुरोनिपत्तणाः ।  
भृतार्थशोभाह्वियमाखनेत्राः प्रसाधने सन्निहितेऽपि नार्यः ॥१३॥  
धूपोष्मणा त्याजितमार्द्रभावं केशान्तमन्तःकुसुमं तदीयम् ।  
पर्याधिपत्काचिद्दुदारबन्धं दूर्वावता पाण्डुमधूकदाम्ना ॥१४॥  
विन्यस्तशुक्लागुरु चक्रुरङ्गं गोरोचनापत्रविभक्तमस्याः ।  
सा चक्रवाकाङ्कितसैकतायास्त्रिस्रोतसः कान्तिमतीत्य तस्थौ ॥१५॥

इस प्रकार तेल लगाकर सिंघार करनेकी सजावट पूरी हो गई ॥८॥ इस नये विवाह का बाण कगरमें लोतकर पार्वतीजी ऐंसे चमकने लगी जैसे सुवल् पथमे सूर्यकी किरण परकर परद्रमा चमकने लगता है ॥९॥ तब सुहागिन झिपोने उनके शरीरपर मते हुए तेलको सोषको बुरकीसे मुखाभा और कुछ-कुछ गीला धुगन्धित केव लेकर उनका शरीर रँधा । तब स्नान करनेका कपडा पहनाकर वे उभे चौकीपर स्नानघरमे लिका ले गई ॥१०॥ उस स्नानघरमे नीलमखिनी एव सुन्दर पीकी पिछी हुई थी और चारो ओर रत्न द्विरगी प्रीतिघोषी भासा सबी हुई थी उस चौकीपर उन झिपोने उपाको बँटाया और गाले-बजाते हुए सोषके पथके जलसे पार्वतीजीको महला दिया ॥१०॥ भगल स्नान करनेसे पार्वतीजीका शरीर ध्यायन्त निर्मल हो गया और उन्होंने विवाहमे वस्त्र पहन लिए । इस समय वे ऐंसे लगने लगी गानो गरबते हुए वादलोके जलसे धुती हुई और काँधके फूलोसे भरी हुई धरती घोभा दे रही हो ॥११॥ वो महला-मुलावर वे सुहागिनी पतिप्रताएँ पार्वतीजीको सहारा देकर उस एकान्त भवनमे ले गई जहाँ मणिवोके खम्भोपर चँबवा तना हुषा था, बीचमे मयल-वेडी वनी हुई थी और उसपर सजा हुआ धारान विद्या हुषा था ॥१२॥ जहाँ उन्होंने पार्वतीजीको पूरवकी ओर मुँह करके बँठा दिया । सिंघारकी सब वस्तुएँ पासमे होनेपर भी वे सब पार्वतीजीकी स्वभाविक घोभापर ही इतनी सट्टर हो गई कि कुछ देखकर वो वे सुगबुध भूलकर उनकी ओर एकटक निहारती हुई बँठी रही ॥१३॥ फिर, किसीने वो धगर-चन्दनके धुएँसे उनमे घाल मुखाकर दालोमे फूल गंधे और फिर दूबमे पिरोई हुई पोसे महएँके फूलोकी माला उनके जूधेमे सपेटो ॥१४॥ किसीने

लज्जद्विरेकं परिभूय पद्मं ममेघलेखं शशिनश्च विम्बम् ।  
 तदाननश्रीरत्नैः प्रसिद्धैश्चिच्छेद सादर्यकथाप्रसङ्गम् ॥१६॥  
 कर्णापिंतो लोभकृपायरूचे गोरोचनात्पेपनितान्तगीरे ।  
 तस्याः कपोले परमात्मलासाहबन्ध चर्त्तपि यवप्ररोहः ॥१७॥  
 रेखाविभक्तः सुविभक्तगात्र्याः किञ्चिन्मधुच्छिष्टविमृष्टरागः ।  
 कामप्यभिरुयां स्फुरितैरपुप्यदामन्त्रलापत्यफलोऽधरोष्ठः ॥१८॥  
 पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन स्पृशति मन्व्या परिहासपूर्वम् ।  
 सा रञ्जपित्वा चरणौ कृताशीमाल्येन तां निर्वचनं जघान ॥१९॥  
 तस्याः मुजातोत्पलपत्रकान्ते प्रमाधिकाभिर्नयने निरीक्ष्य ।  
 न चक्षुषोः कान्तिविशेषबुद्ध्या कालाञ्जनं मद्गलमित्युपात्तम् ॥२०॥  
 सा ममभङ्गिः ह्युसुमैर्लतेन ज्योतिर्भित्तयद्गिरिव त्रिपामा ।  
 सरिद्धिदृग्निष लीयमानंगमुच्यमानाभरणा चक्रासे ॥२१॥  
 आत्मानमालोम्य च शोभमानमादर्शयिन्ने भ्तिगितायताङ्गी ।  
 हरोपयाने त्वरिता नभून् श्रीणां प्रियालोकफलो हि येषः ॥२२॥

उजले प्रपरछे प्रभाया हृषा प्रगराम उनके दादीरार मता घोर फिर पायन्त सान गोरोचनते उजवा  
 गरीर धोता । उग समय पार्वतीजी दलभी मुन्दर मय रही थी कि उनके रूपने प्राये उजली पाटा-  
 मासी उन गंगाश्रीजी सोमा भी पौको पद गई दिनने घोर परकी बाजूने बनये घंटे हो ॥१६॥  
 भीरंति पिरा हृषा रगत घोर सादनने दुःखीमे निपटा हृषा बन्धना, कोई भी ऐसा न दियाई  
 दिया जो उनके चुपी हुई धोटीबाने मुगनी मुन्दरनाके प्राये ठहर गये ॥१६॥ उनके पानोर  
 लडवजे हुए नीके प्रदुर घोट सोपछे पुगे तथा गोरोचन लये हुए घोंरे-घोंरे गात हटा मुन्दर  
 लगे लगे कि गदकी मीति घरवग उनकी घोर गिती जाती थी ॥१७॥ मुदीन प्रगोसानी पार्वती-  
 श्रीका जो निताग घाट कारके घोटजे एवं रैनागे प्रमग हो गया था, दिनपर लगी हुई विपनाईने  
 उतरपर घोर भी लानी बजावर उगे मुन्दर बना दिता था घोर दिनकी मुन्दरना बस नमने ही  
 बानी थी पर घोट अब नमना था उन समयकी उदकी गीना बहो नहीं जा लकी ॥१८॥  
 पार्वतीजीके घरलाम जब लगी प्रगपर मगा चुकी तब उनका छिटोभी करते हुए पातीनाई दिया कि  
 प्रामान पट मुग इन पंसेने घना । गतिने फिरकी बदननाको चुप्पे । इमार पार्वतीजी मुँहे तो मुग  
 न सोभी पर एक मामा उग्रवर उजली जोपर लगीं नद हो थी ॥१९॥ गितार बनेवानी रीने  
 पार्वतीजीको नीचे रगत लकी दखे उगी घोर लकी लानी पोगोंने जो बजल समाना पर इगान्ये  
 गरीं कि प्रीनागे उभी लकीं । हृषा रैना घोंने दग्ग इगोपिने कि दल भी मगत गितारकी एक  
 लना थी ॥२०॥ रैने पुन न तार लकीं खरने भी गिन उठगे है का नैव तारे निजनेपर राग  
 प्रगपर मगने है का पंग रणदिव्य नैनाति का गोंने नजे मुन्दरकी लकी लकी है, बने  
 ही गीं नः, सोपिती घोर लोके मरि दग्ग फिर लनेपर व रंगीकीने म्माशक्ति मुन्दरना घोर  
 भी निगर उगी ॥२१॥ लगे हा गनीने करकी दग्गने देनाय पार्वतीजी भी उठ गई

अथाङ्गुलिभ्यां हरितालमात्रं माद्गल्यमादाय मनःशिलां च ।  
 कर्णाविनक्तामलदन्तपत्रं माता तदीयं मुखमुन्नमस्य ॥२३॥  
 उमास्तनोद्भेदमनु प्रवृद्धो मनोरथो यः प्रथमं बभूव ।  
 तमेव मेना दुहितुः कथंचिद्विवाहदीक्षातिलकं चकार ॥२४॥  
 पवनघ चास्त्राङ्गुलदृष्टिरस्याः स्थानान्तरे कल्पितगजिवेशम् ।  
 धाञ्चङ्गुलीभिः प्रतिसार्यमाणमूर्णामयं कौतुकहस्तयत्रम् ॥२५॥  
 क्षीरोदवेलेव सफेनपुञ्जा पर्याप्तचन्द्रेव शरस्त्रियामा ।  
 नयं नवद्यौमनिवासिनी सा भूयो वभौ दर्पणमादधाना ॥२६॥  
 तामर्चिताम्यः शुलदेवताम्यः शुलप्रतिष्ठां प्रणमस्य माता ।  
 अकारयत्कारयितव्यदक्षा क्रमेण पादग्रहणं सतीनाम् ॥२७॥  
 अत्रदिहितं प्रेम लभस्व पत्नुरिस्त्युच्यते तामिहमा स्म नन्ना ।  
 तथा तु तस्यार्द्धनारीरमाजा पथात्कृताः स्निग्धजनादिषोऽपि ॥२८॥  
 इच्छाविभूत्योरनुरूपमद्रिस्तस्याः कृती कृत्यमशेषपित्वा ।  
 सम्पः ममायां सुहृदास्थितायां तस्यां शृपाद्वागमनप्रतीक्षः ॥२९॥



तावद्भवस्यापि कुवेरशैले तत्पूर्वपाणिग्रहणानुरूपम् ।  
 प्रसाधनं मातृभिरादृताभिर्न्यस्तं पुरस्तात्पुरशासनस्य ॥३०॥  
 तद्गौरवान्मङ्गलमण्डनश्रीः सा पस्पृशे केवलमीश्वरेण ।  
 स एव वेपः परिणेतुरिष्टं भावान्तरं तस्य विभोः प्रपेदे ॥३१॥  
 बभूव भस्मैव सिताङ्गरागः कपालमेवामलशेखरश्रीः ।  
 उपान्तभागेषु च रोचनाङ्को गजाजिनस्यैव दुकूलभावः ॥३२॥  
 शङ्खान्तरद्योति विलोचनं यदन्तर्निविष्टामलपिङ्गतारम् ।  
 सराभिष्ययत्से हरितालमय्यास्तदेव जातं तिलकक्रियायाः ॥३३॥  
 यथाप्रदेशं भ्रुजगेश्वराणां करिष्यतामाभरणान्तरत्वम् ।  
 शरीरमात्रं विकृतिं प्रपेदे तथैव तस्थुः फणरत्नशोभाः ॥३४॥  
 दिवापि निष्कृतमरीचिभासा बाह्यादनाविष्कृतलाञ्छनेन ।  
 चन्द्रेण नित्यं प्रतिभिन्नमीलेश्चूडामखेः किं ग्रहस्य हरस्य ॥३५॥  
 इत्यद्भुतैकप्रभवः प्रभावात्प्रसिद्धनेपथ्यविधेर्विधाता ।  
 आत्मानमासन्नगणोपनीते खड्गे निपक्तप्रतिमं ददर्श ॥३६॥  
 स गोपतिं नन्दिभुजावलम्बी शार्दूलचर्मन्तरितोरुष्टम् ।  
 तद्भक्तिसंक्षिप्तवृद्धत्प्रमाणमारुह्य कैलासमिव प्रतस्थे ॥३७॥

विवाहमे काम माई दी ॥३०॥ जंगरजीने माताभोजना घावर करनेके लिये वे मङ्गल शृङ्गारकी  
 सामग्रियाँ ॥ भर दी, पहनी नहीं । उन्होंने अपनी शक्तिसे अपने ही वेपकी विवाहके योग्य बना  
 लिया ॥३१॥ अपने शरीरपर पुती हुई चिताकी भस्म उजला भगवत बन गई, कपाल ही गलेके  
 सुन्दर घामूपण बन गए और हाथीका चर्म ही ऐसा रेशमी वस्त्र बन गया जितने प्राचलोपर गौरी-  
 शनसे हंसके जोड़े छोटे हुए थे ॥३२॥ और उनके माथेमे पीली पुतलोवाला जो चमकता हुआ  
 मैत्र था वही हरितालका सुन्दर तिलक बन गया ॥३३॥ उनके शरीरसे चटुससे चंगोमे जो साँप  
 निपटे हुए थे वे भी उन-उन प्रयोगके घामूपण बन गए पर उनके पङ्खोपर जो मणि थे वे ज्यो के ल्यो  
 भगवते रह गए ॥३४॥ उनके मुकुटपर सदा रहनेवाला जो चन्द्रमा दिग्मे भी अपनी किरणों  
 चमकता था और जिसके छोटे होनेके कारण उसमेका कसक दिखाई नहीं देता था वह चन्द्रमा ही  
 उनका चूडामणि बन गया था इसलिये वे दूखरा चूडामणि लेकर चरते ही गया ॥३५॥ अपनी  
 शक्तिसे साराखे सभी सिंघारकी बनाने वाले और सदा प्रनोया ही नाम करनेवाले महादेवजी अपने  
 पाठ बँडे हुए गलके चरुग भँवावर उसमे अपनी मूँह देता ॥३६॥ फिर बन्दोने हाथका हाथ  
 लेकर वे अपने उस सम्ये पीले डोल-डोलवाले बँलकी पीठपर चढ़े जिसपर सिंहरूरी सात बिल्ली हुई थी  
 और जो ऐसा दिखाई पड़ता था मानो शररजीमे मणि रखनेके कारण बँतापाने ही अपने चढ़े रूपको  
 छोटा बना लिया ही ॥३७॥ अपने तेजोमदलकी चमकने सोरे-सोरे मुखवाली सुन्दर माताएँ जब

तं मातरो देवमनुयज्यन्त्यः स्ववाहनक्षोभचलावतंसाः ।  
 मुखैः प्रभामण्डलरेणुगौरैः पत्राकरं चक्रुरिवान्तर्रीधम् ॥३८॥  
 तासां च पश्चात्कल्कप्रभायां काली कपालामरणा चक्रासे ।  
 यत्नाकिनी नीलपयोदराबी दूरं पुरःचित्तशतहृदेव ॥३९॥  
 ततो मणैः शूलभृतः पुरोगैरुदीरितो मङ्गलतूर्यघोषः ।  
 विमानभृङ्गाण्यवगाहमानः शशंस सेनावसरं सुरेभ्यः ॥४०॥  
 उपाददे तस्य सहस्रररिमस्त्वष्ट्रा नवं निर्मितमासपत्रम् ।  
 स तद्बहुलादविदूरमौलिर्वभौ पतद्भङ्ग इवोत्तमाङ्गे ॥४१॥  
 मूर्ते च गङ्गायमुने तदानीं सचामरे देवमसेविपाताम् ।  
 समुद्रगारूपविपर्ययेऽपि सहस्रपाते इष सत्त्वमाये ॥४२॥  
 तमभ्यगच्छत्प्रथमो विधाता श्रीचत्सलक्ष्मा पुरुषश्च साक्षात् ।  
 जयेति वाचा महिमानमस्य संबर्द्धयन्तौ हविषेव बद्धिम् ॥४३॥  
 एकैव मूर्तिर्बिम्बिदे त्रिधा सा सामान्यमेपां प्रथमावरत्वम् ।  
 विष्णोर्हरस्तस्य हरिः कदाचिद्देषास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ ॥४४॥

अपने-अपने रथोंपर बैठकर पीछे पीछे चली तो रथोंके भद्रेण्डे उनके कर्णफूल हिलने लगे ।  
 उस समय उनके मूह धाकानने ऐसे लग रहे थे मानो किसी तापने बहुतसे कमल खिल गए हो ।  
 ॥३८॥ सोनैके समाक अमकनेवाली उन गाताओंके पीछे पीछे लगेसे लम्परीसे देह सजाए हुए  
 मद्रवालीगी या रही थी जो ऐसी लग रही थी मानी दगुलोसे भरी हुई और दूर तक चमकती  
 हुई बिजलीवाली नीले बादलों की घटा चली या रही हो ॥३९॥ महादेवजीके प्राण-प्राण  
 चलनेवाले गणोंने जो मङ्गल सुरही बजाई उसकी ध्वनिने देवताओंके विमानोंकी  
 छतरियोंके गूँथकर यह सूचना दी कि अब सबको अपने अपने काम में जुट जाना चाहिए  
 ॥४०॥ ऋत सुरोंने बिम्बकमकि हाथका बनाया हुआ मया छत्र लेकर विष्णुजी पर लया दिया ।  
 उस समय शिवजीके निरके प्राण अथवा लटकता हुआ कषटा ऐसा जान पड़ता था माओ  
 मगालीकी धारा ही गिर रही हो ॥४१॥ मया और यमुना भी अपना नदीका रूप छोड़कर  
 महादेवजीपर चँवर डुलाने लगी । वे चँवर ऐसे लगते थे मानो हस उठ रहे हो ॥४२॥  
 जैसे भागने भी डालनेसे उसकी सपट बड जाती है वैसे ही ब्रह्मा और विष्णु ने धाकर  
 उनकी अद्ययकार करके उनकी महिमा और भी बढ़ा दी ॥४३॥ सद्ये वात तो यह है कि  
 ब्रह्मा, विष्णु और महेश एव ही मूर्तिके तीन रूप हो गए हैं और ये सब बराबर भागसमे  
 एक दूसरेके छोटे-बड़े हुआ ही करते हैं । सभी शिवजी विष्णुसे बट जाते हैं, कभी यज्ञा इन  
 दोनोंसे यह बातें ही और सभी ये दोनों यज्ञाने बड जाते हैं ॥४४॥ वहाँ अथवा राजसी टाट  
 छोड़कर और विनीत वेला बनाकर इन्द्र प्रादि जोर पात्र जब उनके दर्शन करनेवाे आए तो

तं लोकपालाः पुरुहूतमुखाः श्रीलक्ष्मोत्सर्गविनीतवेपाः ।  
 दृष्टिप्रदाने कृतनन्दिसंज्ञास्तदर्शिताः प्राञ्जलयः प्रथेमुः ॥४५॥  
 कम्पेन मूर्ध्नः शतपत्रयोनिं वाचा हरिं वृत्रहृणं स्मितेन ।  
 आलोकमात्रेण सुरानशेषान्सम्भावयामास यथा प्रधानम् ॥४६॥  
 तस्मै जयाशीः ससृजे पुरस्तात्सप्तर्षिभिस्तान्स्मितपूर्वमाह ।  
 विनाहयज्ञे विततेऽत्र यूयमध्वर्यवः पूर्ववृता मयेति ॥४७॥  
 विश्वावसुप्राग्रहरैः प्रवीणैः संगीयमानत्रिपुरावदानः ।  
 अध्वानमध्वान्तविकारलक्ष्यस्वतार ताराधिपस्त्रण्डधारी ॥४८॥  
 खे खेलगामी तमुवाह वाहः सशब्दचामीकरकिंकिणीकः ।  
 तटाभिघातादिव लग्नपङ्के धुन्वन्सृहुः प्रोतघने विपाणे ॥४९॥  
 स प्रापदप्राप्तपराभियोगं नगेन्द्रमुप्तं नगरं घृहृतात् ॥  
 पुरोयिलमैर्हरदृष्टिपातैः सुवर्णस्रगैरिव कृष्यमाशः ॥५०॥  
 तस्योपकरणे घननीलकण्ठः कुतूहलादुन्मुखपौरदृष्टः ।  
 स्वघाणचिह्नादवतीर्य मार्गादासन्नभृष्टमियाय देवः ॥५१॥

नन्दिने सकेतसे इन लोगोंने महादेवजीके दर्शन करा दिए और सब इन लोगोंने ह्यम जोड-  
 कर शिवजीको प्रणाम किया ॥४५॥ शिवजीने ब्रह्माजीकी ओर सिर हिलाकर, विष्णुजीसे  
 कुशल मंगल पूछकर, इन्द्रकी ओर मुखराकर और वितने देवता थे उन सबको केवल देखकर  
 जो जैसा बड़ा छोटा या बैसे ही सबका आदर किया ॥४६॥ फिर जब सप्तर्षियोंने जय कहकर  
 उन्हें आधीर्वाह दिया, तब शिवजी उनसे बोले कि इस बड़े भारी विवाहके कागजे पुरोहितका  
 काम मैंने पहलेसे ही आपके लिये रखा छोटा है ॥४७॥ सब विकारोंसे परे रहनेवाले  
 महादेवजी जब चलने लगे उस समय उनके आगे-आगे विश्वावसु आदि प्रसिद्ध गधर्यं गधर्ये  
 त्रिपुरासुरपर विजय पानेके गीत गाते चल रहे थे ॥४८॥ बड़ी मीठी चामसे चलनेवाला और  
 अपने गलेमें लटकी हुई सोनेकी छोटी-छोटी घटियोंको टनटनाता हुआ वह बँस उन बादलोंको  
 अपने सींगसे बार-बार झुंकारता हुआ बसा जा रहा था जो उसने धींगेमें इस प्रकार  
 लगे हुए थे मानो नदीके तीर परने टीले ढाले समय सममें कीचड़ लग गई हो ॥४९॥  
 किसीसे भी नमी न हारनेवाला वह बँस हिमालयके भोषविप्रस्थ नामवाले नगरमें इस प्रकार  
 शयन करने पहुँच गया मानो आगे पड़ती हुई शिवजीकी चितवनकी सोनेकी शोरियाँ उठी  
 रतींती से गई हो ॥५०॥ उसी नगरमें पास बादलोंके रामान नीचे पड़वाले महादेवजी  
 उस आवाजसे घृणीधर उत्तरे विसमे उन्होंने त्रिपुरासुरको मारते समय बहूतने बाएँ चलाकर  
 चिह्न बना दिए थे । वे जब उतर रहे थे तो बहूने निवासी बड़े चावसे ऊपर मुँह उठाए  
 हुए उन्हें देता रहे ॥५१॥ महादेवजीने आनेसे पर्वतराज हिमालय बड़े प्रसन्न हुए और  
 अपने उन पत्नी कुटुम्बियोंको हाथीपर चढ़ा चढाकर शिवजीकी भगवानोंने सिधे से चले जो

तमृद्विमन्त्रन्धुजनाधिरुद्धैर्द्वन्द्वैर्गजानां गिरिचक्रवर्ती ।  
 प्रत्युत्सगामाभयमनप्रतीतः प्रफुल्लपृष्ठैः कटकैरिव स्वैः ॥५२॥  
 वर्गाद्विभौ देवमहीधराणां द्वारे पुरस्थोद्धृष्टितापिधाने ।  
 समीपतुर्दूरविसर्पिषोपौ भिचैकसेतु पयसामिवौषौ ॥५३॥  
 हीमानभूद्भूमिधरो हरेण त्रैलोक्यवन्द्येन कृतप्रणामः ।  
 पूर्वं महिम्ना स हि तस्य दूरमावर्जितं नात्मशिरो विषेद ॥५४॥  
 स प्रतियोगाद्विकसन्मुखश्रीर्जामातुरग्रेसरतामुपेत्य ।  
 प्रावेशयन्मन्दिरसूद्धमेनमागुल्फकीर्णापिषामार्गपुष्पम् ॥५५॥  
 तस्मिन्मुहूर्ते पुरसुन्दरीखामीशानसंदर्शनलालसानाम् ।  
 प्रासादमाशासु बभूवुरित्थं त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि ॥५६॥  
 आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्दृष्टेनवान्तमास्यः ।  
 षड् न संभावित एव तावत्करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः ॥५७॥  
 प्रसाधिकाऽऽलम्बितमग्रपादमालिष्य काचिद्द्वरागमेव ।  
 उत्सृष्टलीलागतिरागवावादलक्तकाङ्गां पदवीं तवान ॥५८॥  
 विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन संभाष्य तडश्चितवामनेत्रा ।  
 तथैव वातायनसन्निकर्षं यगी श्लाकामपरा दहन्ती ॥५९॥

उसी प्रकार सुसज्जित थे जैसे हिमालयकी ढालपर फूलों से सजे हुए वृक्ष ॥५२॥ इन दोनों ही बलवान् हल्ला दूरतक सुनाई पड़ रहा था और वे जब हिमालयकी राक्षसीके लुले फाटकी वाले द्वारपर आकर मिले तो ऐसे लगने लगे मानो बाँध टूट जाने पर जलकी दो धाराएँ आकर आपसमें मिल गई हो ॥५३॥ सकरजीने जब पहले हिमालयको प्रणाम किया तो वह लाजसे बड़ गया, पर उसे यह नहीं पता पला कि प्रणाम करनेसे पहले ही उसकी महिमामें ही उपाया तिर झुग चुका था ॥५४॥ इस सुन्दर सम्बन्धसे हिमालय बड़े प्रसन्न थे । भ्राते-भ्राते बलकर के मालिषो और धैर्यवदोषी सजे हुए अपने जामाताको उस मार्गसे ले गए जहाँ इतने फूल बिछे थे कि उन फूलोंमें पैर धँसे जा रहे थे ॥५५॥ उसी समय महादेवजीके दर्शनके लिये आये भरो हुई नगरकी सब सुन्दरियाँ अपनी अपनी सब काम बाज छोड़कर अपने भवनोंकी छतोंपर आ खड़ी हुई ॥५६॥ एक स्त्री ज्यों ही लिटकीकी ओर हटवडी में आती कि उसने जूतेमें धँसो हुई फूलकी माला झुग गई और वह उसे अपने हाथों पकड़े हुए ही चन बी उसे बाँधनेकी सुख न रही ॥५७॥ एक स्त्री अपने पैरमें महावर लगवा रही थी कि उसे भूरा छोड़कर ही वह अटपट बिटरीके पासतक अपने महावर लगे पैरोंकी छान बनाती हुई दौड़ गई ॥५८॥ एक स्त्री अपनी दाईं बाँधमें ली कानल लगा चुबी थी पर बाईं आँसुमें दिना लगाए हाथमें सवाई लिए हुए ही लिटकीकी ओर अपनी ॥५९॥ एक स्त्री ज्योंही

जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न ववन्ध नीवीम् ।  
 नाभिप्रविष्टाभरसुप्रमेण हस्तेन तस्थववलम्ब्य वासः ॥६०॥  
 अर्द्धाचिता सत्वसमुत्थितायाः पदे पदे दुर्निमित्ते गलन्ती ।  
 कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीमद्गुण्णमूलापितस्रशेषा ॥६१॥  
 तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकृतहलानाम् ।  
 बिलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवासन् ॥६२॥  
 तावत्पताकाकुलमिन्दुमौलिरुचोरुषं राजपथं प्रपेदे ।  
 प्रासादमृद्गाणि दिवापि कुर्वन्ज्योत्स्नाभिपेकद्रिगुणद्युतीनि ॥६३॥  
 समेकदृश्यं नयनैः पिवन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि ।  
 तथाहि शेषेन्द्रियघृत्तिरासां सर्वात्मना चञ्चुरिव प्रविष्टा ॥६४॥  
 स्थाने तपो दुश्चरमेतदर्धमपर्णया पेलनयापि तप्तम् ।  
 या दास्यमप्यस्य लभेत नारी सा स्यात्कृतार्था किमुताङ्कशय्याम् ॥६५॥  
 परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत् ।  
 अस्मिन्द्वये रूपविधानयज्ञः पत्युः प्रजानां विफलोऽभविष्यत् ॥६६॥

सिद्धकीर्ती जालियोमें जाकर भौकले लगी कि उसकी बरकरा नाश हुआ गया और चिना  
 भीमे ही उसे हाथसे पकडे जो सखी हुई तो उसके हाथके कंगनके रत्नकी धमपसे उसकी नाभि  
 धमकती दिखाई देने लगी ॥६०॥ एक स्त्री जोरमें मणि पियो रखी थी । इतनेही प्रकरकीकी  
 वपतका हल्ला सुनकर वह हहकाकर उठी और सिद्धकीकी ओर दौड़ी । हमः यह कि सिद्धकी  
 तब पहुँचते-पहुँचते मखियोने दाने ही सब बिलर गए पर वरने भोगुठेमें बँधा हुआ जोरा  
 प्योका रूपों कैसा रह गया ॥६१॥ उन चावभरे-नैन-जालियोने पाससे महकते हुए और  
 चपल नेत्रवाले मुल सिद्धनियोगि भौकते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो सिद्धकीकी  
 जालियोमें भौरोंति भरे कमल टाँग दिए गये हो ॥६२॥ इतनेही उन चूनेसे गुते हुए जगने  
 भयनोने कपूरोको अपने सिरके चट्याकी धाँकीसे घोर भी अधिक धमकाते हुए महादेवजीने  
 ध्यजामो घोर पताकाभोसे सजे हुए राजमार्गमें प्रवेश किया ॥६३॥ नगरकी स्त्रियाँ सब  
 गुपगुप झूलकर दृष्ट प्रकार एगटक देखती हुई उन्हें अपने नेत्रोंसे पों रखी थी मानो उनकी  
 सब इन्द्रियाँ धावर घाँसोम ही समा गई हो ॥६४॥ ये सोचने लगी कि ऐसे बरने  
 लिये मुकुमार पार्वतीका उप करना ठीक ही या नवोनि ये तो ऐसे सुन्दर है कि जो रनो  
 इनकी दासी भी हो पाय वह भी धन्य हो जाय फिर जो इनकी सोदने जाकर लेते उसका  
 तो बहना ही क्या है ॥६५॥ सुन्दरतामें एव दूरसे बने चङ्गे हुए इस जोरिका यदि दिखा  
 न होता तो हम परी समझते कि ब्रह्माजीने इन दोनोंका रूप बढनेमें जो परिश्रम किया वह सब  
 धनारप ही था ॥६६॥ अब हमारी समझमें था रहा है कि इन्होंने बामदेवको शोचवरने भरम

न नूनमास्द्रुष्या शरीरमनेन दग्धं बुभुसायुधस्य ।  
 ग्रीहादमुं देवमुदीच्य मन्ये संन्यस्तदेहः स्वयमेव कामः ॥६७॥  
 अनेन संबन्धमुपेत्य दिष्टया मनोरथप्रार्थितमीश्वरेण ।  
 मूर्धानमालि द्विधिधारणोच्चमुच्चैस्तरं वक्ष्यति शैलराजः ॥६८॥  
 इत्योपधिप्रस्थविलासिनीनां मृएण्कथाः श्रोत्रसुखास्त्रिनेत्रः ।  
 कैपूरचूर्णोक्तलाजमुष्टि हिमालयस्यालयमामसाद् ॥६९॥  
 तत्रावतीर्याच्युतदत्तहस्तः शरद्धनादीधितिमानिवोक्ष्यः ।  
 क्रान्तानि पूर्वं कमलासनेन कक्ष्यान्तराप्यद्रिपतेर्विधेश ॥७०॥  
 तमन्यगिन्द्रप्रहुराश्व देवाः सप्तर्षिपूर्वाः परमर्षयश्च ।  
 गथाश्च गिर्यालयमभ्यगच्छन्त्रशस्तमारम्भमिवाचमार्याः ॥७१॥  
 सप्रेश्वरो विष्टरभाग्यथावत्सरत्नमर्घ्यं मधुमञ्च गल्प्यम् ।  
 नवे दुहृले च नगोपनीतं प्रत्यग्रहीतसवममन्त्रवर्जम् ॥७२॥  
 दुहृलवासाः स वधूसमीपं निन्ये विनीतैरवरोधदत्तैः ।  
 वैलासमीपं स्फुटफेनराजिर्नवैरुदन्वानिव चन्द्रपादैः ॥७३॥  
 तथा प्रवृद्धाननचन्द्रफान्त्या प्रफुल्लचक्षुः कुमुदः कुमार्या ।  
 प्रसन्नचेतःसलिलः शियोऽभूत्संसञ्जमानः शरदेव लोकः ॥७४॥

नहीं विया है परन्तु कामदेव ही इनकी सुन्दर्या की देसवर हीसके मारे स्वयं जल मरा ॥६७॥  
 हे सती ! पक्षेदेवर हिमालय बडे भाग्यवान् है । एक तो पृथ्वी धारण करने से उनका तिर  
 बँडे ही ऊँचा था उसपर अपने मनबाहे पर भगवान शवरजीसे मन्त्रग्य करने उनका तिर  
 और भी ऊँचा हो जायदा ॥६८॥ ओपधिप्रस्थकी स्थियोकी ऐसी गौडी गौडी बातें मुझे हुए- महा-  
 देवकी हिमालयके उस धरमे पहुँचे जहाँ इतनी नीह थी कि कुमारिपौले प्रापार दिग्गजानेके  
 लिये जो सीले बिलौरी की वे वहाँके लोपनि बुबुधपोकी रगडके हो विषवर पूण्डे पा गई थीं  
 ॥६९॥ वहाँ पहुँचनेपर विष्णुकी के दृषयका सहारा बकर महादेवकीके इस प्रकार बँलके उतार  
 विया माने शरदेके उजले वादलोसे मूर्षको उतार लिया हो । वहाँ के वे हिमालयके मवनकी  
 उस भीतरकी कीउकीके पहुँचे जहाँ ब्रह्माकी पहनेसे बँडे हुए थे ॥७०॥ उनके पीछे-गौडे इन्द्र  
 मारि देवता इन्द्रपियोके साथ सर महर्षि और महादेवकीके मन्ये मण्ड हिमालयके धरमे उगी  
 प्रनार पँडे जैसे किता काम के लीव-लीक प्रारम हो जानेपर उनके पीछे और भी बहुतके बडे-बडे  
 काम साथ जाते हैं ॥ ७१ ॥ वहाँ आसनपर महादेवकीकी बँठाकर हिमालयके रत्न, धर्म, मधु,  
 दही और नये बरख, जो बुधे सावर दिए वे सब उज्झनि मर्षके साथ से लिए ॥ ७२ ॥  
 देवानी वरख पहने हुए महादेवकीकी रनिवासके सेरक उसी प्रकार पार्वतीकीके पाप से गए  
 जैसे पात्रमाकी विरथो धनवासे समुद्रकी तटतक पहुँचा देनी है ॥ ७३ ॥ जैसे शरदेके धानेपर लोप  
 प्रसन्न हो जाते हैं वैसे ही शरदण्ड चमकते हुए पन्डमके समान पुन्यासकी पार्वतीकी देगडर

तयोः समापत्तिषु कातराणि किञ्चिद्वचस्वस्थापितसंहृतानि ।  
 हीयन्त्रयां तत्क्षमन्भवन्नन्योन्यलोलानि विलोचनानि ॥७५॥  
 तस्याः करं शैलगुरूपनीतं वशाह ताप्राह्गुलिमष्टमूर्तिः ।  
 उमातनौ गूढतनोः स्मरस्य तच्छङ्किनः पूर्वमिव प्ररोहम् ॥७६॥  
 रोमोद्गमः प्रादुरमूढमायाः स्वन्नाह्गुलिः पुद्गवकेतरासीत् ।  
 वृत्तिस्तयोः पाणिसमागमेन समं विभक्तेव मनोभवस्य ॥७७॥  
 प्रयुक्तपाणिग्रहणं यदन्यद्वधुवरं पुष्यति कान्तिमश्याम् ।  
 साभिध्ययोगादनयोस्तदानीं किं कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य ॥७८॥  
 प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुदक्षिपस्तन्मिथुनं चक्रासे ।  
 मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रिपामम् ॥७९॥  
 तौ दंपती त्रिः परिशीय वह्निमन्योन्यसंस्पर्शनिभीलिताचौ ।  
 स कारयामास वधू पुरोधास्तस्मिन्समिद्धार्चिपि लाजमोक्षम् ॥८०॥  
 सा लाजधूमाञ्जलिमिष्टगन्धं गुरुपदेशाद्बदरं निनाय ।  
 कपोलसंसर्पिशिखः स तस्या मुहूर्तकृषोत्पलता प्रपेदे ॥८१॥

शकरजीके नेत्ररूपी पुमुख खिल गए और उनका भग जनके समान निर्मल हो गया ॥७५॥  
 पार्वतीजीके और शकरजीके नेत्र थोड़ी देरके लिये मिलकर फिर हट जाते थे और इस प्रकार एक  
 दूसरे को चाह भरी निरावन से देखकर उनके हृदयमें फिर बड़ी लज्जा भी पा जाती थी कि हमें  
 देखकर दूसरे क्या कहते होंगे ॥ ७५ ॥ अब हिमालयके पुरोहितने पार्वतीजीका हाथ मागे बढ़ाकर  
 शकरजीके हाथ पर रख दिया । पार्वतीजीका वह जान लाल जंगलियोंवाला हाथ ऐसा लगता  
 था मानो महादेवजीके डरने छिपे हुए कामदेवके अक्षुर पहले-पहल निकल रहे हों ॥ ७६ ॥ हाथ  
 पकड़ते ही पार्वतीजीको भी रोमांच हो गया और महादेव जी को जंगलियोंसे भी पत्नीना छुटने  
 लगा । ऐसा जान पड़ा मानो उन दोनों का हाथ मिलाकर कामदेवने दोनों को एक साथ अपने  
 पक्षमें कर लिया हो ॥ ७७ ॥ जो गायत्री और शकर सप्तर भर में ब्रिवाहने समय स्मरण किए  
 अन्तिपर वह और बरौनी ओभा बढ़ाते हैं उन्हीं पार्वती और शकरका जब स्वयं ही विवाह हो रहा हो  
 तब उनकी धोभाका तो बहना ही क्या है ॥ ७८ ॥ ईंधनसे जली हुई अग्निवा फेरा देते समय  
 पार्वती और शकरजी इस प्रकार सोचते हुए मानो रात और दिन दोनों मिलकर सुमेरु पर्वतका फेरा  
 लगा रहे ही ॥ ७९ ॥ अब दूसरेको झूनेके नारण पार्वती और शकरजी पांख मूँदकर आनन्द लेते  
 हुए अग्निवा फेरा लगा रहे थे । अब तीन बार जवाही हुई अग्निके फेरे हो गए तब पुरोहितजीने  
 अग्नि में धानकी खीलाका हवन कराया ॥८०॥ पार्वतीजीने पुरोहितजीने कहनेसे उस खीलाके होमसे  
 उठे हुए सुगन्धित धुँवको अपने हाथकी अजलीसे सूंधा । वह धुँवाँ उनके गालों के पास पहुँचकर  
 धाए भरके लिये उनके कानोंका कण्ठपूँस बन जाता था ॥८१॥ उस हवनके गरम धुँवे से पार्वती-

तदीपदाद्रांरुखगण्डलेखमुच्छ्वासिकालान्जनरागमच्छयोः ।  
 वधुमुखं क्तान्तपचोवतंसमाचारधूमग्रहपाद्भूय ॥८२॥  
 वधूं द्विजः प्राह तवैष वत्से वह्निर्विवाहं प्रति कर्मसाची ।  
 शिवेन भर्त्रा सह धर्मचर्यां कार्यां त्वया मुक्तविचारयेति ॥८३॥  
 धालोचनान्तं श्रवणे वितत्य पीवं गुरोस्तद्वचनं मवान्या ।  
 निदाघकालोन्वयतापयेव माहेन्द्रमम्मः प्रथमं पृथिव्या ॥८४॥  
 ध्रुवेण भर्त्रा ध्रुवदर्शनाय प्रयुज्यमाना प्रियदर्शनेन ।  
 सा दृष्ट इत्याननमुज्जमय्य ह्रीसन्नकरठी कथमप्युवाच ॥८५॥  
 इत्थं विधिज्ञेन पुरोहितेन प्रयुक्तपाणिग्रहयोपचारौ ।  
 प्रथेमत्तुस्तौ पितरौ प्रजानां पथासनस्थाय पितामहाय ॥८६॥  
 वधुर्विधात्रा प्रतिनन्दते स्म कल्याणि वीरप्रसवा भवेति ।  
 वाचस्पतिः सन्नपि सोऽष्टमूर्तो त्वाशास्यचिन्तास्तिमितो बभूव ॥८७॥  
 क्लृप्तोपचारां चतुरस्रवेदीं तावत्पथसात्कनकासनस्थी ।  
 जाथापती लौकिकमेपणीयमाद्राघतारोपणमन्वभूताम् ॥८८॥  
 पत्रान्तलङ्घैर्जलविन्दुजालैराकृष्टमुक्ताफलजालशोभम् ।  
 तयोरुपर्यायतनालदडमाधच लक्ष्मीः कमलातपत्रम् ॥८९॥  
 द्विधा प्रयुक्तेन च बाह्यमयेन सरस्वती तन्मिधुनं हुनाव ।  
 संस्कारपूतेन वरं चरेण्यं वधूं सुखग्राहनिबन्धनेन ॥९०॥

जीके पास कुछ सात हो गए, भूँदपर पसीनेकी बूँदें छा गईं, आँखोंका काला भाँजन फैल गया और कार्नोंपर धरे हुए जगें भी पड़ते पड़ गए ॥८२॥ उस पुरोहितजीने पार्वतीजीसे कहा कि हे वत्से ! यह अग्नि हुम्हारे विवाहका साली है । आजसे तुम सब प्रकारकी धंका छोड़कर सरा शिपजीके साथ धर्मके काम करना ॥८३॥ आँखोंका अपने कान फँसाकर पार्वतीजीने पुरोहितजीकी यात्र बँसे ही आदरसे सुनी जँसे गर्मीके तपी हुईं पृथ्वी जगेंकी पहली बूँदें ग्रहण करती है ॥८४॥ जब धंकरजीने कहा कि ध्रुवकी ओर देखो उस पार्वतीजीने ऊपर भूँह उठाकर बहुत लजाले हुए किसी प्रकार इतना कटु—हाँ देख लिया ॥८५॥ इस प्रकार कमकाण्ठ जाननेवाले पुरोहितजीने संतापसे माता-पिता पार्वती और शंकरजीका विवाह पुरा करा दिया । उन कमलके आसनपर बँडे हुए प्रह्लादजीको दोहोने प्रणाम किया ॥८६॥ प्रह्लादजीने बहूने नो यह आशीर्वाद दे दिया कि हे कल्याणी ! तुम वीरपुत्रकी माता बनो, किन्तु वाणीके स्वामी होते हुए भी उनको यह तपभ्रमे नहीं आया कि उस इच्छामोठे परे रहनेवाले शंकरजीको हन क्या आशीर्वाद दें ॥८७॥ वहल्लि महादेवजी और पार्वतीजी, पूजातो सजे हुए जोकमे छाए गए और सोनेके आसनपर बँडे दिए गए । तब उनके ऊपर लौकिक विधिसे भोगीने बीले और पीले अक्षत छिन्नके ॥८८॥ उस समय स्वयं लक्ष्मीजी, पत्तोके शोरोपर लटकती हुईं और मोक्षके उगम चमकती हुईं जलकी बूँदेंसे भरे हुए तन्वी डँडल-वाले कमलका उज्ज उनके ऊपर लगाकर सही हो गईं ॥८९॥ और सरस्वतीजी भी सज्जत और



तौ सन्धिषु व्यञ्जितवृत्तिभेदं रसान्तरेषु प्रतिबद्धरागम् ।  
 व्यपश्यतामप्सरसां मुहूर्तं प्रयोगमाद्यं ललिताङ्गहारम् ॥६१॥  
 देवास्तदन्ते हरमूढमार्यं किरीटवद्वाञ्छलधो निपत्य ।  
 शापावसाने प्रतिपन्नमूर्चेर्यथाचिरे पञ्चशरस्य सेवाम् ॥६२॥  
 तस्यानुमेने भगवान्विमन्युर्व्यापारमात्मन्यपि सायकानाम् ।  
 कालप्रयुक्ता खलु क्यार्पविद्धिर्विज्ञापना मर्तुषु सिद्धिमेति ॥६३॥  
 अथ विषुधगाणांस्तानिन्दुमौलिर्विसृज्य,  
 चित्तिधरपतिकन्यामाददानः करेण ।  
 कनककलशयुक्तं भक्तिशोभासनायं,  
 चित्तिविरचितशय्यं कौतुकागारमागात् ॥६४॥  
 नवपरिखयलज्जाभूषणां तत्र गौरीं,  
 वेदनमपहरन्तीं तत्कृताक्षेपमीशः ।  
 अपि शयनसखीभ्यो दत्तवाचं कथञ्चित्,  
 प्रमथमुरविज्ञारैर्हामयामास गूढम् ॥६५॥  
 इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये  
 उमापरिणयो नाम उत्तमः सर्गः ॥

प्राकृत बीनो मायामेति शिव बीर पार्वतीजीको प्रसन्ना करने लगीं । सम्हतमे तो उन्होंने प्रसन्ननीय  
 करकी बीर सल्लभासे समन्तमे आनेवाली प्राकृत भाषामे उन्होंने बधुकी प्रसन्ना की ॥६०॥ तब  
 पार्वती बीर करकरने शृङ्गार आदि रसोपाता बीर सुन्दर हाव-भावसे भरा बीर पाँचो सधियोंमें प्रलग  
 प्रलग भाषा-शैलियोंसे सत्रा हुआ नाट्य बीनो देर तब देखा बी अप्सरामेदि रोला या ॥६१॥  
 नाट्य समाप्त हो चुकनेपर इन्द्र आदि देवता विनाहिन शबरजीके पास आए बीर अपने किरीट बाँधे  
 हुए तिरपर हाथ जोड़कर यह प्रार्थना की कि आपका विवाह हो जानेसे आपका दिया हुआ शाप  
 भी समाप्त हो गया, इसलिये आप आज्ञा दें तो कामदेव फिरसे जी उठे बीर आपकी सेवा करे ॥६२॥  
 प्रसन्न मनवाले शबरजीने कहा—अच्छी बात है, अब कामदेवसे कह दो कि वह बी शबर पर हमपर  
 अपने बाण बरसे । ठीक ही है, बी चतुर उदय यह जानते हैं कि स्वामीसे बीनसी बात यह बहनी  
 चाहिए तो वे स्वामीसे जो प्रार्थना करते हैं वह शक्य ही पूरी होनी है ॥६३॥ तब शबरजीने इन्द्र  
 आदि सब देवताओंसे बिदा लिया बीर पार्वतीजीका हाथ अपने हाथमे लेकर उस समय परने पहुँचे  
 जहाँ वेज सिद्धी हुई थी, पुतली की मालाएँ लगी हुई थी बीर सोनेरा वस्त्र भरा घरा या ॥६४॥  
 नया विवाह होनेसे लक्ष्मी, महादेवजीके हाथोंसे धाँचन लीके जानेपर अपना मूँह दिशानेवाली बीर  
 सधियोंकी सुदृशियोंका जो रसो उत्तर देनेवाली पार्वतीजीके आगे शबर जब प्रमथ आदि सब  
 अपने प्रचारके मूँह बनाने लगे तो पार्वतीजी भी मन ही मन हँस लीं ॥६५॥

महान्विधीनास्तिदासरे रणे हृए पुमारमभय पहाकाव्ये पार्वतीजीने

विनाह वसुंन नापका सावरो समं समाप्त हुआ ।

## ॥ अष्टमः सर्गः ॥

पाणिपीडनविधेरनन्तरं शैलराजदुहितुर्हरं प्रति ।  
 भावसाध्वरापरिश्रहाद्भूत्कामदोहदमनोहरं वयुः ॥१॥  
 व्याहृता प्रतिवचो न सन्दधे गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका ।  
 सेवते स्म शयनं पराङ्मुखी सा तथापि रतये पिनाकिनः ॥२॥  
 कैतवेन शयिते ब्रुतुहलात्पार्वती प्रतिमुखं निपातितम् ।  
 चक्षुरन्मिपत्ति सस्मितं प्रिये विद्युताहतमिव न्यमीलयत् ॥३॥  
 नाभिदेशनिहितः सकम्पया शंकरस्य रुधे तथा करः ।  
 तद्बहुलमथ चाभवत्स्वयं दूरमुच्छ्वसितनीविमन्धनम् ॥४॥  
 एवमालि निगृहीतसाध्वसं शंकरो रहति सेध्यतामिति ।  
 सा सखीभिरुपदिष्टमाकुला नास्मरत्प्रसुरवर्तिनि प्रिये ॥५॥  
 ध्वप्यवस्तुनि कथाप्रवृत्तये प्रश्नतत्परमनङ्गशासनम् ।  
 वीक्षितेन परिवीचय पार्वती मूर्धकम्पमपशुचरं ददौ ॥६॥  
 शूलिनः करतलद्वयेन सा संनिरुध्य नपने हृतांशुका ।  
 तस्य पश्यति ललाटलोचने भोषपत्नविधुरा रहस्पमू ॥७॥

### आठवाँ सर्ग

विवाह हो जानेपर पार्वतीजी मह तो चाहती ही थी कि शिवजीसे दूर न रहूँ पर साथ ही कुछ क्रिन्तकरी भी थी । उनके इस प्रेम और क्रिन्तकसे परे गुल्पर सपैरको ही पैर देखकर महादेवजी उन पर लट्टू हुए जा रहे थे ॥१॥ वे इतनी सजात थी कि शिवजी कुछ पूछते भी थे तो वे बोलती न थी, यदि वे इनका साँवल घाम लेते तो वे उठकर भागने जयती थी और साथ हीले समय भी वे दूसरी ओर मुँह फेरकर ही होती थी । पर शिवजीको इन बातोंसे भी कम आनन्द नहीं मिलता था ॥२॥ जब कभी शिवजी सोनेका बहाना करके साँध मूँदकर सेट जाते तब पार्वतीजी इनकी ओर घूमकर उन्हें टपटपी साँधकर देखा करती । इतनेसे ही शिवजी मुक्कराकर साँधें खीन धेते और मे घट इस घृतिणि मपनी भ्रालें भीव लेती माकी बिजलीपी नकाचौपसे मालें मिन गई हो ॥३॥ जब पाकरणी मपने हाथ उनकी नाभिपी धीर बढ़ाते तब पार्वतीजी साँपते हुए उनका हाथ घाम लेती, पर न जाने कंसे इनकी साधोकी बाँठ डीली पछकर मपने भाप खुल जाती ॥४॥ पार्वतीजीकी सखियाँ इन्हें सिखाया करती कि देखो सखी, तुम डरना मत और जैसे-जैसे हम घिसाती हैं वैसे ही वैसे धनेते से छकरजीके पास रहना पर शिवजीके सामने पहुँचते ही वे इतनी पदरा भाती कि सखियोंकी सब साँध इनके ध्यानसे उतर जाते ॥५॥ जब कभी बात-बात में शिवजी ऊट पटाँध बातें छेड़ कर इनसे उतर माँगते तो वे मपने मुँहसे तो कुछ न कहतीं, बस मपकी साँधें ऊपर उठापर धीर धिर घुमानर यह जता देती कि मैं भावपी सम बातें मानती हूँ ॥६॥ जब कभी मपनेसे शिवजी इनके वपने तीधकर इन्हें उपाट देते तो वे मपनी दोनी ह्येसियोसे शिवजीके दोनो नेध बन्द कर लेती जिससे वे

चुम्बनेश्वधरदानवर्जितं      शिन्नहस्तसदयोपगूहनम् ।  
 क्लिष्टमन्मथमपि प्रियं प्रभोर्दुर्लभप्रतिकृतं वधुरतम् ॥८॥  
 पन्थुरेणग्रहणमक्षताधरं      दानमग्रणपदं नखस्य यत् ।  
 यद्रतं च सदयं प्रियस्य तत्पार्वती निपहते स्म नेतरत् ॥९॥  
 रात्रिवृत्तमनुयोक्तुं द्यतं सा      प्रभातसमये सप्रीजनम् ।  
 नाकरोदपङ्कतहलं ह्रिया शंसितुं      सु हृदयेन तत्वरं ॥१०॥  
 दर्पणे च परिभोगदर्शिनीं पृष्ठतः      प्रणयिनो निपेदुषः ।  
 प्रेक्ष्य विन्मसुपाम्बमात्मनः      कानि कानि न चकार लजया ॥११॥  
 नीलकण्ठपरिशुक्तयौजनांतां      विलोष्य जननी समाधसत् ।  
 भर्तृवल्लभतया हि मानसीं      मातुरस्यति शुचं वधुजनः ॥१२॥  
 वासराणि कतिचित्कथञ्चन      स्याणुना रतमकारि चानया ।  
 ज्ञातमन्मथरसाशनैःशनैः      सामुमोच रतिदुःखशीलताम् ॥१३॥  
 सस्रजे प्रियसुरोनिपीडनं      प्रार्थितं मुपमनेन नाहरत् ।  
 मेखलाप्रणयलोलतां गत      हस्तमस्य शिथिलं रुरोध सा ॥१४॥

देव न पावें । पर शिवजी भी ऐसे मुह से कि ऋत अपना खीचया नेत्र जोल लेते और  
 ये हार मानकर बैठ जाती ॥७॥ महादेवजी जब इन्हें पूजना चाहते तो ये प्रपना प्रोठ ही  
 न बढ़ाती और जब ये इन्हें कसरत छाती लगाना चाहते तो ये अपने हाथ तब न उठाती ।  
 इस प्रकार बापामोके साथ छपुरे उसके साथ भी शिवजीने पपुने साथ जो सभोग किया उसमें  
 उन्हें भ्रान्त ही मिला ॥८॥ धीरे-धीरे पार्वतीजीकी किम्बल मिटने लगी और इसलिये  
 जब कभी महादेवजी इहे चुमते समय काटते नहीं थे, चुमते हुए पाप नहीं करते ये और बहुत  
 धीरे-धीरे सभोग करते थे तो ये भ्रान्तानानी नहीं करती थी । पर जहाँ ये इससे प्रागे बटे कि ये पहरा  
 उठती ॥९॥ पार्वतीजी इतनी लज्जाली थी कि जब इनकी सखियां इनसे रातकी रातें पूछने लगती  
 तो ये चाहते हुए भी लज्जाने मारे उनगे बता नहीं पाती थी ॥१०॥ जब ये हाथमे दर्पण लेकर  
 उसने अपने चरीरपर बने हुए सभोगके चिह्न बंठी देखती और उस समय वही पीछेसे चूपचाप  
 शिवजी पहुँच जाते तो उनकी परछाहीं दर्पणमे पडते ही ये ऐसी लजा जाती कि भेपके मारे पशान्या  
 नहीं करने लगती थी ॥११॥ भेवानी यह देखकर बडा सन्तोष हुआ कि महादेवजी हमारी  
 पशान्याके धोवनवा उपभोग कर रहे हैं, क्योंकि जब माया यह देख लेती है कि मेरी पशान्या  
 पति पशान्याके प्यार करता है तो उठवा भी हुन्वा हो जाता है ॥१२॥ कुछ दिनों तब तो महादेवजी  
 ज्यो-र्यों करने पार्वतीजीसे सभोग करते रहे पर धीरे-धीरे जब पार्वतीजीको भी सभोगका  
 रस मिलने लगा तब इनकी भी किम्बल धीरे-धीरे जाती रही ॥१३॥ और इसलिये जब  
 महादेवजी इन्हें कसरत छातीसे लगाते तो ये भी उन्हें दोनों हाथोंसे बस लेती, जब ये  
 चुमनेको मुँह बढ़ाते तो ये अपना मुँह हटाती नहीं थी और जब चरकी इनकी

भावसूचितमदृष्टविप्रियं दार्ढ्यभाक्त्वखवियोगकातरम् ।  
 कैश्चिदेव दिवसैस्तथा तपोः प्रेमगूढमितरेतराश्रयम् ॥१५॥  
 तं यथात्मसदृशं वरं वधूरन्वरज्यत वरस्तथैव ताम् ।  
 सागरादनपमा हि जाह्नवी सोऽपि तन्मुखरसैकवृत्तिभाक् ॥१६॥  
 शिष्यतां निधुवनोपदेशिनः शंकरस्य रदसि प्रपन्नया ।  
 शिक्षितं युवतिर्नैपुण्यं तथा यच्चदेव गुरुदक्षिणीकृतम् ॥१७॥  
 ददमुक्तमधरोष्ठमम्बिका वेदनाविधुतहस्तपल्लवा ।  
 शीतलेन निरबापयत्त्वक्षं मौलिनन्द्रशकलेन शूलिनः ॥१८॥  
 चुम्बनादलक्ष्मण्यूर्ध्वदूषितं शंक्रोऽपि नयनं ललाटजम् ।  
 उच्छ्वसत्कमलगन्धये ददौ पार्वतीवदनगन्धवाहिने ॥१९॥  
 एवमिन्द्रियसुखस्य वर्त्मनः सेवनादनुगृहीतमन्मथः ।  
 शैलराजमवने सहोमया मासमात्रमवसद्दृपञ्चजः ॥२०॥  
 सोऽनुमान्य हिमवन्तभात्मभूरात्मजाविरहदुःखखेदितम् ।  
 तत्र तत्र विजहार संपतन्नप्रमेयमतिना ककुभता ॥२१॥

लगड़ी पकड़कर खींचते तो वे घामे मनसे ही उनका हाथ रोकती ॥१५॥ पोट्टे ही दिनोंमें दोनोफी घाल-ढालसे यह जान पड़ने लगा कि भगवत बहुत पुल-मिल गये है क्योंकि बोलों एक दूसरेकी बगडई करते प्रयासे न थे । धीरे जो नही भ्रष्ट भरके सिधे जी एक दूसरेसे बलग हुए कि भक्त लडपने लगते ॥१५॥ जैसे—समुद्रके पास जाकर धीरे भिन्नकर पगानी बहसि लौटनेका काम तक नही सेती धीरे समुद्र भी उन्हीके मुखका जल से-नैकर बराबर उनके प्रेम किया करता है वैसे ही पार्वतीजी भी जैसे-जैसे अपने प्रियतमका मन बहलाती वैसे-वैसे महादेवजी भी उनके मनकी ही बातें किया करते थे ॥१६॥ पार्वतीजीने शंकर जीसे प्रकलेमे जो काम-कलाकी शिक्षा ली थी उस कलाके अनुसार इन्होंने महादेवजीके साथ नई तर्को-सिधोको चटक-मटकसे बरा जो सम्भोग किया वही माने कला से-लनको गुरतौ-सखा थी ॥१७॥ जब कभी पार्वतीजीका मोठ महादेवजीका टाट सेते तो वे पीडासे अपने हाथ भट-मने लगती थीर फिर तत्काल महादेवजीके सिरपर बसे हुए चन्द्रमापर ज्यो ही मोठ रखती ह्यो ही उन्हें ऐसी ठडक मिलती कि उनकी सब पीडा जाती रहती ॥१८॥ इसी प्रकार चुम्बन सेते समय जब पार्वतीजीके केशोका चूर्ण झड़कर शिवजीके जीसरे नेत्रमे पडता तो वह नेत्र दुखने लगता । तब खिन्ने हुए कमलकी गंधवाले पार्वतीजीके मुंहकी फूंक पानेके सिधे वे अपना नेत्र उठाकर उनके मुंहतक पहुँचा देते ॥१९॥ इस प्रकार जबानीका रस लेकर महादेवजी ने कामदेवपर बड़ी कृपा की थीर हिमालयके पत्थर जमाने साथ रहते हुए उन्होंने एक महीना बिता दिया ॥२०॥ तब उन्होंने हिमालयके जानेकी आज्ञा भांगी । कन्याको अपनेसे प्रत्यग करनेमे हिमालयको दुःख तो बहुत हुआ पर उसने बिदा दे दी । वहाँसे अपने बेरोक

एष वृक्षशिखरे कृतास्पदो जातरूपरसगौरमण्डलम् ।  
 हीयमानमहरत्ययातपं पीबरोरु पिवतीव वहिष्णः ॥३६॥  
 पूर्वभागतिमिरप्रवृत्तिभिर्व्यक्तपङ्कमिव जातमेकतः ।  
 स्यं हृतातपजलं वियस्वता भाति किञ्चिदिव शेषवत्सरः ॥३७॥  
 आविशद्भिरुटजाङ्गलं मृगैर्मूलसेकसरसैश्च वृक्षकैः ।  
 आश्रमाः प्रविशदग्रधेनवो विभ्रति त्रियमुदीरिताग्रयः ॥३८॥  
 बद्धकोशमपि तिष्ठति चर्णं सायशोपविबरं कुशेशयम् ।  
 पद्पदाय वसतिं ग्रहीष्यते प्रीतिपूर्वमिव दातुमन्तरम् ॥३९॥  
 दूरमप्रपरिमेयरश्मिना वारुणी दिगरूपेण भानुना ।  
 भाति केसरवत्त्रेव मण्डिता बन्धुजीवतिलकेन कन्यका ॥४०॥  
 सामभिः सहचराः सहस्रशः स्यन्दनाश्वहृदयङ्गमस्वनैः ।  
 भानुमग्निपरिकीर्णतेजसं संस्तुवन्ति किरणोष्मपापिनः ॥४१॥  
 सोऽयमानतशिरोधरैर्हयैः कर्षचामरविघट्टितेक्षुः ।  
 अस्तमेति युगमृग्नकेसरैः सन्निधाय दिवसं महोदधौ ॥४२॥

हुए मोरकी पूँछने बसी हुई मोल-गोच और सोनेके पानीके समान सुन्दरी अग्निनामोकी  
 वैजनेसे ऐसा लगता है भाभी मह बँठा हुआ राँककी सब धूप पीए ठाक रहा ही और उरीसे दिन  
 उलता जा रहा हो ॥३६॥ देखो ! सूर्यने आकाशसे धूपका पानी सींच लिया है इसलिये  
 आकाश उस तालाबके समान दिखाई दे रहा है जिसमे पूर्वके ओर भँवेरा बह जानेसे यह  
 जान पड़ता है कि उबर कीचड़ बचा रह गया है और पच्छिममे कुछ-कुछ जगामा रहनेसे  
 ऐसा लग रहा है कि उबर अभी थोड़ा-थोड़ा पानी बचा रह गया है ॥३७॥ पखाँ-कूटियोंके  
 भाँगनेमे प्राते हुए हिरण्योसे, सींचे हुए जड़बाने हरे-भरे पौमोसे, सौटकर पाती हुई सुन्दुर  
 हुआक मोमोसे और हुदककी जलती हुई अग्निसे ये आश्रम कैसे सुहावने लग रहे है ॥३८॥ बेलो !  
 ये कमल इस समय भुँद चले, फिर भी पल भरके लिये अपना मुँह थोड़ा-सा इसलिये खुला  
 रखे हुए है कि जो औरि बाहर रह गए हों उन्हें हम प्रेमसे भीतर बसा सें ॥३९॥ हे  
 सुन्दरी ! बहुत दूरपर सूर्यकी हल्की-सी झलक दिलाई पड़नेसे पच्छिम दिशा उस कन्याके समान  
 लग रही है जिसने अपने माथेपर केसरसे भरे बन्धुजीवके फूलका तिलक सजा रखा हो ॥४०॥  
 किरणोकी गर्मी भी आनेवाले और सहस्रोके भ्रुणमें रहनेवाले बालसिलप आदि क्षुद्र इस धाम  
 सूर्यके रखने थोड़ेकी भसा लगनेवाला सामवेद गा-भाकर उस सूर्यकी स्तुति कर रहे हैं जिन्हीने  
 इस धाम अपना तेज अग्निको सौंप दिया है ॥४१॥ दिनकी समुद्रमे दुमोत्रर और अपने उन  
 थोड़ेको लिए हुए सूर्यं भस्ताचक्षणी ओर जा रहे है जिनके तिर नोचैनी ओर उतरनेके  
 कारण भुके हुए हैं, जिनके कानोंकी पीरिया रह-रहकर पालोंपर सुल जाती हैं और जिनके केसर  
 कंधेपर रखे हुए सूर्यसे सब-सगर्कर छितरा गए हैं ॥४२॥ सूर्यके छिपते ही शारा प्राणास सोया

खं प्रसुप्तमिव संस्थिते स्वौ तेजसो महत ईदृशी गतिः ।  
 तत्प्रकाशयति यावदुद्गतं मीलनाय एतु तावतश्च्युतम् ॥४३॥  
 संध्ययाप्यनुगतं रचेर्वपुर्वन्दमस्तशिखरे समर्पितम् ।  
 येन पूर्वमुदये पुरस्कृता नानुयास्यति कथं तमाषदि ॥४४॥  
 रक्तपीतकपिशः पयोमृचां कोटयः कुटिलकेशि मान्त्यमूः ।  
 द्रक्ष्यसि त्वमिति संध्ययानया वर्तिकाभिरिव साधुमण्डिताः ॥४५॥  
 सिंहकेसरतटासु भूसृतां पल्लवप्रसविषु द्रुमेषु च ।  
 पश्य घातुशिखरेषु भानुना संविभक्तमिव सांध्यमातपम् ॥४६॥  
 अद्विराजतनये तपस्विनः पायनाम्बुविहिताञ्जलिक्रियाः ।  
 ब्रह्म गूढमभिसंध्यमादताः शुद्धये विधिविदो गृह्यन्त्यमी ॥४७॥  
 तन्मुहूर्धमनुमन्तुमर्हसि प्रस्तुताय नियमाय मामपि ।  
 त्वां विनोदनिपुणः सतीजनो वस्त्रुवादिनि विनोदयिष्यति ॥४८॥  
 निर्विशुज्य दशनच्छदं ततो वाचि भर्तृश्वधीरयापरा ।  
 शैलराजतनया समीपगामाललाप विजयामहेतुकम् ॥४९॥  
 ईश्वरोऽपि दिक्सास्थयोचितं मन्त्रपूर्वमनुवस्थिषान्विधिम् ।  
 पार्यतीमवचनामख्यपया प्रत्युपेत्य पुनराह सस्मितम् ॥५०॥

दृमा-या जान पड़ रहा है । देतो ! तेजस्वियोंकी ऐसी ही बात होती है कि वे जहाँ निकलते है वहाँ उजाला हो जाता है और जहाँ वे छिपते है वहाँ अंधेरा छा जाता है ॥४३॥ देतो ! पूजनीय सूर्य भस्त्रावलीको चले तो सन्ध्या भी उनके पीछे पीछे चल ही, क्योंकि तदके उदयमे साय जी सूर्यके प्रागे-भागे रही वह सूर्यकी विपत्तिके समय अपना साथ भसा कई छोड़ दे ॥४४॥ हे धुंधराले बालोवाली ! ये सामने माल-बीने धीरे धीरे बादलके टुकड़े फँसे हुए ऐसे लग रहे हैं मानो सन्ध्याने उन्हें यह समझकार लुलिकासे रग दिया हो कि तुम उन्हें देखोगी ॥४५॥ हिमालयके सिंहकि लाल-लाल नैसरोकी, नये-नये पसोते लड़े हुए मृतोकी और रगोन मातुयाली हिमालयकी बोटियोंकी देखनेसे ऐसा जान पड़ रहा है मानो भस्त्र होते हुए सूर्यने अपनी खाल भूप इन सबको बाँट ली है ॥४६॥ हे पार्वती ! सब क्रिया जाननेवाले ये तपस्वी, पवित्र असते सूर्यकी सन्ध्या समय आर्य देवर बडी घट्टाके साथ अपनी आत्म-भुक्तिने लिये रहस्य भरे मायनी मन्त्रय जप पर रहे हैं ॥४७॥ हे निठबोली ! अब साँझ हो चली है, इसलिये तुम भी मुझे थोड़ी देरकी छुट्टी दो तो मैं सन्ध्या कर दानू । उतनी देर तक मनबहलावके फायमे चतुर सुन्दरी सखियां तुम्हारा मन बहलाती रहेंगे ॥४८॥ यह सुनकर पार्वतीजीने महादेवजीको बात मनसुतो-सी करके अपना मोठ विषय दिया और पास बैठी हुई विजयासे उन्कोमे इयर-उचरकी गेसिर-पँरकी बातें छेद थी ॥४९॥ मन्त्रोंके साथ अपनी सन्ध्या पूरी करके महादेवजी उन पार्वतीजीके वास गर्होये जो पुष्पी सावनर रुठी हुई बैठी थी । महादेवजी उनसे मुस्कराते हुए बहने लये ॥५०॥ बिना बातके श्लोप करने

मुञ्च कोपमनिमित्तकोपने संध्यया प्रणमितोऽस्मि नान्पया ।  
 किं न वेत्ति सहधर्मचारिणां चक्रवाकसमवृत्तिमात्मनः ॥५१॥  
 निर्मितेषु पितृषु स्वयंभवा या तनुः सुतनुः पूर्वमुज्जिता ।  
 सेयमस्तमुदयं च संवते तेन मानिनि ममात्र गौरवम् ॥५२॥  
 तामिमां तिमिरघृद्धिपीडितां शैलराजतनयेऽधुना स्थिताम् ।  
 एकतस्तटतमालमालिनीं परय घातुरसनिम्नगामिव ॥५३॥  
 सान्ध्यमस्तमितशेषमासपं रक्तलोसमपरा विभर्ति दिक् ।  
 सांपराययसुधासशोखितं मण्डलाग्रमिव तिर्यगुज्जितम् ॥५४॥  
 यामिनीदिवससन्धिसम्भवे तेजसि व्यवहिते सुमेरुणा ।  
 एतदन्धतमसं निरङ्कुशं दिक्षु दीर्घनयने विजृम्भते ॥५५॥  
 नोर्ध्वमीक्षणागतिर्न चाप्यथो नाभितो न पुरतो न पृष्ठतः ।  
 लोफ एष तिमिरौषधेष्टितो गर्भवास इव वर्तते निशि ॥५६॥  
 शुद्धमाविलमयस्वितं चलं ब्रह्मार्जवगुणान्वितं च यत् ।  
 सर्वमेव तमसा समीकृतं धिङ्महत्त्वमसतां हृतान्तरम् ॥५७॥  
 नूनमुन्नमति यज्वनां पतिः शार्ध्वस्य तमसो निपिद्वये ।  
 पुण्डरीकमुष्टिं पूर्वदिङ्मुखं केतकैरिव रजभिराहतम् ॥५८॥

वाली मानिनी ! देतो, क्रोध न करो ! मैं सन्ध्या करने ही तो गया था । सदा तुम्हारे ही साथ  
 धर्मका पालन करनेवाले मुझको क्या तुम एकलके बंसा सच्चा प्रेमी नहीं समझती हो ॥५१॥  
 देखो सुन्दरी ! ब्रह्माने जब पितरोने रखा था उस समय उन्होंने अपनी एक छोटीसी मूर्ति  
 बना छोड़ी थी । वही मूर्ति भ्रूयंदय और सूर्यास्त के समय सन्ध्याके रूपमें पूजी जाती है । इसीलिये  
 हे कृष्णवाली ! मैं भी सन्ध्याका इतना ध्यान करता हूँ ॥५२॥ हे पार्वती ! एक औरसे  
 बने हुए सन्ध्याकरके पिरी हुई सन्ध्या इस समय ऐसी जान पड़ रही है मानो पहले हुए गेरुकी  
 धाराके एक किनारे तमालने पेड़ छाए हुए हो ॥५३॥ और दूसरी ओर अस्त होनेके  
 बचे हुए सन्ध्याके प्रकाशकी लाल रेखा पच्छिममें ऐसी दिखाई पड़ रही है मानो  
 मुञ्ज-भूमिमें टेढ़ी पनाई हुई सहस्ररी बरवास हो ॥५४॥ हे बरो-बरो प्राचीनवासी !  
 सूर्यास्त हो जानेके रात और दिनका मेल करनेवाली ज्ञानका सब प्रकार सुमेरु पर्वतने  
 जीवनमें भा जानेसे जाता रहा और अब यह धोर भँपेरा मनमाने ढंगसे चारों ओर फैला  
 जा रहा है ॥५५॥ भँपेरा फैल जानेसे न तो इस समय ऊपर कुछ दिखाई दे रहा है न नीचे,  
 न पास-पास, न सामे पीछे । इस रातने समय सारा सारा इस प्रकार भँपेरेमें घिर गया है जैसे  
 गर्भवती जिन्मीने लिपटा हुआ वास्तव पटा हो ॥५६॥ इस समय भँपेरेमें, उजले ओर मँले, राते ओर  
 चलने, सीधे ओर टेडे सब एकसे हो गए हैं । नाहने जाय ऐसे दुष्टोका रात, जहाँ मले-पुरे एक पाट  
 उगारे जाते हो ॥५७॥ हे यज्जके सनात भुक्तवासी ! पूर्वं दिशाका प्रगता भाग मुझ-मुझ ऐसा  
 उनात दिशाई पड़ रहा है मानो वेनवीके पुनका पराग उधर पंवा हुआ हो । राते यह निरधय

मन्दरान्तरितमूर्तिना निशा लक्ष्यते शशभृता सतारका ।  
 त्वं मया प्रियसखीसामागता श्रोष्यतेव वचनानि पृष्ठतः ॥५६॥  
 रुद्धनिर्गमनमादिनक्षयात्पूर्वदृष्टतनु चन्द्रिकास्मितम् ।  
 एतदुद्गिरति चन्द्रमण्डलं दिग्दृश्यमिव रात्रिनोदितम् ॥६०॥  
 परय पङ्कफलिनीफलत्विपा विम्बलाञ्छितवियत्सरोम्भसा ।  
 विप्रकृष्टविवरं हिमांशुना चक्रवाकमिश्रुनं विहग्न्यते ॥६१॥  
 शक्यमोपधिपतेर्नवोदयाः कर्णपूरचनकृते तव ।  
 ध्रमगल्भयस्यचिकोमलारच्छेचुमग्रनखसंम्पुटैः कराः ॥६२॥  
 अङ्गुलीभिरिव केशसंचयं सच्चिगृह्य तिमिरं मरीचिभिः ।  
 ह्रुद्मलीकृतसरोजलोचनं शुम्भतीव रजनीमुखं शशी ॥६३॥  
 पश्य पार्वति नवेन्दुरश्मिभिर्भिन्नसान्द्रतिमिरं नभस्तलम् ।  
 लक्ष्यते द्विरदभोगदूषितं सप्रसादमिव मानसं सरः ॥६४॥  
 रक्तभायमपहाय चन्द्रमा लात एष परिशुद्धमण्डलः ।  
 विक्रिया न खलु कालदोषजा निर्मलप्रकृतिषु स्थिरोदया ॥६५॥

जान पड़ रहा है कि रातका प्रवेग दूर करनेके लिये चन्द्रमा निकले बसे जा रहे हो ॥५६॥ पद्यवि  
 मानी चन्द्रोदय हुआ नहीं है पर भाग्यशामे तारे निकल भाए हैं । इसलिये इस समय मन्दराक्षतके  
 पीछे छिपे हुए चन्द्रमा इस तारोवाली राशमे ठीक ऐसे लगते हैं जैसे मैं मुन्हारे पीछे घाकर तुम  
 धोणोकी बात उस समय सुनता हूँ जब तुम अपनी हलियोके साथ बैठकर बातें करती होती हो ॥५६॥  
 जो चन्द्रमा दिनभर दिखाई नहीं देता था, वह इस समय निकला हुआ ऐसा लगता है मानो रातके  
 कहनेसे यह चाँदनीके रूपमे मुस्कुराता हुआ पूर्व दिशाके तव भेद जीते दे रहा हो ॥६०॥ हे  
 पार्वती ! यह उदय होता हुआ चन्द्रमा इस समय पके हुए त्रियंगुके फलके समान लात दिखाई पड़  
 रहा है । इस समय भाकाशका चन्द्रमा धीरे लातके पानीमे पडो हुई चन्द्रमाकी परछाई दोनों ऐसे  
 मगते हे मानो रात हीनित चकवी-चकवेवा जोड़ा दूर-दूर जा पडा हो ॥६१॥ चन्द्रमाकी निखरती  
 हुई नई किरणों मे भौर कोमल बौके अँटुयोके समान गोमल हैं । तुम बाहो तो अपने बनकूल  
 मनानेके लिये अपने नखोको गोबसे उगडे छोड लो ॥६२॥ इस समय कमल मुँद गए हैं धीरे  
 चाँदनी फल जानेसे प्रवेग मिट गया है । इसलिये इस समय चन्द्रमा ऐसा भग रहा है मानो वह  
 अपनी किरण-रूपी उँगनियोसे रात-रूपी नायिकाके मुँहपर फँसे हुए भँधेरे-रूपी बालोंको  
 हटाकर चसका मुँह चूम रहा हो धीरे रात भी उस चुम्बनका रस लेनेके लिये अपने  
 कमल-रूपी नेत्र भूँडे बँठी हो ॥६३॥ हे पार्वती ! उडे हुए चन्द्रमाकी किरणोंसे  
 पता प्रवेग मिट जानेपर भाकाश ऐसा जान पड़ रहा है मानो हाथियोंकी जल-श्रीशारे  
 नैदाना भावधरोवर निर्मल हो चला हो ॥६४॥ धय चन्द्रमाका चण्डल लताई छोड़कर पीरे-  
 पीरे उजाता होने लगा है । ठीक जो है, क्योंकि जो निर्मल स्वभाववाले होते हैं उनमें यदि



उन्नतेषु शशिनः प्रभा स्थिता निम्नसंश्रयपरं निशातमः ।  
 नूनमात्मसदृशी प्रकल्पिता वेधसा हि गुणदोषयोर्गतिः ॥६६॥  
 चन्द्रपादजनितप्रवृत्तिभिश्चन्द्रकान्तजलविन्दुभिर्गिरिः ।  
 मेखलातरुषु निद्रितानमून्बोधयत्यसमये शिखण्डिनः ॥६७॥  
 कल्पवृक्षशिखरेषु संप्रति प्रस्फुरद्भिरिव पश्य सुन्दरि ।  
 हारयष्टिरचनामिवांशुभिः कर्तुमागतकुतूहलः शशी ॥६८॥  
 उन्नतावनतभाधवचया चन्द्रिका सतिमिरा गिरेरियम् ।  
 भक्तिभिर्बहुविधाभिरर्पिता भाति भूतिरिव मच्चहस्तिनः ॥६९॥  
 एतदुच्छ्वसितपीतमैन्दवं बोद्धुमन्नममिव प्रभारसम् ।  
 मुक्तपटपदविरागमञ्जसा भियते कुमुदमानिवन्धनात् ॥७०॥  
 पश्य कल्पतरुलम्बि शुद्धया ज्योत्स्नया जनितरूपसंशयम् ।  
 मारुते चलति चण्डिके बलाद्द्वयज्यते विपरिवृत्तमंशुकम् ॥७१॥  
 शक्यमङ्गुलिभिरुत्थितैरघः शाखिना पतितपुष्पपेशलैः ।  
 पत्रजर्जरशशिप्रमालर्वैरेभिरुत्कल्पितुं तवालकान् ॥७२॥

समयके केरते सभी बौई होय सा भी जाता है तो वह बहुत दिनोतक 'नही ठिक पाता ॥६५॥  
 पर्वतोकी चोटियोपर तो पाँदनी फँस गई है पर घाटियों धीर लड़कोंमें सभी धँवेरा बना हुआ  
 है । सपमुच ग्रहाने कुछ धीर दंपती कुछ बाल ही ऐसी बनाई है कि कुछ तो ऊँचे पर रहना  
 है धीर होय नीचेकी धीर बना जाता है ॥६६॥ चन्द्रमाकी किरण पर्वतेके कारण हम पर्वतके  
 चन्द्रबाल मणिकी चट्टानोंके जलकी बूँदें टपक रही हैं । इसलिये पर्वतकी डातपर धूसीकी छायामें  
 सोए हुए मोर, इन बूँदोंकी वर्षाकी बूँदें समनवर बिना वर्षा भाए ही जाग लड़े हुए हैं ॥६७॥  
 है सुन्दरी ! इस समय कल्पवृक्षकी फुनफियोपर चमकती हुई किरणोंको देखकर ऐसा जान पड़े  
 रहा है मानो चन्द्रमा अपनी किरणोंके कल्पवृक्षोंमें चन्द्रहार बनाने का पहुँचा हो ॥६८॥  
 पहाटने ऊँचेनीचे होनेमें बड़ी लो चालनी बट रही है धीर कहीं धँवेरा है । इसलिये वह ऐसा  
 दिमाई बट रहा है मानो किसी भावाने हाथोपर धनेक प्रकारकी विप्रकारी कर दी गई हो ॥६९॥  
 वह जो भीरोंकी मूत्रने भया हुआ कुमुद गिर रहा है, वह ऐसा सगवा है मानो सति से-लेकर  
 इसने जो मरपेट चालनी की लो लो उमे पचा न बननेके कारण इसका पैठ फट गया हो धीर  
 यह कराह रहा हो ॥७०॥ हे चण्डिके ! कल्पवृक्षमें सटके हुए बपड़ों धीर चन्द्रमाकी निर्मल  
 किरणोंके एक-से होनेके कारण उनमें घोसा हो जाता है, पर बापुके चलनेपर अब बपड़े हिलने  
 लगते हैं तब अपने साथ पता चम जाता है कि यह बपड़ा ही है ॥७१॥ पत्तोंके चोपठे दानपर  
 धरतीपर पड़नेवाली चालनी ऐसी सुन्दर धीर मुदाबनी दिमाई दे रही है जैसे पहाँठे भड़े हुए  
 फूल हो, इसलिये तुम चाहो तो फूलोंके समान दिमाई पड़नेवाले इन चालनीके पूरोंके ही सुन्दर  
 केत मूप दिए जायें ॥७२॥ जैसे नई-नई बट पहली बार मंगोयके टरले-वापती हुई जाने पाँठे-

एष चारुमुसि योग्यतारया युज्यते तरलविम्बया शशी ।  
साध्वसादुपगतप्रकम्पया कन्ययेव नवदीक्षया धरः ॥७३॥  
पाकमिन्नशरकाण्डगौरयोरुल्लसत्प्रकृतिजप्रसादयोः ।  
रोहतीव तव मण्डलेखयोश्चन्द्रविम्बनिहिताच्छि चन्द्रिका ॥७४॥  
लोहितार्कमणिभाजनापितं कल्पवृक्षमधु विभ्रति स्वयम् ।  
त्वामियं स्थितिमतीमुपागता गन्धमादनवनाधिदेवता ॥७५॥  
ध्वार्द्रकेसरसुगन्धि ते मुहं मत्तरक्तनयनं स्वभावतः ।  
अत्र सन्धवसतिर्गुणान्तरं किं विस्रासिनि मदः फरिष्यति ॥७६॥  
मान्यभक्तिरथवा सखीजनः सेव्यतामिदमनङ्गदीपनम् ।  
इत्युदारमभिधाय शंकरस्तामपाययत् धानमम्बिकाम् ॥७७॥  
पार्वतीं तदुपयोगसम्भवां विक्रियामपि सतां मनोहराम् ।  
अप्रतर्क्यविधियोगनिर्मितामाप्रतेव सहकारतां ययौ ॥७८॥  
तत्क्षया विपरिवर्तितहियोर्नेप्पतोः शयनमिद्वरागयोः ।  
सा वभूव धशवर्तिनी द्वयोः शूलिनः सुवदना मदस्य च ॥७९॥  
धूर्णमाननयनं स्तलत्कथं स्वेदमिन्दु मदकारखस्मितम् ।  
आननेन न तु तावदीधरश्चक्षुषा चिरसुमामुहं पयौ ॥८०॥

पास जाती है बँधे ही है सुन्दरी ! मे टिमटिमाती हुई तरंगों भी काँपती हुई चन्द्रमाके पास जा रही है ॥७३॥ हे सुन्दरी ! तुम जो चन्द्रमाकी घोर टकटकी लगाकर बेव रही हो तो वक्रे हुए धारकके समान गोरे-गोरे श्रीर अपनी स्वाभाविक प्रसन्नतासे खिन्ने हुए तुम्हारे गाव ऐसे लप रहे हैं मानो बनपर चढ़नी पड़ती का रही हो ॥७४॥ ओ, तुम्हें यहाँ बँधी हुई देखकर साध सूर्यकान्तामलिके प्यालेमें कल्पवृक्षकी मदिरा लिए हुए गन्धपादनकी वन्देकी प्रपने प्राप तुम्हारी धावमगत करने का पहुँचा है ॥७५॥ तुम्हारी मतवाली भाँसें भी स्वभावसे ही लाल हैं इधरिसे मदिरा पीनेसे भी तुम्हपर कोई विदोष प्रभाव तो पड़ेगा नहीं ॥७६॥ और फिर सखियोंका प्राप्रह टातना भी नहीं चाहिए, इसलिये तो, यह कामको उक्ततासेवाली मदिरा पी ही टाते । यह जुभायनी बात कहकर दारुजोने धटी उदारतासे वह मदिरा पार्वतीजीको पिला दी ॥७७॥ जैसे वरुन्तमें प्रह्लाकी कृपासे मामका पेठ अधिक सुगन्धित होकर सहकार बन जाता है वैसे ही मदिरा पीनेसे पार्वतीजीका रूप कुछ ऐसा हो गया कि उनकी स्वाभाविक सुन्दरता और भी बढ गई ॥७८॥ मदिरा पीनेसे सुन्दर मुखवाली पार्वतीजी देखी मदमे चूर होकर धरुजीकी चोदने गिरीं कि उनकी लाल जाती रही, उनकी काम बढ गया और उरी दखाने वे धवनापारमें पहुँच गईं ॥७९॥ पार्वतीजीकी भाँसें चञ्चलतासे नाच रही थी मदके कारण मुँहसे खोपी बोली नहीं निकल रही थी, मुँहपर पसीनेकी बूँद छलक रही थी और जिना बातके ही वे हँस-हँस पड़ रही थीं । पार्वतीजीके

तां, विलम्बितपनीयमेखलामुद्बद्धञ्जघनभारदुर्वहाम् ।

॥ ध्यानसंभृतविभूतिरीश्वरः प्राविशन्मणिशिलागृहं रहः ॥८१॥

तत्र हंसधवलोत्तरच्छदं जाह्नवीपुलिनचारुदर्शनम् ।

॥ अध्वशेत् शयनं प्रियासखः शारदाभ्रमिव रोहिणीपतिः ॥८२॥

क्लिष्टकेशमवलुप्तचन्दनं व्यत्ययार्पितनखं समत्सरम् ।

॥ तस्य तच्छिदुरमेखलामुष्णं पार्वतीरतमभून्न तृप्तये ॥८३॥

केवलं प्रियतमादयालुना ज्योतिषामवनतासु पङ्क्तिषु ।

॥ तेन तत्प्रतिगृहीतवत्तसा नेत्रमीलनकुतूहलं कृतम् ॥८४॥

स व्यबुध्यत बुधस्तवोचितः शासकुम्भकमलाकरैः समम् ।

॥ मूर्च्छनापरिगृहीतकैशिकैः किञ्चरैरुपसि गीतमङ्गलः ॥८५॥

तौ कृणुं शिथिलितोपगूहनौ दम्पती चलितमानसोर्मयः ।

॥ पद्मभेदपिशुनाः सिपेधिरे गन्धमादनवनान्तमारुताः ॥८६॥

ऊरुमूलनखमार्गराजिभिस्तत्पत्रां हृत्तविलोचनो हरः ।

॥ वाससः प्रशिथिलस्य संयमं कुर्वती प्रियतमामवारयत् ॥८७॥

उस मुखकी भगवान् संकरने अपने मुहसे चूमा नहीं बरन् बहुत देर तक अपनी प्रकृति ही उनकी सुन्दरताकी पीते रहे ॥८०॥ सोनेकी करघनी लटकाकर अपने भारी निद्रामयोंके बोझसे धीरे-धीरे चलनेवाली पार्वतीकी लिए हुए भगवान् शिव, मणिशिलाके गने हुए जस सुनसान परमें बहूँचे जहाँ मुखकी सभी सामग्रियां उनके सोचने भरसे उत्पन्न हो गई थी ॥८१॥ जैसे रोहिणीके पति यश्रमा जगले बादलोंमें किशाम करते-ये जान पड़ते हैं वैसे ही उस रायनागरमें हंसके समान हजली चारदरवाले और बंगालीरके समान मनोहर दिखाई देनेवाले पलंगपर भगवान् संकर अपनी प्रियतमाके साथ लेट गए ॥८२॥ दोनों एक दूसरेको हृदयके लिए तुले हुए थे, इसलिये दोनों और संकरजीने ऐसा संभोग किया कि दोनोंके केश छितरा गए, चन्दन पुष्ट गया, मल-बिह्व भी हथके हथर हो गए और पार्वतीजीकी करघनी भी टूट गई फिर भी पार्वतीजीके साथ संभोग करके संकरजीवन जी नहीं भरा ॥८३॥ पर रातके पिछले पहरमें जब तारे छिपने जा रहे थे तब केवल अपनी प्रियतमापर दया करके संकरजीने उपाके हाथोंमें बंधे-बंधे ही सोनेके लिये अपनी प्रकृति मूंद ली ॥८४॥ और जब सुनहले कमल खिलने लगे और बौद्धा-वारी गन्धर्व मलाप भरी हुए संकरजीका रंगस-भान करने लगे, उस उपा-कालमें देवताओंके पूज्य सिवजी जाग उठे ॥८५॥ उस समय गन्धमादन ननका जो धवन मानसरीवरसे सहृदियं उद्रता हुआ मन्द-मन्द बह रहा था और जिसे छू जानेसे ही मानो कमल खिलते जा रहे थे, उस वायुका उन दोनोंने बोझी देर तक मलय होकर ध्यानन्द लिया ॥८६॥ वायुके झोंकेसे बपड़ा हट जानेसे पार्वतीकी नंगी जाँघोंपर जो नखोंके निन्दुओंकी पीत दिखाई दे रही थी उसे सिवजी एकटक होकर देखा रहे थे और जब अपने उपड़े हुए कपड़ेको पार्वतीजी ठीक करने लगे तो सिवजीने उनका

स प्रजागरकपायलोचनं गाढदन्तपरिताडिताधरम् ।  
 आकुलालकमरैस्त रामवान्प्रेक्ष्य भिन्नतिलकं प्रियासुरम् ॥८८॥  
 तेन भिन्नविषयोत्तरच्छदं मध्यपिण्डितविस्त्रमेखलम् ।  
 निर्मलेऽपि शयन निशात्पये नोज्झितं चरखरागलाञ्छितम् ॥८९॥  
 स प्रियासुरसं दिवानिशं हर्षष्टुद्धिजननं सिपेविपुः ।  
 दर्शनप्रणयिनामदर्यतामालयाम विजयानिवेदनात् ॥९०॥  
 समदिवसनिशीथं सङ्घिनस्तत्र शंभोः

शतमगमदतूनां साप्रमेका निशेव ।  
 न तु सुरतमुखेभ्यस्त्रिभृतृष्यो यभूव  
 ज्वलन इव समुद्रान्तर्गतस्तज्जलौचैः ॥९१॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृतो कुमारसम्भवे महाकाव्ये  
 उमासुरतवर्णन नामाष्टमः सर्गः ॥

हाथ धाम लिया ॥८७॥ रातभर जागनेसे पाबंतीजीरी बसिं साल हो रही थी, मोठीपर धिबनीके  
 दाँतोंके घाव भरै पडे दे, ठँकारे हुए केश इधर-उधर छितरा गये थे और उनका तिलक भी धुँझ  
 गया था । भयनी प्रियतमाके ऐसे मुसको देखकर प्रेमी भगवान् खँकर मगन हो चडे ॥८८॥  
 जिस पलंगपर वे क्षीप थे उसकी चादरमें सतवटें पड गई थी, बिना डोरीवाली दूटी भरपनी  
 उधरपर एकट्ठी हुई पडी थी और उधरपर कहीं-वहीं पाँवके महावरकी छाप भी जहाँ-तहाँ लगी हुई  
 थी । यह पलंग महादेवजीको ऐसा ध्यारा हो गया था कि दिन निकल घानेरर भी जहाँनि पन्नग  
 छोडनेका नाम न लिया ॥८९॥ प्रियतमाके मुख बढानेवासे श्रीछोक्य रस दिन-रात पीनेकी इच्छा  
 कारोवासे शिवजीकी सह दशा हो गई कि यदि कोई उरने दसंनको घाता तो निजवासे वृचना पाने-  
 पर भी वे इच्छंत देतेरुको इच्छा त.निकलते ॥९०॥ प्रियात् इच्छते इच्छते इच्छितरत पाबंतीजीके  
 साथ समीग करते हुए सँकडों वर्ष ऐसे बिसा दिए मानो एक रात हो । पर भगवान् धकरजीका  
 भी इतने रंभोगसे भी उसी प्रकार नहीं भरा जैसे समुद्रने जलगे रहनेपर भी बडवानलकी प्यास  
 मही बुक पाती ॥९१॥

महाकवि श्रीकालिदासके रचे हुए कुमारसम्भव महाकाव्यमें उमा-पाबंतीजीरी  
 नाम-छोटा वर्णन नामका धाठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

## ॥ नवमः सर्गः ॥

तथाविधेऽनङ्गरसप्रसङ्गे मुखारविन्दे मधुपः प्रियात्याः ।  
 संभोगवेश्म प्रविशन्तमन्तर्ददर्श पारावत्तमेकमीशः ॥१॥  
 सुकान्तकान्तामणितानुकारं कूजन्तमाधूर्णितरक्तनेत्रम् ।  
 प्रस्फारितोन्नम्रयिनम्रकण्ठं मुहुर्मुहुर्न्यञ्चितचारुपुच्छम् ॥२॥  
 विमृह्यलं पक्षतिपुग्ममीपद्मानमानन्दगतिं मदेन ।  
 शुभ्रांशुवर्णं ऋटिलाप्रपादमितस्ततो मण्डलकैश्वरन्तम् ॥३॥  
 रतिद्वितीयेन मनोमवेन हृदात्सुधायाः प्रविगाहमानात् ।  
 तं वीच्य फेनस्य चयं नवोत्थमिवाभ्यनन्दत्क्षणमिन्दमौलिः ॥४॥  
 तस्याकृतिं कामपि वीच्य दिव्यामन्तर्गवरत्नप्रविहंगमग्निम् ।  
 विधिन्यतन्संविधिदे स देवो भ्रूमङ्गमीमश्च रुपा बभूव ॥५॥  
 स्वरूपमास्थाय ततो हुवाशस्त्रसन्वलत्कम्पकृताञ्जलिः सन् ।  
 प्रषेपमानो नितरां स्मरारिमिदं बचो व्यक्तमथाध्युवाच ॥६॥  
 असि त्वमेको जगतामधीशः स्वर्गोक्तसां त्वं विपदो निर्हसि ।  
 ततः सुरेन्द्रप्रमुखाः प्रभो त्वामुपासते दैत्यवरैर्विधूताः ॥७॥

## नवां सर्गः ,

जिन विगो पारंवीजीके मुख-कमलपर मीरेके समान चट्टू होकर शिवजी संभोग कर रहे थे  
 वही दिने एक बार शिवजी बोलते क्या है कि जिस घरमें वे संभोग कर रहे थे उसीमे एक कबूतर  
 पुत्र भाया है ॥१॥ यह कबूतर बंसा ही मीठा बोल रहा था जैसे संभोगके समय मुन्दरियां बोलती  
 है । उसकी लाल-लाल भालें इधर-उधर नाच रही थीं, वह कभी घपना कठ ऊंचा कर लेता था, कभी  
 झुका लेता था और बार-बार अपनी पूंछ सिकोड़ता जाता था ॥२॥ चन्द्रनाके समान उनले  
 रगवाना कबूतर अपने पंके समेटे हुए दोनों पक्ष सोले मस्तीका घानन्द नेता हुआ इधर-उधर उड़ता  
 हुआ चक्कर लगा रहा था ॥३॥ उस कबूतरको देखकर शिवजी बड़े प्रसन्न हुए क्योंकि वह उन्हें  
 ऐसा दिखाई दे रहा था मानो वह उस श्रुत मुष्करी गई फेनका पिठ हो जिसमें यामदेवने रतिवे  
 साथ हुनकी लगा-लगाकर नहाया हो ॥४॥ पर जब गंगवानु क्षकले उसपर रग-रग कुछ देवताओं  
 या-सा देखा तो उनका भाषा उनका और ध्यान लगाते ही वे समझ गए कि यजिन ही यह कपट वेदा  
 बनाकर प्राया है । यह देखते ही ओषधे उनकी टेढ़ी भौंहें उगवनी बनकर तन गई ॥५॥  
 शिवजीका यह रूप देखकर प्रसन्ने घपना सज्जा रूप बनाकर, दोनों काँपते हुए हाथ जोड़कर, उरवे  
 मत्तन्त धरधरते हुए, सब बातें सच्ची-सच्ची कह सुनाई-॥६॥ गगबन् ! उधारके भाष ही तो  
 एक स्वामी हैं । प्राप ही स्वयंमें रहनेवाले देवताओंकी विपत्तियोंकी मिटानेवाले है । हे प्रभो ! इगोलिए

त्वया प्रियाप्रेमवशंवदेन शतं व्यतीये सुरतादृतनाम् ।  
 रहःस्थितेन त्वदवीक्षणार्तो दैन्यं परं प्राप सुरैः सुरेन्द्रः ॥ ८ ॥  
 त्वदीयसेवावसरप्रतीक्षैरभ्यर्धितः शक्रमुखैः सुरैस्त्वाम् ।  
 उपागतोऽन्वेष्टुमहं विहंगरूपेण विद्वन्समयोचितेन ॥ ९ ॥  
 इति प्रभो चेतसि संप्रधार्य तवोऽपराधं भगवन्धमस्व ।  
 परामिभूता वद किं क्षमन्ते कालातिपातं शरणाधिनीऽमी ॥१०॥  
 प्रभो प्रसीदाशु सृजान्मपुत्रं यं प्राप्य सेनान्यमसौ सुरेन्द्रः ।  
 स्वर्लोकलक्ष्मीप्रभृतामवाप्य जगत्त्रयं पाति, तव प्रसादात् ॥११॥  
 स शंकरस्तामिति जातवेदोविज्ञापनामर्थवतीं निश्रम्य ।  
 अभूत्प्रसन्नः परितोषयन्ति भीर्भिर्गिरीशा रुचिरामिरीशम् ॥१२॥  
 प्रसन्नचेता मदनान्तकारः स तारकारेर्जयिनो भवाय ।  
 शक्रस्य सेनाधिपतेर्जयाय व्यचिन्तयञ्चेतसि भावि किंचित् ॥१३॥  
 पुगान्तकालाग्निमिवाविपद्यं परिच्युतं मन्मथरुक्मभङ्गात् ।  
 रसान्तरेतः स हिरण्यरेतस्यधोर्ध्वरेतास्त्वदमोघमाधात् ॥१४॥  
 अधोऽप्यवाप्यानिलदूषितान्तर्विशुद्धमादर्शमिवात्मदेहम् ।  
 चभार भूम्ना सहसा पुरारिरेतः परिचेपकुवर्षमग्निः ॥१५॥

मादि देवता जब-जब देसोके हारते हे तब-तब वे आपकी ही शरणमे आते हैं ॥७॥ आपने तो प्रियाने प्रेममे ही बर्षे तो सभोग मे ही बिता दिए और आप यही ऐसे बनेलेमे रहने लगे प्राणवा दर्शन ॥ पातेके इन्द्र और दूरे देवता लोग सब बडे भवराने लगे थे ॥८॥ हे भगवन् ! य इन्द्र मादि देवता भय आपके दशनके लिये बैठे घाट जोह रहे हे । उन्हीके कहनेसे मैं आप-ईवने निपत्ता या । मैंने मही जानकर पक्षीवा रूप बना लिया कि आप इस समय सभोग कर होमे ॥९॥ इसलिये हे प्रभो ! आप मेरा अपराध क्षमा कीजिए । आप ही लोग देखिए कि मोसे हारकर और भयमानित होकर आपकी शरणमे आए हुए देवता लोग मला कितने दिनोतक मारे बैठे रह सकते थे ॥१०॥ इसलिये हे प्रभो ! आप प्रसन्न होकर खीझ ही अपने योगसे एक पुत्र उत्पन्न कीजिए जिसे सेनापति बनाकर इन्द्र भगवान् फिरसे स्वर्ग-लोकके स्वामी बनकर की कृपासे लोगो लोकोका पालन करें ॥११॥ अग्निकी ठीक-ठीक बात सुनकर शंकरजीका क्रोध ॥ रहा । क्योंकि जिन्हे बात करतेका बड्ड आता हे वे अपनी भावोके अपने स्वामियोको प्रसन्न ही लेते हैं ॥१२॥ तब कामदेवको बलानेवाले हूँधमुख शंकरजीने ऐसा पुत्र उत्पन्न करनेका उर किया जो तारक राक्षसको जीत लके और सेनापति बनकर इन्द्रको जिता सके ॥१३॥ अपने को ऊपर खीच सबनेपाले शंकरजीका अचूक योग्य जो प्रलयवी धागके समान विद्योते सदा न पर नेवाला था, संभोगके अन्तमे निकलै पड़ा उसे शंकरजीने अग्निगे दे दिया ॥१४॥ उसे लेते हैं

त्वं सर्वभद्रो भव मीमकर्मा कुष्ठाभिभूतोऽनलधूमगर्भः ।  
 इत्थं शशापाद्रिसुता हुताशं रुष्टा रत्नानन्दसुखस्य भङ्गात् ॥१६॥  
 दक्षस्य शापेन शशी चयीव प्लुप्तो हिमेनेव सरोजकोशः ।  
 वह्निरूपं वपुरुग्ररेतश्चयेन वह्निः किल निर्जगाम ॥१७॥  
 स पावकालोकस्या विलवां स्मरत्रपास्मेरचिनम्रवक्त्राम् ।  
 विनोदपामास गिरीन्द्रपुत्रीं शृङ्गारगर्भैर्मधुरैर्वचाभिः ॥१८॥  
 हरो विकीर्णं घनघर्मतोयैर्नेत्राब्जनाड्यं हृदयप्रियायाः ।  
 द्वितीयकौपीनचलाञ्चलेनाहरन्मृगेन्दोरफलङ्गिनोऽस्याः ॥१९॥  
 मन्देन स्थिन्नाद्गुलिना करेण कम्पेन तस्या वदनारविन्दात् ।  
 परामृशान्घर्मजलं ज्वहार हरः सहेलं व्यजनानिलेन ॥२०॥  
 रतिश्लथं तत्कवरीकलापमंसावसक्तं विगलत्प्रघ्ननम् ।  
 स पारिजातोद्भवपुष्पमय्या स्रवां वयन्धामृतमूर्तिमौलिः ॥२१॥  
 कपोलपाव्यां मृगनामिचित्रपत्रावलीमिन्दुमुखः सुमुख्याः ।  
 स्मरस्य सिद्धस्य जगद्विभोहमन्त्रावरश्रेणिमिबोल्लिलेत ॥२२॥

अग्निवा उज्जवा शरीर एवम एता मृगता पठ गया जैश मूहरी आपसे वषण धूपता पठ जाता है ॥१६॥ उपर समीपके मुखम इस प्रकार शया पठ जानेसे पार्वतीजी भी आनन्द-बुला हो उठी और उन्हें अग्निवा शाप दिया-जामो, तुम प्राणसे पवित्र प्रवचन सब बस्तुएं छोडो और राताली बस्तुमो को जतानेवा भयानक काम करो, जोडी हो जामो और सदा पुण्ये मरे रहो ॥१६॥ महादेवजीका बीर्य लेनेसे अग्निवा रूप ऐसा मिष्ट गया जैसे दक्षने आपसे दाय रोषवाले चन्द्रमाया रूप, या पालीये मारे हुए कमलके बोझका रूप । वही रूप लेकर अग्नि वह्नि वाहर निकले ॥१७॥ अग्निने अचानक समीपके समय ही उन्हें देस किया था इमीलिये पार्वतीजी कोषके मारे प्राणने वाहर हो गई । वाम और दाहिने मारे अपनी भ्रम मुखराहुदमे दिगती हुई और नीना मूह किए दिगती बँडी हुई पार्वतीजीको प्रेम मरे भीठे वषणमि शरर भगवान् बचान लगे ॥१८॥ पने पत्नीनेकी धंसाके कारण पार्वतीजीकी भाँजोरा प्राँजन क्लवे मूहपर इपर उपर फँस गया था । तमरनीकी प्राण-प्रियाये मुषान्द्रपर वे प्राँजनने किन्हु ऐसे लय रहे थे मानो वे चन्द्रमाके बचन हो । महादेवजीने फँसा हुआ प्राँजन मरने मरनेसे रोपीनगे पीड़ जाता ॥१९॥ धरती नीने संगुनियो बाले हाथीको पधेरे समान मदनकर निवनीने धीरे-धीरे पार्वतीने मुख कमतरा मव पत्नीना मुता दिया ॥२०॥ मनीपने समय बुझा मुख जागि पावतीजीके वाम वरुणपर फँस गए थे और जूडेमें लगे हुए तब पुन भी निवतन मन थे । उस जूडेको महादेवजीने फिरसे पारिजातके फूलोकी मातासे वाप दिया ॥२१॥ चन्द्रने समान मुखरानि मरनीने सुन्दर मुखवापी पार्वतीजीके माल कम्पूरीके लेपके पीत रंग । उने देवकर पट जान पडा मानो वह निवतारी भी मिष्ट कामदेवने शपोमे लिये हुए थे

रथस्य कर्णाभि तन्मुखस्य ताटङ्कचक्रद्वितयं न्यभ्रात्सः ।  
 जगज्जिगीषुर्विषमेषुरेप ध्रुवं यमारोहति पुष्पचापः ॥२३॥  
 तस्याः स कण्ठे विहितस्तनाग्रां न्यघच मुक्ताफलहारवल्लीम् ।  
 या प्राप मेरुद्वितयस्य मूर्ध्नि स्थितस्य गाङ्गाधसुगस्य लक्ष्मीम् ॥२४॥  
 नखत्रयश्रेणिवरे बबन्ध नितम्बविम्बे रशनाफलापम् ।  
 -चलस्यचेतोभृगवन्घनाय मनोभुवः पाशमिव स्मरारिः ॥२५॥  
 भालेक्षणाम्नी स्वयमञ्जनं स गद्गत्वा दृशोः साधु निवेश्य तस्याः ।  
 नवोत्पलाक्षयाः पुलकोपगूढे कण्ठे विनीलेऽङ्गुलिमुज्ज्वर्ष ॥२६॥  
 श्लक्ष्णकं पादसरोरुहाग्रे सरोरहाच्याः किल संनिवेश्य ।  
 स्वमौलिगङ्गासलिलेन हस्तारुण्यत्वमसालथदिन्दुचूडः ॥२७॥  
 भस्मानुलिप्तौ वपुषि स्वकीये सहेलमादर्शतलं विमृज्य ।  
 नेपथ्यलाचम्याः परिभावनार्थमदर्शयक्षीवितवल्लभां सः ॥२८॥  
 प्रियेण दत्ते मण्डिदर्पणे सा संभोगचिह्नं स्ववपुर्विभाव्य ।  
 शपावती तत्र घनाशुरागं रोमाश्चदम्बेन बहिर्बभार ॥२९॥

मम हों जिनसे वह सहायको बन्धन कर लिया करता है ॥२३॥ शकरजीने पार्वतीजीके दोनो दानो मे दो मोल कमल पहना दिए । उनसे इनका मुख ऐसा सुन्दर दिखाई देने लगा मानो यह वामदेवता ऐसा रथ हो जिसपर बैठकर वह तीनों लोकोंने जीतने निकला हो और वे दोनो कमल उठा रथके दोनों पहिए हो ॥२४॥ शकरजीने पार्वतीके घनेमें की मोतियोंका हार पहनाया वह उनसे स्तनीकी घुटियोंकी छूवर छातीपर लटका हुआ ऐसा जान पड़ता था मानो दो सुमेह पार्वतीकी चोटियोंके बगलकी दो धारणें गिर रही हो ॥२५॥ शकरजीने पार्वतीजीके उन नितम्बीपर गरवनी पहना दी जिनपर उनके हाथोंसे बने हुए मणोंके चिह्न धमक रहे थे । वह करवनी ऐसी मगती थी मानो कामदेवने अपने चञ्चल बिल रूपी मृगको बाँधने के लिये फाँस लगायी ही ॥२६॥ उन्होंने अपने ललाटेमे जलनेवाले नेत्रसे स्वयं प्रतिजित पारशर मये कमल जँझी भ्राँडोवाली पार्वतीजीने गयगोमे नज्जल भण्ड दिया और फिर उँगली मे लगा हुआ प्राँजन पोछनेके लिए वह जँझी अपने नीचे कठमे रख ली ॥२६॥ तब उन कमलमयनी पार्वतीजीके चरणवमलके पजोमे शकरजीने महेश्वर सपाकर अपने तिरपर बहती हुई घनाकी धारामे अपने हाथका रथ भी दासा ॥२७॥ यह सब करने बड़े मगन होकर उन्होंने अपने मरम बने हुए धरीरपर बर्षणु रखकर पोछा और फिर अपने प्राणु-प्यारी की तिनारकी सजावट दिखानेके लिये वह दर्पण उनके बाने कर दिया ॥२८॥ शकरजीने हाथसे दिलाए हुए उग दर्पणमे अपने धरीरपर बने हुए सभोगके चिह्न देखनेसे उन्हें सज्जके मारे वो रोमान हो प्राया इसीसे उन्होंने जतला दिया कि हम शकरजीसे कितना प्रेम करती है ॥२९॥ अपने प्यारे



नेपथ्यलक्ष्मीं दयितोपकल्पितां सस्मेरमादर्शित्वे विलोक्य ।  
 अमंस्त सौभाग्यवतीषु धुर्यामात्मानमुद्धृतविलक्षभावा ॥३०॥  
 अन्तः प्रविश्यावसरेऽथ तत्र स्निग्धे वयस्ये विजया जया च ।  
 सुसंपदोपाचरतां कलानामङ्गे स्थितां तां शशिसुखण्डमौलेः ॥३१॥  
 व्यधुर्वहिर्मङ्गलगानमुच्चैर्वैतालिकाश्चित्रचरित्रचारु ।  
 जगुथ गन्धर्वगन्थाः सशहस्वनं प्रमोदाय पिनाकपाण्ये ॥३२॥  
 ततः स्वसेवावसरे सुराणां गणोस्तदालोकनतत्परायाम् ।  
 द्वारि प्रविश्य प्रणतोऽथ नन्दी निवेदयामास कृताञ्जलिः सन् ॥३३॥  
 महेश्वरो मानसराजहंमीं करे दधानस्तनयां हिमाद्रेः ।  
 संभोगलीलालयतः सहेलं हरो वहिस्तानमि निर्जगाम ॥३४॥  
 क्रमान्महेन्द्रप्रमुखाः प्रणोम्युः शिरोनिबद्धाञ्जलयो महेशम् ।  
 प्रालेपशैलाधिपतेस्तनूजां देवीं च लोकत्रयमातर ते ॥३५॥  
 यथागतं तान्निबुधान्निस्सृज्य प्रसाद्य मानक्रियया प्रतस्ये ।  
 स नन्दिना दत्तभुजोऽधिरुद्ध वृषं घृपाङ्कः सह शैलपुत्र्या ॥३६॥  
 मनोतिवेगेन फकुञ्जता स प्रतिष्ठमानो गगनाध्वनोऽन्तः ।  
 वैमानिकैः साञ्जलिभिर्वन्दे विहारहेलागतिभिर्गिरीशः ॥३७॥

पतिने हाथके बिप हूप सिगारकी घोभा षड उन्होने दर्पणमे देती ती वे मुस्कुरा वी घोर सब क्रोप  
 घोडपर ऐसी प्रसन्न हो गई कि वे अपनेको सत्कारवी सब सौभाग्यवती क्रियोंने सभो बहकर  
 समझने लयी ॥३०॥ तत्र जया श्रीर विजया नामनी मतिपेने देला कि षड ठोक धयसर है । वे  
 भट भीतर गई घोर राकरजीकी मोदने बंठी हुई पार्वतीजीका श्रुङ्गार करने लगी ॥३१॥ उसी समय  
 शंकरजीकी प्रमत्त करने के निम्ने चारणों मे उमके सुन्दर चरित्रने मनोहर मगस भीत गाने प्रारम्भ कर  
 दिए घोर गन्धर्व लोग भी दास बजा-बजाकर गाने लगे ॥३२॥ महादेवजीकी सेवा करनेका ठीक  
 समय पर जानकर नन्दी भी भीतर जा पहुँचे घोर उन्होने शंकरजीसे प्रार्थना की देवता लोग धारने  
 दर्शनके निम्ने बाहर भाग लड़े हैं ॥३३॥ यह सुनकर अपनी प्राण-प्यारीके हाथमें हाथ डाले  
 भगवान् शंकर देवताप्रति मिलनेके निम्ने उस समीप-चरते बाहर निवस भाग ॥३४॥ प्राते ही  
 इन्द्र प्रादि देवतामेंने धीरे-धीरे बारी-बारीसे शिवजीको नया तीनों खोनोंकी माता पार्वतीजीको हाथ  
 जोड़कर घोर तिर नयाकर प्रणाम किया ॥३५॥ शंकरजीने सब देवताओंका सम्मान करके उन्हें  
 प्रसन्न किया घोर विदा किया । तब नन्दीके हाथके सहारेसे पार्वतीजीके साथ बैलपर चढ़कर वे स्वयं  
 यहाँमे जान लड़े ॥३६॥ मनने भी अधिन वेगने चलनेगाने उस बैलपर चढ़कर जब वे भावात्त-  
 मानंग जा रहे थे तब समय जो देवता भोग अपने-अपने विशालोंपर चढ़कर भावात्तमे पूम रहे थे,

स्वर्वाहिनीवारिन्निहारचारी रत्नान्तनारीश्रमशान्तिकारी ।  
 तौ पारिजातप्रसवप्रसङ्गो मरुत्सिपेवे गिरिजागिरीशौ ॥३८॥  
 पिनाकिनापि स्फटिकचत्नेन्द्रः वैलासनामा कलिताम्वरांशः ।  
 धृतद्वैतोमोऽद्भुतभोगिभोगो विभूतिधारी स्व इव प्रपेदे ॥३९॥  
 पिलोक्य यत्र स्फटिकस्य भित्तौ सिद्धाङ्गनाः स्वं प्रतिविम्बमारात् ।  
 भ्रान्त्या परस्या विमृसीभवन्ति प्रियेषु मानग्रहिला नमरसु ॥४०॥  
 सुविभ्रितस्य स्फटिकांशुगुप्तेश्चन्द्रस्य चिह्नप्रकरः करोति ।  
 शौर्यापित्तस्येव रसेन यत्र कस्तूरिकापाः शकलस्य लीलाम् ॥४१॥  
 यदीयभित्तौ प्रतिविम्बिताङ्गमात्मानमालोक्य रुषा करीन्द्राः ।  
 भ्रान्तान्यकुम्भिभ्रमतोऽतिभीमदन्ताभिघातव्यसर्न बहन्ति ॥४२॥  
 निशासु यत्र प्रतिविम्बितानि ताराकुलानि स्फटिकालयेषु ।  
 दृष्ट्वा रत्नान्तच्युततारहारमुक्ताभ्रम विभ्रति सिद्धवध्वः ॥४३॥

उन समने शिवजीकी हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥३७॥ उस समय प्रायाश पुराके जलकी कुहराँति सीतल, पारिजातके फूलोमे बसे हुए श्रीर सभोग करके यकी हुई भारीकी यथापठ मिटानेवाले पवनमे धाकर शबरजी श्रीर पावतीजीकी बडी सेवा की ॥३८॥ यो चलते चलते भयवान् धाकर स्फटिकके बने हुए पर्वतोम श्रेष्ठ कंलाघर या पहुँचे । यह पहाब शबरजीके समान ही जगता या पयोकि अपने चटपतसे साकरजी सारे जगतामे भ्रान्त हैं श्रीर कंलाघरके भी चारो धोर प्रायास है । इसलिये दोनो ही प्रायाससे सजे हैं । सोम कहलानेवाले भयवान् धाकरजी इस पर्वतपर रहते हैं और सोम कहलानेवाला चन्द्रमा महादेवजीके माथेपर रहता है । इसीलिये दोनो ही सोमकी धारणा करनेवाले हैं । इस पर्वतपर भोगी या कामी बहुतछ सभोग करते हैं और महादेवजीपर भोगी (भर्षाद् चाँप) बहुत बगसे निपटे रहते हैं । इसलिये दोनो ही बहुत भोगोवासे हैं । दश पर्वतपर बहुत विभूति (भर्षाद् रत्नमणि) आवि पाए जाते हैं श्रीर महादेवजीके शरीरपर विभूति (भर्षाद् भस्म) है । इसलिये दोनो ही विभूति वाले भी हैं ॥३९॥ जब तिद्धोकी शिष्या अपने पतियोके साथ कंलाघ पर्वतकी स्फटिककी दीवारोके पास पहुँचकर अपनी परछाई देखती हैं तो उन्हें यह घोषा हो जाता है कि हमारै पति किसी दूसरी स्त्रीको से साथ नहीं लिए हुए हैं । फल यह होता है कि अपने पतियोके समाने रहनेपर भी ये रुठी ही रहती हैं ॥४०॥ जब उस स्फटिकके बने हुए कंलाघपर चन्द्रमाकी सुन्दर परछाही पडती है उस चन्द्रमाके कलभनी छाया तो दिखाई पडती है पर चन्द्रको छाया उसोमे मिल जाती है । वह कलभकी छाया ऐसी लगती है मानो पार्वतीजीने कस्तुरी पोसकर और उसकी चित्री बनावर यहाँ छाया दी हो ॥४१॥ इसी पर्वतकी भीतोपर अपने चन्द्रोकी छाया देखकर मतवाले हाथो उसे दूसरा मतवाला हाथी समझ बैठते हैं । इसलिये श्लेषमे भरकर अपने बाँतोसे ऊपर करारी दूहरें लेने लगते हैं ॥४२॥ यहाँवे स्फटिकके बने हुए गवनेपर जब साखोकी परछाही पडती है तो तिद्धोको शिष्योको यह घोषा हो जाता है कि ये नहीं सभोगके समय छूटकर गिरे हुए मोतियोके दाने से

नभथरीमण्डनदर्पणश्रीः सुधानिधिर्मूर्द्धनि यस्य तिष्ठन् ।  
 अन्वर्ष्यचूडामणितामुपैति शैलाधिनाथस्य शिवालस्य ॥४४॥  
 समीपिवांसो रहसि स्मरार्ता रिरंसवो यत्र सुराः प्रियाभिः ।  
 एकाकिनोऽपि प्रतिविम्बभाजो विमान्ति मूयोभिरिवान्विताः स्वैः ॥४५॥  
 देवोऽपि गौर्या सह चन्द्रमौलिर्यदृच्छया स्फाटिकशैलशृङ्गे ।  
 शृङ्गारचेष्टाभिरनारताभिर्मनोहराभिर्यहरचिराय ॥४६॥  
 देवस्य तस्य स्मरसुदनस्य हस्तं समालिङ्ग्य सुविभ्रमश्रीः ।  
 सा नन्दिना वैश्रभृतोपदिष्टमार्गा पुरोगेय कर्लं चचाल ॥४७॥  
 चलच्छिखाग्रो विकटाङ्गभङ्गः सुदन्तुरः शुक्लसुतीक्ष्णतुण्डः ।  
 भ्रवोपदिष्टः स तु शंकरेण तस्या चिनोदाय ननर्त शृङ्गी ॥४८॥  
 कण्ठस्थलीलोलफपालमाला दंष्ट्राकरालाननमभ्यनृत्यत् ।  
 प्रीतेन तेन प्रभुषा नियुक्ता काली कलत्रस्य मृदे प्रियस्य ॥४९॥  
 भयङ्करौ तौ विफटं नदन्तौ विलोक्य वाला भयविह्वलाङ्गी ।  
 सरागमुरसङ्गमनङ्गशश्रोर्गाढं प्रसङ्ग स्वयमालिलिङ्ग ॥५०॥  
 उचुङ्गपीनस्तनपिण्डपीढं ससंभ्रमं तत्परिरम्भमीशः ।  
 प्रपद्य सद्यः पुलकोपगूढः स्मरेण रुढप्रमदो ममाद ॥५१॥

मही हैं ॥४३॥ अन्तराश्रुके दर्पणके समान सुन्दर सगनेवाला चन्द्रमा जब इस बँलासपी चोटीपर  
 भा पहुँचता है तब यह उस हिमालयका घनमोल चूडामणि-सा लगभे लगता है जिसपर शिवजी  
 निवास करते हैं ॥४४॥ कामसे पीडित देवता लोग अपनी-पपनी क्रियोकी साथ लेकर जब यहाँ  
 एकान्तमें विहार करने आते हैं तब स्वर्ग शकैले होनेपर भी अनेक परछाइयाँ पटनेके कारण उन्हें  
 ऐसा जान पड़ता है मानो हमारे बहुवने रूप ही गए हैं ॥४५॥ उसी सुन्दर बँलासकी स्फटिककी  
 चोटीपर शंकरजीने भी पार्वतीजीके साथ बहुत दिनोतक लगातार जी भरकर अनेक प्रकारकी काम-  
 क्रीडाएँ की ॥४६॥ अपनी रतीसी चटन-मटकसे जो सुमानेवाली पार्वतीजी भी शंकरजीके हाथसे  
 हाथ दिए हुए उन पशोपर घूमा करती थी वहाँ हाथमें बैठका दण्डा लिए हुए नन्दी प्रागे-  
 प्रागे मार्ग धताता चलता था ॥४७॥ शंकरजीकी भौंहोना सनेत पाकर बड़े-बड़े दानोवाले,  
 सहाराती हुई चोटीवाले, टेढ़े-भेड़े शमोवाले और उजले थेड़गे मुँहवाले श्रुयोगे पार्वतीजीका  
 मन बहलानेके लिये कडा नाच दिखलाया ॥४८॥ हँसमुख दिशाई पटने वाले शंकरजीकी आज्ञा  
 पाकर हिलती हुई शोषिष्ठियोंकी माता कण्ठमें पहननेवाली कानिवाले भी अपने उरावने दाँतोवाला  
 मुँह धना-धनाकर अपने स्वामीकी व्यातीका मन बहलानेके लिये नाच दिखलाया ॥४९॥ इस प्रकार  
 विपट रूपसे भयकर शब्द करते हुए शृंगी और कालीको देखने ही पार्वतीजीकी दस परराष्ट्रमें उनसे

इति गिरित्तुलाविलासलीला  
विविधविभङ्गिभिरेष तोषितः मन् ।

अमृतकरशिरोमणिर्गिरीन्द्रे  
कृतवसतिर्बशिभिर्गणैर्ननन्द ॥३२॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृतो कुमारसम्भवे महाकाव्ये  
कैलासगमनो नाम नवम सर्गः ॥

उठे हुए घोर मोटे-मोटे स्तम्भोंके अपनी छातीपर लगते ही शकरजी भगव ही उठे घोर उनमें मनमें  
इतना काम उत्पन्न हो गया कि वे प्रेममें मत्तवाले हो उठे ॥३१॥ इस प्रकार श्री पार्वतीजीकी  
अनेक हाव-भाव भरी लीलाओं घोर अनेक प्रकारके सभोगसे सन्तुष्ट होकर भगवान् शकरजी अपने  
साथ कैलासपर रहनेवाले गणोंके साथ बड़े प्रसन्न हुए ॥३२॥

महाकवि श्रीकालिदासके रचे हुए कुमारसम्भव महाकाव्यमें कैलास गमन  
नामका नवम सर्ग समाप्त हुआ ॥

## ॥ दशमः सर्गः ॥

आससाद् सुनासीरं सदसि त्रिदशैः सह ।  
 एष त्रैयम्बकं तीव्रं वहन्वह्निर्महन्महः ॥१॥  
 सहस्रेण दशामीशः कुत्सिताङ्गं च सादरम् ।  
 दुर्दर्शनं ददर्शाग्निं धृत्रधृमितमण्डलम् ॥२॥  
 दृष्ट्वा तवाविधं वह्निमिन्द्रः क्षुब्धेन चेतसा ।  
 व्यचिन्तयच्चिरं किञ्चित्कन्दर्पद्वेपिरोपजम् ॥३॥  
 स विलक्ष्यमुखैर्देवैर्वीक्ष्यमाणः क्षणं क्षणम् ।  
 उपाविशत्सुरेन्द्रेणादिष्टं सादरमासनम् ॥४॥  
 हृद्यवाह त्वयासादि दुर्दर्शयं दशा कुतः ।  
 इति पृष्टः सुरेन्द्रेण स निःश्वस्य वनोऽवदत् ॥५॥  
 अततिक्रमणीयाचे शासनात्सुरनायक ।  
 पारावत वपुः प्राप्य वेपमानोऽतिसाध्वसात् ॥६॥  
 अभिगीरि रतासक्तं जगामाहं महेश्वरम् ।  
 कालस्येव स्मरारातेः स्व रूपमहमासदम् ॥७॥  
 दृष्ट्वा छन्ननिहङ्गं मां सुज्ञो विघ्नाय जन्मभित् ।  
 ज्वलन्नालानले होतुं कोपतो माममन्यत ॥८॥

## दशमो सर्गः

सगरजीके उस जसते हुए वीर्यको लेकर अग्नि उस समय पहुँचे, जहाँ इन्द्र भगवात् देवतामा के साथ बैठे हुए थे ॥१॥ इन्द्रने बड़े आदरके साथ अपनी सहस्रो भाँखोसे उन अग्निकी ओर देखा जिनके मन वेडगे भद्रे शीर भुएँसे काले पट गए थे ॥२॥ अग्निका यह रूप दत्तकर इन्द्र बड़े दुखी हुए ओर घोडा देर सोचते ही ये समझ गए नि श्वरजीके लोपसे ही अग्निकी यह दशा हुई है ॥३॥ जिन अग्निकी ओर सब देवता बड़े दुखी होकर बराबर देख रहे थे उन्हें इन्द्रने सवेतसे एक आसनपर बैठा दिया ॥४॥ ओर उन्होंने अग्निदेवसे पूछा—'वह्नि ! आपकी यह दुर्दशा कैसे हो गई ?' तब तभी साँस लेकर अग्निदेव कहने लगे—॥५॥ 'हे देवेन्द्र ! आपकी अटल आज्ञासे मैं कबूतर बनकर बड़ा डरता डरता महादेवजीके पास पहुँचा । उस समय वे पार्वतीजीके साथ समीप कर रहे थे । मुझे पहचानते ही जब वे क्रोधके मारे महाबासके समान भयभर हो गए, तब मैंने कबूतरका रूप छोड़कर बरके मारे अपना उन्ना रूप बना लिया ॥ ६-७ ॥ हे इन्द्र ! मुझे पक्षीके रूप में देखकर अब कुछ जाननेवासे श्वरजीनो ऐसा क्रोध आया कि वे मुझे अपने जलाटनी

वचोभिर्मधुरैः सार्धैर्विनम्रेण मया स्तुतः ।  
 प्रीतिमानभवद्देवः स्तोत्रं कस्य न तुष्टये ॥६॥  
 शरण्यः सकलत्राता मामत्रापन्न शंकरः ।  
 क्रोधाग्नेर्ज्वलतो आसात्रासतो दुर्निवारतः ॥१०॥  
 परिहृत्य परीरम्भरभमं दुहितुर्गिरेः ।  
 कामकेलिरसोस्तेःक्राद्व्रीडया विरराम तः ॥११॥  
 रङ्गमङ्गच्युतं रेतस्तदामोघं सुदुर्बद्धम् ।  
 त्रिजगदाहकं सयो मद्भिप्रहमधि न्यघात् ॥१२॥  
 दुर्विपद्येण तेनार्हं तेजसा दहनारमना ।  
 निर्दग्धमात्मनो देहं दुर्वहं वोढुमद्यमः ॥१३॥  
 रौद्रेण दहमानस्य महसाविमहीयसा ।  
 मम प्राणपरित्राणप्रणुयो भव वामव ॥१४॥  
 इति श्रुत्वा पचो वह्नेः परितापोपशान्तये ।  
 हेतुं विचिन्तयामास मनसा विद्युधेश्वरः ॥१५॥  
 तेजोदग्धानि गात्राणि पाणिनास्य परामृशन् ।  
 किञ्चित्कृपीटयोनिं तं दिवस्पतिरमापत ॥१६॥

जलती हुई आगमें भोग ही देते ॥ ६ ॥ पर मैंने बहुत गिहविवाकर बड़े भय-भरे मीठे शब्दोंमें उनकी बड़ी स्तुति की तो वे विपन्न गए, क्योंकि अपनी प्रसन्नता भला विद्युधने नहीं धरती लगती ॥ ६ ॥ यह ही आप जानते ही है कि शकरजीकी घरलमें जो पहूँच जाता है उसकी और सारे पणतकी वे रता करते ही हैं । इसलिए उनके क्रोधकी जलती हुई गिह मापते कोई बच नहीं सकता उसकी आहुति बनते-बनते में बन गया ॥ १० ॥ उन्होंने मत्त पार्वतीजीके कसपर बंधे हुए हाथसे अपनेको छुटा लिया और सज्जके कारण, धर्मभोगके सुखकी इच्छा छोड़कर वे हट गए ॥ ११ ॥ समोसके बीचमें ही रहने भय होनेसे उनका जो तामों लोकोको जलानेवाला और निसीछे भी सहा न जा सकनेवाला अचूक बंधे निकला, वह उन्होंने मेरे शरीरमें डाल दिया ॥ १२ ॥ भव में उस भयान्ना जलने हुए तेजसे इतना जला जा रहा है कि मुझे अपना शरीर भी भारी हो रहा है ॥ १३ ॥ हे हन् । महादेवजीके इस अत्यन्त भयानक तेजसे मेरा तारा शरीर जला जा रहा है इसलिए भव आप निसी भी प्रकार मेरे प्राण बचानेवा पा लीजिए ॥ १४ ॥ अग्निजी के बातें सुनकर देवराज इन्द्र अपने मनमें बोई ऐसा उपाम सोचने लगे जिससे अग्निही जलन बंद जाय ॥ १५ ॥ महादेवजीके तेजसे जलते हुए अग्निवे पणोपर

प्रीतः स्वाहास्वधाहन्तकारैः प्रीणयसे स्वयम् ।  
 देवान्पितृन्मनुष्यांस्त्वमेकस्तेषां भुव्यं यतः ॥१७॥  
 त्वयि जुहति होतारो हवींषि ध्वस्तकल्मषाः ।  
 भुञ्जन्ति स्वर्गमेकस्त्वं स्वर्गप्राप्तौ हि कारणम् ॥१८॥  
 हवींषि मन्त्रपूतानि हुताग्ने त्वयि जुहवतः ।  
 तपस्विनस्तपःसिद्धिं यान्ति त्वं तपसां प्रभुः ॥१९॥  
 निधत्से हुतमर्काय स पर्जन्योऽभिवर्षति ।  
 ततोऽन्नानि प्रजास्तेभ्यस्तेनासि जगतः पिता ॥२०॥  
 अन्तधरोऽसि भूतानां तानि त्वत्तो भवन्ति च ।  
 ततो जीवितभूतस्त्वं जगतः प्राणदोऽसि च ॥२१॥  
 जगतः सफलस्यास्य त्वमेकोऽस्युपकारकृत ।  
 कार्योपपादने तत्र त्वत्तोऽन्यः कः प्रगल्भते ॥२२॥  
 अमीषां सुरसंधानां त्वमेकोऽर्थसमर्थने ।  
 विपत्तिरपि संश्लाघ्योपकारव्रतितनोऽनल ॥२३॥  
 देवी भागीरथी पूर्वं भक्त्यास्माभिः प्रतोपिता ।  
 निमज्जतस्तबोदीर्घं तापं निर्वापयिष्यति ॥२४॥

हाथ फेरते हुए इन्द्र बोले— ॥ १६ ॥ हे अग्नि ! देखो, जब हवन करनेवाले हीता लोग स्वाहा, स्वधा और षट् कहकर हवन करते हैं उस समय तुम प्रसन्न होकर देवों, पितरों और मनुष्योंको प्रसन्न करते हो, क्योंकि तुम्हारे ही मुखसे तो सबको भयना भयना भाग मिलता है ॥ १७ ॥ हीता लोग तुमसे हवन करके पापसे छूटकर स्वर्गलोकमें जाकर सुख भोगते हैं । वे एक तुम्हारे ही सहारे तो स्वर्गतक पहुँच पाते हैं ॥ १८ ॥ हे अग्नि ! यह करनेवाले तपस्वी लोग मन्त्र पढ़कर जो तुम्हें माँहति देते हैं उससे वे अपनी तपस्याका पूरा फल पा जाते हैं क्योंकि तपके देवता भी तो तुम्हीं हो ॥ १९ ॥ सूर्यके लिये जो माँहति दी जाती है उसे तुम धरोहरकी भाँति लेकर जगह दे देते हो । भुव्यं उसे बादल बनाकर बरखा देते हैं, जिससे अन्न पैदा होता है और फिर उसी अन्नसे सत्कारके प्राणियोंका पेट पलता है । इस प्रकार सारे सत्कारके पितर भी तुम्हीं हो ॥ २० ॥ हे अग्नि ! सब प्राणियोंके भीतर तुम्हीं तो रहते हो और वे सब तुम्हींसे उत्पन्न होते हैं । इसलिये तुम्हीं सत्कारके जीवन और प्राण देनेवाले हो ॥ २१ ॥ इस समूचे सत्कारका भला करनेवाले एक तुम्हीं तो हो, इसलिए ऐसी रासतका काम तुम्हें छोड़कर और सहन ही भोग कर सकता है ॥ २२ ॥ हे अग्नि ! तुम्हीं तो एक ऐसे ही जो देवताओंका नाम साथ सकते हो । देखो ! जो दूसरोंकी मलाई करनेका बीड़ा उठाते हैं वे जो कष्ट सहते हैं यह भी सबे गौरव और बड़ाईकी बात होती है ॥ २३ ॥ देखो !

गङ्गा तद्गच्छ मा कार्पाविलम्बं हृष्यवाहन ।  
 कार्येष्ववश्यकार्येषु सिद्धये त्रिप्रकारिता ॥२५॥  
 शंभोरम्भोमयी मूर्तिः मैव देवी सुरासगा ।  
 त्यक्तः स्मरद्विपो बीजं दुर्घरं धारयिष्यति ॥२६॥  
 इत्पुदीर्य शुनासीरो विरराम स चानलः ।  
 तद्विदुष्टस्तमापृच्छथ प्रतस्थे स्वर्धुनीमभि ॥२७॥  
 हिरण्यरेतसा तेन देवी स्वर्गतरङ्गिणी ।  
 तीर्थाध्वना प्रपेदे सा निःशेषक्लेशनाशिनी ॥२८॥  
 स्वर्गारोहणनिःश्रेणिमोक्षमार्गाधिदेवता ।  
 उदारदुरितोद्धारहारिणी दुर्गतारिणी ॥२९॥  
 महेश्वरजटाजूटवासिनी पापनाशिनी ।  
 सगरान्वयनिर्वाणकारिणी धर्मधारिणी ॥३०॥  
 विष्णुपादोदकोद्भृता ब्रह्मलोकादुपागता ।  
 त्रिभिः ह्योतोभिरश्रान्तं पुनाना भुवनत्रयम् ॥३१॥  
 जातपेदसमायान्तमूर्तिहरतैः मग्नित्यतैः ।  
 ध्याजुहावार्थसिद्धयं तं सुप्रसादधरेव सा ॥३२॥



वहिरार्ता युगान्ताग्नेस्तप्तानीव शिखाशतैः ।  
 हित्वोष्णानि जलान्यस्या निर्बग्मूर्जलजन्तवः ॥४१॥  
 तेजसा तेन रौद्रेण तप्तानि सलिलान्यपि ।  
 समुद्रञ्चन्ति चखटानि दुर्धराणि धमार सा ॥४२॥  
 जगच्चक्षुषि चखटांशौ किञ्चिदम्युदयोन्मुखे ।  
 जगत्सुः पट् कृत्तिका भाषे भासि स्नातुं सुरापगाम् ॥४३॥  
 शुभ्रैरंक्रयैरुमिश्रितैः स्वर्गनिवासिनाम् ।  
 कथयन्तीमिवालोफावगाहाचमनादिकम् ॥४४॥  
 सुस्नातानां शुनीन्द्राणां वलिकर्मोचितैरलम् ।  
 वहिः पुष्पोत्करैः कीर्षतीरां दूर्वावतान्वितैः ॥४५॥  
 ब्रह्मध्यानपरैर्योगपरैर्ब्रह्मासनस्थितैः ।  
 योगनिद्रागतैर्योगपट्टबन्धैरुपाश्रिताम् ॥४६॥  
 पादाद्गुह्याग्रभूमिस्थैः सूर्यसंबद्धदृष्टिभिः ।  
 ब्रह्मर्षिभिः परं ब्रह्म शृणुद्भिरुपसेविताम् ॥४७॥  
 अथ दिव्यां नदीं देवीमभ्यनन्दन्विलोक्य ताः ।  
 कं नाभिनन्दयत्येषा दृष्टा पीयूषवाहिनी ॥४८॥

शैले प्रलयकी धारणी संकडो सपटोडे तपे हुए परम जलको छोड़कर जलके जीव पानीसे बाहर निकल पाते हैं बँडे ही गंगाजीके तपते हुए जलको छोड़कर सब जीव भी पबराकर बाहर निकल पाए ॥४१॥ इसके उस भयानक तेजसे जब वह जल धत्यन्त तप चला तब वह भयकर जल उबलकर ऐसा परम हो गया कि छुमा तक नहीं जा सकता था, फिर भी गंगाजी उठे लिए ही रही ॥४२॥ एक दिन भाषके महीमेमे जब सत्तरके तेज रूप प्रपट्ट चिरछोवाले भगवाम् सूर्य घोडे-घोडे निकल रहे थे उस समय क्षुधो कृत्तिकाएँ नहानेके लिये गंगाजीके तीरपर आई ॥४३॥ उस समय गंगाजीकी उजली और शाकश भूमनेवाली संकडो तरंग उबल-उबलकर मानो यह बता रही थी कि स्वगमे रहनेवाले देवता लोग यही शाकर दर्शन, स्नान और प्राचाम किया करते हैं ॥४४॥ वहाँ तीरपर फूल, दूब, घसल आदि वे सब मूनाकी श्रामको पिखरी पडी थी जो भुनियोने भली प्रकार स्नान पूजा करके यहाँ चढा रखी थी ॥४५॥ उठी तीरपर कुशने हासनोपर पयासन बाँधकर ब्रह्मका ध्यान करते हुए और समाधि लगाए हुए श्रुति लोग बमरडे घुटने तब कपडे घोडे सदा बँडे रहते हैं ॥४६॥ और वहीपर पर्वने श्रुतोंपर सटे होकर सूर्यकी और शाल लगाए हुए ब्रह्मणि परम ब्रह्मका ध्यान किया करते हैं ॥४७॥ ऐसी दिव्य गदीको उन क्षुधो कृत्तिकाओने प्रशाम किया । भला ऐसी धभृतकी धारवाली गंगाजीको देखकर कौन नहीं

चन्द्रचूडामण्डितो यामुद्रहति मूर्धनि ।  
 यस्या विलोकनं पुण्यं श्रद्धघुस्ता मुदा हृदि ॥४६॥  
 दिव्यां विष्णुपर्दीं देवीं निर्वाणपददेशिनीम् ।  
 निर्धूतकल्मषां मूर्ध्ना सुग्रहास्ता ववन्दिरे ॥५०॥  
 सौभाग्यैः खलु सुप्रापां मोक्षप्रतिभुवं सतीम् ।  
 भक्त्यात्र तृप्तुवस्तां ताः श्रद्धधाना दिवोधुनीम् ॥५१॥  
 मुक्तिस्त्रीसङ्गदृत्पञ्चैस्तत्र ता विमलैर्जलैः ।  
 प्रक्षालितमलाः सस्तुः सुस्नातास्तपसान्विताः ॥५२॥  
 स्नात्वा तत्र सुलभ्यायां भाग्यैः परिपचेलिमैः ।  
 चरितार्थं स्वमात्मानं बहु ता मेनिरे मुदा ॥५३॥  
 कुशाचुरेतसां रेतस्तासामभिकलेवरम् ।  
 श्रमार्घं संचचाराथ सद्यो गङ्गावगाहनात् ॥५४॥  
 रौद्रं सुदुर्द्धरं धाम दधाना दहनात्मकम् ।  
 परितापमवापुस्ता मग्ना इव विषाम्बुधौ ॥५५॥  
 अक्षमा दुर्बहं षोडुमम्बुनो बहिरातुराः ।  
 धाम्निं ज्वलन्तमन्तस्ता दधाना इव निर्ययुः ॥५६॥

मुग्ध ही जायगा ॥५६॥ स्वयं भगवान् शनर, जिन गंगाजीकी मस्तकपर रखते हैं, जिनके दर्शन करनेसे ही पुण्य होता है उन गंगाजीको देखकर छद्मो कृत्तिकाई मनमें बड़ी प्रसन्न हुई और उनके मनमें गंगाजीके लिये बड़ी श्रद्धा पाय लठी ॥५६॥ उन कृत्तिकामोने मुक्ति देनेवाली, विष्णुके चरणांशे निवसनेवाली और पापोंका नाश करनेवाली गंगाजीकी बड़ी भक्तिसे बन्दना की ॥५०॥ जिनका बड़े सौभाग्यसे दर्शन होता है और जो सायात् मोक्ष हो है उन गंगाजीकी स्तुति कृत्तिकाघोने बड़ी मतिसे साथ की ॥५१॥ और तब उन तपस्विनी कृत्तिकामोने जी भर मलमलकर गंगाजीके उस निर्मल जलमें स्नान किया जो ऐसा समता था मानो मुक्तिके पास ही पहुँचा रहा हो ॥५२॥ जिन गंगाजीमें पिछले जन्मके पुण्यवात् लोग ही स्नान करपाते हैं उन गंगाजीमें बड़े आनन्द के साथ स्नान करके उन कृत्तिकामोने अपने भाग्यकी बड़ा सराहा ॥५३॥ जब वे गंगाजीमें स्नान कर रही थी उस समय शकरबीजा बचूक बीर्य गंगाजीसे निकलकर उन कृत्तिकामोके शरीरमें पेट गया ॥५४॥ तब त्रिपतीके उस शयकर प्रसन्न अग्निके समान बीर्यके धारानेसे वे बहुत तप्त हो लठी और उन्हें ऐसा जान पडा मानो हम विषके समुद्रमें हो हुए गई हैं ॥५५॥ निदान उस प्रसन्न तेजको बहुत देर तक न सह सकनेके कारण वे भीतर ही भीतर जलती हुई उस तेजको लिए

अमोघं शोभवं वीजं सद्यो नद्योज्झितं महत् ।  
 तासामभ्युदरं दीप्तं स्थितं गर्भत्वमागमत् ॥५७॥  
 सुज्ञा विज्ञाय ता गर्भाभूतं तद्दोदुमन्मयाः ।  
 विपादमदधुः सद्यो गाढं भर्तृभिया हिया ॥५८॥  
 अकामकरणं जानमकाण्डे भाविनोऽर्थतः ।  
 संभूयान्योन्यमात्मानं शुश्रुषुस्वास्तदाविलम् ॥५९॥  
 ततः शरवणे सार्धं भयेन ग्रीहया च ताः ।  
 तद्गर्भजातमुत्सृज्य स्वानृहानभिनिर्षयुः ॥६०॥

ताभिस्तत्रामृतकरकलाकोमलं भासमानं

तद्विदिप्तं चणमभिनभोगर्भमभ्युज्झिहानैः ।

स्यैस्तेजोभिर्दिनपतिशतस्पर्धमानैरमानै

र्वक्त्रैः षड्भिः स्मरहरगुरुस्पर्धयेवाञ्जनीव ॥६१॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृती कुमारसभवे महाकाव्ये  
 कुमारोत्पत्तिर्नाम दशमः सर्गः ॥

बलदे पाद्वर निवली ॥५६॥ शकरजीका वह भक्तता हुआ मन्त्रक वीर्यं पगानीसे छूट जानेपर  
 उन कृत्तिकाप्रोके पैदने पहुँचकर गर्भ धन गया ॥५७॥ जब उन कृत्तिकाप्रोने देखा कि वह तेज तो  
 गर्भ धन गया है और हमसे सँमाने नहीं सँभलेगा तब वे बुद्धिमती कृत्तिकाएँ अपने-अपने पतिप्रोके  
 डरसे प्रीर लाजके मारे बड़ी दुखी हो गई ॥५८॥ होगहार वाले उस अनिच्छित जनवसरके गर्भकी  
 उन छोटी कृत्तिकाप्रोने परस्पर मिलकर सेवा की ॥५९॥ प्रीर तब उस लज्जा प्रीर भयके कारण वे  
 एक सरपतके जगतने अपने-अपने गर्भ छोड़कर अपने-अपने घर लौट गई ॥६०॥ कृत्तिकाप्रोने उस  
 सरपतके जगतने जो चन्द्रमानी फिरशोके रागान कोमल और श्रेयस्वी गर्भ छोड़े वे वे ऐसे तेजस्वी  
 धन मए कि उनका तेज उदय होते हुए सँकटों सूर्यो से भी होड करता था प्रीर अपने छ मुसोसे  
 वे चार मुलपासे प्राणको भी माने चुनोती दे रहे थे ॥६१॥

महाकवि श्रीकालिदासके रचे हुए कुमारसभवे महाकाव्यमे  
 कुमार का जन्म वखन नामक दसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

चन्द्रचूडामण्डिदेवो यामुद्धति मूर्द्धनि ।  
 यस्या विलोकनं पुण्यं श्रद्धयुक्ता मुदा हृदि ॥४६॥  
 दिव्यां विष्णुपर्दीं देवीं निर्वाणपददेशिनीम् ।  
 निर्धूतकल्मषां मूर्ध्ना सुप्रहास्ता ववन्दिरे ॥५०॥  
 सौभाग्यैः खलु सुप्राणां मोक्षप्रतिशुभं सतीम् ।  
 भक्त्यात्र तप्तदुवुस्तां ताः श्रद्धाया दिव्योपुनीम् ॥५१॥  
 हृत्किस्त्रीगद्गदृत्पत्रैस्तत्र ता विमलैर्जलैः ।  
 प्रक्षालितमलाः सस्तुः गुस्तातास्तपसान्विताः ॥५२॥  
 स्नात्वा तत्र मुलभ्यायां भाग्यैः परिपचेलिमैः ।  
 शरितार्थं स्वमात्मानं बहु ता मेनिरं मुदा ॥५३॥  
 पुशानुरेतमा रेतस्तासामभिक्लेररम् ।  
 शमार्यं भंचचाराथ सयो गद्गावगाहनात् ॥५४॥  
 रीष्टं मुदुर्दरं धाम दधाना दहनात्मकम् ।  
 परितापमवापुस्ता मग्ना इव विषाम्युधौ ॥५५॥  
 अक्षमा दुर्बलं योढुमम्युनो धदिरातुराः ।  
 अग्निं ज्वलन्तमन्तस्ता दधाना इव निर्ययुः ॥५६॥

मुनि ही जायता ॥४६॥ स्वयं भयमां सार, त्रिन गंगातीकी मस्तकपर रणो है, त्रिनके दसंग  
 कालेमे ही पुन होना है उा यगातीकी देगकर लक्षी कृतिर्णी? यममें वही प्रमत्त हईं और  
 दारे मगमे गंगातीके त्रिके वही यज्ञा वाग उठी ॥४६॥ उन कृतिरामोंने, मुनि देवेवापी,  
 विष्णुके शरणांगे त्रिनगनेपायी और पाशोरा मगन करदेवायो यगात्र की वही भक्तिमे वन्दना की  
 ॥५०॥ त्रिनका बडे सौभाग्यमे दर्शन होना है और ये मायात् मोक्ष ही है उा गंगातीकी मुनि  
 कृतिरामोंने वही भक्तिमे मगन की ॥५१॥ और तब उन मपरिषदो कृतिरामोंने त्री मर मलमपर  
 गंगातीके तब त्रिमंग त्रममे स्नात विषा जो ऐसा मग्ना था मगने मुनिने धाम ही पट्टिया रण हो  
 ॥५२॥ त्रिन मायात्र मे विपदे त्रमके पुनजात् मोक्ष ही स्नान करपाये है उा गंगातीके यज्ञे माया  
 के मगन स्नान करके उन कृतिरामोंने मगने मायाको बडा मगाया ॥५३॥ तब मे गंगातीके स्नान  
 कर रही थीं उा तबमे इकरतीका इच्छुक्त बोंडे यगातीके त्रिनकरना उा कृतिरामोंने त्रिमंग  
 देह मग ॥५४॥ तब त्रिमंगीके उा मयका मगन मगिने मगात्र सौपेके मायात्रमे ये वदुग मग  
 हो गयी और उठे मग जात पडा मगो इव विपदे म्युद्धमे ही हुन गई है ॥५५॥ त्रिनान उा मगन  
 तेरको वदुग देह मग म मग मग्नेके कारण के भयकर ही भोगेय यगापी हईं उा तेरको विप

अमोघं शांभवं वीजं सद्यो नद्योज्ज्वलं महत् ।  
 तासामभ्युदरं दीप्तं स्थितं गर्भत्वमागमत ॥५७॥  
 मुञ्जा विज्ञाय ता गर्भाभूतं तटोद्धमत्तमाः ।  
 विपादमदधुः सद्यो माहं भर्तृमिया हिया ॥५८॥  
 अकामकरणं ज्ञानमकाण्डे भाविनोऽर्थतः ।  
 संभूयान्योन्यमात्मानं शुश्रुवुस्तास्तदाविलम् ॥५९॥  
 ततः शरवखे सार्धं भयेन व्रीडया च ताः ।  
 तद्गर्भजातमुत्सृज्य स्वान्गृहानभिनिर्षयुः ॥६०॥

ताभिस्तत्रामृतकरकलाकोमलं भासमानं  
 तद्विचिप्लं चक्षुमभिनमोगर्भमभ्युज्जिहानैः ।  
 स्वैस्तेजोभिर्दिनपतिशतस्पर्धमानैरमानै  
 र्वक्तैः पङ्क्तिभिः स्मरहरगुरुस्पर्धयेवाञ्जनीष ॥६१॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारतभये महाकाव्ये  
 कुमारोत्पत्तिर्नाम दशमः सर्गः ॥

जलसे बरहर निवली ॥५६॥ उकरजीका यह गर्भता हुआ धजूक वीर्य यमाजीसे छूट जानेपर  
 उन वृत्ति प्राप्तिसे गेटमे पहुँचकर गर्भ बन गया ॥५७॥ जब उन कृतिकाप्रोने देखा कि यह तेज तो  
 गर्भ बन गया है और हमसे संभाने नही संभलेया उस ने बुद्धिपती कृतिकाएँ अपने अपने पतिपोंके  
 षरसे और लाजके मरि बडी दुखी हो गई ॥५८॥ होनहार वाले उस अविच्छिन्न धनवत्तरके गर्भनी  
 उन छोडो वृत्तिवागने परस्पर निजकर सेवा की ॥५९॥ और तब उस लज्जा और भयके कारण वे  
 एव स्वरूपसे अगलमे अपने-अपने, अपने-अपने, अपने-अपने, पर और पर ॥६०॥ वृत्तिपरमेने, अरु  
 सरपतके जगलमे जो चन्द्रमानी निरलोने सवान कोमल और तेजस्वी गर्भ छोडे थे वे ऐसे तेजस्वी  
 मय मए कि उमका तेज उदय होते हुए संवडो सूर्यो से भी होड करता था और अपने छ मुर्खोसे  
 वे चार मुखपाले ब्रह्माको भी मानो चुनोती दे रहे थे ॥६१॥

महानवि श्रीकालिदासके रचे हुए कुमारखण्ड महाकाव्यमे  
 कुमार वा जन्म वर्णन नामका दसवाँ धर्ग समाप्त हुआ ।

## ॥ एकादशः सर्गः ॥

अभ्यर्च्यमाना विलुधैः समग्रैः प्रह्वैः सुरेन्द्रप्रमुखैरुपेत्य ।  
 तं पाययामास सुधातिपूर्णं सुरापगा स्वं स्तनमाशु मूर्ता ॥ १ ॥  
 पिवन्स तस्याः स्तनयोः सुधौघं क्षणं क्षणं साधु समेषमानः ।  
 प्रापाकृतिं कामपि पद्भिरेत्य निषेव्यमाणः खलु कृत्तिकामिः ॥ २ ॥  
 भागीरथीपावककृत्तिक्रनामानन्दवाग्पाकुललोचनानाम् ।  
 तं नन्दनं दिव्यमुपात्तुमासीत्परस्परं प्रौढतरो विवादः ॥ ३ ॥  
 अत्रान्तरे पर्वतराजपुत्र्या समं शिवः स्वैरविहारहेतोः ।  
 नभो विमानेन विगाहमानो मनोतिवेगेन जगाम तत्र ॥ ४ ॥  
 निसर्गावात्सल्यवशाद्विष्टुञ्जचेतःप्रमोदौ गलदश्रुनेत्रौ ।  
 अपश्यतां तं गिरिजागिरीशौ पदाननं पद्दिनजातमात्रम् ॥ ५ ॥  
 अधाह देवी शशिखण्डमौलिं कोऽयं शिशुर्दिव्यवपुः पुरस्तात् ।  
 कस्याथवा घन्यतमस्य पुंसो मातास्य का भाग्यवतीषु धुर्या ॥ ६ ॥  
 स्वर्गापगासावनलोऽयमेताः पट्कृत्तिकाः किं क्लृप्तापमानाः ।  
 पुत्रो ममायं न तत्रायमित्थं मिथ्येति वैलक्ष्यमुदाहरन्ते ॥ ७ ॥

### व्याारहर्षां सर्गं

इन्द्र प्रादि सप्त देवताओंमें जब गङ्गाजीके पास आकर बड़ी गज्रतासे प्रार्थना की तब वे स्त्रीका रूप धारण करके अपना समुत्तरे मरा हुआ स्तन उस शशकको पिलाने लगी ॥१॥ वह छ. मुझी वाला बालक समुत्तरी धारा पी-पीकर पल-पलमें वेगसे बढ़ने लगा और जब छोटी कृत्तिकारण भी आकर उसकी देहाभान करने लगी तब तो उसका स्नान-रय कुछ धनोषे ही उससे सुन्दर हो उठा ॥२॥ उस दिव्य रूपवाले बालकको देखकर, गंगाजी, अग्नि और छोटी कृत्तिकारणें सब मौलिकमें प्रेमके भाँसू भरकर उस बालकको अपना-अपना पुत्र बनानेके लिये आपसमें बड़ा झगडा करने लगी ॥३॥ इसी बीच शिवजी भी पार्वतीजीके साथ यो ही घुमते-घुमते उनके समान वेगसे पलनेवाले विमानपर चढ़े हुए धाकाधामे उड़ते हुए यहाँ प्रा पहुँचे ॥४॥ यह दिनोंके उस यह मुँहवाले बालकको देखते ही शिवजी और पार्वतीजीकी आँसुं स्वाभाविक पुत्र-प्रेमको प्रसन्नताके धारे छलछला उठी ॥५॥ और शंकरजीसे पार्वतीजी पूछने लगी कि यह सामने दिव्य शरीरवाला बालक कौन है? किसे बहमागीका पुत्र है और कौन सबसे बहमागी स्त्री इसको माता है? ॥६॥ ये धारि, गङ्गा और छोटी कृत्तिकारणें सब आपसमें यह कह-कहकर क्यों झगडा कर रही हैं कि यह मेरा पुत्र है, तुम्हारा नहीं । ये इस प्रकारकी बेतुकी और झूठी-झूठी बातें क्यों बक रही हैं ॥७॥ हे ईश ! यह तीनों धीनोंमें तिलकके समान सवना तिरपीर सुन्दर बालक इन तीनोंमेंसे

एतेषु कस्येदमपत्यमीशाखिलत्रिलोकीविलकायमानम् ।  
 अन्यस्य कस्याप्यथ देवदैत्यगन्धर्वमिन्द्रोत्साराचसेषु ॥८॥  
 श्रुत्वेति वाक्यं हृदयप्रियायाः कौतूहलिन्या विमलस्मितश्रीः ।  
 सान्द्रप्रमोदोद्दयसौख्यहेतुभूतं वचोऽबोचत चन्द्रबूढः ॥९॥  
 जगत्प्रयानन्दन एष धीरः प्रवीरमातुस्तव नन्दनोऽस्ति ।  
 कल्याणि कल्याणकरः सुराणां त्वचोऽपरस्याः कथमेग सर्गः ॥१०॥  
 देवि त्वमेयास्य निदानमासीः सर्गे जगन्मङ्गलगानहेतोः ।  
 सस्यं त्वमेवेति विचारयस्व रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम् ॥११॥  
 अतः शृणुष्व्वावहितेन वृषं धीजं यदग्नौ निहितं मया तत् ।  
 संक्रान्तमन्तस्त्रिदशापगायां ततोऽवगाहे सति कृत्तिकासु ॥१२॥  
 गर्भत्यमाप्तं तदमोघमेतत्ताभिः शरस्तम्बमधि न्यधायि ।  
 बभूव तत्रायमभूतपूर्वो महोत्सवोऽशेषचराचरस्य ॥१३॥  
 अशेषविश्वप्रियदर्शनेन घुर्यां त्वमेतेन सुपुत्रिणीनाम् ।  
 अलं विलम्ब्याचलराजपुत्रि स्वपुत्रमुत्सङ्गतले निधेहि ॥१४॥  
 अथेति वादिन्यमृतांशुमौली शैलेन्द्रपुत्री रमसेन सद्यः ।  
 सान्द्रप्रमोदेन सुपीनगात्री धात्री समस्तस्य चराचरस्य ॥१५॥

सचमुच किसका पुत्र है ? या यह इनकी छोडकर किसी धीर ही देव, दैत्य, गन्धर्व, सिद्ध, नाग या राक्षसका पुत्र है ॥८॥ अपनी प्राणधारी पार्वतीकी यह चावभरी बात सुनकर निर्मल वामिनी कैलाशवासी मुक्तराहुटके साथ अकरजीने बड़ी व्याधी बात कही—॥९॥ सीने लोकोको मानन्द देने-वाला यह बालक तुम धीर माताया ही धीर पुत्र है । हे कल्याणी ! तुम्हे छोडकर देवताप्रोका करवागु करनेवाला ऐसा पुत्र धीन उत्पन्न कर सकता है ॥१०॥ हे देवी ! ससार भरके मगलके पामोम जिस बालककी कीर्ति गाई जायगी वह तुम्हारा यही पुत्र है । तुम्ही डीक-डीक विचारकर देख ली कि रत्न तो रत्नाकरके ही निकल सकते हैं ॥११॥ हे पार्वती ! सावधान होकर इन बालकके उत्पन्न होनेकी कथा सुनो ; देखो ! मैंने कथना जो अचूक वीर्य धर्मिने रखदिया था, उसे धर्मिने गंगाजीसे छोड दिया और यह फिर स्नान करती हुई छयो कृत्तिवासीके नेटम पहुँचकर गभ जन गया और तब उस अचूक वीर्यको कृत्तिवासीने सरपटने जगलमे ढाल दिया । उसी गर्भसे बर और प्रचर प्राणिकोको हृषं देनेवाला यह मनोष्ठा बालक जन्मा है ॥१२-१३॥ हे पार्वती ! सारे ससारके प्यारे इस बालक की माता होनेसे तुम अपनेको राख पुत्रवती स्त्रियोम श्रेष्ठ समजो । अब देर न करो और अपने पुत्रको उठाकर गोदमे ले लो ॥१४॥ अवरजीका यह बात सुनकर सारे ससारकी माता पार्वतीकी हृषंसे बूली न समाई और अन् विमानसे उतरकर उस पुत्र रत्नको गोदम लेनेके लिये धीर हो उठी । उग समय आराधने श्रद्धा आदि देवता लोप अपने मुकुटोपर हाथ जोडकर धीर सिर

किरीटवद्भाञ्जलिभिर्निभःस्वैर्नभस्कृता सत्वरनाकिलोकैः ।  
 विमानतोऽचातरदात्मजं तं ग्रहीतुमुत्कण्ठितमानसाभूत् ॥१६॥  
 स्वर्गापगापावककृत्तिकादीन्कृताञ्जलीनानमतोऽपि भूयः ।  
 हित्वोत्सुका तं सुतमाससाद पुत्रोत्सवे माद्यति का न हर्षीत् ॥१७॥  
 प्रमोदवाप्पाकुललोचना सा न तं ददर्श क्षणमग्रतोऽपि ।  
 परिस्पृशन्ती फरकुड्मलेन सुखान्तरं प्राप किमप्यपूर्वम् ॥१८॥  
 सुविस्मयानन्दविकस्वरायाः शिशुर्गलद्वाप्यतरंगितायाः ।  
 विद्वद्धघात्सल्यरसोत्तराया देव्या दशोर्गोचरतां जगाम ॥१९॥  
 तमीक्षमाणा क्षणमीक्षणानां सहस्रमाप्तुं विनिमेषमैच्छत् ।  
 सा नन्दनालोकनमङ्गलेषु क्षणं क्षणं तृप्यति कस्य चेतः ॥२०॥  
 धिनम्रदेवासुरपृष्ठगाम्यामादाय तं पाथिसरोरुहाभ्याम् ।  
 नवोदयं शार्ङ्गचन्द्रचारुं गौरी स्वमुत्सङ्गत्तलं निनाय ॥२१॥  
 स्वमङ्गमारोप्य सुधानिधानमिवात्मनो नन्दनमिन्दुवक्त्रा ।  
 तमेकमेपा जगदेकगौरं बभूव पूज्या धुरि पुत्रिणीनाम् ॥२२॥  
 निसर्गावात्सल्यरसौघसिक्ता सान्द्रप्रमोदामृतपूरपूर्णा ।  
 तमेकपुत्रं जगदेकमाताम्युत्सङ्गिनं प्रसूयिणी वैभूव ॥२३॥

भ्रुवावर उन्हें प्रणाम करने लगे ॥१५-१६॥ गया, धमि धीर वृत्तिकारों सभी बार-बार झुक-  
 झुक कर उन्हें प्रणाम कर रही थी पर पार्वतीजीका ध्यान ऊपर उपाही नहीं धीर जगहोने दक्ष  
 पायसे उस पुत्रको अपनी गोदमें उठा लिया । भता वीन ऐसी माता होगी जो अपने पुत्रको प्रेममें  
 सुष-सुष न सो बँटती हो ॥१७॥ धीरोंने मानन्दने शीघ्र उत्तर धानसे वे पौड़ी देरतक तो  
 अपने पुत्रको देख ही न पाई और वजीने समान अपने वीमल हाथसे ही पुत्रको उठलाने भरसे  
 वे मनीसा मुस मेती रही ॥१८॥ उन्हें वह मनोहर बालक गड दियाई दिया । जब उनकी माँ  
 धरज धीर मानन्दने मिली जा रही थी, वी उमड़ा पड़ रहा था, शीघ्र गहे जा रहे वे धीर  
 बागलकमाद रोम-रोममें डरका पड़ रहा था ॥१९॥ उन कप्लेकी धीर एकदक देखनी हुई पार्वती-  
 वी योगने सभी कि यदि इत समय मुझे एक महल माँसे मिल आतो तो मिलना अच्छा होता ।  
 भता पुत्र दर्शनके समय किमका जो करता है ॥२०॥ प्रणाम करनेके समय मुने हुए देवताओं  
 धीर देवीकी पीठपर अपने जो हाथ रगार वे शशीय दिया करती थी जहाँ हाथों पार्वतीजीने  
 पुनीने चन्द्रमाने समान अपने मुन्दर पुत्रको अपनी गोदमें बिठा लिया ॥२१॥ चन्द्रमाने समान सुखकारी  
 पार्वतीजीने सगारमें सबसे श्रेष्ठ अपने उन धीरों कीगुणकी गोदमें इन प्रकार ले लिया मानो  
 धनुषका वनग गोदमें रख लिया हो । उन समय वे पुत्रनिर्षा में भरने श्रेष्ठ प्ररनीय हो  
 उठी ॥२२॥ सगारकी माता पार्वतीजीने जब उठ धनीने पुत्रकी गोदमें उठा लिया तो  
 बागलक उठनी स्वाभाविक थाउ जगके रोम-रोमने उमड़ पडी, हरेने धनुषकी धाड धा गई



अशेषलोकत्रयमातुरस्याः पाणमातुरः स्तन्यसुधामघासीत् ।  
 सुरस्रगन्त्याः किल कृत्तिकाभिर्मुहुर्मुहुः सस्पृहमीक्ष्यमासुः ॥२४॥  
 सुखाश्रुपूर्णं मृगाङ्गमौलेः कलत्रमेकेन मुखाम्बुजेन ।  
 तस्यैकनालोद्गतपञ्चपञ्चलक्ष्मीं क्रमात्पद्मदनीं चुचुम्बे ॥२५॥  
 हैमी फलं हेमगिरेर्लतेव विकस्वरं नाकनदीषु पद्मम् ।  
 पूर्वेव दिद्भूतनमिन्दुमाभाषं पार्वती नन्दनमादधाना ॥२६॥  
 प्रीतात्मना सा प्रयतेन दक्षहस्तावलम्बा शशिशोखरेण ।  
 कुमारमुत्सङ्गतले दधाना विमानमभ्रसिंहमारुरोह ॥२७॥  
 महेश्वरोऽपि प्रमदप्ररूढरोमोद्गमो भूधरनन्दनायाः ।  
 अङ्गाङ्गुपादत्र तदङ्गुः सा तस्यास्तु सोऽप्यात्मजवत्सलत्वात् ॥२८॥  
 दधानया नेत्रसुषैकसत्रं पुत्रं पवित्रं सुतया तपात्रेः ।  
 संश्लिष्यमासुः शशिसखण्डधारी विमानवेगेन गृहाङ्गगाम ॥२९॥  
 अधिष्ठितः स्फाटिकशैलशृङ्गे तुङ्गे निजं धाम निकामरम्यम् ।  
 महोत्सवाय प्रमथप्रमुख्यान्पृन्धूनाणाञ्छाश्रुथ्यादिदेश ॥३०॥  
 पृथुप्रमोदः प्रमुखो भयानां गणः समग्रो पृथपाहनस्य ।  
 गिरीन्द्रपुत्र्यास्तनयस्य जन्मन्यधोत्सवं सपश्यते विधातुम् ॥३१॥

श्रीर उतवे स्तनोसे वृषकी धारा यह चमी ॥२३॥ जब कर्तिकेयजी सब लोकोकी माता पार्वती-  
 जीके स्तनोना प्रसृत पीने भगे तय गगाजी श्रीर कृत्तिकाएँ बडे डाहसे उतकी श्रीर वार-वार  
 देखने लगी ॥२४॥ शकरजीकी प्यारी पार्वतीजीने हृदके प्राँसु बहाते हुए अपने कमलके सगान  
 एक मुखसे उत पुत्रके उन समो मुखीको चूसा जो ऐसे लगते थे मानो कमलकी एक डल्लमे पान  
 सुन्दर कमल निकल आये हो और उन पाँथोके बीचमे उन कमलकी ही सोभा छटा कमल बनकर  
 निपन आई हो ॥२५॥ मोदमे सुन्दर पुत्र लिए हुए पार्वतीजी ऐसी सुन्दर लग रही थीं मानो  
 सोनेके सुमेरु पर्वतपर उत्पन्न होनेवाली सुनहली सतामे फल निकल आया हो या प्राकाशगपामे  
 कमल छिल उठा हो या पूँडे दिशामे चन्द्रमा निकल आया हो ॥२६॥ पुत्रको गोदमे लिए हुए  
 सुती मनसे पार्वतीजी शकरजीके हाथका सहारा लेकर भयानक चूमनेवाले जँचे विमानपर पढ़  
 गई ॥२७॥ ये दोनो पुत्र-प्रेममे इतने मगन हो गए थे कि कभी तो पार्वतीजीकी गोदसे शकरजी  
 उध पुत्रको ले लेते थे और कभी उनकी गोदसे उधे पार्वतीजी ले लेती थीं । इस प्रकार पुत्र-  
 प्रेममे भरे हुए दोनो उधे किलार रहे थे ॥२८॥ धीखीको अमृतके समान सुख देनेवाले इस परम  
 पवित्र पुत्रको मोदमे लिए और अपनी छातीसे लिपटी हुई पार्वतीजीको वाप लेकर भगवान् शकर  
 वेगसे चलनेवाले विमानपर पदवर बैसास लोट आए ॥२९॥ स्फटिकके बने हुए उध पँलासके  
 जँचे शिखरपर अपने सुन्दर अकनमे बैठकर शकरजीने अपने मुख-मुख्य प्रमथ खादि पणोको आज्ञा  
 दी कि पुत्र उत्पन्न होनेका उल्लख मनाओ ॥३०॥ बडे छानन्द और जानसे समी गुणवान् गण

स्फुरन्मरीचिच्छुरिताम्बराणि सतानशास्त्रिप्रसन्नाश्रितानि ।  
 उच्चिच्छिपुः काञ्चनतोरणानि गण्णा वराणि स्फटिकालयेषु ॥३२॥  
 दिक्षु प्रसर्पस्तदधीश्वराणामथामराणामिव मध्यलोके ।  
 महोत्सवं शंसितुमाहोऽन्यैर्दधान धीरः पटहः पटीयान् ॥३३॥  
 महोत्सवे तत्र समागतानां गन्धर्वविद्याधरसुन्दरीणाम् ।  
 संभाषितानां गिरिराजपुत्र्या गृहेऽयवन्मङ्गलगीतकानि ॥३४॥  
 सुमङ्गलोपायनपात्रहस्तास्तं मातरो मातृवदभ्युपेताः ।  
 विधाय द्वाञ्जितकानि मूर्ध्नि निन्युः स्वमङ्गं गिरिजातनूजम् ॥३५॥  
 ध्वनत्सु तूर्येषु सुमन्द्रमङ्गघालिङ्गधोर्ध्वकेष्वप्सरसो रसेन ।  
 सुसन्धिवन्धं ननृतुः सुवृत्तगीतानुगं भावरसानुषिद्धम् ॥३६॥  
 याता वधुः सौम्यकराः प्रसेदुराशा विधुमो हुतभुद्रिदीपे ।  
 जलान्यभूवन्मिलानि तत्रोत्सवेऽन्तरिर्चं प्रससाद् सद्यः ॥३७॥  
 गम्भीरशब्दध्वनिमिश्रमुच्चैर्भृहोद्भवा दुन्दुभयः प्रयोदुः ।  
 दिवौकसां व्योम्नि विमानसंघा विमुच्य पुष्पप्रचयान्प्रससुः ॥३८॥  
 इत्थं महेशाद्रिसुतासुतस्य जन्मोत्सवे संमदयांचकार ।  
 चराचरं विद्यमशेषमेतत्परं चक्रम्पे किल तारकश्रीः ॥३९॥

सोर पार्वतीजी और चन्द्रकोके पुत्रजन्मके उपलक्ष्यन यहोत्सव यन्तममे जुट गए ॥३२॥ कुछ गए  
 तो स्फटिकमे चनकनी हुई गिरगोके पदमे रग रिरने दिखारै देवताके रूपमेसे और कल्पवृक्षके  
 फूलो मोर पताने यन्त हूए सुनहरे सुन्दर बन्दनवासीके घने स्फटिकके भजन सजाने लगे ॥३२॥  
 और कुछ गणोम जो नगदे बणाए उन्नी गभीर ध्वनि जब दसो दिशाओमे फैली तो परती से उठी  
 हुई उतरी घमघ मानो यह बताने लगी कि दिवालो और देवताओके लोके समान ही यहाँ  
 भी पुत्रोत्सव मनाया जा रहा है ॥३३॥ इस महोत्सवके उपलक्ष्यमे गन्धर्वो और मिद्याधरो  
 सुन्दरियोन पर घण्टर बर्षवा गई और पार्वतीजीने उन सबकी बड़ी प्रावणत की ॥३४॥  
 गायो घादि माताएँ भी बधावेकी शान्धी लेकर बालनके पास लयी गई और उनके गिरपर  
 हूब, प्रशन दिग्बन्धर का उठे घवनी-घपनी सोनेम लेन लगी ॥३५॥ वहाँ प्रथम, पल्लिङ्ग  
 और ऊर्ध्व नामकी प्रनेव प्रकारकी सुरहिषी मोठी-मोठी गन उठी और गाय तथा रत्न परे  
 मन्दे मन्दे घरोमे बँपे हुए गले गयी हुई अम्पराएँ, बडे हाथ-भायके भाषने लगी ॥३६॥  
 गुण देनाना पनः बहने लया, दिशाएँ दिख उठो, पुर्ण मित जानने चाप नमक उठो और जन  
 निर्मल हो गया, यहाँ तक कि उस उत्सवमे प्राणा भी उत्सास खुद गया ॥३७॥ पाराजी गम्भीर  
 ध्वनिके साथ साथ पर-पखे छोट छोटे गाने भी बजन लगे । देवता लोग भी घाणातमे घाण्ट  
 दिशाओने पून बरसा घोर चन लगे ॥३८॥ इस प्रकार चन्द्रको और पार्वतीजीके पुत्रके  
 जन्मोत्सवके सवारण लगे पर और चन्द्र प्राणी तो त्योके पून उठे पर तारक राक्षसी राज-नदनी

ततः कुमारः स मुदां निदानैः स बाललीलाचरितैर्विचित्रैः ।  
 गिरीशगौर्योर्हृदयं जहार मुदे न हृद्या किमु बालकेलिः ॥४०॥  
 महेश्वरः शैलसुता च हर्षात्सतर्पमेकेन मुखेन गाढम् ।  
 अवातदन्तानि मुखानि सलोर्मनोहराणि क्रमतरचुचुम्ब ॥४१॥  
 क्वचित्स्प्रलङ्घिः क्वचिदस्वलङ्घिः क्वचित्प्रकम्पैः क्वचिदप्रकम्पैः ।  
 बालः स लीलाजलनप्रयोगैस्तयोर्मुदं वर्धयति स्म पित्रोः ॥४२॥  
 अहेतुहासच्छुरिताननेन्दुर्गुहाङ्गुलीडनधूलिधूमः ।  
 मुहुर्बदन्किञ्चिदलक्षितार्थं मुदं तयोरङ्गुगतस्ततान ॥४३॥  
 गृह्यन्विपाद्ये हरवाहनस्य स्पृशन्नुमाकेमरिष्यं सलीलम् ।  
 स भृङ्गियः सूक्ष्मतरं शिरसाग्रं कर्पन्वभूव प्रमदाय पित्रोः ॥४४॥  
 एको नय द्वी दश पञ्च सप्तैर्यजीमश्यात्ममुखां प्रसार्य ।  
 महेशकण्ठोऽरुग्दन्तपट्टक्तिः तदङ्गुः शैशवमौग्ध्यमैशिः ॥४५॥  
 फपदिक्कण्ठान्तकपालदाम्नोऽङ्गुलिं प्रवेशयाननकोटरेषु ।  
 दन्ताजुपाचुं रभसी यभूव मुक्ताफलभ्रान्तिकरः कुमारः ॥४६॥  
 शंभोः शिरोऽन्तः सरितस्तरंगान्विगाहा गाढं शिशिराप्रसेन ।  
 म जातजाड्यं निजपाणिपद्मतापयद्भालविलोचनाम्नी ॥४७॥

नाम उठी ॥३६॥ पीरे-पीरे वह बालम अपनी मनोहर और धनोधी बाल-लीलाभोगे चकरजी और पापतीजीको मान्य देने लग्य ॥४०॥ वे हृषके मतवाले होकर अपने पुत्रके पीपसे और मनोहर मुलोकौ बार बार बडे भावसे चूमा करते थे ॥४१॥ कही सतराघाता हुआ और कही सीमे यमता हुआ मही नापता सा और कही तना हुआ-या वह बालक अपनी विलयाद मरी बालोंसे उनका जी चुभाने लग्य ॥४२॥ अपने माता-पिताकी गोदमे बैठा हुआ वह बालक, प्रनेक प्रकारसे उनका जी चुभाया करता था । कभी तो उसका मुपचन्द्र बिना किसी बातके हो हँसीसे चगक उठना था, कभी बोलनर अपने खेलनेसे उसका शरीर धूमसे भर जाता था कभी वह बार बार होठली बोली बोल-परके माँगनेसे खेलनेसे उसका शरीर धूमसे भर जाता था कभी तो यह चकरजीके बैठके सींग पकड़ता, कभी पारंगतीजीके सहनेके सहलाता और कभी भ्रङ्गीकी चोटोके महीन बाल सींचने लगता । यह सब देखकर उसके माता-पिता हर्षसे फूले न समाते ॥४३-४४॥ कभी-कभी वह चकरजीके कण्ठमे पडी हुई मुँडगात्राके मुषोम जैसी डालनर अपने दाँतोंके भीती समझकर उन्हे निवायने लग जाता था ॥४५॥ कभी वह पनरबीचे धिरपर रहनेवाली गवाजोकी सहरोमे अपना हाथ डाल देता पर जब बहुत ठंड लगनेसे उसके हाथ सुन्न हो जाते तब वह अपना जमल या गोमल हाथ शिवजीके भाषेपर जलते हुए तीसरे नेत्रने घागे ले जाकर सँक सेता ॥४६-४७॥ जब वह देखता कि शिवजीका कन्या लनिक नीचा हो रहा है और अपने जटा-जूट धुक रहे हैं तब वह जटाके साथ नीचे सटकनेवाले उनके

किञ्चित्कलं भङ्गुरकंधरस्य नमजटाजूटधरस्य शंभोः ।  
 प्रलम्बमानं किल कौतुकेन चिरं चुचुम्बे मुकुटेन्दुखण्डम् ॥४८॥  
 इत्थं शिशोः शैशवकेलिवृचैर्मनोभिरामैर्गिरिजागिरीशौ ।  
 मनोविनोदैकरसप्रसक्तौ दिवानिशं नाविदतां कदाचित् ॥४९॥  
 इति बहुविधं बालक्रीडाविचित्रविचेषिणं

ललितललितं सान्द्रानन्दं मनोहरमाचरन् ।

अलमत परां बुद्धिं पण्ठे दिने नवयौवनं

स किल सकलं शास्त्रं शस्त्रं विवेद विभुर्यया ॥५०॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये  
 कुमारवासलोलावर्णनं नामकादशः सर्गः ॥

विरपरने चन्द्रमाको हो बडी देर तक चूमता रहता ॥४८॥ इन प्रकार पुत्रकी मनोहर और  
 बिलबाड़ये भरी बाल-लीलाओंमें आनन्द लेते हुए संकरबी और पावंतीबी इतने मगन हो गए कि  
 उन्हें यहाँ सुष नहीं रह गई कि पाँच दिन बड़ा और कब रात आई ॥४९॥ यों पनेक प्रकारकी  
 मन-मुभावनी और बडी सुहावनी बाल-भीलाएँ करते हुए वह बालक छठे दिन बड़ा बुद्धिमान् और  
 जवान हो गया और छह ही दिनोंमें उसे सब शास्त्र और शास्त्र-विद्याएँ भसी प्रकार था गई ॥५०॥

महानयि श्रीकालिदासके रचे हुए कुमारसंभव महाकाव्यमें  
 कुमारकी बाललीलावर्णन नामका प्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

## ॥ द्वादशः सर्गः ॥

अथ प्रपेदे त्रिदशैरशेषैः क्ररासुरोपप्लवदुप्रितात्मा ।  
 पुलोमपुत्रीदयितोऽन्धकारिं पत्रावि तृष्णातुरितः पयोदम् ॥१॥  
 दृप्त्वारिसंत्रासगिःलीकृतात्स कथंचिदम्बोदविहारमार्गात् ।  
 अघातताराभि गिरिं गिरीशगौरीपदन्यासविशुद्धमिन्द्रः ॥२॥  
 संक्रन्दनः स्यन्दनतोऽवतीर्य मेघात्मनो मातलिदत्तहस्तः ।  
 पिनाकिनोऽद्यालयमुच्चाल शुचौ विषासाकुलितो यधाम्भः ॥३॥  
 इतस्ततोऽथ प्रतिनिम्बभाजं विलोकमानः स्फटिकश्रिभूमौ ।  
 आत्मानमप्येकमनेकथा स ब्रजन्विभोरास्पदमाससाद ॥४॥  
 विचित्रचञ्चन्मथिमङ्गिसङ्गं सौवर्णदण्डं दधतातिचण्डम् ।  
 स नन्दिनाधिष्ठितमप्यतिष्ठत्सौघाङ्गणद्वारमनङ्गशत्रोः ॥५॥  
 ततः स कक्षाहितहेमदण्डो नन्दी सुरेन्द्रं प्रतिपद्य सद्यः ।  
 प्रतोपयामास सुगौरवेषु गत्वा शशंस स्वयमीश्वरस्य ॥६॥  
 भ्रूसञ्जयानेन कृतान्धनुजः सुरेश्वरं वं वगदीश्वरेण ।  
 प्रवेशयामास सुरैः पुरोगः समं स नन्दी सदनं सदस्य ॥७॥  
 स चण्डिभृङ्गिप्रमुखैर्गिरिष्ठैर्गौरनेकैर्विविधस्वरूपैः ।  
 अधिष्ठितं संसदि रत्नमय्यां सहस्रनेत्रः शिवमालुलोके ॥८॥

### वारहवां सर्गं

जैसे प्यास लगनेपर पपीहा वादलकी गरलम जाता है, वैसे ही अत्याचारी तारकने उदरवर्गेमे दुखी इन्द्र भी, एक देवताभीको राग लेकर धरतीके पाठ जा पहुँचे ॥१॥ उन घमण्डी धनु तारक के भयले, देवता सौम्य किन्ती भी मागत भा जा रही सन्तते थे । इतलिय इन्द्र भी वादलकी वीणसे क्षिपते-क्षिपाते किसी प्रकार उस कंसाखुर जा उतरे जो धकर और पार्वतीकीके चरण पडनेसे पवित्र हो गया था ॥२॥ वहाँ मातङ्गिने ह्रापका सहारा लेकर इन्द्र भी वादलके रस उतरे और धरतीके भयनपी और उसी प्रकार अमरवर बडे जैसे गर्भिले कोई प्यासा मनुष्य पानीकी मोर पीये ॥३॥ स्पटिनसे बने हुए कंसासम चारो पार धपनी बहुतसी परछादियां टगते हुए वे धरतीके भयनपर जा पहुँचे ॥४॥ धरतीके भयनकी देहलीपर पहुँचकर इन्द्र रुक गए । वहाँ रप-दिरणे मण्डिरोरो पञ्जीवारी की हुई थी और एक बडा-सा सोनेका डडा ह्रापमे लिए हुए नन्दी वहाँ बंठे थे ॥५॥ अपने सोनेके डडेको एक जोनेमे रखकर नन्दीन चढते घागे बरवर घावमगत करने इन्द्रका स्वागत किया और स्वय भीतर जाकर महादेवजीको जन्ने आनेकी सूचना दी ॥६॥ धरतीने नीहोमे ही उन्हें भीतर लानेका संकेत किया और उनकी आशा पाकर नन्दीने आगे-आगे मार्ग दिलाते हुए इन्द्र और देवताभीको धरतीके पास पहुँचाया ॥७॥ इन्द्रने देखा कि वहाँ खन-बडे तथा मण्डपमें षण्डी, भृङ्गो आदि अनेक रूप-रगवाले बट्टनसे बडे बडे गखोमे पिरे हुए शिवकी बंठे हुए हैं ॥८॥

कपर्दमुद्गद्वमहीनमूर्ध्वरत्नांशुभिर्भासुरमुल्लसद्भिः ।  
 दधानमुच्चैस्तरभिद्वघातोः सुमेरुशृङ्गस्य समत्वमाप्तम् ॥६॥  
 विभ्राणमुत्तुङ्गतरङ्गमालां गङ्गां जटाजूटतटं भवन्तीम् ।  
 गौरीं तदुत्सङ्गजुषं हसन्तीमिव स्वफेनैः शरदप्रशुभ्रैः ॥१०॥  
 गङ्गातरङ्गप्रतिबिम्बितैः स्वैर्वह्मवन्तं शिरसा सुधांशुम् ।  
 चलन्मरीचिप्रचयैस्तुपारगौरैर्हिमघोतितमुद्गहन्तम् ॥११॥  
 भालस्थले लोचनमेधमानधामाधरीभूतरवीन्दुनेत्रम् ।  
 युगान्तकालोचितहव्यबाहं मीनध्वजप्लोपणमादधानम् ॥१२॥  
 महार्हरत्नाश्रितयोरुदारं स्फुरत्प्रभामण्डलयोः समन्तात् ।  
 कर्णस्थिताभ्यां शशिभास्कराभ्यामुपासितं द्रुण्डलयोरञ्जलेन ॥१३॥  
 स्वयद्भया फण्डकयेव नीलमाणिक्यमय्या कुतुकेन गौर्याः ।  
 नीलस्य कण्ठस्य परिस्फुरन्त्या कान्त्या महत्या सुविराजमानम् ॥१४॥  
 कालादितानां त्रिदशासुराणां चितारजोभिः परिपाण्डुराङ्गम् ।  
 महन्महेभाजिनमुद्गताभ्रप्रालेपशैलधिपमुद्गहन्तम् ॥१५॥  
 पाणिस्थितव्रह्मकपालपार्श्वं वैकुण्ठभाजापि निपेय्यमाणम् ।  
 नरास्त्रियखण्डाभरणं रणान्तमूलं विशुलं कल्पन्तमुच्चैः ॥१६॥

पाँसि विपदा हुआ शिवजीके सिरका जटा-जूट वामुकि आदि बड़े साँपोके पनीके बरिपोकी  
 किरनोसे चमकता हुआ सुमेरु पर्वतकी जोटीके समान दिखाई पड रहा था ॥६॥ शिवजीके जटा-  
 जूटके मगले भागम बसी हुई ऊँची-ऊँची तरङ्गोवासी गगानी, शरदके वादलोके समान छजली के  
 उद्गाल-उद्गालपर गानो शकरजीकी गोदमे बँठी पावंताकी हँसी उडा रही थी कि देखो हग तो  
 शिवजीके सिरपर बसी हुई है ॥१०॥ शिवजीके सिरके चन्द्रमानी हिम-जंसी उजली किरणोकी जो  
 परछाई गगानीकी तरणोम बहुत रूपोमे नाच रही थी वह ऐसी जान पडती थी गानो उस एक  
 चन्द्रमाने षडुसे चन्द्रमा बन गए हो ॥११॥ उनके मायेपर कामदेवको जलबिंबाला, प्रलयकी अग्निके  
 समान मद् नीसरा नेत्र चमक रहा था जिसके बढते हुए तेजमे माये प्रलयके सूर्य और चन्द्रकी  
 नेत्र भी झप जते हैं ॥१२॥ उनके नानोमे किरणोके घेरने फिर हुए अनमोल रलोसे जडे दो  
 चुण्डल ऐसे लटप रहे थे मानो इनके बलाने सूर्य और चन्द्र ही शरदकी ब दोनो कानोपर उनकी सेवा  
 कर रहे हो ॥१३॥ उनका नीना कठ ठीक बँगा ही चमकता था जैसा कभी कभी खिलवाडमे  
 नीलमवा हार पहन लेनेपर पार्वतीजीका गला चमक उठता है ॥१४॥ मर हुए दब दानयोनी  
 चितामोकी भ्रम पुते हुए अपने उजले शगपर हाथोनी गाल छोडे हुए थे एमे दिखाई देते थे  
 मानो बारसोसे फिर हुआ विद्यान हिमायत हो ॥१५॥ उनके एक हाथमे ब्रह्म कपालका पात्र था,  
 गनेमे मरे हुषोकी हडिगोवि दुषडोके गहो थे और दुमरे हाथमे मुद्ग समाप्त करनेवाला

पुरातनीं ब्रह्मकपालमालां कण्ठे वहन्तं पुनराश्रयसन्तीम् ।  
 उद्रीतवेदां मुकुटेन्दुवर्षत्सुधाभरौघाप्तवल्गुसंज्ञाम् ॥१७॥  
 सलीलमङ्गस्थितया गिरीन्द्रपुत्र्या नवाष्टापदचल्लिभासा ।  
 विराजमानं शरदभ्रखण्डं परिस्फुरन्त्याचिररोचिवेव ॥१८॥  
 दृप्तान्धकप्राखहरं पिनाकं महासुरस्त्रीविधवात्वहेतुम् ।  
 करेण गृह्णन्तमगृह्यमन्यैः पुरा स्मरप्लोपणकेलिकारम् ॥१९॥  
 भद्रासनं काञ्चनपादपीठं महार्हमाशिक्यविभङ्गिचित्रम् ।  
 अधिष्ठितं चन्द्रमरीचिगौरैरुद्वीज्यमानं चमरैर्गङ्गाभ्याम् ॥२०॥  
 शतसङ्ख्यविद्याभ्यसनैकमक्ते सविस्मयैरेत्य गणैः सुदृष्टे ।  
 नीराज्यमाने स्फटिकाचलेन सानन्दनिर्दिष्टदृशं कुमारे ॥२१॥  
 तथाविधं शैलसुताधिनाथं पुलोमपुत्रीदयितो निरीक्ष्य ।  
 आसीत्क्षुण्णोऽभिमरो नु कस्य मनो न हि ह्युभयति धामधाम्नि ॥२२॥  
 पिकस्वराभ्भोजवनश्रिया तं दृशां सहस्रेण निरीक्षमाखः ।  
 रोमालिभिः स्वर्गपतिर्धमासे पुष्पोत्कराकीर्णं श्वाभ्रशाखी ॥२३॥  
 दृष्ट्वा सहस्रेण दृशां महेशमभूत्कृतार्थोऽतितरां महेन्द्रः ।  
 सर्वाङ्गजातं तदथो विरूपमिव प्रियाकोपकरं विषेद ॥२४॥

ऊपर उठा हुआ विरूप था । इस ऊटपटांग वेपथे होनेपर भी वैकुण्ठवासी विष्णु उनको सेवा कर रहे थे ॥१६॥ उनके गलेमें ब्रह्म-कपालोकी एक पुरानी माला पकी थी जो सिरपर बसे हुए कण्ठमासे बरती हुई अमृतकी धूँदे पी-पीकर जोखिल-खी हो होकर वेद का रही थी ॥१७॥ तीनोंकी गई सताके समान सुन्दर पार्वतीकी अपनी मोदमे बैठे हुए वे ऐसे दिखाई पड़ते थे मानो चमकती हुई विजलीबासा कोई शरद का बावल हो ॥१८॥ उनके हाथमें वह पिनाक धनुष था जिसने अन्धक नामके मत्तवाले दैत्यके प्राण से लिए थे, बड़े बड़े दाववोरो मारकर उनकी क्लिपोंकी विधवा बना दिया था, कामदेवकी जलाकर खान कर दिया था और जिसे दूसरा कोई उठा भी नहीं सकता था ॥१९॥ अतमोल मोठी और गणियोंकी शजाबटसे रण-रवरये दिखाई देनेवाले उस सिंहासनपर वे बैठे हुए थे जिसके नीचे सोतेका पंर-पीछा रक्खा हुआ था और दोनों ओरसे दो पाए उनपर पन्द्रकी किरणोंके समान उजले चँवर हुआ रहे थे ॥२०॥ वे बैठे हुए बड़े चावसे उन कुमार वासिनेकी धूम-विद्या और धूम-विद्याका अभ्यास देख रहे थे, जिन्हें अकरजोंके गण भी बड़े आश्चर्यसे देख रहे थे और यह स्फटिकका पर्वत भी जिनकी धारती उतार रहा था ॥२१॥ ऐसे अकरजोंको देखकर मोठी देरके लिये इन्द्रका मन भी जलज उठा क्योंकि अत्यान्ध इतनी सुख-सम्पत्ति इतनी देखकर भला किसका मन नहीं लजब उठेगा ॥२२॥ खिले हुए कमलोके समान धपने सुन्दर सहस्रो नेत्रोंके अकरजोंको देखते हुए इन्द्र, उध कामके पेड़के समान सुन्दर लगने लगे जो नीचेसे ऊपरतक गजारियोंके लहा हुआ हो ॥२३॥ अपनी सहस्रो पाँवोंसे अकरजोंको

ततः कुमारं कनकाद्रिसारं पुरंदरः प्रेक्ष्य शृतात्तशतम् ।  
 महेश्वरोपान्तिक्वर्तमानं शशोर्जयाशां मनसा ब्रवन्ध ॥२५॥  
 श्रीनीलकण्ठ द्युपतिः पुणोऽस्ति त्वयि प्रणामावसरं प्रतीच्छन् ।  
 सहस्रनेत्रेऽग्र भव त्रिनेत्र दृष्ट्वा प्रसादप्रमुखो महेश ॥२६॥  
 इति प्रवद्वाञ्जलिरेत्य नन्दी निघाय कक्षामभि हेमवेत्रम् ।  
 प्रमादपात्रं पुरतो भविष्युरथ स्मरारातिमुवाच वाचम् ॥२७॥  
 पुरा सुरेन्द्रं सुरसहस्रेभ्यं त्रिलोकसेव्यस्त्रिपुराहुरारिः ।  
 प्रीत्या सुधासारनिधारिणोव ततोऽनुब्रूवाह विलोकनेन ॥२८॥  
 किरीटकोटिच्युत्पारिजातपुष्पोत्करेणानमितेन मूर्ध्ना ।  
 स्वर्गैकबन्धो जगदेकबन्धं तं देवदेवं प्रणनाम देवः ॥२९॥  
 अनेकलोकैककनमस्त्रियाहं महेश्वरं तं त्रिदशेश्वरः मः ।  
 भक्त्या नमस्कृत्य कृतार्थतायाः पात्रं पवित्रं परमं बभूव ॥३०॥  
 शुभक्तिमाजामधिपादपीठं प्रान्तपिति नम्रतरैः शिरोभिः ।  
 ततः प्रणोमुः पुरतो गणानां गणाः सुराणां क्रमतः पुरारिम् ॥३१॥  
 गणोपनीतं प्रमुखोपदिष्टः शुभासने हेममये पुरस्तात् ।  
 प्रापोपविश्य प्रमुदं सुरेन्द्रः प्रभ्रुप्रसादो हि मुदे न कस्य ॥३२॥

देवदर इन्द्रने भयना यथा भाव्य सत्ताहा गर इसके उनके शरीर भरने जो रोमाश्च हो प्राया उगे  
 देवदर उन्हें यह डर हुआ कि नहीं इन्द्रास्त्री यह न समझ बैठे कि किता दूगरो सुन्दरीको देखनेके  
 रोमाश्च हो प्राया इनपर यह मौतिया साह करने रुठ न बैठे ॥२४॥ इन्द्रने पश्चात् यह उन्होंने  
 शबरजीके पास बैठे हुए, मुँहको समाप्त बनयाने और शर-नाश-धारी पुष्करको देता तो उक्त  
 मन्त्रे यह प्राया होने सर्वा कि सब एव शत्रुको भयव्य जीत लेंगे ॥२५॥ इन्द्रने अपने सोनेका राज  
 एक कोनेके रत्नाद, प्रागे बड़कर और हाथ जोड़कर, शबरजीकी कृपा पानेकी इच्छासे मन्त्रके  
 शबरजीके जाकर कहा कि हे नीलकण्ठ ! देवताओंके स्वामी इन्द्रदेव प्राणको प्रणाम करने की बात  
 शीघ्रते हुए वहाँ लगे हुए हैं, प्राणिके कृपा करने इनकी और भी अपनी कृपा रूति पुमा शीघ्रिणा  
 ॥२६-२७॥ यह सुनकर त्रिपुर राजमरा नाम करनेजाने, गकारके पुत्रनीय शर भगवादी  
 देवताओंके पुत्रनीय इन्द्रको भयनां समूहकी प्राय करखाता हुंरें भी इच्छिथ शरणर पशुष्टीय  
 किया ॥२८॥ स्वयंके शिरोकी मत्र पूषा परते हैं, वे देवराज इन्द्र, अब सारे मन्त्रके एक साथ  
 पुत्रनीय और देवताओंके देवता महादेवजीको प्रणाम करनेके लिये हुंरें तो इनके मन्त्रके शिरोटरी  
 शीघ्रते प्राणिकाने ब्रह्मने पूत्र विरवर विपर वय ॥२९॥ सब सोचोंके एक मात्र पुत्रनीय  
 भयनां शबरको भक्तिके साथ प्रणाम करने स्वयंके स्वामी इन्द्रने अपनी परम पतिव और अन्य  
 समस्त ॥३०॥ और हुंरें देवताओं की प्रथम प्रादि मन्त्रोंके दृष्ट-२९१ बड़ी नगिष्ट  
 शरकीके पर रत्नोंके पीछेके प्राय शरनीयत प्राय देवदर शरी-शरीके लगे प्रणाम किया ॥३१॥  
 पर मत्र हो शूफनेर शरकी प्राया शबर एव शर जाकर एव भयना उक्त प्राया शिघ्रर



क्रमेण चान्येऽपि विलोकनेन संभाविताः सस्मितमीश्वरेण ।  
 उपाविशंस्तोपविशेषमाप्ता दम्नोचरे तस्य सुराः समग्राः ॥३३॥  
 अथाह देवो बलवैरिमुखाङ्गीर्वाणवर्गान्करुणाद्र्चेताः ।  
 कृताञ्जलीकानसुराभिभूतान्ध्वस्तश्रियः श्रान्तमुत्पानवेद्य ॥३४॥  
 ग्रहो यतानन्तपराक्रमाणां दिवोकसो वीरवरायुधानाम् ।  
 हिमोदविन्दुःक्षपितस्य किं वः पथस्य दैन्यं दधते मुखानि ॥३५॥  
 स्वर्गोक्तसः स्वर्गपरिच्युताः किं स्वपुण्यपराशौ सुमहत्तमेऽपि ।  
 चिह्नं चिरोढं न तु यूयमेते निजाधिपत्यस्य परित्यजध्वम् ॥३६॥  
 दिवोकसो देवगृहं विहाय मनुष्यसाधारणतामवाप्ताः ।  
 यूयं कुतः कारणतत्परध्वं महीतले मानभृतो महान्तः ॥३७॥  
 धनन्यमाधारणसिद्धमुच्चैस्तदैवतं धाम निकामरम्यम् ।  
 कस्मादकस्मान्निरगाञ्ज्वन्नृथधिरार्जितं पुण्यमिवापचारात् ॥३८॥  
 दिवोकसो वो हृदयस्य कस्मात्तथाविधं धैर्यमहार्यमार्याः ।  
 अगादगाधस्य जलाशयस्य ग्रीष्मातितापादिवशादिवान्मः ॥३९॥  
 सुराः सुराधीशपुरःभराणां समीयुषां वः सममातुराणाम् ।  
 तद्वद्भूत लोकरयजित्वरार्तिकं महासुरात्तारकतो विरुद्धम् ॥४०॥

बैठकर हृदयो यथा आनन्द हुआ । भला शकर गीका प्रसाद वाकर बीन भपनेको पाय गही मानेग  
 ॥३३॥ सब देवतालोकी घोर बारी-बारीसे मुक्कराते हुए देखकर शकरजीने सब सबका गी सम्मान  
 किया । इससे ये सब भी यद्ये प्रखन्न होकर जननी माधोके सामने ही बैठ गए ॥३३॥ इन्द्र प्रादि जो  
 देवता हाम लोके माने बैठे हुए ये घोर दंष्ट्रोते हार जानेके कारण जिनके पूर्व उदास घोर मुरझाए-  
 से दिखाई गइ रहे ये जननी प्रोर देखकर कबलाते विपसे हुए हृदयवाते तिषणी बोले—  
 ॥३४॥ हे देवतायो ! इतने बड़े-बड़े वीर होकर, एकते एक बढ़कर पक्ष सखीसे सबघजवर घोर  
 स्वर्गमे रहकर भी प्राय लोगोमे कुछ पाता मारे हुए नभकोके समान उदात क्यों दिखाई दे रहे  
 हैं ॥३५॥ हे देवतायो ! इतने बड़े पुण्य करनेपर भी प्राय लोग स्वर्गमे निकल कैसे आए । प्राय  
 लोग इतने दिनेसे जो दध नैवर प्रादि राज-बिहू साध रखते या रहे ये ऊहे प्राय लोग नभी  
 छोड़िए मत ॥३६॥ प्राय लोग इतने मनस्वी, महिमायानो और स्वर्ग निवासो होकर भी स्वर्ग  
 छोड़कर साधारण मनुष्योके समान पृथ्वी तलपर दगर-उदर क्यों मारे-मारे फिर रहे हैं ॥३७॥  
 जैसे प्राय करनेसे बहुत दिनेसे इवट्टा किया हुआ पुण्य हाथसे निकल जाता है, जैसे ही बटो बटो  
 सिद्धियोमे भरा हुआ बग मुन्दर स्वर्ग मे प्राय लोगोके हाथसे अचानक कैसे निकल गया ॥३८॥  
 हे देवतायो ! जैसे बहुत गर्मी पड़नेसे पहरा उतारना भी सूख जाता है, जैसे ही प्राय लोगोके  
 हृदयमे रहनेवाला वह बग भारी अटल घोरक कहीं चला गया ॥३९॥ आज व्याकुल होकर  
 एक साथ आए हुये इन्द्र प्रादि देवतायो ! प्राय यह वो बताए कि प्राय लोगोने लोने लोने-

परामत्रं तस्य महासुरस्य निपेद्भुमेकोऽहमलं भविष्याः ।  
 दावानलप्लोपविषचिन्मन्यो महाम्बुदार्तिकं हरते वनानाम् ॥४१॥  
 इतीरिते मन्मथमर्दनेन सुराः सुरेन्द्रप्रमुखा मुक्षेषु ।  
 सान्द्रप्रमोदाश्रुतरङ्गितेषु दधुः श्रियं सत्त्वरमाश्वमन्तः ॥४२॥  
 ततो गिरीशस्य गिरां विरामे जगाद लब्धावसरः सुरेन्द्रः ।  
 भविन्त वाचोऽश्वरं प्रयुक्ता ध्रुवं फलाविष्टमहोदयाय ॥४३॥  
 ज्ञानप्रदीपेन तमोपहेनाविन्धरेणास्त्रलितप्रमेण ।  
 मृतं भवद्भाषि च यच्च किञ्चित्सर्वज्ञं सर्वं तव गोचरं तत् ॥४४॥  
 दुर्वारदोरुधमदुःमहेन यचारकेणामरधस्मरेण ।  
 तदीशतामाप्तता निरस्ता वयं दिवोऽमी वटं किं न वेत्सि ॥४५॥  
 विधेरमोघं म धरप्रमादमासाद्य सद्यस्त्रिजगज्जिगीषुः ।  
 सुरानशेषानहकप्रसृस्यान्दोर्दण्डचण्डो मनुते तृणाय ॥४६॥  
 स्तुत्या पुरास्माभिरुपागितेन पितामहेनेति निरूपितं नः ।  
 सेनापतिः संपति दैत्यमेतं पुरः स्मरारातिसुतो निहन्ति ॥४७॥  
 अहो ततोऽनन्तरमद्यथावत्मुदुःसहां तस्य परामनातिम् ।  
 विपेहिरे हन्त हृदन्तशान्यमात्रानियेशं त्रिदिवीकसोऽमी ॥४८॥

को जीतनेवाले दरबार का सारके भगवा तो मोस नही ले लिया है ॥४०॥ देखिए, उस महा-  
 दैत्यने भाप सोगोबा जो अपमान किया है उसका बदला देयल में ही ले सकता है क्योंकि जगत्सो-  
 में लगी हुई भाप यारसोको बड़ी घटाको छोड़कर और कौन बुझा सकता है ॥४१॥ सारको-  
 में ऐसा बहनेपर हन्त आदि सभी देवताको भी धातोंमें अत्यन्त आनन्दके प्राप्ति छलछता भाप  
 और जब उन्हें यह काइस दे दिया गया कि अब भाप सोगोबा प्राल-रहा हो जायगी तो ये तब  
 तिन उठे ॥४२॥ भगवान् सारके बह चुकनेपर टीक सारकर जानकर हन्तने कृता धारम्भ  
 किया, क्योंकि सारकार बड़ी हुई आनका सारके ही टीक पत्त मिलता है—॥४३॥ है प्रभु !  
 भाप पट-पटकी जाननेवाले है, भाप अज्ञानको विनाशनेवाले है, भापका कभी नाश नहीं होता,  
 और अपने कभी न बुझनेवाले सारके प्रकाशमें भाप सारके भूत, भविष्य और वर्तमान इन  
 तीनों कालोंको सब जान जाते हैं ॥४४॥ इसलिए हे भाप ! यह तो भाप जानने ही होने  
 कि अपने बटोर बाहुवरके पराक्रमने भाइया होकर, देवताओंको पोषा देवायता सारक प्रभु  
 रगौरा मानिक बन बैठा है और उसने हृष सबको स्वयंसे निजाल नपराया है ॥४५॥ यह सारक  
 प्रभु प्रभुके प्रभु करदान सारक अपनी प्रजाओंके स्वयंसे सुरल भीन सोचोंको जीत लेता  
 पाहता है और मुझे तथा दूसरे बड़े बड़े देवताओंको भी तिनके बराबर तुच्छ समझता है ॥४६॥  
 हे मन्त्र ! हम सोचने बहने जब ब्रह्माणोकी स्तुति भी यो सब उद्योग प्रगल्भ होकर हमें  
 बनाया था कि अब सारकोका पुत्र देवताओंका सेनापति बनकर उगने लहेगा तभी यह दैत्य मारा  
 जायगा ॥४७॥ सारके आनन्द मय देवता भीन सारक सारके शान्ते हरनेकी कृता और

निदाघधामङ्गलमविकलवानां नवीनमम्भोदमिवौषधीनाम् ।  
 सुनन्दनं नन्दनमात्मनो नः सेवान्यमेतं स्वयमादिश त्वम् ॥४६॥  
 शैलोकपलक्ष्मीहृदयैकशल्पं समूलमुत्खाय महासुरं तम् ।  
 अस्माकमेपां पुरतो मवन्सन्दुःखापहारं युधि यो विधत्ते ॥५०॥  
 महाहवेनाथ तवास्य सनोः शस्त्रैः शितैः कृचशिरोधराणाम् ।  
 महासुराणां रमणीविलापैर्दिशो दर्शता मुखरीमवन्तु ॥५१॥  
 महारणक्षोणितशूपाहारीकृतोऽमुरे तत्र सवात्मजेन ।  
 वन्दिस्थितानां सुदृशां करोतु वेषीप्रमोहं सुरलोक एषः ॥५२॥  
 इत्थं सुरेन्द्रे वदति स्मरारिः सुरारिदुश्चेष्टित्जातरोपः ।  
 कृतानुकम्पस्त्रिदशेषु तेषु भूयोऽपि भूताधिपतिर्भ्राये ॥५३॥  
 अहो अहो देवगणाः सुरेन्द्रमूर्ख्याः शृणुध्वं वचनं ममैत् ।  
 विचेष्टते शंकर एष देवकार्याय सज्जो भवतां सुतायैः ॥५४॥  
 पुरा मयाकारि गिरीन्द्रपुत्र्याः प्रतिग्रहोऽयं नियतात्मनापि ।  
 तत्रैष हेतुः खलु तद्भवेन वीरेण यद्द्रव्यस एव शत्रुः ॥५५॥  
 अत्रोपपन्नं तदमी नियुज्य कुमारमेनं पृथनापतित्वे ।  
 निघ्नन्तु शत्रुं सुरलोकमेव धुनक्तु भूयोऽपि सुरैः सहेन्द्रः ॥५६॥

हरदयमे पुत्रे हुए गार्गके समान कसनैवासी उसकी भासाका अपमान सहते बने था रहे हे  
 ॥४६॥ इसलिये हे भगवन् ! जैसे गर्मके सूर्यकी तपनसे बने हुए जल-चूरीकी नये धावल  
 हरा बार बने हैं वैसे ही अपने इस भानन्द-दायक पुत्रको हत्यारे सेनापति बननेको भासा देकर  
 प्राप भी हमे जिला लीजिए ॥४६॥ तीनो लोकोके हृदयमे कटिके समान चुभनेवाले इस महा-  
 हृदयको जब आपके ये पुत्र मुझमे भागे बढकर बार टालेंगे तभी हमारा दुःख मिट पावेगा ॥४७॥  
 हे नाथ ! ऐसा कीजिए कि जब इस महासभाममे आपके पुत्रके नुकीले बालोसे महावल्गोके चिर  
 कट-कटकर गिरें तब उन बालोकी खिचोके बिलापसे दसो दिशाएँ गुंज उठें ॥४८॥ और जब  
 आपके पुत्र उस महासभर-भूमिमे उन देखीको घियार आदि जन्तुप्रोकी भेंट नदार्ण तब स्वर्गमे  
 बन्दी बनी हुई अपनी मुन्दर नेत्रोवाली स्त्रियोकी उमझी हुई एनतही बानो चोटियोकी ये देवता  
 लोग जानर लीसे ॥ ४९॥ इस प्रकार इन्द्रके मूँहसे तारकका अत्याचार सुनकर भूतापति शररजी  
 प्रीपसे जाल हो उठे और उन देवतायोपर ह्म्या करते हुए ये फिर बोले ॥५०॥ हे इन्द्र आदि  
 देवताओ ! प्राप लोग मेरी बातें सुनिए । अब मैं लकर अपने पुत्रको लेकर तुम्हारा वाम करनेके  
 लिये तैयार हो गया हूँ ॥५१॥ हे देवो ! समाधिमे लगे होवेपर भी मैंने पार्वतीके साथ इसीलिये  
 विवाह किया था कि इनका पुत्र तारकको मार डाले ॥५२॥ इसलिये आपका वाम करनेवाले इस  
 कुमारको सेनापति बनाकर प्राप धनुका नास कीजिए और इन्द्रके साथ फिर स्वर्गका भ्रान्त  
 लीजिए ॥५३॥ इसका कटकर शंकरजीने उस घोर संभामको एक महोत्सव मानकर उसके लिये

इत्युदीर्य भगवाँस्तमात्मजं घोरसंगरमहोत्सवोत्सुकम् ।  
 नन्दनं हि जडि देवविद्धिर्षं संयतीति निजगाद शकरः ॥५७॥  
 शामनं पशुपतेः स कुमारः स्वीचक्रर शिरसावनतेन ।  
 सर्वथैव पितृभक्तिरतानामेष एव परमः खलु धर्मः ॥५८॥  
 असुरमुद्धविधौ विबुधेश्वरे पशुपतौ वदतीति तमात्मजम् ।  
 गिरिजया मुमुदे सुतविक्रमे सति न नन्दति का खलु वीरघः ॥५९॥  
 सुरपरिवृढः श्रौढं वीरं कुमारमुमापते,  
 र्वक्षवदभरारातिस्त्रीणां दृगञ्जनमञ्जनम् ।  
 जगदभयदं सद्यः प्राप्य प्रमोदपरोऽभवद्-  
 ध्रुवमभिमते पूर्ये को वा मुदान हि माद्यति ॥६०॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृतो कुमारसंभवे महाकाव्ये  
 कुमारसंभवाप्तवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥

अपने पुत्रसे पला—हे पुत्र ! तुम जाकर देवताओंके लक्ष्मी तारण असुरकी मुदभूमिमें मार मारो ॥५७॥  
 कुमार पाँचाने मने सिर मुनावर शनरजीवी आशा स्वीकार करली । क्योंकि पिताके भक्त पुत्रको यही  
 लक्ष्मी धर्म है कि पिताकी आज्ञा मान लें ॥५८॥ एक देवताकोसे स्वामी निवजी जय अपने पुत्रको  
 देलगी मुद बदनेरी बात समझने मने तो पार्वतीजीकी छाती दूनी हो गई क्योंकि ऐसी भला जीन  
 पीर माता होती जो अपने पुत्रकी बीरताकी दातसे प्रमत्त न हो ॥५९॥ बलवान् देवोपी स्त्रियोंकी  
 दलावर उनका प्रांगुसे उनका बाँधना बाँधन मिटानेवाले तथा सत्कारकी अभय दान देनेवाले परग  
 पराक्रमी कुमार काँगियेको पाकर दन्द्र भयवान् आनन्दने लित उठे, क्योंकि संगारमे ऐसा वीर है  
 जो अपनी इच्छा पूरी हो जानेपर आनन्दने पाषाण न हो उठता ही ॥६०॥

महाकवि श्रीकालिदासके ऐसे हुए कुमारसंभव महाकाव्यमें कुमारके वेनापति  
 होनेका वर्णन नामका चारद्वारां गर्भ समाप्त हुए ॥

## ॥ त्रयोदशः सर्गः ॥

प्रस्थानकालोचितचारुवेपः स स्वर्गिवर्गेरनुगम्यमानः ।  
 ततः कुमारः शिरसा नतेन त्रैलोक्यभर्तुः प्रथनाम पादौ ॥१॥  
 जहान्द्रशत्रुं समरेऽमरेशपदं स्थिरत्वं नय वीर वत्स ।  
 इत्याशिषा तं प्रथमन्तमीशो मूर्द्धन्युपाधाय ह्युदाम्यनन्दत् ॥२॥  
 प्रह्लाभवजप्रतरेण मूर्ध्ना नमश्चकाराङ्घ्रियुगं स्वमातुः ।  
 तस्याः प्रमोदाश्रुपयःप्रवृष्टिस्तस्याभवद्वीरवरामिपेकः ॥३॥  
 समङ्गमारोप्य सुता हिमाद्रेरारिलप्य गाढं सुतवत्सला सा ।  
 शिरस्युपाधाय जगाद शत्रुं जित्वा कृतार्थीकृह वीरसूं माम् ॥४॥  
 उदामदैत्येशविपत्तिहेतुः श्रद्धालुचेताः समरोत्सवस्य ।  
 आपृच्छथ भक्त्या गिरिजागिरीशौ ततः प्रतस्थेऽभिदिवं कुमारः ॥५॥  
 देवं महेशं गिरिजां च देवीं ततः प्रथम्य त्रिदिवाकृतौऽपि ।  
 प्रदक्षिणीकृत्य च नाफनायपूर्वाः समस्तास्तमथानुजग्मुः ॥६॥  
 अथ अजन्निस्त्रिदशैरशेषैः स्फुरत्प्रभाभासुरमण्डलैस्तैः ।  
 नभो वभासे परितो विकीर्णं दिवापि नवत्रयशैरिवोद्यैः ॥७॥

### लेखनी सर्ग

तडाईका धाना पहनकर श्रीर सब देवताओंके प्राये होकर कुमारने चलते चलते तीनो लोकोंके स्वामी शिवजीके घरछागे प्रणाम किया ॥१॥ प्रणाम करते हुए पुत्रको उठाकर और बसना सिर लूँधकर शिवजीने यह माशीवाँद बोले हुए कुमारको उत्साहित किया कि हे बोर पुत्र ! जानो मुझने इस्रके शत्रुको मारी और इस्रके नजमे बदपर फिरसे भली भाँति बैठा हो ॥२॥ जिस समय कुमार अपने पिताजीके दोनों बरछोके झुंझकर माथा टेने हुए प्रणाम कर रहे थे उस समय शिवजीको भाँसोते करते हुए प्रेमके योग्योंके अलसे ही मानो सेनापति पहले किए कुमारका अभिषेक हो गया ॥३॥ अपने पुत्रका साङ्ग-स्यार करनेवाली पार्वतीजीने कुमारको मोहमे लेकर बसपर अपने हृदयके लगा लिवा और उसका माथा लूँधकर माशीवाँद दिया—हे पुत्र ! तडाईमे शत्रुको जीतकर यह बात सचची कर दो कि मैं वीरकी माता हूँ ॥४॥ तब उस अलवान देवराज को मारने और सन्नामरूपी उदम्य भवानेके लिये उठावले बने हुए कुमार वही भक्तिसे अपने माथा पितासे धाजा लेकर स्वर्गको घोर चल पड़े ॥५॥ इन्द्र धादि सब देवता भी भगवानु पाकर और भगवती पार्वतीजी को प्रणाम करते और उनकी प्रदक्षिणा करने कुमारके पीछे-पीछे चल गये ॥६॥ तब चारो घोर फंजे हुई जाम्बिपाने सब सब देवताओंके एक साथ चलनेसे आकाश ऐसा जान पडने लगा मानो दिनमे चमकनेवाले बड़े बड़े तारे चारो घोर निकल भाए हों ॥७॥ आकाशमे चलते हुए देवताओंके

रराज तेषां व्रजतां सुराणां मध्ये कुमारोऽधिकव्रान्तिकान्तः  
 नक्षत्रताराग्रहमण्डलानामिव त्रियामारमथो नभोन्ते ॥८॥  
 गिरीशगौरीतनयेन सार्धं पुलोमपुत्रीदयितादयस्ते ।  
 उत्तीर्य नवव्रपथं मुहूर्तात्प्रप्रेदिरे लोकमथात्मनीनम् ॥९॥  
 ते स्वर्गलोकं चिरकालदृष्टं महासुरत्रासवशंवदत्वात् ।  
 सद्यः प्रवेष्टुं न विपेहिरे तत्क्षणां व्यलम्बन्त सुराः समग्राः ॥१०॥  
 पुरो भय त्वं न पुरो भवामि नाहं पुरोगोऽस्मि पुरःसरस्त्वम् ।  
 इत्थं सुरास्तत्क्षणमेष भीताः स्वर्गं प्रवेष्टुं कलहं वितेनुः ॥११॥  
 सुरालयालोकनकौतुकेन मुदा शुचिस्मेरविलोचनास्ते ।  
 दधुः कुमारस्य म्रुत्पारचिन्दे दृष्टिं द्विपत्साध्वसकातरान्ताम् ॥१२॥  
 सहेलहासच्छुरिताननेन्दुस्ततः कुमारः पुरतो भविष्युः ।  
 स तारकापातमपेक्षमाणो रणप्रवीरो हि सुरानवोचत् ॥१३॥  
 भीत्यालमद्य त्रिदिग्वैकसोऽमी स्वर्गं भवन्तः प्रविशन्तु सद्यः ।  
 मर्त्रैव मे हृत्पथमेतु शश्रुर्महासुरो वः खलु दृष्टपूर्वं ॥१४॥  
 स्फूर्त्तकलदमीकचकर्पशाय दोर्मण्डलं बलगति यस्य चयडम् ।  
 इहैव तच्छीशितपानफेलिमद्वाप कुर्वन्तु शरा ममैते ॥१५॥

बीचने भयभीत प्रपन्न चमकते सुन्दर दिखाई पड़नेवाले कुमार काचित्केय ऐसे, सुन्दर लगते थे मानो  
 नक्षत्र और तारोंके बीचने चन्द्रमा पले जा रहे हो ॥८॥ कुमारके पीछे पीछे इन्द्र प्रादि देवता मोड़ी ही  
 देर में साक्षात् पार करके स्वर्गलोक जा पहुँचे ॥९॥ इत्येवञ्च तारकके डरसे देवता स्वर्गमें जा नहीं  
 पा रहे थे इसलिये वे क्रिष्णके कारण एकदम भीतर न जा सके, खोटी देर ठिठके रहे ॥१०॥ उस  
 समय वे सब डरे हुए देवता प्रापसमें एक दूसरेको हकेसते हुए यह भयबडा करने लगे—तुम बली  
 भागे । मैं भागे नहीं चलूँगा । मैं क्यों भागे चूँ ? मुझीको भागे-भागे जलना चाहिए ॥११॥  
 उस समय स्वर्गको सामने देखकर मग्न हो उठनेवाले उस देवताथोकी भाँधे मानन्दसे खिल गईं  
 पर शत्रुके डरसे उनको भाँसें कातर होकर कुमारके मुस कगल पर जा पड़ी ॥१२॥ उस समय  
 कुमारका मुख पन्द्र खिलवाड-भरी हुईसे खिल उठा और तारकके धावेकी बाट जोहते हुए रणवीर  
 कुमार नातिवेयने भागे होकर देवताभक्ति बहा—॥१३॥ ह देवो ! धव करनेकी कोई बात  
 नहीं है । प्राप भोग निडर होकर स्वर्गमें भुस चलिए । मैं चाहता हूँ कि भयने जिस घोर शत्रु  
 तारकको प्राप लोग देख चुके हैं वह यही मेरे भागे आ जाय ॥१४॥ मैं तो चाहता हूँ कि जिस  
 तारक शत्रुको भुगाएँ, बलपूर्वक लडगीके बाल पकडकर उन्हे दुर्दशा करने हुए खीचनेके लिये मचती  
 रहती हूँ, उसका लहू पीनेका मानन्द मेरे बाखोकी भडते यहीपर मिल जाय ॥१५॥ और यह  
 चमकनेवाली, प्रत्यन्त तेजस्विनी, प्रतापशालिनी और स्वर्गतोचनी राजबलमोका वट दूर करनेवाली

शक्तिर्ममासावहतप्रचारा प्रभावसारा सुमहःप्रसारा ।  
 स्वर्लोकलक्ष्म्या विषदावहारेः शिरो हरन्ती दिशतान्मुदं वः ॥१६॥  
 इत्यन्धकारातिसुतस्य दैत्यवधाय युद्धोत्सुकमानसस्य ।  
 सर्वं शुचिस्मेरमुत्तारविन्दं गीर्वाणपृन्दं वचसा ननन्द ॥१७॥  
 तान्द्रप्रमोदात्पुलकोपगूढः सर्वाङ्गसंकुलसहस्रनेत्रः ।  
 तस्योत्तरीयेण निजाम्बरेण निस्ञ्जनं चारुचकार शक्रः ॥१८॥  
 घनप्रमोदाश्रुतरंभितासैर्मुखैश्चतुर्भिः प्रसुरप्रसादैः ।  
 अथो अशुम्बद्विधिरादिवृद्धः पठाननं पदसु शिरःसु चित्रम् ॥१९॥  
 तं साधु साध्वित्यभितः प्रशस्य मुदा कुमारं त्रिपुरासुरारेः ।  
 आनन्दयन्वीर जयेति वाचा गन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघाः ॥२०॥  
 दिव्यर्षयः शत्रुविजेष्यमाणं तमम्यनन्दन्किल नारदाद्याः ।  
 निस्ञ्जनं चक्रुरथोत्तरीयैश्वाभीकरीपैर्निजबलकलैश्च ॥२१॥  
 ततः सुराः शक्तिधरस्य तस्यावष्टम्भतः साध्वसमुत्सृजन्तः ।  
 उत्सेहिरे स्वर्गमनन्तशक्तेर्गन्तुं वनं यूथपतेरिवेभाः ॥२२॥  
 अधाभिपृष्ठं गिरिजासुतस्य पुरंदरारातिवधं चिकीर्षोः ।  
 सुरा निरीयुस्त्रिपुरं दिधक्षोरिव स्मरारेः प्रमथाः समन्तात् ॥२३॥

मेरी शक्ति यहीपर धनुका फिर काटकर आप लोगोंको आनन्द दे ॥१६॥ देवोंका नाम करनेकी इच्छासे सदाई करनेपर उतार होने वाले उन कुमारकी ये बातें सुनकर देवताओंके सुन्दर मुख कमल खिल उठ, और वे धनी प्रसन्न हो उठ ॥१७॥ अत्यन्त आनन्दके कारण इन्द्र भी इतने पुलकित हो उठे कि उनके शरीरकी सब शक्ति खिल उठी । तब इन्द्र भी कुमारके आपसमें एक दूसरेसे उत्तरीय बदल वस्त्रधर अपनी मित्रता पक्की करती ॥१८॥ देवताओंमें सबसे बड़े ब्रह्माकी शक्ति भी अत्यधिक आनन्दसे बढ़ते हुए श्रीगुरुकी सहरोसे छल-छला आई । उनमें पापों मुक्त प्रसन्नतासे खिल उठे और उन्होंने अपने चारों सुलोंसे कुमारके छोड़ो मुलुका बड़े विचित्र ढंगसे चुम्बन किया ॥१९॥ उस समय गन्धर्व, विद्याधर और सिद्धोंने कुमारको 'साधु साधु' कह कर बड़े आनन्दके साथ उनकी बड़ाई करते हुए यह कहकर उन्हें आनन्दित किया कि हे और ! तुम्हारी जब हो ॥२०॥ देवोंके नारद आदिने भी शत्रुपों जीतनेवाले कुमारकी प्रशंसा की और उनके सुनहले उत्तरीय आदि बज्जोसे अपने बलबल बदलकर उनसे आर्द्रपनका भाता जोड़ लिया ॥२१॥ हमसे शक्ति लिए हुए कुमारका इस प्रकार सहारा पाकर, देवता लोग निडर हो गए और वे उठी उतारहते स्वर्गमें पैठ गए जैसे किसी शक्तिशाली बड़े हाथीका सहारा पाकर छोटे हाथी भी जगत्तम घुस पड़ते हैं ॥२२॥ जैसे त्रिपुरासुरको बचानेके लिये जाते समय शक्रजीने पीछे पीछे प्रमथ आदि गए पले से वैसे ही तारकों मारनेकी इच्छा करनेवाले कुमारके पीछे पीछे देवता लोग भी स्वर्गमें घुस पड़े ॥२३॥

सुराङ्गणानां बलकेलिभाजां प्रचालितैः संततमङ्गरागैः ।  
 प्रपेदिरे पिञ्जस्वारिपरां स्वर्गौकसः स्वर्गधुनीं पुरस्तात् ॥२४॥  
 दिग्दन्तिनां चारिविहारभाजां कराहर्तैर्भीमतरैस्तरंगैः ।  
 आप्लावयन्तीं मुहुरालवालश्रेणि तरूणां निजतीरजानाम् ॥२५॥  
 लीलारसाभिः सुरकन्यकाभिर्हिरण्यमीभिः सिकताभिरुच्चैः ।  
 माणिक्यगर्भाभिरुपाहिताभिः प्रकीर्णतीरां वरवेदिकाभिः ॥२६॥  
 सौरभ्यलुब्धभ्रमरोपगीतैर्हिरण्यहंसावलिकेलिलोलैः ।  
 चामीकरीयैः कमलैर्विनिद्रैश्च्युतैः परागैः परिपिङ्गतोयाम् ॥२७॥  
 इतूहलाद्द्रुमुपागतामिस्तीरस्थिताभिः सुरसुन्दरीभिः ।  
 अभ्यूर्मिराजिप्रतिविम्बिताभिर्मुदं दिशन्तीं व्रजतां वनानाम् ॥२८॥  
 ननन्द सद्यश्चिरकालदृष्टां विलोक्य शक्रः सुरदीर्घिकां ताम् ।  
 अदर्शयत्सादरमद्रिपुत्रीमहेशपुत्राय ततः पुरोगः ॥२९॥  
 स कार्तिकेयः पुरतः परीतः सुरैः समस्तैः सुरनिम्नगां ताम् ।  
 अपूर्वदृष्टामवलोकमानः सविस्मयः स्मेरविलोचनोऽभूत् ॥३०॥  
 उपेत्य तां तत्र किरीटकोटिन्यस्ताञ्जलिर्मकिपरः कुमारः ।  
 गीर्वाणघृन्दैः प्रणुतां प्रणुत्य नग्रेण मूर्ध्ना हृदितो ववन्दे ॥३१॥

पहले पहल उन्हें वह धाकधगगा दिखाई दी जिसका जल, बल-विहार करनेवाली मन्सराप्रोके  
 घुले हुए झङ्गों में छुटे हुए अङ्गुरानसे रग जाया करता है, जिसके जलमें विहार करते समय  
 विष्णुलोक हामी, सहरोवर धपनी सूँड पटक करते हैं और जिसकी सहरोके जलसे तीरपर झडे  
 हुए पेड़ोंके पाँवले सवा विधे रहते हैं, जहाँ खेल खेलनेके लिये घाई हुई देवमन्सराप्रोके हाथोकी  
 धनी हुई सुनहले बालूकी वे ऊँची-ऊँची वेदिकाएँ दूर-दूरतक घनी हुई थी जो उद्दिनि बीच-बीचमें  
 मणि डाल-डालकर अपने लसके लिये बना रखी थी, जहाँ सुगन्धके लोभी भरे सवा पुनपुनसे  
 रहते और सुनहले हस किलोल करते रहते हैं, जहाँ ऐसे सोनेके वमल खिले रहते हैं जिनके निरे हुए  
 परागसे नहाना जल भी पीसा हो उठता है, जहाँ देवताप्रोकी सुन्दरियाँ मन बहलावने लिये  
 धा-धाकर तटपर बैठी रहती हैं और तरङ्गोंमें गडती हुई जिनकी परछाईँ उपरसे धाने-जानेवाले  
 पवित्रोका भी भी लुभाती रहती है ॥२४-२८॥ इतन दिनोपर उस देव-नदीको देखकर इन्द्र सुरन्त  
 प्रसन्न हो उठे और धामे बढकर आदरसे साथ उद्दिनि कुमारको भी यह नदी दिखाई ॥२९॥  
 सब देवताप्रोके निरे हुए कार्तिकेयकी इस नई नदीको सामने देखकर बडा धचरज हुआ और प्रसन्नता  
 से उनकी घाँसें तिल गई ॥३०॥ जिस नदीकी सब देवता स्तुति करते हैं, उस मन्सराप्रोके तटपर  
 जाकर कुमार कार्तिकेयने चिर भुक्कर अपने निरोटके निरेपर हाथ जोडकर बडी मत्सिसे प्रसन्न  
 होकर उन्हें प्रणाम विधा और जनकी नन्दा की ॥३१॥ उस समय, खिले हुए नमलोंकी



प्रश्रुतितस्मेरसरोजराजिः पुरः परीरम्मिल्लन्महोर्मिः ।  
 कपोलपान्निभ्रमवारिहारि मेजे गुहं तं सतिः गमीरः ॥३२॥  
 ततो ब्रजन्नन्दननामघेघं लीलावनं जम्मजित्तः पुरस्तात् ।  
 विभिन्नभद्रोद्गतशालसंघं प्रेक्षांचकार स्मरशत्रुषुनुः ॥३३॥  
 सुरद्विपोपप्लुतमेवमेतद्भनं बलस्य द्विपतो गतश्रि ।  
 इत्थं विचिन्त्यः।रुणलोचनोऽभूत्भ्रमद्भुम्भ्रेच्यसुखः स कोपात् ॥३४॥  
 निर्लूनलीलोपवनामपस्यद्दःसंचरीभूतविमानमार्गाम् ।  
 विध्वस्तसौधप्रचयां कुमारो विश्वैकसाराममरावतीं सः ॥३५॥  
 गतश्रियं वैरिवरामिभृतां दशां सुदीनामभितो दधानाम् ।  
 नारीमघीरामिभ्र सामवेक्ष्य स षाढमन्तः करुणापरोऽभूत् ॥३६॥  
 दुश्चेष्टिते देवरिपौ सरोपस्तस्याविषण्णः समराय चोत्फः ।  
 तथाविधां तां स विवेश पश्यन्सुरैः सुराधीश्वरराजधानीम् ॥३७॥  
 दैतैयटन्त्यावलिदन्तघातैः घुण्णान्तराः स्फाटिकहर्म्यपट्टकीः ।  
 महाहिनिर्मोकपिण्डजालाः स षीच्य तस्यां विपसाद् सद्यः ॥३८॥  
 उत्कीर्णधामीकरपङ्कजानां दिग्दन्तिदानत्रवदपितानाम् ।  
 हिरण्यहंसवज्रजितानां विदीर्णवैदूर्यमहाशिलानाम् ॥३९॥

मचानवाले तारपोष गले मिलकर पननेवाले और गालके पत्तीके सुखानेवाले मयाकनीके मन्द पवनने बहो धाप हूए कुमारकी सेवा की ॥३२॥ बहसि चनकर कार्तिकेयने इन्द्रके विलासके तन्त्रन उपपनवी देला । वहाँके सध सासके देख या सो तोड डाले गए थे या जइसे ही उल्लाड डाले गए थे ॥३३॥ कार्तिकेयने समझ लिया कि तारकासुरके धत्याचारसे ही इन्द्रके इह सुन्दर पनकी यह सोभा बिपद्ये हे । यह सोचते ही मारे कौपये उनका मुँह तमतमा उठा, मोहे तन गई और घाँसे लाल हो उठी ॥३४॥ बहसि और धागे बडकर कुमारेने विश्वकी सर्वभष्ट नगरी प्रगरावतीको देला जितने सीसा-उपदन तहस नहस कर डाले गए थे, उँके-ऊँके भवन गिरा दिए गए थे और सध ऐसा उल्लाड हो गया था कि उपर विमानपर चढकर जानेको भी बिझीका थी नही करता था ॥३५॥ शारवधे हाथो उखाडी हुई उस नष्ट-भ्रष्ट और सुनसान नगरीको देखकर कार्तिकेयकी इसी प्रकार बडी दया भाई जैसे विषी नपुंसकी स्त्रीको देखकर दया घाती हे ॥३६॥ धमरावतीकी यह दुवँशा देखते ही कुमार उस दुख-चारी दैत्यपर बडे क्रुड हो उठे और युद्धके लिये बडे उतावलेसे होकर वे देवतामोवी राजधानीमे घुसे ॥३७॥ यहकि स्फटिकके बने हुए बडे-बडे भवन दैत्योके हाथियोने दातोनी टनकरसे तटव गए थे और जहाँ तहाँ बडे बडे लौपीकी केजुलियाँ छुटी पडी थी । यह सब देखकर कुमारको बडा दुःख हुआ ॥३८॥ उन्होने देला कि देवतायोके विलास-परोमे बनी हुई धावसियोमेसे सोनेके कमस उल्लाड डाले गए थे, दिग्गर्भके मखे उनका जल गदला हो गया था, मुतहरे हस यहाँसे उठ गए थे, पन्नोकी बनी-बडी पट्टिँ भी टूट-फूट गई थी और चारों ओर

आविर्भवद्बालतृणाश्रितानां तदीयस्त्रीलागृहदूर्धिकारणाम् ।  
 स दुर्दशां वीक्ष्य विरोधिजानां विषादवैलक्ष्यभरं वभार ॥४०॥  
 तदन्तिदन्तचतहेमभिचि सुतन्तुजालाकुलरत्नजालाम् ।  
 निन्ये सुरेन्द्रेण पुरोगतेन स वैजयन्ताभिधमात्ममौघम् ॥४१॥  
 निर्दिष्टवर्त्मा विबुधेधरेण सुरैः ममग्रैरनुगम्यमानः ।  
 स प्राविशच्चं विविधाश्मरश्मिच्छिन्नेन मोपानपथेन सौधम् ॥४२॥  
 निसर्गकल्पद्रुमतोरुखं तं स पारिजातप्रसयस्त्रगाढ्यम् ।  
 दिव्यैः कृतस्वस्स्ययनं मुनीन्द्रैरन्तःप्रविष्टप्रमदं प्रपेदे ॥४३॥  
 पादौ महर्षेः किल करपपस्य कुलादिशृद्धस्य सुरासुराणाम् ।  
 प्रदक्षिणीकृत्य कृताञ्जलिः सन्यङ्गमिः शिरोमिः स नर्तैर्ध्वन्दे ॥४४॥  
 स देवमातुर्जगदेकबन्धौ पादौ तथैव प्रखनाम कामम् ।  
 मुनेः कलत्रस्य च तस्य मक्त्या प्रह्वीभज्ज्यैलसुतातनूजः ॥४५॥  
 स करपपः सा जननी सुराणां तमेधयामासतुराशिषा द्वौ ।  
 तया यया नैकजगज्जिगीषुं जेता मृषे तारकमुग्रपीर्यम् ॥४६॥  
 स्वदर्शनार्थं समुपेयुषीणां सुदेवतानामदितिश्रितानाम् ।  
 पादौ वचन्दे पतिदेवतास्तमाशीर्यषोभिः पुनरभ्यनन्दन् ॥४७॥

छोटी-छोटी पास उग आई थी, समुद्रांकि हाथों वहाँकी यह दुर्दशा देखकर उनका मन दु खले नारी हो  
 उठा ॥१६-४०॥ तब इन्द्र नगवानु कुमारकी प्रपत्ने उस वैजयन्त नामके भवनमें ले गए जहाँकी मुतहली  
 दीवारों बंदोके हाथियोंके दाँतीकी टङ्करीसे फट गई थी और जहाँ मर्कटियोंने जाले तान दिए थे ॥४१॥  
 धागे-धागे इन्द्र चल रहे थे और पीछे पीछे सब देवता खले आ रहे थे । इस प्रकार रत्नोंकी बमकले  
 पुष्पावली नगनेवाली छीटियोंपर षडकर कुमार उस भवनमें गए ॥४२॥ और सब लौग भी उस गुन्दर  
 भवनमें पहुँचे जहाँ कल्पवृक्ष ही स्वयं शम्भुवार बना हुआ था, जहाँ डेरके डेर पारिजातके फूल बिल्लरे  
 पड़े थे, जहाँ देवपिथोंने स्वस्ति-पाठ किया था और जहाँ एकसे एक बबकर शम्भुराएँ रहती थी ॥४३॥  
 बहूपर देव-दानव बलके सबसे बड़े नुदे महर्षि करपपके चरणोंकी प्रदक्षिणा करके कुमारने धपने छोटी  
 सिरेसे उगहँ प्रणाम किया ॥४४॥ कुमारने बड़ी भक्ति से करपपकी पत्नी और देवोकी प्रादि माता  
 प्रदितिके उन चरणोंके भी भती भक्ति प्रणाम किया बिन्दू सारा सस्यर पूजता है ॥४५॥ तब  
 करपप और देव-भावा प्रदितिके कुमारकी यह घासीर्वाह देवर उनका साहस बढ़ाया कि तीनों लोकोंके  
 जीतनेवाले इस शक्तिवाली तारक प्रसुरकी तुम युद्धमें अवश्य हराओगे ॥४६॥ वहाँ प्रदितिके यहाँ  
 और जो देवाङ्गनाएँ रहती थी वे भी कुमारकी देखनेके लिए आ पहुँची । कुमारने उन सबकी प्रणाम  
 किया और उन सब पतिव्रता स्त्रियोंने बुधवारके मासीर्वाह देकर उनका बड़ा मान बढ़ाया ॥४७॥  
 तब कुमारने इन्द्रकी पत्नी अनीषो प्रणाम किया और उन्होंने भी घासीर्वाह देवर इनका मान बढ़ाया

पुलोमपूर्वी विद्युधाधिभर्तुस्तवः शचीं नाम कलत्रमेव ।  
 नमश्चकार स्मरशत्रुसुनुस्तमाशिषा सा समुपाचरन् ॥४८॥  
 यथादितीन्द्रप्रमदाः समेतास्ता मात्रः सप्त धनप्रमोदाः ।  
 उपेत्य मक्त्वा नमते महेशपुत्राय तस्मै ददुराशिषः प्राक् ॥४९॥  
 समेत्य सर्वेऽपि मुदं दधाना महेन्द्रमुख्यास्त्रिदिवीकसोऽय ।  
 आनन्दकल्लोलितमानसं तं समभ्यपिञ्चन्पृतनाधिपत्ये ॥५०॥  
 सकलविद्युधलोकः स्वस्तनिःशेषशोकः,  
 कुतरिपुविजयाशः प्राप्तयुद्धावकाशः ।  
 अजनि हरसुतेनानन्तपीर्येण तेना,  
 खिलविद्युधचमूनां प्राप्य लक्ष्मीमनुनाम् ॥५१॥

इति महावियुधोक्तलिदासकृतौ कुमारसमये महाकाण्डे  
 कुमारसंनापत्याभिषेको नाम त्रयोदशः सर्गः ॥

॥४८॥ तब कुमारने कदम्बजीवी उन सातो पत्नियोवे पाष जाकर बडी मत्तिते प्रणाम दिया जो बडे  
 आनन्दके भरी यही इकट्ठी बैठी हुई थी । उन्होने प्रणाम करकेसे पहले ही कुमारको विजय पायेका  
 भाषीबादि दे दिया वा ॥४९॥ उस समय इन्द्र प्रादि सभी देवतामोने आनन्दके साथ इकट्ठे होकर  
 हंसमुख कुमार कातिकेयको अपना सेनापति बना दिया ॥५०॥ इस प्रकार जब प्रनप्त दावित-  
 दासी कुमार कातिकेय, देवतामोकी समूची सेनाके सेनापति हो गए तो देवतामोको विस्वास हो  
 गया कि अब हम लोग युद्धमे खनुधोको अवश्य जीत लेंगे और यह समझकर उनका सब दौन भी  
 जाता रहा ॥५१॥

महापति श्रीकालिदासने रचे हुए कुमारसम्भव महाकाण्डमे सेनापतिका  
 अभिषेक नामका खेरहवां सर्ग समाप्त हुआ ।

## ॥ चतुर्दशः सर्गः ॥

रथोत्सुकैरान्धकशत्रुसन्तुना समं प्रसुक्तैस्त्रिदशैर्जिगीषुणा ।  
 महासुरं तारकसंज्ञकं द्विषं प्रसह्य हन्तुं समनह्यत द्रुतम् ॥ १ ॥  
 स दुर्निवारं मनसोऽतिवेगिनं जयश्रियः सञ्चयनं सुदुःसहम् ।  
 विजित्वरं नाम तदा महारथं धनुर्धरः शक्तिधरोऽध्यरोहयत् ॥ २ ॥  
 सुरालयश्रीविपदां निवारणं सुरारिसंपत्पारितापकारणम् ।  
 केनापि दध्रेऽस्य विरोधिदारणं सुचारुचामीकरधर्मवारणम् ॥ ३ ॥  
 शरशरचन्द्रमरीचिपाण्डुरैः स वीज्यमानो वरचारुचामरैः ।  
 पुरःसरैः किन्नरसिद्धचारुशै रथोच्छुरस्तूयत वाग्भिरुत्तमैः ॥ ४ ॥  
 प्रयाणकालोचितचारुषेपभृद्भ्रजं वहन्पर्वतपद्मदारणम् ।  
 ऐरावतं स्फाटिकशैलसोदरं ततोऽभिरुह्य द्युपतिस्तमन्वगात् ॥ ५ ॥  
 तमन्वगच्छद्भिरिभृद्भ्रसोदरं मदोद्धतं मेपमधिष्ठितः पिरली ।  
 विरोधिबिद्धेपरुपाधिकं ज्वलन्महोमहीयस्तरमायुधं दधत् ॥ ६ ॥  
 अथेन्द्रनीलाचलचण्डविग्रहं विपाणविष्वस्तमहापयोधरम् ।  
 अधिष्ठितः कासरशृङ्घरं श्रुदा वैधस्वतो दण्डधरस्तमन्वगात् ॥ ७ ॥

## चौदहवां सर्ग

विषयकी इच्छासे सज्जनेके लिये उतारू कुमार शक्तिवेधने कहनेके सब देवता मिलकर बल-  
 पूर्वक तारकको मार डालनेके लिये अस्त्र छत्र बाँधने लगे ॥१॥ तब चतुर्दशरी शक्तिशाली कुमार  
 अपने 'विजित्वर' नामके उतारू से भारी रथपर चढ़ गए जो मनुष्य भी अधिक वेगसे चलता था, जो  
 किसीके रोने दगता नहीं था और जिसपर चढ़कर लड़नेसे सब विजय मिलती ही है ॥२॥ उसी  
 समय किसीने उनपर सोनेका वह धनु-नालक छत्र साकार लगा दिया जो स्वर्गकी लक्ष्मीकी सुखदेने-  
 वाला और देवोकी संपत्ति उखाड़ देनेवाला था ॥३॥ कुमारसे दोनों और शरदके चन्द्रमाकी  
 निरर्णिके समान उजले सुन्दर शरदर हुल रहे थे और उनके आगे बड़े-बड़े अष्टाष्टि विग्रह, सिद्ध और  
 चारण उन युद्ध प्रेमी कुमारकी बढाईके गीत गति चल रहे थे ॥४॥ युद्धका ठाट सजाकर और पर्वतो  
 के पक्ष काटनवाला वध लेकर इन्द्र भी स्फटिकके पर्वतके समान उजले और ऊँचे ऐरावत हाथीपर  
 चढ़कर उनके पीछे पीछे हो लिए ॥५॥ आयुधके मारे और भी अधिक चलते हुए अग्निदेव भी,  
 पर्वतकी चोटीके समान ऊँचे और बिगडेल भेडेपर चढ़कर और महा भयकर देहलाता हुआ अस्त्र हाथमे  
 लेकर कुमारके पीछे-पीछे चल दिए ॥६॥ हाथमे दण्ड लेकर यमराज भी अपने नीलमके पहाड जैसे ऊँचे  
 और बलूटे सग भेडेपर चढ़कर कुमारके पीछे चलदिए जो अपने सीमेसे धादलोनी धाती चीरता चलता  
 था ॥७॥ नैर्ऋत्य दिशाका स्वामी नैर्ऋत राक्षस भी तारकसे चिड़कर बडा भयावह हो गया और शत्रुसे

मदीद्धतं प्रेतमथाधिरूढवाँस्तमन्धकद्वेषितनृजमन्वगात् ।  
 महासुरद्वेषविशेषभीषणः सुरापण्यश्चरुहरणाय नैर्ऋतः ॥८॥  
 नवोद्यदम्भोधरघोरदर्शने युद्धाय रुढो मकरे महचरे ।  
 दुर्वारपाशो वरुणो रणोत्प्लवस्तमन्वियाथ त्रिपुरान्तकात्मजम् ॥९॥  
 दिगम्बराधिक्रमणोन्वखं चक्षान्मृगं महीयांसमरुद्धविक्रमम् ।  
 अधिष्ठितः संगरकेलिलालसो मरुन्महेशात्मजमन्वगाद्दुत्तम् ॥१०॥  
 विरोधिनां शोषितपारखैपिर्षीं गदामनूनां नरवाहनो वहन् ।  
 महाहवाम्भोधिबिगाहनोद्धतं यियासुमन्वागमदीशनन्दनम् ॥११॥  
 महाहिनिर्ऋजटाकलापिनो ज्वलत्त्रिशूलप्रवलायुधा युधे ।  
 रुद्रस्तुपाराद्रिसस्र महावृषं ततोऽधिरूढास्तमयुः पिनाकिनः ॥१२॥  
 अन्येऽपि सनह महारणोत्सवभद्राक्षवः स्वर्गिगणास्तमन्वयुः ।  
 स्वबाहनानि भ्रमलान्यधिष्ठिताः प्रमोदविस्मेरमुखाम्बुजश्रियः ॥१३॥  
 उदयद्वेहमध्यजदण्डसंकुलाश्चद्विचित्रातपवारयोज्ज्वलाः ।  
 चलद्वनस्पन्दनघोषभीषणाः करीन्द्रघण्टारवचण्डचीकृताः ॥१४॥  
 स्फुरद्विचित्राद्युधकान्तिमण्डलैरुद्योतिताशावलयाम्बरान्तराः ।  
 दिवौकसां सोऽनुबहन्महाचमूः पिनाकपाणोस्तनयस्ततो ययी ॥१५॥

लक्ष्मणे लिये मतवाले प्रेतपर चढकर कुमारके पीछे चल दिया ॥८॥ धरणी मपूना फाँस लिए हुए  
 वडे बलवात् बहएदेव धरने उठ बडे भारी घडियालपर बैठकर युद्धके लिये कुमारके पीछे चले जो ठठी  
 हुई घडाके समान एकदम फासा था ॥९॥ पवनदेव सदाईकी इच्छासे क्षाल भरने धरने उस पराक्रमी  
 सुरितापर बैठकर कुमारके पीछे चल दिए जो पृथ्वी और आकाशमे सब नही बिना दके चौबडो  
 भरता उडता चलता था ॥१०॥ जो गया अनुभोका सह पीकर ही युद्धका व्रत सोढती थी, वह  
 भारी गया लेशर मुदेर उस पानकीपर बढपर कुमारके पीछे चले जिसे मनुष्य डो रहे थे ॥११॥  
 धरने धरने हाथमे पिनाक घणुष और जलते हुए त्रिशूल लेशर और धरने गडा सूटीकी घडे-बडे साँपो  
 से फलकर द्विमालयके समान बजने बँबोपर चढपर ग्यारही द्र कुमारके पीछे पीछे ही लिए ॥१२॥  
 महापुरुषे इस उस्तायमे रुषि रत्नेवाले हूसरे सब देवता भी धरने-धरने लमडे बाहनोपर बढकर  
 मानन्दसे हँस-हँसकर धरना मुख-कमल खिलाते हुए भातिनेयने साथ चले ॥१३॥ दस  
 प्रकार सब टाठोसे सजी हुई, मग्नित्त सोनेने उडे ऊपर उठाकर चलती हुई, चमचमाते हुए  
 रग-बिरग रदन भनकातो हुई, फुलके फुल चसनेवाले रघोनी चनपनाहटसे भयपर लगती हुई  
 मतवाले हाथियोने पटोकी टन टन और उबकी चिन्पाडोसे वान फडती हुई, भनक प्ररारके  
 भिगमिताते हुए मल लज्जोकी चमकते चरो विद्याधो और आकाशको चमकातो हुई उस देवतामोनी  
 महसिनाको लिए हुए वीर कुमार चले ॥१४-१५॥ उछलते-कूदते चलनेवाले देवताधोने हल्लेसे  
 और उठ बडी भारी सेनाकी ऊँची-ऊँची और बडी-बडी ध्वजाधोस, दसो दिवारें भाकात और

कोलाहलेनोच्चलतां दिवौकसां महाचमूनां गुरुमिर्ध्वजप्रजैः ।  
 घनैर्निरुच्छ्वासमभूदनन्तरं दिङ्मण्डलव्योमतलं महीतलम् ॥१६॥  
 सुरारिलक्ष्मीपरिकम्पहेतवो दिक्चक्रवालप्रतिनादमेदुराः ।  
 नभोन्तकुक्षिमरयो घनाः स्वना निहन्यमानैः पटहैर्वितेनिरे ॥१७॥  
 प्रमथ्यमानाम्बुधिगर्लितर्जनैः सुरारिनारीगण्यगर्भपातनैः ।  
 नमथ्यमृधूलिकुलैरिवाकुलं ररास गाढं पटहप्रतिस्वनैः ॥१८॥  
 क्षुण्णं रथैर्बाजिभिराहतं सुरैः करीन्द्रकर्णैः परितः प्रसारितम् ।  
 धृतं ध्वजैः काञ्चनशैलजं रवो वावैर्हतं व्योम समारुहस्क्रमात् ॥१९॥  
 सातं सुरै रथ्यतुरङ्गपुङ्गवैरुपेत्यकाहाटकमेदिनीरजः ।  
 गतं दिगन्तान्मुखरैः समीरणैः सुविभ्रमं भूरि वभार भूयसा ॥२०॥  
 अधस्तथोर्ध्वं पुरतोऽथ पृष्ठतोऽभितोऽपि चामीकरेशुरुक्षकैः ।  
 चमूपु सर्पन्मरुदाहतोऽहरन्नवीनस्यर्षस्य च कान्तिर्चैभवम् ॥२१॥  
 पलोद्धृतं काञ्चनभूमिजं रजो वसौ दिगन्तेषु नमःस्थले स्थितम् ।  
 अकालमन्व्याघनरागपिङ्गलं घनं घनानामिव बृन्दमुद्यतम् ॥२२॥  
 हेमावनीषु प्रतिधिम्यमात्मनो मृदुर्विलोक्याभिमुखं महागजाः ।  
 रसातलोत्तीर्णगजभ्रमास्क्रुधा दन्तप्रकाण्डप्रहतानि तेनिरे ॥२३॥

पृथ्वी सब एक ते दिखाई पड़ने लगे ॥१६॥ उनके नगाडोकी धोर ध्वनिकी मूज चारो ओर सुनकर  
 दैत्योकी राज लक्ष्मी भी कांप उठी ॥१७॥ सेनाके चलनेसे उठी हुई धूलसे जरा हुआ आकाश  
 ऐसा लगता था मानो मघनेके समय समुद्रके गर्जनसे भी अधिक डरावनी ध्वनिवाले और दैत्योकी  
 खियोंके गर्भ गिरानेवाले नगाडोकी धमक सुनकर आकाश से उठा हो ॥१८॥ वहाँ सुमेरु पर्वतकी धूल  
 इस उगते आकाशमें पहुँची कि पहलेतो रथोंने वहाँकी मिट्टी उलासी, फिर थोडोने प्रपन्न सुनोति जूँद-जूँद-  
 कर उसे महीन कर दिया, अब हाथियोने अपने कान हिल हिलाकर उसे चारो ओर फँसा दिया, तब  
 सहाराती हुई ऋषियोने उस धूलको और भी डगर उभर बिखेर दिया और फिर नायु उसे आकाशमें  
 उठा से गया ॥१९॥ इतना ही नहीं, सुमेरुकी उलहटीसे उठी हुई वह सुनहरी धूल रथ  
 सीपनेवाले बढ़िया थोडोके सुरोसे पिसकर, हरहराते हुए पवनसे सहारे सभी दिशाओमें फैलकर  
 बनक उठी ॥२०॥ पवनके सहारेसे सेनाके ऊपर-नीचे, धागे-पीछे और चारो ओर फैली हुई वह  
 सुनहरी धूल ऐसी सुन्दर लगती थी कि निकलते हुए भूयँकी सुनहरी धूल भी उससे माने पानी  
 भरती थी ॥२१॥ सेनाके चलनेसे उठी हुई सुनहरी धूल सभी दिशाओ और आकाशमें भरकर  
 ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ने लगे मानो सप्पा हुए दिनाही सुनहल बादलोने भूटने भूट उगडकर  
 आकाशमें छा गए हों ॥२२॥ सेनाके साथ चलते हुए हाथियोने वहाँकी सुनहरी धरतीमें अपनी  
 परछाई देखी तो वे समझे कि वे पातालसे निकले हुए बड़े-बड़े हाथी हैं और इसीलिए बहुत

सुजातसिन्दूरपरागपिञ्जरैः कलं चलद्भिः सुरसैन्यसिन्धुरैः ।  
 शुद्धासु चामीकरशैलभूमिषु नाट्यस्यत्त स्वं प्रतिविम्बमग्रतः ॥२४॥  
 इति क्रमेणामरराजवाहिनी महाहवाम्मोधिविलासलालसा ।  
 श्रयातरत्काश्चनशैलतो द्रुतं कोलाहलाक्रान्तविधूतकन्दरा ॥२५॥  
 महाचभूस्पन्दनचण्डचीत्कृतैर्विलोलधपटेमपतेथ वृंहितैः ।  
 सुरेन्द्रशैलेन्द्रमहागुहाशयाः सिंहा महत्स्वप्नसुखं न तत्पञ्चुः ॥२६॥  
 गम्भीरमेरिष्वनितैर्भयंकरैर्महागुहान्तप्रतिनादभेदुरैः ।  
 महारथानां गुरुनेमिनिःस्वनैरनाङ्गलैस्तैर्मृगज्जताजनि ॥२७॥  
 सद्युत्थितेन त्रिदिवीकसां महाचभूरवेषाद्रितटान्तदारिणा ।  
 प्रपेदिरे केमरिणोऽधिकं मर्दं स्ववीर्यलक्ष्मीमृगराजतावशात् ॥२८॥  
 भिया सुरानीकविमर्दजन्मना विदुद्रुवुर्द्वरतरं द्रुतं मृगाः ।  
 गुहागृहान्ताड्यहिरेत्य हेलया तस्थुर्विशङ्कं नितरां मृगाधिपाः ॥२९॥  
 विलोकिताः कौतुकिनामरावतीजनेन जुष्टप्रमदेन दूरतः ।  
 सुराचलप्रान्तभ्रुवः प्रपेदिरे सुविस्तृतायाः प्रसरं सुसैनिकाः ॥३०॥

बिम्बहर के उस परछाहीहयोपर ही अपने बड़े-बड़े दाँतोसे टक्कर भारने लगे ॥२१॥ बढिया सिन्दूरकी चुकनीसे रंगे हुए और धीरे-धीरे चलनेवाले उन देवताघोषी सेनाके हाथियोंको सुमेरु गिरिकी चमकदार चोथेकी भरक्षीपर भी अपनी परछाही डींग डींग नहीं दिखाई पड़ती थी, क्योंकि दोनोवा रंग एक-सा था ॥२४॥ इस प्रकार मुटके सपुत्रमे सरनेको उदाह देवराजको सेना अपने हल्लेसे गुफामोर्गे गुंजा-नी हुई सुमेरु पर्वतसे बड़े वेगसे नीचे उतरा ॥२५॥ देवताघोषी इस बड़ी भारी सेनाके रथोको और चरघराहट और बजते हुए बघो और बड़े बड़े हाथियोंकी चिन्मात्रोकी इतनी ध्वनि होती हुए भी सुमेरु पर्वतकी लकी लकी भुज्रभोमे सोनेवाले सिद्धोने अपनी नीचके सपनोका सुप्त नहीं छोडा, वे सोए ही पडे रहे ॥२६॥ गुफाभोमे गुंजते हुए नवावोकी मगीर और भयकर ध्वनि और बड़े-बड़े रथोके पहियोंकी घटघटाहट गुफाप्रोसे टकराकर दूगी होकर गुंज रही थी, फिर भी वहाँके सिंह ज्योके ल्यो बैठे रहे और इस प्रकार जन्होने यह सिद्ध कर दिया कि इन सचमुच मृगोके राजा हैं ॥२७॥ सुमेरुकी चोटियोंको फोडनेवाली उष्ट देवोकी महासेनाके चलनेसे जो हल्ला हो रहा था, उसे सुन-सुनकर वे सब सिंह और भी मतवाले हो उठे जो अपनी शक्तिसे बलपर सब पशुभोके राजा बने हुए थे ॥२८॥ वहाँ जितने हरिण थे वे सब ती इस डरसे चौकटी भरकर दूर भाग गए कि कही देवताघोषी सेना हमे मार न डाले, पर जितने सिंह थे, वे अपनी गुफाप्रोके बाहर निडर होकर मस्तीसे साथ निकल निकलकर खडे हो गए ॥२९॥ जब वे संविच उस ऊँचे सुमेरु पर्वतकी तमहूटीमे उतरे, उस समय प्रभारखतोमे रहनेवासे स्त्री-पुरुष सब उन्हे बडे चावसे देख रहे थे ॥३०॥ सुमेरु पर्वतकी पीली, नीली, लाल और जबकी बहानोसे उड़ी

पीतासितारक्तसितैः सुराचलप्रान्तस्थितैर्धातुरजोभिरम्बरम् ।  
 अयन्नगन्धर्वपुरोदयभ्रमं वमार भूमनोत्पतितैरितस्ततः ॥३१॥  
 महास्वनः सैन्यविमर्दसंभवः कर्णान्तिकूलं कपतामुपेयिवान् ।  
 पयोनिधेः क्षुब्धतरस्य वर्धनो बभूव भूमना युवनोदरम्भरिः ॥३२॥  
 महागजानां गुरु वृंहितैस्ततैः सुहेपितैर्घोरतरैश्च वाजिनाम् ।  
 घनैरथानां गुरुचण्डचीत्कृतैस्तिरोहितोऽभूत्पटहस्य निःस्वनः ॥३३॥  
 महासुराणामवरोधयोपितां कचाक्षिपस्मस्तनमण्डलेषु च ।  
 ध्वजेषु नागेषु रथेषु वाजिषु चरणेन तस्यौ सुरसैन्यजं रजः ॥३४॥  
 घनैर्विलोक्य स्थगितार्कमण्डलैश्चमूरजोभिर्निर्चितं नभःस्थलम् ।  
 अयायि हंसैरभिमानसं घनभ्रमेण सानन्दमनतिं केकिभिः ॥३५॥  
 सान्द्रैः सुरानीकरजोभिरम्बरे नवाभ्युदानीकनिर्भरभिभ्रिते ।  
 चकाशिरे स्वर्णमया महाध्वजाः परिस्फुरन्तस्तडितां गणा इव ॥३६॥  
 विलोक्य धृतीपटलैर्मृशं मृतं द्यावापृथिव्योरलमन्तरं महत् ।  
 किमूर्ध्वतोऽथः किमधस्त ऊर्ध्वतो रजोऽभ्युपैतीति जनैरतर्क्यत ॥३७॥  
 नोर्ध्वं न चाधो न पुरो न पृष्ठतो न पार्श्वतोऽभूत्खलु चक्षुषोर्गतिः ।  
 सूच्यग्रमेघैः पृतनारजध्वयैराच्छादिता प्राणिगणस्य सर्वतः ॥३८॥

हुई धूलसे भरा हुआ आकाश ऐसा लगने लगा मानो बिना परिधमने ही वह अनेक रत्नोत्से भरा।  
 गन्धर्वपुर बन गया हो ॥३१॥ कानंकि परदोकी फाटनेवाला देवसेनाका वह उमड़ा हुआ घोर शब्द  
 हड़भडाते हुए समुद्रकी कोलाहलसे भी अधिक बढ़कर सारे ब्रह्माण्ड में गुंजने लगा ॥३२॥ यहाँ तक  
 कि मलबाले हार्मियोकी भारी बिम्बाड चारो ओर घोडोकी हिनहिनाहट और चलते हुए रथोकी घोर  
 भरभराहटमें गम्भीर और कान फाटनेवाली नपाओकी ध्वनि एवदम दब गई ॥३३॥ और अण-भरमें  
 ही देवसेनामें चलनेसे उठी हुई वह धूल धीरे-धीरे देवोकी क्षियोके बालो, उनकी आँखो, बलकी और  
 स्तभोपर बैठती हुई फिर उनकी पताकाओ, हार्मियो, रथो धीरे घोडोपर आकर जमने लगी ॥३४॥  
 जब सेना की घनी धूल सूर्यको ढककर आकाशमें छा गई तो हज़र समझे कि ये बादल हैं और घरसाए  
 जानकार वे मानसरोवरकी ओर उड़ चले और ओर मस्तीसे नाचने लगे ॥३५॥ सेनाके चलनेसे  
 उठी हुई घनी धूल तो आनाशमें नये बादलोंकी पाँतो-जैसी दिखाई देने लगी और सुगहरी  
 पताकाएँ, चमकती हुई बिल्लीनी लहरो-सी चमकने लगी ॥३६॥ आनाश और पृथ्वीके ठीक बीचो  
 बीच छाई हुई उस धूलको देखकर लोग यही सोचते रह गए कि यह धूल, ऊपरसे नीचे उतर रही  
 है या नीचेसे ऊपरको उड़ रही है ॥३७॥ लगने चलनेसे उठी हुई धूल ऐसी छा गई थी कि सूर्यकी  
 नोकने बरबदर स्थान भी धुला न रह गया था इसलिये सबकी आँखोके आगे ऐसा धंधेरा छा गया  
 कि किसी को भी नीचे ऊपर, आगे-पीछे, श्वर-ऊपर कहीं कुछ भी नहीं दिखाई देता था ॥३८॥



दिग्गन्तदन्त्यावलिदानहारिभिर्विमानरन्ध्रप्रतिदानभेदुरैः ।  
 अनेकवाद्यध्वनितैस्नारतैर्जगज्ज गाढं गुरुभिर्नभस्तलम् ॥३६॥  
 भुवं विगाह्य प्रययौ महाचभूः कचिच्च मान्ती महतीर्दिवं स्रुत् ।  
 सुसंकलायामपि तत्र निर्भरात्किं कान्दिशीकत्वमवाप नाकुला ॥४०॥  
 उद्दामदानद्विपवृन्दं हितैर्नितान्तमुचुङ्क्षुत्तुरङ्गहेपितैः ।  
 चलद्भनस्पन्दननेमिनिःस्वनैरभून्निरुच्छ्वासमिवाकुलं जगत् ॥४१॥  
 महागजानां गुरुभिस्तु गर्जितैर्विलोषण्टारणितै रसोद्वयैः ।  
 धीरप्रयादैः प्रमदप्रभेदुरैर्वाचालताभादधिरेतरां दिशः ॥४२॥  
 दन्तीन्द्रदानद्रषवारिवीचिमिः सद्योऽपि नद्यो बहुधा पुपरिरे ।  
 धारारजोभिस्तुरगैः चतैर्भृता याः यङ्कतायेत्य रथैः स्थलीकृताः ॥४३॥  
 निम्नाः प्रदेशाः स्थलताम्रपागमभिम्नत्वमुच्चैरपि सर्वतथ तै ।  
 तुरंगमाणां व्रजतां सुरैः चता रथैर्गजेन्द्रैः परितः समीकृताः ॥४४॥  
 नभोदिग्गन्तप्रतिघोषमीपशुभैर्भहामहीभृत्तटदारसोन्वयैः ।  
 पयोधिनिर्धुननकेलिभिर्जगद्भूष भरीध्वनितैः समाकुलम् ॥४५॥  
 इतस्ततो वातविधुतचञ्चलैर्नैरन्ध्रिताशागमनै र्परिजांशुकैः ।  
 लघैः कण्टकाञ्चनकिङ्किणीदुलैरमज्जि धूली-जलधौ नभोगते ॥४६॥

संगमः ऐसे बहुतसे बाजे निरंतर बज रहे थे जिनकी धोर ध्वनि सुनकर मतवाले हाथियोंका मद भी मूल जाता था धीर जिनकी ध्वनि विमानोंकी छतारियोंमें टकराकर धीर भी दूरी वृज उठती थी । उगड़े सुन-सुनकर ऐसा लगता था मानो आकाश ही धनधोर गरज रहा हो ॥३६॥ बेवतापोरी यह महासेना पहले तो धरती में भर गई, पर वहाँ न समा सकनेके कारण आकाश में जा पहुँची धीर जब वहाँ भी न समा सकी तो मानो यह यह समझकर पकड़ा उठी कि अब गहल्लि वहाँ पला जाय ॥४०॥ ऊँचे-ऊँचे मतवाले हाथियोंकी चिंगाड़ी से, अत्यन्त ऊँचे घोड़ों की हिनहिनाहटोमें धीर चलनेवाले रथों की पट-गडाहटसे सब ऐसे पकड़ा उठे मानो सबकी साँत फुटी जा रही हो ॥४१॥ बड़े-बड़े हाथियोंकी धोर चिंगाड़, उनके हिलते हुए युद्धके घटोकी टन-टन धीर महानके धीरोकी ललकार धारी धीर कँधी हुई ऐसी लगती थी मानो दसों दिशाएँ कीलाहन मचा रही हो ॥४२॥ बड़े बड़े हाथियोंका इतना मद बहा कि सूखी हुई नदियोंमें तुरन्त बाढ भा गई । धीर फिर घोड़ोंके सुमोके सुँदले छठी हुई मूलमर जानेसे उन नदियोंमें गोपड़ ही पीपड़ हो गया धीर फिर रथोंके पहियोंसे बबकर बड़ी फिर ज्योंकी त्यों धरती निवत्त भाई ॥४३॥ चलते हुए घोड़ोंके सुरोंसे रौंदी जानेपर धीर रथों तथा हाथियोंके चलनेसे दय जानेपर नीचे स्थान ऊँचे हो गए धीर ऊँचे स्थान नीचे हो गए ॥४४॥ बड़े-बड़े पहाड़ोंको पीठ देनेवाली धीर समुद्रमें हलफल मचा देनेवाली वह नगाडेकी ध्वनि निवत्तपर आकाश धीर किरातोंमें मूँजी तो उनकी धोर भी भयानक ध्वनि सुनकर राय उलार पकड़ा उठा ॥४५॥ उस सेनारी टन-टनाते हुए धुंधप्रवाही साखो ऋदियों जो सारे आकाश में भरकर उन मार्ग रीके हुए थापूने

घण्टारवै रौद्रतरैर्निरन्तरं विसृत्वरैर्गर्जरवैः सुभैरवैः ।  
 मत्तद्विपानां प्रथयांभविविरे न बाहिनीनां पटहस्य निःस्वनाः ॥४७॥  
 करालवाचालमुखाश्चमूर्खनैर्ध्वस्ताम्बरा वीच्य दिशो रजस्वलाः ।  
 तिरोवभूवे गहनैर्दिनेश्वरो रजोन्धकारैः परितः कुतोप्यसौ ॥४८॥  
 आक्रान्तपूर्वा रभसेन सैनिकैर्दिगङ्गना व्योमरजोभिदृपिता ।  
 भेरारवाणां प्रतिशब्दितैर्भनैर्जगर्ज गाढं घनमत्सरादिव ॥४९॥  
 गुरुसमीरसमीरित भूधरा इव गजा गगनं विज्रगाहिरे ।  
 गुरुतरा इव धारिधरां रथा भुवमितीह विवर्च इवाभवत् ॥५०॥  
 पल्लमदसुरलोकानल्पकल्पान्तकाले

निरवधय इवाम्भोराशयो घोरघापाः ।

गुरुतरपरिमज्जद्भूतो देवसेना

वधुधुरपि सुपूर्णा व्योमभूम्यन्तराले ॥५१॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृतो कुमारसंभवे महाकाव्ये  
 देवसेनाप्रयाण नाम चतुर्दश सर्गः ॥

भोक्तोमे फरफरा रही थी । वे भी उस सेनाके चलनेसे डरती हुई धूलके समुद्रमे डूब गई ॥४९॥  
 मतवाले हाथियोकी गूँजती हुई चिन्माट ग्रीर पल्ल पल्लमे भयकर होकर बढ़ती हुई मण्टेकी ध्वनिके  
 धाये सेनाके नगाडोंका शब्द सुनाई ही नहीं पड रहा था ॥४७॥ जैसे किसी हस्ता भवानेपानी  
 नगी रजस्वलाफो देखकर सज्जन लोग धाड़ कर लेते हैं वैसे ही सेनाके लव्योंसे घोर कोलाहल  
 करती हुई ग्रीर आकाश-रूपी वस्त्रकी गाढवर रजसे भरी हुई विशा-रूपी मादिकाको देखकर  
 फँसे हुए धूलके पने अंधरेकी धोट करके अपनेको छिपा लिया ॥४८॥ वहाँ जो नगाडे दज रहे वे  
 सनकी ध्वनि ऐसी लग रही थी मानो आकाश रूपी नायक पुलसे भरी हुई अपनी विशारूपी  
 रजस्वला नायिका पर सैनिकोंका इतना बडा धावा देखकर घोर ईर्ष्या से गरज उठ हो ॥४९॥  
 बड़े बड़े हाथी आकाश मे द्रव प्रकार इधर-उधर घूम रहे थे जैसे किसी बडी भारी धाँची से  
 पहाडकी चट्टानें ऊपर उठ रही हो । भूमिपर रथ इस प्रकार चल रहे थे मानो बड़े-बड़े बादल  
 चल रहे हो । इस समुद्रमे ऐसा जान पडता था मानो पृथ्वीके पहाड जो आकाशमें उठने लगे हो  
 धीरे आनाशमे चलने वाले बादल पृथ्वी पर चलने लगे हो ॥५०॥ घोर कोलाहल भवाती हुई  
 बड़े-बड़े राजाओं से भरी यह देवसेना भली प्रकार चारो ओर भरी होने पर भी घोर अधिक  
 बढ़ने लगी । इसे देखकर ऐसा जान पडता था मानो बसवान् धनुर्बोकें इस महाप्रलयके समय  
 घोर रूपसे गरजता हुआ महासागर उमडा चला जा रहा हो ॥५१॥

महाकवि श्रीकालिदासके रचे हुए कुमारसंभव महाकाव्यमें  
 देवसेनावा प्रस्थान नामका चौदहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

॥ पञ्चदशः सर्गः ॥

सेनापतिं नन्दनमन्धकद्विपो युधे पुरस्कृत्य बलस्य शात्रवः ।  
 सैन्यैरुपैतीति सुरद्विपां पुरोऽभूर्तिकवदन्वी हृदयप्रकम्पिनी ॥ १ ॥  
 चयूत्रभुं मन्मथमर्दनात्मजं विजित्वरीभिर्विजयश्रियाश्रितम् ।  
 श्रुत्वा सुराणां वृतनाभिरागतं चिचे चिरं चुल्लुभिरे महासुराः ॥ २ ॥  
 समेत्य दैत्याधिपतेः पुरे स्थिताः किरीटचद्मान्जलयः प्रक्षाम्य ते ।  
 न्यवेदयन्मन्मथशत्रुखनुना युयुत्सुना जन्मजितं सहागतम् ॥ ३ ॥  
 दासीकृताशेषजगत्त्रयं मां जिगाय युद्धे कतिशः शचीपतिः ।  
 गिरीशपुत्रस्य बलेन साम्प्रतं ध्रुवं विजेतेति स काकुतोऽहसत् ॥ ४ ॥  
 ततः क्रुधा विस्फुरिताधराधरः स तारको दर्पितदोर्बलोद्धतान् ।  
 युधे त्रिलोकीजयकेलिलालताः सेनापतीन्सन्नहनार्थमादिशत् ॥ ५ ॥  
 महाचमूनामधिपाः समन्ततः सन्नद्ध-सयः सुतरामुदायुधाः ।  
 तस्थुर्भिन्नभ्रक्षितिपालसंकुले तदङ्गनद्वारवरप्रकोष्ठके ॥ ६ ॥  
 स द्वारपालेन पुरः प्रदर्शितान्कृतानतीन्बाहुवरानधिष्ठितान् ।  
 महाह्वाम्भोधिविधुननीद्धतान्दर्श राजा वृतनाधिपान्वहून् ॥ ७ ॥

पन्द्रहवां सर्ग

उपर जब दैत्योके नगरमे यह हल्ला मचा कि खरबीके पुत्र कालिकेयको सेनापति  
 बनावर और देवतायोकी सेना साथ लेकर दैत्योके शत्रु इन्द्र यहाँ युद्ध करकेके लिये चले भा रहे  
 हैं तो दैत्योके बड़ी सनबनी मच गई ॥१॥ और जब उन्होने यह जान लिया कि अयलक्ष्मीके साथ  
 देवतायोकी सेना लेकर विजयी कातिकेय सचमुच सेनापति बनकर भाए हैं तब वो दैत्योके नगरके  
 रहनेवाले बहुत देरतक ऐसे घबराए बँडे रहे मानो उन्हें काठ मार गया हो ॥२॥ दैत्योके राजा  
 तारककी मगरीमे रहनेवाले सब दैत्य मिलकर तारकके पास पहुँचे और उनके भागे बिर चुकाकर  
 प्रशाम करके कहते लगे कि युद्ध करनेको उताम कुमारको साथ लेकर इन्द्र भा पहुँचे हैं ॥३॥  
 यह सुनकर तारकने बड़े तावके साथ हँसते हुए कहा—पिछले कई युद्धमे तो मुझ प्रलोपय-विजयी  
 को इन्द्र जीत गही सका अब कुमारके मरोसे लखने चला है तो भला क्या जीतेगा ॥४॥ यह कहते ही  
 सीनो लोकोकी सेल ही सेलमे जीतनेकी क्षति रहनेवाले तारकके मोठ पाँपने लगे और उसने  
 अपने उन बालाद्विजे सेनापतियोको युद्धके लिये उखने की आज्ञा दी जिन्हे अपने दाहुवल पर बड़ा  
 धमण्ड था ॥५॥ अब अस्त्र-शास्त्र बोधकर बड़े-बड़े दैत्य सेनापति तुरत तारकके उभ भारी पाटक  
 वाले भाँगमे भा खड़े हुए जहाँ बहुतसे आज्ञाकारी राजा पहलेसे ही युद्ध दबाए छडे थे ॥६॥  
 द्वारपर पहुँचकर वो वी प्रशाम करते चाते थे उनकी मड़ी-बड़ी मुजायो बाने वीरोको  
 सेना-सेनाकर दारपाल गी तारकापुरके सामने लड़ा करता जाऊ था । दैत्यराजने

वली पलारातिवलातिशातनं दिग्दन्तिनादद्रवनाशनस्वनम् ।  
 महीधराम्भोधिनयारितक्रमं ययौ रथं घोरमथाधिरुह्य सः ॥ ८ ॥  
 युगक्षयक्षुब्धपयोधिनिःस्वनाथैल्लत्पताकाकुलवारितातपाः ।  
 धरारजोग्रस्तदिगन्तभास्कराः पतिं प्रयान्तं पृथनास्तमन्वयुः ॥ ९ ॥  
 घमूरजः प्राप दिगन्तदन्तिनां महासुरस्याभिसुरं प्रसर्पिणः ।  
 दन्तप्रकाण्डेषु सितेषु शुभ्रतां कुम्भेषु दानाम्बुषनेषु पङ्कताम् ॥ १० ॥  
 महीभृतां कन्दरदारखोन्वयैस्तद्वाहिनीनां पटहस्वर्नैर्धनैः ।  
 उद्वेलिताश्चक्षुभिरे महार्णवा नभःस्रवन्ती सहस्राभ्यवर्धत ॥ ११ ॥  
 सुरारिनाथस्य महाचमूस्वनैर्विगाह्यमाना तुमुलैः सुरापगा ।  
 अभ्युच्छ्रितैरुर्मिशतैश्च वारिसैरद्यालयभाकनिकेतनावलीम् ॥ १२ ॥  
 अथ प्रयाणाभिद्वेषस्य नाकिनां क्षिपः पुरस्तादशुभोपदेशिनी ।  
 अगाधदुःखांश्चुधिमध्यमज्जनं पश्य चोत्पातपरम्परा तव ॥ १३ ॥  
 आगामिदैत्याशनकेलिकाटिच्छयी कूपक्षिणां घोरतरा परम्परा ।  
 दधौ पदं ध्योग्नि सुरारिवाहिनीरुपर्षुपर्येत्यनिवारितातपा ॥ १४ ॥

देखा कि वे प्रमगिनरी सेनापति, महायुद्धके हलमय मनानेसे एकसे एक बढकर हैं ॥७॥  
 सब वह दलवान् वैश्य भी स्वयं उस भयकर रणपर बढकर चल पडा जो प्रकेला ही इन्द्रकी  
 सेनाको तहत-नहर कर सवता था, जिसकी चरघराहट सुनकर दिग्भोका विन्ध्यावगा भीर नद  
 वहाना दग्ध हो जाता था और जो पर्वत भीर सयुद्धमे कहीं भी बेरोक टोक चला जा सकता था  
 ॥८॥ पृथ्वीसे उठी हुई धूलसे सब दिशाओ भीर आकाशको ढकती हुई दैत्योको वह सेना भी  
 अपने सेनापति तारकामुरके पीछे पीछे चल पडी, जो प्रलय कालके हूहूडाते हुए समुद्रके समान  
 भीर हुल्ला मचा रही थी और जिसमें इतनी पताकाएँ हिस रही थी कि उनसे ध्रुव तक रक गई  
 थी ॥९॥ जब दैवताओसे लड़नेके लिये महादैत्य तारककी सेना अपने वो उसके चलनेसे उठी हुई  
 धूल दिग्भोके तजते दाँतोपर पडकर उजली हो उठती थी और जब उनके मद पहते हुए गानो  
 पर पडती थी तब कीचड बन जाती थी ॥१०॥ उसकी सेनाके नगादोंको जो गगौर ध्वनि  
 पहाडोंकी नन्दराओको भी फोड सकती थी उसे सुनकर समुद्र भी हिलोरेँ लेकर अपने लटके  
 ऊपर उठ माया भीर आकाशमधमे भी अचानक बाढ झा गई ॥११॥ दैत्यराजकी सडी भारी  
 सेनाका भयकर हुल्ला जो आकाशमधमे पूँवा तो उसमेसे चक्षुरे हुई सुन्दर कमलसिंभरी  
 संकडो लहराने वहाँके सबल घो डाले ॥१२॥ जब वह दैत्यराज लड़नेके लिये चला तो उसके  
 भागे ऐसे गुरे-गुरे श्रवण होने लगे जिनमे यह जान पडता था कि वह दैत्य किसी भारी विपत्तिके  
 समुद्रमे डूबनेवाला है ॥१३॥ उसी समय दैत्योका भाँध पानेकी टोहमे बहुतेसे गिद्ध, शोके आदि  
 भयकर जीव-जन्तु पति वाँप-वाँपकर दैत्योकी सेनाके ऊपर डीक इस प्रकार मँडराने लगे कि

मुहुर्विभग्नातपवारखध्वजशूलद्वराधूलिकलाकुलेक्षुः ।  
 धृतःश्वमातङ्गमहारथाकरानवेक्षणाऽभूत्प्रसभं प्रमञ्जनः ॥१५॥  
 सद्यो विभिन्नाञ्जनपुञ्जतेजसो मुखैर्विपान्नि विकिरन्त उचकैः ।  
 पुरः पयोऽतोत्प महाभुजङ्गमा भयङ्कराकारभृतो भृशं ययुः ॥१६॥  
 मिलन्महाभीमभुजङ्गभीषणां प्रभुर्दिनानां परिवेषमादधौ ।  
 महासुरस्य द्विपतोऽतिमत्सरादिवान्तमाक्षचयितुं भयङ्करः ॥१७॥  
 त्विषामधीशस्य पुरोऽधिमण्डलं शिवाः समेताः परुषं ववाशिरै ।  
 गुरारिराजस्य रणान्तशोषितं प्रसन्न पातुं द्रुतमुत्सुका इव ॥१८॥  
 दिवापि तारस्तरलास्तरस्विनीः परापतन्तीः परितोऽथ वाहिनीः ।  
 विलोक्य लोको मनसा व्यचिन्तयत्प्राणव्ययान्तं व्यसनं मुरद्विषः ॥१९॥  
 ज्वलद्भिरुचैरभितः प्रभाभरैरुद्भासिताशेषदिगन्तराम्भरम् ।  
 रषेण रौद्रेण हृदन्तदारुणं पपात वज्रं नमसो निरम्बुदात् ॥२०॥  
 ज्वलद्भिरङ्गारचयैर्नमस्तलं वषर्षं गाढं सह शोषितास्थिभिः ।  
 धूमं ज्वलन्तो व्यसृजन्मुखै रजो दधुर्दिशो रासमकण्ठबूसरम् ॥२१॥  
 निर्घातघोषो गिरिशृङ्गशातनो धनोऽम्बराशाकुहरोदरम्भरिः ।  
 धमूच भृम्ना श्रुतिभित्तिभेदनः प्रकोपिकालार्जितमर्जितर्जनः ॥२२॥

इनकी छाया भी नीचे नहीं पड़ती थी ॥१४॥ आकाशमें बार-बार ऐसी झंझियाँ उठने लगी  
 कि ध्वज-चमर, पताकाएँ, सब टूट ब फूट गईं, पुल उब-उबकर सबकी छाँडोमें भर गई और  
 घोड़े, हाथी, रथ सबको उन झंझियोमें झकझोर डाला ॥१५॥ तुरन्त पारे हुए नागलमें  
 दूधकर गिरे हुए दुग्धके समान कामे घोर विष-भरी घागकी कँची-कँची सबदँ उगतने-वाले  
 गड़े लयकर डोल-डोलपाने लगे, सेनाका मार्ग फाट-भंगकर रागमेसे निकलने लगे ॥१६॥  
 घोर बँदके कारण ही मनो सुर्षमें भयकर साँघोकी दुष्टलीके समान बड़ा ता मडल पाये  
 घोर डाल लिया था जो यह धता रहा था कि देवताघोके सत्रु तारक भनुरके दिन पूरे हो चले  
 हैं ॥१७॥ युद्धमें तारक भनुरका सङ्घ पीनेकी उठावलोमें शिवादिनिर्णय सुर्ष-गण्डलके चारो घोर  
 प्रा-भाकर बड़े डरावने स्वरमें रोने लगे ॥१८॥ दिनमें निकले हुए तारे उस सेनाके चारो घोर  
 बड़े वेगसे टूट-टूटकर गिरने लगे और सोचोको विस्वास हो गया कि ये सब उपद्रव तारकके  
 नाशके लिये ही हो रहे हैं ॥१९॥ अपनी घोर घोर भयंकर तड़पड़े हृदय फाट देनेवाली घोर  
 अपनी बलती हुई कमकसे सारी दिशाघो घोर आकाशको चमका देनेवाली बिजली भी दिना  
 दादसके ही आकाशसे टूट-टूटकर गिर रही थी ॥२०॥ आकाशमें पचकते हुए धपारोकी लहसी  
 मोर हृद्दियोकी पनघोर वर्षा हो रही थी घोर दसो दिशाएँ चके गलेके रब-नेस भूरा-भूस  
 धुमो उगल रही थी ॥२१॥ चारो घोर आकाशमें घोर दसो दिशाओमें ऐसा भयकर हल्ला  
 हो रहा था जो लौधमें भरे हुए कालकी मरलके समान कयोके पदें फाड़े डाल रहा था और

स्वल्पान्मह्यं प्रपतचुरङ्गमं परस्परारिष्टजनं समन्ततः ।  
 प्रचुम्पदम्भोधिभिन्नभूधराङ्गलं द्विपोऽभूद्वनिप्रकम्पात् ॥२३॥  
 ऊर्ध्वीकृतास्या रविदत्तदृष्टयः समेत्य सर्वे सुरविद्विपः पुरः ।  
 श्वानः स्वरेण श्रवणान्तशातिना मिथो रुदन्तः करुणेन निर्ययुः ॥२४॥  
 अपीति पश्यन्परिणामदारुणां महत्तमां गाढमरिष्टसन्ततिम् ।  
 दुर्दैवदष्टो न खलु न्यवर्तत क्रुधा प्रयासव्यवसायतोऽसुरः ॥२५॥  
 अरिष्टमाशङ्क्य विपाकदारुणं निवार्यमाणोऽपि युधैर्महासुरः ।  
 पुरः प्रतस्थे महतां वृथा भवेदसद्ग्रहान्धस्य हितोपदेशनम् ॥२६॥  
 क्षितौ निरस्तं प्रतिरूलवायुना तदीयनामीकरधर्मवारणम् ।  
 रराज मृत्योरिव पारखाविधौ प्रकल्पितं हाटकभाजनं महत् ॥२७॥  
 विजानता भापिशिरोनिकृन्तनं प्रज्ञेन शोकादिव तस्य मौलिना ।  
 मुहुर्गलङ्घिस्तरलैरलन्तरामरोदि युक्ताफलवाष्पदिन्दुभिः ॥२८॥  
 निवार्यमाणैरभितोऽनुयायिभिर्ग्रहीतुकामैरिव तं मुहुर्मुहुः ।  
 अपाति गृध्रैरभिमौलिमाकुलैर्भविष्यदेतन्मरणोपदेशिभिः ॥२९॥  
 सद्यो निकृत्ताङ्गनसोदरयुतिं फलामखिप्रज्वलदंशुर्मंडलम् ।  
 निर्यद्विपोऽरुणानलग्नैर्भूत्कृतं ध्वजे जनस्तस्य महाहिमैक्षत ॥३०॥

जिसकी युँजो पहाडकी चोटियाँ भी पटी पड रही थी ॥२३॥ इतनेमे ही ऐसा भूडोल आया  
 कि उनुत्र द्विरोरं लेके लगा, पहाडमे दरारं पड गई, तारकके चँनिक एक दूसरेकी एकदकर  
 निपट गए, बड़े-बड़े हाथी लडखडाने लगे और घोडे जहाँ उहाँ पडपड गिरने लगे ॥२३॥  
 सूर्यकी भीर देखते हुए मुँह उठाकर एक साथ बहुतसे चुत्ते रोते हुए और घुरे बगसे भूकते हुए  
 छारणके सामने निकल आए ॥२४॥ इस प्रकारके घुरे-घुरे टराने बसयुन देखकर भी दुर्भाग्यके  
 मारे उन देखने लगेपडे नडाईमे जागेसे मुँह नहीं मोटा ॥२५॥ ऐसे बडे, टरणने और घुरे  
 बसयुन देखकर विद्वानोंने उन महादैत्यको बहुत घोरना चाहा पर वह प्रागे धक्का ही गया ।  
 जो लोग हठमे पनये हो जाते हैं उन्हें बडे-बूडो वा लपेटे भी धक्का नहीं लगता ॥२६॥  
 इतनेमे ही बल्ले बहते हुए बाबुबा ऐसा भोवा भाया कि सुन्दर राजघ्न भी भूमिमे घोंपा  
 जा गया और ऐसा सगने सफ मानो उसकी मृत्युने अपना इस लोडनेके समय मोजन करनेके  
 लिये पट मोनेरा पान था खला हो ॥२७॥ तारकके निरीटने दूट-दूटकर गिरते हुए मोती ऐसे  
 लग रहे मे मानो तारकरा शिर बटनेकी बान पहलेमे जाननेवाला वह ममभरार मुनुट अपने  
 मोतीने घोंगू बार-बार बरगाकर रो रहा हो ॥२८॥ उसके शिरपर मँडराते हुए गिडोने उसके  
 रोयन बराबर लगा रहे मे फिर भी मे गिड ब्यानुत्ताके साथ निरर ही गिरकर मानो यह  
 कता रहे मे कि पय गुहारे दिन पूरे हो चते हैं ॥२९॥ इतनेमे लोगोंने देखा कि उमने भडेपर  
 तुलन पारे हुए नाबलने समान पाया, अपने परगरी मलिधी निरखोंने प्रवागसे पमबते हुए

रथाश्वकेशावलिकर्णचामरं ददाह वाखासनवाखाणधीन् ।  
 अफाण्डतश्चण्डतरो हुताशनस्तस्यात्तनुस्यन्दनधुर्यगोचरः ॥३१॥  
 इत्याद्यरिष्टैरशुभोयदेशिभिर्विहन्यमानोऽप्युमुरः पुनः पुनः ।  
 यदा मदान्धो न गतान्यवर्तताम्बरात्तदाभून्मरुतां सरस्वती ॥३२॥  
 मदान्ध मा गा मृजदण्डचण्डिमावलेपतो मन्मथहन्तुस्त्रुना ।  
 सुरैः सनाथेन पुरन्दरादिभिः समं समन्तात्समरं विजित्वरैः ॥३३॥  
 गुहाऽसुरैः षड्दिन जातमात्रको निदाषधामेव निशातमोभरैः ।  
 विपद्भते नाभिमुखो हि सगरे कुतस्त्वया तस्य समं विरोधिता ॥३४॥  
 अर्धंलिहैः मृद्गशतैः समन्तो दिक्चक्र्यालैः स्थगितस्यभूमृतः ।  
 क्रौञ्चस्य रन्ध्रं विशिखेन निर्ममे येनाहवस्तस्य सह त्वया कुतः ॥३५॥  
 लब्धा धनुर्वेदमनङ्गविद्विपस्त्रिसप्तकृत्वः समरे महीभुजाम् ।  
 कृत्याभिपेकं रुधिराम्बुभिर्धनैः स्वक्रोभवहिं शमयावभूव यः ॥३६॥  
 न जामदग्न्यः चयकालरात्रिकृत्स चत्रियाणां समराय वसगति ।  
 येन त्रिलोकीमुभटेन तेन कुतोऽवकाशः सह विग्रहग्रहे ॥३७॥  
 त्यजाशु गर्वं मदमूढ मा स्म गाः स्मरारिखनोर्वरशक्तिगोचरम् ।  
 तमेव नूनं शरणं त्रजाधुना जगत्सुवीर स चिराय जीव तत् ॥३८॥

फनोवाला घोर भयालक विप-भरी आगकी फुंजार छोढनेवाला एक बड़ा भारी सौप वा शिपदा  
 है ॥३०॥ इसनेमे अचानक उसने उसके पुरैसे आगकी ऐसी भारी सपट उठी कि उसके पोबोने  
 बाल, बान घोर चौरियां झुनस गई घोर तारकके धनुष, बाण घोर तूखीर भी जल उठे ॥३१॥  
 बार-बार ऐसा घुरे घुरे प्रसंगुग होनेपर भी जब यह समझने शुरू देख स सौटा, तब आकाससे  
 यह देवराणी सुनाई वी ॥३२॥ —हे समझने पूर दैत्य तू अपने भुजदरो पर प्रमद करके उन  
 कर्मात्तकेयत्रीसे पुढ करने न जा, जिनके साथ इन्द्र घोर विजयो देवता चले प्रा रहे हैं ॥३३॥  
 है मत्तवले दैत्य सह दिनके बालक कुमारके भागे युद्धमे दैत्योकी यही दुर्दसा होगी जो सूर्यके  
 भागे रातके अंधेरेकी होती है । भला तू उनसे क्या सट पावेगा ॥३४॥ हे तारक ! जिस कौंच  
 पर्वतकी संनदो चौटियो आकाश जूमती हैं घोर वो दसो दिशाओमे फैल हुआ है उले भी जिसने  
 आणोने देष डाला है, उनके साथ तू क्या सट पावेगा ॥३५॥ जिन परशुरामजीने पररजीसे  
 मनुर्विद्या सीखकर इन्कोस बार युद्धमे राजाओके गाढे रक्तमे स्नान करके अपना क्रोध टण्डा  
 किया है ऐसे क्षत्रियोने नादकी कातरात्रि मुसानेवाले परशुराम भी जिनसे लढनेमे पबवाते हैं,  
 उन त्रिभुवन प्रसिद्ध महायोद्धासे लढनेका तुममे दम कहीं है ॥३६-३७॥ अरे समझते मन्वे  
 दैत्य तू अपना पण्ड छोडकर कुछ ऐसा उपाय कर कि जिससे तू कुमारकी शक्तिके भागे न  
 प्रा सके । इस समय उन्हीनी धरलुमे जानेसे ही तेरे प्राण बचे रहेंगे ॥३८॥ अपने ओपते

श्रुत्वेति वचं वियतो गरीयसीं क्रोधादहंकारपरो महासुरः ।  
 प्रकम्पिताशेषजगत्त्रयोऽपि सन्नकम्पतोच्चैर्दिवमम्यघाच्च सः ॥३६॥  
 किं ब्रूथ रे व्योमचरा महासुराः स्मरारिसुनुप्रतिपन्नवर्तिनः ।  
 मदीयघाणग्रन्थवेदना हि साऽधुना कथं विस्मृतिगोचरीकृता ॥४०॥  
 फट्स्वरैः प्राल्लपथाम्बरस्थिताः शिशोर्वलात्पद्दिदन्जातकस्य किम् ।  
 श्वानः प्रमत्ता इव कार्तिके निशि स्वैरं वनान्ते मृगधूर्चका इव ॥४१॥  
 सङ्गेन धो गर्भतपस्विनः शिशुर्वराक एपोऽन्तमवाप्स्यति ध्रुवम् ।  
 अतस्करस्तस्करसङ्गतो यथा तद्वो निहन्मि प्रथमं ततोऽप्यगुम् ॥४२॥  
 इतीरयन्पुग्रतरं महासुरे महाकृपाणं क्लपत्यलं क्रुधा ।  
 परस्परोत्पीडितबानवो भयात्प्रभ्रुवा दूरतरं विदुर्बुधुः ॥४३॥  
 ततोऽयलेपाद्रिकटं विहस्य स व्यधच कोशादसिमुचम बहिः ।  
 रथं द्रुतं प्रापय वासवान्तिकं नन्वित्यवोचन्निजसारथिं रथी ॥४४॥  
 मनोतिवेगेन रथेन सारथिप्रणोदितेन प्रचलन्महासुरः ।  
 ततः प्रपेदे सुरसैन्यसागरं भयह्वराकारमपारमग्रतः ॥४५॥  
 पुरः सुराणां पृथनां प्रथीयसीं विलोक्य वीरः पुलकं प्रमोदजम् ।  
 यभार भूम्नाथ स बाहुदण्डयोः प्रचण्डयोः सङ्गरकेलिकौतुकी ॥४६॥

चीनो लोकलोकौ कौपावेनाला यह मन्त्री ईत्य भी ऐसी आकाश वाणी सुनकर एक बार स्वयं  
 कांप उठा, पर फिर संभल कर आवाजवी धीरे मूह करके गरजवर बोला— ॥३६॥ भरे  
 कार्तिकेयकी बडाई करनेवासे आकाशमे भूमनेवासे देवताधो । क्या आज तुम्हे मेरे बाएँके  
 धाबोकी पीडा भूल गई जो इस प्रकार बड़-बक किए जा रहे हो ॥४०॥ भरे देवताधो ।  
 कार्तिकेयके महीमेम जैसे पागल गुठे भूँका करते हैं और रातको वनमे विचार, लोमड़ी प्रादि  
 धूर्त पशु बोला करते हैं वैसे ही तुम लोग भी आकाशमे चक्कर उठ छह दिनेके बच्चे कुमारके  
 बलकी क्या रिरिया-रिरियाकर भूठी शाव बघार रहे हो ॥४१॥ भरे देवताधो ।  
 तुम लोगोमे साप बरनेसे यह बेचारा तपस्वी नासक कार्तिकेय भी तुम खोपोमे साप वैसे ही मारा  
 जायगा जैसे चोरका साथ देने वाला भी बढ भोगता है ॥४२॥ यह कहकर उस महासुरे जो मपना  
 भारी धोर बडा भयावना रूपाल् उठाय तो आकाशमे सडे हुए सब देवताधोम भगवद मच  
 गई ॥४३॥ तब बडे मटपटे विषट हँसो हँसकर उसने म्यानसे प्रपनी बरखाल बाहर निकाली  
 धोर धपने सारथीसे कहा कि रथ बड़ाकर मटपट इन्द्रके सामने पहुँचाओ ॥४४॥ मन्ते  
 भी अधिच वेगसे चलनेवाले जिस रथको सारथी बडाए तिधु चला जा रहा था उसपर  
 वडा ह्वा यह महादेव्य देवताधोनी उस सेनाके प्राणे जा पहुँचा जो मघाह समुद्रके समान मयकर  
 रिलाई दे रही थी ॥४५॥ देवताधोकी बड़ी भारी सेना सामने देखकर उस पुरके निये उतावले



ततो महेन्द्रस्य चराश्रमूचरा रणान्तलीलारभसेन भूयसा ।  
 पुरः प्रचेत्सुर्मनसोऽसतिवेगिनां युयुत्सुमिः किं समरे विलम्ब्यते ॥४७॥  
 पुरःस्थितं देवरिपोश्चमूचरा बलद्विपः सैन्यसमुद्रमभ्ययुः ।  
 धूर्ज समुत्तिष्य परेभ्य आत्मनोऽभिधानमुच्चैरभितो न्यवेदयन् ॥४८॥  
 पुरोगतं दैत्यचमूमहार्षिबं दृष्ट्वा परं जुष्टुभिरे महासुराः ।  
 पूरारिस्रतोर्नयनैककोणके मसुर्मटास्तस्य रणेऽवहेलया ॥४९॥  
 द्विपद्वलत्रासविभीषिताश्चमूर्दिवीकसामन्वकशत्रुनन्दनः ।  
 अपरपदुद्दिश्य महारथोत्सर्षं प्रसादपीयूषधरेण चक्षुषा ॥५०॥  
 उत्साहिताः शक्तिधरस्य दर्शनान्मृषे महेन्द्रप्रमुखा मखाशनाः ।  
 धर्हं मृषे जेतुमरीनरीरमन्न कस्य धीर्याप वरस्य संगतिः ॥५१॥  
 परस्परं वज्रधरस्य सैनिका द्वियोऽपि योद्धं स्वकरोद्ध्वायुधाः ।  
 वैतालिकश्राविततारविक्रमाभिधानमीशुर्विजयैपिणो रणे ॥५२॥

धीरके भारी पुनःदहीके रोएँ सहे हो गए और उसके हृदयमे युद्धका उत्साह उमड़ उठा ॥५६॥  
 राज इन्द्रके बड़े-बड़े रणबाहुरे और युद्धके लिये सज्जगए हुए सैनिक, मनसे भी अधिक बेगसे रँ यकी  
 सहापर दूट पडे । सच है, जो सदाईके प्यासे होते हैं वे प्रवसर मानेपर भागर पीछा पीडे  
 ही देखते हैं ? ॥५७॥ और फिर दैत्य-सेनाके सैनिक भी भाषे धावी हुई इन्द्रकी सेनाके  
 समुद्रपर दूट पडे और वे चारी और पुजार्हे उठा उठाकर सलकार सलकारकर अपना प्रयत्न  
 काम शत्रुमीकी मुकाबे लगे ॥५८॥ अपने प्राये समुद्रके समान हिलोरें लेती हुई उस दैत्य-  
 सेनाकी देखकर बड़े-बड़े देवताप्रोने भी उनके छूट गए, पर उस चारी दैत्य सेनाको एक कनसीसे  
 बेलकार ही लिट्टर कार्तिकेयने समझ लिया कि इस सेनामे कुछ घरा नहीं है ॥५९॥ दैत्योकी  
 सेनाके करने पदरार्ह हुई देवसेनाकी और अपने ध्यानन्दके प्रभृतसे धूले हुए नेपोसे देखकर  
 कुमारने सकेत किया कि ठरो मत, युद्ध किए जाओ । भव देवताप्रोने रलमे शक्तिवाली कार्तिकेयका  
 दर्शन किया तो सनका उत्साह बढ गया और इन्द्र भादि सभी यह कहकर प्रगन्नताये उछलने  
 धूदने लगे कि मैं शत्रुओकी युद्धमे जीत रूँवा । ठीक है, मले सोनोका सग करनेसे किचना  
 बल नहीं पडता ॥६०-६१॥ अपने अपने वज्र उठा-उठाकर देवतापो और दैत्योके सैनिक  
 अपने-अपने चारणोके गाए हुए अपने नामवाले वराक्रमके गीत सुनते हुए विजयकी दृष्ट्यासे समरमे  
 धा जुटे ॥६२॥ जैसे प्रलय करनेके लिये अपनी मर्यादा तोडकर चारो ओर फैले हुए और तारे

## ॥ पोटशः सर्गः ॥

अथान्योन्यं विमुक्तास्त्रशस्त्रजालैर्मपंकरैः ।  
 युद्धमासीत्सुनासीरसुरारिबलयोर्महत ॥ १ ॥  
 पत्तिः पत्तिमभीषाय रणाय रथिनं रथी ।  
 तुरंगस्थं तुरंगस्थो दन्तिस्थं दन्तिनि स्थितः ॥ २ ॥  
 युद्धाय घावतां धीरं वीराणामितरेतरम् ।  
 बैतालिकाः कुलाधीशा नामान्यलसुदाहरन् ॥ ३ ॥  
 पठतां वन्दिदृन्दानां प्रवीरा विक्रमावलीम् ।  
 षष्ठं विलम्ब्य चिचानि ददुर्षुद्धोत्सुकाःपुरः ॥ ४ ॥  
 संग्रामानन्दवर्धिष्णौ विग्रहे पुलकाश्रिते ।  
 आसीत्कञ्चविच्छेदो वीराणां मिलतां मिथः ॥ ५ ॥  
 निर्दयं सङ्गमिषेभ्यः क्वचेभ्यः समुत्थितैः ।  
 आसन्न्योमदिशस्तूलैः पलितैरिव पाण्डुराः ॥ ६ ॥  
 स्रष्ट्वा रुधिरसंलिप्ताक्षपटांशुकरभासुराः ।  
 इतस्ततोऽपि वीराणां विद्युतां वैभवं द्युः ॥ ७ ॥

### सोलहवां सर्ग

यह दृश्य और तारकवी सेनाएँ एक दूसरेपर भयङ्कर अस्त्र-शस्त्र बरसा बरसाकर पौर युद्ध करने लगी ॥१॥ पैदलसे पैदल जा भिजे, रथवालोसे रथवाले जा उसको, युद्धसवारोसे युद्धसवार जा लूके और हापीसवार हापीसवारोसे भिड़ गए ॥२॥ जो सैनिक मिटर होकर बैरियोपर चोट कर रहे थे उन्हें सड़नेकी उमाड़नेके लिये दोनो पौरके चारख लोम उग बीरोको कुलके उमागर बसा-बसाकर उनकी बड़ाई करते जा रहे थे ॥३॥ पर वे और युद्धमे ऐसे भी जानते लड़ते थे कि उन्हें इतना भयकाव ही कहां था कि चारखीके मुँह अपने पराक्रमके नीचे मुन सकें इसलिये जब वे दीप दीपमे कभी लणभर रुक जाते थे तो चारखीके नीचे भी मुन लेते थे ॥४॥ उन्हें सडाईमे ऐसा धानन्द था रहा था कि उनके रोएँ-रोएँ उत्साहसे फरफरा उठे थे और जब उनकी भापसमे मिश्रन्त हो जाती थी तो उनके कवचोके टाँके तक मुन जाते थे ॥५॥ यहाँ सैनिक लोग इतने कस कसकर करवाए लला रहे थे कि कवचोके टूटनेसे उनके नीचे बँधी हुई रई भाकाव और दिपाघोमे उड़ उड़कर ऐसी फँस गई कि सब दिशाएँ बूढ़के बालो जैसी पोजी हो गई ॥६॥ जहाँ जहाँ सूर्यकी किरणें पड़नेतो लहूसे रंगी करवाते विजवीने सुभाव चमक उठती थीं ॥७॥

विसृजन्तो मुखैर्ज्वाला भीमा इव भुजंगमाः ।  
 विसृष्टाः सुभट्टै रुष्टैर्व्योम व्यानशिरे शराः ॥ ८ ॥  
 वाटं वषुपि निर्भिद्य धन्विनां निघ्नतां मिथः ।  
 अशोखितमुखा भूमिं प्राविशन्दूरमाशुगाः ॥ ९ ॥  
 निर्भिद्य दन्तिनः पूर्वं पातयामासुराशुगाः ।  
 पेतुः प्रवरयोधानां प्रीतानामाहवोत्सवे ॥ १० ॥  
 ज्वलदग्निमुखैर्वाखैर्नीरन्ध्रैरितरेतरम् ।  
 उच्चैर्वैमानिका व्योम्नि कीर्णैर्द्रमपासरन् ॥ ११ ॥  
 विभिन्नं धन्विनां वायैर्व्यथार्तमिव विह्वलम् ।  
 ररास विरसं व्योम रपेनप्रतिरबच्छलात् ॥ १२ ॥  
 चापैराकर्णमाकृष्टैर्विसृक्ता दूरमाशुगाः ।  
 अधावनृधिरास्वादलुब्धा इव रणैपियाम् ॥ १३ ॥  
 गृहीताः पाणिभिर्वीरैर्विकोशाः खड्गमराजपः ।  
 कान्तिजालच्छलादानौ व्यहसन्संमदादिव ॥ १४ ॥  
 खड्गाः शोणितसंदिग्धा नृत्पन्तो वीरपाणिषु ।  
 रजोधने रणेऽनन्ते विद्युतां वैभवं दधुः ॥ १५ ॥

प्रथमं भर-भरकर बीरोके जो प्राग उगलते हुए भयंकर सौंपोके समान विपने बाण छोडे उनसे  
 बाण भाकात घा मया ॥८॥ ये एक दूधरेपर दूरसे जो बाण चला रहे ये वे दूसरी मोरके  
 अनुपमारियेके शरीरको ऐसी कुतसि बेपते हुए पार निकलकर पृथ्वीमें जा बैठते  
 ये कि जगमें लहूतक नही लग पाता था ॥९॥ उस मुटके उत्सवमें जो बड़े-बड़े योद्धा जो लोतकर  
 लड रहे ये वे हृदिदारोंपर ऐसे करारे बाण चला रहे ये कि ह्यापियोका सिर तो पहले  
 कटकर गिर जाता था, बाण पीछे गिरता था. ॥१०॥ जब प्राकपधमें चलती हुई सपटोंवाले  
 बाणोकी घनी पातें भर गईं तो विमानोंपर चढ़े हुए देवता यहाँसे दूर हट गए कि नहीं हम न इनकी  
 लपेटमें भा जायें ॥११॥ अनुपपारी संनिकोंने इधने बाण छोड़े कि प्राकपधकी छाती पतनी हो गई  
 मोर इसीलिए बह भी पीडासे व्याकुल होकर बाज पक्षीके डरावने यन्त्रोमे रने लगा ॥१२॥ लडाकू  
 योद्धाओंने अपने कानो तक खींच-खींचकर जो बाण छोड़े ये मानो हथिर पीनेके लोमड़े ही बतनी  
 दूरतक दौडे चले जा रहे हों ॥१३॥ संघाममे बीरोके हाथोकी नगी करवाले मतवाली हो-होकर  
 मानो अपनी पारवी चमकमे ही हँस रही हो ॥१४॥ बीरोके ह्यापिमि भाचनेवाली सट्टे लपपप  
 करवाले, मुससे पटे हुए उस दूरतक फँसे हुए मुट क्षत्रमे विजलीके समान चमक उठी थी ॥१५॥

कुन्ताथक्राशिरे चण्डमुल्लसन्तो रक्षार्थिनाम् ।  
 जिह्वाभोगा यमस्येव लेलिहाना रखाङ्गणे ॥१६॥  
 प्रज्वलत्कान्तिचक्राणि चक्राणि वरचक्रिणाम् ।  
 चण्डांशुमण्डलश्रीणि रण्योमनि बभ्रमुः ॥१७॥  
 केचिद्धीरैः प्रणादैश्च धीराखामभ्युपेयुषाम् ।  
 निपेतुः क्षोभतो वाहादयरे मृसुहूर्मदात् ॥१८॥  
 कथिदस्यागते धीरे जिघांसौ मृदमादधौ ।  
 परावृत्त्य गते चुन्धे विपसादाहवप्रियः ॥१९॥  
 बहुभिः सह मुद्घ्या वा परिभ्रम्य रणोत्थगाः ।  
 उदिस्य तानुपेयुः केऽपि ये पूर्ववृता रणे ॥२०॥  
 अभितोऽस्यागन्योर्दुं वीरान्तरखमदोद्धतान् ।  
 प्रत्यनन्दन्मुजादरुहरोमोद्गमभृतो भटाः ॥२१॥  
 शस्त्रभिन्नेभकुम्भेभ्यो मौक्तिकानि व्युतान्यधः ।  
 अध्याहवक्षेत्रमुत्तकीर्तिवीजाङ्कुरश्रियम् ॥२२॥  
 वीरान्तां विपमैषोपेर्विद्रुता वारखा रणे ।  
 शास्यमाना अपि त्रासाद्भेजुर्वृताङ्गुशा दिशः ॥२३॥

युद्धमें लड़नेवालोंके सम्बन्धमें हुए भयकर भावें सम्राजकी सफलप्राप्ति हीमर्षिके विचारमें दे रहे थे ॥१६॥ वक्रार्थीय करनेवाली चक्रकसे विरे हुए और प्रचण्ड सूर्य-मण्डलके समान चक्रकाले वक्रधारी वीरोंके धरु, उस युद्ध-रूपी आकाशमें चारों ओर खबर तथा रहे थे ॥१७॥ जब कोई वीर सामने आकर सम्भ्रमकर ललकार उठता था तो बहुतसे घोड़ा उब ललकारको सुनकर ही पोंबोसे कीचे तिर प्रकृति से और बहुतसे इन्द्रके सारो ही मूर्च्छित हीकर तिर प्रकृति से ॥१८॥ कोई कोई वीर ऐसे थे कि जब कोई उन्हें मारनेके लिये सामने आता तो वे प्रसन्न हो उठते थे कि बनो इसीसे दो दो हाथ ही जायें, पर जब वह धरकर लौट जाता था तब उन्हें देव बातबर बड़ा दुःख होता कि हाथ, लड न पाए ॥१९॥ कुछ ऐसे भी रण बोकुरे थे जो बहुतोंके साथ लड-भियकर और इतर-उपर घूम-घामकर उन वीरोंके पास पहुँच जाते थे, जिनसे लड़नेके लिये उन्होंने पहले ही सोच रक्खा था ॥२०॥ जब सन्धे घोड़ाघो ने देखा कि युद्धके लिये मतपाने और लड़नेके लिये फरफराती बाहोवाले वीर चारों ओर आ गए हैं तो वे बड़े प्रसन्न हुए कि अब जो भरकर लडा तो जायगा ॥२१॥ जसलोकें कटे हुए ह्रासियोंके मस्तकोंके भडे हुए भीती वहाँ विपरें हुए ऐसे घोषा दे रहे थे जैसे रथके खेतमें बोध हुए मशके धकुर फूट निकले ही ॥२२॥ रणमें वीरोंकी भयानक ललकारोसे आगे हुए हाथी, हाथीवालोंके प्रकुच ला-

रथे वाणगणैर्मिन्ना अमन्तो भिन्नयोधिनः ।

निममज्जुर्मिलद्रक्तनिम्नगासु महागजाः ॥२४॥

अपारेऽसूक्सरित्पूरे रथेषूच्चैस्तरेष्वपि ।

रथिनोऽभिरिपुं क्रुद्धा हुंकृतैर्घ्यसृजञ्शरान् ॥२५॥

खड्गनिर्लूनमूर्द्धानो घ्यापतन्तोऽपि वाजिनः ।

प्रथमं पातयामासुरसिना दारितानरीन् ॥२६॥

वीराणां शस्त्रभिन्नानि शिरांसि निपतन्त्यपि ।

अधावन्दन्तदष्टोष्ठभीमान्यभिरिपुं क्रुधा ॥२७॥

शिरांसि वरयोधानामर्द्धचन्द्रहृतान्यलम् ।

आददाना भृशं पादैः स्येना ध्यानशिरे नभः ॥२८॥

क्रोधादस्यापतद्वन्तिदन्तारूढाः पदातयः ।

अश्वारोहा गजारोहप्रास्थान्प्रासैरपाहरन् ॥२९॥

शस्त्रच्छिन्नगजारोहा विभ्रमन्त इतस्ततः ।

युगान्तघातचलिताः शैला इव गजा बभुः ॥३०॥

मिलितेषु मिथो योद्धुं दन्तिषु प्रसभं भटाः ।

अगृह्णन्वृष्यमानाश्च शस्त्रैः प्राणान्परस्परम् ॥३१॥

रूपा मिथो मिलदन्तिदन्तसंपर्पजोऽनलः ।

योधाञ्छस्त्रहतप्राणानदहत्सहस्रारिभिः ॥३२॥

आकर द्विपर-उपर भाग निकलते थे ॥२१॥ जिन हाथियोंके हाथीवान् युद्धमें लक्ष्मणके बाणोंसे मार पाते गए थे, वे हाथी मनमाने घूमते हुए लक्ष्मणकी नदीमें लान हो उठे ॥२४॥ बड़े ऊँचे रथोंपर चढ़े हुए सैनिक, लक्ष्मणकी नदीकी अपार मारा में डूबते रहनेपर भी क्रुद्ध होकर बलकारते हुए धनुके ऊपर बाण छोड़ रहे थे ॥२५॥ बहुतेके ऐसे वीर भी थे कि धनुके बरवालसे सिर कट जानेपर जब वे अपने थोड़ेसे नीचे गिरते थे तो गिरते-गिरते भी अपने करवालसे धनुका सिर फाट लिया करते थे ॥२६॥ सर्वोपि कटकर गिरे हुए वीरोंके सिर कोपसे दाँव पीसते हुए धनुकी धोर धोड़ रहे थे ॥२७॥ प्रपचन्दे बाणोंने जो सिर फाट दिए थे और जिन्हें बाण अपने पंभोंमें उड़ा ले गए उन बड़े-बड़े वीरोंके सिरोंसे सारा आकाश भर उख ॥२८॥ पैदल और घुड़गवार सैनिकोंने कोपसे पागल होकर समने पड़नेवाले हाथियोंके दाँतोंपर चढ़-चढ़कर हाथी सवार सैनिकोंको मारने से छेद बना ॥२९॥ हाथी सवारोंके मार डाले जानेपर उनके मनमाने घूमनेवाले हाथी ऐसे खन रहे थे जंम प्रथम की साँपोंसे पहाड़ हपर-उपर उड़ रहे हो ॥३०॥ जब दो हाथी लड़नेके लिये भिड़ते थे तो उनपर चढ़े हुए मोटा आषट्मं लटकर बलपूर्वक एक दूसरेको मार डालते थे ॥३१॥ क्रोधसे परस्पर टनकर लेनेवाले हाथियोंके दाँतोंकी पीठसे ऐसी मार उठती थी कि धनुके चरभोंसे

आक्षिप्ता अपि दन्तीन्त्रैः कोपनैः पक्षयः परम् ।  
 तदघ्नहरन्खड्गघातैः स्वस्य पुरः प्रभोः ॥३३॥  
 उत्क्षिप्य करिभिर्दूरान्मुक्तानां योधिनां दिवि ।  
 शापि जीवात्मभिर्दिव्या गतिर्वा विग्रहैर्मही ॥३४॥  
 खड्गैर्धवलघारालैर्निहत्य करिणां करान् ।  
 तैर्भुवापि ममं विद्वान्संतोषं न मटा ययुः ॥३५॥  
 आक्षिप्याभिदिषं नीताः पक्षयः करिभिः करैः ।  
 दिव्याङ्गनाभिराढातुं रक्ताभिर्द्रुतमीपिरे ॥३६॥  
 धन्विनस्तुरगारूढा गजारोहाञ्चरैः क्षतान् ।  
 प्रत्येच्छन्मूर्च्छितान्भूयो योद्धुमाद्यसतश्चिरम् ॥३७॥  
 क्रुद्धस्य दन्तिनः पक्षिर्जिघृक्षोरसिना करम् ।  
 निर्भिद्य दन्तमुसलावारुरोह जिघृषया ॥३८॥  
 खड्गेन भूलतो हत्वा दन्तिनो रदनद्वयम् ।  
 प्रात्तिपक्ष्ये प्रविष्टोऽपि पदातिर्निरगाद्द्रुवम् ॥३९॥  
 करेण करिणा धीरः सुगृहीतोऽपि कोपिना ।  
 असिनाऽखड्गहाराशु तस्यैव स्वयमद्वतः ॥४०॥

मारे हुए सैनिक अचानक जल उठते थे ॥३२॥ पंदल सैनिक ऐसे खड रहे थे कि यदि उन्हें अत्यन्त  
 क्रुद्ध हाथी अपना सूँडसे उठाकर उछाल भी देते थे तो वे अपने स्वामीके देखते-देखते उसकी सूँड  
 अपने करवालेके काट डालते थे ॥३३॥ जिन वीरोंके हाथियोंके उठाकर ऊपर उछाल दिया था,  
 उनके प्राण तो स्वर्गमें चले गए और उन्हे दिव्य गति मिल गई, वेदन्त उनके शरीर पृथ्वीपर  
 धा गिरे ॥३४॥ यद्यपि पौढा भीम उजवी चारवाले अपने करवालोंके हाथियोंकी सूँड ऐसे भटके से  
 काट रहे थे कि उनके करवाल पृथ्वीमें धा धँसते थे, फिर भी उनका भी नहीं भर रहा था ॥३५॥  
 जिन वीरोंके हाथियोंकी सूँडोंके उछलते जानेपर धीर गति पाई थी, उन स्वर्गमें पहुँचे हुए सैनिकोंको  
 भटपट प्रेमसे अपना प्रेमी बनानेके लिये देवाङ्गनाएँ उतारनी हो उठती थी ॥३६॥ जब कोई युद्धवार  
 धनुषधारी सैनिक अपने काँधोंके किसी हाथी-सवारको वास्य मारकर भूक्षित कर देता था तब वह  
 बहुत बेरतब दूरा बाटने खडा रह जाता था कि वह फिर उठे तो उससे युद्ध करें, क्योंकि  
 जो भूक्षित हो जाता था उसे वे नहीं मारते थे ॥३७॥ एक विषटन हाथी एक पंदल सैनिकको  
 अपनी सूँडसे लपेटना चाहता था, इतनेमें उसने कथा लिया कि पहले करवालका एक हाथ जमा-  
 कर उसकी सूँड काट डालनी और फिर उसके दंत उखाड़नेके लिये उसके सम्भे-सम्भे दाँतोंपर  
 चढ़कर बैठ गया ॥३८॥ एक दूखरा पंदल सैनिक, चतुकी सेनामें युद्ध और अपने  
 करवालसे एक हाथीके दोनों दंत जब तक काटकर भट अपनी सेनामें छोड धाया ॥३९॥

तुरंगी तुरगारूढं प्राप्तेनाहत्य वचसि ।  
 पततस्तस्य नाज्ञासीत्प्रासघातं स्वके हृदि ॥४१॥  
 द्विषा प्रासहृतप्राणो वाजिपृष्टद्व्यासनः ।  
 हस्तोद्धृतमहाप्रासो भुवि जीवन्निवाग्रमत् ॥४२॥  
 तुरंगसादिनं शस्त्रहृतप्राणं मतं भुवि ।  
 अत्रद्वोऽपि महाबाजी न साश्रनयनोऽत्यजत् ॥४३॥  
 भस्त्रेण शितधारेण भिन्नोऽपि रिपुणाश्रमः ।  
 नामूर्च्छितकोपतो हन्तुमियेष प्रपतन्नपि ॥४४॥  
 मिथः प्रासाहतौ वाजिच्युतौ भूमिगतौ रुपा ।  
 शस्त्र्या युयुधतुः कौचित्केशाकेशि भुजाभुजि ॥४५॥  
 रथिनो रथिभिर्नाणैर्हृतप्राणा दृढासनाः ।  
 क्षतकर्म्मकसंधानाः सप्राणा इव मेनिरे ॥४६॥  
 न रथी रथिनं भूयः प्राहरच्छस्त्रमूर्च्छितम् ।  
 प्रत्याश्रमन्तमन्विच्छन्नातिष्ठयुधि लोभतः ॥४७॥  
 अन्योन्यं रथिनीं कौचिद्गतप्राणौ दिवं गतौ ।  
 एकामप्सरसं प्राप्य युयुधाते वरायुधौ ॥४८॥

श्लोक में भरे हुए हाथीकी सूँठमें बसकर लिपट जानेपर भी एक और घपनी कलवारसे हाथीकी  
 मारकर जीता जागता निकल आया ॥४०॥ एक घुड़गवार दूसरेकी छातीमें आना मारकर  
 ऐसा प्रसन्न हुआ कि जब उस घोड़ेसे गिरते हुए संनिवने उतटकर उगपर आना  
 पलाया तो उठे यह भी जान न रहा कि मुझे थोटा लगी है ॥४१॥ मारनेके लिये हाथमें  
 भारी बाबा उठाकर घोड़ेकी पीठपर कमबर बैठा हुआ एक संनिव घनुके भाँपते मारे जानेपर  
 भी ऐसा लग रहा था मानो यह अभी जीता जागता ही हो ॥४२॥ दाग्रणी घोटके जो  
 घुड़गवार घुपीपर मरा पड़ा था, उसका बहा था थोडा खबरवाई हुई भाँपते घपने स्वामीकी  
 देखा हुआ नहीं मरा था, हटा नहीं ॥४३॥ घनुके लिये आलेबा पाव साबर एक घुड़गवार  
 सटगटाता हुआ भी छोपने मारे भूतिन नहीं होता था और चाहता था कि घनु मिले तो उठे अभी  
 मार दाम् ॥४४॥ दो घुड़गवार भापगमें एक दूसरेके भाँपते थोटा साबर भूमिमें गिरे हुए भी  
 छोपने मारे एक दूसरेके बाप घण्डवर घुड़गवारका होकर घुरीसे सट रहे थे ॥४५॥ एक रथवाने  
 मोटाको दूरे रथगाने मार आया था, छिद्र भी था घपना हटा हुआ घनुष भी लीपे हुए मरा हुआ  
 रथवर ऐसा कमबर बैठा हुआ था मानो घनी जीता जागता हो ॥४६॥ एक रथगवार संनिव दूसरे  
 रथीको दाग्रणी भूतिन करने उगपर वार न करने यह बात जोहने लगा कि यह उधेठ हो तो दाम्  
 मरा जाय ॥४७॥ दो रथगवार घोर दंष्ट्र उगपारी मोटा एक दूसरेकी मारकर जब रथगमें वृषि

मियोऽर्द्धचन्द्रनिर्लूनमूर्धानी रधिनी रुचा ।

सेचरौ भुवि नृत्यन्तौ स्वकवन्धावपरयताम् ॥४६॥

रसाङ्गखे शोणितपद्मपिच्छले

कथं कथञ्चिन्नृतुर्घृताशुधाः ।

नदत्सु तूर्येषु परेतयोपितां

गणेषु भापत्सु क्ववन्धराजपः ॥४७॥

इति सुररिपुर्घृते युद्धे सुरासुरसैन्ययो

रुधिरसरितां मञ्जदन्तिव्रजेपुतटेप्लम् ।

अरुणनयनः क्रोधाङ्गीमभ्रमद्भ्रुवुटीमुखः

सपदि ककुभामीशानम्पासगरस युयुत्सया ॥४८॥

इति महाकाव्यश्रीकालिदासकृतो कुमारसंभवे महाकाव्ये

सुरासुरसैन्यसंश्रामपरलंभ नाम बोद्धः सर्गः ॥

तय वे दोनो यहाँ एव अम्बराके तिते भापयमें लडाईं करने लगे ॥४६॥ अर्द्धचन्द्र धारिणी एक  
दुपरेका तिर काटकर दो रथो स्वर्गमें जा पहुँचे और वहलिये वे अपने जन यर्बोंका नेत्र देगने रहे जो  
बहुत देरतक हाथमे लम्बवार लिए युद्ध-भूमिमें नाच रहे थे ॥४७॥ उच युद्ध-सैन्यमें जहाँ-तहाँ  
मगाके घन रहे वे और मूढ-श्रेयोवी शिखा गीत या रही थीं । यहाँ युद्धभूमिमें लड़ने लीयकगे इनकी  
फियलत ही गई थी कि बाल निद्र हुए वीरोंके घट दबो बैठनाईये नाच या रहे थे ॥४८॥ इस  
प्रकार जब देव-दानवोंका युद्ध आरम्भ हो गया और लड़ने लगीके वीरवर ही वे दृपते तमे ठव बट  
देवतामोश शत्रु हारक श्लेषके मारे भीहें नचाकर और मान-साम धायें करने युद्ध करनेके लिए  
सुरत हृद भादि दिग्पालोंने धागे आ दटा ॥४९॥

महाकाव्य श्रीकालिदासके रहे हुए कुमारसंभवे महाकाव्यमें देवसैन्यमें और दैत्योंकी

सैन्यमें युद्धका बरतन नामका गोत्रहवीं गर्भ मयात हुआ ।



## ॥ सप्तदशः सर्गः ॥

दृष्ट्वाभ्युपेतमथ दैत्यपतिं पुरम्वात्मंग्रामकेलिकुतुकेन घनप्रभोदम् ।  
 योद्धुं मदेन मिमिलुः ककुभामघीशा वायान्धकारितदिग्म्बरगर्भमेत्य ॥ १ ॥  
 देवद्विपां परिष्टुहो विफटं विहस्य वाणावलीभिरमरान्विकटान्धवर्ष ।  
 शैलानिव प्रशरवारिधरो गरिष्ठानद्भिः पराभिरथ गाढमनारताभिः ॥ २ ॥  
 जम्भद्विपत्प्रभृतिदिकपतिचापमुक्ता वाणाः शिता इनुजनायकवाणसङ्घान् ।  
 श्रद्धाय तार्च्यनिग्रहा इव नागपूगन्सद्यो विचिच्छिदुरलं कखशो रणान्ते ॥ ३ ॥  
 तान्प्रज्वलत्फलम्रुखंविपमैः सुरारिर्नामाद्भितैः पिहितदिग्गगनान्तरालैः ।  
 आच्छादितस्तृणचयानिव हृष्यवाहश्चिच्छेद सोऽपि सुरसैन्यशराञ्छरौघैः ॥ ४ ॥  
 दैत्येश्वरो ज्वालितरोपविशेषमीमः सद्यो मुमोच युधि यान्विशिखान्महेलः ।  
 ते प्रापुस्तद्भ्रतभुजंगमभीममाधं गाढं ववन्धुरपि ताँस्त्रिदशेन्द्रमुख्यान् ॥ ५ ॥  
 ते नागपाशविशिखैरसुरेश यद्वाः आसानिलाकुलम्रुखा विम्रुखा रणस्य ।  
 दिङ्नायका बलरिपुप्रमुखाः स्मरारिखनोः समोपमगमन्विपदन्तहेतोः ॥ ६ ॥  
 दृष्टिप्रपातयशतोऽपि पुरारिखनोस्ते नागपाशघनबन्धविपत्तिदुःखान् ।  
 इन्द्रादयो मुमुचिरे स्वयमस्य देवाः सेवां व्यघुर्निफटमेत्य महाजिगीषोः ॥ ७ ॥

## सप्तहर्षां सर्गं

जिस दैत्यराजके रोग-रोग सवाईके चाबते फरफरा रहे थे और जिहने पुर्जाधार बाण बरसाकर धरती-भाकास सचमे बँसेरा कर दिया था, उसे घाते हुए देवकर सब दिग्पाल, रणमे गतपाले होकर एक साथ उससे जोड़ा लेनेके लिये था जुटे ॥ १ ॥ जैसे सायन-भादवीकी पत्नी घटाएँ सगाठार जब बरसाकर बड़े बड़े पहाड़ोंकी नीचेसे ज्वरतक भिगी देती हैं वैसे ही यह देवतामोका शत्रु तारक भी बड़ी बराबरी हैसी हँसता हुआ देवताधोपर भयकर रूपसे पुर्जाधार बाण बरसाने लगा ॥२॥ उस रण-क्षेत्रमे इन्द्र आदि दिग्पाल जो तीखे-तीखे बाण छोडते थे उन्हें चुन-चुनकर दैत्यराजके बाण वैसी ही फुल्लि फाटते चले जा रहे थे जैसे बहुतसे गरुड भिनकर साँपोके कुण्ड फाटते चले जा रहे ही ॥३॥ देवताभोने उसपर जो बाणोंकी फड़ी सगाई उसे उसने अपने नाम खुदे हुए, श्रागवे समाग जलते हुए तीखे फलवाने और सब दिशाओ और भाकासको पाट देनेवाले बाणोंसे उतरी प्रकार उहल-नहस कर डाला जैसे अपने ऊपर छाप हुए पास-फूलको घषकती हुई थाय जला डालती है ॥४॥ जोयसे लाल स्रग् भयबर दैत्यराजने उस मुडको कुल न समभते हुए जो बाण छोडे थे तुरत साँपोकी भाँति गमकर वगकर इन्द्र आदि देवताधोके गलोमे गमकर लिपट गए ॥५॥ उस दैत्यके बाणोंकी फाँसी गलेमे पड जानेपर सब देवताधोकी साँसें फुटने लगी और वे लडना-भिरना छोड-छोडकर इस विपदासे छुटकारा पानेके लिये कार्तिकेयके पास दौड पडे ॥६॥ कार्तिकेयने जनरी और धाँस भर देस ही दिया कि इन्द्र आदि देवताधोके गलेमे कसे हुए वे नाग-फाँसके फन्दे अपने साथ लुल

उदीतकोपदहनोऽथ सुरेन्द्रशत्रुरह्याय मारथिमवोचत चण्डवाहुः ।  
 पद्मा मया सुरपतिप्रभुराः प्रसन्न बालस्य घूर्जटिसुतस्य निरीक्षणेन ॥ ८ ॥  
 मुक्ता बभूवुरधुना तदिमान्विहाय कर्तास्म्यमुं समरभूमिपशूपहारम् ।  
 तत्स्पन्दनं सपदि वाहय शंभुस्रजुं द्रष्टास्मि दर्पितस्रज्ज्वालमाहवाय ॥ ९ ॥  
 तत्स्पन्दनः सपदि मारथिसम्प्रशुचः प्रचुब्धवारिधरधीरगभीरघोषः ।  
 चण्डध्वचाल दलिनाखिलशत्रुसैन्यमांसास्थिशोणितविपद्द विलुप्तचक्रः ॥ १० ॥  
 द्रष्ट्वा रथं प्रलयवातचलद्विरीन्द्रकल्पं दलद्वलविरावविशेषरौद्रम् ।  
 अभ्यागतं सुररिपोः सुरराजसैन्यं चोर्भं जगाम परमं भयवेषमानम् ॥ ११ ॥  
 प्रकुम्भमाशमयलोक्य दिगीशसैन्यं शंभोः सुतं क्लहकेलिवृत्तहलोत्कम् ।  
 उक्षामदोः कलितकर्माकुटण्डचण्डः प्रोवाच वाचमुपमम्य स कार्तिकेयम् ॥ १२ ॥  
 रे शंभुतापसशिशो घत मुञ्च मुञ्च दोर्दर्पमत्र विरम त्रिदिवेन्द्रकार्यात् ।  
 शास्त्रैः किमत्र भवतोऽनुचितैरतीव बालस्वकोमलशुजातुलमारभूतैः ॥ १३ ॥

गए और उद वे सब देवता उन कार्तिकेयके पास जा-बाकर उनकी बडाई करने लगे जो देवताकी कीर्तनेके लिये कमर ही पसे हुए थे ॥७॥ अब उस बडी बडी भुजाभीले तारकके यह सब देखा तब यह कौपसे चल मरा और उसने तुरन्त अपने सारथीको धाजा दी कि मैंने जिन हन्त प्रादि बड़े-बड़े देवताओको कंधेने बाँध लिया था, वे सब कार्तिकेयके देखने भरते छुटकारा पा गए हैं इसलिये इन सब देवताओकी छोडकर मैं पहले इतीकी गिद्ध-सिंहार आदिकी भेंट करता हूँ । वो तुम ऋतपट रथ बडाकर उरा शकरजीके पुत्रके पास तुम्के पहुँचाओ जिससे मैं भी तो देखूँ कि तुम्के सन्नेके लिये वह अपनी किन भुजाओके बलपर इतना दँठ रहा है ॥८-९॥ उत्काल सारथीने इस बेगसे रथ चलाया कि वह रथ प्रलयके उमड़े हुए वादलो-के समान पडघडाता हुआ भयकर बेगसे चल पडा । वहाँ इतने शत्रु संनिध बढकर गिरे हुए थे कि उनके मांस, हड्डी और लहूके कौबडके उस रथके पहिए लब छिप गए ॥१०॥ वह रथ चलता हुआ ऐसा लगत था मानो प्रलयकी आधीमे हिमालय उडा चला जा रहा हो । उसके नीचे देवताओकी सेनाके जो सैनिक पड़े जा रहे थे उनके हाहाकारसे वह और भी भयकर हो गया था और सब वह रथ देवताओके एकदम पास था गया सब तो उते देखकर देवताओकी सेनाके प्राण ही सूख गए ॥११॥ उस देवताओकी घनडाई हुई सेनाओ देखने हुए और अपनी बडी भारी भुजाओमे धनुषकी लकडो पकडे हुए तारक. उन कार्तिकेयके पास पहुँचा जो ऐसे लयते थे मानो सन्नेके लिये सपौर हो रहे हो । वहाँ पहुँचकर तारकने का - केयजीसे कहा—॥१२॥ हे तपस्वी शकरके पुत्र ! तुम अपनी भुजाओके बलपर मत एँडे और छोडो इन देवताओका साथ । वताओ कहाँ तो तुम्हारे ये छोटी-छोटी बन्वानी कोमल भुजाएँ और नहीं वे भारी-भारी बल । ये तुम्हारे हाथमे नहीं आँवने ॥१३॥ तुम पारवती और

एवं त्वमेव तनयोऽसि गिरीशगौर्योः किं यासि कालविषयं विषमैः शरैर्मै ।  
 • संग्रामतोऽपसर जीव पितृर्जनन्यास्तूर्णं प्रविश्य वरमङ्कतलं विधेहि ॥१४॥  
 सम्यक्स्वयं किल विमृश्य गिरीशपुत्र जम्भद्विपोऽस्य जहिहि प्रतिपद्यमाशु ।  
 एष स्वयं पयसि मज्जति दुर्विगाहोः पापास्यनौरिव निमज्जयते पुरा त्वाम् ॥१५॥  
 इत्थं निशम्य वचनं-पुषि तारकस्य कम्पाधरो विकचकोकनदारुणाक्षः ।  
 • क्षोभात्त्रिलोचनसुतो धनुरीक्षमास्यः प्रोवाच वाचमुचितां परिमृश्य शक्तिम् ॥१६॥  
 दैत्याधिराज भवता यदघादि गर्वात्सर्वमप्युचितमेव सर्व्वं किं तु ।  
 • द्रष्टास्मि ते प्रवरबाहुबलं वरिष्ठं शस्त्रं शूहाय कुरु-कार्मुकमाततज्यम् ॥१७॥  
 इत्युक्तवन्तमवदत्त्रिपुरारिपुत्रं दैत्यः ऋषौष्ठमधरं किल निर्विभिद्य ।  
 • पुद्गार्थमुद्भटभुजावलदपितोऽसि वाणान्सहस्व-मम सादितशश्रुपृष्ठान् ॥१८॥  
 हुप्रेक्षणीयमरिभिर्धनुराततज्यं सद्यो विधाय विषमान्विशिखान्यधत्त ।  
 स क्रोधमीमञ्जुजगेन्द्रनिभं-स्वचापं-चण्ड प्रपञ्चयति जैत्रशरैः कुमारे ॥१९॥  
 कर्णान्तमेस्य दितिजेन विकृप्यमाणं कोदण्डमेतदभितः सुपुत्रे शरौघान् ।  
 व्योमाङ्ग्यो लिपिकरान्किरस्यप्ररोहैः सान्द्रैरशेषकृत्वां पलितं करिष्णान् ॥२०॥

• तारके इकलति पुत्र होकर मेरे तीसरे बालोंसे विषकर क्यों बल के बालमे जाना बाह्ये ही ।  
 जानो, वहाँसे भागकर अपने प्राण बचायो और भटसे जाकर अपने माता-पिताकी गोदमे  
 दिए जानो ॥१४॥ हे कार्तिकेय ! तुम स्वयं अपना भवा-पुत्र सोचकर इन्द्रका साथ छोड़कर  
 प्रसंग ही जानो क्योंकि जब मैं इसपर बाण बरसाऊँगा, तब पत्थरकी नावके-समान-यह  
 तो अपने प्राण पहले बचने बूबेगा ही, साथ ही तुम्हे भी ले बूबेगा ॥१५॥ तारककी ऐसी  
 बातें सुनकर कार्तिकेयके पीठ कीबसे बाँपने लगे और खिले हुए बाल कमलके समान उनकी  
 मयानक सात-सात पल्लों-कोष से नाच उठी । बड़े-कोषसे अपने धनुषकी और-देखते हुए अपने  
 रत्नकी समझकर उन्होंने तारकको-यह भूँहतोड उत्तर दिया—॥१६॥ हे बँसराज ! धमडमे  
 बूर होकर तुमने जो कुछ कहा है यह तुम्हें-कहना ही-बाहिए था, पर भाग मुझे भी तुम्हारी  
 इन बड़ी-बड़ी मुजामोंके बलकी-बाहू लेनेका मन कर भागा है । इसलिये उठाधो अपने शस्त्र  
 - और चढाधो अपने धनुषकी डोरी ॥१७॥ यह-सुनकर तारकने क्रुद्ध होकर कार्तिकेयपर-दाँत  
 पीसकर और वारंछि भीठ चवाते हुए कहा—'यदि तुम्हे युद्धके-विषये अपनी इन प्रबण्ड  
 मुजामोंका पमण्ड है तो बाधो-और धनुषोंकी पीठको बलनी बना देनेवाले' मेरे बालोंकी  
 चोट-रसो तो ॥१८॥ बँधे बाँप-कोषसे पागल हो-जाता है बँधे ही क्रुद्ध होकर कुमार अपने  
 धनुषपर अपना जीतनेवाला भयङ्कर-बाण चढा-ही रहे थे इतनेमे तारकने वह बाण चढाया  
 जिसकी तीर देखनेमे भी धनु-भरवाते थे ॥१९॥ अपनी भयवये बाणरसको जगमगा देनेवाले  
 और सब दिशाधोवी चमक देनेवाले बाण अपने धनुषपर चढा-चढाकर और धनुषकी कानतक

बाणैः सुरारिधनुषः प्रसूतैरनन्तैर्निर्घोषभीषितमटो लसदंशुजालैः ।  
 अन्धीकृताखिलसुरेश्वरसैन्य ईशशत्रुः कृत्वोऽपि विषयं न जगाम दृष्टेः ॥२१॥  
 देवेन मन्मथरिपोस्तनयेन- गाढमाकर्षकृष्टममितो धनुराततज्यम् ।  
 बाणानम्रत निशितान्युधि यान्सुबैवास्तैः सायका विगिदेरे सहसा सुरारेः ॥२२॥  
 रंजे सुरारिशरदुर्दिनके, निरस्ते सद्यस्तरां निखिलसेचरस्त्रेदहेतौ ।  
 देवः प्रभाप्रभुरिव स्मरशत्रुस्रुः प्रथोतनः सुषनर्द्धरधमधामा ॥२३॥  
 तत्राथ दुःसहतरं समरे तरस्वी धामाधिकं दधति धीरतरं कुमारैः ।  
 मायामय समरमाशु महासुरेन्द्रो मायाप्रचारचतुरो रचयाञ्चकार ॥२४॥  
 अह्वाय कौपकस्रुपो विकटं विहस्य व्यर्या, समर्ध्वं वरशस्त्रधुर्धं कुमारैः ।  
 जिष्णुर्जगाद्विजयदुर्ललितः सहेलं धायच्यमस्रमसुरो धनुषि न्यधत् ॥२५॥  
 संधानमात्रमपि यस्य पुगान्तफालभूतप्रमं, परुषभीषणघोरधोषः ।  
 उद्धूतधूलिपटलैः पिहिताभ्वराशः प्रच्छन्नचण्डकिरण्यो व्यसरत्समीरः ॥२६॥  
 कुन्दोज्ज्वलानि सकलाम्बुवारणानि धृतानि तेन भरुता सुरमैनिकानाम् ।  
 उड्डीयामनकलहंसकुलोपमानि मेघामधूलिमलिने नभसि प्रसस्रुः ॥२७॥

तान-तानपर तारक बाण छोडने लगा ॥२०॥ उभयों धनुषसे छूटे हुए नभचमानेवाले  
 धनमिनत बाणोंकी भयकर सनसनाहट देखकर सब सैनिक बाण उडे, सब देवताओंकी पाँखोंके  
 बाणों मेंघेरा छा गया स्वयं कार्तिकेयकी भी सोयी देरतक कुछ न चिलाई दिया ॥२१॥  
 सब कार्तिकेयजीने भी पूरे बलके साथ धनुषकी जोरी कानतक खीच खीचकर अपने सीधे धीर  
 भीतनेवाले बाण बरसा-बरसाकर तारकके बाणोंके धुरे उठा दिए ॥२२॥ सब देवताओंकी दुल  
 देनेवाली तारकके बाणोंकी घटा फट जानेपर शकरजीके पुत्र कार्तिकेयजी अपने माने धीर प्रपार  
 तेजके बरतल सूर्यके समान समझते हुए जोधा देने लगे ॥२३॥ कुन्दने कार्तिकेयका ऐसा प्रकाश  
 प्रताप यदता हुआ देखकर प्रतविद्योते पुत्र करनेगे चतुर धीर बलवान् तारकने सुरन्त मायाका  
 भुङ्ग करना प्रारम्भ कर दिया ॥२४॥ जिस विजयी तारकने सारे सत्कारकी छुट्टीमे कर दिया था  
 उसने जब यह समझ लिया कि धीर धस्र नेकर कुमारके साथ लड़नेमे भीत न पाऊँगा तब  
 उसने बडे क्रोधके साथ किसीकी कुछ न समझते हुए अन्धध चलावेवाला वायव्य नामका माल  
 अपने धनुषपर चढाया ॥२५॥ उस बाणके धनुषपर चढते ही ऐसे बेगले गथकर घटघटाती  
 हुई धाँसी चलने लगी कि सोन समझने लगे वस प्रलय छा गया । उसकी धूलसे सब  
 धानाश धीर टिझाएँ भर गई धीर प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्य भी क्षिप्त गए ॥२६॥ देवताओं-  
 के सँभिकोने जो मुदतके फूलके समान उजले छात्र ये उन्ह उस भयकर अन्धधने ऐसा भ्ररुभोर  
 कर उठा दिया कि ये धूलके बरे हुए धानाशमे उबते हुए ऐसे चिलाई देने रूपे गरमो वादल  
 छाए हुए धानाशमे राजहस उडे भले पा रहे ही ॥२७॥ उस अन्धधने देवताओंकी सेनाजी घब

विध्वंस्य तेन सुरसैन्यमहापताका नीता नमस्थलमलं नवमन्त्रिकाभाः ।  
 स्वर्गापिगाजलमहौघसहस्रलीलां ध्यातेनिरे दिवि सिताम्बरकैतवेन ॥२८॥  
 धृतानि तेन सुरसैन्यमहाभजानां सद्यः शतानि विधुराणि दलत्कुथानि ।  
 पेतुः क्षितौ कुपितवासववज्रलून-पक्षस्य भूधरकुलस्य तुलां वहन्ति ॥२९॥  
 तास्ताः खरेण मरुता रथराजयोऽपि दोषूयमाननिपतिष्णुतुरंगमाश्रु ।  
 विस्रस्तसारथिकुलप्रवराः समन्ताद्ब्रथाघृत्य पेतुरवनी सुरवाहिनीनाम् ॥३०॥  
 हित्वायुधानि सुरसैन्यतुरङ्गवाहा वातेन तेन विधुराः सुरसैन्यमध्ये ।  
 शस्त्राभिघातमनवाप्य निपेतुरुर्न्या स्वीयेषु वाहनवरेषु पतत्सु सत्सु ॥३१॥  
 तेनाहतास्त्रिदशसैन्यपदातयोऽपि सस्तायुधाः सुविधुराः परुषं रसन्तः ।  
 वास्याविषर्तदलशृङ्गममेत्य दूरं निपेतुरम्बरतलाद्ब्रमुधातलेऽस्मिन् ॥३२॥  
 इत्थं विलोक्य सुरसैन्यमथो अशेषं दैत्येखरेषु विधुरीकृतमस्त्रयोगात् ।  
 स्थलोकनाथक्रमलाकुशलैकहेतुर्दिव्यं प्रभावमतनोदतनुः स देवः ॥३३॥  
 तेनोज्झितं सकलमेघ सुरेन्द्रसैन्यं स्नास्व्यं प्रपद्य पुनरेव युधि प्रपृषत् ॥  
 दृष्ट्वासृजदहनदैवतमस्त्रमिन्द्रसुदीप्तकोपदहनः सहसा सुरारिः ॥३४॥

ध्वजामो और पताकामोको गये किले हुए चमेलीके फूलके समान चौड-फोडकर आकाशमे उडा  
 दिया और वे आकाशमें उडती हुई उजले वलकी पताकारें ऐसी दिखाई वी मानो उस ध्वजमे  
 आकाश गवामी उडलती हुई सहस्रो सहस्रियां आकाशमें फैला दी हो ॥२८॥ इस भयकर अंधके  
 भौकेमे पड़ी हुई देवसेनाके जो बहुतसे बड़े-बड़े हाथी अपनी भूर्से मयलते हुए देखते-देखते लड-  
 लडाकर गिरते हुए ऐसे दिखाई पडते थे मानो इन्द्रके वप्यसे पक्ष कट जानेपर बहुतसे  
 पहाड पुष्पीपर लुडकते चले जा रहे हों ॥२९॥ उस प्रचण्ड ध्वजकी सपेटमे शरकर देवसेनाके  
 रथोके भगगिनद घोडे लड लडाकर गिरते लगे, शरणी भी इधर-उधर फेका गए और उसके रथ  
 भी उस घुड़-भूमिमे इधर-उधर उलट-उलटकर गिर गए ॥३०॥ उसे भयकर ध्वजकी  
 शरोंरें खानर देवसेनाके घुडगवार इतने धबडा उठे कि वे अपने धरम-अस्त्र वहीं देव सेनापर  
 फेंकने लगे और बिना किसी शस्त्रमे चोट खाए ही अपने उन घोडोकी पीठसे गिरने लगे  
 जो ध्वजकी शोकमें लुडकते चले जा रहे थे ॥३१॥ उस वायव्य अस्त्रसे देवसेनाके पैदल सैनिक भी  
 इतने धबडा उठे कि सब अपने-अपने अस्त्र डालकर व्याकुल होकर रोने बिज्जाने लगे और  
 वण्डरकी भांति घुमनी खाते हुए दूरतक आकाशमें उड-उडकर घरतीपर गिरने लगे ॥३२॥  
 देवराज तारकने जो वायव्य अस्त्र चलाया था उससे देवसेनाको इस प्रकार तहा-नहा  
 होते देखकर स्वर्गकी राजसदस्योकी नाव चतुराईसे सेनेवाले ब्राह्मकेनव अपनी अनोखा और  
 बडा भारी बरतव दिखाना प्रारम्भ कर दिया ॥३३॥ उन्होंने कुछ ऐसा जाडू फेरा कि देवसेनापर  
 ध्याया हुआ प्रचण्ड दूर हो गया और वारी सेना हरी-धरी और नई सी होकर फिर लडने लगी ।

वर्षातिकालजलदयुतयो नमोन्ते गाढान्धकारितदिशो घनधूमसंधाः ।  
 सयः प्रसुप्तुरसितोत्पलदामशासो दृग्गोचरत्वमखिलं न हि सन्नयन्तः ॥३५॥  
 दिक्चक्रवालगिलनेर्मलिनैस्तमोभिलिप्तं नभः स्थलमलं घनवृन्दसान्द्रैः ।  
 धूमैर्विलोक्य मुदिताः खलु राजहंसा गन्तुं सरः सपदि मानसमीपुरुच्वैः ॥३६॥  
 जज्वाल घद्विरतुलः सुरसैनिकेषु कल्पान्तकालदहनप्रतिगः समन्तात् ।  
 आशामुखानि विमलान्यसिलानि कीलाजालैरलं कपिलयन्तकलं नभोऽपि ॥३७॥  
 उज्जागरस्य दहनस्य निर्गलस्य ज्वालावलीभिरतुलाभिरनारताभिः ।  
 कीर्णं पयोदनिवहैरिव घमसंधैर्व्योमाभ्यलक्ष्यत कुलैस्त्वडितामिधोऽर्चैः ॥३८॥  
 गाढाद्भयाद्भियति विद्रुतस्त्रेचरेण दीप्तेन तेन दहनेन सुदुःसहेन ।  
 दन्दद्वयमानमखिलं सुरराजसैन्यमत्याकुलं शिवसुतस्य समीपमाप ॥३९॥  
 इत्यग्निना घनतरेण ततोऽभिभूतं तदेवसैन्यमखिलं विकलं विलोक्य ।  
 सस्मेरघप्रक्रमलोऽन्धकशत्रुसुजुर्वासासनेन समध्वं स वारुणास्त्रम् ॥४०॥  
 घोरान्धकारनिकरप्रतिमो युगान्तकालानलप्रबलधूमनिभो नमोन्ते ।  
 गर्जारघैर्विघटयन्नदनीधराणां मृद्गाणि मेषनिवहो घनधुज्जगाम ॥४१॥

यह देवनाकर, तो तारकके शरीरमें भाग सो लग गई और इस बार उसने अपना सपा हुआ भाग बरसानेवाला प्रसन्नवाला बताया ॥३५॥ उसके बताते ही बरसातके काले-काले बादलोंके समान और नीले बमलोकके झुण्डके समान काला काला घना धुआं चारों ओर ऐसा छा गया कि कहीं कुछ सुझाई नहीं पड़ता था ॥३६॥ जब उस घने बादलोंके समान काले-काले धुएँसे चारा प्रकाश भर गया तो राजहंसोंकी यह भ्रम हुआ कि बरसात धा गई और वे प्रसन्न होकर मानसरोवरकी ओर चलनेकी तैयारी करने लगे ॥३६॥ इतनेमें ही देवसेनाके भीतर प्रलय शालयी भागके समान ऐसी भयानक धाग उठी कि उसकी लपटोंसे स्वच्छ प्रकाश और दिशाई भी पीली पड़ गई ॥३७॥ बिना रुके हुए धधक-धधककर जलती हुई भागकी बड़ी-बड़ी लगातार उठती हुई लपटोंसे ऊपर फैले हुए काले-काले धुएँसे धरा हुआ प्रकाश ऐसा दिशाई पड़ता था मानो वह ऊँचे ऊँचे बादलों और जिलदियोंसे भर चुका हो ॥३८॥ सब लोग आकाशमें फैली हुई इस घटकती भागकी मारसे झुलसकर इधर-उधर नागने लगे और बार-बार झुलसी हुई सारी देवसेना बहुत परवाकर फिर कार्तिकेयके पास जा पहुँची ॥३९॥ उस मधकर धागसे झुलसी हुई सारी देवसेनाकी देखकर कार्तिकेयने हँसते हुए अपने धनुषपर वह मारुणास्त्र चढाया जिससे पीली बरभला था ॥४०॥ उसके बताते ही मयबर शंभेरा करती हुई प्रथमकी भागसे उठे हुए धुएँके समान काली काली घटाएँ प्रकाशमें लपक आईं जिनकी मारसे पहाड़ोंकी थोटियों तकमें दरारें पड़ गईं ॥४१॥ इन बादलोंमें से बड़ी भयानक

विद्युल्लता विपति वारिदधुन्दमध्ये गम्भीरमीपखरवैः कपिशीकृताशा ।  
 घोरा युगान्तचलितस्य भयंकराथ कालस्य लोलरसनेव चमच्चकार ॥४२॥  
 कादग्निनी विरुरुचे विवकण्टिकाभिरुचालकालरजनीजलदावलीभिः ।  
 व्योम्न्युच्चकैरचिररूपपरिदीपितांशा दृष्टिच्छदा विपमघोषविभीषणा च ॥४३॥  
 व्योमस्तलं पिदधतां ककुभां मुखानि गर्भारिवैरविरतैस्तुदतां मनांसि ।  
 अभ्रभोभृतामतितरामनशीयसीभिर्घारावलीभिरभितो वयूपे समूहैः ॥४४॥  
 घोरान्धकारपटलैः पिहिताम्बराणां गम्भीरगर्जनरवैर्व्यथितासुराणाम् ।  
 घृष्टया तथा जलमुचां वरुणास्त्रजानां विश्वोदरम्भरिरपि प्रशशाम धृष्टिः ॥४५॥  
 दैत्योऽपि रोपकलुषो निशितैः क्षुरप्रैराकर्णकृष्टधनुरुत्पतितैः स भीमैः ।  
 तद्भीतिविद्रुतसमस्तसुरेन्द्रसैन्यो गाढं जघान मकरध्वजशत्रुघ्नसुम् ॥४६॥  
 दैवोऽपि दैत्यविशिखप्रकरं सचापं वायुंश्चकर्त कणशो रणकेलिकारी ।  
 योगीव योगविधिगुच्छमना यमाद्यैः सांसारिकं विषयसंघममोघवीर्यम् ॥४७॥  
 भ्रूमङ्गभीषणमुखोऽसुरचक्रवर्ती संदीप्तकोपदहनोऽथ रथं विहाय ।  
 क्रीडत्करालकरवालकरोऽसुरेन्द्रस्तं प्रत्यघावदमितस्त्रिपुरारिसुनुम् ॥४८॥

धडपडाहूटके साथ भयकर बिजली तटपी और उसकी चमकसे सब दिसाएँ पीली पड़ गई । उस  
 समय बहूँऐसी लगती थी मानो प्रलय कालमें कालकी लपलपाती हुई भयकर भीम हो ॥४२॥  
 अपनी बिजलीकी चमकसे सब दिसापीने लकाबीच कर देनेवाली और भयकर गर्जनेसे भरी अत्यन्त  
 भयकर प्रलयके बादलके समान अत्यन्त काली और जलते भरी हुई घटाएँ ऊपर आकाशमें इस  
 प्रकार अंधेरा करके छा गई कि आँसोसे कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥४३॥ आकाशमें छाई  
 हुई लगातार गरज-गरजकर लीलाका भी कँपाती हुई वे घटाएँ चारों ओर भूसलाधार पानी बरसाने  
 लगी ॥४४॥ कार्तिकेयके पलाएँ हुए वारुणास्त्रसे अंधेरा गुप्प करके आकाशको छिपा देनेवाले और  
 अपनी दृढकसे दैत्योको कँगा देनेवाले जो बादल छा गए थे उनकी धपसे तमामने फँली हुई  
 सब भाग तत्काल टुक गई ॥४५॥ तब तारकने भी ओषधे साथ होकर कान्तम खीच खीचकर  
 पने और चमचमाते हुए सुरोवाले भयकर बाण बरसाकर देवदेवाको डराकर तितर-बितर  
 कर दिया और कार्तिकेयपर भी बड़ा बहुरा प्रहार किया ॥४६॥ कार्तिकेयजीने भी तारकके  
 धनुष और बाण एक एक करके खेल खेलने लगे इस प्रकार वाट कर गिरा दिए जैसे योगी  
 लोग मम, नियम आदि साधकर अपने मनकी सब सांसारिक इच्छाएँ मिटा डालते हैं ॥४७॥  
 यह देखकर दैत्यराज ताकना कोप और भी बढ़क उठा । अपनी सनी हुई भोहोके बारण  
 और भी भयकर दिखाई देनेवाला वह दैत्य रथ छोडकर हाथमें लपलपाती हुई भयकर तलवार  
 लेकर कार्तिकेयपर दूट पड़ा ॥४८॥ जब कार्तिकेयने देखा कि ऐसे भयकर रूपवाला तारक

अग्न्यापतन्तमसुराधिपमीशपुत्रो दुर्वारबाहुविभवं सुरसैतिकैस्तम् ।  
 दृष्ट्वा युगान्तदहनप्रतिमां मुमोच शक्तिं प्रमोदविकसद्दहनारविन्दः ॥४६॥  
 उद्घोतिताम्बरदिगन्तरमंशुजालैः शक्तिः पपात हृदि तस्य महासुरस्य ।  
 हर्षाश्रुभिः सह तमस्तदिशोधराखां शोकोप्यवाष्पसलिलैः सह दानवानाम् ॥५०॥  
 शक्त्या हृतासुमसुरेश्वरमापतन्तं कल्यान्तवाक्कहतभिन्निमिवाद्रिगृहम् ।  
 दृष्ट्वा प्ररूढपुलकाञ्चित्चारुदेहा देवाः प्रमोदमगमँस्त्रिदशेन्द्रमुखाः ॥५१॥  
 यत्रापतत्स दनुजाधियतिः परासुः संवर्तकालनिपतन्त्रिखरोन्द्रतुल्यः ।  
 तत्रादधात्कण्ठिपतिर्धरणीं कथाभिस्तद्भूरिमारविधुराभिरधो ब्रह्मन्तीम् ॥५२॥  
 स्वर्गापगासलिलसीकरिणी समन्तात्सौरभ्यलुब्धमधुपात्रलिसेव्यमाना ।  
 कल्पद्रुमप्रसववृष्टिर्भूभस्तः शमोः सुतस्य शिरसि त्रिदशारिशत्रोः ॥५३॥  
 पुलकभरविभिन्नवारमाणा भुजविभवं बहु तारकस्य शत्रोः ।  
 सकलसुरगणा महेन्द्रमुख्याः प्रमदमुखच्छविसंपदोऽभ्यनन्दन् ॥५४॥

भूभन्तर भरत रहा है और देवताओंके सेनिकोंके द्वारा तही हार रहा है तब उन्होंने हूँतकर  
 अपना प्रसवकी अग्निके समान भयकर आला लक्ष्यपर केंद्र कर मारा ॥४६॥ अगनी बनकसे  
 सब विद्याओंको पमनाती हुई वह शक्ति ठीक तारकके हृदयमें नाकर लगी और उसके लगते  
 ही देवताओंकी आँसुओंके रूपके आँसु और रंजनोंकी आँसुओंके छोकके आँसु साय-साय वह चले  
 ॥५०॥ उस आँसुकी शोभते भरकर गिरा हुआ तारक ऐसा जान पड़ता था यानों प्रसवकी आँसुओंके  
 हूँतकर गिरी हुई पहलकी चोटी हो । ज्यों ही इन्द्र आदि देवताओंने उस तारकके रूपको गिरा  
 हुआ देखा कि वे सब हृदयमें उखल पड़े और उनके रोम-रोम करकरा उठे ॥५१॥ जब वह दैत्यराज  
 तारक प्रलय आसको आँसुओंके हूँतकर गिरे हुए पहलके समान भरकर गिरा तो उसके भारी  
 योभने धँसकर जो पृथ्वी नीचेकी पँती तो जागराव वासुकीने उसे अपने परखेपर किसी किसी  
 प्रकार बँभासा ॥५२॥ उस समय कार्तिकेयके तिर पर आकाश यामके जनको पुहारोसे भरे हुए  
 और गन्तके मोभी भँरीये गिरे हुए कल्पतकके फूल आकाशसे बरखने लगे ॥५३॥ भानन्दने मारे  
 देवताओंके मुँह लिल उठे और वे मुक्तसे दूतने फूल उठे कि उनकी छावियोंपर बसे हुए कवच भी  
 तडाकत दूतने लगे । इस प्रकार भानन्दने भूभते हुए इन्द्र आदि सब देवता यह पाकर  
 तारकको मारनेवाले कुमारजी मुनाओंके बलकी बढ़ाई करते लगे ॥५४॥ इस प्रकार विजयी



इति विपमशरारेः सलुना जिष्णुनाजौ  
 त्रिभुवनवरशल्ये श्रोद्धृते दानवेन्द्रे ।  
 बलरिपुरथ नाकस्याधिपत्यं प्रपद्य  
 व्यजयत सुरचूडारत्नघृष्टाग्रपादः ॥५५॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये  
 तारकासुरवधो नाम सप्तदशः सर्गः ॥

॥ इति कुमारसंभवम् ॥

कार्तिकेयने जब तीनों लोकोंके हृदयमें कटिके समान खटकनेवाले उस तारक राक्षसको मार डाला  
 सब इंद्र फिर स्वर्गके स्वामी बन गए और उन्हें अपनेमें सबसे श्रेष्ठ समझकर सब देवता भोग  
 अपने-अपने मुकुटके मणियों सहित अपने-अपने चरणोंमें रखकर प्रणाम करने लगे ॥५५॥

महाकवि श्रीकालिदासके रचे हुए कुमारसंभव महाकाव्यमें तारक राक्षसका  
 वध नामका सप्तहवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

कुमारसंभव समाप्त हुआ ।

॥ श्री ॥

## ❀ मेघदूतम् ❀

॥ पूर्वमेघः ॥

कथितकान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकाररत्नप्रसक्तः  
शापेनास्त्वंगमितमहिमा वर्षमोग्येषु भर्तुः ।  
यत्तश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु  
स्मिन्धच्छायातरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥  
तस्मिन्भद्रौ कतिचिद्वलाधिप्रयुक्तः स कर्मा  
नीत्या मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।  
आपादस्य प्रथमदिपसे मेघमारिल्लसन्तु  
घप्रक्रीडापरिहातगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥२॥  
तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो  
रन्तर्वाप्यश्विरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ ।  
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः  
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसस्थे ॥३॥

पूर्वमेघ

[ प्रसक्तगुरीमे कुवेरके वहाँ एक मक्ष प्रतिदिन मानधरोवर से स्वर्णकमल लानेके कामपर लगामा गया था, पर वह दिन-रात अपनी स्त्रीके पीछे ही पाताल रहता था। इसी हेतुभीमें एक बार उसका अपने काममें कुछ दिनाई कर दी। वस कुवेरने भ्रूत्वाकर उसे यह पत्रकर देना निकाला दे दिया कि अब एक वर्षतक तू अपनी पत्नीसे नहीं मिलने पावगा। ] इस शापसे उसका सारा राग-रग जाता रहा और आधके दिन काटनेके लिये उसने रामगिरिसे उन आश्रममें जाकर देखा दासा जहाँके बँडो तालाबों और नावडिबोना जल थीजानकीभीने स्नानसे पवित्र हो गया था और जहाँ अपनी छायावाले बहुतसे वृक्ष वहाँ-वहाँ सहलहा रहे थे ॥१॥ अपनी पत्नीके बिना जो एक बाण नहीं रह पाता था, वह मक्ष अपनी पत्नीसे बिजुदनेपर सूक्ष्मर काँटा हो गया। उसके हाँके सोनेके मगन भी डीले होकर निकल गए और जो ही रीने कलपते उसने कुछ महीने तो उस पहाड़ीपर जाँते तँगे काट दिए। पर अताइके पहल ही दिन वह देखता गया है कि सामने बादलोंसे निपटी हुई पहाड़ीकी चोटी ऐसी चम रही है मानो कोई हाथी अपने माथेकी टङ्करस मिट्टीके टोलेको दहानेका खेल कर रहा हो ॥२॥ मगधे प्रेम उनसामनेवाले उन बादलोंकी देखकर महाराज

॥ श्री. ॥

## ❀ मेघदूतम् ❀

॥ पूर्वमेघः ॥

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः  
शापेनास्त्रंगमितमहिमा वर्षभोग्येषु भर्तुः ।  
यच्चक्षत्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु  
स्निग्धच्छायातारुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥  
तस्मिन्नश्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी  
नीत्या मासान्कनकवलयत्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।  
श्रापाढस्य प्रथमदिवसे मेघमारिल्लसानुं  
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥२॥  
तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो  
रन्तर्वाष्पथिरमनुचरो राजराजस्य दृष्यौ ।  
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः  
कृष्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसस्थे ॥३॥

पूर्वमेघ

[ मलकपुरीमें कुबेरके यहाँ एक बस प्रतिदिन मानसरोवर से स्वर्णकवच लानेके कामपर लगाया गया था, पर वह दिन-रात अपनी स्त्रीके पीछे ही पावल रहता था। इसी बेचुपीमें एक बार उसने अपने काममें कुछ दिनाई कर दी। बस कुबेरने भ्रुत्ताकर उसे यह कहकर देश-निकासी दे दिया कि मय एक वर्षतक तू अपनी पत्नीसे नहीं मिलने पावगा। ] इस शापसे उसका धारा राम-रंग जाता रहा और उसके दिन काटनेके लिये उसने रामगिरिके उस प्राथम्यमें जाकर देरा डाला जहाँके कुंडो, तालानो और बाणदियोना जल श्रीजानकीजीके स्नानसे पवित्र हो गया था और जहाँ अपनी श्राधायासे बहुतसे वृक्ष बहाँ-तहाँ लहनहा रहे थे ॥१॥ अपनी पत्नीके बिना जो एक क्षण नहीं रह पाता था, वह बस अपनी पत्नीसे बिबुधनेपर मूखकर काँट हो गया। उसके हापके सोनेके कगन भी ढीने होकर निकल गए और जो ही रोने-कलपते उसने कुछ महीमें तो उस पहाड़ीपर जैसे तैसे काट दिए। पर भसावके पहले ही दिन वह देपता था है कि सामने बादलोंसे लिपटी हुई पहाड़ीकी चोटी ऐसी लग रही है मानो कोई हाथों अपने माथेकी टङ्करते मिट्टीके टीलेको व्हानेका रेत भर रहा हो ॥२॥ पहले प्रेम उकसानेवाले जन बादलोंको देखकर महाराज

प्रत्यासन्ने नमसि दयिताजीवितालम्बनार्थी  
 जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारपिप्यन्प्रवृत्तिम् ।  
 स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घ्याय तस्मै  
 प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥४॥

धूमज्ज्योतिःमलिलमरुतां संनिपातः क्व मेघः  
 सन्दंशार्थाः क्व पटुकरखैः प्रखिभिः प्रापणीयाः ।  
 इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्पुष्पकस्तं ययाचे  
 कामार्चा हि प्रकृतिकृपखारचेतनाचेतनेषु ॥५॥

जातं वंशं भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां  
 जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।  
 तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दृक्चुर्गतोऽहं  
 याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाघमे लब्धकामा ॥६॥

दुबेरवा यह मेघन मांगू रोके ज्यो-रयो लडा हया बहुत देरतक सोचता ही रह गया, क्योंकि  
 यादलोंको देतकर जब सुखी लोनोंवा मन भी डोल जाता है तब उस रिश्रोहीका तो कहना ही  
 क्या, जो दूर देतमे गया हुआ अपनी प्यारीके गले सयनेके लिये दिन-रात तबव रहा हो ॥३॥  
 यादलकी देसते ही उठे ध्यान धाय कि अज्ञाद बोतले ही धावन भी मा जायगा और उस समय  
 मेरी कोमल त्रिपा सयनेको संभाल न पावेगी । इसलिये अपने सोचा कि अपनी प्यारीको डाडल  
 बँदानके लिये और उसके प्राण बचावेके लिये क्यों न इन यादलोंके हाथ ही अपना कुशल-  
 समाचार भेज दूँ ! यह ध्यान प्राते ही बह मयन हो उठा । अपने भट कुटजके छिले हुए पून  
 उतारकर पहने तो मेनकी पूरा भी और फिर कुशल-मयल पुष्पार उभवा स्वापन किया ॥४॥  
 भला बनाइए, कहाँ तो धुँ, धनि, जल और मागुके मेसमे बना हुआ यादल और कहाँ  
 सदेनेकी वे यार्त, जिह्मे बडे कपु लोण हो नाया पहुँचा सजने है । पर यलकी अपने उन-जनकी  
 तो मुप भी तो नही, फिर भया उरवा ध्यान यहाँउर पहुँच बँधे पाउ । इमीलिये यह दया  
 भया बँदेना भेजनेके लिये यादलके प्राये विरगिडाने लगा । सब है, प्रेमियोंको मट जाकनेकी  
 मुप ही कहाँ रूनी है कि कोन जड है और कोन चेटा ॥५॥ यादलकी बडाई करते हुए मध  
 कहने लगा—'ह मेघ ! मारमे पुष्पर और आयर्तन नामके जो यादलोंके दो प्रगिट और उँके  
 कुन है, उहीम तुमने जन्म निरा है । मैं यह भी जानता हूँ कि तुम दन्दके दूत हो और जंग  
 चाहो मंगा भया मग भी बना गवते हो, इमीलिये अपनी प्यारीके इतनी दूर साकर परवा हया  
 मैं धयाया तुम्हारे ही प्राते हाथ मगर रहा है, क्यों कि तुम्हारे प्राये हाथ पँना-नर रीते  
 हाथों सोड धारा मज्ज है, पर नीपमे मयनेबदा हो जाना भी कन्हा नही ॥६॥ अपने मुग्गी तो

संतप्तानां त्वमसि शरथं तत्पयोद प्रियायाः  
 सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधपिश्लेपितस्य ।  
 गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां  
 वाधोधानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥७॥

त्वामारूढ यवनपदवीमुद्गृहीतालङ्गान्ताः  
 प्रेक्षिष्यन्ते पथिकानिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः ।  
 कः संनद्धे विरहशिघुरां त्र्यशुषेक्षेत् जायां  
 न स्यादन्योऽप्यहमिष जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥८॥

तां चाधर्यं दिवसमखनात्त्परामेरुपरनी  
 मव्यापत्रामविहतगतिर्द्रव्यसि भावजायाम् ।  
 आशान्धः कुसुमसदृशं प्रापशो ह्यङ्गनाना  
 सद्यःपाति प्रणपि हृदयं विप्रयोगे रुखादि ॥९॥

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्वानुकूलो यथा त्वा  
 वामशायं नदति मधुरं चातरुस्ते समन्धः ।  
 गर्भाधानचक्षपरिपयान्नुनमाषद्वमालाः  
 सेषिष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलारूढः ॥१०॥

सत्पत्नये तपे हृष्ट प्राणियोको ठडक देनेवाले हो, इसलिये हे मेव । कुन्हेके कोपले मिलले हृष्ट और अपनी ध्यायेते हुए पठके हृष्ट मुक्त विद्योहीका सदेता भी तुम्ही मेरी ध्यायेके पाल पहुँचा मामो । देखो ! यह तपेसा लेपर तुम्हे नभे ठाठ याटये रहनेवाले यदोकी बलका नामकी उस बस्तीको जाया होगी, जहाँने भवनोमे, बस्तीके बाहरवाले उद्यानमे बनी हुई शिबजीकी मूर्तिके तिरपर लडी हुई चन्द्रिकाके सदा उजाला रहा करता है ॥७॥ जब तुम वासुपर पैर रखकर ऊपर चढ़ोगे तब परदेतियोकी छियाँ धपती बलक ऊपर उठा-उठाकर पडे धरोसेवे डाबस पाकर तुम्हारी घोर एकटक देखती, नभोकि मुझ-जैसे वराधीनको छोडकर धीर धीन ऐसा निर्दयी होगा जो तुम्हे उमडा हुमा देलपर भी विद्योहमे तडपनेवालो अपनी पत्नीसे मिलनेको उतापता न हो उठे ॥८॥ हे मेव ! ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ तुम्हारी पहुँच न हो, इसलिये तुम अपनी उस पतिव्रता आमीको मनस्य ही वा आधोमे जो बँटी मेरे लोटने के दिन गिन रही होगी । नभोकि देखो, प्रेमियोका फूल जैसा कोमल हृदय, उस मिलनेकी आशा पर ही घटबा रहता है । इसलिये छियोने जो हृदय अपने प्रेमियोके विदुडनेपर एक क्षण नहीं टिने रह सक्ते, वे इसी आशाने सहारे उन स्थियोको जिसाए रखते हैं ॥९॥ देखो ! मग्न भी सब प्रच्छे ही रहे हैं तुम्हारा साथी यायु कीरे धीरे तुम्हे भावे कहा रहा है । इपर अपनी मानना पयवा यह चाना भी याई और अपनी मोठी बोली बोल रहा है । अभी थोड़ी ही देरम तुम्हारा यह पालोकी

प्रत्यासन्ने नमसि दयिताञ्जीवितालम्बनार्थी  
जीमूतेन स्वकुशलमयी हारयिष्यन्प्रवृत्तिम् ।  
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घ्याय तस्मै  
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥४॥

धूमज्ज्योतिःसलिलमरुतां संनिपातः क्व मेघः  
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राखिभिः प्रापञ्चीयाः ।  
इत्यौत्सुन्यादपरिगणयन्मुलकस्तं ययाचे  
कामार्चा हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥५॥

जातं वंशं भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां  
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मयोः ।  
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्हरबन्धुर्गतोऽहं  
याश्चा मोघा ष्वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥६॥

दुबेरना वह सेवक प्राप्ति रोके ज्योत्सो लया हुआ बहुत देरतक सोषता ही रह गया, क्योंकि बादलोको देखकर जब सुखी लोभोका मन भी झेल जाता है तब उस विझोहीका तो कबूता ही क्या, जो दूर वेधमे पत्र हुआ अपनी प्यारीके गले सपनेके लिये दिन-रात तड़प रहा हो ॥५॥ बादलको देखते ही उठी ध्यान आया कि असाह्य घेतते ही सावन भी या जायगा और उस समय मेरी बीमल प्रिया अपनेकी छँचाल क पावेगी । इसलिये उठने सोचा कि अपनी प्यारीको हावस सँधानेके लिये और उठावे प्राण बचानेके लिये मयी न इन बादलोके हाथ ही अपना कुशल-समाचार भेज दूँ । यह ध्यान प्राते ही वह गगन ही उठा । उसने मू कुटजके सिले हुए फूल उतारकर पहले तो मेवकी पूजा की और फिर कुटज मयल पुष्कर उतारा स्वागत किया ॥४॥ भला वताइए, वहाँ तो पुएँ, अग्नि, जल और धामुके मेलसे बना हुआ बादल और कहाँ सदेवेकी वे बावें, जिन्हें बने अतुर लोग ही लाया पहुँचा सकते हैं । पर यथावते अपने उन मदनी को मुझ को ही नहीं, फिर भला उतार ध्यान यहाँतक पहुँच कैसे पाता । इसीलिये वह यह अपना सँदेना भेजनेके लिये बादलके प्रागे विदगिदाने लगा । सच है, प्रेमियोको यह जाननेकी मुझ ही वहाँ रहती है कि कौन जब है और कौन चेतन ॥५॥ बादलको बहाई करते हुए यह कहने लगा—हे मेघ ! नकारके पुष्कर और भावतक नागवे जो बादलोके दो प्रसिद्ध और ऊँचे पुत्र हैं, जहाँमें तुमने जन्म लिया है । मैं यह भी जानता हूँ कि तुम इन्द्रके दूत हो और जैसा चाहो वैसा अपना रूप भी बना सकते हो, इसीलिये अपनी प्यारीसे इतनी दूर लाकर पटना हुआ मैं धमका तुम्हारे ही प्रागे हाथ पसार रहा हूँ, क्यों कि सुखीके प्रागे हाथ फैलाकर रीते हाथो लोट भाना अच्छा है, पर नीचसे सपनेच्छा हो जाना भी अच्छा नहीं ॥६॥ भवेते तुम्हें तो

संतप्तानां त्वममि शरशं तत्पयोद प्रियायाः  
सन्देशं मे हर घनपतिक्रोधविरलेपितस्य ।  
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वरणां  
याद्वोद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥७॥  
त्वामारूढ पवनपदवीमृदुगृहीतालकान्ताः  
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्रयसन्त्यः ।  
क्रः संनद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां  
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥८॥  
तां चाक्षयं दिवसगणनातत्परामेकपत्नीं  
मज्ज्यापन्नमविहतगतिर्द्रक्ष्यसि आतृज्जायाम् ।  
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ब्रह्मनानां  
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रूषद्वि ॥९॥  
मन्दं मन्दं नुदति पवनश्वानुकूलो यथा त्वां  
यामधायं नदति मयुरं चातकस्ते समन्धः ।  
गर्भाधानचक्षुपरिचयान्मनमानन्दमालाः  
सेविष्यन्ते नयनसुमगं स्ते भवन्तं बलाकाः ॥१०॥

सहारेके तपे हुए प्राणियोंकी ठडक देनेवाले हो, इसलिये हे मेघ ! कुबेरके कोपसे निकले हुए क्षीर  
धपनी प्यारीके दूर पडने हुए मुझ विछोहीका सदेसा भी तुम्ही मेरी प्यारीके पास पहुँचा भ्रामो ।  
बेबी ! यह सदेसा लेकर तुम्हें बड़े ठाठ-वाटसे रहनेवाले यक्षोंकी बलका नामकी उस बस्तीकी  
जाना होगा, जहाँके भवनीगि, यस्तीके बाहरवाले उद्यानमे बनी हुई शिवनीकी मूर्तिके  
धिरपर जमी हुई चन्द्रिकासे सदा उजाला रहा करता है ॥७॥ जब तुम वायुवर  
दूर रखकर ऊपर चढोगे तब परदेसियोंकी छिपी भपगी बलकें ऊपर उठा-उठापर धरे  
धरोसेरो डाइस पावर तुम्हारी क्षीर एकटक देखेंगी, क्योंकि मुझ-जैसे परापीनको छोडकर क्षीर  
नौन ऐसा निर्दयी होमा जो तुम्हें समझा हुआ देखकर भी विछोहगे तटपनेवाली धपनी पत्नीसे  
मिलनेको उवावला न हो उठे ॥८॥ हे मेघ ! ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ तुम्हारी पहुँच  
न हो, इसलिये तुम धपनी उस पतिव्रता भानीको प्रवश्य ही पा जाओगे जो बँठी मेरे कौटने के दिन  
गिन रही होगी । क्योंकि देखो, प्रेमियोंका फूल बँसा कोमल हृदय, वस मिलनेकी धाधा  
पर ही मटका रहता है । इसलिये छिगोवे जो हृदय धपने प्रेमियोंसे बिद्युतनेपर एक क्षण नहीं  
टिके रह सकते, ये इसी प्राणाके सहारे उन विप्रयोंको जिलाए रखते हैं ॥९॥ देखो ! सगुन भी सब  
अच्छे ही रहे हे तुम्हारा साथी वायु धीरे-धीरे तुम्हें आगे बढा रहा है । इधर धपनी धानका पक्का  
, यह चानच भी चाई क्षीर धपनी पीठी बोली बोस रहा है । अभी थोथे ही देखो तुम्हारा यह प्राणिको

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां ।  
 तच्छ्रुत्वा ते धवणसुमेगं गर्जितं मानसोत्काः ।  
 आर्कलासाद्रिसकिसलपच्छेदपाथेयवन्तः ।  
 सपत्स्यन्ते नमसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥११॥  
 आपृच्छस्व प्रियसखमसुं तुङ्गमालिङ्गय शैलं ।  
 वन्यैः पुसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु ।  
 काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य ।  
 स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मृश्वतो वाप्यगृष्णम् ॥१२॥  
 मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयागानुरूपं ।  
 संदेशं मे तदनु जलद श्रोप्यसि श्रोत्रपेयम् ।  
 खिन्नः खिन्नः शिखरिपु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र ।  
 क्षीणः क्षीणः परिलघुपयः स्रोतसां चोपभृज्य ॥१३॥  
 अत्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभिः ।  
 ईष्योत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः ।  
 स्थानादस्मात्सरतनितुलादुत्पतोदङ्मुखः खं ।  
 दिङ्नागानां पथि परिहरन्स्थूलहस्तावलेपान् ॥१४॥

सुहृन्नेवासा रूप देखकर अगुतिर्था भी समझ लेंगी कि हमारे गर्भ धारण करनेका समय आ गया है और वे पाँत बाँध-बाँधकर अपने पक्षीतु मुझे पसा भ्रमनेके लिये शबस्म ही भाकावमे उड़-उड़कर पानी मा रही होगी ॥१०॥ तुम्हारे जिस गर्भनेसे कुकुरमुते निकल आते हैं और परती उबजाऊ हो जाती है, वही पानीकी भला लगनेवाला तुम्हारा गरजना गून्कर, मानसरीवर जानेकी उतावली राजहंस अपनी कोचोमे कमलकी शगली उठस लिए कंठाय पर्वततक तुम्हारे साथ-साथ भाकावमे उड़ते हुए आयेगे ॥११॥ हे मेघ ! जिस पहाडपर तुम लिपटे हुए हो, इसकी डालो-पर भगवान् रामचन्द्रजीके सन परोकी छाग जहाँ-जहाँ पडो है, जिन्हे सारा लताएर पूजता है, और जय-जय तुम इससे मिलते आते हो, तब-तब यह भी बहुत दिनोंपर मिलनेके कारण तुम्हारे साथ अपने चरम-गरम धाँसु बहाकर अपना प्रेम प्रकट करता है । इसलिये अपने इस प्यारे मित्र पहाडको चोटोसे जो-भर गले मिलकर इससे विदा ले लो ॥१२॥ अच्छा, पहले मैं तुम्हें वह मार्ग समझ दूँ जिसको जानेमे तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा । मार्ग समझा देनेपर मैं अपना प्यारा संदेश भी बता दूँगा । देखो ! मार्गमे चलते हुए जब कभी अपने लगे, तो मार्गमे पडती हुई पर्वतकी चोटियोपर ठहरते जाना, और जय-जय तुम पानीकी पानीसे दुबले पडने लगे तब-तब भरनोका हल्क-हल्का जल पीते हुए जाना ॥१३॥ महलही बँतोसे लदी हुई इस पहाडोसे जब तुम ऊपर उड़ते तब तुम्हारा उड़ना देखकर सिद्धोकी भोली-



रत्नच्छायाच्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता  
 डल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःसण्डमापण्डलस्य ।  
 येन श्यामं चपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते  
 शर्तेशेव स्फुरितरुचिना गोपवेपस्य विष्णोः ॥१५॥  
 त्वय्यायत्वं कृषिफलमिति श्रु विलासानमिज्ञैः  
 प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवपुलोचनैः पीयमानः ।  
 सद्यः सीरोत्कण्ठसुरभि क्षेत्रमारुह्य मार्गं  
 किञ्चित्पथाद्द्रजलधुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥१६॥  
 स्वामासात्प्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना  
 वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाप्रकूटः ।  
 न चुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संभयाप  
 प्राप्ते मित्रे भवति विमुक्तः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥१७॥  
 छन्नोपान्तः परिशुतफलद्योतिभिः काननाम्नै  
 स्त्वय्यारूढे शिरसरमचलः स्निग्धवेषीसवर्णैः ।  
 नूनं यास्यत्यमरमिधुनप्रेक्षणीयामवस्थाम्  
 मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥१८॥

भाली किराई झालें पाठ काठकर तुम्हारी शोण देलती हुई सोचेंगी कि कहीं पहाडकी चोटीको ही सो पदम मही उडाए लिए चला जा रहा है ? इस प्रकार ठट्ठे उठते हुए तुम दिग्गजोकी मोटी सूंडोकी फटकारोको धकेलते हुए उत्तरकी ओर घूम जाना ॥१५॥ देखो ! वहाँ सामने बाँदीके ऊपर उडा हुआ इन्द्रगनुपका एक टुकड़ा ऐसा सुन्दर बिसाई पद रहा है मानो महुतसे रत्नोकी खमर, एक साथ वहाँ सानर इनट्टी कर ली गई हो । इस इन्द्र भनुपको राजा हुआ तुम्हारा सौवला शरीर ऐसा सुन्दर लयने लगा है जैसे मोरमुकुट पहने हुए खालेका पैदा बनाए हुए श्रीकृष्णजी ही पाकर खडे ही गए हो ॥१६॥ वेणो ! खेतीका झोला न होना भी सब तुम्हारे ही शरीरसे है, इनलिये किसानोकी वे खोली माली रिश्या भी तुम्हे बडे प्रेय ओर धावरसे देखेंगी, जिन्हे भी खलावर रिश्यामा नहीं जाता है । वहाँ तुम मान देखके उन खेतोपर बरत जाना जहाँ अभी खेतो जानेके कारण सोबी-सोबी सुगन्ध निबन्न रही हो ; बहति घोडा पच्छिमकी ओर धूमकर फिर अटपट उत्तरकी ओर बढ जाना ॥१६॥ जब तुम भूसलाधार पानी बरसाकर धावकूट पहाडके जगलोकी माग बुझाओगे तो वह तुम्हारा उपकार मानकर ओर तुम्हे धरा हुआ समझकर, बडे प्रेमसे तुम्हे मित्र बनाकर अपनी मोटीपर धावरके साथ ठहरायेगा, क्योंकि जब दरिद्र लोग भी आए हुए मित्रके उपकारका ध्यान करने उठना सत्कार बख्तेमे नहीं चूकते तब साम्रकूट जैसे ऊँचोना तो बहना ही क्या ॥१७॥ देखो ! पके हुए फलोंके लडे धामके वृक्षोंके धिरा हुआ साम्रकूट पर्वत पीसा सा हो गया होगा । उसकी चोटीपर जब तुम कोमल

अध्वयलान्तं प्रतिमुसगतं सानुमानाम्रकूट  
 स्तुङ्गेन त्वां जलद शिरसा वच्यति श्लाघ्यगानः ।  
 आसारेण त्वमपि शमयेस्नस्य नैदाघमग्नि  
 सद्भावाद्द्रः फलति न चिरेषोपकारो महत्सु ॥१६॥  
 स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूसुक्तकुञ्जे मुहूर्त  
 तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः ।  
 रेवां द्रच्यस्युपलविपमे विन्ध्यपादे विशीर्णा  
 मक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गत्रस्य ॥२०॥  
 तस्यास्तिक्तैर्षनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टिं  
 जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ।  
 अन्तःसारं धन तुलायितुं नानिलः शच्यति त्वां  
 रिक्तः सर्वा भवति हि लघुः पूर्यता गौरवाय ॥२१॥  
 नीपं दृष्ट्या हरितकपिशं केगर्गैर्धरुटै  
 राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीशानुकच्छम् ।  
 जग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमात्राय चोर्व्याः  
 सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥२२॥

वालोंके जूबेके समान साँबला रंग लेकर पढोगे, तब वह पर्वत, देखायाँके दम्पतिभोको पूरसे  
 ऐसा दिलाई देगा मानो यह पृथ्वीका उठा हुआ ऐसा स्तन हो, जिसके धीचमे काला हो और  
 चारो ओर पीला हो ॥१६॥ हे भेष ! जब तुम बरकर घात्रकूट पर्वतपर पहुँचोगे, तब वह  
 प्रससनीय भ्रात्रकूट पर्वत तुम्हे अपनी ऊँची थोटीपर भली भाँति ठहरावेगा । उस समय तुम भी जल  
 बरसाकर उसके जगलोंमे लगी हुई गर्मा की घाग मुझ देना क्योंकि यदि सच्चे मनसे बढोपर उप-  
 कार किया जाय तो ये अपने ऊपर भलाई करनेवालेका सादर करनेमे देर नहीं लगाते ॥१६॥  
 उस भ्रात्रकूटके जिन मुञ्जोमे जगली रिगयाँ धूमा करती हैं, वहाँ थोड़ी ही देर ठहरना और फिर  
 ङग बढाकर चल देना, क्योंकि जस बरसा देनेसे तुम्हारी देहका भारीपन भी दूर हो जायगा  
 और तुम्हारी चाल भी बढ जायगी । वहाँ से आगे चलनेपर तुम्हे विन्ध्यचलके ऊबढ-लाबढ पठारपर  
 बहुत सी पाराभो मे फँती हुई रेवा मदी मिलेगी, जो तुम्हे ऊपरसे ऐसी दिलाई देगी मानो  
 किमीने बडेसे हाथीका शरीर भ्रमृतसे चीत दिया हो ॥२०॥ देखो ! वहाँ जल बरका चुको, तो  
 जगली हाथियोंके सुगन्धित मयमे बसा हुआ और जामुनकी मुञ्जोमे बहता हुआ रेवाका जल पीकर  
 तब प्राये बढना । जल पीकर जब तुम भारी हो जाओगे तो वासु तुम्हे इधर-उधर भ्रुता नहीं  
 सनेगा । देखो ! जिसके हाथ पीते होते हैं उधोने सब दुरदुराते हैं, और जो भरा-पूरा होता  
 है, उसका सभी सादर करते हैं ॥२१॥ देखो ! जिस समय तुम जल बरसाते चले जा रहे होगे

अम्भोविन्दुग्रहयत्तुराँश्वातफान्वीचमाशाः  
 श्रेष्ठीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाक्राः ।  
 त्वाभासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः  
 सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि ॥२३॥  
 उत्पश्यामि द्रुवमपि सखे मत्प्रियार्थं यियाभोः  
 कालक्षेपं ककुभसुरमौ पर्वते पर्वते ते ।  
 शुक्लापाङ्गैः सज्जलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः  
 प्रत्युघातः कथमपि मवान्गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥२४॥  
 प्राण्डुच्छायोपवनशृङ्गयः कैतकैः सूचिमिश्रै  
 र्नीहाग्भैर्गृहवलिभुजामाकुलप्रामचैरपाः ।  
 त्यय्यासन्ने परिखतफलरयामजम्पूवनान्ताः  
 संपत्स्वन्ते फतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्थाः ॥२५॥  
 तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालवृक्षां राजधानीं  
 गत्वा सद्यः फलमभिकलं काष्ठुकत्वस्य लब्धा ।  
 तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वाद्दु यस्मात्  
 मद्भ्रूमङ्गं मुखमिव पयो वेद्यत्पाशलोमिं ॥२६॥

सब समय घघपके हरे-पीले कदम्बके फूलोपर भंडराते हुए भीरे, दलदलोमें गईं फूली हुई मन्दलीकी पतिबोबो बरते हुए हरिण मौर जयली बरतीका तीखा गन्ध सूंघते हुए हाथी, तुम्हे मार्ग बताते चलेंगे ॥२५॥ ऊपर ही ऊपर बूंदें बूटते हुए पातकी जो देखनेवाले, मौर पात बाँधकर चबती हुई बगुलियोंको एक-एक करके गिननेवाले सिद्धीकी धारी किर्षा जब तुम्हारा गर्जन सुनकर भटके घबराकर उनके गले लग जायेंगी, तब ये सिद्ध लोग तुम्हारा बड़ा भसा मनायेगे ॥२६॥ मित्र यह तो मैं जानता हूँ कि तुम भरे कागजे लिये बिना छके ऋषट जावा चाहोगे फिर भी मैं रामभता हूँ कि कुटलने फूलोंसे लदे हुए उन सुगन्धित पहाड़ोपर तुम्हे उहरेते ही जाना होगा, जहाँके मौर, नेत्रोंमें आनन्दके भाँसू भरकर अपनी बूँसे तुम्हारा स्वागत कर रहे होंगे । पर मुझे आशा है कि तुम वहाँसे जैसे भी होगे ऋषट बन दोगे ॥२४॥ हे मेघ ! जब तुम दशाएँ देहाके पाठ पढ़ेंगे तब फूले हुए नेत्रोंके कारण वहाँके फूले हुए जयनों की धाट उजली दिखाई देगी, गवियों मन्दिर, पीयो आदि पक्षियोंके घोंसलोंसे भरे मिलेंगे, वहाँके जगल, पकी हुई काली जामुनोंसे सदे मिलेंगे मौर हथ भी वहाँ पर कुछ दिनोंके लिये धा चसे होंगे ॥२५॥ दशाएँ देहाकी विदिशा नामकी प्रसिद्ध राजधानीमें पहुँचते ही तुम्हे विलासकी सब सामग्री मिल जायगी क्योंकि जब तुम वहाँकी मुहावनी, मनभावनी घोर माचती हुई सहरोवाली वेप्रवती नदीके तीरपर गर्जन करने उतपा गोटा जस पीमोंगे तब तुम्हे ऐसा लगेगा मानो तुम किसी पटोनी

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो  
 स्वत्संपर्कात्पुलकितमिव-प्रौढपुष्पैः कदम्बैः ।  
 यः पण्यस्वीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणां  
 मुद्गामानि प्रथयति शिलावेशमभिर्यौवनानि ॥२७॥  
 विश्रान्तः सन्त्रज वननदीतीरजातानि मिश्र  
 न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यथिकाबालश्रानि ।  
 गण्डस्वेदापनपनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां  
 छायादानात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥२८॥  
 वक्रःपन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योचराशां  
 मौघोत्सङ्गप्रणपविमुखो मा स्म भूरुजपिन्याः ।  
 विद्युद्दामस्फुरितचक्रिणैस्तत्र पौराङ्गनानां  
 लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥२९॥  
 वीचिद्वोभस्तनितविहगश्रेणिकाश्चीगुणायाः  
 संसर्पन्त्याः स्थलितसुभगं दर्शितावर्तनामेः ।  
 निर्विन्ध्यायाः पथि भवरसाभ्यन्तरःसन्निपत्य  
 स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभमो हि प्रियेषु ॥३०॥

भीहोवाती कामिनीके झोठोका रस भी रहे हो ॥२६॥ वहाँ पहुँचकर तुम 'नीच' नामकी पहाड़ी-  
 पर घकावट मिटानके लिये उत्तर जाता । वहाँपर फूले हुए कदवके वृक्षको देखकर ऐसा जान  
 पड़ेगा मानो तुमसे भेंट करनेके कारण उनके रोम-रोम पहरा उठे हो । उसी पहाड़ीकी गुफाभोमेसे  
 वन सुगन्धित पवार्यों की शप निकल रही होगी जो वहाँके धँसे बेध्याभोके साथ रति करनेके समय  
 काममे जाते हैं । इससे तुम्हें यह भी ज्ञात हो जायगा कि वहाँके नागरिक कितना सुलभ-सुलभा  
 जीवनका रस लेते हैं ॥२७॥ वहाँ घकावट मिटानकर, तुम जगली नदियोंने तीरीपर उपवनमे लियी  
 हुई ब्रह्मीकी कलियोंकी अपने जलकी फुहारोसे सींधित हुए और वहाँकी फूल उठा लेवाली वन मालि-  
 नोके मूँहपर छाया करके मोठीसी जान-पहनान चढाते हुए भागे बढ जाना, जिनके कानोंमे लटके  
 हुए कमलकी पत्राडियोंके वनफूल बनने गालोपर बहते हुए पत्तीनेसे लप जगवर भेले हो गए होंगे  
 ॥२८॥ उत्तरकी ओर जानेमे यद्यपि उग्रप्रिनीवाला मार्ग कुछ टेढा पड़ेगा, फिर भी तुम उस नगरके  
 राजप्रबन्धको देखना न भूलना । तुम्हारी विजलीनी चमकसे डरकर वहाँकी स्त्रियाँ जो चल चितवन  
 चलायेंगी उनपर यदि तुम न रोके, तो सभभलो नि तुम्हारा जन्म प्रकण्ठ हो गया ॥२९॥ उग्रप्रिनी-  
 की ओर जाते हुए तुम उत्तरपर उस निर्विन्ध्या नदीका भी रस ले-लेना जिसकी उछलती हुई लहरों-  
 पर पलियोंकी चहचहाती हुई पाठो ही बरपनी भी दिखाई देंगी और जो इस सुन्दर जगसे एक  
 एककर बह रही होगी नि उधमे पढो हुई भँवर तुम्हें उसकी नाभि जैसी दिखाई देगी, क्योंनि स्त्रियाँ

वेष्टीभूतप्रतनुसलिलाऽसावतीतस्य सिन्धुः  
 पारहुच्छाया तटरुहतरुभ्रं शिभिर्नीर्हापर्थैः ।  
 सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती  
 काश्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥३१॥  
 प्राप्यायन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्  
 पूर्वादिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालाम् विशालाम् ।  
 स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिण्यां गां गतानां  
 शेषैः पुण्यैर्हृतमिर्वादिवः कान्तिमस्त्रखलमेकम् ॥३२॥  
 दीर्घाकुर्वन्महु मदकलं कूजितं सारसानां  
 प्रत्यूपेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकपायः ।  
 यत्र स्त्रीणां हरति सुरवम्लानिमग्नानुकूलः  
 शिप्राघातः प्रियतम प्रार्थनाचाङ्कुरः ॥३३॥  
 हाराँस्ताराँस्तरलगुटिकान्कोटिशः शङ्कशुक्तीः  
 शष्पश्यामान्मरकतमखीनुन्मयूसप्ररोहान् ।  
 दृष्ट्वा यस्यां विपश्चिरचितान्द्रुमाणां च भङ्गाम्  
 संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः ॥३४॥

पटक-मटक थिटाकर ही अपने प्रेमियोंको अपने प्रेमकी बात कह देती है ॥३०॥ देखो ! निदिग्ध्या  
 नदीकी धारा तुम्हारे बिलोहमे मोटीके समान पतली होकर द्येगो घोर तीरके वृक्षोंके पीले पत्तोंके झण-  
 झणकर गिरनेसे उसका रंग भी पीला पड़ गया होगा । इस प्रकार, हे बड़भागी मेघ ! अपनी यह  
 बियोगकी दशा दिखाकर वह यही बता रही होगी कि मैं तुम्हारे बियोगमे सूखी जा रही हूँ । देवो  
 तुम ऐसा उपाय करना कि उस बेपारीका दुबलापन दूर हो जाय [ यर्षात् जल बरसाकर उसे भर  
 देना ] ॥३१॥ प्रवृत्ति देखने पहुँचकर तुम भय-धान्यसे भरी हुई उस विशाला नगरीकी घोर पले  
 जाना जिसकी चर्चा मैं पहलेही कर चुका हूँ और जहाँ गाँवके बड़े बड़े सोय, महाराजा उदयनकी  
 कथा भली-प्रकार जानते-बुझते हैं । वह नगरी ऐसी लगती है माने स्वर्गमे अपने पुण्योवा पल  
 भोगनेवाले पुण्यात्मा लोग अपने पुण्य समाप्त होनेसे पहले ही, अपने बचे हुए पुण्यसे बचते, स्वर्गका कोई  
 चमकीला भाग लेकर उसे अपने साथ धरतीपर उतार लाए हो ॥३२॥ उस नगरीमे, मतवाले  
 सारसोंकी भीठी बोलोंकी झुर-झुरतक फंताता हुआ, तटके लिये हुए नथसोंकी गण्यमे यहा हुआ  
 घोर शरीरकी मुहानेवाला शिप्रावा पावु, स्त्रियोंकी सभोगनी बनाबटनों उसी प्रकार दूर कर रहा होगा  
 जैसे चतुर प्रेमो, भीठी-भोठी बात बनाकर, पुनेस सुंघाकर और पना बनकर सभोगसे यहाँ हुई अपने  
 प्यारीकी यकाबट दूर कर देता है ॥३३॥ [उज्जयिनीकी टाटोमे तुम्हें बहो तो करोओ मोलियोंकी  
 ऐसी गालाएँ सर्जी हुई दिखाई देंगी जिनके बीच-बीचमे बड़े बड़े खन पृथि हुए होंगे, वही करोओ धप

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्मे  
 हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः ।  
 अत्राद्भ्रान्तः किल नलागिरिः स्तम्भमुत्पाद्य  
 दर्पादित्यागन्तूनमयति जनो यत्र वन्धूनभिन्नः ॥३५॥  
 जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशमंस्कारधूपै  
 र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दचनृत्योपहारः ।  
 हृन्म्येष्वस्याः क्लृप्तमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथा  
 लक्ष्मीं पर्यंल्ललितवनितापादरागाङ्घ्रितेषु ॥३६॥  
 भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः  
 पुरणं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीधरस्य ।  
 धृतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या  
 स्तौयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्रमरुद्भिः ॥३७॥  
 अप्यन्यस्मिजलधर महाकालभासाद्य कालो  
 स्थातव्यं ते नयनविपर्यं यावदत्येति मानुः ।  
 कुर्वन्संध्यावलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया  
 मामन्द्राणां फलमधिकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥३८॥

और तीपियां रानी हुई मिलीं। और कहीपर नई पासके समान बीजे और चमकीले नीलम दिछे  
 दिखाई देंगे । उन्हें देखकर यही जान पड़ेगा कि रत्न तो सब यहाँ निकालकर धा रखे गए हैं और  
 समुद्रमे केवल पानी ही पानी बना छोड़ दिया गया है ] ॥३५॥ [ वहाँके जानकर शोक, यह कथा  
 सुना-सुनाकर बाहरसे भाए हुए अपने सब-बिबोका मन बहसा रहे होये कि यहाँपर यत्न देशके राणा  
 उदयनने उज्जयिनीके महारान प्रद्योतकी प्यारी कन्या पासवदत्ताकी हारा था, यही उनका बनाया हुआ  
 श्रावके पेटोना सुनहरा उपवन था और यहीपर नदने भर हुआ नलपिरि नामका हाथी, लूटा उपाड  
 कर हपर-उपर पामल होकर धूमता फिरता था ] ॥३६॥ यहाँकी स्त्रियोके वालोको सुगन्धित करके,  
 अंगरकी पुष्पा जो पुष्पा क्रोरोको निकलता होना उससे तुम्हारा शरीर बढेगाही और तुम्हे अपना सारा  
 समझकर, वहाँके पालतू और भी नाच-नाचकर तुम्हारा सकार करेंगे । तब तुम फूलोके गन्धसे महकते  
 हुए वहाँके उन भवनोंकी सजावट देखकर अपनी थवायट दूर कर सेना जिनमे सुन्दरियोके चरणोंमे  
 लगी हुई महाधरसे लाल-परोको खाद्य बनी हुई होगी ॥३६॥ यहाँसे तुम तीनों लोकोंके स्वामी और  
 चलीके पति महानालके पवित्र मन्दिरको और चले जाना । वहाँ शिवजीके घर, तुम्हे अपने स्वामी  
 शिवजीके कठके समान ही मौला देखकर, तुम्हे बड़े आदरसे निहारेंगे । वहाँ शल-विहार करनेवाली  
 युवतियोंके स्नान करनेसे महकता हुआ और नमत्तने गधमे बसी हुई मधवती नदीकी औरसे भानेवाला  
 पवन, हम मन्दिरके उपवनकी चार-चार सुता रहा होगा ॥३७॥ हे मेघ ! यदि तुम महापालके

पादन्पामैः कण्ठितमशनास्तत्र लीलावधूर्तै  
 रत्नच्छायासुचित्रलिपिधामरैः क्लान्तहस्ताः ।  
 वेश्यास्त्वचो नरपदसुपान्नाप्य वर्षाप्रविन्दु  
 नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटावान् ॥३६॥  
 पश्चादुच्चैर्भुजतरवनं मण्डलेनाभिलीनः  
 सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्पकं दधानः ।  
 नृत्तारम्भे हर पशुपतेगर्दनागाभिनेच्छ्रा  
 शान्तोद्देगस्तिमितनयनं दृष्टमक्तिर्भवान्या ॥३७॥  
 गच्छन्तीनां रमणवसतिं योपितां तत्र नक्तं  
 रुद्रालाके नरपत्तिपथे सुचिर्भेयैस्तमोभिः ।  
 सीडामन्या कनकनिकपस्निग्धया दर्शयोर्वी  
 तोयोत्सर्गस्तनितसुरो भा स्म भूर्ध्विलावास्ताः ॥३८॥  
 तां कस्यांचिद्भवन्नरतमौ सुमपारातरतापां  
 नीत्वा रात्रिं चिरचित्तमनात्प्रिप्रविद्युत्कलत्रः ।  
 दृष्टे सूर्ये पुनरपि मवान्वाहयेदध्यशेषं  
 मन्दापन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥३९॥

मदिरमे सौम्य होनेसे पहले पहिले जायो तो वह! तबतक डहर जाता बबतक सूर्य मनो प्रबार धांगोंमे  
 प्रीमल न हो जाय धौर जब महादेवजीकी सभिनी मुहायनी धारती होने लगे तब सुन भी अपने  
 गर्जनका नगावा बजाने लगता । सुन्दे अपने सब गवीर गजेंनका पूरा-पूरा फल मिल जायगा ॥३६॥  
 सन्ध्याकी सायमे वैशेनर धिरवती हुई दिन वेद्याघाती बरघनौब पंचरु बडे भीटे-भीटे दण रहे होने  
 धौर दिनभे हाप, बगनवे नगोकी चमकसे दमकते हुए डहोवाले खेर दुलाते-दुलाते पद गए भेने,  
 उन वेद्याघाती नर-सतीपर जब सुम्हायी ढही-ढही बूँदें बरेंगी तब के बडे प्रमते अपनी धौरोंकी  
 पाँवोंके समान बडो-बडी चितवन सुमपर डालेंगी ॥३६॥ सान्धकी पूजा हो चुकनेपर जब महापाम  
 तान्दव नृत्य करने लगे, उस समय तुम सौम्यी ससाईं नेबर उन नृतीपर छा जाता जो उनकी ऊँची  
 उठी हुई बोटके समान खडे होंगे । ऐसा करनेमे शिवजीके मनमें जो हाथोंकी ताप घोरनेकी इच्छा  
 होगी वह भी पूरी हो जायगी । यह देगकर पहले तो पावँती डर जावेंगी कि यह हाथोंकी ताप  
 भा बहानि गई, पर फिर सुन्दे पहचानकर उनका डर दूर हो जायगा धौर के एबटक हीबर शिवजीके  
 सुम्हारी पतनी मति देगनी रह जावेंगी ॥३७॥ बटोपर जो शिवजी अपने प्यारोंके शिवदेके निप  
 ऐसी पनी सँभेरी रातमे बिबनी होगी, उन्हें जब सबकोपर सँभेने मारे बुध भी न भूमता होगा,  
 तब तुम बघौटीमे मोनेके समान दमकनेवाली धरनी बिबनी चमकाकर उन्हें टोक टोक मार्ग दिगा  
 देना, पर देतो ! तुम परब्रज-बरमना फन । नहीं तो के घबरा उठेंगी ॥३८॥ बटुन देगकर  
 चमकने-चमकने पकी हुई धरती प्यारी बिबनीकी नेबर तुम दियो ऐसे मरानके दग्नेपर रात्र बिडा

तस्मिन्काले नयनसलिलं योपितां - संहितानां  
 शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु ।  
 प्रालेयासं कमलवदनात्सोऽपि हतुं नलिन्याः  
 प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाम्यस्यः ॥४३॥  
 गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने  
 छायात्माऽपि प्रकृत्सुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।  
 तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या  
 न्मोषीकृतुं चदुलशफरोद्धर्तनप्रेषितानि ॥४४॥  
 तस्याः किञ्चित्करघृतमिव प्राप्तवानीरशाखं  
 हृत्वा नील सलिलवसनं मुक्तगोधोनितम्भम् ।  
 प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि  
 ज्ञातास्यादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥४५॥  
 त्वन्निष्पन्दोच्छ्वसितघसुधागन्धसंपर्करम्यः  
 स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः ।  
 नीर्नर्वास्यत्युपजिगमिपोद्वेषपूर्वं गिरिं ते  
 शीतो वायुः परिखमयिता काननोदुम्यराणाम् ॥४६॥

देना जिसमे कबूतर सोए हुए हो और फिर दिन निकलते ही वहाँसे चल देना, क्योंकि जो अपने मित्रोंका काम करनेका बीडा उठाता है, वह प्रसन्न नहीं किया करता ॥४३॥ देखो ! उस समय बहुरासे प्रेमी लोग अपने उन प्यारियोंके प्राँसू पीछे रहे होंगे जिन्हें रातकी प्रकैली छोबकार ने नही दूसरी ठोरपर रमे होगे । इसलिये उस समय तुम सूर्यको भी मत टकना क्योंकि वे भी उस समय अपनी प्यारी कमलनीके मुसकमतपर पड़ी हुई प्रोसकी बूँदें पीछेनेके सिधे धा गए होंगे । तुम उनके हाम न रोब बैठना, नही तो वे बुरा मान नार्ये ॥४३॥ हे मेघ ! तुम्हारे सहज-गालोने धारीरवी परछाहीं गभीरा नदीके उन जघने भवस्य दिखाई देगी, जो चित्त बैसा निर्मल है । उसमे विलोनें करती हुई कुमुदके समान जजनी मधुसिधोकी देलकर तुम यही समझना कि यह नदी तुम्हारी और अपनी प्रेम-गरी चचल चितवन बना रही है । कहीं तुम अपनी रखाईसे उसके प्रेमका गिराहर न कर बैठना ॥४४॥ जब तुम गभीरा नदीका जब पी लोंगे तो उसका जल कम हो जायगा और उसने दोनो हट नीनेतक दिखाई देने लगेंगे । उस समय उसमे भुकी हुई बँसनी लताओंको देखनेसे ऐसा जान पड़ेगा मानो गभीरा नदी अपने तटरूपी निगम्योपरसे अपने जलके वस्त्र सितक जानेपर, लज्जासे अपनी बँसकी लताओंने हाथोंसे अपने जलका वस्त्र धामे हुए है । यह सब देलकर भैया मेघ ! उसपर भुके हुए तुम वहाँसे जा न पाओगे, क्योंकि जवानीका रस ते चुकनेवाला ऐसा लोग रगीना होगा जो कामिनीकी सुनी हुई जौषोको देखकर उसका रस लिए बिना ही वहाँसे चल दे ॥४५॥ वहाँसे चलकर जब तुम देखगिरि पहाडकी ओर जाओगे तब वहाँ धीरे-धीरे चला हुआ यह



तस्मिन्काले नयनसलिलं योपितां खंडितानां  
 शान्तिं नेयं प्रणयिमिरतो वर्त्म भानोस्त्यब्दाशु ।  
 प्रालेयासं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः  
 प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यस्यः ॥४३॥  
 गम्भीरायाः पयसि सरितरन्वैतसीव प्रसन्ने  
 छायात्माऽपि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।  
 तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हमि त्वं न घेयां  
 न्योधीवर्तुं चद्रुलशफरोवर्तनप्रेक्षितानि ॥४४॥  
 तस्याः किंचित्करघृतमिव प्राप्तवानीरशाखं  
 हृत्वा नील सलिलवसनं मुक्तगोधोनितम्बम् ।  
 प्रस्यार्न ते कथमपि सखे लग्नमानस्य भावि  
 ज्ञातास्यादो विवृत्तजघनां कौ विहातुं समर्थः ॥४५॥  
 त्वधिप्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसंपर्करम्यः  
 स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः ।  
 नीनैर्वास्त्युपजिगमिपोर्देवपूर्वं गिरिं ते  
 शीतो घायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥४६॥

देगा जिसमें कबूतर सीए हुए ही और फिर दिन निकलते ही वहाँसे चल देता, क्योंकि जो अपने  
 मित्रोंका काम करनेका बीडा उठाता है, वह प्रसन्न नहीं बिया करता ॥४३॥ देखो ! उस समय  
 बहुतसे प्रेमी लोग अपनी उन प्यारियोंके प्राणु पोष रहे होंगे जिन्हें रातकी बकेली छोड़कर वे कहीं  
 दूसरी ठौरपर रहे होंगे । इसलिए उस समय तुम सूर्यको भी मत डकना क्योंकि वे भी उस समय  
 अपनी प्यारी कमलसीके मुख कमलपर पड़ी हुई मोसकी बूँदें पोछनेके लिये घा गए होंगे । तुम उनके  
 हाथ न रोक बैठना, नहीं तो वे बुरा मान जायेंगे ॥४४॥ हे प्रेम ! तुम्हारे सहज-तालीने बाँधकी  
 परछाही गभीरा नदीके उम जनमे भवन्म दिखाई देगी, जो चित्त जैसा निर्मल है । उनमें किलोर्ले  
 करती हुई कुमुदके समान जननी मल्लजिबोको देखकर तुम नहीं समझना कि वह नदी तुम्हारी और  
 अपनी प्रेम-भरी भवन चितवन चला रही है । कहीं तुम अपनी कक्षासे उनके प्रेमना निरादर न  
 कर बैठना ॥४५॥ अब तुम गभीरा नदीका जन पी लोगे तो उसका जल कम हो जायगा और  
 उसने दोनों तट नीकेतक दिखाई देने लगेंगे । उस समय जनमे फुलें हुई बँतकी लतामोनों देखनेसे  
 ऐसा जान पड़ेगा मानो गभीरा नदी अपने तटरूपी नितम्बोपरसे अपने जलके बख खिन्नक जानेपर  
 लज्जारी अपनी बँतकी लतामोव हृषोसे अपने जलका बख धाये हुए है । यह सब देखकर नया  
 मेघ ! उठपर फुले हुए तुम वहाँसे जा न पाओगे, क्योंकि जवानीका रस ने पुननेवाला ऐसा कौन  
 रगीला होगा जो कामिनीकी सुखी हुई जाँचोको देखकर उसका रस लिए बिना ही वहाँसे चल दे  
 ॥४६॥ वहाँसे चलकर अब तुम देगगिरि पहाडकी ओर जाओगे तब वहाँ पीरे-पीरे बहता हुआ वह

तत्र स्कन्दं नियतवमतिं पुष्पमेधीकृतात्मा  
 पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्योमगद्गाजलाद्रैः ।  
 रचाहेतोर्नवशशिश्रुता वासवीनां चमूना  
 मत्यादित्यं हुत्तवहसुखे संभृतं तद्धि तेजः ॥४७॥  
 ज्योतिर्लंखावलयि गलितं यस्य बहै भवानी  
 पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ।  
 धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पायकेस्तं मयूर  
 पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गजितैर्नर्तयेथाः ॥४८॥  
 आराध्यैर्न शरवणभवं देवमुल्लासिताध्वा  
 सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीथिमिर्मुक्तमार्गः ।  
 व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्  
 स्रोतोभूर्या सुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिषु ॥४९॥  
 स्वग्यादातुं जलमयनते शाङ्गिणो वर्षाचौरे  
 तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभाषात्प्रवाहम् ।  
 प्रेषिष्यन्ते गगनगतयो नूनमाषज्यं दृष्टी  
 रेकं मुक्तागुणमिष भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥५०॥

शीतल पवन तुम्हारी सेवा किया करेगा जिसमें तुम्हारे बरसाए हुए जलसे मानवकी सौत लीती हुई धरतीकी गंध भरती रहेगी, जिसे बिग्याकते हुए हापी अपनी बूंदोंसे भी रहे होंगे और जिसके चलनेसे पनके फूलर पकने लग गए होंगे ॥४६॥ उसी देवगिरि पर्वतपर स्कन्द भगवान् भी सदा निवास करते हैं । इसभिये वहाँ पहुँचकर तुम फूल बरसानेवाले बरहस यनवर जनपर धापासा-गगाके चलने भीगे हुए फूल बरसाकर उन्हें स्नान करा देना । देती । स्कन्द भगवान्को तुम ऐसी-वैसा देवता न समझना । इन्द्रकी सेनाओंको बचानेके लिये शिवजीने सूर्यसे भी बहकर जलता हुआ अपनी जो तेज अग्निसे टालकर इच्छा किया था, उसी तेजसे स्कन्दका जन्म हुआ है ॥४७॥ यहाँ पहुँचनेपर तुम अपनी गरजसे पर्वतकी मुफाधाको गूँबा देना जैसे तुमवर स्वामी वातिकेपका वह मोर भाष उठेगा जिसके गैनोंके कोने सदा शिवजीके शिरपर धरे हुए चन्द्रमाकी चमकसे दपकते रहते हैं । उस मोरके भूँसे हुए उन पल्लोसे चमकीली किरणें निकल रही होंगी, जिन्हें पार्वतीजी, पुत्रपर प्रेम दितानेके लिये अपने उन कानोपर सजा लेती हैं, जिनपर वे कमलकी पंखड़ी सजाया करती थी ॥४८॥ स्कन्द भगवान्की पूजा करके जब तुम धामे बढोगे तो हाथोंमें बीणा लिए हुए अपनी स्त्रियोंके साथ वे सिद्ध लोग तुम्हें बिलोंगे जो अपनी बीणा भीतर विगड जानेके डरसे तुमसे दूर हो दूर रहने । तब तुम कुछ दूर जाकर उस चर्मप्यती नदीका घाटर करनेके लिये नीचे जतर जाना जो राजा रन्तिदेवके पक्षालम मश करनेकी कीर्ति जनवर धरतीपर बह रही है ॥४९॥ हे मेव ! जब तुम जिनपु भगवान्का मानवा रूप छुटकर

तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खंडितानां  
 शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु ।  
 प्रालेपाद्यं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः  
 प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाम्यस्यः ॥४३॥  
 गम्भीरायाः पयसि भरितरचेतसीव प्रसन्ने  
 छायात्माऽपि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।  
 तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हमि त्वं न धेर्या  
 न्मोधीकर्तुं चटुलशफरोद्धर्तनप्रेक्षितानि ॥४४॥  
 तस्याः किञ्चित्करष्टमिव प्राप्तवानीरशाखं  
 हृत्वा नील सलिलवमनं मुक्तगोधोनितम्बम् ।  
 प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि  
 ज्ञातास्वाढो विष्टतजघनां क्रो विहातुं समर्थः ॥४५॥  
 त्वद्विष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसंपर्करम्यः  
 स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः ।  
 नीशैर्वास्यस्युपजिगमिपोर्देवपूर्वं गिरिं ते  
 शीतो वायुः परिखमयिता काननोदुम्बराशाम् ॥४६॥

देवा जियने कडूतर होए हुए हो और फिर दिन निकलते ही वहाँसे चल देना, क्योंकि जो अपने  
 मित्रोंका काम करनेका धोखा उठाता है, वह प्रसन्न नहीं किया करता ॥४२॥ देखो ! उस समय  
 बहुतासे प्रेमी लोग अपनी उन प्यारियोंके आसु पीए रहे होंगे जिन्हें रातको अकेली खोडकर वे कहीं  
 हूहरी औरपर रहे होंगे । इसलिए उस समय तुम सूर्यको भी मत ढकना क्योंकि वे भी उस समय  
 अपनी प्यारी कमलनीके मुल-कमलपर पड़ी हुई मोसकी बूँदें पीतनेके लिये पा गए होंगे । तुम उनके  
 हाथ न रोक बैठना, नहीं तो वे बुरा मान आवेंगे ॥४३॥ हे मेष ! तुम्हारे चहुँ-सल्लोने घरीरकी  
 परछाही गभीरा नदीके उन अचभे प्रवण्य दिखाई देगी, जो बिल जंवा निर्मल है । उसमें किलोर्ने  
 करती हुई कुमुदके समान उजली मछलियोंको देखकर तुम यहीं समझना कि वह नदी तुम्हारी और  
 अपनी प्रेम-भरी चंचल चितवन बना रही है । कहीं तुम अपनी रसादसे उसके प्रेमका निरादर न  
 कर बैठना ॥४४॥ अब तुम गभीरा नदीका जब भी सोगे तो उसका जब कम हो जायगा और  
 उससे दोनो घट नीचेतन दिखाई देने लगेंगे । उस समय जलमें भुकी हुई बेंतकी सताओंको देखनेसे  
 ऐसा जान पड़ेगा गाली गभीरा नदी अपने तटरूपी निम्बोंपरसे अपने जलके बल खिसक जानेपर,  
 लज्जासे अपनी बेंतकी सताओंके हाथसे अपने जलका बल बामे हुए है । यह सब देखकर भैया  
 मेष ! उसपर भुने हुए तुम वहसि जा न पाओगे, क्योंकि ज्वानीका रस से चुकनेवाला ऐसा मोन  
 रचोना होगा जो नाभिनीपी तुली हुई जाँघोंको देखकर जवना रस लिए बिना ही वहाँसे चल दे  
 ॥४५॥ वहाँसे चलकर अब तुम देवगिरि पहाडकी और वासोंगे तर वहाँ घीरे-घीरे बहता हुआ वह

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेधीकृतात्मा  
 पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्योमगङ्गाजलाद्रैः ।  
 रचाहेतोर्नवशशिशृता वासवीनां चमूना  
 मत्यादित्यं हुतवहस्रुसे संभृतं तद्धि तेजः ॥४७॥  
 ज्योतिर्लेखावलपि गलितं यस्य वहं भवानी  
 पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलमापि कर्षो करोति ।  
 धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मपूर  
 पश्चादद्रिग्रहलगुरुभिर्गजितैर्नर्तयेथाः ॥४८॥  
 आराध्यैर्न शरषणभवं देवमुद्गृह्णित्वाध्वा  
 सिद्धद्वन्द्वैर्जलकलाभयाद्दीप्तिभिर्मुक्तमार्गः ।  
 ध्यालम्बेशाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्  
 स्तोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥४९॥  
 त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्षाचौरे  
 तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम् ।  
 प्रेषिष्यन्ते मगनगतयो नूनमावर्ज्यं दृष्टी  
 रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥५०॥

धीतस पवन तुम्हारे सेवा किया करेगा जिसमे तुम्हारे बरखाए हुए जलसे आनन्दकी साँस लेती हुई भरतीकी गंध भरी रहेगी, जिसे चिम्मावते हुए हाथी अपनी सूंजीसे पी रहे होंगे और जिसके चलनेसे वनके फूलर पत्रने लग गए होंगे ॥४७॥ उड़ी देवगिरि पर्वतपर स्कन्द भगवान् भी यथा विचार करते हैं । इसलिये वहाँ पहुँचकर तुम पूज्य बरखावेवाले गायल वनपर उतपर आकाश-पगाके पक्षसे भीगे हुए फूल बरसाकर उन्हें स्नान करा देना । देखो ! स्कन्द भगवान्की तुम ऐशान-धर्म देवता न ममस्कन । इन्द्रकी मन्त्राशोकी वचनसे जिसे दिवजनेने मूर्ध्नि भी गायल जलता हुआ अणता जो तेज अग्निसे आसकर दृकट्टा किया था, उती तेजसे स्कन्दका जन्म हुआ है ॥४७॥ वहाँ पहुँचनेपर तुम अपनी बरखसे पर्वतकी गुफाशोकी वृजा देना उसे सुनकर स्वामी वासिकेयका वह मोर नाथ उठेगा जिसके नेत्रोके पीने सरस शिबजीके सिरपर घरे हुए मन्द्रमायी चमकने शमकते रहते हैं । उस मोरने मडे हुए उन पक्षोमे अपकीकी किरणें निवल रही होगी, जिन्हें पार्वतीकी, पुत्रपर प्रेम दिखानेके लिये अपने उन बानोपर राजा लेती है, जिनपर वे कमलको पेंसडी राजावा करती थी ॥४८॥ स्कन्द भगवान्की पूजा करने जय तुम माये वहीमे नो हाथोमे वीणा लिए हुए अपनी जियोके साथ वे सिद्ध लोग तुम्हें मिलेंगे जो अपनी वीणा भीनकर विमल जानेवे दरसे तुमसे दूर ही दूर रहेंगे । सब तुम कुछ दूर जाकर उस चर्मश्वती नदीका धादर करनेके लिये नीचे उतर जाना भी राजा रन्तिदेवके पलायन यज्ञ परतोकी कीर्ति बतकर परवीपर बह रही है ॥४९॥ हे मेघ ! जब तुम विष्णु भगवान्का मूर्तका रूप पुरावर

तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां  
 पद्मोत्प्लेषादुपरि विलमत्कृष्णशारप्रभाणाम् ।  
 कुन्दक्षेपानुगमघुकरश्रीगुणामात्मविम्बं  
 पात्रीकुर्वन्दशपुरवधुनेत्रकौतूहलानाम् ॥५१॥  
 ब्रह्मावर्तं जनपदमथ च्छायया गाहमानः  
 क्षेत्रं चत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेयाः ।  
 राजन्यानां सितशरशतैर्यत्र गायत्रीवधन्वा  
 धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखाणि ॥५२॥  
 हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्गां  
 वन्धुप्रीत्या समरविमुरो लाङ्गली याः मियेये ।  
 कृत्वा तासामभिगममणां सौम्य सारस्वतीना  
 मन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्षमात्रेणकृष्णः ॥५३॥  
 तस्माद्गच्छैरनुकनखलं शैलराजावतीर्णा  
 जहोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ।  
 गौरीवधुव्रजकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः  
 शंभोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलमोर्मिहस्ता ॥५४॥

पर्वतकीका जल पीनेके लिये झुकीमे, उस समय आकाशमे विनरनेवाले सिद्ध, गन्धर्व आदिको  
 दूरसे पतली दिखाई देनेवासी उस नदीकी चौड़ी धाराके बीचमे तुम ऐसे-दिखाई दोगे मागो पृथ्वीके  
 गनेने वडे हुए एकनडे हारके बीचमे एक बड़ी मोटी सी इन्द्रवीलमखि धोई दी गई हो ॥५०॥  
 चर्मण्वती नदी पार करके तुम दशपुरकी घोर बड जाना घोर धपना रूप विखाकर वहाँकी उन  
 रमणियोकी रिझना, जिनकी कानी काली कँटोली भीहि ऐसी जान पडेगी माने जन्होंने कुन्दके फूलोपर  
 गेंदरानेवाले भीरोवी चमक चुरा ली हो ॥५१॥ वहुसि चलकर ब्रह्मावर्त देशपर छाया करते हुए तुम  
 उस कुण्डोपर चले जाना जो-घोरवी घोर पाण्डवोकी धरेखू सडाईके कारण आजतक बदनाम है और  
 जहाँ गायत्रीवधारी कर्जुने अपने सन्नु राषामके मुखोपर उगो प्रकार अनगिनत बाण बरसाए थे जैसे  
 कमलोपर तुम अपनी जलपाय बरसाते हो ॥५२॥ देखो ! कौरव और पाण्डव दोनोपर एक-सा प्रेम  
 करनेवाले जो बलरामजी, महाभारतके गुदमे जिझोनी औरसे भी नहीं लडे, वे अपनी प्यारी रेवतीके  
 नेत्रोकी छाया पडी हुई प्यारी भदिरानी छोटकर जिस सरस्वती नदीका जल पीते थे, वही जल यदि  
 तुम भी पी लोगे तो याहुरसे फाले होनेपर भी तुम्हारा मन उजला हो जायगा ॥५३॥ कुदक्षेत्रसे  
 चलकर तुम बनसल पहुँच जाना । वहाँ तुम्हें हिमालयकी पाटियोमे उतरी हुई वे मयाजी मिलेंगी  
 जिन्होंने सीढी बनकर सगरके पुत्रोको स्वर्ग पहुँचा दिया और जिनकी उजली फेन ऐसी लगती है  
 मानो वे दस फेनकी हुँसीले तित्ती उडाती हुई उन पार्वतीगीच निरादर कर रही हो जो सीतिया

तस्याः पातुं सुरगल इव ज्योमि पश्चाद्दलम्भी  
 त्वं चैदच्छस्फटिकविशवं तर्कयेस्तिर्यग्मभः ।  
 संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि च्छाययाऽसौ  
 स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेवाभिरामा ॥५५॥  
 आसीनानां सुरभितशिलं नाभिमन्वैर्मृगाणां  
 तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुपारैः ।  
 वक्ष्यस्यभ्यश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निपण्णः  
 शोभां शुभ्रप्रिनपनशृपोत्प्लातपङ्कोपमेयाम् ॥५६॥  
 तं चेड्यायौ सरति सरलस्फन्धसंघट्टजन्मा  
 बाधेतोत्काचपितचमरीशालमारो दवाग्निः ।  
 श्वर्हस्पेनं शमयितुमलं वारिधारसहस्रै  
 रापश्मार्तिप्रशमनफलाः संपदो ह्यचमानाम् ॥५७॥  
 ये संरम्भोत्पतनरममाः स्वाङ्गभंगाय तस्मिन्  
 मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम् ।  
 तान्कुर्वीथास्तुमुलशरकाशृष्टिपातावकीर्णान्  
 के वा न स्युः परिभयपदै निष्कसारम्भयत्नाः ॥५८॥

बाहसे गंगाजीपर भौहि तरेर रही हो, और घपती सहरोके हाथ चन्द्रमापर देवकर शिवजीके केश पकडकर पानतीभीको यह बता रही हो कि तुमसे बढकर शिवजी गैरी मुझे है ॥५५॥ यदि वहाँ पहुँचकर तुम दिग्गजोके समान अपना विजला भय ऊपर उठाकर और प्रागेका भाग झुकाकर, गंगाजीका स्फटिकने समान उजवा जल तिरछे होकर भीमा बाहोके तब तुम्हारी बसती हुई छाया गंगाजीकी धाराम पकडर ऐसी सुन्दर लयेगी मातो प्रयाव पहुँचनेके पहले ही गंगाजीके समुताजी मिल गई हो ॥५६॥ वहसि चलकर अब तुम हिमालयकी उध हिमसे दभी चोटीपर बैठकर धनादट मिटाओके पहलिये गंगाजी निकसी है और जिसकी निजार्ण जस्तूरी हरिणोके तथा बँठनेते महकती रहती है, तब उध चोटीपर बैठे हुए तुम बँसे ही दिखलाई दीगे जँते महादेव-जीके उजले सौँधके सीमोपर मिट्टीके टीलोपर टकुर भारसेके कीचढ जम गया हो ॥५६॥ हे मेघ भयड चलनेपर देवदारके कुलोके धावधम रखनेते जब जगसने प्राग लग जाय और उधने उठते हुए धगारे, सुरागापने छवे लये रोएँ चलाने भयें, तब तुम धुर्धाधार पाओ शरसाकर उसे बुझा देना क्योंकि भने सीमोके पास जो कुछ भी होता है वह चीन-दुलियोका दुख मिटानेके लिये ही रो होता है ॥५७॥ देखो ! हिमालयपर जब शरभ जातिके हरिण तुम्हारे दूर होनेपर भी तुमपर बिगडकर उधलनेके लिये मचने और घपने हाथ पँर लुडवानेके लिये तुमपर सीध चलानेको भयपँ, तब तुम उनके ऊपर धुर्धाधार ओले बरसाकर ऊँडे तितर बितर कर देना । क्योंकि जो बेकामका काम करने

तामुत्तीर्य ब्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां  
 पद्मोत्प्लेपादुपरि विलम्बकृष्णशारप्रभाणाम् ।  
 कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुपामात्मविम्बं  
 पात्रीकुर्वन्दशपुरवधुनेत्रकौतूहलानाम् ॥५१॥  
 ब्रह्मावर्त जनपदमथ च्छायया गाहमानः  
 क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेयाः ।  
 राजन्यानां मितशरशर्तैर्यत्र गाण्डीवधन्वा  
 धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥५२॥  
 हित्वा दालामभिमत्तरसां रेवतीलोचनाङ्गां  
 वन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः मियेवे ।  
 कृत्वा तामामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना  
 मन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेणकृष्णः ॥५३॥  
 तस्माद्द्वन्द्वैरनुकनरुलं शैलराजावतीर्णा  
 जहोः कन्यां मगरतनयस्वर्गमोपानपङ्क्तिम् ।  
 गौरीवक्रप्रभुहुटिरचनां या विहस्येव फेनैः  
 शंभोः केशम्रहणमकरोदिन्दुलम्बोर्मिहस्ता ॥५४॥

पद्मोत्प्लेपादुपरि विलम्बकृष्णशारप्रभाणाम् ।  
 कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुपामात्मविम्बं  
 पात्रीकुर्वन्दशपुरवधुनेत्रकौतूहलानाम् ॥५१॥  
 ब्रह्मावर्त जनपदमथ च्छायया गाहमानः  
 क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेयाः ।  
 राजन्यानां मितशरशर्तैर्यत्र गाण्डीवधन्वा  
 धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥५२॥  
 हित्वा दालामभिमत्तरसां रेवतीलोचनाङ्गां  
 वन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः मियेवे ।  
 कृत्वा तामामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना  
 मन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेणकृष्णः ॥५३॥  
 तस्माद्द्वन्द्वैरनुकनरुलं शैलराजावतीर्णा  
 जहोः कन्यां मगरतनयस्वर्गमोपानपङ्क्तिम् ।  
 गौरीवक्रप्रभुहुटिरचनां या विहस्येव फेनैः  
 शंभोः केशम्रहणमकरोदिन्दुलम्बोर्मिहस्ता ॥५४॥

तस्याः पातुं सुरगज इव ज्योमि पश्चार्द्रलम्बी  
 त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यग्गम्भः ।  
 संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि च्छाययाऽसौ  
 स्पादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेवाभिरामा ॥५५॥  
 आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां  
 तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुपारैः ।  
 पचयस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निपण्णः  
 शोभां शुभ्रत्रिनयनदृपोत्खातपङ्कोपमेयाम् ॥५६॥  
 तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा  
 वाधेतोत्काञ्चपितचमरीनालमारो द्वाग्निः ।  
 अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै  
 रापन्नातिप्रशमनकलाः संपदो ह्युचमानाम् ॥५७॥  
 ये संरम्भोत्पतनरमसाः स्वाङ्गर्भगायं तस्मिन्  
 मुक्ताध्वानं सपदि शरमा लङ्घयेयुर्मवन्तम् ।  
 तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकापृष्टिपातावकीर्षान्  
 के वा न स्युः परिभयपदं निष्फलारम्भपरनाः ॥५८॥

बाहसे गंगाजीपर भौंहि तरेर रही हो, और अपनी सहरोके हाथ चन्द्रभापर टैककर शिवजीके केश पकड़कर पार्वतीजीको यह बसा रही हो कि तुमसे बदकर शिवजी मेरी मुट्टीमे है ॥५४॥ यदि वहाँ पहुँचकर तुम दिग्गजके समान बनना पिछसा भाव ऊपर उठाकर और प्रागेका भाग झुकाकर, गंगाजीका स्फटिकके समान उबला जल तिरछे होकर पीना चाहोगे, तब तुम्हारी चसती हुई छाया, गंगाजीकी धारामे पडकर ऐसी सुन्दर सगेगी मानो प्रयाग पहुँचनेके पहले ही गंगाजीसे यमुनाजी मिल गई हो ॥५५॥ यहूति चलकर जब तुम हिमालयकी उभ हिमसे ढकी चोटीपर बैठकर पकावट मिटाओगे जहाँसे गंगाजी निबली है और जिसकी शिलाएँ बस्तूरी हरिणीके सदा बँठनेसे महकती रहती है, तब उस चोटीपर बैठे हुए तुम वैसे ही विसलाई शोमे जैसे महादेव-जीके उजले सीढके सोगेपर गिट्टीके टीसोंपर टकर मारनेसे कौचट जग गया हो ॥५६॥ हे मेव पधह चत्तनेपर देवदारके मृदोके घ्रापसमे रगठनेसे जब जगलमे श्राव सग जाय और उसके उड़ते हुए मगारे, सुरगायके लंवे-लवे रोएँ जलाने नये, तब तुम धुर्पाघार पानी बरसाकर उसे बुझा देना क्योंकि भले लोकोके पास जो कुछ भी होता है वह दीन-दुखियोना दुःख मिटानेके लिये ही तो होता है ॥५७॥ देखो ! हिमालयपर जब शरभ जातिके हरिण तुम्हारे दूर होनेपर भी तुमपर विगड़कर उजलनेके लिये मचसं और अपने हाथ-पैर तुडवानेने लिये तुमपर गींग चलानेकी भपटें, तब तुम उनके ऊपर धुर्पाघार धोते बरसाकर उन्हें तितर-बितर कर देना । क्योंकि जो देकामका काम करने



तत्र व्यक्तं दृषदि चरखन्यासमधेन्दुमौलेः  
 शश्वतिसद्वैरुपचितवलिं मक्तिनम्रः परीयाः ।  
 यस्मिन्ष्टप्टे करणविगमादूर्ध्वसुदूतपापाः  
 कल्पिष्यन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्धधानाः ॥५६॥  
 शब्दायन्ते मधुरमनिलैः क्रीचकाः पूर्यमाणाः  
 संमक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किंनरीभिः ।  
 निर्हादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु घ्वनिः स्यात्  
 संगीतार्यो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ॥६०॥  
 प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषान्  
 हंमद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्कौश्वरन्ध्रम् ।  
 तेनोदीर्घी दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी  
 श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ॥६१॥  
 गत्वा चोर्ध्वं दशमुरभ्रजोच्छ्वासितप्रस्थसंधेः  
 कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्याकिशिः स्याः ।  
 शृङ्गोच्छ्रायैः हुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं  
 राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्पाट्टहासः ॥६२॥

लगते हैं, उन्हें ऐसे ही डीङ्ग करना चाहिए ॥५८॥ वहीं हिमालय पर्वतकी एक शिखार तुम्हे  
 शिवजीके पैरकी छाप बनी हुई मिलेगी जिसपर मिट्ट लीज बराबर पूजा पढाया करते हैं, तुम भी मक्ति-  
 नावते मुरजर उठनी प्रदक्षिणा कर लेना क्योंकि अट्टा-भरे सोमोरा वाप उपावे दर्शनमे ही गुल जाता  
 है और वे गरीर त्याग करनेपर सदाके लिये शिवजीके मण हो जाते हैं ॥५९॥ हे मेघ ! वहाँके  
 पोले बाँसके जय वानु करने लगता है तब उनमेमे पीटे-पीटे स्वर निकलने लगते हैं और किन्नरीकी  
 झिंझाँ भी स्वर मिलाकर त्रिपुर विजयका गीत गाने लगती हैं । उन समय यदि तुम भी गरजकर  
 पहाडकी ओहोकी शृंङ्गाकर मृदगके समान ध्वज कर दोगे तो शिवजीके सगेतने सब धंग पूरे हो  
 जायेंगे ॥६०॥ हिमालय पर्वतके छाप-पास जितने मुहाबने स्थान हैं, उन सबको देखकर तुम उग कोश  
 रधमेमे होते हुए उत्तरकी ओर निकल जाना जिसमेमे होकर हनु भी मानसरोवरकी ओर जाते हैं और  
 त्रिग परशुरामजीने अपने बाणमे देवकर धवना नाम धमर कर लिया है । उन नुंकरे मार्गमे तुम धंमेरी  
 सवे ओर तिरछे हींकर जाना जंमे बलिकी धननेने समय भगवान् गिष्णुका मौरना करण लवा ओर  
 तिरछा हो गया पा ॥६१॥ इहाँमे उपर उठकर तुम उग वंवास पर्वतपर पहुँच जाओगे त्रिगर्वा शोटिमी  
 के ओर-ओर पाणके बाहुमेमे हिमा डाने मे, त्रिगमे देवताओकी झिंझाँ धवना मूँ देगा बानी है  
 और जिसकी हुमुद वंसी उठनी शोटिर्वाँ धाकातमे इस प्रकार धंमी हुई है मागे वह दिन-दिन

उत्परयामि त्वयि तटगते स्निग्धमिच्छाञ्जनामे  
सद्यः कृत्वा द्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य ।  
शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री  
मंसन्यस्ते सति हलमृतो मेचके वासगीव ॥६३॥  
हित्वा तस्मिन्मुञ्जवलयं शंभुना दचहस्ता  
क्रीडाशैले यदि न विचरेत्पादचारेण गौरी ।  
भङ्गी भक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलीषः  
मोपानन्वं कुरु मंशिवटारोहसायाग्रयायी ॥६४॥  
तत्रावर्यं यत्पङ्कनियोज्ज्वलनोद्गीर्णतोयं  
नेप्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रघारागृहत्वम् ।  
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे घर्मलब्धस्य न स्यात्  
क्रीडालोलाः अत्रखपरुषैर्गलितभीषयेस्ताः ॥६५॥  
हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः  
कुर्वन्कामं क्षणमुत्पटप्रीतिमैरावतस्य ।  
धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै  
नानाचेष्टैर्जलद, ललितैर्निर्दिशेस्वं नमेन्द्रम् ॥६६॥

दृग्दृष्टा विद्या द्रुमा विद्यजीका बहुज्ञान ही ॥६२॥ हे मेघ ! तुम तो हो चिकने घुटे हुए मीजनके समान काले, और कैलास है तुरत काटे हुए हाथी दाँतके समान गोरा । इसलिये जब तुम कैलासके ऊपर पहुँचोवे उस समय तुम वैरी समग्रमें इतरामके कपीपर वडे हुए चटकीले चखके समान ऐसे मनोहर लगोगे कि आँसे एकटक तुम्हें ही देखती रह जायें ॥६३॥ उस कैलासपर जब पार्वतीजी उन महादेवजीके हाथमें हाथ डाले टड्डन रह्यो ही जिन्होंने पार्वतीजीके बरसे अपने सौपीके कड़े हाथके बत्तार बिंदु होगे और वे ममिष्ठ विजयरोषर पड रह्यो ही, उस समय तुम बरलख बल, बरव धाने बटवर सीटीके समान वन जाना जिससे उन्हे ऊपर चढ़नेमें सुविधा हो ॥६४॥ हे मित्र ! उस पर्वतपर बहुत-सी प्रप्यराएँ अपने नय-जडे कमनोकी मोर कुम्हारे ढारीमें जुधोकर तुम्हारे शरीरके जल-पाटाएँ निकाल सेंगी और तुम्हें फुल्लरेका धर बना डालेंगी । उस समय यदि वे अपने पार्व शरीरोंकी ठडक मिलनेके कारण तुम्हें न छोडें तो तुम उन सिलगटी देवायनामोसे धुटकारा पालेके लिये कान पादनेवाला प्रपना गर्जन सुनाकर उन्हे डरा देना ॥६५॥ देखो ! वहाँ पहुँचकर पहले तो तुम उस मानशरोरका जल पीना जिसमें सुनहरे नयन भिन्ना करते हैं । ऐरावतके मूँदपर थोड़ी देर कपडे-सा ढाँकर उराका मन बहुसा देना, फिर जाकर कल्पद्रुमके नीचल पत्तोंकी महीन कपडेकी भाँति हिला देना । ऐसे ऐसे बहुत-से खेल करते हुए तुम कैलास पर्वतपर थो भरकर

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूलां  
 न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलक्षं जास्पसे कामचारिन् ।  
 या वः काले वहति सलिलोद्गारमुर्ध्वनिमाना  
 मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाग्मृन्दम् ॥६७॥

॥इति महाकविश्रीकालिदासद्वितीयैः मेघदूते षोडशो पूर्वमेघः समाप्तः॥

पूमना ॥६६॥ उसी कंलास पर्वतकी गोदमें सतवापुरी बंसे हो बसी हुई है वंसे अपने प्यारेकी गोदमें कोई कामिनी बंठी हो और बहति निकली हुई गगाजीकी धारा ऐसी लगती है मानो उस कामिनीके शरीरपरसे सरकी हुई उसकी छाठी हो । यह नहीं हो सक्ता कि ऐसी सतवापुरी देखकर तुम पहचान न पाओ । ऊँचे-ऊँचे भयनोशाली सतवापुर यहाँके निर्गमे बरसते हुए बादल ऐसे छाए रहते हैं जैसे कामनिर्गमे शिरपर मोती गुंथे हुए लूहे ॥६७॥

॥ महाकवि श्रीकालिदासके बनाए हुए मेघदूत काव्यमें पूर्वमेघ समाप्त हुआ ॥

## ॥ उत्तरमेघः ॥

विद्युत्स्वन्नं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः  
 संगीताय ग्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ।  
 अन्तस्तोयं मणिमयशुवस्तुद्गमअंलिहाग्राः  
 प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तेर्स्तर्विशेषैः ॥१॥  
 हस्ते लीलाकमलमलके बालमुन्दानुविद्धं  
 नीतग्लोभप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ।  
 चूडापाशे नवकुरषकं चारु कशे शिरीषं  
 सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं बधूनाम् ॥२॥  
 [यत्रोन्मत्तभ्रमरसुखराः पादपा नित्यपुष्पा  
 हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः ।  
 कैकोत्कण्ठा भवनशिशिनो नित्यभास्वरफलापा  
 नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोपृचिरम्याः प्रदोपाः] ॥३॥  
 ध्यानन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-  
 रनन्यस्तापः कुसुमशरजादिदसंयोगसाध्यात् ।  
 नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति-  
 विदेशानां न च खलु ययो यौवनादन्यदस्ति ॥४॥

### उत्तरमेघ

हे मेघ ! प्रलकापुरीके ऊँचे-ऊँचे मदन सब बातीमें तुम्हारे जैसे ही हैं । यदि तुम्हारे पास विजली है तो उन मन्वनों में भी बटकीसी बारियाँ हैं, यदि तुम्हारे पास इन्द्रपद्म है तो उन मन्वनों में भी राग-द्विगे बिज सटके हुए हैं । यदि तुम मृदु-गम्भीर गजन कर सके हो तो वहाँ भी सगीतके साथ मृदग बजते हैं, यदि तुम्हारे भीतर मोता जन है तो उनकी परती भी नीलनसे जड़ी हुई है और यदि तुम ऊँचे चढ़े हुए हो तो उनकी सटारियाँ भी घानास पूमती हैं ॥१॥ देसो ! वहाँकी कुलपधुरें हाथोंमें बगलने ब्राह्मण पहनती हैं, अपनी पीठियोंमें नये लिले हुए कुन्दके फूल सूँघती हैं, अपने मूँहकी सोझने कुन्वेला पदाप मतकर गोरा बरती हैं, अपने कूँडेमें नये कुरबके फूल खोसती हैं, अपने बालोपर हिरणके फूल रखती हैं और यपमें फूल उठनेवाले बदनके फूलोंमें अपनी माँग सँवार करती हैं ॥२॥ वहाँपर मदा फूलनेवाले ऐसे बहुतने वृक्ष मिलेंगे, जिनपर मतवाले पति मुनमुनाते होंगे । वहाँ बारहमासी बगल और बनलिनियोंकी हगोकी पति सेरे रहती हैं । वहाँ मदा चमकीले पत्तोयाने पाननू मोर ऊँचा धार दिए हुए रात दिन जोनने रहते हैं और वहाँकी रातें मदा पदिनी रहनेसे बड़ी जनकी पीर मनभावनी होती है ॥३॥ वहाँ रहनेवाले यज्ञोपी प्राणोंमें केवल पानन्दके ही मीनू

यस्यां यज्ञाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि  
 ज्योतिस्त्रायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः ।  
 आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसृतं  
 त्वद्गम्भीरघ्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु ॥५॥  
 मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि-  
 र्मन्दाराशामनुतटरुहां छाद्यया वारितोष्णाः ।  
 अन्वेष्टव्यैः कनकसिक्ततामुष्टिनिषेपगूढैः  
 मंकीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ॥६॥  
 नीवीबन्धोच्छ्वसितशिशलं यत्र विम्याघराणां  
 क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ।  
 अर्चिस्तुङ्गानभिद्युस्त्रमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्  
 ह्रीमूढानां भवति निफलप्रेरया चूर्णमुष्टिः ॥७॥  
 नेशा नीताः सतगतिना यद्विमानाग्रभूमि-  
 रालेख्यानां नवजलकषैर्दोषमुत्पाद्य सद्यः ।  
 शङ्कास्पृष्टा इव जलमृचस्त्यादृशा जालमार्गै-  
 र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥८॥

भाते हैं। प्यारेके मिलनेसे दूर हो जानेवाली विरहको जलनकी छोड़कर और किसी प्रकारकी जलन  
 वहाँ नहीं होती। प्रेमसे छूटनेको छोड़कर और कभी किसीका बिनासे विरह नहीं होता और जवानी-  
 की घबराहको छोड़कर दूसरी घबराह वहाँ नहीं पाई जाती ॥५॥ वहाँके यश अपनी घलधेली स्त्रियोंको  
 लेकर स्फटिक मणिके बने हुए अपने उन अपनीपर बैठते हैं जिनकी पचरर परी हुई तारोकी छाया  
 ऐसी जान पड़ती है मानो फूल टँके हुए हो। वहाँ बैठकर वे लोग कामदेवको उभारनेवाला यह मधु  
 भी रहे होंगे जो उन बाजोके मन्द-मन्द बजनेपर कल्पवृक्षसे निकलता है तो तुम्हारे गभीर  
 गर्जनके समान ही गूँजा करते हैं ॥६॥ वहाँकी कन्याएँ इतनी सुन्दर हैं कि देवता भी उन्हे पामेके  
 लिये तरसते हैं। वे कन्याएँ, मन्दाकिनीके जलकी पुहारसे ठंडाए हुए पवनसे, सटपर खड़े हुए वरुण-  
 वृष्टीकी छायासे अपनी उपन मिटाती हुई, अपनी मुट्टियोंसे रत्न लेकर उनको मुनहरे वासुदे डालकर  
 दिगामे और डूँडनेका खेल खेलती हैं ॥७॥ वहाँके प्रेमी लोग सयोगके लिये अपने धवल हाथोंसे  
 अपनी प्यारियोंकी कमरकी गाँठें खोलकर जब उनको डोली छादियोंको हटाने लगते हैं तब वे लाजसे  
 इतनी सजुवा जाती हैं कि वे और कुछ न पाकर मुट्टीसे गुमान भरकर ही जबमगाते हुए रत्न दीपों-  
 पर फेंकने लगती हैं, पर उनका गुलाल फेंकना सब प्रकारम ही जाता है ॥८॥ हे मेघ ! तुम्हारे जैसे  
 बहुतमे दादल, वायुके भोपेने साथ वहाँसे सत राटे मनकोने अपनी मटोमे पुगकर भीतर टँके  
 हुए विद्योको अपने जलकषोंमे बियोकर मिटा दते हैं और फिर, वे पुँरुँका रूप बनानेमे पशुर  
 दादल, इतने मारे ऋषे मरुतोकी जातियोंमेसे छिद्रा-भ्रिनरकर निकल भागते हैं ॥८॥ वहाँ

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्र्वासिताना-  
 मद्गम्लानि सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः ।  
 त्वत्मंरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीये  
 न्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥६॥  
 अक्षयान्तर्भवनिघयः प्रत्यहं रक्तकण्ठै-  
 रुद्गायद्विर्धनपतिपशाः किन्नरैर्यत्र सार्धम् ।  
 वैभ्राजास्यं विभुषयनिपाचारमुख्यामहाया  
 बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति ॥१०॥  
 गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः  
 पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्ष्वविभ्रंशिमिश्र ।  
 मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-  
 र्नेशो मार्गः सवितुरुदये सूर्यते कामिनीनाम् ॥११॥  
 घासधिन्नं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदत्तं  
 पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान् ।  
 लाघौरागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या-  
 मेकः सते सकलमवलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥१२॥

प्राची रातके रामन, सुती चाँदनीमे, भासरीमे लटके हुए बन्दकान्त मलियौसे दपकता हुमा जल उन खिलौकी बकावट दूर परता है जिनके शरीर प्रियतमकी भुजायोग कसे रहनेसे डीले पत्र जाते हैं ॥६॥ वहाँ घघाह सपत्तिकाले कामी लोग अम्बरामो के साथ बातें करते हुए धीर जैसे प्यारमें भीठे गलीसे दुबेरका बस मानेवाले मिल्नरोके साथ बँटे हुए बंधाव नामके बाहरी उपवनमें रात-दिन बिहार किया करते हैं ॥१०॥ वहाँ की कामिनी खिलाँ जब रात को अपने प्रेम्णिके पास बल्लो-जल्दी वर बढ़ाकर जाने लगती हैं, उस समय उनकी चोटियोंमे बुँधे हुए कल्पवृक्षके फूल और पत्तों लियकर निकल जाते हैं, कामोपर घरे हुए सोनेके कमल गिर जाते हैं और हारोसे टूटे हुए मोटी भी इपर-उपर बिसर जाते हैं । दिन निकलने पर इन वस्तुओंको माभने बिलया हुमा देखकर लोग समझ लेते हैं कि ये कामिनी खिलाँ लियर-किधरये होकर अपने प्रेम्णिके पास पहुँची होगी ॥११॥ वहाँ रग-बिरले बस्य, नेत्रोमे शकपन बढ़ानेवाली मँदिरा, कोमल पत्ते और फूल, उप-उपने घाभुपण, पैरोमें लगानेका महावर आदि स्त्रियोंके सिंगारकी जितनी वस्तुएँ हैं सब अपने-कल्पवृक्षसे ही मिल जाती है ॥१२॥ पत्तेके समान सानले बहाने बोधे अपने रग और अपनी चालमें धूर्णके घोडोको भी कुछ नहीं समझते । यहदृष्ट जैसे ऊँचे-ऊँचे डील-डीलवाले वहाँके हाथी जैसे ही मद मरखाते हैं जैसे गुम पानी बरसाते हो और वहाँ के लटकने अपने सब भाभुपण छोडकर बस उन पावोंके चिह्नोको ही भाभुपण समझते हैं वो उन्हीने राजाएते सधते

पत्रश्यामा दिनकरहपस्पर्धिनो यत्र वाहाः

शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात् ।

योधाग्रख्यः प्रतिदशमुखं मंयुगे तस्थिवांसः

प्रत्यादिष्टामरखरुचपञ्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ॥१३॥

मत्स्या देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्दसन्तं

प्रायश्चार्यं न वहति भयान्मन्मथः पट्पदज्यम् ।

सभ्रभंगप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोचै-

स्तस्परम्भश्चतुरयनिताविभ्रमैरेव सिद्धः ॥१४॥

तत्रागारं धनपतिगृहानुचरेखास्मदीयं

दूरान्तक्षयं सुरपतिधनुश्चारुणा तीरखेन ।

यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे

हस्तप्राप्यस्तभकनामतो बालमन्दारवृक्षः ॥१५॥

वापी ष्वास्मिन्मरकतशिलावद्भ्रसोपानमार्गा

ह्रैमैश्लक्षा विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः ।

यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं संनिकृष्टं

नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ॥१६॥

तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः

क्रीडाशैलः कनकदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः ।

मद्गोहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण

प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ॥१७॥

हुए सबकी पन्द्रहास नामकी बरखायगो खाए थे ॥१३॥ वहींपर बुयेरके मिय शिबजी भी रत्ना बरते हैं इनलिये बरने मारे कामदेव धपना भीतीकी डोरीवाला बनूप वहाँ नहीं पढावा परम् वहाँकी छत्रोनी चतुर खिया जो धपने प्रेमियोकी धोर बाँकी चितवन चसाती है उसीगे कामदेव धपना धनुपना काम निबाल लेता है ॥१४॥ वहीं बुयेरके मयनगे उत्तरकी धोर इन्द्रपनुपके समान सुन्दर गोल पाटकवाला हमारा भर तुम्हे दूरसे ही दिताई पढेगा । उसीके पास एक छोटा सा बन्दवृक्ष है जिसे मेरी स्त्रीने पुत्रके समान पास रक्ता है । वह पूरनेके मुष्टीसे इतना मुखा हुआ होगा कि नीके गटे लहे ही वे मुष्टे हाथगे छोड़े जा सकते हैं ॥१५॥ बीच परमे जानेपर तुम्हें एक वातकी मिलेगी जिसकी मीड़ियोंपर नीलम नखा हुआ है धोर जिसमे विबने बंदूके मणिकी कण्ठवाले बहलमे तुमहारे बमल लिले हुए होंगे । उसने जनमें बसे हुए ह्य इतने गुणी है कि मानसरोवर-ने इतने पास गीते हुए जो तुम्हें देगवर वे वहाँ नहीं जाना चाहेंगे ॥१६॥ उत बावटीके तीरपर एक बनावटी पहाक है, जिसकी चोटी नीलमणिकी बनी हुई है धोर जो चारों धोरले सोनेके बेलों

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः

प्रत्यासन्नौ कुरबकच्युतेर्माघवीमखण्डस्य ।

एकः सरूपास्तव सह मया वामपादाभिलाषी

काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छन्ननास्याः ॥१८॥

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-

मूर्त्ते बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः ।

तालैः शिञ्जावलयसुभ्रगैर्नर्तितः कान्तया मे

यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुदृक् ॥१९॥

एभिः साधो ! हृदयनिहितैर्लक्ष्मैर्लक्षयेथा

द्वानोपान्ते लिखितचपुषी शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा ।

सामच्छायं भवनमधुना गद्वियोगेन नूनं

द्वयापाये न खलु कमलं पुप्यति स्वामयिख्याम् ॥२०॥

गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः

क्रीडाशौले प्रथमकथिते रम्यसानौ निपण्णः ।

अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पारूपभासं

खद्योतास्तीविलसितनिभां विद्युदुन्मेपट्टिम् ॥२१॥

से घिरा होनेके कारण देखते ही घबराता है । देखी मित्र ! जबत मेरी घरवाली को बड़ा प्यारा है इसलिये जब मैं तुम्हें बिजलीके साथ देखता हूँ तब मेरा भव झकेतर होनेसे उदास हो जाता है और वह पहाड़ मेरी दाँसो के भागे नरचने लगता है ॥१८॥ उस बनावटी पर्वतपर कुरबकके वृक्षोके धिरे हुए मापकी मठपने पाता ही एक तो कचल पत्तीवाला साल मसोवका बुध लवा है और दूसरा मौलतिरीका पेड़ है । जैसे मैं तुम्हारी सखीके पैरकी ओवर खानेके निय तररा रहा हूँ जैसे ही वह मसोक भी फूलनेका बहाना लेबर मेरी पत्तीके बाएँ पैरकी ओकर खानेके लिए तरत रहा होगा और दूसरा मौलतिरीका पेड़ भी उसके मुँहसे निकले हुए महिराने छोटे गाना चाहता होगा ॥१९॥ उन दोनो वृक्षोके गये दाँसके समान चमकोले मखियोसे बनो हुई एक चौकोरे है, जिसके ऊपर स्फटिककी एक चौकोर पटिया रखी हुई है । उस पटियापर बसी हुई एक सोनेकी छठपर तुम्हारा मित्र मोर निज राभ्रको धानार बंठा करता है और मेरी स्त्री उसे अपने घुँवऊपर बनेवाले हाथोसे ताजिमो बजा-बजाकर नचाया करती है ॥२०॥ हे साधु ! यदि तुम मेरे बढाए हुए ये चिह्न भली भाँति स्मरख स्वतोमे और मेरे द्वारपर खल और पथके चित्र देख लोये तो तुम मेरा घर ध्वरप पहनाम लोमे । मेरे बिना यह भवन बडा सूना-सूना-सा और उदास-सा दिखाई देता होगा क्योंकि सूर्यके दिप जानेपर तो बमल उदाग हो ही जाता है ॥२०॥ देखो ! यदि तुम्हें मेरे घरके भटने नटना हो तो चटके हाथीके बन्धे जैसे छोटे बनकर परमे खेलके लिए बनाई हुई पहाडीकी गुहाबनी बोटीपर जा



तन्वी श्यामा शिखरिदशना एकविम्बाधरोष्ठी  
 मध्ये चामा चकितहरिणीप्रेक्षया निम्ननाभिः ।  
 श्रोणीभारादलसगमना स्तोक्रनत्रा स्तनाभ्यां  
 या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव घातुः ॥२२॥  
 तां जनीयाः परिमितक्यां जीवितं मे द्वितीयं  
 दूरीभूते मयि सहचरे चकवाकीमिवैकाम् ।  
 गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु वासां  
 ज्ञातां मन्ये शिशिरमयितां पद्मिनीं घान्यरूपाम् ॥२३॥  
 नूनं तस्याः प्रवलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया  
 निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।  
 हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-  
 दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्विभर्ति ॥२४॥  
 आल्लोके ते निपतति पुरा सा यलिव्याकुला वा  
 मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ।  
 पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां  
 कधिद्भर्तुः स्मरति रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥२५॥

बंठन और फिर अपनी विजलीकी भाँसें जुगनुभोके समान बोड़ी-बोड़ी-सी कमबानर मेरे परके  
 भीतर भाँकना ॥२१॥ वहाँ जो दुवली-पतनी, नग्ने-नग्ने दाँतोवाली, पके हुए बिबाफलके समान  
 लाल भोठीवाली, पतली कमरवाली, बरी हुई हरिणी समान घाँवोवाली, गहरी नाभियाली,  
 मिताभोँके बोझले पीरे-पीरे चननेवाली और स्तनोके भारसे कुछ प्रायेको झुकी हुई युवती तुम्हें  
 दिखाई दे रही मेरी पत्नी होगी । उसकी सुन्दरता देखकर यही जान पड़ेगा मानो ब्रह्माकी सबसे  
 बढ़िया बारीगरी कही हो ॥२३॥ अपने छापीले बिलुई हुई चकवीके समान धनेली रङ्गनेवाली  
 और कम बाँधनेवाली उस सुन्दरीको देखकर ही तुम समझ जाँगे कि वह मेरा दूतच प्राप्त ही है ।  
 बिरहके कठोर दिन बड़ी उदायनीसे मितासे-वितासे उसका रूप भी बदल गया होगा और जो  
 देखकर तुम्हें यह धोखा हो सकता है कि यह कोई वाला है या पानेने मारी हुई कोई कमलिनो  
 है ॥२३॥ देगो मेघ ! मेरे बिलोहने रोते-रोते मेरी प्यारीकी घाँसें शून्य गई होंगी, गर्म साँतोने  
 समके भोठीका रंग पीला पड़ गया होगा, चिन्ताके कारण माँतोपर हाथ परनेने और वातोके  
 मूँहपर धा जानेसे उतरा चपूरा दिखाई देनेवाला मूँह मेघके ढके हुए पन्द्रमाके समान घुँघता  
 और उदाय दिग्गर्द दे रहा होगा ॥२४॥ देगो मेघ ! या तो वह तुम्हें वहाँ देखजाओगे पूजा  
 पड़ती मिलेगी या अपनी चन्नामे मेरे इन बिरहने दुबले धरोरवा चिन्त बनाती मिलेगी  
 या निम्नमे बँठी हुई मिठवीकी बँनागे यह युवती मिलेगी कि हँ मँगा ! तुम अपने जिन पतिकी  
 प्यारी हो, उसे भी कभी स्मरण करनी हो ? ॥२५॥ या भैया ! यह मैंने कहीं पढ़ने हुए,

उत्सङ्गे वा भलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां  
 मद्रोत्राङ्गं विरचितपदं गेयमुद्रातुकामा ।  
 तन्त्रीमाद्रीं नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचि-  
 द्भ्रूयो भ्रूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥२६॥  
 शेषन्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा  
 विन्यस्यन्ती भ्रुवि गणनया देहलीटचपुष्पैः ।  
 मत्सङ्गं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती  
 प्रायेस्यैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः ॥२७॥  
 सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः  
 शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते ।  
 मत्संदेशैः सुखयितुमलं पश्य सार्धं निशीथे  
 तामुन्निद्रामवनिशयनां सौघवातायनस्थः ॥२८॥  
 स्निग्धाः सरुयः कथमपि दिवा तां न मोक्षयन्ति तन्वी-  
 मेकप्रस्था भवति हि जगत्पञ्जनानां प्रवृत्तिः ।  
 स त्वं रात्रौ जलद शयनासन्नवातायनस्थः  
 कान्तां सुप्ते सति परिजने वीतनिद्रामुपेयाः ॥२९॥

गोदमे वीणा लिए, जैसे स्वरते मेरे नाभवाने गीत गाती मिलेगी । उस समय वह अपनी झालीके भाँसुघोषे भीगी हुई वीणाको तो जैसे तेंगे घोस लेगी पर मेरा स्वरए या जानेसे वह ऐसी मेघुप हो जायगी कि अपने सचे हुए स्वरीके उतार चढावको भी वह बारबार भूलती या रही होगी ॥२६॥ या मेरे बिरहक दिनसे ही यह देहलीपर जो कूच निरव रखती चतती है उन्हे भरतीपर फँसाकर गिन रही होमी कि पय बिरहसे कितने महीने बच गए हैं । या फिर वह मेरे साथ किए हुए समीपके प्रासादका मन ही मन रस लेती हुई बँठी होगी, क्योंकि अपने प्यारीके विछोहमे खियाँ प्राय ऐसी ही बालीम अपने दिन काटती है ॥२७॥ हे विप ! तुम्हारी सलीके इन कामोमे सचे रहनेके कारण दिनमे तो उसे मेरा त्रिषोह कुछ नहीं सतावा होगा पर मुझे डर है कि रातके लिये कुछ नाम न होनेसे उसकी रात बडे कष्टसे बीतती होगी । इसलिये मेरा सदेव मुताकर उसे सुख देनेके लिये तुम झायी रातको मेरे मकानमे अरोसोपर बँठकर उसे देना, क्योंकि उस समय वह तुम्हे भरतीपर उनीदी सी पडी मिलेगी ॥२८॥ देखो ! उसरी प्यारी सखियाँ, उस कोमल देहवालीको दिनमे कभी झकेली नही छोडेंगी, क्योंकि ससारमे सजी खियाँ, अपनी सखियोंके दु समें कभी उनका साम नहीं छोडती । इसलिये तुम उसके पनपके पासवाली खिडकीपर बँठकर मोठी डेर परसना भीर जब ये सखियाँ तो जायँ तब रातको मेरी जायती हुई प्यारीके पास पहुँच जाना ॥२९॥ धीर वहाँ तुम मेरी प्यारीको ढूँढ लेना, जो वही कही भरतीपर एक क्षण्ट पडी होगी । उतक पास पास मौलियोंमे हारके टूटे हुए टुकडोनि समान यामू विखरे हुए होंगे धीर वह अपने बडे हुए नलीवाले हाथव अपना उध इनहरी थोडोमे उन रचे धीर जलमे हुए

अन्वेष्टव्यामवनिशयने सन्निकीर्णैकपाश्वर्या

तत्पर्यङ्कप्रगलितनयैश्छिन्नहारैरिवास्तैः ।

भूपो भूयः कठिनविपमां सादयन्तीं कपोला-

दामाक्तव्यामयमितनखेनैकवेश्यां करेण ॥ ३० ॥

आधिदासां विरहशयने संनिपण्णैकपाश्वर्या

प्राचीमूले तनुमिव क्लामात्रशेषां हिमांशोः ।

नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या

तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥ ३१ ॥

पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टा-

न्पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं संनिष्टुचं तथैव ।

चक्षुः खेदात्सलिलगुरुभिः पद्मभिरश्लादयन्तीं

साभ्रेऽह्नीष्वस्थलकमलिनीं न प्रयुद्धानं सुप्ताम् ॥ ३२ ॥

निःश्वासेनाधरकिमलयक्लेशिना विन्निपन्तीं

शुद्धस्नानात्परुपमलकं नूनमागण्डलम्बम् ।

मत्संभोगः कथमुपनयेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा-

भाकाद्चन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥ ३३ ॥

शालीको अपने गालोपरसे बार-बार हटा रही हूँगी जो अब आपने बीतनेपर ही सुलभाए जा सकेंगे ॥३०॥ देखो ! जो प्यारी, मेरे साम जी भरकर समोग करके पूरी रात दाए भरके समान विता देती थी वही आज रिछोहकी बिन्तासे सूखी हुई और मूने पर्यंगपर एक करवट लेटी हुई पुरबके सिचिजपर पहुँचे हुए एक कला भर बने हुए चन्द्रमाके समान दुबली होकर अपनी रातें पर्व प्राँसू बहान्यहाकर बिता रही होगी ॥३१॥ जानियोगेसे छनकर जो चन्द्रमाकी फिरछें था रही होंगी चाहें वह समझती होगी कि पहले सुखके दिनोंमे वे जैसी प्रयुँगेके समान ठण्डी थी वैसे ही अब भी होगी और वही समझकर वह उन फिरछोकी और मूँह करेगी पर फिर विरहके बारछ जय के फिरछें उठे जताने लगेंगी तब वह अपनी प्राँसू-नरी प्राँसू पलनोके ढक लेगी । उस समय मेरी प्यारी ऐसी दिखाई देगी जैसे बदलीके दिन धरतीपर सितनेवाली कोई अधखिली नमलिनो हो ॥३२॥ मेरे विरहमें वह आजरन कोरे जलसे ही नहाती होगी इसलिये उसने अपने और बिना छेवारे हुए बाल, उसके गालोपर सटबकर उसके पतले धोठोंको तपानेवासी साँसिले हिल रहे होंगे । वह बारबार यह सोचकर अपनी प्राँसूमें नीद गुला रही होगी कि किसी प्रकार स्वप्नमे ही प्यारेते समोग हो पाम पर प्राँसूके लगातार बहते हुए प्राँसू, उसनी प्राँसू भी नहीं लगने देते होंगे ॥३३॥ विद्युदनेके दिनते ही उसने अपने लूबेकी माता सोसकर जो वह दृषहरी धोटी बांध ली थी जिसे छूनेमे भी उसे पीटा होती है और जिसे पाप बीतने पर मैं ही गुलसे खोलकर बाँधूगा, उसी उलझी और बिसरी हुई रुती धोटीको वह अपने बड़े हुए बसोंवाले आपोमे अपने नरे हुए गालो परसे बार-बार

आद्ये वद्धा विरहदिषसे या शिखा दाम हित्वा  
 शापस्यान्ते विमलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम् ।  
 स्पर्शकिलष्टामयमितनखेनासकृत्सारयन्तीं  
 गण्डाभोगात्कठिनविपगामेकवेणीं करेण ॥३४॥  
 सा संन्यस्ताभरणमवला पेशलं धारयन्ती  
 शय्यात्सङ्गे निहितमसकृदुःखदुःखेन गात्रम् ।  
 त्वामप्यसं नवजलमयं मोक्षयिष्यत्यवश्यं  
 प्रायः सर्वो भवति करुणावृचिराद्रान्तरात्मा ॥३५॥  
 जाने सख्यास्तव मयि मनः संभृतस्नेहमस्मा-  
 दित्यंभूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि ।  
 वाचालं मां न खलु सुमगम्मन्यभावः करोति  
 प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद्दृशातर्कन्तं मया यत् ॥३६॥  
 रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं  
 प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतम्रूबिलासम् ।  
 त्वय्यासत्ते नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या  
 मीनचोभाचलकुवलयपथीतुलामेष्यतीति ॥३७॥  
 वामक्षास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-  
 र्मुक्ताजाल चिरपरिचितं त्प्राप्तितो दैवगत्या ।

हुआ रही होगी ॥३४॥ जब तुम देखोगे कि वह बेकारी बार-बार दुःखसे पछाड़ जा-जाकर परलोकके पास पड़ी हुई, किसी-किसी प्रकार अपने बिना मातृपल्लोकके कोमल शरीरको संभाले हुए है तब तुम भी उसकी दृष्टापर अपने नये जसके भाँसू बहाए बिना न रह सकोगे क्योंकि दूसरोका दुःख देख-  
 कर कौन ऐसा कोमल हृदयवाला है जो पलीज न जाय ॥३५॥ मैं मानता है कि तुम्हारी सखी मुझे भी भरकर प्यार करती है इसीलिये मैं सोचता हूँ कि वह इस पहले-पहलके बिलोद्वेष्टे बुझती हो गई होगी । यह न समझो कि ऐसी पतिव्रता स्त्रीका पति होनेके सोभावप्ये मैं श्रवण नद-बदकर बोल रहा हूँ वरन् भैया ! मैंने जो कुछ कहा है वह सब तुम्हारी भाँसोके छापने ही का जायगा ॥३६॥  
 जब तुम उसके पास पहुँचोगे तब उस मुगकपतीकी यह भाई शीघ्र फडक उठेगी जिसपर बाल फँसे हुए होंगे, जो मानन लगनेसे रुधी हो गई होगी और जो बहुत दिवसे मदिरा न पीनेके कारण भीहे पलाना भी भूल गई होगी । उस समय पढ़वती हुई वह वाईं भाँसू उस नीले कमल-  
 जंसी सुन्दर दिवाईं देगी जो मछलियोंके श्वर-उधर घाने-जानेके फौप उख करता है ॥३७॥  
 तुम्हारे पहुँचते ही, नये फेलेके खमेके छपान उसगी यह गोरी-गोरी भाँसू भी पश्य उठेगी जिसे मैं समोग कर चुकनेपर अपने हाथसे दबाया नरऊ का । उस जाँपपर न तो तुम्हें भेरे हाथके नख-

संभोगान्ते मम समुच्चितो हस्तसंवाहनानां  
 यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्वलत्वम् ॥३८॥  
 तस्मिन्काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुरा स्या-  
 दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्र ।  
 माभूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्रलब्धे कथंचि-  
 त्सद्यःकस्युतमुजस्रताग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥३९॥  
 , तामृत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन  
 प्रस्याधस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम् ।  
 विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाधे गवाक्षे  
 धक्तुं धीरः स्तनितवचनेर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ॥४०॥  
 भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं  
 तत्संदेशैर्हृदयेनिहितैरागतं त्वत्समीपम् ।  
 यो घृन्दानि त्वरयति पथि भ्राम्यतां प्रोपितानां  
 मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेशिमोचोत्सुकानि ॥४१॥  
 इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीधोन्मुखी सा  
 त्वांमृत्कण्ठाच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चैवम् ।  
 श्लोभ्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां  
 कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमार्त्तिकचिदूनः ॥४२॥

बिल्ल ही बने मिलेमे धीर न दुर्भाग्यवता उखपर वह मोठियोकी करपनी ही पटी मिलेगी जिते वह  
 बहुत दिनेसे पहनती चली घा रही थी ॥३८॥ हे मेघ ! तुम्हारे पहुँचनेपर यदि उरी कुछ नींद  
 प्राप्ति लगे तो तुम उसके पीछे चुपचाप एक पहर ठहरे रहना जिससे यदि मेरी प्यारी कहीं स्वप्नमे  
 मुझमे कचकर लिपटी हुई हो तो मेरे कठम पडी हुई उसकी मुजाएँ भयानक नींद दूनेको सूट न  
 पडे ॥३९॥ एक पहर ठहरनेपर भी वह धीरे न शोल तो तुम मावतीके गये पूरुके समान  
 गौमल मेरी प्यापीकी, अपने जलकी फुहारसे ठण्डा किया हुआ वायु चलाकर, जगा देना । प्राँसे  
 सोलनेपर जब वह करोमेसे तुम्हारी धीर एकदम होकर देवे तो तुम अपनी विजलीकी धिया लेना  
 धीर अपने पीने पत्रनेके दागमे उम मानिनीसे बात-चीत चला देना ॥४०॥ उससे कहना—  
 हे सोभाग्यवती ! मैं तुम्हें यह बता दूँ कि मैं तुम्हारे पतिवा प्रिय मित्र मेघ, तुम्हारे पास उनका  
 सदेश लेकर आया हूँ । मैं अपनी धोमी धीर सीटी घरजसे उन गने हुए बटोहियो से मनमे भी पर  
 लीटनेकी हबवटी मचा देऊ हूँ जो अपनी खियोनी उलभी हुई इषहरी चोटियाँ गुलभानेके तिये  
 उतापले रहो है ॥४१॥ यह गुनकर मेरी प्यारी तुम्हारी धीर मुँह करने बडे चाबसे, गडे सिले  
 हुए जीमे धीर बडे धादरने जान सपानर तुम्हारा सज गदस उयो प्रनार सुनयो जंसे पीताजीमे

तामायुष्मन्मम च वचनदात्मनश्चोपकृतं  
 त्रयादेवं तव सचहरो रामगिर्याश्रमस्थः ।  
 अन्वापन्नः कुशलमत्रले पृच्छति त्वां विमुक्तः  
 पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राशिनामेतदेव ॥४३॥  
 अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढवपुनेन तप्तं  
 साक्षेणाश्रुद्रुतमविरतोत्करुणमुत्कण्ठितेन ।  
 उभयोर्भ्यासं समाधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती  
 संकल्पैस्तेविंशति विधिना वैरिणा रुद्रमार्गः ॥४४॥  
 शद्रारूपेयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्ता-  
 रकर्णं लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात् ।  
 सौप्तिकान्तः श्रयणविषयं लोचनाभ्यामट्ट-  
 स्त्वामुत्करुण्टाविरचितपदं मन्मस्त्रेनेदमाह ॥४५॥  
 शयामास्यङ्गं चकितहरिणीप्रेतशो दृष्टिपातं  
 वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान् ।  
 उत्पस्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रविलासान्  
 हतैकस्मिन्कचिदपि न ते चखिहं सादृश्यमस्ति ॥४६॥

हुनुमानवीची घातें तुनी थी । हे भैया ! जिनके मुँहसे पतिका सदेव पाकर जियोको मरने प्रियके मिलनते कुछ कम सुख सोये ही मिलता है ? ॥४३॥ हे भायुष्मन् ! तुम मेरे कहनेसे और बूढ़ेकी भलाई करनेवा पुण्य लेनेके निधे उतसे जाकर कहना—हे भवभा ! तुम्हारा विमुक्त हुआ सावी रामविरिके आश्रममें कुशलसे है और तुम्हारी कुशल जानना चाहता है क्योंकि देखो ! जिन सौगोंवर मन्मन्क विपत्ति आ गई हो, उनसे पहले-पहल यही पुण्यना ठीक होता है ॥४३॥ तससे कहना—  
 दूर बैठे हुए प्यारे साथीका मार्ग तो बँटी बहाना रोके बँडा है, इसलिये वह तुमसे मिल जते ही न सके, फिर भी वह मरने दुबलेपन, तपन, लगातार बहते हुए धाँस, मिलनेका चाव और गर्म उछाँतो को देख-बेलाकर ही मनमें समझ लेता है कि तुम भी वैसे ही जिज्जोहमे दुबली हो गई होगी, निरहसे तप रही होगी, आँसोसे भर-भर आँसू बहा रही होगी, मिलनेको उतावली होगी और दिन-रात सबी सबी मर्ग उछाँते से रही होगी ॥४४॥ हे भवभा ! तुम्हारे प्यारेको अब तुमसे कोई ऐसी भी बात कहनी-होती थी जो तुम्हारी सखियोंके धामे उंचे स्वरसे कही जा सकती थी तब भी वह तुम्हारा मुँह पूमनेके लोमसे तुम्हारे कानसे ही कहनेको तुला रहता था । अब तुम मरने उस प्यारेकी न तां दानपीत ही मुव सकती हो और न उसे आँसू भर देख ही सक्ती हो, इसलिये उसने बडे चावसे मेरे मुँहसे यह कहला भेजा है ॥४५॥ कि—हे प्यारी ! मैं यहाँ बँडा, त्रियगुणी सतामे तुम्हारा दारीद, ठरी हुई हरिणीकी आँसोमे तुम्हारी बितवन, चन्द्रयामे तुम्हारा मुल, मोरीके पल्लोमे तुम्हारे घाल और नदीकी छोटी-छोटी सहरियोंमे तुम्हारी कटीसी मोहि देवा करता हँ । तो भी है

त्वामालिख्य प्रणयकूपितां धातुरागैः शिलाया-  
 मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि वर्तुम् ।  
 अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे  
 क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते मंगमं नौ कृतान्तः ॥४७॥

[धारासिक्तस्थलसुरभिण्यस्त्वन्मुखस्यास्य बाले  
 दूरीभूतं प्रवज्जुमपि मां पञ्चवाणः क्षिणोति ।  
 धर्मान्तेऽस्मिन्निगणय कथं वासराणि ब्रजेयु-  
 दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि] ॥४८॥

मामाकाशप्रखिहितशुभं निर्दयारश्लेषहेतो-  
 र्लब्धापास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु ।  
 पर्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्यलीदेवतानां  
 मुक्तास्थूलास्तरुकिसलपेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥४९॥

भिन्वा सद्यः किमलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां  
 ये तत्क्षीरसुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ।  
 आलिङ्गयन्ते गुणवति मया ते तुपाराद्रिवाताः  
 पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥५०॥

बण्डी ! मुझे दुःख है कि इनमें से कोई एक जो पूरे रूपसे तुम्हारी बराबरी नहीं कर पाता ॥  
 जब मैं पत्थरकी पटियापर बैठते तुम्हारी खड़ी हुई मूर्तिका चित्र खींचकर यह बनाना चाहता हूँ कि  
 तुम्हें मनानेके लिये मैं तुम्हारे पैरो पटा हूँ उस समय घ्रासू ऐसे उभडे पडने हैं कि भर झीख देलने  
 भी नहीं देते । निर्दयी कामकी हमारा चित्रमे दिसना भी नहीं सुहाता ॥४७॥ है बासा ! एक  
 तो मैं जो ही तुम्हारे उठ मुल्ले दूर रहनेके कारण सुषा वा रहा हूँ जिसमेसे ऐसी सोपी गब घाती  
 है जैसे पानी पठनेपर परतीमेसे आती है, उसपर यह पाँच वाखोयाना कामदेव मुझे घोर भी  
 सताए जा रहा है । अब तुम्हीं सोच लो कि गर्भके बीतनेपर जब चारो घोर उमरी हुई घने  
 बादलकी घटा सूर्यपर छा जायगी उस समय मैं किसके सहारे अपने दिन वाट पाऊँगा ॥४८॥ जब  
 बनी मैं स्वप्नमे तुम्हे देखकर बसकर छातोसे लगानेके लिये अपने हाथ ऊपर फेंकाता हूँ, उस समय  
 इनके देवता भी मेरी दशापर तरस साकर अपने मोतीके समान बडे-बडे घ्रासू वृक्षोके कोमल पत्तोपर  
 बहुधा दुलकाया करते हैं ॥४९॥ हे गुणवती ! देवदारके कोमल पत्तोको अपने लोकेसे तत्काल तोड-  
 कर और उसके रसकी गब लेकर दिमाग्यके जो पवन दक्षिणकी घोर चले आ रहे हैं उन्हें मैं यही  
 समझकर अपने हृदयसे लगा रहा हूँ कि ये उभरके तुम्हाय क्षीर झर कर छा रहे होंगे ॥५०॥

सचिष्येत चख इव कथं दीर्घयामा त्रियामा  
 सर्वाविस्यास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात् ।  
 इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभप्रार्थनं मे  
 गाढोष्माभिः कृतमशरथं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥५१॥  
 नन्यात्मानं बहु विगम्यन्नात्मनैवावलम्बे  
 तत्कल्याणि त्वमपि नितरां भा गमः कातरत्वम् ।  
 कस्यात्यन्तं सुखमृषनतं दुःखमेकान्ततो वा  
 नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥५२॥  
 शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणी  
 शेषान्मासान्गमय चतुरो लोचने मीलपित्या ।  
 पश्चादायां विरहगुणितं सं तमात्माभिलापं  
 निर्वेक्ष्यस्यः परिशतशरचन्द्रिकासु क्षपासु ॥५३॥  
 भूयश्चाहं त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे  
 निद्रां गत्वा किमपि स्तुती सस्वनं विप्रबुद्धा ।  
 सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतरश्च त्वया मे  
 दृष्टः स्वप्ने कितव रमयन्कामपि त्वं मयेति ॥५४॥

हे चक्षुस ननोवासी ! मैं मगने वही मनाया करता हूँ कि किसी प्रकार रातके सवे लये हीम पहर  
 दाए भरवे समान छोटे हो जायें और दिनकी तपन भी किसी प्रकार सराके लिये जाती रहे । पर मेरी  
 यह कुलंन प्रार्थना बेकार ही जाती है । उनपर इस तिल तिल अलाभवासी विद्योहकी अलमसे ही  
 मेरा जी बैठा जा रहा है ॥५१॥ पर हे कस्याणी ! बहुत बृहत् सोच विचारकर मैं अपने मनकी धपने  
 से ही कादरु बेधा नेता हूँ, दुर्लभिये तुम और बहुत दुर्लभ मत्त होकर । देखो ! तुम यद सुत विधी-  
 पर तदा वही रहा करते । ये ही पहिलेके चक्रके समान बभ । नीचे कभी ऊपर यो ही प्राया-जाया  
 करते हैं ॥५२॥ देखो ! भगनी देवउठनी एकदशीको जब विष्णु भगवान् दीपनायकी क्षम्यसे उठेगे  
 उसी दिन मेरा हाथ भी नीत जायगा । इसलिये इन बने हुए चार गहीभोजो भी किसी-किसी प्रकार  
 प्राण मूंदकर बिता डालो । फिर तो हम दोनों, विद्योहके दिवोमे सोचो हुई धपने मनकी सब सार्ध  
 परदवी गुहावनी चाँदनी रातमे पूरी कर ही डालेंगे ॥५३॥ हे भवसा ! तुम्हारे प्यारेने यह भी  
 कहसक्या है कि एक बार जब तुम मेरे गलेसे लगी हुई मेरे चलनपर सो रही थी, उस समय तुम  
 प्रचानक चित्तमाकर रोती हुई जाग पडी थी और जब मैंने बार-बार तुमसे रोचना करण पूछा तब  
 तुमने मोठी मुसकानके साथ उत्तर दिया था कि हे छत्री ! मैंने स्वप्नमे देखा कि तुम किसी दूसरी  
 स्त्रीके साथ रमण कर रहे हो, इसीलिये मैं रो पडी थी ॥५४॥ हे वाली वासोवासी ! इस पहचानके



एतस्मान्मां कुशलिनमभिधानदानाद्भित्त्वा

मा कौलीनाच्चकितनयने मय्यविधासिनी मूः ।

स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-

दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥५५॥

आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सर्षीं ते

शैलादाशु त्रिनयनवृपोत्खातकूटान्निवृत्तः ।

साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि

प्रातः कुन्दप्रसवशिशिलं जीवितं धारयेथाः ॥५६॥

कच्चित्तमौम्य व्यवमितमिदं पन्धुकृत्यं त्वया मे

प्रत्यादेशाच्च सलु भवतो धीरतां कल्पयामि ।

निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितथातकैम्यः

प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥५७॥

एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे

सौहार्दाद्वा विधुर इति याम्यनुक्रोशशुद्धया ।

ऽष्टान्देशाञ्जलद विचर प्रापुषा संभृतथी-

र्मा भूदेयं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥५८॥

ही तुम समझ लेना कि मैं कुशलसे हूँ । सोचोके कहतेसे तुम मेरे प्रेमसे सदेह न कर बैठना । न जाने सोम यह क्यों कह करके हैं कि विरहसे प्रेम कम हो जाता है । सच्ची बात तो यह है कि जब चाही हुई वस्तुएं नहीं मिलती तभी उन्हें पानेके लिये प्यास बढ जाती है और डेरी प्रेम पाकर इकट्ठा हो जाता है ॥५५॥ देतो मेम ! पशुली बरके विद्योदये बुखी अपनी माभीको एउ प्रकार डाढस बेपानर उससे कुशल समाचार पाकर और पहचान लेकर तुम मेरे पास जल्दी ही उस संतास पवंतसे नोट घाना बिसनी शोटियां महादेवजीके साँदने लखार दी है । और फिर यहाँ पाकर प्रातःकाल सिल हुए कुन्दके फूलके समान नू पडनेवाले मेरे प्राणोको रसा करना ॥५६॥ क्यों मेवा ! तुमने मेरा यह प्यारा काम करनेकी ठान ली है या नहीं ? इस पूछनेसे यह न समझ बैठना कि मैं तुमसे हुजारी भरवानेपर ही तुम्हें एग कामके योग्य समझूँगा । तुम्हें मैं जानता हूँ कि जब कभीहे तुमसे जल माँगते हैं, जब तुम बिना उत्तर दिए उन्हें जल दे देते हो । सज्जनोकी रीति ही यह है कि जब कोई उनसे कुछ माँग तो वे भूँदरे कुछ न कहकर, काम पूरा करके ही उत्तर दे डालते हैं ॥५७॥ हे मेम ! मैंने जो तुमसे काम यठाया है यह तुमसे कराना बढी डिग्री होगी, पर चाहे बिगठाने नाते, चाहे मुझ विद्योही पर तरम लाकर तुम पहले मेरा प्यारा काम कर देना और फिर अपना क्षणमाती रूप लेकर जहाँ मन चाहे वहाँ घूमना । मैं यहाँ बनाता प्यारी विजलीसे एक ६, - मी तुम्हारा संसा विप्रयोग

[तस्मादद्रेर्निगदितमथो शीघ्रमेत्यालकायां  
 यचामारं विगलितनिभं दृष्टिचिन्हैर्विदित्वा ।  
 मत्संदिष्टं प्रणयमधुरं गुहाकेन प्रपत्नात्  
 तद्गोहिन्या सकलमवदत्कामरूपी पयोदः ॥५६॥  
 इत्यारूपाभे सुरपतिसखः शैलकुन्यापुरीषु  
 रिथत्वा स्थित्वा धनपतिपुरीं वासरैः कैश्चिदाप  
 मत्पामारं कनकरुचिरं लक्ष्यैः पूर्वमुक्तैः  
 तम्प्योत्संगे चितितलगतां तां च दीनां ददर्श ॥६०॥  
 तं संदेशं जलधरचरो दिव्यवाचाचचचे  
 प्राणैस्तस्या अनहितरतो रचितुं यच्चवध्वाः ।  
 प्राप्योदन्तं प्रमुदितमना सापि तस्वौ स्वभर्तुः  
 केयां न स्यादभिमत्फला प्रार्थना युचमेषु ॥६१॥  
 श्रुत्या शार्ता जलदफथितां तां धनेशोऽपि सद्यः  
 शापस्यान्तं सदयहृदयः संविधायास्तकोपः ।  
 संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दंपती हृष्टचिचौ  
 भोगानिष्ठानधिरत्सुखं भोजयामास शरत् ॥६२॥

न हो, जैसा मैं भोग रहा हूँ ॥५८॥ यलकी ये बातें सुनकर, मनचल्ल रूप धारण करनेवाला वह बाबल, रागविरिणे चलकर धनका पहुँच गया और बताए हुए बिह्लोको देखकर उसने मलका वह भवन पहुँचान लिया जिसकी सब शोभा फीकी पड़ गई थी । वहाँ उसने यलकी प्यारीसे वह प्यार-भरा मधुर संदेश सुनाया, जिसे यलने बड़े बतनसे भेजा था ॥५६॥ यह सुनकर बाबल वहाँसे चलबिवा और कभी पहाड़ियों पर, कभी नदियोंके पास और कभी नगरके उहस्ता हुआ घोड़े ही दिनेने कुवेरकी राजधानी अलपामे पहुँच गया । वहाँ अपने मित्रके बताए बिह्लोसे उसने पियोगी मलका, सोनेके समान चमकता हुआ भवन पहुँचान लिया और उसने वहाँ देखा कि यलकी स्त्री बेचारी उस भवनमें धरतीपर पड़ी हुई है ॥६०॥ वहाँ पहुँचकर सबका भला करनेवाले उस भले भेयने देवी शन्दोमे यलकी स्त्रीके प्राण बचानेके लिये सब संदेश सुना डाला । यलकी स्त्री भी, अपने प्यारेका कुशल-समाचार पाकर फूली न समाई । सच है, अच्छे सोचोसे कोई काम करनेको कहल जाय तो वह भवश्य पूरा होता ही है ॥६१॥ जब कुवेरने यह बात सुनी कि बाबलने यलकी स्त्रीको ऐसा संदेश दिया है तब उनके मनमें बड़ी दया आई, उनका स्नेह उत्तर गया और उन्होंने अपना शाप लौटाकर उन दोनों पति-पत्नी को फिर मिल दिया । इस मिलनेसे उनका सब दुःख जाता रहा और वे फिर बड़े प्रसन्न हो गए । कुवेरने उन दोनोंके लिये ऐसे सुख तूटनेका प्रबन्ध कर दिया कि उन्हें फिर पभी

इत्थंभूतं सुरचितपदं मेघदूताभिधानं  
 कामक्रीडाविरहितजने विप्रयुक्ते विनोदः ।  
 मेघस्यास्मिन्नतिनिपुणता बुद्धिभावः कवीनां  
 नत्वार्यायारचरणकमलं कालिदासश्चकार ॥६३॥

॥ इति महाकविश्रीकालिदासकृती मेघदूते काव्ये उत्तरमेघ. समाप्तः ॥

हु झ मिला ही नहीं ॥६२॥ नवि कालिदासने छायादिबो कालीये चरण-कमलो मे प्रणाम करके सुन्दरतासे सजाए हुए शब्दोंमे यह ऊपर वही हुई मेघदूत नामकी कविता रची है । यह कविता विप्लवके समय इन लोगोंका भी मन बहलायेगी जिन्हें विलास मिला ही नहीं साथ ही इसमे मेघकी प्रायन्त चतुराईका और कवियोंकी कल्पनाका परिचय भी मिल जायगा ॥६३॥

महाकवि श्रीकालिदासके रचे हुए मेघदूत काव्यमे उत्तरमेघ समाप्त हुआ ।

❁ ऋतुसंहारम् ❁

## ❀ ऋतुसंहारम् ❀

॥ प्रथमः सर्गः ॥

ग्रीष्मवर्षणम्

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः सदावगाहकत्वारिसञ्चयः ।  
दिनान्तरम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो निदाघकालोऽयमुपगतः प्रिये ॥१॥  
निशाः शशाङ्कतनीलराज्यः क्वचिद्विचित्रं जलयन्त्रमन्दिरम् ।  
मणिप्रफाराः सरमं च चन्दनं शुचीं प्रिये यान्ति जनस्य सेव्यताम् ॥२॥  
सुवासितं हर्म्यतलं मनोहरं प्रियामुस्रोच्छ्वामविकम्पितं मधु ।  
सुतन्त्रिगीतं मदनस्य दीपनं शुचीं निशीथेऽनुभवन्ति कामिनः ॥३॥  
नितम्यविम्बैः सदुकूलमेतलैः स्तनैः सहाराभरणैः सचन्दनैः ।  
शिरोरुहैः स्नानकषायवासितैः स्त्रियो निदाघं शमयन्ति कामिनाम् ॥४॥  
नितान्तलाघारसरागरञ्जितैर्नितम्बिनीनां चरुणैः सनूपुरैः ।  
पदे पदे हंसरुतानुकारिभिर्वनस्य विचं क्रियते समन्मथम् ॥५॥

पयोधराश्चन्दनपङ्कचर्चितास्तुपासगीरापितहारशेखराः ।  
 नितम्बदेशाश्च महेममेश्वलाः प्रकुर्वते कस्य मनो न सौत्सुकम् ॥६॥  
 समुद्रतस्वेदचिताङ्गमंघयो विमुच्य वासांसि गुरुणि साम्प्रतम् ।  
 स्तनेषु तन्वंशुकमुच्चतस्तना निवेशयन्ति प्रमदाः सयीवनाः ॥७॥  
 तचन्दनाम्बुच्यजनोद्भवानिलैः सहारयष्टिस्तनमण्डलार्पणैः ।  
 सवल्लकीकाकलिगीतनिस्वनैर्विचोष्यते सुप्त इवाद्य मन्मथः ॥८॥  
 सितेषु हर्म्येषु निशासु योपितां सुखप्रसुप्तानि मुग्धानि चन्द्रमाः ।  
 विलोक्य नूनं भृशमुत्सुकश्चिरं निशाद्ये याति हियैव पाण्डुताम् ॥९॥  
 असह्यथातोद्धतरेणुमण्डला प्रचण्डसूर्यातपतापिता मही ।  
 न शक्यते द्रष्टुमपि प्रवासिभिः प्रियावियोगानलदग्धमानसैः ॥१०॥  
 मृगाः प्रचण्डातपतापिता भृशं तृषा महत्या परिशुष्कतालवः ।  
 वनान्तरे तोयमिति प्रधाविता निरीक्ष्य भिश्चाञ्जनसन्निभं नमः ॥११॥  
 सविभ्रमैः सस्मितजिह्ववीक्षितैर्विलासवत्यो मनसि प्रवासिनाम् ।  
 अनङ्गसंदीपनमाशु कुर्वते यथा प्रदोषाः शशिचारुभूपखाः ॥१२॥

इन दिनों लियोके हिमके समान उजले धौर प्रमूठे हारसे सजे हुए चन्दन पुते स्तन देखकर धौर सुनहरी करपनीसे बंधे हुए नितम्ब देखकर मजा किसका मन नहीं सबच उठेगा ॥६॥ ऊँपे-ऊँपे स्तनोवाली जिन युवतियोके धमोके जोड़ जोड़से गर्मीके भारे पलीता सूटा करता है वे भी इस गर्मीसे धपने मोटे बक उतारकर पतले पतले कपडे पहनने लगी हैं ॥७॥ आजकल शोग कामदेवकी उसी प्रकार जगाया करते हैं जैसे कोई छौ, धपने सोए हुए प्रेमीकी चन्दनसे सजे हुए ठटे जलसे भीगे हुए पत्थरी ठडी तयार भूषकर या मोतियोके हारोकी सटकती हुई भास्तरसे सजे हुए धपने गोल गोल स्तन प्रेमीकी छातीपर रखकर, या खीलाके साथ धपने मोठे गणसे दीव गा-गाकर जगाया करती है ॥८॥ रातके समय उजले भवनसे मुखसे सोई हुई युवतीका मुख विहारनेसे उतावला रहनेवाला चन्द्रमा जब बहुत देरतक जनका मूर्ह देख चुकता है तो लाजके भारे वह रातके पिछले पहरेसे उदास हो जाता है ॥९॥ परदेसमें गये हुए जिन प्रेमियोका हृदय अपनी प्रेमिकाकोके विछोहकी तपनसे झुलस गया है, वे शोधीके भोकोसे उठी हुई धूलके बबठरोवाली धौर कडी धूपको लपटोसे तपी हुई, धरतीकी धौर देखते हैं तो उनसे देसा नहीं जाता ॥१०॥ जलते हुए सूर्यकी किरणोंसे झुलसे हुए जिन जगली पशुपोंकी जीभ प्याससे बहुत सूख गई है वे शोमेसे लन जगलीकी धौर बीजे वा रहे हैं जहाँके धाँजनके समान नीले धाकाधरो ही वे पानी समक बँडे हैं ॥११॥ चमकते हुए चन्द्रमानानी साँके समान जो सुन्दरियाँ चन्द्रमाके समान उजले चन्द्रहार धादि आभूषणोंसे उज्जी हुई बडी प्यारी लग रही हैं वे बडी चटक मटक धौर मुस्कुराहटके साथ अपनी चितवन चलाकर परदेसियोके मनमें भटसे कामदेव

रघेर्मयूखैरभितापितो भृशं विदह्यमानः पत्रि तस्रपांसुभिः ।  
 अवाङ्मुखो जिह्वगतिः स्वसन्मुहुः फली मयूरस्य तले निपीदति ॥१३॥  
 तथा महत्या इतविक्रमोद्यमः स्वसन्मुहुर्दूरविदारिताननः ।  
 न हन्त्यद्रेऽपि गजान्मृगेश्वरो विलोलजिह्वश्छिताग्रकेसरः ॥१४॥  
 विशुष्ककण्ठोद्गतसीकराम्भसो गभस्तिभिर्गान्धुमतोऽनुतापिताः ।  
 प्रहृद्भृत्क्षोपहता जलार्थिनो न दन्तिनः केसरिण्योऽपि विभ्यति ॥१५॥  
 हुताग्निफलैः सवितुर्गभस्तिभिः कलापिनः क्लान्तशरीरचेतसः ।  
 न भोगिनं ध्नन्ति समीपवर्तिनं कलापचक्रेषु निवेशिताननम् ॥१६॥  
 समद्रमुस्तं परिशुष्ककर्दमं सरः खनन्नायतपोत्तमण्डलैः ।  
 रघेर्मयूखैरभितापितो भृशं वराहयूथो विशतीव भूतलम् ॥१७॥  
 विवस्वता तीक्ष्णतरांशुमालिना सपङ्क्तोयात्सरसोऽभितापितः ।  
 उत्प्लुत्य भेकस्तृपितस्य भोगिनः फलातपशस्य तले निपीदति ॥१८॥  
 समृद्धताशेषमृषालजालकं विपन्नमीनं द्रुतमीवसारसम् ।  
 परस्परोत्पीडनसंहर्तैर्गजैः कृतं सरः सान्द्रविमर्दकर्मम् ॥१९॥

जगत् देती हैं ॥१२॥ देखो ! छुपते एकदम तथा हुआ और केकेकी गर्म भूलसे झुलसा  
 हुआ यह सर्प अपना मुँह नाँचे छिपाकर बार-बार फुफ्फुकारता हुआ औरकी छायामें कुडल मारि बँठा  
 हुआ है पर और भी गर्मीके मारे उसे कुछ नहीं कह रहा है ॥१३॥ देखो ! हाथियोंके पास होनेपर  
 भी यह सिंह उन्हें मार नहीं रहा है क्योंकि गर्मी इतनी पक रही है कि बहुत प्यासके मारे इसका  
 सब साहस उठा पक गया है, अपना पूरा मुँह खोलकर यह बार-बार हाँक रहा है, अपनी जीभसे  
 अपने घोंठ चाटता जा रहा है और हाँकते इसके कंधेके बाह हिस्से जा रहे हैं ॥१४॥ जो हाथी  
 छुप और प्याससे बेचैन होकर अपने छूँचे मुँहसे अन्न केते हुए पानीकी खोजमें इधर-उधर घूम रहे  
 हैं वे इस समय सिन्हे की नहीं उर रहे हैं ॥१५॥ हवनकी अग्निसे समान जलते हुए सूयंकी किरणोंसे  
 जिन सोरोके शरीर और मन दोनों सुस्त पक गए हैं, वे अपने पाम कुडल मारकर बँठे हुए साँपोंकी  
 भी नहीं मारते वरन् उल्टे छुपते अपना मुँह घवानेके लिये अपना गला उनकी पूँछकी नुडममें ठाते  
 छुप-चाप बँठे हुए हैं ॥१६॥ प्रथमे एकदम कुनसा हुआ यह जगतो सुमरोका मुँह अपने लगे-लगे  
 छुपनेके नामरुनेके मरे हुए बिना फीचडवाने गल्लेकी खोदता हुआ ऐसा लगता है मालो परतीमें  
 पुसा जा रहा हो ॥१७॥ प्रथमे तपे हुए मेटक, बँदले चलवाने पीछरेमें बाहर निकल निकलकर  
 प्यासे साँपोंके फनकी छातीके नीचे धा-धाकर बँठ रहे हैं ॥१८॥ यह देखो, यहाँपर हाथियोंके  
 इकट्ठे होकर आपसमें लड़-भिडकर इस तालके सब रुचल उसाड उल्ले, मछलियोंको रौं डाला और  
 सब सारोंको डबाकर भगा दिया है ॥१९॥ जिस प्यासे साँपोंकी पंख सुयंकी बनवते और भी

रविप्रभोद्भिन्नशिरोमणिप्रभो विलोलजिह्वाद्वयनीढमारुतः ।  
 विपाग्निस्वर्यातपतापितः फणी न हन्ति मयहककुल तृपाकुलः ॥२०॥  
 सफेनलालावृतयत्रसंप्लुतं विनिःसृतालोहितजिह्वमुन्मृगम् ।  
 तृपाकुलं निःसृतमद्रिगह्वरादवेक्षमाणं महिपीदुलं जलम् ॥२१॥  
 पद्भुतरदवदाहोच्छुष्कसस्यप्ररोहाः परुषपवनवेगोत्थितमंशुष्कपर्णाः ।  
 दिनकरपरितापघ्नीयतोयाः समन्ताद्धिदधति भयमुच्चैर्बोक्ष्यमाणा वनान्ताः ॥२२॥  
 श्रस्त्रिति विहगवर्गः शीर्षपर्णद्रुमस्थः कपिकुलमुपपाति बलान्तमद्रेर्निकुञ्जम् ।  
 भ्रमति गवययूथः सर्वतस्तोयमिच्छन्शरभकुलमजिह्वं प्रोद्धरत्यम्बु कृपात् ॥२३॥  
 विकचनवक्त्रसुम्भस्वच्छसिन्दूरभासा प्रबलपवनवेगोद्भूतवेगेन तूर्णम् ।  
 तटविटपलताप्रालिङ्गनव्यावृत्तेन दिशि दिशि परिदग्धा भूमयः पावकेन ॥२४॥  
 ज्वलति पवनवृद्धः पर्वतानां दरीषु स्फुटति पद्भुनिनादः शुष्कवंशस्थलीषु ।  
 प्रसरति तृणमध्ये लब्धवृद्धिः क्षणेन ग्लपयति मृगवर्गं प्रान्तलग्नो दद्याग्निः ॥२५॥  
 बहुतर इव जातः शालमलीनां वनेषु स्फुरति कनकगौरः कोटरेषु द्रुमाणाम् ।  
 परिणतदलशाखानुत्पतन्प्रांशुवृचान्भ्रमति पवनधृतः सर्वतोऽग्निर्नान्ते ॥२६॥

चमक उठो है यह घपनी लपलपाती हुई दोनों जीभीसे पवन पीता या रहा है और धूपकी लपटें और अपने विपकी आरसे जलनेके कारण मेहकोको नहीं मार रहा है ॥२०॥ जुगली करनेसे जिन मैलोंके मूँहसे भाग निकल रही है और सार बह रही है वे घपना मूँह खोलकर घपनी लाल-लाल जीभें बाहर निभाते हुए प्यासके मारे ऊपर मूँह उठाए पहाडकी गुफासे निकल निकलकर जलकी प्रोग लपकी बली जा रही है ॥२१॥ मानबल वन तो और भी डरावने लपने लगत हैं क्योंकि वहाँ जगल-की भागकी बड़ी-बड़ी लपटोंके सर वृक्षोंकी टहनियाँ झुनग गई हैं, प्रपदम पछपर सूते हुए पत्तें ऊपर उड़े जा रहे हैं और मूर्ध की गर्मि पाये औरका जल सूख गया है ॥२२॥ जिन वृक्षोंके पत्तें झड़ गए हैं उनपर बैठी हुई सभी चिड़ियाँ हॉफ खी हैं, उदास मदरोंके झुड पहाडकी गुफाओंमें धुने जा रहे हैं, पशुओं के झुड चारों ओर पानोकी खोजमें भ्रम रहे हैं और घाट परोंवाले धारभोगा झुड एक टुपैसे गटागत पानी पीता जा रहा है ॥२३॥ पूरे खिले हुए भय कुसुम्भी फूलके समान और स्वच्छ सिन्दूरके समान साध-लाल भयवनेषाली, धाँधीसे और भी घपन उठनवाली और तीरपर गटे हुए वृक्षों और लताओंकी पुनर्विषाँरो जूमती जानवाली जगलकी आलमे जहाँ-तहाँ परती जल गई है ॥२४॥ वनके बाहरे उठते हुई और वाजुके और भी भडकी हुई भग्निकी लपट, पहाडकी पाटियोंमें फँगतो हुई सभी पशुओंकी जताए टाल रही है मूने जीभीमें चटपटा रही है और दाए भरके धागे यदकर पाए पडके ले रही है ॥२५॥ पवनम गडबाई हुई और येमरके वृक्षोंके पशुओंके फँबी हुई भाग वृक्षके लोखनोंमें घपना मुनहला पीता प्रकाश चमकाती हुई और जँके वृक्षोंपर उछलती हुई पनने चारों ओर भ्रम रही है जिनकी टालियोंके पत्तें बहुत पगीं पडनेके पड-पपपर भटने जा रहे



गजगवयमृगेन्द्रा वह्निसंतप्तदेहा सुहृद इव समेता इन्द्रभावं विहाय ।  
हृतवहपरिखेदादाद्यु निर्गत्य कक्षाद्विपुलपुलिनदेशां निम्नगां संविशन्ति ॥२७॥

कमलचनचिताम्बुः पाटलामोदरम्यः

सुखसलिलनिपेकः सैन्यचन्द्रांशुहारः ।

अनतु तव निदाघः कामिनीभिः समेतो

निशि गुल्लितगीते हर्म्यपृष्ठे सुखेन ॥२८॥

इति महाकविभोक्तिसिदासकृतो ऋतुसंहारे श्रीपद्मवर्णन नाम प्रथम सर्गः ॥

हैं ॥२६॥ भागने घररंग हुए और झुलसे हुए हाथों, बेल और सिंह, धान मित्र बनकर साथ-साथ  
इकट्ठे होकर घासके जगत्से अटपट निकल आए हैं और नदीके चौड़े और बलुए तीरपर भाकर विश्राम  
कर रहे हैं ॥२७॥ जिस गर्मीकी ऋतुमें कमजोसे भरे हुए और सिने हुए पाटलकी रपमे बने हुए  
जलमे स्नान करना बहुत मुहाता है और किन् दिनों चन्द्रमाकी चाँदनी और मोतीके हार बहुत सुज  
ते हैं, वह ऋतु भापकी ऐसी बीते कि रातको भाव भपने घरकी छतपर सेटे हो, सुन्दरियाँ भापको  
पेटे बँठी हो और मनोहर सगीत धिब्र हुआ हो ॥२८॥

महाकवि श्रीकालिदासके रचे हुए ऋतुसंहार नामके महाकाव्यमें  
गर्मीका वर्णन नामका पहला सर्ग समाप्त हुआ ।

## द्वितीयः सर्गः

## प्रावृत्वर्णनम्

समीकराम्भोधरमत्तबुद्धरस्तद्विपताकोऽशनिशब्दमर्दलः ।  
 समागतो राजवदुद्धतद्यतिर्धनागमः क्रमिजनप्रियः प्रिये ॥१॥  
 नितान्तनीलोत्पलपत्रकान्तिभिः कचित्प्रभिक्षाञ्जनराशिर्मनिभैः ।  
 कचित्मगर्भप्रमदास्तनप्रभैः समाचितं व्योम धनैः समन्ततः ॥२॥  
 वृषाकुलं धातकपक्षिणां कुलैः प्रयाचितास्तोयभरावलम्बिनः ।  
 प्रयान्ति मन्दं बहुधारावर्षिणो बलाइकाः श्रोत्रमनोहरस्वनाः ॥३॥  
 यलाएकश्वानिशब्दमर्दलाः सुरेन्द्रचापं दधतस्वडिदुग्णम् ।  
 सुतीक्ष्णघारापतनोप्रसायकैस्तुदन्ति चेतः प्रमर्भं प्रवासिनाम् ॥४॥  
 प्रभिन्नवैदूर्यनिभैस्त्रुणाङ्कुरैः समाचिता प्रोत्थितरुन्दलीदलैः ।  
 विमासि शुक्लोत्तररत्नभूषिता वराङ्गनेव वितिरिन्द्रगोपकैः ॥५॥  
 नदा मनोर्षं स्वनदुत्सवोत्सुकं विकीर्णविस्तीर्णकलापिशोभितम् ।  
 समंभ्रमालिङ्गनचुम्बनाकुलं प्रवृत्तवृत्त्य कुलमद्य बर्हिणाम् ॥६॥

## दूसरा सर्ग

## वर्षाका वर्णन

देखो प्यारी ! जलकी पुहारोसे भरे हुए बादलीके मठवाले झरोखर चढा हुआ, चमकती हुई विजलियोंकी झड्डियोंकी फहराया हुआ शीर बादलोंकी बरजने लगाये बर्जाया हुआ यह कानियोंका प्यारा पापल राजामोका सा डाट-बाट पनाकर या पहुँचा है ॥१॥ नहीं तो मरपन्त नीले कनलकी पखडी जैसे नीले, वही गर्भणियोंके स्तनोंके समान पीले धीरे धीरे धुटे हुए प्राजपती डेरीके समान बाले-बाले बालन प्राजापाने इधर-उधर धाए हुए है ॥२॥ देखो ! जिन बादलोंसे पवोहे पिङ्ग-पिङ्ग करने वाली माँग रहे हैं, ऐसे बानीके भारते नीचे झुके हुए घुर्घाधार वाली बरघानेवाले धीरे बालोंकी भली लपनेवाली गरमबाहूट करते हुए बादल धीरे धीरे फिरते चले जा रहे हैं ॥३॥ मृदगके समान गरमदाते हुए, विजलीकी शोरीबाग इन्द्रधनुष चढाए हुए ये बादल अपनी शोधी धारोंके पीने बाण बरघाकर परदेसमें पहुँचे हुए शोनोंका मन बसमसा रहे हैं ॥४॥ छितराई हुई पैदूर्यमणिके समान दिखाई देनेवाली पापके बोमन धँडुबोंसे भरी हुई, ऊपर निकले हुए बन्दसोने पछसि धरी हुई धीरे धीरे घट्टियोंसे धाई हुई बरती उख नाविका जैसी दिखाई दे रही है जो पीने रत्नको धोकर धीरे धीरे रंगने रत्नोंसे धामुषणोंके सजी हुई हो ॥५॥ देखो ! सदा मीठी बोली होलनेवाले, बरजते हुए बादलोंकी घोभापर घोभाकर पयन ही उठनेवाले धीरे अपने पख खोजकर फँसानेसे सुहावने लगनेवाले ये मोरोंके शृण्ड, अण्डधरणी प्यारी मोरनियोंको गले लगाते हुए धीरे घूमते हुए प्राज नाच उठे हैं ॥६॥ जैसे बुनटा क्षिप्रा प्रेममें अपनी हीन्दर बिना मोचे विधारे अपने ही सो बँठती हैं,

निपातयन्त्यः परितस्तटद्रुमान्प्रवृद्धवेगैः सलिलैरनिर्मलैः ।  
 स्त्रियः सुदुष्टा इव जातिविग्रमाः प्रयान्ति नद्यस्त्वरितं पयोनिधिम् ॥ ७ ॥  
 तृणोत्करैरुद्गतकोमलाङ्कुरैर्यितानि नीलेर्दरिणीमुखचतैः ।  
 वनानि वैन्ध्यानि हरन्ति मानसं विभूषितान्युद्गतपल्लवैर्द्रुमैः ॥ ८ ॥  
 विलोलनेत्रोत्पलशोभिताननैर्मृगैः समन्तादुपजातसाध्वसैः ।  
 समाचिता सैकृतिनी वनस्थली समुत्सुकत्वं प्रकरोति चेतसः ॥ ९ ॥  
 अभीक्ष्णमुन्मैर्ध्वनता पयोमृचा घनान्धकारीकृतशर्वरीप्यपि ।  
 तद्विभ्रभादर्शितमार्गभूमयः प्रयान्ति रागाद्भिसारिक्काः स्त्रियः ॥ १० ॥  
 पयोधरैर्भीमगभीरनिस्वनैस्सडिङ्गिरुद्धैजितचेतसो भृशम् ।  
 कृतापराधानपि योषितः प्रियान्परिष्वजन्ते शयने निरन्तरम् ॥ ११ ॥  
 विलोचनेन्दीवरवारिधिन्दुभिर्निपिक्तविम्बाधरचारुपल्लवाः ।  
 निरस्तमान्पाभरयानुलेपनाः स्थिता निराशाः प्रमदाः प्रवासिनाम् ॥ १२ ॥  
 विपाण्डुरं • कीटरजस्तृणान्वितं भुञ्जंमवद्रकगतिप्रसर्पितम् ।  
 ससाध्वसैर्भैककुलैर्निरीक्षितं प्रपाति निम्बाभिमुखं नवोदकम् ॥ १३ ॥  
 विपन्नपुष्पां नलिनीं समुत्सुका विहाय भृङ्गाः श्रुतिहारिनिस्वनाः ।  
 पतन्ति मृदाः शिखिनां प्रनृत्यतां कलापचक्रेषु नवोत्पलाशया ॥ १४ ॥

वैसे ही वे नदियाँ भी अपने मटमले पानीकी बाइसे वहाँ-तहाँ अपने झिलारे के वृधोकी दहाती हुई वेगसे वीकी हुई तनुदकी ओर चली जा रही है ॥७॥ हरिणियोंके मुँहकी कुतरी हुई हरी-हरी भाँसे और नई कोपनीवाले वृधोसे छाप हुए विन्ध्यापलके जगल बिसका मन नहीं सुना सेडे ॥८॥ कमलके समान सुहावनी ज्वल शीकोके कारण पुन्दर मुखवाले बरे हुए हरिणोसे भरा हुआ देतीला जगल हृदयको धरदल खोके लिए जा रहा है ॥९॥ देखो ! लुक-छिपकर अपने प्यारेके पास प्रेनसे जानेवाली कामिनिर्मा, बरजते हुए बाइलोके चिरी हुई इस चनी अँधेरी रातमे भी यिजलीकी कमलके प्रागेका मार्ग देखती हुई चली जा रही है ॥१०॥ बाइलोकी घोर कडक नुनकर और विजलीकी तडपनसे चौकी हुई स्त्रियाँ सोते समय अपने दीपी प्रेमियोसे भी निपटी जाती है ॥११॥ परदेसमे गए हुए सोनोकी स्त्रियाँ अपने बियाफल जमे चाव और नई कोमलो जैसे कोमल होठोपर अपनी कमल जैसे भाँसेको मीठू बरसाती हुई, अपनी माता, आभूषण, ऐल, फुलेक, उबटन आदि सब कुछ छोडकर गलपर हाथ बरे जँठी है ॥१२॥ छोटे-छोटे कीडे, भूल और पासनी बहाता हुआ मटमला बरसाती पानी, सोपके समान टेढा-बेढा धूमता हुआ, जानसे बह जा रहा है और वेपारे मेदक उबे याँप समझकर देख-देखकर बरे जा रहे हैं ॥१३॥ कानोको सुहानेवाली मोठी तानें लेकर गुँजते हुए भीरे, उस कमलकी थोड़-छोडकर चले जा रहे है जिसके पत्त और फूल भड गए हैं । वे भीरे हड़बड़ीके मुलसे, नाचते हुए मोरके मुल पेलोको चमे कमल छपकर जहीपर हटे

वनद्विपानां नववारिदस्वनैर्मदान्वितानां ध्वनतां मुहुर्मुहुः ।  
 कपोलदेशा विमलोत्पलप्रभाः समृद्ध्युर्थैर्मदवारिभिधिताः ॥१५॥  
 सितोत्पलामाम्बुदचुम्बितोपलाः समाचिताः प्रस्रवणैः समन्ततः ।  
 प्रपृचनृत्यैः शिबिभिः समाकुलाः मधुत्मुकत्वं जनयन्ति भूधराः ॥१६॥  
 कदम्बसर्जाजुनकेतकीवनं विकम्पयँस्तत्कुसुमाधिवासितः ।  
 तसीकराम्भोधरसङ्गशीतलः ममीरखः कं न करोति सौत्सुकम् ॥१७॥  
 शिरोरुहैः श्रोणितटावलम्बिभिः कृतावतंसैः कुसुमैः सुगन्धिभिः ।  
 स्तनैः महारैर्बदनैः तसीधुभिः स्त्रियो रतिं संजनयन्ति कामिनाम् ॥१८॥  
 वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति व्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्रयन्ति ।  
 नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गाः ॥१९॥  
 तद्विल्लताशक्रधनुर्विभूषिताः पयोधरास्तोपभरावलम्बिनः ।  
 स्त्रियश्च काञ्चीमखिकुण्डलोज्ज्वला हरन्ति चेतो युगपत्प्रवासिनाम् ॥२०॥  
 मालाः कदम्बनवकेसरकेतकीभिरायोजिताः शिरसि विभ्रति योमितोऽद्य ।  
 कर्णान्तरेषु ककुमद्रुममञ्जरीभिरिच्छानुकूलरचितानवतंसकाँश्च ॥२१॥

पद रहे है ॥१४॥ नये-नये बादलोके गरजनेसे जब बर्नने हाथो मस्त हो जाने हैं और उनके माथेसे  
 पस्ते हुए भवपर भोरे झावर लिपट जाते हैं, उस समय उन हाथियोके माथे स्वच्छ नीले कमल जैसे  
 दिखाई देने लगते है ॥१५॥ पीले कमलके समान उनके बादल बिन पह्लाडी चट्टानोको गुमते  
 चलते है और बिनपर मोर प्राण रहे हैं उन चट्टानोपरसे बरनेवाले सेवटो भरलोको देखकर प्रेमियोके  
 मनमे हलचल मग जानी है ॥१६॥ कदम्ब, सर्ज, अर्जुन और चेतपीसे भरे हुए जगलको बाँपाता  
 हुमा और उन वुडोके फूलोकी सुगन्धमे वना हुमा और चन्द्रमारी किरणोंम तथा बादलोसे उडा  
 होकर बरनेवाला दामु किने मस्त मही कर देता ॥१७॥ घाजकल गिन्ध्या, अपने भारी-भारी निहम्बोपर  
 केश लटकाकर, अपने नानेमि सुगन्धित फूलोके बनपूत पहनकर, छातीपर माला टाँसकर और मदिश  
 पीकर अपने प्रेमियोके मनमे प्रेम उकसा रहो है ॥१८॥ बरसातमे नदियाँ बहती हैं, बादल सरसते  
 हैं, मस्त हागी किग्राठते हैं, जगल हरे-भरे हो जाते हैं, अपने प्यारोसे बिपुली हुई स्त्रियाँ रोती-बल-  
 पती हैं, मोर नाचने टै, और बन्दर चुप भाकर गुप्तायोमे प्ये छिपते हैं ॥१९॥ एक मोर तो इन्द्र-  
 धनुष और बिनलोके चमकने हुए औरपतने पायोमे सजी हुई और पानीमे चारते कुरी हुई वाली-वाली  
 पटाएँ मोर दगराँ मोर करपनो तथा रत्न बडे बुध्दलोमे सजी हुई स्त्रियाँ, ये दोनो हो परदेममे बँडे  
 हुए लोकोता मन एक भाष हर सेती है ॥२०॥ इन दिनों नई बेगद, बेतली और कदम्बके नये  
 फूलोकी मालाएँ गुंफकर स्त्रियाँ अपने लूठोमे बांधतो हैं, मोर कटुभने फूलोके मनपाहे उपसे बनाए  
 हुए बर्खोपूत अपने बानोमे पहनतो है ॥२१॥ बिन स्त्रियोके अगोपर धर-मिला पन्दन लगा

कालागुरुप्रचुरचन्दनचर्चिताङ्गयः पुष्पावतंससुरभीकृतकेशपाशाः ।  
 श्रुत्वा ध्वनिं जलमुच्चां त्वरितं प्रदोषे शय्यागृहं गुरुगृहात्प्रविशन्ति नार्यः ॥२२॥  
 कुवलयदलनीलैरुन्नतैस्तोयनम्रैर्भृदुपवनविघृतैर्मन्दमन्दं चलद्भिः ।  
 अपहृतामिव चेतस्तोयदैः सेन्द्रचापैः पथिकजनवधूनां तद्विषोगाकुलानाम् ॥२३॥  
 मुदित इव कदम्बैर्जातपुष्पैः समन्तात्पवनचलितशास्त्रैः शास्त्रिभिर्नृत्यतीव ।  
 हमितमिव विधत्ते श्चिभिः केतकीनां नवसलिलनिपेकच्छिन्नतापो वनान्तः ॥२४॥  
 शिरसि वकुलमालां मालतीभिः समेतां विकसितनवपुष्पैर्यूथिकाकुड्मलैश्च ।  
 विकचनवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां रचयति जलदीपः कान्तवरकाल एव ॥२५॥  
 दधति वरकुचाग्रैरुन्नतैर्हारपाटिं प्रतनुसितदुकूलान्यापतैः श्रोणिविम्बैः ।  
 नवजलकणसेकाद्गुह्रतां रोमराजीं ललितवलिविभङ्गैर्मध्यदेशैश्च नार्यः ॥२६॥  
 नवजलकणसङ्गाच्छीततामादधानः कुसुमभरनतानां लासकः पादपानाम् ।  
 जनितरुचिरगन्धः केतकीनां रजोभिः परिहरति नभस्वान्प्रोपितानां मनांसि ॥२७॥  
 जलभरनमितानामाश्रयोऽस्माकमुच्चैरयमिति जलसेकैस्तोयदास्तोयनज्राः ।  
 अतिशयपरुषाभिर्ग्रीष्मवह्नेः शिखाभिः समुपजनिततारुं ह्लादयन्तीव विन्ध्यम् ॥२८॥

हुषा है, जिनके बाल फूलोंके गुच्छोंमें मँहक रहे हैं, वे बावलोकी गडगडाहट सुनकर भट्ट अपने घरके बड़े हूडोने पातले उठकर तहाँ साँझको ही अपने छायनघरमें पुत आती हैं ॥२२॥ कमलके पत्तोंके समान साँवले, पानीके भारसे झुक जानेके कारण बहुत बोधी ऊँचाईपर ही छाए हुए घोर भीमे-भीमे पवनके सहारे धीरे-धीरे चलनेवाले जिन बादलोंमें इन्द्रधनुष निवस आया है उनहीने परदेसमें गए हुए सोमोकी उत शिखरोंकी सब नुप नुप हर ली है जो प्यारोंके विद्योहमें क्यापुस हुई बँटी है ॥२३॥ वनमें पारों और सिके हुए कदम्बके फूल ऐसे लव रहे है मानो वर्षाके नये जलसे गर्मी बूर हो जानेपर जगल मगन हो उठा हो । पवनसे कूमती हुई शाखाओंको देखकर ऐसा लगता है मानो पुराका पुरा जगल अपने हाथ मटक-मटकाकर नाच रहा हो । घोर केतकीकी उजगी कलियोंकी देखकर ऐसा लगता है मानो जगल खिलखिलाकर हँस रहा हो ॥२४॥ जैसे कोई प्रेमी अपनी प्यारी के लिये टग-डगके फूलोंके शायूपुस बनाने बैसे ही वर्षा काल भी ऐसा लगता है मानो वह अपनी प्रेमिकाके लिये जूहीवी नई-नई कलियों तथा मासली और मोलसिरोके फूलोंकी माला गूथ रहा हो और उनके कानोंके लिये शिखे हुए नये कदम्बके फूलोंके कर्णफूल बना रहा हो ॥२५॥ इन दिनों शिखा, अपने बड़े-बड़े मोल-मोल उठे हुए सुन्दर स्तनोपर मोतीकी मालाएँ पहनती है और अपने भारी-भारी मोल-मोल नितम्बोपर महीन उजली रेसमी साडी पहनती है । उनके पैदपर दिखार्दे पहनेवाली सुन्दर तिहरी सिकुडोपर जब वर्षाकी नई फुहार पडती है जो यहाँके नन्दे-नन्दे रोएँ खडे हो जाते हैं ॥२६॥ वर्षाके नये जलकी पुहागीसे ठंडा बना हुआ पवन, फूलोंके मोसले झुके हुए पेड़ोंको मचा रहा है, केतकीके फूलोंका पराग लेकर चारों ओर मनभावकी सुगंध फैला रहा है और परदेस गए हुए

बहुगुणरमणीयः कामिनीचिह्नहारो

तरुवितपलतानां वान्धवो निर्विकारः ।

जलदसमय एष प्राणिनां प्राणभूतो

दिशसु तव हितानि प्रायशो वाञ्छितानि ॥२६॥

।। इति महाकविश्रीकालिदासकृतो ऋतुसंहारे प्रावृह्वर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥

प्रेमियोंके मन पुरा रहा है ॥२७॥ ये पानीके बौझसे जुके हुए बादल, गरमीकी आगकी लपटोंसे झुलते हुए बिग्याचलकी तपन अपने ठंडे जलकी फुहारसे मानो यह समझकर बुझा रहे हैं कि अब हाग पानीके बौझसे तबकर आते हैं तो यही हमें सहाय देता है ॥२८॥ अपने बहुतसे सुन्दर गुणोंसे मुहाबनी सगनेवाली, खियोका जी तिलानेवाली, पेड़ोंकी टहनियों और बैलोंकी सन्धी सखी तमा जीबोंका प्राण बनी हुई वह कर्पा ऋतु प्राणने मनकी स्रापं पूरी करे ॥२९॥

महाकवि कासिदासके रहे हुए ऋतुसंहार नामके काव्यका दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ।

## तृतीयः सर्गः

शरद्वर्षानम्

काशांशुका विकचपद्मनाञ्जवक्त्रा सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या ।  
 आपकशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः प्राप्ता शरच्चवधुरिव रूपरम्या ॥१॥  
 काशैर्मही शिशिरदीधितिना रजन्यो हसैर्बलानि सरितां कुमुदैः सरांसि ।  
 मत्तच्छदैः कुसुमभारनतैर्वनान्ताः शुक्लीकृतान्युपवनानि च मालतीभिः ॥२॥  
 चञ्चन्मनोज्ञशफरीरसनाकलापाः पर्यन्तसंस्थितसितायहजपङ्कहाः ।  
 नद्यो विशालपुलिनान्तनितम्पविम्बा मन्दं प्रयान्ति समदाः प्रमदा इवाद्य ॥३॥  
 व्योम क्वचिद्रजतशङ्खसृखालगौरैस्त्यक्ताम्बुभिर्लघुतया शतशः प्रयातैः ।  
 संलक्ष्यते पवनवेगचलैः ययोदै राजेव चामरशतैरुपवीज्यमानः ॥४॥  
 भिक्षाञ्जनप्रचयकान्ति नभो मनोज्ञं बन्धुकपुष्परजसाऽरुणिता च भूमिः ।  
 वप्राश्च पद्मकलमावृतभूमिभागाः प्रोत्कण्ठयन्ति न मनो भुवि कस्य यूनः ॥५॥  
 मन्दानिलाकुलितचारुतराग्रशाखः पुष्पोद्गमप्रचयकोमलपल्लवाग्रः ।  
 मत्तद्विरेफपरिपीतमधुप्रसेकश्चिर्षं विदारयति कस्य न कोविदारः ॥६॥

### तीसरा सर्ग

शरद का वर्णन

फूलों हुए फाँसके लम्बे गहने, मस्त हलौकी कोलीके मुहावने विद्युत् पड़ने, पके हुए पानसे मनोहर शरीरवाली और खिले हुए कमलके समान सुन्दर मुखवाली शरद ऋतु, मई व्याही हुई कपवती बहूके समान मख भा पड़ची है ॥१॥ काँचकी भ्राष्ट्रियोने भरतीको, चन्द्रदाने राठोको, हृषोने नदियोंके जलको, कमलोने छालाकोको, फूलोंके बोझसे भुने हुए छलियनके वृषोने शगतको और मासतीके फूलोंने फुलवारियोंको उजला बना जावा है ॥२॥ इस मद्रतुने नदियाँ भी उसी प्रकार धीरे-धीरे बहने जा रही है, जैसे करघने और मात्रा पढ़ने हुए बड़े-बड़े नितम्बोवाली कामिनियाँ पली जा रही हों क्योंकि चखलती हुई सुन्दर मछलियाँ ही वन नदियोंकी करघने हैं, तीरपर बँठी हुई उजली चिड़ियोंकी पंक्ति ही उनकी मालाएँ हैं और ऊँचे-ऊँचे रेतोते टीले ही उनके मोम नितम्ब हैं ॥३॥ चाँदी, लख और कमलके समान उजले जो सहस्रो बादल पानी बरसनेसे हलके होकर, पवनके सहारे इधर-उधर घूम रहे हैं, उनसे भरा हुआ आकाश वही-वही ऐसा लगने लगता है मानो किसी राजा पर सबैठों खँवर डुलाए जा रहे हो ॥४॥ घुटे हुए धाँजतकी पिठो-बँसा नीला सुन्दर आकाश, दुपहरियाके फूलोंसे लाल बनी हुई भरती और पके हुए भागने लगे हुए सुन्दर चेत, इस ससारमे किस मुबकका मख जाँवहोस नहीं कर देते ॥५॥ जिसकी आखाधोकी सुन्दर फुनवियोंको धीमा-धीमा पवन मुक्ता रहा है, जिसपर बहुते फूल सिले हुए हैं, जिसकी पल्लियाँ बडो कोपल हैं और जिसमेसे बहते हुए मधुकी चारको मस्त भौरे धीरे-धीरे

तारागणप्रवरभूपणमुद्दहन्ती      मेघावरोधपरिमृक्तशशङ्कवक्त्रा ।  
ज्योत्स्नादुकूलममलं रजनी दधाना वृद्धिं प्रयात्यनुदिनं प्रमदेव शाला ॥७॥  
कारणदवाननविघट्टितवीचिमालाः      कादम्बसारमकुलाकुलतीरदेशाः ।  
दुर्वन्ति हंसविकृतैः परितो जनस्य प्रीतिं सरारुहरज्वोरुणितास्तटिन्यः ॥८॥  
नेत्रोत्सवो हृदयहारिमरीचिमालः प्रहादकः शिशिरसीकरवारिवर्षो ।  
पत्युर्विपोगविपदम्बशरसतानां चन्द्रो दहस्यतितरां तनुमङ्गनानाम् ॥९॥  
आक्रम्यपन्फलभरानतशालिजालान्यानर्तयैस्तखरान्कुसुमावनप्रान् ।  
उत्फुल्लपङ्कजवनां नलिनीं विधुन्वन्यूनां मनश्चलयति प्रसमं नमस्त्रान् ॥१०॥  
सौन्मादहंसमिधुनैरुपशोभितानि      स्वच्छप्रफुल्लकमलोत्पलभूपितानि ।  
मन्दप्रभातपवनोद्गतवीचिमालान्युत्फण्टयन्ति सहसा हृदयं सरांसि ॥११॥  
नष्टं धनुर्वलभिदो जलदोदरेषु सौदामिनी स्फुरति नाय वियत्पताका ।  
धुन्वन्ति पञ्चपवनैर्न नभो बलाकाः पश्यन्ति नोन्नतपुरा गगनं मयूराः ॥१२॥

बूत रहे है, ऐना कोबिबारका मूस किसका हृदय टुकडे टुकडे नही कर देता ॥६॥ बादल हटे हुए  
बग्नराके मुंहवाली घाजबसकी रात भी तारोके मुहावने यहनो यासी और बादनोकी उजली सारी  
बासी चलदेती छोरकीके उमान दिन-दिन बढ़ती जाती जा रही है ॥७॥ जिन नदियोका जल  
कनलके परागसे साल हो गया है, जिनपर हल पूज रहे हैं, जिनकी सहरे जल-पक्षियोकी चोंचेंति  
टकराती जा रही हैं, और जिनके तीरपर कदम्ब और सारल पक्षियोके झुण्ड भूज रहे हैं, वे नदियां  
सौगोकी बडी मुहावनी लगती हैं ॥८॥ सबकी प्राँसोको भला सवनेवाने जिस पन्द्रमाकी किरणें  
मनकी बरदल अपने और लीज लेती हैं, वही मुहावना और ठण्डी फुहार बरसानेवाला चन्द्रमा, उन  
दियोके घग बहल भूने डाल रहा है जो अपने पतियोके विछोहके बिप बुझे बगणोके भायल हुई  
भरोमे पवी पवी बलप रही है ॥९॥ घन नरी हुई वासियोके मुके पानके पौपोकी सौपाता  
हुषा पूलोसे जडे हुए सुन्दर वृक्षोकी नचाठा हुषा और हिले हुए नमलेंति भरे सानोकी  
कमलतियोकी हिलाता हुषा धीतल बाबु मुखकोका मन भरुभोरे डाल रहा है ॥१०॥ जिन तालेके  
तीरपर मस्त हसोके जोडे पुम रहे हैं, जिनसे स्वच्छ सिले हुए उबले और नीले नमल घोमा से  
रहे हैं और जिनमें प्रात पालके पीमे-पीमे पयगसे सहरे सठ रह्ये हैं, वे ताल, पचानक हृदयको  
मस्त बनाए डाल रहे हैं ॥११॥ घाजबस न तो बादनोम इन्द्रधनुज रह गए हैं, न  
यगने ही अपने पँस हिला-हिलाकर भावाशको पया कर रहे हैं और न मोरोने मुण्ड  
ही मुंह उठाकर आवाशकी और देस रहे है ॥१२॥ जिन मोरोने नाचना छोड दिया  
है उन्हें छोडकर सब नामदेव उन हसोने पास पहुँच गया है जो बडी मोठी बोनी मे  
रनमुन रनमुन कर रहे है । पुलों की सुदरगा भी कदम्ब, बुटब, घर्दुन, सर्ज और



नृत्यप्रयोगरहिताश्शिखिनो-विहाय हंसानुपैति मदनो मधुरप्रगीतान् ।  
 मुक्त्वा कदम्बकुटजार्जुनसर्बनीपान्मत्तच्छदानुपगता कुसुमोद्गमश्रीः ॥१३॥  
 शेफालिकाकुसुमबन्धमनोहराणि स्वस्थस्थितारुहबकुलप्रतिनादितानि ।  
 पर्यन्तसंस्थितमृगीनयनोत्पलानि प्रोत्कण्ठयन्त्युपवनानि मनोसि पुंसाम् ॥१४॥  
 कङ्कारपत्रकुमुदानि मुहुर्विधुन्वन्स्तत्संगमादधिकशीव्लतागुपेतः ।  
 उत्कण्ठयस्यसिततरां पवनः प्रभाते पत्रान्दलमृतुहिनाम्बुविधूयमानः ॥१५॥  
 संपन्नशालिनिचयाश्रुतभूतलानि स्वस्थस्थितपञ्चरगोकुलशोभितानि ।  
 हंसैः ममारमकुलैः प्रसिनादितानि सीमान्तराणि जनयन्ति नृणां प्रमोदम् ॥१६॥  
 हंसैर्जिता सुललिता गतिरङ्गनानामम्भोरुहैर्विकसितैर्गुप्तचन्द्रकान्तिः ।  
 नीलोत्पलैर्मदकलानि विलोचनानि अविभ्रामाश्च रुचिराम्बुभिस्तरङ्गैः ॥१७॥  
 श्यामा लताः कुसुमभारनतप्रवालाः स्त्रीणां हरिन्ति श्रुतमूषणवाहुकान्तिम् ।  
 दन्तायभासविशदस्मितचन्द्रकान्तिं कङ्कलिपुष्परुचिरा नमालती च ॥१८॥  
 केशाभिसान्त्वयननीलविकुञ्चताग्रानाश्रयन्ति एनिता नवमालतीभिः ।  
 कर्णेषु च प्रवरकाञ्चनकुण्डलेषु नीलोत्पलानि विविधानि निवेशयन्ति ॥१९॥

मदनो नये पृथोकी छोड़कर छलिवनके पेड़पर जा गयी है ॥१३॥ जिन उपवनोमें शेफालिवाने फूलोंकी मनभावनी गुणगंध फैली हुई है, जिनमें निश्चिन्त बंठी हुई चिड़ियोंकी सहजहाहट चारों ओर गूँच रही है, जिनमें कमल-जैसी मीसोंवानी हरिणियाँ जहाँ वहाँ वैठी पगुरा रहीं हैं, उन्हें बल-देखकर लोमोके मन हाथके निकल-निकल जाते हैं ॥१४॥ प्रातःकाल पत्तोंपर पड़ी हुई शीतकी बूँदे शिखराता हुआ शीर चौकामेल, कमल तथा कुमुदके छून्-छूकर ठठक मेलता हुआ जो पवन धीमे-धीमे मधु उड़ा है वह कितने सजल लड़ी बरस देता ॥१५॥ जहाँके छेड़ोमें अरपूर धारके शीघे लहलहा रहे हो वहाँ घातने नैदानमें बहुतसी गीर्ण चर रही हो, जहाँ बहुतसे चारतो शीर हंसोंके चोटे घायनी मीठी मीठी घील रहे हो, ऐसे स्थान लोमोको आनन्दके पटे भन्धे लभते हैं ॥१६॥ इन दिनों हंसोंने सुन्दरियोंकी मनभावनी चासकी, वमलिनियोने उनके चंद्रमुखकी चमकरी नीले वपलोंने उनकी मदमरी धारोको शीर छोटी लहरियोने उनकी सौहोनी सुन्दर मटकनी हरा दिया है ॥१७॥ जिन हरी बेनोनी टहिनियाँ फूलोंके बीचमें भुज गई हैं, उनकी सुन्दरताने टिकियोंकी सहनोरे सजी हुई बाहोंकी सुन्दरता छीन ली है और बकेलि तथा नई शासतीके सुन्दर फूलोंने दाँतोंकी चमकसे बिल उठने-वाली टिकियोंकी मुक्कराहटकी चमकको भजा दिया है ॥१८॥ टिकियाँ अपने मनी भुंघराची काली लटोमें नये मालतीके फूल गूँच रही हैं और अपने जिन चामोके वे सोनेके यदिया कुण्डल पहना करती थी, उनमें उन्हीने मनेक प्रवारने नीले चमक लटका दिए हैं ॥१९॥ आजकल टिकियाँ बड़ी उमगसे अपने स्तनोपर मोलियोंके हार पहनती शीर चन्दम पोतती हैं, अपने भारी-भारी निठमोपर

हारैः मचन्दनरसैः स्तनमण्डलानि श्रोणीतटं सुविपुलं रसनाकलापैः ।  
 पादाम्बुजानि कलनूपुरशेखरैश्च नार्यैः ग्रहृष्टमनमोऽद्य विभूषयन्ति ॥२०॥  
 स्फुटकुमुदचितानां राजहंसाश्रितानां मरकतमणिभामा वारिण्या भूपितानाम् ।  
 श्रियमतिशयरूपां व्योम तोयाशयानां वहति विगतमेघं चन्द्रतारावकीर्णम् ॥२१॥  
 शरदि वृष्टुदमद्गाढापचो धान्ति शीता विगतजलदृष्ट्वा दिग्भिभामा मनोदाः ।  
 विगतस्त्रुपमम्भः श्यानपङ्का धरित्री तिमलकिरणचन्द्रं व्योम तारानिचित्रम् ॥२२॥  
 करफलमनोज्ञाः कान्तमंसक्तहस्ता वदनविलितचन्द्राः काश्चिदन्यास्तद्वयः ।  
 रचितहृत्सुमगन्धि प्रायशो यान्ति वेरम प्ररुलमदनहेतोस्त्यक्तसंगीतरागाः ॥२३॥  
 सुरतरमविलामाः सस्तस्त्रीभिः समेता असमशरपिनोर्दं घृचयन्ति प्रकामम् ।  
 अञ्जुपमसुखरागा रात्रिमध्ये विनोदं शरदि तरुणकान्ताः घृचयन्ति प्रमोदान् ॥२४॥  
 दिपगकरमयूरैर्भाष्यमानं प्रभाते वरसुवतिमुखाभं पङ्कजं जम्भतेऽद्य ।  
 इमुदमपि गतेऽस्तं लीयते चन्द्रनिम्बे हमितमिव बधूनां प्रोपितेषु प्रियेषु ॥२५॥  
 असितनयनलक्ष्मीं लघयित्त्वोत्पलेषु क्वणितकनककूर्धां मचहंसस्यनेषु ।  
 अधररुत्तिरशोभां वन्द्युजीवे प्रियाणां पधिकजन इदानीं रोदिति भ्रान्तचित्तः ॥२६॥

वरपत्नी घोषती है और अपने कमल-जैठे गोमन सुन्दर-पेरिभि एल-धम बजनेवाले विजुए पहनती हैं  
 ॥२०॥ तिनके हुए पन्द्रमा और छिदने हुए तारोंके मरा हुआ भाजकनका सुला धानाम उन तालीके  
 समान दिगाई पड रहा है तिनके नीलमने समान कमनका हुआ जल भर हुआ हो, तिनके एम-  
 एम राजदत्त-पंटा हुआ हो और तिनके यहाँ-वहाँ बहुतेके कुमुद तिले हुए हो ॥२१॥ भाजकन  
 कमलको दूता हुआ शीतल वषल बह रहा है, वादमोह उठ जानेके चारों ओर सब गूहायार दिगाई  
 दे रहा है, पानीका मँबलापन दूर हो गया है, धरतीपरवा चारा बीजक मूल गया है और प्राणाक्षरी  
 स्वप्न विरलौबाता पन्द्रमा और तारे भिन्नत छाए हैं ॥२२॥ पन्द्रमाके भी प्रियत सुन्दर सुलवामी  
 सुवतिनी अपना गध गामा-बजना छोड़कर अत्यंत कामतुर होकर अपने सुन्दर वषल जैसे हाथ  
 अपने प्रेमीके हाथमें कामकर उन चारोंके चली जा रही हैं तिनके सुगन्धित धूर्तोंकी सेज बिछी हुई  
 है ॥२३॥ वरदमं मनोगता एम सेनेवाली और धरुते प्रवारण मूह रेगनेवानो सुवतिनी जब  
 अपने गरिषोके साथ बैठती हैं तो आपसमें एक दूसरीके साथ बातें बतल दालती है कि रातमें  
 बी-जैठे प्रान्त दूटा गया ॥२४॥ बात बात जब सुने अपने चारोंके कमलको जगाता है सब वह  
 बना सुन्दरी सुवतीके सुनके समान सित उठता है और जैसे प्रियके परदेन बने जागेपर त्रिवोकी  
 मुन्कराहट बना जाती है जैसे ही पन्द्रमाके छिद जानकर मोई भी सकुच जाती है ॥२५॥  
 जब परदेनमें गए हुए लोप नीले कमनाम अपने भिन्नभाषी वाली क्षीणोको सुन्दरता देती  
 है, मस्त हलोकी प्यनिध उनको सुवतीकी वरपत्नीकी स्तब्धन मुनो है और वन्द्युजीवने पूजोके  
 उनके रिषोंके घोषोंके चमकती हुई सुन्दरताको चमक पाते है, सब को के बेचारे मर गुण-बुध

स्त्रीणां विहाय वदनेषु शशाङ्कलक्ष्मीं

काम्यं च हंसवचनं मखिनपुरेषु ।

बन्धूकक्रान्तिमघरेषु मनोहरेषु

फापि प्रयाति सुभगा शरदाममश्रीः ॥२७॥

विकचकमलवपत्रा फुल्लनीलोत्पलाक्षी

विकासितनवकाशरचेतवासो वसाना ।

कुमुदरुचिरक्रान्तिः कामिनीवोन्मदेयं

प्रतिदिशतु शरद्वरचेतसः प्रीतिमडयाम् ॥२८॥

इति महाकविश्रीकानिदासकृती ऋतुसंहारे शरदखण्डेन नाम तृतीयः सर्गः ।

भूलकर रीने ही लग जाते हैं ॥२६॥ शरदकी सुन्दर सोभा कही तो चन्द्रयाकी बमकाको छोडकर  
द्विभागे मुँहपर पहुँच गई है, कही हसोकी मोठी मोठी छोडकर नदेखियो के रतन-बडे विष्णुधोमे  
बली गई है और कही बन्धूक फूलोंकी लालीको छोडकर उनके बिचले मोठोमे जा बडी ॥२७॥  
भगवान् करें, यह खिले हुए उजले कमलके मुसवाली, फूले हुए नीले कमलकी भाँषोवाली कोईके  
गुनवर शरीरवाली और फूले हुए काँचकी साड़ी पहननेवाली यह कामिनीके समान गस्त शरद ऋतु  
साय लोकोके मनमे नई नई उमंगें करे ॥२८॥

महाकवि श्रीकानिदासके रचे हुए ऋतुसंहार काम्यमे शरदका बखान नामका चौसठ सर्ग समाप्त हुआ ।

## ॥ चतुर्थः सर्गः ॥

हेमन्तवर्षानम्

नवप्रवालोल्लसस्परम्यः प्रफुल्ललोधः परिपकशालिः ।  
 विलीनपद्मः प्रपतचुपारो हेमन्तकालः समुपागतोऽथम् ॥१॥  
 मनोहरैश्चन्दनरागौरैस्तुपारकुन्देन्दुनिभैश्च हारैः ।  
 विलासिनीनां स्तनशालिनीनां नालंक्रियन्ते स्तनमण्डलानि ॥२॥  
 न बाहुयुग्मेषु विलासिनीनां प्रयान्ति सङ्गं बलयाङ्गदानि ।  
 नितम्बपिम्बेषु नवं दुकूलं तन्त्रशुकं पीनपयोधरेषु ॥३॥  
 काञ्चीगुणैः काञ्चनरत्नचित्रैर्नो भूषयन्ति प्रमदा नितम्बान् ।  
 न मूर्धुरैर्हंसरुतं भजद्भिः पादाभ्युजान्यभ्युजकान्तिभाञ्जि ॥४॥  
 गात्राणि कालीयकचर्चितानि सपत्रलेखानि मुस्ताभ्युजानि ।  
 शिरांसि कालागुरुभूषितानि कुर्वन्ति नार्यः सुरतोत्सवाय ॥५॥  
 रतिभ्रमक्षामविपाण्डुवपत्राः संप्राप्तहर्षाभ्युदयास्तरुष्यः ।  
 हसन्ति नोच्चैर्दशनाग्रभिन्नान्प्रपीडयमानानधरानवेद्य ॥६॥

चौथा सर्ग

हेमन्त वर्णन

देखो ! यह साला गिराती हुई हेमन्त ऋतु भा गई है, जिसमें गेहूँ जो आदित्य मये मये  
 अङ्कुरोने निकल आनेसे पारो और मुह्यवना दिलाई देने समय है, कोचके पेड़ फूलोंसे सज गए हैं,  
 धात पत्र चला है और कमल दिखाई नहीं देते ॥१॥ इन दिनों बलवेली छियां अपने यजे-यजे गोल-  
 गोल स्तनोपर हिम, कीई और चन्द्रमाके समान उजले और कुकुमके रंगमें रंगे हुए मनोहर हार  
 नहीं पहनती हैं ॥२॥ आत्रकल न सो ये कमिनियां अपनी दोषो बुजाओपर कणम और मुजबन्ध  
 ही पहनती हैं, न अपने गोल-गोल नितम्बोंपर नये रेशमी वस्त्र ही सपेटती हैं और न अपने मोटे-मोटे  
 स्तनोपर महीन कपड़े ही बांधती हैं ॥३॥ न ये अपने नितम्बोंपर सोने और रत्नोंसे  
 जड़ी हुई कपडो पहनती हैं और न अपने कपल-जैसे मुन्दर पंरोम हथवे समान ध्वनि करनेवाले  
 विष्णु ही डालने हैं ॥४॥ धानवस धवन पतिते समोषकी संयारीमें सुपतियां,  
 अपने शरीरपर पन्दन मसती हैं, अपने कमल-जैसे मूर्धुर अपने प्रकारने बेल-बूटे बनाती हैं और  
 पातामुहना रूप देवर अपने बेल सुपन्धित करती हैं ॥५॥ समोषकी यकानले पीले और  
 मुग्धाए हुए मुषोयालो सुवतियां, हंसनेकी वातपर जो यह समभन्तर मुह खोलपर नहीं हंसती दि-  
 कही प्यारेके पीने दांतधि काट हुए धोठ दुसने न मगे ॥६॥ प्राप्तकल धातपर पीली हुई  
 मोतरी बूंदोको देखकर ऐसा समता है मानो सुवतियां मोटे-मोटे स्तनोको सनकी दातियां-

पीनस्तनोरःस्वलभाशोभामासाद्य तत्पीडनजातखेदः ।  
 वृथागलमैस्तुहिनैः पतद्भिराक्रन्दतीवोपसि शीतकालः ॥७॥  
 प्रभूत्शालिप्रसर्वधितानि मृगाङ्गनायूथविभूषितानि ।  
 मनोहरकौञ्चनिनादितानि सीमान्तराख्युत्सुक्यन्ति चेतः ॥८॥  
 प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितानि सोन्मादकादम्बविभूषितानि ।  
 प्रसन्नतोयानि सुशीतलानि सरांसि चेतांसि हरन्ति पुंसाम् ॥९॥  
 मार्गं समीच्यातिनिरस्तनीरं प्रवासरिञ्चं पतिमुद्ग्रहन्त्यः ।  
 अवेक्ष्यमाणा हरिखेद्यखाक्ष्यः प्रषोषयन्तीव मनोरथानि ॥१०॥  
 पार्श्वं व्रजन्ती हिमजातशीतैराधूयमाना सततं मरुद्भिः ।  
 प्रिये प्रियङ्गुः प्रियविप्रयुक्ता विपाण्डुतां यानि विस्तसिनीव ॥११॥  
 पुष्पासवामोदसुगन्धिघक्त्रो निःधासवार्तः सुरभीकृताङ्गः ।  
 परस्पराङ्गक्ष्यतिपद्मशाथी शैले जनः कामरसानुषिद्धः ॥१२॥  
 दन्तच्छदैः सत्रणदन्तचिह्नैः स्तनैश्च पायपप्रकृताभिलेखैः ।  
 संयुच्यते निर्दयमङ्गनानां रतोपभोगो नवयौवनानाम् ॥१३॥  
 काचिद्भिभूषयति दर्पणसक्तदस्ता धालातपेषु वनिता वदनारविन्दम् ।  
 दन्तच्छदं प्रियतमेन निपीत सारं दन्ताग्रभिन्नमवकुप्य निरीक्षते च ॥१४॥

पर देखकर घुसपानेपापा हेमन्त, उन स्तनोको प्रेमियोके हाथोसे मने जाते देखकर बुझी होकर मांसु बहा रहा हो ॥७॥ गांवके बाहर जिन खेतोमे भरपूर धान सहस्रहा रहा है, हरिखियोके भुषणे भुङ्ग कोण्डियां भर रहे हैं और सारस बोल रहे हैं, उन खेतोको देखकर मन हावले निकल पडता है ॥८॥ जिन छालोमे खिते हुए नीले कमल फले हुए हैं, मस्त कलहच इपर-उपर लहर रहे हैं और ठंडा निर्गम जल भरा हुआ है, उम्हे देखकर शोभोवा जी बिल उठता है ॥९॥ जिनके पति घरदेख जले गए हैं, ये मृगवयनी स्त्रियां जब मुखे हुए गांवको देखली हैं तो घरदेखमे पडे हुए अपने बुझी पतिभोके धानेकी बात जोहती हुई यह सोचती हैं कि जब हमारे पति पार्येंगे, तब हम यो मिलेंगी, यो वार्ते करेंगी और यो रुठेगी ॥१०॥ हे प्यारी ! पालेते भरे उठे वायुसे हिंसती हुई यह पानी हुई प्रियदुकी लता, बेंगो ही पोली पद गई है जैसे अपने पतिसे प्रसंग होनेपर मुक्ती पोली पट जाती है ॥११॥ फूलोमे शपकी भीनी और भीठी सुपधवाले मुहसे मुँह जगानर और एक दूसरेकी साँठोसे सुगन्धित मगोसे घब गिलाकर सब स्त्री-पुरुष एक दूसरेसे लिपटकर सगोष करते हुए सोते हैं ॥१२॥ इस समय प्यारोने नवयुवतियोके जोठोपर दाँतों पाप कर दिने है और उनके स्तनोपर अपने जलोसे चिन्ह बना दिए हैं इससे यह जान पड रहा है कि उनके प्यारे उनका जो-जानखे सयोग कर रहे हैं ॥१३॥ देखो एक स्त्री, हावमे दर्पण लिए हुए प्रातःवाकनी धूपमे वंठी अपने कमल जैसे मुँहका सिंगार कर रही है और

अन्या प्रकामसुरतथमखिन्नदेहा रात्रिप्रजागरविपाटलनेत्रपत्रा ।  
 स्रस्तांसदेशलुलिताकुलकेशपाशा निद्रां प्रयाति मृदुस्यंकराभितप्ता ॥१५॥  
 निर्मात्यदाम परिभ्रुक्तमनोज्ञगन्धं मूर्ध्नोऽपनीय घननीलशिरोरुहान्ताः ।  
 पीनोन्नतस्तनभरानतगात्रयष्टयः कुर्वन्ति केशरचनामपरास्तरहस्यः ॥१६॥  
 अन्या प्रियेण परिभ्रुक्तमवेच्य गात्रं हर्षान्विता विरचिताधरचारुशोभा ।  
 कूर्पामकं परिदधाति नखचताङ्गी व्यालम्बिनीलललितालङ्कृश्रिताङ्गी ॥१७॥  
 अन्याक्षिरं सुरतकेलिपरिश्रमेण खेदं गताः प्रशिथिलीकृतगात्रयष्टयः ।  
 संहृन्पनाणपुलकोरुपयोधरान्ता अम्यञ्जनं विदधति प्रमदाः सुशोभाः ॥१८॥

पद्मुण्डारमणीयो योपितां चित्तहारी

परिणतबहुशालिष्याकुलग्रामसीमा ।

विनिपतिततुषारः क्रीञ्चनादोपगीतः

प्रदिशतु हिमयुक्तः काल एषः सुखं वः ॥१९॥

इति महाकविश्रीकालिदासकृती ऋतुसंहारे हेमन्तवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥

घरने जिन झोडीरा प्यारेने रस पी सिखा हे घोर जिनपर प्यारेके दाँतोके घाव बने हुए हैं, उन झोडीकी खीच-खीचकर देख रही हैं ॥१४॥ अत्यन्त संभोगसे सब बानेके कारण एक दूसरी खीची कमल-जैमी घातों रातभर आगनेसे जाल हो गई हैं, उसके बड़े झूल गये हैं, उतने यान्त इधर-उधर बिसर गए हैं घोर वह प्रातःकालके सूर्यकी नीमल किरणोंने घूष खाती हुई सौ गई है ॥१५॥ लम्बे, बाले घोर घने नेत्रोवाली जिन लिवोने लरीर, मीठे घोर ऊँचे स्तनोके कारण झुक गए हैं, ये अपने शिरसे वह मुरझाई हुई माता उतर रही हैं जिसकी मधुर सुगन्धका आनन्द रातने ले चुकनेपर सोने फिरने अपने बालोंकी बँवार रही है ॥१६॥ गताँके पारोति भरे हुए मणीवाली घोर लटकनी हुई मुग्ध ममकींनि बनी हुई मीठोवाली एक दूसरी स्त्री, अपने प्यारेसे उषभोग किए हुए लरीरकी देख-देखकर बड़ी मगन होती हुई अपने सघनोंकी फिर करनेकी नाईं मुग्ध दवाकर अपनी बोली पहनने लगी है ॥१७॥ इसी प्रकार बहुत देखत सबीष करते-करते जो युवतिदाँ एक गई है, जिनके नीमन घोर मधरीने लरीर डीले पड गए हैं घोर जिनकी जाँघो घोर स्तनोंपर रोमाञ्च हो भाया है, ये युवतिदाँ बँठी अपने लरीरपर लेल मगन रही है ॥१८॥ अगवात् करे यह हेमन्त ऋतु धारकी मुख दे जो घनेव मुग्धोने मनकी मुग्ध करनेवाली घोर जिनोके बिसकी मुग्धनेवाली है, जिनमें गाँठोने पास-पास बने हुए पानोंने गेठ सहलहाने हैं, पाना गिरता है घोर धारन बोनते है ॥१९॥

महाकवि श्रीकालिदासने रचे हुए ऋतुसंहार काव्यमें हेमन्त वर्णन

नामका चौथा सर्ग समाप्त हुआ ।

## ॥ पञ्चमः सर्गः ॥

### शिशिरवर्षनम्

प्ररुद्धशालीजुचयावृतचित्तिं क्वचित्स्थितकौञ्चनिनादराजितम् ।  
 प्रकामकामं प्रमदाजनप्रियं वरोरु कालं शिशिराह्वयं शृणु ॥१॥  
 निरुद्धवातायनमन्दिरोदरं हुताशनो भानुमतो गमस्तपः ।  
 गुरुखि वासांस्पन्दलाः सपौवनाः प्रयान्ति कालेऽत्र जनस्य सेव्यताम् ॥२॥  
 न चन्दनं चन्द्रमरीचशीतलं न हर्म्यपृष्ठं शरदिन्दुनिर्मलम् ।  
 न वापवः सान्द्रतुषारशीतला जनस्य चिचं रमयन्ति संप्रतम् ॥३॥  
 तुषारसंघातनिपातशीतलाः शशाङ्कभाभिः शिशिरीकृताः पुनः ।  
 विषाण्डुतारागणश्वारुभूपणा जनस्य सेव्या न भवन्ति रात्रयः ॥४॥  
 गृहीतवाम्बूलविलेपनस्रवः पुष्पासवामोदितवक्त्रपङ्कजाः ।  
 प्रकामकालागुरुधूपवासितं विशन्ति शय्यागृहमुत्सुकाः स्त्रियः ॥५॥  
 कृतापराधान्यहुशोऽभितर्कितान्सवेषधून्साध्वसलुप्तचेतसः ।  
 निरीक्ष्य भतृन्सुरताभिलाषिणः स्त्रियोऽपराधान्समदा विसस्मरुः ॥६॥

### पाँचवाँ सर्ग

#### शिशिरका वर्षन

हे सुन्दर जाँघोवाली ! सुनो जिस ऋतुमें शान और ईशके से घेत भर जाते हैं, जिसमें कभी-कभी सारसकी बोली भी गूँज जाती है और शान भी बहुत बढ़ जाता है, वह दिव्यकी प्यारी शिशिर ऋतु का पहुँचो ही ॥१॥ भागकल लोग अपने परोके भीतर शिशिकीया बन्द करके, घाग तापकर, धूप खाकर, मोटे-मोटे कपड़े पहनकर और युवती तियोसे लिपटकर दिन बिताते हैं ॥२॥ इन दिनों न किसीको चन्द्रमाकी किरणोंसे ठढाया हुआ पत्थर ही मन्त्रदा लगता है न शरदके चन्द्रमाके समान निर्मल छत्रों सुहाती हैं, न शनी ओससे ठढा बना हुआ वायु ही मनको भाता है ॥३॥ इन दिनों पने पानेसे कलकडाते बावोवाली, चन्द्रमाकी किरणोंसे घोर भी ठडी मनी हुई और पीने-पीने जातेवाली रातोमे कोई भी नहर नहीं निकलता ॥४॥ कुलीके घासपानेसे बिगना कलम पैसा मुँह सुगन्धित हो गया है वे स्त्रियाँ पान खाकर, फुलेल लगानकर और मालाएँ पहनकर, बाले बगरके पुँसे महकनेवाके अपने समय-चरोमे बडे जावते चली जा रहते हैं ॥५॥ मदमाली स्त्रियोने अपने बिन पतियोको ब्रपराध करनेपर डाँटा-फटकारा पर, वे जब काँपते हुए और डरसे भवराएँ उनके पास संभोग करनेके लिये प्राते हैं तो उन्हें देखते ही वे स्त्रियाँ उनका सब ब्रपराध भूलकर उनसे संभोग करने लगती हैं ॥६॥ जिन नवयुव-तियोने युवकोंके साथ भागकलकी लम्बी रातोंमें बहुत देरतक जी भरकर और कलकर संभोगका

प्रकामकामैर्बुधभिः सुनिर्दयं निशासु दीर्घास्वभिरामिताधिरम् ।  
 भ्रमन्ति मन्दं श्रमखेदितोरवः चपावसाने नवयौवनाः स्त्रियः ॥७॥  
 मनोज्ञकूर्पासकपीडितस्तनाः सरागकौशेयकभूपितोरवः ।  
 निवेशितान्तः कुसुमैः शिरोरुहैर्विभूषयन्तीव हिमागमं स्त्रियः ॥८॥  
 पयोधरैः कुंकुमरागपिञ्जरैः सुखोपसेव्यैर्नवयौवनोष्मभिः ।  
 पिलासिनीभिः परिपीडितोरवः स्वपन्ति शीतं परिभूय कामिनः ॥९॥  
 सुगन्धिभिःश्वासविकम्पितोरपलं मनोहरं कामरतिप्रबोधकम् ।  
 निशासु हृष्टा सह कामिभिः स्त्रियः पिवन्ति मद्यं मदनीपमुत्तमम् ॥१०॥  
 अपगतभद्ररागा योपिदेका प्रभाते कृतनिविडकुचाग्रा पत्युरालिङ्गनेन ।  
 प्रियतमपरिशुक्तं वीक्षमाशा स्वदेहं व्रजति शयनवासाद्वासमन्यं हसन्ती ॥११॥  
 अगुरुसुरभिधूपामोदितं केशपाशं  
 गलितकुसुममालं कुञ्चिताग्रं वहन्ती ।  
 त्यजति गुरुनितम्बा निम्ननाभिः सुमध्या  
 उपसि शयनमन्या कामिनी चारुशोभा ॥१२॥  
 कनककमलकान्तैश्चारुताग्राधरोष्ठैः श्रवणतटनिपक्तैः पाटलोपान्तनेत्रैः ।  
 उपसि वदनयिम्बैरंससंस्तककेशैः श्रिय इव गृहमध्ये संस्थिता योपितोऽद्या ॥१३॥

मानन्द लूटा है, वे स्त्रियाँ, रातके परिधमसे दुलती हुई जापोके कारख प्राप्त फाल बड़े धीरे-धीरे चल रही हैं ॥७॥ सुन्दर भोमियोसे अपने स्तन बसे हुए, जापोपर रेसमी कपड़े पहने हुए और भालोमे फूल गुंधे हुए स्त्रियाँ ऐसी लग रही हैं मानो जाड़ेके स्वागतका उत्सव मनातेके लिये सिंगार कर रही हो ॥८॥ इन दिनों प्रेमी लोग केसरसे रंगे हुए माल स्तनोवालो और सुकसे लूटी जानेवाली जवानोंकी गर्तीत गरी हुई कमलियोंको कसकर छातीसे लिपटाए हुए खाड़ा भगाकर सोते है ॥९॥ इन दिनों जिनाँ पड़े हर्षसे अपने प्रेमियोंके साथ रातको, रुबिकर, बहिया, मद बहानेवाली और काम-व्यामना जमानेवाली यह मदिश बोती है, जिसमें पड़े हुए कमल, उन कामिनिियोंकी सुगंधित लसते यरावर हिलते रहते हैं ॥१०॥ देखो ! श्राव.काल होनेपर एक स्त्री अपने प्रियतमसे उपमीग किए हुए अपने घरीरको देनती हुई अपने शयन-घरसे दूसरे घरमें चली जा रही है । इस समय इसके मुलपर मदर्षी नामी भी नही रह गई है और पतिकी श्चुतीमे लगे रहनेके कारण उसके स्तनोंकी पुष्टियाँ भी बढी हो गई है ॥११॥ एक दूसरी गरी नितम्बवाली, पहरी, नाभिवाली, लचकदार कमरवाली और मनभावनी सुन्दरतावाली स्त्री अगरके छुएमे बसो हुई अपनी बिना मालावाली घनी धुंधरासी गट्टे हाथमे घामे प्राप्त बाल पलंग छोडकर उठ रही है ॥१२॥ इन दिनों प्रातःकालके समय स्त्रियोने सुन्दर लाल-लाल घोडोबाने, लाल बोरोमे खनी हुई बढी-बढी माँचोवाले, कंजोपर फंसे हुए बालोवाले और मुनहले कमलने समान कमलनेवाले गोल-गोल मुखोंको देखकर ऐसा लगता है मानो पर-परमे लक्ष्मी या बन्नी हो ॥१३॥ अपने मोटे नितम्बोंके बीचसे दुली, अपने स्तनोंके



पृथुबधनभारताः किञ्चिदानम्रमध्याः स्तनमरपरिस्त्रेदान्मन्दमन्दं व्रजन्त्यः ।  
 सुरतसमयवेषं नेशमाशु प्रहाय दधति दिवसयोग्यं वेशमन्यास्तरुण्यः ॥१४॥  
 नखपदचित्तभागान्वीक्षमाणाः स्तनान्तानघरकिसलयाग्रं दन्तभिन्नं स्पृशन्त्यः ।  
 अभिमतरतवेषं भन्दयन्त्यस्तरुण्यः सवितुरुदयकाले भूपयन्त्याननानि ॥१५॥

प्रचुरगुडनिकारः स्वादुशालीचुरम्यः

प्रवलसुरतकेलिर्जातकन्दर्पदर्पः ।

प्रियजनरहितानां चित्तसंतापहेतुः

शिशिरसमय एष श्रेयसे वोऽस्तु नित्यम् ॥१६॥

इति महाकविश्रीकालिदासविरचिते ऋतुसंहारकाव्ये शिशिरपर्युगं नाम पञ्चमः सर्गः ॥

बोझने झुकी हुई कपटवाली और बरनेके कारण बहुत धीरे-धीरे चलनेवाली बहुत-सी स्त्रियाँ रातके सभोगकाले वस्त्र उतार उतारकर दिग्गमे गहकनेके कपडे पहन रही हैं ॥१४॥ अपने प्यारेके नखीके पावोंसे धरी कपनी छाती देखती हुई, प्यारेके दाँवोंसे काटे हुए अपने कोपसोंके समाप्त कौमल अधरोको छूती हुई और इस प्रकार अपने मनवाहे सभोगके येषपर क्लिप्तलिप्ताती हुई स्त्रियाँ प्रातः काल अपने मुँह सजा रही हैं ॥१५॥ जिस शिशिर ऋतुमें मिठाईइयाँ बहुतायतसे मिलती हैं, स्वाद लगनेवाले चादल और ईस चारों ओर मुसुंते हैं, लोच बहुत सभोग करते हैं, कागदेव भी पूरे वेगसे बड़ जाता है और प्यारोके मिया सकेले दिन काटनेवाले सोग मन भगौसकर रह जाते हैं वह शिशिर ऋतु प्रायः लोभोका मना करे ॥१६॥

महाकवि श्रीकालिदासके रचे हुए ऋतुसंहार काव्यमें शिशिर ऋतुका  
 पर्युगं नामका पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥

## ॥ षष्ठः सर्गः ॥

वसन्तवर्षणम्

प्रफुल्लचूताद्भ्रुतीक्ष्णसायको द्विरेफमालाविलम्बदुर्गुणः ।  
 मनांसि भेतुं सुरतप्रसङ्गिनां वसन्तयोद्धा समुपागतः प्रिये ॥१॥  
 द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपत्रं स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः ।  
 सुखाः प्रदोषा दिवसाद्य रम्याः सर्वे प्रिये चारुतरं वसन्ते ॥२॥  
 ईषत्पारैः कृतशीतहर्म्यः सुवासितं चारु शिरश्च चम्पकैः ।  
 कुर्वन्ति नायाऽपि वसन्तकाले स्ननं सहारं कुसुमैर्मनोहरैः ॥३॥  
 वापीजलानां मखिमैरलानां शशाङ्गभासां प्रमदाजनानाम् ।  
 चूतद्रुमाणां कुसुमान्वितानां ददाति सौभाग्यमयं वसन्तः ॥४॥  
 कुसुम्भरागारुषितैर्दुकूलैर्नितम्बविम्बानि विलाभिनीनाम् ।  
 तन्वंशुकैः कुङ्कुमरागगौरैरलंक्रियन्ते स्ननमण्डलानि ॥५॥  
 षण्णेषु योग्यं नवकार्षिकारं चलेषु नीलेष्वलकेष्वशोकम् ।  
 पुष्पं च फुल्लं नवमल्लिकायाः प्रयान्ति कान्तिं प्रमदाजनानाम् ॥६॥  
 स्तनेषु हाराः सितचन्दनार्द्रा भ्रुजेषु सङ्गं यलयङ्गदानि ।  
 प्रयान्त्यनङ्गातुरमानसानां नितम्बिनीनां जघनेषु काञ्चयः ॥७॥

छठा सर्ग

वसन्तका वर्णन

सो प्यारी ! फूले हुए धामनी गन्धरियोके रंगे बाण लेकर और अपने अनुपपरी परोकी  
 पातोकी डोरी चडाकर और वसन्त समय—करनेवाले रक्षिकोको बेपने मा पहुँचा है ॥१॥ देखो  
 प्यारी ! वसन्तके प्राते ही सब वृक्ष फूलोसे लद गए हैं, जसके कमल खिल गए हैं, स्त्रियाँ मत्वाली  
 हो गई हैं, शायुने सुगन्ध प्राते सभी है, सर्गों सुहावनी हो जाती है और दिन सुभावने हो गए हैं ।  
 सपहुष सुन्दर वसन्तके सब पुष्प सुहावना लगने ही लगता है ॥२॥ वसन्तके परोकी छतोपर ठडी  
 मोस छा गई है, धम्येके फूलोसे सबके जूदे महकने लगे हैं और स्त्रियाँ भी धपन<sup>पुष्प</sup>के<sup>पुष्प</sup>नोपर मनोहर  
 फूलोकी मालाएँ पहनने लगी हैं ॥३॥ वसन्तके प्रातेसे नार्याँटयोका जस, मणियोसे जडी नरपदियो  
 चाँदनी, स्त्रियाँ और मङ्गरोसे लदी धामनीको बावें सब और भी सुहावने लगने लगी हैं ॥४॥  
 धामनियोने अपने गोल-गोल नितम्बोपर कुमुपके लाल फूलोसे रंगी रेशमी साडी पहन ली है  
 और स्तनोपर वेगलने रंगी हुई महीन नपठेकी चोली पहन ली है ॥५॥ स्त्रियोके मनोम  
 लदने हुए हनीके कर्नरे फूल बडे सुहावना दिखार्ई पट रहे हैं और उनको बचन, यामी, धुवराती  
 लटोमें मणोबने पून और नव मल्लिकाकी खिली हुई कसियाँ बडे सुहावनी लगने लगी हैं ॥६॥  
 अपने प्रेमीसे संभोवनेवालेको उठावली नारियोने अपने स्तनोपर भीत चन्दनसे भीग हुए भीतीने

सपत्रलेखेषु विलासिनीनां षक्त्रेषु हेमाम्बुरुहीपमेषु ।  
 रत्नान्तरे मौक्तिकसङ्गरम्यः स्वेदागमो विस्तरताम्रपैति ॥ = ॥  
 उच्छ्वासायन्त्यः श्लथबन्धनानि गात्राणि कदर्पसमाकुलानि ।  
 समीपवर्तिष्वधुना प्रियेषु समुत्सुका एष भवन्ति नार्यः ॥ ६ ॥  
 तनूनि पाण्डूनि मदालसानि मुहुर्मुहुर्वृम्भन्त्यतत्पराणि ।  
 अह्लान्यनङ्गः प्रमदाजनस्य करोति लावण्यससंभ्रमाणि ॥१०॥  
 छायां जनः समभिवाञ्छति पादपानां नक्तं तथेच्छति पुनः किरणं सुधांशोः ।  
 हर्म्यं प्रयाति शयितुं सुपशीतलं च कान्तां च गाढमुपगूहति शीतलत्वाद् ॥११॥  
 नेत्रेषु लोलो मदिरालसेषु गण्डेषु पाण्डुः कठिनः स्तनेषु ।  
 मध्येषु निम्नो जघनेषु पीनः स्त्रीणामनङ्गो बहुधा स्थितोज्य ॥१२॥  
 अह्लानि निद्रालसविभ्रमाणि वाक्यानि किञ्चिन्मदिरालसानि ।  
 भ्रूषेपजिह्वानि च वीधितानि चक्षर कामः प्रमदाजनानाम् ॥१३॥  
 प्रियद्गुफालीयककुङ्कुमाकं स्तनेषु गौरेषु विलासिनीभिः ।  
 आलिप्यते चन्दनमङ्गनाभिर्मदालसाभिर्मृगनाभिपुक्तम् ॥१४॥

हार पहन लिए हैं हाथोंमें मुजकम घोंच कगन डाल लिए हैं और अपने बिलबोंपर चरपनी बांध ली है ॥१०॥ सुनहरे कमलके समान सुहावने और बेलबूटे चीते हुए प्रियोंके धुलोपर फली हुई पसीनेकी बूँद ऐसी दिखाई पड़ती हैं मानो अनेक प्रकारके रत्नोंके बीच बहुतसे मोती पड़ दिए गए हों ॥११॥ कामवासनाके पीड़ित स्त्रियाँ अपने प्रेमियोंके सामने अपने अंग उपादरती हुई उन्हें खलवा भी रही हैं और अपनी अश्लीलता भी दिखा रही हैं ॥१२॥ इन दिनों स्त्रियोंमें इतनी काम-बासना भर जाती है कि उनके घब घुबने पडते और पीने पड जाते हैं, वे मदके मलसाई भी हो जाती हैं धार-धार जैसाहवाँ सेती हैं और उनके सारे शरीरमें कुछ अलोला हो रहीतापन भा जाता है ॥१३॥ इन दिनों लोग बिलस तो वृक्षोंमें घीतक छायामें रहना चाहते हैं, रातमें चन्द्रमाकी किरलोक आनन्द सेना चाहते हैं, सोनेके लिये सुहावनी ठडी कोठीमें पहुँच जाती हैं और पोबी मोडी ठड चढनेके कारण अपनी प्यारियोंको फटाकर ध्वतीसे लिपटाए रूते हैं ॥१४॥ इन दिनों कामदेव भी स्त्रियोंकी मदमाती भाँसोम चञ्चलता, उनके गालोंमें पीलापन, स्तनोंमें बढोरता कामरने गहरापन और बिलबोंमें मोटापा बनकर भा बँठता है ॥१५॥ कामसे स्त्रियाँ अलसा जाती हैं, मदके जनक खलना बोलना भी कठिन हो जाता है और टेढे भाँहोंन उनको बिलवन वडी कँटीली जान पडने लगती है ॥१६॥ मदके मलसाई हुई रतीली स्त्रियाँ प्रियङ्गु,

गुरुषि वासांसि विहाय तूर्णं तनूनि लाघारसरञ्जितानि ।  
 मुगन्धिकालागुरुभूषितानि घचे जनः काममदालसाङ्गः ॥१५॥  
 पुँस्कोकिलरचूतरसासवेन मत्तः प्रियां चुम्बति रामहृष्टः ।  
 कूजद्विरेफाऽप्ययमम्बुजस्यः प्रियं प्रियायाः प्रकरोति चाडु ॥१६॥  
 ताम्रप्रवालस्तवकावनम्रारचूतद्रुमाः पुष्पितचारुशाखाः ।  
 कुर्वन्ति कामं पयनावधृताः पर्युत्सुकं मानसमङ्गनानाम् ॥१७॥  
 ध्रामूलतो विद्रुमरागताम्रं सपल्लवाः पुष्पचयं दधानाः ।  
 कुर्वन्त्यशोका हृदयं सशोकनिरीच्यमाया नवयौवनानाम् ॥१८॥  
 मत्तद्विरेफपरिचुम्बितचारुपुष्पा  
 मन्दानिलाकुलितनम्रमृदुप्रवालाः ।

कुर्वन्ति कामिमनसां सहसोत्सुकत्वं  
 बालाविष्टकलतिकाः समवेक्ष्यमायाः ॥१९॥  
 कान्तासुखयुतिलुपामचिरोद्गतानां  
 शोभां परां कुरवकद्रुममञ्जरीणाम् ।  
 दृष्ट्वा प्रिये सहृदयस्य भवेन कस्य  
 कंदर्पवाण्यपतनव्यथितं हि चेतः ॥२०॥

कालीयक और केसरके धोलने कस्तुरी मितानर अपने गोरे-गोरे स्तनोपर चन्दनका लेपे कर रही है ॥१५॥ इन बिनो कामदेवके मदने धलसाई हुई जियां अपने मोठे बहन उत्तरकर महावरके रंगे हुए और बालागुरुके घुँघरे मुगन्धित किए हुए महोदय रूपके पहनती है ॥१६॥ देखो ! यह नर कोयल कामकी मञ्जरीके रसने मद मस्त होकर अपनी प्यारीकी बड़े प्रेमस प्रसन्न होकर चूम रहा है । कमलपर बैठकर गुनगुनाता हुआ यह भौरा भी अपनी प्यारीका मनचाहा काम कर रहा है ॥१६॥ साल-साल कोयलके गुच्छोस झुके हुए और सुन्दर मञ्जरीके सबी हुई नासाभो-बाले कामके बंध जय पवनके अङ्गेमे रहने लगते हैं तो उन्हें देख देखकर स्त्रियोंके मन चढ़वने लगते हैं ॥१७॥ मत्तोकने जिन वृक्षों कोपलें फूट निबली हैं और जिनमें घूँप जैसे साल-साल बूल भीचते ऊपरतक खिल आए हैं, उन पत्तोंके वृक्षोंके देखते ही नवयुवतियोंके हृदयमें शोक होने लगता है ॥१८॥ जिन छोटी-छोटी बलिमुक्त मत्तोंके फूलोंकी मतवाले भौरि चूम रहे हैं और जिनके गये कामल पत्तों मन्द-मन्द पवनमें झून रह हैं, उन्हें देख देखकर प्राणिविषया मन प्रचानक दीपाटोल हो जाता है ॥१९॥ हे प्यारी ! अभी खिले हुए और जियाँके मुखके समान सुन्दर

आदीप्तवह्निसद्यैर्मरुताऽवधृतैः

सर्वत्र किंशुकवनैः कुसुमावनम्रैः ।

सद्यो वसन्तसमयेन समाचितेयं

रक्तांशुका नववधूरिव याति भूमिः ॥२१॥

किंशुकैः शुक्लमुखच्छविभिर्न मिश्रं

किं कर्णिकारकुसुमैर्न कृतं नु दग्धम् ।

पत्कोकिलः पुनरयं मधुरैर्वचोमि-

र्यनां मनः सुवदनानिहितं निहन्ति ॥२२॥

पुँस्फोफिलैः कलधचोभिरुपाचहर्षैः

कृज्जङ्गिरुन्मदकलानि वचांसि भृङ्गैः ।

सञ्जान्वितं सविनयं हृदयं जखेन

पर्याकुलं कुलगृहेऽपि कृतं वधूनाम् ॥२३॥

श्याकम्पयन्कुसुमिताः सहकारशास्त्रा

विस्तारयन्परभृतस्य वचांसि दिक्षु ।

वायुर्विवाति हृदयानि हरश्रराणां

नीहारपातविगमात्सुभगो वसन्ते ॥२४॥

सर्वत्रवाले कुरवकर्कः फूलोर्ची घनीर्षी धौभा बँलकर किंस रसिकका मम कामर्दबके बाणसे पावल नहीं हो जाता ॥२०॥ वसन्तके दिनीमे पवनके भोकेसे हिलती हुई भिन्न पलाशके धूलोकी फूली हुई धाखाएँ जसती हुई धागकी लपटोके समान बिछाई देती हैं, ऐसे पलाशके जगन्तोसे ठकी हुई पृथ्वी ऐसी लग रही है मानो सात साढ़ी पहने हुए कोई मई जुलहिन हो ॥२१॥ मपनी प्यारियोके मुखढीपर रीके हुए प्रेमियोके हृदयको सुग्गेकी ठोरके समान सात टेपुके फूलोने ही कुछ कम दूक-दूक कर रक्ता या या कनरके फूलोने ही कुछ कम जसा रक्खा या कि यह कोपल भी मपनी भीटी ब्रुक सुवा सुनाकर उन्हे धीर धार डालनेपर उतरा हो रही है ॥२२॥ मगल होकर मोठे स्वरमे कूफनेवासे मर मीजलोने धीर मस्तीसे गुँजते हुए धीरोने सती छिपकेके खाल धीर मर्वादा-भरे हृद-धोने भी धोडी देरके लिये मपीर कर दिया है ॥२३॥ वसन्तमे वाला हो पकता नहीं है, इसलिए आश्वत्थ मज्जरियोसे लसी धागकी डालोको हितानेवाला धीर कौबलके सदेखोको चारों ओर

कुन्दैः सविभ्रमवधूहसितावदातै-

रुद्योचितान्युपवनानि मनोहराणि ।

चिचं मुनेरपि हरिन्त निवृत्तरागं

प्रागेव रागमलिनानि मनांसि यूनाम् ॥२५॥

श्यालम्बिहेमरसनाः स्तनसक्तहाराः

कंदर्पदर्पशिथिलीकृतगात्रवपयः ।

मासे मधौ मधुरकोकिलमृङ्गनादै-

नार्या हरन्ति हृदयं प्रसभं नराणाम् ॥२६॥

नानामनोज्ञकुसुमद्रुमभूपितान्ता-

न्हृष्टान्यपुष्टनिनदाकुलसानुदेशान् ।

शैलेयज्जालपरिणद्धशिलातलान्ता-

न्ष्ट्या नतः पितिभृतो मुदमेति सर्वः ॥२७॥

नेत्रे निमीलयति रोदिति याति शोकं

प्राणं करेण विरुयद्धि विरौति चोच्चैः ।

कान्तावियोगपरिखेदितचिचवृष्टि-

र्ष्ट्याऽध्वगः कुसुमितान्सहकारवृक्षान् ॥२८॥

- १ फलानेवासा सुन्दर वस्तुनी पवन भोगोवा मन हरता हुआ वह रहा है ॥२५॥ कामिनियोंकी महतानी हँसीके समान उजले बुन्दके फूलोंके पत्रकेते हुए मनोहर उपवन जब मोह-मायासे दूर रहनेवाले मुनियों तपका मन हर लेते हैं तब नवयुवकोंके प्रेमी हृदयकी वो बात ही क्या ? ॥२५॥ चतुर्थे जब कोयलकी वृक्ष सुनाई देने लगती है, और गूँजने लगते हैं, उन समय कमरमे घोनेरी करपनी बाँधे, स्तनोपर मोतीके हार मटवण और-बामकी-उत्तेजनासे-धोले घरोरवामी स्त्रियाँ बलपूर्वक सोचोंका मन अपनी ओर खींच लेती हैं ॥२६॥ जिन पर्वतोंकी चोटियोंके ओर-ओरपर सुन्दर फूलोंके पेठ लगे हैं, जिनपर कोयलकी वृक्ष और मोरोरी गूँज सुनाई दे रही है और जिनपर चट्टानें फेंकी हुई हैं, उन चपरीसे पहाड़ोंको देख-देखकर सबको ध्यानन्द मिलता है ॥२७॥ अपनी स्त्रियोंके दूर रहनेके कारण जिनका जो वैचल्य हो रहा है वे यानी जब मञ्जरियोंके लगे हुए फामने पेशोंको देखते हैं तब अपनी धाँध बन्द करने रोने हैं, पछताते हैं, अपनी नाक बन्द कर लेते हैं कि वही मञ्जरियोंकी भाँनी-योनी महब नामके पहुँचकर रानीकी याद न दिताई और

समदमधुकराणां कोकिलानां च नादैः

कुसुमितसहकारैः कर्णिकारैश्च रम्यः ।

इषुभिरिव सुतीक्ष्णैर्मानसं मानिनीनां

सुदति कुसुममासो मन्मथोदीपनाय ॥२६॥

रुचिरकनककान्तीन्मुखैश्च

पुष्पराशी-

न्मृदुपवनविधृतान्पुष्पितारवृत्तदृशान् ।

अभिमुरमभिषीक्य क्षामदेहोऽपि मार्गं

मदनशरनिघातैर्भोहमेति प्रवासी ॥३०॥

परभृतकलगीतैर्हादिभिः

सङ्घांसि

स्मितदशनमयूखान्कुन्दपुष्पप्रभाभिः ।

वरकिसलयकान्ति

पल्लवैर्विद्रुमाभै

रुषहसति वसन्तः कामिनीनाभिदानीम् ॥३१॥

फलकमलकान्तेराननैः

पाण्डुगण्डै-

रुपरिनिहितद्वारैश्चन्दनाङ्गैः स्तनान्तैः ।

मदजनितविलासैर्दृष्टिपातैर्मुनीन्द्रा-

न्स्तनभरनतनार्यः कामयन्ति प्रशान्तान् ॥३२॥

फूल फूलकर रीति लगते है ॥२६॥ कोकिल और मदमाते भीरीके स्वरसे गुननेवाले भीरे हुए आमके पेड़ोंसे भरा हुआ और मनीहर कर्नरके फूलोंवाले अपने बने माणसे यह वसन्त मानिनी स्त्रियोंके मन हसलिये बीध रहा है कि उनमे प्रेम जग जाय ॥२६॥ परदेसमे पया हुआ यात्री एक तो बी ही बिद्योहसे दुबला पतला हुआ रहता है तिसपर अब यह मन्मद मन्मद रहनेवाले पवनके भ्रोयेसे हिलते हुए और सुन्दर सुनहले घोर निरानेवाले, बीरे हुए आमके वृक्षोंकी अपने सामने मार्गमे देखता है तो वह कामदेवके बाणोंकी शोच खानर भूखित होकर बिर पडता है ॥३०॥ इस समय जी दुलसानेवाले कोकिलने गीत सुना सुनाकर यह वसन्त, सुन्दरियोंकी रसमयी बातोंकी सिल्ली उठा रहा है । अपने कुन्दके फूलोंकी चमक दिखाकर यह वसन्त स्त्रियोंकी मुखकानपर चमक उठनेवाले दाँतोंकी दमककी हँसी उठा रहा है और मूये जैसी लाल लाल कोमल पत्तोंकी ललाई दिखाकर उन कामिनियोंकी कोपलो जैसी कोमल घोर लाल हृदयियोंकी जला रहा है ॥३१॥ स्तनोंके धोमसे मुकी हुई स्त्रियाँ अपने स्वयं कमलके समान सुनहरे गालोंवाले मुँहसे, पीने चन्दनसे पुते घोर मोतियोंके हार पने

कुन्दैः सविभ्रमवधूसितावदातै-  
 रुद्योत्तितान्युपवनानि मनोहराणि ।  
 चिचं मुनेरपि हरिन्त निवृत्तरागं  
 प्रागेव रागमलिनानि मनांसि यूनाम् ॥२५॥  
 आलम्बिहेमरसनाः स्तनसक्तहाराः  
 कंदर्पदर्पशिथिलीकृतगात्रयष्टयः ।  
 मासे मधौ मधुरकोकिलभृङ्गनादै-  
 नार्या हरन्ति हृदयं प्रसन्नं नराणाम् ॥२६॥  
 नानामनोज्ञकुसुमद्रुमभूषितान्ता-  
 न्दृष्टान्यपुष्टनिनदाङ्गुलसानुवेशान् ।  
 शैलेयजालपरिणद्धशिलातलान्ता-  
 न्दृष्ट्वा नतः चित्तिभृतो मुदमेति सर्वः ॥२७॥  
 नेत्रे निमीलयति रोदिति याति शोकं  
 प्राणं करेण विरुह्यद्दि विरीति चोच्चैः ।  
 फान्ताधियोगपरिखेदितचित्तवृत्ति-  
 र्दृष्ट्वाऽप्यगः कुसुमितान्सहकारवृक्षान् ॥२८॥

फलान्तेषाम्ता मुन्दर पक्ष्मी पवन लोकोत्तम मन हस्ता हुमा वह रहा है ॥२५॥ कामिनिदीकी  
 महतानी हँसीके समान उनसे पुन्दके फूलोंके समकते हुए मनोहर उपवन जब मोह-मायासे दूर  
 रहनेजाने मुनियो तपका मन हर लेते हैं तब कवयुवकोंके प्रेमी हृदयकी तो दात ही क्या ?  
 ॥२५॥ अंतमे जब कोमलकी नूक मुनाई देने मगती है, और गुंजने लगते हैं, उस समय कभरमे  
 सोतीकी बरषनी बांधे, स्तनोपर मोतोने हार लटवाए और-पामनी-जतेजभासे-हीले  
 शरीरवासी छिपी-बलपूर्वक सोतोका मन अपनी धोर लीजे लेती है ॥२६॥ जिन पर्वतोकी  
 शोडिके धोर-धोरपर मुन्दर फूलोंने पेठ खडे है, जिनपर बौमलोकी नूक धोर भोरोनी गुंज मुनाई  
 दे रही है और जिनपर चट्टानें खेनी हुने हैं, उन पथरीने पहाडोंको देख-देकर सदाको मानन्द मिलता  
 है ॥२७॥ छिपी छिपी दूर रहनेके कारण जिनका जो वेचन हो रहा है वे दासी जब मञ्जरियोसे  
 लदे हुए घामने पेडोंको देखते हैं तब अपनी छाँट धन्द करने लेते हैं, पदलते हैं, अपनी नाव बन्द  
 कर लेते हैं कि वही मञ्जरियोकी गोनी-गोनी यह भाषमे पढ़ेकर स्त्रीकी याद न दिलादे और



समदमधुकराणां कोकिलानां च नादैः

कुसुमितसहकारैः कर्णिकारैश्च रम्यः ।

इषुभिरिव सुतीक्ष्णैर्मनिसं मानिनीनां

तुदति कुसुममासो मन्मथोद्दीपनाय ॥२६॥

रुचिरकनकफान्तीन्मुञ्चत

पुष्पराशी-

न्मृदुपवनविधृतान्पुष्पितांश्चूतवृक्षान् ।

अभिमुखमभिवीक्ष्य चामदेहोऽपि मामे

मदनशरनिपातैर्मोहमेति श्रवासी ॥३०॥

परभृतफलगीतैर्हार्दिभिः

सद्वांसि

स्मितदशनमयूखान्कुन्दपुष्पप्रभाभिः ।

करकिसलयफान्ति

पल्लवैर्विद्रुमाभै

रुपहसति वसन्तः कामिनीनामिदानीम् ॥३१॥

कनककमलकान्तैराननैः

पाण्डुगण्डै-

रुपरिनिहितहारैश्चन्दनार्द्रैः स्तनान्तैः ।

मदजनितविलासैर्दृष्टिपातैर्धुनीन्द्रा-

न्स्तनभरनतनार्यः कामपन्ति प्रशान्तात् ॥३२॥

फूट-फूटकर रोने लगते हैं ॥२६॥ कोकिल और मदनमाले शीरीके स्वरीसे भूँजनेवाले शीरे हुए धाराके पीछीसे भरा हुआ और मगोहर कर्नरके फूलोवाले अपने पंने बाणोसे यह वसन्त मानिनी लियोके मन हसलिये बीष रहा है कि उनमे प्रेम जय जय ॥२६॥ परवेतमे पला हुआ मानो एक तो यो ही बिद्योहले दुबला पतला हुआ रहता है तिसपर जय यह मन्द मन्द बहनेवाले पवनके झोकेसे दितते हुए और सुन्दर सुनहले और मिरानेवाले, बोरे हुए धामके वृक्षोकी धपने सामने मार्गमे देखाता है तो यह कामदेवके बाणोकी शोट छापर झूँझत होकर गिर पड़ता है ॥३०॥ इस समय जी हलसनेवाले कोकिलके भीत गुता मुनाकर यह वसन्त, सुन्दरियोकी रसमरी बातोकी स्तिस्ती उठा रहा है । अपने पुन्दके पूजोकी शनक दिखाकर यह वसन्त सिन्धोकी गुसवानपर भजन उठनेवाले दोतोकी दयवकी हँसी उठा रहा है और भूंगे जैसी साल-साल शोमस पत्तोकी जलाई दिखाकर उग कामिनियोकी बोपमी जैसी शोमस और जय हवेवियोको जया रहा है ॥३१॥ स्तनोके बोकोसे भुकी हुई स्त्रियाँ अपने स्वयं शमलके समान-युनहरे गातोवाले मुँहके, गीले अन्दगले पुते और मोतियोके हाट पते

मधुसुरभि मुखान्नं लोचने लोभ्रतात्रे  
 नवकुरकपूर्णाः केशपाशो मनोज्ञः ।  
 गुरुतरकुचपुग्मं श्रोत्रिविम्बं तथैव  
 न भवति किमिदानीं योपितां मन्मथाय ॥३३॥  
 व्याफम्पितानि हृदयानि मनस्विनीनां  
 वार्तैः प्रफुल्लसद्वकारकृताधिवासैः ।  
 उत्कृजितैः परभृतस्य मदाकुलस्य  
 शोभ्रप्रियैर्मधुकरस्य च गीतनादैः ॥३४॥  
 रम्यः प्रदोषसमयः स्फुटचन्द्रभासः  
 पुंस्फोक्लस्य विरुतं पवनः सुगन्धिः ।  
 मचालियूथविरुतं निशि सीधुपानं  
 सर्वं रसायनमिदं कुसुमायुधस्य ॥३५॥  
 रक्ताशोक्विकल्पिताधरमधुर्मच्छद्विरेफस्वनः  
 कुन्दापीडविशुद्धदन्तनिकरः प्रोत्फुल्लपमाननः ।  
 चूतामोदसुगन्धिमन्दपवनः शृङ्गारदीक्षुगुरुः  
 फल्पान्तं मदनप्रियो दिशतु यः पुष्पागमो मङ्गलम् ॥३६॥

हुए स्तनसे और मठवानी जवमता भर्ये चितवनसे, शान्त चित्तवाले उपस्वियोना मन भी दिया  
 देती है ॥३३॥ भासवसे महकता हुआ शिथोका फमलने समान मुख उनकी शोष-जैती लाल-लाल  
 भाँके, नए कुरकके पुनोरो राजे हुए उनके कुन्धर चूडे उनके बडे-बडे गोल गोल स्तन और बँते ही  
 बडे बडे गोल-गोल नितम्ब तथा लोभोके मनम कामदेवको नहीं जया रहे है ॥३३॥  
 बोरे हुए धामने पेटोम बडे हुए पवनसे मदमस्त शोबिलकी फुकसे और मोरोकी मन-  
 भाषनी गुंजारोसे मनस्विनी स्त्रियोके मन भी छिप जाते ॥ ॥३४॥ गुजावनी साँके, छिटकी  
 चाँदनी, योममको कूक सुगन्धित पवन, मठवाले मोरोनी गुंजार और रातमें ब्राह्म पोना, ये सब  
 कामदेवको जगाए रखनेवाले रसायन ही है ॥३५॥ अमृत-भरे घषरोके समान लाल धारोके मत-  
 वाले मोरोकी गुंजते, दाँतोकी जमवती हुई चाँतो जैसे उजबसे कुन्दके हारोसे भलो भाँति छिले हुए  
 कमलके समान मुताँते और धामने मोरोनी सुगन्धमे बडे हुए मन्द-मन्द पवनसे यह भू गारकी विसा

मलयपवनविद्धः कोकिलालापपरम्यः  
सुरभिमधुनिपेकाल्लब्धमन्धप्रबन्धः ।

विविधमधुपयूर्ध्वेष्टयमानः समन्ता-  
द्भवतु तव वसन्तः थेष्टकालः सुखाय ॥३७॥

आग्नी मञ्जुलमञ्जरी वरशरः सत्किञ्चुकं यद्भु-  
ष्यां यस्यालिकुलं कस्तुूरहितं छत्रं सितांशुः सितम् ।

मत्सेभो मलयानिलः परमृत्ता यद्भ्रन्दिनो लोकनि-  
स्सोऽयं धो वितरीतरीतु वितनुर्भद्रं वसन्तान्वितः ॥३८॥

इति महाकविश्रीकालिदासविरचिते ऋतुसंहार काव्ये वसन्तवर्णनं नाम दशः सर्गः ॥

देनेवाला धीर कामका गिब वसन्त भाप सोमोका सवा प्रसन्न रक्थे ॥३९॥ मलयके वासुवासा,  
कोकिलकी कूकसे जी सुभावेकाका, तासा सुगन्धित मधु बरसानेवासा धीर चारो धीर भीरंति विद्य  
हुषा वसन्त भापको सुती धीर प्रसन्न रक्थे ॥३७॥ तिसके शामके धीर ही बाण हैं, देसू ही धनुष  
हैं, भीरंती पाल डोरी हैं, मसमावतते भाषा हुषा पवत ही भतवाला हाथी हैं, कोमल ही गामक  
हैं धीर शरीर न रहते हुए भी जिसने ससारको जीत लिया है वह कामदेव वसन्तके साथ भापका  
कल्याण करे ॥३८॥

महाकवि श्रीकालिदासका-रचा-हुषा ऋतुसंहार काव्य में वसन्त-वर्णन नामका-दशः सर्ग पूर्ण हुषा  
॥१॥ ऋतुसंहार काव्य पूर्ण हुषा-॥

## पात्र-परिचयः

### पुरुषाः

सूनपारः—नाटकस्य प्रबन्धकर्ता ।

दुष्यन्तः—हस्तिनापुरस्य सम्राट् ।

भद्रसेनः—सेनापतिः ।

मादव्यः—विदूषकः ।

सर्वदमनः—दुष्यन्तस्य पुत्रः (भरतः)

शोभराजः—राजः धर्मगुरुः ।

रैवतकः—दौवारिकः ।

करभकः—राजसेवकः ।

पार्वतायनः—कञ्चुकी ।

वंतालिको—राजचारणी ।

शैलानस, शाङ्करवः  
सारदत्त, हारीभः, गौतमः } कण्व ऋषेरन्तेवासिनः ।

श्यामलः—दुष्यन्तस्य श्यामलः, प्रधान राज-  
पुरपः ।

धीवरः—मत्स्यग्राही ।

सूचरः, वासुदः—राजपुरपो ।

मातकिः—इन्द्रस्य सारथिः ।

मारीचः—(कश्यपः) प्रजापतिः ।

दुर्गा—ऋषिः ।

### स्त्रियः

मती—सूयधारस्य पत्नी ।

शकुन्तला—कण्वस्य पालिता कन्या ।

अनसूया, प्रियंवदा—शकुन्तलायाः सख्यौ ।

यौनती—एका तृपदिवनी ।

चतुरिका

परश्रुतिका

मधुस्यारिका

} राजसेविका ।

प्रतिहारी, यवनी—परिचारिके ।

सानुमती—एका भ्रष्टरा ।

शदिधिः—कश्यपस्य पत्नी ।

॥ श्रीः ॥

## ॥ अभिज्ञानशाकुन्तलम् ॥

प्रथमोऽङ्कः

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिद्रुतं या हविषां दृष्टीं प्री  
ये द्वे कालं विभक्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम् ।  
यामाहुः सर्वभोजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः  
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरिशाः ॥ १ ॥

[ मान्यन्ते ]

सूत्रधार — मूलमतिविस्तरेण । (नेपथ्यान्निमुखमवस्रोष्य) धार्ये । यदि नेपथ्यविधाननवसितम्  
इतरताववागम्यताम् ।

### अभिज्ञानशाकुन्तलम्

प्रथम अङ्क

शिवजी उस जनके रूपमे हुये प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं जिसे ब्रह्माने सबसे पहले बनाया, उस अग्निने ऊपर दिखाई देते हैं जो विधिके साथ ही हुई हवन-कार्यो प्रवृत्त करती है, उत होताके रूपमे दिखाई देते हैं जिसे सग करनेका काम मिला है, उन पद्म और सूर्यके रूपमे दिखाई देते हैं जो दिन और रातका समय निश्चित करते हैं, उस आकाशके रूपमे दिखाई देते हैं जिसका गुण शब्द है और जो उधार घरमे रखा हुआ है, उस पृथ्वीके रूपमे दिखाई देते हैं जो सब जीवोको उत्पन्न करनेवाली बताई जाती है, और उस वायुके रूपमे दिखाई देते हैं जिसके कारण सब जीव जी रहे हैं । जन, अग्नि, होता, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी और वायुके इन षाठ प्रत्यक्ष रूपोंमे जो मगवान् शिव सबको दिखाई देते हैं वे ध्याय लोगोका कल्याण करें ॥१॥

[ मगलान्तरण हो चुकनेपर ]

सूत्रधार — अब बहुत विस्तार करना ठीक नहीं है । [नेपथ्यकी ओर देखाकर] धार्ये । यदि  
शृङ्गार हो चुका हो तो इधर आ जाना ।

## पात्र-परिचयः

### पुरुषाः

- सूत्रपाठः—नाटकस्य प्रबन्धकर्त्ता ।  
 दुष्यन्तः—हस्तिनापुरस्य सम्राट् ।  
 भद्रसेनः—सेनापतिः ।  
 भाद्रव्यः—विद्वेषकः ।  
 सर्वदमनः—दुष्यन्तस्य पुत्रः (भरतः)  
 तोमराजः—राजः घर्मगुरुः ।  
 रैवतकः—दौवारिकः ।  
 करभवः—राजशेवकः ।  
 पार्वतामनः—कन्वुवी ।  
 पंतानिकी—राजचारणी ।  
 र्वतानस, पाङ्कजः } कण्व ऋषेरन्तेवासिनः ।  
 चारदत्तः, हारीशः, गौतमः }  
 श्यामलः—दुष्यन्तस्य कयालः, प्रथम राज-  
 पुरपः ।  
 धीवरः—मत्स्यग्राही ।  
 मूषकः, जगुवः—राजपुरपी ।  
 मातलिः—इन्द्रस्य सारथिः ।  
 मारीचः—(कश्यपः) प्रजापतिः ।  
 दुर्वाभा—ऋषिः ।

### स्त्रियः

- नटी—सूत्रधारस्य पत्नी ।  
 शकुन्तला—कण्वस्य पालिता कन्या ।  
 मनसूया, प्रियवदा—शकुन्तलायाः सहयो ।  
 गौमती—एका तृपस्विनी ।  
 चतुरिका }  
 परश्रुतिका } राजसेविका ।  
 मधुकारिका }  
 प्रतिहारी, यवनी—परिवारिके ।  
 सानुमती—एका अन्तरा ।  
 यशितः—कश्यपस्य पत्नी ।

॥ श्रीः ॥

# ॥ अभिज्ञानशाकुन्तलम् ॥

प्रथमोऽङ्कः

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्याँद-दीत्री

ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुह्या या स्थिता व्याप्य विश्वम् ।

यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राण्यन्तः

प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥ १ ॥

[ नाट्यान्ते ]

सूत्रधार — भलमतिविस्तरेण । (नेपथ्याभिसुष्ठमयसोवय) धार्ये । यदि नेपथ्यविधानमवसितम्  
इतरताप्यवापम्पताम् ।

## अभिज्ञानशाकुन्तलम्

प्रथम प्रकृ

मिथशी उस जलके रूपमे हमे प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं जिसे बहाने सबसे पहले यमाद्या; उस अग्निके रूपमे दिखाई देते हैं जो विधिके ताप की हुई हृष्य-तापधरी रहण करती है; उस होताके रूपमे दिखाई देते हैं जिसे यज्ञ करनेका काम भिन्ना है, उन चन्द्र और सूर्यके रूपमे दिखाई देते हैं जो दिन और रातका समय निश्चित करते हैं, उस आकाशके रूपमे दिखाई देते हैं जिसका गुण ध्वज है और जो सञ्चार करने उभा हुआ है, उस पृथ्वीके रूपमे दिखाई देते हैं जो सब बीजोंको उत्पन्न करनेवाली बताई जाती है, और उस वायुके रूपमे दिखाई देते हैं जिसके कारण सब जीव जी रहे हैं । जल, अग्नि, होता, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी और वायुके इन षाठ प्रत्यक्ष रूपोमे जो भगवान् जिन सबको दिखाई देते हैं वे धारा लोकोका कल्याण करे ॥१॥

[ भगवान्तरस्य हो चुकनेपर ]

सूत्रधार.—अब बहुत विचार करना ठीक नहीं है । [नेपथ्यको धोर देखकर] धार्ये ! यदि  
शृङ्गार हो चुका हो तो द्धर भा जाना ।

[ प्रविश्य ]

नटी—अजबत इमं हि । आणवेदु अओ को लिओओ अशुचिद्विधनुति ।

( आयेपुन इयमस्मि । आज्ञापयतु आर्यः को निओओओद्विधयतामिति । )

सूत्रधारः—आर्ये इयं हि रसभावविशेषदोषानुदोषवक्रभारित्यस्यानिरूपभूमिहा परिपत् ।

अस्याश्च कानिदासप्रपितपस्तुनाभिज्ञानशाकुन्तलनामधेयेन नवेन नाटकेनोपस्थातप्यस्ममाभिः ।  
सदप्रतिपाद्यमाधोयतरं यत्नः ।

नटी—सुनिहितप्रयोगेनवात् अजस्त ए किं वि परिहाविइत्तदि ।

( सुनिहितप्रयोगताऽऽयंस्य न किमपि परिहापयिष्यते । )

सूत्रधारः—[ वरिमतम् ] आर्ये ! कययामि ते भूतार्थम्—

आ परितोपाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।

यत्नवदपि शिवितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥ २ ॥

नटी—[ स्तनियम् ] अथ एवं एवम् । अन्तरकरदस्त्रिजं दाव अओ आणवेदु ।

( आर्य एवमेतत् । अनन्तरकरणीय सायदार्यं आज्ञापयतु । )

सूत्रधारः—आर्ये किमन्यदस्याः परिपद्यः श्रुतिप्रमोवहेतोयोत्तात्करणीयमस्ति ।

नटी—अथ क्वमं उण उणुं अघिकरिअ गाइस्तम् ।

( अथ कतमं पुनजुंत्तुं अघिकृत्य वास्यामि । )

[ आकर ]

नटी—आ गई आयेपुन ! आज्ञा कीविए कौन-सा नाटक खेला जाय ।

सूत्रधार—आर्ये ! रस और भावका चमत्कार दिखानेवाले कलाकारोंके आभयदाता महाराज  
विक्रमादित्यकी इस सभाकी आज्ञा विशेष रूप से बड़े-बड़े विद्वानोंने सुनोभित किया है इसलिये  
इन्हें कानिदासका नया रस दृष्या अभिज्ञान-शाकुन्तल नाटक ही दिखाना चाहिए । तो जाकर सब  
पान्नोंको ठीक कर टाँकी ।

नटी—आपने तो पहलेसे ही ऐसा अशुद्धा सिद्धाकर पक्का कर दिया है कि कोई उँगली नहीं  
छा सकता ।

सूत्रधार—[ मुसकराकर ] आर्ये ! सच्ची बात बताता हूँ कि जबतक विद्वान् लोग न मान लें कि  
नाटक बढिया है तबतक मैं नाटकको सफल नहीं समझता क्योंकि पान्नोंको चाहे जिसने भी अच्छे  
बंगले सिखाया जाय फिर भी मनको सन्तोष नहीं होता ॥२॥

नटी—[ विनयके साथ ] हाँ, यह तो ठीक है । आर्ये ! तो आप जो आज्ञा दें वही सब किया  
जाय ।

सूत्रधार—आर्ये ! इस सभाके सदस्योंके कानोंकी ध्यान-देनेवाला बढिया गीत छेड़नेसे बढकर  
घोर गया होगा ।

नटी—तो जिस ऋतुपर गीत छेड़ा जाय ।



सूत्रधारः—घार्ये नन्विममेव तावद्विरप्रवृत्तनुपभोगक्षमं प्रीष्मत्तमवमधिकृत्य गीयताम् ।  
सम्प्रति हि—

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गिसुरभिवनवाताः ।

प्रच्छाद्यसुलभनिद्रा दिवसाः परिश्रामरमणीयाः ॥३॥

नटी—तह । (एषा) [ इति गायत्रि ]

ईसीसिचुत्रिआईं भमरेहिं सुउमारदरकेतरसिहाईं ।

ओदेसंभ्रंति दञ्जमाणा पमदाथो सिरीसकुसुमाईं ॥४॥

(ईपदोवचुम्बितानि भमरैः सुकुमारदरकेतरसिहानि ।

भवत्समन्ति दयमाणाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि ॥ )

सूत्रधारः—घार्ये ! साधु गीतम् । अहो रागनिविष्टचित्तकृत्तिरानिहित इव सर्वतो रङ्गः ।  
सविधानी कतमं प्रयोगभाधित्येगभारपथपामः ।

नटी—एवं प्रज्जभिरसेहिं १३मं एवम् प्राप्तं अहिष्णान्तासाज्ज्वलं एष अणुर्व्व एतन्नं पमोए  
अधिकरीअहति ।

( नन्वर्षायेभिर्भैः प्रथममेवाज्ञप्तमभिज्ञानशाकुन्तल नामापूर्वं नाटक प्रयोगेऽधिक्रियतामिति । )

सूत्रधारः—घार्ये सम्भगनुषोभितोऽस्मि । ननु अस्मिन्काले विशुद्धं लभु मया । कुतः—

तयास्मि गीतरागेषु हारिणा प्रसभ हृतः ।

सूत्रधारः—प्रीष्म श्रुत्वा अभी-प्रभी घादे ही ही भीर बडी सुहावनी भी लगती है । इस-  
विषये अत्र समग्र प्रीष्म श्रुत्वापर ही कोई राग देखो । देखो—

इस दिनों नहानेमे जल बड़ा सुहावा है, पाटलमे बसा हुआ वनका पवन भी बड़ा  
प्रच्छा लगता है वृक्षोंकी पत्तों श्यामे नीचे भी प्रच्छा आती है और धाजकलकी सम्प्या  
तो इतनी सुहावनी होती है कि प्रच्छा ही क्या ॥३॥

नटी—ठीक है । [ गाती है ]

जिन शिरीष-सुमनोंके कोमल केसर-दलकी मधुर शिखारें ।

भूम-भूमकर रसमय भीरे फिर-फिर बँठ-बँठ उठ जाएँ ।

दया भावसे उनको चुनकर सहृदयतासे लेकर सत्वर ।

कर्णकुल रचकर कानोमे पहल रही उनको प्रमदाएँ ॥४॥

सूत्रधारः—वाह गार्ये ! बहुत ही अच्छा गाय । देखो ! तुम्हारे रागसे लोग ऐसे  
वेमुग्ध हो गए हैं कि तारी रंजनाणा चिन्-निसी-सी जान पड़ती है । तो अब कौन-सा नाटक  
दिसाकर इनका मन बहुलाया जाय ।

नटी—घावने अभी-प्रभी कहा था न कि अभिज्ञानशाकुन्तल नामका नया नाटक  
सेला जाय ।

सूत्रधारः—ओह ठीक स्मरण दिलाया गार्ये ! मैं तो सुन ही गया था । तुम्हारे पीतके मनो-  
हर रागने मेरे मनको बचपूर्वक भीये ही खींच लिया—

सूत.—प्रायुष्मन् उद्यत्किनी भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद्वयस्य मन्दोक्तो वेगः । तेन मृग एव विप्रकृष्टान्तरः संवृतः । संप्रति सम्पदेश्यतिनस्ते न दुरासवो भविष्यति ।

राजा—तेन हि भुञ्जन्तामगोपकः ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यापुष्मान् [ रथवेगं निरूप्य ] प्रायुष्मन् पश्य पश्य ।

मुक्तेषु रश्मिषु निरापतपूर्वकाया निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः ।

आत्मोद्धतैरभि रजोभिरलङ्घनीया धावन्तपर्मा मृगज्वात्समयेव रथ्याः ॥८॥

राजा—[ सहस्रं ] पूनमतोत्य हरितो हरिश्च पतन्ते प्राजिनः । तथा हि—

यदालोके सूक्ष्मं ब्रजति सहसा तद्विपुलतां

यदर्धं विच्छिन्नं भवति कृतसंधानमिव तत् ।

प्रकृत्या यद्भ्रमं तदपि समरेखं नयनयो-

र्न मे दरे किञ्चित्क्षणमपि न पार्श्वे रथज्वात् ॥९॥

सूत पश्यन्तं व्यापाद्यमानम् । [ इति धरसंधानं नाटयति । ]

[ नेपथ्ये ]

भी भी राजन् [ आश्रममृगोर्ध्वं न हन्तव्यो न हन्तव्यः ।

सारथी—प्रायुष्मन् ! ऊँची-नीची भूमि होनेके कारण मैंने रास सीपकर रथका वेग कम कर दिया था, इसीलिये मृग बहुत दूर निकल गया है । पर आगे समयस है, अब आप उसे हापने प्राया ही समझिए ।

राजा—वो रास डीली करी ।

सारथी—जैसी प्रायुष्मानुकी आज्ञा । [ रथका वेग देखकर ] देखिए, देखिए प्रायुष्मन्—राज डीसते ही बचने आगेका शरीर फँसाकर और पायेकी चोरी सीधी लड़ी करके ये पीछे हलने वेगसे दौड़ रहे हैं कि इनकी टाँसे उठी हुई धुस भी इन्हे नहीं छू पा रही है । ऐसा जान पड़ता है मानो हरिणकी बीइये ये होट कर रहे हो ॥८॥

राजा—[ प्रसन्न होकर ] सबकुच इन घोड़ोने तो सूँघे और इन्हेके घोड़ोको भी बीइये पछाड़ जाना है नयोंकि जो वस्तु दूरसे पतली दिखाई देती थी वह गुरस्त मोटी हो जाती है जो बीचसे कटी जान पतली थी वह अट ऐसी जान पठमे समती है मानो उसे किसीने पीड़ दिया हो और जो स्वभावतः टेढो वस्तुएँ हैं वे सीसको सीधी-सी दिखाई देती हैं । रथ हलते वेगसे बीड़ रहा है कि कोई वस्तु न धी मुक्तसे दूर हो रह पाती है न समीप ही ॥९॥

सारथी ! सो, हरिणको मारता हूँ ।

[ बाण चढ़ानेका अभिनय करता है । ]

[ नेपथ्ये ]

है ! है ! राजन् ! यह आश्रमका मृग है । इसे नहीं मारना चाहिए ! नहीं मारना चाहिए ।

पूत—[ वाक्-वांशभोरप थ ] आयुष्म् ! धस्य तनु ते वाणपाततिनः कृष्णसारस्यान्तरे  
तपरिचन उपस्थिताः ।

राजा—[ पञ्चममयू ] तेन हि प्रकृष्टमूर्ता राजिनः ।

पूतः—तया । [ इति रथ रथापवति । ]

[ ततः प्रविशत्यात्मना तृतीयो वैशानसः ]

वैशानसः—[ हस्तमुद्यम्य ] राजन् । आपमपृगोऽयं न हस्तध्वो न हस्तप्यः ।

न रज्जु न रज्जु वाणः सन्निपात्पयोऽयमस्मिन्

मृदुनि मृगशरीरे ह्यराशाविब्रामिः ।

क षत हरिणकानां जीवितश्चातिलोर्ल

क च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते ॥१०॥

तस्मात्पुक्तनमंधानं प्रतिमंहर सायकम् ।

स्मार्तश्राणाय यः शस्त्रं न प्रदत्तुमनागति ॥११॥

राजा—एष प्रतिमंहृतः [ इति यथोक्तं वर्योति । ]

वैशानसः—तदुद्यमेतत्पुत्रवैशानसोपाय भवतः ।

जन्म यस्य पुरोरंशे युक्तरूपमिदं तव ।

पुत्रमेवं युगोपेतं चकवतिनमाप्नुहि ॥१२॥ ।

राजा—[ मुनिरथ धीर देवधर ] आयुष्म् ! त्रिण वांश हरिणपर धार धमी वाण  
वाण रहे है उगके मोक्षमे उगकी मोक्ष वा गये हुए है ।

राजा—[ वज्रधर ] तो रीज मो कोहीने ।

राजा—धारी वाण है [ रथ वाण कर लेता है । ]

[ दो द्विपोकें गात्र वैशानस ( वराधी ) का प्रवेश । ]

वैशानस—[ हाथ उठाकर ] राजन् । यह आश्रमका मूष है । इसे नहीं मारना चाहिए ।  
यही मारना चाहिए । ]

इतर वही वाण न अपारण्य । वाणका वाण इनके बीचपर पुरोरके निचे बैठा ही  
बदकर है जैसे कड़ेके कड़ेके निचे धरि । अपारण्य, वही तो वेधारे हरिणीके बीचपर प्राण  
धीर वही वज्रके गदापर वहीर धारके मोहीने वाण ॥१०॥ इतिनिचे यह जो धारने  
गाकर वाण मरणा है इसे उगार वाणिय । वर्योकि धारके रथ तो कीर्तिनीटी रताके  
निचे है निररापोतो धारके निचे मरी ॥११॥

राजा—भीकिन् उगार लेता है । [ वाण उगारणा है । ]

वैशानस—जाय जैसे वृषभके दीरवधो मही मोक्ष देता है ।

रिगके पुरधरके मय निचा है उगके निचे मरी उचित है । बदवान् करे धारको लेने ही  
पुरोरका चकवती मूष मर हो ॥१२॥

इतरो—[ हस्तायुधम् ] सर्वेषां चक्रवर्तिनं पुत्रमाप्नुहि ।

राजा—[ सप्रणामम् ] प्रतिगृहीतम् ।

वंशानसः—राजन् ! छत्रिवाहुरक्षणं प्रतिष्ठा वपम् । एष एतु कथ्यते कुतपतेऽनुमातिनी-  
तोरमाधमो हस्यते । न चेरग्यकार्योतिपातः सत्प्रथिय्य प्रतिगृह्यतामतिथेयः सत्वारः ।  
अपि च—

रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नः क्रियाः समवलोक्य ।

ज्ञास्यसि कियद्भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाद् इति ॥१३॥

राजा—अपि संनिहितोऽत्र कुतपतिः ।

वंशानसः—इदानीमेव कुहितरं अकुततापतिभिस्तत्पारग्यं विपुत्र्य देवमस्याः प्रतिफलं  
शामयितुं सोमतीर्थं गतः ।

राजा—भवतु सामेव प्रक्यामि । ता एतु विदितभाक्तं मां भर्षेः करिष्यति ।

वंशानसः—साध्यामस्तावत् । [ इति सविष्यो निष्क्रान्तः । ]

राजा—सूत ! तूर्णं पौष्यात्वात् । पुष्यामवसानेन सायवसमानं पुनीमेह ।

सूतः—एवमापयत्वापुष्पात् । [ इति भूपो रपवेगं विरूपयति । ]

मौर्वीकिण्य - [ हाथ उठाकर ] निम्न ही चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त हो ।

राजा—[ प्रणाम करके ] आपका प्राचीनोद सिरमाये ।

वंशानसः—राजन् ! हम लोग समिया से निकले हैं । यह साधने मातिनी नदी पर  
कुतपति कथना साधन है । यदि साधके बाप-काजमे सफल न हो तो पनकर प्रतिवि-सत्वार  
बहुए कीजिएगा । और फिर—

वही जब आप देखेंगे कि ऋषि सोम निकलन होकर सब क्रियाएं कर रहे हैं सब आप  
जान भी जायेंगे कि अनुपकी छोटीकी पटकारसे बने पट्टीकाली साधनी बुना कही-कही एक  
पट्टीकर रक्षा कर रही है ॥१३॥

राजा—क्या कुतपति जी यहाँ है ?

वंशानसः—मैंने जोसो देर पहले अपनी पुत्री सुनुन्तसाको सतिवि-सत्वारना नाम सोप-  
कर उनके सोटे प्रतीकी चान्तिके लिये सोपतीर्थ पने गए हैं ।

राजा—मन्त्री बात है । मैं उसीसे मिल सूँझ । यही महिषिसे बता देगी कि मेरो जनें  
बिछनो मति है ।

वंशानसः—तो हम लोग चलने हैं । [ सिष्योवे साप प्रस्थान ]

राजा—सारणी ! पौत्रे बड़ाधो । पत्ने, पवित्र साधनके दर्शनने सात्मा ही पवित्र करे ।

सारणी—जैसी सायुष्मानुकी भाशा । [ फिर अपने गेगसे दोरता है । ]

राजा—[ समन्तादवसोन्य ] सूत ! अकपितोऽपि ज्ञायत एव ध्याप्यमाधनाभोगस्तपोवन-  
स्मेति ।

सूतः—कथमिव ।

राजा—किं न पश्यति भवान् । इह हि—

नीयाराः शुक्रगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूयामधः

अस्निग्धाः कचिर्दिगुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः ।

विस्वात्तोपगमाद्भिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-

स्तोयाधारपथाभ बल्कलशिखानिप्यन्दरेखाङ्किताः ॥१४॥

अपि च

कुल्याम्भोभिः प्रसृतिचपलैः शाखिनो धीतमूलाः

गिन्नोरागः किसलयरुचामाज्यधूमोद्वगमेन ।

एते चार्वागुपवनभुविच्छिन्नदर्माङ्कुरायां

नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति ॥१५॥

सूतः—सर्वमुपपन्नम् ।

राजा—[ स्तोत्रमन्त्र गत्वा ] तपोवननिवासिनामुपरोधो माभूत् । एतावत्पेय रथं स्थापय  
मापवपतरानि ।

सूतः—धृताः प्रवृत्ताः अथतरायाभुम्नाम् ।

राजा—[ चारों ओर देखकर ] देखो सारथी ! बिना बताए ही जान पड़ता है कि हम  
प्राध्वनके तपोवनमें पहुँच गए हैं ।

सारथी—जी, कैसे ?

राजा—देस नहीं रहे हो ? यहाँ—

कहाँ तो वृत्तकि सने सुगीके धोतलोमे विरे हुए तिन्योके दाने बिलारे पड़े हैं, कहीं  
इपर-उपर पड़े हुए बिकने परवर बता रहे हैं कि इनपर द्विपोटके फल गूटे गए हैं, कहीं  
निडर पड़े हुए मृग विष्वात्तसे रथ वा शब्द सुन रहे हैं कि प्राध्वनमें कोई हने दिखेगा  
नहीं और कहीं नदी-तलाबोंपर धाने-जानेकी मटियाभूमि भुनियोके बकलतोसे टपने हुए जलकी  
रेखाएँ बनी हुई हैं ॥१४॥ और देखो ! चागुके चारण सहरे लेनेवाली पानीकी मूलोसे  
यहाँके वृक्षोंकी जड़ें घुम गई हैं, धीके घुएँसे नई जमनीकी ओपनोचरा रंग धुंधला पड़ गया  
है और जहाँ-जहाँ उपवनसे मुझा उपाव ली गई है वहाँ भूष-धोने निडर होकर धीरे-धीरे  
चर रहे हैं ॥१५॥

सारथी जी हाँ, यह सब तो है ।

राजा—[ कुछ आगे बढ़कर ] यही हम सोचोके ध्यानेसे तपोवन-निवासियोंको दृष्ट न  
हो, इसलिये रथ यहीं रोक लो । मैं उतर आता हूँ ।

सारथी—सौभाग्य मैंने रथ रोक लोच लो है । चागुम्नायु उतर जायें ।

राजा—[ भवतीर्य ] सूत विनोतवेष्टेण प्रवेष्टय्यानि तपोवनानि वामः इदं तावत्  
गृह्यताम् । [ इति सूतस्माभिरस्थानि मनुश्रोपनीवार्पयति । ] सूत यावदाश्रमवासिनः प्रत्यवेष्ट्या-  
हमुपाधत्ते तावदात्रैवृष्ट्याः क्रियन्तां यानिनः ।

सूतः—तथा । [ इति निष्क्रान्तः । ]

राजा—[ परिक्रम्यावलोकय च ] इदमाश्रमद्वारम् यावत्प्रविशामि ।

[ प्रविश्य निमित्तं मुपवम् ]

शान्तिमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य ।

अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ॥१६॥

[ निपन्ने ] इहो इहो रहोमो ! ( इत इतः वक्ष्यो )

राजा—[ वयं दत्त्वा ] अये ! इतिहोम वृषवाटिकाभास्ताप इव भूयते । यावत्प्र गच्छामि ।

[ परिक्रम्यावलोकय च ] अये ! एतास्तपस्विकायकाः स्वप्रमात्नानुरूपैःसेवनमर्दकलिपावपेयः पयो  
शतुमित्त पशामिबर्तन्ते । [ निपुण निरूप्य ] अहो मपुरमात्सां वर्शनम्—

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य ।

दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः ॥ १७ ॥

राजा—[ उत्तरकर ] देखो सारथी ! आश्रममें सीधे छाने के लिये ही जाना चाहिए ।  
इसलिये जब तक ये सब यहीं रहजो । [ अपने आश्रमपण और घनुष उतारकर सारथीको बेलें हुए ]  
और देखो सारथी ! जबतक हम आश्रम-वासियोंके गिलकर खोटे हैं तबतक तुम नी पोटोको  
ठका कर रहजो ।

सारथी—जी, प्रच्छा । [ प्रस्थान ]

राजा—[ घूमकर और देखकर ] यहीं तो आश्रमका द्वार बल पड़ता है । इसीके  
भीतर चला जाय । [ प्रवेश करके अन्धे अकुन होगै की सूचना देते हुए ]—इस छात्र तपोवनकी  
भूमिमें मेरी दाहिनी भुजा बयो फड़क रही है । यहाँ बना क्या मिसने-कुलने वाला है ।  
पर हाँ, जो होनी होती है ( वह तो कहीं भी होकर रहती है ) उसके द्वार सब यहीं होते हैं ॥१६॥

[ निपन्ने ]

इधर आधो सखियों, इधर आधो ।

राजा—[ सुनकर ] अरे ! कुलवारीके दाहिनी ओर किसीकी वातचोत-जैसी सुनाई  
पड़ रही है । उधर ही जनता हैं । [ घूमकर और देखकर ] आ हाँ ! ये तपस्विनोंकी बन्ध्याएँ  
अपने-अपने मेलके पडे जे-जेकर खोटे-खोटे पाँवोंको सीपनेके लिये इधर ही चली आ रही हैं ।  
[ ध्यान से देखकर ] मो हो ! ये तो बड़ी सुन्दर दिखार्ई पठकी हैं ।—रत्निकाकी रत्नियोंमें  
भी जो सुन्दरता कठिमाई से देखने को मिलती है वह यदि इन आश्रमवासिनी बन्ध्याओंकी  
मिली है । तो यही समझना चाहिये कि अंगलकी चत्ताधो ने अपने मुणों से उद्यानकी सतायों  
को भी सजा दिया है ॥ १७॥ अच्छा, इनके मानेवक मैं यहीं मोटये खड़ा हो रहता हूँ ।  
[ देखता हुआ सड़ा रहता है । ]

यावदिमां ध्यायामाश्रित्य प्रतिपालयामि । [ इति विलोकयति स्फुटम् । ]

[ ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह यथोभ्यां शकुन्तला । ]

शकुन्तला—इदो इदो सहोभो । [ इत इत सस्यौ ]

धनमूया—हला राउ दले तुयत्तो वि तावकण्णस्स भस्समल्लखन्ना विभवरेति तवकेमि जेरा

एोमालिभ्राकुमुमपेलवा तुम वि एदाए भानवातपुरएो स्थिउत्ता ।

(इहा शकुन्तले स्वतोऽपि तावकण्वस्याधमकृत्तना प्रियतरा इति तर्कयामि येन नदमासिका-

कुमुमपेलवा स्वमप्येतेषामालवात्तपुरएो नियुत्ता । )

शकुन्तला—ए केवल तावलिभोभो एव । अस्मि मे सोदरसहोहो वि एवेमु ।

( न केवल तावनिदोभ एव । अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु । )

[ इति वृत्तवेपन रूपयति । ]

राजा—कवमिष सा कण्वबुहिता । प्रसाधुवर्तां सधु तत्रमवानु कण्व य इमामाधममर्णे  
विमुक्ते ।

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःकर्म साधयितुं य इच्छसि ।

ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलता छेचुमृपिर्व्यवस्यति ॥१८॥

भवतु । वादवाग्लहित एव विवक्ष्य तावकेनां पस्यामि । [ इति तथा करोति । ]

तो यही समझना चाहिये कि जगलकी सताप्राने पपने पुणोसि उद्यानकी सताप्रोको भी सना  
दिया है ॥१७॥ अण्ण, इमने भानेतक र्मे यही प्रोटने सहा हो रहता है । दैसता हुमा  
सहा रहता है । ]

[ अपनी सखियोंके साथ पीधोको सीधती हुई शकुन्तलाका प्रवेश । ]

शकुन्तला—इधर प्राप्ते सखियो, इधर प्राप्ते ।

धनमूया—भरो शकुन्तला ! मैं समझती हूँ कि पिता कण्व इन आश्रमके पीधोको  
हुमये अधिर प्यार करते हैं, नहीं तो भना चमेलीकी बली जैसे कीमल सपवाली तुमको ये  
पीधे भरने वा काम क्यों सीध जाते ।

शकुन्तला—मैं केवल पिताजीकी आज्ञासे ही रह रही सीधती हूँ, मैं स्वयं भी इनकी  
भाने सगे जेहा प्यार करती हूँ ।

[ पीधामे पानी देन वा नाट्य करती है । ]

राजा—बधा यही कण्व श्रुतिकी कथा है । पूज्य कण्वकी मह बात सधमुच ठीक नहीं  
सगती कि इने भी उहोने आश्रमके नामम ओत दिया है । जो श्रुति एतक सहस्रगुदर  
शरीरको सपस्याने सिने साधना चाह रहे हैं व सधमुच नीसे कसलकी पक्षधीकी पारये  
समीना पेद बाटने पर उतारू हुए हैं ॥ १८ ॥ अण्ण एव तक निश्चित होकर वृर्णोकी प्रोटने  
इगे सांगभर दस ता लू ।

[ ऐसा ही करता है । ]

शकुन्तला—सहि प्रलस्युः । अविपिण्डेण वक्तुंतेण विषववाए सिघान्तिव हि । त्रिदिलेहि वस ए ।

( सति घनसूये ) प्रतिपिण्डेन वल्कलेन प्रियवदया निबन्धितास्मि । द्विधिसय तावदेतत् । )

घनसूया— तह । ( तथा ) [ इति विधियनयति । ]

प्रियवदा— [ सहासम् ] एव पद्मेहरविस्तारदत्तं सत्तणो नोऽवणं उवाचह । मं कि उवासमेति । ( यत्र पयोधरविस्तारवित्तु धातमनो यौवनमुपावमस्य । मा किमुपावमसे । )

राजा—काममनुरूपमस्या वपुषो वल्कलं न पुनरसंकारधियं न पुष्यति कुतः ।

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशौर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिह हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ १६ ॥

शकुन्तला—[ समतोऽवत्तोव्य ] एतो वादेरिदपस्त्ववामुगीनिरस्वरमतीव मा केसरवृक्षकः । यावदेनं सभाध्यायि ) [ इति परिहरयति । ]

प्रियवदा— हला राजन्वले ! एव एव्य वाव सुहृत्तर्ष चिदु आव तुए उवागवाए तवासणहो विघ्न घर्ष केसररक्षसप्री गडिभावि ।

( हला शकुन्तले ! अत्रैव तामन्मूर्तं तिष्ठ यावत्स्वयोनयतया ततायनाय इवाय केसरवृक्षकः प्रतिभाति । )

शकुन्तला—घदो वलु विघ्नवदा सि मुषं ( घत लनु प्रियवदासि त्वम् । )

राजा—प्रियमपि तप्यमाह शकुन्तलां प्रियवदा । सत्याः वलु—

शकुन्तला—सकी घनसूया ! इस प्रियवदान ऐसा बयकर बल्कल वाँप दिया है कि मैं हिलकुल नहीं पा रही हूँ । साकर इसे दीना सोकरदे ।

घनसूया—मच्छ । [ डीना करती है । ]

प्रियवदा—[ हँसते हुए । ] मुझे क्या उताहना देती ही । अपने उस पौधको क्यों नहीं ढोप देती जो मुझारे स्तनोको इतना बढ़ाता पला जा रहा है ।

राजा—वहपि हमका कोमल शरीर बल्कलके योग्य नहीं है, फिर भी ये इसके शरीरको प्रलवारो के समान ही सुशोभित कर रहे हैं । क्योंकि—जैसे सेवारसे पिरा होनेपर भी कमल सुन्दर लगता है और नन्द्रगामे पटा हुआ कलक भी चतकी थोभा ही वडाता है वैसे ही यह सुन्दरी भी बल्कल पहने हुए बडी मली दिखाई पढ रही है । सच्ची बात तो यह है कि सुन्दर शरीरपर अभी कुछ शोभा देने लगता है ॥ १६ ॥

शकुन्तला—[ सामने देखकर । ] यह केसरका वृक्ष पवनके झोके से हिलती हुई पतियोकी उँगलियोसे मुझे चुसा रहा है । नाऊँ इसका भी मन रल लूँ । [ उपर भ्रमती है । ]

प्रियवदा—घरी शकुन्तला, दाएगर वहाँ सटो तो रह जा । जब तू वेदसे लगकर लडी होती है तब यह केसरका वृक्ष ऐसा लगता है जैसे उससे कोई चता सिपटी हुई हो ।

शकुन्तला—इन्ही सब बातों से तो लेख नाम प्रियवदा पढा है ।

राजा—प्रियवदाने शकुन्तलासे घदी प्यारी और सच्ची ही बात तो फही है, सचमुच—



अधरः किमलयरामः क्रोमलविटपानुकारिणौ वाह ।

कुमुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु मंनद्धम् ॥२०॥

अनगूया—हला सज्ज्वले । इम सखरवहू बात्तसहस्रास्तत सुए विदलामहेषा वलानो-  
सिलसि लोमासिध । ए विमुमरिदा सि ।

( हला मकुन्ते । इय रयवववेषू बात्तगहवारस्य स्वया कृत्तनामयेषा वनज्योस्तेति  
नयमासिवा एनां विस्मृतासि । )

वाकुन्तला—तदा अत्तासं वि विमुमरिदसं । [ सतामुपेत्यावलोषय च ] हला रमलीए वलु  
बाले इमत्ता लदापावमविदुलस्त यहमरो संवुत्तो । एवकुमुमनोव्यला वलजोसिली बद्ध-  
फलदाए जयभीमवगधो सहमारो ।

तदा धारमानपरि विस्वरिप्यासि । हला रमलीये वलु बाले एतस्य सतापावमविदुनस्य व्यति-  
नरः संवृत् । नयकुमुमनोवना वनज्योस्तेनो वद्धपलसयोजभोगक्षम. सटकारः । ) [ इति पद्यमती  
तिष्ठति । ]

प्रियवदा—[ सस्मिन्वम् ] अलसुए । आलासि वि एलिभितं सज्ज्वला वलजोसिली अविमेतं  
वेरलदिति ?

( अतनुदे । पानासि वि निवित्त वाकुन्तला वनज्योस्तेनामतिमात्र प्रेक्षत इति ? )

अनगूया—ए वलु विभावेसि । बहेहि । ( न वलु विभावेसामि । वयय । )

प्रियवदा—जट वलजोसिली मरुद्वेण पावयेण संववा अवि एाम एम्ब अहं  
विमराली मरुद्वयं वरं सहप्रसि । ( वया वनज्योस्तेना वनज्योस्तेण पावयेण वगता अवि वानेवगहन-  
प्यारमनोऽङ्गुण पर लभेदेति । )

इतरे साल-साल घोड लमाओ वीपसीऽङ्गे सपठे है, वीनो मुजाएँ कोमल-वालाओ-वैठी  
आन पठती है और इनके अगेमि लिखा हुआ गया यौवन सुखावने बूझके समान बिसाई  
दे रहा है ॥२०॥

अनगूया—वाकुन्तला, यह मही नई पमेसी है न, जितने कामके बुराये स्वयंवर कर  
लिया है और जितना नाम भूने वनज्योस्तेना ( वनजी चाँदनी ) रस खोटा है । इतै ती नू  
भूने ही बली या रही बी ।

वाकुन्तला—वाह इमे भूमूमी तव ओ मी अयने को भी भूय बाढंभी, [ सतावे पास जावर  
ओर देवकर ] मगी, मवमुष इग मना ओर कृत्तक मेव बडे अयदे दिभोमि हृषा है । इपर  
मह वनज्योस्तेना गिने हूय प्रथ मेकर नवगीवता हूई है, अपर पलमे मदी हूई भाषाओँ बाला  
भाषका वृत्त भी उदार पर भाषा हृषा है ।

[ उमे देवती हूई वारी रह जाती है । ]

प्रियवदा—[ मुक्तागर ] अनगूया । जानओ हो यह वाकुन्तला रतनी मयम होकर  
वाज्योस्तेनाओ वनी देव रही है ?

वाकुन्तला—मगी मली । मी तो नती जानओ नू ही बता शाय ।

प्रियवदा—देवो यह मोच गी है वि अंगे मह वनज्योस्तेना अयने दोय वृषाते निपट  
रई है मंगे मी मुजे ओ मेरे दोय वर विग जाय ।

सकुन्तला—एखी खूणं दुह भरापवो मखोएहो । (एय नूनं तवात्मगतो मनोरथः) [ इति कलशमार्जनमिति । ]

राजा—अपि नाम कुलपतेरियमसयणंकोप्रसंगया स्यात् । अथवा कृतं संदेहेन ।

असंशयं सत्रपरिग्रहञ्चमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।

सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाद्यमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥ २१ ॥

तथापि तस्मत् पनामुपलभ्ये ।

सकुन्तला—[ सतंप्रसङ्ग ] अम्मी । तानिततेप्रसंगमुपगम्यो लोभातिर्गं उज्जिह्व प्रपणं मे महुप्ररो अहिषद्वह । ( अम्मी ! तानितसेवप्रसंगमोद्धतो भवमानिबानुजिह्वत्वा धरनं मे मधुकरोऽभि-  
परीते । ) [ इति भगवत्संवासा रूपमिति । ]

राजा—[ असृद्वह ]

चलापाङ्ग दृष्टः स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं

रहस्याख्यायीव स्वनसि श्रुतु कर्मान्तिवचरः ।

फरी व्याधुन्यत्याः पिषसि रत्तिसर्वस्वमधरं

वर्षं तत्त्वान्वेषान्मधुकर इतास्त्वं खलु कृती ॥ २२ ॥

सकुन्तला—ए एखो दुहो विरमदि । अण्णवो ममित्तं [ पदान्तरे विषया चहृष्टिधोवन् ]  
कहं इवो वि भामप्रद्वदि । हला परितामह भं इमिला दुग्घलीदेण महुप्ररेण अहिहप्रमाणं ।

सकुन्तला—यह तो तू सपने ममकी बात कह रही है ।

[ धनेका जस पेढकी जदने धोइती है । ]

राजा—महू लुपिकी कम्पा कही दुसरे वर्णकी स्त्रोते तो बही उत्पन्न हुई है । पर संदेह किया ही क्यों जाय । क्योंकि जब मेरा सुट मन भी इस पर रीक उठा है तब यह निश्चय है कि इसका शत्रियत्वे विवाह हो सकता है । क्योंकि सत्रश्लोकें पढ़के जिस पाठपर वांका हो वही जो कुछ उनका मन कहे वही ठीक गान भेना चाहिए ॥२१॥ फिर भी मैं इससे ठीक-ठीक जानने का प्रयत्न करता हूँ ।

सकुन्तला—[ अवरसकर ] भरे रे, जस पढवे से अवरसकर उवा हूपा यह भीरा अनेलीको धोइर बार-बार मेरे ही मूहपर मंवरने मया है । [ भीरेसे वीहित होने का नाटक करती है । ]

राजा—[ ससपता हुआ । ] भरे भीरे, तुम सचमुच बड़े भाग्यवान् हो । इधर हम ही सचकी बातकी खोजने ही सुट गए, उधर तुम इसकी पञ्चल चितवनने देसे जाते हुए इस माँपली हुई जानाकी बार-बार सूनी जा रहे हो, उसके कानोंके पास जाकर ऐते भीरे-भीरे पुनपुना रहे हो गानो कीर्द बडे भेदकी बात उसे सुनाना चाहते हो और बार-बार उसके हाथो से भटके जाने पर भी तुम उसके रस-अरे अघरीको रस पीते हीं वा रहे हो ॥२२॥

सकुन्तला—भरे यह कुछ गानता हो नहीं है । परन्तु वहाँ और हट जाऊँ । [ दूसरे स्थानपर

( न एष दुष्टो विरमति । भगवतो वयिष्यामि । कथमितोऽप्यागच्छति । हला परित्रायेषा  
मामनेन दुर्विनोतेन मधुकरेण धमिभूयमानाम् । )

उत्ते—[सस्मितम्] या यद्य परित्रादु । दुस्तन्व एष्व षङ्गन्व । राजपरिषददम्बाई तयोवराई  
एषाम् ।

( ये माया परित्रातुम् । दुष्यन्तमेवाकन्द । राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम । )

राजा—अवसरोऽप्यमात्मानं प्रकथयितुम् । न भेतष्य न भेतप्यम्—(इत्यर्षोक्ते स्वगतम्)  
राजनादस्तत्प्रभिलातो भवेत् । अयतु एव तत्त्वदमिषास्त्ये ।

शकुन्तला—[ यदात्तरे स्थित्वासदृष्टिलोपम् ] क्व इदोमि न अणुसरति ।

( कथमितोऽपि मामनुसरति )

राजा—[ सारवरभुषकृत्य ] आ ।

फः पौरुषे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनीतानाम् ।

अपमाचरत्ययिनयं सुग्धासु तपस्विकन्यकासु ॥२३॥

[ सर्वा राजान द्युः किपदिव सभ्रगताः । ]

मनमूढा—अज ए वसु किमि अग्याद्वि । इम खो विमसही इह महमरेण अहिह-  
अमाणा वावरीभूवा । ( मायं न शकुन्तलास्यव्याहित् । इय नी त्रियतकी बुष्टमधुकरेणामिभूयमाना  
कातरीभूवा । ) [ इति शकुन्तला दर्शयति । ]

राजा—[ शकुन्तलामिमुषो भूत्वा ] अपि तपो वदंते ।

[ शकुन्तला साध्वसावनतमुखी तिष्ठति । ]

जाकर धोर इष्टि केरकर । ] धरे, क्या यहाँ भी था पहुँचा ? अब क्या करूँ ? भरी सलियो !  
बचामो ! बचामो इस दुष्ट भोरते ! ! इसने तो मुझे बड़ा तग कर डाला है ।

दोनी—[ मुस्कराकर । ] हम कीन हीवीं हैं बचानेवाली ! दुष्यन्तकी क्या मही पुकारती  
हो ! धरी ! तपोवनकी रक्षा करना ती राजाका काम है न !

राजा—मपना परिषम देनेका यह प्रकृष्टा भवसर है । डरो मत ! डरो मत ! [ आधी  
बात कहकर फिर मन ही मन । [ किन्तु इससे ती व समझ जायेंगी कि मैं राजा हूँ । अज्या,  
तो मैं फिर यों कहता हूँ ।

शकुन्तला—[ बोधी दूर जाकर लड़ी होकर फिर दृष्टि केरती है । ] क्या करूँ ? यह तो  
यहाँ भी मेरा पीला नहीं छोड़ता ।

राजा—[ भ्रतरो प्रकट होकर । ] ओह ! जबतक दुष्टोंको दह देनेकामा पुण्यशी दुष्यन्त  
पृथ्वीपर राज्य कर रहा है तबतक मैंन ऐसा है जो भोली-भासी ऋषि-भगवत्सों से  
क्षेपड़ा करे ॥२३॥

[ राजाको देखकर सब सचपचा जाती है । ]

मनमूढा—आर्य, ऐसी कोई बड़ी भारी विपत्ति नहीं है । हमारी इस प्यारी सलीबो भोरि  
ने तग कर रक्सा था, इसीसे यह कुछ भवरा भी यई है । [शकुन्तलाकी धोर सनेत करती है ।]

राजा—[ शकुन्तलाके सामन जाकर ] आधी तपस्या तो सफल हो रही है न ? [शकुन्तला  
भीषा मूँट करके श्रुण रह जाती है ।]

भनसूया—दार्ण्यं भदिहिंविसेसलाहेर ! हला सज्ज्वले ! मत्तु उग्रम फलमिरस प्रथ  
उवहर, इव पावोवन्न भविस्सवि ।

(इदानीमतिथिविसेसलाभेन । हला सज्ज्वले ! मत्तु उग्रम फलमिषमर्ष्यमुपहर । इदं  
पावोवन्न भविष्यति)

राजा—भयतीनां सृज्ज्वले विरा कृतभातिष्यम् ।

प्रियवदा—तेरा हि इमस्सि दाव पन्नापसीभलाए सत्तपणुवेदिघाए मुहत्तम उवधि-  
सिन्न परिस्सामविलोव करेवु सज्जो ।

(तेन ह्लासपां तावत् प्रच्छापसीतलाया सत्तपणुवेदिकाया मुहत्तमुपविरय परिपमविमोद  
करोस्वाम् ।)

राजा—नूनं सूयमप्येन कर्षणा परिधात्ता ।

भनसूया—हला सज्ज्वले ! उग्रम शो पञ्जुवासए भदिहीर ! ता एहि एव उवविसम्ह ।

(हला सज्ज्वले ! उचित न पञ्जुवासमतिपोमान् । तदेहि सज्जोवविशाम् ।) इति सर्वे  
उवविसन्ति ।)

सकुन्तला—[भारतगतम्] किं एतु मत्तु इमं सज्ज्वले पेविसिन्न तयोवएविविरोहिणो विम्रा  
रस्त ममसीमन्नि सज्जुत्ता । (किं तु सज्ज्वले अतः प्रेक्ष्य तयोवनविरोधिने विकारस्य गमनीयाऽस्ति  
सज्जुत्ता ।)

राजा—[सर्वा विलोक्य] अहो रामधोकरमरायि भवतीनां सीहार्हम् ।

प्रियवदा—[जताम्लकम्] अणुसूए ! को एतु मत्तु एतो अवरपम्मीरकिटी मठुर विम  
आलवदी पहावचन्धो विव सज्जुत्तादि । (मनसूये ! को तु अवरप चतुरपम्मीरकृतिमंपुर  
प्रियमासप-प्रभाववाभिय लक्ष्यते ।)

भनसूया—जी हाँ, आप जैसे मनुके अतिथिके भा जाने से तपस्या सफल ही समझिए । अच्छा  
सकुन्तला ! जा कुटीसे कुछ फल फूलके साथ अर्घ्य तो ले जा । चरख धोनेका जन यही  
मिल जायगा ।

राजा—आपकी मीठी मीठी बातोंने ही मेरा अतिथि सकार ही गया ।

प्रियवदा—तो अर्घ्य ! अतए धना छायावाले अतिथिके तले जी बोधत शीतरा है, वहीं  
आणमर बैठकर अपनी चकान मिटाइए ।

राजा—आप सब भी तो काम करते करते एक गर्द होयी ।

प्रियवदा—सकुन्तला ! अतिथिकी बात तो रसनी ही होयी । भायो, चलो बैठ जाय ।  
सकुन्तला—[भन ही भन] उन्हें देखकर मेरे मनमें न जाने क्यों ऐसी उथल-पुथल ही  
रही है जैसी तपोवनके निवासियोंके मनमें नहीं होनी चाहिए ।

राजा—[सबको देखाकर] आप लोग एक ही रूपवासी और अवस्थावासी हैं । आप  
सोगोका भावसका प्रेम मुझे बड़ा प्यारा लगता है ।

प्रियवदा—[धोरके] भनसूया, ये चतुर और गम्भीर हिसाई देनेवाले तथा प्रिय और  
मधुर बोलनेवाले कोई बड़े भारी व्यक्ति जान पड़ते हैं ।

मनसूया—महि मम वि शक्ति कोरूहलं । पुच्छितं दाव खं [प्रकाशम्] अज्जत्त मत्तुरात्तावज्जिदो खीसम्भो मं मन्तावेदि कदमो अज्जेण राएत्तिणो यतो अलंकारीअदि कदमो वा विरहपज्जुत्तमुअज्जखो किन्तो वेसो । किण्णिमित्तं वा सुउमारदरो वि तपोवणगमण-परिस्ममस्म अत्ता पदं उवखीवो ।

(सचि ममग्यसित कौतूहलम् । पुच्छामि तावदेतम् । आर्यस्य मधुरात्तावज्जितो विश्वम्भो मा मन्त्रयते इतम धार्येण राजपर्वेशोऽतस्त्रियते कतमो वा विरहपर्वुत्तुकज्जन् इतो देस किनिमित्तं वा सुकुमारतरोऽपि तपोवनगमनपरिष्ममत्यात्वा पदमुपगोत ।)

शकुन्तला—[आरमगतम्] हिअस मा उत्तम्म । एता तुए चिन्तिदाइं अणसूया मन्तेदि । (हृदय मा उत्ताम्य । एषा स्वया चिन्तित्ताम्यनसूया मन्त्रयते ।)

राजा—[आरमगतम्] कयमिदानीमास्मानं निवेदयामि कथं वा आत्मापहारं करोमि । मन्तु एवं तावदेतं अख्ये—[प्रकाशम्] मयति यः पौरवेण राजा धर्माधिकारे नियुक्तः सोऽहमाभिनियामिदमक्रियोपसम्भाष्य धर्मारण्यमिदमायात् ।

मनसूया—सखाहाहासि अम्मआरिखो । (सनाया इदानी धर्मचारिण ) [सकुन्तला शृङ्गारलज्जा रूपयति]

ससरो—[अमरोराधार विदिखा जनान्तिकम्] हुता सज्ज्वले जइ एत्थ अज्ज तापो तण्हिदो नये । (हला सकुन्तले मरणाय तात सनिहितो भवेत् ।)

सकुन्तला—तवो कि भये । (तत. कि भवेत् ।)

मनसूया—[शियवदासे धीरे से ] सखी, मुझे भी जानने की वशी उत्कण्ठा है । खली इन्ही से पूछें । [प्रकट] धार्यं । आपकी सीठी यातोस जो हमे आपसे विस्वास उत्पन्न हो गया है वह हमे आपसे यह प्रश्नको उकसा रहा है कि धार्यंके किस राजवशको सुनोनित किया है, किस देशकी प्रजाको अपने विरहसे व्याकुल करके धार्यं यहाँ पधारे है और ऐसा कीन-सा काम था पदा है जिसने आपके इस सुकुमार शरीरको इस तपोवन तक लाने का कष्ट दिया है ।

सकुन्तला—[मन ही मन] हृदय, उतावले मत बनो ! तुम्हारे ही मनकी बात मनसूया पूछ रही है ।

राजा—[मन ही मन] भय अपना क्या परिचय दूँ और कैसे अपनेको सिपाई ? अथवा मैं इनसे यह कहता हूँ । [पचट] भद्रे सुखवती राजाने मुझे अपने राजकी दूषामिक क्रियाओ की देख-मानना काम सौंप रखा है । इसलिये मैं यह देखने आया हूँ कि आश्रममे रहनेवाले सपत्नियोंके धार्यंमे कोई विघ्न ला नहीं पकटा ।

मनसूया—धार्यं । धर्म-क्रिया करनेवाले लोगोंपर आपने बड़ी कृपा की है ।

[सकुन्तला प्रेम और सज्जाका नाट्य करती है]

दीनो—[सकुन्तला और दुप्यन्तके मनकी बात ताकवर पीरेके] सकुन्तला । यदि आज निताबी पर होने—

सकुन्तला—सो क्या होना ।

सख्यो—इमं जीवितसम्बन्धेण वि अदिहितेषां किञ्चत् करिस्सदि । इमं जीवितसर्व-  
स्वेनाव्यतिविशेषं कृतार्थं करिष्साति । )

राकुन्तावा—तुम्हे भवेध । किं वि हिंसाए करिअ वन्तेय । एण यो यमएणं सुणिस्सं ।  
(सुदामपेतम् । किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रवेधे । न मुचयोर्वचनं धोष्यामि ।)

राजा—वयमपि तावदुच्यतेः सखीमत् किञ्चित् पृच्छामः ।

सख्यो—अज्ज अनुग्गहो विअ इअं अकमत्पत्ता । (आयं अनुग्रह इवेयमभ्यर्चना ।)

राजा भयदान्वाक्यः श्लाघते प्रहृष्टिणु स्थित इति प्रकाशः । इयं च वः सखी तद्वानमैति  
कथमेतत् ।

अनसूया—सुलाडु अज्जो । अस्सि को वि कोस्सिभोस्सि गोत्तलामहेभो महाप्पहायो राएत्ती । -  
(श्रुणोःशार्दं । अस्ति कोऽपि कौशिक इति गोचनामपैको महाप्रभाको राजपि ।)

राजा—अस्ति भूयते ।

अनसूया—तं एवो विप्रलहोए पट्टं अकमच्छ । उच्चिक्कपाए सरीरसंवद्धलादिहिंसावकण्यो  
सि पिवा । (समाक्योः प्रियसख्याः प्रमदमवगच्छ । उच्चिक्कपायाः शरीरसकंदनादिभि-  
स्तातकण्योऽस्याः पिता ।)

राजा—उच्चिक्कपादेन अस्ति मे कौतुहलम् । आप्नुस्ताच्छीतुमिच्छामि ।

दोनी—इत प्रकृते अतिथिको प्रपन्ने जीवनका सर्वस्य देकर भी इन्हे निहाल कर देते ।

राकुन्तावा—बलो हटो, तुम लोग न जाने क्या-क्या मनमे लेकर बोलती हो । मद्य में  
सुम्हारी बातें सुनूंगी ही नहीं ।

राजा—[ अनसूया और प्रियवदाते ] हव भी आपकी सखीके विषयमे कुछ पूछना  
चाहते हैं ।

दोनी—बूझिए आर्य, यह तो आपकी कृपा ही है ।

राजा—इसने तो मुझ रक्ता या कि महर्षि कण्व जन्मसे ही अहाचारो है, फिर आपकी  
मे सखी उमकी कथा कंस हो गई ?

अनसूया—मैं अतासी हूँ आर्य ! कौशिक गोत्रके एक बड़े प्रतापी राजपि है न ।

राजा—हाँ, हाँ हैं, मैंने सुना है ।

अनसूया—तो बस यही सचअिए कि हमारी सखी कन्हीकी कन्या है । इराकी माता इसे  
छोडकर चल बी तो कण्व अधिपने हो इसे पास-पोसकर बटा किया । इसीलिये ये इसके पिता  
कहताते हैं ।

राजा—छोडकर चल देनेको बात सुनकर तो मेरी उल्टा और भी बढ गई है । मैं  
इसकी पूरी कथा सुनना चाहता हूँ ।

मनमूया—सुखादु अज्जो । गोदमीतीरे पुरा किल तस्स राष्ट्रिल्लो जामे तवमि षट्ठमा-  
एत्त किंमि सादराद्धुंहे देवेहि भेल्लमा खाम अच्चररा पेसिदा लिप्पमविग्गकालिणी ।  
(श्रुत्वोत्वायं: गौतमीतीरे पुरा किल तस्य राजपौत्रे तपसि वतंभानस्य किमपि आतच्छुद्धैर्मनका  
नाम अप्सरा: प्रेरिता निवमविष्णकारिणी ।)

राजा—अस्येतदन्यसमापिभीरुत्वं देवानाम् ।

मनमूया—तदो वसन्तोदारसमए से उम्भादइतमं ह्वं पेक्खिअ—( ततो वसन्तोदारसमये  
तस्या उन्मादवित्तु प्रेक्ष्य—) [ इत्यर्धोक्ते राजया विरमति । ]

राजा—परस्ताज्जायत एव । तर्षया अप्सरा: समर्षया ।

मनमूया—यह हं । ( अर्धकिम् । )

राजा—उपपद्यते

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः ।

न प्रभातरत्नं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ॥२४॥

( शकुन्तला यथोमुक्षी तिष्ठति । )

राजा—[ आरामगतम् ] हन्त सम्प्राप्तकालो मे मनोरथः । किन्तु सख्या: परिहृत्सीदाहृता  
यत्प्रार्थनां श्रुत्वा धतुर्धृषीभावकालत्वं मे मनः ।

प्रियवशा—[ स्मितं शकुन्तला विलोचय नायकप्रियुक्षी भूयः ] पुत्रो वि यत्कृकामो  
विम अज्जो । ( पुनरपि वसुधाम इवार्थः । )

[ शकुन्तला सतीमद्गुण्या तर्जयति । ]

मनमूया—तो सुनिअ धार्यं । बहुत दिनोकी बात है । गौतमी (गोदावरी) के तटपर बंटे  
हुए के राजपि एक बार घोर उपस्था कर रहे थे । ऐसा कहा जाता है कि उनके तपसे कुछकर  
देवताओंने उनका रूप विगानेके लिये मेनका नामकी अप्सरा भेजी ।

राजा—हाँ, यह तो है ही । शीतोंकी तपस्या देखकर देवता लोग मुझ ही करते हैं ।

मनमूया—तो वसन्तके आरम्भमें उसका मदभरा शौच देखकर [ आया कहकर ही  
सजा जाती है । ]

राजा—वस-वस प्राणों में सजक यथा । तो वे सचमुच अप्सराकी बन्ध्या हैं ।

मनमूया—जी हाँ ।

राजा—ठीक भी है । नहीं तो मनुष्योंमें यथा ऐसा रूप नहीं मिल पाता है । अथवा  
अमरवासी बिजली मृत्पीतलसे थोड़े ही निकला करती है ॥२४॥

[ शकुन्तला सिर मुका सेती है । ]

राजा—[ मन ही मन ] अभी, मेरे मनोरथको कुछ सहारा तो मिला । पर इसकी सखी  
प्रियवदाने हँसी-हँसीमें कुछ इसके कर मिलनेकी भी बात कही थी । इसीसे मेरा मन अभी  
दुबिधामें ही पड़ा हुआ है ।

प्रियवशा—[ मुत्कटाकर पहले शकुन्तलाकी घोर फिर राजाकी घोर देखकर । ] क्या  
धार्यं कुछ घोर भी पूछना चाहते हैं ?

[ शकुन्तला मन्त्रीको उँसलीने तरजती है । ]

राजा—सम्यगुपलक्षितं भवत्या । अस्ति नः सञ्चितधनवानुमादन्यदपि प्रष्टव्यम् ।

त्रियंबदा—अतं विघ्नार्थम् । अस्तिचन्तस्ताञ्जलीतो तवस्त्रिप्रहो राम । ( अलं विनायकं धनिपन्त्रणानुयोवस्तपस्विजनो नाम । )

राजा—हृति सर्षीं ते ज्ञानुमिच्छामि—

वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानाद्ब्यापारोधि मदनस्य निपेवितव्यम् ।

अत्यन्तमेव मदिरैश्चखवन्लभाभिराहो निवत्स्यति समं हरिखाङ्गनाभिः ॥२५॥

त्रियंबदा—अहम् ! धन्मात्परणे त्रि परवतो अहम् जलो । मुष्टो जल से अष्टकवदरूप-  
वाले संकल्पो । ( धार्य ! धर्मात्परणे परवशोऽयं जलः । गुरोः पुनररुवा अनुकूपवरप्रदाने संकल्पः । )

राजा—[ आत्मवतम् ] न तुरवापेयं खलु धार्यना ।

अयं हृदय सामित्यार्थं संप्रति संदेहनिर्णयो जातः ।

आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शवमं रत्नम् ॥२६॥

राकुन्तला—[ सरोपविप ] अरुसूए गमित्तं अहं । ( अन्वये ! गमिव्याम्यहम् । )

अनसूया—किं क्षिप्तं । ( किं निमित्तम् । )

राकुन्तला—इमं अतं बद्धपत्ताविण्ण पित्रववं अजाए शोभनीए एणिवेदात्तं ।

( इनामसमद्वयलापिनी त्रियंबदाधार्यं गौतमं निवेदयिष्यामि । )

राजा—आपने हमारे मनषी बात ठीक साङ्ग ली है । इनकी सुन्दर कथा सुननेके लोभसे हम कुछ धीर पूछना चाहते हैं ।

त्रियंबदा—तो संकोच न कीजिए ! तपस्विगोसे तो आप बिना मिश्रणके कुछ भी पूछ सकते हैं ।

राजा—आपकी सबीके सम्बन्धमे हम यह जानना चाहते हैं कि-इन्होंने, कामदेवकी गतिकी रोकनेवाला यह जो तपस्विगोका-सा नामा बनाया है यह विनाह हीनेतक ही रहेगा, अथवा ये अपना सारा जीवन, मदधरी आँसोके वारण प्यारी लगनेवाली हरिणियोंके बीचमें रहकर जो ही बिता डालेंगी ॥२५॥

त्रियंबदा—आर्य ! आपके काम भी यह अपने मनसे नहीं कर सकती । फिर भी पिताजी का एकल्प है कि यदि इसके योग्य वर मिल जायगा तो विवाह कर दिये ।

राजा—[ मुन ही मन ] इस सद्गुणका पूरा होना तो कठिन नहीं है । हृदय, तू आशा न छोड़ । जो दुविधा भी वह तो जाती रहती, क्योंकि जिसे तू अग्नि समझकर धूनेसे दरता था वह तो धूनेके योग्य रत्न निकल आया ॥२६॥

राकुन्तला—[ सोझकर ] अनसूया, मैं चली जा रही हूँ ।

अनसूया—अप्यो ! क्यो !

राकुन्तला—इस घटपट बकनेवाली त्रियंबदाकी सारी बातें जानकर धार्य गौतमीसे कहे पाती है ।



अनृपा—महि ए जुतं घससयवागिलो अचिरसह्यारं अविहिपितोमं वितामिष  
 मरुद्वरयो गमलं । ( गणि न पुनमहृनमरुद्वरमतिविदोय विमृश्य स्वपदन्दतो गमनम् । )

[ अनुत्तमा न विविदुषा अभिप्रेतम् । ]

राजा—[ ररमतम् ] धाः क्वं गच्छति । [ अहोतुमिन्दन्निप्रहात्मनम् ]

अनुयाभ्यन्मृनिननयां मदना विनयेन चारितप्रसरः ।

स्थानादनुचलन्नपि गन्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः ॥२७॥

श्रियंवता—[ अनुत्तमा निगद्य ] एता ए दे जुतं गतं । ( एता न ते युष्मं गमुम् । )

अनुत्तमा—[ मधुमद्गम् ] किं शिषितं । [ किं निमित्तम् ] ।

श्रियंवता—एततोमते सुखे धारिते मे । एहि जाव घसलं मोचयित्वा ततो गमिस्तसि ।

( मृगतोपने द्वेधारयति मे । एहि तावत् धारमाणं मोचयित्वा ततो गमिष्यति । )

[ इति द्वादेशान्तरवर्षणि ]

राजा—अहो ! मृगतोपनारेव परिधानामत्रभवर्षी राजये । अथा ह्यस्याः—

मन्मां गावतिमाश्रतो दिनतलौ बाहू घटोरक्षेपणा-

दद्यापि स्तनयेपर्यं जनयति श्रमः प्रमाणाधिकः ।

यद्दं कर्णशिरीषगेपि वदने चर्माभ्रमां जालकं,

बन्धे मंगिनि चैकद्वस्तयमिताः परावृत्ता मूर्धजाः ॥२८॥

तरुणोत्तमपुत्रो ज्योतिषि । [ इन्द्रोपुत्रोयं दातुमिच्छति । ]

[ उभे नाममुद्रात्तरुणपुत्राभ्य गच्छन्तमपतोवपतः । ]

अनृपा—गमी, ऐसे वड़े अतिविद्या गाराद किम् बिना उन्दे गोइकर वेंठडे पले जाना  
 अभाय मही है ।

[ अनुत्तमा बिना उत्तर दिग् यतनेको प्रमृत्त होयो है । ]

राजा—[ एत ही मन ] अरे, जानी क्यों हो ? [ उभे शेरकेको घटो है, फिर घनकेको  
 शेर लेने है । ] इस मुनि कथाके पीछे जाने-जाने गाराके बाराग में गहगा दार गया है सोर  
 एतदि मैं दाने स्वामके हिया मर मही दिग भी सुभे देना मर रहा है, माने मैं मुग दूर यनवर  
 सोर जाया होई ॥२७॥

श्रियंवता—[ अनुत्तमाको शेरकर । ] गमी मुद्रास इग प्रचार यव देना दीव मही है ।

अनुत्तमा—[ अहो बहावर ] क्यों ?

श्रियंवता—करोकि तुम अभी रो गोथे सोर गोथो का बाव सुभे हार पुकी हो अयना  
 एत सुवा लेना एव जाय ।

राजा—अहो, रोकोको गोथेके हो लो जावको गमी अयो हई दिगाई मर रही है ।

करोकि—अरे उन्दे-उन्दे इतने क्यों रोके पड़ पड़ है, हरेनिवां माग हो गई है, इनके  
 बाव-बार दाने हृद मर दया रहे है दि यदनेके इको गोथ पुन गई है, बारागे याने हृद  
 गिराके मुन भी मही हिया ए है, करोकि अभीके को सुदोके उवकी यंकरिनी दापोरर विरर गई  
 है लीए वृहेके पुन अनेके के यदोके दिगाई हई मरे मुक मरके विधे विगां प्रचार संघात या  
 रही है । ॥२७॥ इति एतौ शिष्य इववा जगु मी मुकाम देण है । [ अतरो अट्टो देना बाहगा  
 है । इतराया अय वेंठ डेर वइवर दोओ एव मुकरीको देवकी है । ]

राजा—शक्तिमानन्याया संभाव्य । राज्ञः परिग्रहोऽस्ति राजपुरुषं मामवगच्छय ।  
 प्रियपदा—तेस्य हि स्वारिहृदि एवं अगुनीमम संगुतिविमोर्षं । अजस्र वभरोस्य  
 मरिचिरिमा दासि एसा । [ किञ्चिद्दृश्य ] हवा सज्जले मोददस्ति अशुभान्पिणा प्रज्जेल  
 प्रहवा महाराएए । यच्च दासि । { तेन हि नार्हस्येतदगुलीयकमगुतिविमोर्षम् । भाषंस्व वचनेना-  
 वृत्ता इदानीमेया । हवा शकुन्तले ! भोजितास्यनुकम्पिना धार्येण अथवा महाराजेन । मन्देदानीम् । }  
 शकुन्तला—[ आत्मपतम् ] जइ अतसो पह्वितस [ प्रकथम् ] का तुमं विसज्जितदस्वत्स  
 हग्निदस्वत्स म । ( मयात्तम प्रभविध्यामि । का त्व विसज्जितदस्वत्स रोद्धव्यत्स वा । )

राजा—[ शकुन्तला विलोक्य आत्मपतम् ] किं नु खलु यथा वचनस्याभेयमिपमप्यस्नाप्रति  
 स्पात् । अथवा तस्मात्काशा मे प्रार्थना । कुतः ।

वार्चं न मिथयति यद्यपि महचोभिः कर्णं ददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे ।  
 कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखीना भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः ॥२६॥

[ नेपथ्ये ]

श्री भोक्तपरिवशः संनिहितास्तपोवतस्वरक्षार्यं भवत । प्रत्यासन्नः किल मृगयाबिहारी  
 पापिबो दुष्यन्तः ।

तुरगस्रुरहतस्तथा हि रेणुर्विंटपनिपक्तजलाद्रवल्कलेषु ।

पतति परित्यक्तास्यप्रकाशः शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु ॥३०॥

राजा—मुझे घाप कोई और न समझ बैठिएगा । यह घण्टी मुझे राजसे पुरस्कारमें  
 मिली है । मुझे आप लोग राज-पुरुष ही समझिए ।

प्रियपदा—तब तो इस घण्टीकी आपकी उंगलीसे धक्का करना ठीक नहीं है । आपके  
 कहने ही मरते इसका भाए चुकता हो गया । शकुन्तला ! इनकी या यो कहो कि महा-  
 राजकी छापसे तुम जलसे मुक्त हो गई हो । धब जा सकती हो ।

शकुन्तला—[ मन ही मन । ] अथवा मन हापमे हो तब तो जाऊँ । [ प्रकट । ] मुझे  
 जाने देनेवाली या रोकनेवाली तुम होती कौन हो ?

राजा—[ शकुन्तलाको देखकर आपही आप ] कही यह भी यो हमपर कैसे ही नहीं रोक्क  
 गई है जैसे हन इसपर रोक्के हैं ? या फिर जान पड़ता है कि हमारे मनोरथके फलनेके  
 दिन था गए । क्योंकि—यद्यपि यह स्वयं मुझसे बातचोत नहीं करती फिर भी जब मैं बोलने  
 समता हूँ तब जान समझकर मेरी बातें सुनने समती है और यद्यपि मेरे सामने यह मुँह करके  
 नहीं बैठती फिर भी इसकी आँखें मुझपर ही लगी रहती हैं ।

[ नेपथ्यमे ]

हे तपस्विनी ! आकर तपोवनके प्राणियोंको बचाओ । आलेखका प्रेमी राजा दुष्यन्त  
 पास ही था पहुँचा है । उसके घोड़ोंकी टापोंसे उठी हुई और साँझकी सच्चाईके समान ताल-ताल  
 मूल टिड्डी दसके समान उड़कर आश्रमके उन वृक्षोंपर फँती पड़ रही है जिनकी शाखाओंपर  
 गीले वल्कलके मरू फँसाए हुए हैं ॥३०॥

शशि च—

तीव्राघातप्रतिहततरुः स्फुन्धलग्नैकदन्तः

पादाकृष्टव्रततिवलयसङ्गसंजातपाशः ।

मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्न सारङ्गयूथो

धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्पन्दनालोकभीतः ॥३१॥

[ सर्वाः शर्त्तं दत्त्वा विचिदिव सञ्जाताः । ]

राजा—[ आरभ्यतम् ] अहो विद् । संनिका अस्मदन्वेषिणस्तपोवनमुपस्थापित । भवतु । प्रतिपदिष्यामस्तपसम् ।

सख्यो—अरज इमिया आरभ्यतमुत्तमैण परजाडल ग् । सञ्जुजासीहि एषो उडभ्रगम-  
खत्ता । ( धार्यं धर्मेभारण्यववृत्ताभ्येन पर्याकुलाः स्यः । प्रभुजापीहि न उडजनमनाय । )

राज—[ सतंभ्रमम् ] नवदन्तु भवत्यः । सधमप्याभ्रमपीडा यया न भवति तया प्रयति-  
ष्यामहे ।

[ सर्वे उचिष्ठमिदं । ]

सख्यो—अरज अर्त्तभवाविदप्रविहृष्टकारं भूयो वि देवदण्डिणमितं सख्येभो अरजं  
विण्णविद् ।

( धार्यं धर्त्तनामितातिविशवारं भूयोऽपि प्रेषणमितं सख्यायहे धार्यं विज्ञापयितुम् । )

राजा—ना मेवम् । धर्त्तनेनैव भवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि ।

[ सपुत्रता राजानमवलोकयती सख्याज विनम्य सह सखीभ्यां निष्क्रान्ता । ]

घोर देशो—राजाके रणसे डरा हुआ यह जंगली हाथी हयारी तपस्याके लिये आशाद्  
विघ्न बना हुआ हरिखोके झुडकी तितर-वितर करता हुआ तपोवनमें घुसा पला भा रहा है ।  
इतने घबरी करारो टहकरे एक वृक्ष उपाड किया है जिसमें उलका एक दाँत फँसा हुआ है ।  
घोर हठी हुई लताएँ फरेके समान उलके वंरोमें समझी हुई हैं ॥३१॥

[ सर कुमारियां गुनवर ब्रह्म पवरा जाती हैं । ]

राजा—[ मन ही मन ] अरे, धिक्कार है इन मंत्रिकोंको । जान पड़ता है हमें हुँडनेके  
लिये ये तपोवनको रौंसे डान रहे हैं । अब हमें उधर चलना हो चाहिए ।

दोनों—धार्य ! इस जंगली हाथीकी बात सुनकर हम लोग डर गई हैं । हमें पुटीमें  
जायेंगी भासा दंभिए ।

राजा—[ धीमतासे ] धार्य लोग खचें । मैं भी प्रयत्न करता हूँ कि तपोवनमें  
विघ्न न हो ।

दोनों—धार्य ! हम सोचते धार्यवर कुछ भी सरकार नहीं किया इसलिये—[ सब उठती  
है । ] धार्यके मूढ़ प्रायंता करते हुए बड़ा सरोच हो रहा है कि हमें फिर दर्शन दें ।

राजा—नहीं, नहीं ऐसा न कहिए । धार्य लोगोंके दर्शनमें ही हमारा सारार हो गया ।

[ नकुन्तना गवां को देगनी हुई हुआ धुमने घोर आगमें बोनी फँसनेवा यद्दना करके  
बोड़ा दबतो है घोर फिर सभियोंके साथ चल देतो है । ]

राजा—मन्वोत्सुखयोऽस्मि नगरमभनं प्रति यापदनुयात्रिकान्समेत्य नातिदूरे तपोवनस्य निवेशयेमम् । न खलु शपनोमि शकुन्तलाध्यापारादात्मानं निर्वर्तयितुम् । मम हि—

गच्छति पुरः शरीरं धावति पथादसंस्तुतं चेतः ।

चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ॥३२॥

[ इति निष्क्रान्ताः सर्वे । ]

इति प्रथमोऽङ्कः ।

राजा—नगरमे जामेका सारा हुलास ठडा वड थवा हे । इसलिये भावमके पास ही सैनिकीके साथ डेरु डाले देता हूँ । प्पान पडता हे कि शकुन्तलाके इस प्रेम-व्यवहारसे मैं छुटकारा न पा सकूँगा । शपोवि—जैसे पथनके सामने मग्धा से चलनेपर उसकी रेशमी लपटो पीछे की फहराती चलती हे वैसे ही ज्यो-ज्यो मेरा शरीर आगे बढ़ता हे त्यो-त्यो मेरा पछल मन पीछे की दौडता थवता हे ।

[ सत्रका प्रस्थान । ]

पहला अंक समाप्त

## द्वितीयोऽङ्कः

[ उक्तः प्रविशति विपण्णो विद्रूपकः । ]

विद्रूपकः—[निःश्वस्य] ओ दिव्दु एवस्स भग्गमात्तोत्तस्स रण्णो वग्गस्सभवेण एण्णिवि-  
ण्णो ण्हि । अग्गं भग्गो अग्गं वराहो अग्गं सद्दुल्लोत्ति मग्गण्णुं वि मिग्गह्विरग्गमाग्गवच्चाग्गामु वएराईमु  
अग्गिण्णोअग्गि अग्गवोदो अग्गवो । एत्तसंकरकत्ताअग्गं कहुअग्गं गिरिण्णैअग्गताई पीअग्गि अग्गिअग्गवत्तं  
कुत्तसंसंभूअग्गो आहारो । अग्गोअग्गि सुरगाण्णुआग्गवत्तकण्णिवत्तसंघिण्णो रत्तिअग्गि वि एण्णकमं सद्दवत्तं  
एण्णिव । तवो महन्ते एव्ण पग्गुत्ते दासोएपुत्तेह सउत्तिअग्गुअग्गं वएग्गमाग्गकोत्ताहन्तेण पग्गिअग्गोअग्गो  
ण्हि । एत्तएण्ण वरिण्ण वि पोअ एण्णकमन्दि । तवो गण्णवत्त उवरि विण्णग्गमा संभुत्तो । हिअग्गो  
कित्त अग्गेषु अग्गोएण्णु तत्तहोदो मग्गमात्तारेण्ण अग्गसमपदं पविठ्ठस्स तापसकण्णमा सउग्गत्ता  
मग्ग अग्गएग्गदाए ईसिअग्ग । संघं एग्गएग्गवत्त अग्गं कहुं वि एग्ग करेवि । अग्ग वि से तं एव्ण  
चिन्तअग्गत्तस्स अग्गोअग्गु वग्गं अग्गि । का गग्गी । जाव एग्गं किअग्गएग्गपरिवक्कमं वेक्कामि । [इति  
परिक्रम्यान्तोक्त्वा च] एत्तो अग्गमात्तएग्गएग्गं अग्गोअग्गि वएग्गुक्कमात्ताअग्गिण्णोअग्गि पग्गिअग्गो अग्गो  
एव्ण अग्गवत्तवि निअग्गवत्ततो । होअग्गु । अग्गुअग्गुअग्गिअग्गो अग्गि अग्गि अग्गि अग्गि । अग्ग एव्ण वि  
एग्गम अग्गत्तमं सहेग्गं ।

(ओ इन्द्रम् । एतस्य मृगयातीक्ष्णस्य राज्ञो वयस्यभावेन निविण्णोऽस्मि । अयं मृगोऽयं वराहोऽयं  
शार्ङ्गं इति मग्गान्णुं इति अग्गिअग्गिअग्गवत्तएग्गमाग्गु अग्गमाग्गोअग्गिअग्गिअग्गोअग्गोअग्गो । एतसंकरक-  
थायाणि वद्दामि गिरिअग्गोअग्गोअग्गि अग्गोअग्गो । अग्गिअग्गिअग्गो अग्गि अग्गि अग्गि अग्गि । अग्ग एव्ण वि  
एग्गम अग्गत्तमं सहेग्गं ।

## द्वितीय अङ्क

[ उदास मन च विद्रूपकका प्रवेश । ]

विद्रूपक—[सम्बी साँध भरता हुआ] बस देख लिया । इस अग्गो राजाकी मित्रतासे तो  
जी बरता उठा है ! मरी दुपहरीमे भी एक वनसे दूसरे वनमे भटकते हुए इन जगती प्रदेशोमे  
होकर वनना पड़ता है जहाँ गर्मीके कारण पेदोमे छाँह तक नहीं रह बर्द है और दिन-रात यही हल्का  
कान जोड़े बातता है—यह मृग भाया, वह सूअर निकला, वह रहा सिंह । फिर, सड़े हुए पत्तोंसे  
मिसे हुए अन्धकारो नदियोंका बरतना और बहूना पानी पीना पड़ता है और धवेर-सवेर लोहेकी  
सीधोंपर जुना हुआ भाँस खानेको मिलता है । पीनेके पीछे दोड़ते-दोड़ते शरीरके जोड़-जोड़ ऐसे  
बोने पड़ गए हैं कि रातमें भाँस भी ठीक नहीं लग पाती । तिसपर ये दासी-पुत्र चिड़ीमार  
तटवे-तटवे पत्तो वनको, पत्तो वनको—फिल्ला-फिल्लाकर ऐसा हल्का मच्चाते हैं कि भाँस-मयाई  
नींद उभट जाती है । अभी यह विपत्ति टली नहीं थी कि ऊपर पीनेके ऊपर मृगकी समान दूसरी  
विपत्ति का पमचो है । मुनते है कि हम लोयोका साथ छूट जानेपर मृगवा पीछा करते-करते  
राजा भी तपस्विपति आश्रममे जा पहुँचे । वहाँ मेरे दुर्भाग्यसे उन्हें मुनि-कन्या शपुत्तला दिसाई  
दे गई । अब जितनी भी प्रशंसा उनका मन नबर सोटने की करता हूँ नहीं । आज भी रातभर

कण्ठतप्तमे रात्रावपि विधामं शशितन्व नास्ति । ततो महत्स्येयं प्रत्युपे दास्याःपुत्रैः, सक्तुनिमुग्धकर्म-  
प्रहणकोताहनेन प्रतिबोधितोऽस्मि । इयदेवानीमपि धीजा न निष्कामति । ततो गण्डस्योपरि  
पिण्डकः सवृत्तः । इ. किलास्यास्मन्हीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारेखाश्रमपदं प्रविष्टस्य तापसकन्यका  
शकुन्तला ममाधन्यतया दर्शिता । साप्रतं नवरथमनस्य मनः कथमपि न करोति । अद्यापि तस्य  
तानेष पिन्डस्यतोऽरक्षोः प्रमातमासीत् । का नतिः । यावत् कृताचारपरिक्रमं पश्यामि । एष  
वास्यासनहस्ताभिर्यंघनीभिर्यंघनपुष्पायास्तापारिणीभिः परिवृत इत एवावच्छ्रितं प्रियवयस्यः । भवद्गु ।  
यद्भ्रमद्भ्रविकल इव भूत्या स्वास्यामि । यत्तेवमपि नाम विधामं तमेव । )

[ इति दण्डकाण्डमहाकाव्ये स्थितः । ]

[ ततः प्रथिर्गाठि यथानिर्दिष्टपरिपाठे राजा । ]

राजा—

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भाषदर्शनाश्वासि ।

अश्रुताधेऽपि मनसिजे, रतिमुभयप्रार्थना कुचते ॥१॥

[ स्मित इत्या ] एवमात्मभिःप्रयसंभावितेष्टजन्वितसृष्टिः प्रसंयिता विदम्ब्यते ।

तथा हि—

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तथा

यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिय ।

मा गा इत्युपकृद्वा यदपि सा साध्यमुक्ता सखी

सर्वं तत्किल मत्परायस्महो कामी स्वतां पश्यति ॥२॥

रखीकी चित्तमे जागते हुए उनकी माँलोगे लखेरा कर दिया । क्या कहे । पसू, वे नित्य-कर्म  
कर चुके हों तो कससे दो पार्श्वे कहे । [ पूमकर धीरे देखकर । ] अरे, मेरे चित्त तो इपर ही  
बते या रहे हैं जिनके छाप हाथ मे बन्युप लिए और गलेमे जबकी फूलोकी मासा पहने हुए बहुत  
सी यवनी सेविकाएँ भी बली या रही हैं । अच्छी बात है, मैं भी लुज-युज-सा बनकर खडा हो  
जाता हूँ । पीन जाने इसी प्रकार थोडा विधाम मिल जाय । [ साठी टेककर खडा हो जाता है । ]

[ जैसा ऊपर कहा गया है, उस प्रकारकी सेविकाओं के साथ राजाका प्रवेश । ]

राजा—यद्यपि प्यारीका मिलना है तो क्या कठिन पर उसकी चाल-ढालसे मनको बड़ा  
सहारा मिल रहा है । हम दोनोंका मिलन भले ही न हो पर इतना तो सन्तोष है कि मिलनेका पाव  
दोनों और एक सा है ॥१॥ [ मुसकरकर ] वो प्रेमी भवनी प्रियतमके मनको मपने मगसे  
परखता है वह इसी प्रकार घोखा खाता है । और देखो—जब वह भाँसें पुमावो यो तब मैं  
समझता था कि उसने मुझपर ही प्यार-मरो चित्तवन डाली है । नितम्बोंके मारी होनेके कारण  
जब वह धीरे-धीरे चलती थी तब मैं समझता था कि वह मुझे घपनी चटक-मटक भरी चाल  
दिखा रही है । जब उसकी सलिलोने उसे जानेसे रोका उस समय घपनी सखियोपर जो वह  
चाल-नीती हुई तब मैं समझा कि यह सब मेरे ही प्रेमके लिये हो रहा है । प्राह, कामीको सब  
बाँसें मपने ही मनकी बिखार्द पठती है ॥२॥

विदूषक—[उवाचिन्वत एव] भो वदस्व ए मे हृदयपात्रा पसरन्ति । ता वामामेतरेण जई करीषसि । जेदु जेदु भवं ( भो वदस्व ! म मे हस्तपादा प्रसरन्ति । तद् वाचामानेण जयीक्रियते । जयतु जयतु मवान् । )

राजा—कुतोऽयं गात्रोपघातः ।

विदूषक—कुदो किल सधं घञ्जो घाउलोकरिष अस्त्युकारणं शुद्धोति । ( कुत. किल स्वयमध्याकुनीकृत्याश्रुकारणं पृच्छसि । )

राजा—म सत्यवचस्पामि ।

विदूषक—भो वदस्व ज वेदसो कुञ्जलीलं विद्वेदि तं किं अतसो महावेण जइ ईषिस्त । ( भो वदस्व ! यदेतत्त कुञ्जलीला विद्वन्वयति तत्किमात्मनः प्रमादेण उत नदीवेगस्य । )

राजा—नदीवेगस्तन कारस्यु ।

विदूषक—मम वि भवं । ( ममापि मवान् । )

राजा—कथमिव ।

विदूषक—एष्वं रात्रकञ्जालि उजिम्भ तारिते घाउलप्यदेसे वल्लवरजुत्तिला सुप होव्य । जं सच्वं पचहं साववतमुच्छारणेहि ससोहिषसपिबन्पाणं मय गत्तारं अरौसी भिह सजुतो । ता एसावदस्तं विसजिजदुं मं एकाहं वि दाव विस्तसिदुं । ( एष राजकार्याण्यु-जिम्भवा तादृशो भासुलप्रदेसे वनचरवृत्तिना खया भवितव्यम् । परसत्य प्रत्यहं आपदसमुत्सारणैः ससोभितसपिबन्पाणा मय गात्राणामनोद्धोऽस्ति सवृत्त । तद्व्यसादविष्यामि विसजितुं नामेकाहमपि सावद्विषमितुम् । )

विदूषक—[ उषी भुझमें सदा हुआ ] मेरे हाथ-पैर जो खुल नहीं रहे हैं, इसलिये मैं केवल मुँहसे ही प्राणकी जय-अजयकार बनाता हूँ । घापकी जय हो ।

राजा—यह अजय-जय कैसे हो गया ?

विदूषक—कैसे गया ? घालमें उँवली कोबकर पूछ रहे हैं कि यहाँ कहीं से घाए ?

राजा—मैं तो कुछ भी नहीं समझ पाया ।

विदूषक—अच्छा मित्र, यह तो बताइए कि नदीमें जो बँतकी सता जुपड़ी कनी कनी रहती है वह अपने मनसे बँती रहती है या नदीके वेगके कारण ?

राजा—नदीका वेग ही उसका कारण है ।

विदूषक—तो मेरे हाँ-जयके भी घाप ही कारण है ।

राजा—कैसे ?

विदूषक—घाप तो सब राज्य-कार्य छोड़कर इस वीहट प्रदेशमें जंगलियोंके समान घूम रहे हैं, यहाँ जगली जन्तुओंका पीछा करते-करते मेरे शरीरने जोड़ ऐसे टूट गए हैं कि हिता भी करके मुझे तो कमसे एक दिन विषाम करनेकी आज्ञा दे ही

राजा—[ स्वगतम् ] अयं चैवमाह । ममापि कण्ठस्तुतामनुस्मृत्य मृगयापिबतयं धेतः ।  
कुतः—

न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो घञुरिदमाहितसायकं मृगेषु ।

सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः कृत इव मृग्धविलोकितोपदेशः ॥३॥

विदूषकः—[ राजो मुखं विलोचय ] अन्तर्भव किं वि हिमए करिअ मन्सेदि । अटण्णे मए  
वरिअं प्राति । ( अत्रप्रधानिकमपि हृदये मृत्वा मन्त्रयते । अटण्णे मया खदितमासीत् । )

राजा—[ सस्मितम् ] किमयत् अनातिक्रमणैर्व मे मुहृद्दामपमिति निपलोरस्मि ।

विदूषकः—[ चिरं शोभ । ( चिरं शोभ । ) ] इति यन्तुमिच्छति । ]

राजा—वयस्य तिष्ठ । सावधेयं मे वचः ।

विदूषकः—[ आलक्षेणु भवं ( आज्ञापयतु भवान् । ) ]

राजा—विधान्तेषु भवता यमाप्यमायासे कर्मणि सहयेन भयितव्यम् ।

विदूषकः—[ किं मोक्षप्रणिक्रमाए । तेषु हि अत्रं पुण्यहीनो लखी । ( किं मोक्षप्रणिक्रमायां । ) ]

तेन ह्ययं सुपुण्यः शक्यः । )

राजा—अत्र वक्ष्यामि । कः कोऽत्र भोः ।

( प्रविश्य )

दीकारिकः—[ प्रणम्य ] आलक्षेणु भद्रं । ( आज्ञापयतु भवतां । )

राजा—रैवतक ! सेनापतितावदाहृतताम् ।

राजा—[ मन ही मन ] इधर यह भी कह रहा है, उधर कण्वकी कण्ठाका ध्यान करते करते मेरा मन भी भासेदसे ऊब-सा चला है । दीकारिक—जिब झरिछीने अकुन्तलाके साथ रहकर उसे मोक्षी चितवन सिखाई है कन्हे मारनेके लिए यह बाण चढ़ाया हुआ अनुप मुझसे लीचते ही नहीं बनता ॥३॥

विदूषकः—[ राजाभा भृंह देसकर ] भाव तो न जाने क्या मन ही मन बरबरा रहे हैं । मैं इतना सब क्या जगलमे ही रोता रहा ?

राजा—[ मुसकराकर ] नहीं, नहीं, मैं भी यही सोच रहा था कि मित्रकी बाण टालनी नहीं चाहिए । इसीलिये मैं चुप हो गया ।

विदूषकः—जीते रहिए । [ जाना चाहता है । ]

राजा—उहरो मित्र, अभी मेरी बात पूरी कहीं हुई है ?

विदूषकः—वह भी कह टालिए, महाराज ।

राजा—देखो, विधाम कर चुकी तो धावर मेरे भी एक काममे सहमता देना जिसमें मुझे कहीं भाना-जाना नहीं पड़ेगा ।

विदूषकः—यमा सद्ध खाने हैं ? उसके लिए इससे बढ़कर और कोन सा ठीक धवतर होगा ।

राजा—उहरो, यताता हूँ । भरे, कोन है ?

दीकारिकः—[ धाकर प्रणाम करके । ] आज्ञा कीजिए स्वामी !

राजा—भरे रैवतक ! सेनापतिकी मुसा सामो ।



होवारिक—तह । [ इति विप्रस्य सेनापतिना सह पुनः प्रविश्य ] एतो अण्णावधु-  
कण्ठो भूटा इवो विम्वविद्धी एव चिट्टिदि । उवसप्पु अण्णो । ( तथा । एपमाजा वचनोत्कण्ठो  
भर्ता इतो दत्तदृष्टिरेव तिष्ठति । उपसर्पत्वार्यः । )

सेनापतिः—[ राजानमवलोक्य स्वगतम् ] दृष्टदोषाप्रपि स्वात्मिनि मृगया केवलं गुण एव  
संबुत्ता । तथा हि वेद्यः—

अनवरतधनुज्यस्फालनक्रूरपूर्वं रविकिरणसहिष्णु स्वेदलेशैरभिन्नम् ।  
अपचितमपि गात्रं व्यास्यत्स्वादलक्ष्यं गिरिचर इव नामः प्राणसारं विभर्ति ॥४॥

[ उपरम् ] लक्ष्ये जयसु त्वामो गृहीतवापरमरम्पम् । किमद्याप्यवस्थीयते ।

राजा—अण्णोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माडव्येन ।

सेनापतिः—[ अनागतिकम् ] सखे स्थिरप्रतिबन्धो भव । अहं तावत्स्वामिनविद्यतवृत्तिमनु-  
वर्तित्वे । [ प्रकाशम् ] प्रतपत्वेय संयेयः । मनु प्रभुपेव निदर्शनम् ।

मेदरछेदकशोदरं तपु मवत्युत्वानयोग्यं वपुः

सन्धानामपि लक्ष्यते विकृतिपश्चिर्धं मपक्रोधपोः ।

उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले

मिध्र्यैव व्यसनं वदन्ति मृगायामीदम्बिनोदः कुतः ॥५॥

होवारिक—अच्छ । [ बाहर जाकर सेनापतिको हाथ लिए नीट प्राता है । ] यह सामने  
दपर दृष्टि किए हुए स्वामी बंटे हैं और कुछ माजा देने ही वाले हैं । धागे भट बनिए धार्य !

सेनापति—[ राजा को देखकर, मन ही मन ] लोप आघेट को इतना बुरा बताते हैं, पर  
स्वामीको तो इससे बड़ा लाभ हुआ है । कर्षोक्ति—पहाडोमें धूपदेवाले हाथीके समान इनके  
बसवानु शरीरके आगेका भाग निरन्तर धनुषकी बोरी सीचनेसे ऐसा कडा हो गया है कि इसपर  
न तो धूपका ही प्रभाव पड़ता है और न पसीना ही सूटता है । बहुत दौड़-धुपसे यद्यपि पै  
दुबले पड़ गए हैं पर धुपके पनके होनेके कारण इनका दुबलापन दिखाई नहीं पड़ता ॥४॥  
[ पास आकर ] स्वामीकी जय हो । हमने आघेटके पशुधोकी वनमें घेर लिया है । अब दिखाए  
किशयिधे है ?

राजा—इस आघेटके निन्दक माडव्यने मेरा सारा जस्ताह उखा कर दिया है ।

सेनापति—[ अन्नम विदूषकसे ] अच्छा बिन, करो मुम भो बटकर विरोध, और मैं भी  
देखो स्वामीके मनकी कंसे पलट्टे देता हूँ । [ प्रवृत्त ] इस मूलको बकने दीजिए महाराज !  
स्वामी हो स्वयं देस रहे हैं कि—आघेटसे पर्वो बट जाती है, तोंद छट जाती है, शरीर हलका  
और कुर्तिला हो जाता है, धनुषकी मुहपर जो मय धौर श्लेष दिखाई देता है उसका ज्ञान हो  
जाता है और चलते हुए लक्ष्योपर बाण बसानेमें हाथ सग जाते हैं, जो धनुषधारियोंके लिये बड़े  
गौरवकी बात है । लोप भूठ-भूठ ही आघेटको बुरा बताते हैं, नहीं वो इतना मन-बह्ताव  
और मिल नहीं सकता है ॥५॥

विदूषक.—मधेहि रे उत्साहहेतुम् प्रसन्नं भवं पकिदिं प्राणयो । तुम् ब्राह्मण्ये ददवोदो  
 ददवीं प्राहिन्वन्ते खरणासिमातोनुवरस जिष्णुरिच्छस्त कस्त वि मुहे पडिस्तति ।  
 ( मधेहि रे उत्साहहेतुम् प्रसन्नं भवं पकिदिं प्राणयो । त्व दावददवीदोऽपीमाहिन्वमानो  
 नरनासिकातोनुपस्य जीणुंशंस्य कस्यापि मुहे पतिप्यसि । )

राजा—भद्र सेनापते आद्यमसनिहृष्टे स्थिताः स्मः । प्रसन्ते यवो नाभिनन्दामि । अथ  
 कायम्—

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं  
 छायावदकदम्बकं मृगाकुलं रोमन्धमभ्यस्पृत् ।  
 विश्रुत्वा क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताधृतिः पन्वले  
 विश्रामं लभतामिदं च शिथिलज्वपान्धमस्मद्धनुः ॥६॥

सेनापति—यत्प्रभविष्णुवे रोचते ।

राजा—तेन हि निवर्तय प्रवेगताम्बनप्राहितः । यथा न मे संनिवास्तपोवनमुपस्थासि  
 तथा निवेद्यथाः । अथ—

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ।

स्पर्शान्मुकुला इव ध्वर्षकान्तास्तदन्यतेजोऽभिमवाद्मन्ति ॥७॥

सेनापति—यथाज्ञापयति स्वामी ।

विदूषक—भंसुदु हे उच्छ्राहपुस्तन्तो । ( भ्यवतां ते उत्साहवृत्तान्त । )

विदूषक—मरे चल-चल खरसाह दिखानेवाले ! अब महाराज फिर मनुष्य बन गए हैं ।  
 तुम्हे ती एक दिन इसी प्रकार इस बनके उध बनने भूम-भूमकर साठेठ करते-करते कमी न कमी  
 मनुष्यकी भाँके लोभी किसी बूढ़े भालूके मुँहमें पडना ही है ।

राजा—भद्र सेनापति ! देखो, हम लोग तपोवनके पाए उधरे हुए हैं । इसदिने तुम्हारी  
 बात इस समय मुझे जँच नहीं रही है । आज तो—जँतोको छोड दो कि वे अपनी सीमाँति  
 पानीको हिलोरते हुए जानोमे तँरे, हरिलोके मुण्ड पेदोकी पनी छायामे पेरा बनाकर बँडे जुवाली  
 करे, बडे-बडे सूअर निडर होकर छिछले जानोमे नागरधोयेकी जठेँ लोदेँ पीर मेरे पमुपकी  
 डीली डोरी भी कुछ देर बियाम कर ले ॥६॥

सेनापति—जँसी महाराजकी इच्छा ।

राजा—तो जिन हँसकोंको छाये भेज दिया है उन्हें छोडा लो पीर जँतोंको समय  
 देना कि कोई ऐसा काम न कर जँते जिधसे तपोवनके काममें बाधा पडे । देखो—भूम-कान्तपण  
 यो लो छुनेमे ठण्डी लगी है पर अब सूर्य उगपर अपना प्रकाश डालता है तब यह भी प्राय  
 उगलने लगती है । उसी प्रकार अरुपि लोग यद्यपि बडे दान्त होते हैं पर उनमें इनता तेज भी  
 होता है कि यदि कोई उन्हें नष्ट दे तो उते बसाकर भस्म भी कर दें ॥७॥

सेनापति—जँसी स्वामीकी आज्ञा ।

विदूषक—नाच हो तुम्हारी उत्साहकी बातोना ।

[ निष्क्रान्तः सेनापतिः । ]

राजा—[ परिजनं विलोपय ] अपनयन्तु भवन्तो मृगयावेद्यम् । रैवतक ! त्वमपि त्वं  
नियोगमशून्यं कुरु ।

परिजनः—जं देवो आसन्नवेदि । ( यद्देव घ्राजापयति ) । [ इति निष्क्रान्तः । ]

विदूषकः—किं भवदा शिम्मच्छिद्यं संपवं एवस्ति पादवच्छामाए विरद्दलवाविदाएद-  
सली आसले शिसीवदु भवं जाव अहं वि सुहासीखो होमि । ( कुतं भवता निर्मक्षिकम् । सांप्रतमे-  
तस्यां पादपञ्चापायां विरचिततत्तांविद्वानवर्धनीयायामागने । नपीदतु भवात् यावदहमपि सुखासीनो  
नवामि । )

राजा—गच्छापतः ।

विदूषकः—एतु भवं । ( एतु ययान् । )

[ इत्युनो परिक्रम्योपविष्टी । ]

राजा—माद्यम ! अनवातचञ्जुःकलोऽसि येन स्वया दर्शनीय न वृद्धम् ।

विदूषकः—एवं भवं अलासो मे वृद्धि । ( ननु ययानप्रती मे वरंते । )

राजा—सर्वः एतु कान्तमात्मानं पश्यति । अहं तु सामाधमत्ततामभूतां शाकुन्तलामधि-  
कृत्य यधीमि ।

विदूषकः—[ स्वगतम् ] हीदु । ते अचसरं एव वाइस्सं । [ प्रकाशम् ] भो यद्रस्त ते  
तावत्त-कण्ठमा अमत्त्वलीभा बीसदि । ( भवतु ) अस्यावसरं न वास्ये । भो यस्य ते तापसकण्-  
काऽभ्यर्पणीया इत्यते । )

[ सेनापति अता आता है । ]

राजा—[ अपने देवकोंको दैलकर ] अब नुम लोग भी अपने माखेटके कपड़े उतार  
ढालो । और रैवतक ! जाओ, तुम भी अपना काम देखो ।

देवक—जैसी देवकी आज्ञा । [ सब जाते हैं । ]

विदूषक—अनी अन्दा किया जो सब गविलियां भया दी आपने । अब अनिए, बुझोंकी  
भनी क्षमावाले सता-मण्डपके नीचे सुन्दर आसनपर आप भी बसकर बैठिए, और मैं भी  
सुस्ता बैठा हूँ ।

राजा—अच्छा, अंतो धागे-धागे ।

विदूषक—धाप भी आइए ।

[ दोनों धूमकर बैठते हैं । ]

राजा—माठव्य ! यदि सुमने देखनेके योग्य मस्तुएँ नहीं देखीं तो प्रास होनेसे सुम्हे  
लाभ ही क्या हुआ ?

विदूषक—धाप जो मेरी धाँसोवे आये रहते हैं न !

राजा—अपनेको तो सभी सुन्दर समझते हैं, पर इस समय तो मैं शाकुन्तलाकी बात कह  
रहा हूँ जो सब आपमकी घोमा है ।

विदूषक—[ धाप हो धाप ] अच्छा, मैं इन बातको यही पाठे देवा हूँ [ प्रकट ] क्यों  
मित्र, जान पड़ता है कि उस सपस्वीकी कन्यापर धाप सट्ट हो गए हैं ।

राजा—सखे न परिहायें वस्तुनि औरवाणी मनः प्रवर्तते ।

सुरयुवतिसंभवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम् ।

अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम् ॥ ८ ॥

विदूषक—[ विहस्य ] जह कस्त वि पिण्डजजूरेह उभ्येनिवस्त तित्तिशीए महिलामो भवे तह इत्तिभारअएपरिमायिणो भवदो इयं अमन्त्वहा ( यथा कस्यापि पिण्डजजूरेहो-  
वितस्य तित्तिव्यामगिलापो भवेत् तथा खीरस्तपरिभावितो भवत इयमभ्यर्था । )

राजा—म तापदेनां पयसि येनैवमयायोः ।

विदूषक—तं शशु रमसिज्जं जं भवदो विह्वलं उपादेवि ( तच्छशु रमस्योयं यद्भवतीऽपि  
विस्मयमुत्पादयति । )

राजा—वपस्य कि वहुपा ।

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा रूपोचयेन मनसा विधिना कृता नु ।

खीरस्तसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥९॥

विदूषक—जह एयं पकादेतो दासि कववदीणां ।

( यद्येवम् प्रत्यादेश इदानीं कल्पतीनाम् । )

राजा—इयं च मे मनसि वर्तते—

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-

रनाविद्धं ररनं मधु नवमनास्वादितरसम् ।

राजा—मित्र ! पुत्रवधियोंका मन कुपयकी और बढता ही नहीं है—सुना है, उसकी  
माँ कोई पत्तरा थी ; वह जब इसे मनमें छोककर खली गई तब कपव मुनि इसे उठा  
साए । यह ठीक ऐसा ही तुम मानो नवमल्लिकार्जुन प्रपनो डालीसे चूकर मदारपर  
सा बिरा हो ॥९॥

विदूषक—[ हँसकर ] जैसे कोई मीठा छुहाए खाते-खाते ऊबकर इनसीपर दूट पड़े वैसे  
ही भाप भी शनिवातकी एक-दो-एक बढ़कर सुन्दरियोंको भुसाकर इसपर लट्टू हो उठे हैं ।

राजा—तुमने अभी उसे देखा नहीं है म, इसीसिने ऐसा कह रहे हो ।

विदूषक—तो ठीक है । जब भाप भी उसे देखकर मुम-बुध भूते बैठे हैं तब वह सचमुच  
कपवती होगी ।

राजा—मित्र ! और तो क्या नहीं ; तुम नरु यही समझ लो कि—ब्रह्माने जब उसे  
बनाया होगा तब पहले उसका विश्व बनाकर या मनमें सत्कारणी सभी सुन्दरियोंके रूपोंको  
इष्टा करके उनमें प्राण डाले होंगे । क्योंकि ब्रह्माकी कुशलता और यदुन्तताकी सुन्दरता  
सोतीपर बार-बार विचार करनेसे यही जान पडता है कि यह कोई निराले ही दगकी सुन्दरी  
उन्होंने गठी है ॥ ९ ॥

विदूषक—ऐसी माठ है तब तो इसने सभी सुन्दरियोंको परारत कर दिया ।

राजा—पैरी समझो लो उसका रूप कैसा हो पवित्र है कैसा बिना मूँधा हुआ प्रेम,

अतस्तं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनर्थं

न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥१०॥

विदूषक—श्रेण हि सद्यः परितापदुःखं भवं । मा वस्तुवि त्वत्सिद्धौ इष्टपुत्रोत्पत्तिरित्य-  
विदूषणीस्तस्या धारणायस्ता हृत्वे पठित्वादिः । ( तेन हि सद्यः परिवायतामेतां भवान् । मा  
वस्तुपि तपस्विन इष्टपुत्रोत्पत्तिमिथचिक्वण्णोर्मस्य हस्ते पठिष्यति । )

राजा—परपत्नीं यानु तपभवती । न च सन्निहितोऽथ गुरुजनः ।

विदूषक—अस्तभवन्त प्रन्तरेण बोधितो से विद्विषाप्रोः । ( अथभवन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्या  
दृष्टिरागः । )

राजा—वयस्य । नितापदेवाप्रमन्नस्तपस्विन्यतन्न । तप्यापि तु—

अभियुगे मयि मंहृतमीक्षितं हसितमन्यनिमिचकृतोदयम् ।

पिनपवारितष्टचिरस्तया न विष्टतो मदनो न च मष्टतः ॥११॥

विदूषक—[ विदूष्य ] ए वपु विदुमेतरा युह अकः तमारोहवि । ( न सनु दृष्टमापस्य  
तप्याङ्गं तमारोहति । )

राजा—मियः प्रापाने पुनः क्षामोन्नतप्राप्य वामताविष्टतो भापस्तप्रभरप्य ।  
तथा हि—

दर्भाङ्कुरेण चरणः दत्त इत्यकाण्डे

तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।

आसीद्विवृत्तवदना च विमोचपन्थी

शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमायाम् ॥ १२ ॥

विदूषकः—तेरा हि यहीवयाहेथो होहि । किंवं तुए जववलो तजोवरां ति वेखामि ।  
( तेन हि घृहीतगणेशो भव । इत त्वयोपवनं उपोक्त्वामिति पश्यामि । )

राजा—सते तपस्विभिः कंभ्रत्परिजातोर्प्रतिम । चिन्तय तात्रत्वेमापदेशेन सकृदप्याभमेन  
वसानः ।

विदूषकः—को भवरो भवदेशो तुह रसलो । लीवारच्छुभ्रासं श्लाघ्यं उपहरन्तु ति ।  
( कौशरोऽग्निवेशस्तथ राज्ञः । नीवारपटुभागमस्माकमुपहरन्तिवति । )

राजा—सुखं शन्यद्रुगणेष्यमेतेषां रक्षसो निपतति यत्रतनरासीनपि विहायभित्तच्छ ।  
पदप—

यदुत्तिष्ठति वरुणेश्वरो नृपाणां क्षयि तस्फलम् ।

तपःपद्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः ॥ १३ ॥

[ गैर्ये ]

हुत सिद्धार्थो स्वः ।

राजा—[ कर्णं दत्त्वा ] अये धीरप्रज्ञानस्वरैस्तपस्विभिर्भविताय्यम् ।

[ प्रवियम् ]

कही उसभा नहीं था फिर भी धीरे-धीरे बल्कल सुलझानेका सहाना करके वह मेरी धोर  
देखती हुई कुछ देर खड़ी रह गई ॥ १२ ॥

विदूषक—तब भाव बनना हान-समाज तब यही भंगा सोचिए, क्योंकि मैं देख रहा हूँ  
कि भाए इस तपोवनको एकदम प्रमोदवन बनाए डाल रहे हैं ।

राजा—निम । कुछ श्रुति मुझे पहचान गए हैं । अब सोच-विचारकर कोई ऐसा उपाय  
बताओ कि कमसे कम एक बार तो किसी बहाने शरभगमे हो सार्क ।

विदूषक—भाप राजाजीके लिये कोई बहाना बनानेकी क्या आवश्यकता है ? जाकर  
यही कहिए कि भाप योग राज-करके रूपमे हमें तिन्नी का छठा भाग दे हाविए ।

राजा—तू तो एकदम मूर्ख है । अरे, इन श्रुतियोंकी रक्षाके बदले तो हमने ऐसा प्रवृत्त  
कर भिलता है कि उसके साथे रत्नोक्त देर भी नुच्छ है । देखो—नारों जहाँके राजाओंको  
भी कर मिलता है उतका फल तो नष्ट हो जाता है पर ये वनवासी श्रुति सोप भपने तपका  
वो छठा भाग हमें देते हैं वह क्यों नष्ट नहीं होता ॥ १३ ॥

[ नेपथ्यमे ]

अहा, इन लोगोंके सब काम पूरे हो गए ।

राजा—[ कान सगाकर ] अरे, यह बम्पीर धोर शान्त स्वर तो श्रुतियोंका-सा जान  
पड़ता है ।

[ प्रवेश करके ]

असुरं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं

न जाने भोक्तारं क्रमिह समुपस्थास्यति त्रिधिः ॥१०॥

विदूषकः—तेण हि सद् परितापदु खं भवं । मा वस्तुवि तवस्तिणो इहपुत्रोत्तमिस्त-  
चिद्रुणतोस्तस्य आरुण्ययस्य हृथे पदितरदि । ( तेन हि सपु परिवारवतामेना भवान् । मा  
वस्तुवि तपस्विन इहपुत्रोत्तमिस्तचिन्ववणतोपस्य हस्तं पतिप्यति । )

राजा—परमती तसु तपभपतो । न च सविहितोऽत्र मुदजनः ।

विदूषकः—यत्तभयन्तं अन्तरेण शीदितो से विद्विरापो । ( यमभ्रमन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्या  
दृष्टिरागः । )

राजा—वयाय । निमगदियाप्रपत्नस्तपस्विवग्याजनः । तयापि तु—

अभिमुष्टे मयि संहतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्तकृतोदयम् ।

विनयवारितशृत्तिरतस्तया न विष्टतो मदनो न च संश्रुतः ॥११॥

विदूषकः—[ विहस्य ] एं वपु विदुमेतस्त तुह अंक तपारोहवि । ( न सपु इष्टमापस्य  
तवाद्दुं समारोहति । )

राजा—मिदः प्रत्याने पुनः शालीनतयाऽपि काममाविष्टतो भावस्तमभवत्या ।  
तया हि—

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे

तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।

आशंसन्ते सुरयुवतयो वदुवैरा हि दैत्यै-

रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वजे ॥ १५ ॥

उभो—[उपगम्य] विजयस्य राजन् ।

राजा—[शासनादुत्थाय] धर्मिणावये भवन्ती ।

उभो—स्वस्ति भक्ते । [इति कसान्युपहरत् । ]

राजा—[समष्टामं परिगृह्य] धाम्नापयितुमिच्छामि ।

उभो—द्विस्तो भवानाभसतेहानिहृत्स्व । त्रेण भवन्तं प्रायेण्यते ।

राजा—किनास्तपयन्ति ।

उभो—सत्रभवतः कथ्यस्य महूर्ध्वरत्नानिभ्याद्वास्तासि न हृष्टिदिग्भ्यमुत्पावयन्ति । तत्कति-

पयरात्रं तारपिद्विस्तोयेन भवता सनाषोकिव्यतायाद्यन इति ।

राजा—धनुषुहोतोरिति ।

विदूषकः—[अपवाहं] एसा शरिण शच्छक्रता ते 'अभमत्यरा । (एपेदानीमनुदुसा हेऽभ्यर्पेता ।)

राजा - [द्विमत्तं कृत्वा] रंबतक ! महृधनातुष्यतां सारथिः सवाशासमं रयमुपस्थापयेति ।

दोशारिः—[नं शेषो भाग्यवेधि । (यदेव याज्ञापयति) [इति विष्कान्तः । ]

उभो—[सहसं च]—

अनुकारिणि पूर्वेषां पुक्तरूपमिदं त्वयि ।

शासन करते हैं, और दैत्योसे नैर धापनेवाली, देवताघोरी त्रिपा इन्हीं के चढ़े हुए धनुष और इन्द्रके धनुषपर धपने विजयकी भाशा भी रखती हैं ॥१५॥

दोनों—[पास जाकर] राजन्, आपकी जय हो ।

राजा—[भासनसे उठकर] आप घोषोघो प्रणाम करता हूँ ।

दोनों—आपका कसमाश हो । [फन भेंट करते हैं । ]

राजा—[प्रणाम करके फल लेकर] धाम्ना नोजिए ।

दोनों—सब धाध्यववासी जान गए हैं कि आप यहाँ ठहरे हुए हैं । इसलिए उनकी प्रार्थना है ।

राजा—क्या भाशा है उनकी ।

दोनों—उन्होंने कहलाया है कि यादरशोय महर्षि कथके न रहने के कारण राक्षस हीन हमारे यश के बड़ा धिन्न डाल रहे हैं । इसलिये आप धपने सारथीके साथ यहाँ पुछ रातें बिताकर इस भाधनको समाप्त करें ।

राजा—बड़ी श्रुपा है उनकी ।

विदूषक—[सतप] यही तो आप चाहते भी थे ।

राजा—[मुत्कराकर] रंबतक ! सारथी से रहना कि रथ और धनुष-बाण लेना पावे ।

दारपात—[नो भाशा महापाव भी । [प्रस्थान ]

दोनों—[प्रसन्न होकर] राजन् ! आप यही कर रहे हैं जो आपसे पूर्वक करते पावे हैं ।



आशांसन्ते सुरपुत्रयो बद्धवैरा हि दैत्यै-

रस्याधिज्ये धनुषि त्रिजयं पौरुहूते च वजे ॥ १५ ॥

उभो—[उपगम्य] विजयस्व राजन् ।

राजा—[पातनादुत्थाय] अभिधात्रये भवन्तो ।

उभो—स्पर्शित भवते । [इति फलाम्बुपहृत्य । ]

राजा—[सद्रणामं परिगृह्य] आजापयितुमिच्छामि ।

उभो—विहितो भवानाश्रमसहायिहृत्स्य । तेन भवन्तं प्रार्थयन्ते ।

राजा—किमात्तापयन्ति ।

उभो—तत्रभवतः कश्यपस्य महर्षेरतांनिष्पन्नास्माकांति न इदित्विघ्नमुत्पादयन्ति । तावन्ति-  
पयरात्रं सारपिण्डिनीयेन भयता सनापोकिप्यताग्नाभन इति ।

राजा—धनुगृहीतोऽस्मि ।

विदूषक—[अपवार्यं] एता दासिं प्रच्छज्वा ते 'अवभृत्पणा । [एवेदानीमनुपुसा  
हेऽभ्यर्षणा । ]

राजा—[स्मितं कृत्वा] रंबतक ! भद्रघनादुभ्यतां सारपिः सहास्रासनं स्वमुपासापयेति ।

दौवारिक—त वैशो आलुषेति । [यदेव प्राप्तापयति] [इति निष्क्रान्त्य । ]

उभो—[सहस्रं]—

अनुकारिणि पूर्वेपां युक्तरूपमिदं त्वयि ।

सायन करते हैं, धीरे दैत्योति बंद बंधनेवासी, देवताधर्मो रिक्तों इन्हीं के बंधे हुए धनुष  
धीरे इन्द्रके कपलपर अपने विजयकी धागा बधि रखती हैं ॥१५॥

दोनों—[पाह जामर] राजन्, आपकी जय हो ।

राजा—[पासलके उठकर] आप लोगोंको प्रणाम करता हूँ ।

दोनों—आपका कल्याण हो । [फल भेंट करते हैं । ]

राजा—[प्रणाम करके फल लेकर] धाता श्रीविष् ।

दोनों—सन धायमवासी आन गए हैं कि आप यहीं उठरे हुए हैं । इसलिये उनकी  
प्रार्थना है ।

राजा—क्या आज्ञा है उनकी ।

दोनों—उन्होंने कहभाषा है कि आदरणीय महर्षि कश्यपके स रहने के कारण राक्षस लोग हमारे  
पक्ष में यथा विघ्न डाल रहे हैं । इसलिये आप अपने तारकीने साथ यहाँ कुछ रानें बिताकर  
इन धायमको उनाप करें ।

राजा—बड़ी कृपा है उनकी ।

विदूषक—[असंग] यहाँ तो आप पाहूते भी थे ।

राजा—[मुखटाकर] रंबतक ! सारथी से कहना कि स्व धीरे धनुष-जाल सेना घाने ।

दारुण—जो आज्ञा महाराज की । [प्रस्थान ]

दोनों—[प्रणम होकर] राजन् । आप यही कर रहे हैं जो आपका दुर्बल करते घाने है ।

आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः ॥ १६ ॥

राजा—[सप्रणामम्] यच्छ्रुत्वां व्रुतो भयन्ती । महाम्यनुपदमागत एव ।

उभो—विश्रयस्य । [ इति निष्कान्तो ]

राजा—मादृश्ये ॥ धम्पस्तिं शाकुन्तलावर्जाने क्रुतूहलम् ।

विदूषकः—परमं सपरिवारं क्षतिं वांश्च रक्षसतनुत्तन्तेऽपि बिन्दुं वि शायसेतिवो (प्रथमं सपरीवात्मासोत् । इदानीं राक्षसवृत्तान्तेन बिन्दुरपि नावशेषितः । )

राजा—मा भंगोः । ननु मासमोषे वर्तिष्यसे ।

विदूषकः—एष रक्षससादो रविज्यो म्नि (एष राजसाम्रिचितोऽस्मि । )

[ प्रविश्य ]

दीवारिणः—सख्यो रथो भट्टिगो मित्रमम्पत्पारुं क्षयेत्तदि । एष खलु क्षमरादो देवीणं प्राणसिहरणो वरभणो प्राणहो । (मख्यो रथो भर्तुर्विजयप्रस्थानसपेक्षते । एष पुनर्नगराद्देवी-मासात्सिहरः वरभणः प्रागतः । )

राजा—[सादरम्] विमन्त्राभिः प्रेषितः ।

दीवारिणः—अहं ईं । [पथं विम् ।]

राजा—ननु प्रवेद्यताम् ।

दीवारिणः—तह । [इति निष्क्रम्य वरभणेश सह प्रविश्य] एतो भट्ट । उपसत्य । (सथा । एष भर्ता । उपसर्प । )

साधककी रक्षा करजा तो घायबा धर्म ही है खीनि यह याद सची जानते हैं कि कारखमें धाये हुमीको धमयदान देने में घुटवमी कभी भीये नहीं हटते ॥१६॥

राजा—घाय लोग भनिए । मैं भी धा रहा हूँ ।

दीनों—घायकी विजय हो । [प्रस्थान]

राजा—मादृश्य ! क्या शाकुन्तलाकी रक्षाने की कुछ इच्छा है ?

विदूषक—गृहे तो दृष्ट्या की बात प्राणई थी, पर जयये रक्षसोंका नाम सुना तबसे बृंद नर भी कति रक्ष रक्ष है ।

राजा—अरे मत । तुम्हें हम सपने साय रक्षयेग ।

विदूषक—हाँ, तब ही राक्षसोंमे प्राण बने रह्ये ।

शरणा—[प्रवेश करके] महाराज ! रथ नगर है और घायकी विजय-यात्राके लिये चलनेकी प्रतीक्षा कर रहा है । और ही, राजमाता की छाया सेपर नगर में करमक भी घाया है ।

राजा—[सादरके साथ] क्या माता जी से भेजा है ?

शरणा—जी हाँ ।

राजा—तो जमे यहाँ से घायो ।

शरणा—जी छाया । [प्रस्थान । वरभणकी घाय सेपर फिर प्रवेश ।] महाराज मे बँडे हैं । जाने पर जायो ।

करमकः—जेठु भट्टा । देवी आरुवेदि—प्राध्यागिणि घटत्यदिषहे पञ्चत्पारखो मे उबवासो  
प्रियस्सदि । तहि दोहाउहाण अयस्सं संभायिदध्वा त्ति । ( जयतु गती । देव्याहापयति—  
प्राध्यागिनि यतुर्षदिवसे प्रवृत्तपारखो मे उबवासो भविष्यति । तत्र दीर्घानुपात्रयं संभावित्त्येति । )

राजा—इतस्तपस्विकार्यं इतो मुकुबनाता । इयमप्यनतिक्रमार्णोयम् । किमत्र प्रतिविधेयम् ।  
विदूषकः—तिपाद्गु विध अन्तराले चिद्द । ( त्रिषद्गुरितान्तराले तिष्ठ । )

राजा—सत्यपाफुनोभूतोऽस्मि—

कृत्ययोर्बिन्नदेशत्वाद्भ्रूधीभवति मे मनः ।

पुरः प्रतिदत्तं शैले स्रोतः स्रोतोवहो यथा ॥१७॥

[ विचिन्त्य ] सते त्यगच्छया पुत्र इति प्रतिगृहीतः । असौ भवानितः प्रतिनिवृत्त्य तपस्वि-  
तापेष्पन्नान्नसं माभावेष्ट तत्रभवतीनां पुत्रकृत्पममुष्ठातुचर्हति ।

विदूषकः—एह शशु मं रक्षोभोरमं यत्तेति । ( न सतु मा रक्षोभोरक गणयति । )

राजा—[ सन्निवृत्तम् ] कश्चेत्तद्भूवति संभाव्यते ।

विदूषकः—अहं रामाशुएण भग्नव्य तह गच्छामि । ( यथा राखानुजेन गन्तव्यं तथा गच्छामि । )

राजा—मनु तपोवनोपरोयः परिहरणोय इति सर्वानानुयानिकारित्तयैव सह प्रत्यापयामि ।

करमक—महाराजकी पित्रव हो । माताकी के कहलाया है कि आकसे चौदे दिन मेरे  
प्रतका पारण होगी । उस अवसरपर चिरञ्जीव भी अनन्य उपस्थित रहे ।

राजा—इपर तो ऋषियोका काम, उपर यदोकी आज्ञा । योगी हो नहीं टाले वा समते ।  
वया कर्त्त ?

विदूषक—त्रिशकुके समान भीचमें लटक जाओ ।

राजा—मैं तो सपनुव बड़ी उलझने पत्र गया हूँ । क्या बलाक ? दोनो कार्य हो अलग-  
अलग स्थानोमे पत्र रहे है । इसलिये इस समय दुविचामे पडे हुए मेरे मनकी वही दशा हो रही  
है जो पहाकके वही हुई नदीकी धाराकी होती है ॥१७॥ [ सोचकर ] मित्र ! शैली ' माताभी  
तुम्हे भी पुत्रके ही समान मानती है । इसलिये तुम जाओ और माताजीसे कह देना कि मैं  
ऋषियोकी रक्षामें लगा हुआ हूँ । और यहाँ जो कुछ मेरे करलेका काम हो सब तुम्हीं कर  
दासना ।

विदूषक—यह न समझिए कि मैं रालसोखे बरवा हूँ ।

राजा—[ मुस्कटकर ] बला तुम्हारे विषयमे क्या कभी ऐसा सोचा भी जा सकता है ।

विदूषक—तो मैं जैसे ही ठाट-बाटके आक्रेना जैसे राजाका छोटा भाई जाता है ।

राजा—ठीक है । नहीकह हो तपोवनसे सब बसेदा दूर ही रखना चाहिए । इसलिये  
सेनाको भी तुम्हारे ही साम भेजे देना हूँ ।

विदूषकः—[ उच्यते ] तेण हि जुवराभो भिन्दि राणिए सवुत्तो । [ तेण हि जुवराजोऽस्मोदानो सवुत्त । ]

राजा—[ स्वगतम् ] चणत्तोअय्य बट्टः । कदाचिदस्मत्प्रार्थनामन्त पुरेभ्यः कथयेत् । मवत्तु । एनमेवं वडये—[ विदूषक हस्ते शुद्धोस्वा प्रकाशम् ] ययस्य ऋणियोरयावाधर्मं गच्छामि । न सत्तु सत्तमेव तापसकन्यकायाः ममाभिलाषः । पश्य—

एकं धर्मं च यः परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः ।

परिहासविजल्पितं सखे परमार्थेन न शृक्षतां वचः ॥१८॥

विदूषकः—सह हं । ( मय किम् । )

[ इति निष्क्रान्ता. सर्वे । ]

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

विदूषक—उब लो इरा समय में जुवराज ही मन गया है ।

राजा—[ मन ही मन ] यह ग्राह्यण बडा नटखट है । कही यह रनिवाहमे जाकर मेरी सब बातें न कह डाले । अच्छ, इसे यो समझता हूँ—[ विदूषकका हाथ पकडकर । प्रकट ] मित्र, मैं ऋणियोका बडा मादर करता हूँ । इसीनिसे उमके प्राथममे पाया करता हूँ । धीर उब ऋणिकन्याके लिये ली मेरे मनमे समिक भी प्रेम नहीं है । क्योंकि—कहाँ लो हम, धीर कहाँ प्रेमकी बातोसे एवदम मनजान, मृगशोर्बोके हाथ पची हुई यह कन्या । मित्र, हमने हँसीमे जो इतनी बातें तुमसे कही हैं उगहं तुम सत्य न समझ बैठना ॥१८॥

विदूषक—नहीं, नहीं, ठीक है ।

[ सब चले जाते हैं । ]

दूसरा अंक समाप्त

## तृतीयोऽङ्कः

[ उत्त. प्रविशति कुशानादाय यजमानसिन्धु. । ]

शिष्य.—एहो महानुभावः पार्थिवो दुष्कृतः प्रविष्टनामे एवाभयं तवभवति राजनि  
विषपदपालि नः कर्मणि प्रवृत्तानि भवन्ति ।

का कथा वाखसंधाने ज्याशब्देनैव दूरतः ।

हुंकारेणैव भ्रुतुपः स हि विज्ञानपोहसि ॥ १ ॥

मायदिमात्मेरितस्तरेणार्थं दर्शनवृत्तिवन्म्य उपनयामि [ परिक्रम्यावलोक्य न आकाशे ]  
प्रिभंभवे कस्तेरमुशीरानुतेकं घृणस्तवन्ति घ मतितीपत्राणि नीयन्ते । [ आकर्ष्यं ] कि  
कधीयि । आतपलक्ष्मनाइसवदस्यस्या शकुन्तला तस्याः शरीरनिर्वाणपेति । तर्हि स्वरितं  
गम्यताम् । सा फलु भगवतः कण्ठस्य कुलपतेरक्षयसितम् । अहमपि तावद्वैतानिकं धान्युपक-  
मस्यं गीतमीहते बिसर्गसिध्यामि । [ इति निष्क्रान्त. । ]

विष्कम्भकः ।

## तृतीय अङ्क

[ हासने कुशा लिए हुए कण्ठके शिष्यका प्रवेश । ]

शिष्य—महाराज दुष्कृतका प्रताप तो देखिए कि जबसे वे आश्रममें पधारे हैं तभीसे  
हमारे मन्त्र काम बेरोक-टोक होते चले जा रहे हैं—बाण पठानेकी छे बात ही क्या, केवल  
बाने धनुषकी टकारसे ही वे विष्कोको दूर भगा देते हैं । ॥ १ ॥ तो यस्तु अतिब्रह्मके लिये  
वेदीपर विज्ञानकी कुशा ले आकर फँसना भाजें । [ धूमकर आकाशकी ओर देखते हुए । ]  
शरी प्रियवदा, ये दठलवाने कमलके पत्ते और लस मिठा हुआ तेष किछके लिये ले जा  
रही ही । [ सुननेका नाट्य करते हुए ] क्या बह्य कि अतुन्तला नू लव जानेसे बड़ी वेचन ही  
बई है, उसके शरीरकी ठठक पढ़ेवानेके लिये ही यह सब ले जा रही हूँ । तो तुरन्त जाओ  
क्योंकि यह भगवान् कुलपति नन्धके प्राणके समान है । मैं भी तबतक उसके लिये गीतमीके  
हाथ मरना शाब्दिक-जस भेजता हूँ । [ प्रस्थान ]

विष्कम्भकः ।

[ ततः प्रविशति वामवमानावस्थो राजा । ]

राजा—[ सचिन्त नि स्वस्य ]

ज्ञाने तपसो वीर्यं सा बाला परवनीति मे विदितम् ।

अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम् ॥ २ ॥

[ मदनराधा निरूप्य ] भयवन्कुसुमायुष ! त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयान्यामिति-  
तधीयते कामिकनसायः । कुत —

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मिस्त्वभिन्दोर्द्वयमिदमयथार्थदरयते मद्द्विधेषु ।

विस्तृजति क्षिमर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैस्त्वमपि कुसुमयाणान्वजसारीकरोषि ॥ ३ ॥

अथवा

अनिशमपि मकरकेतुर्भनयो रुजमावहन्नभिमतो मे ।

यदि मदिरापतनयनां तामधिकृत्य प्रहरतीति ॥ ४ ॥

[ सलेख परिक्रम्य ] क्व तु सलु सन्विते कर्मणि सत्स्पर्शनुज्ञातः धमवदान्तमात्मानं  
विनीक्ष्यामि । [ नि स्वस्य ] किं तु सलु मे प्रियवर्तनान्दृष्टे शरणमन्यत् । यावदेनामन्यिष्यामि ।  
[ सूर्यमवलोक्य ] इमानुप्रातःकालेसा प्रापेरुततावलयस्यु मासिनीतीरेषु ससखीजना शकुन्तला  
गमयति । तत्रैव तावद्गच्छामि [ परिक्रम्य सत्स्पर्शं रूपयित्वा ] अहो प्रवातसुभगोऽयमुद्देशः ।

[ कामसे पीडित अवस्थामे राजा दुष्पण्टका प्रवेश । ]

राजा—[ उदात्तं भरकर । ] मैं तपस्वियोंकी शक्ति भली भाँति पहचानता हूँ, इसलिये  
मैं उसे हरकर भी नहीं ले जा सकता और यह भी जानता हूँ कि विवाह करना न  
करना उस कुमारोके हाथोंमें नहीं है इसलिये वह स्वयं भी मेरे साथ नहीं जा सकती । फिर  
भी न जाने क्या बात है कि मैं अपनी मन उसपरसे दृष्टा ही नहीं पा रहा हूँ ॥ ३ ॥ [ काम  
पीडाका नाट्य करते हुए ]—हे कुसुमोके पनुप-बाण पारण करनेवाले कामदेव ! तुमने और  
चन्द्रमसे उन सब कामियोंको बड़ा धोखा दिया है जो तुमपर विश्वास किए बैठे थे ।  
क्योंकि—कुसुमोके कारणवाला कहा जाता और चन्द्रमाका ठण्डी किरणोवाला कहा  
जाता, ये दोनों बातें मुझ-जैस बिरोहियोंको झूठी ही जान पड़ती हैं, क्योंकि चन्द्रमा तो  
अपनी ठण्डी किरणोंसे प्राग वरसा रहा है और तुमने भी अपने फूलके बाणोंसे वज्रकी  
पठोरता भर ली है ॥ ३ ॥ पर यदि तुम मदमरी घोर बली-बली माँसोवाली उस शकुन्तलाके  
वारण मेरा जी बार बार दुखाए जा रहे हो तो तुम ठीक ही कर रहे हो ॥ ४ ॥ [ दुखी होकर  
पूमता हुआ ] यज्ञ-पूजा ही जानेपर जब ऋषि लोग मुझे बिदा कर दिये तब मैं अपने दुखी प्राण  
सेवर वहाँ मन बहनाऊँगा । [ ठण्डी साँस भरकर ] प्रियाका दर्शन छोड़कर भव और दूसरा  
सहारा क्या है । धनुं उनीचो हूँ । [ सूर्यको देखकर ] ऐसी भरी दुपट्टीमे शकुन्तला  
अपनी सन्वियोंके साथ मानियोंके लटपर गये सतामण्डलोमे ही जाकर प्रायः बैठा करती  
है । तो यही पतल हूँ । ] पूमवर और आयुका स्पर्श होनेका धमिधय करता हुआ ] याह, यहाँ

शक्यमरविन्दसुरभिः कथवाही मालिनीतरङ्गाश्याम् ।

अञ्जैरनङ्गतप्तैरविरलमालिङ्गितुं पवनः ॥ ५ ॥

[ परिक्रम्यावसोमय च ] अस्मिन्वेतसपरिक्षिप्ते सतामण्डपे संनिहितया शकुन्तलाया भवितव्यम् । तथा [ प्रथो विसोपय ]—

अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात्पञ्चात् ।

द्वारेऽस्य पायडुसिकते पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिजवा ॥ ६ ॥

माधाद्विदमान्तरेणावलोकयामि । [ परिक्रम्य मया इत्या । सहर्षम् ] अये लक्ष्मं मेननिर्वाणम् । एष मे मनोरपप्रियतमा सुकुलुमास्तरणं शिलापट्टमपिहायामा सखीभ्यामन्कारयते । भवतु । श्रोण्याभ्यासां विलम्बकथितामि । ] इति विसोकयवृत्तितः । ]

[ ततः प्रविशति यद्योत्प्रापामा सह सखीभ्या सकुन्तला । ]

सखी—[ उपशोभ्य सस्नेहम् ] हला सजन्ते ! भवि सुहेदि दे खसिखीपत्तवावो । ( हला शकुन्तले अपि सुखयति ते मतिनीपत्रवातः । )

शकुन्तला—किं शोभसति भं सखीभ्यो । ( किं शोभयते मां सखी । )

[ सखी विपारं नाटयित्वा परस्परमवलोकयतः । ]

राजा—अतववस्त्रमसारीरा शकुन्तला इत्यते । [ सवितकम् ] सत्किञ्चमातपवोपः स्यात् जत मया मे मयसि तर्तसे [ साभिलाप निर्बन्ध ] अथवा कृतं संवेहेन ।

कसा प्रच्छा गवन बहु रहा है ।—कमलमे बसा हुआ शीर मालिनीकी सहरोकी कुहारीसे लदा हुआ यह पवन, कम से तपे हुए शंशोको मडा सुहावना लग रहा है ॥५॥ [ प्रमत्त मीर देखकर ] बँतोसे दिरे हुए इस सतामण्डपमे ही कही शकुन्तला बँठी होगी चाहिए । क्योंकि [ नीचे देखकर ] इस कुण्डके द्वार पर पीली देतीमे भारी जितववाली सखियों के नरोंके नये पडे हुए बिहु दिसाई दे रहे हैं जो गूडीकी ओर गहरे ओर बागेकी ओर उडे हुए हैं ॥६॥ अच्छा ! इन पुराँकी प्रोटके देखाता हूँ । [ प्रमत्त मीर प्रगन्न होकर ] वाह ! मेरी प्राँसें टपडे हो गईं ! मेरी प्यारी यहाँ सुन्दर जूझोके विछोनेवाली परवारकी पटियापर लेटी हुई है ओर दोनो सखियाँ इसकी सेवा कर रही हैं । अच्छा ! अब सुनूँ तो कि ये धापसमे क्या बातें करती हैं । [ अटा होकर सुनता है । ]

[ असा ऊपर कहा गया है उस बसामे शकुन्तलाके साथ सखियाँ बिसाई देती हैं । ]

सखियाँ—[ बडे प्यारसे पढ़ा ऋतती हुईं ] खी सखी शकुन्तला ? कमलके पत्तोंके मजनेये कुछ टण्डक मिला रही है ?

शकुन्तला—सखियों ! क्या तुम मुझे पढ़ा ऋल रही थी ?

[ एजियां दुखी होनेवा अमिनय करती हुईं एक दूसरीकी देखती हैं । ]

राजा—शकुन्तला तो बडी बेचैन दिखाई पड रही है । [ खीनकर ] क्या इसे खू लय गई है ? या कहीं ऐसा न हो कि जो दया मेरे मन की हो रही है वही इसके मन की भी हो । [ लतचाई प्राँतोने देखाता हुआ ] पर सन्देह किया ही क्यों जाय । क्योंकि—

राजा—अनसूयामप्यनुक्तो मदीयस्त्वर्कः । न हि स्वाभिप्रायेण मे दर्शनम् ।

सकुन्तला—[आत्मगतम्] कलवं क्लु मे अहिलिखेत्ते । दासिं वि सहा एयसं ए सहालोमि सिखेविं । (सलवान्क्लु मे प्रथमनिवेद्यः । इदानीमपि सहस्रतयोर्न खनोमि निवेदमितुम् ।)

प्रियंवदा—सहि सज्जते ! सुट्टु एता भण्णवि किं अत्तणो मात्तद्धुं उवेत्तसि । अण्णविअहं क्लु परिहितसि अहं हि । केवलं सायम्पणमं छाया तुमं ए मुञ्चयि । (सति उकुन्तले ! सुट्टु एता भण्णति । किपात्पण मात्तद्धुमुपेक्षते । अनुदिवस क्लु परिहीयसेऽहं । केवलं सायम्पणमी छाया स्वा न मुञ्चति ।)

राजा—प्रियंवदाह प्रियंवदा तवा हि—

ज्ञामसामकपोलमाननसुरः कठिन्यमुक्तस्तनं

मध्यः पलान्ततरः प्रक्षामयिनतावसौ ह्रविः पाण्डुरा ।

शोच्या च प्रियदर्शना च मदनविलष्टेयमालक्ष्यते

पत्राणामिव शोषणेन भरता स्पृष्टा सता माधवी ॥८॥

सकुन्तला—सहि कस्तका अण्णसस कहस्सं । आभासवसिअ दासिं वो भविस्सं । (सति कल्प पाण्डवस्य कथयिष्यामि । आयासयिषीदामी वा ययिष्यामि ।)

समे—अवी एव क्लु शिम्भणो । सिण्डुअलसंविभत्तं हि पुत्तं सज्जयेयसं होदि (अत एव [अथ एव क्लु निर्वन्धः । दिनमजनसविभत्तं हि दुसः सहावेदन भवति ।)

राजा—मैं जो बात समझ रहा था वही अनसूया भी सोच रही है । तो मैंने जो कुछ सोचा था वह केवल मेरे मनकी ही बात नहीं थी ।

सकुन्तला—[मन ही मन] सचमुच मेरा जेब बहुत सामे तक बढ गया है और मुझमे एकाएक कुछ कहते नहीं बन रहा है ।

प्रियंवदा—सखी सकुन्तला ! अनसूया ठीक कह रही है । तुम क्यों अपना रोग बढाती या रही हो । दिन पर दिन तुम दूतनी सुलती बनी जा रही हो कि तुम्हारे शरीर पर बस सुन्दरताकी भल्लक भर बधी रह गई है ।

राजा—प्रियंवदा सच कहती है । क्योंकि—इसके पास धुरंधर गए हैं, मूँह मूँह गया है, रसनों की बठोरला जाती रही है, कपड़ और भी पतली हो गई है, बन्धे मुक्त गए हैं और देह पोसी पड़ गई है । चायुके वरसते मुझमाई हुई पतिव्रताकी माथपी सता के समान यह सुन्दर भी समती है और इसपर क्या भी धाती है ॥८॥

सकुन्तला—तुमसे न कहूँगी तो किसने कहूँगी ? सखी ! अब तुम दोनोंको मेरे लिये कष्ट करना ही पड़ेगा ।

दोनी—इसीलिये हम तुमसे इतना आग्रह कर रही हैं । देखो, अपने रनेहियेँडे दु ख बाँटे यह कम हो ही जाता है ।



स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलितमृणालैक्यलयं

प्रियायाः सावाधं किमपि कमनीयं वपुर्दिदम् ।

समस्तापः कामं मननिजनिदाधप्रसरयो-

र्न तु ग्रीष्मस्यैव मुमगमपराद्धं युवतिषु ॥ ७ ॥

प्रियंवदा—[ अनामिकावत् ] अलमुष्ट तास राएविलो वडमवंसएणवो धारहिष वग्नुस्सुमा विम सज्जता । किं तु वपु ते तस्मिन्निहो अन्नं भातद्वो भवे । ( मनपूवे तस्य रात्र्यैः प्रथमदत्तनाशारण्य पर्वुपुवेव वपुन्दता । किं न तसु हस्वास्तनिमित्तोऽपमावद्वो भवेत् । )

धनगूया—राहि मम वि ईदितो धातद्वो हिषघस्तः होतुः पुच्छित्तं दाव एं । [ प्रकाशम् ] राहि पुच्छित्तमपि किं वि । यत्त्वं वपु दे संरावो । ( राहि मयापीद्वराधद्वो हृदय । भवतु । प्रशामि तापदेनाम् । रागि प्रष्टव्याग्नि विमनि । इतवान्पु ते संतापः । )

शकुन्तला—[ पूर्वार्थेन तापमादुत्पाद्य ] हता किं वत्कामासि । ( हता किं वपुपामासि । )

धनगूया—हता मज्जने ! अलममनरा वपु अन्ते मवत्पवता वृत्तासत । किं तु जादितो इतिनामलिप्रभं तु काममालाएणं अवरया सुलीमदि तावितो दे देव्यामि । वहेहि विहितं संदावो । विचारं वपु परमापयो अजासिम अलारम्यो वद्विभारस्त । ( हता शकुन्तले ! धन-प्यगरे सन्वायां मदनमवस्य वृत्तागम्य । किं तु यादतो इतिहासनिवन्धे तु कामयमानानामवस्था श्रुयते तादृशी ये वस्यामि । कथं विनिमित्तं ते संतापः । विचारं तसु परमायंतः अजात्वाऽनारम्यः प्रतीचारण्य । )

इसके तर्जोवर मगव। मेघ सग हृष है घोर एक हावमें बचवरी नावरा हीमा कंगन बंधा हुआ है। पर इसकी केशंन होनेपर भी इसका शरीर कुछ कम सुन्दर नहीं लग रहा है। यद्यपि तु मगने घोर प्रेमने परनेपर केशंनो एव-भी ही होगी है किन्तु तु मग जानेपर सुवतिर्पौमि इसकी सुन्दरता गरी रह जाती ॥३॥

प्रियंवदा—[ धनगू ] धनगूया ! अबके शकुन्तलने उस रात्रिनिने देगा है तमीने यह जनर मद्द हो गई है। बीज जागे यह केशंनो करीके बाराग ही ।

धनगूया—मगी ! ॥ भी कुछ देगी ही बाग मोबगी है। अग्या ! इसीने पूछ देतगी है। [ प्रका ] मगी, मे मुझमें कुछ दुःख आतगी है। देखो, सुन्दारी केशंनो बहुत बढ़ पगी है।

शकुन्तला—[ बिजोनेपर धावो उदका ] क्या सुखता आतगी हो तगी ?

धनगूया—शकुन्तला ! हव भी प्रेमकी बानें तो कुछ जातगी नरी है फिर भी क्या-क्यानिनेके तने केशंनोके जो बावें तुनी है, जो बंधी हो क्या सुन्दारी भी दिगाई पड़ रही है। तो क्या-तो कुछ दिवके निने तनी केशंनो । कौनकि अबक मंदका क्या न पते तावउक उदका उतग बंधे बिदा आ तवता है ?

राजा—अनसूयामप्यनुगतो मदीयस्तर्कः । न हि स्वामिप्रियेण मे दर्शनम् ।

शकुन्तला—[ आश्चर्यवशम् ] यत्नं बहु मे अहिलिवेत्तो । दासि वि सहसा एवाहं ए सङ्गणोमि  
ल्लिखेद्विद् । [ वसवान्स्तु मेऽर्पणनिवेशः । इदानीमपि सहस्रंयोनं शक्नोमि निवेदयितुम् । ]

प्रियंवदा—तहि सज्जने । मुहुः एसा भलादि कि अस्तलो मातङ्गं उवेवसति । अशुविभ्रं  
बहु परिहिपसि प्रद्वेहि । केवलं सावयस्यई दाम्ना सुयं ए भुञ्जति । [ सखि शकुन्तले ! मुहुः एसा  
मस्यति । किमाशयन मातङ्गमुपेक्षसे । अनुदिबस खलु पच्छीयसेऽर्द्धः । केवलं सावयस्ययी दाम्ना  
एवा न मुञ्जति । ]

राजा—प्रदत्तवसाह प्रियंवदा तथा हि—

श्यामश्यामकपोलमाननसुरः कठिन्यमुक्तस्तनं  
मध्याः फलान्तरः प्रकामधिनतावंसौ छविः पायशुरा ।  
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते  
पत्राणामिष शोषणेन महता स्पृष्टा लता माधवी ॥८॥

शकुन्तला—तहि कस्यवा अण्यस्ता कहस्तं । आभासवतिथर दासि भो भवित्तं ।  
[ सखि कस्य वाऽण्यस्य नयविध्यानि । आशाठपिनोदात्री वां भविष्यामि । ]

उभे—अदो एव बहु शिष्यन्धो । शिरिशजलमविभ्रं हि सुखं सज्जनेवर्णं होमि [ प्रत एव  
[ प्रत एव सलु निर्वन्धः । तिन्यजमसविमक्त हि दुःखः सहावेदनं तपति । ]

राजा—मैं जो बात समझ रहा था वह सबसूया भी खोच रही है । तो मैंने जो कुछ  
सौचा था वह वेचल मेरे मनकी ही बात नहीं थी ।

शकुन्तला—[ मन ही मन ] सधमुच मेरा प्रेम बहुत शाने तक बढ़ गया है और मुझसे एकाएक  
कुछ कहते नहीं मन रहा है ।

प्रियंवदा—सखी शकुन्तला ! अनसूया ठीक कह रही है । तुम क्यों अपना रोम बढाती  
जा रही हो । दिन दर दिन तुम इतनी सूखती जाती जा रही हो कि मुझ्कारे सगेर पर मा  
सुन्दरताकी झलक भर यकी रह गई है ।

राजा—प्रियंवदा सब कहती है । क्योंकि—इतके गाल सुरभ्य गए हैं, मुँह सूख गया है,  
स्तनो यो कजेस्ता लगी रही है, कमर और भी पतली हो गई है, कन्धे झुक गए हैं और चेह  
पीली पड़ गई है । बायुके परससे सुरभ्यई हुई पच्छिगोवाती माधवी लता के लगान यह सुन्दर  
भी लगती है और इसपर क्या भी जाती है ॥८॥

शकुन्तला - तुमसे न कहूँगी तो किससे कहूँगी ? सखी ! भव तुम दोनोंको मेरे लिये कुछ  
कष्ट करना ही पड़ेगा ।

दोनों—इसीलिये हम तुमसे इतना आग्रह कर रही हैं । देखो, अपने स्नेहियोंसे कुछ बँटलेनेपर  
वह कम हो ही जाता है ।

मृष्टा तनेन समदुःखसुखेन शाला ।

नेपं न चक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम् ।

दृष्टो विवृत्य बहुशोऽप्यनया सतृष्य ॥

मत्रान्तरे श्रवणकान्तरतां गतोऽस्मि ॥ ६ ॥

शकुन्तला—सहि जदो पट्टदि मम दक्षलण्णं धारदो सो जवोवहारस्सिखा राएती तदो धारहिहम  
सगदेण प्रहिस्तासेण एतदवस्यग्धि संवुत्ता (सति यतः प्रभृति मम दर्शनपपभागतः स उपोवनरक्षित  
राजपि. तत धारस्य तदगतेनाग्निभापेणोत्तदवस्याऽस्मि सवृत्ता ।)

राजा—[सहर्दम्] धृतं शोतस्यम् ।

स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता स एव मे जातः ।

दिघस इवार्धरयामस्तपात्यये जीवलोकस्य ॥ १० ॥

शकुन्तला—सं जइ यो अणमदं । ता सहवट्टह जइ तस्स राएसिलो अणुण्वण्णिज्जा होमि ।  
अणुण्हा अयस्सं सिन्धव मे तिलोदरं । (तद्यदि वामनुमतम् तथा तथा यनेषाम् यथा तस्य राजपरेणु-  
कम्पनीया भवामि । अन्यथा अत्रकथं सिञ्चत मे तिलोदकम् ।)

राजा—संशयस्यैदि वचनम् ।

प्रियवदा—[अनातिक्रम] अणुण्ण पूरणप्रमग्ग्हा अरत्तमा इधं कालहरणस्त । जस्सि  
वट्टभावा एता सो कलाममुदो पोरवात्तं । ता कुत्तं से प्रहिस्तासो प्रहिण्णिविदुं । (अनूपे । पूरण-  
प्रमग्गया अक्षयेवं कालहरणस्य । अस्मिन् वट्टवार्थेवा न सनापभुव. वीरवाणाम् । तद्युक्तमस्या  
अमितापोऽग्निनिदितुम् ।)

राजा—दुल-गुल मे साथ देनैवातो अपनी इन एसियोके पूछनेपर तो यह वाला सबद ही  
अपने मनकी बात बता देनी । यद्यपि शकुन्तलाने उक्त समय बड़े प्यार से बार-बार मेरी ओर  
सलवाई माँझीमे देखा था, फिर भी मेरे जीमे बनी पुश्चुत्ते हो रही है कि कैसे यह अपनी  
बेचैनीका क्या कारण बताती है ॥६॥

शकुन्तला—सती, प्राथमयी राजा करनेवाले के राजपि जबसे मेरी माँझीमे सनाए है तभीसे  
उन्हीके प्रेममे मेरी यह दशा हो गई है ।

राजा—[हर्षमे] मही तो मैं सुनना चाहता था । जो कामदेव मुझे पीड़ा दे रहा था उसीने  
मुझे इस प्रकार जिता लिया जैसे यमीका दिन पहले तो जीर्षोको व्याकुल कर देता है पर दिन  
उत्त जाने पर वही सबका जो हरा भी कर देता है ॥१०॥

शकुन्तला—यदि तुम दोनों ठीक समझो तो कोई ऐसा उपाय करो कि उन राजपि की  
मुझपर श्याा हों जाय । नहीं तो मुझे जिताइति देने के लिये तैयार हो जाओ ।

राजा—[मन हो मन] बस, यह बात सुनकर सब मन्देह जाता रहा ।

प्रियवदा—[अनभूयान्ने अन्व] सती, इसकी प्रेम-व्यथा इतनी बढ़ गई है कि कोई उपाय  
तीव्र ही करना चाहिए । सबसुख इस बातकी तो सचाहना करनी ही पड़ेगी कि शकुन्तलाने प्रेम  
लिया तो पुत्रवन्ने भूषण दुष्पन्ना मे हो ।

अनसूया—तह जह रक्षसि । ( उवा यथा भयसि । )

प्रियवदा— [ प्रकाशम् ] सहि दिहृष्णा अशुक्लो दे अहिलियेसो । साधरं उज्ज्वल कर्हि वा महाएई सोदरद को दासि सहस्रारं अन्तरेण अदिमुत्तरं पल्लविबं सहैदि । [ सति दिष्टपाशुनूपस्तेऽभिनिवेशः । सागरभुजिभवा कुत्र वा महानचवतरति नं इवानी सहस्रारमन्तरेणातिमुक्तता पल्लविता सहैते । )

राजा—किमत्र चित्रं यदि विज्ञाषे ज्ञानाद्भूलेषामनुवर्तेते ।

अनसूया—को उए उवाधो भवे जेए अचितम्बियं लिहृबं अ सहीए मनोरहं संवादेण्ह ।

( कः पुनरुपाया प्रवेष्टेनाविस्तमित निभृत च अस्था मनोरथ भगवद्योष । )

प्रियवदा—लिहृषं ति विन्तरिणज भये । सिर्षं ति सुमर । ( निभृतमिति चिन्तनीचं भवेत् । शीघ्रमिति सुकरम् । )

अनसूया—रहं धिष । ( कथमिष । )

प्रियवदा—एं सो राएसी इमांसि किलिहृदिहीए सुदवाहिलातो इमाई दिप्रहाई पजाम-राकिसो लक्ष्मीभदि । ( ननु स राजधिरैवस्या सिन्धहृष्टया सूचिताभिनाप एतान्दिवसात् प्रजागरकृतो लक्ष्यते । )

राजा—सर्वमिस्त्वभूत एवास्मि । तथा हि

इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्विवर्णमखीकृतं ।

निशि निशि भुजन्त्यस्तापाद्गप्रसारिभिरश्रुभिः ।

अनभिलुलितज्याघाताङ्गं मृदुमैशिवन्धना ।

कनकवल्लयं स्रस्तंस्रस्तं मया प्रविसार्पते ॥११॥

अनसूया—हां, यह तो है ।

प्रियवदा— [ प्रकट ] सखी, तू चली सोभाग्यजालिनी है कि ऐसे योग्य पुरुष ते सुने प्रेम किया । क्या तो, भला सागरको छोडकर महानको और कहा जायगी ? आपके वृषाको छोडकर गये पक्षीवाली माघवी भला और किसका सहारा लेकर चडेगी ?

राजा—यदि विज्ञासाके दोनो नक्षत्र अद्रकसाके पीछे-पीछे चलें तो प्राखयं ही क्या ?

अनसूया—तो कोई ऐसा उपाय बताओ कि इसकी इच्छा भी तुरन्त पूरी हो जाय और कोई जान भी न पावे ।

प्रियवदा—तुरत-बाला उपाय तो ही सकता है, पर बात छिपी रहे, इसीके लिये थोडा सीपना पडेगा ।

अनसूया—क्यो ?

प्रियवदा—यन्त्री बात तो यह है कि राजपि भी अशुन्तसाते प्रेम करते हैं । सभी तो दिन-रात जागते रहनेके कारण इतर वे कुछ दुबलेसे दिखई पडने लगे हैं ।

राजा—उचमुच मेरी दशा ऐसी ही हो गई है । मैं दतना दुबला हो गया हूँ कि हिरके तले लगी हुई भुजापर बंधा हुआ, रात-रात भर मरो खाँसोकी फोरोसे छन छनकर गिरे हुए परत धीमुषो से मैंने रत्नीवाला, यह सोनेका भुजबन्ध दतना ढीला पड गया है कि बार-बार ऊपर सरवाते रहनेपर भी यह गद्देपर बिसक जाता है और धनुषकी टोरीकी फटकारसे पडे हुए धनुष भी गही बहर जाता ॥ ११ ॥

प्रियवदा—[चिन्तित्य] हता मधुरलेहो से करोधदु । इमं देवप्रसादस्सावदेसेण सुमरो-  
गोविद करिअ से हृत्पत्र पावदस्सं । ( हता मदनलेहोअप्य क्रियताम् । इम देवप्रसादस्सावदेसेण  
सुमरोगोविद इत्या तस्य हस्त प्रापयिष्यामि । )

धनगूया—रोधदु मे सुउमारो पाधोओ । णि वा सउन्दता भखादि । ( रोचते मे सुकुमारः  
प्रयोगः । णि व शकुन्तला भगति । )

शकुन्तला—को रिओओओ विरपीओदि । ( को नियोगो विनत्यते । )

प्रियवदा—तेण हि अत्तलो उवण्णत्तपुण्यं चिन्तेहि दाव सत्तिअपदयण्यणं । ( तेन ह्यात्मन  
उपन्यासपुत्र चिन्तय तावत्नतितवदव-धनम् । )

शकुन्तला—हता चिन्तेमि अहं । अषधीरएओरुअं पुओओ वेवद मे हिअमं । ( हता चिन्त-  
याम्यहम् । अषधीरएओरुअ पुनयेपते मे हृदयम् । )

राजा—[ सहर्षम् ]—

अयं स तिष्ठति संगमोत्सुको विशङ्कसे मीरु पतोऽवधीरणाम् ।

समेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं श्रिया दुरापः कयमीप्सितो भवेत् ॥१२॥

सखी—अत्तपुलाअमाणिण्णि ओ आण्णि सतेरएण्णव्याअत्तिअं सारविअं ओसिण्णि  
पवत्तेण वारेदि । ( आत्मगुलाअमानिनि ! क इदानीं शरीरनिर्वाहविधिं शारदीं प्योरस्ता पटान्तेन  
धारयति । )

शकुन्तला—[ सस्मितम् ] रिओओओ आण्णि णि । ( नियाचितेदानीमस्मि । ) [ इत्युपविष्टा  
चिन्तयति । ]

प्रियवदा—[ सोचकर ] सखी ! इससे एक प्रेम-मन्त्र बिलबामा जाय और उसे कृजोमे  
द्विपाकर देवताका प्रसाद कहकर जगह दे पाया जाय ।

धनगूया—यह उपाय तो मुझे भी बड़ा सुन्दर जैना । पर शकुन्तलागे भी तो पूछ लो ।

शकुन्तला—तुम्हारी बातमे जला मैं क्या भीन-बेस निकाल सकती हूँ ।

प्रियवदा—तब अपनी इतना बलौन करते हुए एव सुन्दर-सी कविता बना डालो ।

शकुन्तला—कविता तो मैं बना लूँगी । पर मेरा हृदय यही चौध-सोचकर बाँध उठता है कि  
कहाँ वे अस्वोदार न कर बैठें ।

राजा—[ हर्षते ] तुम जिससे निरादरकी घाघना कर रहो हो यह सुनते भिक्षुनेको स्वयं  
उपावला हुआ धरा है । जो सखीको पना आहवा हो उसे सखी मले हो न मिले पर  
जिसे स्वयं सखी चाहे वह मखीको न मिले, यह कैसे हो सकता है ॥ १२ ॥

दोनों—तू अपनेकी इतना बुरा क्यों समझे बैठे है । मना बला तो ऐसा कीन मूसं होगा  
जो शरीरकी शांति देनेवाली शरतकी भाँडनीको रोचनेके किये सिरपर बपला सान ले ।

शकुन्तला—[ मुस्कराकर ] अन्दा, जो कहती हो वही कहती हूँ । [ यह कहकर बैठे हुई ]

राजा—स्वप्ने शत्रु विस्मृतविभेदेण चक्षुषा प्रियागवतोकथानि । यतः—

उन्नमित्तैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः ।

कण्टकितेन प्रययति मय्यनुरागं कपोलेन ॥ १३ ॥

शकुन्तला—हृता चिन्तितं मए गीतवस्तु । ए शत्रु सम्पिण्णहिवाणि उख तेहएताहएणिण ।  
(हृता चिन्तितं मया गीतवस्तु । य शत्रु संनिहितानि पुनसंखनसाधनानि ।)

प्रियवदा—इमस्ति शुभोदरसुठमारो खनिखोपले खहेहिं हिनिखलबण्णं करेहि । (पतस्मि-  
ञ्जुकोदरसुठुमारो भलिनीपणे बलेनिखिण्णवणं कुच ।)

शकुन्तला—[ययोक्त रूपवित्वा] हृता सुखर शणि संयवत्वं ए वेति । (हृता श्रुणुतगिवाणी  
संगत्तायं न वेति ।)

उभे—भवहिदे भू । (भवहितो त्वः ।)

शकुन्तला—[पापमति]—

तुज्झ ख आणे हिअंमं मम उख कामो दिवाणि रत्तिम्मि ।

यिग्घिण्ण तवइ धलीअं तुइ बुत्तमखोरदाई अङ्गाई ॥१४॥

(तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवादि रात्रिमपि ।

निर्घृण ! तपसि पत्नीवस्त्वपि कृतपयोरववाग्यङ्गानि ॥)

राजा—[ मम ही मन ] प्यारीयो प्राणनर देखनेका यह शब्दा भवसर मिला है, क्योंकि—  
सताके समान पड़ी हुई एक भीहवाला और हृदये पुनकित यालोवाला इस गीत बनानेवाली का  
मुख ही बताए बात रहा है कि यह मुझे कितना प्यार करती है ॥१३॥

शकुन्तला—सखी ! गीत तो मैंने सोच लिया है पर जिसनेही सामग्री तो यही कुछ भी  
नहीं है ।

प्रियवदा—तुमही छातीके समान कोयल दस कण्ठिनीके पत्तेपर अपने गलोंसे ही जिस  
बालो ।

शकुन्तला—[ऐसा ही करती हुई] सखी ! मन तुनो, यह ठीक भी बन पाया है या नहीं ।

योगी—हां, हम सुन रही हैं ।

शकुन्तला—[बोचती है ।]—

हे तिर्यक ! मैं नहीं जानती, तेरे मनकी भाषा ॥

पर तेरे ही प्रेम-वाक्यमें बढकर यह फल पाया ।

कामदेव दिन-रात तपाता मेरी कोयल वाया ॥१४॥

राजा—[सहसोपसृत्य]

तपति तनुगात्रि मदनस्तामनिशं मां पुनर्दहत्येव ।  
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वर्ती दिवसः ॥१५॥

सख्यो—[सहसं] साप्रबं अथितम्बिणो मणोरहस्य । (स्वायत्तमथितम्बिनो मनोरथस्य ।)  
[अनुत्तनाशम्भुत्पातुमिच्छति ।]

राजा—असमलमापासेन ।

संदष्टकुसुमशयनान्याशुवत्तान्तविसभङ्गमुरभीषि ।  
गुरुपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति ॥१६॥

मनसुया—इदोसितावलेङ्कयं अनंकरेदु व अस्यो । (इत. सितान्तर्तं कदेसमसकरोतु वपस्य. ।)  
[राजोपविशति । शकुन्तला सन्नग्ना तिष्ठति ]

प्रियवदा—कुवेरां ए वो अण्योष्णासुराद्यो यन्वस्यो । सहीसिणोहो मं पुण्यस्तवारिणं  
करेदि । (इदोर्ननु युवयोर्न्योन्यानुराव. प्रत्यस । सखीदनेहो मा पुनस्तवादिनीं शरीति ।)

राजा—भग्नं मंतरपरिहामेषु । विवक्षितं शकुन्तलमनुत्तारं जनयति ।

राजा—[सोप्रतासे भागे अङ्कपर ।] हे कुम्वरी ! तुम्हें तो कामदेव सताता भर है पर यहाँ  
तो यह निरन्तर जलाए ही डाल रहा है । क्योंकि दिन निकलने पर कुमुद्विनी उठनी नहीं कुम्हवाती  
जितना जलमा कुम्हवा पाता है ॥१५॥

सखिया—[हर्षते] स्वागत है भावना ! हम लोग अभी आपके दर्शनकी बात छोड़ ही रही  
थी कि भाव स्वयं ही आ गए ।

[शकुन्तला उठना चाहती है ।]

राजा—बष्ट करने की आवश्यकता नहीं । थिरहूँ परन्तु तापसे तुमने जलके बिछीनेपर  
जो इतर-उपर करके ही की उन्नत कारण कुम्हकी बटुद्विती कुम्हारे शरीरमें कसीनेके सिद्ध  
गई है । तुमने कमलकी मालके जो आभूषण पहन रखे हैं वे भी मुरझा गए हैं । 'इससे जान  
पड़ता है कि कुम्हारा शरीर अभी बहुत विषल है और तुम इस योग्य नहीं हो पाई हो कि उठकर  
बादर ताकत कर गयो ॥१६॥

मनसुया—[राजाते] भिय । भाव भी इसी परस्परकी पाटोके एक बनेबने सुसोभित बोजिए ।

[राजा बैठ जाते हैं । शकुन्तला सजुपा पाती है ।]

प्रियवदा—मर्दान यह बात तो प्रत्यक्ष है कि भाव दोनों एक दूसरेके प्रेम करते हैं, फिर भी  
भयनी सखीके प्रेमके नाते से भावने उदा कहना चाहती है ।

राजा—भटे ! क्या मनरो बात कह रहा है । क्योंकि मनमें भाई हुई बात यदि मनमें  
ही रह जाती है तो बोधे बस पड़ना होता है ।

प्रियंवदा—आपण्णसा विरागण्डि धातिखो जलसस अतिहरेण शष्णा होवध्वं ति एको यो पम्मो । ( आपण्णस्य विपयनिवासिनो जलस्यातिहरेण राजा भवितुम्यमित्येष युष्माकं पर्मः । )

राजा—नास्मात्परम् ।

प्रियंवदा—तेण हि दग्गं खो विमलहो तुमं उद्धितिध इमं धवत्वन्तरं भगवता ममल्लेण धारोविवा । ता धरहति धवमुल्लसोए ओधिदं से धवलम्बिदुं । ( तेन हीमं नो श्रियतया स्वाधुद्विदयेदमवस्थान्तरं भगवता मदनेनारोविता । तवहुंस्याम्युपपत्या जीविनं तस्या धवलम्बिदुम् । )

राजा—भद्रे सामारत्वोप्यं प्रलयः सर्वपाऽनुग्रहोतोऽस्मि ।

लज्जुतला—[ प्रियंवदागमनोक्त्यं ] हला कि धत्तेऽरविरहपणुस्तुमस्स राएकिणो जयरो हेण । ( हला किमस्त.पुरविरहपणुस्तुमस्स राजर्षेपरपोने । )

राजा—सुन्दरि !

हृदमनन्यपरायल्लमन्यथा हृदयसंनिहिते हृदयं मम ।

यदि समर्थयसे मद्विरेक्षणे मदनबाणहतोऽस्मि हतः पुनः ॥१७॥

धनसूया—यमस्त बहुल्लसहा राजोलोमुखी धन्ति । जह खो विमलहो धणुमण्णतोध खिण्णा ए होध तह खिण्णतोहि । ( ययस्य बहुल्लसथा राजातः भूयन्ते । यथा नो श्रियतसी धणुजमलोषनीधा न भवति तथा निर्वैतं । )

राजा—भद्रे कि कहुना ।

परिग्रहपहुत्वेऽपि द्वै प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।

समुद्रचसना चोर्षा सर्षा च युवयोरियम् ॥ १८ ॥

प्रियवदा—राजा होकर आपका मह धर्म है कि अपने राजधमे रहनेवाले लोगोंका कष्ट दूर करें ।

राजा—मैं कहीं इससे दृष्टता हूँ ।

प्रियवदा—तो भगवाए कामदेवने मर्याके ही कारण हमारी सखीकी मह दसा कर दी है । धम धाय ही दृषा करे तो उसके प्राण बचें ।

राजा—भद्रे ! यह तो आपकी बड़ी कृपा है क्योंकि मेरी भी यहीं यही दसा है ।

लज्जुतला—[ प्रियवदाकी देलकर ] सखी ! ये राजधि तो रनिवासकी रानियोंके विरहमे प्याहुस हो रहे होंगे, इन्हे इध फेरमे बयो ठास रही हो ।

राजा—सुन्दरी ! मेरा हृदय तुम्हे झोठकर धीर विद्यीकी प्यार बहो करता । फिर भी हे भदभरी चितवनबासी हृदयेन्धरी ! यदि तुम इसका विषयास नहीं करती तो मैं यही समझूँगा कि कामदेवके बाणोति एक बार धायल हुएकी तुम दुवारा धायल कर रही हो ॥ १७ ॥

धनसूया—अयस्य ! सुनते हैं कि राजाओंके बहुल्लसी रानियां होती हैं । तो हमारी प्यारी सखीके सिधे मुख ऐसा प्रबन्ध कीजिएगा कि हम सने-सावियोंकी फिर पछताना न पड़े ।

राजा—भद्रे ! मैं धीर तो क्या कहूँ । इतना ही कह देता हूँ कि—रनिवासकी इतनी रानियोंके होते हुए जो मेरे धुमने दो ही बड़ी समकी जार्यवी—एक तो सापरते विदी हई पृथ्वी, धीर दूतरी सुम्हारी सखी लज्जुतला ॥ १८ ॥



उभे—लिखदुद गृह । ( निवृत्ते स्व. । )

प्रियवदा—[ सहृदिकेपम् ] अणसूए । जह एसो इदो दिग्गद्विद्वी उत्सुप्रो मिप्रपोदप्रो मादरं अण्णोरादि । एहि । संजोएम खं । ( प्रणसूये । यथंय इतो दसहृदिररमुकी मृगपीतकी मातरम्-निव्यति । एहि । उभोउवाव एमम् । ) [ इत्युभे प्रस्थिते । ]

शकुन्तला—हसा अतरण मिह । अण्णदरा वो धायच्छदु । ( हसा अतरणोऽस्ति । मन्य-तरा युवमोरामचतु । )

उभे—पुहपोए जो सहलं सो ॥॥ समीवे बट्टइ । ( पृथिव्या यः धरखं स तत्र समीवे वर्तते । )

[ इति निष्क्रान्ते । ]

शकुन्तला—बहं गदाओ एवव । ( बध गते एव । )

राजा—अलमायेयेम । मन्यममाराधयिता जमस्तव समीवे वर्तते ।

किं शीतलैः क्लमषिनोदिभिरार्द्रवाता-

न्संचारयामि नलिनीदलतालधृन्तैः ।

अट्टे निधाय करभोरु यथासुखं ते

मंवाहयामि चरखाशुस पवताग्री ॥ १६ ॥

शकुन्तला—ए माण्णोएणु असाणं अवरहइस्सं । ( न नालनीयेष्वात्मामपराधयिव्ये । )

[ इत्युत्थाय गन्तुमिच्छति । ]

दीनी—एव हंमं सन्तोप है ।

प्रियवदा—[ बाहर देलकर ] अणसूया ! देख, बह मृगछीना इपर देलता हुपा अमनी मीको दुई रहा है । अल, इसे इतकी मीके पास पहुँका धावें ।

[ चतनेकी वचत ]

शकुन्तला—अगी एतियो ! मुझे किसके सहारे छोड का रहो हो ! दीनीमें से एक हो टहरो ।

दीनी—गारी पुन्वीकी सहारा देनेवासा सो सेरे पास ही बँठा है ।

[ प्रस्थान । ]

शकुन्तला—अरे क्या बली गर्द ?

राजा—पवराठी क्यों हो ? तुम्हारी सेवा करनेवासा यह सेवक तो यहाँ बँठा ही है । हाथी की मुँहमें तामान टांगवाँ जायँवासा । इस समय जो मुझे मुहाता हो, मैं बही करनेकी उत्तर हूँ । बहो हो इन पचावट दूर करनेवासे ठके कमलिनोरे पत्तोये पट्टा अट्टे या बहो तुम्हारे हास कमलो अंत दोनी अरणोको अरनी सोदमें रण्णर सीरे-सीरे दवाळें ॥ १६ ॥

शकुन्तला—पूज्य सोमोये सेवा बगबर मैं अपने तिर पाव नहीं संपी ।

[ अरणर वागा बाहती है । ]

राजा—गुरुरि ! अतिवालो विपत्तः इयं च ते शरीराकारणम् ।

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम् ।

कथमातपे गमिष्यसि परिचाषपेलचैरङ्गैः ॥२०॥

[ इति वनादेनां निगर्तवति । ]

राजुन्मता—घोरम् । एष स अविश्रमं । मधससंतप्यादि स तु अस्त्रालो बहुवामि । (घोरम् । रक्षाविशयम् । मदनसतप्याऽपि न सत्वात्मनः प्रभवामि । )

राजा—भीष । अस्मं गुरुजनभयेन । दृष्ट्वा ते विदितवर्मा तत्रभवत्तान्नाम बोधं प्रहोष्यन्ति कुत-  
पतिः । वचन—

गान्धर्वेषु विवाहेन बहुयो रत्नर्षिकन्यकाः ।

भूयन्ते परिणीतास्ताः पिठमिरचामिनन्दिताः ॥२१॥

राजुन्मता—कुश्च वाच मं । भूमो वि तद्दिनसं मणुष्यासुहृत्सं । (गुरुप तावग्याम् । भूयोऽपि सम्प्राप्तमनुमानविधये । )

राजा—भवतु सोऽवामि ।

राजुन्मता—वत् । (वरः)

राज—गुरुरि ! अभी दिव भी नहीं बता है और इधर तुम्हारे शरीरकी भी यह  
बता है । इस दुपहरीमें कुर्बाना मिस्तर छोड़कर और कमलके पत्तोंके म्यान डरकर, बिरहमें  
तपे हुये अपने दुर्बल अथवा सेवर तुम कहां जाओगी ? ॥२०॥

[ राजुन्मता का हाथ पकड़कर उसे रोका जाता है । ]

राजुन्मता—घोरम् । कुश्च त्वे वीस वा ध्यान रक्तो । प्रेमी व्याधुम हीने पर भी मैं  
अपने अन्ते कुट्ट नहीं कर सकती ।

राजा—अरी इतना ! गुरुजनोसे जानेकी तो कोई बात ही नहीं है । पूज्य गुरुवनि  
धर्म की अभी वांछि जानते हैं । यदि वे सब बातें जान भी लेंगे तब भी इसे बुरा नहीं कहेंगे ।  
देखो—बहुत ये राजपियों की बन्ध्याओंने मान्यवं विवाह किया है और यह भी मुना जाता है  
कि उनके पिताओंने उनका समर्पण ही किया ॥२१॥

राजुन्मता—अस्त्रम्, अस्त्री तो मुझे छोड़ दीजिये । मैं कम से कम मतिपोंके तो  
पूज लूँ ।

राजा—अस्त्रम्, छोड़ दूंगा ।

राजुन्मता—वत् ।

राजा—

अपरिचितकोमलस्य यात्रत्कुसुमस्यैव नवस्य पट्पदेन ।

अथरस्य पिपासता मया ते सदयं सुन्दरि वृद्धते रसोऽस्य ॥२२॥

[ इति मुसमस्या समुत्पन्नविकृतुमिच्छति । शकुन्तला परिद्वरति नाट्येन । ]

[ नेपथ्ये ]

चक्रवाकवद्वृणु श्रामन्तेहि सहस्रर । उर्वरिष्वा रमणी (चक्रवाकवपुके श्रामन्त्यस्य सहस्ररम् ।  
विपत्ता रजनी ।

शकुन्तला—[ससभ्रमम्] पौरव ! अससन्न मम सरीरवृत्तान्तोपलम्भस्ता अगता गीतमी इवो  
य श्रामच्छदि ता विद्वन् सरिबो होहि । { पौरव ! अससन्न मम सरीरवृत्तान्तोपलम्भायार्था  
तमीस एवावच्छदति तद्विद्वत्पारितो भव । }

राजा—तथा । [ इत्यात्मानगावृत्त्य लिप्यति ]

[ सत प्रविशति पामहस्ता गीतमी सप्यो च । ]

सप्यो—इवो इवो अगता गीतमी । ( इत इत धार्या गीतमी । )

गीतमी—[शकुन्तलामुपेत्य] जादे ! अवि लक्ष्मवावाहं वे अङ्गारं । ( जाते ! अवि लक्ष्मता-  
मि तेऽङ्गानि । )

शकुन्तला—अगते ! अरिष मे चितोसो । ( प्रायं ! अस्ति मे विशेषे । )

गीतमी—इमिणा वग्मोदएण निराबाध एव वे सरीर भविस्सदि [ अिरसि शकुन्तलामनुस्य ]  
अदे ! परिणवो विमहो । एहि । उदज एव यच्छम्ह । ( अनेन वग्मोदकेन निराबाधमेव ते सरीर  
विध्यति । वत्से परिणतो दिवस । एहि । उदकमेव यच्छाम । )

[ इति प्रस्थिता ]

14

राजा—जसे नये कोमल कुलवा रस भीरा वदे पानसे पीता है वैसे ही जज मुक्त प्यासे  
तो तुम्हारे कामका मयरीका रस पीनेको मिल जायगा तब छोड़ दूँगा ॥२२॥

[ ऐसा कहकर उसका मुँह ऊपर उठाना चाहता है । शकुन्तला रोनेकेर श्रमिनय करती है । ]

[ नेपथ्यम ]

अरी नकचो ! अयने प्यारसे विदा स । रात आ पहुँची है ।

शकुन्तला—[सिरगटाकर] पौरव ! जान पड़ता है मेरे सरीरकी क्या जाननेके लिये  
मार्था गीतमी यही भा रही हैं । इसलिये धाप जाकर इस वृद्धकी ओटमें छिप जाइए ।

राजा—अच्छा । [ छिप जाता है । ]

[ शायम एक पात्र लिये हुये शोनी सक्षिर्वाके साथ गीतमीका प्रवेश । ]

सक्षिर्वा—इपर प्रादए मार्था गीतमी अथर ।

गीतमी—[ शकुन्तलामे पास जाकर । ] वत्से ! तुम्हारे सरीर का ठाप कुछ कम हुआ ?

शकुन्तला—हाँ, अब तो कुछ खैर है ।

गीतमी—तो, इस बुझाके बसते तुम अन्धी हो जाओगी । [ शकुन्तलाके सिर पर जल  
छिड़कती है । ] वत्से ! किन डल गया है । प्राप्पो पचो, कुटोमें चलो । [ जाती है । ]

राजुन्ताया— [ धात्मगतम् ] हृष्यथ । षष्ठम एवम् मुहोवण्डे मणोरहे फादरभाव ॥ मुञ्चसि । साक्षुसप्रविहृदितस्त क्व ॥ सपद सदायो [ पदान्तरे स्थित्वा प्रथानम् ] सदायत्तम सदावहारम् धामन्तेमि तुव भूयो वि परिभोगस्त [ हृदय । प्रथममेव सुसोपनते मनोरथे नातरभाव न मुञ्चसि । सानुनायविषदितस्य भय ते यातत सताप । लतागस्य सतापहारम् धामन्थम् त्वा भूयोऽपि परिभोगाय ] [ इति दुःखेन निष्क्रान्ता राजुन्तया सहैतरामि । ]

राजा—[ पूर्वस्थानमुपेत्य सन्निव्यासम् ] बहो विष्णवत्य प्राथितार्थविद्यय । मया हि—

मुद्गुरङ्गुलिसंपृताधरोष्ठं श्रुतिपेवाचरविप्लवाभिरामम् ।

मुरसंसंविधति पद्मलाद्याः कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु ॥२३॥

कथ न कतु समति सपत्न्यामि । मयवा इहैव प्रियापरिभुक्तुक्ते सतावसये मुहूर्तं त्वास्त्वामि । [ सर्वतोऽपलावय ]

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता गम्या शिलापामिषं

फलान्तो मन्मथलेख्य एष नलिनीपत्रे नखैरपितः ।

हस्ताद्भ्रष्टमिदं विसाभरणमित्यासज्वसानेथयो

निर्गन्तुंसहसा न वेतसगृहान्छ्वन्नोमि शून्यादपि ॥ २४ ॥

[ धाकाते ]

राजुन्तया—[ मन ही मन ] हृदय । क्व तुम्हारा प्यारा धपने धाप या पट्टेवा या तव तो तुम करपोरु बने रहे । मन पछताते हुए विद्युत् जानेपर भयो रतना रो-नक्षय रहे हो । [ कुछ पग चलती है, फिर बड़ी होकर, प्रकट ] हे सन्ताप हरनेवाले सतापूज । विहारने लिय मैं मुन्हे फिर निमग्नण दे जाती हूँ । [ दुःखके साथ राजुन्तया प्रस्थान । ]

राजा—[ पहिलेके स्थानपर पहुँचाकर आह भरकर ] आह ! मनकी साथें पूरी होमके किताबी धापाएँ या कूटती है । बयौक—सुन्दर पलकीवाली राजुन्तयाव उस बुझको उठाकर मैं पूम भी नहीं पाया जिसके मोठकी यह बार-बार धपनी उँगलियोसे बकते जा रही थी जो बार-बार नहीं-नहीं कहते हुए बड़ा सुन्दर सब रहा था और जिसे वह बार-बार धपन बन्धेकी धोर मोटती जा रही थी ॥२३॥ अब यहाँ जाऊँ ? अच्छा इसी लता-कुन्ने मोठी देर ठहर जाना हूँ जहाँ प्यारी इतनी देर रहकर पसी गई है । [ चारों ओर देखकर ] इस पटियापर उसने पशोरके मसला हुआ यह फूलोंका बिछावन पड़ा है । कमलिनीने पक्षेपर नछोके तिता हुआ मोर मुरग्याया हुआ मह प्रेम पत्र था रखया हुआ है । उसने हाथोसे सूतकर धिरे हुए न बमलनातके धाभूपण भी बिसरे हुए है । इसलिये धपने नेत्रोंको उसमनेवाली इतनी वामुधोदे होते हुए बँलोसे धिरे हुए इस सुने सता-नक्षपको इतनी शीघ्र छोडकर मैं बहो मो जा रही था रहा हूँ ॥२४॥

[ धाकाते ]

राजन् !

सायंतने सवनकर्मणि संग्रवृचे वेदीं हुताशनवर्तीं परितः प्रपस्ताः ।  
छायाश्ररन्ति बहुधा भयमादधानाः संध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम् ॥२५॥

राजा—अपमदमायच्छामि । [ इति निष्क्रान्तः । ]

इति तृतीयोऽङ्कः ।

राजन्—रायनासने यज्ञ कर्मके आरम्भ होते ही बसती हुई अग्निवादी वैदिकीके चारो ओर सर्षिके मादसोके समान फासे-फासे और साव-साव डरावने राक्षस इपर-चपर घूमने लगे हैं ॥२५॥

राजा—मैं घाता हूँ । [ प्रस्थान । ]

तीसरा अंक समाप्त ।

## चतुर्थोऽङ्कः

[ ततः प्रविशत कुमुभावधम नाट्यन्त्यो सकृद्यो । ]

मनसूया—प्रियंवदे जह वि गन्धर्व्येण विहित्वा शिष्युत्तमन्ताराण सङ्गदला प्रशुभ्य-  
भलुगामिली संवृत्तेति शिष्युदं मे हिमम् तह वि पृत्तिर्भं चिन्तसिञ्ज । ( प्रियंवदे दद्यपि गान्ध-  
र्व्येण विधिना निवृत्तकल्पाणा सङ्कुम्भसाङ्कुम्भवर्तुगामिनी संवृत्तेति मे हृदय तदाप्येतावन्वि-  
स्तनीयम् । )

प्रियंवदा—कह विम । ( कथमिव । )

मनसूया—अज सौ राएतो इट्टि परिसमाविम इतीहि विस्तगिजमो भत्तलो एमरं पवि-  
सिभ मन्तेउरसमागवो इवोगवं युत्तन्तं सुमरवि वा ए वेति । ( अथ स राजपिपिदि परि-  
माप्य ऋपिमिबिसजिठ आत्मनो मगरं प्रविश्याम्य पुरसमागत इतीवत्त वृत्तान्त स्मरति वा न वेति । )

प्रियंवदा—दोसद्धा होहि । ए तादिसा भाकिदिबिसेसा गुणविरोहिलो होमि । तासो  
वाएण इमं युत्तान्तं सुसिभ ए जाणे कि पविगिजस्तवि सि । ( विसन्वा भव । न तादसा  
भाहिसिबिदेया गुणविरोशिनो भवन्ति । अह इदानोमिम युत्तान्तं धुत्वा न जाने कि प्रविश्यत इति । )

मनसूया—जह अहं देवतामि तह तस्य अशुभव भवे । ( यथाऽहं पश्यामि तथा  
तस्याशुभव भवेत् । )

प्रियंवदा—कहं विम । ( कथमिव । )

## चतुर्थ अङ्क

[ फल चुननेका अभिनय करती हुई दोनों सखियोंका प्रवेश ]

मनसूया—प्रियंवदा ! इस बातसे तो बीको बड़ा सजोय हुआ कि सभुम्भलाका माध्वर्ष  
विवाह हो गया और उसे योग्य पति भी मिला गया, पर यही बड़ी चिन्ता है ।—

प्रियंवदा—क्या ?

मनसूया—यही कि आज यज्ञ हो चुकनेपर जब ऋषियोंने विदा लेकर ये राजा पयने  
भारके रनिवासमे पहुँच जायेंगे तब यहाँकी सुभ उन्हें रह भी पावेगी या नहीं ?

प्रियंवदा—इसकी चिन्ता न कर । क्योंकि ऐसी बात-दानके सोप नपटी नहीं हुआ  
करते । पर ये सब बातें सुनकर न जाने पिताजी क्या करेंगे ?

मनसूया—गी अहाँक सभभती हूँ, ये इसका सभयन हो करेंगे ।

प्रियंवदा—तो ?

अनसूया—गुणवत्ते कण्ठप्रभा पट्टिवादण्ज्वेसि कर्षं दाय पद्मो संकम्पी । तं जइ वेत्वं  
एव संवादेवि एं अण्णमात्तेण किदत्तो गुरुअण्णो । ( गुणवत्ते कन्यका प्रतिपादनीपेत्थयं तावत्-  
प्रथमः संकल्पः । ॥ यदि देवमेव सरादवति नन्वप्रयागेन कृतार्थो गुरुजनः । )

प्रियवदा—[ पुष्पभाजनं विलोक्य ] सहि अवइदाइं यत्तिकम्मपज्जत्ताइं कुसुमाइं ।  
( सखि अक्षयितानि बालकमेपर्याप्तानि कुसुमानि । )

अनसूया—एणं सहोए सउन्दलाए सोहण्यवेवभा अण्वणोभा । ( ननु सक्याः शाकुन्तलायाः  
सौभाग्यदेवताऽवेनीया । )

प्रियवदा—तुरअदि । ( युज्यते । ) [ इति तदेव कर्मारभते । ]  
[ नेपथ्ये ]

असहं भीः ।

अनसूया—[ कण्ठं दत्त्वा ] सहि अदिपीएणं विअ सखिबेदिदं । ( सखि पतिघोनामिव  
निवेदितम् । )

प्रियवदा—एणं उअणसखिहिवा सउन्वला । [ भारमवत्तम् ] अण्ण उएहिअएए अत्त-  
सिहिवा । ( ननुतज समिहिता तानुत्तला ॥ अथ पुनर्हृदयेकासमिहिता । )

अनसूया—होइ । अणं एत्तिएहि कुसुमेहि । ( अथतु । अतमेवावद्भिः कुसुमैः । )  
[ इति प्रस्थिते ]  
[ नेपथ्ये ]

अनसूया—वर्तोक उतवा तो संकल्प ही या कि कीई योग्य बर मिल जायगा तो इतका  
बिबाह कर दोगे और जब यह काम देखने ही पूरा कर दिया है अब तो बिना परिश्रमके  
ही उतवा काम बन गया ।

प्रियवदा—[ फूलोंकी पिटापी देखकर ] सखी, यत्ति-वर्णके लिये इतने फूल तो बहुत  
होने न ।

अनसूया—क्यों ? अभी शकुन्तलाके नौभाग्य-देवताकी भी तो पूजा करनी है ।

प्रियवदा—हाँ, हाँ, ठीक कहती हो । [ फूल चुनने लग जाती है ]

[ नेपथ्यमें ]

अरे ! मैं माया हुआ हूँ ।

अनसूया—[ जान लगाकर ] यह तो निती पतिपित्री खोती जान पड़ती है ।

प्रियवदा—शकुन्तला को कुटीमें है ही । [ मन ही मन ] पर धाज यह कुछ अनमनी-  
सी हो रही है ।

अनसूया—असो, जाने फूलोंसे काम हो जायगा । [ प्रस्थान ]

[ नेपथ्यमें ]

मा. प्रतिधि परिभाषित ।

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम् ।

स्मरिष्यति त्वानं स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतमिदम् ॥१॥

प्रियवदा—हृदो हृदो । अस्मिन्न एव्य सद्युत् । कस्मिन्न पि प्रजापते प्रवरदा सुष्णहिप्रसा सवन्दसा । [पुरोऽपसोष्य] एण ह जस्सि कस्सि पि । एतो बुध्वातो सुतहकोवो महेतो तह सपिन्न येमयलुक्कुल्लाए दुव्वाराए रईए पडिण्णुत्तो । को अण्णो ह्दवहावो महिदु महववि । [हा विक् हा चिक् । अप्रियमेक सद्युत्प । कस्मिन्नपि पूभाहँणरादा सुन्धहदया अकुन्तता । न उलु यस्मिन्-कस्मिन्नपि । एण दुवांसा सुनमकोपो महविस्तया अण्णा वेगवसोक्कुल्लया दुव्वारया गत्वा प्रतिनिहूत्त । कोऽणो ह्दवहाहम्पु प्रथवति ।]

अनसूया—अण्ण पावेषु पणमिप सिलक्कोहि एण जल्ल मह अण्णोवम अण्णकेमि । [अण्ण पावयो प्रणुम्प निवर्तयँनम् । भावबहमधोवकमुपकल्पयामि ।]

प्रियवदा—तह । [तथा] [इति निष्कान्त ।]

अनसूया—[पदान्तरे स्तुतित निरूप्य] अण्णो अण्णोवमवसिवाए रईए पकभट्ट मे अण्णहृत्पावो पुक्कमाभए । [पहो भावेगत्तमितथा गत्वा अण्णट्ट वषाप्रदस्तापुण्यमजजणम् ।] [इति पुण्योचय रूपमति ।]

[प्रविश्य]

प्रियवदा—तस्मि पकिविपद्दो सो कस्स अण्णत्तम पडिण्णुत्ति । किं पि उण्ण साण्ण्णोतो विवो । [सखि अण्णत्तियक स वत्सानुनय प्रविण्णुत्ति । किमपि पुन साण्ण्णोव क्व ।]

परी माँ, प्रतिधिका अपमान करनेवासी । जिसने ध्यानसे इतनी बात होकर लू मुझ जैसे तपस्वीके धानकी भी सुभ नहीं ले रही है वह बहुत स्मरण दितानेपर भी मुझे उसी प्रकार भूल जायगा जैसे पागल मनुष्य अपनी पिछली बात भूल जाता है ॥१॥

प्रियवदा—हाय हाय ! यह तो बड़ा बुरा हुआ । जान पड़ता है कि अपने बेटुधरमनें सकुन्तलाने किसी पुत्रनीय महात्माका अपमान कर दिया है । [सामने देखकर] और वह भी किसी ऐसे-वैसेका नहीं । ये तो तनिकतो बातपर विगड लगे हीने वाले महर्षि दुर्वासा ही हैं जो साय देकर शोधसे काँपते हुए परीसे वेचसे लींटे पने जा रहे हैं । क्या भागकी छोड़कर जाननेका काम और कौन करेगा ?

अनसूया—जा, उनके पैरों पटककर उन्हें सोटा ला । तबतक मैं अर्घ्यका जल ले आती हूँ ।

प्रियवदा—अच्छी बात है । [प्रस्थान]

अनसूया—[शे एक पथ चलकर ओकर ला आती है ।] हाय हाय ! भयटकर चलनेसे ऐसी ओकर लग गई कि हाथ से फूलकी पिटाही ही छूट पड़ी । [फूल चुननेका अभिनय करती है ।]

प्रियवदा—[प्रवेश करके] सखी, ये तो बड़े टेढ़े व्यक्ति हैं । वे क्या किसीकी सुनते हैं ? फिर भी मीने उन्हें किसी प्रकार सोडा बहुत मना लिया है ।



अनसूया—[सस्मितम्] तस्मिं बहु एव पि । नहोहि । (तस्मिन्बद्धेतेवपि । कथम् ।)

प्रियवदा—अत्रा स्तिनतिदं एव इच्छन्ति तदा विष्णोःविदो मए । भग्नय पठमं त्ति वेदिस्रभ  
अविष्णोःवतवप्यहावस्स दुहिदुजणस्स भग्नवदा एषको अवरारो भरिसिदव्यो त्ति । (यदा निर्वातितु  
नेच्छति तदा विज्ञापितो मया । भगवन् प्रथम इति प्रेर्य अविज्ञाततप प्रभावस्य दुहितुजनस्य भगवते-  
कोऽवराधो मर्यादितम् इति ।)

अनसूया—तदो तदो । (सतस्ततः)

प्रियवदा—ततो एव मे यन्नस्य अण्डहावविदु परिहृवि किन्तु अहिण्णस्यभरणदंसारोण साधो  
रिणवित्तसदि त्ति मन्तन्नतो समय अन्तरिहृदो । (ततो न मे यचनमन्ययाभवितुमर्हति किन्तुभिज्ञाना-  
भरणदंसारोण साधो निर्वातित्यते इति मन्तवत्स्वयमन्तर्हित ।)

अनसूया—सकं दासि अस्तसिदु अस्त्य तेण राएतिसा। सप्रस्थितेण सणामहेप्रन्दिमं  
प्रंणुलीअमं सुमरणीमं त्ति सधं पिएडं । तस्मिं साहीखोयाया सज्जन्ता भयिस्संवि । (अनसूया-  
नीमाच्छित्तुम् । अस्ति तेन राजसिखा सप्रस्थितेन स्वनामधेयाद्भित्तमद्भुलोयकं स्मरणीयमिति  
स्य विमडम् । तस्मिन्साधीनोयाया सकुन्तना भविष्यति ।)

प्रियवदा—साहि एहि देवकज्जं दाय से तिण्णत्तंम्ह । (सखि एहि देवकार्यं दावदस्या  
निर्वर्तयाय ।)

[इति परिश्रमस्य ।]

प्रियवदा—[दिलोक्य] अणसूए केसल हाव । कामहस्योबहिबवभएण आसिहिदा विभ  
विमसहो । अत्तादाए चिन्ताए अत्ताए पि एव एसा विभावेवि कि एव अाअनुमं । (अनसूये मय  
साय । कामहस्तोपवृत्तवदनाऽऽसिचित्तैव प्रियवदो । भर्तृगतया चिन्तयाऽऽजमानमपि मया  
विभाषयति कि पुनरागन्तुकम् ।)

अनसूया—[गुस्कराकर] इतना भी क्या कम है । बहो क्या किया ?

प्रियवदा—जब वे किसी प्रकार भी लौटनेको तैयार न हुए तब मैंने प्राचना की कि भगवद् ।  
एक तो शाकुन्तलाका यह पहला ही प्रपराय है, फिर वह आपके तेजका प्रभाव भी नहीं पहचानती  
है, इसलिये पहले कम इस बार तो उसे क्षमा कर ही दीजिए ।

अनसूया—तब ?

प्रियवदा—तब वे इतना ही कहकर अन्तर्धान ही गए कि मेरा बन्धन तो भूटा हो नहीं सकता ।  
हाँ, इतना ही सकता है कि यदि यह कन्या अपने प्रेमीको कोई पहचानना आनूपण दिखला दे  
तो मेरा नाप छूट जायगा ।

अनसूया—बसो, कुछ सो जी इतना दुषा बयोनि उस राजपिने चलते समय अपने नामवाली  
संगूठी दी थी । यत यह संगूठी ही शाकुन्तला के शापका सहज उपाय है ।

प्रियवदा—नथी । धनो अबतब देव-पूजनका नाम पूरा कर लानें । [धूमती है ।]

प्रियवदा—[देखकर] देखो तो, बाएँ हाथपर गाँस रखे हुए प्यारी सती कंठी चित्र-निखी  
को दिखाई दे रही है । पतिकी चिन्तामें जब यह अपनी ही सुष-नुष सो बँधी है, तब फिर  
अनिधि की मौन गद्दे ।

धनसूया—प्रियवदे दुयेहं मन्व ख सो मुहे एसो युक्ततो चिट्टु । रविधवदया वसु पकिदिपेलवा पिध्रातहो । ( प्रियवदे द्वयोरेव ननु नो मुख एव वृत्ता-तरितष्यतु । रदितभ्या क्षनु प्रवृत्तिपेसया प्रियमसो । )

प्रियवदा—को शाम उण्होदएण सोमातिमं सिञ्चेदि । ( को नामोप्योदकेन नवमासिका सिञ्चति । )

[ हत्युभे निष्क्रान्ते ]

॥ विष्कम्भकः ॥

[ तत्र प्रविशति सुसोरियत शिष्य । ]

शिष्य—वेतोपतक्षरार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रप्रवृत्ता प्रयासादुपायुक्तेन बन्धेन । प्रकाश निर्गतस्तावद्-  
बलोकयामि कियदवशिष्ट एजम्य इति । [ परिष्कन्यावलोचय च ] हन्त प्रयातम् । तथा हि—

यात्येकतोऽस्तशिशिरं पतिरोपधीना-  
भाचिष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः ।  
तेजो ह्यस्य युगपद्वृष्यसनोदयाभ्यां  
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥ २ ॥

अपि च—

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न बन्दयति संस्मरणीयशोभा ।

हृष्टप्रवासजनितान्यमलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ॥ ३ ॥

धनसूया—प्रियवदा ! देखो यह बात हमारे तुम्हारे जान तक ही रहे । क्योंकि शकुन्तला  
बड़े कोमल स्वभावकी है । उसकी रक्षा तो करनी ही होगी ।

प्रियवदा—हाँ हाँ, यह तो है ही । नवमस्तिफाकी सहस्रहाती सतायों खोलते हुए पानीसे  
भला कौन पीयेगा । [ प्रत्याप । ]

॥ विष्कम्भकः ॥

[ लोकर उठे हुए एक शिष्यका प्रवेष्ट । ]

शिष्य—बाहरले शमी सोटे हुए पूज्य कन्धने मुझे यह देखनेको कहा है कि अभी रात कितनी  
रह गई है । इतलिये चर्तू बाहर बसकर देखूँ । [ इधर-उधर घूमकर धीरे धाकाशकी धीरे  
देखकर । ] भरे यह तो दिन निकल आया । क्योंकि—एक धीरे धीरेपि-पेके पति चन्द्रमा  
अस्ताचलको चले जा रहे हैं धीरे दुसरो धीरे अपने सारकी मरुतको धाये किए हुए सूर्य निकल  
रहे हैं । इन दो तेजस्विमोके एक साथ उदय धीरे अस्ताको देकर सभारको यही खिशा मिलती है  
कि दु खके पीछे गुल धीरे सुखके पीछे दु ख गया ही रहता है ॥२॥

धीरे भी देखो—चन्द्रमाने अस्त हो जाने पर अब कुमुदिनी अम्बेको नहीं भाती । उसकी  
शोभा केवल कल्पनामे ही रह गई है । सबमुख जिन स्त्रियोंने पति परदेस चने जाते हैं वे  
वियोगका दुःख कैसे सह पाती होगी ॥३॥

[ प्रविश्यापटीक्षेपेण ]

अनसूया—जइ वि खाम विसभपरम्मुहस्त वि जइस्त एद ए विदिम तह वि तेण रण्णा सउन्दलाए अण्णज भाअरिद । ( यद्यपि नाम विषयपरदाह्मुलस्यापिजनस्यैतन्न विदित तथापि तेन राजा सकुन्तलायामनार्यायाचरितम् । )

शिष्य — दाबदुपत्तियता हीमवेता गुरवे निवेदयामि । [ इति निष्कन्त ]

अनसूया—पठिबुद्धा वि कि करिस्त । ए मे उइवेसु वि एिअकरण्णजेसु हएषपाभा पसरति । कामो दाएण सकामो होहु जेण अरअत्तसथे जणे अण्णएहिममा सही पव कारिवा । अहया बुव्वासतो कोवो एसो विघारोवि । अण्णहा कह सो राएतो तारिटाएिमन्तिअ एतिअस्त कालस्य लेहमेस पि ए क्षित्तजेदि ता इवो अहिण्णएण अगुलीअअ से पिसण्णेम । बुवजसोले सधस्सिजएणो को अअतयोअहु । ए सहीयामी दोसो ति व्यवसिवा वि ए पारोमि पवासपडिण्णजतस्त ताअकण्णस्त बुरसन्तपरिसोद आअण्णसत्त अउन्वत्त एिबेदिबुं । इएयए अहोहि कि करण्णज । ( प्रतिबुद्धाअपि कि करिष्ये । न मे उचितेष्वपि निजकार्येषु हस्तपाद प्रसरति । काम इदानीं सवामी भवतु येनाअर्यसथे जने अनन्वहृदया सतो पव कारिता । ममया दुर्वासस कोप एव विकारमति । अथवा कम स राजपिस्त्राहवानि मन्वपितृवैतापरकालस्य लेखमात्रमपि न विवृजति । एतिसीअभिज्ञानमह्मुनीयक सस्य विसृजाव । दुखशीले सपस्विजने कीअन्यर्ष्यताम् । ननु सहीयामी दोग इति व्यक्तितार्पि न पारयामि प्रवासप्रतिनिवृत्तस्य तातकण्वस्य दुष्प्रसन्नपरिणोतामापन्नसत्वा सकुन्तला निवेदमितुम् । इत्यगतेऽस्माभि कि करणोयम् । )

[ प्रविश्य ]

[ परदेको भट्टेसे उठानर अनसूया प्राती है । ]

अनसूया—[ भाव ही भाव ] यद्यपि मैं प्रेयसी बातें कुछ भी नहीं जानती फिर भी इतना तो धरप कह सकती हूँ कि उस राजाने शकुन्तलाके साथ अण्ण व्यवहार नहीं किया ।

शिष्य—बन्नें गुरुजीसे चलकर बताऊँ कि हृदयका समय ही गया है ।

[ प्रस्थान ]

अनसूया—जाग तो गई हूँ, पर क्या बताऊँ, यहाँ अपने नित्यक कामके लिये मैं हाथ-पैर नहीं उठ रहे हैं । अब कामदेवका जो तो भर गया होगा कि मेरी सच्ची सखी उब झूठका इतना दिरवाग कर बेंटी । यह कौन जाने दुर्भाग्याके सापका ही फल हो, नहीं तो पत्नी भीठी-भीठी बातें करनेवाला वह राजपि इतने दिन बीत जाने पर भी क्या एक पथ उब न लिख भेजता । अब उसे कुछ दिनांशने लिये उसने पाप अंगूठी भेजनी ही पड़ेगी । पर कठोर जीवन बिताने-वाले इन उपस्थिपयोगिसे किससे अंगूठी पहँवानेको कहा जाय । बाहरसे छोटे हुए तात मण्वसे मैं सपोंके सपरायकी बात तो कह सकती हूँ पर उनसे यह नहीं कह पाऊँगी कि सकुन्तलाका राजा दुष्प्रसन्ने विवाह हो गया है और उसे गर्भ भी है । अब क्या कहे ?

[ आकर ]

प्रियवदा—[सहस्रं] सहि तुवर तुवर सज्जन्ताए फपाएकोहुमं रिण्यतिदुं । (सखि स्वरस्व श्वरस्य शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुक निर्वर्तयितुम् ।)

मनसूया—सहि कहं एवं । (सखि कथयतेत्) ।

प्रियवदा—सुसाहि । दासि सुहस्रद्वन्द्विभा सज्जन्तासभासं गदमिह । (शृणु । इदानीं मुलदायनपृच्छिका शकुन्तलासभाश्च गतार्जसिम् ।)

मनसूया—तयो तयो । (ततस्तत्) ।

प्रियवदा—तयो आब एसं सज्जन्ताएवमुहि परिस्तत्रिभ तादकण्येए एवमं सहिलगिदं—  
विद्विभा धूमजनिवविद्विलो वि जग्नभाएस्त भाभए एष्व भाहुदी पकिहा । मज्जे मुतिस्त परिदिण्णा विज्जा विघ घसोभलिज्जा सज्जता । भज्ज एष्व इतिरविज्जदं तुमं भत्तुणी सभासं विसज्जेमि सि । (ततो यावदेना सज्जन्तानुसुकी परिप्वज्य तातनव्येनैवमभिनदिशतम्-दिश्या धूमा-  
भुमितवष्टेरपि मज्जमाजस्य पायक एवाहुतिः पतिता । वरते मुनिष्यपरिदसा विद्येजाकोचनीया सज्जता । मर्यैव ऋविरसिता त्वा भर्तुं सहाश विसर्जयामीति ।)

मनसूया—मह केण सुदो तादकण्यस्त तुतन्तो । (अथ केन सुवितस्तातनव्यस्य वृत्तान्तः ।)

प्रियवदा—मगिसरए पविदुस्त सरीरं विणा छन्दोमदए वासिभाए । (मगिसरणं प्रविष्टस्य सरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या ।)

मनसूया—[सविश्रमवम्] कहं विभ । (कथयिष्ये ।)

प्रियवदा—[दुर्घटे] उलो ! खो भयटकर । शकुन्तलाकी बिबाईका प्रबन्ध करना होगा ।

मनसूया—सखी ! यह सब कैसे हो गया !

प्रियवदा—सुन ! मैं अभी शकुन्तलाके पास पहुँचे गई थी कि तू रातको सुखते सीई है या नहीं !

मनसूया—कब-कब ?

प्रियवदा—तबतक तात कब या पहुँचे धीर नाजमे बडी शकुन्तलाको पसेते बगावर यह मानवकी शाय बोले—बस्ते ! आब धीरोमे सुखी भर जानेपर भी योग्यमे यजमानकी भाहुति ठीक धनिके बीचमे हो पड़ी । इसनिचे जैसे योग्य रिण्यको विदा देनेमे मनमे दुःख नहीं होता जैसे ही तुम्हे भी योग्य पतिके हाथमे देते हुए तुम्हे भी दुःख नहीं है मैं भाव ही तुम्हे ऋषियोके साथ तेरे पतिके पास भेज दूँगा ।

मनसूया—धीर तात कबको यह बताया किसने !

प्रियवदा—जैसे ही तात बन्ध बज्जामामे पहुँचे जैसे ही धन्दमे बंधी यह भाकाश-वाणी सुनाई दी—

मनसूया—[भाष्यसे ] क्या ?

प्रियवदा—[सकृत्तमाश्रित्य]

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भृतये भुवः ।

अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भा शमीमिव ॥४॥

अनगूया—[प्रियवदायादित्य] सहि विप्र मे । किन्तु अन्न एव सउन्दता सोमदि त्ति अन्नकटाहारणं परितोस भक्षुदोमि । (गति प्रिय मे । कि स्वयं वक्तुस्तना नोयस इत्युत्कण्ठा-ज्ञाधारण परितोदमनुभवामि ।

प्रियवदा—सहि वन्न वाव उह्कं विलोदइस्साभो । सा सवस्तिषी शिभुसा होडु । (सकि माया तावदुत्कण्ठा विभोदयिष्याव । सा तपस्विनी नियुंता भवतु ।)

अनगूया—तेण हि एवस्ति भूवताहावतन्बिदे शरिपरसमुगण एतन्निमित्त एव कालगतदरक्षमा शिविप्रता मए केसरमासिषा । ता इम हृदयसंलक्षितं करेहि जाय अहं पि ते मन्नलोमण तित्यमित्तम दुष्वाकिसलवाणि त्ति भगवत्प्रमातन्भराणि विरएमि । (तेन ह्येवस्मिदूषयाऽप्यावतन्बिदे नारिकेतसमुदभवे एतन्निमित्तमेव ब्रह्मन्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसर-मासिषा । तदिमा हस्ततनिहता वृद्ध यावदहमपि तस्य भृशरीचना शीर्षभृत्तिवा दुष्वाकिसलयानीति भगवत्प्रमातन्भवानि विरचयामि ।)

प्रियवदा—तह करोमनु । (तथा क्रियताम् ।)

[अनगूया निष्क्रान्ता । प्रियवदा नाट्येव गुमनयो गृह्णाति ।]

[नेपथ्ये]

प्रियवदा—[सकृत्तमे मोक्षती हे ।]

जंसे यमो भृशने श्रीतर हीठा हे वाववना वास ।

यंसे ब्रह्मन् । इय ब्रह्मामे जग-हित वीरव-तेज विदास ॥५॥

अनगूया—[प्रियवदाते गते सगावर ।] उसो ! मैं तो पूछी नहीं तबाली । पर इन हृदयमे दुःखी यात हगनी ही हे वि शकुन्तला भान ही षची जाययी ।

प्रियवदा—हम सोन तो भवने मनको ज्यो त्यों समझा लेंगे, पर यह वैचारी तो बिची प्रकार मुगी रहे ।

अनगूया—वह जो धामकी शानीवर नारियस मटक रहा है उतमे मेने बहुत दिनोंतक दुःखिपत रहनेवाली शकुनकी भावा पात्रके ही निचे रण छोटी है । उधे उठार तो ले घा । उबतर मैं मोरोवन, शीर्षी विट्ठी, बोसम दूरके अकुने घादि भगव-सामप्रियां पुडाए तापी हैं ।

प्रियवदा—अच्छा यही करो । [अनगूया जाती है । प्रियवदा मात्र उठारलेका नाट्य करती है ।]

[नेपथ्ये]

गीतमि ! आदिशयन्तां आद्गंरवमिथा शकुन्तलानयनाय ।

प्रियवदा—[ क्यों बत्का ] अणसूय तुवर सुवर । एदे षष्ठु हस्तिनापुरगमिलो इतीभो सहायोअन्ति । ( अनसूय खरस्व खरस्व एतै खनु हस्तिनापुरधामिन ऋषय शब्दापयन्ते । )

[ प्रविश्य समात्तम्भनहस्ता । ]

अनसूया—सहि ! एहि गच्छम्ह । । सखि ! एहि गच्छय । )

[ इति परिभ्रमते । ]

प्रियवदा—[ विलोक्य ] एसा सुजशोवए एष्य सिहानगिषवरा पबिन्दिबएयोषारहत्याहि सोस्तिदाअणकाहि तावसीहि अहिलन्वीअभाला सडन्वला विट्टह । उवसणम्ह ए । ( एया सुषोषय एय शिकानजिक्ता प्रतिष्ठितभोवारहस्ताभि स्वस्तिवापनिकाभिस्तापसीभिरभिनन्दयमाना शकुन्तला तिष्ठति । सवसर्वाणि एनाम् । )

[ इत्युपसर्पते ]

[ तत्र प्रविधाति यद्योदित्थ्यापाराऽऽयनस्था शकुन्तला । ]

शापघीनामन्वतमा— [ शकुन्तला प्रति ] जादे अत्तुएो बहुभाएसुअप्र महावेईएव सहेहि । ( जाते भर्तुबहुमानसूषय महादेवीशब्द सभरूप । )

द्वितीया—बच्छे वोरपसविलो होहि । ( वत्से वोरपसविनी भव । )

तृतीया—बच्छे भत्तुएो बहुभा होहि । ( वत्से भर्तुबहुमत भव । )

[ इत्यादिषो इत्वा गीतमीवर्षे निष्क्रमताः । ]

सख्यो—[ उपसृत्य ] सहि सुहमज्जख दे होडु । ( सखि सुहमज्जख ते भवतु । )

शकुन्तला—साम्भ मे सहीए । इवो शिषोबह । ( स्वागत मे सख्यो । इतो निषीवतम् । )

गीतमी । शाङ्करव आदिस कहो कि शकुन्तलाको पहुँचा जानेके लिये तैयार हो जाय ।

प्रियवदा—[ कान लगाकर ] अनसूया ! बलो बलो, हस्तिनापुर जानेवाले ऋषियोंकी बुलाहट हो रही है ।

[ हापने सामथी लिए हुए अनसूयाका प्रवेश । ]

अनसूया—मायो सखी, चलें । [ शोषो धूमती है ]

प्रियवदा—[ देखकर ] यह लो । शकुन्तला तो दिन निकले ही नहा धोकर भँठी है और ये सब उपस्विनिनी हाथमे स्निग्धोके जाने लेकर उठे आधीर्वाद दे रही है ! चलो हम भी वही चलें । [ आगे बढ़ती है । ]

[ जैसा ऊपर कहा गया है उस रूपमे शकुन्तला दिखाई देती है । ]

पहली उपस्विनी—[ शकुन्तला ] बत्से ! तुम पतिसे आदर पानेवाली पटरानी बनो ।

दूसरी उपस्विनी—बत्से ! तुम वीर बुजकी माता बनो ।

तीसरी उपस्विनी—बत्से ! तू पतिकी प्यारी हो ।

[ यह आधीर्वाद देकर गीतमीको छाडकर धीरे धीरे चली जाती है । ]

शोनी सखियाँ—[ शकुन्तलाके पास जाकर ] सखी ! तुम्हारा नहाना धोना पने फूले ।

शकुन्तला—मायो सखियो ! स्वायत्त करती हूँ । मायो बैठ जाओ ।

उभे—[ मङ्गलप्राप्त्यादाय उपविश्य ] हला सञ्जा होहि जाव दे मङ्गलसमानम्भर्ण  
विरण्णम् । ( हला सञ्जा भव, यावत्ते मङ्गलसमानम्भन विरत्तयावः । )

शकुन्तला—इदं पि बहू मन्तव्यं दुल्लहं वासि मे सहीमण्डणं भविस्सदि ति । ( इदमपि  
बहू मन्तव्यं दुल्लंभमिदानी मे सहीमण्डन भविष्यतीति । ) ] इति वाष्प विवृजति । ]

उभे—सहि उइधं एव वे मङ्गलकाले रोइइं । ( सधि ! उचितं न ते मङ्गलकाले रोदिणुम् । )  
[ इत्ययूष्णि प्रमुच्य नाट्येन प्रसाधयतः । ]

प्रियवदा—आहरणोइदं रुचं धत्तमसुलहेहि पत्ताहणं हि विष्णुधरौप्रदि । ( आहरणोचितं  
रूपमाश्रमसुलभैः प्रसाधनैकप्रकायैः । )

[ प्रविशोपायनहस्तावृषिकुमारको । ]

समी—इदमलंकरणम् । अलंश्रियतामत्रभवती ।

[ सर्वा बिलोक्य विस्मिता । ]

गौमती—वधु एारण कुदो एवं । ( वत्त नारद कुत एतम् । )

प्रथमः—तातकण्यप्रभावात् ।

गौतम—किं नाणसो सिद्धी । ( किं मानसी सिद्धिः । )

द्वितीयः—न खलु । भूयताम् । तत्रभवता नयमात्ताः शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुमुमा-  
न्याहरणेति । तत्र इवानी—

दोनी—[ मंगल-मात्र लिए हुए बैठती है । ] अञ्जा सखी ! संवार हो आओ । भव हम  
कुम्हारा मंगल-भृङ्गार वरौणी ।

शकुन्तला—यह तो बड़े सीमाभकी बात है, क्योंकि सखियोंके हाथना सिंगार भव  
कुन्ने भला मिल वहाँ पावेगा । [ सिसकने लगती है । ]

दोनी—सखी ! ऐसे शुभ भवसरवर रोया नहीं जाता ।

[ अंशु बोझकर उसे सजानेका नाट्य करती है । ]

प्रियवदा—सखी ! कुम्हारे लपके लिये तो और अच्छे-अच्छे मांगूण होने चाहिये  
थे । आश्रमके कुटाई हुई इन सिंगारकी सामर्थ्योसे तो तुम अच्छी नहीं लगती हो ।

[ हाथीमे उपहार लिए हुए दो ऋषि-कुमारोंका प्रवेश । ]

दोनी ऋषिकुमार—यह लीजिए, मांगूण, देवीको इनसे सजाए ।

[ देखकर धन चकित होती है । ]

गौमती—क्यों वत्त नारद ! यह सब तुम कहाँसे पा गए !

पहला—पिता कण्वके प्रभावसे ।

गौमती—यना जनने तपके बलसे ?

दूसरा—नहीं जी ! सुनिए तो मही । पूज्य कण्वने हुगे आजा दो यो कि शकुन्तलाके लिये  
सजा-वृक्षोके फूल-पत्ते ले आओ । दसपर—

द्यौं केनचिदिन्दुपायद्वतरथा माङ्गल्यमाविष्कृतं  
 निष्ठयूतधरखोपभोगसुलभो लावारसः केनचित् ।  
 अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-  
 र्दत्तान्याभरन्नि तत्किमलपोद्भेदप्रतिद्विन्द्विमिः ॥५॥

शिर्यवदा—[सपुन्तला विनोवण] हला इमाए अम्भुवततोए सुदया दे भतुलो नेहे अण्ड-  
 होदया रामन्निप्रति । [हला अणयाअम्भुपपरया मूर्निता ते अणुगेहेअुभदितया राजसदपीरिति ।]

[सपुन्तला प्रीडा रूपयति ।]

प्रथमः—योत्तम एह्ये हि अमिदेहोत्तोर्लाय कण्पाय वनस्पतितेय्यं निवेदयायः ।

द्वितीयः—तथा ।

[ इति निष्प्रान्ती ]

रावणो—अए अण्डवकुत्तभूतलो अणं अलो । चित्तकण्पपरिअएण अण्णेसु दे आहरणयिलिअोअं  
 करेण् । [अदे अणुरपुकभूपणोअय जन । चिमअमंपरिअवेवाङ्गेणु ने आभरणाभिनियोग कुम् ।]

सपुन्तला—जाणे वो खेअणं । [जाने वा मंगुणम् ।]

[उभे माट्केनासकुप्ल ।]

[सत प्रविद्यति स्नानोत्तीर्णं कथ्यः ।]

विद्यो वृक्षाने शुभ मागनिक यत्न वे दिवा, किमीने परमे सजानेकी महार देरी प्रौर वन-  
 देविमीने तो वीपलोके होए वरके वृत्तोमसे वनाईतव यवने हाए विरानवर दहयसे आभूयण  
 वे आले हैं ॥५॥

प्रियवशा—[सपुन्तलाको देखकर] सखी ! ये सज्जन यथा एहे हैं वि बतिये परमे सुम राम-  
 सखी यवने सुत श्रीगोत्री ।

[सपुन्तला सजानेका वाक्य करती है ।]

पहला—पत्नी, गीतव ! स्नान करके मुखी आ गए हैंवे । इन वेद-वेषोंके जो मण्डुए दी हैं  
 इसका समाधार उन्हें भी सुना भायें ।

दूसरा—सखी । [दोनोका प्रथमान ।]

दोनो सखियाँ—सखी ! हमने तो कभी आभूषण पत्र नहीं है, पर विद्योके जंता देता प्रौर  
 सीधा है उची इयते सुन्दारे दादीरवर भी आभूषण पहना देनी हैं ।

सपुन्तला—मैं सुन दोनोकी सतुरता यकी गांठि जानती हूँ ।

[दोनो आभूषण पहनानेका माट्य करती है ।]

[स्नान करके लौटे हुए कथ्यका प्रथम ।]



कण्वः—

यास्यत्ययं शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टयुत्कण्ठया

कण्ठः स्तम्भितवाप्पञ्चिकलुपश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।

वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः

पीडयन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥६॥

[इति परिक्रामति]

कण्वी—हला सज्जन्ते ! अस्मिदमम्बर्यासि परिपेहि संपदं सोमनुग्रहं । (हला शकुन्तले अवसितमण्डनासि । परिपरस्यं साप्रतं धोमयुवकम् ।)

[शकुन्तलोत्थाय परिपत्तं]

गीतमी—जाते ! एतो वे आणन्दपरिवाहिला चरुणुणा परिस्सज्जन्ते विभ्रं पुक्क उवह्विदो । आमारं वाय पञ्चिज्जत्स । (जाते एय ते आणन्दपरिवाहिला चरुणुणा परिप्ववणाय एव युत्कण्ठस्थितः । आचारं तावत्प्रतिपद्यस्व ।)

शकुन्तला—[सतीकम्] ताव वन्दामि । (तात वन्दे ।)

कण्वः—पारसे !

ययातेरिव शर्मिष्ठा मर्तुर्वहुमता भव ।

सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ॥७॥

गीतमी—अमर्षं करो वक्खु एतो ए आसिक्का । (मगववु परः कल्पेवः । नादीः ।)

कण्व—आज शकुन्तला बत्ती जायगी, यह सोचते ही जी बँध या रहा है । माँगुषोंको रोक्नेसे एला इतना रूष गया है कि मुँहसे लम्ब नहीं निकल रहे हैं और इसी चिन्ताने मेरी आँखें भी धूँषनी पड़ गई हैं । जब मुझ-जैसे यजमातीको इतनी व्यथा हो रही है तब उन बेचारे बृहस्पतिओ किणना कण्ट होना होगा जो पहले-पहल अपनी कन्याको मिया करते होंगे ॥६॥

[पूजते हैं ।]

सखियाँ—शकुन्तला ! तुम्हारा खिमार तो पूरा हो गया । लो, अब यह रोगी बस्तीका जोड़ा भी पहन लो ।

[शकुन्तला उठकर पहनती है ।]

गीतमी—वसने ! तात कण्व इयर ही या रहे हैं । आणन्दके माँगुषोंके इतकतो हुई उनको माँसोंको देखकर जान पडता है मानो वे अपनी आँखें ही तुम्हें मने लगा रहे हों । उन्हें प्रणाम तो करो ।

शकुन्तला—[सहाती हुई] प्रणाम करती हूँ मितानी !

कण्व—वसो ! जैसे ययासि अपनी पत्नी माँगुषाना सादर करते थे वैसे ही तेरे पति भी तेरा सादर करें और माँगुषाके पुत्र पुत्रके समान ही तुम्हें वक्रवर्ती पुत्र भी प्राप्त हो ॥७॥

गीतमी—मगववु ! यह तो आपने बरदान दिया है, माँसोंवाँद नहीं ।

कण्वः—वसते ! इतः सद्योद्वृत्ताग्नेन्द्रवसिष्ठोऽङ्ककण्वः ।

[ सर्वे परिव्रजामन्ति । ]

कण्वः—[ अत्र द्रव्यं साऽऽस्तास्ते । ]—

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्धन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः ।

अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैर्वैतानास्त्वां बह्वपः पावयन्तु ॥८॥

प्रतिष्ठस्वेवानीम् । [ सट्टित्क्षेपम् ] एव ते शार्ङ्गं रवमिभ्याः ।

[ प्रविशतः ]

शिष्यः—भयमाप् इमे रमाः ।

कण्वः—धर्मिन्यास्ते मार्गमावैश्याय ।

शार्ङ्गं रवः—इत इतो भवती ।

[ सर्वे परिव्रजामन्ति । ]

कण्वः—ओ धोः संगिहितवेधतास्तापोधनतरव ।

यातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या

नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या प्लुतवम् ।

आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः

सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुजायताम् ॥ ९ ॥

कण्वः—वसते ! यज्ञो, यज्ञिने यज्ञी शार्ङ्गति पड़ी है, बलकर उछकी प्रदक्षिणा कर ली ।

[ सब प्रदक्षिणा करते हैं । ]

कण्वः—[ शत्रुवैदने द्रव्ये प्राप्तीर्वादे देते हैं । ]

गिरी कुशासे यमास्वान घेदीपर समिधासे जलती ।

हव्य गन्धकी यन्धररी करवें पवित्र ये यग्नि तुम्हे ॥८॥

एव बसो । [ अघ्न-उघ्न देखकर ] घरे ! ये सब शार्ङ्गं रव प्रादि कहीं हैं ?

शिष्यः—[ प्रवेत करके ] भगवन् ! ये हैं हम लोग ।

कण्वः—ताऽभो ! भवनी बहूतकी पहुँचा आओ ।

शार्ङ्गं रवः—दधरसे आओ देवी, दधरसे ।

[ सब घुमते हैं ]

कण्वः—यम-देवताधर्मि भरे हुए सपीवन्ने वृद्धो !—ओ बहूते तुम्हें पिलाए बिना स्वयं जल नहीं पीती थी, ओ प्राज्ञयज्ञ पहलनेका प्रेम होने पर भी, तुम्हारे स्नेहके कारण तुम्हारे कौमल्य पत्नीकी हाथ नहीं लगती थी, ओ तुम्हारी नई कलियोंको देना देना कर प्लुती नहीं समाती थी, वही शकुन्तला आज अपने पतिके घर जा रही है । तुम सब इसे प्रेम से बिदा लो दो ॥९॥

कण्वः—

यास्यत्यथ शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया

कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकल्पुश्रिन्ताजटं दर्शनम् ।

वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्याकसः

पीडयन्ते गृहिष्यः कथं नु तनयाविरलेपदुःखैर्नवैः ॥६॥

[इति परिक्रामति]

सत्यो—हृता सज्ज्वले । अक्षतिसमग्दखाति परिवेहि संपवं सोमनुभ्रतं । (हृता शकुन्तले प्रवसितमग्दनाति । परिचस्वे साप्रन दामयुगलम् ।)

[शकुन्तनोत्थाय परिवर्त्ते]

गौतमी—आरे ! एतो दे आलम्परिवाहिणा चक्षुसा परिस्सज्जतो विभ्र गुरु उवट्टियो । आभारं वाच पडिबग्जसस । (आते एप ते मानग्दपरिवाहिणा चक्षुसा परिप्यजनाय इव गुरुरुपस्सितः । आचारं तावत्प्रतिपद्यस्व ।)

शकुन्तला—[सञ्जीवम्] ताव वन्दामि । (ताव वन्दे ।)

कण्वः—वत्से !

ययातेरिच शर्मिष्ठा भर्तुर्वहुमता भव ।

सुतं त्वमपि सत्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ॥७॥

गौतमी—भयवं करो णु एतो एव प्राप्तिसा । (भयवन् वरः सत्स्वैवः । नास्ती ।)

कण्व—आज शकुन्तला अपनी जायगी, यह सोचते ही जी बँटा जा रहा है । भ्रातृभोको रोकनेसे गला इतना रुध गया है कि मूँहसे शब्द नहीं निकल रहे हैं और इसी चिन्तामें मेरी आँसू भी धुँपनी पड़ गई हैं । जब मुझ-जैसे जनबासीको इतनी श्वाहा हो रही है तब उन बेपारे गृहस्थोंको किमता कष्ट होना होगा जो पहले-पहल अपनी कन्याको विदा करते होंगे ॥६॥

[पूमते हैं ।]

सनिवाँ—शकुन्तला ! तुम्हारा शिवाच तो पूरा हो गया । लो, धय यह रेशमी कसौँका जोडा भी पहन लो ।

[शकुन्तला उठकर पहनती है ।]

गौतमी—वत्से ! ताव वच्च इपर हो धा रहे हैं । आनग्दके भाँसुषोँसे अतकती हुई उनकी भाँसोरो देखकर जान पडता है भाँसो के अपनी भाँसोँसे ही तुम्हे गले लगा रहे हो । उन्हें प्रणाम तो करो ।

शकुन्तला—[लजानी हुई] प्रणाम करती हूँ पिताजी !

कण्व—वत्से ! जैसे ययाति अपनी पत्नी शर्मिष्ठाका धादर करते थे वैसे ही तेरे पति भी तेरा धादर करें और शर्मिष्ठाके पुत्र पुत्रके समान ही तुम्हे पकवतीं पुत्र भी प्राप्त हो ॥७॥

गौतमी—भयवन् ! यह तो आपने वरदान दिया है, भाँसोवाँद नहीं ।

कण्वः— धरते ! इतः सद्योदुताम्नोऽप्रवक्षिषीकुण्व ।

[ सर्वे परिक्रामन्ति । ]

कण्वः— [ शृण्वन्मन्त्राऽऽवासे । ]—

अग्नी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्धन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः ।

अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धर्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु ॥८॥

प्रतिद्वस्वेतानीम् । [ सट्टिष्टक्षेपम् ] स्व ते शाङ्करवभिभाः ।

[ प्रविश्य ]

शिष्यः— भगवाम् इमे स्मः ।

कण्वः— भगिन्पास्ते मार्गमावेशय ।

शाङ्करवः— इत इतो भवती ।

[ सर्वे परिक्रामन्ति । ]

कण्वः— भो भोः संनिहितदेवतास्तपोवनतरव ।

पार्तुं न प्रथमं व्यधस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या

नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या फलवम् ।

आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः

स्यं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ ६ ॥

कण्व— धरते ! यलो, सन्निभे यभी साहृति वही है, यलकर उसकी प्रवक्षिणा कर ली ।

[ सब प्रवक्षिणा करते हैं । ]

कण्व— [ शृण्वेदके द्रव्यमे प्राचीर्वाद देते हैं । ]

गिरी कुशासे यथास्वान वेदीपर सनिघाते बसती ।

हव्य गन्धर्वा गन्धभरी करदें पवित्र ये अग्नि तुम्हें ॥८॥

अथ यलो । [ इपर-उपर देलकर ] अरे ! ये सब शाङ्करव आदि कहाँ हैं ?

शिष्य— [ प्रवेश करके ] भगवन् ! ये हैं हम लोग ।

कण्व— जाओ ! अपनी बहनको पहुँचा जाओ ।

शाङ्करव— इपरसे आओ देवी, इपरसे ।

[ सब भूमते हैं ]

कण्व— यन-देवसाग्रीसे भरे हुए तपोवनके वृक्षों !— जो पहले तुम्हें पिलाए बिना स्वयं जल नहीं पीती थी, जो याम्रूपण पहननेका प्रेम होने पर भी, तुम्हारे स्नेहके कारण तुम्हारे वीमल पत्तोंको हाथ नहीं सजाती थी, जो तुम्हारी नई कलियोंको देख-देख कर झूली नहीं उमारी थी, वही शकुन्तला आज अपने पतिके घर जा रही है । तुम सब इसे प्रेम से बिदा लो दो ॥६॥

कण्वः—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया  
कण्ठः स्तम्भितवाप्यष्टचिक्रुपथिन्ताज्ज्वलं दर्शनम् ।

वैश्वल्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्याकसः

पीडयन्ते मुद्दिषाः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥६॥

[इति परिव्रामति]

सखी—हता सखन्दने ! प्रवृत्तिरमण्डपसि परिचेहि संपदं सोमशुभ्रलं । (हता शकुन्तले प्रवृत्तमण्डपनादि । परिपरस्व सांप्रन क्षीमयुगलम् ।)

[शकुन्तलोत्थाय परिषले]

गीतमी— जावे ! एसी वे आमन्दपरिवाहिसा चक्षुषा परिसजन्तो विघ्न गुरु उभ्रिषो ।  
आमारं वाच पबिधज्जस्त । (जाते एव ते आमन्दपरिवाहिसा चक्षुषा परिव्यजनाय इम गुरुवपस्थितः ।  
आचारं तावप्रतिपद्यस्व ।)

शकुन्तला— [सखीकम्] ताव क्वापि । (ताव बन्दे ।)

कण्व— वरते !

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्वहुमत्ता भव ।

सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ॥७॥

गीतमी— भवर्षं वरते वक्षु एतो ख्वासिसा । (भववन् वरः खल्वेषः । वासीः ।)

कण्व— आज शकुन्तला खली जायगी, यह सोचते ही जी बँठा जा रहा है । चाँदुषीकी रोवनेसे गला दलना दप गया है कि भूँहते खन्द नहीं निकल रहे हैं और इसी चिन्तामें मेरी भाँसों की धूँबनी पठ गई है । जब मुझ-जैसे बनवासोको इतनी व्यथा हो रही है तब उन बेचारे गृहस्थोको किनसा कष्ट होगा हीगा जो पहले-बहुल अपनी कम्थाको विदा करते होंगे ॥६॥

[धूमते है ।]

सखियाँ— शकुन्तला ! तुम्हारा विचार तो पूरा हो गया । तो, अब यह रेशमी बर्षोंका जोडा भी पहन लो ।

[शकुन्तला उठकर पहनती है ।]

गीतमी— वरते ! ताव वण्ण दवर ही आ रहे हैं । धानन्दके भाँसुषोंसे जसकती हुई उगकी चाँदोकी देखाकर जान पड़ता है मानो वे अपनी भाँसोंसे ही तुम्हें गले लगा रहे हों । उन्हें प्रणाम तो करो ।

शकुन्तला— [सखीकी हुई] प्रणाम करती हूँ पिताजी !

कण्व— वरते ! जैसे भगति अपनी परनी समिष्ठाना आदर करते वे जैसे ही तेरे पति भी तेरा आदर करें और समिष्ठाने पुत्र पुरुके सवान ही तुम्हें भक्तियों पुत्र भी प्राप्त हो ॥७॥

गीतमी— भववन् ! यह तो भावने बरदान दिया है, भासीवार्द नहीं ।

कण्वः— वसते ! इतः सखीतृताम्बोऽग्रदक्षिणीकुम्बम् ।

[ सर्वे परिष्कामन्ति । ]

कण्वः— [ शृण्वन्मन्त्राऽऽधास्ते । ]—

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्धन्तः श्रान्तसंस्तीर्यदर्भाः ।

अपध्नन्तो दुरितं हव्यमन्धैर्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु ॥८॥

प्रतिहस्वेदानीम् । [ सहृष्टिलोपम् ] श्व ते शाङ्गैरवनिधाः ।

[ प्रविश ]

शिष्यः— भगवाम् इमे स्मः ।

कण्वः— भगिन्यास्ते मामंभारेण्य ।

शाङ्गैरवः— इत इतो भवतो ।

[ सर्वे परिष्कामन्ति । ]

कण्वः— भो भोः संनिहितवेधतास्तपोवनतरव ।

पातुं न अथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या

नादशे प्रियमगृह्णनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।

आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः

सैर्यं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ ६ ॥

पद्य— वसते ! पत्नी, अग्निमे अमी माहृति पत्नी है, चलकर उसकी प्रशिक्षणा कर ली ।

[ सब प्रदक्षिणा करते हैं । ]

कण्व— [ श्राव्येवके अग्रमे आसीर्वाव वेते हैं । ]

शिरी कुशासे अथास्थान वेदीपर सविधासे जलती ।

हव्य मन्धक्री मन्धक्री करदें पवित्र ये अग्नि तुम्हें ॥८॥

अथ वसतो । [ इपर-उपर देखकर ] धरे ! वे सब शाङ्गैरव आदि कहीं हैं ?

शिष्य— [ प्रवेश करके ] भगवन् ! ये हैं हम लोग ।

कण्व— जाओ ! अथनी वहनको पहुँचा माओ ।

शाङ्गैरव— इपरसे आओ देवी, इधरसे ।

[ सब धूमते हैं ]

कण्व— वन-देवताकोसे भरे हुए तपोवनके वृक्षों !— जो पहले तुम्हें पिलाए बिना स्वयं जल नहीं पीती थी, जो मासूयस वहनकेका प्रेम होने पर भी, तुम्हारे स्नेहके कारण तुम्हारे भोगल पत्नीको हाथ नहीं सजाती थी, जो तुम्हारी गई कनिशोंको देख-देख कर झूली नहीं समाती थी, नहीं शकुन्तला आज अपने पतिके घर जा रही है । तुम सब इसे प्रेम से बिदा तो दो ॥६॥



उगलिअदम्भकत्रला भिया परिच्चतक्षत्रा मोरा ।

श्रोमरिअपखुपचा मुअन्ति असू विअ लदाओ ॥१२॥

( न केवल लखेवनविरहकातरा सखेव स्वयोपस्वितवियोगस्य तपावनस्यापि तावत्तमवस्था  
दृश्यते । ) पश्य—

( उदयनितदमंभवला मृगा परिचक्षन्तना मपूरा ।

मपसूतपाण्डुपना मुञ्जवन्मभूखीव सदा ॥ )

राकुन्तला—[स्मृत्वा] ताव लदावहिलिअ वल्लभोसिअि दाव आमन्तद्वरअ ( तात लता-  
भगिनी वनज्योत्स्ना तावदावन्मभिये । )

कथं—मयैमि ते तस्या सोभयंस्नेहम् । इय तावहिलिअेन ।

राकुन्तला—[वनेत्य लतायालिङ्गय] वल्लभोसिअि । वृद्धमगता वि व पद्यालिङ्ग इत्योपवाहि  
साहायाहाहि । अन्वप्यद्वि दूरपरिवृत्यो रे वल्लु भविस्स । ( वनज्योत्स्ने । पुनमगतादि मा  
प्रत्यालिङ्ग एगोताभि दालावाभुमि । ) अन्वप्रकृति दूरपरिवर्तिनी ते वल्लु भविष्यामि । )

कथं -

संकल्पितं प्रथममेव मया त्वार्थे

भर्तारिमात्ममदर्शं सुकृतैर्गता त्वम् ।

चूतेन संश्रितवती नममालिनैय-

मस्यामहं त्वयि च संप्रति वीतचिन्तः ॥१३॥

इत. मय्याम प्रतिपद्यस्य ।

राकुन्तला—[सक्यो प्रति] हला एता दुवेलो यो हत्ये शिरशेवो । ( इरा एया उयोमुंनयो-  
हस्ते निशेव । )

हरिश्चिमी ववाहं हृदं मुग्धने कोर उषस रहो हे, मोरोने न्यभवा छोड दिया हे मोर सभामो-  
ते पीले-पीले पत्ते इस प्रकार भय रह है मानी वनके मंगु विर रह हो ॥१२॥

राकुन्तला—[स्मरण करव ] तात ! मैं अपनी बहुत वन-ज्योत्स्ना सदासे भी मिल लेना  
चाहती हूँ ।

कथं—मैं जानता हूँ कि तू उसे सगी बहुत जेता प्यार करती है । यह है वह, दाहिनी मोर ।

राकुन्तला—[सतकं पाठ जाकर मोर उससे निपटकर ] प्यारी वनज्योत्स्ना ! तू पामके  
वृक्षसे लिपटी होनेपर भी अपनी इतर कंबी हृदं दालावा बहिोसे मुञ्जसे मेट तो न, नवोदि  
भाजसे तो मैं तुझने बहुत दूर जा पहुँची ।

कथं—मैंने तेरे लिये जैसे पतिका संकल्प किया था, तूने भरने पुण्य-अमलवसे बंसा प्रति  
पा लिया है मोर इस वन-ज्योत्स्नावा भी मामला ठोक सहाय मिल गया है । अय मैं तुन  
दोनोबी चिन्तासे छूट गया हूँ ॥१३॥ इधरसे चली धामो ।

राकुन्तला—[सन्निपोषे] सन्निपोषे ! इस वन ज्योत्स्नाको मैं तुम दोनोव हाथ सोने  
जाती हूँ ।



सखी—अब जखो कस्त हत्ये समपिबो । (अथ जनः कस्य हस्ते समपितः ।) [इति वाप्यं विसृजतः ।]

कण्व—अनसूये अलं ददित्वा । ननु भवतीन्वामेष स्थिरीकर्तव्यां शकुन्तला ।

[सर्वे परिक्रामन्ति ।]

शकुन्तला—ताव एसा उदजपञ्चन्तवारिखी गण्यमन्थरा मघबहू जबा अराधप्परावा होइ तवा मे कपि पिप्रणिवेदइसभ विसज्जइसह । (तात एवोदजपञ्चन्तवारिणी गर्भमन्थरा मृगवसूयैवाजयसवा भवति तवा मह्यं कपि श्रियनियेदयितुक विसर्जयिष्ये ।)

कण्वः—नैदं विस्मरिष्यामः ।

शकुन्तला—[सतिभङ्गं रूपयित्वा] को शु बबु एखो एिबसणे मे सज्जइ । (को नु सखेय विवसने मे सज्जरो ।) [इति परावर्तते ।]

कण्वः—यते !

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां  
तैर्ल न्यपिच्यत मृखे कुशस्यचिविद्धे ।  
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति  
सोऽर्यं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ॥१४॥

सोनी—मीर हन सोनीको कितके हाथ सँपि जा रहो हो ?

[रोने लगती है ।]

कण्व—सोनी मत मनसूया ! उलटा तुम्हें तो चाहिए कि शकुन्तलाको मीर और मीरज बँधाओ ।

[सब घूमते हैं ।]

शकुन्तला—तात ! आश्रममें चारों ओर गर्भके भारसे चलसती हुई चलनेवाली इस हरिणीकी जब मुससे बच्चा हो जाय तब किसीके हाथ यह प्यारा सनाभार मेरे पास भिजवा दीजिएगा ।

कण्व—यह नहीं यूँगे ।

शकुन्तला—[चलनेमें रुकावटका अनुभव करती हुई—सी ] धरे ! यह कौन मेरा चलन पकड़कर धीरे जा रहा है ?

[बीछे घूमकर देखती है ।]

कण्व—यते ! कुजाके बाँटेने सिद्धे हुए जिसके भूँहको शय्या करनेके सिद्धे हुए उसपर शिरोटका तेज मणिया बन्ती थी वही तेरे जन्मे दिग् हुए मुट्टी भर सँविके दानोंके पला हुआ तेरा पुत्रके समान प्यारा हरिण गर्भ रोके धबा है ॥१४॥

सङ्कुन्तना—यच्छ किं सहवासपरिषदादिति मं अल्लस्यसि । अनिरप्यसुवाए जल्पस्योए  
विराया यच्चिद्वेदो एवम् । दासिणि वि मए विरहितं जुमं तादी चिन्तयस्सदि । एवसेहिं वाय ।  
( वरु ! किं सहवासपरिषदागिनी यामनुसरसि । अनिरप्यसुत्वा जनन्या विना यथित एय । इदानीमपि  
मया विरहितं त्वो वातभ्रन्तयिष्यति । निवतंस्व तावत् । ) [ इति स्वती प्रस्थिता । ]

कथः—

उत्पच्चमस्योर्नयनयोरुपरुद्धृष्टिं

वाप्यं कुरु स्थितया विहसानुबन्धम् ।

अस्मिन्नस्त्राक्षितनवोन्नतभूमिभागे

मार्गे पदानि खलु ते विपरीतभवन्ति ॥ १५ ॥

शाङ्कर—ममकम् सोदयान्तं स्निग्धो अनोऽनुबन्धव्य इति श्रूयते । तद्विरं सरसतीरम् ।  
आय संविक्ष्य प्रतिगन्तुमर्हसि ।

कथः—तेन हीमां शीरवृक्षभ्रूयायामाययामः ।

[ शब्दं परिकल्प्य स्थिताः । ]

! कथः—[ आत्यगतम् ] किं नु खलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तकल्पमस्माभिः सदृष्टव्यम् ।  
[ इति चिन्तयति । ]

शङ्कुन्तना—[ जमान्तिपम् ] हला वैषल । एतिस्योपस्यारिदं वि सहस्रं प्रवेष्टवन्ती  
प्रापुरा यवकवाहं प्रारब्धे दुककटं ग्रहं करेमिति तथकेनि । ( हला वष्य । नतिनीवमात्तरितमपि  
सहस्रमपश्यन्त्यापुरा चक्रवाजवारटति दुष्करगहं करोमीति शकंयामि । )

सङ्कुन्तना—वरु ! मुझ साथ छोड़कर जानेवालीके पीछे-पीछे तू यहाँ या रहा है ?  
तेरी नई जब मुझे जगम देकर मर गई थी उस समय मैंने तुम्हें पास-पेठपर बड़ा किया  
था । मझ मेरे पीछे पिताजी तेरी देख-भास करनेके जा, लौट जा । [ रोती हुई प्रागे  
बढ़ती है । ]

कथ—वसै ! शीरज धरकर अपने धाँसू बोझ टास । इन धाँसुपोकके कारण तेरी उठी  
हुई बरीनिबोधानी माँसें ठीकसे खेल नहीं पा रही है । इसलिये यहाँको ज्येष्ठ-जाबड़ परती-  
पर तेरे पैर चलते-धीरे पड़ते जा रहे हैं ॥ १५ ॥

शाङ्कर—भगवद् ! सुना है कि त्रियंबनोको विद्या देते समय अलासवतक पहुँचाकर लौट  
जाना चाहिए । मझ सरोवरका तट था यथा है इसलिये भी कुछ सन्देह कहलाना हो वह  
यही बताकर प्राप सोम प्रायमको लौट जायें ।

कथ—तो बलो, इत पीपसको छापाये थोडा बँठ लिया जाय ।

[ सब घूमकर बँठ गति है । ]

कथ—[ अपने ही आप ] माननीय राजा दुष्यन्तके पास मौन-सा सन्देह भेजना ठीक  
होगा [ सोचते हैं । ]

सङ्कुन्तना—[ सधीसे अलग ] सखी ! देख ओ ! कमलिनिके पत्तेकी ओटमे दिने हुए  
अपने चक्रके न देख सकनेसे यह चक्रको कैसी पचराकर चिन्ता रही है । इसलिये मैं  
जिस कामसे जा रही हूँ वह पूरा होता नहीं दिसाई देता ।

अनसूया—सहि ! मा एष्वं मनोहि ।

एसा वि पिण्ण विखा गमेइ रअसिं विसाअदीहअरं ।

गरुअं पि विरहदुख्खं आसावन्धो सहावेदि ॥ १६ ॥

( सहि ! मैं वं मनमयत्व ।

एषाऽपि त्रिवेण विना गमयति रजनी विषाददीर्घतराम् ।

गुर्वपि विरहदुःखामासावन्धः साहयति ॥ )

कण्व.—शाङ्करव ! इति स्वया भद्रघनात्स राजा अकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः ।

शाङ्करवः—आज्ञापयतु भवान् ।

कण्वः—

अस्मान्साधु विचित्य संयमधनानुचर्चैः कुलं चात्मन-

स्त्वय्यस्याः कथमप्पवान्धवकृतां स्नेहप्रयुक्तिं च ताम् ।

सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारंषु दृश्या त्वया

भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्धान्यं बधूबन्धुभिः ॥ १७ ॥

शाङ्करवः—गृहीतः सवेतः ।

कण्वः—घाते । स्वनिदानीमनुयासनीयासि । वनीकस्तोत्रं चण्ठो लौकिक्या वयम् ।

शाङ्करवः—न खलु भोमतां कश्चिन्नियमो नाम ।

कण्वः—सा श्वमितः पतिकुलं प्राप्य—

अनसूया—सखी ! ऐसा नहीं सोचना चाहिए । जानती हो, यह चकवी विरहकी लंबी रातोको पतिके बिना अकेली फाट देती है, क्योंकि विरहके समय भी इसे वह भाषा बनी रहती है कि प्रातःकाल तो मिलन हो ही जायगा ॥ १६ ॥

कण्व—शाङ्करव ! शकुन्तलाको दुष्मन्तके हाथमे सीपते हुए भेरी घोरसे कहना—

शाङ्करवः—जी हाँ, आज्ञा कीजिए ।

कण्व—कहना कि—राजन् । कहां तो हम लोग सीधे-सीधे संयमी तपस्वी घोर कहां भाव ऊँचे पारनेके राजा । फिर भी आपने अपने भाव इस बन्वासे विवाह कर लिया है । इन सब बाजोक ऽप्यन करके भाव वमसे कम दूसरी रानियोंके समान तो शकुन्तलाका घादर भवदय बीजिएगा । इससे बढ़कर इसे जो सोचाम्य मिले वह इसके भाग्यकी बात है । उसके सिधे हम बन्वाके वाग्वच लोग भसा क्या कह सकते हैं ॥ १७ ॥

शाङ्करव—जी हाँ सन्देह समझ गया ।

कण्व—बरते ! भावो ! तुम्हे कुछ सोच देनी है । देखो, वमसे खूबे हुए भी वास्तारिक व्यवहार हम लोग यही भाँति जानते हैं ।

शाङ्करव—ऐसी कौन-सी बात है जिसे विद्वान् लोग न जानते हैं ।

कण्व—देखो ! गृहिणि पतिके घर पहुँचकर परके सब बड़े-बुझेकी सेवा करना । अपनी

शुभ्रपस्य गुरूङ्कुरु प्रियसखीष्टिचि सपत्नीजने

पत्युर्विप्रकृताऽपि रोपखतया मा स्म श्रवीर्यं गमः ।

भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी

यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥१८॥

कथं वा गौतमी मन्थते ।

गौतमी—एतिमी बहूजस्तस उन्देसो । जादे ! एवं क्यु सर्वं शोभारोहि । (एतावन्मधुजन-  
स्योपदेशः । जाते ! एतस्तसु सर्वेष्वधारय ।)

कथः—वस्ते । करिष्यजस्तस मां तस्तीजनम् ।

शकुन्तला—ताद ! इवो एव किं प्रियंवदाफलसूत्राभो सतीयो शिजसित्समि । (तात ! एत  
एव किं प्रियंवदानसूत्रे सप्त्यो मिषतिष्येते ।)

कथः—वस्ते ! इमे मयि प्रदेये । न पुस्तमभवोस्तन गन्तुम् । त्वया सह गौतमी वास्तपति ।

शकुन्तला—[पितरमाश्लिष्य] गहं दारिण तादस्तस भद्रुवो परिवमृता मलपतकामृतिमा  
धमदरासदा विम हेतनारे भीविमं धारिस्तसं । (कथ.भदानी तातस्याकुत्परिप्रथा मलपतकामृतिता  
धमदमसतेव देशान्तरे भीविमं धारिष्यामि ।)

कथः—वस्ते ! किमेवं कातराति ।

धमिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे

विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिचक्ष्माकुला ।

सौतोसि सतियो-मंता श्रेष्ठ रत्नता । पति निरादर गी करे तो श्रेष्ठ करके उनसे भगवा गत कर  
बैठना । दास-वासिगोको बडे प्यारसे रत्नता शोर भवने सौभाग्यवर बहुत देठना मत । श्री  
स्त्रिमां परसे इस प्रकार चमत्तो हैं वे ही सच्ची गृहिणी होती हैं और जो हसका डनटा करती हैं  
वे कोटी स्त्रियां तो भवने कुलकी नासिब होती हैं ॥१८॥ क्यों गौतमी ! ठीक है न ।

गौतमी—कुमक्युमोके निमे इससे बढकर और क्या उपदेश होगा । वस्ते ! ये सब बातें  
गौत धाय लो ।

कथ—वस्ते ! सधो, मुकती और धपनी श्लिषोसे बले लो पित लो ।

शकुन्तला—तात ! क्या प्रियंवदा धारि सतियां गृहिणि चोड जायेंगे ?

कथ—वस्ते ! इनका भी लो निवाह करना है । इसलिये इनका मही वावा ठीक नहीं है ।  
तेरे साथ गौतमी लो जा छी रह्यी हैं ।

शकुन्तला—[पितासे बले लगकर] पिताजीकी योगसे भलम होकर भलम भवतये ससाडे हुए  
हए धन्दनके पीपेके समान हैं परदेशमे पहुँचकर कैसे सुख पाऊँगे ?

कथ—वस्ते ! इतनी क्यों कथोर हो रह्यी हो । लव तुम ऊँच कुलवासे पतिनी पटरानी होकर  
उनके परके कामसे दिन-रात जैसी रहोगी और, जैसे पूर्व दिशा सूर्यको उत्पन्न करती है वैसे

तनयमचिरात्प्राचीवार्कं प्रक्षय च पावनं

मम त्रिरहत्वा न त्वं वत्से शुच गणयिष्यमि ॥१६॥

[सकुन्तला पितु पादयो पतति ।]

कण्व — यदिच्छामि ते तदस्तु ।

सकुन्तला — [सख्याभूषेण] हसा बुधे वि म तम एव्य परिस्तगह (हवा द्वे अपि मा सममेव परिष्वसयान् ।)

सखी — [सया कृत्वा] सहि जह खान्न सो राजा पन्नहृष्णामग्वरो भवे तदो रो इम अस्तलामहेषमिच्छुष अगुतिमक्ष इतेहि । (ससि । यदि नाम स राजा प्रत्यभिज्ञानमपरो भवेत्त-  
स्तस्येदमास्तनामधेयाद्भूतमगुतोवष दक्षय ।)

सकुन्तला — इमिस्ता संवेहेत्थ वो धारम्बिदम्हि (ममेव सदेहेन यामाकम्पितास्मि ।)

सखी — मा भाषाहि । सिगेहो पावसद्धो । (मा भेषो । स्नेह पावसद्धो ।)

शाङ्ग'रव — पुगातरमादय सखिता । स्वरतामत्रभवती ।

सकुन्तला — [प्राप्तमाभिमुली स्थित्वा] तार कवा ॥ धूमो तवोवस्य वेपितस्स (तात कदा नु भूवस्तपोवन प्रेक्षिष्ये ।)

कण्व — धूमतोष—

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीमपत्नी

दीप्यन्तिमप्रतिरथं तनय निवेश्य ।

मत्रां तदर्पितदुटुम्भरेण सार्धं

शान्ते परिष्यसि पदं पुनराथमेऽस्मिन् ॥२०॥

ही पवित्र पुत्र उत्पन्न करोगी, उस समय तुम भ्रूणमे विद्युद्देवता सब दुःख भूल प्राप्सोगी ॥१६॥

[सकुन्तला पिताके पैरों म पड़ती है ।]

कण्व—सुन्दारे लिये मैं जो जो चाहता हूँ वह सुन्द लिये ।

सकुन्तला—[सनिषीवे वास जाकर] सखियो ! धामो तुम दोनों एक साथ मेरे गले छप जाओ ।

सखिया—[मन लगकर] सखी, दसो ! यदि वे राजा सुन्द पहचाननेम भूल करें तो यह उनसे नामवाली घंटी तुम उन्हें दिखला दना ।

सकुन्तला—सुन्दारी इस सदेह मरी बातने मेरे भी मैं सटका डाल दिया है ।

सखिया—नही नहीं, करो मत । प्रेममें तो सटका हुआ ही करता है ।

शाङ्ग'रव—दसो ! दिन बहुत चढ़ धारा है । मन गीधता करनी चाहिए ।

सकुन्तला—[धाधमकी धार मुँह करके] तान ! धन धायमके फिर जब दर्शन हो सकेंगे ?

कण्व—सुन ! बहुत दिनोंतक इस मृच्छीकी सोत जनकर धोर सपने पडितीय धोर पुत्रकी राग्य धोर सुटुम्भका भार लीरकर जब तुम धपने पवित्र साथ धाधोयो गच द्य शात प्राथममें सुगने रहना ॥२०॥

गौतमी—जाते ! परिहोषवि गमखवेला । निखतेहि पितरं । अह्यु चिरेण वि पुणो पुणो एसा एय्यं सन्तद्वरसवि शिपत्तु भवं । ( जाते ! परिहोषते यगनवेला । निवतंथ पितरम् । ययवा चिरेखापि पुनः पुनरेयंयं मन्त्रयिष्यते । निवतंता भवान् । )

कण्वः—घत्ते ! उषरुष्यते तपोऽनुष्ठानम् ।

राकुन्तला—[ भ्रूयः पितर्यास्तित्त्व्य ] तवअवणपीडिवं तादसरोरंता मा अविमलं मम विदे पङ्कित्तुम् । ( तपश्चरणपीडितं तातवरीरम् सम्प्राप्रतिमानं मम कृत उरकण्ठितुम् । )

कण्वः—[ सनिःस्वासम् ]—

शामयेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम् ।

उदञ्जद्वारविहटं नीवारयलि विलोकयतः ॥२१॥

गण्ड शिवास्ते पन्वानः सन्तु ।

[ निष्क्रान्ता राकुन्तला सह्यायिनश्च । ]

सखी—[ राकुन्तलां विनीष्य ] हट्टो हट्टो अन्तलिहिवा सजन्दला बखराईए । ( हा पिय हा पिय् अन्तहिवा राकुन्तला बखराइया । )

कण्वः—[ सनिःस्वासम् ] अन्तसुपे घतवती यो सहपमंकारिणी । निगृह्य शोकमनुगण्डनं मी प्रक्षियतम् ।

उभे—साह सजन्दसाकिरहिईं पुष्णं विमल लबीबलं क्कं पवितावोः । ( तात राकुन्तलादिरहितं सुखमिय लपोवनं कथं प्रविशायः । )

गौतमी—बहसे ! बिदाकी घटी बोलती जा रही है । जाने दो पितानी को । [ अन्तरे ] प्राय सब लौट जायें नहीं तो यह बहुत देर तक यो ही कुछ न-कुछ बहती ही रहेंगी ।

कण्व—बाबे ! सब जायो । हमारे आपके कामोमे देर हो रही है ।

राकुन्तला—[ वितासे फिर भेंट करके ] प्राय तो यो ही आपके बारण बहुत बुबले हो गए हैं इसलिये प्राय मेरी बहुत अधिक चिन्ता न कीजियेगा ।

कण्व—[ लम्बी साँस लेकर ] वत्से ! तुमने बलिके निम्ने यो तिप्रीके घान छोटे थे उनके संभुर अबतक घुटीके दारपर दिखाई देते रहेंगे जबतक मेरा शोक कंठे बग होया ॥२१॥ जायो ! तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो ।

[ सायियोके प्राय राकुन्तला जाती है । ]

दीनों कक्षियाँ—[ राकुन्तलाको देखकर ] हाय, हाय । राकुन्तला तो वृषोबि मोटमें मोहन हो गई ।

गण्ड—[ लम्बी साँस लेकर ] अन्तसुया ! तुम्हारी सखी तो अती गई । पर यह रीना-पोना छोड़ो घोर मेरे प्राय लौट बलो ।

दीनों—हाय राकुन्तलाके बिना मुने प्रायय में हय कंठे पल्लो ।

कण्वः—स्नेहप्रवृत्तिरेवंदंशिली । [ सविमर्शं परिक्रम्य ] हन्त भोः शकुन्तलां पतिकुलं विसृज्य  
सस्यमिदानीं स्वात्म्यम् । कुतः ।

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः ।

जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥२२॥

[ इति निष्क्रान्ता सर्वे । ]

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

कण्व—प्रेमसे ऐसा ही होता है । [ कुछ विचारते हुए घूमकर ] ओह ! शकुन्तलाको  
पतिके घर भेजकर अथ मेरे मनको छुट्टी मिली । क्योंकि—कन्या सचमुच पराई सम्पत्ति ही  
होती है । आज उसे पतिके घर भेजकर मेरा मन यैसे ही निरिचल हो गया है जैसे किडीकी  
घरोहर मोटा दी हो ॥२२॥

[ सब जाते हैं । ]

चौथा अंक समाप्त ।

## पञ्चमोऽङ्कः

[ततः प्रविशन्त्यासनस्थो राजा विदूषकञ्च]

विदूषक — [कुलं दत्त्वा] भो पद्मस्त सगीतशास्त्रान्तरे प्रथयाणु देहि । कस्तविमुद्धाए  
भीषोए रास्त्रजोभो मुणोभ्रदि । जासो त्तच्छोदी हसपदिमा यच्छपरिभ्रम करोविति ।  
भो वदस्य सगीतशास्त्रान्तरेऽवपानु देहि । कनविशुद्धाया गीते स्वरनयोव श्रुयते । जाने तमनवती  
हसपदिका यणुपरिषय करोतीति ।)

राजा—दृष्ट्वाँ भव याधदाकलंयामि ।

[भाकानो गीयते ।]

अद्विखरमहुलोलुषो भवं तद् परिचुम्भिग्र चूअमल्लरिं ।

कमलससमेत्तखिच्छुदो महुअर विद्वरियो सि खं कइ ॥१॥

(अभिनयमधुनोमुपो भवास्तथा परिहृष्य्य वृत्तमञ्जरीम् ।

कमलवसतिगात्रमिहृँतो मधुकर विस्मृतोऽप्येवा वचम् ॥)

राजा—अहो रागपरिवाहिनो गीति ।

विदूषक — किं दाव भीषोए प्रथमभो अकलसस्यो (किं तावद्गीत्या प्रथमतोऽभ्यारथं ।)

## पञ्चम अङ्क

[राजा आसनपर वंटे है और पास ही विदूषक भी बैठा हुआ है ।]

विदूषक—[कान लमाकर] सुनो वदस्य ! सगीत-शास्त्राकी धोर वान लगाकर तो सुनो ।  
कोई बड़े लय-तासतै प्रथमत भीटे स्वरमे गीत गा रहा है । जान पड़ता है महारानी हस-  
पदिका स्वर साथ रही है ।

राजा—अच्छ ठूठ हो जाओ तो सुनूँ ।

[नेपथ्यमे गीत]

नये नये मधुके तोभी भो मधुकर ।

एक बार ही रसावकी मधुर मजरी भ्रूष गए तुम ।

नयो विदास कर कमल कोलमे मु-कूनकर भ्रूम गए तुम ॥

नये नये मधुके भीभी भो मधुकर ॥१॥

राजा—साह, गीत मे कौसी प्रेमकी पाप बह रही है ?

विदूषक—पर इस गीतमें जो चोट की गई है, वह भी समझ पाए हो ?



राजा—[स्मित श्रुत्या] सकृत्कृतप्रणयोज्य जन । तदस्या देवीवसुमतीमन्तरेण मधुपा-  
सम्भ्रमवगतोऽस्मि । सखे मादृष्य ! भद्रधनादुच्यता हसपदिका—निपुणमुपालब्धोऽस्मीति ।

विद्रुपक—ज भव भ्राणवेदि । [उत्थाय] भो वक्रस्त ! यहूदस्त ताए परकीएहि हत्थेहि  
सिहृण्यए तादोभ्रमास्तस अन्धराए वोदराभ्रस्त विष खन्ति दाए मे मोक्षो । (मञ्जूषा-  
नाज्ञापयति । भो वयस्य ! गृहीतस्य तथा परकीर्येहृस्वं धिखभ्रके तादभमानस्यापहरसा  
बोतरागस्येव नास्तोदानो मे मोक्ष ।)

राजा—मच्छ ! नापरिकब्रुत्सा तन्नापर्येनाम् ।

विद्रुपक—या गई । (का यति ।) [इति निष्क्रान्त ।]

राजा—[प्रातमगतम्] किं नु सप्तु गीतार्पमाकथ्येऽजनविद्वहादृतेऽपि बलवपुरकण्ठितोऽ-  
स्मि । अथवा—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्पर्युत्सुकीभ्रति यत्सुखितोऽपि जन्तुः ।  
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपर्यं भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥२॥

[इति पर्याकुलस्विद्यति ।]

[ततः प्रविद्यति कञ्चुकी ।]

कञ्चुकी—महो नु सत्योऽस्मीमयथां प्रतिभग्नोऽस्मि ।

आचार इत्यवहितेन मया गृहीता या चेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः ।

काले गते बहुतिथे मम सैव जाता प्रस्थानविकलवगतैरवलम्बनार्था ॥३॥

राजा—[मुसकरते हुए] हाँ, हाँ मैं समझ गया । मैंने रानीसे केवल एक ही बार प्रेम  
किया है, इसलिये आजकल जो देवी वसुमतीसे मैं प्रेम करने लगा हूँ उसीपर मे छोटे बसे  
जा रहे हैं । मित्र मादृष्य ! मेरी धोरसे हसपदिकासे जाकर कहना कि तुमने बड़ी मीठी  
बुटवों ली है ।

विद्रुपक—जैसे घापपी प्राणा । [सटा होकर] पर वयस्य ! जैसे अन्धरामोके हाथोंमें  
पट्टकर बड़े-उठे निरागी ऋषि नहीं छूट पाते हैं जैसे ही जब अपनी दाहिमोसे मेरी चोटी  
पण्ड्यावर ने मुझे पीटने लपेंगी उस समय उससे छुटकरा पावा मेरे लिये भी कठिन  
हो जायगा ।

राजा—जामो, घतुराईके साथ सम्येत्त देना ।

विद्रुपक—घाप कह रहे हैं सो जाना ही पड़ेगा । [बना जाता है ।]

राजा—[मन ही मन] मेरे सभी सने-प्यारे मेरे पास ही हैं फिर भी दण गीतकी मुन-  
वर मैं न जाने क्यों इतना धनमना-सा हो उठा है या—

गुन्दर वस्तुएं देसावर धौर पीठे सव्य मुनवर जब सुली सोग भी उरख हो जाय तब यही  
समझा चाहिए कि उनके मनमें पिछने जन्मने प्रेमियोने जो सस्वार बंटे हुए हैं वे ही अपने घाप  
जाय उठे हैं ॥२॥ [यह सोचकर व्याकुल हो उठता है ।]

कञ्चुकी—भाट, मेरी भी क्या दया हो बनी है ।—जिध बेंतकी छडीकी कभी मैं रनिवातने  
डारपातना निदम समझकर हाथम लिए रहा करता था यही मय इन मुदापने

भो: कामं धर्मकार्यमनतिपातर्वा देवस्य । तथाशौचानीमेव धर्मात्तनादुत्थिताय पुनरुपरो-  
पकारि कण्वसिध्यागमनस्ये नोताहे निवेदिषुम् । अथवाप्रविधमोष्यं लोभतन्नापिकारः ।  
कुतः ।

भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव रात्रिदिवं गन्धवहः प्रयाति ।

शेषः सदैवाहितभूमिभारः पष्टांशवृचेरपि धर्म एषः ॥ ४ ॥

यार्थान्णयोगमनुतिष्ठामि । { परिक्रम्यावलोक्य च } एष देवः

प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा निपेवते शान्तमना विधिकम् ।

यूयानि संचार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः ॥ ५ ॥

[ उपपश्य ] जपतु जपतु देवः । एते शत्रु हिमविरेकस्यकारण्यवासिनः कृष्णसंहिता-  
भावाय शस्त्रोक्तास्तपस्विनः संप्राप्तः । श्रुत्वा देवः प्रमाणम् ।

राजा—[ सादरम् ] किं कण्वसंदेशहारिणः ।

कञ्चुकी—मय किम् ।

राजा—तेन हि मह्यधनाद्विज्ञाप्यतामुपाध्यायः सोमरातः । अमुनाधनवासिनः धर्मिन  
यिधिना साकृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हतीति । अहमप्येतांस्तपस्विवर्यांशोचिते प्रदेसे स्थितः  
प्रतिपालयामि ।

कञ्चुकी—पदाशापयति देवः । [ हृष्टि निष्कान्धः । ]

मुञ्ज सहस्रशते पैरोंबालिका सहारा धन गई है ॥ ३ ॥ यह तो ठीक है कि महाराजको धर्म-  
कार्य करना चाहिए । फिर भी धर्मो-धर्मो न्यायासनसे उठकर गए हैं । अब उन्हें फिरसे  
कष्ट देनेके लिये जो ये कण्वके सिन्धु या धर्मके हैं, इनकी गूचना पहुँचावेगी मेरा तो जी  
नहीं करता । पर प्रजाके शासनके काममें विधाम नहीं । क्योंकि—सूर्य एक ही बार अपने  
घोड़े जोतकर अदत्तक बना जा रहा है, वजन भी रात दिन बढ़ता ही रहता है और उप-  
नाग भी इस पुष्पीके भारमें अपने ऊपर सदा भारण ही किए रहते हैं । ठीक यही दत्ता  
उपजका छटा बंदा मेनेवाले राजाकी भी है ॥ ४ ॥ इसलिये खलु मैं भी अपना कर्तव्य  
पालन करूँ । [ द्वार उपर देखकर ] ये महाराज अपने सन्तान-जैसी प्रजाका काम करने,  
यक जातेपर यही एकात्मसे उसी प्रकार विधाम कर रहे हैं जैसे दिवकी धूपमें तथा हुमा  
गजराज हाथियोंक भुण्डकी चरनेके लिये छोड़कर स्वयं ठठे स्थानमें विधाय लेता है ॥ ५ ॥  
[ पात जाकर ] महाराजकी अथ हो । हिमालयकी तराईमें रहनेवाले कुपु लपरको लोग  
कण्वका सन्देश लेकर सिन्धुके साथ आए हुए हैं । अब जैसा देव ठीक सपके ।

राजा—[ आदरसे ] क्या महर्षि कण्वक सन्देश लेकर आए हैं ?

कञ्चुकी—जी हाँ !

राजा—तो कुल-पुरोहित सोमरातकोको कहना दो कि ये इन आथमयानियोंका वैदिक  
रीतिसे सत्कार करके इन्हे अपने ही साथ लिया जावें । मैं भी तबतक उपर चलकर बैठना  
हूँ जहाँ 'द्विपेन्द्र' भेंट की जाती है ।

कञ्चुकी—जैसी महाराजको आज्ञा । [ प्रस्थान ]

राजा—[ उत्थाय ] वेप्रवति ! अग्निशरणागममादेशय ।

प्रतीहारी—इदो इदो देवो । ( इत इतो देवः । )

राजा—[ परिश्रमति । अधिकारक्षेदं निरूप्य ] सर्वः प्राञ्चितमर्षमधिगम्य सुखी संपश्यते  
अन्तुः । राज्ञां तु चरितार्पिता दुःखान्तरं च ।

अत्रैत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा

नित्तश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव ।

नातिश्रमापनयनाय च श्रमाय

राज्यं स्वहस्तवृत्तदण्डमिवात्तपत्रम् ॥ ६ ॥

[ नेपथ्ये ]

वैतालिकी—विजयतां देवः ।

प्रथमः—

स्वसुखनिरभिलाषः स्थितसे लोकहेतोः

प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव ।

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीत्रमुष्णं

शमयति परितापं छायाया संश्रितानाम् ॥ ७ ॥

द्वितीयः—

नियमयसि विमार्गप्रस्थितातानाच्छदण्डः

प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षयाय ।

राजा—[ उठकर ] वेप्रवती ! चलो हमे मशघाला तक पहुँचा दो ।

प्रतीहारी—दरवाजे धाँपे महाराज, इधरसे ।

राजा—[ घुमता है । राजकाजका दुःख बताते हुए ] अपने मनकी रात्र पूरी हो जानेपर और तब बीबीकी तो सुख भिन्नता है पर हम बीबीकी राजा बननेकी इच्छा जब पूरी हो जाती है तब मट्ट ही कट्ट हाथ लगता है । राजा बनकर बड़ी प्रतिष्ठा या सेनेसे मनकी उर्गण तो पूरी हो जाती है पर जब राज्यका शासन करना पड़ता है तब दौदीका रूप मात्र प्रा प्राया है । इसलिये राज्य उस छलरीके समान है जिसकी मूठ अपने हाथसे ले लेनेसे थकापट ही अधिक होती है, विनाम कम भिन्नता है ॥ ६ ॥

[ नेपथ्ये ]

दो वैतालिक—महाराजकी जय हो ।

पत्नी—अपने मुखकी दृष्टि छोड़कर आप प्रेजाकी अनाहिमें लगे रहते हैं । या यों कहना चाहिए कि इस प्रकार काय अपना धर्म ही वास्तविक है, क्योंकि मृत्यु, अपने हितपर तो कड़ी धृष्ट सहता है, पर अपने तने बँठे हुए जीवोंकी छाया ही देखा रहता है ॥ ७ ॥

दूरवा—दुष्टोंको आप अपने राजदण्डसे डीन करते हैं और तबके धावपी भयसे

अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम

त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम् ॥८॥

राजा—एते वसन्तमनसः पुनर्बन्धुताः स्मः । [ इति परिच्छापति । ]

प्रतीहारी—ममो अहिंसावसम्मन्जरासस्मिरीयो सभिसिंहिवहोमयेषु अग्निसरसासिन्दो ।  
धारोहतु देवो । ( एष अग्निवसनाज्जनसश्रीकः सनिहितहोमयेनुरग्निप्ररसासिन्दः । धारोहतु देवः । )

राजा—[ आसह्य परिजनासायतन्वी तिष्ठति ] वेधवति ! किमुहिदय भयवता कण्ठेन परराक्षुश-  
सृष्यः प्रेषिताः स्युः ।

किं तावद्भविनाशुपोहतपसां बिध्नैस्त्वपो दूषितं  
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसञ्चेष्टितम् ।

आहोस्वित्प्रसवो भ्रमापन्नरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा-

मित्याकृष्टपहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः ॥९॥

प्रतीहारी—सुखरिवरुविषो इतोषो वेधं समानददं आधरेति तत्कथं । ( सुखरितमभिन  
श्रुपयो देव सनाजयितुनायता इति तर्कयामि । )

[ सतः प्रविशन्ति गीतमीसहिता सानुत्तसा पुरस्कृत्य मुनयः । पुरस्चैषा कञ्जुकी पुरोहितम् । ]

कञ्जुकी—इत इतो भयन्तः ।

गिदाकर भाव प्रजाको रक्षा करते हैं । प्रजामे जो घनी लीग है उनके लो बहुतसे सभे सम्बन्धी हो  
सकते हैं पर साधारण प्रजाके तो माँ-बाप-भाई सब कुछ पाप ही हैं ॥८॥

राजा—मेरा उदास मन इनकी बातें सुनकर फिर हरा हो गया ।

[ चारों ओर भूगते हैं ]

प्रतीहारी—यह रही आक-बुहारकर सुन्दर की हुई यमशासकी बैठक जहाँ पास ही हवनके  
निम्ने धी-धूम देनेवाली गौ भी बँधी है । इसीमें यह जाय महाराज ।

राजा—[ यहकर परिभारकोके कण्ठके सहारे खडा होता है । ] वेधवती ! भागधाम् कण्ठे  
श्रुपिषीको मता मेरे पास किस निम्ने भेजा होगा ? कहीं उपद्रवी राजस्रोत्रे बहुत प्रकारकी तपस्या  
कारनेवाले इन श्रुपिषीके तपमें तो बाधा नहीं टाल दी है ? या कहीं कोई तपोवनके प्राणियोंको  
तो नहीं सता बँटा है ? या कहीं मेरे पापके कारण तपोवनकी जताधो घोर वृक्षोंका फलना-  
फूलना तो नहीं रुक गया है ? मेरे मनमें यनेक प्रकारकी ऐसी बुरी-बुरी धाराकार्ण उठ रही है  
कि कुछ ठीक-ठीक समझ न पानेसे मेरे जो मे लालबसी मध गई है ॥९॥

प्रतीहारी—देव ! मैं तो समझती हूँ कि ये श्रुपि लोच महाराजके मन्त्रे कामोषे प्रसन्न  
होकर बपाई देने प्राए होये ।

[ सानुत्तसाको प्रागे किए हुए शीतलोके साथ श्रुपिकोळ प्रवेश । प्रागे-प्रागे कञ्जुकी ओर पुरोहित । ]

कञ्जुकी—द्वारसे भाङ्ग थाप लोच, दधरवे ।

शाङ्ग'रवः—शारद्वत ।

महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ

न कश्चिद्दुर्गानामपथमपकृष्टोऽपि भजते ।

तथापीदं शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा

जनाकीर्णं मन्ये हुतवदपरीतं शृद्धमिव ॥१०॥

शारद्वतः—स्वाने भवान्पुरप्रवेशादित्यंजुतः संवृत्तः । ग्रहमपि—

अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव प्रयुद्ध इव सुप्तम् ।

बद्धमिव स्वैरगतिर्जनमिह सुखसङ्गिनमपैमि ॥११॥

शकुन्तला—[निमित्तं सूचयित्वा] अन्वहे किं मे पापेवरं साम्ना विस्फुरति । (महो किं मे जानेतरं नयनं विस्फुरति ।)

गौतमी—जादे पबिह्वं अमज्जनं सुहाहं हे मत्कुलदेवदाप्रो वितरन्तु । [जाते प्रतिहृतमज्जलम् । सुत्तमि ते मत्कुलदेवताः पितृशत्रुः ।]

[इति परिक्रमसि ।]

पुरोहितः—[रालानं निर्दिश्य] भो भोस्तपस्विनः प्रसाधप्रभवत्कृष्णभाणा रजिता प्रापेव सुक्तासनी वः प्रतिपालयति । पश्यतैनम् ।

शाङ्ग'रवः—भो महासाहस्य ! कामभेतवमिन्द्रनीचं तथापि वयमत्र मध्यस्थाः । कुतः ।

शाङ्ग'रवः—शारद्वत ! यह मैं मानता हूँ कि वे राजा इतने शर्मिला हैं कि कभी गर्वदाका उल्लापन नहीं करते और इनके राज्यमें जो नीच-से-नीच वर्णके लोग हैं, वे भी कभी कोई अपमानका काम नहीं करते, पर इतने लोगोसे भदे हुए सबलकी देखकर ऐसा प्यान पड़ता है मानो यहाँ प्राणकी क्षयतें उठी हुई हो । मेरा अकेलेके रपनेवाला मन तो ऐसा करता है कि यहाँसे भाग खड़ा होके ॥१०॥

शारद्वत—नगरमें प्रापेवर ऐसा ही सगता है । मैं भी सांसारिक भोगोंमें पड़े हुए यहाँके लोगोंकी बँधा ही हीन समझता हूँ जैसे महाका हुआ व्यक्ति उल सगाए हुएको, पवित्र व्यक्ति अपवित्रकी, जागता हुआ व्यक्ति सोते हुए का समझता है ॥११॥

शकुन्तला—[पुरा सकुल बताकर] है ! यह मेरी बहिनी माँव क्यों कड़कने लगी ?

गौतमी—तेरे घबराव डर हो, पुत्री ! तेरे पति-कुलके देनता सब भना ही करे ।

[धूमती है]

पुरोहित—[राजाको दिखलाकर] तपस्विनो ! देखिए, नरपतिमया पालन करनेवाले महाराज पहनेसे हीं प्रासन जोड़कर खड़े हुए प्राप लोगोंके प्राणकी वाट देख रहे हैं । इन्हें देखिए तो ।

शाङ्ग'रवः—हे राजपुरोहित ! माना कि वे प्रजताके योग्य हैं पर हम इसे कोई नई बात

भवन्ति नग्रास्तरवः फलागमैर्नम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः ।

अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥१२॥

प्रतिहारी—देव यत्कृष्णमुहूर्त्तवशा दीप्तान्ति । जानामि वित्तवृत्तजा इतोषो । (देव प्रसन्नमुखवर्णा इत्यन्वे । जानामि विश्वम्बकार्या श्रुत्वा ।)

राजा—[सकुन्तला दृष्ट्वा] अथाप्रभवतो—

का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या ।

मध्ये तपोधनानां किमलयमिव पाण्डुपश्राणाम् ॥१३॥

प्रतिहारी—देव कुम्भहस्तगर्भोपहिषो एव मे लज्जो पतरदि । एवं वंशहोषा उवा से का किंवा लवकोम्रादि । (देवकुम्भहस्तगर्भोपहितो न मे लज्जः प्रसरति । ननु दर्शनीया पुनरस्या प्राकृतिर्विज्ञेयते ।)

राजा—भवतु । अनिबन्धनीयं परकलत्रम् ।

सकुन्तला—[सकृत्समुत्थिता कृत्वा भारगणतम्] हिमम कि एषं वेदति । अण्णजस्त भारं प्रीहारिण धीरं शप्ये होहि । (हृदय किंवेधं वेपते । धार्यपुत्रस्य भाग्यवश्यायं धीरं शप्ये ।)

पुरोहितः—[पुरो गत्वा] एते विधिवद्विज्ञास्तत्स्विनः । कश्चिद्वेषापुपाप्मासद्विज्ञः । तं देव श्योवुमर्हति ।

राजा—भवहितीभिः ।

नहीं समझते । क्योंकि—फल लगनेपर एक कुत्ते ही हैं, नये वससे भरे हुए पादल नीचे झुक ही जाते हैं और सज्जन लोग घन पाकर नज्र होते ही हैं । यह जो परोपकारियोंका स्वभाव ही होता है, इसमें नई बात क्या है ॥१२॥

प्रतिहारी—महाराज ! श्रुति लोग प्रसन्न दिखाई पड़ रहे हैं । इसलिये मैं समझती हूँ कि ये लोग किसी अच्छे कामसे ही आए होंगे ।

राजा—[सकुन्तलाको देखकर] ये कौन देवी हैं ।—इन तपस्वियोंके बीचमे पीले पत्तिये भरी कोपलके समान दिखाई देनेवाली यह कौन हो सकती है जिसकी गुत्तरता, भूँगटके कारण ठीक-ठीक सुन नहीं पा रही है ॥१३॥

प्रतिहारी—महाराज ! मैं भी यही जाननेको उतावली हो रही हूँ पर ठीक ठीक समझ नहीं पा रही हूँ । फिर भी, जान पड़ता है कि यह है नयी सुन्दर ।

राजा—दृष्टा करे । पराई स्त्रीपर धौल नहीं टासनी चाहिए ।

सकुन्तला—[हृदयपर हाथ रखकर मन ही मन] इस प्रकार क्यों बसे रहे हो, मेरे हृदय ! धार्यपुत्रके प्रेमका प्रान करके धीरज तो घरो ।

पुरोहित—[भाये बढ़कर] महाराज ! इन तपस्वियोंका ठीक विधिसे आदर-नरकर हो चुका है । ये अपने मुफ्तकीका कोई शन्देस आए हैं, उसे देव सुन लें ।

राजा—हाँ, हाँ, कहे धाप लोग मैं सुन रहा हूँ ।

शुभयः—[हस्तानुसंग्य] विजयस्व राजन् ।

राजा—सर्वानभिवाक्ये ।

शुभयः—दृष्टेन पुण्यस्व ।

राजा—अपि निविद्यन्तपसो मुनयः ।

शुभयः—

कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रचितरिं त्वयि ।

समस्तपति धर्माशौ कथमाविर्भविष्यति ॥१४॥

राजा—अर्थशास्त्रज्ञ मे राजप्रबन्धः । अथ भगवांस्तोकांनुग्रहाय कुशलो कण्वः ।

शुभयः—स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः । ॥ भवन्तमनाममग्रस्त-पूर्वकमिदमाह ।

राजा—किमात्तापयति भयवान् ।

शाङ्कर्य—यन्मिथः समयादिनां मतोषां दुहितरं भवानुपायंस्त तन्मया प्रीतिमत्ता  
पुत्रपोरनुजातन् कुतः ।

त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि नः शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया ।

समानयंस्तुत्यगुण्यं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः ॥१५॥

तद्विदानीमापन्नसत्त्वेयं प्रतिगृह्यतां सह्यमंपरत्वायेति ।

शुभि लोग—[हाथ उठाकर] महाराजकी गय हो ।

राज—मैं आप लोगोंको प्रणाम करता हूँ ।

शुभि लोग—आपका मनोरथ पूरा हो ।

राजा—कहिमे, शुभियोंकी तपस्यामे कोई विघ्न तो नहीं आत रहा है ?

शुभि लोग—जहाँ आप जैसे राजा पृथ्वीकी रक्षा कर रहे हों वहाँ सज्जनोंके धर्म-  
कार्योंमे भला कोई विघ्न आत सकता है ? सूर्यके चमकते रहनेपर भसा कही धियोत भी  
रह पा सकता है ॥१५॥

राजा—मान मेरा राजा कहलाना सफल हुआ । अच्छा यह तो बताइए कि संसारका  
कल्याण करनेवाले भगवान् कण्व तो कुशलसे हैं न ।

शुभि लोग—कुशलता तो ऐसे सिद्ध पुरुषोंके हाथमे रहती है । उन्होंने आपका कुशल  
पूछते हुए यह कहलाया है—

राजा—हाँ, भगवान् कण्वने क्या प्रार्थना की है ?

शाङ्कर्य—उन्होंने कहलाया है कि आपने जो मेरी कन्यासे गुप्तगुप्त विवाह कर लिया है  
उसे मैं प्रसन्न होकर स्वीकार करता हूँ । क्योंकि—आदरणीय व्यक्तियोंमे आप सबसे  
प्रधान हैं और शकुन्तला पुण्याक्रियाकी साक्षात् मूर्ति है । आज बहुत दिनोंपर प्रह्लादे एक  
जैसे गुणवाले पर-यत्न की जोड़ी रखकर अपनेको दोषी कहलायेते बना लिया है ॥१५॥  
अब आप इस गर्भमतीको अपनी धर्मपत्नी बनाकर ग्रहण कर लीजिए ।

गीतमी—यच्च किमपि वक्तुं कामाप्सिम् ए मे वचनानवसरो भवति । कथमिति ।

शाबेपिस्त्रयो गुरुग्रहो इमा ए तु ए पुच्छिदो ए बन्धुग्रहो ।

एकमेव चरिष्ये मणामि किं एकमेवकस्त ॥१६॥

( धार्यं किमपि वक्तुं कामाप्सिम् । न मे वचनानवसरोऽस्ति । कथमिति ।

नापेक्षितो गुरुजनोऽन्या त्वया वृष्टो न बन्धुजन ।

एकमेव चरिष्ये मणामि किमेवमेकस्य ॥ )

शकुन्तला—[ आत्मगतम् ] किं ए वक्तुं प्रवृत्तो भवामि । ( किं तु शस्त्रार्थपुत्री भवति । )

राजा—किमिदमुपगम्यस्य ।

शकुन्तला—[ आत्मगतम् ] वाचमो वक्तुं वचनोपगम्यस्यो । ( वाचकं वक्तुं वचनोपगम्यस्य । )

शाकुन्तला—कथमिदं नाम भवति एव सुतरां सोऽप्युक्तानिष्कृताः ।

सतीमपि ज्ञातिकुलैकमेवभयां जनोऽन्यथा मर्त्यमतीं विशङ्कते ।

असः समीपे परिणतुरिष्यते प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ॥१७॥

राजा—किं चाप्रमदते मया परिणतपुत्रः ।

शकुन्तला—[ वनिपाद्यम् । आत्मगतम् ] हिमस्य सख्यं दे वत्सङ्कर । ( हृदयं साप्रवृत्ते

प्राप्तम् । )

गीतमी—भार्य ! मैं भी कुछ कहना चाहती हूँ । यद्यपि मुझे प्रायः लोगोंके बीचमें कुछ भी बोलना नहीं चाहिए मगोकि—न तो इसीने धपने बबोसे कुछ कहा-मुमा, न प्रापने ही इसके सगे सम्बन्धियोंके कोई पूछ-ताछ की । इसलिये जब प्रायः लोगोंने प्रापसगे हीः सब कुछ कर डाला है तब मैं प्रायः दोनोंसे भला कहूँ क्या ॥ १६ ॥

शकुन्तला—[ ममही मन ] देखें, इस शासपर शर्मपुत्र क्या कहते हैं ?

राजा—प्रायः लोग यह कह रहा है ?

शकुन्तला—[ मन ही मन ] इन्हींने बातका धारम्भ क्या किया है कि प्रायः उगत रहे हैं ।

शाकुन्तला—प्रायः तो सोकाबारवी सगो बातें जानते हैं फिर ऐसा क्यों कह रहे हैं । जो सुहागिन स्त्री धपने पित्तके धर रहती है वह चाहे जितनी भी पतिव्रता हो फिर भी उसके सम्बन्धमें लोग बड़ी उन्टी-सीपी बातें उठा दिया करते हैं । इसलिये यह पुत्रती चाहे सबकी दुलारी ही क्यों न हो, पर उसके भाई-बन्धु लोग तो यही चाहते हैं कि वह धपने पतिके ही पास रहे ॥ १७ ॥

राजा—क्या इस देवीसे कमी पहले मेरा विवाह हो चुका है ?

शकुन्तला—[ दुखी होकर मन ही मन ] हृदय ! तुम्हें जो सख्य हो रहा था वह प्रायः प्रा रहा है ।



शाङ्गैरवः—

किं कृतकार्यद्वेषो धर्मं प्रति विमृशता कृतावज्ञा ।

राजा—शृतोऽयमसत्कल्पनाप्रदः ।

शाङ्गैरवः—

मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेसैश्वर्यमचेषु ॥ १८ ॥

राजा—पिपेदेत्यापि क्षितोऽस्मि ।

गौतमी जावे मुहुत्तम मा सज्ज । धक्काइस्तं बाव वे भौउण्डलं । तबो तुमं भट्टा  
भट्टिशास्तिस्सदि । ( जाते मुहुत्तं मा सज्जस्व । धपनेभ्यामि सावसेऽगुणमम् । ततस्त्वा भर्ताऽभि-  
शास्यति । ) [ इति यथोक्त करोति । ]

राजा—[ शकुन्तला निबंधं पारमगतम् ]

इदमुपनतमेव रूपमविलष्टकान्ति प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न चेत्यव्यवस्यन् ।  
अमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुपारं न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम् ॥ १२ ॥  
( इति विचारयन्तिपठ । )

प्रतीहारी—[ स्वगतम् ] अहो धर्मावैविलिप्ता भट्टियो । ईविस एताम पुहीवखलं रूप्य  
देविप्राप्त को अण्णो विचारयेदि । ( अहो धर्मावैविलिप्ता भट्टियो । ईदलं नान पुखोपनत रूप्य हृष्ट्वा  
कोऽन्यो विचारयति । )

शाङ्गैरवः—भापको मयन किए पर पछतावा हो रहा है, या थाप अपने कर्तव्यसे भाग रहे  
हैं या जान-बूझकर अपने लिए दुष्को थुला देना चाहते हैं ?

राजा—भापने यह बहानी केसर-पंखी बातें छेद दी हैं ?

शाङ्गैरवः—[ क्रोधम् ] जो ऐश्वर्यसे भठयाने ही जाते है वे ऐसे ही जोटे काम किया  
करते हैं ॥ १८ ॥

गौतमी—दासे ! मोटी देरके लिये लाज-सकीच छोड दो । मामो में तुम्हारा भुंयट उठा  
हूँ, जिससे तुम्हारे प्रति तुम्हें पहचान तो से ।

[ पुपट हटा देती है । ]

राजा—[ शकुन्तलाको ध्यावते देखकर मन ही मन ] मैं टीक-टीक निश्चय ही नहीं कर  
पा रहा हूँ कि यह जो मस्तक घोभावाली मुन्दरी यही अपने भाप या पहुँची है, इसने साथ  
मैंने पहले कभी दिकाह किया भी है या नहीं । और इछोलिये, जैसे प्रातःकालको सोस पड़े हुए  
मुन्दरे पूतपर भीरा न तो खंठला हो है न उसे छोडकर ही जाता है, वैसे ही मैं भी, न तो इसे  
पहच ही कर पा रहा हूँ न छोड ही पा रहा हूँ ॥ १९ ॥

[ राजा सोचता रह जाता है । ]

प्रतीहारी—[ मन ही मन ] हमारे महाराज धर्मना कितना ध्यान रखते हैं । नहीं तो,  
अपने भाप याद हुए ऐसे रूपको पाकर मना कोन इतना धागा-वीर्य छोपेगा ।

शाङ्कर्यः—भो राजन् किमिति बोधयामास्यते ।

राजा—भोस्तबोधनाः चिन्तयप्रथि न जनु स्वीकरसमप्रसवत्याः स्मरामि । तत्कर्मणिमा मभिव्यक्तसत्त्वलक्षणं प्रत्यात्मानं श्रेयिणमाश्रुमानः प्रतिपत्स्ये ।

शकुन्तला—[ अपवायं ] अजस्र परिखण्ण एव सदेहो । कुबो वाणि मे दूरादिरोहिणी प्राप्ता । ( धार्यस्य परिखण्ण एव सदेहः । कुत इदानी मे दूराधिरोहिण्यात्ता । )

शाङ्कर्यः—मा तावत्—

कृताभिमर्शाननुमन्यमानः सुतां स्वया नाम मुनिर्विमान्यः ।

मुष्टं प्रतिग्राहयता स्वमर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन ॥ २० ॥

शाङ्कर्यः—शाङ्कर्य ! विरम स्वमिवागोम् । जनुन्तौ वक्तव्यमुक्तप्रसमाभिः । सोऽयमत्र भवानेवमाह । वीयतानस्मै प्रत्ययप्रतिषधनम् ।

शकुन्तला—[ अपवायं ] इमं अवल्यन्तरं गदे तारिसे अशुटाए कि वा सुमराविदेण । अत्ता वाणि मे सोधणीषो ति मवतितां एव । [ प्रकाशम् ] अजस्रत [ इत्यर्थान्ते ] संसद्दे वाणि ए एषो ममुवाभारो । पोरव ए कुतं खाम दे तह पुरा अस्तमपदे सहापुस्तासहिमभं इमं जलं समप्रपुष्यं पतारिष ईदिनेहि अचरेहि पथाचकिण्डुं । ( इत्यवत्यन्तरं गते साहेज्जुराणे कि वा स्मारितेन । आभेदानो मे शोचनीय इति व्यवतिष्ठमेतत् । धार्यपुत्र ।

शाङ्कर्यः—ययो महाराज ! आप कुछ ययो हो गए ?

राजा—तपस्विनो ! बार-बार स्मरण करनेपर यो इस देवीके साथ विवाह करनेकी बात मुझे स्मरण ही नहीं आ रही है, तब बलाइये कि इस गर्भवतीके स्पष्ट सहायोगिनी देवीको स्वीकार करके दूसरेसे गर्भ धारण करनेवाली स्त्रीका पति कहलामेका अपवाद मैं ययो हूँ ।

शकुन्तला—[ असन् ] धार्यपुत्रको जब विवाहमे ही सन्देह हो रहा है तब मैंने और जो दबी-यदी भाषाएँ बाँध रखी थी उनका तो फिर ठिकाना ही कहाँ है ।

शाङ्कर्यः—हाँ-हाँ, मत करो स्वीकार । तुमको श्रुतिका अपमान करवा ही चाहिए क्योंकि चाहोमे तुम्हारे साथ यह भलमतसाहत की है न, कि उनकी जिस कन्याको तुमने छलसे हथित कर दिया है उसे वे तुम्हें योग्य पात्र समझकर उसी प्रकार चौप रहे हे जैसे शेरई अपनी चोरी गई हुई वस्तु मिलनेपर फिर चोर को ही सौटा दे ॥२०॥

शाङ्कर्यः—अजस्र शाङ्कर्य ! अब तुम कुछ ही जानो । [ शकुन्तला से ] देखो शकुन्तला ! हमे जो कुछ कहना था, कह चुके । इसर राजा भी ऐसी बातें कर रहे हैं । अब तुम्हीं इन्हे विदनास दिनायो ।

शकुन्तला—[ मन ही मन ] जब बात वहाँतक चढ चुकी है तब मैं उध प्रेमनी कुछ दिनाकर ही क्या करूँगी । अब तो मुझे अपने भाग्यको कोसना ही भर रह गया है । [ प्रकट ] धार्यपुत्र ! [ भाषा कहकर रक जाती है । ] पर जब इन्हे विवाहमे ही सन्देह हो रहा है तब इस प्रकार सम्बोधन ही करना ठीक नहीं है । हे पौरव ! मुझ भोजी-भालीको धार्यपुत्रे अपनी नीडी-

संशयित् एतन्नेयं समुदाधारः शीत्त्व ! न युक्तं नाम ते तथा पुराऽऽथमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिमं  
जनं समपपूर्वं प्रतापेहो रक्षारैः प्रत्याख्यातुम् । )

राजा—[ वरुणो पिपाय ] ज्ञान्त पापम् ।

अपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम् ।

कूलकपेव सिन्धुः प्रसन्नमम्भस्तटतर्हं च ॥२१॥

राजुन्तता—होतु ! जइ परमत्प्रतो परपरिग्रहसिद्धिखा तुए एय्यं वत्तं पठत्तं ता अहिण्णा-  
एण इमिणा तुह पातइत्तं प्रवत्तइत्तं । ( भवतु ! यदि परमापंतः परपरिग्रहसिद्धिना स्वयं वक्तुं  
प्रवृत्तं तदभिज्ञानेनानेन तद्वानंवायपनेष्यामि । )

राजा—उवाच वत्सः ।

राजुन्तता—[ मुदास्वानं परामृष्य । ] एदो एदो अहं गुलीप्रममुण्णा मे अंगुली । ( हा पिक्  
हा पिक् अंगुलीपक्कूया संऽगुलिः । ) [ इति सविपादं गीतमीमवेसते । ]

गीतमी—एतं हे सङ्गापदादम्भन्तरे सपोत्तरपत्तित्तं वन्दमानाया एवमहं अंगुलीप्रमं  
( नूनं ते सङ्गापदादम्भन्तरे सपोत्तरपत्तित्तं वन्दमानायाः प्रसन्नमंगुलीपक्कम् । )

राजा—[ सस्मितम् ] इदं ताम्बुत्पत्तमत्रि स्त्रं एमिति यदुच्यते ।

राजुन्तता—एतम् दाव विहित्वा संसिधं पठुत्तयां । अपरं हे क्वहिस्तं । ( अत्र तावद्विधिना  
दण्डितं प्रवृत्तम् । अपरं ते वक्ष्यामि । )

राजा—श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम् ।

मीटी बातोंके आशयमें कौशिकर सब इस प्रकार मेरा विरादर करना चापको घोभा नहीं  
देता ।

शकुन्तला—एह एककस्सि दिग्गहे सोमालिधामण्डले एतिलोपत्तमाभरणेण उभयं सुहृत्वे सल्लिहितं भासि । ( न-नेकस्मिन्-दिवसे नयमालिवापण्डले मन्दिनीपत्रमाजकगतमुदकं तद्य हन्ती सनिहितमासीत् । )

राजा—शृणुमस्तावत् ।

शकुन्तला—तत्रैतल सो मे पुत्रकिन्वन्नो धीहापङ्गो एवमिन्नवोदयो उच्यते । तुष्टं यत्र दायं पदम पिप्रयत्ति प्रकृतप्रमिणा उच्यते । एतज्जग दे अपरिचयाधो हृत्पभास उच्यते । पण्डो तस्सि एवम एहं एहिदे सन्तिरेणंणं किन्वो पण्यो । तत्रा तुम इत्थं पण्योसि । सन्को सपयेसु पित्तस्सि । पुत्रेण एवम अरण्यमासि । ( तत्राण स मे पुत्रवृत्तको दीर्घापाङ्गो नाम मृगयोत्क उपस्थित । एवम अय हायत्प्रथम पियत्तियनुकम्पिनी-पण्यन्वित उच्यते । न पुनस्ते अविश्वासाद्दस्ताभ्यासमुपगत । पण्योतस्मिन्नेव मया प्रहीते सन्तिरेणंणं कृतं प्रणयं । अत्रा तपविरथं प्रहसितोऽसि । अत्र सपयेसु किन्वित्ति । इत्यन्वयव्याप्यविति । )

राजा—एवमादिभिर्वाक्यैर्निरवसिनीनामकृतमयथाऽपुत्रिराकृत्यत्रे किंप्रिये ।

शकुन्तला—महाभाग एहं अहंस्सि एवम अस्मिन् । तवोच्यते अहंस्सि । अहंस्सि । ( महाभागं माहस्येव मन्वयितुम् । तपोवनसवपित्तोऽभिज्ञोऽयं जन कर्तव्यम् । )

राजा—तावत्तुष्टं ।

स्त्रीणामशिक्षितपदुत्वममानुषीषु संदृश्यते श्लिष्टं याः प्रतिगोधयत्यः ।  
प्रागन्तरिचगमनात्स्वमपत्यजातमन्यैर्द्विजैः परमृताः सन्तु पोषयन्ति ॥ २२ ॥

शकुन्तला—आपको स्मरण होगा कि एक दिन आप नयमालिवाके कुञ्जमें अपने हाथम पासीं भद्रा कमलके पत्तिका पीना लिए हुए थे ।

राजा—बहुते पण्ये । मैं सब सुन रहा हूँ ।

शकुन्तला—इतनेमे ही वहाँ मेरा पुत्रके समान पाता हुआ दीर्घपांश नामका मृग दोनों की छा पहुँचा । आपने उसपर दया करके कहा—पहले इसे खज पी लेने दो । यह कहकर आप उठे जल पिलाने लगे । पर परिचित न होनेके कारण वह आपके पास नया ही नहीं । तब मैंने आपके हाथसे दोनों ले लिया और वह मेरे हाथसे जल पीने लगा । उस समय आपने ईश्वर कहा कि अपने सबे-सब-विधोकी सभी पहचानते हैं । तुम दोनों ही बनवासी ही न ।

राजा—अपना काम आपनेवासी स्त्रियोंकी ऐसी भूठी और भीठी-भीठी बातोंम कामी धोष हो फैलते हैं । शक्य ।

शकुन्तला—महाभाग ! आपकी ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए । तपोवनमें पत्नी हुई क्या मत्सा सत्त बलकी बातें क्या जाने ।

राजा—बूढ़ी तस्मिन्ने । जो मानवी स्त्रियाँ नहीं हैं वे भी बिना शिक्षाए पढ़ाए बड़ी पतुर हो जाती हैं फिर इन सबकृतियों स्थितिका तो पूछना ही क्या । जानती हो । अब-तक कोयलके बच्चे उठना नहीं सीख जाते तबतब वह दूसरे पक्षियोंसे ही उनका पालन कराती हैं ॥ २२ ॥

शकुन्तला—[ सरोपम् ] अलखन ! अतः एते हिमप्राणमारुणो वेवतसि । को दासि  
अणुतो धम्मस्सुत्तुप्रपवेत्तिसो तिसुच्छप्पणकुबोवमसस तत्र अणुकिदिं पठिबवित्तादि ।  
अनार्य ! आतनो हृदयानुमानेन प्रेक्षसे । क इदानीमन्यो धर्मकञ्जुप्रवेदिनस्तृणच्छन्नरूपोप-  
पस्य तवानुर्कसि प्रतिपरस्यने । ]

राजा—[ आत्मधत्म् ] संक्षिप्यबुद्धि मां कुर्वन्नकंतव इवास्याः कोपो तप्यते । तथा  
ह्यनया—

मदयेव विस्मरणदास्यचित्तवृत्तौ वृत्तं रहः प्रणयमप्रतिपद्यमाने ।  
भेदाद्भ्रुवो कृदिलयोरतिलोहित्वाच्या भग्नां शरामनमिवातिरुपा स्मरस्य ॥ २३ ॥

[ प्रकाशम् ] भजे शयितं द्रुप्यन्तस्यस्य चरितम् । तथापिदं न जस्ये ।

शाकुन्तला—मुट्टु दास अतः सच्छन्दधारिणी विदग्धि जा अह इमस्स पुठवंसम्पञ्चएण  
मुहमहणो हिमपट्टिअविसत्ता हृदयभास उवपसा । ( मुट्टु वावदण स्वच्छन्दधारिणी कृताःस्मि  
याःइमस्य पुण्वसप्रसवयेन मुल्लमपोहं दयस्थितविदस्य हस्ताभ्याःमुपपसा । [ इति पदान्तेन  
मुल्लमावृत्त्य पेविति ।

शाङ्करव — इत्यमात्महृतं प्रतिहृत चापलं बहुति ।

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात्मगतं रहः ।

अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ॥ २४ ॥

शकुन्तला—[ शोषणे ] अनार्य ! तुम सबके हृदयको घपने ही हृदयके समान छोटा  
समझते हो । मुन्हें छोड़कर धीर कौन ऐसा नीच होगा जो चाप-पूससे ढंके हुए कुर्सेके  
समान धर्मका डोंग रचकर ऐसा लोटा बाम कर सके ।

राजा—[ मन ही मन ] इसके शोषणे सपाईं दिखाई पट रही है, इसीलिये मेरा मन  
धीर भी सन्नेहमे पडता जा रहा है । ठीक स्मरण न आनेसे अनेकेमें किए हुए प्रेमकी जो  
मैंने इतनी कठोरतासे अस्वीकार कर दिया है, उसपर लाख-लाख धाँसे करके प्रत्यन्त  
शोषणे शकुन्तलामे जो नीहें बडा सी हैं उन्हींमे इस समय कामदेवके अनुपपनो भी दो टुक  
कर दासा है ॥ २३ ॥ [ प्रकट ] भजे ! द्रुप्यन्तके नामको सारा उखार जानता है । पर ऐसी  
यात ही प्रायतक नहीं मुनी गई ।

शकुन्तला—तुमने ठीक ही किया जो मुझे कुबानी स्त्री बना दासा, क्योंकि जेवें तुमके  
पोसेमें आकर ऐसे नीचके हाथमे जा पडी जिसके मुँहमे मधु और हृदयमें विष भरा हुआ  
है । [ आँसुसे मुह ढँककर रोने लगती है । ]

शाङ्करव—बिना सोचे-समझे जो काम किया जाता है उसमें ऐसा ही दुःख मिला करता  
है । इसलिये गुप्त प्रेम बहुत सोच-विचारकर करना चाहिये क्योंकि बिना जाने-बूझे स्वभाव-  
वालेके हाथ जो मित्रता की जाती है वह एक न एक दिन शत्रुता बनकर ही रहती  
है ॥ २४ ॥

राजा—प्रिय भोः किमत्रभवतीप्रत्ययादेवास्मान्मधुतरोपाकरणे विद्युत् ।

शाङ्करव.—[सासूयव] श्रुतं भवन्निरघरोत्तरम् ।

अजन्मनः शाठ्यमशिक्षितो यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य ।

परातिसंधानमधीयते यैर्विद्येति ते सन्तु क्लिप्तात्तवाचः ॥ २५ ॥

राजा—भोः सत्यवादिषु मधुपुपलं तावदस्मान्मिरेवम् । किं पुनरिमानमतिबंधाम लभ्यते ।

शाङ्करव.—विनिपातः ।

राजा—विनिपातः पीरवैः प्रार्थयत इति न यद्वेद्यम् ।

शाङ्करव.—शाङ्करव । किमुत्तरेण । मधुच्छित्तो गुरोः संदेशः । प्रतिनिपतमिहे पयम् ।

[ राजानं प्रति ]—

तदेषा भवतः कान्ता रयज वैनां गृहाश वा ।

उपपन्ना हि दारेषु प्रभृता सर्वतोमुखी ॥ २६ ॥

गीतमि । गण्डाप्रतः ।

[ इति प्रस्थिताः । ]

शकुन्तला—कहं इमिला कितवेण विष्पलद्विह । मुझे वि मं परिच्छग्रह । ( कपमनेन कितवेन विप्रसम्भाऽस्मि । भूयमपि मा परिच्छग्रह । ) [ इत्यनुप्रतिष्ठते । ]

गीतमी—[ स्विवावा ] यच्छ सकुरव । अक्षगच्छवि इमं वधु खो कवणपरिवेविली

राजा—मुनिए तो ! इए देवीकी बातका निववास करके प्राय उरटी-पीपी बातें कह-कहकर हमपर कपीं दोष लगा रहे हैं ?

शाङ्करव—[भयने छागियोसे छोवसे] आपने सुनी इनकी उरटी बातें । जिहने जगसे लेकर भय तक छलका नाम भी न मुना हो, उरकी बातें मूठ समझी जायें और जिहने बूझरोकी धोखा देनेकी बातें पिछाके समान सीसी हो, वे सरयवावी समझे जायें ॥ २५ ॥

राजा—मच्छा सरयवादीजी ! मान लीजिए, हम ऐसे हो हैं । पर यह तो बताइए कि इसे छलकर हमें मिल क्या जायगा ?

शाङ्करव—पतन ।

राजा—यै इस बातकी नहीं मानता कि पुरुवंशी पतनकी ओर जाना चाहेंगे ।

शाङ्करव—शाङ्करव ! एत कहां-सुनीसे लाभ क्या है । भुरुकीका सन्देह हम इहें दे ही चुके । चलो, भय छोट चला जाय । [ राजासे ] राजव ! यह आपकी पत्नी है । इसे चाहे रहिए, चाहे निकालिए । क्योंकि पतिका धननी स्त्रियोंपर पूरा अधिकार होता है ॥ २६ ॥ चलो गीतमी, प्राणि-प्राणे चलो । [ चलते हैं । ]

शकुन्तला—एए भूत्तने तो मुझे ख्वा ही है, भय नया प्राय शीघ भी मुझे छोडकर चले जा रहे हैं ? [ उनके पीछे-पीछे जाती है । ]

गीतमी—[ खडी होकर ] वरम शाङ्करव ! यह शकुन्तला रोटी हुई हम लोगों के पीछे-

सजन्तला । पञ्चादेसपरसे भक्तलि कि बा मे पुतिप्रा करोतु । [वत्स शाङ्कर ! मनुगच्छतीमं  
सलु नः कष्टपरिदेविनीं प्रकुन्तला । प्रत्यादेसपरसे भर्तोर कि बा मे पुतिका करोतु ।]

शाङ्करवः—[सरोपं विवृत्य] कि पुरोमाये स्वातन्त्र्यमवलम्बसे ।

[ शकुन्तला भीता वेपथे ]

शाङ्करवः - शकुन्तले ।

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कुलया ।

अथ तु चेत्सि शुचिग्रतमात्मनः पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् ॥ २७ ॥

तिष्ठ । सापयामो वयम् ।

राजा—भोस्तपस्विन् किमन्नमवतीं विप्रसमसे ।

कुमुदान्पेव शशाङ्कः सविता बोधयति पङ्कजान्येव ।

वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः ॥ २८ ॥

शाङ्करवः—यथा तु पूर्ववृत्तमन्यसङ्गाद्विस्मृतो भवतिस्तदा कथमयमभीष्टः ।

राजा—भवन्तमेवात्र शुक्लापषं पृच्छामि ।

मूढः स्वामहमेवा ॥ वदेन्मिथ्येति संशये ।

दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शापांशुलः ॥ २९ ॥

पुरोहितः—[ विचार्य ] यवि तावदेवं क्रियताम् ।

पीछे बसी बा . रही है । यतामो, अब ऐसे निर्दोषे ठुकराई हुई मेरी बचो भला  
बता जाय ?

शाङ्करवः—[सोचते सोचकर] नवीरी दुष्टे ! क्या तू अपनी एतनाभी करना चाहती  
है । [शकुन्तला भयसे कांप उठती है ।] सुन शकुन्तला ! यदि राजाको बात सत्य है तो तुरू  
अंधी कुम-बलंबिबोका गिताके घर कोई काम नहीं है और यदि तू अपनीको पवित्र समझती  
है तो तुरू वाही बनकर भी अपने पतिके ही घरमे रहना चाहिए ॥ २७ ॥ अब यहीं रहे,  
हम पावे हैं ।

राजा—तपस्वी ! आप इसे क्यों भूठ-भूठ सोतेमे डाल रहे हैं—क्योंकि जैसे बग्गदा  
बैसल पुमुटोको ही खिलाता है और सूर्य केवल जगलोको ही खिलाता है वैसे ही जितेन्द्रिय  
सोम भी पराई स्त्रीको धूनेकी इच्छातक नहीं करते ॥ २८ ॥

शाङ्करवः—जब तुम अपनी दूसरी रानियोके पास आकर अपनी पिछली बात भूल  
उरते हो तब तुरू अपमंसे क्या कर है ।

राजा—[पुरोहितके ] अब मैं आपसे हो पूछता हूँ कि ऐसी दुबियामे मैं क्या करूँ क्योंकि  
या तो मैं भूल गया हूँ या ये भूठ बह रह रही हैं । अब मैं अपनी पत्नीको छोटनेका पाप  
करूँ या पराई स्त्रीको धूनेका पाप गिरपर हूँ ॥ २९ ॥

पुरोहितः—[सोचकर] अब ऐसी दुबिया है तो आप एक काम कीजिए ।

राजा—भगवास्तु भां भवान् ।

पुरोहितः—अत्रभवतो तावदाप्रसयादस्मद्गृहे तिष्ठतु । कृत इवमुच्यत इति चेत् । त्वं साधुभिर्दृष्टः प्रदमनेषु चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यतीति । तां क्षेम्युनिदोहिप्रस्तस्तक्षणीपपन्नो भविष्यति अभिनन्द्य शुदान्तरमेनां प्रवेशयिष्यसि । विषयं च पितुरस्याः समीपनयनमवस्थितमेव ।

राजा—यथा शुभम्बो रोचते ।

पुरोहितः—वस्ते ! अनुमध्य माम् ।

शकुन्तला— भगवति वसुधे ! देहि मे विवरं । ( भगवति वसुधे ! देहि मे विवरम् ) [ इति वदती प्रसिधता । निष्कान्ता सह पुरोधसा तपस्विभिश्च । ]

[ राजा सापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलावसुधेयं चिन्तयति । ]

[ नेपथ्ये ]

आश्रयं माश्रयं च ।

राजा—[ आकर्णं ] किं नु सल्लु स्वाम् ।

[ प्रविश्य ]

पुरोहितः—[ उभिरुभयम् ] वेव अशुभुतं अल्लु संबुत्सम् ।

राजा—किञ्च ।

राजा—हाँ, हाँ, वतसाइए ।

पुरोहित—पुत्र उत्पन्न होनेके समयतक मे मेरे घरपर रहे । माप पूछे क्यों ? तो इसलिये कि सापको ऋषियोने पहले ही आशीर्वाद दे दिया है कि सापके चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा । यदि कब वसुधेके मातृमै चक्रवर्तीके लक्षण मिल जायें तब तो इन्हे आशुके साथ अनिवासमे रख लीजिएगा और यदि लक्षण न मिलें तो इन्हे इनके पिताके पास भेज दिया जायगा ।

राजा—जैसा मुझी ठीक समझें ।

पुरोहित—वसुधे ! आओ मेरे साथ वसी आओ ।

शकुन्तला—भगवती वसुधे ! तू कह जा और मुझे सीखे से मे ।

[ रीती हुई शकुन्तला पुरोहित और ऋषियोके पीछे पीछे चली जाती है । ]

[ सापके कारण भूला हुआ राजा शकुन्तलाके सम्बन्धमें विचार करता है । ]

[ नेपथ्यमें ]

आश्रयं है ! आश्रयं है !

राजा—[ मुनते हुए ] धरे, क्या हुआ !

[ पुरोहित का प्रवेश ]

पुरोहित—[ आश्रयंसे ] महाराज, बड़े आश्रयंकी बात हो गई है ।

राजा—क्या हुआ ?



पुरोहितः—देव ! परावृत्तेषु कण्ठशिष्येषु—

सा निन्दन्तीं स्वानि भाग्यानि वाला वाहृत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता ।

राजा—किं च ?

पुरोहितः—

स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारारुत्तिचप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम ॥ ३० ॥

[ सर्वे विस्मय रूपान्ति । ]

राजा—भगवद् प्रायपि सौप्तनाभिरयः प्रत्यादिष्ट एव । किं वृथा तर्कैरान्विष्यते ।

विश्वाम्यतु भयाद् ।

पुरोहितः—[ विस्मय ] विश्वस्य । [ इति निष्क्रान्तः । ]

राजा—वेद्यवती ! परांकुलोत्पि । शयनशुभिनार्गमादेशय ।

प्रतीहारी—इदो इदो देवो । (इत इतो देवः ।) [ इति प्रस्थिता । ]

राजा—कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम् ।

वलवत्सु द्यमानं प्रस्थाययतीव मे हृदयम् ॥ ३१ ॥

[ इति निष्क्रान्ताः सर्वे । ]

इति पञ्चमोऽङ्कः ।

पुरोहितः—महाराज ! कण्ठके शिष्योके पक्षे जानेपर यह ऋषिकन्या, ज्यो ही क्षपने भाग्यको कोसवी हुई वहि पसार कर रने लगी—

राजा—तब क्या हुआ ?

पुरोहितः—यों ही स्त्रीके जंसी एक ज्योति आई और सबे क्षपनी गोदसे उठाकर अप्सरा-सीदकी और पत्नी गई ॥३०॥

[ सब आश्चर्य प्रकट करने हैं । ]

राजा—हमने तो उसे पहले ही छोड़ दिया है इसलिये उसपर तोचना-विचारना व्यर्थ है । अब आप भी जाकर विश्राम करें ।

पुरोहितः—[ देनकर ] महाराजकी जय हो । [ जाता है । ]

राजा—वेद्यवती ! मैं कुछ क्षमना सा हो गया हूँ । मुझे क्षयनपर पहुँचा दो तो ।

प्रतीहारी—दरसे आइए महाराज, दरसे । [ पसवी है । ]

राजा—यद्यपि विवाहकी शुष न होनेसे मैंने तुम्हारा धत्यन्त तिरस्कार कर दिया है फिर भी मेरा धामन बचकता हुआ हृदय न जाने क्यों रह-रह कर उसकी बातोंमें विश्वास करनेकी मजबूर रहा है ॥३१॥

[ सब चले जाते हैं । ]

पंचमोऽङ्क समाप्त ।

## षष्ठोऽङ्कः

[ततः प्रविष्टति सामरिक एवाद्यः पञ्चाङ्गं पुष्पमादाय रक्षितो च ।]

रक्षितो—[वाचयित्वा] अने कुम्भीतथा कहेहि कहि सुए एउो मणिवन्धुद्विगुणामहेए सामकोए अंगुलीअपु शमावादिषु । (धरे कुम्भीरु नथय कुन त्पयैतन्मणिवन्धनोकीलं नामधेय राजकीयमंगुलीयक समासादितम् ।)

पुष्पः—[भीतिनाटितकेन] पशोदन्तु भाषयिष्यौ । ह्ये ख ईदियकम्मकासी । (प्रदोदन्तु भाषयिष्या अहं नेहस कर्मकारी ।)

प्रथमः—कि शोदुल्ले अहस्योति कलिभ रज्जा पद्विगहे विण्णे । (कि शोभनो प्राहृणु इति कलिपित्वा राजा प्रतिग्रहो दत्तः ।)

पुष्पः—सुष्टुभ रक्षितः । ह्ये अह्नाबलात्मन्तरात्तवासी धीवने । (नृशुतेवानोम् । अहं एकावतारात्मन्तरात्तवासी धीवरः ।)

द्वितीयः—पादपत्तल । कि अह्नेहि जावी पुन्दिवा । (पादपत्तल । किमस्माभिर्जातिः पृष्टा ।)

रमासः—सूचक कहेहु वाच्यं अद्यक्रमेण । सा खं अन्तरा पद्विगन्धह । (सूचक कथयतु सर्वमनुक्रमेण । नैतमगहरा प्रतिग्रन्थय ।)

उभौ—ज धाशुत्ते भासयेवि । कहेहि । (यद्युत्त धाज्ञापयति । कथय ।)

पुष्पः—अहके आशुगालाभिहि मध्यधन्धलोयाएहि कुङ्कुमभललं कलेपि । (अह जासोदपामा-दिभिर्नोपयवधनोपायैः कुङ्कुमवरण करोमि ।)

## पष्ठ अङ्क

[राजाका साता मगर-रक्षक धीर उसके पीछे-पीछे दो रस्सबाने एक पुष्पको बंधि हुए प्रवेश करते हैं ।]

दोनो—[बन्दीको पीटते हुए] बोल रे बोर ! यह राजाके नामवासी रतन-जयी सैंगुडी तुझे कहाँसे हाथ लगी ?

पुष्प—[हारेका नाट्य करता हुआ] क्या करो महाराज । मैं ऐसा काम कभी नहीं करता ।

पहली—तो क्या तुझे कोई सुवात झाँझल समझकर राजाने यह राबने दे डाली है ।

पुष्प—सुनिए सो । मैं सक्ताबवार मौजेके पास रहनेवाला एक मछुआ हूँ ।

दूसरा—धरे बोर ! हमने क्या तेरी जाति पूछी थी ?

रमास—सूचक ! इसे सब धातों डीनये कहने दो, बीचमे टोको मत ।

दोनो—जैसो भाषकी आज्ञा । हाँ, बता रे ।

पुष्प—मैं जान, कंटिया धीर बसो बालकर मछलो फँसावा करता हूँ और उसीसे अपने बाल-बच्चीका पेट पासठा हूँ ।

ध्यातः—[विहस्य] विशुद्धो दण्डि आजीवो (विशुद्ध इदानीवाजीवः ।)

पुरुषः—भट्टा मा एवम् भय ।

सहजे किल जे विधिन्दिए ए हु दे कम्म विवज्जणीअए ।

पशुमालखकम्मदालुणे अणुक्म्पामिद्दु एव्व शोचिए ॥१॥

(भतः मैवम् भय ।)

सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम् ।

पशुमारखकर्मदारुणोऽणुक्म्पापृदुरेव श्रोत्रियः ॥

ध्यातः—तबो तबो (ततस्त्वतः ।)

पुरुषः—एकरुसिद र्दभजे खण्डतो सोरुह्ममच्छे अए कसिपेदे । जाव तस्य उदलभग्नते एदं लक्षणाशुलं अंगुलीभ्रमं देविसस्य पण्डा अहके दो विवकभाभ दंभप्रते गहिबे भायमिदोह । मालेहि वा कुञ्चिबेहि वा । भ्रमं दो भ्राममवुत्तन्ते । (एकस्मिन्विवचे खण्डतो रोहितमत्स्यो नया कसिपतो यावत् तत्सोदराभ्यन्तर इदं रत्नभासुरमङ्गुलीकक हृष्टया पत्रादहं तस्य विक्रयार्थं दर्शयन्गुहीतो भावमिदं । नारयत वा मुञ्चत वा । भ्रममस्यागववृत्तान्तः ।)

ध्यातः—जाहम विस्रगन्वी गोदादी मच्छयन्वी एव्व सिस्संसभं । अंगुलीभ्रमवंतएणं दो विमरित्तवधं । रामजलं एव्व गच्छामो । (जानुक विस्रगन्वी गोदादी मत्स्यबन्ध एव नि.संगायम् । अङ्गुलीयकदर्शनमस्य विमर्शयित्तव्यम् । राजकुलमेव गच्छामः ।)

रक्षिणी—तह । गच्छ मते गच्छनेधम (तथा । गच्छ मरे गच्छभेदक ।)

[सब परिक्रान्ति ।]

ध्यात—[हँकर] बड़ा काम से रक्षा है ।

पुरुष—ऐसा न कहिए, स्वामी !—जिस जातिको भगवान्ने जो घुरा-मला काम दे दिया है, वह छोड़ा पोड़े ही जाता है । देखिए पशुपोको मारना है तो बड़ा बुरा काम, पर बड़े-बड़े ब्रह्मचारी और देव जाननेवाले ब्राह्मण भी मत्स्यके लिये पशुपोको मारते ही हैं ॥१॥

ध्यात—गच्छा, गच्छा माये बला क्या हुआ ?

पुरुष—एक दिन ज्योही मैं एक रोहू मछली काट रहा था ज्योही उसमें यह रत्न-जड़ी पमकीती अंगुठी दिखाई पड़ गई । उसे बेचनेके लिये नाकर मैं दिखावा ही रहा था कि मायने मुझे बाँप लिया । पहले तो इस अंगुठीके मिलनेकी कथा है । अब चाहे प्राय मुझे मारिए, चाहे छोड़िए ।

ध्यात—जानुव । इसमें तो संदेह नहीं कि यह गोह खानेवाला गणुमा ही है क्योंकि इसके चरीरमें कच्चे गोतपी दुर्गन्ध था रही है । यह जो अंगुठी मिलनेकी बात बता रहा है उसकी पलकर ठीक ठीक जाँच कर लेनी चाहिए । इसलिये चलो, राजाके पास बसा जाय ।

दोनों - बहुत अच्छा । रे गँडफटे ! चल ।

[सब घूमते हैं ।]

श्यालः—सूचक ! इमं गोपुरद्वारं अन्वमत्ता पङ्क्तिबासह ज्ञान इमं शङ्गुलीममं जहाय-  
मणं भद्रिणी शिपेदिप्र तवो सासलं पङ्क्तिद्वारं शिङ्गुमाणि । ( सूचक ! इमं गोपुरद्वारेऽन्वमत्तो  
प्रतिपाद्यतं यावदिदमद्गुलीयकं यथाऽऽम्यन अर्हनिवेद्य ततः प्राप्तं प्रतीक्य निष्कृतानि । )

उमो—पवित्रं अशुभे शर्मिषशावक्षत । ( प्रविशत्वामुत्तं स्वामिप्रसादाय । )

[ इति निष्का-तः श्यालः । ]

प्रथमः—आलुप्र ! बिनामदि श्नु भानुते । ( जानुक ! विरायते सत्वामुत्तः । )

द्वितीयः—एषं प्रवशान्तेवशाप्यणीमा ताम्राद्यो । ( नन्ववतरोपसर्पणीया राजानः । )

प्रथमः—आलुप्र ! कुलमिति मे हृत्पा इमश्च वृहस्य शुभला पिलदुम् । ( जानुक ! प्रस्फुरती  
मम हस्तावस्य वधस्य सुमनसः पिनदुम् [ इति सुखं निविशति । ]

पुत्र्यः—ए अलुहृदि भावे अवातललासलं भविदुं । ( नाईति भावोऽकारणकारणो भवितुम् । )

द्वितीयः—[ विनोदय ] एते म्हाखं जामो पतश्रुये जामजातलं पङ्क्तिद्वारं इवोमुहे  
वेनलीमदि । गिद्धवली भविशशिशि, तुलो मुहं वा देविशशिशि । ( एष नो स्वामो पत्रहृत्तो  
राजघासनं प्रतीकपेत्तोमुलो इमथते । पुध्रवतिभंविप्यति शुचो मुत्त वा इक्षयति । )

[ प्रविश्य ]

श्यालः—सूचक मुञ्जेतु ऐतो जातोप्रजीवो । उववण्यो श्नु शङ्गुलीममस्य आममो ।  
( सूचक ! मुञ्जपतामिप जातोप्रजीवी उपपन्नः सत्वद्वगुलीयकस्यायतः । )

सूचकः—अहं पावुते भत्यादि । यथाऽऽवृत्तो भवति । )

श्याल—सूचक ! जबतक मैं महाराजकी श्रृंगुटी मिलनेका समाचार सुनाकर और  
उनकी यात्रा लेकर सौद न आऊँ तबतक तुम दोनों नगरके फाटकपर संभाषणकर इसकी  
चीकती करना ।

दोनों—हाँ, हाँ, जाइए जाइए, स्वामीकी कृपा पाइए ।

[ श्याल जाता है । ]

पहला—जानुक ! बड़ी देर लगा दी उन्होंने तो ।

दूसरा—धरे भाई ! राजाके पास शवधर देखकर ही तो पहुँचा जाता है ।

पहला—जानुक ! इसे मारनेके लिये लाख फुडकी यात्रा पहनानेको मेरे हाथ बड़े कुजवा  
रहे हैं । [ मसुएकी ओर संकेत करता है । ]

पुत्र्य—भाई, बिना पाउके मुझे क्यों मारने पर उठाऊ ही रहे ही ?

दूसरा—[ देखकर ] अह देखो ! हमारे स्वामी हाथमें राजाका यात्रा-पत्र लिए बसे पा  
रहे हैं । अब या तो तु गिडोका भोजन बनेगा या कुत्तोसे नोना जायगा ।

[ श्यालका प्रवेश ]

श्याल—सूचक ! छोट बौ इस मसुएको । श्रृंगुटी मिलनेका ठीक विवरण मिल गया ।

सूचक—जैसी स्वामीकी आज्ञा ।

द्वितीय—एसे जमराबर्ण पवित्रिष्य पडिखिणुते । ( एष यमराजने प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः । )  
[ इमिं पुरुषं परिमुक्तबन्धने करोषि । ]

पुरुषः—[ श्यालं प्रणम्य ] भद्रा ! अहं कीलिये मे आजीवे । ( भर्तः ! अथ कीदृशो मे आजीवे । )

श्यालः—एसे भद्रिया अंगुलीप्रणम्यस्तस्मिन्निवो पसावो यि वाविदो । ( एष भद्राङ्गु-  
लीयकमूल्यसंमितः प्रसादोऽयं दापितः । ) [ इति पुरुषाय स्वं प्रयच्छति । ]

पुरुषः—[ सप्रणामं प्रतिश्रुत्य ] भद्रा ! अणुग्वहीदग्निह् । ( भर्तः ! अणुग्वहीदोऽग्निह् । )

सूचकः—एसे एतम् अनुग्वहे जे सुलावो अन्नदातिष्य हृत्पिकल्पे पडिदुविधे । ( एष  
नानानुपहो यच्छूलादवसायं हृत्पिकल्पे प्रतिष्ठापितः । )

आनुकः—आनुत्त ! वलिवोऽं कहेहि तैख अंगुलप्रणम्य भद्रियो जन्मवेख होखब्बं ।  
( आनुत्त परितोषं कथय तैनाङ्गुलीयकेन यन्तुः संमतेन अनित्यम् । । )

श्यालः—ए तस्मिं महाकहं रवसं भद्रियो अहमबं त्त तक्केमि । तस्स र्वाणोण भद्रियो  
अभिभवो अणो सुमराविदो । अणुत्तमं पकिरिपन्धीरो वि पणुस्सुअणप्रणो प्राति । ( न  
तस्मिन्महाहं रत्तं भद्रुंअहमसंमित तक्केयानि । तस्य वसंनेन अतुरंअभितो णन-स्मारितः । अणुत्तं  
अणुत्तममीरोऽपि पणुंस्सुकानयन आसीत् । )

सूचकः—कैविषं एतम् आणुत्तेख । ( सेवितं नामानुत्तम् । )

आनुकः—ए अणुत्तहि इमअण कए अणुत्तमाभत्तुलोत्ति । ( अणुत्तम अणुत्तम इति मात्स्विक-  
अणुत्तित्ति । ) [ इति पुरुषमसूचया पश्यति । ]

दूतरा—भरे, यह तो यमराजके घर पहुँचकर सीत आया ।

[ उसका बन्धन ढीलता है । ]

पुरुष—[ श्यालको प्रणाम करके ] कहिए स्वामी ! मेरा काम क्या निकला ?

श्याल—हे ! महाराजने इस अंगूठीके मोलके बराबर धन भी तुम्हें प्रसादमें दिया है ।

[ मण्डुएकी धन देता है । ]

पुरुष—[ हाथ जोड़कर धन लेता है । ] बड़ी दया है भावकी, स्वामी !

सूचक—एकमण्डु दया तो इसीका नाम है कि सूसोसे उठारकर श्यालीकी पीठपर  
बैठा दिया है ।

आनुक—स्वामी ! इसे प्रसाद नहीं, पारितोषिक कहिए । क्योंकि धान पड़ता है कि यह  
अंगूठी स्वामीको बड़ी अच्छी जैची है ।

श्याल—एक अंगूठीके रखीके बरख महाराजने उधना धादर नहीं किया बरन् उधे  
देखते ही उन्हें अपने किसी प्यारेका स्मरण हो आया । क्योंकि यद्यपि स्वामी स्वभावसे  
ही बड़े गम्भीर है फिर भी अंगूठीको देखकर वे सोची देखने लिये धनमने-से हो गए थे ।

सूचक—तब तो सपसुन आपने राजाका बड़ा काम किया है ।

आनुक—वै बहो कि इस मण्डुएने राजाका नाम दिया है । [ मण्डुएकी ईर्ष्याकी दृष्टिसे  
देखता है । ]

पुष्पः—मृदात्क ! इवो अर्द्धं तुम्हाणं सुमणोमुत्सं होवु । ( भट्टारक ! हतोऽयं मुग्धाकं सुमणो-  
मूर्खं भवतु । )

वानुकः—एसके जुजई । ( एतावद्युज्यते । )

दयानः—धीवर ! महत्तरो तुमं विषयघरसधो वालि मे संवुतो । कादम्बरीसबिलधं  
अम्हाणं पदमसोहिं हृच्छीअवि । सा सोच्छिआणं एव्य एच्छाणो । ( धीवर ! महत्तरत्थं  
त्रिययस्यक इदानीं मे संवृत्तः कादम्बरीसासिकमस्माकं प्रपमसोहृदमिण्यते । तच्छीण्डिकापणुमेव  
गच्छामः । )

[ इति निष्कान्ताः सर्वे । ]

॥ प्रवेशकः ॥

[ उद्यः प्रविशरयाकाशवागेन सामुपति साम्बरा । ]

सामुपती—सिम्बट्टिं नए पक्काअलिम्बरासिम्बं अच्चरातिरथलसिम्बं जाव साहुज-  
एस्त अहितेअकासो सि । रंभं इभरस राएसिणो उदतं वच्चवोकरिस्तं । सिरवासंभ्येए  
सरीरभूषा मे सज्जता । ताए म दुहिहुलिनिर्तं भादिट्टपुम्बहि । [ समग्रादवतोवप ] कि  
ए वल्लु उल्लुवै वि सिम्बठ्ठवारम्भं विम रामवलं वीसद । अरिय मे विहुवो पणियाणोए  
सम्भं परिण्णावुं । कि तु सहीए भावरो मए भाएइवव्य होवु । इमाणं एव उज्जालपासि-  
भाणं तिरअरिणीपडिच्छण्णा परसवतिणी भविष उवतहिस्तं । ( निर्बलितं मया पयो-  
निर्बलनीयमपारस्त्रीर्यसाविष्यं चापसायुजनस्यानियेककास इति । साप्रसगस्य राजपदेदतं प्रयत्नी-  
करिण्यामि । श्रेयकारम्भान्येन सरीरभूता मे सकुन्तता । तथा च दुहिहुनिदिसमादिण्टपुम्बांसिमि । कि  
तु खलु शत्रुसन्नेरपि निहासकारम्भविष राजकुल इत्यते । अस्ति मे विभवः प्रसिपानेव सर्वं परिशानुम् ।

मधुमा—स्वाधी ! इनमे से माया चाप अपने पान-फूलके लिये ले लीजिए ।

वानुक—यह तो इनका पद ही है ।

दयान—मधुए ! आजसे तुम हमारे बड़े प्यारे मित्र हो गए । चलो, हम-दुम चलें और  
मदिराके मागे अपनी विभता बचनी कर लें । चलो, मदिराघरमें चला जाय ।

[ सब जाते हैं । ]

॥ प्रवेशकः ॥

[ आकाशमें विमानपर चढ़े हुई सामुपती अन्धराकर प्रवेश । ]

सामुपती—साधुजनोके राजाके समय अन्धरातीर्थकी देख-भाल करनेकी आज मेरी  
धारी थी । वह काम तो कर चुकी । धर्म धर्म चलकर अपनी शालोसे उस राजदिली  
दशा तो देख लू क्योंकि मेनकाकी कन्या होनेके बाते सज्जताओ भी भेरी कन्या ही हुई ।  
उसी मेनकाने अपनी कन्याके लिये कुछ उपाय करनेको मुझे बहुत पहलेसे ही कह रखा  
है । [ चारी और देखकर ] अरे ! अन्धराके उदभवका दिन आ पहुँचा और यहाँ राज-गवनों

किं तु सद्यः धादरोपया मामधितव्यः । भवतु धनयोरेवोद्यानपाविश्वोस्तिरस्करणी प्रतिच्छलाच्छन्ना  
पात्रं वतिनी भूस्वोपलप्स्ये । ) [ इति नाञ्चोनावतीर्यस्थिता । ]

[ ततः प्रविशति चूतानुरमथसोकयन्ती चेतो । अपरा च पृष्ठतरस्याः । ]

प्रथमा—

धातम्महरिअपरहुर जीविदसर्व्वं वसन्तमासस्य ।

दिद्वो मि चूदकोरअ उदुमङ्गल तुमं पसाएमि ॥ २ ॥

[ धातामहरितपाण्डुर जीवितसर्वं वसन्तमासस्य ।

दृष्टोऽसि चूतकोरक ऋतुमङ्गल इवा प्रसावयामि ॥ ]

द्वितीया—गरुडिए कि एयादएी मन्नेसि । ( परभृतिके विभेकाकिनी मन्वपसे । )

प्रथमा—महुप्रिए चूदकलिभं देविदथ उन्मसिमा परहुदिआ होसि । ( मधुकरिके चूत-  
कलिका दृष्टोन्मत्ता परभृतिका भवति । )

द्वितीया—[सहर्षं स्वयोरपथ्यं] कंह उवहुिदो महुमासो । ( कथमुपस्थितो मधुमासः । )

प्रथमा—महुप्रिए तथ शालि वासो एसो मदविभमगीवाए । ( मधुकरिके तवेदानी काल  
एय मदविभ्रमगीतानाम् । )

द्वितीया—राहि अथसम्भ मं जाव अगपदिद्विआ भविष चूदकलिभं गेहिम्भ कामदे-  
वकषां करेमि । ( ससि मवलम्बस्य मा यावदसपादस्थिता चूत्वा चूतकलिकां पृहीत्वा कामदेवाचंन  
करोमि । )

एकदन सम्राटा ! यद्यपि दिव्य दृष्टिसे मैं सब कुछ जान सकती हूँ, फिर भी प्रपनी सखीकी  
यात तो रखनी ही होगी । मन्त्रा, तिरस्करिणी विद्यासे प्रपनेकी सिपाकर इन मालिनीके  
साध-साध चलकर दर्शाया सब समाचार सिए सेती हूँ ।

[ विमानसे उतरनेवा नाट्य करके नीचे खड़ी हो जाती है । ]

[ भामनी बीर देखती हुई एक परिपारिका धाती है । उसके पीछे दूसरी परिपारिका है । ]

पहली—हे वसन्त ऋतुदे जीवन सर्वस्व ! वसन्तके मंगल स्वरूप ! हे साल, हरे, पीले  
रंगवाले बीर ! भान पहले-पहल तुम्हारा दर्शन हो रहा है । तुम हमपर प्रसन्न हो जाओ  
जिससे हम सोनीका वसन्त सुखसे बोते ॥२॥

दूसरी—भरी परभृतिना (बीर) ! तू महेले-महेले क्यों क्रूर रही है ?

पहली—मधुकरिका (भौरी) ! धामनी बीर देखकर परभृतिना (बीर) तो मतवाली  
ही हो जाती है ।

दूसरी—[उत्प्राणसे भरी हुई सीधतसे पास जाती है] क्या वसन्त आ गया ?

पहली—मधुकरिका (भौरी) ! तेरे भी तो मस्तोने पीत मानेके ये ही दिन है ।

दूसरी—उली ! मुझे सफरा बे तो पञ्जोकि जस सटो होकर पुजावे लिये धामनी बीर  
उतार नू ।

प्रथमा—जइ भम बि बणु अइं अन्वयसुक्तस्त । ( यदि ममापि लल्लवर्णमार्चनपस्तस्य । )

द्वितीय—अकहिये वि एवं संपन्नइ जदो एवर्क एव्य खो जीविदं बुधाद्विदं सरीरं ।  
[ सखीमवलम्ब्य स्थिता चूताकुरं शृणोति ] अयं अम्पडिबुद्धो वि धुदण्यतवो एव्य बन्पराभङ्ग-  
सुरभी होदि । [ ददि कपोतहस्तकं क्रुत्वा ]—

तुमं सि मए चूदंकरु दिवखो कामस्म महिदधसुयस्स ।  
पहियजखुवइलपखो पञ्चमहिद्यो सरो होही ॥ ३ ॥

( अकहियेज्येतरसंपद्यते मत् एवमेव चो ज्ञोवित्तय द्विधा स्थित शरीरम् । मये मप्रतिबुद्धीर्गपि  
चूतमसवोऽथ बन्पराभङ्गसुरभिर्भवति । )

रयमसि मया चूताकुर ! दत्त-कामाय बुद्धीतधनुये ।  
पथिकजनपुपतिलदय-पन्थाम्यधिकः शरी भव ॥ )

[ इति चूताकुरं क्षिपति । ]

[ अविरवापरीक्षेपेण पुषितः ]

बंबुकी—मा तापद् । अन्तारमजे देवेन प्रतिपिडे बान्धतौत्सये त्यमात्रकलिकाभङ्ग किमारभते ।  
उने—[ मोते ] पतीरहु अज्जो । अम्पहीबत्ताभो वणं । ( प्रवीयत्वार्यः । अगृहीतार्यं  
मावाम् । )

पहली—पूजनका माया कन मुझे भी मिने तो सहारा हूँ ।

दूसरी—यह तो बिना कहे ही मिस जाया न्योवि हम तुम हो ही शरीर और एक प्राण है ।  
[ सखीके सहारेसे धामकी बीर उतारती है । ] बाह ! मयपि धारी बीर खिल नहीं पाई है फिर भी  
हालतो वीरुदे ही कौसी सुगम्य कटी पद्म रही है । [ अम्बकी बांधकर ] धरी धामकी मञ्जरी !  
मैं तुम्हे धनुष-धारी कामदेवके लिये भेंट करती हूँ । परदेवसे गए हुए लोचोकी युवती सिन्धोकी  
काम-पीड़ा देनेके लिये तुम कामदेवके पाँचो बाखोमे सबसे अधिक फेनी बन जाओ ॥३॥

[ धामकी मञ्जरी बाल देती है । ]

[ परदा झटककर कञ्जुकीका प्रवेश ]

तृतीया—[ झोपिल होकर ] हे, हे ! यह क्या कर रही हो नासमझ छोरकरियो ! जब रावाने  
इस बवं बान्धतोस्तव रोक दिया है तब तुम लोग धामकी मञ्जरीको क्यों खेदे जा रही हो ?

चौथी—[ डरी हुई-सी ] क्षमा कीजिए धार्य ! हमे इसका ज्ञान नहीं था ।



कंचुकी—न किल भूतं युवाभ्यां यदासन्तिकंस्तर्हभिरपि देवस्य दासनं प्रमाणीकृतं तदाश्विनिः  
पत्रिभिश्च । तथा हि—

चूतानां चिरनिर्गताऽपि कलिका वध्नाति स्वं रजः

संनद्धं यदपि स्थितं कुरवकं उत्कोरकावस्थया ।

कपटेषु स्वलितं गतेऽपि शिशिरे पुँस्कोकिलानां हतं

शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्त्वार्धकृष्टं शरम् ॥४॥

सानुमती—एतपि सदेहो । महाप्यहामो राएसी । ( नास्ति सदेहः । महाप्रमावो राजपिः । )  
प्रथमा—अत्र कति दिवहाइं अन्हासं मितावगुणा रट्टिएण भट्टिएणाममूलं वेतिवाणं  
एय अ एो पमदवल्स पातकन समपित्तं । ता घामन्नुभवाए अस्तुवपुग्धो अन्हेहि एसो  
बुत्तवो । ( धार्यं ! कति दिवसान्मानयोमिवावमुना रट्टियेण भट्टिनीपादपूतश्रेपितयोः प्रथ क  
नो प्रमदवनस्य पालनकर्म समपित्तम् । तदागन्तुकृतयाऽनुतपूर्वं प्रावाभ्यामेव बुत्तान्तः । )

कंचुकी—भयसु । न सुमरेषं प्रवर्तितव्यम् ।

दमे—धरम ! कोतूहलं खो । अइ इमिखा नखेण सोत्तव्वं क्खेत्तु धरजो किलिमित्तं भट्टिएण  
वसन्तुत्सवो पडिसिद्धो । ( धार्यं ! कोतूहलं नो । यद्येव वनेन श्रोतव्यं कदपत्वार्यः किं निमित्तं  
धर्मा वसन्तोत्सवः प्रतिपिद्धः )

सानुमती—उत्सवपिमा वसु मच्छता । बुद्धया कारणेण होत्तव्वं । ( उत्सवमियाः क्लुः  
मनुष्याः । गुणया कारणेण मपितव्यम् । )

कंचुकी—क्या तुम सोचोने नहीं सुना कि वसन्तमें फूलने-फूलनेवाले वृक्षोंमें और जगपर  
बहेरा सेनेवाले पक्षियोंमें भी महाराजकी आज्ञा मान ली है । देखो—धामके बौर बहुत पहले  
फूल भाए थे, पर वनमें पराग अभी तक नहीं था पाया है । कुरवका फूल खिलना ही चाहता  
था, पर अभी ज्यों-का-त्यों बंधा पड़ा रह गया है । जाड़ा बीत जाने पर भी कौयलकी फूल  
उसके गले तक आकर ही रुक गई है । कामवेव भी अपने तूखीरसे बाण निकालता है पर  
डरकर फिर वसीमें रुक लेता है, छोड़ नहीं पाता ॥४॥

सानुमती—इसमें क्या सन्देह है ! राजपिका बड़ा शरी प्रताप है ।

पहली—धार्य ! नगर-रसक मित्रावसुने हम लोगोंको सभी घोड़े दित पहले ही महाराजकी  
सेवामें प्रमद-वनकी रसवासी करनेके लिये भेजा है । इसलिये नई होनेके कारण हम लोगोंकी  
इस बातका पता ही नहीं था ।

कंचुकी—अच्छा, फिर कभी ऐसा काय न करना ।

दोनों—धार्य ! हम भी यह बात सुनना चाहती हैं । यदि सुनानेमें थड़चन न हो तो कृपाकर  
बतला दीजिए कि महाराजने वसन्तोत्सव क्यों रोक दिया है ।

सानुमती—मनुष्योंकी तो भेले-उत्सवकेअ बड़ा चाव होता है, इसलिये उत्सव रोक देनेवा  
कीसे उत्सव ही बड़ा उत्सव होता है ।

कञ्चुकी—यह लोभितमेतर्किक न कथ्यते । किमप्रभवत्यो. कस्यपि नापातं शकुन्तलाप्रत्या-  
देशकौतौनम् ।

उभे—मुर रट्टिमप्रहायो जाय अन्तोममवस्सल । (श्रुत राष्ट्रियमुखाचावदगुचीयकदधनम् ।)

कञ्चुकी—तेन ह्यल्पं कथयितव्यम् । यदेव खलु त्वांपुनोयकदधनानुसृष्ट देवेन सत्यमुदपूर्वा  
मे तत्रभवती रहति शकुन्तला मोहात्कथाविष्टेति । तथा प्रभूत्येव पश्चात्तापमुपगतो देवः ।  
तथा हि—

रम्यं द्वेषि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेच्यते  
शाय्याप्रान्तधिवर्तनेर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः ।  
दादिसयेन ददाति धाचमृचितामन्तःपुरेभ्यो यदा  
गोत्रेषु स्यात्तितस्तदा भवति च श्रीढाविल्लक्षिरम् ॥५॥

सानुवती—विशं मे । (विशं मे ।)

कञ्चुकी—अस्मात्प्रभवतो बंमनस्यावुत्तव. प्रायात्प्रातः ।

उभे—शुभम् । (शुभते ।)

[निपथ्ये]

शुभं एव भय । (एतु एतु भवात् ।)

कञ्चुकी—अध्या, यह बात जब धारो धोर लीक गई है तब मैं भी कहे डालता हूँ । क्या  
शकुन्तलाके छोड़े जानेकी बात पुन लोपोके कानमे गही पगी है ?

दोगी—हाँ, राजाकी धेगूठी मिलने तककी बात तो मगर-रसकके मुँहसे हम सुन चुकी है ।

कञ्चुकी—तब तो धीका ही गुनावा रह गया है । उस मंगूठीको देखते ही महाराजको स्मरण  
हो उठा कि मैंने शकुन्तलाके एकामने विवाह किया था धोर भूलके उधका निरादर कर दिया ।  
उसीसे उन्हे बडा पछतावा हो रहा है धोर उनके मनकी व तो धब कोई सुन्दर वस्तु ही भारती है  
धोर न वे पहले के समान मन्त्रियोंके ही साथ निरप बीठते हैं । चलंगपर करवट बदलते हुए वे पूरी  
राज्य जाय-जायकर बिता देते हैं । अब रनिवासको रानिर्वा उनसे हठ करके इस उदासीका कारण  
प्रच्छती है तब भोंकने उनके मुँहसे शकुन्तलाका नाम निकल जाता है धोर वे बगी देर तक छनाए  
रह जाते हैं ॥५॥

सानुवती—यही तो मैं सुनना चाहती थी ।

कञ्चुकी—बस, इसी दु हाके फारल वसन्तोत्तव रोक दिवा गया है ।

दोगी—उन तो लीक ही है ।

[निपथ्ये]

भाइए महाराज, भाइए ।

कञ्चुकी—[फलं दत्त्वा] श्रेय । इत एवाभिवर्तते देवः । स्वकर्मानुष्ठीयताम् ।

सभे—सह । (तथा ।) [इति निष्क्रान्ते]

[ततः प्रविशति यथाज्ञापितसदृशवेधो राजा विदूषकः प्रतीहारी च ।]

कञ्चुकी—[राजानमवलोक्य] प्रहो सर्वस्ववस्थासु रमस्त्वोयत्वमकृतिविज्ञेयाणाम् । एवमुत्सु-  
कोऽपि प्रियवशान्तो देवः । तथा हि—

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिवामप्रकोष्ठापितं

विअस्काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः ।

चिन्ताजागरसुप्रतान्तमयनस्तेजोगुखादात्मनः

संस्कारोल्लिखितो महामथिरिव शीणोऽपि नालक्ष्यते ॥६॥

साकुन्ती—[राजानं दृष्ट्वा] ठालें वसु यथादेतदिमासिदा वि इमस्त किदे सजग्दता  
किलम्मदि ति । (स्थाने वसु प्रत्यादेशविमानिताज्यस्य कृते शकुन्तला स्वाम्यतीति ।)

राजा—[प्यानमन्द परिक्रम्य]—

प्रथमं सारङ्गाच्या प्रियया प्रतिशोच्यमानमपि सुप्तम् ।

अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं संप्रति विबुद्धम् ॥७॥

कञ्चुकी—[कान्त लगाकर] अरे ! महाराज ती इधर ही चले जा रहे हैं । अब जाओ, तुम  
खोग भयना-भयना काम देलो ।

दीनो—बहुत अच्छा । [दीनो जाती है ।]

[विदूषक दीर प्रतीहारीके साथ पछताते हुए राजा आते हैं ।]

कञ्चुकी—[राजाको देखकर] प्रहो ! जो सुन्दर होते हैं वे सभी दलानोंमें अच्छे लगते हैं ।  
देखो, उदास होते हुए भी महाराज कैसे अच्छे लग रहे हैं । क्योंकि—केवल बाएँ हाथ परके सोमके  
एक मुण्डाम्पनी छोड़कर उन्हीने शोभा बढानेवाले सभी बहूने उतार डाले हैं, उनकी उर्मासोंदि  
नीचेका छोट भी लाल हो गया है और चिन्ताके कारण रातभर जागनेसे उनकी धार्लें भी घलघल  
पई है । पर इस प्रकार दुःखी होनेपर भी वे उसी प्रकार दुबले नहीं लगते जैसे खरादकर काटा  
हुआ वह महामणि, जो छोटा हो जाने पर भी अपनी चमकके कारण खोटा नहीं लगता ॥६॥

साकुन्ती—[राजाको देखकर] यद्यपि शकुन्तलाको छोड़कर इन्हीने उसका बड़ा भारी भयमान  
क्रिया है विसपर भी शकुन्तलाका इनके लिये ठठपना ठीक ही जैयता है ।

राजा—[चिन्तामे धूमता हुआ] उस समय जब वह मुझके सपान धार्लोंवालो मेरी प्यारी  
शकुन्तला बार-बार मुझे सम्झा रही थी तब उसे मेरी धार्लें सुनी नहीं, अब केवल पछतावेका  
दुःख सहनेके लिये मेरा यह भ्रमामा हृदय जाग उठा है ॥७॥

सानुमतो—एवं ईदिसासि सवस्त्रिण्योए भाभहेभसि । ( नन्वीहसनि सपस्विन्ना भाग-  
येयानि । )

विदूषकः—[ घपगावें ] संधिरो एसो भूमो वि सजन्दलावाहिशा । एउ घारो कहुं  
बिकिन्चिद्वरको भविरसवि सि । ( सङ्कित एप भूयोऽपि शकुन्तलाव्याधिवा । न जाने कर्षं बिकि-  
रिसतव्यो भविष्यतीति । )

कञ्चुकी—[ उपगन्व ] जयतु जयतु देवः । महाराज ! प्रत्यवेक्षितः प्रमदवनभूमयः । यथा-  
कासमभ्यास्तां विनोदरधानानि महाराजः ।

राजा—वेप्रयति ! महारजसनात्यमार्यंविनुर्नं शूहि । विरप्रबोधनाम्न संभायितमस्माभिरस्य  
धर्मासनभासासितु । यत्प्रत्यवेक्षितं वीरकार्यमार्येण सत्पन्नमारोम्य द्योयतामिति ।

प्रतीहारी—जं देवो ब्राह्मणेदि । ( यद्देव माज्ञापयति । [ इति निष्क्रान्तः । ] )

राजा—यातायन ! स्वमपि एवं निवोगमशुभ्यं कुप ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । [ इति निष्क्रान्तः । ]

विदूषक—किदं भवता सिम्भभिद्यम् । संपदं सिसिरासवन्द्योदरमणोए इमस्ति पमद-  
वद्वहंसे भसाए रनइस्तति । ( कृतं भवता निर्मलिकम् । संप्रतं सिसिरासवन्द्योदरमणीयेऽस्मिन्प्र-  
मदवनोद्देशे धारमानं रयमिष्यति । )

सानुमति—क्या करें, बेचारी शकुन्तलाके माग्य ही ऐसे हैं ?

विदूषक—[ धनप ] सोह । शकुन्तलाके रोपने इन्हे फिर भा घेरा है । न जाने यह रोग  
जायगा कैसे ?

कञ्चुकी—[ पास जाकर ] महाराजको अय हो । प्रमद-वनकी भूमि भाट-बुहारकर ठीक  
कर भी गई है । धन घाय चलकर चलकर जाइँ मर्यादक नम मर्यादकरकी भूमिमें  
विधाम करें ।

राजा—प्रतीहारी ! जाकर मेरी मोरसे समास्य धर्मविनुकते कहना कि माय मैं देखे  
उठा हूँ, इसलिये ब्याप करनेके लिये समा-वनमें नहीं पहुँच पाऊँगा । प्रवरका जो कुछ भी  
काम हो वह भाप सिद्धकर मेरे पास भिजवा दीजिएगा । सभभी ।

प्रतीहारी—बंसी महाराजकी आज्ञा । [ जाती है । ]

राजा—जाओ यातायन ! तुम भी अपना काम देखो ।

कञ्चुकी—बंसी देवकी आज्ञा [ जाता है । ]

विदूषक—धनदा किया जो सब मन्त्रिपयों उधा दी । धन घाय चलकर इस प्रमदवनमें मन  
बहसाइए जहाँ न तो बाइँकी ठंढक ही है न यमीकी तपन ही ।

कंचुकी—[कण्ठ दत्वा] अये । इत एवाभिषत्तते देवः । स्वकर्मानुष्ठीयताम् ।  
उभे—सह । (तथा ।) [इति निष्क्रान्ते]

[ततः प्रविशति पश्चात्तापसदृशवेषो राजा विद्रुपकः प्रतीहारी च ।]

कंचुकी—[राजानमवलोक्य] महो सर्वास्ववस्थानु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम् । एवमुत्सु-  
कोऽपि त्रिपदानो देवः । तथा हि—

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वाग्मप्रकोष्ठापितं

विभ्रत्काञ्चनमेकमेव बलयं श्वासोपरक्ताधरः ।

चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनस्तेजोगुणादात्मनः

संस्कारोल्लिखितो महामयिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते ॥६॥

शानुमती—[राजानं हृष्टवा] ठाणें क्युं पञ्चारेसविमारिवा वि इमस्त किजे सउम्वला  
किलम्भदि सि । (स्वाधे क्षणु प्रायादेशविमानिताज्यस्य कृते सक्रान्तता वनाम्पतीति ।)

राजा—[आनमन्वं परिक्रम्य]—

प्रथमं सारङ्गाध्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम् ।

अनुशपदुःखायेदं हतहृदयं संप्रति विबुद्धम् ॥७॥

कञ्चुकी—[काम लगाकर] अरे ! महाराज तो हृषर ही बने पा रहे हैं । अब शाओ, तुम  
सोए सपना-सपना काम देखो ।

दोनों—बहुत अच्छा । [दोनों जाती है ।]

[विद्रुपक भीर प्रतीहारीके साथ पछताते हुए राजा आते हैं ।]

कञ्चुकी—[राजाको देखकर] महा ! जो सुन्दर होते हैं वे सभी दरवाजोंमें अन्दे लगते हैं ।  
देखो, उदात्त होते हुए भी महाराज कैसे अच्छे लग रहे हैं । क्योंकि—केवल बाएँ हाथ परके सोनेके  
एक मुण्डमन्त्री छोड़कर संहोंने सोभा बढ़ानेवाके सभी गहने उतार दिये हैं, उनकी सर्रासोंके  
नीचेका भीत भी सात हो गया है और चिन्ताके कारण रातभर जागनेसे उनकी भीलें भी बलवा  
गई हैं । पर इस प्रकार दुःखी होनेपर भी वे उसी प्रकार दुबले नहीं लगते जैसे घरादकर काटा  
हुआ वह महामणि, जो छोटा हो जाने का भी सपनी अमकके कारण छोटा नहीं लगता ॥६॥

शानुमती—[राजाको देखकर] यद्यपि शकुन्तलाको छोड़कर इन्होंने उसका बड़ा भारी सपना  
किया है तिसपर भी शकुन्तलाका इनके लिये सपना ठीक ही बँचता है ।

राजा—[चिन्तामें घुमता हुआ] उस समय जब वह मुझे समान धौनोंवाली मेरी प्यारी  
शकुन्तला बार-बार मुझे समझा रही थी तब तो मेरी भाँस सुती नहीं, अब केवल पछतावेका  
दुःख सहनेके लिये भेद्य वह सपना हृदय जाग गया है ॥७॥

सानुमती—खं ईदित्तल्लि तवत्तिल्लीए भाअहेमाणि । ( नन्वीदृशानि तपस्विन्ना भाग-  
वेयानि । )

विदूषकः—[ अपवायं ] लंघिबो एतो भुभो ॥ सतन्वतावाहिष्ण । ए भाएो र्हं  
चिकिच्छिवयो भवित्तसि ति । ( लङ्घित एष भूयोऽपि अकृन्वताव्याधिका । न जाने कथं चिकि-  
त्सितस्यो नविष्यतीति । )

कञ्चुकी—[ उपवश्य ] जयतु जयतु देवः । महाराज ! प्रत्ययेतिहाः प्रमदवनभूमयः । मया-  
काममस्यास्तां विमोदस्थानानि महाराजः ।

राजा—वेप्रवति ! महत्तनात्तमस्यमार्येपियुनं ब्रूहि । चित्तबोधनात्त संभावितमस्याभिरष्ट  
धर्मात्तमभ्यासितु । धरप्रत्यवेक्षितं धीरकार्यंमार्येण तत्प्रमदरोष्य सीयतामिति ।

प्रतीहारी—जं देवो भाएलोएरि । ( यहं व भात्तापयति । [ इति निष्क्रान्ताः ] )

राजा—वातायन । त्यममि एवं नियोगमभून्वं कुव ।

कञ्चुकी—पराप्तामयति देवः । [ इति निष्क्रान्तः । ]

विदूषक—किं भवता स्तिभ्रच्छिभं । संपवं सितिराखवच्छेप्रदमलीए इमास्ति पमद-  
वयुहेसे धत्ताए एमइरसति । ( इत्तं भवता निर्मादिकम् । साप्रतं शितिराखवच्छेदरमणीयेऽस्मिन्न-  
पदवमोहेसे प्राणानं एममिष्यति । )

सानुमति—क्या करें, बेचारी शकुन्तलाके भाग्य ही ऐसे हैं ?

विदूषक—[ धतय ] मोह ! शकुन्तलाके रोवने इन्हे फिर मा रोए है । न जाने यह रोग  
जायगा कैसे ?

कञ्चुकी—[ वास जागर ] महाराजकी जय हो । प्रमद-वनकी भूमि आह-बुहारकर ठीक  
कर बी गई है । अब माप चलकर जबतक जाहें तबतक उस सतबहुतायकी भूमिमें  
विश्राम करें ।

राजा—प्रतीहारी ! जाकर मेरी धीरसे अमात्य धार्यपिशुनसे कहना कि आज मैं देरसे  
उठा हूँ, इसलिये स्थाय करनेके लिये सभा-भवनमें नहीं पहुँच पाऊँगा । अजाका जो कुछ भी  
काम हो वह माप जिसकर मेरे पास भिजवा दीजिएगा । समझी ।

प्रतीहारी—जैसी महाराजकी आज्ञा । [ जाती है । ]

राजा—जाओ वातायन ! तुम भी अपना काम देखो ।

कञ्चुकी—जैसी देवकी आज्ञा [ जाती है । ]

विदूषक—अच्छा किया जो सब मन्त्रिणां उठा दीं । अब माप चलकर उस प्रमदवनमें मन  
बहुताएए जहाँ न तो जाइकी ठठक ही है न गर्वकी लपट ही ।

राजा—धरत्य धनुष्यते र प्रोपनिपातितोऽन्या इति तदप्यभिचारि वच युत ।

मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः ।

मनमिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चृतशरश्च निवेशितः ॥ ८ ॥

विदूषक—विदू राय । इमिछा दण्डकट्टेस कदप्यवाण खासदस्य । ( तिष्ठ तावत् । अनेन दण्डकाष्टन कदप्यवाण नामविष्यामि । ) [ इति दण्डकाष्टमुत्सृज्य वृत्ताकुर पातयितुमिच्छति । ]

राजा—[ स्मितम् ] भवतु इष्टं ब्रह्मवचसम् । सखे ! क्वोपविष्ट प्रियाया किंप्रवृत्तुका रिणीषु जतासु दृष्ट विलोभयामि ।

विदूषक—एष अस्मत्परिवारिका चतुरिका भवता सखिभू माह्वारमण्डने इमं वेत्तं अविवाहितम् । तर्हि मे चित्तकृतभगद सहस्यसिंहिद तत्तहोदोए सउदलाए पत्रिकिदि अणोहि ति । ( नवाहम्परिवारिका चतुरिका भगता सदिष्ट माधवीमण्डप इमा वेजामतिदाह-  
यिये । तम मे विप्रकसकगता श्वहस्तनिक्षिता तत्रभवत्या ककुभलाया प्रतिवृत्तिमागत्यति । )

राजा—ईदृशं हृदयविनोदमस्थानम् । तत्रमेव मार्गसादेशम् ।

विदूषक—इदो इवो मय । ( इत इतो भवान् । )

[ उभो परिक्रामत । सानुगत्यनुगच्छति । ]

राज—धरत्य ! किसोने बहुत ठीक कहा है कि विपत्ति खदा प्रदसरनी क्षणमें रहू करती है । देखो—अभी मेरे मनसे शकुन्तलानो युता देनेवाला शीह उतरा ही नहीं था कि मुझे नारनेके लिय अपने धनुषपर आमके बौरसा यह तर्क आण खडाकर नामदेव भी था घमका ॥ ८ ॥

विदूषक—सण्डा रनिए । मैं अभी अपने खेले कामने शखनी खोडे डालता हूँ न । [ अपना डडा उठाकर बौर फाटना चाहता है । ]

राजा—[ हँसते हुए ] अच्छा अच्छा, रहने दो । देख लिया तुम्हारा बहुरेज । अब खनी मिय, कोई ऐसा स्थान बतानी जहाँ बँटवर त्रियासे कुछकुछ मिलती जुलती लता आँको देखकर अपनी आँखें ठण्ठी की जायें ।

विदूषक—पर आपने तो अभी रनियासनी दाखी चतुरिकाकी कहा है न, कि हम माधवी-मण्डप जाकर ली बह्लाते हैं और सुप हमारे हाथवा खीना हुआ शकुन्तलाना पिय वहाँ लती आना ।

राजा—हाँ वह स्थान तो है मनवह्लासक । तो उधर ही स खनो ।

विदूषक—तो इधरने धाए महाराज, इधर से ।

[ दोनों मुठ्ठे हैं, सानुमती पीछ हो लेती है । ]

विदूषक.—एतो मलिशिलापट्टकसखाहो माह्वीमण्डवो जवभाररमलिज्जवाए शिस्त्रसय  
सामदेख विध खो पदिच्छदि । ता पविस्त्रिध लितीन्दु भव । (एष मलिशिलापट्टकसनाया  
मापवीमण्डप उपचाररणीयतया नि सभय स्वागतनेव नो प्रतीच्छति । तत्प्रविश्य निपीदतु गवानु ।)

[उभौ प्रवेत्त कृत्यापविष्टौ ।]

सानुमती—सवासरिसदा वेविसस्वं दस्य राह्येए पदिच्छदि । तवो से भसुखो बहुभुई  
अष्टुराए शिवेददरस । (सतासधिता प्रख्यामि सावत्सख्या प्रतिकृतिम् । ततोऽस्या भर्तृबहुभुज-  
मनुदाय निवेशयिष्यामि ।) [इति सया कृत्वा स्थिता ।]

राजा—सखे सर्वमिवासी रमराणि शकुन्तलाया प्रथमवृत्तान्तम् । कथितवानस्मि भवते  
ष । स भवान्प्रत्यादेशवेलायां मरसभोपगतो नासोए । पूर्वमपि न स्थया वदाभिरसकीर्तित  
सप्रभवत्या नाम । कश्चिदह्निच विस्मृतवानसि स्वप् ।

विदूषक—ए विनुमरगिम् । किन्तु सख कहिण प्रवसाणे प्रस सुए परिहासविप्रप्यभो  
एतो ए भूदायो सि आकाविसव । मए वि मिपिण्डबुडिखा तह एव गहीव । अहवा  
भविष्यावा षण्ड वसवती । ( न विस्मरामि । किन्तु सर्व कथयि वाञ्छसाने पुनस्तपया परिहास-  
विजल्प एव न भूतायै हस्यारुवातम् । अयामि मृत्तिगडबुडिना तयैव गृहीतम् । मथवा भवितव्यता  
सनु वसवती ।)

सानुमती एव खेव । (एष नु पतत् ।)

राजा [ध्यान्वा] सखे । प्रागस्य भाम् ।

विदूषक—देखिए ! फूलोंसे सजी हुई मलिशिलाकी सुन्दर चौकी विद्यावर यह मापवीकी  
कुज मामी प्रापका स्वागत करनेकी बात देता रही है । इसलिये वही पत्तनर बैठा जाय ।

[दोनों प्रवेश करते देखते हैं ।]

सानुमती—अच्छा सबके भी सताकी सोचते देखती हूँ कि मेरी सतीया किन कंसा था है ।  
तनी ही मैं जाकर उससे बात सक्ती कि तुम्हारे पति तुमपर कितने प्रकारसे प्रेम दिखा रहे हैं ।  
[बैसा करती है ।]

राजा—यमस्य । धक अनुन्तलाकी सभी बातें स्मरण था रही हैं और तुम्हारे लोरे स्मरण  
शुका हैं । अब मैंने अनुन्तलाको यहसे सोटाया था उस समय न तो तुम दे ही मौर ए तुम्हारे  
सब बातें ही स्मरण दिनाई । जान पडता है मेरे ही समान तुम भी स्मरण रहे थे ।

विदूषक—भूला तो नहीं था । पर अब कुछ कह चुकनेपर दूसरे काने पर नए कदम  
नि के सब बातें ही मैंने हँसीसे कही थी तब मेरी मूर्खकी विस्मरणसे सोचते ही मैंने सब बातें  
बँठी । या वो कहिए कि वो होनेवाला होता है वह होकर ही रहता है ।

सानुमती—यही बात है ।

राजा—[सोचकर] नयामो मुझे मित्र ।



विदूषक—भो कि एवं । अथवावर्णां कस्य ईदिस जुह । कदा वि सप्पुरिता सोधवत्तया  
ए ह्येति । एवं वदे वि लिखकम्पा गिरीशो । (भो. किमेतत् । अनुपपन्न धत्वोदश इविय ।  
कदाऽपि सत्पुरुष सोऽवर्णानां च भवन्ति । ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा विरगः ।)

राजा—वयस्य ! निराकारलविकलवायाः प्रियाया समवस्थामनुत्कृष्टम बलवदशरथोऽस्मि ।  
सा हि—

इतः प्रत्यादेशात्स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता  
स्थिता तिष्ठेत्सुचैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे ।  
पुनर्दृष्टिं शम्पप्रसरकलुषामर्षितवतीं  
मयि क्रूरे यत्तत्सविपमिव शन्यं दहति माम् ॥६॥

सानुमती—अन्वहे । ईदिसी स्वकजपरता इमस्त सतावेण अहं रमामि । (महो !  
ईदिसी स्वकार्यपरता । अस्य सतावेनाह रमे ।)

विदूषक—भो अस्मि मे तज्जो केण वि ससोहोरी चापासवारिणा खीरे ति । (भोः  
अस्ति मे अर्क. केनापि समभवती आकाशवारिणा मोतेति ।)

राजा—कः पतिवैवताभावः परामर्दमुत्तहेतः । मेनका कित सख्याते जाभप्रतिष्ठेति  
श्रुतवानस्मि । तत्सहचारिणीभिः एषो ते हतेति मे हृदयमाशङ्कते ।

सानुवती—सामोहो कस्य विन्धुषसिण्जो शु पडिबोहो । (समोहः सद्यु विस्मयनीयो न  
प्रतिमोषः ।)

विदूषक—अरे अय मह मया कर रहे हैं ? यह आपकी सोभा नहीं देता । सज्जन सोय कानी  
ऐसे दुखी नहीं होते । देखिए, आधी आनेपर भी पहार नहीं हिता करते ।

राजा—मिष ! जिस समय मैंने प्यारीको यहाँसे लौटाया उस समय उगकी जो दशा थी उसे  
स्मरण करते मैं आपे में नहीं रह पाता । क्योंकि, उस समय वह—वह यहाँसे लौटा ही गई और  
अपने साधियोंके पीछे चलने लगी उस मुझे समान भूख भुग शिष्योने उसे डाँटकर कहा कि तुम  
यही रही । वह लकी हो गई । उस समय भाँसोंमें भी भ्रमर मुक निष्ठुरकी ओर उड़ने जो  
देता था वह मुझे ऐसी पीडा दे रहा है जैसे किसीने विषसे मुझे हुए चरुके मेरे शरीरमें पाव  
कर दिया हो ॥६॥

सानुमती—अरे ! अपने विष्पर इतना पछतावा ! इनके दु खको देकर मेरे जी को बडा  
अन्धोप मिष रहा है ।

विदूषक—महाराज ! मैं सोचता हूँ कि देवी शकुन्तलाको कोई स्वर्गीय दूत उठा ले गया होगा ।  
राजा—अरे, उस पतिव्रताको दूसरा छू कौन सकेगा । पर मुना है कि उधकी माँ मेनका है ।  
मुझे डर है कि कहीं उसकी ससियाँ ही उसे न उठा ले गई हों !

सानुमती—इस समय राजाको जो इसनी आठ स्मरण हो रही हैं उन्हें सुनकर मुझे इतना  
अधरक नहीं होता जितना इस बातपर कि उस समय वे भ्रूष मैंसे गए थे ।

विदूषकः—जइ एव्यं घटिय बलु समाप्रभो कातेलु ततहोवीए । ( पठेनम् अस्ति यनु समागतः कालेन तत्रभवत्या । )

राजा—क्यमिष ।

विदूषकः—ए बलु मातापिदरा भतुविप्रोभतुविषयं दुहितरं चिरं देविगदुं पारिन्ति । ( न अमु मातापितरो भतुं वियोगदुःखितां दुहितरं चिरं द्रष्टुं पारयतः । )

राजा—अथस्य ।

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु क्लिष्टं नु तथित्फलमेव पुण्यम् ।

असंनिवृत्तयै तदतीक्ष्णते मनोरथानामतटप्रपाताः ॥१०॥

विदूषकः—मा एव्यं । अंगुलीभ्रमं एव्य एिबंसलं अक्षरसंभाषी अक्षितित्प्रभो समाप्रभो होरि ति । ( संवद् । नन्यदुगुनीभ्रमेव निदरं नभवस्यंभाष्यचिन्तनोप. समापमो भवतीति । )

राजा—[ अंगुलीभ्रम विनीय ] अये इवं तावदंगुलमत्पानअंति शोषनीयम् ।

तव सुचरितमङ्गुलीष नूनं प्रतनु ममेव विभाज्यते फलेन ।

अरुण्यनसमनोहरासु तस्याभ्युत्पत्ति लब्धपदं यदङ्गुलीषु ॥११॥

शानुमती—जइ अण्णहत्थगळं मये सत्थं एव्य शोषण्णगळं भवे । ( यद्यन्यहत्तगळं भवेद् सापमेव शोषनीयं भवेत् । )

विदूषकः—यदि उसकी सखियाँ ही बदा ले गईं होंगी तब तो उसे छोड़े दिलोमें बिना ही सामानिए ।

राजा—क्यों ?

विदूषकः—यदिसे विद्युदी हुईं अपनी कन्याका दुःख माता-पिता अधिक बिनो तक नहीं देत सकते ।

राजा—मित्र ! मैं ठीक-ठीक समझ ही नहीं पा रहा हूँ कि शकुन्तलाका यह निजाप सपना था, या जादू था, या भ्रम था, या किसी ऐसे पुण्यका फल या जिसका भोग पूरा ही पला था । सबसुध इन बातोंने मेरी सभी आशाओंको तबसे पहादसे गिराकर चूर-चूर कर डाला है ॥१०॥

विदूषकः—देख न कहिए ! यह घण्टी ही बतला रही है कि उससे भेंट बदरव होगी ।

राजा—[ घण्टी देखकर ] हाय ! इसपर भी मुझे क्या करण्य पठा है कि इतने मुन्दर स्थानपर घण्टीघण्ट भी यह निजघण्ट करके गिर पड़ी । अरे घण्टी ! तेरी इस दनासे ही जान हो जाता है कि मेरे ही सामान तेरे पुण्यों का भी भोग पूरा ही पला था । नहीं तो शकुन्तलाके सात नखोंवाली अँगुलियोंसे असा तू क्यों निजघण्ट गिरती ॥११॥

शानुमती—हाँ, यदि यह किसी दूसरेके हाथ नग गई होती तब तो सबसुध इसपर दना पाती ।

विदूषक — भो इन्द्र खाममुद्रा केस उम्हादेस ततहोदिए हत्याग्भास पाबिदा । ( भो इन्द्र नाममुद्रा केनोद्वालेन तत्रभवत्या हस्ताभ्याञ्च प्राणिता ।

सानुमती — मम वि फोडूहलेस अघारिदो एतो । ( ममापि कौतूहलेनाकारिता एष । )

राजा — श्रुतयाम् ! स्वन्वराय प्रसियत मा त्रिषा सवाण्यमाह — किञ्चिरेषार्यपुत्र. प्रतिपति दास्यतीति ।

विदूषक — तदो तदो । ( उत्तरतव । )

राजा — यथादिमा मुद्रा तदङ्गुली निवेशयता मया प्रत्यानिहिता —

एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं

नामाचरं गणय गच्छति यादन्तम् ।

तावत्प्रिये मद्वरोधगृहप्रवेशं

नेता जनस्तत्र समीपमुपैष्यतीति ॥१२॥

सद्य दारुणात्मना मया मोहात्प्रानुद्धितम् ।

सानुमती — रमणीयो षण्डु अथहो विदिया विववादिदो । ( रमणीय खल्ववधिर्बिभिता विववादिता । )

विदूषक — अद्य कह धीपलकर्मिअस्त लोहिममच्छस्त उदतगभन्तते प्राति । ( अद्य मय धीवरकल्पितस्य रोहितमत्स्यस्योदराम्यन्तर प्रासीत् । )

राज — शचीतीर्थं वन्दमानाया सख्यास्ते हस्ताङ्गुलीतलि परिभ्रष्टम् ।

विदूषक — प्रच्छा, यह तो बताइए कि धावको यह भ्रंगूठी देवी शकुन्तलाके पास पहुँच कैसे गई ?

सानुमती — इसके मनमे भी इस बातको जाननेका बँसा ही चाव है जैसा मेरे मनमे है ।

राजा — प्रच्छा सुनी । जब मैं वनसे अपनी राजधानीकी ओट रहा था उस समय प्यारीने धाँसोम धाँसू भर कर पूछा था — अब कितनों दिनोंमें सुभ लीजिएगा ।

विदूषक — तद-तय ।

राजा — तब उनकी उँगनीमे यह भ्रंगूठी पहनते हुए मैंने कहा था — प्यारी ! इस भ्रंगूठीपर मिले हुए मेरे नामके प्रसरोकी प्रतिदिन गिनती रहना । जब सभी अघार गिन चुनोगे तब रमिलासका कोई सेपक तुम्हें बुनानेके लिये यहाँ था पहुँचिगा ॥१२॥ पर मुझ बढोर हृदयमे ऐसा करते न बन पडा ।

सानुमती — बात छी सदा प्रच्छी यी पर देंवने सब चौपट कर दिया ।

विदूषक — प्रच्छा तो उस मनुष्यने जिस रौह मछलीको काटा था उसके घेटमें वह भ्रंगूठी कहाँ से पहुँच गई ?

राजा — जग शकुन्तला शचीतीर्थको हत्य जोडवर प्रणाम कर रही थी उसी समय वह भ्रंगूठी उँगनीमे निकलकर मयाजीकी धारामे आ गयी ।

विदूषकः—कुबजह ! (शुन्यते ।)

सानुमती—अबो एव्य तवस्त्रिणीए सजन्दलाए अयम्पमोरणो इमस्स रएसिणो परिणए सदेहो भासि । अहवा ईदिमो अल्लराओ अहिण्णएणं अवेक्खवि । कहं विअ एवं । (प्रत एव सपरिक्वयाः अकृन्तलाया अयमंभोरोरस्य राजपेः परिणमे सन्देह भासोत् । अकवेहशोऽनुरागोऽभिमान-मपेकते । कयनिर्वेतत् ।)

राजा—उनालप्रेमे तावदिअमहमुसीयकम् ।

विदूषकः—[आत्मगतम्] गहोवो सेंण पन्था उम्मत्तमासम् । (गृहीतोऽनेक पन्था उम्मत्तमासम् ।)

राजा—

कथं नु तं वन्धुरकोमलाङ्गुलिं करं विहायासि निमग्नमग्भसि ।

अथवा—

अचेतनं नाम शुभं न लज्जयेन्मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया ॥१३॥

विदूषकः—[आत्मगतम्] अहं षडु कुमुक्खाए आविडव्वसि । (अह षडु कुमुक्खाया आवि-सिण इति ।)

राजा—अकारणपरिणामानुशयतस्सहृदयस्तपदनुकम्प्यतामयं जनः पुनर्दमनेन ।

[प्रविश्यापटीलेपेण चित्रफलकहस्ता]

पटुरिका—इमं चित्रगदा भट्टिणी । (इमं चित्रगदा भट्टिनी ।)

[इति चित्रफलकं दर्शयति ।]

विदूषकः—अच्छा, यह बात है ।

सानुमती—जान पड़ता है कि इसीलिये हूँ राजपिने अयमंके उरसे बेचारी एकुन्तलाके साथ विवाह होनेको माओमे सदेह किया था ; नहीं तो भला ऐसे प्रेयमे क्या किसी पह्पातवी भावरकता पडती है ।

राजा—यै अभी इस भंगूठीको डांटता हूँ न ।

विदूषकः—[आप ही आप] अरे, ये तो अद अयस ही अले है ।

राजा—भरी भंगूठी ! उन सुन्दर लंगलियोंको छोडकर तू क्या जलमें डूबने गई ! पर भंगूठीमे भी जीव नहीं था इसलिये उतने मुलुकी परल न की हो तो ठीक है, पर मैंने मनुष्य होकर उसका कैसे निरादर कर डाला ॥१३॥

विदूषकः—[आप ही आप] यदि बोही देर धोर इनको वही क्या रही तब तो मेरी मूल मुझे था ही आलेगी ।

राजा—हे प्यारी ! तुम्हें बिना कारण छोड़ देनेकी अबबधे मैं जला जा रहा हूँ । मुझे अपना दर्शन देकर दवा करके जिला तो लो ।

[परदा उठाकर चित्रफलक लिए हुए प्रवेश करके]

पटुरिका—यह रहा देवीका चित्र । [चित्रफलक दिखाती है ।]

विदूषक — साहू बघरत । मज्जरावत्याखरसिखिगो भावाशुप्पयेतो । एतदि विम मे दिद्वी  
 रिण्णुण्णुमण्णदेसेसु । (साधु बगस्य । मधुपवस्थानदर्शनोपो भावानुप्रवेश । रसलतीव मे  
 दृष्टिनिम्नोन्नतप्रदेशोपु ।)

सानुमती—अम्हो एता राएसिखो सिखखडा । जाले सहे भग्गवो मे बट्टदि ति । (महो  
 एवा राजपेनिपुणता । जाले सख्यप्रता मे बरतं इति ।)

राजा—

यद्यत्साधु न चित्रे स्यात्क्रियते तत्तदन्यथा ।  
 तथापि तस्या सागर्यं रंस्त्रया किंचिदन्वितम् ॥१४॥

सानुमती—सरिस एव पञ्चम्यायपुदसो तिलोहस्य प्रलक्षणेपरत म । (सदृशमेतत्पञ्चम्याप-  
 गुरो स्नेहस्थानामेवस्य प ।)

विदूषक—भो हासि सिखिगो सतहोवोपो दोससि । सन्धापो म बालीमाधो ।  
 क्वमा एव तारावो सडवला । (मो इदानीं तिलस्तत्रमयस्यो हस्यन्ते । सर्वाश्च बशनीया ।  
 क्वामाऽत्र तममयस्यो साकुन्तला ।)

सानुमती—अराभिस्यो वधु ईदिसस्य द्यस्य मोहविद्वी मघ जालो । (मनमिश-  
 हस्य रूपस्य मोहदृष्टिरय जन ।)

राजा—एव सावत्तमां तकमसि ।

विदूषक—वाह, बघरत ! वाह ! इनके मन मन धापने ऐसे मुन्दर बना दिए हैं कि  
 हमारे मनव भावतन ठीक ठीक उतर गए हैं । मरी मायें तो इस पित्रम मने हुए अंधे-  
 भीषे स्वसोम जैसे ठोकरें खाती रह जाती हैं ।

सानुमती—भरे ! राजपि तो बड़े बतुर बिचकार हैं । बित्र ऐसा जान पड़ता है जानो  
 ससो साकुन्तला धामने ही सही हो ।

राजा—तथापि मैंने इस बिचके सब बोध ठीक कर दिए हैं फिर भी हा देतामों  
 दवाकी सुन्दरता बहुत पाशची ही उतर पाई है ॥१४॥

सानुमती—इत पदठाने धीर नम्रताव भरे प्रमीको एवा हो बहना सोमा देता है ।

विदूषक—क्या ! इस बित्रमें तो तीन तीन दिगर्वा दिगर्वा पद रही हैं धीर तीनों एकमे  
 एव मडकर पदकीयो हैं । बनाया तो, इनमें दवा साकुन्तला बीज-ती है ?

सानुमती—इस मज्जराको सुन्दरताकी तनिक भी परत नहीं है ।

राजा—अच्छ, तुम इनमस बिचकी साकुन्तला समझ रहे हो ?

विदूषक—राफेमि जा धृता सिद्धितकेसमन्यशुश्रुवन्तकुसुमेण केसन्तेण उचिन्मण्यस्ये-  
प्रविन्दुण यथारोण यितेसदो भोत्तरिग्रहि वाहाहि भवसेप्रसिण्डिततणुपल्लवस्य धूपपा-  
प्रवस्य पाते इतिपरिस्तन्ता विप्र घासिहिदा सा सज्जन्ता । इवराप्रो सहीमो ति । ( तर्क-  
यामि मया शिथिलकेसमन्यशुश्रुवन्तकुसुमेण केसान्तेनोद्भिन्नस्येदभिनन्दना वदनेन विशेषतोऽपमृताभ्यां  
बाहुभ्यामवतैर्कसिन्मण्यस्यपल्लवस्य नूतपादपस्य पार्श्वं ईष्यत्परिधान्तेवार्जिषिता सा शकुन्तला ।  
इतरे सख्याविति । )

राजा—निपुणो भवान् । अस्त्यत्र मे भार्याचिह्नम् ।

स्विन्नाङ्गुलिनिवेशो रेषाप्राप्तोऽप्यु दृश्यते मलिनः ।

अधु च कपोलपतितं दृश्यमिदं वर्तिकोच्छ्वासात् ॥ १५ ॥

वतुरिके ! अर्पितलितमेतद्विधोषत्पानम् । गच्छ । वर्तिके तापदानम् ।

वतुरिका—प्रणज माहव्य ! अयसम्ब चित्तफलम् जाय अग्रच्छामि । ( धार्यं माहव्य ! अय-  
सम्बस्य चित्रफलकम् दावदागच्छामि ।

राजा—अहमेवैतद्वयलक्ष्णे । [ इति वयोक्त करोति । ]

[ निष्क्रान्तौ येटी । ]

राजा—[ नि स्वस्य ] मह हि—

साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं चित्रार्पितां पुनरिमां बहुमन्यमानः ।

स्रोतोबहां पथि निक्रामललामतीत्य जातः सखे प्रथयवान्मृगतृष्यिकायाम् ॥ १६ ॥

विदूषक—मैं तो सचमुच हूँ कि बाकीके छिडकावते जो यह मामला देठ बनक रहा है उसीसे सटकर कुछ बड़ी हुई सी जो खड़ी दिखाई देती है वही शकुन्तला है, जिसके डीले नूतोंसे फूल गिर रहे हैं, मूहपर पत्तीनेकी बूंदें भलक रही हैं और दोनों कन्धे झुके हुए हैं । इसके साथ बाकी मे दोमो इतकी सजियां होगी ।

राजा—तुम सचमुच वतुर हो । यहाँ मेरे प्रेमने चिह्न भी बने हुए हैं । चित्रकी जोरोवर मेरी पत्नीकी हुई उंगुलियोंके काने बन्धे पद गए हैं और मेरी प्रीतियों को प्रायः टपका, उससे शकुन्तलाके गाल परका रम उभर आया है ॥ १५ ॥ धरौ वतुरिका ! धरौ इष्ट वितोव स्थानका विप्र पूरा नहीं बन पाया है ; जा, विप्र बनानेकी कूचियां तो लेती जा ।

वतुरिका—भार्य माहव्य ! इस चित्रपदको जोना पामे तो रहिए, मैं धरौ धरौ हूँ ।

राजा—मैं ही इसे पामे रहता हूँ ।

[ चित्र फलक ले लेता है । ]

[ येटी जाती है । ]

राजा—[ उसीसे भरकर ] विप्र ! मेरी क्या तो देखो कि जब यह स्वयं मेरे पास आई थी तब तो मैंने उसे निरादर करके छोटा दिया और अब उसने चित्रपर इतना प्रेम दिखाने चला है । यह तो ऐसा ही है जैसे कोई मरी हुई नरोंको छोडकर पुनःपुनःकी ओर चपके ॥ १६ ॥

विदूषकः—[ आत्मगतम् ] एखो अस्तअवं रुदि अदिक्किमिअ मिअतिग्गिह्मा संकन्तो ।  
[ प्रकाशम् ] भो अवरं कि एत्थ सिहिदब्बं । ( एयोअमवाम्बन्दीमसिकम्य गृयतुष्णिक्का संक्रान्तः ।  
भोः अवरं किमअ निशितव्यम् । )

शानुमती—जो जो पदेओ सहोए मे अहिस्वो तं तं आनिहिदुक्कामो भवे । ( यो यः प्रदेशः  
सस्या मेशमिरूपस्तं तमानिशितुकामो भवेत् । )

राजा—अभूयताम्—

कार्यो सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी  
पादास्तामभितो निपण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः ।  
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः  
मृक्ले कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्ठ्यमानां मृगीम् ॥ १७ ॥

विदूषकः—[ आत्मगतम् ] एह् एह् वेक्कामि पुरिदब्बं खेस विस्तफज्जं सम्भुञ्जारां  
तामसारां कदम्बैहि । ( यथाहं यस्यामि पुरितम्बमनेन विजम्बकं लम्बकूर्वाणां तापसारां कदम्बैः । )

राजा—अभूयताम् । शकुन्तलायाः प्रसापनमभिप्रेतमप्रविस्मृतमस्मानिः ।

विदूषकः—कि विअ । ( किमिअ । )

शानुमती—एरावाससत सोउमारस्त अ ञं सरित्तं भविस्सदि । ( वनवासस्य सीकुमार्यस्य  
प शरसहसं भविष्यति । )

विदूषक—[ आप ही आप ] यही महाराज तो नदीकी छीड़कर मृगचुष्णाके पीछे बीड़  
पत्र रहे हैं । [ प्रकट ] बहो मित्र ! मय इस दिनमें धीर क्या बनाना रह गया है ?

शानुमती—मैं सोचती हूँ कि राजा जब बिज के स्थान बनायेंगे जो मेरी छड़ीकी बहुत  
प्यारे थे ।

राजा—शुनो ! अभी मामिनी नदी बनानी है जिसकी रेतीयें हुंत्के ओष्ठे बँटे हों । उनके  
दोनों ओर हिमासमकी वह लम्हटी बियानी है जहाँ हृषिण बँटे हुए हों । मैं एक ऐसा पेट भी  
छीवना चाहता हूँ जिसपर बससके बस टँगे हुए हों और जिसके नीचे एक हरिणी घपनी याई  
घाँस कासे हरिणको सींगसे खड़कर चुबला रही हो ॥ १७ ॥

विदूषक—[ आप ही आप ] मेरी बात मानिए तो आप इस बिजको लम्बी-लम्बी दाढ़ी  
वाले लपटिनयोसे भर दालिए ।

राजा—अभूयताम् ! धीर धयो तो मैं शकुन्तलाको जो आभूषण पहनाना चाहता था वे ही  
बनाना भूम गया हूँ ।

विदूषक—वे कौन कौनसे ?

शानुमती—वे ही जो उल्लेख जेही मुकुमारो वनवासिनी कुमारियां पहना करती हैं ।

राजा—

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे शिरीषमागच्छद्विलम्बिकेसरम् ।

न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे ॥१८॥

विदूषक—भो कि ॥ ततहोवी रत्नकुवसमपत्तवसोहिया भग्नहृत्नेय सुह घोवारिष चइव-  
पइवा विम द्विमा । [सावधान निरुध्य दृष्ट्वा] या एसो दस्योयपुतो कुसुमरसपाटञ्चरो ततहोकीए  
सप्रण प्रहिलजघेदि महुप्ररो । (भो कि मु तत्रभवती रत्नकुवसवपत्तवशोभिनाऽप्रहृतेन मुलमपयार्थं  
चकितचकितेव स्थिता । या एय दास्या पृथ कुसुमरसपाटञ्चरस्तत्रभवत्या वदनमभिशङ्कति  
मधुकर ।

राजा—मनु क्षयंतामेव धृष्टः ।

विदूषक—सब एव्य अविखीवाल खासिदा इमस्त वारखे बह्विस्तदि । (भवानेदाविनीवाना  
शासिताऽय वारणे प्रमविध्वति ।)

राजा—पुत्रपते । यदि भो कुसुमसत्ताप्रियातिथे । किमत्र परिपतनतेवमनुभवसि ।

एषा कुसुमनिपयया वृषिताऽपि सती मन्तमनुरक्ता ।

प्रतिपालयति मधुकरे न खलु मधु बिना त्वया पिवति ॥१९॥

शानुमती—अयं वि भूमिजाव बहु एसो वारिदो । (प्रजाप्यमिजाव लक्ष्नेय वारित ।)

विदूषक—परिदिल्लिखा वि यामा एसा जावी । (प्रविधिदाऽपि यामेवा जाति ।)

राजा—वयस्व, अभी तो मैं वह तिरसका फूल भी नहीं बना पाया जिसकी डल उसने  
कानीपर पर रखी थी और जिसका पराग उसके शालीपर कना हुआ था । और अभी तो उसके  
सम्पर्क में भीष्मने चन्द्रमाकी तिरसके समान पहले कमलके तनुमोकी मासा भी नहीं बनाई ॥१८॥

विदूषक—क्यों मित्र ! देवी अपनी कमलकी पत्तरीके समान कोमल और साज ह्येलियोंने  
अपना मुँह ठके बहुत ठरी हुई सी बाँधी क्यों दिखाई दे रही हैं । (व्यानते देखकर) अरे ! देखिए,  
यह कल्लोके रसका कोर नीच भौरा दकीके मुँहपर धाकर बँटाए जा रहा है ।

राजा—गयाओ तो इस डीठको ।

विदूषक—दुष्टोंको दण्ड देना ही आपका काम है इसलिये अब आप ही इसे भगाएँ ।

राजा—मच्छी बात है । ओ रे फूल और लताधोके व्यारे प्रतिधि ! तू क्यों इसके मुँहपर  
भँटरानेका कण्ट कर रहा है । तेरे प्रेयकी व्यासी भौरी तेरी धोर भाल लगाए फूलपर बँधी हुई है  
और तेरे बिना मकरन्द नहीं पी रही है ॥१९॥

शानुमती—इस अर्थस्यामे भी ये कितनी कोमलतासे औरिको चम्के जानेके लिये कह रहे हैं ।

विदूषक—देखे छोटे सोच रहनेसे बोटे ही मगते हैं ।



राजा—एवं भो न मे शासने तिष्ठसि । श्रूयतां तर्हि संप्रति—

अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोमनीयं पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु ।  
विम्बाधरं स्पृशसि चेद्भ्रमर प्रियायास्त्वां कारयामि कमलोदरवन्धनस्थम् ॥२०॥

विदूषकः—एवं तिवस्यगृहणस्त किं ख भाइस्तदि । [प्रहस्य आत्मगतम्] एतो दाब उम्भतो ।  
अहं ॥ एदरस संगेण ईदिसवण्णो विष संवुत्तो । [प्रकाशम्] भो चित्तं क्खु एदं (एवं तीक्षणवण्डस्य  
किं न भेष्यति । एप तावदुन्मत्त । अहमप्येतस्य सङ्गेनेदृशवणं इव संवृत्तः । भोः चित्रं सत्वेवत् ।)

राजा—अयं चित्रम् ।

सानुमती—अहं पि वारिण अरवदरथा । किं उण जहातिहिवाञ्छमायो एतो (अहमपीदानीमय-  
गतायां । किं पुनरंयातिश्रितानुनाञ्छेपः ।)

राजा—अयस्य किमिवममुच्छितं वीरोभाग्यम् ।

दर्शनमुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन ।  
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता ॥२१॥

[इति वाप्यं विहरति ।]

सानुमती—पुष्पाक्षरविरोही अमुष्यो एतो विरहमयो । (पूर्वापरनिरोध्यपूर्वं एप विरहमार्गः ।)

राजा—अरि ! तू मेरा कहना नहीं मानता । तो अब सुन—मेरी प्यारीका जो प्रीठ धरते  
कहें पीपेकी कोमल कोमलकी समान ताल है और जिसे मैंने रतिके समय भी बहुत बधा-बधाकर  
पिया था । उसे यदि होने छुमा तो मुझे कमलके कोखमें बाहर कर बन्दी कर दूँगा ॥२०॥

विदूषक—क्या तू ऐसे कठोर दण्ड देनेवालेसे भी नहीं डरता ? [हँसकर भाप ही भाप] अरे,  
दे तो पागल हो ही गए हैं । अब इनके साथ रहनेसे मैं भी कुछ-कुछ बैसा ही हो चला हूँ । [प्रकट]  
अरे महाराज ! यह तो निश है ।

राजा—अरे ! क्या निश है ?

सानुमती—स्वर्ग में ही अब सपक वा रही हैं कि यह चित्र है, फिर मला उसका तो पूछना  
ही क्या जिसने शकुन्तलामें तल्लीन होकर उसका निश बनाया है ।

राजा—यह तुमने क्या दुष्कर्म कर खासा निश ! मैं तो बड़ा भयान होकर सामने सदी हुई  
शकुन्तलामें दर्शनका आनन्द ले रहा था । पर तुमने स्मरण दिलाकर मेरी प्यारीको चित्र ही  
बना खाता ॥२१॥

[ऐसा कहकर धाँसू बहाने लगता है ।]

सानुमती—यह तो विरहका निराला ही बग देस रही हैं कि जिसमें पहले कुछ था, अब कुछ  
भीर ही है ।

राजा—धनस्य ! कथमेवमधिधान्तु समनुभवामि ।

प्रजागरात्सिलीभूतस्तस्याः स्वप्ने समागमः ।

श्राप्सस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि ॥२२॥

सानुमती—सम्बन्धा भवन्निज तु ए पथादेसदुवस सज्जन्लाए । ( सर्वथा प्रमाजित एया प्रत्यादेसदु ख सकुन्तलाया । )

[ प्रविश्य ]

चतुरिका—केतु केतु भट्टा । वट्टिप्रालरञ्जय केहिम् इवेमुह परिचय म्हि । ( जयतु जयतु मर्ता । वट्टिकाकरञ्जक मूर्ध्नेवेतोमुत्त प्रस्थिताऽस्मि । )

राजा—किं च ।

चतुरिका—तो मे हृत्वादी अन्तरा तरलिसाणुदीयाए देवीए वसुमवीए अह एव अज्ज-उत्तत्ता उक्खण्णरस ति सज्जन्कार महोवो । ( य मे हृत्वादीन्तरा तरलिकाद्वितीयया देव्या वसु-मवाऽहमेवार्थपुनस्फोपनेऽप्यामीति समसाःकार बुद्धीत । )

विदूषक—विट्टिमा तुम मुक्का । ( विट्टिमा एव मुक्का । )

चतुरिका—जाय देवीए विट्टवत्तम उत्तरीय तरलिसा मोचेदि ताव मए तिग्घाहो प्रता । ( पावहेव्या विट्टवत्तममुत्तरीय तरलिका मोचयति तावत्तमया निर्वाहित याःवा । )

राजा—धनस्य उपरिचिता देवो यद्गुणगर्भिता च । भवानिमां प्रतिकुर्वत रक्षतु ।

राजा—धनस्य ! जानते हो, इस समय मेरे हृदयपर क्या बीत रही है ? नींद न लगनेके कारण मैं उससे स्वप्नम भी नहीं मिल पाता और सब कहते रहनेवाले वे धाँसू उसे चित्रमें भी नहीं देखने देते ॥ २२ ॥

सानुमती—तुमने सकुन्तलाको छोड़कर हम लीगोके मनमें जो कसक भर दी थी वह आज तुमने सब धो बारी ।

[ प्रवेश करके ]

चतुरिका—जय हो, महाराजकी जय हो । चित्र सामग्रीका कच्चा सिए हुए मैं इधर ही बसी आ रही थी कि—

राजा—तो क्या हुआ ?

चतुरिका—जीवने ही तरलिकाके साथ भागी हुई महाराजनी वसुमतीने यह कहकर मुझसे यत्पूर्वक यह दृग्धा छीन लिया कि मैं स्वयं दूरे धायपुत्रके पास पहुँचा जाती हूँ ।

विदूषक—धनया बला माप समञ्ज कि तू उनके हाथसे बिना पिये बचकर निकल भाई ।

चतुरिका—उधर तरलिका वृक्षकी छाँची मे उत्तरी हुई महाराजकी भोवनी घुड़ानेमे लगी, इधर मैं चुपचाप लिसक भाई ।

राजा—शाम पड़ता है महाराजनी बला मुँह फुलाए इधर हो बसी आ रही हैं इसलिये भव इस चित्रको जे जाकर कही धिया रखयो ।

विदूषकः—प्रतापं स्ति मयाहि । [ चित्रकलकमादायोत्याय च ] जह भवं अन्तेउरकाल-  
कूडादो मुञ्च्योमदि तदो भं मेहृष्यदिच्छन्दे पासादे सदावेहि । ( आत्मानमिति भणु । यदि  
भवानन्त पुरपालकूटान्मोक्षये तदा मा मेघप्रतिच्छन्दे प्रसादे शब्दापय ) [ इति द्रुतपद निष्क्रान्तः । ]

सानुभती—अणसंक्रान्तहियमोवि पदभसंभावणं प्रवेक्षति । अदितिडिनसोहदो दासिण एतो ।  
( अन्यसंक्रान्तहृदयोऽपि प्रथमसंभावनामपेक्षते । प्रतिशिक्षितसोहृदवं इदानीमेप । )

[ प्रविश्य पत्रहस्ता ]

प्रतीहारी—जेदु जेदु देवो । ( जयतु जयतु देव । )

राजा—देववति ! न खल्वन्तरा दृष्टा त्वया देवी ।

प्रतीहारी—अह इं । पत्तहृत्य भं देविखल पठिगिउत्ता । ( भय किम् । पत्रहस्ता मा प्रेष्य  
प्रतिनिवृत्ता । ]

राजा—कार्यता कायोपरोपं मे परिहरति ।

प्रतीहारी—देव अमन्त्रो विण्णयेदो—अत्यजावस्व गण्णवाकहुलवाए एहं एव पोरकन्त्रं  
अपविषावं तं वेधो पत्तात्वं पक्षरत्नीकरेदु सि । ( देव अमात्यो विज्ञापयति—मयं जातस्य  
गण्णवाकहुलतायैकमेव पौरकार्यमवेक्षित तद्देवः पत्राकं प्रत्यक्षीकरोत्विति । )

राजा—इतः पत्रिकां दशंय । [ प्रतीहायुंनयति । ]

विदूषक—यह क्यों नहीं कहते कि हमें ही धिया ली ? [ चित्रकल लेकर उठकर ]  
अच्छा, जब आपकी रनिवासके चगुलसे छुटकारा मिल जाय तो मेघप्रतिच्छन्द भवनमें  
मुझे पुकार लीजिएगा ।

[ अघटकर निकल जाता है ]

सानुभती—इन्होंने दूसरेको हृदय दे बाधा है सही, पर ये अपनी पहली रात्रीके प्रेम्को  
भी ठेस नहीं लगाने देना चाहते । पर सच्ची बात तो यह है कि राजाके मनमें रात्रीके लिये  
कुछ भी प्रेम बचा नहीं रह पाया है ।

[ हाथमें पत्र लिए हुए प्रतीहारीका प्रवेश । ]

प्रतीहारी—जय हो, महाराजकी जय हो ।

राजा—देववती ! तुम्हें कौशमें महाराणी तो नहीं मिली थी ?

प्रतीहारी—जी हाँ, मिली थी । पर मेरे हाथमें यह पत्र देखकर अभी उलटे पाँवों लौट  
गई है ।

राजा—वे समय प्रसमय यहूनागयी है इसीलिये मेरे काममें बाधा नहीं बनना चाहती  
होगी ।

प्रतीहारी—महाराज ! अमात्यने कहनाया है कि ध्यानका सारा दिन कई विभागोंको  
रूपसे-पंसेना जोड़ लगानेमें ही बीत गया । इसलिये प्रजाका केवल एक ही काम में देख पाया  
है । उसे पत्रमें पढ़कर ही देव समझ लें ।

राजा—तामो, पत्र इधर दो ।

[ प्रतीहारी पत्र से जाकर देती है । ]

राजा—[अनुवाच्य] क्यम् । समुद्रभ्यवहारी चार्थवाहो धनमिश्रो नाम नौग्रसने विपन्नः ।  
धनपत्यश्च किल तपस्वी । राज्याप्तौ तस्यार्थसंचय इत्येतदभात्येन तिष्ठितम् । कष्टं सन्धनपत्यता ।  
वेत्रवति । बहुपनत्याद्यद्वृत्तनीकेन तत्रभवता भवितव्यम् । विचौचता यदि कार्त्तविदापन्नसत्त्वा तस्य  
भार्यायु स्मात् ।

प्रतीहारी—देव दासि एव्य साकेदसस्त सेद्विखो दुहिमा खिन्वुत्तपुंसवरा आमा ॥ सुराीप्रदि ।  
(देव इदानीमेव साकेतस्य येष्ठिनो दुहिता निवृत्तपुंसवरा जायाऽस्य श्रूयते ।)

राजा—मनु गर्भः पिष्यं रिषयमर्हति । यच्छ । एवममातयं ब्रूहि ।

प्रतीहारी—जं देवो भ्रातृवेदी (मदूदेव मामापवति ।) [इति प्रस्थिता ।]

राजा—एहि तावत् ।

प्रतीहारी—इमग्निः । (इवमस्ति ।)

राजा—किमनेन संततिरस्ति मास्तीति ।

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना ।

स स पापाद्वे तासां दुष्यन्त इति बुष्यताम् ॥२३॥

प्रतीहारी—एवं एवम घोतइदमर्थः । [निष्कृष्य पुनः प्रविश्य] काले पशुदुं विप्र ग्रहिणमिदं  
देवस्त सासलम् । (एवं नाम घोषितव्यम् । काले प्रवृष्टमिवाभिनगितं देवस्य शासनम् ।)

राजा—[वाचकर] अरे ! क्या समुद्रके व्यापारी धनमिशकी नाम इजनेसे मृत्यु हो गई ।  
देवारेके कोई राजान भी नहीं थी । धीरे प्रधान मन्त्रीजी सिल्लते हैं कि उसका सब धन राज-कोषमें  
मा जाना चाहिए । मिःसन्तान होना भी कितना कष्टदायक होता है । मन्त्रा वेत्रवती ! सेठजीके  
पास कोई कमी धो धी नहीं इसलिये उनके बहुतसी सेठानिया होगी । पता तो सगामो उनमेंसे  
कोई गर्भवती भी है ?

प्रतीहारी—हाँ देव ! सुना जाता है कि अयोध्यावासे सेठकी जो कन्या उनसे ब्याही थी उसने  
अभी बीस दिन हुए पुसवन सरकार कराया है ।

राजा—तब जाकर अमारवसे कहना कि यह गर्भका वासक ही सेठके सब धनका स्वामी होगा ।

प्रतीहारी—जैसी महाराजकी आज्ञा ।

[यह कहकर पत्नी जाती है ।]

राजा—अच्छा इधर तो सुनो ।

प्रतीहारी—जी, मा गई ।

राजा—किसीको अन्ताव होने या न होने से क्या ? जाकर शीघे पिटवा दो कि पापियोंको  
छोड़कर हमारी प्रजाके धीरे बितने घोष है उनके जो जो कुटुम्बो न रहे उनका कुटुम्बो  
दुष्यन्त समझा जाय ॥२३॥

प्रतीहारी—यही शीघे पिटवा दो जायगी । [वाचकर] महाराजकी इस आज्ञाको गुनकर  
प्रजा जैसे ही मगन हो उठी है जैसे समय पर पानी बरसनेसे खेती सहजहा उठती है ।

राजा—[दीर्घमुष्णं च नि क्ष्वस्य] एवं भोः संततिच्छेदनिरयलम्बाणां कुलानां मूलपुरपावसाने  
संपदः परमुपतिष्ठन्ति । समाप्यन्ते पुरुषंश्रिय एष एष युत्तान्तः ।

प्रतीहारी—पक्षिह्वं क्षमयतम् । (प्रतिह्वयमयुक्तम् ।)

राजा—विह्वयामुर्धस्यतथेयोऽवमानिनम् ।

सानुमती—असंघर्षं सीहं एव हिषट् करिष्ये खिन्दो खेखे मया । (असंघर्षं एलीमेव हृदये  
कृत्वा निन्दतोऽनेनात्मा ।)

राजा—संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी त्यक्त्वा मया नाम कुलप्रतिष्ठा

कल्पिष्यमाणा महत्ते फलाय वसुन्धरा काल इवोत्पतीला ॥२४॥

सानुमती—अपरिच्छिन्नायां शक्तिं वे संवदी भविस्सति । (अपरिच्छिन्नैशानीं ते सन्तति-  
मंदिष्यति ।)

बहुरिका—[जगन्तिकम्] अयं इमिराग सत्यबाहुकुन्तलेण दिग्दृष्ट्वेषो भूता । एवं अस्ता-  
सिद्धं मिहृष्यद्विषयन्तारो अज्जं मादन्वं येविह्वय माध्वन्वेहि । (अपि अनेन वार्षाहाहृत्तान्तेन द्विपुणो-  
द्देशो भवति । एतमाश्रासयितुं मेघप्रतिच्छन्दावार्यं मादन्वं गृहीत्वामण्ड ।)

प्रतीहारी—मुहु भवति । (मुहु भवति ।) [शक्तिं निष्काला ।]

राजा—अहो दुष्यन्तस्य संशयमास्ता पिण्डभाजः । कुतः ।

अस्मात्परं यत् यथाश्रुति संभृतानि को नः कुले निवपनानि करिष्यतीति ।

नूनं प्रयतिविक्रमेण मया प्रसिक्तं घौंताश्रुशेषमुदकं पितरः पिबन्ति ॥२५॥

[ इति मोहमुपगमः ]

पतुरिवा—[ससंभ्रममयनीयम्] समस्तसतु समस्तसतु मृदा । (समाश्रयितु समाययितु मर्ता ।)

सानुपती—हृदी हृदी । सति ऋतु दीये धयपालदीयेषु एते अन्पधारदीप्तं धाप्रहोदि । अहं दाँए एव लिप्यर्थं करोमि । अहवा मुदं मए सज्ज्वलं समरसाताअन्तोए महेंद्रजण्णोए मुहावो—अण्णभाबोस्सुष्मा देवा एण्ण सह अण्णचिद्विस्तन्ति जइ अइरेण पण्णपडिणि मृदा अहिल्लिरिस्तदि ति । सा ए सुत्तं एदं कालं वडिपयसिदुं । काय इमिणा पुरान्तेण विमर्ताहि समस्तात्तेमि । (हा पिक् । हा पिक् । सति अणु दीये व्यवधानदीपेणोप्यवधारदीपमनुभवति । अहमिवाभीमिव विवृत्तं करोमि । अथवा अत मया अकुन्तयो समाश्रयामयन्त्या महेंद्रजगत्या मुखात्-यत्तभागोरमुखा देवा एव तन्नामुत्पादयन्ति यथाऽपिरेण धर्मपरनीं भर्ताऽमिनन्दिप्यतीति । एतन् मुखां कालं प्रतिपासयितुम् । यावत्कालेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्रयामि ।) [इत्युद्भ्रान्तत्वेन निष्क्रान्ता ।]

[ विषये ]

अख्यगृह्णाम् । (अग्रहणम् ।)

राशः—[अपगत. कर्णं दश] अये साधय्यस्वेवात्तेश्वरः । कः कोऽत्र भोः ।

[ प्रविश्य ]

प्रतीहारी—[ससंभ्रमम्] परित्तामदु देवो संसभगर्दं वसस्ताम् । (परिवायदां देवः संसभ-गतं वयस्वम् ।)

हावते तपंण रिए हुए अमके बुद्ध मानते तो अपने भाँगु योते होंगे और जो बप जाता होगा बस उतना ही वो पाते होंगे । ॥२५॥

[ ऐसा कहकर मूर्छित हो जाते हैं । ]

पतुरिवा—[अपगतहृदके साध देवकर] धीरज धरिए महाराज ! धीरज धरिए ।

सानुपती—हाय हाय ! जैसे धीरजके रहते हुए भी जोबने मोट पड जानेगे संयेरा हो जाता है वैसे ही इस राजाको भी मोट हो गया है । मैं इसकी पिन्ना धमी मिटा देती पर अदितिने अकुन्तलाको समझाते हुए कहा था कि यजमे आम पानेके निचे उरगुव देवता सोण ही दुग्धाप और दुग्धतथा मित्तम बरामेवे । तो मय देर नहीं करने चाहिए । परन्तु अकुन्तलाको ये सब भाजें मुता भाजें तो उसे धीरज हो जाय ।

[ नटनेसे उठ उठ जागे हैं । ]

राजा—केनात्मन्यो भास्यवकः ।

प्रतीहारी—अद्विष्टरुचेण केण वि सत्तेण अद्विष्टमिण मेहण्पडिच्छन्दस्त पासावस्त भण-  
भूमि भारीविनो । (अद्विष्टरुचेण केनापि सावेनातिक्रम्य मेघप्रतिच्छन्दस्याधभूमिभारोपितः ।)

राजा—[उत्थाय] भा तावत् । ममापि सत्त्वंरनिभूयन्ते गृहाः ।

सपत्न्या—

अहन्यहन्त्यात्मन एव तावज्ज्ञातुं प्रमादस्सलितं न शक्यम् ।

प्रजासु कः केन पथा प्रयातीत्यशेषतो वेदितुमस्ति शक्तिः ॥२६॥

[ नेपथ्ये ]

भो वधस्त अविहा अविहा । (भो वधस्य अविहा अविहा ।)

राजा—[गतिभेदेन परिक्रामन्] सखे ! न मेतय्यं न मेतय्यम् ।

[ नेपथ्ये ]

[दुनस्तदेव पठिष्या] कहां ए भाइरस । एस मं को वि यच्चखणवसिरोदुरं इज्जं विभं  
तिष्णभंगं करेदि । (कथ न भेष्यामि । एष मां कोऽपि प्रत्यवनतक्षिरोधरमिधुमिव भिमङ्गं  
करोति)

राजा—[सहस्रिच्छेपम्] धनुस्तावत् ।

[प्रविश्य श्याङ्गं हस्ता]

सपत्नी—भट्टा एवं हत्यावापसहिं सरासलं । (भवंः एतदस्तावप सहितं शरासनम् ।)

[राजा सखरं धनुरावत्ते ।]

राजा—भाष्यको कित्ते सत्ता एवसा है ?

प्रतीहारी—फिन्नी भूत-प्रेतने उन्हें पकड़कर मेघ-प्रतिच्छन्द-भवनके मूँदरेपर ले जाकर  
टाँग दिया है ।

राजा—[उठकर] यह कैसे हो सकता है ? क्या मेरे घरमे भी भूत-प्रेत मर्द्दा बनाने  
लगे हैं ? पर यह हो भी सकता है—बसोकि जब मनुष्य यही नहीं जानता कि वह स्वयं भूलसे  
निराश कितने पाप कर बैठता है तो यह कैसे जाना जा सकता है कि प्रजामें कौन किस समय  
बसा कर रहा है ॥२६॥

[ नेपथ्यमें ]

दुहाई है भिम, दुहाई !

राजा—[देगसे धूमता हुआ] डरो मत भिम, डरो मत ।

[ नेपथ्यमें ]

हाय, हाय ! ठरूँ क्यों नहीं ! यहाँ कोई मेरे गलेको ईशके समान मरोड़कर तीन टुकड़े  
किए डाल रहा है ।

राजा—[चारों ओर देखता हुआ] धरे, मनुष्य तो ये भायो ।

[हायमे धनुष लिए हुए प्रवेश करने]

—ी—महाराज ! यह सोजिए धनुष ओर हथरसा ।

[राजा धनुष-बाण लेते हैं ।]

[ नेपथ्ये ]

एष त्वामभिनवकण्ठशोषिताधीं शार्दूलः पशुमिव हन्मि चेष्टमानम् ।

आर्तानां भयमपनेतुमात्तघञ्वा दुप्यन्तस्तव शरणां भवत्विदानीम् ॥२७॥

राजा—[ सरोपम् ] कथं मामेवोद्दिशति । तिष्ठ कुण्ठयन्नम । स्वमिदानीं न भविष्यति ।

[ शार्दूलमारोप्य ] वेदधति । सोपानमार्गमादेश्य ।

प्रतीहारी—इवो इवो वेवो । ( इत इतो देवः । )

[ सर्वे सत्वरमुपपन्नन्ति । ]

राजा—[ समन्ताद्भिभव्य ] शून्यं स्वस्वित्पम् ।

[ नेपथ्ये ]

अविहा अविहा । अहं अत भयन्तं वेदयामि । तुमं मं ख वेदयति । विद्यालयगृहीतो मूलमो विप्र शिरासो म्नि जीविते संवृत्तो । ( अविहा अविहा । अहमभयन्तं पर्यामि । एवं मा पर्यामि । विद्यालयगृहीतो मूलक इव विद्यालोपेति जीविते संवृतः । )

राजा—मोक्षितरस्कारिणीगणित । मदीयमस्त्रं स्वं प्रकथति । एष तमिदं संवये ।

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षिष्यति द्विलम् ।

हंसो हि क्षीरमादधे तन्मिभ्रा बर्जयत्ययः ॥ २८ ॥

[ हरयस्त्रं संपत्ते ]

[ नेपथ्ये ]

लेरे कंठके गरम रुमिरका ध्यासा मैं तेरा उही प्रकार मव किए डालता हूँ जैसे सड़पटे हुए पशुको सिंह मार डालता है । अत आर्वे न पीवितोके रक्षक अनुपकारी दुप्यन्त तुमने बचाने ॥ २७ ॥

राजा—क्या तू मुझे भी चुनीती दे रहा है ? तो ठहर सदा मांस खानेवाले विषाच ! मैं अभी तुम्हें मारे डालता हूँ । [ अनुप पदाकर ] वेदधती । चल तो आगे आगे सीढ़ीपर ।

प्रतीहारी—इधरसे आइए देव, इधरसे ।

[ सबका योग्य प्रस्थान ]

राजा—[ आरो धोर वेदधर ] यहाँ तो कहीं कोई भी नहीं दिखाई दे रहा है ।

[ नेपथ्ये ]

हाय ! हाय ! मैं आँवको देख रहा हूँ, मर माव मुझे नहीं देख रहे हैं । मैं तो बिल्लीके पंजोमे पडे हुए चूहेके समान अपने प्राणोति हाथ धोए बैठता हूँ ।

राजा—अच्छ रे छल विद्याके चमंटी ! अह भय बाण ही तुम्हें देख लेगा । देल ! मैं यह बाण चढ़ाता हूँ और जैसे हंस, पवित्रल दूधमे से दूध-दूध पी जाता है और पानी-पानी छोड़ देता है वैसे ही यह भी तुम्हें मारे खानेवालेको मार डालेगा और इस बचाए खानेवाले प्राणशुको बचा लेगा ॥ २८ ॥

[ बाण चढ़ाता है ]



राजा—केनात्तयन्वो मासवकः ।

प्रतीहारी—अविद्वुष्वेष केषु चित्तोस्य अविद्वुषमिथ मेहृष्यद्विच्छन्दस्य पासावस्त अग्ग-  
भूमिं प्रारोपितो । (अदृष्टरूपेण केनापि सविनातिक्रम्य मेधवतिच्छन्दस्याग्रभूमिमारोपितः ।)

राजा—[उत्थाय] मा सायत् । ममापि सर्व्वैरभिभूयन्ते गृहाः ।

अथवा—

अहन्पहन्यात्मन एव तावज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं न शक्यम् ।

प्रजासु कः केन पया प्रयातीत्यशेषतो वेदितुमस्ति शक्तिः ॥२६॥

[ नेपथ्ये ]

भो अग्रस्त अविहा अविहा । (भो अग्रस्त अविहा अविहा ।)

— राजा—[गतिभेदेन परिक्लामम्] सखे ! न वेत्तव्यं न वेत्तव्यम् ।

[ नेपथ्ये ]

[पुनस्तवेद वदित्वा] बहूँ ख मादरसं । एत मं को लि पञ्चणवतिरोहरं इत्तुं विभं  
तिष्णभंगं करेहि । (कथं न मेप्यामि । एय मां कोऽपि प्रत्यवनतक्षिरोधरमिदुमिथ विभङ्गं  
करोति)

राजा—[उद्विग्नधैपम्] धनुस्तावत् ।

[प्रविश्य काष्णं हस्ता]

धवनी—अह्ना एतं हत्यावापसहितं सरासनं । (मर्तः एतदस्तावाप सहितं शारासनम् ।)

[राजा सखरं धनुरावत्ते ।]

राजा—माधव्यको किसने सता रक्खा है ?

प्रतीहारी—किसी भूत-प्रेतने उन्हें पकड़कर मेघ-शक्तिच्छन्द-भवकके मूर्तिपर ले जाकर  
टाँग दिया है ;

राजा—[उठकर] यह कैसे हो सकता है ? क्या मेरे घरने भी भूत-प्रेत प्रह्ला नामने  
लपे हैं ? पर यह हो भी सकता है—क्योंकि जब धनुष्य यही नहीं जानता कि वह स्वयं भूतप्रे-  
तनिरप किसने पाव कर बँडता है तो यह कैसे जागा जा सकता है कि प्रजामें कौन किस समय  
क्या कर रहा है ॥२६॥

[नेपथ्यमें]

दुहाई है मित्र, दुहाई !

राजा—[बेगने प्रमत्ता हुआ] डरो मत मित्र, डरो मत ।

[ नेपथ्यमें ]

हाय, हाय ! डरूँ क्यों नहीं ! यहाँ कोई मेरे गलेकी ईलाके समान मरोड़कर तीन टुकड़े  
किए डाल रहा है ।

राजा—[चारों ओर देखता हुआ] धरो, धनुष तो ले आओ ।

[हाथमें धनुष लिए हुए प्रवेश करके]

धवनी—महाराज ! यह लीजिए धनुष और हथरखा ।

[राजा धनुष-बाण लेते हैं ।]

[ नेपथ्ये ]

एष त्वामभिनवकण्ठशोषितायौ शार्दूलः पशुमिव हन्मि चेष्टमानम् ।

आर्तानां भयमपनेतुमात्तधन्वा दुग्धन्तस्तव शरखं भवत्विदानीम् ॥२७॥

राजा—[ सरोदम् ] कर्णं भामेवोद्दिशति । तिष्ठ कुलपाञ्चन । त्वमिदानीं न भविष्यति ।

[ बाहुज्जंभारोप्य ] येनयति । सोपानमार्गमादेश्य ।

प्रतीहारी—इदं इवो देवो । ( इत् इतो देवः । )

[ चर्चं उत्तरमुपसर्पन्ति । ]

राजा—[ समस्तादिसोप्य ] क्षुण्णं सन्निवृत्तम् ।

[ नेपथ्ये ]

अविहा अविहा । अहं अत भवन्तं पेश्छामि । तुभं मं शु पेवकति । विद्यासापहीरो मूत्तमो विम एिरासो भिह कोमिदे संवुतो । ( अविहा अविहा । अहमन्नमवन्तं पश्यामि । त्वं मा न पश्यसि । विद्यासगृहीतो मूपक इव निरासोऽस्मि जीविते तवृत्तः । )

राजा—मोहितरस्करिणीगणित । अवीयमस्त्रं त्वां दृश्यति । एष तमिषु संवये ।

यो हनिष्यति चर्च्यं त्वां रच्यं रक्षिष्यति द्विजम् ।

हंसो हि क्षीरमादधे तन्मिश्रा वर्जयत्यपः ॥ २८ ॥

[ दायस्त्रं संपते ]

[ नेपथ्ये ]

तेरे कंठके मरम अधिरका ध्याता मी तेरा जसो प्रकार बन किए डालता हूँ जैसे उड़ते हुए पशुकी सिंह मार डालता है । अब धारें न पीड़ितोके रक्षक अनुपकारी दुग्धन्त तुम्हें बचाने ॥ २७ ॥

राजा—क्या तू मुझे भी चुनौती दे रहा है ? तो ठहर सवा नाँव जानेवाने विशाच ! मैं अभी तुम्हें मारे डालता हूँ । [ पशुप धडाकर ] येनयती । बस तो धाये-धाये सीढ़ीपर ।

प्रतीहारी—इपरसे आइए देव, इपरसे ।

[ सबका बेगसे प्रस्थान ]

राजा—[ धारो धोर देखकर ] यहाँ तो कहीं कोई भी नहीं दिखाई दे रहा है ।

[ नेपथ्यमें ]

हाय ! हाय ! मैं आपकी देख रहा हूँ, पर आप मुझे नहीं देख रहे हैं । मैं तो बिल्वीके पंजामे पड़े हुए चूहेके समान अपने प्राणोसे हाय धोए बैठ हूँ ।

राजा—अच्छा दे छल विशाके परमवी ! अब मेरा बाएँ ही तुम्हें देख सेना । देख ! मैं यह बाएँ चढ़ाता हूँ और बँधे हथ, पनिमल दूधमे से दूध-दूध भी जाता है और पानी-पानी छोड़ देता है बँधे ही यह भी तुम्हें मारे जानेवालेको मार टालेया और इस बचाए जानेवाले ब्राह्मणको बचा लेगा ॥ २८ ॥

[ बाएँ चढ़ाता है ]

राजा—केनात्तगन्धो मास्यवकः ।

प्रतीहारी—अद्विष्टकृषेण केण वि सतेण अद्विष्टमिन्न मेहृत्पठिच्छन्दस्त पातावस्त धम्म-  
भूमि धारोविन्दे । (अद्विष्टस्नेह केनापि धावेनात्तकम्प मेधप्रतिच्छन्दस्याप्रभूमिमारोपित ।)

राजा—[उत्पाय] भा तावत् । ममापि सत्वेरभिभूयन्ते गृहा ।

अथवा—

अहन्त्यहन्त्यात्मन एव तावज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं न शक्यम् ।

प्रजासु कः केन पथा प्रयातीत्यशेषतो वेदितुमस्ति शक्तिः ॥२६॥

[ नेपथ्ये ]

भो वयस्स अविहा अविहा । (भो वयस्य अविहा अविहा ।)

- राजा—[गतिभेदेन परिक्रानम्] सत्ते ! न मेतव्यं न मेतव्यम् ।

[ नेपथ्ये ]

[पुनस्तत्रैव पठित्वा] कहूं हा माहस्तं । एत भं को वि पथ्यएवसिरोत्तरं इत्तुं मिन्न  
तिष्णमभं करेदि । (कथ न भेष्यामि । एय मा कोऽपि प्रत्यववसतिरोपरमिस्तुमिन्न भिन्नञ्ज  
करोति)

राजा—[सहस्रिद्योवम्] धनुस्तावत् ।

[प्रविश्य धाञ्जुं हस्ता]

यवनी—भट्टा एवं हत्पायावसहितं सरासलं । (भर्तः एवदस्तावाप अहित कारासनम् ।)

[राजा सगर धनुषदत्ते ।]

राजा—माधव्यको कितने सता रवला हे ?

प्रतीहारी—किन्ही मूत-प्रेतने उन्हें एकठकर मेध-प्रतिच्छन्द-भवनके मुँहरेपर से आकर  
टांग दिया है ।

राजा—[उठकर] यह कैसे हो सकता है ? क्या मेरे घरमे भी मूत-प्रेत अज्ञान नामे  
सने हैं ? पर यह ही भी सकता है—क्योंकि जब मनुष्य यही नहीं जानता कि वह स्वयं भूतसे  
मिथ्य कितने पाप कर बैठता है तो यह कैसे जाना जा सकता है कि प्रजाने कौन किस समय  
मदा कर रहा है ॥२६॥

[ नेपथ्यमें ]

हुहाई है मित्र, हुहाई ।

राजा—[बेमते धूमता हुहा] टरो मत मित्र, करो मत ।

[ नेपथ्यमें ]

हाय, हाय ! टहो क्यों नहीं ! यहाँ कोई मेरे गतेको इसके समान मरोठपर तीन टुकड़े  
किए टाल रहा है ।

राजा—[चारों ओर देखता हुआ] घरे, धनुष तो ले धायो ।

[हायमे धनुष लिए हुए प्रवेश करके]

यवनी—महाराज ! यह सीजिए धनुष धोर हथरखा ।

[राजा धनुष-बाण लेते हैं ।]

[ नेपथ्ये ]

एष त्वामभिनवकण्ठसोखितार्थी शार्दूलः पशुमिव हन्मि चेष्टमानम् ।  
आर्तानां भयमपनेतुमात्तधन्वा दुःस्थन्तस्त्वव शरणां भवन्विदानीम् ॥२७॥

राजा—[ सरोपम् ] कर्म मासेषोद्दिशति । तिष्ठ कुणपाञ्चन । त्वमिदानीं न भविष्यसि ।  
[ आङ्गमारोप्य ] येनयति ! सोपानमार्गमादेशय ।

प्रतीहारी—इषो इतो देवो । ( इत इतो देवः । )  
[ सर्वे सत्वरमुपसर्पन्ति । ]

राजा—[ समन्ताद्विलोप्य ] क्षुण्यं क्षत्त्रियम् ।

[ नेपथ्ये ]

भविहा भविहा । अहं अत भयन्तं येनसाभि । तुभं मं रा पेनसति । विद्यासगहीवो मूसधो  
विम शिरासी भिह जीविषे संपुतो । ( भविहा भविहा । अहमभयन्तं पश्यामि ) त्वं मा न  
पश्यसि । विद्यासगहीवो मूसध इव निरासोऽस्मि जीविते संवृत्तः । )

राजा—भोस्तिरस्करिणोमक्षि । मदीयमस्त्रं त्वां द्रव्यति । एष तस्मिन् संरपे । '

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षिष्यति द्विजम् ।

हंसो हि क्षीरमादधे तन्मिश्रा वर्जयत्यपः ॥ २८ ॥

[ इत्यस्त्रं संपते ]

[ नेपथ्ये ]

तेरे कंठके गरम क्षिपिका प्यासा में तेरा दसी प्रकार बध किए जासता हूँ जैसे हाथपते हुए  
पशुको सिंह मार जासता है । अब भावें न पीशितोके रक्षक धनुषधारी दुष्यन्त तुम्हे  
बधाने ॥ २७ ॥

राजा—क्या तू मुझे भी शूनीती दे रहा है ? तो ठहर सब मर्षि जागेवाले पिशाच ! मैं  
अभी तुम्हे मारे जासता हूँ । [ धनुष चढ़ाकर ] देखवती ! बस तो भागे भागे सीधीपर ।

प्रतीहारी—इधरसे भाइए देव, इधरसे ।

[ सबका वेगसे प्रस्थान ]

राजा—[ धीरे धीरे देखकर ] यहाँ तो कहीं कोई भी नहीं दिखाने दे रहा है ।

[ नेपथ्ये ]

हाय ! हाय ! मैं आपको देख रहा हूँ, पर आप मुझे नहीं देख रहे हैं । मैं तो जिल्लोके  
पैजोंमें पड़े हुए चूहेके समान अपने प्राणोंसे हाथ धोए बैठा हूँ ।

राजा—अच्छा रे छल बिधाके परमंडी ! अब मेरा बाण ही तुम्हे देख लेगा । देख ! मैं यह  
बाण चढ़ाता हूँ धीरे जैसे हृद्य, पनिषल दूधसे से दूध-दूध पी जाता है धीरे पानी-पानी छोड़  
देता है—बंके ही यह भी तुम्हें मारे जानेवालेको मार जासेगा धीरे इध बचाए जानेवाले शाहाणुको  
बधा लेगा ॥ २८ ॥

[ बाण चढ़ाता है ]

[ तव प्रविविधि विदूषकमुत्सृज्य मातलिः । ]

मातलिः—

कुताः शरव्यं हरिणा तवासुराः शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम् ।

प्रसादसौम्यानि सतां सुहृज्जेन पतन्ति चक्षुषि न दारुणाः शराः ॥ २६ ॥

राजा—[ सप्तभ्रमभस्त्रमुपनहरद् ] अये मातलि । स्वागतं महेश्वरारथे ।

[ प्रविश्य ]

विदूषकः—महं कैरु इष्टिपसुमारं मारितो तो इमिणा साधवेण अहिण्योमरि । ( महं येनेष्टिपसुमार मारितः सोऽनेन रवाग्नेनाभिमन्त्रिते । )

मातलि—[ पत्सिक्तम् ] आमुष्मन् । अयतां यवयमस्मि हरिणा भवत्तरात्रं प्रेषितः ।

राजा—अवहितोऽस्मि ।

मातलि—अस्ति कालनेमिप्रसूतिदुर्जयो नाम शतवपुः ।

राजा—अस्ति । श्रुतपूर्वं मया नारदात् ।

मातलि—

सख्युस्ते स किल शतक्रतोरज्यस्तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता ।

उच्छ्रेचुं प्रमथति यन्न सप्त सप्तस्तन्नैशं विमिरमपाकरोति चन्द्रः ॥ ३० ॥

स भवानासकाश्च एव इवानीं तर्मेन्द्रवमाह्व्य विजयाय प्रतिष्ठताम् ।

[ विदूषकको छोटकर मातलिका प्रवेश ]

मातलि—इन्द्रे रासवीने मारनेका काम आपको धोषा है । अब आप उन रासवीपर हो चलकर अपने बाएँ पताइए क्योंकि सज्जन लोग अपने मित्रोंपर बाएँ नहीं परछाते, अपनी कृपा बरछाते हैं ॥ २६ ॥

राजा—[ बाएँ उतारता हुआ ] कौन ? मातलि ? आओ, स्वागत है इन्द्रेके साथी !

विदूषक—[ प्रवेश करके ] अरे ! जो मुझे अलिपशुने समान मारे डाल रहा था उसका मैंने स्वागत किया था रहा है ।

मातलि—[ मुन्कुराकर ] आयुष्मन् । इन्द्रे मुझे जिस कामसे आपके पास भेजा ॥ वह पहले गुन बीजिए ।

राजा—हाँ बहिए, मैं गुन रहा हूँ ।

मातलि—कालनेमिने बसवावे दानयोग्य एक ऐश दत्त बन गया है जो हराए नहीं हार रहा है ।

राजा—हाँ, नारद मुनिने मुझ्ने बट्टा दिन हुए बताया था ।

मातलि—आपने जिस इन्द्र उन्हें जीत नहीं पा रहे हैं । अब घड़ी समझा गया है कि आप ही उन्हें रणभोगमें पछाड़ सकते हैं, क्योंकि रानने जिस धैर्यको सूर्य नहीं दूर कर सकता उसे चन्द्रमा ही हराए ॥ ३० ॥ अब आप यह अनुप-बाएँ लिए-लिए इसी इन्द्रेके परपर पड़कर विप्रपने सिधे धमे बलिए ।

राजा—धनुगृहीतोऽहमनया भवतः/संगाननया । अय मावर्ष्यं प्रति भवता किमेवं प्रमुक्तम् ।

मातलिः—तदपि कथ्यते । किञ्चिन्नमित्तावपि मनःसंतापानामुष्मान्मया विक्षतधो दृष्टः । पश्चात्कोपयितुमापुष्मन्तं तथा कृतकानसिम् । कुतः ।

ज्वलित चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फण्यां कुरुते ।

प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात्प्रतिपद्यते हि जनः ॥३१॥

राजा—[ जनान्तिकम् ] यस्य धनलिकमलोया विषस्पतेराजा । तदत्र परिगतार्थं कृत्वा महत्तनाहमावपिद्युर्न हूहि—

स्यन्मतिः केवला तावत्परिपालयतु प्रजाः ।

अधिज्यमिदमन्यस्मिन्कर्मणि व्यापृतं धनुः ॥३२॥

इति

विद्रूपक—अं भवं आणवेदि । ( यद्भवानाज्ञापयति । ) [ इति निष्कान्तः । ]

मातलिः—आपुष्मान् रथमारोहतु ।

[ राजा रथाधिरोहणं नाटयति । ]

[ इति निष्कान्तः सर्वे । ]

॥ इति पष्ठोऽङ्कः ॥

राजा—भगवान् इन्द्रने यह सम्मान देकर मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया है । पर यह तो बताए कि आपने माघष्यके ताब ऐला व्यवहार क्यों किया था ।

मातलि—वह भी बताता है । मैंने आकर देखा कि आपका मद्य न जाने क्यों घड़ा बुझी हो रहा है । इसलिये आपका शोध जमानेके लिये मैंने यही ठीक समझा । क्योंकि प्रायः सभी जगती है जब ईंधनको हिला-डुला दिया जाय, भीर सौध भी अपनी फन उठाकर सभी कुककारता है जब उसे कोई छेद दे । इसी प्रकार मनुष्यको भी जबतक कोई उल्लासकर मद्यका न दे तबतक वह अपनी तेज नहीं दिखता पाता ॥३१॥

राजा—[ विद्रूपकसे ] यस्य ! इन्द्र भगवान्की आज्ञा टाली तो जा नहीं सकती । इसलिये अमात्य विद्युतकी यह सब समाचार सुना देना और मेरी ओरसे उनसे यह कह देना कि—जबतक मेरा धनुष सपर दूसरे कागमे फँसा हुआ है तब तक अपनी बुद्धिसे ही प्रजाका पालन करे ॥३२॥

विद्रूपक—जैसी आपकी आज्ञा । [ जावा-हे । ]

मातलि—सर्वे, आपुष्मान् रथपर चढ़ जायें ।

[ राजा रथपर चढ़नेका नाट्य करते हैं । ]

[ सबका प्रस्थान ]

॥ छठा अंक समाप्त ॥

## सप्तमोऽङ्कः

[ सप्त प्रविशत्याकाश्यानेन रथाचिरुद्धो राजा मातविव्रः । ]

राजा—मातले ! धनुष्मिन्ननिवेशोऽपि भयवत्. सतिन्याविशेषादनुपपुक्तमिवात्मानं समर्पये ।

मातलि—[ सस्मितम् ] धायुष्मन् ! उभयमप्यपरितोषं समर्पये ।

प्रथमोपकृतं मरुत्वतः प्रतिपस्या लघु मन्पते भयान् ।

गण्यत्यवदानविस्मितो भवतः सोऽपि न सत्क्रियागुणान् ॥१॥

राजा—मातले ! मा भंभव । स लघु भगोरयानामप्यभूमिभित्तजवावरत्तरत्तत्कारः मम हि दिवीरतां समभमर्षात्तपोपवेजितस्य—

अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थं ज्यन्तमुद्गीच्य कुतस्मितेन ।

आमृष्टवज्रोहरिचन्दनाद्वा मन्दारमाला हरिषा पिनद्धा ॥२॥

मातलि—किमिव नामायुष्मानमरेश्वराग्राहंति । पश्य—

## सप्तम अङ्क

[ आकाशमें रथपर चढे हुए राजा दुष्मन्त और मातलि दिखाई देते हैं । ]

राजा—मातलि ! यद्यपि मैंने भयवान् इन्द्रकी आशुका पालन मात्र किया था, पर जंसी पून-पामसे उन्होंने मेरा स्वागत उत्कार किया उसके सामने तो मेरी सेवा कुछ भी नहीं थी ।

मातलि—[ मुस्करा कर ] धायुष्मन् ! मैं तो समझता हूँ कि आप दोनोका ही मन एक दूसरे का धादर करके मर नहीं । राजन् ! इन्द्रका इतना बड़ा काम करके भी आप जो धपमी देवाकी मुन्त सामर रहे हैं, उसका कारण यही है कि आप भगवान् इन्द्रकी बड़प्पन देना चाहते हैं । और वे भी आपकी बीरतासे इतने मचरजमें मर गए हैं कि आपका इतना सम्मान करके भी वे समर रहे हैं कि आपका ठीक-ठीक धादर हो नहीं पाया ॥१॥

राजा—नहीं मातलि ! यह बात नहीं है ! यहाँ से चलते समय मेरा जो उत्कार हुआ है इतने सम्मानकी तो कोई बल्पना भी नहीं कर सकता । उन्होंने देवताओंके सामने ही मुझे अपने साथे सिद्धासनपर बिठा लिया और अपनी छातीपर सोभा देती हुई हरिचन्दन सगी हुई यह मन्दारकी माथा अपने गलेसे उतारकर मुस्कराते हुए मेरे गलेमें दास दी जिसे पानेके लिये ज्यन्त सनपाई पाँसों से देखा रहा था ॥२॥

मातलि—मुझे बताइए एसा कौनसा सम्मान है जो देवराज इन्द्रने हाथ पाप नहीं पा

सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं त्रिदिवमुद्धृतदानवकण्टकम् ।  
तव शरैरधुना नतपर्वभिः पुरुषकेसरिखञ्च पुरा नखैः ॥३॥

राजा—अथ एतु घातक्रानोरेव महिमा स्तुत्यः ।

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः  
संभाषनागुणमवेहि तमीश्वराणाम् ।  
किं चाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता  
तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ॥४॥

मातलि.—सहस्रमेवैतत् । [स्थोकगन्धर्वगीतरथ] इत पश्य नाकपृष्ठप्रतिष्ठितस्य तीमात्य-  
मात्स्यवत्सः ।

विच्छिन्नशिरोपै सुरसुन्दरीणां वखैरमी कल्पलतांऽशुकेषु ।  
विचिन्त्य गीतव्यमभर्थावार्तं दिवोकसस्त्वचरितं लिखन्ति ॥५॥

राजा—मातले ! अपुरतसप्रहारोत्पुकेन पूर्वैद्युविक्रमविरोहता मया न सक्षितः स्वर्गमार्गः ।  
कृतमग्निग्न्धतां पपि पत्तांनहे ।

मातलिः—

विस्रोतसं षडति यो गगनप्रतिष्ठां ज्योतींषि वर्तयति च प्रविभक्तरश्मिः ।

सकले । देखिए—सदा कुसका जीवन बितानेवासे इन्द्रके लिये यो ही वो ऐसे हुए हैं जिन्होंने  
राक्षस-कर्षे कांटे स्वर्गसे उखाड फेंके हैं—एक तो शूंसिह भगवान् के जिन्होंने अपने नलोसे  
देवताओंके वायु हिरण्यकशिपुका पेट फाड आता था और दूसरे भाष हैं जिन्होंने इस बार अपने  
चिकने-चिकने जोड़वाले भाणोसे वायुओंको मार बताया है ॥३॥

राजा—यह सब तो भगवान् इन्द्रकी ही महिमाका फल है । यदि कोई सेवक बहुत बडा  
काम करके भावे तो यही समझना चाहिए कि स्वामीने वह काम तोपकर उसे जो बडा  
मारो सम्मान दे दिया था उसीका यह फल है । यदि सूर्य, प्राणे-प्राणे अदृशको न ले जते तो  
भला अक्षणमे इतनी शक्ति कहाँ कि वह भीरेको दूर भगा सके ॥४॥

मातलि—ऐसी बातें कहना आपका बह्णन है । [चोटी दूर चलकर] प्राणुत्तनु ! हृपर  
स्वर्गमें फौली हुई अपनी कीर्तिको धारः वो देखिए ।—देवता लोग भावने पराक्रमके पीत  
बना-बनाकर कल्पवृक्षके कण्ठोंपर उन रंगति ब्रिख रहे हैं जो अक्षराओंके सिगारते बचे  
पह गए हैं ॥५॥

राजा—मातलि ! मैं जब छाया था तब राक्षसोंके मुड करनेके ध्यानमें इतना मग्न था  
कि उस बार स्वर्गका मार्ग मती भौति देख ही नहीं पाया था । अच्छा यह तो बताओ कि इस  
लोग इस समय पवनके किस तलमें चल रहे हैं ?

मातलि—यह बही तल है जिसे लोग कहते हैं कि वापन भगवान्ने अपने दूसरे पगसे  
भापकर पवित्र कर दिया है । यहाँ परिवह नामका वह पवन चला करता है जिसने आकाश-



तस्य द्वितीयहरिविद्वमनिस्तमस्क वायोरीमं परिवहस्य वदन्ति मार्गम् ॥६॥

राजा—मातले ! अतः सन्तु सवाद्यान्त-हरणो ममान्तरात्मा प्रसोदति । [रथाङ्गवदतोऽप्य] वेपथुवशीमपतीर्णा इव ।

मातलिः—अथमथगन्धते ।

राजा—

अपमरविचरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भिर्हरिभिरचिरभासां तैजसा चानुलिप्तैः ।

गतमुपरि घनान्ना चारिगर्भोदराणां पिशुनयति रथस्ते शीकरविलन्ननेमिः ॥७॥

मातलिः—कल्याणपुष्पाणवाचिचारुभौ कतिप्यते ।

राजा—[अयोत्रतोऽप्य] मातले ! वेपावनरत्नवामयंबयोन सतस्यते मनुष्यलोक ।  
तथा हि—

शैलानामरोहतीन् शिखरादुन्मञ्जतां भेदिनी

पर्णस्वान्तरलीनतां विजहति स्फन्धोदपात्पादपाः ।

मंतानंभनुभायनष्टसलिला र्ष्पक्ति भजन्त्यापमाः

केनाप्युत्तिचपतेर परथ सुजनं मत्परियमानीयते ॥८॥

मातलिः—सापु हृद्यम् । [अबहुनामधगोऽप्य] अहो उदाररमणीया वृषिभो ।

राजा—मातसे ! कृतमोऽयं पूर्वाधरसमुद्रायणात् कनकरसमिप्यन्वी सान्य इय मेघपरियः  
दानुमानातोषयते ।

मातलिः—प्रापुष्मन् ! एष खलु हेमकूटो नाम किमुष्पपर्वतस्तपः संसिद्धिद्वेषम् । पश्य—

स्नायंभुवान्मरीचैर्यः प्रवभूव प्रजापतिः ।

सुरासुरगुरुः सोऽत्र सपत्नीकस्तपस्यति ॥ ६ ॥

राजा—तेषु हनतिक्रमणोपयानि । श्रेयोसि प्रवक्षिणीकृत्य भगवन्तं बन्तुमिन्द्राणि !

मातलिः—प्रथमः कल्पः ।

[ वाट्सेनापतीर्षा ]

राजा—[ अचिरमघम् ]—

उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः प्रवर्तमानं न च दृश्यते रजः ।

अभूतलस्पर्शतयानिरुन्धसस्तवावतीर्षोऽपि रथो न लक्ष्यते ॥१०॥

मातलिः—एतावानेष शतक्रतोरपुष्पतत्र कितेषः ।

राजा—मातसे ! बतस्मिन्प्रवेशे मारीचाधमः ।

मातलिः—[ हस्तैर्न वशंयन् ]—

यन्मीकार्धनिमम्भमूर्तिरुरसा संदष्टसर्पत्वचा

फण्डे जीर्णलताप्रस्तानबलयेनात्पर्यसंपीडितः ।

राजा—मातलि ! बतमो तो, यह पूर्व धीर परिधमके उमुद्रोत्क ऊँवा हुमा, मुनहरी  
पारा बहानेवाला धीर सग्याके मेधोकी भीतके समान लम्बा-बौडा कौच सा पहाड़ दिचाई दे  
रहा है ?

मातलि—प्रापुष्मन् ! यह तो हेमकूट नामक पहाड़ है जिसमें किन्नर लोग रहते हैं और  
जहाँ तपस्या करनेवालोंको शीघ्र ही सिद्धि मिल जाया करती है । देखिए, यहाँ देवताओं  
धीर दानवीके पिता स्वयम्भूमरीचके पुत्र प्रजापति कश्यप अपनी पत्नीके साथ बैठे तपस्या  
कर रहे हैं ॥ ६ ॥

राजा—तब तो हाथने माया सोमाय छोड़ना नही चाहिए । मैं चाहता हूँ कि भगवान्  
कश्यपकी प्रदक्षिणा कर लूँ तब जाऊँ ।

मातलि—यह तो भाषने ठीक सोचा ।

[ दोनों उतरनेका नाट्य करते हैं । ]

राजा—[ माधपर्मसे ] धरे ! तुम्हारा रथ जब नीचे उतर आया यह तो जान ही नहीं पड़ा  
क्योंकि पृथ्वीसे न धूँके कारण न तो इसके पहियोंकी घरघराहट ही सुनाई दी, न घुल ही  
उठी और न तुमने रास ही खींची ॥ १० ॥

मातलि—प्रापुष्मान्के धीर इन्द्रके रथमें बस यही तो मन्तर है ।

राजा—मातलि ! मरीचिके पुत्र कश्यपका साधम किधर है ?

मातलि—[ हाथसे दिखलाते हुए ] यह रहा कश्यप ऋषिना साधम, जहाँ वे ऐसी तपस्या

अंसव्यापि शकुन्तनीदनिचितं विभ्रज्जटामखटलं

यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावम्यर्कविम्बं स्थितः ॥ ११ ॥

राजा—नमोऽस्मै वदतपते ।

मातलिः—[ सयत्तप्रहं एव वृत्ता ] महाराज एतावदितिपरमधितमन्दारकुलं प्रजापते-  
राभयं प्रविष्टो ह्यः ।

राजा—स्वर्गाविवितरं मित्रं तित्थानम् । अमृतदुःखनिवायनादोऽस्मि ।

मातलिः—[ एयं स्थापयित्वा ] अयत्तत्तयामुप्पाम् ।

राजा—[ अयत्तीर्यं ] मातलि । अयत्तकयमिदानोम् ।

मातलिः—संमन्त्रितो मया एवः । अयमप्यवतरामः । [ तथा वृत्ता ] इतं अामुप्पाम् ।  
[ परिक्रम्य ] हृदयन्तामयभयतामृवीलां तपोवनभूमयः ।

राजा—ममु विरमसादवतोवयामि ।

प्राखानामनिलेन पृत्तिरुचिता सहकल्पपृष्ठे वने

तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशो धर्माभिपेक्षकिया ।

कर रहे हैं कि उनके आगे पत्थर तक दीनबन्धि बाँधी उठा खी है, छातीपर चाँपकी  
भेजुमियां छुटी पड़ी हैं, गलेमें सुगो हुई बेलें उलसी हुई हैं, बन्धोंतर लटकी हुई जटाधर्मि  
चिह्नियोंने घोसले बना लिए हैं और यूँसे पैरके ठूँठके समान अक्षय होकर वे सूर्यपर  
भाँसे जमाए बैठे हैं ॥ ११ ॥

राजा—ऐसी बडोर तपस्या करनेवाले महारामजी में प्रणाम करता हूँ ।

मातलि—[ राजा सींचकर पीर एव रोचकर ] महाराज ! हम लोग प्रजापति वरपपके  
साधनमें पहुँच गए हैं । यह देखिए, यह सुन्दर मन्दारके वृक्षोंकी वंश अदितिने अपने  
हाथमें लगाई है ।

राजा—यहाँ तो स्वर्गसे भी बढ़कर पान्ति कँठी हुई है । ऐसा जान पड़ता है माजी में  
अमृत-मुग्धमें धूर पडा शोके ।

मातलि—[ एव रोचकर ] उतरें अामुप्पाम् ।

राजा—[ उतरकर ] मातलि ! यह घाघ क्या करने ?

मातलि—मैंने भर्मा भक्ति एव रोच लिया है । मैं भी घाघने घाघ ही उतर रहा हूँ ।  
[ उतरकर ] इपरसे आइए अामुप्पाम् ! [ पूजो हए ] आइए, यहाँ ऋषियोंकी तपोभूमि  
देखिए ।

राजा—अबतुच मुझे तो यह देखकर बड़ा अचरज हो रहा है कि यहाँ ये तपस्वी घोष  
उन वस्तुधारे बीचमें बैठकर तपसावा कर रहे हैं जिन्हें पानेने सिधे दूसरे ऋषि लोग तपसा  
बिना करते हैं । यहाँ पर वे लोग बन्धुओंके बनवा यामु बोनीकर जीते हैं, गुाहरे बनपके

मा बलु चावलं करेहि । कहं गवो जेव भत्तखो पविदि । (भा बलु पापनं कुष । कर्णं मत एवात्मानः प्रकृतिम् ।)

राजा—[कर्णं दत्त्वा] अश्रुमिरियमविनयस्य । को नु सन्वेव निविष्यते । [सन्धानुसारेणालोक्य क्व सविस्मयम् ] अये को नु सन्वेवमनुबध्यमानस्तपस्विनीम्यामनासतत्वो वातः ।

अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम् ।  
शक्रीहितुं सिंहशिशुं बलात्कारेण कर्पति ॥१४॥

[ततः प्रविशति ययानिदिष्टकर्मा तपस्विनीम्या सह वातः ।]

वातः—किम्भ सिद्ध बन्ताई दे गएदस्तं । (बुम्भस्व सिंह दन्तास्ते गएयिष्ये ।)

प्रथमा—प्रविणोव किं एषो अपृषचलिम्बिसेत्तारिणु सत्तासि विष्यभरेसि । हृत्त बहूदृवे संरम्भो । ठारो बलु इतिजणोण सव्वहमस्यो ति किबलामहेभो सि । (अविनीत । किं नोऽप्यनिविसेपाणि सत्त्वानि विप्रकरोपि । हृत्त । वर्येते तपसरम्भः । स्याते सन्नु अपिबनेन उर्वरदन इति कृत्तनाम-वेयोऽसि ।)

राजा—किं न खलु वातेऽस्मिन्गीरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः पुनमनपत्पता भां वत्तसपति ।

द्वितीया—एसा बलु केसरिणी तुमं लद्धेदि कइ से पुत्तर्णं एण मुञ्चसेति । (एषा सन्नु केसरिणी एवा लङ्घयिष्यति यदि तस्याः पुत्रक न मुञ्चसि ।)

बस नटखटपन न कर । क्यों ? तू फिर अपने स्वभाव पर सठर प्राया ?

राजा—[कान सगाकर] भरे, यहाँ तो नटखटपन हीना ही नहीं चाहिए फिर यहाँ कौन किये डाँट रहा है ? [जिधरसे बोली सुनाई देती है ऊपर देखकर आश्चर्यसे] भरे, यह कौन पराक्रमी ब्राह्मण है जिसके पीछे पीछे दो उपस्थनियाँ बसी घा रही हैं और जो—अपने खेचनेके लिये सिंहनीके स्तनोसे प्राधा दूध पीए हुए सिंहनीके बच्चेको खेचनेके लिये बलपूर्वक घसीटे लिए चला घा रहा है जिसके केसर लाल सीचा-तानीमे छितरा गए हैं ॥१४॥

[ऊपर कही हुई दशामे तपस्विनियोंके साथ वातकका प्रवेश]

वातक—सौत के (रे) विम (सिद्ध) अपना मुँह । मैं तेजे (तेरे) दाँत विनूँवा ।

गहरी—भरे नटखट ! जिन पशुओंको हम सोचोने अपनी सत्त्वानके समान पाए रखता है उन्हें तू क्यों इतना सताया करता है ? क्या कहें, तेरा नटखटपन दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा है । श्रमियोंने तेरा नाम ठीक ही सर्वदमन रख छोला है ।

राजा—इस बालकभर मेरे मनमे वैसा ही प्रेम हो रहा है मानो यह मेरा अपना ही पुत्र हो । पर जान पड़ता है कि पुत्र न होनेके कारण ही मेरे मनमें यह वात्सल्य प्रेम उभर प्राया है ।

दूसरी—इसके बच्चेको तू नहीं छोड़ेगा तो यह सिंहनी तेरे ऊपर झपट पड़ेगी ।

वालः—[ सस्मितम् ] अम्हूहे बलिमं पशु भीदो म्हिः । ( प्रहो बलीयः सलु भीतोऽस्मि । )  
[ हत्यप्ररं दर्शयति । ]

राजा—महत्तस्तेजसो वीजं बालोऽयं प्रतिमाति मे ।

स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरैधापेक्ष इव स्थितः ॥१५॥

प्रथमा—यच्छ एवं बालगिदन्धं मुञ्च । अवरं दे कीत्तएणं वाइस्सं । ( बाल एनं बाल-  
मृगेणं मुञ्च । अपरं ते क्रीडनकं दास्यामि । )

वालः—कहिं । देहि सं । ( कुप । देहो तत् । ) [ इति हस्तं प्रसारयति । ]

राजा—अप्य । अकवतितदासामभ्यनेन पार्येते । तथा ह्यस्य—

प्रसोम्यवस्तुप्रयायप्रसारितो विभाति जालग्रथिताङ्गुलिः करः ।

अलक्ष्यपत्रान्तरभिद्धरागया नवोपसा मिन्नमिर्वैकपङ्कजम् ॥१६॥

द्वितीया—हृत्पदे । ख रङ्गो एतो बाभामत्तेण विरमपिदुं । यच्छ तुमं । ममकेरण उअए  
अङ्गणेअस्स इतिअुमारअस्स यच्छावित्तवो चित्तिआमोरमो चिट्ठदि । तं से उअहर । ( सुवते ।  
अ क्षय एप वाचामाणेण विरमयितुम् । यच्छ स्वम् । मदीये उअजे माकंभ्येअस्यापिअुमारस्य यण-  
चित्रितो मृत्तिकाममूरस्तिष्ठति । समस्योपहर । )

प्रथमा—सह । ( तथा ) [ इति निष्क्रान्ता । ]

वालः—इमिण एण्य वाय कीत्तस्सं । ( अनेनैव तावत्स्त्रोविभ्वायि । ) [ इति सापत्नी  
विमोचय हसति । ]

बालक—[ मुस्कराते हुए ] भले ( भरे ) में तो बला (बड़ा) दब (डर) गया है । [ भीत  
निकासकर मुँह बनाता है । ]

राजा यह बालक तो मुझे बड़े तेजस्वीका पुत्र जान पड़ता है और उत चित्तपारी के  
रूपमें रहने वाली प्रभिके समान दिखाई पड़ रहा है जो मङ्क उठनेके लिये बस ईपनकी  
बाट देख रही हो ॥१५॥

पहली—बला ! इस सिंहके बच्चेको छोड दे । मैं तुझे और शिलीना खाए देती हूँ ।

[ हाथ फेंकाता है ]

बालक—कहाँ है ? माफ़ो दो ।

राजा—भरे, इसके हाथमें तो अश्वत्थियोंके भी सदृश दिखाई दे रहे हैं । क्योंकि—  
जिसीके शीमके फेंकाया हुआ यह जासके समान मिसो हुई अंबलियो-बाला इसका हाथ  
उत अकेले कमसेके बँस दिखाई दे रहा है जो प्रात.कासकी लालीसे चमक रहा हो और  
जिसकी पंलडिर्पा अभी पूरे सुस भी न पाई हों ॥१६॥

दूसरी—सुवता ! यह बातोमें नही कुसवाया जा सकता । तू जा, मेरे कुटीमें जो श्रुपि-  
कुमार मार्कण्डेयका रँग हुआ मिट्टीका मोर रक्ता है, उसे उठाओ ता ।

पहली—अप्य । [ जाता है ]

बालक—घोम ( मोर ) सबतक मैं देखेदे (इसीसे) खेतता हूँ । [ यह कूकर उपस्थितको  
देखकर हँस देता है । ]

राजा—सूह्यामि सतु बुल्लसितायास्मै ।

आलक्ष्यदन्तमुक्कलाननिमित्तहासैरव्यक्तवर्णारमणीयवचःप्रवृत्तीन् ।

अङ्गाश्रयप्रणयिनस्तनयान्वहन्ती घन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति ॥१७॥

तापसी—होहू । ख भ अर्थ गयोदि । [ पाद्लंभवबोकर्यति ] को एत्व इति कुमाराखं ।  
[ राजानमवबोध्य ] भद्रमुह । एहि दाप । भौएहि इमिणा कुम्भोग्रहृत्प्यगहेण डिम्नसीताए  
माहोअपारखं बात्वमिद्वन्धं । ( भवतु । न मामयं गल्यति । कोअत्र ऋषिकुमाराखाम् । भद्रमुह ।  
एहि तावत् । भोचवानेन दुर्भोकहस्तग्रहेण डिम्नसीतया वाध्यमान वात्तभूयेन्द्रम् । )

राजा—[ उपगम्य । तस्मिन् ] अयि भो महर्षिपुत्र !

एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना संयमः किमिति जन्मतस्त्वया ।

सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि दृष्यते कृष्णसर्पशिष्टुनेव चन्दनः ॥१८॥

तापसी—भद्रमुह । ॥ सतु अर्थ इति कुमारभो । ( भद्रमुह । न सत्वयमृषिकुमारः । )

राजा—आकारसहस्रं श्लेषितमेवात्म कथयति । स्वानप्रत्ययात् ऋषमेवं तर्कितः । [ यथा-  
ऽभ्यषितमनुशिष्टन्वालयसर्पशंभुपलम्ब्य, आत्मगतम् ]

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम् ।

कां निर्धृतिं चेतसि तस्य कुर्याद्यस्यापमङ्गात्कृतिनः प्ररुढः ॥१९॥

राजा—मुझे तो यह नटलट बातक न जाने क्यों यका प्यारा लगता है । ॥ वह भाग्यवान्  
पाप्य है जिसकी गोदमें बैठकर यह स्वभावसे हैस मुल, कसोके समान कुछ-कुछ फलकते हुए  
दीवीपाना और सुवसा-सुवला कर बातें करनेबाता बातक अपने अंगकी धूल सजके धंगमें  
लगता होगा ॥१७॥

तपस्विनी—अरे ! यह तो मेरी बात सुनता ही नहीं । [ इपर-उपर देखकर ] अरे कोई  
ऋषिकुमार यही है ? [ राजाको देखकर ] हे मद्र ! तनिक दाप ही पाकर इस बातकके हाथमें  
इस सिहके बन्धेकी छुटा दीजिए । इसने ऐसे ऐसा कतकर पकड़ रक्ता है कि मेरे हाथसे ती  
पुकार नहीं छूटता ।

राजा—[ पाठ जाकर मुस्कराहटके साथ ] अरे, ए महर्षिकुमार ! तुम यहाँ आश्रमके नियमोंसे  
उल्टा काम क्यों कर रहे हो ? मैं वेनारें जीव जो जन्मसे ही सोये खादे रहकर सुखी जीवन बिता  
रहे है उन्हें तुम उध प्रकार क्यों सता रहे हो जैसे फाले सर्पका बन्वा पत्तनके पैदकी  
सजाता है ॥१८॥

तपस्विनी—मद्र ! यह ऋषिकुमार नहीं है ।

राजा—इसके रूप और चामोंसे ही जान पड़ रहा है कि यह ऋषिकुमार नहीं है । पर यहाँ  
अभयनके देखकर मैंने इसे ऋषिकुमार ही समझ लिया था । [ जो सरकर बातकके शरीरपर हाथ  
फेरकर आप-ही-आप ] न जाने यह बातक किस संजवा है । इसे एक बार ही ॥ लेनेसे जब मेरे  
शरीरकी इतना मुल मिल रहा है सब उध भाग्यवान्को कितना धानन्द मिलता होगा जिसका यह  
सगा मुन है ॥१९॥

तापती—[उभो निर्वर्ण्यं] अञ्छरिणं । अञ्छरिणं ।

(पात्रयंम् । धात्रयंम् ।)

राजा—घायें किमिदं ।

तापती—इमस्त वालकस्त दे वि संवादित्सी आकित्सी स्ति विम्हाविदम्हि । पपरिद्व स वि दे मर्षाडिलोभो संश्रुतो स्ति ( घस्य धानकस्य तेजसि संवादिन्माकृतिरिति विस्मापिताऽस्मि । मपरि-  
चित्तस्यापि तेऽप्रतिसोमः संवृत्त इति । )

राजा—[बासकमुपतापय] न चेन्मुनिकुमारोऽयमय कोऽय व्यपदेशः ।

तापती—पुरुषसो । ( पुरुषसः । )

राजा—[प्रात्मगतम्] वाचमेकान्वयो मम । प्रतः लज्जु चतनुकारिणमेतमप्रभवती ,मान्यते ।  
अस्त्येतत्पौरधात्सामान्यं कुलधतम् ।

भवनेषु रसाधिकेषु पूर्वं चित्तिरक्षार्थमुशन्ति ये निवासम् ।

नियतैकपतिव्रतानि पश्चात्तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम् ॥२०॥

[प्रकाशम्] न पुनरात्मगतत्वा भागुपाशानेय विषयः ।

तापती—जह भद्रुहो भस्त्रादि । अस्मदरासंवायेत् इमस्त जखली इत्य देवगुणो पसूदा ।  
( मया भद्रमुषो मयाति । अस्तः सवन्धेनास्य जनन्यप देवगुरोस्तपोवने प्रसूता । )

राजा—[अपवायं] हन्ति द्वितीयमिदमज्ञाजगन्तम् । [प्रकाशम्] अथ ता तत्रभवती किमाह्वस्य  
राज्यैः परमी ।

तापस्विनी—[धीनोको देलकर] आश्रयं है, आश्रयं है ।

राजा—आश्रयकी क्या बात है, भायें !

तापस्विनी—तुम्हारा सीर इस बातकका एक दम मिलता-जुलता रूप देलकर मैं तो मचरजमें  
भर गई हूँ सीर फिर देखिए कि बनवान होते हुए भी इतने भापका कहना नहीं आता ।

राजा—[अश्वेको दुमारते हुए तापस्विनीसे] अञ्छा यह तो बताइए कि यह अश्विकुमार नहीं  
है तो फिर किस ब्रह्मका है ?

तापस्विनी—पुरुषसका ।

राजा—[मन ही मन] धरे क्या यह मेरे ही बलका है ? तभी ये तापस्विनीजी मुझे इससे  
मिलता-जुलता बता रही हैं ।

पर पुरुषसिद्धीजी जो यह खँपो हुईं ऐति है कि ये—गुणावस्थामें पृथ्वीको रसाके लिये  
मिलासकी सायप्रियोसे भरे भवनोंमें रहना चाहते हैं और बुझापेमें अपनी पतिव्रता स्त्रीको साथ  
लेकर वृक्षके नीचे कुटिया बनाकर रहने लभते हैं ॥२०॥ [प्रकट] पर मही अपनी लच्छे तो कोई  
मनुष्य पहुँच नहीं सकता ।

तापस्विनी—आप ठीक बह रहे हैं । इसकी मैं अश्वर की कन्या है । इसलिये उसने यहाँ  
मरीचिके साथमें ही इसे बना दिया है ।

राजा—[अपने साथ] धरे ! यह जो मेरी आश्रमी दूसरी सीटी मिल गई । [प्रकट] अञ्छा

राजा—स्यूहयामि जसु दुर्लभितायास्मै ।

आलस्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासैरव्यक्तवर्षैरमणोयवचःप्रवृत्तीन् ।

अङ्गाश्रयप्रणयिनस्तन यान्वहन्ती धन्यास्त्वदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति ॥१७॥

राजसी—होडु । ए न भ्रमं गच्छेदि । [ पार्श्वमवचोक्षयति ] को एत्य इतिकुमारराणं । [ राजानमयलोष्य ] भद्रमुह ! एहि दाव । भोएहि इमिणा दुम्भोप्रहत्यागहेण दिम्भलीताए बाहीप्रमाणं बालमिदम् । ( भवतु । न मामयं गच्छयति । कोऽय ऋषिकुमारराणां । भद्रमुह ! एहि दावत् । मोक्षयानेन दुर्मोक्त्वस्वगहेण दिम्भलीतया वाध्यमान बासपुत्रेन्द्रम् । )

राजा—[ उपकम्ब्य । सस्मितम् ] अयि भो महर्षिपुत्र !

एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना संयमः किमिति लन्मतस्त्वया ।

सत्प्रसंश्रयमुखोऽपि दृप्यते कृष्णसर्पशिथुनेव चन्दनः ॥१८॥

राजसी—भद्रमुह ! ए वसु मम इतिकुमारयो । ( भद्रमुह ! न लत्वयमृषिकुमार । )

राजा—आकारसहर्षं चेषितमेवाद्य कथयति । स्थानप्रत्ययात् व्यपेक्षं तर्कणः । [ यथा-  
ऽप्यधितमनुतिष्ठानस्पर्शमुपलभ्य, आत्मगतम् ]

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम् ।

कां निर्धृतिं चेतसि तस्य कुर्यादस्यायमद्गात्कृतिनः प्ररुढः ॥१९॥

राजा—मुझे तो यह नटलत बासक न जाने क्यों बड़ा प्यारा लगता है । यह भाग्यवाण  
व्यय है जिसकी गोदमे बैठकर यह स्वभावसे हँस मुस, कधीके समान शुद्ध-मुस भलकते हुए  
दातोयाला और लुत्तना-मुतला कर बातें करनेवादा बालक अपने ब्रह्मकी धूल उसके प्राणमे  
सगाता होगा ॥१७॥

उपस्थितो—भरे ! यह तो मेरी बात सुनता ही नहीं । [ इधर-उधर देखकर ] भरे कोई  
ऋषिकुमार यहाँ है ? [ राजाको देखकर ] हे भद्र ! तनिक भाष ही बरकर इस बालकके हाथमे  
इस सिद्धके बच्चेकी सुधा दीजिए । इसने इसे ऐसा कसकर पकड़ रक्खा है कि मेरे हाथसे तो  
घुगाए नहीं छूटता ।

राजा—[ पास जाकर मुस्कराहटके साथ ] भरे, ए महर्षिकुमार ! तुम यहाँ प्राणमके नियमोंसे  
सल्ला काम क्यों कर रहे हो ? ये बेचारे जीव जो जन्मसे ही सीधे खादे रहकर मुझी जीवन बिता  
रहे हैं उन्हें तुम उस प्रकार क्यों सता रहे हो जैसे बाले खपका बच्चा खन्दनके पैठकी  
सताता है ॥१८॥

उपस्थितो—भद्र ! यह ऋषिकुमार नहीं है ।

राजा—इसके रूप और कार्योंसे ही जान पड़ रहा है कि यह ऋषिकुमार नहीं है । पर यहाँ  
तपोवनमे देवकर मैंने इसे ऋषिकुमार ही समझ लिया था । [ जो बरकर बालकके पारीरपर हाथ  
फेरकर पाप-हो-प्राप ] न जाने यह बालक किस वंशका है । इसे एक बार ही छू लेनेसे जब मेरे  
पारीरको झाना मुस मिस रहा है तब जग भाग्यवानुकी नितना धानन्द मिलता होगा जिसका यह  
सगा पुत्र है ॥१९॥



राजपत्नी—[उभो निर्वर्ण्य] अक्षरिणं । अक्षरिणं ।

(भाञ्जयम् । भाञ्जयम् ।)

राजा—आर्ये किमिदम् ।

राजपत्नी—इमंरा भ्रातृभ्रातृ दे वि शयाविहो अविधो ति विन्हाविदग्न्हि । अविदग्न्हि ए वि दे अविदग्न्हितोमो संकुतो ति ( अस्य बालवत्ये तेऽपि तथादिग्यात्तिरिति विस्मापिताऽस्मि । अविदग्न्हितस्यापि तेऽप्रतिशोमः सवृत्त इति ।)

राजा—[बालवमुपस्रायन्] न चेन्मुनिकुमारोऽप्यस्य कोऽप्य व्यपदेशः ।

राजपत्नी—पुण्यंते । (पुण्यंते ।)

राजा—[पात्यगतम्] कथमेकाग्रव्यो भव । अतः समु मयनुकाशिलमेजमभयती मन्मते । अस्मत्पौराणांसागन्धं कुलजतम् ।

भवनेषु रसाधिकेषु पूर्वं चित्तिरचार्थमुशन्ति ये निवासम् ।

नियतैकपतिप्रतानि पश्चात्कर्मूलानि गृहीभवन्ति तेषाम् ॥२०॥

[प्रकाशम्] न पुनरात्मगत्या मानुषाणांमेव विषयः ।

राजपत्नी—जह् अह्मुहो भस्मादि । अक्षरासंवाग्धेऽह् इमस्स बलुखो एत्य देवगुणो पसूता । (मया भद्रमुखो भराति । अस्मत्, सवन्धेनास्य जननवध देवगुरोस्तपोवने प्रसूता ।)

राजा—[अपवापं] हन्त द्वितीयविदमासाजनवम् । [प्रकाशम्] अथ स तत्रभवती किमाक्यस्य राजपतेः परती ।

राजपत्नी—[दीनोको देवकर] भाञ्जयं है, भाञ्जयं है ।

राजा—आश्चर्यंती क्या बात है, आर्ये ।

राजपत्नी—तुम्हारा घोर इस बातका एक दम निश्चिन्ता-बुलता रूप देखकर मैं तो अचरजमें भर गई हूँ और फिर देखिए कि धनवान् होते हुए भी इतने आशका कहना नहीं जाता ।

राजा—[अश्वेको दुसरेते हुए राजपत्नीसे] अच्छा अब तो बताइए कि यह ऋषिकुमार नहीं है तो फिर किस वशका है ?

राजपत्नी—पुण्यवशका ।

राजा—[मन ही मन] अरे क्या यह मेरे ही वशका है ? तभी ये राजपत्नीजी मुझे इससे निश्चिन्ता-बुलता बता रही हैं ।

पर पुण्यशियोकी तो यह बेंबी हुई रीति है कि वे—धुवावस्थामें पृथ्वीकी रक्षाके लिये निसासकी वागमिजोसे अरे भवनोंमें रहना चाहते हैं और बुदापेमें अथवा पतिश्रता स्त्रीको छाध तैपर वृशके नीचे दुटिया बकाकर रहने लगते हैं ॥२०॥ [प्रकट] पर यहाँ अपनी अशिक्षे तो कोई मनुष्य पहुँच नहीं सकता ।

राजपत्नी—भाप ठीक कह रहे हैं । इसकी भाँ अस्मत्ता की कन्या है । इसलिये उसने यहाँ मरीचिके आश्रयमें ही इसे जन्म दिया है ।

राजा—[अपने आश] अरे ! यह तो मेरी आशाको दूसरी सोझी गिन्न गई । [प्रकट] अच्छा

राज—अतमलमायेमेन । अन्विदभस्थ सिहृशावविमर्दात्परिभ्रष्टम् । [ इत्यादावुमिच्छति । ]  
उभे—मा कष्टु एवं अयत्नम्विष । कर्हं गहोदं शेष । ( मा खल्विदमवसम्भय । वषम्  
गृहीतगनेन । ) [ इति विस्मयादुरोतिहितहस्ते परस्परवचनोक्तवतः । ]

राजा—किमर्थं प्रविधिद्वयाः स्मः ।

प्रथमा—मुखाद् महाराजोः । एसा अथराजिवा खाग भोसही इमस्त जातकम्मसणए  
अपयदा मारोएण विष्णा । एवं कित मावापिवरो अप्पाखं च वज्जिअ अपरो भूमिपट्टिवं  
एण केष्हावि । ( शृणोतु महाराजः । एषाजराजिता नामोपधिरस्य आसकर्मसमदे भगवता मारोचेन  
पत्ता । एता कित मातापितरावात्मान च वर्जयित्वाज्जरो भूमिपतिता न गृह्णावि । )

राजा—अय गृह्णाति ।

प्रथमा—तथो तं सप्यो अविष रंसइ । । ततस्त सर्पो मूखा दजति । )

राजा—भवतोन्मा कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया ।

उभे—प्रलोक्यते । ( अनेकवः । )

राजा—[ सहर्षम् । आरमगतम् ] कथमियं संपूर्यमपि मे मनोरथं माभिमन्वागि । [ इति  
दालपपरिष्वजते । ]

द्वितीया—गुण्ये एहि । इमं बुत्तन्तं सिंघमग्धावुडाए उदन्दताए शिवेदेण्हु ( बुदते । एहि ।  
इमं वृत्तात्तं नियमव्यावृत्तायै शकुन्तलायै निदेवयानः । )

[ इति निष्क्रान्ते ]

राजा—अबराहए मत ! सिहके बच्चेसे खीचा-तानी करते समय यह यही गिर गई थी ।

[ बठाना बाहता है । ]

दोनो—हैं हैं ! उसे छूएया मत ! धरे, इन्होंने तो उसे उठा लिया !

[ भावचर्मसे छातीपर हाथ रखकर एक दूसरीको देखती हैं । ]

राजा—भाप लोगोंने उठानेसे मुझे रोका क्यों ?

पहली—मुनिप महाराज । जब इसका जात-कर्म सत्कार हो रहा था उस समय पृथ्वीपर  
कल्पवने अपराजिता नामकी यह जड़ी इसके हाथमें बांधकर कहा था कि यदि यह पृथ्वीपर  
गिर पड़े तो इसे, इसके माता-पिताको छोड़कर इसका कोई न उठावे ।

राजा—और यदि दूसरा कोई उठा ले तो ?

पहली—तो यह साँप बनकर उसके पास ठस चेषी ।

राजा—भाप लोगोंने क्यों इसका ऐसा परियारण देखा है ?

दोनो—बहुत बार देखा है ।

राजा—[ भाप ही भाप ] तब मैं अपने मनोरथ पूरे होनेपर क्यों न पूजा समाज ।

[ बालकको छातीसे लगाता है । ]

दूसरी—धरो सुजते ! आधो, यह समाचार उस सपत्निनी शकुन्तलाको तो गुना प्रायें ।

[ दोनो चली जाती हैं ]

यातः—मुञ्च मे । जातं घञ्जुए तद्यत्तं गमित्तं । ( मुञ्च मां यावन्मातुः स्यात्तं गमि-  
प्यामि । )

राजा—पुत्रक ! मया सहैव मातरमभिनन्दिष्यसि ।

यातः—मम वत्तु तादो दुस्सन्दो ए तुमं । ( मम वत्तु तातो दुप्पन्तः, न खम् । )

राजा—[ सस्मितम् ] एष विवाद एव प्रत्यापयति ।

[ ततः प्रविशत्येकवेणीयरा घञ्जुन्ता ]

घञ्जुन्ता—विप्रारवाले वि परिदित्तं तव्वदमण्णस्स ओत्तहि मुल्लिअ ए मे आता  
आति घत्तणो आच्छेएमु । अह्वा जह् सात्तुपवोए आचचित्तं तह संभानोअदि एदं । ( विप्रार-  
वालेऽपि प्रवृत्तिस्था सर्वदमनस्योपायि यत्त्वा न न भाषाऽऽसीदस्यनो भाग्येऽप्यु । अथवा यथा  
घञ्जुन्तायाऽऽभ्यासं तथा संभाष्यत एवम् । )

राजा—[ घञ्जुन्तां विलोक्य ] अथ सेवमत्रभवती घञ्जुन्ता । वंथा—

वसने परिधूसरे वसाना नियमचाममुखी घृत्तैकवेणिः ।

अतिनिष्कण्ठस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं विभर्ति ॥ २१ ॥

घञ्जुन्ता—[ पञ्चाशत्पञ्चवर्षं राजानं दृष्ट्वा ] ए वत्तु अज्जवत्तो विप्र । तदो को एत्तो  
आत्ति विवररत्तामज्जलं वारत्तं मे वत्तसंताणोए दुत्तेदि । ( न घत्तवामं पुत्र इव । ततः क एव इत्तानो  
इत्तरत्तामज्जलं वारत्तं मे गाथघत्तणोए रूपयति । )

बालक—घोसो ( छोमे ) । हम अपनी माँके पास रायणे ( पायणे ) ।

राजा—यात ! मेरे माथ ही चलकर अपनी माताको धामन्द बना ।

बालक—मेले ( मेरे ) पिता गुण नहीं, दुप्पन्त ( दुप्पन्त ) हैं ।

राजा—[ मुत्तरावर ] यह विरोध ही मेरे विदवालको पट्टा कर रहा है ।

[ अपने बालोंको एक सटमें बाँधे हुए घञ्जुन्ता यातो है । ]

घञ्जुन्ता—यह गुनवर भी मुझे अपने माथपर भरोसा नहीं हुआ कि सर्वदमनके  
हाथसे गिरी हुई रसायी जड़ी उनके छूनेपर छीप नहीं बनी । या फिर घञ्जुन्ताको बो कहा  
है, वह बीन बलि ठीक ही हो ।

राजा—[ घञ्जुन्ताको देखकर ] घरे ! ये ही तो वे देवी घञ्जुन्ता हैं, जिनके परोपर  
मैंने कपड़ोंका जोड़ा पड़ा हुआ है, तब करते-करते जिनका मूँह मूँह पया है, जिनके हाथ  
एक सटमें उनके पडे हैं धीरे धीरे दुष्ट मनके मुञ्च-जैसे निर्दोषके विषयोपमें दूने दिव्यि  
का करती यमी आ रही हैं ॥ २१ ॥

घञ्जुन्ता—[ पञ्चाशदंशे पीने पडे हुए राजाकी देखकर ] ये तो धार्यपुत्र जैसे नहीं धान  
पट्टे । तब वे बीन हैं जो रसा बंधे हुए मेरे पुत्रको अपने परोपरके सदा-तदाकर मंजा कर  
रहे हैं ।

बालः—[मातरमुपेत्य] अन्नुए । एतो कोधि धुरितो भं पुत्त ति भानिङ्गवि । (मातः । एष कोऽपि पुण्यो मां पुत्र इत्यानिङ्गति ।)

राजा—प्रिये ! क्रौर्यमपि मे त्वयि प्रयुक्तमनुकूलपरिणामं संवृतं यदहमिदानीं त्वयाप्रत्यभि-  
शातमात्मानं पश्यामि ।

शकुन्तला—[आर्यभतम्] ह्रियष समरसत समस्ततः । परिश्रतमन्सरेण अणुअपिअ  
मिह वेधेएण । अणुअतो कणु एतो । ( हृदय अवाश्वसिहि । सम्राअसिहि । परित्वाकमरसरेखा-  
कम्पिताग्नि देवेन । आर्यपुत्रः सत्येपः । )

राजा—प्रिये ।

स्मृतिभिन्नमोहवमसो दिप्यथा प्रमृसे स्थिताऽसि मे सुमृषि ।

उपरागान्ते शशिनः समुपसता रोहिणी योमम् ॥२२॥

शकुन्तला—जेठु जेठु अणुअतो... । (अयतु अयस्वार्थपुत्र...) [ इत्यर्थोक्ते वापकण्ठी  
विरमति । ]

राजा—सुन्दरि !

वाग्धेय प्रतिपिद्वेऽपि जयशब्दे नितं मया ।

यत्ते दृष्टमसंस्कारपाटलोत्पुटं मुखम् ॥२३॥

बालः—अन्नुए ! को एतो । (मातः ! क एषः ।)

शकुन्तला—अच्छ ! मे भाग्येभाई पुच्छेहि । (अस्त ! ते वाग्धेयानि पृण्य ।)

बालक—[माताके पास आकर] देखो माँ, मे कोई पुसुख (पुस्य) मुदे (मुझे) बैसा  
(बैठा) कहकस (कहकर) गले लगा लहे (रहे) हैं ।

राजा—प्रिये ! मैंने जो तुम्हारे साथ निकुराई की थी उसका यही ठीक वच है कि तुम  
मभीतक मुझे पहचान नहीं रही हो ।

शकुन्तला—[आप ही आप] धीरेज धीरे मेरे हृदय ! आज मैंने पिछला सब बँर  
छोड़कर मेरी सुन सी है । सचमुच ये ही तो है आर्यपुत्र ।

राजा—प्रिये ! आज मेरा बच सीमाय है कि मेरी स्मृतिपर पड़ा हुआ मोहना परदा  
हट गया । धीरे तुम सुन्दरी आज मुझे बँसे ही मिल गई जैसे अन्न-ग्रहण बीत चुकनेपर  
रोहिणी अन्नभासे आकर मिल जाती है ॥२२॥

शकुन्तला—जय हो आर्यपुत्र, जय... [इतना आधा ही कहनेपर गला भर आनेसे रुक  
जाती है ।]

राजा—सुन्दरी ! तुमने अपने रँगे ॥ गलेसे जो 'जय' शब्द कहा है उसीसे मेरी जीत  
हो गई । क्योंकि आज मेरी आँखोंसे तुम्हारे उस मुखको फिरसे देख पाया है जिसके मोठ रंगे  
न जानेके कारण पीले पड़ गए हैं ॥२३॥

बालक—ज्यों माँ ! ये कौन हैं ?

शकुन्तला—अपने गायके पूछ बैठा !

राजा—[शाकुन्तलायाः पादयोः प्रक्षिपत्य]—

सुतनु हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैत ते

किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत् ।

प्रबलतमसामेवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः

स्रजमपि शिरस्यन्धः चित्तां धुनोत्यहिशङ्कया ॥२४॥

शाकुन्तला—उठो ब्रह्मजन्तु ! शूरां मे सुभरिप्रपञ्चिवन्धमं पुराकिर्दं तेषु विमहेषु परिश्राममुहं भ्राति जेषु साञ्जलोत्तो, नि अञ्जउत्तो नद विरसो संयुतो । (उत्तिष्ठभार्यपुत्रः । दूर्तं मे दुपरितप्रतिशङ्कक पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिश्राममुल्लमासीसैनं सागुलोऽप्यार्यपुत्रो नवि विरसः संवृत्तः ।) [राजोत्तिष्ठति ।]

शाकुन्तला—अहं कहां अञ्जउत्तेण सुभरिदो दुखभाई अर्धं जणो । (अथ कथनार्थपुत्रेण स्मृतो दुःखमाश्रयं जनः ।)

राजा—उत्थतवियारवसत्यः फणविष्यतिम् ।

मोहान्मया सुतनु पूर्वमुपेक्षितस्ते यो वाष्पविन्दुरधरं परिवाधमानः ।

तं तावदाकुटिलपद्मविलग्नमद्य वाष्पं प्रमृज्य विगतानुशयो भवेयम् ॥२५॥

[इति यथोक्तमनुत्तिष्ठति ।]

शाकुन्तला—[मानमुदा हृष्टः] अञ्जउत्त ! एवं ते अशुलीप्रधं । (भार्यपुत्र । इदं सेञ्जलीय-फणम् ।)

राजा—[शाकुन्तलाके पैरोपर गिरकर] सुन्दरी ! मैंने तुम्हारा जो निरादर किया था उसकी कसक तुम अपने मनसे निहाल डालो, क्योंकि उस समय न जाने कहाँसे मेरे मनमें भ्रमामया भ्रमों का आकर छा गया था । सबमुप जो उभरेपुशी होते हैं वे अच्छे पानोंमें भी ऐसी झूल कर बैठते हैं, क्योंकि अन्धेने गलेमें कोई माया भी पटनावे तो वह उसे सोंप समझकर भटकेसे उतार फेंकता है ॥२५॥

शाकुन्तला—उठिए भार्यपुत्र ! उन दिनों कोई पिछले जन्मका पाप-फल रहा होगा कि इतने बयानु भार्यपुत्र भी मुझपर इतने कठोर हो गए थे ।

[राजा उठते हैं ।]

शाकुन्तला—पर यह तो बताइए कि भार्यपुत्रको इस दुखियाका स्मरण कैसे हो प्राया ।

राजा—दृष्टे में अपने जीकी भाँति निकाल डालूँ तब नहीं । सुन्दरी ! तुम्हारी धार्मिके भाँगुलीकी जो बूँदें उस दिन गालीपरखे दुसकर परपरोको चोट पहुँचा रही थी और जिनका मैंने उस दिन मनजाने निरादर कर दिया था वे आज भी तुम्हारी देढ़ी धरो-गिर्वाँमें उसभी हुई दिखाई दे रही हैं । उन्हें अवशक में अपने हाथसे पोंछ न लूँगा तबतक मनको दान्ति नहीं मिलेगी ॥२५॥

[अपने हाथसे शाकुन्तलाके धाँसू पोंछते हैं ।]

शाकुन्तला—[दुष्पन्तके हाथमें उनके नामवाली धँसूठी देकर] भार्यपुत्र ! यही तो आपकी वह धँसूठी है ।

राजा—अस्मात्पुत्रीयोपसम्भ्रातृषु स्मृतिवशात् ।

शकुन्तला—वित्तम किन्तु खेयं च तदा अन्वयस्तस्य पद्यकाले दुल्लहं प्राति । ( विपम कृतमनेन यत्तदाऽप्यपुत्रस्य प्ररमयकाले दुर्लभमासीत् ।

राजा—तेन हि ऋतुसमवायार्थिह्यं प्रतिपद्यता तताकुमुभम् ।

शकुन्तला—एष से विस्मयानि । अन्वयस्तो एष्व ख धारेतु । ( नाम्ब विद्वत्सिनि । धार्यपुत्र । पूर्वतद्धारयतु । )

[ तत्र प्रविष्टवि मातलि ]

मातलि—विष्ट्या धर्मपत्नीतापामनेन पुत्रमुत्सवभनेन चापुष्मान्बर्धते ।

राजा—अन्नासपादितस्पादुफलो मे मनोरथ । मातले । न सत्तु विधितोऽयमाक्षयलेन कृतात्त स्यात् ।

मातलि—[ सस्मितम् ] किमोत्सवराणां परोक्षम् । एतवापुष्मान् ! भगवात्पारीधस्ते दर्शनं वितरति ।

राजा—शकुन्तले ! अवनम्बयता पुत्र । त्वा पुरस्कृत्य मयवन्त इष्टमिच्छामि ।

शकुन्तला—हिरिद्यामि अन्वयस्तो एष गुरुदत्तमीव बन्तु । ( जिह्वेभ्यार्थपुत्रेण सह गुरुदत्तमीव गन्तुम् । )

राजा—अप्याचरितम्यमपुत्रकालेषु । एष्टोहि । [ सर्वे परिक्रान्तिव । ]

राजा—हसी भ्रूगुठीके मिल जानेपर ही तो मुझे साथी बातें स्मरण ही आई ।

शकुन्तला—इसने सचमुच पछा सोटा वाम किया था कि जब मैं धार्यपुत्रको इत्ते दिजाकर विश्वास दिलाते वही ठीक उसी समय यह न जाने कहीं जली गई ।

राजा—[ भ्रूगुठी उतारकर शकुन्तलाको देते हुए । ] अच्छा, वी बँसे कलामे फूल लगनेसे यह जान लिया जाता है कि अतावा नवन्तमे मिलत हो गया, बँसे ही पुत्र भी मुझसे मिलनेकी पहचानके लिये यह भ्रूगुठी पहन ली ।

शकुन्तला—[ हाथ उठाती हुई ] नहीं, नहीं, धर्म मैं इसका विश्वास नहीं करती । धार्यपुत्र भी इतने पहने रहें ।

[ मातलि जाता है । ]

मातलि—धर्मपत्नीके मिलने की पुत्रका भूह देखनेकी प्रापुष्पानुको बगाई है ।

राजा—मेरे मनोरथका तो सचमुच बड़ा भीठा फल हुआ है मातलि । पर इतने भगवान् तो यह बात जानते नहीं होंगे ।

मातलि—[ हँसकर ] भला देवताकोसे भी कोई बात छिपी रहती है । भाइए प्रापुष्पानु ! भगवान् मारोण आपको दर्शन देना चाहते हैं ।

राजा—शकुन्तला ! वाजपयी जँगी साथ लो । मैं तुम्हें साथ लेकर ही भगवान्के दर्शनके लिये चलना चाहता हूँ ।

शकुन्तला—दरोगे पास धार्यपुत्रके साथ जानेमें मुझे साज लग रही है ।

राजा—हयने भवधरपर जो साथ ही चल जाता है । धामो, धामो ! [ सब हँसते हैं ]

राजा—[सकुन्तलायाः पादयोः प्रणित्य]—

सुतञ्च हृदयात्प्रत्यादेश्च्यलीकमपैतु ते

किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत् ।

प्रबलतमसामेवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः

स्रजमपि शिरस्पन्धः विभ्रां धुनोत्पद्दिशङ्कया ॥२४॥

सकुन्तला—उठो बु भग्नजन्तो ! खुलं मे सुभरिभ्योऽपि न्यन्यधं पुराकिं तेषु दिग्गहेषु परिणाममुहं भासि जेए सण्णुओसो,धि भग्नजन्तो गह विरतो संवृत्तो । (उत्तिष्ठत्यायंयुत्र' । नून मे सुभरितप्रतिबन्धनं पुराउत्त तेषु दिवतेषु परिणाममुधमासीदेनं जानुकीतोऽप्यायंयुत्रो नपि विरतः संवृत्तः ।) [राजोतिष्ठति ।]

सकुन्तला—अहं वहं भग्नजन्तेण सुभरिबो दुवदभाई धरं जाली । (अथ रूपमार्गयुनेण स्मृतो बु लमागयय जन ।)

राजा—उद्धृत्तविषादनात्तः कपयिष्यामि ।

मोहान्मया सुतञ्च पूर्वमुपेक्षितस्ते यो वाप्पविन्दुरधरं परिधाधमानः ।

सं तापदाकुटिलपद्मविलग्नमद्य वाप्यं प्रमृज्य विगतानुशयो भवेयम् ॥२५॥

[इति यथोक्तमनुतिष्ठति ।]

सकुन्तला—[नाममुद्रा दृष्ट्वा] भग्नजन्त ! एवं ते अणुलीधरं । (भार्यपुत्र । इहं तेऽङ्गुलीय-  
नम् ।)

राजा—[सकुन्तलाके परीपर विरकर] सुन्दरी ! मीने तुम्हारा जो विरादर विद्या था उसको बहुत तुम अपने मनसे निजात डालो, क्योंकि जत समय न जाने कहाँ मेरे मनमें प्रतापना अथवा धारण छा गया था । सबकुच जो तमोगुणो होते हैं वे अच्छे धर्ममें भी ऐसी झूल कर बैठते हैं, क्योंकि अच्छेने गलेमें कोई माता भी पटनावे तो वह सबे धारण समझकर भटवैसे उतार फेंकता है ॥२५॥

सकुन्तला—उच्छिं भार्यपुत्र ! उन दिनों जोई विद्येने जग्नवा पाप-फल रहा होगा कि पहले अपना भार्यपुत्र भी मुझपर डलने बतोर हो गए थे ।

[राजा उठने हैं ।]

सकुन्तला—पर यह तो यथाएए कि भार्यपुत्रको इस दुसियाना स्मरण करते ही आया ।

राजा—वहसे मैं अपने बीवी की निवास डालू तब कहूँ । सुन्दरी ! तुम्हारी भाँषोंके भाँगुषोंकी जो भूँदे उस दिन पातोपरमे दुसपरन अपरोको खोट नहूँवा रही भी धोर विनया मीने उम दिन अजाने विरादर बर दिना था वे धारण भी तुम्हारी देकी बरो-  
नियंमि वमभी हुई दिगाई दे रही हैं । उन्हें जवतन मैं अपने हाथवे पोंछ न लूँगा तमतक मनकी पान्ति नहीं मिलेगी ॥२६॥

[अनेने हागसे सकुन्तलाके धार्यु पोंछते हैं ।]

सकुन्तला—[दुष्पन्नने हाथमें उनके शायवापो धँगुटी देकर] भार्यपुत्र ! मही तो आपकी यह धँगुटी है ।

राजा—अस्मादिशुभोद्योगमन्त्राण्यसु स्मृतिरपत्तव्या ।

शकुन्तला—यित्तम निद श्लेषु न तत्रा अलज्जतस्त पञ्चमकाले कुलसह भासि । ( विषम वृत्तपदेन यत्तशाऽऽपुनस्य प्रत्ययभावे पुनर्वयमासीत् ।

राजा—तेन हि प्रवृत्तमथायचिह्न प्रतिपद्यतां सतानुसुम्भम् ।

शकुन्तला—ए से विस्मसामि । भणजउतो एव्य ए पारेदु । ( भाग्य विश्वसिद्धि । धार्यपुत्र । एवैतदाख्यतु । )

[ तत्र प्रविशति मातलि ]

मातलि—दिव्या धर्मपत्नीसमागतां पुत्रपुत्रवञ्जनेन चामुष्माण्यथीते ।

राजा—अमूर्तपात्रितस्वाहुफलो मे मनोरथ । मातले ! न तसु विदितोऽपमाकण्डलेन पुतागत स्यात् ।

मातलि—[ सस्मितम् ] किमोश्वराणां परोक्षम् । एत्वापुण्यान् ! भगवाण्मारीचस्ते वसान वितरति ।

राजा—शकुन्तले ! अचलम्यतां पुत्र । त्वां पुरस्कृत्य भगवन्त ब्रह्मविष्णुनि ।

शकुन्तला—हिरिभामि भणजउतोए सह गुह्यमोष गन्तु । ( विह्वेभ्यार्यपुत्रस्य सह गुह्यमोष गन्तुम् । )

राजा—अप्याचारितम्यमम्युद्यकालेषु । एतं हि ! [ सर्वं परिक्रामन्ति । ]

राजा—इसी मंगुठीके मिल जानेपर ही वो मुझ सारी बातें स्मरण हो आईं ।

शकुन्तला—इसने सचमुच बड़ा सोटा नाम दिया था कि जब मैं धार्यपुत्रको इसे दिखाकर विश्वास दिसाने वाली ठीक उसी समय यह न जाने कहीं चली गई ।

राजा—[ मंगुठी उतारकर शकुन्तलाको देते हुए । ] अग्या वो जैसे लगाने मुझ लगनेसे यह जान लिया जाता है कि सत्ताका नश्वरमे मिलन हो गया, जैसे ही तुम भरे मुझसे मिलानेकी पहचानके लिये यह मंगुठी पहन लो ।

शकुन्तला—[ हाथ उठाती हुई ] नहीं, नहीं, अब मैं इसका विश्वास नहीं करती । धार्यपुत्र ही इसे पहने रह ।

[ मातलि आता है । ]

मातलि—धर्मपत्नीसे मिलने की पुत्रका मूह देखनेकी आमुष्मावृत्ती बधाई है ।

राजा—मेरे मनोरथका तो सचमुच बड़ा मोठा फल हुआ है मातलि ! पर इन्द्र भगवान् तो यह बात जानते नहीं होगे ।

मातलि—[ हँसकर ] भला देवतामोषे भी छोड़ बात छिपी रहती है । यादए आमुष्मन् ! भगवान् मारीच भाषको दर्शन देना चाहते हैं ।

राजा—शकुन्तला ! धातनकी जेबकी भाष लो । मैं तुम्हें साथ लेकर ही भगवान्के दर्शनके लिये चलना चाहता हूँ ।

शकुन्तला—बड़ोने पास धार्यपुत्रके साथ जानेमें मुझे जान लय रही है ।

राजा—हृदये भवसरपर तो साथ ही चला जाता है । धापो, धापो ! [ अब धूमते हैं ]



[ तत्र प्रविशत्यदित्या सार्यमाश्रयस्यो मारीचः । ]

मारीच — [ राजानमभलौघ्य ] दाक्षायणि ।

पुत्रस्य ते रश्मिशिरस्ययमग्रयायी दुष्पन्त इत्यभिहितो ध्रुवनस्य भर्ता ।

चापेन यस्य विनिवर्तितकर्म चातं तत्कोटिमत्कुलिशमाभरणं मघोनः ॥२६॥

प्रदिति — सभाषण्योप्राप्तभावा से प्राकृषी । ( समापनीयानुभावाऽस्याकृति । )

मातलि — आयुष्मन् एतो पुत्रप्रीतिपिबुनेन चक्षुषा शिवोक्तता पितरवाऽदुष्मन्तभवलोकयतः । तापुपसर्प ।

राजा — मातले एतो —

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य ध्रुवयो यत्सेवसः कारणं

भर्तारं ध्रुवनत्रयस्य सुपुत्रे यद्यज्ञभागेश्वरम् ।

यस्मिन्मात्मध्रुवः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं

इन्द्रं दक्षमरीचिसंभवमिदं तत्सप्तदुरेकान्तरम् ॥२७॥

मातलि — प्रकृष्यम् ।

राजा — [ उग्रमग्न्य ] उभाम्यामपि वायव्यनियोगोऽदो दुष्पन्तः प्रत्यमति ।

मारीच — वस्त ! त्विर जीव । शृष्वीषी पातय ।

[ प्रदितिके साथ पाठनपर बँडे हुए मारीच विश्वाई देते हैं । ]

मारीच — [ राजाको देखकर ] दाक्षायणी । ये ही ससारका पालन करनेवाले राजा दुष्पन्त हैं जो तुम्हारे पुत्र इन्द्रकी लडाईमें सबसे आगे रहते हैं और जिनके अनुपने ही इतना काम कर जाता है कि इन्द्रका तीसरी पारवाता यद्य उनका प्राणपण भर बना बँटा रहता है ॥२६॥

प्रदिति — इनके कील-कीलते ही इनके पराक्रमका ज्ञान हो रहा है ।

मातलि — आयुष्मन् ! देतो ! ये ही हैं देवताओंके माता पिता, जो आपकी और ऐसे प्यारसे बेश प्ये हैं, जैसे माता पिता अपने बच्चोंको देखते हैं, वामो, उनके पास चले जाओ ।

राजा — मातलि ! क्या वे ही वे स्त्री पुंस्य हैं जो ब्रह्माण्ड एव पीढ़ी पीछे दक्ष और मरीचिके सत्पन्न हुए हैं, जिन्हें ऋषि लोग वाग्देवों आदिलोकिके माता पिता मानते हैं, यहाँ भाग लेनेवाले इन्द्रने जिनसे जन्म लिया है और अपनेसे से अपने प्राण उदान्न होनेवाले ब्रह्मा भी सधारण ब्रह्माण्ड करनेके लिये जिनको मोदमें जन्म लिया चप्ये है ॥२७॥

मातलि — हाँ, हाँ ये ही है ये ।

राजा — [ पश्य पट्टं चकर ] सदा इन्द्रकी आज्ञा माननेवाला यह दुष्पन्त प्राण दोनोंको प्रणय करता है ।

मारीच — ब्रह्म विमोक्त जीवो, वस्त ! और पृथ्वीका पातन करो ।

प्रदितिः—बन्धु ! धृष्यजिरहो होहि । ( यत्स भ्रष्टविरयो भव । )

शकुन्तला—शरघसहिवा त्वा पादवन्दनं करोमि । ( शरकलाहिता वा पादवन्दनं करोमि । )

मारीचः—वत्से !

आस्त्रखड्गसमो मर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः ।

आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी भव ॥ २८ ॥

प्रदितिः—जावे ! भन्तुरो अभिमता होहि । अयत्सं वीहाङ्ग वन्द्यधो बहुमकुलान्तरणो हेतु । अर्धवित्त । ( जाते ! भर्तुरभिमता भव । अवर्यं दीर्घागुर्वत्सक उभयकुलनन्दनो भवतु । अर्धवित्त । )

[ सर्वे प्रजापतिमन्त्रित उपविशन्ति । ]

मारीचः—[ एकैकं निदिशन् ]—

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान् ।

अद्वा विचं विधिश्चेति भ्रित्तयं वत्समागतम् ॥ २९ ॥

राजा—भगवन् ! प्रंगभिप्रेतसिद्धिः पद्माङ्गवत् । यतोऽपूर्वः जनु बोधुग्रह ।

कुतः ।

उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं धनोदयः प्राक्तदन्तरं पयः ।

निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रमस्तव प्रसादस्य पुरस्तु संपदः ॥ ३० ॥

प्रदिति—बास ! तुम इतने बलवान् होओ कि कोई शत्रु तुम्हारे धारो न टिक सके ।

शकुन्तला—मैं अपने पुत्रके साथ आपके परलौमि प्रणाम करती हूँ ।

मारीच—वत्से ! तुम्हारा पति इन्द्रके समान है और तुम्हारा पुत्र अबलके समान है ।

इसलिये यह तो समझने लीं यही भाता कि तुम्हें आशीर्वाद नया दे । फिर भी यही आशीर्वाद देता है कि तुम इन्द्राणीके समान होवन्ती बनो ॥ २९ ॥

प्रदिति—बेटी ! अपने पतिका धारर वाओ और तुम्हारा बेटा चिरजीवी होकर योगी कुर्षीको सुख दे । मायी, बैठ जाओ ।

[ सब प्रजापतिके चारों ओर बैठ जाते हैं । ]

मारीच—[ अलग-अलग सबको संकेत करते हुए । ] ध्यान सोभाव्यसे यह पतिव्रता शकुन्तला, यह श्रेष्ठ बालक और तुम ये तीनों ऐसे द्रकट्टुं मित्र गए हो जैसे अट्टा, पन और क्रिया तीनों एक साथ मिल जावें ॥ २९ ॥

राजा—भगवन् ! आपके कृपा से सबभुव धनोष्ठी है जिसमें दर्शनसे पहले ही मनचाहा फल मिल गया क्योंकि—कार्य और कारणका तौ यही कर्म है कि पहले फल धमका है तब फल प्राप्त है, पहले बादल उठते हैं तब वर्षा होती है, पर आपके यहाँ तो सारे सुख प्रायकी कृपाके प्राग-प्रागे चलते जा रहे हैं ॥ ३० ॥

मातलि—एव विधातार प्रसीदन्ति ।

राजा—भगवन् । इमामाज्ञाकरौ यो मापयैए विवाहविधिनेपयम्य कस्यचित्कालस्य  
बन्धुभिरानीता स्मृतिर्नवित्यात्प्रत्यादिगन्धनपराद्धोऽस्मि अत्रनधतो युष्मत्संगोत्रस्य पण्यस्य ।  
पश्चाद्गुलीयकदशांनान्दूदपूर्वां तद्दुहितरमभवयतोऽहम् । तस्मिन्मिव मे प्रतिभाति ।

यथा गजो 'नेति समक्षरूपे तस्मिन्नपक्रामति सशयः' स्यात् ।

पदानि दृष्ट्वा तु भवेत्पृथीतिस्तथाविधो मे मनसो विकारः ॥३१॥

मारीच—कस्य बलमात्मापरापण्यया । समोहोऽपि त्वब्युपपन्न । धूपताम् ।

राजा—प्रवृत्तितोऽस्मि ।

मारीच—यदेवाप्तरस्तोर्षावितरत्यात्प्रत्यलवेवसत्त्वा शकुन्तलायाऽयं मेनका शासायणीसु-  
पता तदेव ध्यानादवगतोऽस्मि दुर्वासात् क्षापारिक्त्वा तद्विबन्धो सहयमधारिणी त्वया प्रत्या-  
दिष्टा नापथेति । स चायममुदसीयकदशांनान्दूदतान ।

राजा—[ सोऽब्युपपन्नम् ] एव वचनोवाभ्युत्तोऽस्मि ।

मातलि—जो स्वयं भाम्य बनादिवाले हैं उन्की ऐसी ही कृपा होती है ।

राजा—भगवन् । आपकी इस भातीकारिणी, कल्पति । मैंने गान्धर्व विधिसे विवाह कर  
लिया था । फिर कुछ दिनों पीछे जब इनके सगे सम्बन्धी लोग रहे मेरे पास आए तब मेरी  
स्मृतिको न जाने क्या ही गया कि मैं एकदम भूल गया और मैंने इनको लौटा दिया ।  
ऐसा करके मैंने आपके गोभवाते कर्मजोका बर्तों भारी अपराध कर डाला । फिर जब  
मैंने यह भ्रूण्टी देखी तब मुझे स्मरण हुआ कि मैंने तो कल्पजीकी कामसे विवाह किया  
था । मैं सब बातें मुझे यकी बिचित्र सी जान पड़ रही हैं । मुझे अपनी यह भूल डीक बेसी  
ही लग रही है जैसे ब्राह्मणे सामनेसे चले जाते हुए हाथोको देखकर मनमें यह सन्देह  
हो कि यह हाथी है या नहीं और फिर उसके निकल जानेपर उसके पैरोंको ध्यान देखकर यह  
विश्वास किया जाय कि हाँ, यह सबमुच हाथी ही था ॥ ३१ ॥

मारीच—कस्य । तुम इनके अपराधको बात धपने मनेसे एकदम शिकता डाली क्योंकि इस  
प्रकारकी भूल तुमसे ही ही नहीं सकती । मुने, मैं बर्तात हूँ जो हुआ है ।

राजा—जी, सुन रहा हूँ ।

मारीच—जब मेनका दिनसती हुई शकुन्तलाको लेकर, अशुभप्रतीतिसे उतरकर यहाँ  
शासायणीके पास आई तबो मैंने ध्यानेसे आन लिया था कि दुर्वासासे पापसे ही तुमने  
धपती इस उपस्थिती घमपतीको छोड़ दिया है और वह आप उचितकके लिये है जयतक तुम  
भ्रूण्टी न देख लो ।

राजा—[ अतोपकी सीत लेकर ] वसो, दोपसे अन्कारा लो मिला ।

शकुन्तला—[स्वगतम्] विद्विष्याः अकारणपञ्चादेसो एव प्रज्जयन्तो । एष ह सत्तं अत्ताएणं  
 धुमरेणियं भवता वत्तो मए स हि तावो विरहमुण्णहियप्रणए-एण विदिदो । अदो सहीहि संदि-  
 ट्ठुहिं भत्तु एषो अंगुलोअर्थं वंसदवव्वं चि । [दिष्ट्याऽकारणपञ्चादेसो नार्यपुत्रः । न सखु अन्त-  
 मात्मानं स्वरात्मि । अथवा प्राप्यो मया सं हि क्षाणे विरहमुण्णहदयया न विदितः । अतः सखीभ्यां  
 संदिष्टाऽस्मि अतुरंगुलीयकं शंसितवम्भामिति ।]

मारीचः—अस्ते विदितव्यमस्ति । तदिदानीं सङ्घर्षमन्वारिषं प्रति न स्वया मन्धुः कार्यः ।  
 पथ ।

शापादसि : प्रतिहता : स्मृतिरोन्नद्धे  
 अर्तयपेततमसि : प्रभुता तवैव ।  
 (श्यापो) न मुञ्चति मलोपहतप्रसादे  
 शुद्धे तु दर्पणतले सुताभावकाशा ॥३२॥

राजा—मयाग्रह भगवान् ।  
 मारीचः—वस्तु कश्चिद्व्यभिचारितत्त्वयो विविधवस्त्वामिदनुष्ठितजातकर्मा पुत्र एव  
 प्राकुन्तलेयः ।  
 राजा—भगवद् धम सखु मे भक्तप्रतिष्ठा । [ इति वाचं हस्तेन मुञ्चति । ]

शकुन्तला—[मन ही मन] यह बड़े भाग्यकी बात है कि भावपुत्रने मुझे बिना कारण  
 [नहीं] शोषा था । परन्तु यह तो हमरेख ही नहीं था रहा। है कि मुझे शाप मिला कब । मा यह  
 भी हो सकता है कि मुझे शाप मिला है और अपने विरहकी धुनमें पड़े रहनेके कारण  
 मुझे लहका शाप ही न हुआ हो । अब मेरी समझमें था रहा है कि चलते समय मेरी साक्षिणीने  
 यह क्यों कहा मा कि, मतिको, मंगुठी दिखला देना ।

मारीच—अस्ते ! तुम ठीक समझी हो । अब तुम्हें अपने पतिपर क्रोध न करना । देखो ।  
 जैसे, दर्पणपर धूल पड़ी रहनेसे उसमें ठीक छाया नहीं दिखलाई देती और यही जब धीरे  
 दिया जाता है तब छाया बड़ी सरलतासे दिखलाई देने लगती है वैसे ही शापके कारण  
 मूलि धुनकी पड़ जानेसे उन्होंने तुम्हें छोड़ दिया था पर अब शाप छूट जानेसे उन्होंने तुम्हें  
 मली भाति पहचान लिया है ॥३२॥

राजा—भगवान् ठीक कहते हैं ।  
 मारीच—वस्तु ! शकुन्तलाके जिस पुत्रके संस्कार हमने ठीक विधिसे कर दिए हैं उसे तुमने  
 मपनाया या नहीं ?

राजा—यही बातक तो हमारा मंगल चलायेवाला है ।  
 [ यह कहकर बातकको गोदमें उठा लेते हैं । ]

मारीचः—तया भाविनमेनं शक्यतिप्रभवन्धनु भवान् । पश्य,

रथेनानुद्धातस्तिमितगतिना । तीर्णज्वलधिः

पुरा सप्तद्वीपां जपति वसुधामप्रतिरयः ।

इहायं सन्धानां प्रसभदमनात्सर्वदमनः

पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरशात् ॥३३॥

राजा—भगवता हृतसंस्कारे सर्वमस्मिन्व्यवशास्महे ।

प्रदितिः—भगवं इमाद् दुहितृमहोरहसंघोषीय कण्ठो वि शब्द मुद्रवित्पातो कपोमद्रु ।  
दुहितृवन्द्यता मैत्रया इह एव्य उपचरन्तो विदुदि । (भगवन् मनया दुहितृमनोरहसंघोषीय  
कपोमद्रि तावच्छु तवित्सारः क्रियताम् । दुहितृवन्दना येनकेहोपचरन्तो विदुदि ।)

शकुन्तला—[धारमपठय] भशोरहो वसु मे अस्तिवो भगवतोय । (मनोरयः शत्रु मे  
अस्तिवो भगवतोय ।)

मारीचः—तपःप्रभाषाप्रत्यर्थं सर्वमेव तत्रभवतः ।

राजा—अतः शत्रु मम नास्तिशुभो मुनिः ।

मारीचः—तथाप्यसौ प्रियमस्माभिः प्रहयाः । कः कोत्र नोः ।

[ अविश्य ]

मारीच—यह चुन्हाए संघ तो बसावेया ही, साथ ही चकवती राजा भी होया । देखो !  
यह बालक अपने हाथ पीर सीधे बसनेवाले रथपर चढ़कर समुद्र पार करके साठों द्वीपों-  
वासी पृथ्वीको इस प्रकार प्रकैसा बोल सेवा कि संसारका कोई भीर इसके सामने टिक न  
सकेया । यहाँ इसने सब जीवोंको हँव कर रक्खा था, इसीलिये इसका मान सर्वदमन पड़  
गया था । पर आगे चलकर यह सारे संसारका चरण पीपण्य करेया इसलिये इसका नाम  
भरत होगा ॥३३॥

राजा—बिचके संस्कार आपने किए हैं उधरे तो हमें इन सब बातोंकी धाया है ही ।

प्रदिति—भगवद्रु ! इस कन्याके मनोरथ पूरे होनेकी सारी बात कन्यकीको भी कहना  
भेजनी चाहिए क्योंकि इसे प्यार करनेवासी इसको माँ मेनकाने यही पढ़कर हम लोगोंकी  
बड़ी सेवा की है ।

शकुन्तला—[मनमें] देवीने तो मेरे ॥ मनकी बात कह दी है ।

मारीच—उपके प्रभावसे कण्व ऋषि सब कृष जानते हैं ।

राजा—इसीलिये उन्होंने मुझपर श्रेय नहीं किया ।

मारीच—फिर भी यह प्यारी बात उनके पास कहना ही भेजनी चाहिए । धरे कोई  
है ? [एक उधर जाता है ।]

शिष्यः—भगवन् ! ध्यमस्मि ।

मारीचः—गालब इबानीमेव विहायसा मत्वा मस वचनात्तत्रभवते कव्याय प्रियमावेद्यम यथा पुत्रवती शकुन्तला सख्यापनिवृत्ती स्मृतिमता बुध्यन्तेव प्रतिगृहीतेति ।

शिष्यः—यदाज्ञापयति भगवान् । [इति निष्क्रान्तः ।]

मारीचः—वत्स ! स्वमपि स्वापत्यदारसहितः सद्युरालषट्सस्य स्वमावह्य ते राजधानीं प्रतिष्ठाम् ।

राजा—यदाज्ञापयति भगवान् ।

मारीचः—अपि च ।

भवतु तव पिडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु  
त्वमपि विततयज्ञो वज्रिणं भावयेथाः ।

शशाशतपरिवर्तैरेवमन्योन्यकृत्यै—

नियतमुभयलोकानुग्रहस्वायनीयैः ॥३४॥

राजा—भगवन् ! यथावृष्टिं क्षेपसे वत्सिण्ये ।

मारीचः—वत्स ! किं ते भूयः प्रियपुत्रकरोमि ।

राजा—वत्स ! शरमपि प्रियमस्ति । यद्विह भगवान्प्रियं कर्तुमिच्छति तर्ह्यविमत्सु ।

शिष्यः—मैं हूँ भगवन् ।

मारीचः—वास्तव ! भगो साकाश-भगति जाकर मेरी घोरसे कण्वजीको यह धमारा समाचार देता कि साप छूटनेपर दुष्कण्ठने सब स्वरस्य करके शकुन्तला और उसके पुत्रको ग्रहण कर लिया है ।

शिष्यः—जैसी भगवानकी आज्ञा । [बसा जाता है ।]

मारीचः—वत्स ! तुम भी सब अपने पुत्र और स्त्रीको साथ लेकर अपने दिन इन्द्रके स्वपर बढ़कर अपनी राजधानीको छोड़ जाओ ।

राजा—जैसी भगवान् की आज्ञा ।

मारीचः—घोर सुनो ! सुम्हारी प्रजाके लिये इन्द्र सदा नरपूर वर्षा किया करें और तुम भी संकड़ों गल-सन्तोपर राज्य करते हुए बहुत बह करके इन्द्रको प्रसन्न करते रहो । इस प्रकार एक दूसरेके लिये ऐसे अच्छे-भन्धे काम करते रहो कि दोनों सोक सुखी रहे ॥३४॥

राजा—भगवन् ! मैं भरहक अच्छे काम करने का जतन करूँगा ।

मारीचः—वत्स ! और कुछ सुम्हारी इच्छा हो तो कह दोषो ।

राजा—इससे बढ़कर भी क्या और कोई बात हो सकती है ? फिर भी यदि साप मुझपर कुछ घोर कृपाकरना ही चाहते हैं तो ऐसा कीजिए कि—[भरतवाक्य] राजा सदा अपनी प्रजाकी

[भरतवाचम्]

प्रयत्नतां प्रकृतिहिताय पार्ष्णिवः सुरस्वती श्रुतिमहती महीयताम् ।  
समापि च क्षययतु नीललोहितः पुनर्मव परिगतशक्तिरात्मभूः ॥३५॥

[इति निष्क्रान्ता सर्वे ।]

॥ इति सप्तमोऽङ्कः ॥

॥ समाप्तमिदमभिज्ञानशाकुन्तल नाम नाटकम् ॥

:

भलाईमें बने रहे, बड़े बड़े विद्वान् नावियोगी बाणोंका सुद कही खोदर हो और प्रपनेसे उत्पन्न होनेवाले तथा चारो ओर अपनी शक्ति फैलानेवाले महादेवको ऐसी कृपाकरे कि मुझे सब फिर जन्म न लेना पड़े ॥३५॥

[सर्वे वसे जाते हैं ।]

॥ सातवा प्रक समाप्त ॥

॥ महाकवि श्रीकालिदासका रचा हुआ अभिज्ञान-शाकुन्तल नामका नाटक समाप्त हुआ ॥

# विक्रमोर्वशीयम्

प्राज में  
पाहता हैं ।  
दो सावधानीसे



## पात्र-परिचयः

### पुरुषाः

- सूत्रधारः—नाटकस्य प्रबन्धकर्ता ।  
 पारिपास्वकः—सूत्रधारस्य सहचरः ।  
 पुरुरयस्—प्रतिष्ठानदेशस्य राजा, नाटकस्य  
 नायकः ।  
 माण्डकः—विवूपकः ।  
 माण्डुस्—पुरुरयसः पुत्र ।  
 नारकः—देवर्षिः ।  
 विश्वरथः—गन्धर्वेश्वरः ।  
 कंचुकी—राजपरिचारकः ।  
 पहलवः } भरतमुनेः शिष्यौ ।  
 मालवश्च }

### स्त्रियः

- उर्वशी—एका शप्तरा । नाटकस्य नायिका ।  
 विश्वेश्वरी—द्वितीया शप्तरा । उर्वशीयाः सखी ।  
 सहजम्बा, } शप्तरसः ।  
 रम्भा, }  
 मेनका, }  
 देवी—राज्ञी । काशिराजस्य कन्या ।  
 निपुणिका—राज्ञ्याः परिचारिका ।  
 तापसी—तपस्विनी ।  
 परिशतः—राज्ञ्याः परिचारिका ।  
 यवनी—राज्ञः परिचारिका ।

## प्रथमोऽङ्कः

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं च्याप्य स्थितं रोदसी

यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थान्तरः ।

अन्तर्यश्च

सुसुक्ष्मभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते

स स्थाणुः स्थिरमक्ति योगसुलभो निःश्रेयसापास्तु वः ॥१॥

[ नाम्चन्दे ]

सूत्रपार — प्रत्यक्षमिति विस्तरेण । [ नेपथ्याभिमुखमवबोधय । ] मारिय, इतस्तापय ।

[ प्रविश्य ]

पारिपासर्वक — भाष । अयमस्मि ।

सूत्रपार — मारिय । परिवर्धेया पूर्वेषां कथोनां हृष्टरताप्रबन्धा । अहमत्वां कातिबाताप्रभित-  
वस्तुना नक्षेन विप्रमोर्बोनामधेनेन त्रोटकेनोपस्थास्ये । तनुष्यता पात्रवर्गं । त्वेषु पाठेष्व-  
हितैर्भविष्यमिति ।

पारिपासर्वक — यथाज्ञापयति भाष । [ इति निष्पन्नम् । ]

## प्रथम अङ्क

वेदान्ती लोग जिन्हें ऐसा अकेला पुरुष बताते हैं जो पृथ्वी और आकाशमें समा हुआ होनेपर भी सबसे बड़ा बना रहता है, जिनका ईश्वर नाम ऐसा सटोक और सच्चा है कि और किसी को भी इस नामसे नहीं पुकारा जा सकता और मौख धरनेकी इच्छा करनेवाले लोग जिन्हें प्राणायाम तापकर अपने हृदयके भीतर खोजते हैं, वे सच्ची मछिये मिलनेवाले शिष्यजी आप सब लोगोका कहवाण्ड करें । ॥१॥

[ नाम्दी हो चुकनेपर ]

सूत्रपार—अच्छा अब देर नहीं करनी बाहिए । [ नेपथ्यकी ओर देखकर ] धरे भाई मारिय । इपर तो भाषो ।

[ पारिपासर्वक आता है । ]

पारिपासर्वक — लोत्रिए, भा यथा, भाषं ।

सूत्रपार—देखोमारिय ! इस समाने पुराने कवियोंके तो बहुतसे नाटक देखे हैं । धाज में इन्हे थीकातिदासका बनाया हुआ विप्रमोर्वशीय नामका एक सया त्रोटक दिखताना पाहता हूँ । इसलिये सब अभिनेताओंको जाकर समझ दो कि अपने-अपने पाठना अभिनय बढो साधधानीते करें ।

पारिपासर्वक—जैसी आपकी आज्ञा । [ चला जाता है । ]

सूत्रधार—यावद्विदानीमार्थं विदग्धमिथान्विज्ञापयामि : [ प्रणिपत्य ]

प्रणमिषु वा दाक्षिण्यादथवा सहस्तुपुरुषवहुमानात् ।

शृणुत जना श्रवधानात्क्रियामिमां कालिदासस्य ॥२॥

[ नेपथ्ये ]

घञ्ज परित्याग्य परित्याग्य । जो सुरपक्षपाती जस वा घञ्जरक्षते गई शक्ति ।  
( प्रार्थना, परिप्रायण्य परिप्रायण्यम् । य. सुरपक्षपाती यस्य वाञ्छरक्षते गतिरस्ति । )

सूत्रधार—[ कण्ठं दत्त्वा ] भये किं नु खलु यद्विज्ञापनान्तरमार्तानां कुररीणामिवाकाशे  
शब्दः श्रूयते ।

मत्तानां कुसुमरसेन पट्पदानां शब्दोऽयं परभृतनाद एष धीरः ।

आकाशे सुरगणसेविते समन्तार्त्तिक नार्यः कलमधुराक्षरं प्रगीताः ॥३॥

[ विचि-र्य ] भवतु । शतम् ।

ऊरुद्भया नरसखस्य मुनेः सुरस्त्री कैलासनायममुस्य निवर्तमाना ।

दन्दीकृता विबुधशत्रुभिरर्धमार्गे क्रन्दत्पतः कृण्वामप्सरसां गणोऽयम् ॥४॥

[ इति निष्क्रान्तः ]

॥ प्रस्तावना ॥

सूत्रधार—तत्कर्म मे घपने विद्वाद् दर्शकोष्ठि कुक्ष निवेदन कर खुँ । [ सिर कुहाकर ]  
घञ्जनो । प्राप लीरोति प्रार्थना है कि हम नत्र सेवकोपर कृपा करके या इस नाटकके नायकका  
भाक्षर करके घाप लोग कालिदासकी इस रचनाको सावधान होकर सुनें ॥२॥

[ नेपथ्ये ]

मार्थो ! मपामो ! मपामो !! जो भी कोई देवताभोका हिल चाहनेवाला हो और जो  
भाकाशमें भी भा-जा सकता हो, वह भाकर हमे दवावे ।

सूत्रधार—[ सुनकर ] धरे । यह क्या ? मेरी प्रार्थना समाप्त होते ही भाकाशमें यह कैसा  
कुररीके रोने-जँधा धम्य सुनाई देने लगा—[ सोचकर ] क्या यह फूलोका रस पीकर मतवाले बने  
हुए मीरोंकी गुजार है ? या कहीं कोयलकी मस्तानी कूक तो नहीं है ? या कहीं भाकाशमें  
देवताभोके घाप भाई हुई अप्सरारणें मीठी जान तो नहीं छेडे हुए हैं ? ॥२॥ [ सोच कर ] ठीक  
है । समझ गया ।

नरके मित्र नायकगुणी जाँचते उबँसो नामकी जो अप्सरा उल्लस हुई थी वह जब कुबेरकी  
सेवा करके लौट रही थी तब राक्षस उसे बीचसे ही पकड़ ले गए हैं उन्हीपर ये अप्सरारणें दत्तवी  
रो-चिन्ता रही हैं ॥३॥ [ चला जाता है । ]

॥ प्रस्तावना ॥

[ततः प्रविशन्त्यम्बरसः ।]

अम्बरसः—अञ्ज परिवृताक्षय परिवृताभय । जो सुरपक्षवती जस्त या अम्बरपते गई अतिय ।  
(धार्मिः परिषापथ्यं परिषायध्वम् । यःसुरपक्षवती यस्य नाम्बरतते वतिरहित ।)

[ततः प्रविशत्यपटीशेषेण राजा पुरुरवा रथेन सूतम् ।]

राजा—अतमाक्रन्दितेन । सुवोपस्थाननिवृत्तं पुरुरवसं भामेस्य कथ्यतां कुतो भवत्यः परि-  
भ्रातृभ्या इति ।

रम्भा—असुरावलेषादो । (असुरावलेषात् ।)

राजा—किं पुनरसुरावलेषेन भवतीनामपराद्धम् ।

रम्भा—सुतादु महाराधो । जा तवोवितेनतांशुवस्त सुतमारं पहरणं महेन्द्रस पञ्चावैसो  
रुजगशिवदाए तिरितोरिदं अलंकारो सग्यस्त, ता खो विभ्रताही उष्वसो कुपेरभदलावी लिपस्तनाए  
केलावि द्वाएवैए विसतेहादुदोभा अदपथं जेव बन्दिगाहं विहीय । (भ्रंटादु महाराजः । याः  
तवोवितेपसङ्कृतस्य सुतुमारं प्रहरणं महेन्द्रस्य प्रयादेशो रूपवितायाः यौगीयाः अलकारः सर्वस्य  
या नः प्रियतस्तुर्वशो कुपेरभदनाग्निवर्तमाना केनापि दानवेन चित्रसेला द्वितीया अर्धपथ एव  
एव अल्पिप्राहं पृहीता ।

राजा—अपि तत्रपते कतमेन विविधभागेन गतः स आत्मनः ।

अम्बरसः—ईसासीए दिताए । (ऐसाग्या दिता ।)

[अम्बरार्थं प्रवेश करती है ।]

अम्बरार्थं—धार्मि ! बचाओ, बचाओ ! जो भी कोई देवताधोका हित चाहते बाना हो धीर  
जो धाकाधामे भी धा-जा सफता हो, वह धाकर हमे बचावे ।

[ रथपर चढ़े हुए राजा पुरुरवा धीर सारथीका प्रवेश ]

राजा—बस बस, रीसो मत ! मैं पुरुरवा हूँ धीर धर्मी भयदाए सुर्वदरे उपासना करके धा  
रहा हूँ । धाप धीव यहाँ भेरे पास धाकर यताइए कि धाप सोयोको किससे बचाना होगा ।

रम्भा—राशसोके मस्यान्तरसे ।

राजा—राशसोने धाप सोयोपर क्या धत्वाधार किया है ?

रम्भा—सुनिए महाराज ! किसीकी वही तपस्यासे उठकर उसका तप दिगानेके लिये जिते  
धपना सुकुमार शस्त्र बनाकर दुन्द भेजते हैं, जिसके सुन्दर रूपके धामे अरवन्त रूपवालो सठमी  
भी मानी भरती है और जो स्वयंकी शोभा है, वही हमारी प्यारी सखी उवंशो जय कुवेरके  
धपनसे छोट रही भी ठे बीचमें ही कोई राशस उसे धीर विजनेसाको पबढ़ ने गया ।

राजा—क्या धाप सोय वता सकती है कि वह दुष्ट दंत्य जिस धीर गया है ?

सहयन्वा—ईशान (पूर्व-उत्तरके कोने) की धीर ।

राजा—तेन हि मुच्यता विद्याद । यतिष्ये य सतीप्रत्यानयनाय ।

भ्रमरस —सरित एव सोमवसतभवस्स । (सहजगेतस्तोमवशासभवस्य ।)

राजा—इव पुनर्मा भवत्य प्रतिपानयिष्यति ।

भ्रमरस —एवस्ति हेमकूटसिहरे । (एतस्मि हेमकूटसिहरे ।)

राजा—सूत ! एतानीं दिश प्रति चोदयाश्वालायुवधनाय ।

सूत —पदात्रापयत्यायुध्यान् । (इति यथोक्त करोति ।)

राजा—[रथवेग रूपयित्वा ।] राघु साधु । धनेन रथवेगेन पूर्वप्रस्थित दनसैवमप्यासावयेयम् ।

किं पुनस्तमपकारिण मघोन । मम—

अग्रे यान्ति रथस्य रेखुपदवीं चूर्णामग्नतो घना—

रथक्रभ्रान्तिररान्तरेषु नितनोत्यन्यामियारावलीम् ।

चित्रारम्भयिनिश्चलं हरिशिरस्यायामवच्छामरं

यन्मध्ये समवस्थितो घृक्षपटः प्रान्ते च वेगानिस्रात् ॥५॥

[ निष्क्रान्तो रथेन राजा गृह्यथ ]

सहजया—हला ! गवो राएली । ता घनहे वि जथासदिदु परेस गधदम्ह । (हला ! गती रात्रिपि । तद्वयमपि यथासदिष्ट प्रदेश गच्छाम ।)

राजा—तो माग भोग चिन्ता न कीजिए । मैं आपकी प्यारी सखीको सीटा साबेका प्रती जतन करता हूँ ।

रम्भा—आप आदरणी हैं, आप सब कुछ कर सकते हैं ।

राजा—आप सोच कहीं मेरी बात देखेंगी ?

भ्रमरस—इसी हेमकूटकी शोटीपर ।

राजा—सारथी ! ईशान (उत्तर पूर्वकी) दिशाकी ओर राज मीठकर चौडोको हाँकी ती वेगसे ।

सारथी—जैसी आज्ञा आज्ञा [बैसा ही करता है ।]

राजा—[रथकी चाल देखकर] वाह ! वाह ! अब चलते ही रथ इतने वेगसे दौड रहा है सब ती मैं गरहको भी पछाड सकता हूँ, फिर इत्रके रानु राजरा वो हूँ किस गिनती मे ! मेरा रथ इतने तीव्र वेगसे दौड रहा है कि उसकी रगठके घने शकल विश पिचकर घूल जैसे बन गए हैं । इसके पहिए भी इतने वेगसे भूम रहे हैं कि ऐसा लगता है मानो पहियोंके प्ररोके बीचमें धोर बहुतरों धरे बनते चले जा रहे हों घोडोंके सिरोपर चौँरियाँ ऐसी सटी हने गई हैं कि जान पडता है मानो ये चित्रमें तिची हुई हो और वेगसे चलनेके कारण जो पवन उठता है उसकी भोंकसे ऋडोका कपडा धनाके ठठके धोर अपने बाहरी छोरके बीचमें सीधा फँस गया है, तनिक भी हिलसा जुलता नहीं ॥५॥

[राजा तथा सारथी निकल जाते हैं ।]

सहजया—हसियो ! रात्रिपि तो चले गए । चलो, हम भोग भी उधर चली चलें जहाँ उनसे मिलनेके लिये अगो वह चुकी है ।

मेनका—सहि एध्वं करेम्ह ( सखि ! एवं नुपं । )

[ इति हेमकूटखिलरे माटयेनाधिरोहन्ति । ]

रम्भा—अथि एण्य सो राएसी उदरदि खो हिमप्रसक्तम् । ( अथि नाम स राजनिगद्वरति नो हृदयशल्पम् । )

मेनका—सहि ! मा वे सतसो भोटु । ( सखि ! मा ते ससयो भवतु । )

रम्भा—ए दुवजभा वगथा । ( ननु दुर्वया दानवा । )

मेनका—उषट्टिदसपराधो महिन्दो वि मञ्जमलोभायो सबहुमासं आणाविप्र त एष्व विदुषविजघ्नास तेणामुहे शिञ्जोजेदि । ( उपस्थितसपराधो महिन्दोऽपि मञ्जमलोकास्तद्युमागमानास्य समेव विदुषविजयाय सेनामुखे नियुङ्क्ते । )

रम्भा—सवषहा विषई भोटु । ( सर्वथा विजयो भवतु । )

मेनका—( दासामास स्थित्वा ) हस्ता समस्तस्य समस्तस्य । एस उल्लसितहरिणकेतयो तस्त राएसिलो सोमवतो र्हो षोसदि । ए एतो षकितरयो पट्टिलिउसिस्सदि ति तवकेमि । ( सस्य, समाश्वसित समाश्वसित । एष उल्लसितहरिणकेतनस्तस्या रावर्षे सोमवतो रधो हृदयते । मैवोऽकृतार्थ प्रतिनिर्वाडिप्यति उक्ति लक्षणाभि । )

[ निमित्त सूचयित्वावसोवन्त्य स्थिता । ]

[ तत प्रविशति रणाकडो राजा सुतम्भ । भयनिमीषिताधी चित्रलेखा दक्षिणहस्तावसन्निवता सर्वथा च । ]

चित्रलेखा—सहि समस्तस्य समस्तस्य । ( सखि सगाम्भसिहि समाम्भसिहि । )

राजा—सुन्दरि ! समाम्भसिहि ।

मेनका—ह्रीं सरो, चतो ।

[ सब हेमकूट पर्वतपर चक्रेका माटय करती हैं । ]

रम्भा—क्या वे राजवि सपमुच हम सोणीके मनको कसक दूर कर सकेंगे ?

मेनका—एतमे सम्बेह न करो सतो ।

रम्भा—पर उन दैरवीको कोई जीत बोये ही सकता है ।

मेनका—आगतो हो, अब देवताभेको विजयके लिये युद्ध करना होता है उस समय इन इन्हीको मध्यलोकके बड़े सम्मानके साथ बुलाकर अपना सेनापति बनाते हैं । समझी ?

रम्भा—पच्छा मैं तो मनाती हूँ कि सब प्रकार उनकी जीत हो ।

मेनका—[ चौड़ी देर उठर कर ] सखियो ! चुप हो जाओ, धीरज रखती ! वह देखो, राजपिके सोमदत्त रधको यह भट्टी हिलती दिखाई दे रही है जिसपर हिरण बना हुआ है । मैं समझती हूँ कि काम पूरा किए बिना ये नहीं लौटे होंगे ।

[ सब सखियाँ उलावती होकर उभर देखती हैं । ]

[ उभर बैठे हुए राजा और चारलीका प्रवेश । ]

[ उसी रथपर चित्रलेखाके दाहिने हाथपर सहाय देकर डरते भाँले बन्द करके पवो हुई सर्वथा दिखाई देती है । ]

चित्रलेखा—सखी ! धीरज धरो, धीरज !

राजा—सुन्दरी ! धीरज धरो । सब राक्षसोंको को डर नहीं रहा, क्योंकि इन्द्रका बल तो

गतं भयं भीरु सुरारिसंभवं त्रिलोकरची महिमा हि वज्रिणः ।  
तदेतदुन्मीलय चक्षुरायतं निशावसाने नलिनीव पङ्कजम् ॥६॥

चित्रलेखा— प्राम्गहे वहाँ उस्तसिखमेससभाविदलीविदा अरुज वि एसा सण्ण ए पडिवज्रदि ।  
( यहो कदमुच्छ्वसितमावसभावितलीविता असाप्येषा यज्ञा न प्रतिपद्यते । )

राजा—बलवदन भयतो परिवस्ता । तवाहि ।

मन्दारकुसुमदाम्ना गुरुरस्याः सूच्यते हृदयकम्पः ।  
मुद्गरुच्छ्वसता मध्ये परिगाहवतोः पयोधरयोः ॥७॥

चित्रलेखा— [ सकरुणम् ] हता उच्यति । परजवस्थावेहि अस्ताणम् । अणुच्यता विम पत्रि-  
भाति । [ सन्न उच्यते ] पयवस्थापयतामानम् । अनप्यरेव प्रतिभाति । )

राजा—मुञ्चति न तावदस्या मयकम्पः कुसुमकोमलं हृदयम् ।  
सिचयान्तेन कथंचिस्तनमध्योच्छ्वासिना कथितः ॥८॥

( उच्यते प्रत्यापद्यति । )

राजा—[ सहर्षम् ] चित्रलेखे विख्या वर्धते । प्रकृतिमान्ना वे प्रियलेखी । पश्य ।

आधिर्मते शशिनि तमसा मूच्यमानेव रात्रि ।  
नेशस्यार्चिर्हुतशुभ्र इव च्छिन्नभूयिष्ठभूमा ॥  
मोहेनान्तर्गतनुरियं लक्ष्यते मुक्तकल्पा ।  
गङ्गारोधःपतनकलुषा गच्छतीव प्रमादम् ॥९॥

हीनो लोकोकी रक्षा कर सकता है, इसलिये तुम अपनी बर्ती-बर्ती धारों उसी प्रकार झोल दो जैसे प्रातःकाल होनेपर कमलिनो अपना फूल खोल देती है ॥६॥

चित्रलेखा—यह बड़े धरजकी बात है कि जिसकी चलती हुई साँसकी देलकर ही विपवास होता है कि यह भी रही है वह अभीतक अपनी धारों नहीं खोल रही है ।

राजा—भद्रे ! तुम्हारी सखी बहुत ही डर गई है । क्योंकि इसके बड़े बड़े तनके बीचने जो मन्वारकी माना पत्ती हुई है उसके बराबर हिननेसे ही यह बात पत्र रूढ़ है कि इसका हृदय डरके मारे अभी तक बड़ा काँप रहा है ॥७॥

चित्रलेखा—[ दुःखी होकर ] सखी उच्यते । धीरव पयोः । ऐसा करती हुई, तुम अपना नहीं जान सकती ।

राजा—इसके रतनके ऊपर हिननेवाले वस्त्रसे ही जान पड़ रहा है कि डरसे जो कँप-कँपी छुटी थी वह अभीतक इसके फूल-बँस कोमल हृदयको छोड़ नहीं रही है ॥८॥

[ उच्यते धारों खोलती है । ]

राजा—[ प्रसन्न होकर ] यथाई है चित्रलेखाजी ! आपकी सखीने धारों खोल दी हैं । देखो—मूर्छा दूर होनेपर आपकी सखी ऐसी लगती हैं जैसे चन्द्रमाके निकल जानेपर अँधेरेसे छुटी हुई रात हो, या रातके समय बिना घुँसेवाली अग्निकी लपट हो, या यथाशीवी वह धारा हो जगारके गिरनेसे गँदनी होकर फिर स्वच्छ हो गई हो ॥९॥

चित्रलेखा—सहि उदयसि । कीसदा भव । प्रावणानुकम्पिणा महाराएण पत्रिहवा वसु वे तितसपरिपन्थियो हवासा दाएवा । (सधि उर्वशी ! विसन्वा भव । प्रावणानुकम्पिना महाराजेन प्रतिहवाः ससु ते त्रिदशपरिपन्थिनो हताश्रवानवाः ।)

उर्वशी—[चक्षुषी उन्मील्य ।] किं पहावसिणा महिन्देण अमृवुवाह्मिः । (किं प्रभाव-  
दर्शिता महेंद्रेणान्मुपपन्नासि ।)

चित्रलेखा—ए महिन्देण । महिन्दसरिताश्रुभावेण राएसिणा पुण्डवसेण । (न महे-  
न्द्रेण । महेंद्रसदृशानुभावेन राजपिणा पुण्डवता ।)

उर्वशी—[राजानगवतोपय । आरपयतम् ।] उवकिं वसु वाएवेभ्रतरम्भेण । (उपहृतं  
ससु वानवेभ्रतरम्भेण ।)

राजा—[उर्वशी विबोध्य । आरपयतम् ।] इवले ससु नारायणपुंदि विनोभवगपदस्तदूष-  
संभयाभिनतं विबोध्य श्रीकृताः सर्वा मप्यारस इति । मयया नेयं वरक्षियनः सृष्टिरित्यवैभि ।  
कुतः ।

अस्याः सर्वाविधौ प्रजापतिरभूचन्द्रो नु कान्तिप्रदः

भृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ।

वेदाभ्यासजडः कथं नु विपयव्यापुचकौतूहलो

निंमातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥१०॥

उर्वशी—हला—चितलेहे सहीमलो कहि वसु भये । (सधि चित्रलेखे ! सखीयनः कुत्र ससु  
भवेत् ।)

चित्रलेखा—सखी उर्वशी ! चित्रलेख करो, दुखियोंपर कृपा करनेवाले महा राजने देवताओंके  
शत्रु दुष्ट राजसोंको मार भगवत है ।

उर्वशी—[आपें खोलकर] क्या बसन्ताली इन्द्रने मुझे बचाया है ?

चित्रलेखा—महेंद्रने नहीं, इन्द्रके ही समान गौर राजपिने ।

उर्वशी—[राजाको देखकर मतभे] तो राजसोंके उपद्रवने उपकार ही किया है ।

राजा—[उर्वशीको देखकर मन ही मन] नारायण ऋषिको तुमनेके लिये जो भस्मपाई  
पई थी, उन्हीने जब ऋषिकी जपासे उत्पन्न होनेवाली इस उर्वशीके रूपको देखा तो वे  
सब भँप गई । यह ठीक ही था, क्योंकि ऐसा सुन्दर रूप कोई तपस्वी तो उत्पन्न कर नहीं  
सकता । इसे बनानेके लिये या तो चाँदनी देनेवाले चन्द्रमा ही स्वयं प्रज्ञा बने होगे या  
शृङ्गार रसके देवता स्वयं कामदेवने इसे बनाया होगा, या फिर वसन्तने ही इसे रचा होगा । नहीं  
तो बताइए, भना वेद पठ पढ़कर पथराए ऋषी और योग-विद्यासते दूर रहने वाले वे बूढ़े ऋषि  
ऐसा सुन्दर रूप कैसे उत्पन्न कर सकते हैं ॥१०॥

उर्वशी—सखी चित्रलेखा ! हमारी सब सचियाँ कहाँ होगी ?



विप्रलेखा—सहि प्रमथप्रदाई महाराजो जालादि । (एलि अभयप्रदायी महाराजो जानाति ।)

राजा—[उर्वशी विनोदय ।] महति विपादे यतते सतीजनः । पश्यतु भवती ।

यदृच्छया त्वं सकृदप्यबन्ध्ययोः पथि स्थिता सुदरि यस्य नेत्रयो ।

त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत्सखीजनस्ते किमुदार्र्द्रसौहृदः ॥११॥

उर्वशी—[घातगतम् ।] प्रमिषं वधु दे वमस्यम् । अथवा चन्द्रावो प्रमिषं कि कि अन्वयिषम् । [प्रकाशम्] अतो एव मे वेदितुं तुभरदि हिमप्रम् । (अमृत ससु ॥ वधम् । अथवा चन्द्रावमृतमिति किमाश्रयम् । अत एव मे प्रेक्षितुं स्वयते हृदयम् ।)

राजा—[हस्तेन-दशायम् ।]

एताः सुतनु युखं ते सख्यः परयन्ति हेमकूटगताः ।

उत्सुकनयना लोकाधन्द्रमिषोपप्लवान्मुक्तम् ॥१२॥

[उर्वशी शान्तिताप पत्यति ।]

विप्रलेखा—हला कि वेवति । (एलि कि प्रेसते ।)

उर्वशी—एवं समनुष्यगरो पिषोषदि लोभयेहि । (ननु समनुष्यत. पीयते लोचना-भ्याम्)

विप्रलेखा—[उस्मितम्] अइ वी । (अथि वः ।)

उर्वशी—एवं पण्डितयो । (ननु प्रणयिनः ।)

विप्रलेखा—हमे वधानेवाले महाराज ही जानते होंगे ।

[उर्वशीको देखकर]

राजा—आपकी शक्तियाँ बड़ी ही दुखी दिखाई दे रही हैं । देखिए, यदि आपकी कोई एक बार भी ईश्वरसे दस से तो यह भी आपके विषयमें विफल हो उठे, फिर, आपके प्रेममें क्या हुई शक्तियोंकी तो बात ही क्या ? ॥११॥

उर्वशी—[मन ही मन] आपके यपन ही अमृत है । पर चन्द्रमासे यदि अमृत बरसे तो आपमें ही क्या । [प्रदट] इसीविधे तो मेरा हृदय उन्हें देखनेके लिये इतनी उदावनी कर रहा है ।

राजा—[हाथसे दिग्गता हुआ] यह देखिए, आपकी शक्तियाँ ऐकपूटपर बँटी हुई आपकी धीर बँधी ही उरमुक्तसे देस रही हैं जैसे उरमुक्तसे भोग ब्रह्मणसे छूटे चन्द्रमाको देसा करते हैं ॥१२॥

[उर्वशी राजाको चाहने साथ देखती है ।]

विप्रलेखा— हमने ध्यानसे क्या देस रही हो लगी ?

उर्वशी—जो आपने दुःखमें नाम पाये उन्हें धायोसे ही रहते हैं ।

विप्रलेखा—[हँसकर] धरी किन्हे ?

उर्वशी—आपने प्रियजन ।

रम्भा—[सहस्रमदनीयव] हता ! चित्तलेहाजुदीर्घं पिपपहर्षो उज्ज्वलो भेषिभ्रुव विद्याहासहिरो विप्र भद्रयं सोमो समुपद्रिदो राएसी । (सखि ! चित्रलेखाद्वितीया शिष्यसखीमुखसो गृहोत्वा विद्यासासहित इव भगवान्सोमः समुपद्रिदो राजपिः ।)

मेनका—[निबंधयं] हता बुधे वि एषो एतथ प्पिभा उज्ज्वला । इमं पन्नासोदा विषंसही । अयं च अपरिक्लतसरोरो राएसी बीसखि । (सखि ! हे मपि नोऽत्र प्रिये उपनते । इयं प्रत्यानीता प्रियसखी । अयं चापरिक्लतसरोरो राजपिः ।)

सहजन्मा—ताहि कुत्तं मखसि कुज्जयो बाएषो ति । (सखि ! युक्त मखसि दुर्जयो शनव हति ।)

राजा—सूत इदं लच्छेलसिखरम् । मयत्तारय रयम् ।

सूतः—यवात्तापयत्यापुष्मान् । [इति तथा करोति ।]

[उर्वशी रथापतारक्षीभ नाटयन्ती सवास राजानमवसम्भवे ।]

राजा—[श्वगतम् ।] हन्त सखती मे विपन्नावतारः ।

यदिदं रथसंक्षोभादङ्गेनाङ्गं ममायतेचक्षया ।

स्पृष्टं सरोमकण्टकमङ्कुरितं मनसिजेनेव ॥१३॥

उर्वशी—हला कि वि पररो भोत्तर । (सखि किमपि परसोऽपत्तर ।)

चित्रलेखा—एाहं सखेमि । (नाहं धवनोमि ।)

रम्भा—[सूर्यसे देसकर] चित्रलेखा धोर प्यारी सखी उर्वशीको साथ खेकर यह राजपि उसी प्रकार एपर खले या रहे है जैसे विद्यासाके दो सारोके साथ पद्मना पले या रहे ही ।

मेनका—[विचारकर] सखी, ये दोनों वार्ते सखी ही हुई कि, हमारी सखी भी सौटकर या गई धोर राजाको भी कितनी प्रकार चोट लही भाई ।

सहजन्मा—हुग ठीक कह रही हो उषी । नहीं तो भला इन राजसोको क्या कोई कनी पीत पाता है ?

राजा—सारथी ! यही है वह उर्वतकी खोटी । रय यही उतार भी ।

सारथी—जंसी बापुभामातुकी भाशा ।

[रथ उतारता है ।]

[रथके उतरनेके गटकेका नाट्य करती हुई उर्वशी राजाके शरीरसे स्नम जाती है ।]

राजा—[मन ही मन] इस ऊनट-सावक मुमिपर रथका उतरना मेरे लिये अच्छा ही हुआ, क्योंकि रथके हिलने-डुलनेसे इस बड़ी-बड़ी भाँखोवासी मुन्दरीके शरीरसे मेरे शरीरसे बार-बार छूनेपर शरीरमे जो रोमांच हो प्रायः है वह ऐसा भाव पड़ता है मानो मेरेके मंजुर फुट भाए हों ॥१३॥

उर्वशी—सखी ! सोच उषरको हट जाओ ।

चित्रलेखा—मुझसे तो नहीं हटा जाता ।

रम्भा—एतत्त्रिभ्यश्चरितं संभावयेद्दृष्ट्वात्सिम् । (अत्र त्रिभ्यश्चरितं संभावयामो राजपिम् ।)

[सर्वा उपसर्पन्ति ।]

राजा—सूत उपहृतेषु रम्यम् ।

यावत्पुनरियं सुभ्रूहृत्सुकाभिः समुत्सुका ।

सखीभिर्याति संपर्कं लताभिः श्रीरिवार्तवी ॥१४॥

[सूतो रम स्थापयति ।]

अम्बरराजः—दिविष्वा महाराजो विजयस्य बहुरिः । (दिष्ट्या महाराजो विजयेन वर्धते ।)

राजा—भयत्यत्र सखीसमागमेन ।

उर्वशी—[चित्रमेखादत्तहस्तावसम्या रयादवतीयं] हस्ता अपिर्धं परिस्तजह । ए बलु मे  
प्राप्ती प्राप्तातो अहा पुणो वि सहोम्यं वेविचस्सं ति । (सस्यः पथिक परिष्वलय । न बलु मे  
प्राप्तीदाददातो यथा पुनरपि सखीजनं प्रेक्षिष्य इति ।)

[सस्यः परिष्वयन्ते ।]

मेनका—[साशसम्] सख्यर्हा फण्यसवं महाराजो पुर्वाव पातमन्ती हीम् । (सर्वथा कलगतं  
महाराज. पृथिवी पालयामवन्तु ।)

सूतः—आधुष्मन् ! पूर्वस्यां विनि महता रपवेनोपवर्तितः शश्वः ।

अथ च गगनात्कोऽपि तप्तचामीकराङ्गदः ।

अधिरोहति शैलार्द्रं तद्विस्थानिय तोयदः ॥१५॥

रम्भा—सखी, सपत्नी भक्षा करमेवाते इत राजपिका ह्य सोम घावे बहुरकर स्थागत तो करं ।

[सब भाये बहती हैं ।]

राजा—सारथी ! रथको इनके पास तक तो बढा ले पखी, जिससे मे घमीर सुन्दरी अपनी  
पथराई हुई सखियोंसे उसी प्रकार मिल ले जैसे बसन्तकी घोभा लताघोसे जा मिलती है ॥१५॥

[सारथी रथ सहा कर बैठा है ।]

अम्बरराजं—इस दिग्गजपर महाराजको बधाई है ।

राजा—आप सबकी भी सपत्नी व्यारी सखीसे मिलनेकी बधाई है ।

उर्वशी—[चित्रमेखाके हाथके सहारे उत्तरण] सखियों ! मुझसे कसकर गले मिलती । मैं  
ही तुम सबसे मिलनेकी प्रार्था ही छोड़ बंटी थी ।

[सखियाँ गले मिलती हैं ।]

मेनका—[प्रशंसा करते हुए] महाराज सैकड़ों बल्पोतक पृथ्वीका मानन करते रहे ।

सारथी—महाराज ! पूर्ण दिशानी ओरसे निसी बेघसे भाते हुए रथकी पट्टपट्ट सुताई दे  
रही है । देखिए, उसे हुए सोनेका मुबबन्ध पहने कोई इसी पर्वतके शिलरपर भाकाघसे उसी  
प्रकार उत्तर रहा है जैसे कोई विजलीवाला वादल हो ॥१५॥

अम्बरसः—[ पश्यन्त्यः ] अम्मो चित्ररहो ! ( महो चित्ररथः । )

[ ततःप्रविधति चित्ररथः । ]

चित्ररथः—[ राजानं दृष्ट्वा सवह्वानम् । ] दिव्या महिम्नोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना  
वर्धते भवान् ।

राजा—अये गन्धर्वराजः ! [ रयादयतीमं । ] स्वागतं प्रियसुहृदे ।

( परस्परं हस्ती स्पृशतः । )

चित्ररथः—तपस्य केविला हृतमुखंशी नारवाहुपधृत्य प्रत्याहरत्साम्भरयाः शतश्रुता  
गन्धर्वसेना समाविष्टा । ततो वयमन्तरा चारसोभ्यस्त्वदीयं जयोदाहरत्सं श्रुत्वा त्वामिहाश-  
नुवागताः । ॥ भवानिमां पुरस्कृत्य सहास्माभिर्मघयन्तं द्रष्टुमर्हति । महत्त्वञ्च तत्रभवतो मघोना  
प्रियमनुष्ठितं भवता । पश्य ।

पुरा नारायणेनेयमतिमुष्टा मरुत्वते ।

दैत्यहस्तादपाच्छिद्य सुहृदा संप्रति त्वया ॥१६॥

राजा—सत्ते मयम् ।

ननु वज्रिण एव वीर्यमेतद्विजयन्ते द्विपतो यदस्य यद्याः ।

वसुधाधरकंदराविसर्षी प्रतिशब्दो हि हरेर्हिनस्ति नामान् ॥१७॥

चित्ररथः—पुस्तमेतम् । अनुरतेकः सत्तु विक्रमार्त्तकारः ।

गन्धर्वाय—[ देखती हुई ] धरे ! ये तो चित्ररथ है ।

[ चित्ररथका प्रवेश ]

चित्ररथ—[ राजाको देखकर आदरसे ] इन्द्रका उपकार करनेकी शक्ति रखनेवासे महाराज !  
भापको बधाई है ।

राजा—धरे भाप ! गन्धर्वराज ! [ रथसे उतरकर ] स्वागत करता हूँ मित्र ! [ दोनों  
भापसमे हाथ मिलाते हैं । ]

चित्ररथ—अयस्य ! नारदजीने इन्द्रको मघो-मघी बताया है कि उर्वशीको केही हृद से गया  
है । यह सुनकर इन्द्रने गन्धर्वोंकी सेनाको आज्ञा दी कि उसे जाकर चुदा लामो । इसी वीचनें  
हमने मार्गमें देखा कि चारसु सोम भापकी विजयके भीत गाते चले धार रहे हैं । यह वसे  
सुनकर हम लोग इधर चले आए । अब भाप उर्वशीको लेकर स्वयं हमारे साथ भगवान् इन्द्रसे  
बसकर मिलिए, भापने उचमुच इन्द्रका बड़ा भारी उपकार किया है । देखिए—जैसे पहले  
सप्तमी नाटागलने इसे उत्पन्न करनेके इन्द्रको सौंप दिया था वैसे ही अब दैत्योंके हाथों पुद्गाकर  
भाप मित्रके गाते इसे इन्द्रको भेंट कर दीजिए ॥१६॥

राजा—नही नहीं ऐसा थ कहो ! यह सब इन्द्र भगवानके ही पराक्रमका तो फल है कि  
उनके मित्र अपने शत्रुओंको उगी प्रकार मार भगाते हैं जैसे पर्वतको बुपारसे टकरा-कर गूंबती  
हुई सिंहकी दहाड़ हाथियोंको डराकर भगा देती है ॥१७॥

चित्ररथ—ठीक ही ! वो पराक्रमी होते हैं उन्हें विजय ही घोमा देता है ।

राजा—सले नायकवसरो भम वसवन्तु इच्छुम् । अतस्त्वमेवाग्रभवती प्रथोरन्तिकं प्रापय ।

चित्ररथः—यथा नवान्मन्यते । इत इतो यवत्यः ।

[ सर्वाः प्रस्रियताः ।

उर्वशी—[ जनान्तिकम् ] हता चित्तलेहे, उवप्रारिखं राएँस ए सङ्करोमि धामन्तेतुम् । तां सुमं एव मे मुहं होहि । [ सखि चित्रलेहे । उपकारिखं राजनि न शक्रीम्यामान्कयितुम् । सत्त्वमेव मे मुलं भव । )

चित्रलेखा—[ राजानगुपेत्य । ] महाराज एवक्तो विण्णुवेदि—महाराएणा मन्मच्छुण्णावा इण्णामि विघत्ताहि विघ महाराजस्य किंति मुरलोचं खेवुं । ( महाराज ! उर्वशी विज्ञापयति—महाराजेनाभ्यनुज्ञातेच्छामि त्रियसुचीमिव महाराजस्य कींति मुरलोचं नेतुम् । )

राजा—दाम्यतां पुनरुंशंवाय ।

[ सर्वाः सवाम्यर्थां धाकासोत्पत्तं रूपयन्ति । ]

उर्वशी—[ उरपत्तनमञ्जु रूपवित्वा । ] धम्मो सदाविद्ये एसा एधावली वेमाप्रतिमा मे लम्मा । [ सव्याजमुपसृत्य राजानं पश्यन्ती । ] सहि चित्तलेहे मोभावेहि वाय खं । ( यही सदाविद्ये । एपैकवसी रंजयन्तिका मे लम्मा । सखि चित्रलेहे मोचय तावदेनाम् । )

चित्रलेखा—[ विसोक्य विहृत्य च । ] धां विदं वधु सया सा । असङ्ग मोभाविहू । ( धाम् इदं सधु लम्मा सा । सवाम्यं मोचयितुम् । )

उर्वशी—धलं परिहातेन । मोभावेहि वाय खं । ( धलं परिहातेन । मोचय तावदेनाम् । )

राजा—दिश ! इस समय तो मैं भववान् इन्द्रका दर्शन कर नहीं सकूँवा, इसलिये प्राय ही इस समय इन्हें स्वामीके पास पहुँचा द्याइए ।

चित्ररथ—जैसी आजकी इच्छा । इपरसे द्याइ देवियो । इपरसे ।

[ सब चली जाती हैं । ]

उर्वशी—[ असंग ] सखी चित्रलेखा ! अपने ऊपर इतना उपकार करनेवाले राजपिसे चलते हुए विदा लेनेमे मुझे तो मान बग रही है, इसलिये तुम्हीं मेरी भोरसे बिदा पाँल ली ।

चित्रलेखा—[ राजाके पास पहुँच कर ] महाराज ! उर्वशी कह रही है कि यदि महाराजकी आज्ञा ही तो महाराजकी कीर्तिवने भवनी उसी बनाकर मैं इन्द्रलोकमें से पाऊँ ।

राजा—जाइए, पर फिर दर्शन भवस्य दीजिएगा ।

[ तब अन्तराएँ गन्धर्वके साथ धामाश्रममें उड़नेवा नाट्य करती है । ]

उर्वशी—[ उड़नेमें बाधा पड़नेका नाट्य करती हुई । ] धरे खे ! इस सजाकी दास्तामें मेरी इन्हरी रंजयन्तीकी मान्सा हो फँस गई ! [ घूमकर राजाको देखती है । ] सखी चित्र लेखा ! इसे सुझायो तो भाकर ।

चित्रलेखा—[ देखकर हँसते हुए ] हाँ, यह तो बड़ी बुरी फँस गई है । यह क्या सुझाए पूरती है ?

उर्वशी—अच्छा ठिठोती रहने दो, पहले सुझायो तो इसे ।

विचलेष्वा—आं दुम्नोष्वा विद्य मे वडिहृदि । तदा वि घोषाकस्तं वाव । ( आम् दुर्मोष्येव मे प्रतिभाति । तथापि मोचयिष्ये तावत् । )

उर्वशी—[ दिमतं कृत्वा ] विप्रतद्दि सुमरेहि वधु एवं धत्तस्यो वधरायम् । ( भ्रियति ! स्मरस्य क्षल्लेतादासमनो वचनम् । )

राजा—[ स्वगतम् ]

प्रियमाचरितं लते त्वया मे गमनेऽस्याः क्षणविघ्नमाचरन्त्या ।

यदियं पुनरप्यपाङ्गनेत्रा परिधृत्तार्धमुखी मया हि दृष्टा ॥१८॥

[ विप्रलेता मोक्षयति । उर्वशी राजानमात्मोक्तमती रति स्वास उद्योवनमुत्पतन्त पश्यति । ]

सूतः—आयुषमन् !

अदः सुरेन्द्रस्य कृतापराधानप्रक्षिप्य दैत्याँल्लवणाम्बुराशौ ।

वायव्यमस्त्रं शरधिं पुनस्ते महोरगः श्वभ्रमिव प्रविष्टम् ॥१९॥

राजा—तेन ह्युक्तेष्वप्यप्यम् । मावदारोहामि । [ सृतस्तथा करोति । राजा नाट्येन रथमारोहति । ]

उर्वशी—[ सप्तद्वं राजानमवलोकयन्ती । ] अवि खाम पुखो वि उग्रमारिखं एवं वैरिखस्तं ( अपि ताम पुनरप्युपकारिण्येन प्रेक्षिष्ये । )

[ इति सषण्णवां सह सखीभिविज्यान्ता । ]

विचलेष्वा—मरे वह छूटती तो नहीं दिलाई देती, फिर भी देखती हैं सुहाकर ।

उर्वशी—[ हुईं देती हुईं ] प्यारी सखी ! देख, प्रपने मे खन्व स्मरख रजना, भूलना मत ।

राजा—[ भम ही भम ] हे वधवा । तुमने इसे रोककर मुझपर बड़ी ही कृपा की है कि छपरको आधा मुँह फेरकर देखती हुई इस बड़े बड़े नेत्रवालीको मैंने इसी सहाने झाल भर देख तो लिया ॥१८॥

[ विचलेष्वा माका छुवा देती है । उर्वशी राजाको देखकर लम्बी साँसे लेकर ऊपर उठती हुई सखियोंको देखती है । ]

सूत—आयुष्मान् ! वधु राससीकी खरे समुद्रमे भोककर थापका वायव्य शस्त्र आपके दूखीरमे छसी प्रकार भाकर पँठ मया जैसे कोई साँप अपने बिलमे भाकर पँठ जाय ॥१९॥

राजा—रथको घोडा पास तो बड़ा साधो बिलसे मैं चढ़ सकूँ ।

[ सारथी रथको पास ले आता है और राजा रथपर चढ़नेका नाटक करता है । ]

उर्वशी—[ बड़ी चाहके साथ राजाको देखती हुईं ] मया मैं अपने ऊपर उपकार करनेवाले इन राजपिको फिर कभी देख पाऊँगी ?

[ भयवर्ष और सखियोंके साथ उर्वशी घनी जाती है । ]

राजा—[ उर्वशीवर्षोन्मुक्तः । ] ग्रहो दुर्लभामिस्त्रायो मयनः ।

एषा मनो मे प्रसमं शरीरात्पितुः पदं मध्यममुत्पतन्ती ।

सुराङ्गना कर्षति खण्डिताप्रात्क्षेत्रं मृणालादिव राजहंसी ॥२०॥

[ इति निष्क्रान्ती । ]

॥ इति प्रथमोऽङ्कः ॥

राजा—[ जबर उर्वशी गई जबरको देखयो हुए ] ओह ! कामदेव भी उसीकी धोर सींचे के बाधा है जिसका मिलना नष्ट कठिन होता है—यह मन्दार भासाधमे उड़कर जाती हुई मेरी मगको शरीरसे उसी प्रकार बलपूर्वक खींचे किए जा रही हैं, जैसे कोई राज-हंसी दूटे हुए बमलपी दठलके उड़ना तंतु खींचे लिए चली जा रही हो ॥२०॥

[ चले जाते हैं । ]

॥ पहला अंक समाप्त ॥

## द्वितीयोऽङ्कः

[उत्त प्रविशति विदूषक ।]

विदूषक—हो हो भो एिमन्तलिमो परमण्णेल विम रामरहस्येण कुट्टमाली ए सङ्ग-  
एणिम अयाइण्णे अइण्णत्थेण भत्तलो जीह धारित्तुम् । ता जाय हो रामा मन्मात्तण्णवो  
इवो भाम्भइद धाण इयस्सि विरत्तण्णसथावे देवच्चन्दमण्णसाधे भावहिम चिट्ठित्तए ।  
[परिक्रम्योपविश्य वाणिज्या मुञ्ज पिपाय स्थित ।] ही ही भो निमन्प्रणिक परमाण्णेनव  
एगरहस्येण स्फुटन्व हाकोमि, भमाकोण्णोअनीतनेणात्मनो बिह्ता धारयित्तम् । तच्चायत्त राजा  
धर्मात्तमत्त इव मादाति तावदेतस्मिन्विरत्तजनसपाते देवच्च दण्डसाद, भावह्य स्यास्ये ।)

[उत्त प्रविशति चेटी]

चेटी—मात्तुसन्धि देवीए कात्तिराभन्नुहिदाए जघा—हन्ने एणत्तिए जरो पट्टि भम-  
धरो सुग्जत्त उअथाए क्कुम पट्टिण्णत्तो महाराओ तरो पट्टि सुण्णहिमओ विम  
सवत्तीमादि । ता तुम वि धाम अन्नमालवमाओ जाणाहिसे उह्णत्तकालए ति । ता कह  
भो बन्हुबन्धु अदित्तथावण्णो । अह्वा तण्णत्तग विम अक्खत्ताअत्तित्त ए तस्सि रामर-  
हत्त चिर चिट्ठि ति तवकेमि । ता जा ए अण्णत्तामि । [परिक्रम्यावतीव्य च ।] अम्मो  
भात्तेक्खवाण्णरो विम किंणि मत्तअत्तो सिह्दो अन्नमालववो चिट्ठि । ता जाय ए उअत्त-

## द्वितीय अङ्क

[ विदूषक प्रवेश ]

विदूषक—हैं हैं हैं हैं ! श्रीता बीभयेवागे पेह आह्णएण पेठ जैते फटा पठता है, कैते  
ही राधाके प्रेमकी बात कहनेकी भेरा भी थी ऐसा फटा पठ रहा है कि मैं भवती जीसकी  
इतनी सीगोंके बीभये बीसनेसे रोव नहीं पा रहा हूँ । तो अबतक मेरे भान्नीय मित्र महा-  
राज, राजसन्नामे सीटें सबतक मैं इस देवचन्द्रक नामके भगवमें ही चक्कर बँटूँ जहाँ लोगोंकी  
पहुँच भी बहुत कम होती है । (हाथसे मुञ्ज बन्द कर बैठता है ।)

[इतनेमे चेटी भाती है ।]

चेटी—रासी नरेन्द्रकी ब-यावे मुझे याज्ञा दी है कि—हे निपुणिका ! भगवान् सूर्यको  
उपासना करने जबसे महाराज सीटे हैं तभीसे वे कुछ धनमनेसे दिशाई देते हैं । इसलिये  
तू जाकर उनके प्यारे मित्र मात्तुवक्के उनकी उदासीका कारण पूछ या । धन मैं उत  
भूतोंको कैसे पौडूँ ? पर मैं समझती हूँ कि जैसे घासपर खरों हुई घोसकी बूँद बहुत देर  
एक नहीं ठहर पाती वैसे ही उसने पेटमे राजाकी गुप्त बातें बहुत देरतक नहीं पच सकेंगी ।



प्यामि । [ उपसृत्य । ] यत्र चन्द्यामि । ( प्राज्ञप्तास्मि देव्या काशिराजदुहित्रा यथा—हृज्ये निपुणिके यत् प्रभृति भगवत् सुर्वस्योपस्थान कृत्वा प्रतिनिवृत्तो महाराजस्तत् प्रभृति सून्य हृदय इव सद्यने । तत्त्वमपि तावदायमाख्यवर्जब्रह्मणीह्यस्योत्कण्ठाकारणमिति । तत्कथं स प्रत्यगन्पुरतिष्पातस्य । अथवा तुष्टापत्तन्नमिवावस्थामसन्नित्तं न तस्मिन्प्राजदहस्य निर तिष्ठतीति तन्न्यामि । तद्वावदेनमन्यप्यामि । प्रहो यासस्यवानर इव किमपि मन्वयमिभृतं प्रायमाणवक-  
स्तिष्ठति । तद्यावदेनमुपसर्षामि । प्रायं चन्दे । )

विदूषक—सखि भोवोए । [घातपतम्] एव दुष्टुवेदिय वैक्लिन्न त रामरहस्त हिमम भिन्विम लिङ्गपरि विष [ किञ्चिन्मुक्त सवृष्य । प्रकाशम् । ] भोवि लिजसिण्ण रागोदवावार उजिभ्रम ब्रह्म मखियरासि । [स्वस्ति भवत्वं । एता दुष्टुवेदिकी प्रेक्ष्य तद्राजदहस्यं हृदय भित्वा निष्क्रामतीव । भवति निपुणिके सगौतम्यापारपुत्रिमरथा कुत्र प्रस्थितासि । ]

पेटी—देवोए अघरौए अज्ज एव्य वैक्लिणुम् । (देव्या अचनेनार्यमेव प्रेषितुम् ।)

विदूषक—किं तत्तभोवो मालुवेदि । [किं तन्नभवत्याज्ञापयति ।]

पेटी—देवी भण्णदि जया—अज्जसत्त मम उमरि अवविण्णम् । ए म अज्जदवेमए हुरिजद भयलोभदि सि । (देवो भण्णदि यथा—प्रायंसव भयोपरि-प्रसन्नियम् । न नामनुचित-  
वेदनां दुचितामवलोकयतीति ।)

विदूषक—लिङ्गसिण्ण किं वा विप्रवपस्तेए तत्तभोवोए अदिज्ज किञ्चिं समाचरिदम् । (निपुणिके किं वा प्रियवपस्येन उन्नमपस्या प्रतिवृत्त किमपि स्याचरितम् ।)

पेटी—अ लिमित्त उए मट्टा उज्जुम्भिवो ताए इरिवभाए एामेए मट्टिया देवी आलविवा । (यन्निविदा पुनर्प्रां एवविण्ण उस्मा सिप्या नाम्ना भर्ता देवी आलविवा ।)

इतीति चत्तु उरुही खोज देवू । [भूमकर घोर देव कर] घरे, प्रायं मालवक तो यहाँ बिनाम बने हुए बन्दरने समान कुछ खोजत हुए चुपचाप से बैठे हुए हैं । तो चत्तु इनके पास । [पाप जावर] प्रायं । प्रणाम करती हैं ।

विदूषक—बन्दाए ही माववा । [मन ही मन] इस दुष्ट दासीको देखकर तो राजाके प्रेम्ता मुक्त बातें हृदय फोटकर निकलना चाहती हैं । [प्रवट] बहो निपुणिकाजी । अपना मान-ब्रह्मा छोड़कर बिघर चली हो ?

पेटी—देवीने आज्ञासे मापके ही धर्मके लिये तो या रही थी ।

विदूषक—बहो बहो, महाराजीजीने क्या बहलाया है ?

पेटी—देवीने बहलाया है कि आज्ञासे आप हमपर धृष्टा नहीं कर रहे हैं और महाराज इतनी बड़ी बिन्ताम जयती हुईने दाने भी नहीं पाते ।

विदूषक—निपुणिका । क्या इपर महाराजने कोई देवीने मनके विरुद्ध काम कर  
ाता है ?

पेटी—हाँ । आज्ञासे महाराज लिये प्यार करते हैं, उषोषा नाम सेकर उन्होंने देवीको  
द्वारा दिया ।

विदूषक.—[ स्वगतम् ] कहां सब एव्व तत्तमोदा वमससेण रहससभेसो किदो । किं वारिए अहं वण्हणो जौहं रविखतुं समत्थोमिह । [ प्रकाशम् । ] किं तत्तमोदा उम्बत्तोणामपे-  
एण भ्रामन्तिव । ( कथं स्वगतमेव तत्रभवता मयस्वेन रहस्यभेदः कृतः । किमिदानीमहं ब्राह्मणो  
जिह्वा रक्षितुं समर्थास्मि । किं तत्र भवता उर्वशीनामपेयेनामन्त्रिता । )

बेटी—अज्ज का सा उम्बसो ? ( आर्य का सा उर्वशी ? )

विदूषक.—अस्मि उच्यन्ति स्म अन्धरा । ताए इंतस्येण उम्मादिवो एव केवलं तं भ्रामासेवि  
मं विं वण्हणं अस्तिववविपुहं दिदं पोडेवि । ( अस्मिगुर्वशीरुपसराः । तस्या दर्शनेनोम्मादितो न  
केवलं ताभावात्तवति मायपि ब्राह्मणमशितव्यमिमुलं एव पीडयति । )

बेटी—[ स्वगतम् । ] उम्मादिदो मए भेसो भट्टिसो रहससभेसस । सा गवुस वीपीए  
एवं एिवेदेमि । ( उत्पादितो मया भेदो भूत्तुं रहस्यदुर्गत्य । तत्त्वत्वा देव्यै एतन्निवेदयामि । )  
[ इति प्रस्थिता । ]

विदूषक.—एिउरिए ! विम्ला वेहि मम अमस्येण कासिरामदुहितरम्—परिस्सन्तमिह इमाए  
मिमसिगिहमाए । वसत्तो एिमत्तावेदुम् । अहं भोवीए मुत्तकमलं पेविजस्सवि तवो एिमसिस्सवि  
ति । ( निपुणिके ) विज्जापय मम वचनेन कासिराजदुहितरम्—परिव्यान्तोअम्पेत्तस्या वृणत्तुधिउ-  
काया मयस्य निधत्तमिदुम् । यदि भवत्ता मुत्तकमस प्रेक्षिष्यते ततो निवतिष्यत इति । )

बेटी—अं अज्जो आणवेवि । ( यदायं भ्रामापयति ) [ इति निष्क्रान्ता । ]

[ नेपथ्ये चैतानिकः । ]

जयतु जयतु देवः ।

विदूषक—[ मनने ] अरे ! तो क्या स्वयं महाराजने ही सब अंदा फोड़ दिया । तब  
मैं ब्राह्मण होकर अपनी जीभ कंठे बांधकर रख सकता हूँ । [ प्रकट ] क्या महाराजने उर्वशी  
कहकर पुकारा था ?

निपुणिका—ममो धार्यं ! यह उर्वशी कीन है ?

विदूषक—अरे यह उर्वशी एक अमरता है । उसे देखकर महाराज ऐसी मुग्ध-मुग्ध हो बैठे हैं  
कि उन्होंने मेषस देवीका ही जी नहीं दुला रखा है वरन् मीन-पानी छोड़े हुए इस ब्राह्मणको  
भी सांस दे रक्ते है ।

निपुणिका—[ मनने ] स्वामीके भेदका हुयं तो मैंने फोड़ दिया । तो मैं जाकर देवीकी  
यही सब अंदा देती हूँ । [ चल देती है । ]

विदूषक—सुनो सुनो निपुणिका ! देखो, बेटी मोरछे कासिराजकी पुत्रीके कहना कि मैं तो  
अपने मित्रकी इस मृगच्छाके धवानेकी बात समझते-समझते एक गया । हाँ, यदि मे धायका  
मुत्तकमस देस लें तो उनका मन उर्वशीके अमय फिर जावगा । समझी ?

निपुणिका—जैसी धार्यकी धासा । [ यमी जाती है । ]

[ नेपथ्यमें चैतानिकः ]

महाराजकी जय हो ! जय हो !

आ लोकांतात्प्रतिहतमोडुचिरासां प्रजानां  
 तुल्योद्योगस्तत्र च सवितुश्चाधिकारो मतो नः ।  
 तिष्ठत्येकः क्षणमधिपतिर्ज्योतिषां व्योममध्ये  
 पण्डे काले त्वमपि लभसे देव विश्रान्तिमहः ॥१॥

विदूषक.—[ कर्णं दत्त्वा ] एसो जख पिअबधस्तो धम्मासलसमुत्थिवो इवो एव माम्पञ्चदि ।  
 सा जाव पासपविचसी होमि । [ इति निष्कान्त. । ] ( एष पुन. प्रियवस्त्यो यमसितसमुत्थित  
 इत एवाम्पञ्चदि । तदावर्षावर्षपरिवर्तो भवामि । )

॥ प्रवेशकः ॥

[ ततः प्रविशत्युपकथितो राजा विदूषकम् । ]

राजा—

आ दर्शनात्प्रविष्टा सा मे सुरलोकसुन्दरी हृदयम् ।  
 बायो न मकरफेतोः कृतमार्गमवन्ध्यपातेन ॥२॥

विदूषकः—सोवोडा कलु भावा तसमोरो कासिरामपुहित । ( सवीदा कलु भावा तसमवती  
 कासिरामपुहित । )

राजा—[ विरीडम् ] अपि रसमो जवता रहस्यमितेयः ।

विदूषकः—[ आरगतम् ] अन्धरोग्निं बुद्ध दासीम् सिञ्चसिष्वात् । अणुभा कथं एवम्  
 पुण्यदि वधस्तो । ( हा थिक् हा थिक् अन्धिलोप्रतिम दुष्ट वात्या विपुणिकथा । अन्धया कथमेव  
 पृथगति वयस्यः । )

हय सनमते हैं कि भाप घोर सूर्य कोतो अपना नित्यका काम ठीक एक जंदा ही करते हैं,  
 क्योंकि सूर्य भी संसारका धँसेरा मिटाने हैं और भाप भी अपनी प्रजाका कष्ट दूर करते हैं ।  
 मक्षत्रोंके मकेले राजा सूर्य भी जिस प्रकार अपने कामसे छुट्टी नाकर ही आकाशमें बिज्याम लेते हैं  
 वैसे ही भाप भी अपने राज-बाजते छुट्टी नाकर हीसरे पहर विभाव करते हैं ॥१॥

विदूषक—[ मुण्डते हुए ] लो, न्यामासमसे उठे हुए मेरे प्रिय इधर ही चले या रहे हैं ।  
 तो बहूँ, मैं भी उनकी सेवाके लिये पहुँचूँ ।

॥ प्रवेशक पूर्ण हुआ ॥

[ मनमनेसे राजा घाते हैं, साधने विदूषक को है । ]

राजा—मेरे जिस हृदयमें कामदेवने अपने बाण मारकर उस स्वर्णलोककी सुन्दरीके घानेके  
 लिये द्वार बना दिया था, उसमें बहूँ केवल देखने भरसे ही सपा गई है ॥२॥

विदूषक—[ मन ही मन ] सचपुन बायो-नरेराकी पुत्रीके सो भाव फूट गए ।

राजा—[ देखकर ] बहो, तुमने मेरी बात किसीको बताई तो नहीं ।

विदूषक—[ मन ही मन ] शय हाय ! उस दुष्ट दासी निपुणिकाने सो मुझे यदा सोचा  
 दिया, नहीं तो भिन्न मुझसे इस प्रकार पूछते ही क्यों ?

राजा—किं भर्वास्तूष्णीमास्ते ।

विदूषकः—भो एवम् मए सोहा संजनिदा भेलु भवतो वि सुत्वि पवित्रमणम् । (मोः एवं मया जिह्वा तं पन्थिता येन भवतोऽपि नास्ति प्रतिपन्नम् ।)

राजा—पुत्रम् । मय केनेदानीमात्मानं विनोदयामि ।

विदूषकः—भो महारणं गच्छम्ह । (भो महानसं गच्छावः ।)

राजा—किं तत्र ।

विदूषकः—तहि पंचविहस्त प्रभवहारस्त उवलदसंभारस्त खोमलां देवजमात्सेहि तपकं लक्षणां विलोदेदुम् । ( तत्र पञ्चविधस्वाभ्यवहारस्योपनयनमारत्य यो नरा श्रेयनाद्याभ्या क्षण-गुल्फणां विनोदयिदुम् । )

राजा—[स्मितम्] तत्रेन्मितसंनिधानाद्भूवान् रंयते । नया सत्तु दुर्लभप्रार्थनाः कथमात्मा विनोदयितव्यः ।

विदूषकः—एवं भवं किं तत्तभोदीए उव्यसोए दंसलुपहं गयो । (ननु भवानपि तत्रभवत्या उर्वरया वसंतपथं गतः ।)

राजा—तत्रः किम् ।

विदूषकः—ए कजु वे दुस्तह सि लभकेमि । (म सत्तु ते दुर्लभेति तर्कयामि ।)

राजा—दक्षिणातीर्षि तस्यां सत्पस्यात्कीक एव ।

विदूषकः—एवं भवतस्यैए वे वदिद्वं कोदूहलम् । किं तत्तभोदी उव्यसो एरुदीमा रुयेए

राजा—नयो रुप कयो हो गए ?

विदूषक—देसिए, भेने प्रपनी जीसको ऐया भाँच सिवा है कि चापकी झालका भी एकाएक उतर गयी निकल पाया ।

राजा—ठीक है । पर यह तो बताओ कि प्रपना मन में कैसे बहलालें ?

विदूषक—यलिए रसोई ने नया काम ।

राजा—वहाँ क्या घर है ?

विदूषक—वहाँ पाँच उजूके पकवानोको धामयो देवने भरसे हो ह्य लोरीकी उदासी जाती रहेगी ।

राजा—[हँसकर] जी हाँ, वहाँ चापको तो अपने मन बहलालेकी सारी सामयो मिल जायगी, पर बड़ी फठिनाईसे ह्याम चमनेवाची वस्तुके निचे उवपनेवाने मुझको वहाँ मन-बहलावके सिधे क्या हाथ लगेगा ?

विदूषक—पर चापको भी तो उर्वशीजीने देखा होगा न ?

राजा—उससे क्या ?

विदूषक—तब तो मैं समझता हूँ कि उसका गिलना कठिन भरी होगा ।

राजा—भरे ! यह इतनी अधिक सुन्दरी है कि उसे बड़ी सुन्दरी कहना भी एक प्रगोषीसो सी बात लगती है ।

विदूषक—चापको इन बातोंसे तो मेरा कुतूहल धीरे भी अधिक बढ़ रहा है । क्या उर्वशीजी

महं विभ्र विद्ववाए । (एव मन्त्रगता मम वधित कौतूहलम् । किं तत्रभवत्युर्वशीयद्वितीया रूपेण महमिदं वित्तपतया ।)

राजा—भ्रातृपक ! प्रत्यक्मन्त्रपत्रवर्णनां साम्येहि । तेन हि समासत श्रूयताम् ।

विद्वपक—भो ! अर्वाहोर्मि । (भो ! अर्वाहितोर्मि ।)

राजा—

आभ्रसस्याभरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधनविशेषः ।

उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः ॥१३॥

विद्वपक—अर्यो दास्य सुए विम्बरसाहित्यासिखा आदश्रव्यव गहीदम् । ता दास्य तुम कर्हि परिचयो । (यत्तत्तावदस्या दिव्यरत्नामिवापिद्यां चातकजलं गृह्येतम् । तत्तावत्स्य तुम प्रसिपत् ।)

राजा—विद्विपकृते भाग्यदुत्सुकस्य शरलमस्ति । तत्रुवागम्रमदवनमार्गमादेशयतु ।

विद्वपक—[आत्मगतम्] का गयो । [प्रकाशम्] इवो इवो भव । (का पतिः । इत इतो मयान् ।)

(इति परिष्कमत ।)

विद्वपक—एता वमवबलपरितरौ । आशमिन्न पञ्चुवगदो भव आश्रुतुर्मो बुकिष्णामाक्षेण । (एव प्रमदवनपरितर । सामम्य प्रत्युपगतो भयवानागन्तुको दक्षिणमालेन ।)

राजा—[विलोक्य] उपमानं विवेकलमस्य पायोः । समं हि ।

निषिञ्चन्माधवीं लक्ष्मीं लतां कौन्दीं च लासयन् ।

स्नेहदाक्षिण्ययोयोगात्कामीव प्रतिभाति मे ॥१४॥

सुवर्तमं सतनी ही भवो चहो है अितना मी कुरूपतामे हूँ ?

राजा—विभ्र गाण्यक ! बस यह समक सो कि उसके भव अगक यखन जो मोई कर ही गहो सक्ता, इसलिये सोईमे ही जो बहाता है उसे सुनो ।

विद्वपक—हाँ । मैं सुन रहा हूँ ध्यानसे ।

राजा—उपमा शरीर आश्रुपणोका भी आश्रुपण है, शृङ्गारकी सामर्थ्योका भी शृङ्गार है और उपमानो वस्तुधोकी भी उपमा उपमे सो जा सकती है ॥१३॥

विद्वपक—हूँ । इसीलिये आप उठ स्वर्गिय जबके लिये ध्यासे पाठक जन बँडे हूँ ? अन्ध्र भाव अभी या कियर रहे हूँ ?

राजा—प्रेमी लोग एकाम्ब छोडकर और जा ही कहीं सकते हैं ? चलो, मुझे प्रमदवनको घोर ले चलो ।

विद्वपक—[मन ही मन] जहाँ कहिए मे चर्तू । [प्रकट] इपरसे आइए महाराज इपरसे । [दोनों घुमते हैं ।]

विद्वपक—सीत्रिए पहुँच गए हम प्रमदवनके पास । आपके पाते ही उद्यानको घोरसे सहता जाता हुआ दक्षिणी पवन बढ़ो नभ्रतासे धावनी आचलगत कर रहा है ।

राजा—[देगकर] इस वानुश दक्षिण बहुमाना डोव ही है यधोकि माधवी-लताको सींचता हुआ घोर सुन्दरताको नचाता हुआ, यह पवन मुझे ऐसा जान पड़ता है मानो सबसे प्रेम करनेवाला घोर सररो एक साथ प्रमन्न रसनेवाला यह नोई वामो हो ॥१४॥

विदूषकः—सरिसो एष्य तौ अहिंसितेषो । [ इति परिक्रामन् । ] एवं पगववणात् । पवि-  
सतु भवतु । ( सहस्र एयास्याभिनवेशः । एतत्प्रमदवनम् । प्रविगतु भवान् । )

राजा—वयस्य प्रविताप्रताः ।

[ उभो प्रवेशं नाटयतः ]

राजा—[ शासं रूपविदा । ] वयस्य ! साधु मनसा सर्वापत धापत्प्रतीकारः किल मनोघा-  
नप्रवेशः सप्तान्यर्थयोपपन्नम् ।

विविचोर्द्यदिदं नूनमुद्यानं तापशान्तये ।

स्रोतसेवोद्यमानस्य प्रतीपतरुं महत् ॥५॥

विदूषकः—कहं किम् । ( कथयित्वा । )

राजा—

इदमसुलभयस्तुप्रार्थनादुर्निवारं प्रथममपि मनो मे पञ्चवायुः क्षिणोति ।

किमुत मलयवातोन्मूलिता याखडुपत्रैः उपवनसहकारैर्दर्शितैश्वलकुरेपु ॥६॥

विदूषकः—असं परिवेदितेन । अहरेण वे इदुसंवाखलेण अखंगो एष्य वे सहायो भवि-  
स्तसि । ( असं परिवेदितेन । अचिरेण क्लेशसमाप्तनेवानक एव वे सहायो भविष्यति । )

राजा—प्रतिगृहीतं बहुमण्यवचनम् ।

[ इति परिक्रामतः ]

विदूषकः—पेबलतु भवं वसंतावदार सुमर्षं अहिरामसत्वं पमदवसस्त । ( प्रेसतां मयावसस्ता-  
वदार सूचकमभिरामत्वं प्रमदवनस्य । )

विदूषकः—यह भी आपकी ही समान प्रेम करता है । [ चुमता हुआ ] लीजिए, यह भी  
मया प्रमदवन ! वलिये भीतर चले वलिये ।

राजा—वसो वयस्य ! धाने प्रागे तुम्ही वसो [ दोनो प्रवेश करकेका नाट्य करते हैं । ]

राजा—[ उरमेका नाट्य करते हुए ] वयस्य ! मैं तो यहाँ उद्यानमे यह पलाई सोचकर  
आया था कि, यहाँ भी हमका ही जायगा, पर उसका तो यहाँ उखटा फल हो रहा है । अपने  
मनकी पीडा मिटानेके लिये इस उद्यानमे मेरा आना बंसा हो हुआ, जैसे वहावके साप तंरनेवालेकी  
संवावक वहावकी सोए उंरना बड़ आव ॥५॥

विदूषक—यह कैसे ?

राजा—बड़ी कठिनाई से हाथ धानेवासी वस्तुके लिये जो मेरा मन मचल पडा है, इसे  
एक तो कामदेवने पहले ही चलनी बना दिया था, उसपर यहाँ देख रहे हैं कि उद्यानके उन  
धामके पेड़ोमे कोपलें भी फूट आई हैं जिनके पीले पत्ते मलय-ववनमे भाङ्गकर गिरा दिए हैं ।

[ फिर बताओ हमारे मनको शान्ति कहाँसे मिलेगी ? ॥६॥ ]

विदूषक—चिन्ता न कीजिए । आपको प्रियतासे धीम्र हो आपको भिलाकर यही कामदेव  
आपका सहायक बन जायगा ।

राजा—आहाउका भागीवदि खिरमाये । [ दोनो धूमते हैं ]

विदूषक—इस प्रमदवनकी धोमाकी तो देखिए जो बताए दे रही है कि वसन्त था गया ।

विदूषकः—[विहस्य] मो महल्लाका मुद्रस्त माहदस्त वेज्जो सचिवो उम्बतीपञ्जुच्छु-  
द्रस्त म भवदो ग्रहं कुवेधि एत्थ चम्मत्तमा । (मोः महल्लाका मुद्रस्त महेन्द्रस्त मद्यः सचिवः  
उम्बतीपञ्जुच्छुक्कस्य प भवतोर्द्धं द्वाक्खम्मोन्नत्ती ।)

राजा—मा भवम् । अतस्तेहः सत्तु कार्पेदर्यो । तत्तुपायाञ्जिन्मपाम् ।

विदूषकः—एतो चित्तेमि । मा उल्ल परिदेविदेण मन समार्थि भिधि । (एव चिन्तयामि ।

मा पुनः परिदेवित्तेन ममसमाधि-भन्धि ।) [इति चिन्तां नाटयति ।]

राजा—[निमित्तं सूचयित्वा । स्वगतम् ।]

न सुलभा सकलेन्दुमुखी च सा किमपि चेदमनङ्गविचेष्टितम् ।

अभिमुखीष्विवक्त्राङ्घ्रितसिद्धिषु ग्रजति निर्वृतिमेकपदे मनः ॥६॥

[इति आत्रासत्सिद्धिः]

[ततः प्रविशः पाकायपानेनोपवी चिन्तयेत्तत्तु प ।]

चित्रसेना—हना कर्हि वासिष्ठा अण्डिदुकालणं गञ्जीअदि । (हना कवेरानीमनिद्विट्ट-  
कारणं गम्भरो ।)

उर्वशी—[मदनवेदनामभिनीय सलज्जम्] सद्धि । तदा हेमङ्गदक्षिहरे सदाविज्जेषेण जल-  
पिघरभाभासगमणं मं ओहसिध कि वासिष्ठा पुञ्जति कर्हि गञ्जीअदि ति । (सति । उदा  
हेमङ्गदक्षिहरे सत्ताविट्ठेन सत्ताविज्जिताकाशगमना मामुपदस्य किमिवाती वृत्तसि ॥ गम्भरो इति ।)

विदूषक—[हंसकर] देखिए, जैसे महल्लाको पानेकी इच्छा करनेवाले इन्द्रकी सहायता  
करके समय चन्द्रमाकी बुद्धि मारी गई थी, वैसे ही प्रेमसे पहले हुए आपका सहामक होकर  
मैं भी अपनी उद बुद्धि खो बैठा हूँ ।

राजा—ऐसा न कहो । जो अधिक स्नेह करता है वही तो ठीक उपाय सुझा सकता है ।  
इसलिये कोई उपाय सोच ही जातो ।

विदूषक—अच्छा मैं सोचने लो बैठता हूँ पर आप बीचसे ही रोना-कलपना मचाकर  
मेरा ध्यान न उखाट दीजिएगा ।

[सोचनेका नाट्य करता है ।]

राजा—[अच्छे शत्रुनकी सूचना देता हुआ मन ही मन] पूर्ण चन्द्रमाके उमान मुख-  
वाली उद सुन्दरीके मिलनेकी कोई आशा तो नहीं है पर न जाने क्यों कामदेव मुझे बड़े  
अच्छे सपुन दिला रहा है । मेरा मन मवानक ऐसा खिल उठा है, मानो मेरा काम बड़  
भलने ही जाता हो ॥६॥

[बड़ी आशा मचाकर बैठता है ।]

[विमानपर पड़ो हुई उर्वशी और चित्रसेना दिखाई देती हैं ।]

चित्रसेना—[गयी सखी ! बिना सोचे-समझे किपर चली जा रही हो ?]

उर्वशी—[काम-पीडाका नाट्य करती हुई सज्जाके साथ] सखी ! जब हेमङ्ग पर्वतकी  
चोटीपर, सताकी आसामे मेरी भाला उलक गई थी और मेरा उठना बोरी देरके लिये  
रुक गया था, उस समय मुझमे ठिठोली करके भी धन तुम पूछ रहे हो कि मैं कहाँ जा  
रही हूँ ?

चित्रलेखा—किं तु शत्रु तस्मै राक्षसिणे पुरुरवस्तु सप्राप्तं पत्न्यदासि । (किं तु शत्रु तस्य राजपतेः पुरुरवस्तुः सप्राप्त-प्रस्थितासि ।)

उर्वशी—अहं इह । अयं मे अथहृत्पिदलज्जो जवसाधो । (अथ किम् । अयं मेऽपहृत्पित्त-लज्जो व्यवसायः ।)

चित्रलेखा—को जलु सहीए सहि पुडमं येसिबो । (कः पुनः तस्या नाम पुरतः प्रेषितः ।)

उर्वशी—एहं हिअयं । (ननु हृत्पयम् ।)

चित्रलेखा—तथा वि सभं एव्य साहु संवभारिअहु वाच । (तथापि स्वयमेव साहु सम्प्र-धार्यतां साधय ।)

उर्वशी—सहि अमरखो वसु वं शिभोएवि । किं एव्य संवभारोषवि । (सखि भवनः अलु नियोजयति । किमप्य सम्प्रधार्यते ।)

चित्रलेखा—अशोकरं शक्ति मे वस्यस्यम् । (अतः परं नास्ति मे वचनम् ।)

उर्वशी—तेल हि आविप्रीअहु अगो जेए सहि अचलन्तीए अंतराधो ए भवे । (तेन ह्यादिदयता मार्गो मेव तत्र गच्छन्त्योरन्तरायो न भवेत् ।)

चित्रलेखा—सहि ! विस्मयता होहि । एहं भवववा देवगुदला अवरारुवं एवम सिहावंधण-विश्वं अवदिसंतेए तिवसपद्विबसस्त अमंघालिअजा कवम्ह । (सखि विवन्वा भव । ननु भगवता देवगुदला अवरारुजिता नाम शिखाअपनविद्यामुपदिशता त्रिवक्षत्रतिपलस्यालक्ष्मीये कृतै स्वः ।)

उर्वशी—[सलज्जम्] अहो विगुनरिअं मे हिअयं । (अहो ! विस्मृत मे हृत्पयम् ।)

[सखे भ्रमणं रूपयत ।]

चित्रलेखा—तो क्या तुम उस राजावि पुरुरवाके पास जा रही हो ?

उर्वशी—भोर क्या ? आज मैंने सब जान छोड़कर यही चीजे डान किया है ।

चित्रलेखा—तो बहो ! तुम्हारे जानेका सन्देश कौन ले गया है ?

उर्वशी—नमो ? मेरा हृदय ।

चित्रलेखा—फिर भी इसका जला-गुरा अभी प्रकार सोच-विचार तो ।

उर्वशी—सखी ! मुझे तो कामदेवने ही इस कार्यमें जोक दिया है, फिर इसमें सोच-विचार ही कौसा ?

चित्रलेखा—तुमने तो ऐसी बात कहदी कि मेरा मूँह हो बन्द हो गया ।

उर्वशी—तो अब मुझे कोई ऐसा उपाय बताओ कि मैं वहाँ बेरोकटोक पहुँच जाऊँ ।

चित्रलेखा—जिन्ता न करो सखी ! देवगुरु गृहस्पतिने अवरारुजिता नामकी, चोटी सीपनेकी दिया शिक्षाते समय हमे ऐसी पाठि दे दी है कि देवोके शत्रु भी हम लोगोंका बाल बाला नहीं कर सकते ।

उर्वशी—[सज्जती हुई] अरी ! यह बात तो मेरे ध्यान से ही उतर गई थी । [दोनों प्रसन्न हैं ।]



चित्रलेखा—सहि पेवस पेवस । एवं भववदोए भाईरहीए जमुखासंभमवितेतपावरोमु सलिलेसु भसाएभं मोलोअंतरस विम गइहाएसस सिहाभरएभुवं सस राएसिलो भवरां उवडिबन्ह । (सलि प्रेशस्व प्रेशस्व । एतद्भगवत्याः भागीरथ्याः यमुनासङ्गमविशेषपावनेषु सलिलेभ्यारामाभव-  
लोकयत इव प्रतिगठानस्य सिद्धामररुभूतं तस्य राजर्षेभ्यनमुपस्थिते स्वः ।)

उर्वशी—[सस्पृहमनोभय ] खं पत्तय्यं ठाखंतरगदो सम्परे ति । [विमृश्य] सहि कहि छ  
बलु सो प्रावणसाधुकपी भवे । (ननु वक्तव्यं स्थानान्तरवत्तः स्वयं इति । सखिववनु खलु स प्राणनामु-  
कम्पी भवेत् ।)

चित्रलेखा—हसा एकांसि खंडलपरलेकुवेसे विम पदमवस्य मोवदिम जाणिएसानी । (हसा  
एतस्मिन्मन्दनवनेकदेश इव प्रमदपने भयतीयें ज्ञान्यावः ।)

[उभे प्रवतरतः ।]

चित्रलेखा—[राजानं दृष्ट्वा सहर्षम्] सहि ! एषो बलु यदनोविदो विम खंदो कोमुदि विम  
दुर्भं पडिच्छदि । (सहि ! एष खलु प्रथमोवित इव चन्द्रः कीमुदीविद स्वयं प्रतीच्छति ।)

उर्वशी—[विलोपय] हसा दांए पदमरंसलावो सवितेसं पिमवंसएो महाराजो पविहादि ।  
(हसा ! इदानीं प्रथमदर्शनसविशेष प्रियदर्शनो महाराजः प्रतिभाति ।)

चित्रलेखा—पुञ्जविः सा एहि उषसम्पम्ह । (पुञ्जते । तदेहि उपगर्षावः)

उर्वशी—एष बाव उषसम्पिरसं । तिरस्कारिरोपडिच्छन्त्या परागवा से भविम सुखिरसां बाव  
पलवसिए बधस्सेए सह विमले कि मंतरांती विदुदि ति । (न तावदुपसर्पिष्ये । तिरस्कारिणो-  
प्रतिच्छान्ना परवर्षठास्य भूयवा मोभ्यामि तावत् पाश्वरतिवा यमस्येन सह विजने कि मान्यमाए-  
स्तिष्ठतीति ।)

चित्रलेखा—भरी, देख देख सखी ! हम लोग राजर्षिके उस भवन पर पहुँच गई हैं जिसकी  
घोड़का बूतरा कोई भवन प्रतिष्ठानपुरीमे नहीं है और जो ऐसा दिखाई पड़ रहा है मानो यमुनाजी  
के संगमके कारण और भी अधिक शक्ति बने हुए रंगान्जिके जलमे अपनी मूर्त देस रहा हो ।

उर्वशी—[चावसे देखती हुई] यह क्यों नहीं कहती कि स्वयं ही यहाँ उठकर जला धाया  
है । [विचारकर] भयभीत सखी ! सुखीपीपर क्या करनेवासे ये राजा इस समय कहाँ होंगे भला ?

चित्रलेखा—धनो सखी ! मन्दनवनके समान सुहावने इस प्रमदवनमे उत्तरकर जगकी शोक  
करें [दोनो उत्तरती हैं ।]

चित्रलेखा—[राजाको देखकर प्रसन्नतासे] सखी ! जैसे नया-नया विकला हुआ चन्द्रमा  
पारिनीके प्रानेको बाट देखा है, वैसे ही ये भी यहाँ बैठे हुए तेरे प्रानेको बाट देस रहे हैं ।

उर्वशी—[देखकर] सखी ! आज तो महाराज उस दिग्घने भी अधिक सुन्दर भँच रहे हैं ।

चित्रलेखा—शोक कइती हो ! तो प्रायो चले उनके पास ।

उर्वशी—नहीं नहीं, मैं उनके पास नहीं जाऊँगी । मैं तो मायाकी घोटलीमे छिपी हुई इनके  
पास खड़ी होकर सुनती हूँ कि ये अपने पास बैठे हुए मिलते मिलते क्या बातें कर रहे हैं ।

चित्रलेखा—ज दे रोवहि । (यत्ते रोचते ।)

[ उभे यथोक्तमनुतिष्ठत. ]

विदूषकः—भो चित्तिदो मए कुलसहृष्यएदखीसमाप्रमोवाओ । (यो चित्तिदो मया दुर्वंभ प्रण-  
पिनीसमागमोपाय. ।)

[ राजा तूप्युगोवास्ते । ]

सर्वशो—[सिप्यंम्] का खू बलु धर्या इतिथया जा हृमिखा परिषयमारुा अलाएम किञ्चिमेद्वा  
(जा नु यामु धर्या खो या मनेन प्राप्यंमानात्मान कुकार्ययति ।)

चित्रलेखा—कि उरा मालुरसभं विडंबोअदि । (कि पुनर्यानुप्य विटम्भते ।)

उर्वशी—राहि भोमामि सहस्रापनावावो विण्णएदुं । (सखि विभेभि सहसा प्रमायाद्विहातुम् ।)

विदूषकः—भो खू अलाभि चित्तिदो मए उवाओ सि । (भो. ननु यस्याभि चित्तिदो मया  
उपाय इति ।)

राजा—नैन हि वप्यताम् ।

विदूषकः—सिपिणमसयाप्रमभारिखि लिहूँ खेवु भवं । अहवा तलभोदीए उव्वसीए पत्रिकिधि  
चित्तफलए प्रासिहिम भोभोप्रंती चिट्टु । (स्वप्नसपायकारिणी निद्रा येवहा मवाद् । अथवा  
तनमप्रत्या उर्वरया प्रतिवृत्ति चित्रफलक प्रासिठ्यायसोकरयस्तिष्ठतु ।)

उर्वशी—[सहृष्यंनारमयतम्] होएलस हिसम सनसस सनसस । (हीनउरव हृदय ! समान्भ-  
सिहि समान्भसिहि ।)

चित्रलेखा—भो तुम्हें भण्वा सये !

[ बोलो बीसा ही करती हैं । ]

विदूषक—सुनिए ! अपनी त्रिध व्यापिका मिलन प्राप कठिन सपने बँडे हैं, उससे मिलनेका  
उपाय मैंने सोच निकाला है ।

[ राजा धुप रू खाते हैं । ]

उर्वशी—[शाहसे] ऐसी चीर नौन-सी बडभागी सुन्दरी निकल आई है, जो हमकी बहेली  
हनवर भपना भाग सजाएती है ।

चित्रलेखा—गुम फिर क्या यानुपी तिरयो-वंसी बालें करते सगो हो ?

उर्वशी—उरती ! मैं अपनी देवी पालिते सब बानें एक साथ जान लेनेमे थोडा डरती हूँ ।

विदूषक—धरे सुनिए ! मैं यह रूहा हूँ कि मैंने उपाय सोच निकाला है ।

राजा—सो फिर बताओ न !

विदूषक—या तो प्राप ऐसी गहरी नोदमे धाकर सो रहिए कि सपनेमें उरमे सँट ही जाय  
या फिर पिन्-पन्कर उर्वशीजीका चित्र बलापर उसे एवटन निहाय कोजिए ।

उर्वशी—[हृषंभ मन हो मन] धरे पापी हृदय ! चीरख घर, चीरख घर ।

राजा—उभयमप्यनुपपन्नम् । वयम् ।

हृदयमिषुभिः कामस्यान्तः सशल्यमिदं सदा

कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम् ।

न च सुन्दनामालेख्येऽपि प्रियामसमाप्य त्वं

मम नयनयोरुद्वाप्यत्वं सस्ये न भविष्यति ॥१०॥

चित्रलेखा—युव तुष धबल । ( श्रुत स्वया वचनम् । )

उर्वशी—सहि सुव । ए उल पणत हिमप्रस्त । ( सखि युव । न पुन पर्याप्त हृदयस्य । )

विद्रुपक—एतिसौ एव मे महिबिहमो । ( एतावानेव मे मतिविभव । )

राजा—[ नि स्वस्य ]

निदान्तकठिनां रुर्धं मम न वेद सा मानसी

प्रभावचिदितानुरागभवमन्यते वापि माम् ।

अलक्ष्मफलनीरसं मम विधाय तस्मिञ्जने

समागममनोरथं भवतु पञ्चवाणः कृती ॥११॥

चित्रलेखा—सहि सुव तुष । ( सखि युव स्वया । )

उर्वशी—हठी हठी । म एव प्रवगच्छदि । [ सखीभवतोस्य ] सहि प्रसमर्यान्ति प्रायसो भविम ते भविप्रलस । ता पहावलिमिमेतु भुवनवसेतु सपादिवजतरा होर्दु इच्छामि । ( हा भिक् हा भिक् । मामेवमवगच्छति । सखि । प्रसमर्यान्त्यप्रतो नूःवाल्प प्रतिवचनस्य । तदप्रभावनिमित्तेन भूयंगनेण सपादितोत्तरा भवितुमिच्छामि । )

राजा—शोर्नी ही बाँर् नही हो सकती । शैली ! कामदेव, मेरे हृदयको दिन-रात घपने वालासे बेपत्ता रहता है । इसलिये मुझे ऐसी नीव भला कहीं या पावेगी बि प्यारीसे भेंट हो जाय, और फिर चित्र भी नहीं बन सकता क्योंकि बीचमें धाँसें डपडवा जानेसे वह झपूरा ही रह जायगा ॥१०॥

चित्रलेखा—मद तो सुगने सब सुन लिया न ।

उर्वशी—हाँ सखी, सुन तो बिया, पर अभीतक मेरे जीको पूछ पूछ भरौसा नहीं हो पाया है ।

विद्रुपक—नैरी बुद्धिकी पहुँच तो यहीतक थी ।

राजा—[ सखी सखि नेवर ] मैं समझता हूँ कि या तो यह मेरे मनकी इस बेकलीको जानती ही न होगी या फिर उसे घपने झपूरा होनेका ऐसा भयत है कि वह जान नूक-कर मेरे प्रेमको ठुकरा रही है । जान पड़ता है कि मेरे मनमे उस सुन्दरीसे मिलनेकी ओ जाह है, उसे बूर-बूर बरके और मेरे जीवनको बेकाम बना लेनेपर ही कामदेवका भी भरोसा ॥११॥

चित्रलेखा—तुमने सुना सखी ।

उर्वशी—हाय, हाय ! ये मुझे ऐसा भीच समझ रहे हैं । [ उर्वशीको देखकर ] सखी ! इनके भागे पहुँचकर तो मुझसे उत्तर देते बनेया नहीं, इसलिये मैं प्रथमी देवी शक्तिसे एक भोजपत्र उत्पन्न करके उर्वशीपर उत्तर लिख देना चाहती हूँ ।

चित्रलेखा—हसा अद्युषदं मे । ( हसा प्रमुनतं मे । )

[ उर्वशी नाट्येन सप्तभ्रममभिसिद्धान्तरा लिपति । ]

विदूषकः—[ दृष्ट्या सप्तभ्रमम् ] अविहा अविहा । नो किं छ वलु एवं भुषंगलिम्भोर्भं मं खादिदुं गिदिदिदो । ( अविधा अविधा । भो. किन्तु खलु एतद् भुजङ्गनिर्भोकः किं मा खादिन् निभतित । )

राजा—[ विभाव्य विहस्य च । ] अयस्य । नायं भुजङ्गनिर्भोकः नूनंप्रगतोऽयमक्षर-  
विश्यात् ।

विदूषकः—हं अविट्टाप उव्यसोए भवदो परिदेविबं सुलिअ समालापुराअसुमभाह  
असलराहं विसगिजस्राहं होन्ति । ( ननु अदृष्टयोर्वक्ष्या भवत. परिदेवित धृत्वा समानापुराअसुपका-  
म्यक्षराणि विमुट्टानि स्यु । )

राजा—नास्त्यगतिर्नभोरवामम् । [ गृहीत्यानुयाच्य च सहस्रम् ] सद्ये प्रसन्नस्ते तर्कः ।

विदूषकः—हो हो भो । किं अहलुअसुसालि अल्लया होन्ति । दालि पत्तोअहु अवं । अं  
एस्य लिहिबं तं सुगिदुं इच्छामि । ( हो हो भो । किं आहाअमअवनान्यन्यया भवन्ति । अविवाती  
असीदनु भयाद् । यदत्र लिखित तन्मोतुमिच्छामि । )

उर्वशी—साहु । अज्ज आभरिओति । ( साहु । आयं नागरिकोऽसि । )

राजा—अयस्य भूयताम् ।

विदूषकः—अवहिदोऽसि । ( अवहितोऽसि । )

चित्रलेखा—हां उषो ! मैं भी वही ठीक समझी हूँ ।

[ उर्वशी बड़े हाव-भावसे भोजपत्रपर लिखनेका नाट्य करती है और उसे फिर राजाके भागे  
फेंक देती है । ]

विदूषकः—[ देखकर सबराता हुआ ] हाय ! हाय ! मुझे लिखनेके लिये यह साँपकी  
कँजुती बहसि था टपकी ?

राजा—[ देखकर घोर हैसकर ] विन ! यह साँपकी कँजुती नहीं है, यह तो लिखा हुआ  
भोजपत्र है ।

विदूषकः—मैं समझता हूँ कि उर्वशीने ही लिपे-लिपे तुम्हारा रोना-बोना सुनकर अपना  
प्रेम जतानेके लिये यह पत्र लिखकर यहाँ टास दिया होगा ।

राजा—मनकी पीठ भी बिजनी दूरतक पहुँचती है । [ पत्रको उठाकर घोर पढ़कर ]  
विन ! तुम्हारी ही बात ठीक निकली ।

विदूषकः—हू हू-<sup>१</sup> आहाअमो बात भी क्या कमी मूठ होती है ? अब प्रायः छिद चटिए ।  
अच्छा, मैं भी तो मुर्तू, इसमें क्या लिखा है ।

उर्वशी—पन्ना है, सुभ सबमुच अच्छे नागरिक हो ।

राजा—सुनो विन !

विदूषकः—हां, सुन रहा हूँ ।

रात्रा—भूयताम् [ वाचपति ]

शामिथ मंगामिथ्या जह श्रहं तुण् अणुमिथ्या

तह अणुचस्य जह गाम तुह उवरि ।

किं मे ललित्यपारिवायसखिज्जयम्मि होन्ति

एण्डखवणवादा वि अरुनुएहया सरारण् ॥१२॥

( स्वामिन्मंभाविता मयाहं श्याज्जाता तयानुरक्षस्य वदि नाम तपोपरि । )

किं मे ललित्यपारिवायसखिजीये चवणि कन्दनवनवाता अभ्यरुपुपुजाः शरीर्ये । )

उर्वगी—किं ज्ञु वपु संपवं भरिस्ततिव । ( किं नु गनु गान्धरं नलिप्यति । )

विननेता—एणं भरिहं एवञ्च वितारवमतलापत अयत्तंहि अयेहं । ( ननु मलिउमेन म्नामवमलनासापमानैरहृगीः । )

विदूषकः—दिद्विष्मा मय बुभुक्षितेणु सौत्पिजासलं विम उवण्डं मयदा उवरंठिरेण समतासलं । ( दिद्विष्वाः मया बुभुक्षितेन स्वमित्रिवाचनविवाचनस्यं अयनोरेणित्येन समारामनम् । )

रात्रा—समाभ्यासनविति विगुप्यते ।

तुल्यानुरामपिशुनं ललितार्थचन्धं वत्रे निवेदितमुदाहरणं प्रियायाः ।

उत्पद्मणा मम सरौ मदिरेवणायाः तस्याः समागतमिवाननमाननेन ॥१३॥

उर्वगी—एव एणं समविभासा शोबी । ( अभाश्वी, समविभासा शोभिः । )

रात्रा—वपस्य संगुतिरचेरेन दूत्येरन्नयसालि । मार्यतापरं मय प्रियायाः स्मृततः ।

विदूषण—[ गृहीत्वा ] किं दाएँ तत्तमोदी उच्यसी मयदो मणोरहाण कुमुम दसिप्र फले विरायददि । ( किमिदानीं त्वमभवत्युर्वशी भवतो मनोरथाना कुमुम दसंसित्वा फले विश्रयदति । )

उपवी—सहि जाव उच्यमएकदर हिप्रप्र पन्डित्यावेमि दाव तुम से भत्ताए दसिप्र ज मे क्षम त भएहि । ( सखि यावदुपमननातर हृदय पर्यवस्थापयामि तावत्त्वमस्यात्मान दसंसित्वा मन्मथ क्षम तद्गुण । )

चित्रलेखा—तह । ( तथा ) [ तिरस्करिणीमपवीय राजानमुपेत्य ] जेदु जेदु महाराधो । ( जयतु जयतु महाराज । )

राजा—[ दृष्ट्वा सङ्घर्ष ] स्थागत भक्त्यं [ पार्श्वमवलोक्य ] भद्रे !

न तथा नन्दयसि मां सख्या चिरहिता तथा ।

सङ्गमे दृष्टपूर्वेव यमुना गङ्गया विना ॥१४॥

चित्रलेखा—ए पढम मेहराई शीकदि कच्छा विञ्जुसदा । ( ननु प्रथम मेघपाणिदृश्यते प्रभाद्रियुक्तता । )

विदूषण—[ मपवार्यं ] कह ए एसा उच्यसी । साए तत्तहोवीए महिमदा एहमरी । ( वय नदीर्वदी । तस्यास्तत्रभवत्वा भूमिमता एहवरी । )

राजा—एतत्रासनमास्थताम् ।

चित्रलेखा—उच्यसी । महाराज तिरता पस्मिन्न विण्णुवेदि । ( उर्वशी महाराज चिरसा प्रथम्य विज्ञापयति । )

विदूषण—[ पत्र लेकर ] जिन उर्वशीजीने यह पत्र भेजकर आपके मनोरथोनि पूल लया दिए है, वे क्या आपकी समझमें फल देनेमें दासपटोल करेंगी ?

उर्वशी—सखी ! अभी मेरा हृदय उनके पास जानेसे निम्नकर रहा है । इसलिये जबतक मैं अपनी जो संभारूँ सबतर तुम इनके पास जाकर मेरी शीरसे जो कुछ कहना ठीक समझो, कह जाओ ।

चित्रलेखा—कच्छा । [ मायाकी शोहनी ह्यावर शीर राजाके पास पहुँचकर । ] महाराज की जय हो ।

राजा—[ देखकर प्रसन्नतासे ] यादए ! स्वागत है भाषका । [ दवर-उधर देखकर ] क्यों भद्रे ! जैसे प्रयागवा सबम देसनेवालेको, गंगासे विना भयेती यमुना नहीं भाती वैसे ही अपनी सखीने बिना तुम भी मुझे नहीं भाती हो ॥१४॥

चित्रलेखा—पर महाराज ! पहले तो बदली दिखाई देती है न, पीछे विजली चमकती है ।

विदूषण—[ अक्षय ] घरे ! तो क्या ये उनकी प्यारी सखी हैं, उर्वशी यही हैं ।

राजा—यादए इस भासनपर बैठ जाइए ।

चित्रलेखा—उर्वशीने महाराजकी शिर नवावर प्रणाम करते हुए कहाया है—

राजा—किनाज्ञाप्यति ।

विभक्तेसा—तस्मिन् सुरारिसंभवे पुत्र्यादे महाराजो एव चरखं प्राप्तः । सा महं संपदं  
 ॥॥ संसलसमुत्थेण ममलोण बन्धिभं ब्याहीममाखा भुषोवि महाराण्येण प्रणुकंपणीप्रति ।  
 (तरिभन्सुरारिसंभवे दुर्जति मद्दाराण एव मम चरण्यासीत् । सार्धं साम्प्रतं तव दर्शनप्रसुरवेन मद्-  
 नेन बन्धवद्राच्यमाना भूयोऽपि महापद्मस्यानुकम्पनीया नयामि इति ।)

राजा—अपि मद्रमुक्ति !

पर्युत्सुकां कपयसि प्रियदर्शनां तां  
 आते न पश्यसि पुरुरवसं तदर्थे ।

साधारणोऽप्यमुभयोः प्रथयः स्मरस्य

तप्तैत न तप्तमयसा घटनाय योग्यम् ॥१५॥

विभक्तेसा—[ उर्वशीमुपेय ] सहि एहि । तुयतोषि लिहभवरं ममलं वेधिलम पिम-  
 मस्त वे बुद्धिहि संवृता । (सक्ति एहि । स्वतोऽपि निर्दयतरं ममलं प्रेक्ष प्रियतमस्य वे दूत्यत्ति  
 संवृता ।)

उर्वशी—[तिरस्करिणीमपनीय] बाम्भहे लकुभं तुप धलवेधिलवं उजिभरन्धि । (महो  
 मपु म्पिवाववेधिलमुजिभरन्धि ।)

विभक्तेसा—[सरिमत्तम्] सहि ! इषो भुहतायो नारिलसं का कं उजिभरन्धि । प्राप्तरं  
 वाव पत्रिवज्ज । (सक्ति ! इतो भुहन्दिव शास्यामि का कापुजिभरन्धितोति । प्राप्तरं सावरप्रतिपद्यन् ।)

राजा—हाँ, क्या भाषा यी है ?

विभक्तेसा—यही कि उक्त चार जब दंत्य मुझे एकद ले बने थे उस समय महाराजने ही  
 मेरी रत्ना की थी । अब आपको देख लेतेपर मेरे मनमे प्रेमकी बंधी पोडा उठ लगी हुई  
 है, इसलिये चाहती हूँ कि इस बार भी मुझपर आपकी कृपा हो जाय ।

राजा—अरी सुन्दरी ! अपनी सखीको तो तुम इतना प्रेममे ध्याकुल बता रही हो, पर  
 वह नहीं देख रही हो कि वह धुरुरवा भी उसके प्रेममे पागल हुआ बैठा है । हम दोनोका  
 प्रेम, सोनी धोर एक जसा ही बडा हुआ है, इसलिये एक तपे हुए लोहेको दूसरे तपे हुए लोहे  
 चोड़ देना ही अब ठीक होगा ॥१५॥

विभक्तेसा—[उर्वशीके पास जाकर] धामो थामो, सखी ! कामदेवने तुमसे जो अधिक  
 इनको सता रनसा है । इसलिये अब मैं तुम्हारे प्रियतमकी ही दूती बनकर तुम्हारे पास  
 आई हूँ ।

उर्वशी—[मायाकी घोडनी हटाकर] बाह ! क्या ऋछे तू मुझे छोड़कर उधर चली गई ?

विभक्तेसा—[मुसकराकर] सखी, अभी पोटी ही देखो हूँ न, कि कौन किये  
 छोड़कर जाती है । भक्ता, पहले महाराजको प्रणाम जो कर लो ।

उर्वशी—[समाञ्जस राजानमुत्स्य प्रणम्य च सर्वोदम्] जेदु जेदु महारामो । (जपतु जपतु महाराज ।)

रामा—[सदांय] सुन्दरि ।

मया नाम वितं यस्य त्वयायं समुदीर्यते ।

जयशब्दः सहस्राचादगतः पुरुषान्तरम् ॥१६॥

[हृदय वृहीत्वंनामुपचययति ।]

विदूषक—भोदि ! रण्यो विप्रवसस्तो बन्धुणो किं एव करोषदि । (भवति ! राज प्रिय-  
वसस्यो आहाण किं न कथ्यते ।)

[उर्वशी सस्मित प्रणमति ।]

विदूषक—सस्मित भोदीए । (स्वस्ति भवत्यं ।)

[नेपथ्ये देवदूत ]

विप्रनेत्रे ! त्वरम त्वरयोर्वशीयम् ।

मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतीप्सरमाश्रयो नियुक्तः ।

सलिलाभिनय तमय भर्ता मरुतां द्रष्टुमनाः सलोरुपालः ॥१७॥

[सर्वे बलं ददति । उर्वशी विषाद रूपयति]

विप्रनेत्रा—मुद विमसहीए देवदूतस्य यमण । ता ससुपाणोभवु महारामो (श्रुत  
प्रियसत्या देवदूतस्य वचनम् । तदनुमान्यता महाराज ।)

उर्वशी—एतिय मे यामा । (नास्ति मे याता ।)

उर्वशी—[हृदयहीम राजाके पास पहुँचकर लजाती हुई प्रणाम करके ।] महाराजकी जय हो ।

रामा—[प्रणम्य हीवर] सुन्दरी ! जो 'जय' शब्द तुमने सहस्र घोंदनाले इन्द्रकी छोड़-  
कर आश्रय विभी दूषरे पुष्यक तिय नहीं बहू या, यह आज तुमने मेरे तिय कह दिया,  
इसलिय आज एषमुच मुझे जय मिल गई ॥१६॥

[हाथ पकटकर बँटाटे हैं ।]

विदूषक—दयोजी ! क्या महाराजक प्रिय विप्र आहाणकी प्रणाम पाप नहीं कीजिएगा ?

[उर्वशी मुखवराती हुई प्रणाम करती है ।]

विदूषक—आपका बच्चाए हो ।

[नेपथ्यमे देवदूत कहता है ।]

विप्रनेत्रा ! उर्वशीको मन्त्रित व यामा । भरत मुनिने तुम सोचोको, जो भाओ रघोषि  
नरा दूषा नाटक सिला रणा है उर्वशीक सुन्दर अभिनय, यकथानु इन्द्र घोर लोरुपाल  
दसता पाटते हैं ॥१७॥

[सब सुनत है उर्वशी दुखी होनेवा नाच्य करती है ।]

विप्रनेत्रा—प्यारे र-शी ! तुमने देवदूत क वचन सुन ? तो घर महार(जके विदा सो )

उर्वशी—मुझका हा बाता नहीं जा रहा है ।



विचलेता—महाराज उरपत्नी विण्णवेदि—परपत्नी भयं जलो । ता महाराजस्य सम्भगुणदा इच्छामि वेपेतु अणपरस्य असाणस्य वात्तु ति । (महाराज । उरपत्नी विनापथति—परपत्नीऽर्ज जनः । तन्महाराजेनाभ्यनुज्ञाता इच्छामि देवेभ्यनपराद्धमात्माना नर्तुम्—इति ।)

राजा—[अथ कथमपि वाच व्यवस्थाप्य ।] । नार्हसि भक्तयोरोत्थरनिपौषप्रायर्षी । समर्प्य-स्त्वयं जनः । [ उरपत्नी विभोगदुःख रूपधित्वा राजान परपत्नी सत् तास्या निष्करता । ]

राजा—[निःश्वस्य] सते चैवर्ष्यमिव मे वसुधोः संर्षति ।

विदूषकः—[अथ दर्शयितु नामः] स एव । [इति प्रथोत्ते सविपादनात्मगतम् ।].....हृदी हृदो उरपत्नीरंतलविहिदेण मए स भुज्जावत्तथं पम्भट्टं वि हत्यावो वनादेण ए विण्णाई । [मनु एतत्.....हा धिक् ए धिक् उरपत्नीदनेनविस्मितेन मया तद्भुज्जं पत्र प्रभ्रष्टमपि एतात्प्रमा-देन न विज्ञातम् ।]

राजा—भद्र ! विमति वसुधाम इव ।

विदूषक—एवं वसुधामोहि—मा मवं अनाई मुंभट्टु । विड वसु सुह बद्धगाथा उरपत्नी ए सा इवोर्णं अछरामं तिडितेति ति । (एव वसुधामोहि—मा भवावद्मानि मुञ्चवसुदं तावु एवि बद्धमना उरपत्नी न ता इतीगतमनुवाग विधितपति—इति ।)

राजा—गन्ताप्येतन्नानि मनः । तथा वसु प्रस्थाने ।

अनोशया शरीरस्य स्वयं हृदयं मयि ।

स्तनकम्पक्रियालक्ष्यन्त्यस्तं विःशमितैरिव ॥१८॥

विचलेता—महाराज । उरपत्नी प्रार्थना करती है कि मैं तो पराधीन हूँ, इसलिये महाराजकी आज्ञा ही तो धर्मि जानें और देवताओंका अपराध करनेसे बच जाऊँ ।

राजा—[अथ कठनादि योमते ह्ये ।] मैं आपने स्वामीकी आज्ञाका भला कंठे बिरोध कर लक्षता हूँ । पर मुझे भूविण्णा मत ।

[उरपत्नी विभोगका भाव प्रकट करती हुई और राजाकी ओर देगती हुई सतीके साथ लक्षी जाती है ।]

राजा—[अग्नी सात मेवर] मित । अब तो मेरी आँसोंका होना न होना बराबर हो रहा है ।

विदूषक—[अथ दिशानेरी इच्छाते] पर यह..... [इचना ही कहकर रज आना है । दुःखके साथ मन ही मन] हाय हाय ! उम उरपत्नीकी देहानेम मैं ऐसा वेगुप हो गया कि मुझे यह भी प्यमि न रहा कि मेरे हाथके भोजपत्र बर विचलकर गिर पड़ा ।

राजा—क्या यह रहे ये मित ?

विदूषक—मैं यही कह रहा था कि धार विराम न हों, क्योंकि उरपत्नी आपने अपना महाराज के प्रति है कि अब उमके प्रेमके विनाई धा नहीं लक्षती ।

राजा—मेरा मन भी यही कहता है । धरने परीवर तो उरपत्नी बन पा ही नहीं, इसलिये धरने किम सुदवर उरपत्नी धरिहार वा उमे तो पत्नी मरण यह धरने उम उरपत्नीके साथ मुझे शीघ्र नई जो उरपत्नीके वारिनेके असी प्रचार प्रकट हो रही थी ॥१८॥

विदूषकः—[स्वगतम्] सेचदि मे हृष्यर्ष इमं श्वेतं शतमयया तस्म भुज्जवत्तस्स याम  
पेहिदृष्ट्वं त्ति । (वेपथे मे हृदयमिथा वेनामपमयता तस्म भुजंपनस्य नाथ महोत्थमिति ।)

राजा—वयस्य केनेदानीं दृष्टिं विलोमयामि । [स्यूचा] अतः उपनयतु भवान्मूर्खपत्रम् ।

विदूषकः—[सर्वतो दृष्ट्वा विषाद नाटयति] हंत ए विस्सदि । सो दिव्यं वपु सं भुज्जवत्तं  
महं उखसीए मणेरए । (इत्त न दृश्यते । सो. दिव्यं खजु तद्भुजंपन मतभुवंधया भार्गोए ।)

राजा—[सापूयम्] ग्रहो सबंध प्रमादी धंधेयः । ननु विचिन्वेतु भवान् ।

विदूषकः—[उपयाय] ए इतो मवे । इह वा भवे । इह वा भवे । (ननु इतो भवेत् । इह वा  
मवेत् ।) [इति विचेतव्यं नाटयति]

[ततः प्रविशति उपरिवाप काशिराजगुनी देवी केटी च]

देवी—हंजे एण्डिएए ! सत्त्वं तुए भल्लिदं इमं सदागेहं पविसंतो अज्जमाएणअसहाओ  
अज्जवत्तो विट्ठो ति । (इह्ये निपुणिके ! सत्यं त्वया भल्लितमिदं सतामेह प्रविशन्मार्गमाएणकसहाय  
धार्मपुत्रो दृष्ट इति ।)

निपुणिका—किं अण्णहा मट्टिणी मए कदापि विभल्लवित्तुएवा । ( किमन्यया मट्टिणी मया  
कथापि विज्ञापितपूर्वा ।)

देवी—तेए हि लहाविद्यंतारिदा सुखिस्सं वाच मे विस्सटा मंतिदाणि जं तुए कहिदं सं सत्त्वं  
एण वसि । (तेन हि सतावित्पान्कारिता थोव्यामि तावदस्य विधन्या मन्त्रितानि यत्तया कथितं  
सत्त्वं न वेति ।)

विदूषक—[मन ही मन] मुझे यही डर हो रहा है कि महाराज भोजन न मांगें बंटें ।

राजा—मित्र ! यथाशो भव मे कंसे भपती धालें ठडी कळे । [स्मरण करके] धरे हूं । वह  
भोजन तो सामो ।

विदूषक—[चारों ओर दूँदता हुआ, दुखी होनेका नाट्य करता है] हाय, हाय ! यह तो  
कही मिलता ही नहीं । मित्र ! वह भोजन तो स्वयंका था न, इसलिये वह भी उर्वशीके साथ  
ही सब ममा होगा ।

राजा—[श्लेषके] भूखें ! तुम सदा ऐसे ही बेगुन रहते हो । जाओ, दूँदो उसे ।

विदूषक—[उठकर] वर-वर यहाँ होगा, या यहाँ होगा, या यहाँ होगा । [एक प्रकार  
सोजनेका नाट्य करता है ।]

[ इसी बीच जामो-नरेजकी पुत्री महाराजकी भपती दासियोंके साथ याती है ।]

देवी—सपी निपुणिका ! तू ने सब कहा था कि धर्म भाखनकके साथ धार्मपुत्र सता-  
भंडपमें गए हैं ।

निपुणिका—मैंने क्या धानरक जमो धापसे मूठ बोला है ?

देवी—अन्ना तो मैं इन सगा-भूषीको घोट में खरी होकर इनकी गुन-गुन बातें सुनकर  
देखती हूँ कि तूने जो कुछ कहा है वह सच है या नहीं ।

निपुणिका—[ भट्टिणीए रचदि । ( यद्भट्टिन्यं रोचते । )

देवी—[ परिक्रम्य पुरस्तात्प्रवृत्तौ च ] हृदये स्थित्तुष्टि ए किं तु कम् एव निष्पन्नोऽमरं विम्व इवोमुहं वनित्तुष्टि-माश्वेतुष्टि आसीत्प्रदि । ( हृदये निपुणिके ! किं तु सन्नेतञ्जीरुंनोवरमिवेतो-धुसं दक्षिणमाश्वेतानोवते । )

निपुणिका—[ विभाव्य ] भट्टिणी ! पडिवत्सलविभाविबन्धनं मुञ्जवतं बधु एव । हंत भट्टिणीए एव्य एउरकोटोए सग्यं । [ गृहीत्वा ] एं वार्धभदु एवम् । ( भट्टिनि ! परिवर्तनविभा-विताशर भूजपन सस्वेतत् । हंत भट्टिन्वा एव मुपुरकोट्या सग्यम् । ननु वाच्यतामेतत् । )

देवी—पक्षपाएहि दाव एव । जदि भविष्यदं ततो सुणित्तं । ( मनुवाचय दावदेतत् । पक्षविषदं ततः श्रोष्यामि । )

निपुणिका—[ तथा कृत्वा ] भट्टिणी ! तं एव्य कोलीरुं विम्व पडिहादि भट्टारमं उद्विष्टिभ सन्नेतोए कवयंधो सि तवकेमि । पडजमात्तुष्टिमप्यमादेस अ भन्हाए हृदयं भागवो सि । ( भट्टिनि ! तदेव कोलीरुमिच प्रतिभाति । भट्टारकमुद्विष्टयोर्वेदवाः काम्यकन्य इति तर्कयामि । धारं माण्यक प्रमादेन वाचयोहंस्तमागत इति । )

देवी—तेण हि से गहीदात्वा होमि । ( तेन ह्यस्य गृहीतायां भवामि । )

[ निपुणिका वाचयति ]

देवी—[ यत्वा ] एव्य इमिल्ला एव्य उवाचएउरुं एं प्रकृत्ताकातुमं वेवसामि । ( प्रजाः केनैयोपायनेन समप्सरः कामुक प्रेक्षे । )

निपुणिका—तहः । ( तथा । )

[ इति वरिजनसहिते सतागृह परिक्रामतः । ]

निपुणिका—अंता भट्टिणी ठीक समर्थे ।

देवी—[ धूमकर सामने देखकर ] सबी निपुणिका । देखो तो यह दक्षिणी पवनके साथ फटे कपड़े अंता क्या इपरको उठा चला था रहा है ।

निपुणिका—[ देखकर ] भट्टिणी ! यह तो भोजपत्र है और उसदा-पलदा उठा घाटा हुआ ऐसा लगता है कि इसपर कुछ लिखा हुआ ही । सीजिए, यह तो भट्टिणीके विष्णुपत्र ही धूमकर घटक गया । [ उठाकर ] सीजिए बाँचिए तो ।

देवी—मुझे बाँच सो । यदि कोई मेरे मनकी बात ही तो सुना देना ।

निपुणिका—[ बाँचकर ] यह तो वही प्रेमवाली बात जान पड़ती है, जिसका चारो ओर इतना हल्ला हो रहा है । मैं समझती हूँ कि उर्वशीने स्वामीको यह कविता लिखकर भेजी होगी और धारं माण्डवकी असावधानीसे यह हम लोथके हाथ लग गई है ।

देवी—मच्छा पढ़ो तो इसमें क्या लिखा है ?

[ निपुणिका बाँचती है । ]

देवी—[ सुनकर ] तो पलो यही भँट लेकर हम उस अम्बरके प्रेमीसे बसकर मिलें ।

निपुणिका—बाँचिए ।

[ दासियोंके साथ सता-गण्डपती और धूम जाती हैं । ]

विदूषक — [ विनोद ] भी बयस ! कि एदं पवसवतायामि प्रमदयत्समीवगवकीला-  
पवदपज्जं ते दीसदि । ( ओ वस्य ! किनेतस्यवनस्यगामि प्रमदयनसमीपगतकोडापर्यंतपर्यन्ते  
हस्यते । )

राजा—[ उंठ्याम ] भगवन्वसन्त-प्रिय दक्षिणवायो !

वासार्थं हर संभृतं सुरमिया पौष्यं रज्जो वीरुधां

किं कार्यं भवतो हूतेन दयित्वास्नेह स्वहस्तेन मे ।

जानीते हि मनोविनोदनशतैरेवंविधैर्धारितं

कामार्थं जनमज्जनां प्रति भवानालक्षितप्रार्थनः ॥१६॥

निपुणिका—भट्टिणि ! वेसस वेसस । एवस एव पण्येससा वट्टि । ( भट्टिनी ! प्रेसस  
प्रेसस । एतस्यंवाग्नेपत्या वतंते । )

देवी—ए वेससासि बाव । तुण्हि विट्ट । ( ननु पर्यामि लाव । वृष्णी दिष्ट । )

विदूषक.—[ एषिवाद्य ] हट्टो हट्टो ओ मिलाप्रमासकेसरपञ्चयिणा मोरपिण्डेणा विप्य  
लट्टो म्हि । [ हा विक् हा विक् ओ म्हावमानकेसरपञ्चयिना मयूरपिण्डेन विप्रसज्जोऽस्मि । ]

राजा—सर्वथा हतोऽस्मि ।

देवी—[ सहतोपसृत्य । ] अज्जज्जत्त भलं प्रायेएस । एवं तं धुज्जवत्तं । ( धार्यपुन ! अलमा-  
देगेन । एतत्तद्भूर्जपनम् )

राजा—[ ससभ्रमम् ] अमे देवी ! स्वागतं देव्यै ।

विदूषक —[ अपवार्यं ] कुराणदं दासिा संपुत्तं । [ कुराणतमिदानी संकृतम् ]

विदूषक—[ देखकर ] क्यों निज ! यह प्रमदवनके पासवाले श्रीङ्गा-परंतपर पवनके  
भौंकिमे हिलता-सा क्या दिखाई दे रहा है ।

राजा—[ उठकर ] हे वसन्तके प्यारे निज दक्षिण पवन ! तुम्हें अपना लीर सुगन्धित  
करना ही तो तुम मरामोंपर खिने हुए और वसन्तके हाथोंसे इकट्ठे किए हुए फूलोंका पराग  
उठाकर क्यों नहीं ले आते । मेरी प्यारीके हाथका निहा हृषा पन भला तुम्हारे किस काम  
प्रायेण । तुम तो स्वयं अज्जनाते प्रेम कर चुके हो इसलिये जानते ही होये कि ऐसी ही मन  
बहानेवाली वस्तुओंको देखकर ही ओ प्रेमी खोप जिया करते हैं ॥१६॥

निपुणिका—देसिए देसिए, सट्टिनी ! ये लोग इसी पत्रको खोज रहे हैं ।

देवी—सुप घृष ! देखें तो सही, ये क्या-क्या करते हैं ।

विदूषक—[ दुसके साथ ] हाय, हाय ! इस मोर-पंखको देखकर मुझे मुरझाए हुए मोर  
के फूलका घोंसला ही गया, क्योंकि दोनों एक जैसे ही लगते थे ।

राजा—मैं तो सब प्रकार सुट गया ।

देवी—[ एकाएक आगे बढ़कर ] धवरदाए मत धार्यपुन ! यह रहा यह भोजपन ।

राजा—[ धवरानर ] अरे प्राप हैं देवी ? धादए, धादए ! भली आ गई प्राप ।

विदूषक—[ अलम ] भली क्या, भड़ी बुरी भाई इस समय ।

राजा—[अनाग्निबन्धु] कषाय । निमग्न प्रतिविधेयम् ।

विदूषकः—(अपकार्यं) सोऽप्येते महोदयम् कुंभोत्तमस्त भवितु वा परिग्रहणम् । (सोऽनेन गृहीतव्यम् कुंभोत्तमत्वात्किं वा प्रतिबन्धनम् ।)

राजा—[अनाग्निबन्धु] सुखं मायं परिहासयामः । [प्रयागम्] देवि । नेरं मया कृतम् ।  
अयं दातु पराग्वेपलायंसारथ्यः ।

देवी—गुणद्वि भक्तयो सोऽहम् वन्दयेत् । (गुणद्वि धार्यनः मीमांस्यं प्रकृतद्विगुम् ।)

विदूषकः—भोदि ! कुर्वेति ते भोऽहम् जं वित्तोन्नामरुत्तमयं होदि । (भवति एवमप्य  
भोजनं यत्किञ्चित्पुनस्तममयं भवति ।)

देवी—[एतद्विद्युत् सोऽहम्] क्वु अह्लेण धाताग्निरो वसन्तो । (विद्युत्किं । सोऽहम् गतु  
व्याहारेणाप्यतिवो वयस्य ।)

विदूषकः—भोदि तं देवत धाताग्निरो वित्ताचोभि भोऽहम् । (भवति गतु पदम धारणा-  
यितः विनाचोऽनि भोजनेन ।)

राजा—सुम् धातात्परार्थिनं मां प्रतिगच्छति ।

देवी—एतिव क्वु भवतो अवरसहो । अहं एव एव अवरसहो वरिष्वायं गता भवितु  
अगरो दे विद्युत् । इवो अहं मन्त्रितं । एतद्विद्युत्, एहि गच्छत । [मन्त्रि गतु भवतोऽन्यथः ।  
मन्त्रेणावरायं मा अतिभूतव्यं न भूषणगते विद्युत्किं । इतोऽन् वनिष्वायि । विद्युत्किं !  
एहि गच्छामः ।] [इति अनेन नाटयित्वा प्रस्थितः ।]

राजा—[अपहृत्य ।]

अपराधी नामाहं प्रमीद रंभोक्तु रिम्य मंरम्भात् ।

तेष्वो जनश्च बुधितः कथं नु दासो निरपराधः ॥२०॥

[इति पाठ्यो वसति ।]

देवी—[स्वगतम्] मा खलु तद्विप्रया भ्रमं भ्रष्टाणामं बहु मण्डे । किं तु प्रदक्षिण्य-  
विदस्त पञ्चादावस्त भाणमि । ( मा खलु अमुहृदयाहमनुनय बहु मन्ये । किल्वदाक्षिण्यकृतात्पत्रा-  
द्यापाद्विभेमि ।)

[इति राजानमपहाय सपरिवारा निष्क्रान्त ।]

विदूषकः—पादसंख्ये विप्र अप्यस्तम्या गवा देवी । ता जटुं हि । ( भ्रातृभ्रदोवाप्रसन्ना  
गता देवी । तदुत्तिष्ठ उत्तिष्ठ ।

राजा—[ह्लासात्] जयस्य, नेदमनुपपन्नम् । परम्

प्रियवचनकृतोऽपि योषितां दयितजनानुनयो रसादृते ।

प्रविशति हृदयं न तद्विदां मखिरिव कृत्रिमरागयोजितः ॥२१॥

विदूषकः—अणुरात् एष्य एत्यभववो एवं । एषु बहु प्रसिद्धिमुखितो महिमुखे क्षीमिहं सहैवि ।  
(अनुहृत्समेदानमवत एतत् । अल्पदिदुःखितोऽभिमुखे क्षीमिखा सहैवि ।)

राजा—मा संयम् । उर्वशीगतमनसोऽपि मे स एष देव्यां बहुपायः । किन्तु प्रसिपातमञ्जु-  
मावहृमस्यां पयंमयसन्धयिष्ये ।

विदूषकः—भो जिष्ठु दुःख मयवो धीरदा । कुमुदिजवस्त बन्धुएस्त जीषिवं प्रयत्नवदु  
भवं । समग्रो वनु पहाणभोभ्रष्टं लेषिवुं (भो तिष्ठतु तावज्जवतो धीरदा । कुमलितस्य ब्राह्मणस्य  
जीषितमयसन्ध्यां भवान् समयः खनु स्नानचोचनं वेवितुं ।)

देवी—[मन ही मन] मुझे ऐसी सोती न समझ बैठिएगा कि मैं आपकी इन चिकनी-  
पुपुवो बातोंमें भाजाऊँगी । पर मैं तो यही करती हूँ कि यदि मैं आपसे कुछ कड़ा बताने  
की कच्ची हो पीदि मुझे ही पसनावा हीमा ।

[राजाको छोड़कर अपनी दासियोंके साथ चली जाती हैं ।]

विदूषक—पर्याकी नदीके सामान प्रसन्न मनवाली देवी बनी गई । अब उठिए, उठिए ।

राजा [सठकार] भिन ! इसमें उमका कोई दोष नहीं है । देखो,—यदि कोई पति  
ऊपरी मनसे बेवत चिकनी-पुपुवो बातें बरके ही अपनी प्यारीको मनाने लगता है तो उसकी  
बातें, किपकि हृदयमें उसी प्रकार नहीं बैठती जैसे वनायटी रंगसे रंगा हुआ मणि, सच्चे  
पारसीको नहीं खँपता ॥२१॥

विदूषक—पर भाव तो यह चाहते ही थे । जिसकी बातें या गई हों उसे सामने रखते हुए  
क्षीमेकी तो बोधे ही पाठी है ।

राजा—नहीं नहीं, ऐसा न बहो । उर्वशीसे प्रेम करनेपर भी मैं इन देवीको पहले ही  
खँगा प्यार करता हूँ पर मेरे इनने हाथ-नर जोहनेपर भी मुझे दुकचकर चल दी इसलिये  
मम में भी उमगे एँट जाता हूँ ।

विदूषक—एँटिएगा पीदि । पहले इन मुझे ब्राह्मणके प्राण तो बचाएए । चलिए, स्नान-  
मोत्रनवा गतय हो गया है ।

राजा—[ ऊर्ध्वमवनीक्ष्य ] यतमयं दिवसस्य । प्रतः प्रतु—

उष्णालुः शिशिरे निपीदति तरोर्मूलालवाले-शिखी

निर्मिद्योपरि कर्णिकारमुकुलान्यालीयते पट्टपदः ।

सप्तं वारि विहाय तीरनलिनीं कारण्डवः सेवते

क्रीडावेरमनि चैप पञ्जरशुकः क्लान्तो जलं वाचते ॥२२॥

[ इति निष्क्रान्ती । ]

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥

## तृतीयोऽङ्कः

[ ततः प्रविशतो भरतशिष्यो ]

गालव—सते वेत्तव । महेन्द्रमन्थनं यच्छ्रुत्वा भगवतोपाध्यायेन त्वमासनं प्रतिग्राहितं ।  
अग्निशरत्ससरदाणाम् स्थापितोऽहम् । अतः सन्तु पृच्छामि—अपि गुरोः प्रयोगेण विद्या  
परिपदारामिता ।

देवव—गालव । एष जात्ये आराहिवा एष वृत्तिः । तस्मिन् उद्ये सरस्वतीकविकल्पवधे  
सञ्जीवमयरे तेषु तेषु रसतरेषु तन्मर्दं भासि । किन्तु— ( गालव । न जाने आराहिता न वा  
इति । तस्मिन्पुनः सरस्वतीकृतवाङ्मयवन्दे सङ्गीतस्वयन्दरे तेषु तेषु रसान्तरेषु तन्मयी ग्रासीत् ।  
किन्तु )

गालव—सर्वोपावकाश इयं ते वाक्ययोध ।

देवव—आम् तस्मिन् उद्ये यत्नस्य पभाएवलयसिद्धं भासि । ( याम् तस्मिन्गुर्वस्यां वचनं  
प्रभावरत्नसिद्धमःसीत् । )

गालव—कथमिव ।

देवव—सञ्जीवमिन्द्राएः सृष्टमाणा उद्येति आरस्वीभूमिमाएः सृष्टमाणाएः मेण्ड्राएः बुधिव्या—  
पाहि समामदा एदे तेलोऽसुपुरिस्या सकेसवा अ स्योमवाला । कवन्तिसि दे भावाहिणिवैसीति ।  
( सञ्जीवभूमिकाया वत्तमानोवशी वास्वीभूमिकाया वत्तमानया येनकया पृष्टा— सति । सनायता  
एते त्रैलोक्यपुत्ररुपा सषेसवाअ लोकापाला । कृतमस्मिन्स्ते भावाभिविषेव इति । )

### तीसरा शृङ्खला

[ भरत मुनिके यो विष्णु प्रवेश करते हैं ]

गालव—निज देवव । इन्द्र मन्थनको जाते समय गुरुजीने धपना आसन साथ ले बसनेके  
शिये तुम्हें तो धपने साथ ले लिया था और मुझे वहाँ अग्निहोमका काम सौंप दिया था ।  
इसीलिये मैं पूछता हूँ कि गुरुजीके नाटकसे देवताओंकी समा प्रसन्न तो हुई न ?

देवव—गालव । यह तो मैं नहीं जानता कि देवता समा प्रसन्न हुई या नहीं, पर वहाँ जो  
सञ्जीव-स्वयन्दर नामका नाटक हुआ था और जिसके गीत स्वयं सरस्वतीजीने बनाए थे, उसमें  
जो जो रस अब अब दिखाए जाते थे तब-तब उध उध रसामे वह पूरी-पूरी समा मगन हो  
चली थी । पर

गालव—जान पड़ता है तुम कुछ करते-करते रुक गए ।

देवव—हाँ, यही कि उस नाटकमें उर्वशीने बोलनेके कुछ गुस कर ली ।

गालव—क्या गुस कर ली ?

देवव—उस नाटकमें आरस्वी बनी हुई येनकाने, लक्ष्मी बनी हुई उर्वशीसे पूछा—सखी !  
यहाँ तीनों लोकोंसे एखड़े एक सुन्दर पुरुष, लोकापाल और स्वयं विष्णु भगवान् आए हुए हैं,  
इनमें तुम्हें कौन सबसे अधिक भाता है ?



वासव — ततस्तत ।

पेलव — तबो ताए पुकरवसि ति भणितवथे पुकरवसि ति ताए निग्गहा वासो ।

(सतस्ताया पुकपोत्तमे इति भणितवथे पुकरवसौति तस्या निर्यता वासो )

वासव — भवितव्यतानुविधायीनि इन्द्रियाणि । न खलु तामभिकुट्टो गुह ।

पेलव — ता खलु सत्ता उवणभाएण । महिदेण उए अण्णगहीवा । [सा खलु राप्तोपाध्यायेन । महोग्रैण पुनरनुगृहीता ।]

वासव — कथमिध ।

पेलव — वेण मम उवदेशो तुए मणिवो तेण ए वे विण्य ठाए हविस्सदि ति उवणभाअस्स तासो । महिदेण उए पेशणायसाए सण्णायउवणुही सा ख्व भणिया — जस्सि तुम मडभाया ति तस्स मे उएतहाअस्स राएतियो पिअ एव करणुअ । ता दाव मुम महाकाम पुकरवस उवचिट्ठ जाव सो तुइ विट्ठसताएतो भोवि ति । (विण ममोपदेशस्सया तद्धितवत्तेन न वे विण्य स्थान भविष्यति इति उपाध्यायस्य वाच । महोग्रैण पुन प्रेसयावमाने सण्णायननगुसी सा एव भणिता— यस्तिस्सय मडभावासि उरुम मे उएतहायस्य दावणं विववव करणीयम् । तस्यावत्थ ममाकाम पुकरवसमुपतिष्ठस्व यावरस त्वमि इष्टसम्मानो भवेदिति)

वासव — सहासमेतत्पुण्यात्तरविबो महोग्रस्य ।

वासव — उय-उय ।

पेलव — उत तसय उते कहवा तो बाहिए वा 'पुकपोत्तम' वर भूलसे उसके मुँहसे निकल गया, 'पुकरवा' ।

वासव — भाई ! जैसी होनी होती है वैसे ही मनुष्यके अंग भी काम करने लगते हैं । क्या पुकपोत्तम इस बातपर विचरते नहीं ?

पेलव — घरे, गुरुजीने तो उसे साथ ही दे दिया था, पर भगवान् इन्द्रने उसे जैसे जैसे पचा सिंदा ।

वासव — कैसे ?

पेलव — गुरुजीने तो यह छाप दे दिया था कि तूने जो मेरे सिखाए पाठके अनुसार काम नहीं किया इसपर तूझे यह दंड दिया जाता है कि तू स्वयंमें नहीं रहने पावेगा । पर ज्योंही नाटक समाप्त हुआ त्योंही सज्जासे सिर भीचा किए सभी हुई उर्वशीसे इन्द्रने आकर कहा— देखो ! उए धायमें सदा मेरी सहायता करनेवाले जिस राजपिसे तुम प्रेम करती हो उनके मनका भी कुछ कर देना चाहिए । इसलिये जबतक वे तुम्हारी सतानका मुँह न देखें जबतक तुम मनचाहे समय तक पुकरवाके साथ रह सकती हो ।

वासव — उसके मनकी बात जाननेवाले इन्द्रको यही खोभा देना है ।

पेत्तवः—[सूयंमदतोष्य] कया वनंगेख अन्तेहि अवरद्धा अहितेभवेता एषु उदरभ्रामस्त ।  
ता एहि । से वातवतिखो होम । (कयाअमवेनास्मानिराद्धामिवेकवेता सनु उपाध्यायस्य । तदेहि ।  
अस्य वासवंतिनी भवावः ।)

गालवः—तथा ।

[इति निष्कन्ती]

॥ मिश्रविष्कम्भकः ॥

[ततः प्रविशति कञ्चुकी]

कञ्चुकी—[त्रिभिःश्वस्य]

सर्वः कल्पे व्रयसि यत्ते लब्धुमर्थान्कुटुम्बी

पश्चात्पुत्रैरपहृतमरः कल्पते विश्रमाय ।

अस्माकं तु प्रतिदिनमियं साधयन्ती प्रतिष्ठां

सेवाकारा परिश्रुतिभूतस्त्रीषु कष्टोऽधिकारः ॥१॥

[परिक्रम्य] आरिष्टोत्थि समियमया कातिरात्रपुत्र्या—इतमस्यावकार्यं मया भामपुत्रस्य  
निर्गुणिकापुत्रेण दूष्यं आयितो महाराजः । तदेव एवं मद्रुषनाहिताय इति । याश्चहमिवातीमवतित-  
ताम्प्याकार्यं महाराजं परवामि । [परिक्रम्यावर्त्तनीय व] रमणीयः यत्तु विवसायज्ञानपुस्तान्तो  
राजवेत्तनः । इह हि ।

पेत्तव—[पुषकी भोर देखर] वातें करते-करते गुफवीके स्नातका समय भी निरस गया ।  
भामो बत्तो, इनके पास पते पतें ।

गालव—अच्छा बत्तो । [दोनों बने जाते हैं ।]

॥मिथ विष्कम्भका॥

[कञ्चुकी घाटा है ।]

कञ्चुकी—[मकी-मकी सात लेकर] जो लोग बहुत बड़े बुद्धिवाले होते हैं वे पुत्र-  
व्रतपाने तो पन बटोलेके केलमें पड़े रहते हैं । पर मुझपेसे धरना सब भार पुत्रीपर  
गौरवर दिखान करते हैं । किन्तु यहाँ तो ऐसी दशा हो गई है कि रात-दिन इस भोजनीके  
बनारमें पड़े-पड़े बूढ़े हो पते हैं । अतनुच सिनयोबी मेवा करना बड़ा टेढ़ा काम होता है ॥१॥  
[पुषकर] धावजन बायीदावकी पुत्री महाराजो धन कर रहे हैं । उन्होंने मुझे भाजा  
दी है कि मैं हर मान छोडकर निर्गुणिकापुत्रेण महाराजकी बहूता पुकी हूँ कि वे भाकर मेरा  
पट धनम करें, इसविधे मुव मेरी धोले जाकर महाराजकी पुता साथी । इस समय  
महाराज माधकावकी उदरपत्ता करके यँडे होंगे, इसविधे धर्म नहीं बनने दर्शन बरुँ ।  
[पुषकर दोर देखर]—धरपाने समय राज-द्वार भी फँसा गुहावना छपता है । यहाँ

उत्कीर्णा इव वासयष्टिषु निशानिद्रालसा बर्हिषो  
धूपैर्बालविनिःसृतैर्वलभयः संदिग्धपारावताः ।

आचारप्रयतः सपुष्पवलिषु स्वानेषु चार्चिष्मतीः ।

सन्ध्यामङ्गलदीपिका विभजते शुद्धान्तघृद्धो जनः ॥२॥

[ नेपथ्याभिमुलमवलोक्ष्य ] अये इत एव प्रस्मितो देवः ।

परिजनवनिताकरापिताभिः परिशृत एष विभाति दीपिकाभिः ।

गिरिरिष गतिमानपद्मलोपात् अनुत्तटपुष्पितकक्षिंकारयष्टिः ॥३॥

पावदेनमवलोक्षणार्थे रिपतः प्रतिपालयामि । [ परिलक्ष्य स्थितः । ]

[ ततः प्रविशति यथानिदिष्टो राजा विदूषकश्च । ]

राजा—[ स्वगतम् ] माः ।

कार्यान्तरितोत्कृष्टं दिनं मया नीतमनतिकृच्छ्रेण ।

अविनोददीर्घयामा कथं नु रात्रिर्गमयितव्यम् ॥४॥

कञ्चुकी—[ उपशृत्य ] जयतु जयतु देव ! देव ! देवी विज्ञापयति—मण्डिहर्म्यं पृष्ठे सुवर्ण-  
वद्युतः । तम संनिहितेन देवेन प्रतिपालयितुमिच्छामि यत्पद्मेद्विहीनयोश्च इति ।

राजा—आर्यं सातपथ्य ! विज्ञापयतां देवी वस्ते ध्रुव इति ।

नीदने प्रसन्नाए हुए भीर अपने घट्टोंपर बैठे हुए भीर, परपरमें छुदे हुएसे दिखाई पड़ रहे हैं । छात्रोंसे बाहर निकली हुई टॉन्में बैठे हुए जड़तरी भीर उन टॉन्के छिन्नेसे निक-  
सनेवाले धुर्र, दोनोमे यही नहीं जान पड़ता कि कौन धुर्रा है भीर कौन कड़ुतर । उमिकातके  
दूठे मौकर तथा-धौकर, फूसोसे सजे हुए भवबोने, सन्ध्याने पूजनके लिये जलते हुए दीपक ला-  
माकर यथास्वाम सजा रहे हैं ॥२॥ [ नेपथ्यकी भीर देखकर । ] अरे ! महाराज तो इसर ही  
पले मा रहे हैं ।—महाराजके पारो भीर हापमे दीपयामा लिए हुए जो गड़ुतसी वासियाँ चधी  
धा रही हैं, उनसे महाराज उस पर्वतके समान धमक रहे हैं जो पक्ष न कटनेसे बसता मा रहा  
ही भीर जितके दोनो टाकोपर कनेरके फूले हुए पेठ सजे हो ॥३॥ तबतक मैं मागे सड़ा होकर  
छनके भातेकी बात थोड़ता हूँ । [ धूमकर सडा हो जाता है । ]

[ राजा भीर विदूषक आते हैं । ]

राजा—[ मन ही मन ]—ओह ! दिन भर कामसे लगे रहनेसे दिन तो बीतता हुआ नहीं  
जान पड़ा, पर मन मन गहलावकी सामझीके बिना रातकी सम्बी-लम्बी घड़ियाँ कैसे  
कटेंगी ॥४॥

कञ्चुकी—[ मागे उठकर ] जब हो महाराज ! मापकी विजय हो । देव ! देवी निवेदन  
करती है कि मण्डिहर्म्य-भवनसे चन्द्रमा यमी भाँति दिखाई पड़ जायँगे । इसलिये मेरी इच्छा  
कि मैं वहीपर महाराजके साथ हो चन्द्रमा भीर रोहिणीका मिलन देखूँ ।

राजा—आर्यं सातपथ्य ! देवीसे कहना कि जो कहेगी वही करूँगा ।

विदूषकः—[ विनोदय ] ही ही भो एतो ॥॥ अँडमोरप्रतस्तिरोपो उदिवो राया  
दुप्रावीर्यं । ( ही ही भोः एय खनु सख्यमोदकमयीक उदितो राया द्विजातीनाम् । )

राजा—[ सस्मितम् ] सर्वप्रोवरिकत्याम्बवहायमेव विषय । [ प्राञ्जलिः प्रणम्य ]  
भयवद् क्षपानाय ।

रविमाचसते सतां क्रियायै मुधया तर्पयते सुरान्पितृंश्च ।

तमसां निशि मूर्च्छतां निहन्त्रे हरचूडानिहितात्मने नमस्ते ॥७॥

[ इति उपतिष्ठते । ]

विदूषकः—भो अम्हणसंका मिहबखरेख दे विवामहेख अँडमखण्णदावो ति । ता प्रासलद्विवो  
होहि जाध अहं वि सुहापोरो होमि । ( भोः प्राहाखसंक्रामिताखरेख से विवामहेताम्बनुशातोअसि ।  
तावाअनस्मिन्नो भव दाव्यहमपि सुतासोनो भवामि । )

राजा—[ विदूषकवचनं परित्यज्योपविष्टः परिजनं विनोदय । ] अभिव्यक्त्यायां पन्द्रिकायां वि  
बीषिकापीनरुपायेन । सद्रिभ्राम्बन्तु भवत्यः ।

परिजन.—अँ देवो अँलावेवि । ( पहेव प्राजापयति । ) [ इति निपन्नन्तः । ]

राजा—[ पञ्चमसमयतोत्तम विदूषक प्रति ] वयस्य ! परं भ्रूतविवागमनं देव्याः । सद्रिवित्ते  
कथयिष्यामि स्वामयत्प्याम् ।

विदूषकः—खं बीसवि धम्म सा । किन्तु तारितं अखरारामं वेखिख अरकं वखु प्रासाअंभेख  
असाखं धारैवुं । ( ननु हस्यत एव सा । किन्तु ताहअवनुपग प्रैख्य सबंधं अँलासाअंभेनात्मानं  
पारयितुम् । )

विदूषक—हे हैं हे हे ! यह ऊपर उठता हुआ द्विजोक राजा अँडमरा ऐसा गुनवर मग रहा  
है जैसे खीरका लड्डू हो ।

राजा—[ मुस्कारकर ] भोजन-भट्टको सब स्वानोपर भोजनभी सामग्री ही दिखाई पड़ती  
है । [ हाथ जोड़कर ] हे भगवन् चन्द्रया ! हे सज्जनोकी धार्मिक क्रियाधोमे सुदंके साय-साय  
स्मरण किए जातेवाले ! हे अमृत पिलाकर देवता धीर पितरोको वृष्ण करनेवाले ! हे पतके  
पारों धोर कीले हुए अँपेरेको हटानेवाले ! हे शिवजीके अँटा-जूटपर रहनेवाले ! आपकी  
प्रणाम है । ॥७॥ [ पूजा करता है । ] \*

विदूषक—महाराज ! आपके दादा चन्द्रया मुझ आह्लाखके मुँहसे आपकी वह भाषा से रहे हैं  
कि आप बसकर बैठिए जिससे मैं भी सुखसे बैठूं ।

राजा—[ विदूषकके कहनेसे बैठकर धीरे धपनी सेविनाधोकी देखकर । ] जब चारों धोर  
इतनी चाँदनी छिटकी हुई है तब ये धोषक क्यों बना रहसे हैं । जाइए, आप सब विश्राम-कीजिए ।

परिजन—जैसी देवकी आज्ञा । [ सब सेविकाएँ चली जाती हैं । ]

राजा—[ चन्द्रमाको देखकर विदूषकसे ] वयस्य ! धर्मो देवोके धानेमे तो बहुत देर है,  
इसलिये चलो मकेलेमे बैठकर तुम्हे धपने समनी व्यथा समझाऊँ ।

विदूषक—समझाधोमे बधा, वह तो दिखाई ही दे रही है । पर जबकीने धापपर धपना जैसा  
प्रेम जताया है उसके गरोसे तो धापको धपना मन धँवाले खून्य पाहिए ।

उर्वशी—सहि ! मवलो वनु तुमं अल्लवेदि । ता सिधं खेहि मं तस्य सुहमस्त वतादि ।  
(सखि ! मदनः सनु त्वामाग्रापयति । तन्नीघ्रं नय मं तस्य सुभयस्य भसतिम् ।)

चित्रलेखा—[बिलोपय] खं एदं परिवर्तितं विभ्र केलासिहदं पिमवमस्त दे भवखं  
उवपव ह् । (मन्देतरपरिणतितगिव कंसासिखरं प्रियतमस्य ते भक्तमृगपथे स्वः ।)

उर्वशी—तेण हि पहावदो आलोहि वाप कहि सो मम हिमभबोरो कि वा अल्लविद्वि  
ति । (तेन हि प्रभावाभानोहि तापस्वव स मम हृदयचोरः कि वानुतिष्ठतोति ।)

चित्रलेखा—[प्यात्वा विहस्यारमगतम्] भोनु कीवित्तं शव एवए । [प्रकाशम्] हता  
विद्वो मए एतो मणोरहस्यविभ्रातमाभमगुहं अल्लहवंतो उवहोमवस्ये भोमासि विद्वि ति ।  
(भवतु । प्रीक्षिष्यामि तावदेतया । हन्ता दृष्टो मया एव मनोरथनभप्रियासमागमसुखमनुभवमृगप-  
भोगसमेऽवकाशो तिष्ठतोति ।)

उर्वशी—[मिपादं नाटयति । नि.स्वस्व] बण्खो सो जलो ओ द्दवं भवे । (पन्थः ॥ जनो  
य एवं भवेद्व ।)

चित्रलेखा—सुदे ! का उखं बिता सुए विशा अण्णविमस्तमाभमस्त । (सुधे ! वा पुनञ्चिन्ता  
त्वया विनाम्यप्रियासमागमस्य ।)

उर्वशी—[सोभ्युकासम्] सहि अवविल्लखं सवेहदि मे हिममं । (सखि मवदिल्लं संदिग्धं  
मे हृदयम् ।)

चित्रलेखा—[बिलोपय] एतो मणिरुह्मिधप्यायादपिट्टगवो अमस्तमेतसहामो राएसी ।  
ता एहि उवसप्याम खं । (एव मणिरुह्मप्रतादपृष्ठवता वयस्यभासहामो राजपिः । तवेहि उप-  
रापवि एनम् ।)  
[उभे घवतरतः]

उर्वशी—सखी ! मेरा प्रेम तुम्हें भाजा दे रहा है कि तुम मुझे धीघ्र ही उस भाग्यदानके  
भवनमें पहुँचाओ ।

चित्रलेखा—[दिलकर] हम लोग तो तुम्हारे प्रियतमके उस भवनपर पहुँच ही गए जो  
ऐसा सुन्दर सगता है मानो कंसासकी बोटी उठकर यहाँ बनी भाई हो ।

उर्वशी—तब देवी शक्तिये ही यह बोली कि वह मेरे हृदयका चोर कहाँ है प्रीत  
स्वा कर रहा है ।

चित्रलेखा—[ध्याय करके हँसकर, भाप ही भाप] इससे छोटी ठिकोसी की भाप । [प्रकट]  
मैंने देल लिया । सखी ! वे भयनी मनवाही प्यारीसे मिलनेका सुख लूटते हुए भागनवके  
स्थानमें बैठे हुए हैं ।

उर्वशी—[दुखी होनेका नाट्य करती है । सम्बी साँस लेकर] यम्प है वह स्त्री जो ऐसी  
बड़भागी है ।

चित्रलेखा—धरी पगनी ! तुझे छोडकर वे धीर कोन-सी दुखरी प्रेमिकासे मिलनेकी  
धात सोचेंगे ।

उर्वशी—[सबी साँस लेकर] मेरा भोला-भाला हृदय तो यही मन्देह कर बैठ था ।

चित्रलेखा—[दिलकर] यह देखो ! वे राजपि वही मणिरुह्मं भयनकी छत्रपर  
घबने मित्रके साथ बैठे हुए हैं । धामो, इनके पास बढ चवा जाव । [दोनों उतरती हैं ।]

राजा—वयस्य रजन्या सह विजम्भते मदनयाषा ।

उर्वशी—अलिम्बिगलत्वेण इमिणा वप्रखेण आकण्ठिं मे हिस्रं । ता प्रंतरिदा एव्य मुण्णाम से सेरातावं जाव एषी संतप्रच्छेदी होदि । (अनिम्बितार्थेनैव वचनेनाकम्पित मे हृदयम् । तदन्तर्हिते शृणुवोऽस्य स्वरात्मन वावदावयोः सज्जप्रच्छेदो भवति ।)

चित्रनेत्रा—जं दे रोप्रदि । (यत् रोचते ।)

विदूषकः—एहं इमे अमिमगन्ता सेवीसंडु चंदवादा । (नन्वेतेऽमृतगर्भा, सेम्भन्ता वनप्रपादाः ।)

राजा—वयस्य ! एवपरिभिरनुपलम्बोऽप्यमातङ्कः । यस्य ।

कुसुमशयनं न प्रस्यग्रं न चन्द्रमरीचयो  
न च मलयजं सर्वांगीणं न वा मखियएयः ।  
मनसिजरुलं सा वा दिव्या ममालमपोहितुं.....

उर्वशी—[उरसि हस्त दत्वा ।] क्व वा भवरा । (का वा भवरा ।)

राजा—... ..

रहसि लघयेदारव्या वा तदाश्रयिणी कथा ॥१०॥

उर्वशी—हिमप्र । मं उज्जिमम इवो संकृतेण ॥१०॥ दाहि कलं चवसदं । (हृदय । मासुगिभ्रत्वा इतः सकान्तेन शब्देनापी कलमुपलब्धम् ।)

राजा—वयस्य । ज्यो-ज्यो रात बढ़ती जा रही है, त्यो त्यो मेरी काम-बोझ भी बढ़ती जा रही है ।

उर्वशी—एन गोरुमोल बचनोको सुनकर तो मेरा जो कांप उठ है । बसो, धिपकर इनकी मुपपुन दासं तो मुनें, बिसेसे जीका सन्देह तो मिट जाय ।

चित्रनेत्रा—जंसी कुम्हारी हज्जा ।

विदूषकः—ओ, अमृतके मरी हुई चन्द्रमानी किरणोम नहायो ।

राजा—वयस्य ! एन सब वषायेंसि यह बोझ नहीं जायसी । देखो ! मेरे इस प्रेमके रोगकी व तो पुनीकी कय्या ही दूर कर सकती है, न चन्द्रमाको किरणें हटा सकती हैं, न सारे शरीरमें नेप बिचा हुआ अन्दन ही मिटा सकता है और न मोतिपोंकी मासा ही बम बर नकती है । यदि एन रोगको कोई दूर कर सकता है तो बस वही एक स्वर्ग-बानी..... ।

उर्वशी—[हृदय पर हाथ रखकर] यह दूखी कौन होगी ?

राजा—.....या फिर एकान्तमें बड़ी हुई उसके प्रेमकी बातें ॥१०॥

उर्वशी—धरे हटा । तुम सबकुछ बहमागो हो कि मुझे छोडकर उनके पास चले गए हो ।

विदूषकः—आम् । 'हं वि पत्ययंतो जवा मिट्ठहरिणीमंसभोजनं ॥ लहे तदा हं संकित्त-  
भंतो प्रासासेमि घत्तारं । ( आम् । अहमपि प्राणममानो यदा विष्ट हरिणीमांसभोजनं न तमे  
सदेतःसङ्कीर्तयन्नापदासयाव्यात्मानम् । )

राजा—सम्पद्यते पुनरिदं भक्तः ।

विदूषकः—अवं वि तं अइरेण पाविस्सवि । ( भवानपि तामविरेण प्राप्स्यसि । )

राजा—राखे । एवं मन्थे.....

चित्रलेखा—सुय्य अत्तंनुद्धे सुण्ण ( मृगु, अत्तंनुद्धे मृगु । )

विदूषकः—कहं विअ । ( कथमिव )

राजा—.....

अयं तस्या रथचोभादसेनांसो निपीडितः ।

एकः कृती शरीरेऽस्मिन् शोपमङ्गं भ्रुवो भरः ॥११॥

चित्रलेखा—सहि ! किं सखि चित्तंवेअदि । ( सखि ! किमिदानीं विलम्बते । )

उर्वशी—[ सहस्रोपसृष्ट ] हला ! अन्नाहो वि भम द्विदाप् उवासीसो विम महाराजो ।  
( हला ! अन्नतोभिर मम स्थिताया उवासीन इव महाराजः । )

चित्रलेखा—[ सस्मितम् ] अइ अविबुधरिखे ! अखुविअत्ततिरस्सखरिखो भासि । अयि अति-  
रखरिखे । अन्नात्तित्तिरस्सखरिखिण्णसि । )

[ नेपथ्ये ]

विदूषक—हाँ ! मुझे भी जब कभी गीतनैपर हरिणीके बीठे भोजनका भोजन नहीं मिलता  
तब मैं उसका नाम लेकर ही अपना पेट भर लेता हूँ ।

राजा—पर तुम्हें यह सब मिला तो वाता है ।

विदूषक—आप भी बस उधे मिला ही समझिए ।

राजा—वयस्य ! मैं सोचता हूँ कि...

चित्रलेखा—सुन ली आपने !

विदूषक—हाँ, क्या सोचते हो ?

राजा—यही कि मेरे शरीरके सब अङ्गोंमें यह अन्ना ही अय्य है कि यह रसके हिलने-  
ठुलनेके समय मेरे साथ बँडे हुई उर्वशीके अन्नेको छूता बसता था । शरीरके दूसरे अङ्गोंको तो  
बस घरतीका बोन ही समझो ॥११॥

चित्रलेखा—क्यों सखी ! अन्न देर क्यों करती हो ?

उर्वशी—[ सहसा आने बलकर ] सखी, मैं महाराजके सामने आकर खड़ी भी हो गई हूँ,  
फिर भी ये मुझसे भोजन क्यों नहीं रहे हैं ?

चित्रलेखा—[ मुस्कराकर ] धरो हृदबझावेवाली ! तूने अभी अपनी मायाकी भोड़ती तो  
उतारी ही नहीं ।

[ नेपथ्ये ]

विदूषक — धाम् । 'हं' इति यत्पर्यन्तो जवा मिट्टहरिणीसंभोगार्थं एव नहे तदा एतं संकित्त-  
 मन्तो प्रासातेषु भवताम् । ( धाम् । महमपि प्रार्थयमानो यदा मिट्ट हरिणीमासभोजन न समे  
 तवैतत्कूर्तयन्ताश्वासयाम्यात्मानम् । )

राजा — सम्पद्यते पुनरिदं भवतः ।

विदूषक — भवं किं वा मदरेण फविस्तदि । ( भवानपि तामचिरेण प्राप्स्यसि । )

राजा — सद्ये ! एवं मन्ये.....

चित्रलेखा — सुख्य घरातुष्टे सुख्य ( भृगु, भवन्तुष्टे भृगु । )

विदूषक — कहां विप्र । ( फययिब )

राजा —.....

अयं तस्या रथवोयादसेनांसो निपीडितः ।

एकः कृती शरीरेऽस्मिन् शेषमङ्गं भुवो भरः ॥११॥

चित्रलेखा — सहि । किं वाँल किंमंबीप्रदि । ( सति । किमिवावी विमम्भते । )

उर्वशी — [ सहसोपसृत्य ] हता । धग्नयो वि मन द्विबाए जवासीणो विप्र महाराभो ।

( हता । प्रपतीर्षि मन स्वित्तावा जवासीन एव महारायः । )

चित्रलेखा — [ उस्मितम् ] इदं अचितुवरिदे । अलुक्किततिरक्करिणी भवति । मधि प्रति-  
 र्वरिदे । प्रनासिप्लतिरस्वरिणिकासि । )

[ वेपथ्ये ] - ६८ ( ईदृश स्वस्तिवापनवानुपरीधो

विदूषक — हाँ । मुझे भी जय कवी का

सब से जलका नाम लेकर ही मयना देत भर

राजा — पर तुम्हें यह सब <sup>११</sup> उकती है, पर तुमने अन्तमे जो बात कही, वही अधिक

विदूषक — धाम् <sup>१२</sup> उज्जना देउमी मत्त पहले हुए, शरीरपर केवल सुहागके महाने पहनकर

राजा — यवस्य <sup>१३</sup> मे अपनी बाँहे सजाकर धाती हुई देवीके रग-उगसे ही ऐसा जँघता है

चित्रलेखा — सु <sup>१४</sup> छोटकर मुझपर प्रथम हो गई हैं ॥१२॥

विदूषक — हाँ, <sup>१५</sup> कर ] जय हो धाम्यपुत्रकी, जय हो ।

राजा — यही <sup>१६</sup> महाराजकी, जय हो ।

इसदके समय मेरे संगत है । [देवीका हाथ पकड़कर उन्हें बँटाता है ।]

सब घरतीका बोझ हो धूमय जो देवी अन्त इनके लिये सटोक बैठ गया है क्योंकि इनका तेज

चित्रलेखा — मपो स <sup>१७</sup> कम नहीं है ।

उर्वशी — [ सहसा <sup>१८</sup> सोठकर यह बात सचकी कही है ।

फिर भी वे मुझसे बोल गय लेकर एक विशेष शत करना चाहती हूँ, इसलिये प्रार्थना है कि

चित्रलेखा — [ मुस्कराकरनेकी कृपा करें ।

उतारी ही नहीं ।

इसमे नष्ट किस बातवा ? यह जो धामकी कृपा है ।

धामना मिले, ऐसे कष्ट सदा मिला करें ।



राजा—कि नाशयेष्येतेहृद्या व्रतम् ।

[देवी निपुणिका मुसमयेसते ।]

निपुणिका—भट्टा पिशाचुष्यसादरं स्वाम् । (मर्तं विषानुपसादनं नाम् ।)

राजा—[देवी विभीषण] वचोवम् ।

अनेन फण्याणि मृणालकोमलं धतेन गात्रं ग्लपयस्यकारणम् ।

प्रसादमाकङ्क्षति यस्तत्रोत्सुकः सकिं त्वयादासजनः प्रसाद्यते ॥१३॥

उर्वशी—महंतो कञ्चु से इभरित्त चट्टुमारणो । (महात्मसु मय्य एतदवा बहुमानः ।)

विश्लेषा—अहं मुझे धरणासंकतप्येमाणो स्वामरिषा भारिमाए अहिषं दक्षिणा होमि ।

(प्रति मुग्धे । मय्य सकातप्रेमाणो नागरिका भार्यायामपिक दक्षिणा भवन्ति ।)

देवी—[सस्मितम्] खं इमरस बरुवरिण्महत्सु अषं पहाचो नं एसिषं संताविदो भण्डइतो ।

(नन्वेतस्य व्रतपरिग्रहस्याप्य प्रमायो यदेसावन्मन्त्रित भार्यपुत्र ।)

विदूषक—बिरमहु मर्तं । स कुतं सुहासिषं पञ्चाचरिदुं । (विरमहु भवान् । न दुक्तं सुभाषितं प्रत्याचारिमुद् ।)

देवी—वारिषाप्रो भास्येभ श्रीबहारिषं जाव मरिहृमिप्रसिद्धगदे अरुपादे अक्येमि । (दारिकाः धामयणीपहारिका दाव-मरिहृम्यपृष्ठमतीरक-प्रपादानर्चामि ।)

परिष्वन—अ भट्टिण्यो मणालेशेरी । प्रयो मंभकुमुपाविज्वहारे । (यद्भट्टिण्यो भाषायपति । एव मय्यकुमुपाद्युपहार ।)

राजा—प्राण कीन-सा व्रत कर रही हैं ?

[देवी निपुणिकाका मुंह देखती हैं ।]

निपुणिका—महाराज ! इसे प्रियकी प्रसन्न करनेवासा व्रत कहते हैं ।

राजा—[देवीको देखकर] हे कल्याणी ! यदि इतनी-सी ही बात हो तब तो अपने कमलके समान कोमल शरीरको व्यर्थ ही व्रत करके सुखा रही हो क्योंकि धापका जो दास स्वयं प्रापकी प्रसन्न देखनेके लिये मयीर हो रहा हो उसे भी क्या कहीं प्रसन्न करनेकी आवश्यकता हुआ करती है ॥१३॥

उर्वशी—इन देवीको तो महाराज बहुत मानते हैं ।

विश्लेषा—अरी पयनी ! जो अतुर माथरिक किसी दूसरी स्त्रीसे प्रेम करने लगते हैं वे अपनी पहली पत्नीका भीर भी अधिक धादर किया करते हैं ।

देवी—[मुस्कराकर] सबभुज यह वतका ही प्रभाव है कि धार्यपुत्रने इतना तो कहा ।

विदूषक—अच्छ रहने दीजिए अपनी बातें । व्रत पूजाकी बातोंमे भोज-भेष निकालना ठीक नहीं होगा ।

देवी—दासिण्ये ! पूजाकी सामग्री को ले पायो निषेध मैं मरिहृम्य-मवल पर फेंको हुई पत्रनाकी किरणोंकी पूजा ठी करवूं ।

दासिनी—बैसी भट्टिनीकी भाषा । सीजिए, यह है चन्दन-कृत धादि पूजाकी धामग्री ।

देवी—उदरलेप । [नाट्येन गणपुष्पादिभिरचन्द्रशशानम्यर्च्यम् ।] हृदि लिखिष्ये ! इमे मो-  
हारिकमोक्षेण अञ्जनामालासं सञ्जायेहि । (उपनयत । हृत्त्रेनिपुष्टिके । एतानोपहारिकमोक्षकानां-  
भाणवकं सम्मप ।)

निपुष्टिका—अं भट्टिणी अणवेदी । अञ्जनामालासं अणं दाव दे । (यद्भट्टिन्यातापयति ।  
याणवक इद तावते ।)

विदूषकः—[मोक्षकरावं वृहीत्या ।] सोद्विष भोदीए । अहकलो दे एको धवो भोवु ।  
(स्वस्ति मवर्षम् । अहकमं तवैतद्वचं मवतु ।)

देवी—अञ्जनास इहो दाव । (भार्यपुत्र इतस्तावत् ।)

राजा—अवमस्मि ।

देवी—[राजा पूजामभिनीय प्राञ्जलिः प्रणम्य ।] एता अहं देवताभिहृणं रोहिणीमिमल-  
दणं सखीकरिष अञ्जनासं अणुवतावेमि—अञ्जनासुदि अं इतिवचं अञ्जनासो यथेदि  
जा अ अञ्जनाससत समासमण्यएविसो ताए सहु मए पीविबंयेण यतिवचं शि । (एताहं  
देवतामिपुत्रं रोहिणीमृषसाञ्जनास सखीकरियायंपुत्रमनुप्रसादयामि—असपभृति या कियमार्यपुत्रः  
प्रार्थयते या चार्थपुत्रस्य समासमण्यवितो एता सहु मया प्रोदियन्थेन वतितव्यम् इति ।)

उर्वशी—अम्महे ए अणो रिषरं से वमलं शि । मव यल विस्तातयिसवं हिममं  
संभुतं । (अहो न जाने किमपरमस्या यचननिति । ममपुत्राभ्यासविशव हृदयं सहुत्तम् ।)

विप्रलेखा—सहि महापुत्रावाए परिववराए अञ्जनासो अणंतराप्रो दे विप्रसना-  
अमो हृषिसिबि । (उसि गहानुभावया पतिव्रतयाम्यनुजातः अण्णययस्ते प्रियसमागमो भवि-  
ष्यति ।)

देवी—सामो । [सामसो नेकर गन्ध कुल धाविते अञ्जनासो किरणोंकी पूजा करतका नाट्य  
करती है ।] सती निपुष्टिका । ये पूजाके सद्गुण धार्य माणवकको दे डावो ।

निपुष्टिका—जैती भट्टिनीकी भाजा सीजिए धार्यं माणवक । ये धापके सिये हैं ।

विदूषक—[सद्गुणका पात्र नेते हुए] धापका कस्यासु हो । धापका यह सब बहुत फले ।

देवी—भार्यपुत्र ! इधर तो धापए ।

राजा—सीजिए, आ गया ।

देवी—[राजाकी पूजाका नाट्य बरके धीर हाथ जोडकर] धाप मैं रोहिणी धीर चन्द्रवाके  
संती जोडेको साशी बनाकर धार्यपुत्रको प्रणम कर रही हूँ । धापसे जिस किसी स्त्रीको  
भी धार्यपुत्र चाहेंगे धीर जो भी स्त्री धार्यपुत्रको परती यचना चाहेंगी उसको साथ मैं बड़े  
प्रेमसे रहा कहूँगी ।

उर्वशी—अरी ! न जाने ये किस दुसरी स्त्रीके सिये कह रही हैं । पर कमसे कम इससे  
मेरे हृदयको भरोसा तो मिला ।

विप्रलेखा—अरी ! इस उदार हृदयवासी पतिव्रताकी बातसे एक बात तो पक्की हो  
गई कि अब तुम्हें अपने प्यारेसे मिलनेसे कोई धापा नहीं पड़ेगी ।

विद्वेषकः—[अपवाच्यं ।] भिष्णुहृदये मन्त्रे पलायिते स्थित्विरहो धीवरो भणति—  
गच्छ धम्मो मे हृदित्तविति । [प्रकाशम्] मोदि कि तारितो वे विप्रो तत्तमम् । [मित्रहृस्ते  
मस्त्ये पलायिते त्रिदिग्गता धीवरो भणति गच्छ धर्मो मे भविष्यतीति । भवति ! कि तादृशस्ते  
त्रिनस्तत्र भवान् ।]

देवो—मूढ ! ग्रहं खलु मारणो गृह्णावताशोस भ्रमजउत्तं लिम्बुदसरीरं पादं इच्छामि ।  
एतियस्य चित्तेहि दाव विधो स वसि । (मूढ ! ग्रहं खलु मारणः मुखवसानेनायं पुत्रं निवृत्तसरीरं  
कर्तुं निच्छामि । एतावता चिनय सावत्प्रियो न वेति ।)

राजा—

दातुं वा प्रभवसि मामन्यस्मै कर्तुमेव वा दासम् ।

नाहं पुनस्तथा त्वयि यथा हि मां शंकरे भीरु ॥१४॥

देवो—होहि वा मा या । जपत्सिद्धिं संपादितं मए विप्राण्युत्पन्नरत्नं त्याग वरं । शरि-  
रामो एव गच्छस्य । (भव वा मा वा । यथाविदित्त संपादित मया त्रियानुप्रसादनं नाम व्रतम् ।  
शारिकाः एव गच्छानः ।)

[इति प्रसिप्ता]

राजा—प्रिये ! न खलु प्रसाहितोऽस्मि यत्र संप्रति विहाय गम्यते ।

देवो—अजउत्तरा ! प्रसन्निधयुष्यो मए सिमसो । (आर्यपुत्र ! धनयितपूर्वो भवा भिदाः ।)

[इति सपरिवारा निष्कतता ।]

उर्वशी—सहि ! निम्नजसो राएसी । ए खए हिमसं सिवसेतुं खल्लंभि । (सति ! प्रियकत्वभो  
राजपिः । पुनर्हृदय निवर्तयितुं शक्नोमि ।)

विद्वेषक—[अन्ततः, राजाशे] अब मच्छरी भणुएके हापसे निकलकर पागोमें भाग जाती  
है तब वह भी निराश होकर यही कहता है—जा ! मुझे गुण्य ही होगा । [प्रकट] देवो !  
या महापुत्र भावको इतने प्यारे हैं ।

देवो—अरे मूर्ख ! मैं अपने सुखकर बलिदान करके भी धर्मपुत्रको सुखी देखना चाहती  
हूँ । इसीसे सप्रभ ते कि वे मुझे प्यारे हैं या नहीं ।

राजा—देवी ! जाहो तो कुछ मुझे किसी दूसरेको दे जाओ या चाहो अपना ही दास  
बनाकर रख छोड़ो, पर तुम मुझे अपनेसे जैसा दूर सम्बन्ध बँटो ही बँटो बात नहीं  
है ॥१४॥

देवो—दूर हो या न हो, पर मैंने तो प्रियको प्रसन्न करनेवाला भी प्रत ठाना था वह  
पूरा ही कर लिया । धायो दासियो ! चलो चलें । [पलनेकी प्रस्तुत होती है ।]

राजा—यदि मुझे छोड़कर चली जाओगी तो सम्बन्ध तो कि मैं प्रसन्न नहीं हुआ ।

देवो—आर्यपुत्र ! मैंने प्रान्तक कभी अपने अतका नियम नहीं सोचा है ।

[दासियोके साथ चली जाती है ।]

उर्वशी—सचो ! राजा अपने पक्षीको इतना प्यार करते हैं तबपर भी मैं उन परसे  
अपना मन हटा नहीं पा रही हूँ ।

चित्रलेखा—कि उरु तुए गिरासाए खिचतीमदि । ( कि पुनस्त्यवा निराशया निवर्त्यते । )

राजा—[ आसनमुत्थेय ] वयस्य न ललु दूर गता देवी ।

विदूषक—भरा धिरसद्ध जे सि वस्तुकामो । अराम्भो सि वेग्नेण प्रावुरो विप्र तेर मुत्तो भव तसहोदोए । ( भण विथल्ल वदसि वनतुलाम । असाध्य इति वंछेनातुर इय स्वरं मुक्तो भवति-स्त्रप्रभदत्या । )

राजा—अपि नामोर्वशी ।

उर्वशी—अज्ज किदप्पा भवे । ( अज कृतार्थं भवेत् । )

राजा—

गूढा नूपुरशब्दमात्रमपि मे फान्तं श्रुत्वा पातयेत्

पश्चादेस्य शनैः कराम्युजतृते कुर्वीत वा लोचने ।

इम्येऽस्मिन्नवतीर्य साव्यसवशान्मन्दायमाना वलात्

आनीयेत् वदात्पदं चतुरया सख्या ममोपान्तिकम् ॥१५॥

चित्रलेखा—सहि ! उच्यति इम दाव से बलीरुह सपरदेहि । ( सधि ! उर्वशी इम तावदस्य महीरय सम्पादय । )

उर्वशी—[ सहाध्यसम् ] भोदु ! कीलिसस दाव । ( भवतु क्रीडिष्यामि तावत् । ) [ इति तिरस्कारणीमपतीव पृष्ठतो बस्या राज्ञो मग्ने सङ्गृह्णाति । ]

[ चित्रलेखा तिरस्कारिणीयपत्नीय विदूषक वतापयति । ]

चित्रलेखा—तो क्या तुम सब निराश होकर लौट जाना चाहती हो ?

राजा—[ अपने आसनपर बैठकर ] वयस्य ! अभी देवो दूर तो नहीं पहुँची होगी ।

विदूषक—जो कहना हो जी बोलकर कह डालो ; जैसे रोगीको असाध्य समझकर बंध उसे छाड़ देता है वैसे ही आपको भी देवीने यह समझकर छोड़ दिया कि सब भाग सुधार नहीं सकते ।

राजा—क्या अच्छा हो यदि उर्वशी \* \* \* ।

उर्वशी—आज कृतार्थ हो जाय ?

राजा—बया अच्छा हो यदि उर्वशी इस समय छिपे छिपे आकर अपने विदूषकी मीठी छान छान ही सुना लाय वा पीछेसे आकर अपने कमसके समान कोमल हृदयको तेरी भाँसे बन्द कर ले या इस भवनपर उतरकर यह डरती हुई धीरे धीरे आगे बड़े धीरे उसकी चतुर दाधी उसे धींचकर मेरे पास पहुँचा दे ॥१५॥

चित्रलेखा—आमो लकी उर्वशी ! अब इनके मनकी हवास पूरो कर दो ।

उर्वशी—[ अधोरतारो ] अच्छा ! पहले मैं इनके कुछ ठिठोसी करती हूँ ।

[ मामानी भोडनी उतारकर पीछेसे पहुँचकर राजाको भाँसे बंद लेती है । ]

[ चित्रलेखा भी मामानी उतारकर विदूषकको सकव करती है कि बटाया मत । ]

विदूषक—भो धर्मराज ! क्या उरल एता । ( जो बयस्य ना पुनः एषा । )

राजा—[ स्पर्शं रूपमित्वा ] सखे ! नारायणोपसभया सेयं बरोहः ।

विदूषकः—बहूँ भवँ प्रवणच्छदि । ( कथं भवानवगच्छति । )

राजा—किमत्र श्रेयम् ।

शङ्कामनङ्गविल्लप्यं सुरयेदन्या न मे करस्पर्शति ।

नोत्सृजसिति तपनकिरशौथन्द्रस्यैवांशुभिः कुमुदम् ॥१६॥

उर्वशी—[ हस्तो मपनीय उतिष्ठति । विच्छिद्यस्वसृस्य ] जेधु जेधु महाराजो ( जयतु जयतु महाराजः । )

राजा—सुंदरि ! स्वागतम् । [ हस्ये हासन उपवेशयति । ]

विजनेशा—अपि मुह वमातस्त । ( अपि मुत्त वपस्यस्य । )

राजा—नन्येतदुपपन्नम् ।

उर्वशी—हला देवीए दिख्लो महाराजो ! अदो ले पणमयवी विम सरीरसंपर्कं गदाम्हि । मा वसु म पुरोभाइलि तामरवेहि । ( हला देव्या दत्तो महाराजः । प्रतोऽस्य प्रलयवशीव शरीर-सम्पर्कं गतास्मि । मा वसु मां पुरोभागिनी समर्थवन्व । )

विदूषक—बह इह उत्रेव बुग्हाण मरुपमिदो सुग्गो । ( कथं इहैव पुत्रयोःस्तमितः सूर्यः । )

राजा—[ उर्वशीमवसोऽकथम् ]

देव्या दत्त इति यदि व्यापारं ब्रजति मे शरीरेऽस्मिन् ।

प्रथमं कस्यानुमते चौरितमपि मे त्वया हृदयम् ॥१७॥

विदूषक—असो बयस्य । ये गोन हैं ।

राजा—[ स्पर्शते महकानता हृषा ] मित्र ! यह वही सुन्दर अधीशानी उर्वशी है जो नारायणकी आँपने उरवान हुई है ।

विदूषक—आपने महकान कैसे लिया !

राजा—इसमें महकानेकी क्या बात है । सुन्दरी कोई ऐसी स्त्री नहीं है जो मेरे काम-नीहित शरीरको अपने हाथसे सुन्दर मुछी कर दे । पन्द्रमाकी चिरछोति चित्त छटनेवाला कुमुद सूर्यकी चिरछोति नहीं चित्त करता ॥१६॥

उर्वशी—[ हाथ हटाकर शरीर ही आखी है । मुछ हटकर ] अथ हो महाराजकी जय हो ।

राजा—स्वागत करता हूँ सुन्दरी ! [ अपने ही आसन पर बैठे नेता है । ]

विजनेशा—बटिए आप प्रणमता सो है ।

राजा—प्रणमता तो धर्मो-धर्मो हाथ सगी है ।

उर्वशी—दाती ! देखने महाराजको मेरे हाथ दान दे जाना है इमलिये मैं दानकी विवाहिता रसोके पमान ही दानके गटकर बैठे हूँ । मुम मुझे कुनटा न समर्थ बंठना ।

विदूषक—आप सोच वहाँ सोचिये ही बटी हुई थी क्या ?

राजा—[ उर्वशीकी ओर दृष्टकर ] आत्र तो मुम यह बटकर मुनने सम्बन्ध जोर रही हो कि देवीन मुन् नुःहारे हाथ सोच विद्या है, पर यह तो बठामा कि मुमने पहले जो मेरा हृदय पुराया था कर बिगत पुणकर पुणया था ॥१७॥

चित्रलेखा—वधस्त श्लिखतरा एता । संपद मह विष्णुवराह सुखी भद्रु । ( वयस्य ! निष्तरा एता । साभ्रतं मम विज्ञापना श्रूयताम् । )

राजा—प्रवहितोऽस्मि ।

चित्रलेखा—वसन्तासुतरं उष्णसमयं भगवं सुखी भय उवचरिदन्वो वा जहा हर्षं मे विप्रसही समस्त ए उषकंटेरि तहा वधस्तेषा कावर्ष्यं । ( वसन्तानन्तरमुष्णसमये मध्याह्नोर्यो मधोपचरि-समयः । तद्यथेयं मे प्रियसखी स्वर्गवि नोत्कण्ठते तथा भयस्येन कर्तव्यम् । )

विदूषकः—किं वा सागे सुमरिदध्वं । ए वा तद्व प्रवृत्तिरि ए वा वीरवि । केवलं धरिणि-सिंह एमणोहि मोलाः विदंभीप्रति । ( किं वा स्वर्गं स्पर्तव्यम् । न वा तत्रास्ते न वा वीर्ये । केवलमनिमित्तैर्नर्नर्भोना विदग्ध्यन्ते । )

राजा—भद्रे ।

अनिर्देश्यसुखः स्वर्गः कस्तं विस्मारयिष्यति ।

अनन्यनारीसामान्यो दासस्त्वस्याः पुङ्गवः ॥१८॥

चित्रलेखा—अणुगहीदग्धि । हला उवसि अकाररा भविम विसगोहि मं । ( अनुगही-तास्मि । हला उर्वशी सकातरा भूत्वा विसर्जय याम् । )

उर्वशी—[ चित्रलेखा परिध्वज्य सषण्णम् ] सहि मा वसु मं विगुमरेहि । ( सखि मा वसु मा विस्मर । )

चित्रलेखा—[ हस्मिणम् ] वधस्तेषा संपद तुमं एव एवं मए जाविबन्वा । ( वयस्येन सकृदा स्वर्गमेधन्मया वाचितव्या । ) [ इति राजानं प्रणम्य निष्कान्तर । ]

चित्रलेखा—वयस्य ! इस बातका इनके पास कोई उत्तर नहीं है । अब प्राय मेरी बात सुनिए ।

राजा—कहिए, मैं सुन रहा हूँ ।

चित्रलेखा—वसन्त ऋतुनेपर गर्मिये मुझे सूर्यकी सेवा करनी है । इसलिये प्राय इन्हे ऐसा बाँध रखिए कि ये ध्यारी सखी स्वर्ग जानेके लिये पवरा न सके ।

विदूषक—स्वर्गमें धरा ही क्या है जिसे ये स्मरण करके पवरायेगी । न वहाँ कुछ खानेकी है न पीनेकी । वहाँके लोग तो बन दिन-रात मत्स्यकी खान वरा मोक्ष काँटे बँटे रहते हैं ।

राजा—भद्र ! स्वर्गमें ऐत्रे-ऐत्रे सुख भरे पडे हे । उनका वर्णन नहीं हो सकता । इसलिये उन्हे मुला कौन सकता है, पर मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैं पुङ्गवः सन स्त्रियोषे मन हटाकर केवल प्रापकी उल्लेखी हो सेवा करता रहूँगा ॥१८॥

चित्रलेखा—यह तो आपकी कृपा है । सखी उर्वशी ! मुझे जो खोसकर बिदा हो दो ।

उर्वशी—[ चित्रलेखासे बले विसर्ज कछुलाने साथ । ] सखी ! मुझे भूल न जाना ।

चित्रलेखा—[ मुसकराकर ] अब तुम मित्रके पास पहुँच गई हो इसलिये यदि यह बात सुनने में कहती तो अधिक ठीक होता ।

[ राजाको प्रणाम करके चली जाती है । ]

विदूषक—भो वधरस ! कय जण एसा । ( भो वयस्य का पुन एषा । )

राजा—[ स्वयं रूपयित्वा ] सखे ! नारायणोस्तभवा सेष बरोरु ।

विदूषक—कह भव धववच्छदि । ( कय भवानवगच्छति । )

राजा—किमत्र जेयम् ।

अङ्गमनङ्गफिलिष्टं सुरपयेदन्या न मे करस्पर्शात् ।

नोद्धसिति तपनकिरखैश्चन्द्रस्यैवांशुभिः कुमुदम् ॥१६॥

उर्वशी—[ हस्तो म्रणनीय उत्तिष्ठति । किञ्चिदपसृत्य ] जेडु जेडु महाराजो ( जयतु जयतु महाराज । )

राजा—सुहरि ! स्वागतम् । [ इत्येतासन उपवेशयति । ]

विभक्तेशा—अबि मुह बघसस्त । ( अपि मुञ्च वयस्यस्य । )

राजा—मन्थेतुपपन्नम् ।

उर्वशी—हला देवोष विभक्तो महाराजो । धरो ते पल्लववरो विष सरोरसपक गवन्हि ।  
मा कलु म पुरोभाङ्गिण समभेहि । ( हला देव्या बत्तो महाराज । यतोऽय प्रणयवतीव सरोर-  
सपकं गतास्मि । मा कलु मा पुरोभागिनो समर्धयस्व । )

विदूषक—कह इह क्जेव सुम्हास भत्वामिबो सुजयो । ( कय इहेव युवयोस्तमित सूर्यं । )

राजा—[ उर्वशीमगलोकयन् ]

देव्या दत्त इति यदि व्यापारं व्रजति मे शरीरेऽस्मिन् ।

प्रथम कस्यानुमते चोरितमपि मे त्वया हृदयम् ॥१७॥

विदूषक—क्यों वयस्य । ये कौन हैं ।

राजा—[ स्वयंसे पहचानता हुआ ] मित्र ! यह वही सुन्दर जाँघोवाली उर्वशी है जो नारायणकी जाँघसे उलटन हुई है ।

विदूषक—आपने पहचान कैसे किया ।

राजा—इसमें पहचानेकी क्या बात है । दूसरी कोई ऐसी स्त्री नहीं है जो मेरे काम-पीडित शरीरकी मरने हाँसे झूकर सुखी कर दे । अम्हवाकी किरणोंसे जिस उठनेवाला कुमुद सूर्यकी किरणोंसे नहीं सिका करता ॥१६॥

उर्वशी—[ हाथ हटाकर सबी हो जाती है । कुमुद हटकर ] कय हो महाराजकी जम हो ।

राजा—स्वागत करता हूँ सुन्दरी ! [ अपने ही प्राण पर बैठ लेता है । ]

विभक्तेशा—बहिष्ण प्राण प्रसन्नता तो है ।

राजा—प्रसन्नता तो अभी अभी हाथ सबी है ।

उर्वशी—सखी ! देवीने महाराजको मेरे हाथ धान दे डाला है इसलिये मैं इनकी विवाहिता स्त्रीके समान ही इनसे उठकर बैठो हूँ । तुम मुझे कुलटा न समझ बैठना ।

विदूषक—अप्य सोच यहाँ सौमते ही दटो हुई थी क्या ?

राजा—[ उर्वशीवः शिर देखवर ] भाब तो तुम यह कहकर मुझे सम्बन्ध जोड़ रही हो कि देवीने मुझे सुम्हारे हाथ बाँध दिया है, पर यह तो बताया कि तुमने पहले जो मेरा हृदय चुराया था यह जिसके पुञ्जर चुराया था ॥१७॥

चित्रलेखा—धर्मस्य शिष्टतरा एसा । संबद मह विष्णुवला सुणी भद्रुः । ( धर्मस्य ! निरुतरा एसा । साम्प्रत मम विज्ञापना श्रूयताम् । )

राजा—भवहितोऽस्मि ।

चित्रलेखा—यसंतासंस्तर उग्रहसमए भयवं सुवजो मए उपचरिवन्थो ता अहा इधं मे विघतहो सगस्त ख उपकंठेदि तहा वसस्तेख कावय्वं । ( नतन्तानन्तरमुष्णसमये भगवान्मूर्धो मयोपचरि-  
सन्व । सद्येषं मे त्रियसन्धो स्वर्गाय भोक्तव्यते तथा मयस्येन वतंन्वम् । )

विदूषक.—किं वा सगो गुपरिवन्धं । ख वा स्तव ग्रहोषदि ख वा वीमदि । केवलं प्रतिमि-  
सेहि एभ्रणेहि मोक्षा चित्तवोधति । ( किं वा स्वर्गं स्वतंणम् । न वा तत्राप्यते न वा पीयते ।  
केवलमनिमित्तैर्नैयमैर्निना विदग्धन्वते । )

राजा—भद्रे !

अनिर्देश्यसुखः स्वर्गः कस्तं विस्मारयिष्यति ।

अनन्यनारीसामान्यो दासस्त्वस्याः पुरुरवाः ॥१८॥

चित्रलेखा—अलुपहोदग्निः । हला उच्यति अकाररा भविम विसग्नेहि मं । ( अनुग्रहो-  
दास्मि । हला उच्यंती अकारतरा सूत्रा विसर्जय माम् । )

उच्यंती—[ चित्रलेखा परिष्वज्य सकण्ठम् ] सहि मा वधु मं विमुचरेहि । ( सति मा वधु  
मा विसर । )

चित्रलेखा—[ सस्मितम् ] अस्मत्सेख संपदा तुमं शृण्व एवं मए जाविशम्वा । ( मयस्येन  
सङ्गता स्वर्गमेतन्मया प्रापितव्या । ) [ इति राजान प्रणम्य निष्क्रान्ता । ]

चित्रलेखा—वयस्य ! इत यात्रका इनके पास कोई उत्तर नहीं है । अब भाप मेरी बात  
सुनिए ।

राजा—कहिए, मैं सुन रहा हूँ ।

चित्रलेखा—बसन्त बोटनेपर गर्भमि मुझे सूर्यको सेवा करनी है । इसलिये भाप इन्हें ऐसा  
बाप रखिए कि मे प्यारी सली स्वर्ग जानेके लिये पबरा न उठें ।

विदूषक—स्वर्गम धरा ही क्या है जिसे मे स्मरण करके पबरायेंगी । न वही कुछ  
खानेकी है न पीनेकी । वहाँके लोग तो बस दिन-रात मज्बूरीके तपान करा पाँख फाँटे  
बैठे रहते हैं ।

राजा—भद्र ! स्वर्गसे ऐसे-ऐसे सुख भरे पड़े हैं कि उनका वर्णन नहीं हो सकता । इसलिये  
उन्हे भुला नोन सकता है, पर मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैं पुरुरवा सब स्त्रियोसे मन  
हटाकर केवल भापकी सलोकनी ही सेवा करता रहूँगा ॥१८॥

चित्रलेखा—उह तो भापकी कृपा है । सली उच्यंती ! मुझे भी शोसकर बिदा छो दो ।

उच्यंती—[ चित्रलेखासे गले मिलकर कण्ठ्याके साथ । ] सली ! मुझे भूल न जाना ।

चित्रलेखा—[ मुसकराकर ] यत्र तुम मित्रके पास पहुँच गई हो इसलिये यदि यह बात  
तुमसे मैं कहती तो अधिक ठीक होता ।

[ राजाको प्रणाम करके चली जाती है । ]



विदूषकः—विद्विमा मखोरहसंपवोए षट्ददि भवं । ( दिष्ट्या मनोरथसम्पत्त्या वधते भवान् । )

राजा—इयं तावद्द्विमंम । पश्य—

सामन्तमौलिमणिरञ्जिपादपीठं एकातपत्रभवनेर्न तथा प्रभुत्वम् ।

अस्याः सखे ! चरणयोरहमद्य कान्तं आञ्जाकरत्वमधिगम्य यथा कृतार्थः ॥१६॥

उर्वशी—एतस्य मे वाघाविहयो षष्ठो विग्रहरं भोक्तुं । ( नास्ति मे वाग्विमकोऽतः प्रियतर मन्त्रविभुम् । )

राजा—[ उर्वशी हस्तेनावलम्ब्य ] अहा विद्वत्सर्वर्षेण ईक्षितलाभो नाम । यतः॥

पादास्त एव शशिनः सुखयन्ति गात्रं वाणास्त एव मदनस्य मनोनुकूलः ।

संरम्भरूक्षमिव सुन्दरि ! यद्यदासीत् त्वरस्तङ्गमेन भमतचदिषानुनीतम् ॥२०॥

उर्वशी—अवद्वान्हि चिरकारिषा भग्नजलस्त । ( मयराद्धास्मि विरकारिकावंपुत्रस्य । )

राजा—मुग्धरि ! मा संवृषु ।

यदेवोपनतं दुःखात्सुखं तद्रसवचरम् ।

निर्वाणाय तरुच्छाया सप्तस्य हि विशेषतः ॥२१॥

विदूषकः—ओ सेविदा पयोत्तरमलीषा चरवावा । समग्रो वसु दे वासपरपवेत्तस्त । ( भोः सेविता, प्रबोवरमलीषाश्चपादाः । समयः लसु ते वासवृहप्रवेक्षस्य । )

राजा—तेन हि सत्यास्ते मार्गमादेशय ।

विदूषकः—मनोरथ पूरे होमेशी में घापको बधाई देता हूँ ।

राजा—यह तो मेरी सखे बड़ी जीत है । देखो—इतकी धाना पालन करनेमें मैं अपनेको जितना पण्य समझता हूँ उतना मैं सारी गृष्ठीका स्वामी होने तथा अपने पैरके पीडेकी सौमान्तके राजाभोके मुहुटकी मण्डिपोंसे रंगानेको भी अच्छा नहीं समझना ॥१६॥

उर्वशी—इससे बढ़कर प्यारी बात मुझे सुक ही नहीं रही है ।

राजा—[ उर्वशीको हाथसे पकड़कर ] जब चाहे तुई बस्तु मिल पाती है तब बिरोधी वस्तुएँ भी अच्छी लगने लगती हैं । क्योंकि चन्द्रमाकी वे ही किरणें भाज सुल दे रही हैं और बामदेवके वे ही बाण भाज मन्को मा रहे हैं । हे सुन्दरी ! जो-जो वस्तुएँ शोधपरी या कठोर जान पड़ती थी वे सब तुम्हारे मिलते ही कोयल हो गई हैं ॥२०॥

उर्वशी—मैंने भानेमें इतनी देर वरक घायेपुत्रका बटा अपराध किया है ।

राजा—ऐसी बात न बहो सुन्दरी ! दुखने पीछे जो सुल मिलता है वह बडा रसीला होता है । पेड़की छाया उखी मनुष्यको अच्छी लगती है जो धूपमें उपजर पाया हो ॥२१॥

विदूषकः—पणिए ! सौकके चन्द्रमाकी किरणोंका बहुत धानन्द ले चुके : अब घापके घपन-पर बानेका समय हो गया है ।

राजा—ओ घपनी शम्भ उर्वशीको बहाँ ले चलो ।

विद्वपकः—इदो इदो भयवी । ( इत इतो भयती । )

[ इति सर्वे परिक्रमन्ति । ]

राजा—सुन्दरि ! इयमिदानीं मेऽभ्यर्चना ।

उर्वशी—कोरिती ता ( कीदशी ता )

राजा—

अनुपनतमनोरथस्य पूर्वं शतशुणितेव गता मम त्रियामा ।

पदि तु तव समागमे तथैव प्रसरति सुभ्रु ततः कृती भवेयम् ॥२२॥

[ इति निष्क्रान्ता सर्वे ]

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥

विद्वपक—इपरसे भाइए देवी ! इपरसे ।

[ सब घूमते हैं । ]

राजा—सुन्दरी मेरी एक इच्छा है ।

उर्वशी—क्या ?

राजा—यही कि मनोरथ पूरा होनेके पहले, रातें जैसी सीसुनी लम्बी जान पड़ती थीं यदि मम तुम्हारे मिला जानेपर भी वैसी ही लम्बी ही जायें तो मैं अपनेको जरा भाग्यवान् समझूँ ॥२२॥

[ सब बसे जाते हैं । ]

॥ तीसरा अंक समाप्त ॥

## चतुर्थोऽङ्कः

( नेपथ्ये सहज-न्याचित्रलेखे प्रावेक्षिन्त्याखितिका )

पिअसहिविओअविमथा सहि सहिआ न्याउला समुल्लनड ।

सूरकरफंसविअसिअतामरसे

सरवरुच्छंगे ॥१॥

( प्रियसलोकियोवविमथा सखी सहिता व्याकुला समुल्लसपति ।  
सूर्यकरस्वसंपिकसिततामरसे सरोवरोत्सवे ॥ )

[ तत्र प्रतिघति विमथस्का चित्रलेखा सहजन्या च ]

चित्रलेखा—( प्रवेशानन्तर द्विपरिकया दिशोऽनलोचय )

सहअरि दुपन्नालिद्धअं सरवरअम्मि सिशिद्धअं ।

याहोवग्निअणअणअं तम्मइ हंसीजुअसअं ॥२॥

( सहजरी दुःखालीढ सरोवरे स्निग्धम् ।

वाग्नापयस्मितमयन ताम्बति हसोद्युगलम् ॥ )

सहज-या— [ चित्रलेखा विनोयव एलेदम् ] सहि चित्तेहे ! मिलाप्रमाणसदपत्तस्त पिअ  
हे मुहस्त छाया हिअप्रस्त अस्तवद सूरवि । ता कहेहि मे रिण्वेदवरण । हे समदुस्का  
भविदु इणजामि । ( सलि चित्रलेखे ) म्ताअमाण सतगनस्येव हे मुअस्य छाया हृदयस्यास्पस्थता  
सूचयति । तत्रथय मे निबँदकाणम् । ते समदु सा भवितुमिच्छामि । )

## चौथा अङ्क

( नेपथ्यमें सहज-न्या तथा चित्रलेखा का प्रवेश सुचित करनेवाली आखितिका यीति पाई जाती है । )

[ अपनी प्यारी सखीके लिये विछोड़ेसे प्रणमनी धीर खवराई हुई हसो, सखी तालाबके जलमे  
अपनी सखीके लिये वैठी रो रही है, जिसके कमल सूर्यकी किरणोंके छूनेसे खिल उठे हैं ॥१॥ ]

[ सहजन्याके साथ उदास चित्रलेखाका प्रवेश ]

चित्रलेखा—( प्रवेश करके टिपटिना नामक भौतिके साथ चारों धोर देलकर । )

[ अपनी सखीके दुःखमें खवराई हुई धीर एक दूबरीको प्यार करनेवाली वो हसिनियाँ मालोंके  
मांसू मढ़ाये हुए तालाबके तीरपर बैठी सिधक रही हैं ॥२॥ ]

सहज-न्या— [ चित्रलेखाको देखकर दुःखके साथ ] सखी चित्रलेखा ! मुरझाए हुए कमलके  
समान उदास तेरा मुँह बजा रहा है कि तेरा जो ठीक नहीं है । तू मुझे अपनी व्यथाका कारण  
तो बता । मैं भी तेरा दुःख बाँट लेना चाहती हूँ ।

चित्रलेखा—[सकरणम्] सहि ! अन्धरोवारपय्याएय इह भगवदो सुज्जस्त पादसूनोवद्वाएो पट्टदि ति दसिधं वधु उव्वतोए उक्कंठिवग्नि । (सखि ! अन्धरोवारपय्याएय इह भगवतः सूर्यस्य पादसूनोपस्थाने वर्तते इति बलवत्सम्बु उर्वरशायुकण्ठिष्ठाम्भि ।)

सहजम्बा—सहि ! आखे यो अण्णोण्णसिण्णेहं । तयो तयो । (सखि ! जाने युवमोरग्यान्वस्नेहम् । ततस्ततः ।)

चित्रलेखा—तवो इमाइं विवसाइं को सु वधु वुत्तांतो ति परिण्णाय्णवाए मए अण्णवाहिवं उव्वत्तं । (ततः एतेषु दिवसेषु को न खलु वृत्तान्तः इति प्रखिधानस्थितया मयात्याहितमुपमगम् ।)

सहजम्बा—[सावेगम्] सहि कौरिसं तं । (सखी कीदृशं तत् ।)

चित्रलेखा—[सकरणम्] उव्वसो किम्प तं रडिसहायं राएंसि ममच्येहु रिण्वेसिवरण्णपुरं नेग्निह्म गंपमाएयवणं विहरिहुं गवा । (उर्वशी कित तं रडिसहायं राजपिमभास्त्रेषु निवेक्षितराज्यधुरं पृहोश्वा गन्धसादमकन विहर्तुं गता ।)

सहजम्बा—[सज्जापम् ]] तां एयाव संभोगी जो वारिनेसु पवेसेसु । तयो तयो । (य नाम संभोगी यस्तादृशेषुप्रवेशेषु । ततस्ततः ।)

चित्रलेखा—तहि वधु मंडाएणोए पुसिण्णेषु गवा तिमवापव्वद केतोहि कीलमाएया विवसावर-वारिणा उव्वमवरी शाम बेख राएणिएए रिण्णकाएव तिं कुव्विदा उव्वतो । (तय खलु मग्धाकिम्याः पुसिण्णेषु गता निकतापर्वतकेलीभिः श्रीश्रेष्ठी विद्यावरदारिकोदयवती नाम तेन राजपियया निध्यातेति पिता उर्वशी ।)

चित्रलेखा—[दुःखी होकर] सखी ! यहाँ भगवान् सूर्यको देवाके लिये एक अन्नराशिकी गरी बंधी हुई है । आज मैं भी अपनी पारोवर आई की धोत इसीलिये आज उर्वशीको स्मरण करके मेरा जो बड़ा व्याकुल हो उठा है ।

सहजम्बा—सखी, यह तो मैं जानती हूँ कि तुम दोनों एक दूसरेको बड़ा प्यार करती हो । हाँ, तब !

चित्रलेखा—यह सोचकर जब मैंने उरका कुचम-समाचार जाननेको व्याप्त भगवा तो जान पडा कि वह बड़े संकटमें पड़ गई है ।

सहजम्बा—[पबरकर] सकट कंसा सखी ?

चित्रलेखा—[कसाई-या होकर] बिहार करनेके लिये उर्वशी गंपमाएन पर्वतपर घुमने प्रेमी राजा पुरुरमाको साथ लेकर गई थी जो राज्याका काम भंत्रियोको सौंपकर उसके साथ गए थे ।

सहजम्बा—[प्रशंसा करती हुई] ऐसे सुन्दर प्रदेशमें समीप करना तो सच्चा संभोग कहलाता है । हाँ, तो फिर क्या हुआ ?

चित्रलेखा—वहाँ जब यह यदाकिनीके सटपर जाकर बालुके टीले बना-बनाकर लेट रही थी, उस समय वह देखती क्या है कि उदयवती नामकी एक विद्यावरकी कन्याको राजा बंधे हुए रहे हैं । वह इसी क्षणपर उर्वशी विरह तायी हुई ।

सहज्या—होदर्व्व । दूरस्थो ऋषु पश्यामी प्रसहस्यो । ततो ततो । (भविष्यम् । दूरारुदः  
सतु प्रणयोऽसहनः । ततरतत ।)

चित्रलेखा—ततो सा भद्रिणो ब्रह्मण्यं ब्रह्मविजयजमाला गुह्याय संभूदहिप्रभाविमुनिवदेव-  
दासिधमा इत्ययान्तुपरिहृत्तिलज्जं कुमारखण्डं पविट्टा । पवेसाणंतरं च कशालोबंतर्गततला  
भावेण परिणतं से क्वम् । (ततः सा भर्तृनुगमप्रतिपवमाना गुह्यापसंभूदहृदया दिस्मृतवेता-  
नियमा म्नीजनपरिहृत्तिलज्जं कुमारखण्डं प्रविष्टा । प्रवेदानन्तरं च बाननोपान्तवति सताभावेन  
परिणतमस्या क्वम् ।)

सहज्या—[सोकोकम्] सप्तथा एति बिह्रिणो चर्तंप्रिण्यं रामः । जैल सारितस्त  
प्रणुपामस्त भ्रमं एव्य एक्ष्ववे ब्रह्मचारितो पतिरायो संपुतो । ब्रह्म विमवायो सो राएसी ।  
(हर्षथा गालि विपेरसङ्घनीय नाम । येन ताहृयस्यानुरागस्यायमेवैकपदेऽप्याहयः परिणामः सवृत्तः ।  
स्य किमवस्य स रात्रिः ।)

चित्रलेखा—सो ॥ तस्मिं एव्य काले विप्रदमं विविण्यतो ब्रह्मो-रते ब्रह्मवाहेदि ।  
[ममोदसोकम्] इतिहा जल शिग्युवाएणं वि जषकंठाकारिण्य मेहोदएण प्रसत्याहोयो हृषित्ति ।

[मिष्ये चम्मसिका]

सह्यरिदुक्खालिद्धं सरवरंमिसिखिद्धं ।

अविरलवाहजलोत्सर्गं तम्मद्द हंमी-जुश्लं ॥३॥

(सोऽपि तस्मिन्नेव क्षणने प्रियतमा विचिन्त्यन्तहोरात्रानतिवाहयति । एतेन पुनर्मिथुंतानामप्यु-  
रुण्डाकारिणा मेयोदयेनानर्वापीनो भविष्यति ।

(सह्यरीदु खालीकं सरोवरे स्विगधम् ।

अविरलवाण्वजसार्द्रं ताग्यति हसोद्युगधम् ॥)

सहज्या—हाँ, यह हो सकता है । क्योंकि जब प्रेम बहुत जागृत है सब ऐसी बातें सही  
मन्नी जाती । हाँ, सब ।

चित्रलेखा—भरत मुनिके ज्ञापते जसकी बुद्धि ऐसी मारी गई कि राजाकी मनुहारकी उसने  
दुकरा भी दिया और राजाकेसके नियमका ध्यान छोड़कर वह उस कुमारवतने बैठ ही हो गई  
जहाँ विमर्शके जनेकी रोक थी । वस, ज्योंही वह पुसी त्योंही वह कुमार-वनके बादेपर सता  
बन गई ।

सहज्या—[सोकोके साथ] सषमुष शाय किछीको नहीं छोड़ता । बत्ताएए, कहाँ तो ऐसा  
प्रेम और कहाँ उसका ऐसा उल्टा पन । प्रणदा, अब उन राजविषयी क्या दता है ?

चित्रलेखा—वे भी उसी समय प्यासेकी दिन-रात खोजते हुए अपने दिन बिता रहे हैं ।  
[भाकाशकी शीर देखकर] सुखी भांगोके मनमें भी चाह भरनेवाने इन बादलोंको देखकर तो  
जनका जी ही टूट गया होया ।

[मिष्यमे चम्मसिका नामक गीतिके साथ]

[अपनी सलीके दुसरे घबराई हुई और एक दूसरीको प्यार करनेवासी दो हृत्तिनिर्वा भ्रांती  
भांगू बहाते हुए उदागके तीरपर बैठी सिसक रही हैं ॥३॥]

सहज्या—सहि ! एष मनु सारिता आकितिविसेता बिरं दुखभादखो होन्ति । तां अयदसं किनि अखण्णहसिमिसं भुयोनि समाननकारणं हविस्सदि । [आचो दिशं बिलोपय] ता एहि । उदअंमुहसस भअवदो मुज्जत्त उव्वत्तलं करेमह ।

[नेपथ्ये खण्डधारा]

चिंतादुम्मिअमाणसिया सहअरिदंसख लालसिअ ।

विअसिअ कमलमणोहरए विहरइ ईसी सरवरए ॥४॥

[सति न लक्ष्म साहसा प्राकृतिविशेषाद्विर दुःखभागिनो भवन्ति । उदवक्ष्य किमभ्यनुपहृदिमिषं भूयोऽपि समाननकारणं भविष्यति । तदेहि । उदयोन्मुखस्य मगवत्त. सूर्यस्वोपस्थानं कुपं ।

चिन्तादूनमानसिअ सहचरोदर्शनलासिका ।

भिकशितकमनमनोहरे बिहरति हसी सरावरे ।]

[इति निष्क्रान्ते]

॥ प्रवेशकः ॥

[नेपथ्ये पुष्करजल. प्रावेशिष्याद्विप्लिका]

गहयं गहंदशाहो पिअविरहुम्माअपअलिअविआरो ।

विसइ तरुकुमुमकिसलअभूसिअशिअदेहपन्भारो ॥५॥

[गहनं वज्रेत्रनाथं प्रियाविरहोऽवदप्रकटितविकारः ।

विशति तरुकुमुमकिसलवभूयितनिजदेहप्राग्भारः ।]

[सतः प्रविशति भाकासम्बद्धतक्षः उन्मत्तवेपो राजा]

सहज-या—सखी ! ऐसे माध्यरात्रि पहर बहुत दिनोतक दुखी नहीं रहते । इसलिये कोई न कोई ऐसा कारण था ही बावला कि वे दोनों फिर मिल जायेंगे [दूर दिशाकी ओर देखकर] जो सूर्य निकल आए हैं । आओ हम लोग सूर्यकी प्रार्थना करें ।

[नेपथ्यमे खण्डधारावीदिके वाय]

निस्तासे प्रनमनी और अपनी उलोसे मिलनेको अंधोर हवीं सिते हुए कमलोसे लुभावने समानेबाते तालाबमें बिहार कर रही हैं ॥४॥

[दोनों जाती हैं]

॥ प्रवेशक ॥

[नेपथ्यमे पुष्करवाके प्रवेशके लिए गीतका गान]

[महं बटा-या हाथी अपनी प्यारीके सिछोहमे पायल होनेके कारण अपने मनकी न्यया प्रकट करता हुआ-या पेक्षीके फूने और कोमल पक्षीसे अपने बड़े खरीरको उजाता हुआ वनमें चला आ रहा है ॥५॥

[भाकाशकी ओर मुँह उठाए हुए और पावल-जैसा मुख बनाए हुए राजाका प्रवेश ।]

राजा—[सञ्चोधम्] ध्याः दुरात्मन् रक्षः । तिष्ठ तिष्ठ । मे प्रियतमामाराव गच्छसि ।  
[बिलोपय] हन्त ! जलधिखरदाद्यगनमुत्पत्य वारुणंभीममिषयन्ति ।

( नेपथ्ये )

द्विअध्याद्विअपिअदुक्खओ सरवरण धुदपवस्सओ ।  
वाहोवग्गिअण्णअण्णओ तम्मइ हंसजुआण्णओ ॥६॥

(हृदयहितप्रियादुःखः सरोवरे मुत्तपसः ।

वाल्मीकिविरचितनयनस्ताम्यति हंसपुत्रा ।)

[लोष्ठ गृहीत्वा हन्तुं धावन् विभाव्य सकलणम्]

कथम्—

नवजलधरः संनद्धोऽर्चन दत्तनिशाचरः सुरधनुरिदं दुराकृष्टं न नाम शरासनम् ।  
अयमपिपदुर्धारासारो न बाणपरं परा कनकनिकपस्निग्धा विद्युत्प्रिया न ममोर्वशी ॥७॥

(नेपथ्ये)

मई नाशिअं मिअल्लोअणी, शिसअरु कोइ हरेइ ।  
जाव एण्णवत्तडसामलि, धराहरु वरिसेइ ॥८॥

(मया ज्ञातं मृगभोजनां निशाचरः कोऽपि हरति ।

धावन्तु नव लडिच्छपायसो पारश्वरो वर्धति ॥)

[विचिन्त्य सकलणम्] वयं तु सद्य एव रम्भोर्क्याता स्वत् ।

राजा—[सञ्चोधे] धरे, सदा रह दुष्ट राक्षस ! क्या रह ! तू मेरी प्रियतमाको लिए पला जा रहा है ? [द्वेषकर] धरे ! यह पहाडकी चोटीके पाकाकधरे उड़कर मुझपर बाण धरसाने जया ।

(नेपथ्यमें)

[यह जवान हंस अपनी प्यारीके बिलोहमे पस फटफटाता हुआ धाँसोमे धाँसू धरे ताताबने बैठा तिमक रहा है ॥६॥

[एक बेला भेकर मारने सोड़ता है, पर फिर ठीक समयकर कछुआके साथ ।] धरे, यह तो ममी-ममी धरसानेवासा बादल है, राक्षस नहीं । इसमे यह लिका हुआ दग्धधनुष है, राक्षसका धनुष नहीं । और ये जो टप-टप बरस रहे हैं ये बाण नहीं हैं, बूँदे हैं और यह जो जलोटी पर बनी हुई सोनेकी देसाके समान चमक रही है, यह भी मेरी प्रिया चर्वती नहीं है, बिजली है ॥७॥

(नेपथ्यमें)

मैंने मगना था कि मृगके समान धाँसोवासी मेरी प्यारीको कोई राक्षस हरकर लिए पला जा रहा है, पर यहाँ केवल दिवलीको चमकता हुआ जाला बादल पानी धरसा रहा है ॥८॥

तिष्ठेत्कोपवशात्प्रभावपिहिता दीर्घं न सा कुप्यति ।

स्वर्गायोत्पतिता भवेन्मयि पुनर्मावाद्ममस्या मनः ।

तां हतुं विबुधद्वियोऽपि न च मे शक्ताः पुरोवर्तिनीं

सा चात्यन्तमदर्शनं नयनयोयति तिति कोऽयं विधिः ॥६॥

[ दति दिशोऽश्लोक्य यनि.स्वावम् । ] भये ! परावृत्तभाग्येयानां दुःखं दुःखानुमन्य । कुतः ।—

अयमेकपदे तथा वियोगः प्रियया चोपनतः सुदुःसहो मे ।

नववारिधरोदयाद्दोभिर्भवितव्यं च निरातपत्वरम्यैः ॥१०॥

जलहर संहर एह कोपहं आहृत्तथो

अविरलधारासारदिसामुहकंतथो ।

ए महं पुहपिं भमंतो जइ पिअं पेभिसमि

तथे जं लु करीहिसि तं तु सहीहिसि ॥११॥

( जलपर सहर्तं कोपमाजतः अविरलधारासारदिसामुहकान्तः ।

ए महु पृष्ठीं भमन्तपि प्रिया प्रेक्षे तथा यत्तत्करिष्यसि तत्तत्सहिष्ये ॥ )

[ विहृत्य ] सुखं लभु मया मनसः परित्तापवृद्धिरपेक्षते । यया सुमयोऽपि श्वाहरति—

राजा कालस्य कारणमिति । तत्किमहं जलदत्तमयं न प्रत्याविजानि ।

गंधुम्माइअ

महुअरगीएहिं

पज्जंतेहिं परहुअ तरेहिं ।

पसरिअपथसुखेतिअपन्तत्रशिअरु

सुललिअविविहपथारेहिं शब्दइ कप्पअरु ॥१२॥

( गंधोन्मादितममुकरसीतः,

काद्यमानः परभृत्तुर्वै )

[ दुःखसे सोचकार ] यह केलेके समान जाँचीवाली सुन्दरी कहीं गई हीथी ? कही यह जोपने प्राकर अपने बँबी प्रभावसे छिन्न न गई हो पर यात्रतक उसने इतनी देर कमी नहीं की या कही यह स्वप्न ही न खली गई हो ; पर यह हो नहीं सकता क्योंकि वह मुझे तो जी-जानसे प्यार करती है । देवताओंके लज्जु राक्षस भी उनके मेरे सामने से हटकर नहीं ले जा सकते, फिर भी मुझे यह कही दिसाई नहीं वे रही है । यह कैसा दुर्गम्य है ॥६॥ [ चारो घोर देखकर लयी साँह लेकर ] अरे ! फूटे माययाँके लिये तो आपत्ति पर आपत्ति भाषा ही करती है । क्योंकि—कही एक घोर तो प्रियाका ऐसा विछोह जो सहा नहीं जा रहा है और कहीं दूधरो घोर ऐसा सुहाबना दिन भी बादलोंके उठनेसे और धूपके छिन्न जानेसे और भी सुभावना हो गया है ॥१०॥

[ लगातार बरसनेसे चारो घोर फँसे हुए हे बादल ! इस समय तुम मेरे कहुनेसे अपना क्रोध रोक लो । घुंघनीपर घूमकर जब मैं अपनी प्रियाको या जाऊँ तब तुम जो-जो करोगे वह मैं छिर-राये लेकर सहंगा ॥११॥ ] [ हँसकर ] मैं अकारण हो कर अपने मनकी पीडाको यों ही बडा दूँ हूँ । क्योंकि मुनि लोग भी कहते हैं कि राजा जैसा समय चाहे, वैसा समय आ सकता है, तो मैं इस परीके समयको ही क्यों न आसा दूँ ।



प्रसूतपवनोद्वेगिनतपत्सवनिकर ।

गुलसितविविधप्रकारं नृत्यति वरुपतरु ॥ १ ॥

अथवा न प्रत्यादिशामि जलदसर्षं यत्रानुषेणैरेव निङ्गमंम राजोपचारः सम्प्रति ।  
कथमिव—

विद्युल्लेखा कनकरुचिरं श्रीचितानं ममाग्रं

व्याधूयन्ते निचुलतरुभिर्मञ्जरीचामराणि ।

धर्मच्छेदात्पटुतरगिरो वन्दिनो नीलकण्ठाः

धाराहारोपनयनपरा नैगमाः सन्नुमन्ता ॥१३॥

भवतु । किमेवं परिचयवशतापया । यावदस्मिन्काले तां प्रियामग्नैवयामि ।

( नेपथ्ये )

द्विध्वारद्विध्वो अद्विध्वं दुद्विध्वी विरहाणुगध्वो परिमन्ध्वरो ।

गिरिकाणण्य कुसुमुञ्जलए गजजूहवई बहुभीणगई ॥१४॥

( अस्मिन्तारद्विध्वोऽधिकं दुःखितो विरहनुवतः परिमन्ध्वरः ।

गिरिकान्ते कुसुमोज्ज्वल गजसूयपतिवद्विध्वीणगति ॥ )

[ परिक्लम्भाश्लेषश्च ] हृत् हृत् ! व्यपसितस्व मे संश्लेषनविव संवृत्तम् । कुतः—

आरुकराजिभिरियं कुसुमैर्नवकन्दलीसलिलमधैः ।

कोपादन्तर्भाष्ये स्मरयति मां लोचने तस्याः ॥१५॥

इतो गतेति कथं नु तत्रभवती मया सूचयितव्या । यतः—

[ सुगमते क्लमनेवाले भीरीके घामके साय-साय और कोयलकी बोलीमे बगनेवाली बसियोकी  
अनिते धुंजने हुए पवनसे विद्युत् कल्पगुप्तके कोमल पत्ते हिल रहे हैं, वह देखो कौसी धुन्वरठाये  
धनेक प्रनारके हाव-भावके साथ साथ रहा है ॥१२॥ ] पर इस यपके समयको कहना ही व्यर्थ  
है, क्योंकि वर्षाकालमे जो चिह्न दिखाई दे रहे हैं उन्हीके कारण ही मैं आज भी राजाके समान  
घोसा दे रहा हूँ । क्योंकि देखो—बिबलीके सोनेसे बना हुआ यह वादल ही मेरा छत्र है ।  
निचुलके पेड़ मेरे ऊपर अपनी मञ्जरीयोसे चँबर डुना रहे हैं । यहाँ समाप्त ही जानेके कारण  
मगुर गान बधनेवाले ये और आठोंका नाम कर रहे हैं और भरलोके मोती भेंट करती हुई ये  
पहाडियाँ ही मेरी प्रगा हैं ॥१३॥ अन्त, जानि दो, अपने अट-वाटकी बहाई करनेसे लाम ही  
का । चर्चू इती बगमे प्रियारो छोड़ू ।

[ नेपथ्यमे ]

[ प्यारोसे विदहने अत्यन्त दुखी होनेसे यह हाथो फूलसे उजले दस पहाडोमे जीरे-धीरे  
सूम रहा है ॥१४॥ ]

[ भूभर और देववर ] हाय ! हाय ! उमे दूँजने-दूँजते मेरी पीडाको और भी बढ़ानेवाला  
यह और दुगटा विद्युत् गका । क्योंकि इस नये बज्जलाने पेडने जल भरे लाल फूलोको  
देववर मुझे उच्योके उन नेशोका स्मरण हो भाया जो लोचने सात हो गए थे और  
त्रिनमे माँसू धनव आए थे ॥१५॥ फिर, यह मुझे शँसे जान पड़ेया कि यह विदहने

पद्मया स्पृशेदसुमतीं यदि सा सुगात्री मेघाभिवृष्टसिकतासु वनस्थलीषु ।  
पथान्नता गुरुनितम्पतया ततोऽस्याः द्रव्येत् चारुपदपङ्क्तिरलककाङ्का ॥१६॥

[परिक्रमः।वनोदय च सहपम्] उपसङ्घमुपतदात्त येन तस्या कोपनाया भाषांऽनुमीयते ।

हृतोऽन्तरागैर्नयनोदबिन्दुभिः निमग्ननाभेर्निपतङ्गिरद्वितम् ।

च्युतं रुपाभिन्नगतेरसंशयं शुकोदरस्याभभिदं स्तनाशुकम् ॥१७॥

भवतु । आधारेण सायम् । [पङ्क्तिन्य विभाव्य च सासम्] क्व सेन्द्रगोप नयद्राद्रलमिदम् ।  
शुतो गु लतु निजंते वने प्रिया प्रयुत्तिरव्ययमित्या । [धिल्लिन हृष्टवा] अवे । अयमातारोऽङ्क-  
सितशैलेपस्यतीपायासुमारुद —

ध्यालोऽरुयति पयादान्प्रवलपुरोरातवाडितशिशुखण्डः ।

कैला गमैश्च शिखी दूरोन्नमितेन कण्ठेन ॥१८॥

[उपेत्य] भवतु । यावदेन वृष्ट्यानि ।

(निपत्ये)

संपन्नविभूराश्रयो तुरिअं परिवाराश्रयो ।

पिथश्रम-दंसण-लालसश्रो गमवक विन्दिअ-भाणससो ॥१९॥

गई है । यदि वह सुन्दरी बसति लीगी हुई जासूवाले इस वनकी परतीवर नसती तो महावरके रंगे हुए उसके सुन्दर पैरोंकी ऐसी छाँपें दूरतक घबस्य दिखाई देती जो उसके नितम्बोंके भारी होनेके कारण ऐसीकी मोर गहरी होती ॥१६॥ इपर उधर भूमकर हर्षके साम ] मुझे कुछ कुछ तो ऐसे चिह्न मिल रहे हैं [जिनसे मे कुछ कुछ अनुमान लगा सकता हूँ कि वह प्रीणित ऐसी किशोरी गई है—पयोकि मुम्बेके घट जैसे हरे रववाली उसकी चोली यही है जिसपर उसके प्राणुप्रोते धुलकर छोड़ीये गिरे हुए सात रगवा बुँदकियाँ दिखाई दे रही हैं और जो कोपमें हृष्टवटीसे चलतेये बाण्ड सितसबकर नीचे गिर गई होगी ॥१७॥ अच्छा, तो मैं ऐसे उठा जाता हूँ : [सुमरर उसे देखकर रोता हुआ] अरे ! यह तो हरी भासपर बीरकहूँटियाँ फैली हुई हैं । अरे इस सुनसान वनमें प्यारीका ठिकाना कहाँसे पसेगा । [मोरको देखकर] अरे ! पर्यसि भाप छोड़नेवाली बट्टामपर बँटा हुआ और सामनेके प्रचण्ड पवनसे छितराती हुई कन्तोगीबामा यह मोर अपनी ग्रीवा जैसे उठाकर कँ कँ करता हुआ नादलोंको देस रहा है ॥१८॥ [पाठ जाकर] मञ्जरा, चर्चूँ दतीये प्रहूँ ।

(निपत्ये)

[दु लते मरा हुआ अपनी प्रियतमाको देखनेके लिये अधीर मोर अपने चतुको पद्मा देनेवाला यह बडा-सा हाथी मतने चबराया हुआ सा बडे देगले चलता जा रहा है ॥१९॥]

(सम्प्राप्तवित्पूरण स्वर्ति परवारणः ।  
प्रियतगददर्शनसातसो गज्वरो विरिमतयानसः ॥)

[अञ्जलि यद्गवा]

बंदिण पई इअ अञ्जलिअम्मि ओयक्खदि मं ता  
एत्थ वणे मम्मंते वइ पई दिट्ठी सा महु कंता ।

णिसम्मदि भियंकरिसवअण्णा हंसगई

ए चिरहे जाणीदिसि आअक्खिउ तुज्ज मई ॥२०॥

(बंदिणं स्वामित्यभ्यर्चये मान्दव मे त्व  
मय वने भ्रमता यदि त्वया-दृष्टा सा मम कान्ता ।

मिनामय मृगाङ्कुसहस्रयवना हसगति.

धनेन बिल्लेभे शास्यस्वाध्यातं सब मया ॥)

नीलकण्ठ ममोत्कण्ठा वनेऽस्मिन्वनिता त्वया ।

दीर्घापाङ्गा सितापाङ्गा दृष्टा दृष्टिन्मया भवेत् ॥२१॥

[विश्लोक्य] कथमहर्षीय प्रतियचनं नातितुं प्रयुतः । किं नु जलु हर्षंकारणमस्य । [विचिन्त्य]  
सां शातम्—

मृदुपवनविभिन्नो मत्प्रियाया विनाशात् ।

घनरुचिरकलापो निःसपत्नोऽस्य जातः ।

रतिविगलितवन्धे केशपाशे सुकेश्याः ।

सति कुसुमसनाथे कं हरेदेष वही ॥२२॥

मयहु । परधमन निवृत्त म जलु एणं पुण्णामि । [परिहम्यावलोच्य च] मये इयमातपान्त  
संपुलितमहा जम्बुविटपभाष्यास्ते परभृता विदुङ्गमेगु पण्डिता वतिरेया । याचयेनामन्मर्षये ।

[हाथ जोड़ते हुए] [घरे मोर । मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि यदि मूढते-फिरते तुमने मेरी  
खोई हुई प्यारी बही देती हो तो मुझे बताओ । मुझे । उसका बूँद चाद्रीके समान है मोर  
जसकी पाल हूँ बसती है । वह, मैं जो बिल्ले तुम्हें बठा रहा है उतनेसे हो तुम उसे पहचान  
सोगे ॥२०॥]

उसके मोनोंकी बसोबास मोर ! क्या तुमने मेरी उल प्रियतमाको इस घनमें देता है  
त्रिको घालें बसो-बसी है, त्रिको लिए मैं व्याजुल हूँ मोर जो ऐसी सुन्दर है ॥ वस,  
उसे देखते ही बनता है ॥२१॥ [वेसकर] क्या, बिना उत्तर दिए हो यह ताचने लग  
गया । यह इतना ममम क्यों हो रहा है ? [खोजकर] हाँ समझ गया—मेरी प्रियाके  
सो जानेके इसके मन्द मन्द पवनसे दिनराए बादलोंके समान सुन्दर पक्षोंकी सजानेवाला  
मात्र कोई नहीं रह गया है । मात्र यदि यह सुन्दर याचोवाचो होता, जिसके खुले हुए  
बाधोंमें पूरा मुँदे हुए होते तो उसके घावे इस मोरकी घोषाके पूछता बोन ॥२२॥  
मण्डा । दूसरीके कुच-मुचपर प्यान न देनेवाले इस मोरके धन मैं वात नहीं करूँगा ।  
[पूणकर मोर देखकर] घरे ! यह क्यों चीतनेते मतवाला बोजव जामुनकी दासापर

( नेपथ्ये )

विजङ्भरसंकाणखलीखयो दुःखविशिग्माथवाहुप्पीडयो ।  
दूरो सारिअ हिअ आखंडयो अंवरमाणे ममइ गइंदयो ॥२३॥

(विद्याधरकाननलीनो हु छविनिबंतवाष्पोरपीठ. ।

दूरोस्तारितहृदयानन्दोऽन्वरमानेन भ्रमति गजेन्द्र ।)

[इति नतिरवा वननितकशोपसृत्य जानुभ्यां च स्थित्वा] हिले हिले ।

परहुअ महुरपलाविखि कंती खंडखवया सच्छंद भमती ।

जइ पई पिअथम सा महु दिट्ठी ता आअक्खहि महु परपुट्ठी ॥२४॥

(परभूते ! मधुरप्रसापिनि काणो मन्दन वने स्वच्छन्द भ्रमन्ती ।

यदि त्वया प्रियतमा सा मम इष्टा तर्ह्यांचख ने परपुष्टे ।)

भवति ।

आं कामिनो मदनदृष्टिमुदाहरन्ति मानावभङ्गनिपुणं त्वममोषमस्रम् ।

तामानय प्रियतमां मम वा समीपं मां वा नयाशु कलमापिखि यत्र कान्ता ॥२५॥

किमाह भवती । कथं त्वामेवमनुरक्तं विहायगता इति [भ्रमतीऽवलोच्य] भ्रूलोतु भवती ।

कुपिता न तु कोपकारणं सकृदप्यास्मगतं स्मराम्यहम् ।

प्रभुता रमशेषु योपितां नहि भावस्त्रलितान्यपेक्षते ॥२६॥

[सप्तभ्रममुपविश्य प्रकृतर जानुभ्या स्थित्वा कुपिता इति पुनः पठित्वा उरपाय विलोक्य च ।]

कथं कथाविच्छेदकारिणी स्वकार्यं एष व्यासस्य ।

बंठी हुई है । पक्षिपौने कोयल ही सबसे चतुर समझी जाती है । चर्चू, इसीसे पूछू ।

(नेपथ्यमे)

[विद्याधरोके वनमे छिपा हुआ, दुःखसे भाँसू बहाता हुआ धीरे हृदयका मानस जोकर

पह घडा-सा हाथी बादलके समान घूम रहा है ॥२३॥

[वमनिका रागके साथ नाचता हुआ प्राण बंदकर घुटने टेककर]

[धरे ३ ३ । मीठा-मीठा कूकनेवाली सुन्दर कोयल ! यदि इस मन्दन-वनमे मतवाहिए

बैंगसे उठते-फुटकरते हुए तुमने कही मेरी प्रिया देखी हो तो बता दो ॥२४॥

देखो ! कामी लीन तुम्हें मदनकी इती बताते हैं और यानिची प्रियेका कृता वर

कारनेके लिये तुम प्रचूक हृदियार समझी जाती हो । इसलिये या तो मेरी प्रियतमाको मेरे

पाग ही ले मामो या फिर हे मिठ्ठोखी ! तू मसुके ही उसके पास भटपट ले जाकर पहुँचा

दो ॥२५॥ क्या कहा तुमने ? कि तुम्हारे इतना प्यार करनेपर भी वह तुम्हे छोड़कर क्यों

चली गई ? [भागै देखकर] सुनो ! तुम्हें एक भी बात ऐसी स्मरण नहीं आती जिसपर कठ-

कर यह गई । देखो ! जियाँ तो बैसे ही अपने पतियोपर ध्यान जमाए रहती हैं,

दससिये यह भावसक नहीं कि पति कोई अपराध ही करे तभी वे क्रोध करें ॥२६॥ [फट

बैठकर फिर घुटने टेककर कमरवाती बात फिरसे कहता है, फिर उठकर देलता हुआ] यह

धयवा ।

महदपि परदुःखं शीतलं सम्यग्माहुः प्रणयमगणयित्वा यन्ममापद्गतस्य ।

अधरमिव मदान्धा पातुमेपा प्रवृत्ता फलमभिमुख्यपाकं राज्ञश्चन्द्रमस्य ॥२७॥

एवंगतेऽपि प्रियेव मे मञ्जुस्वनेति न मे कोपोऽस्याम् । सुखमास्तां भवती । इतो वयं  
साधयामस्तावत् [परिक्रम्य वयं दस्वा ।] अये दक्षिण्येन वनधारां प्रियाचरन्निक्षेपशांती  
शुपुररकः श्रूयते पापदेनमनुगच्छामि [परिक्रम्य]

(नेपथ्ये)

पित्र्यग्रमविरहकिलामिअवअशओ अविरलवाहजलाउलणअणओ ।

दूसहदुअखविगंठुसगमसओ पसरिअउरुतावदिअयअंगओ ।

आहेअं हुम्मिअ-माणसओ काण्णं ममइ गइदओ ॥२८॥

(प्रियतमा विरहलाम्बवदनोऽविरलवाप्यजलापुलनवनः ।

दुःसह दुःखविसञ्जुसवमनं प्रपृथगुक्तापदीप्लाङ्गः ।

प्रपिक्तं दूनमानसः कान्ते अण्वि गनेन्द्रः ॥)

[मनगरे द्विपदिष्या दिवोऽवलोक्य]

(नेपथ्ये)

पित्रकरिणी-विच्छोइअओ गुरुमोआणल-दीविअओ ।

वाइजलाउललोअणओ करिवर ममइ समाउलओ ॥२९॥

वया । मेरी बात पूरी होनेसे पहले ही यह अपने पन्थेमें लग गई । दूसरेका दुःख कितना भी कष्टिच हो, पर लोग उसे वम हो समझते हैं । इनबिधे मुझ विपत्तिके मारेकी बात मनमुनी गरके यह बोधत वही हुई फेरना जायुर्कोका रण पीनेसे उधो प्रकार घाँस मूदकर लगी हुई है, जैसे कोई मतशान्त अपनी प्यारीके ओठोका रण पीने लग रहा हो ॥२७॥ पर तब कुछ होनेपर भी यह गाती है मेरी प्यारी के समान ही, इसबिधे मैं इसपर क्रोध नहीं करता । तुम बंटी रहो मुझसे । हम ही यहसि चले जाते हैं । [पूजकर चुनता हुआ] धरे । इस वनके दक्षिण ओ धोरसे प्यारीके विजुधोकी-की भ्रम-भ्रम चुनई दे रही है । चलो वपर ही चलकर देखूँ । [पूजता है ।]

(नेपथ्ये)

[प्यारीने द्विष्टेइये वधा हुआ, नयनोक्ति प्रामुष्योकी धारत बहाता हुआ, नये धवार दुःखके कारण नर रनकर वननेवाला धोर भरवन्त घोऊये जलते हुए शरीरवाला यह दुखी हापी वनमें इपर-उपर घूम रहा है ॥२८॥

(नेपथ्ये)

[दो वन चलकर धारों धोर देखता है ।]

[मपनी प्यारी टुफिनेने द्विष्टेइयी भयंकर धारमे वसता हुआ धोर रोता हुआ यह हापी ध्यानुन होकर घूम रहा है ॥२९॥

( प्रियकरिणीविपुलतो गुरुतोऽज्ञानप्रदीप्तः ।

वाप्य-नतानुज-तोयनः करिनरो भ्रमति समाकुलः ॥ )

[ सकयलम् ] हा पिक् फट्टम् ।

मेघरयामा दिशो दृष्ट्वा मानसोत्सुकचेतसाम् ।

कूजितं राजहंसानां नेदं नू पुरशिञ्जितम् ॥३०॥

भवतु । वापदेते मानसोत्सुकाः कतिपयः सारसोऽस्मान्गोत्वतान्ति वापदेतेभ्यः प्रियाप्रपुत्ति-  
रपामयितव्या । [ उपसृत्य ] भो ! भो ! जन्मिहङ्गभराज ।

पश्चात्सरः प्रतिगमिष्यसि मानसं तत् पाथेयस्युत्सृज विसं ग्रहणाय भूयः ।

मां सायदुद्धर शुचो दयिताप्रपुत्र्या स्वार्थात्सतां गुरुतरा प्रणयिक्रियैव ॥३१॥

धमे । यधोन्मुले । विनोक्क्यति यथा मानसोत्सुकेन मया न लक्षितेत्येवं वचनमाह ।

रे रे हंसा किं गोदञ्जद गडमणुसारं मई लम्बिखञ्जद ।

कई पई सिक्खित ए गइ लालस सा पई दिट्ठी जहयभरालस ॥३२॥

( १ ! १ ! हंस कि गोप्यते गप्यनुसारेण मया लक्ष्यते ।

केन तव शिषिता एषा गतिर्नालसा सा त्वया दृष्टा वचनभरालसा ॥ )

यदि हंस गता न ते नतभूः सरसो रोषसि दर्शनं प्रिया मे ।

मदसेलपदं कथं नु तस्याः सकलं चौर भवं त्वया गृहीतम् ॥३३॥

मतश्च [ इति वचनसि यद्वा ]

[ दुःलके साध ] हाय, हाय । कंठे दुःखकी बात है कि जिते में भवनी प्यारीके विपुषीकी भूल कम समझ रहा था यह उस राजहंसीकी बूक है जो उठे हुए बादलोंकी धँपियारी देखकर मानसरोवर जानेकी उतावले हो रहे हैं ॥३०॥ अचञ्चल, जन्तक ये मानसरोवर जाने की उतावले पक्षी उड़ते नहीं, उड़ते पहले ही में इच्छते भवनी प्यारीका ठिकाना पूछकर देखता है । [ पाए जाकर ] हे जल-पदिपुत्र ! तुम मानसरोवर पीछे जावा और यह जो संबलके सिधे तुमने कमलनालें ठोड की हैं, इन्हे सभी छोड दो, फिर ले लेना । पहले तुम मुझे मेरी प्यारीका समाचार देकर मेरा उट्टार करो, क्योंकि सञ्जन खोग अपने मित्रोको खड़ायता देना अपने स्वार्थसे बढ़कर समझते हैं । ॥३१॥ धरे ! यह तो केवल भवनी बीच ऊपर उठाए दुकुर-दुकुर देल रहा है मागो कह रहा हो कि मानसरोवर जानेकी उतावलीमे मैंने उसे देखा ही नहीं ।

[ धरे हय ! तुम क्षिप मया रहे हो । तुम्हारी चानसे ही मैं तब कुछ समझ गया । यतामो यह सुन्दर जान तुमने सीधी कहाँ से ? तुमने उस प्यारीको अवश्य ही देखा है जो नितम्बोके भारसे धीरे-धीरे चलती है ॥३२॥ ]

यदि तने उस बाँकी बिलचनवासी सुन्दरीको इस सरोवरके तीरपर नहीं देखा, तो क्या रे चीर ! तने उसकी यह मदसे दृठताती पचनेयासी सुन्दर जान कहाँ से पा की ॥३३॥ इसलिये [ हाय जोड़कर ] हे हंस ! मेरी जिस प्यारीकी चान तुमने चुरा ली है,

हंस प्रयच्छ मे कान्तां गतिरस्यास्त्वया हता ।  
विभावर्तकदेशेन देयं यदभियुज्यते ॥३४॥

[ विहृत्य ] एष क्षीरानुजासौ राजेति भयादुत्पत्तितः । यावदन्यमवकाशमवगाहिष्ये ।  
[ परिक्रम्यावलोक्य च ] अपनिदानो प्रियासहस्यप्रकवाक । तावदेवं पृच्छामि ।

( नेपथ्ये )

मंमररखितमस्योहरण कुसुमिअतरुवरपल्लवण ।  
दद्व्याविरहुम्माइअथो काण्ण ममइ गइंदओ ॥३५॥

( मंमररखितमस्योहरे कुसुमिततरुवरपल्लवे ।  
दद्विता विरहोन्मादितः कानने भ्रमति पक्षेष्टः ॥ )

गोरोअणा-कुसुमवण्णा अफा मणइ मइ ।  
महुवासर-कीर्लती घणिया थ दिड्डी पई ॥३६॥

( गोरोचनाकुरकुमवर्णा अफ मण मणम् ।  
मधुवासरे कीर्लती पण्णा न हण्टा स्वया ॥ )

रथाङ्गनामन् विधुतो रथाङ्गश्रोणियिम्बया ।  
अयं त्वां पृच्छति रथी मनोरथशतैर्वृतः ॥३७॥

अयं कः क इत्याह मणम् । ना तावत् । न कसु विवित्तोऽहमस्य ।

उसे मुझे लोटा थे । क्योंकि यदि खोरके पास खोरीका घोटो भी माल मिले तो उसे पूरा माल देना ही पड़ता है ॥३४॥ [ ईनकर ] यह देखो, इसने सगभ्र लिया न कि मैं खोरोंको दण्ड देनेवाला राजा हूँ । यह इसी तरह उठ भागा । पत्नी, कही खोर खोखूँ । [ भूमकर खोर देलवर ] यहाँ यह अफवा अपनी प्यारीके साथ बैठा है, पत्नी इसीसे पूछूँ ।

( नेपथ्यमें )

[ पत्नीकी मधुर सहसदाहृष्टसे अरे खीर फूससे सदे हुए कृष्णिके पत्नीवाले इस वनमें यह प्यारी के विधोहृष्टे पागल बदा-मा हाथी इपर-उपर भूम रहा है ॥३५॥ गोरोचन खीर केशरके रगवाले हैं अफने ! बलाभी, वहीं तुमने नसन्तके दिनोमें खोजती हुई मेरी गोमाग्यवती स्त्री देखी है ॥३६॥ ]

हैं परने ! अट्टिके समान बड़े-बड़े नितम्बोंवाली प्यारीसे विदुडा हुआ मनमें सेकड़ो मनोरथ लिए हुए मैं महारथी तुमसे पूछता हूँ ! ॥३७॥ क्या यह मुझसे पूछ रहा है— कौन है ? कौन है, क्या रहने का ? क्या यह मुझे जानता नहीं है ? सूर्य और चन्द्रमा

सूर्याश्रमसौ यस्त मातामहपितामहौ ।

स्वयं वृतः पतिर्द्वाभ्यामुर्वशया च युवा च यः ॥३८॥

कथं सुखी स्थितः । भवतु । उपानमे तापदेनम् ।

सरसि नलिनीपत्रेणापि त्वमावृतविग्रहाम्

ननु सहचरीं दूरे मत्वा विरौपि समुत्सुकः ।

इति च भवतो जाया स्नेहात्पृथक्स्थितिभीरुता

मपि च विधुरे भावः कान्ताप्रवृत्तिपराङ्मुखः ॥३९॥

सर्वथा मदीयानां भाग्येषानां विषयविलेख प्रभावप्रकाशः । यावदायमपकाशमवगाहित्वे ।

[ पदान्तरे स्थित्वा ] भवतु न तावदप्यज्जगामि । [ परिक्रम्यावलोचय च ]

इदं रुणद्धि मां पद्ममन्तःकूजितपट्पदम् ।

मया दष्टाधरं तस्याः ससीत्कारमिवाननम् ॥४०॥

भवतु । इती गतस्य मेऽनुयायो मा वृत्तित्पदिमन्तपि कमललेखिनि भयुकरे प्रणवित्यं करिष्ये ।

( नेपथ्ये )

एकक्रमवद्धिदमगुरुअरपेम्मरसे ।

सरे हंसजुआणओकीलइ कामरसे ॥४१॥

[ एकक्रमवद्धितगुहठप्रेपरसेन ।

सरसि हंसमुया लीडति कामरसेन ॥ ]

जिसके मामा और दादा हैं और जिसे सबसेही और घरलीने अपने भाप अपना स्वामी बना लिया है, मैं वही पुकारता हूँ ॥३८॥ क्यों ? चुप क्यों हो गए ? अच्छी बात है, मैं इसे बोलता हूँ न । जब तासाओने तुम्हारी प्यारी चकवी कमलके पत्तीकी छोटमे भी हो जाती है, तब तुम उसे दूर गई समझकर धरकर बिस्ताने रखते हो । अपनी प्यारीसे तो तुम इतना प्रेम करते हो कि इतना बिछोह भी तुमसे रहा नहीं जाता और फिर भी अपनी छँठ तो देखो कि तुम प्यारीसे बिछुडे हुएसे तुम बात करनेकी भी तैयार नहीं हो ॥३९॥

येरा भाग्य ही ऐसा है कि सब कही मुझे उलटा ही फल मिल रहा है । वसूँ, कही और बसकर दूँ [ कुछ चतकर झककर ] अच्छा मैं अभी नहीं जाऊँषा [ पूबकर और बैठकर ] यह भीरोंकी गुंजसे भरा हुआ कमल मुझे दरबस रोक रहा है, क्योंकि यह सर्वश्रीके उस मुखके समान दिखाई दे रहा है, जो थोठपर मेरे दाँत लगनेपर ली-सी कर रहा हो ॥४०॥ अच्छा ! कमलपर मँडराते हुए इन भीरोंसे ही पूछ देखूँ बिछसे यहसे चले जानेपर मुझको यह तो पड़ताया न रह जाय कि उनसे नहीं पूछा ।

( नेपथ्ये )

[ एक ऐसा हंस तासाओने प्रेमके मरमे भरा खेल रहा है जिसके मनमें प्रेमका भाव सचानक बढ़ गया है ॥४१॥ ]



मधुकर मदिराच्याः शंस तस्याः प्रवृत्तिं

[ निबन्ध ]

वरतनुरथवासौ नैव दृष्टा त्वया मे ।

यदि सुरभिमवाप्स्यस्तन्मृत्तोच्छ्र्वासागन्धं

तव रतिरभविप्यत्पुण्डरीके किमस्मिन् ॥४२॥

सापवापस्तावत् । [ इति परिक्रम्यावसोष्य च ] अये । एष नीपस्कंधनिपगणहस्तः करिणी-  
सहायो नागरज्जतिष्ठति । अस्मात्प्रियोवत्तमुपलभ्ये । वाचनेनमुपलभामि ।

( नेपथ्ये )

करिणीविरहसंतावित्रयो ।

काण्ये गंधुदुश्च महुश्चरु ॥४३॥

( करिणीविरहसंतापितः ।

वाचने वाचोद्धतमपुकटः । )

[ विलोप्य ] अयथा न त्वरा कार्या । न सायदपमुरसर्गलकालः ।

अयमचिरोद्गतपल्लवमुपनीतं प्रियकरेणुहस्तेन ।

अभिलपतु तावदासवसुरभिरसं शल्लक्रीभङ्गम् ॥४४॥

[ शल्लमायं स्मरता । अवलोप्य ] हन्त कृताङ्गिकः संवृतः । भवतु । समीपमस्य गत्वा  
पृच्छामि ।

हे श्रीरे । मद-भरे नैनोवासी मेरी प्यारीका समाचार तो सुबाधो । [ लोचकर ] या कीम  
जाने तुमने उसे देखा ही न हो । क्योंकि यदि सुन्दे मेरी प्रियतमाके मुखकी सुगन्धित स्वास  
निम गई होती तो तुम इस कमलके पांखे ही प्यार करते होते ॥४२॥ बल्ले पहोखे । [ भूमकर और  
देतकर ] भरे इन कदम्बकी डालपर अपनी सुंद रखे हुए हृदयकीके साम यह एक बड़ा-सा  
हाथो लड़ा है । धनुं, उखीके पास धनुं ।

( नेपथ्ये )

[ हृदयकीके मिठोहूके तथा हृषा यह हाथो जयलमे धूम रहा है जिसपर गन्धके मत्तवाले  
कीरे मूम रहे है ॥४३॥ ]

[ देतकर ] वर दृष्टवड़ी नहीं करनी चाहिए । अभी उसके पास जाना ठीक नहीं है, क्योंकि  
हृदयकीके समीप-समीप अवनी सुंदरे यह पत्तोवासी और मुखके समान गन्ध भरी जो शल्लकीके  
देहकी जागा सोही है, उसे यह हाथो या मे ठव मैं धनुं वा ॥४४॥

[ वीर्यो देर रकबर देतकर ] अच्छा, अब तो इसन नरसैट भोजन कर लिया । अच्छा,  
तो घर चहुं, पास जाकर पूरू ।

हउं पइं पुञ्जमि याअवसुहि मअवरु ललितप्रहारे यासिअतरुवरु ।  
दूरविणिज्जिअ ससहरुंती दिट्ठी पिअ पइं सम्मुह खंती ॥४५॥

(यहं त्वं पुञ्जमि चापहव वज्रवर । ललितप्रहारेण नाशिततरुवर ।  
दूरविनिज्जितवधरकात्तिट्ठा प्रिया खया सम्भुतं मन्ती ॥)  
[पदद्वये पुरतः उपसृष्ट्य]

मदकल्ल युवतिशशिकला मजयूषप यूयिकाशवलकेशी ।  
स्विरयौवना स्थिता ते दूरालोके सुखालोका ॥४६॥

[माकर्णं तहंपं] अहं ; अनेन भवतः स्निग्धमन्त्रेण शक्तिन प्रियोपमन्त्रातिना  
समारयासितोऽस्मि । सापम्यासि त्वयि मे धुवसो प्रीतिः ।

मामाहुः पृथिवीभृतामधिपतिं नामाधिराजो भवान् ।  
अन्युच्छिन्न-पृथुप्रवृत्तिं भवतो दानं ममाप्यर्षिषु ।  
स्त्रीरत्नेषु भभोर्वशी प्रियतमा यूथे तवेर्यं वशा  
सर्वं मामनु ते प्रियाविरहजां त्वं तु व्यथां मानुभूः ॥४७॥

सुखमास्तां भवान् । सापमामस्ताभन् । [परिकल्प्य पार्श्वतो दृष्टिं दत्त्वा ।] अमे । अयमसौ  
सुरभिकन्दरो नाम विशेषरत्नोद्यः सानुभामासोवपते । प्रियव्रतमम्बरशास्त्रं । अयि नाम सा  
सुतसुरस्योपस्यत्प्राप्त्यानुपसम्प्रेत [परिकल्प्यावतोवय च ।] कथयन्प्रकारः । भवतु विदुःप्रकाशे-

[सित-सोतमे ही बडे-बडे वृक्षोको सहजमें उखाव फेंकनेवाले हे गजराज । मैं तुम्हीं से  
पूछता हूँ । यथाभो यथा तुमने मेरी उमा त्रिधाकी इतर जाते हुए देखा है जिसने अपनी चमकते  
चन्द्रमाकी कौडमोकी भी लजा दिना है ॥२॥] [तो पग पागे बढकर] हे भववाले हाथी ! क्या  
तुमने अपनी दूरतक देखेवाली प्रीतिसे उदा जवान दिलाई देनेवाली उस खर्चोकी कही  
देखा है, जो धुवदियोमें चन्द्रमाकी नई किरणके समान चमकती है और जिसके पालोंमें  
वृक्षोके फूल यूथे हुए हैं ॥४६॥

[सुनकर हर्षते] आहा ! इस तुम्हारे कोपस, मन्द और प्रियाका टिकना बतानेवाले गर्जनसे  
मेरे बीको नडा सहारा मिला है । तुम भी मेरे ही समान बनवान् हो, इसलिये तुमसे  
मेरा बडा स्नेह ही गया है । धीमे मुझे यथाभोका स्वामी कहते हैं और तुम्हे भनोका स्वामी ।  
तुम भी दिन-रात अपना यत्न चर्षति मद बहावा करते हो तो मेरे वहाँ भी दिन-रात  
संयोगोकी धान देनेका काम चलता रहता है । इतर स्त्रियोमे रत्नके समान सुन्दर उर्बो  
मेरी प्रियतमा है तो यह हृषिनी भी तुम्हारी बंधी ही प्यारी है । इस प्रकार हम दोनों  
सब बातोंमें एक-ते ही हैं, पर मैं यही जानता हूँ कि प्रियाके बिछोहकम हुआ तुम्हे कभी न  
बताने ॥४७॥ तुम सुखी रहो । हम जा रहे हैं । [सुनकर अपने एक ओर देतकर] अरे !  
यह सुरभिकन्दर मयाका बडा सुहावना पर्वत दिखाई दे रहा है । और पत्तारामोंको यह  
पर्वत बडा प्यार भी है । कही यह सुन्दरी इस पर्वतकी लक्ष्मणोमें ही न मिल जाय ।  
[सुनकर और देखकर] अरे । यहाँ कितना प्रियता है । अच्छा, बिचनी चमके तो मैं देखूँ—

नापत्नीकयामि । हन्त मदीयंहरितपरिणाममेषोऽपि घतहृदाभ्रुव्यः संबुतः तथापि शिलीष्य-  
मेनमपृष्ट्वा न निर्वातये ।

पनरिअरररररुरदारिअमेइणि वखगहखे अविचल्लु ।

परिमप्पइ पेच्छह लीणो शिअकज्जुज्जुअ कोलु ॥४८॥

(प्रभृतधरदारितमेदिनिर्वनगहनेऽपिचलः ।

परिसर्पति पश्यत सोनो निबकायोलुवतः कोलः ॥)

अपि वनान्तरमल्पकुचान्तरा श्रयति पर्वत-पर्वसु संनता ।

इदमनङ्गपरिग्रहमङ्गना पृथुनितम्ब नितम्बवती तव ॥४९॥

कथं वृष्णीमेवाते । अङ्के विप्रकर्षात् शृणोतीति । भवतु । सवीपेऽप्य गत्वा पुनरेतं  
वृच्छामि ।

फल्लिहसिलाअलशिम्मलशिञ्जकुरु बहुविहकुकुसुमें विरइअसेहर ।

किंणरमडुरुग्गीअमयोइरु देक्खावहि महु पिअअम महिहर ॥५०॥

(स्फटिकसितातलनिर्मलकिंकर ! बहुविष्णुसुर्गविरचितशेखर ।

किंनरमपुरोद्गीतमनोहर इतथ मम प्रियतमा महीधर ॥)

[इति परिक्रम्य घञ्जति यदध्या ।]

सर्वक्षितिभृतां नाथ दृष्टा सर्वाङ्गसुन्दरी ।

रामा रम्ये वनान्तेऽस्मिन्मया विरहिता त्वया ॥५१॥

[नेपथ्ये तदेवाकण्ठं लहयंम् । कथं यथाजम् इष्टा इत्यह । भवानपि घतः प्रियतरं  
शृणोतु । ॥ तर्हि मे प्रियतमा । [पुनरेव सर्वक्षितिभृता नाथ इति पठति । नेपथ्ये तदेव प्राकण्यं

हाय । हाय । मेरे दुर्भाग्ये बादमोमे विजयी भी नहीं रह गई । फिर भी इस पर्वतपे  
पूछे बिना मैं वहाँसे टर्नूंगा नहीं ।

[घपने बड़े-बड़े धीरे धीरे सुरेंद्रि पुष्पोंकी सुँदता हुआ घपनी देखकर घरा हुआ, एक  
धंगमी सुपर घपनी पुनमें भरत होकर इस घने जंगलमें घूम रहा है ॥५८॥]

हे बड़ी-बड़ी डालोंवाले पहाड़ ! घपने इस कामदेवके बनने नया तुमने सुन्दर नितम्बों  
वाली धीरे धीरे-धीरे सुरेंद्रि हुई-थी उस सुन्दरीकी देखा है जिसके दोनों रतना उमर-  
कर घापसमें छट पड़ है ॥५९॥ धरे ! यह छुप क्यों हो गया ! या क्यों जाने दूर होनेके  
कारण ही वह न मुझ तक रहा हो ! मरकट, इसके पास जाकर पूछता हूँ । हे स्फटिककी  
बट्टनोंपर बहने हुए उबने भरभोवाले ! हे रग-दिरये फूलोंसे ढपनी चोटियाँ घनानेवाले ! हे  
विश्ररोंके जोड़ोंके मपुर भीड़ोंसे मुहावने लगनेवाले पर्वत ! मेरी प्यारीकी एक भलक  
तो मुझे दिखा दो ॥६०॥ [धूमकर धीरे देखकर] हे पर्वतोंके स्वामी ! नया तुमने वनके  
इन सुन्दर धोरमें मुझे बिछुरी हुई उस निसानी सुन्दरी उर्बजोंकी नहीं देता है ॥६१॥  
[नेपथ्ये वीं हो शब्द सुनकर सद्यं] धरे ! नया यह कह रहा है कि—हाँ ठीक वैसे ही  
देगा है रंगना देने कर था । तब तुम इसमें भी प्यारी बात सुनो धीरे मुझे बताओ कि  
मेरी प्रियतमा कहाँ है । [विरहे २१ वाँ स्तोत्र पढ़ता है धीरे नेपथ्यमें फिर उसे बड़ी सुनवाई

विभाव्य च ।] हा विष् । भर्तृवार्थं कन्दरपुंखदिसर्पं प्रतिजगद्व्यः । [इति मूर्च्छति । नर्याम सविपादम् ।] ग्रहह आगतोऽस्मि । अस्यास्तावन्निरिन्धास्तोरे स्थितस्तरङ्ग-वातमाशेषिष्ये । परिक्रम्यावलोक्य च] इमौ गयाम्बुकमुषामपि स्रोतोवह्नां पश्यतो मे रमते मनः । कुतः—

तरङ्गभ्रमङ्गा

क्षुभितविहगश्रेणिरशना

विकर्षन्ती फेनं वसनमिव संरम्भशिशिलम् ।

यथाविद्धं याति स्तलितमभिसन्धाय बहुशो

नदीभावेनेयं ध्रुवमसहना सा परिणता ॥५२॥

भक्तु । प्रसादयामि तावदेनाम् । [मूर्च्छति वदाम् ।]

पतीञ्च पिञ्चञ्चम मुंदरि एणए खुहिआकरुण विहंगमए णए ।

सुरसरित्तीरसमुत्सुञ्च एणए अलिउलमंकारिअए णए ॥५३॥

(प्रसौक प्रियतमे सुन्दरि नदि क्षुभिताकलविहङ्गमे नदि ।

सुरसरित्तीरसमुत्सुके नदि अलिकुलमंकारित्ते नदि ॥)

[ नेपथ्ये ]

पुष्यदिसापवणाहअकल्लोलुग्गअवाहओ

मेहअंगे णच्चइ सललिअं अलणिहिणाहओ ।

इंसपिहंगमकुंकुम संखकआभरण्ण

करिमअराउलकसणकमलकआवरण्णु ।

देता है । सुन्दर और समझकर] हाय रे भाग्य ! यह तो पहाड़की मुफसे टकराकर निकलनेवाले भेरे ही शम्भोकी गूंज है । [भूकंपन हो जाता है : फिर उठकर तु लके साथ] घरे । अब तो मैं बक गया हूँ । इसलिये इस झरनेके तीरपर तरगोदी ठडी बयारसे चलकर बैठता हूँ ।] [सुमकर और वेककर] अभी नरने हुए वालीसे नदसे झरनेको देखकर भी मेरा मन प्रसन्न हो रहा है क्योंकि भागमे धानेवाली पट्टानीसे बचनेके लिये यह टेढ़ा होकर बह रहा है, इसकी सहर्षे चली हुई भीहो-जैयी हैं, ब्याकुल पक्षियोंकी पारतें ही इसकी तपशी है, इसका फेन ही दानो यह पश्य है जो बलनेसे दोना पड गया है और जिसे वह लीनती लिए चली जा रही है । इससे मुझे ऐसा लग रहा है कि भेरी ओषो प्रिया ही नदी यन गई है ॥५२॥ अञ्जा, चतूँ में इसको चलकर मनाता हूँ ।

[हाय जोडकर]

[उचते हुए और कड़े स्वरसे चहचहाते हुए पक्षियोंवाली, गयाबीसे मिलनेको उठावती और भीरोकी पारतेंसे गूंजनेवाली है सुन्दर नदी ! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ ॥५३॥]

(नेपथ्यमें)

यह देखो ! समुद्रके स्वामी का कंसा अञ्जा नृत्य हो रहा है । जसमे पची हुई मेपोंकी परछाईं ही उनका शरीर है । पुरबंया पवनसे उठी हुई सहर्षे ही दानो नृत्यके लिए उठाए हुए उनके पैरके चंपरु और आभूषण हैं । हाथियो भीर

वेनामलिलुञ्चेल्लिग्रहत्थदिरपतालु

ओत्थरह् दमदिम कंघेविशु खवमेहथालु ॥५४॥

पूर्वदिक्कवनाहनरत्तोत्तोद्गनवाद्द मेवाहगंनृत्यनि मनत्तिव जलनिग्गिनाप ।

हृगविहृद्गमकुद्गुमसाहृदनानरसु वरिभनराजुमकुप्युक्कमनहृतावरणः ।

वेना एनिभोद्वेत्तिवत्तहृत्तत्तान्भोजस्तृणाति दधदित्तोरद्वन्वा नवमेवताल ॥)

स्वयि निवद्धरती प्रियवादिनी प्रणयमद्गपराह्मुपचेतसि ।

रुमपराथलयं मयि पश्यमि त्यजमि मानिनि दामजनं यतः ॥५५॥

कर्म कृष्णोमेवास्ते [विचित्रय] धवशा परमार्थनरिदेवैषा । न सन्मूर्च्छी पुररवत्तनपहाप  
समुद्रानिभारिली भविष्यति । भवतु । अनिर्वहप्राप्यासि धेयाति । यावत्तमेव प्रदेशं गच्छामि  
यम मे नयनयो' ता मुनयना निरोहिता । [परिष्क्य विनोषय च] इमं तावतिपयाप्रवृत्तये  
आरक्ष्णामासीत्तमभ्यर्षये ।

अभिनवकुमुमस्तवकित्तस्वरस्य परिसरे

मदकलकोकिलहृजितरवम्भङ्गारमनोहरे ।

नन्दनरिपिने निजकरिणीविरहानलेन मन्तप्यो

विचरति गजाधिपतिरैरावतनामा ॥५६॥

कृष्णसारच्छवियोऽमी हरयते काननश्रिया ।

नवशप्पावलोकाय कटाक्ष इव पातितः ॥५७॥

गमरोके भृङ्ग ही जनने नीके बरत है, नीके बमस ही जननी माताएँ हैं और तीरके टक्काली  
हुई महारों ही मानो टाल दे रही हैं और इसी बीच वर्षाकावने आकर सब दिशाओंको डँक नी  
जिया है ॥५४॥ ]

हे मदी ! बरतानो ली तुमने इनका प्रेम करनेवाले, सब मीठी बानें करनेवाले और प्रेमने  
कमी पावनी बात ही न सोपनेवाले इस प्रेमीमें तुमने बीनवा ऐसा छोट से छोटा भी दोष पाया  
है कि तुम इस दानकी इस प्रकार छोड़ रही हो ॥५५॥ धरे, यह पुत्र क्यों है ? [वीचकर] या  
निर यह सबमुच मदी ही होगी । क्योंकि यदि यह सर्वज्ञी होती तो पुररवाकी छोडकर समुद्रकी ओर  
जातेने सिये इनकी उत्तारनी न होती । मच्छ, निजा दुख उठाए मुन पिय भी लो मही सक्ता  
गर्भु, धर मे उसी रवानार जाऊँ जहाँ वह सुन्दर नयनीवाली मेरी आँखोंसे धोभन हो गई थी  
[पुनकर और देगकर] चर्भु, इस बँडे हुए हरिणसे ही प्यारोका वता पूर्वु ।

[नन्दन बनने मये पूषोंके मुन्दरिणि सदेहुए और मदमाते बोधवनी भीठी बनते मुदावने  
सगनेवाले कृष्णके पास यह एराबत हाथी धपनी प्यारी हरिणीने विछोडकी आँखमें उपा हुया इयर-  
उपर पूष रहा है ॥५६॥ ]

इस हरिणके परीरपर बनी हुई बानी बानी बुँदकिर्णों गेकी लगती हैं मानो मनकी नई  
हरिणानो निहारने के लिए बनसहयोने ही इयरपर धपनी चिटवन वाली हो ॥५७॥

[ विलोक्य ] किं नु खनु भाभवधोरमन्नित्वाप्यतो मुखः संवृत्तः । [ दृष्ट्वा ]

अस्पान्तिकमायान्ती शिशुना स्तनपायिना सृगी रुद्धा ।  
तामयमनन्यदृष्टिर्भुग्नग्रीवो विलोकयति ॥५८॥

सुरसुन्दरि ब्रह्मभरालस पीणुचंग वसुथशि  
थिरजोव्यण तणुसरीरि हंसगई ।  
गश्रणुज्जलकाशुखे मिश्रलोश्रणि भमंती ।  
दिही पई तह विरहसमुदन्तरे उचारहि मई ॥५९॥

( सुरसुन्दरी जघनभरणसा वीनोत्तुङ्गपनस्तनी  
स्थिरजोवणा तणुसरीरि हंसगतिः ।  
गमनोज्ज्वलकानने भृगसोपना भ्रमन्ती  
दृष्ट्वा त्वया तर्हि विरहसमुद्रान्तरावुत्तारय माम् ॥ )

[ उच्यते प्रज्वलि यद्गत्वा ] हंही हरिलोपतै ।

अपि दृष्टवानसि मम प्रियां वने कथयामि ते तदुपलक्ष्यं शृणु ।  
पृथुलोचना सहचरी यथैव ते सुभगं तथैव खलु सापि वीक्षते ॥६०॥

कदममाहाय महचर्म कलाश्रामिमुखं स्थितः । उपपद्यते परिभवास्पदं वतादियर्षयः ।  
यायदितोऽहुमन्यमयकाशमवगाहिष्ये । [ परिक्रम्यावलोक्य च ] हन्त दृष्टमुपलक्षणं तस्या मार्गस्य ।

[ देखकर ] इसने ही मेरी बात धनसुखी करके अपनी मुंह दूसरी ओर फेर लिया है ।

[ देखकर ] इसके पास जो इसकी हरिणी बसी भा रही थी और जिसे दूध पीनेवाले भृगसोपने ने बीचमें ही रोक लिया है उसकी ओर भास लगाए यह टक-टक देख रहा है ॥५९॥ [ नितम्बोंके भारी होनेके कारण धीरे-धीरे चलनेवाली और ऊँचे उठे हुए मोटे-मोटे स्तनीवाली, सदा लबान रहनेवाली, पतली कमरवाली, हठ-जैसी धातवाली उस भृगनेनी अप्सराको यदि तुमने इस आकाशके समान उजले वनमें घूमते हुए देखा हो तो उसका ठिकाना बताकर मुझे ॥ विरहके समुद्रसे उबार लो ॥५९॥ ] [ पास जाकर हाथ जोड़कर ] क्यों बी हरिणीके स्वामी ! क्या तुमने मेरी प्यारीको कहीं वनमें देखा है ? मैं तुम्हें उगका रूप-रंग बताए देता हूँ । गुनो ! ठीक जैसे सुन्दारी हरिणी अपनी बड़ी-बड़ी भालोंसे सुन्दर चितवन चलाती है वैसे ही वह भी चलाती है ॥६०॥ क्या यह मेरी बात धनसुखी करके अपनी हरिणीकी ओर मुंह करके बँठ गया ? ठीक ही है—जब दिन लोटे पाते हैं तो सभी दुरदुपते हैं । तो फिर महीसे कहीं और चलकर उसे ढूँँहो । [ भूमकर और देखकर ] परे लो ! मैं

रक्तकदम्ब सोऽयं प्रियया घर्मान्तशंसि यस्स्यैकम् ।  
कुसुममसमग्रकेसरविपममपि कृतं शिखाभरणम् ॥६१॥

[ परिक्रम्यासोकवचोवच्य च ]

रक्ताशोक कृशोदरी क्व नु गता त्यक्त्वानुरक्तं जनं...

[ पवनश्रुगयान्मूर्धानमपत्नोक्य सक्रोधम् ]

नो दृष्टेति मुधैव चालयसि किं वाताभिभूतं शिरः ।

उत्कण्ठाघटमानपट्पदघटासङ्घट्टदृच्छदः

तत्पादाहतिमन्तरेख भवतः पुष्पोद्गमोऽयं कुतः ॥६२॥

भवतु । मुञ्जमास्ता भवान् । [ परिक्रम्यावचोवच्य च ] किं नु त्वसु एतच्छिलामेवान्तरपतं

निताम्नारक्तमवलोकयते ।

प्रभालेपी नायं हरिहतगजस्याभिलषः

स्फुलिङ्गो वा नाग्नेर्गहनमभिवृष्टं पत इदम् ।

[ विभाव्य ]

अये रक्ताशोकप्रसवसमरागो मशिरयं

यद्बुद्धं पूषा क्यवसित इवालम्बितकरः ॥६३॥

यहो पर्यं हरति मे मनः । भवतु । आदस्ये तावदेवम् ।

उसके मायंका ठिकाना या सिधा । यह वही सात कदम्बका पेठ है जिसमें फूलें हुए फूल बत्ता रहे थे कि गर्मी बीत गई । उसीका एक ऐसा फूल लेकर ग्यारीने अपने लूकेका सिगार किया था जिसमें केसर न फूट मानेके कारण वह उस समय तक कटा ही था ॥६१॥ [ घूमकर मसौककी धोर देखता हुआ ] हे सात अशोक ! इस प्रेमीको छोड़कर यह कुन्दरी कहाँ जाती गई ? [ पवनसे हिलती हुई मसोरकी बोटी देखकर क्रीपसे ] पवनसे भूमता हुआ अपना सिर हिलाकर यह क्यों कह रहे हो कि मैंने नहीं देखा । यदि तुमने उसे न देखा होता तो बत्ताभी मसुरे सातवने इकट्ठे होनेवाले भीरसे कुतरी जानेवाली पक्षदियोवाले तुम्हारे फूल उराकी सात साए बिना फूल कैसे उठते ॥६२॥ सफ़्फ़ा, तुम सुखी रहो । [ घूमकर धोर देखकर ] यह परपरकी दरारके भीतर बड़ा बड़ा सात मणि-सा दिखाई दे रहा है ? यह इतना चमक भी नहीं हो सकती क्योंकि अभी-अभी पनघोर बर्षा में ही उनी है । [ देखकर ] भरे, यह तो सात मसौकके फूलोंके समान सात-सात मणि है जिसे उद्यानके लिये सूर्य भी मानो अपने चरण-रुनी हाप वहाँ तक बड़ाए हुए है ॥६३॥ भरे ! यह तो मेरे मनको बड़ा सुखा रहा है ।

( नेपथ्ये )

यद्यद्विषयवद्वासाद् अत्रो वादाउल्लिखिअवअण्णओ ।

मअवइ गहखे दुहिअओ भमइ क्खामिअवअण्णओ ॥६४॥

( प्रणयिनिबन्धाका वाष्पाकुतनिबनयनः ।

गजपतिगहने दुहितः भवति धामितयदनः ॥ )

[ गहलं नाटयति । गृहीत्वा ] अथवा

भन्दारपुष्पैरभिवासितायां यस्याः शिखायामयमर्षणीयः ।

सैव प्रिया सम्प्रति दुर्लभा मे किमेनमस्रोपहतं करोमि ॥६५॥

[ दत्पुष्पजतिः । ]

( नेपथ्ये )

यत्त गृह्यतां गृह्यताम् ।

सङ्गमनीय इति मणिः शैलसुता-चरखरामयोनिरयम् ।

आवहति धार्यमाणः सङ्गममचिरात्प्रियजनेन ॥६६॥

रामा—[ कलं दत्वा ] को न खनु मावेवमनुगति । [ अवबोधय ] अथ अनुकम्पते मां  
शक्तिन्दृग्घारी मुनिभंगवान् । भगवन् अनुग्रहोतोर्भस्य महमुपवेशद्ववतः [ मणिमादाय ]  
हहो सङ्गमनीय !

तया विपुक्तस्य विलग्नमध्यया भविष्यति त्वं यदि सङ्गमाय मे ।

ततः करिष्यामि भवन्तमात्मनः शिखामणिं बालमिवेन्दुमीश्वरः ॥६७॥

( नेपथ्ये )

[ भवती प्यारीको पानेकी आका लगाए, आँसोमे घाँसू भरे यह सुले मुँहवाला हाथी इस  
बनमे दुली होता हुआ घूम रहा है ॥६४॥

मणि निकालनेका नाट्य करता है । उसे बकड़कर ] वर मेरी जिस प्यारीकी मन्वारके  
फूलोसे सुश्रित बोटीमे यह मँगनी चाहिए वही जब नहीं मिल रही है, तब मैं इसे ही लेपर  
पयो इसे धरने माँतुमोसे मिला कहे ॥६५॥ [ वही उसे छोड़ देता है । ]

( नेपथ्ये )

यत्त ! इसको ले लो, ले लो । यह प्रियसे मिलानेकासी संभमनीय मणि है जो पार्वतीजीके  
चरणोकी लसाईसे बनो है । इसे जो अपने पास रखता है, उसे यह शीघ्र ही प्रियसे मिलवा  
देता है ॥६६॥

रामा—[ सुनकर ] भरे ! यह कौन मुझे इस प्रकार आज़ा दे रहा है ? [ देखकर ]  
जान पड़ता है हरिणोके लगान बनमे रहनेवाले किसी मुनिने मुझपर कृपा की है । भग-  
वन् ! आपके इस उपदेशके लिये मैं आपका आभारी हूँ । [ मणि उठाकर ] हे लगमनीय  
मणि ! यदि मुझे उस पतली कमरवाली सुन्दरीसे मिला योगी तो मैं तुम्हें उसी प्रकार  
अपने मुकुटमें लगा लूँगा जैसे जिवनीने बाल चन्द्रपाको अपने चिरकी जटामोमे रख



अतो विनिद्रे सहसाविलोचने करोमि न स्पर्शविभावितप्रियः ॥७०॥

[शर्माङ्गुष्पुत्नीस्य] क्वं सत्यमेव प्रियतमा । [इति मूर्च्छितः । पतति ।]

उर्वशी—[वाण्यं विगृह्य] समस्तसदु समस्तसदु महाराजो । (अमास्वहितु अमास्वतितु महाराजः ।)

राजा—[समा सञ्चया] प्रिये अद्य जीवितम् ।

स्वद्वियोगोद्भवे सन्नि मया तमसि मज्जता ।

दिष्ट्या प्रत्युपलब्धासि चेतनेव गतासुना ॥७१॥

उर्वशी—अस्मत्तरकरस्याए मए पञ्चवलीकिरदुस्ततो वसु महाराजो । (अभ्यन्तरकरस्या मया प्रत्युपलब्धुत्ताम्तः ससु महाराजः ।)

राजा—अभ्यन्तरकरस्येति न ससु ते वचनायंमवीमि ।

उर्वशी—कहइसं । इहं बाव भसोवदु महाराजो चं मए कोववसं गवाए एवं अवापत्तरं पाविदो महाराजो । (कवविश्याभि । एतत्तावत्प्रसोवतु महाराजो यन्मया कोपवश गतया एतद-वस्थान्तर प्रापितो महाराजः ।)

राजा—कल्याणि । तावदहं प्रसावदित्यः । स्वहसंवावेवप्रस्तमवाह्याम्त.करणोभन्तराग्ना । ताकपय कपमियन्तं कालमवस्थिता मया विना भवती ।

मोरा परहुअ हंस रहंअ अलि अग पव्वअ सरिअ डुरंगम ।

तुज्जह फारणे रएणभमन्ते को ण हु पुच्छिअ मई रोअंते ॥७२॥

(मयूरः परभृता हवो रमाङ्गः अलिगंजः परंतः सरिस्फुरङ्गमः ।

तव कारणेनारण्ये भ्रमता को न यसु पृष्ठे मया पठता ॥)

मित्र रहा है इसलिये मैं भयभीत नहीं लोभुंगा ही नहीं ॥७०॥ [धीरेसे धीरे खोलकर] धरे । यह तो सचमुच मेरी प्यारी ही है । [मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है ।]

उर्वशी—[मांसु बहाती हुई] धीरज गरिए महाराज ! धीरज गरिए ।

राजा—[मूर्च्छति जागकर] राज मैं भी क्या प्यारी ! हे सुन्दरी ! तुम्हारे शिघोहके धंगरेमे हूयते हुए मैंने भाव्यवत्ता तुम्हे सही प्रकार पा लिया है जैसे मरे हुएको प्राण मिल जाय ॥७१॥

उर्वशी—मैंने भयभीत भीतर ही इन्द्रियोंसे महाराजकी सब बातें जान ली थीं ।

राजा—मैं तुम्हारे 'गीतरी इन्द्रिय' शब्दका अर्थ नहीं समझ ।

उर्वशी—मैं बताती हूँ उसका अर्थ । पर आपसे यह प्रार्थना है पहले मुझे क्षमा कर दोनिए क्योंकि मैंने ही श्लेष करके आपको हतना कष्ट पहुँचाया ।

राजा—कल्याणी ! तुम्हे मुझसे नहीं क्षमा माँगनी चाहिए । तुम्हारे बर्णनसे ही मेरा अंतरात्मा और बाहरी इन्द्रियाँ सब प्रसन्न हो गई हैं । पर यह तो बताओ कि इतने दिनों-तक तुम मेरे विना रही कैसे ? बताओ । [मोरा, नोमल, हंस, पक्षवा, भौरा, हाथी, पहाड, नदी, किराणे मे से कौन ऐसा रह गया जिससे मैंने वनमें घूम-घूमकर रोठे हुए तुम्हारे लिये नहीं पूछा ॥७२॥

उर्वशी—एवं संतुष्टकरणपञ्चसौकिन्दुवृत्ततो महाराजो । ( एवमन्तःकरणप्रत्यक्षीकृतवृत्तान्तो महाराजः । )

राजा—प्रिये ! अन्तःकरणवृत्ति न खल्ववयञ्जामि ।

उर्वशी—सुखाद्दु महाराजो । पुरा भगवता कुमारेण सात्तमे कुमारपदं मेहिम्न भक्तसुतो एव गंगभादणकच्छो भञ्जोष्ठितो । किन्दो न एव विद्मी । ( शृणोतु महाराजः । पुनः भगवता कुमारेण गान्धर्वतं गुणारत्नतं सुहोत्रवाकसुयो नाम गंगभादणकच्छोऽप्यासितः । कृतस्वप विधिः । )

राजा—रु इव ।

उर्वशी—आ किन्तु इत्यिच्छा इत्वं यदेवं यवित्ति सा लवनादेण परिष्णमिस्तिथि ति । विदो न भक्तं सायान्तो योरोचरलुरासभंमर्षं मलि विद्या ततो एव मुचिस्ताथि ति । तयो एहं गुणसावसंभूदहिषया देवदासमभं विमुमरिभ धनहिताभूदुभ्या इतिष्णालणपरिहरणीय कुमारवणं पविष्टा । पञ्चैसाजन्तरं एव च काललोयंतवतिवांसंतीनदाभाप्य परिष्णं मे दधम् । ( मा किल स्त्री इम प्रदेर प्रविशति सा लवनादेन परिष्णस्वतीति । कृतभार्यं सायान्तः गोरीचरलुरागतंमव-मलि विद्या ततो न भोक्ष्यत इति । ततोऽहं गुणसावसंभूदुदमा देवतासमर्थं विस्मृत्यादृहीतानुभव स्त्रीजनपरिहरणीयं कुमारवन प्रविष्टा । प्रयेसानन्तरमेव न कान्तोपागतवलि-वासंतीनतामावेन परिष्णं मे रूपम् । )

राजा—प्रिये सर्वमुपपन्नम् ।

अमखेदसुप्तमपि मां शयने या मन्यसे प्रवासगतम् ।

सा त्वं प्रिये सहेयाः कर्म मदीयं चिरयियोगम् ॥७३॥

उर्वशी—मैंने अपनी भीतरी इन्द्रियोसे महाराजकी सब बातें जान ली थी ।

राजा—प्यारी ! मैं अपनीचुन तुम्हारे इस "भीतरी इन्द्रिय" कादका भयं नहीं समझ सका हूँ ।

उर्वशी—मुझे महाराज ! बहुत दिन हुए भगवान् कर्त्तिकेवने लडाके लिये महापर्व मेहर इन शक्ति गंगभादन पर्यन्तर अपनी देर जमावा भीर यह नियम बना दिया कि—

राजा—क्या ?

उर्वशी—यही कि जो स्त्री यही चाहेगी वह लडाके रूपमे बरस जायगी । पर इस चापका उम्होंने यह उपाय भी बना दिया था कि पायलोरोके चरणोंकी लसाईति उपायन होनेवासी मछिने पाए बिना इस चापसे छुटकारा नहीं हो सकता । गुधत्रीके चापसे मेरी बुद्धि ऐसी मारी गई कि मैं देवतायोके निममको भूख गई थीर चापकी मनुहारको ठुकराकर शक्तिनेयके उस वनमें फँड गई जहाँ जिनको नहीं जाना चाहिए । वैसे ही वनके बाँदेर ही मैं बागन्तो मता हूँ गई ।

राजा—प्रिये ! अब मेरी लपभने एक बात चाहें । यहाँ तो जब तुम मेरे धनकर ली पानेपर भी मुझे दूर गया हुआ समझ लेतो थीं अब मया तुम भुञ्जते इतने दिनोंतक कैसे भगन रह गयी थीं ॥७३॥ देखो, प्यारी तुम जिस मछिनीके बात कह रही थीं, वह

इदं तद्यथाकथितं त्वत्सङ्गमनिमित्तं मुनेरुपगतस्य मस्तिप्रभावादासादिता त्वमस्माभिः ।  
[ इति मणिं दर्शयति । ]

उर्वशी—अम्भो सगमस्योभो अम्भ मणो । अदो वधु महाराएण भ्रातिगिदमेत ज्ञेव्व  
पकिदित्त्यं म्हि सञ्जुत्ता । ( पहले सङ्गमनीयोज्य मणि । अतः खलु महाराजेनाविद्भिर्गतमार्षेव  
प्रकृतस्थास्मि सञ्जुत्ता । ) [ मणिपादाय मूर्धनि वहति । ]

राजा—एषमेव मुन्दरि क्षणमात्रं स्वीयताम् ।

स्फुरता विच्छुरितमिदं रागेण मञ्जोर्ललाटनिहितस्य ।

श्रियमुद्ब्रह्मति मुखं ते बालातपरकरमलस्य ॥७४॥

उर्वशी—मिच्छय महतो वधु कालो नुए पइहाएखवो लिग्गदस्स । कदाइ अमुइस्सति म  
पकिदीभो । ता एहि रिणुत्तम्ह । ( श्रियवद् महाखलु कालस्तव प्रतिष्ठानानिर्गतस्य । अदाचिद-  
सूयिष्यन्ति मद्य प्रकृतम् । तदेहि निवर्तयहे । )

राजा—यदाह भवती ।

[ इति उत्तिष्ठत । ]

उर्वशी—अयं कथं महाराजो गतु इच्छति । ( अयं कथं महाराजो गतुमिच्छति । )

राजा—

अचिरप्रभाविश्रुसितैः पताकिना सुरकार्मुकाभिनवचित्रशोभिना ।

गमितेन खेलगमने-विमानतां नय मां नवेन वसतिं पयोमुखा ॥७५॥

( नेपथ्य )

दुमसे मिलानेवाली मणि यहो है, जिसे मुझसे पाकर मैंने दुन्दे पा लिया है । [ मणि दिख-  
वाते है । ]

उर्वशी—क्या यहो सगमनीय मणि है ? इसलिये महाराजके बसे लगाते ही मैं फिर बैसीकी  
तैसी बन गई । [ मणि लेकर फिर चढ़ती है । ]

राजा—सुन्दरी ! क्षण भर इसी प्रकार खड़ी तो रहो । तिरपर रखी हुई इस मणिसे  
अमकता हुआ दुन्देरा मुंह प्रातः कालके पूर्वकी किरणोंसे अमकते हुए कमलके समान मुहाबता लग  
रहा है ॥७४॥

उर्वशी—हे मिठबीले ! घाय बहुत दिनोंसे प्रतिष्ठान नगरीसे बाहर घाए हुए हैं ?  
क्या जाने प्राप्तकी प्रजा मुझे ही इसके लिये कोस रही हो ? इसलिये बाइए, बलिए लौट चलें ।

राजा—जैसा तुम चाहो । [ दोनों उठते हैं । ]

उर्वशी—तो महाराज कैसे जाना चाहते हैं ?

राजा—मैं चाहता हूँ कि बिजलीकी ऋडियोवाले और इन्द्रधनुषके नये चित्रवाले विमान  
वने हुए नये मेघपर चढ़कर ही मैं अपने नगरको जाऊँ ॥७५॥

[ नेपथ्ये ]

पात्रियमहश्चरिगंगमयो पुलग्रपसाहियग्रंगयत्रो ।  
सेच्छ्रोपचविमाणयो विहरइ हंसजुआखयो ॥७६॥

( प्राप्तमहचरोनङ्गमः पुलग्रप्रसापिताङ्गः ।  
स्वेच्छ्राप्राप्तविमानो विहरति हंसयुवा ॥ )

[ इति निष्क्रान्तौ ]

॥ इति चतुर्थोऽङ्कः ॥

[ अपनी प्यारीके मिलकर पुनर्जित शरीरवासा यह अपना हस्त अपने मंगवाहे विमानपर  
बढ़कर उठा बना था रहा है ॥७६॥

[ दोनों चले जाते हैं । ]

॥ चौथा अंक समाप्त हुआ ॥

## पञ्चमोऽङ्कः

[ततः प्रविशति हृष्टो विदूषकः ।]

विदूषक—ही ही भो विद्विष्णा चिरस्त फलस्त उज्वसो सहामो सुंदहायशुष्पपुत्रेषु देवदारण्येसु पिहरिष्य पविस्त्रिबुतो निभवमस्तो । पविस्त्रिष्य खभरं दासि ससङ्कारोवमारोहि पकिवोहि मशुरज्जती रज्जं करेदि । संतारुत्तखं वविज्जम ख किवि से हीखं । मज्ज तिहि ब्रितेसो त्त भषयवोखं संगजउण्णाखं संगमे देयीहि राह बिन्दाहिसेषो संपदं उयमारिमं पविदुो । ता जाव तत्तभवदी प्रलंकरोप्रमाखस्त भञ्जनेयस्सभस्से मण्णभागी होमि । (ही ही भोः दिण्ठया चिरस्य कालस्योर्वशी-सहायो नन्दनवनप्रमुलेषु देवदारुभ्येषु विदुष्य प्रतिविवृत्तः प्रियवपस्वः । प्रविश्य नगरनिधानी सप्तकारोपचारंः प्रहृष्टान्मिरनुरज्जमानो राज्यं करोति । सन्तानत्वं वर्जयित्वा न किमन्यस्य हीनम् । मद्य विविधिशेष इति मद्यमत्पयोगेऽङ्गाममुनयोः सङ्गमे देवीभिः सह कृताभिप्रेतः सान्प्रतप्तमुपकार्यं प्रविष्टः । सद्यत्तत्रभवतोऽर्वाक्किमनाशुस्यानुलेपमात्थेऽग्रभागी भवामि ।)

[इति परिक्रामति]

[नेपथ्ये]

हृष्टो हृष्टो । दुःखदुःखरन्ध्रे तामवेटापारे सिबिषिबिष्य शौभ्रमाशो मद् भट्टिलो मभंतरपिलासिली मोत्तरप्रणजोम्पो मणी भामिससंकिष्ठा मिट्टेण भविस्सो । ( हा धिक् हा धिक् दुःखलोत्तररन्ध्रे एण्युत्तापारे निक्षिण्य नीयमानो भवा भर्तुरन्यन्तरकितासितोभोत्तरिल्लवोम्पो मणिरामिपशक्कुवा वृक्षेष्वाक्षितः ।)

## पाँचवाँ अङ्क

[प्रसन्न मनसे विदूषक आता है ।]

विदूषक—हूँ हूँ हूँ ! यह तो बड़े मानन्दकी बात हुई कि नन्दन वय म्मादि देवताओंके वनोमे उर्बशीके साथ बिहार करके मेरे प्रिय मित्र लौट आए हैं और अब अपने नगरमे आकर लोगोसे पाई हुई प्रादर-भेंटसे प्रसन्न होकर राज करने लगे हैं । अब सन्तानको छोडकर इन्हे किसी बातकी चिन्ता नहीं रह गई । आज पर्वका दिन होनेसे वे देवियोके साथ श्रीमन्मन्त्रो और यमुनाजीके संगममे स्नान करके अभी रनिवासमे लौटे हैं । इसलिये जब-तक महाराज अपना राज-सिंघार पूरा करें तब तक चल्ने मैं भी उनकी चन्दन-माला आदिमे अपना भाग पहले ही निकाल लूँ । [धूमता है ]

[नेपथ्यमे]

हाय हाय ! ताडकी पिटातीमे देखबका दुकटा बिल्लाकर उसपर मैं महाराजीके माथेकी मण्डि लिए चला जा रहा था कि इसनेमे एक मिड भ्रपटा और उसे माँसका दुकड़ा समझकर उठाकर चढ़ गया ।

विदूषकः—[बलां दत्ता] अच्चाहिर्दं अच्चाहिर्दं । परमबहुमतो बलु सो वप्रस्सस्स संगमणीभो  
 एवम धूणामणी । धरो बभु अत्तमत्तणोवच्चो एव तत्तमं आसणावो उट्ठिष इतो आत्तच्छदि ।  
 पात्रं खं उपससामि । (अत्तपाहितमत्ताहितम् । परमबहुमतः सन्तु स वयस्वस्व तद्गमतीयो नाम  
 वृद्धावणः । धतः सत्तममात्त-नेपथ्य एव सप्र मवानासन्नाहुत्पायेत धामच्छति । यावदेनभुपससामि ।)  
 [इति निष्क्रान्तः ।]

॥प्रवेशकः ॥

[ततः प्रविशति सान्निपत्येनो राना ।]

राजा—वेपक ! वेपक !

आत्मनो वषमाहर्तां क्वासौ विहगतस्करः ।

येन तत्रप्रथमं स्तेर्यं गोप्तुरेव गृहे कृतम् ॥१॥

किराजः—एतो एतो बलु मूहकोदित्तन्हेममुत्तेल मल्लिण । आत्तिहंतो विप्र आत्तासं पडिभ-  
 मदि । (एव एव सन्तु मुत्तकोदित्तन्हेममुत्तेल मल्लिणावित्तन्निवाक्कासं परिभ्रमति ।)

राजा—पामाण्येणम् ।

अमौ मूरसालंपितहेमसत्रं विभ्रन्मणिं मंडलचारशीघ्रः ।

अत्तातचक्रप्रतिमं विहंगस्तद्रागलेखावलयं तनोति ॥२॥

किं नु अत्तत्र वतंथ्यम् ।

विदूषकः—[उत्प्रेत्य] भो अलं एत्थ पिण्णाए । अत्तच्छो सत्तणीयो । (सो । अत्तत्र पुण्णा  
 अत्तमणी सत्तणीयोः ।)

विदूषकः—[गुणे हृष्ट] यह सो बड़ा गुण हुआ, बड़ा गुण हुआ । यह मणियोंने धनोकी  
 संगमनीय मणि महाराजकी बड़ी व्यापी थी । इसीविषये महाराज मझुस विगार किए हुए ही भासन  
 सोदर इपर धते मा रहे हैं । धतू । [जाता है]

॥ प्रवेशक ॥

[मिथर्वेणै ताव पवराय हृष्ट राजा धाते है]

राजा—अरे वेपक ! वेपक ! अत्तनो मूहत्तु अत्तने धाव मुत्तानेकामा बह बोटा पती कहीं गया  
 त्रिमने स्वयं रथा वत्तनेकत्तने ही परमें मझ पहनो बोरो की है ॥१॥

किराजः—बह देणिय ! धतनी भौवने सोदंवा भोत्त पक्के हृष्ट यह पक्षी ऐसा बरकर सता  
 र्हा है मानी मणिये धावात्तने त्रिय रहा हो ।

राजा—हैं, दिगाई दे गया । मणिये सोनेके टोरेकी पक्के हृष्ट वेगसे बरकर धाटा हुआ  
 यह हम प्रहार मणिये रंगका बहल बना रहा है जैसे कोई धागनी सूबकी बरकर देकर धुमा  
 रहा हो ॥२॥ अब क्या बत्ता चाहिये ?

विदूषकः—[पाव जादर] देणिय ! धत अत्तनो रथा रहने सोविय । अत्तणीयोको बंद देना हो  
 धाटिय ।

राजा—सम्पगाह सवाग् । धनुर्धनुस्तावत्

यवनी—एसा प्रतियस्तं ( एवाऽनेप्यामि । ) [ इति निष्क्रान्ता । ]

राजा—वयस्य ! न हृदयते च विह्वलयमः । वध नु खलु मृतः ।

विदूषकः—भो ! हबो दक्खिण्णतेण अन्नवणे सो सासणीधो कुणवभोगो । ( भो ! इतो दक्षिणान्तेनागतः स शासनीयः कृष्णभोजनः । )

राजा—[ परितृष्यावलोक्य च । ] दृष्ट इदानीम् ।

प्रभापल्लवितेनासौ करोति मखिना खगः ।

अशोकस्तमकेनेव दिङ्मुखस्यावर्तसकम् ॥३॥

यवनी—[ चापहस्ता प्रविश्य । ] भट्टा एवं हत्यावाचकहिर्बं शरसखं । ( मृतः ! एतदस्ता-  
वापचहिर्बं शरसनम् । )

राजा—किमिदानीं शरसनेन । धारुषधमतीतः स कृष्णभोजनः । तथा हि ।

आभाति मखिविशेषो दूरमिदानीं पतत्रिणा नीतः ।

नक्तमिव लोहिताङ्गः परुषधनच्छेदसंयुक्तः ॥४॥

( कञ्चुकिकं विलोक्य । ) धामं सातथ्य !

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

राजा—सद्वचनादुच्यतां गामरिकः । सर्वं नियतशुभाव्यो विधीयतां स विहतवस्तु-  
रोति ।

राजा—ठीक कहा सुनने ! भरे धनुष तो वे बाधो ।

यवनी—भभी साई । [ चली जाती है । ]

राजा—मित्र ! यह कुछ पक्षी तो कही दिखाई नहीं दे रहा है । न जाने किधर चला गया ?

विदूषक—वह मार टागने योग्य मौसलौघा पक्षी दक्खिणकी ओर गया है ।

राजा—[ धूमकर देखता है । ] यह दिखलाई दे रहा है । चमकते हुए मखिकी दधर-उधर  
बोधमे लेकर उड़ता हुआ यह पक्षी ऐसा लग रहा है मानो दिशाके बाधेपर धूडानखि बाध  
रहा हो ॥३॥

यवनी—[ हाममे धनुष लिए धाकर ] यह लीजिए दधरसा ओर धनुष ।

राजा—अब क्या होगा धनुषवा ! यह मित्र तो भरे बाणकी पहुँचसे बाहर निवृत्त गया  
धीर उस मखिकी इतनी दूर उड़ा ले जाकर वह ऐसा लगने लगा है मानो धने बाणकी  
टुकड़ीके साथ रातकी भवब वारा चमक रहा हो ॥४॥ [ कञ्चुकीको देखकर ] धामं  
सातथ्य !

कञ्चुकी—आज्ञा महाराज !

राजा—मेरी आज्ञासे नगरके दुम्मी पिढवा दो कि जब यह ओर संख्याको धपने मौसलेमें  
पहुँचे तो इसे लोका जाय ।

कञ्चुकी—यदाजापयति देव । [ इति निष्कान्त । ]

विदूषक—भो । जबविशु भव सपद । कईहू गरी सी रघालकुम्भीतपो भवरो सात-  
खावो मुच्चिस्तदि । ( भो । जबविशु भवान् साम्प्रतम् । नव यत स रत्नकुम्भीरको भवत  
शासनाम्नोऽप्यते । )

राजा—[ विदूषकेण सहोपविश्य ] वषत्स ।

रत्नमिति न मे तस्मिन्मणौ प्रियत्वं निहङ्गमाक्षिप्ते ।

प्रियया तेनास्मि सखे सङ्गमनीयेन सङ्गमितः ॥५॥

विदूषक—ए परिपयत्को भि क्विवो भवदा । ( ननुपरिगतार्षोऽस्मि कृषो भवता । )

[ तत प्रविराति सद्य मणिमावाय कञ्चुकी । ]

कञ्चुकी—जयतु जयतु देव ।

अनेन निर्मिन्नतनुः स षष्प्यो रोपेण ते मार्गणतां गतेन ।

प्राप्तापराधोचितमन्तरिच्चात्सर्मास्तिरत्नः पतितः पतनी ॥६॥

[ सर्वे हित्यय रूपयन्ति । ]

कञ्चुकी—अस्ति प्रकान्तितोऽय मणि कर्म प्रदोषताम् ।

राजा—वेधक । वच्छ । अग्निमुद्यमेन कृत्वा पेटक प्रवेद्यम् ।

किरात—अ भद्रा धारण्येदि । ( मङ्गलाजापयति । ) [ इति मणि गृहीत्वा निष्कान्त । ]

राजा—धर्मं सातप्य । जानीते भवान् कस्याय धारु इति ।

कञ्चुकी—जैसी महाराजकी भासा [ खला जाता है । ]

विदूषक—मद आप बँड जाइए महाराज । यह रत्नका खोर आपके दइवे दखकर जायवा  
कहाँ ?

राजा—[ विदूषकक साथ बँडकर ] मित्र ! तब पक्षीने जो रत्न चुराया है उसे मैं रत्न हीमके  
माते नहीं, बरबू इसमिये घादर करखा है कि उस सपसनीय मणिन मुझे मेरी प्यारीसे मित्रा  
रिया या ॥५॥

[ वाणके साथ मणि लिए हुए कञ्चुकीका प्रवेश ]

कञ्चुकी—अब ही महाराजकी जय हो । इस मारने योग्य फणोवो आपके कोपने द्वारा  
वनकर मार टासा खोर यह अपने धरराधकन ठीक दण्ड पाकर धावाघसे इस रत्नके साथ ही  
ही नीचे गिर पदा ॥६॥

[ सब धात्रयं करते हैं । ]

कञ्चुकी—मैंने इस मणिको पानोवे धो टासा है । कहिए किये दूँ ?

राजा—वेधक ! जाओ, इस भागमें पुद्र बरके पेटीम रख ले ।

किरात—जैसी महाराजकी भासा । [ मणि लेकर जाता है । ]

राजा—क्या आप सातप्य ! कुछ यह भी ताज हुआ कि बाछ विचवा है ?



कञ्जुकी—नामाङ्गितोष्यं दृश्यते । न तु मे यत्संविचारक्षमा दृष्टिः ।

राजा—तेन हि उपनयं अरं याचञ्चहं निरूपयामि ।

[कञ्जुकी तथा करोति । राजा नामाक्षराख्यनुवाच्यं विचारयति ।]

कञ्जुकी—यावदहं निवोगमशून्यं करोमि । [इति निष्क्रान्तः ।]

विद्रुपकः—किं भवं विप्रारेवि । (किं भवान्विचारयति ।)

राजा—भृशु तावत्प्रहूर्त्ननामाक्षराणि ।

विद्रुपकः—अथहरो म्हि । (अथहितोऽस्मि ।)

राजा—भूयताम् । [इति वाचयति ।]—

उर्वशीसंभवस्यायमैलसुनोर्धनुष्मतः ।

कुमारस्यायुषो बाणः प्रहूर्त्नद्विपदायुषाम् ॥७॥

विद्रुपकः—[सपरितोषम् ।] विद्विन्ना संतापोऽयं यद्भक्तिं भवं । (दिष्ट्या सन्तानेन वर्धते भवादु ।)

राजा—तस्मै कथयेत्तु । अथयं नैमिषेयतन्नायविभुक्तोऽहंपुर्वशया । न च मया कदाचि-  
दपि गर्भव्यक्तिरालसिता कुत एव प्रसूतिः । किन्तु—

आविल्लपयोधराग्रं लवलीदलपादद्विराननच्छायम् ।

फानि दिनानि वपुरभूरकेवलमससेवर्षं तस्याः ॥८॥

कञ्जुकी—इसपर नाम तो बुधा हुआ दिखाई देता है पर बेरी आँसुंसे इसके अन्दर  
लोक-लोक पहे नहीं जा रहे हैं ।

राजा—अच्छा, इसपर आओ बाण । मैं ही पढ़ता हूँ । [कञ्जुकी बाण देता है । राजा उस  
बाणपर लिखे हुए नामके अक्षरोंको बाँधकर सीधते हैं ।]

कञ्जुकी—तयतक मर्दु मैं अपना काम करूँ । [जाता है ।]

विद्रुपक—आप सोच क्या रहे हैं ?

राजा—वह पक्षीकी भारनेवाले बीरका नाम; सुनोगे ?

विद्रुपक—हाँ, बताइए ।

राजा—सुनी ! [बाँधता है ।] यह बाण पुरुरवा और उर्वशीके अनुमारी पुत्र मातु  
मामके उस राजकुमारका है जो शत्रुओंके प्राण खींच नेता है ॥७॥

विद्रुपक—[सतोषके साथ] आपको पुत्र पानेकी क्याई ।

राजा—पर मित्र ! यह हो कैसे सकता है ? नैमिषेय यज्ञको छोड़कर मैं कभी उर्वशी-  
जीसे अलग नहीं रहा और हथ भीष मैंने उनके शरीरमें कभी यशने लक्षण भी नहीं  
देते, फिर यह पुत्र उलबन्ध कैसे हो गया ? पर हाँ, एक बात है, अभी कुछ दिन  
पहले मैं उनके शरीरको देखता था तो उनकी आँखें अलछाई रहती थीं, उनका मूँह  
लवलीके पत्तोंके समान पीला पड़ गया था और उनके स्तनोंकी घुट्टियाँ साँवली पड़  
गई थी ॥८॥

विदूषकः—या अर्थं स्वयं याचुषोपम्यं दिव्यासु संभावयेदु । यद्दार्पणपूजादौ तार्णं चारिण्यैः । (या भवान् सर्वं याचुषोपमं दिव्यासु संभावयतु । प्रभायनिगूढानि तासौ चरिणानि ।)

राजा—अतु तावदेवं यथा भवान्नाह । पुत्रसंवरणे तु विविधं चारणं तत्र भवत्याः ।

विदूषकः—मा बुद्धिं मे रामा परिहृतिस्तदिति । (मा वृद्धां मा राजा परिहृतिरूप्यतीति ।)

राजा—तुलं परिहृतेर । विनयनाम् ।

विदूषकः—यो देवकारुण्यार्थं तद्गुरतति । (यो देवतासुख्यानि तदपिप्यति ।)

[प्रविश्य वञ्जुषी]

वञ्जुषी—अतु अतु देवः । देव स्यवनाथमाकुमारं गृहीत्वा सम्प्राप्ता तापसो देवं इच्छतिविरति ।

राजा—उमयमप्यधिलभितं प्रवेद्य ।

वञ्जुषी—यदाज्ञापयति देवः । [इति निर्गम्य चापहरतेन पुनरेण तापस्या च अद्य परिशः ।]

वञ्जुषी—इत इतो भगवती । [सर्वं परिष्ठापति ।]

विदूषकः—[विचोच्य] इति तु अतु तो एतो ततमर्थं सतिप्रभुमारमो जस्त एतामिबिदो निद्वलसतदेपी अदराताथी । तद् हि अहृषरं भवती अगुषरेदि । (किं तु अतु त एष अत्रमरानिद्वनुवारको अय मासाद्गतो वृधमदववेपथेनाराथः । तथा हि अहृषरं मयतोऽनु-  
वर्ति ।)

विदूषकः—आत याचुषो विचोचामी सब चारुं अयराधोपर सागु न तमभिप । दे जो चाई अनी देवी कलिने दिवाए १५५ तमनी है ।

राजा—तो जो तुम करते हो वही बात होगी । वर ज्योति पुत्रको दिये क्यों दिया ?

विदूषकः—इतिने कि बड़ी राजा मुझे बुझी मयमकर छोड़ न दें ।

राजा—अपना शिरोभो न करो । ध्यायने सोचो ।

विदूषकः—अथा देवताधोकी चार्णोथा येव कोई का मरणा है ?

[वञ्जुषी आता है]

वञ्जुषी—अह ही, यदापयकी वर हो देह । अत्रम-श्रुतिके याथमते एत कुमारना अय मित् एत कोई अविबयो छाई है और अतरना अर्थन करना चाहती है ।

राजा—सोचो अत्र अत्र ये सातो ।

वञ्जुषी—जो देवकी आज्ञा । [बाहर आकर और फिर अगुषारी पुनारको मोर अदरावकी काय मेवर अगुषा है] एवर आह देवो, एवर मे ।

[एव पूजते है ।]

विदूषकः—[देवधर] वही वही वर सतिप्रभुमार न ही तिनके नामकामा दिद्वर अतरा एता वर अर्थकय अत्र विवः है और जो आने अत्र विवना-मुपना थी है ।

राजा—स्यादेवम् अतः सन्तु ।

वाप्यायते निपतिता मम दृष्टिरस्मिन्वात्सल्यबन्धि हृदयं मनसः प्रसादः ।  
संजातवेपथुभिरुज्जिह्वात घैर्यवृत्तिः इच्छामि चैनमदयं परिरन्धुमङ्गैः ॥६॥  
कञ्चुकी—भगवति ! एवं स्वीयताम् ।

[ तापसोऽनुमारी स्वती । ]

राजा—अम्ह ! अभिधादये ।

तापसी—महाभाग । सोमवंसवित्पारदत्तप्रो होहि । [ पात्मवत्तम् ] अम्हो अलावबिजधोवि  
विष्णावो एवम इमस्त राक्षसिहो आजसो अमोरतो संबधो [ प्रकाशम् ] जाद मएम हे गुरुं ।  
( महाभाग । सोमवसवित्पारविता भव । अहो अनाशवातोऽपि विज्ञात एवास्य राजर्वेदायुषाञ्च मोरसः  
सम्बन्धः ) जात ! प्रणम से गुरुम् । )

[ कुमारऽप्यपथभ्रमञ्जलि वदन्वा प्रणमति । ]

राजा—वत्स ! आमुष्मान् मय ।

कुमार.—[ स्वगतम् ]

यदि हार्दमिदं श्रुत्वा पिता ममायं सुतोऽहमस्येति ।

उत्सङ्गवर्धितानां गुरुषु भवेत्कीदृशः स्नेहः ॥१०॥

राजा—भगवति ! किमागमन्प्रयोजनम् ।

राजा—हो सकता है । क्योंकि इसे देखते ही भाँखें भर आई हैं हृदयमे वात्सल्य प्रेम उमड़ा  
पड़ रहा है, जो जित गया है मेरा शरीर पीरक सोकर काँपने लगा है और मेरी ऐसी इच्छा  
ही रही है कि इसे बठाकर कसकर अपने गलेसे लगाऊँ ॥६॥

कञ्चुकी—भगवती ! वस यही खटो रहिए । [ तपस्विनी और कुमार खड़े रहते हैं । ]

राजा—मैं प्रणाम करता हूँ माता जी !

तापसी—हे बडनागी ! आपसे अश्रवण बडे । [ मन ही मन ] घरे ! बिना बताए ही पत्त  
पल जाता है कि दूध राजा और कुमारका लगा सम्बन्ध है [ अन्त ] देखा अपने पिताको  
प्रणाम करो ।

[ हापमे अनुप लिए हुए ही कुमार हाथ जोडकर प्रणाम करता है । ]

राजा—वत्स ! सुन्हायी बडी भाबु हो ।

कुमार—[ मन ही मन ] जब मुझे केवल यही सुनकर दृढता प्रेम उमड़ रही है  
पिता है और मैं इनका पुत्र हूँ, तब उन बालकोंको अपने माता-पिताके कितना  
जो उन्हीकी गोदमे पलकर बडे होते होंगे ॥१०॥

राजा—कहिए भगवती ! कैसे आई ?

भाऊ । महंतो बलु संवत्तो । ( को नु खल्वेव सवाखासन. पादपीठे स्वयं महाराजेन संयम्यमान-  
दिव्यपद्मस्तिसृति । अहो सत्यवतोसुचितीम् मे पुत्रक प्राप्नु । महानु बलु सवृत्तः । )  
[ इति सङ्घर्ष परिश्रमवति । ]

राजा—[ उर्वशी दृष्ट्वा । ] वत्स—

इयं ते जननी प्राप्ता त्वदालोकनतत्परा ।

स्नेहप्रसवनिर्भिन्नमुद्गन्ती स्तनांशुकम् ॥१२॥

तापसी—आह एहि । पञ्जुल्लस्य मातरं । ( आत एहि । प्रत्युद्गच्छ मातरम् । ) [ इति  
कुमारैश्च सह उर्वशीसुपसर्पति । ]

उर्वशी—अयं पादबंधनं करोमि । ( धम्म-पादबन्धनं करोमि । )

तापसी—बध्ने भस्त्रयो बहुमदा होहि । ( वत्से भर्तुःसंहृमसा भव । )

कुमार—धम्म धमिवाशये ।

उर्वशी—[ कुमारमुन्नमितमुख परिश्रम्य । ] बल्ल पियरं धारापहतप्रो होहि । [ राजान-  
मुपेय । ] जेदु जेदु महाराओ । ( वत्स विवरमारपयिता भव । जयतु जयतु महाराजः । )

राजा—स्वामतं पुत्रवस्ये । इत प्रास्पताम् [ इत्यर्थासनं ददाति । ]

[ उर्वशी उपविशति । सर्वे बधोपितमुपविशन्ति । ]

तापसी—बध्ने । एषो गहीवपिज्जो भाऊ संपदं कयमहरो संवुत्तो । ता एहस्स दे भस्त्रयो  
समकलं सिग्ग्यादियो ह्यसिग्गिखेणो । ता विस्सग्गेदुं इच्छामि । उयदग्गद्ध महं अस्तमघम्मो ।  
( वत्से । एव दृढीकृतिय प्राप्नुः साम्प्रतं कथयहुरः सवृत्तः । तदेतस्य ते भर्तुः समकलं नियतितो  
हस्स-मिद्धेपः । तद्विसर्जयितुमिच्छामि । उपसृष्यते ममाथमधर्मः । )

देलकर ही में समक गई कि यह मेरा पुत्र प्राप्नु है । अरे ! यह तो बहुत बड़ा हो गया है ।

[ बड़ी प्रसन्न होकर प्रपत्नी है । ]

राजा—[ उर्वशीको देलकर बालकसे ] वत्स ! सो ये तुम्हारी माँ या गई जो तुम्हारी  
भोर एकदनी लमाए देल रही है और जिनकी बोली तुम्हारे श्रेयसे उनके हुए दूषसे भीग गई  
है ॥१२॥

तापसी—यहाँ प्राप्नो वैदा ! प्राप्ने बडकर माताका स्वागत करो । [ कुमारको लेकर उर्वशीसि  
मित्तमेको प्राप्ने वडती है । ]

उर्वशी—माताजी ! आपके घरखोमि प्रणाम करती हूँ ।

तापसी—धमने स्वामोकी प्यारी बनी रही ।

कुमार—माँ ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

उर्वशी—[ कुमारका मुख ऊपर उठाकर उसे शरीरसे चिपटावी हुई ] वत्स ! पिताको सेवा  
करनेवासे बनी । [ राजाके पास जाकर ] जय हो, महाराजकी जय हो ।

राजा—पुत्रवतीका स्वागत है । याचो, यहाँ चलो । [ धमने प्राप्ने धामनपर बैठा लेते है । ]

[ उर्वशी बैठती है । सब यथास्थान बैठते है । ]

तापसी—वत्से ! ठीकसे पढ़-लिखकर धन यह कुमार स्वयं धारण करने-योग्य हो गया है ।  
इसनिसे तुम्हारे स्वामीके धामने ही तुम्हारी परोहर तुम्हें सौंप देती हूँ । धन जाना भी चाहती  
हूँ बयोधि धमो धायमना बहुत-सा नाम मेरे बिना पढ़ा होवा ।

सर्वशो—धिरस्स भ्रमं देविलास्य महिषदरं भवितिष्ठहि । ए सङ्गोमि विसग्गिजुं ।  
अण्णय्यं उण उवरोहिदुं । ता मण्णुत्तु भग्ना पुणो दंसल्लास्य । (धिरस्यायां हृद्गाऽपिकतरमपितु-  
प्यास्मि । न शननोमि विल्लण्डुम् । अन्याय्य पुनरुपरोद्धुम् । तदुपण्णवर्षा पुनदंसं नाम ।)

राजा—भ्रम्य ! भगवते ध्यवनाय मां प्रलिपातय !

तापसी—एष्वं भोडु । (एव सवतु ।)

कुमारः—भार्ये ! सत्यं यदि निवर्तसे मायप्याध्वं नेतुमर्हसि ।

राजा—अपि यत्त ! उचित त्वया पूर्वस्मिन्नाश्वने । द्वितीयमप्यासितुं तव समयः ।

तापसी—आह । मुद्गरलो वध्वलं भस्त्रिडु । (जात । गुरोर्वचनमनुसिष्ठ ।)

कुमारः—तेन हि ।

यः सुप्तवान्मदङ्गे शिरस्यदकण्डूपनोपलब्धसुखः ।

तं मे जासकलार्पं प्रेषय मणिकण्ठकं शिखिनम् ॥१३॥

तापसी—[विहस्य ।] एष्वं करोमि । (एव करोमि ।)

सर्वशो—अध्वर्ये ! पादबंधन करोमि । (भगवति । पादबन्धन करोमि ।)

राजा—भगवति ! प्रहृष्टमामि ।

तापसी—सौम्य भोडु पुग्गहाणु । (स्वस्ति सवतु पुष्पम्यम् ।)

[इति निष्क्रान्ताः ।]

राजा—[सर्वशो प्रति] कस्यासि ।

सर्वशो—इतने दिनोंपर तो भाप बिली हैं । अभी भापसे बिलकर जो ही नहीं बरा  
इसलिये भापको जाने देनेको जो ही नहीं चाहता । पर भापको रोक रखना भी बडा अग्याय  
होगा, इसलिये भाप जाती हैं तो जार्जे पर फिर दर्शन अवश्य दीजिएगा ।

राजा—माताजी ! भगवानु ध्यवनसे मेरा प्रणाम कहिएगा ।

तापसी—अच्छी बात है ।

कुमारः—भार्ये ! यदि अथ अबभुव लोडो का रही हो तो मुझे नी आसन सेतो  
बली ।

राजा—अरे यत्त ! तुम इत्यपर्यं आश्रममे रद्दु पुके हो अब तुम्हें गृहस्थ धायमने  
रहना चाहिए ।

तापसी—बेटा ! पिताजीका कहना मानो ।

कुमारः—तो भाप मेरे उठ बड़े-बड़े पत्तोवाले मणिकण्ठक नामके मोरको यहाँ भेर  
दीजिएगा जो मेरी गौदन सोया-सोया धपना धिर मेरे हाथसे छुत्रताए जानरा आनन्द  
जिया करता था ॥१५॥

तापसी—[हँसकर] अन्धा भेव दूंगी ।

सर्वशो—भगवती ! मैं चरलोमे प्रणाम करती हूँ ।

तापसी—तुम दोनोरा बत्थाए हो । [बली जाती है ।]

अद्याहं पुत्रिस्थामश्रुयः सत्पुत्रेणामुना तव ।

पौलोमीसंभवेनेव जयन्तेन पुरन्दरः ॥१४॥

[उर्वशी स्मृत्या रोदिति ।]

विदूषकः—[विलोचन सावेगम् ।] भो किं श्च क्चु सम्पर्दं भक्तहोदी एह्वदे अस्तुमुही संवृता । (भोः किं नु खलु साम्प्रतमत्र भवती एवपदे भयमुच्छी संवृता ।)

राजा—[सावेगम् ।]

किं सुन्दरि ! प्ररुदितासि भमोपनीति शंशस्यितेरधिगमान्महति प्रमोदे ।

पीनस्तनोपरिनिपातिभिरानयन्ती मुक्तावलीविरचनां पुनरुक्तिमक्षैः ॥१५॥

[इति अस्या वाप्य प्रगाष्टि ।]

उर्वशी—सुलासु महाराजो । पडमं उरु पुत्रदंशणसमुत्प्रेण भाएदिए विमुमरिव न्हि । दाएि महिवरंकिण्णोण सुमरिणो सनभो मह हिमन्नं धामासेसि । (श्रुणोसु महाराजः । प्रथमं पुनः पुत्रदंशनसमुत्प्रेणानन्देन भित्मृतास्मि । इदानीं महेंद्रसंकीर्तनेन स्मृतः समयो मन हवयमायास्यति ।)

राजा—कथ्यतां समय ।

उर्वशी—महं पुरा महाराजगहीवहिप्रमा मुक्तावसंभूता महिरेण भाएत्ता । (महं पुरा महाराजगहीवहृदया गुरुवापसभूता महेंद्रेण भाजापिता ।)

राजा—किमिति ।

राजा—[उर्वशीसे] हे बरवाणी ! तुम्हारे इस सुपुत्रकी पाकर आज मैं सभी पुत्रवासोक्षे उही प्रकार बड़ गया हूँ जैसे इन्द्रासीसे उरुगम हुए जयन्तकी पाकर इन्द्र ॥१५॥

[उर्वशी कोई बात स्मरण करके रीने लगती है ।]

विदूषक—[हेलकर, भवराए हुए] भरे ! यह क्या ? यह भवानक धापकी धाँवोमें धाँपू भयो धा गय ?

राजा—[भवराकर] हे सुन्दरी ! ऐसे धुन भवसरपर तुम रो रही हो जब मेरे बरवाकी बडानेवाला पुत्र मुझे मिला हो । तुम अपने मोटे स्तनोपर गिरनेवाले धाँसुभोसे हूँउरे हारवी लड़ी व्यर्थ कमी बना रही हो ॥१५॥ [उसके धाँसू पोंछता है ।]

उर्वशी—मुनिए महाराज ! पहले तो मैं पुत्रका मूँह देखकर ऐसी भयन हो गई कि सब मूल ही गई थी पर जब आपन भयो इन्द्रका नाम बिधा तो मुझे एक बात स्मरण हो आई है जो मेरे हृदयको कचोट रही है ।

राजा—बहो, क्या बात है ।

उर्वशी—बहुत दिन हुए, धापते प्रेम करनेपर भरत मुनिने मुझे धाप दे दिया था । उध धापसे मैं बहुत भवरा गई थी । तब इन्द्र भगवान्ने मुझे धाजा दी थी.....

उर्वशी—जवा सो मे विप्रसहो राएसी तुद समुप्यणसस वसकरसस मुहं वेभिससदि तदा तुए  
 भूमी ॥ मम समीचं घ्राघतव्यं चि । तदो मए महाराजविभोभभोदवाए जादमेतो एव्व विज्जागम-  
 लिमित्तं भप्रवडो पवखरसस भससमे एतो पुत्तधो घज्जाए सक्चववीए हत्थे अण्यभासं सिण्णित्तो ।  
 अज्ज पिदुरो अराराहएसमत्थे संवुत्तो चि क्तमत्तोए ताए खिज्जादिवो एतो मे बोहाज्ज अज्ज । ता  
 एत्तिभो मे महाराएण सह संवासो । (यदा स मे विपत्तयो चर्कपिस्त्वयि समुत्पन्नस्य वधकरस्य  
 मुखं प्रेक्षिष्यते तदा तथा भूयोऽपि मम समीपमावन्तव्यमिति । ततो मया महाराजविभोगभीष्टतया  
 जातमान एव विद्यावमनिमित्तं भगवत्तदव्यवनस्यायमे एव पुत्रकं प्राप्स्यामि, सत्यवाया हस्तेऽप्रकारं  
 निक्षिप्तः । यद्य पिदुरारापनसमर्थं, सकृत् इति क्लमन्त्या स्या विर्यसिद्ध एव मे दीर्घपुरायुः ।  
 तदेतानाम्ने महाराजेन सह संवाचः ।)

[सर्वे विपत्तं नाटयन्ति । राजा मोहमुपगच्छति ।]

विदूषकः—अस्यमहत्त्वं अस्यमहत्त्वं । (अप्रहृष्यमप्रहृष्यम् ।)

कञ्चुकी—समाश्रयितुं समाश्रयितुं महाराजः ।

राजा—[समाश्रयस्य समि रणासम् ।] अहो तुल्यप्रार्थिता संवस्य ।

आशवासितस्य मम नाम सुतोपलब्ध्या सद्यस्त्वया सह कृशोदरि विप्रयोगः ।

व्यावर्तितात्पर्यजः प्रथमाभ्रवृष्ट्या वृक्षस्य वैद्युत् इवाग्निरुपस्थितोऽयम् ॥ १६ ॥

विदूषकः—अहं तो अयो अशत्वात्सुयो संवुत्तो । संवदं तक्केभि भसभयवा बह्वत्तं वेण्हिह  
 तयोवर्णं गंदव्वं चि । (मय सोऽप्योऽनर्थावुग्वं सकृत् । आश्रयतं तर्कमाम्यत्र भयता यत्कल  
 पृहीत्वातपोवनगन्तव्यमिति ।)

उर्वशी—यही कि तुम्हारे प्यारे भिन्न राजवि अन्न तुमसे उत्पन्न हुए पुत्रका मुँह देल जें सब  
 हुम फिर मेरे पास लौट जाना । इसलिये जैसे ही यह क्षातक उत्पन्न हुआ जैसे ही मैंने इस बरसे  
 इसे भगवान् ध्यवगने आश्रयमे पढाने-लिसानेके बहाने आर्षां सत्यवतीके पास धरोहर बनाकर छोड़  
 दिया था कि यदि नहीं प्राप्त इसे देल जेने तो मेरा प्रायका निश्छेद हो जायगा । प्राय उन्होंने  
 मेरे इस धिरजोय पुत्र प्रायुकी विताकी चेखा करने योग्य समझकर लौटा दिया है । इसलिये वस  
 धानतक ही मैं, महाराजके साथ रह सकती थी ।

[सब दुखी होते हैं और राजा मूर्छित हो जाते हैं ।]

विदूषक—बड़ा बुरा हुआ, बड़ा बुरा हुआ ।

कञ्चुकी—[आपस संभावा हुआ] धीरे धीरे महाराज ! धीरे धीरे धीरे ।

राजा—[भूत्सि जागकर लजी लीस लेते हुए] अरे, देव मेरे मुखको फूटी आँखो नहीं देलता  
 चाहता । आज ही तो पुत्रको पाकर मेरा जो ठंडा हुआ था और आज ही तुम चल दी । वह तो  
 ठीक ऐसा ही हुआ जैसे पहली वर्षासे ठंडाए हुए कृत्तपर अन्तानक विजयो दूट पडी हो ॥ १६ ॥

विदूषक—जान पड़ता है कि कुछ और भी विपत्तियाँ दूट पड़नेवाली हैं । मुझे तो भय यह  
 लटक हो रहा है कि वल्लभ पहलकर महाराज कहीं तपोवनको न चल दें ।

उर्वशी—मं वि मंदभादिति किद्विद्युत्प्रसक्तं पुत्रस्तं नामाद्यंतं सग्यारोहणं प्रवृत्तिदकञ्च  
विष्यन्नोन्नतुं महाराजो सत्प्रवृत्तिः । (यामपि मन्दभागिनी कुतस्विनयस्य पुत्रस्य साभान्तरं  
स्वर्गादोहणेनावधित्वाथ विप्रयोगस्तौ महाराजः समर्पयिष्यति ।)

राजा—मुन्दरो मा मंथम् ।

न हि सुलभविद्योगः कर्तुमात्मप्रियाणि प्रभवति परवत्ता शासने तिष्ठ भर्तुः ।

अहमपि तव सुलावद्य विन्यस्य राज्यं विचरितमृमयूथान्याश्रयिष्ये वनानि ॥१७॥

दुवारः—नाहंति तातः शुक्लवपारितायां धुरिं इम्यं विद्योन्नतुम् ।

राजा—अपि यस्तः । मा मंथम् ।

शमयति गजानन्यान्गन्धद्विपः कलमोऽपि सन्

भवति सुतरां वेगोद्गमं शुद्धशिशोर्विपम् ।

ध्रुवमधिपतिर्वालावस्थोऽप्यलं परिरक्षितुं

न खलु वयसा जाल्यैवार्यं स्वकार्यसहो भरः ॥१८॥

आर्यं सातम् ।

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

राजा—मनुचनारभारत्यर्णरप्यं मू हि तं प्रियतामापुत्रो राज्यमभियेक इति ।

कञ्चुकी—एवाभाष्यति देवः । [ इति दुःखितो विक्रान्तः । ]

उर्वशी—घोर भेरे जैसी आभाषिणीके लिये भी महाराज यही सोचते होंगे कि पढ़ा-लिखा  
पुत्र पागैले इसका काम ही गया है इसलिये अब यह स्वर्गको चली जा रही है ।

राजा—ऐसा न कहो सुन्दरी ! तुम जित पराधीनताके कारण मुझे छोड़कर जा रही हो उधरे  
मगवाही बनू तो भिल नहीं सठही इसलिये जाओ, तुम अपने स्वामीकी आज्ञाका पालन करो  
घोर में भी आज तुम्हारे पुत्रकी राज्य सींरकर दूर-उपर पूबवेवाले हरिणोंसे भरे सपीबनमें  
जाकर रहने लगता हूँ ॥१७॥

दुवारः—पिताजी ! रमके जित्त जुएकी बड़ा बँस सीचता हो उधे छोटेके बपड़ेके कन्वेपर  
बाधना ठीक नहीं है ।

राजा—ऐसा न कहो बरस ! जैसे ऊँची जातिके हाथीका बच्चा भी वृन्दे हाथियोंको पछाड़  
सकता है घोर हीरोकेका बिप बड़े सौपके बिप जैसा हो भयंकर होता है, बँसे ही राजाका पुत्र,  
बातक होते हुए भी वृन्दीका ठीकसे पालनकर सकता है क्योंकि अपने-अपने कर्तव्य पालन  
करनेकी शक्ति अत्यन्तही नहीं बरद जाति या स्वभावके ही उत्पन्न हो जाती है ॥१८॥ आर्यं  
सातम् ।

कञ्चुकी—आज्ञा कीजिए महाराज ।

राजा—मेरी बीरके अभाव परित्यक्ती धूनना दो कि सायुके अग्यमभियेकका प्रवण विद्य  
जाय ।

कञ्चुकी—जैसी महाराजकी आज्ञा । [ दुगी होकर चला जाता है ]



[ सर्वे दृष्टिविघातं श्ययन्ति । ]

राजा—[ आकाशगवलोचय । ] किन्तु कतु निरभ्रे विद्युत्संपातः ।

उर्वशी—[ विलोक्य । ] धम्मो भगवंं खारदो । ( यहो भगवान् नारदः । )

राजा—[ निपुणमवलोक्य । ] अये भगवान् नारदः । य एयः—

गोरोचनानिकपपिङ्गजटाकलापः संलक्ष्यते शशिकलामलवीतसूत्रः ।

मुक्तागुणातिशयसंभृतमण्डनश्रीः हेमप्ररोह इव जङ्गमकरूपघृष्टः ॥१६॥

सर्वं तावदस्मै ।

उर्वशी—[ यक्षोक्तमाहाय । ] इमं भगवदे अर्पित्वा । ( इय भगवतेऽर्पुंता । )

[ ततः प्रविवति नारदः । सर्वं उत्तिष्ठन्ति । ]

नारदः—विजयतां विजयतां मध्यमलोकवासः ।

राजा—[ उर्वशी हस्तादध्वंभावायाचयं च । ] भगवन्भिवारदो ।

उर्वशी—भगवंं परामामि । ( भगवन् प्रणमामि । )

नारदः—अधिरहितो दम्पती भूयास्ताम् ।

राजा—[ आश्रयणम् । ] भवि मामैवं स्यात् । [ कुमारमाहित्य प्रकाशम् । ] वस्त भग-

वन्तमभियावयस्व ।

कुमारः—भगवान् । शीर्षेण आयुः प्रणमति ।

[ सब लोगोकी भाँसें बकशीय हो जाती हैं । ]

राजा—[ आकाशकी घोर देखकर ] खुले आकाशमें यह बिजली कौसी ?

उर्वशी—[ देखकर ] धरे ! ये ती भगवान् नारद हैं ।

राजा—[ ध्यानसे देखकर ] हाँ, ये ती सचमुच भगवान् नारद ही हैं जो गोरोचनाके समान पीसी जटादाले कन्धेपर चन्द्रमाकी कलाके समान उबला जनेऊ पहने और मौतियोंकी भाँसा गलेमें पहने हुए ऐसे चतुरे चले या रहे हैं मानो सुनहरी छायावाला कोई चलता फिरता कल्पवृक्ष उतरा चला या रहा हो ॥१६॥ सामो, इनकी पूजा करनेके लिये सब सामग्री तो ले सामो ।

उर्वशी—[ सब सामग्री लाकर ] यह रही देवियोंकी पूजाके लिये सामग्री ।

[ नारदजी प्रवेश करते हैं, सब सठ खडे होते हैं । ]

नारद—मध्यम लोककी रक्षावाले महाराजकी जय हो, जय हो ।

राजा—[ उर्वशीके हाथसे पूजाकी सामग्री लेकर घोर पूजा करके ] भगवन् ! अभिवादन करता हूँ ।

उर्वशी—भगवान् ! मैं प्रणाम करती हूँ ।

नारद—तुम दोनोंका कमी बिछोह न ही ।

राजा—[ मन ही मन ] यदि कही ऐसा हो जाता : [ कुमारको गले लगाकर प्रकट ] वस्त ! भगवान नारदकी प्रणाम करो ।

कुमार—भगवन् ! उर्वशीका पुत्र आयु भावनी प्रणाम करता है ।

नारदः—घायुष्मानेव ।

राजा—धर्मं विष्टरोऽनुसृष्टताम् ।

नारदः—तया । [ इत्युपविष्टः । ]

[ सर्वे नारदमनुपविशन्ति । ]

राजा—[ सधिनसम् ] भवन्तु किमागमनप्रयोजनम् ।

नारदः—राजन् । श्रुयतां महेश्वरसन्देशः ।

राजा—धर्महितोऽस्मिन् ।

नारदः—द्वेषाघदशां मघवा यनयमलाय कृतशुद्धिं भवन्तपनुजास्ति ।

राजा—किमाज्ञापयति ।

नारदः—त्रिपालदार्याभिर्युनिभिरादिहो महान्पुरापुरासुरसंगरो भवति । भवति सायुगीनाः सहायी नः । तेन न त्वया धारणं संस्वरसम्पत् । इयं चोर्वशी यास्वरायुस्तव सहयर्मन्वाराणि भयतिपति ।

उर्वशी—[ घषपायं । ] अग्नहे सन्तं विम मे हिमपायो धमणीवं । ( अहो अत्यमिव मे हृदयावपनीतम् । )

राजा—परवानरिम देवेश्वरेण ।

नारदः—तुम्हारी बनी घायु हो ।

राजा—देवपि । आहण, यह धासन पवित्र नीजिए ।

नारदः—धन्वी बाठ है ।

[ नारद मुनिके बैठनेपर सब बैठ जाते हैं । ]

राजा—[ मग्नतासे ] कहिए भवन्तु । कंठे मानेका कष्ट किया ?

नारदः—इत्येनं शुभ संदेश भवति हे वह मुनिप—

राजा—जी मैं भुल रहा हूँ ।

नारदः—मघवी देवी दक्षिणे सवके मनवी धारो जाननेवाले इन्द्रने जय देला कि घाप नम धानेरी तांपारी नर रहे हैं तो उन्होंने यह कहलाया है—

राजा—हां, उन्होंने क्या आज्ञा दी है ?

नारदः—त्रिपालदार्यां मुनियाने भविष्यवाणी नी है कि देवताधर्मो मोर राक्षसोने बडा मारी संग्राम होनेवाला है और संघासमें बुजल घाप, ह्य भोगोरी सदा सहायता करते ही हैं इसलिये घाप नम न छोड़ें । यह उर्वशी जीवन-भर घापनी सगिनी रहेगी ।

उर्वशी—[ घमण ] मेरे जीवा लो बंठे कंठ निवस भया ।

राजा—मैं तो इन्द्रका सेवक ही हूँ ।

नारद — युक्तम् ।

त्वत्कार्यं वासवः कुर्यात्तं च तस्येष्टमाचरेः ।

सूर्यः समेधयत्यग्निमग्निः सूर्यं च तेजसा ॥२०॥

[ प्राकाशमवशोभय । ] रम्भे । उपनीयता स्वयं महेंद्रेण सभृत कुमारस्यापुपा पीयराज्या-  
भिवेक ।

[ प्रविष्टा यथोक्तहस्ताम्बरस । ]

अम्बरस — भद्रस इमे अभिसेधसभारा । ( भगवन्नेतेर्जनिषेवसभारा । )

नारद — उपवेशयतामयमायुष्माभद्रपीठे ।

रम्भा — ह्यो वल्ल । ( इतो वत्स । ) [ इति कुमार भद्रपीठ उपवेशयति । ]

नारद — [ कुमारस्य विरसि कनकमावर्ण्यं । ] रम्भे । निर्वर्त्यता क्षेपे विधि ।

रम्भा — [ यथोक्त निर्वर्त्यं ] वल्ल । पराम भद्रवत्त विवरो स । ( वत्स । प्रणाम भद्रवत्त  
वितरी च । )

[ कुमारो यथाक्रम प्रणयति । ]

F

नारद — स्वस्ति भवते ।

राजा — कुलपुरधरो भय ।

उर्वशी — विदुरातो भाराह्मो हीहि । ( विदुराराणको भव । )

नारद — ठीक ही है — जैसे सूर्य अपने ठेकते अग्निकी उकसाता है और अग्नि सूर्यको अपने  
तेजसे बढ़ावा है वैसे ही इन्द्र तुम्हारा काम करे और तुम इन्द्रका काम करो ॥२०॥ [ प्राकाशकी  
ओर देखकर ] रम्भा ! स्वयं इन्द्रने कुमार आयुके युवराज बननेके उत्सवके लिये जो सामग्रियाँ  
भेजी हैं वे सब ले लो धारो ।

[ ऊपर कही हुई सामग्रियाँ लिए हुए अम्बरार्ण्यं धारो हैं । ]

अम्बरार्ण्यं — महाराज, अभिषेककी सामग्री धारो ।

नारद — आयुष्मान्को पीठे पर बैठाओ ।

रम्भा — इधर वत्स इधर (कुमारको भद्रपीठ पर बैठाती हैं । )

नारद — ( कुमारके चिरपर अभिषेक करते ) रम्भानी शेष विधि पूरी कीजिए ।

रम्भा — ( विधि-पूर्वक अभिषेक करती है ) वत्स, महाराज नारद और माता पिताको प्रणाम  
करो ।

( कुमार क्रमसे प्रणाम करते हैं । )

नारद — आपका कल्याण हो ।

राजा — कुलके प्रधान बनो ।

उर्वशी — पिताके भक्त बनो ।

[ नेपथ्ये वृत्तालिकन्दमम् । ]

वृत्तालिको—विजयतो युवराजम् ।

प्रथम.—

अमरमुनिरिवात्रिर्ब्रह्मणोऽत्रेरिचेन्दुः

युध इव शिशिरांशोर्बोधनस्येव देवः ।

मम पितुरनुरूपस्त्वं गुणैर्लोककान्तैः

अविशयिनि समस्ता वंश एवाशिपस्ते ॥२१॥

द्वितीय —

तव पितरि पुरस्तादुन्नतानां स्थितेऽस्मिन्

स्विसिमिति च विभक्ता त्वय्यनाकम्पधैर्ये ।

अधिकतरमिदानीं राजते राजलक्ष्मीः

हिमवति जलधौ च व्यस्ततायेव गङ्गा ॥२२॥

धर्मरस.—[ उर्वशीमुपेय । ] विदुषा विभक्तो पुस्तत युवराजसिरोप भक्तो अभिरहेण  
 म भर्त्सति । ( विष्टया प्रियसक्तो पुस्तत युवराजधिया भर्तुरभिरहेण च भर्त्सते । )

उर्वशी—सं साहारसो एषो ब्रह्मणो । [ कुमार हस्ते गृहीत्या । ] एहि वक्ष्ये । जेदुमादरं  
 अभिवदेहि । [ ननु साधारण एवोऽभ्युदय । एहि यत्त । ज्येष्ठमातरपथिवन्द्यम् । ]

[ कुमारः प्रतिच्छेदे । ]

( नेपथ्ये दो वृत्तालिक )

दोगी—युवराजकी विजय हो ।

पहला वृत्तालिक—तुम अपने माता-पिताके वंश ही योग्य पुत्र बनो जैसे ब्रह्मणोके पुत्र  
 अमर मुनि भक्ति हुए, अत्रि मुनिके अन्धभा हुए, अन्धभाके तुम और युधके पुरुरवा हुए हैं ।  
 तुम्हारे इस जगते निराने बशमें और सब आशीर्वाद तो पहले ही फल चुके हैं ॥२१॥

दूसरा वृत्तालिक—कैंके-कैंके दोगीमे थेंह तुम्हारे पिता हैं और उनके तुम वधे साहसी और  
 गर्वादा पाकनेवाले पुत्र हो । तुम दोगीमे एकसो भक्ति रखनेवाली यह राज्य-सहमी उषी प्रकार  
 और भी सोमा देने लगी है जैसे हिमालय वर्षत और समुद्र दोगीमे समान रूपसे भक्ति करने  
 वाली मगनी सोमा देती है ॥२२॥

अन्तराष्ट्र—[ उर्वशीके पास जाकर ] सखी उर्वशी ! तुमके योग्यता-विधेकी और सदा  
 पतिके पास रहनेकी तुम्हें बधाई ।

उर्वशी—यह दोगीमे तो हम तुम दोगीका एक-सा ही हैं । [ कुमारका हाथ धामकर ]  
 प्यो दाध । सखी सखी प्रणाम कर आओ ।

[ कुमार जानको तयार होता है । ]

राजा—तिष्ठ । सममेव तत्र भवत्याः समीपं यास्यामस्तावत् ।

नारद—

ध्यायुषो यौवराज्यश्रीः स्मारयत्यात्मजस्य ते ।

अभिपिक्तं महत्सेनं सैनापत्ये महत्त्वता ॥२३॥

राजा—अनुगृहीतोऽस्मि भयवता ।

नारद—भो राजन् । किं ते भूयः प्रियमुपकरेणु पाकजासन ।

राजा—पक्षि मे द्रवणा प्रसन्नः किमस्तः परमिच्छामि । तथापि—इषमस्तु ।

[ भरतवाक्यम् ]

परस्परविरोधिन्पोरेकसंश्रयदुर्लभम् ।

सङ्गतं श्रीसरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम् ॥२४॥

अपि च ।

सर्वस्तरत्तुदुर्गाणि सर्वो भद्राणि परयतु ।

सर्वैः कामानवामोतु सर्वैः सर्वत्र नन्दतु ॥२५॥

[ इति निष्कान्ताः सर्वे । ]

॥ इति पञ्चमोऽङ्कः ॥

समाप्तमिदं श्रीकालिदासकृतं विक्रमोर्वशीयं नाटकम् ।

राजा—ठहरो, हम सब लोग साथ ही देवीके पास चलते हैं ।

नारद—तुम्हारे पुत्र आयुका यह भीवराज्यमभिषेक जब अस्तवका स्वरण दिला रहा है जिसमें इन्द्रने कार्तिकेयकी सेनापति बनाया था ॥२३॥

राजा—यह सब भगवान् इन्द्रकी ही कृपा है ।

नारद—हे राजन् ! इन्द्र आपकी और कीन-सी इच्छा पूरी करें ।

राजा—भगवान् इन्द्रकी प्रसन्नतासे बढ़कर और मुझे चाहिए ही क्या ? फिर भी मैं चाहता हूँ कि—

[ भरतवाक्यम् ]

जो सक्ष्मी और सरस्वती सदा एक दूसरेसे पीठ करे रहती हैं और जिनका मिलकर रहना महा कठिन है, वे दोनों, सज्जनोंके कल्याणके लिये एक साथ रहने लयें ॥२४॥ और, सबकी आपत्तियाँ दूर हो जायें, सब फलें फूलें, सबके मनोरथ पूरे हों और चारों ओर सुख ही सुख फैल जाय ॥२५॥

[ सब चले जाते हैं । ]

॥ पाँचवाँ अंक समाप्त हुआ ॥

॥ महाकवि श्रीकालिदासना रचा हुआ विक्रमोर्वशीय नाटक समाप्त हुआ ॥

मालविकाग्निमित्रम्

## पात्र-परिचयः

### पुरुषाः

सूत्रपाठ—नाटकस्य प्रबन्धकर्ता  
 परिषदाध्वकः—सूत्रधारस्य सहचर ।  
 राजा—अग्निमित्राख्यो विदिशाधीशः ।  
 साहवक—प्राचीन मन्त्री ।  
 बिरूपकः—राज्ञो मित्रम् ।  
 बभ्रुवर्मा—अन्त पुराण्यको बुद्धप्राहाणः ।  
 मणुवाकः—हरदत्तस्य—मास्थ्याचार्यो ।  
 छारव—कुवर्मा । किङ्करविशेषः ।  
 वैतादिक—स्तुतिपाठकः ।

### स्त्रियः

मालविका—मालवाधीशानाधवसेनस्य भगिनी ।  
 चारिणी—अग्निमित्रस्य प्रथमा महिषी ।  
 इरावती—अग्निमित्रस्य द्वितीया पत्नी ।  
 परिषादिका—कौशिकी नाम्नी माधवसेन-  
 सचिवस्य सुमतेविधवा भगिनी ।  
 बभ्रुवर्मा—धारण्या-परिचारिका ।  
 . . . . . मालविकायाः सखी ।  
 मणुवरिका—उद्यानपालिका ।  
 कौमुदिका—दासी ।  
 अनादितिका—पारिजातिकायाः परिचारिका ।  
 निपुणिका—इरावत्याः परिचारिका ।  
 अयसेना—प्रतीहारी ।  
 वेदी—अपरा दासी ।  
 मदनिका } विदर्भदेशीय  
 ज्योतिस्नका च } शिल्पिकम्बुदाह्वयम् ।

॥ श्रीः ॥ -

# ॥ मालविकाग्निमित्रम् ॥

प्रथमोऽङ्कः

एकेश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणतव्रह्मफले यः स्वयं कृत्वासाः  
कान्तासंमिश्रदेहोऽप्यविषयमनसां यः परस्ताथतीनाम् ।  
अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्विभ्रतो नामिमानः  
सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः ॥१॥

[नाम्नते]

सूत्रधार.— सत्प्रतिविस्तेरल । [विषयाभिमुखनवलोरय] मारिय । इतस्तावत् ।

[प्रविष्य ।]

पारिपाश्वक—भाष । अयमस्मि ।

सूत्रधार.— अभिहितोऽस्मि विद्वत्पारिवदः कालिदासप्रणितवस्तुमालविकाग्निमित्रं नाम  
नाटकमस्मिन्वसन्तीस्तावै प्रयोज्यमिति । तदारभ्यतां सपीतम् ।

पारिपाश्वक—मा तावत् । प्रणितमशतां मातसौमिल्लककविपुत्रासीनां प्रबन्धानतिश्रुत्वा  
पतमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कर्म बहुमानः ।

पहला अङ्क

अपने भक्तोकी मनबाह्य फल देनेका देण्डा जहार अपने पास होते हुए भी जो केवल  
हाथोकी क्षमता मोहवार ही अपना काम चला लेते हैं, अपने साथे शरीरमे अपनी पत्नीको  
बँटाए रहनेपर भी जो सत्कारके भोगोंसे अपना मन दूर हटाए रहते हैं और अपने माठो  
रूपोसे सारे सत्कारका पालन करते हुए भी जो अमिमानको पास नहीं फटकने देते, ऐसे  
सत्कारके स्वामी महादेवकी, पापकी घोर से जानेवासी हमारी बुद्धिको ऐसा भिदा दें कि  
हमारा मन प्रच्छेद काम करनेमे ही लगे ॥१॥

[ नान्दी हो चुकनेपर ]

सूत्रधार—अब घोर वेद नहीं करनी चाहिए [विषयकी घोर देखकर] भरे गई मारिय ।  
इधर तो घामो ।

पारिपाश्वक—[आकर] लीजिए, भा गया हूँ, धार्य !

सूत्रधार—देखो । विद्वानोंकी सजाने कहलाया है कि इस वसन्तोत्सवपर कालिदासका  
निष्ठा हुआ मालविकाग्निमित्र नामका नाटक ही खेलाजग्य । इसलिये चलकर सपीत तो छोड़ो ।

पारिपाश्वक—आप यह नाटक क्यों खेच रहे हैं ? भाष, सौमिल्लिक घोर कविपुत्र जैसे  
घटे बडे प्रसिद्ध कवियोंके नाटक छोड़कर आप आजकलके इस नौसिखिए कवि कालिदासके  
नाटककी इतना क्यों मान दे रहे हैं ?



सूत्रधारः—प्रवि । विवेकवियान्तमिहितम् । पश्य ।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवयवम् ।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भवन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥२॥

पारिपादर्वक—प्रार्थनिधाः प्रमाणात् ।

सूत्रधारः—तेन हि स्वरतां भवान् ।

शिरसा प्रथमगृहीतामाज्ञामिच्छामि परिपदः कर्तुम् ।

देव्या इव धारिण्याः सेवाद्वयः परिलनोऽपम् ॥३॥

[इति निष्कान्तो ।]

॥ इति प्रस्तावना ॥

[ततः प्रविशति बकुलावतिका ।]

बकुलावतिका—आरुणसिंह देवीए पारखीए । अइरप्यजतीवदेसं अतिर्य एव एतुं  
अन्दरेण कीरिसी मातृविकामिनि शठ्ठाप्ररिचं अरुणसिंहसं पुन्दिहुं । तए अरु अंगीरसत्त  
गच्छन्नि । [आरुणसिंह देव्या धारिण्या । अरिणसिंहसुतापदेसं अतिक नाम नाट्यमन्तरेण कीरिसी  
मातृविकामिनि नाट्यचार्यमार्गणसिंहसं अरुणसिंह । ततावरागीतशास्त्री गच्छामि । [इति परिष्कामति]

[ततः प्रविशत्यामरसुहस्ता कुमुदिनी]

सूत्रधार—अरे, यह बात तो तुमने अपनी बुद्धिकी विषय देकर कही है। देखो—पुराने  
होयेंगे ही न तो सब अच्छे ही जाते हैं, न नये होयेंगे सब बुरे होते हैं। समझदार लोग  
तो दोनोंको परस्पर उल्लेख से जो गच्छ होता है उसे अपना लेते हैं और जिन्हें अपनी  
समझ होती ही नहीं है, उन्हें तो जैसा दूसरे समझ देते हैं उसे ही न ठीक मान  
लेते हैं ॥२॥

पारिपादर्वक—तो सीसा आप ठीक समझें ।

सूत्रधार—हाँ, तो सब भाव देर न कीजिए । हमने मुझे बहलेंगे ही जो आज्ञा दे रखी  
है, उसका मैं जैसे ही मादरके साथ पालन करना चाहता हूँ जैसे मादरके यह स्वामिभक्त  
दासी अपनी स्वामिनी बहुरानी धारिणीकी आज्ञा पालन करके दूधर पानी पा रही है ॥३॥

[धेनो चले जाते हैं ।]

॥ प्रस्तावना ॥

[बकुलावतिका जाती है ।]

बकुलावतिका—महारानी धारिणीने मुझे आज्ञा दी है कि जाकर नाट्यचार्य प्रार्थ  
मण्डासिंहसे पूछो कि मातृविकामिने जो बहुत दिनोंसे अतिक नामका नाट्य सीखना आरम्भ  
किया था उसे वह कहीतक सीख पाई है तो बहुत संगीतज्ञाताकी । [पूछती है ।]

[हार्थसे धेनूठी लिए हुए और उसकी ओर देखते हुए कुमुदिनी जाती है ।]

बकुलावतिका—[ कुमुदिनी हृष्टा । ] हला कोमुदीए ! कुबो वे दारिह इमं धीरवा । जं सती-  
वेण वि प्रविक्लमन्ती इवो दिग्दृ ए वेति । ( सखि कोमुदिके ! कुतस्त इवानोमियं धीरवा । यत्-  
समीपेनान्यतिक्रामन्तोवो दृष्टि न ददासि । )

कुमुदिनी—अम्हो मज्जलावतिम्मा ? सहि ! देवीए इदं तिलिपिसमासादो भाणोदं एणमुद्दा-  
सणाहं भंगुलीभमं तिलिदं तिलिग्गामन्तो तुह उवात्तम्भे पडिदम्ह । ( मही बकुलावतिका  
सखि ! देव्या इदं तिलिपिसकासादानोत्ता नागमुद्रासनापमद्भुजोयक स्निग्ध निष्पायन्ती तबोपासम्भे  
पवितासि । )

बकुलावतिका—[ विलोक्य । ] ठालो सज्जवि विट्ठो । इमिस्सा भंगुलीभएण उभिभण्ण-  
किरणकेसरेण कुमुदिनी विभ्र वे अण्णहत्थो पडिभावि । ( स्वाने सज्जति दृष्टिः । मनेनाद्भुजोय-  
कनोद्भ्रान्किरणकेसरेण कुमुदिनी इव तेऽग्रहस्तः प्रतिभाति । )

कुमुदिनी—हला ! फहि पस्विदासि । ( सखि ! कुम प्रस्विताति । )

बकुलावतिका— देवीए एण्ण अण्णरेण एट्ठाभारिअं अण्णमएणदासं पुण्णद्धं उववेसण्णहत्थे कीरिती  
मात्तविण्णति । ( देव्या एव वचनेन नाट्याचार्येण गणदास प्रष्टुमुपदेशग्रहणो कीदृशो मात्तविकेति । )

कुमुदिनी—सहि ईरिसेण भावारेण असम्पिण्हिदा वि ता क्कं भट्टिया विट्ठा । ( सखी ।  
ईदृशेण ध्यापारेणानभिहितानि सा कथं भर्ता ह्येत्य । )

बकुलावतिका—आम्ह सो जणो देवीए मात्तगदी पित्ते विट्ठो । ( भाव । स जवो देव्याः  
पापवंगतञ्जिने दृष्टः । )

कुमुदिनी—क्कं विभ्र । ( कथमिध । )

बकुलावतिका—[ कुमुदिनीको देखकर ] क्यों सखी कोमुदिनि ! ऐसी भी क्या बात है कि  
तुम मेरे इतने पाससे निकली जाती हुई भी इधर देखतो तक नहीं हो ?

कुमुदिनी—अरे ! तुम हों बकुलावतिका ? सखी ! क्यों सुन्दरके यहाँसे महारानीकी यह  
नागमुद्रा बड़ी हुई भंगूठी छाई है । उसीकी ध्यानसे देख रही थी कि तुमने भट्ट ताना कथ दिया ।

बकुलावतिका—[ देखकर ] हाथमुच बड़ी बड़ी वस्तुपर तुम्हारी भ्रंशें उलझी हैं । इस  
भंगूठीके केसरके समान जो किरणें निकल रही हैं उनसे तुम्हारी हथेली पावो फूल उठी है ।

कुमुदिनी—क्यों सखी ! तुम जा कियर रही थी ?

बकुलावतिका— मैं भी महारानीके कहनेसे नाट्याचार्य गणदासजीसे यह पूछने जा रही  
थी कि मात्तविका कैसा सोख-पक रही है ।

कुमुदिनी—क्यों सखी ! इतनी रोक-टोक होते हुए भी महाराजने उसे देख कैसे लिया ?

बकुलावतिका—अरे ! वह चित्रने महाराजीके पास बँधी हुई है न ! उसकी महाराजने  
देख लिया ।

कुमुदिनी—कैसे ?

बकुलावलिना—सुख । चित्तसालं गदा देवी कदा पञ्चमदण्डरामं चित्ततेह प्राप्नारिप्रस्त  
मालोभन्ती चिद्विद भट्टा स उर्वद्विदो । ( शृणु । चित्रशाचा गदा देवी गदा प्रत्यश्रवणं राणा  
चित्रलेसामाचार्यस्यालोकयन्ती तिष्ठिति भर्ता चोपस्थित । )

कुमुदिनी—तरो तरो । ( तनस्तत । )

बकुलावलिना—उपभारालन्तरं एनकासणोवविद्वेण मद्रिखा चित्तगदाए देवोए परिभ्रण-  
मणभयद प्रातण्णदारिभ्र देविलभ देवो धुन्निवदा । ( उपचारामन्तरमेकासणोपविष्टेन भर्ता  
चित्रगताया देव्या परिजनपध्यगतामासन्नदारिका रूपा देवी पृष्टा । )

कुमुदिनी—किं ति । ( निमित्ति । )

बकुलावलिना—अपुण्या इम शरिभा देवोए प्रातण्णा आसिहिवा किं एणहेएसि ।  
( भद्रुयै दारिका देव्या मासम्मा प्रातिलिता किं नामवेयेति । )

कुमुदिनी—प्रातिसिदिसिसेसु माभरो परं करेति । तरो तरो । ( प्राकृतिविद्येपेन्द्रादः पत्र  
करोति । ततस्तत । )

बकुलावलिना—तरो अश्वोरिभ्रमभ्रणो भट्टा शक्तिदो देशीं पुणोधि भद्रुवपिवु । तरो कुमारिए  
बहुलवणीए आश्रमिन्नवम् । मञ्ज एसा मालविण्णि । ( तरोअश्वोरित्तवचनो भर्ता शक्तितो देशीं  
पुनरप्यनुबन्नुम् । तत कुमारीं बहुलक्ष्यास्वातम् । भार्य एसा मालविकेति । )

कुमुदिनी—[ सहितम् ] शरित बधु बालभाषसस । भरो अवर क्खेहि । ( सहय अनु  
मालभावस्य । भरोऽवर कथय । )

बकुलावलिना—किं अण्हं । सपय मालविण्णा शक्तिसेस मद्रिणो संसणपहादो एण्णीअधि,  
( किन्तव्य । सान्प्रत मालविका सविद्येय भुंदेशंनववाद्रश्यते । )

बकुलावलिना—सुन । पय महारानीजी चित्रशाचामे पहुँकर चित्रकलाके प्राचार्यके  
हाथके बनाए हुए मीले चित्रको देख रही थी, उसी समय स्वामी भी वहाँ पहुँच गए ।

कुमुदिनी—तय, तव ।

बकुलावलिना—प्रसाम प्रातीय हो शुकनेपर महाराज भी महारानीके साथ एक ही  
मासनपर बैठ गए । तब चित्रमे बनी हुई महारानीकी वासियोमे पास ही खड़ी हुई कन्याको  
देखकर महाराजने यह पूछा—

कुमुदिनी—मया ?

बकुलावलिना—किं चित्रमे देवीके पास बैठी हुई यह कौन सुन्दर लडकी है ?

कुमुदिनी—सुन्दरमे और सबका मन खिच ही जाता है । हाँ, तो फिर क्या हुआ ?

बकुलावलिना—देवीको चुप देखकर स्वामीका भाषा ठनका और उन्होंने फिर यही बात  
दुहराई । इसी बीच कुमारी बहुलक्ष्मी बोल उठी—प्रायं । यह गामयिका है ।

कुमुदिनी—[ भुसकराती हुई ] बन्पी हो तो ठहरो । हाँ, तो फिर क्या हुआ ?

बकुलावलिना—और होगा क्या ? यह मालविकापर ऐसा क्रोध पहरा पड़ गया है कि उसे  
महाराजके प्रागे ही नहीं होने दिया जाता ।

शुमुदिनी—हस्त ! अद्यपि हस्तलो लिखीयं । अहं हि पुरं अद्यशुतोषयं देवीए उच्यते-  
इति । (सति ! प्रनुठिष्टात्मनी निबोधम् । अद्यप्येनःशुभोपकं देव्यापुरमेत्यादि ।)

[ इति निष्क्रान्ता । ]

बहुसायसिवा—[परिक्रम्यायतोषय ।] एते एष्टापदिषो संशोदनात्तरो लिख्यपदि ।  
आव से अत्तलं रंतेमि । (एव नाट्याचार्यः संशोदनात्तरो नियंशदि । आदरतया आत्मानं  
दस्येति ।) [ इति परिव्राजति । ]

[ प्रविश्य । ]

गणदासः—शयं कतु सचेरपादि शुभविद्या बहुमता । न पुनररमाकं भाव्यं इति निष्क्रान्ता-  
गौरवम् । तमाहि ।

देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं व्रतं चाद्युषं  
रुद्रेणेदमुमाकृतप्यतिकरे स्वाङ्गे विमर्कं द्विधा ।

श्रेणुणयोद्भवमत्र लोकरचरितं नानारसं हृदयते

नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम् ॥४॥

बहुसायसिवा—[उपेक्ष्य ।] अत्र वक्तव्यं । (पारं वने ।)

गणदासः—भद्रं विरञ्जीव ।

बहुसायसिवा—अन्नादेशी शुभपदि अदि उच्येतत्पहले एतद्विधीनितरदि श्री गिता  
माताविति । (पारं । देवी शुभपदपुनरेतत्पहले आतिविद्यतादि नः निष्क्रान्ता आतदिदेदि ।)

गणदासः—भद्रे ! विज्ञाप्यतां देवी परमनिपुला मेधाविनी चेति । किं बहुना ।

यद्यत्प्रयोगविषये भाविकस्युपदिश्यते मया तस्यै ।

तत्तद्विशेषकरणात्प्रत्युपदिशतीव मे बाला ॥५॥

बहुभावनिका—[आत्मगतम् ।] अदिङ्मती विभ इरावदि ऐवखानि । [प्रकाशम्] विदया वाणि धो सिस्ता जाए मुहमलो एवं तुसदि । (अदिङ्मन्तीमिदेरावती पश्यामि । कृतापेदानी वः निध्या यस्या मुहजन एव तुप्यति ।)

गणदासः—भद्रे ! तद्विषयममुलभतवात्पृच्छामि । कुतो देव्या तत्प्राप्तमानोतम् ।

बहुभावनिका—अस्ति देवीए बभूवावरो नावा वीरसेलो खाम । ली भट्टिया एम्भवा-  
तीरे अन्तवात्तुगे ठाविरो । तेख सिप्याह्वारे जोम्मा इधं वारिण्णि भणिम भइणीए  
देवीए उवाअणं वेसिहा । (अस्ति देव्या बर्णाधरो भावा वीरसेनो नाम । समर्था वरुंदातीरेऽन्त-  
पालदुगे स्थापितः । तेन तत्प्राप्तिकारे योग्येव वारिकेठि अखिन्वा भगिन्या देव्या उपायनं प्रेषिता ।)

गणदासः—[स्वगतम्] आकृतिविशेषप्रत्ययादेनमप्यन्यदस्तुर्का संभावयामि । [प्रकाशम्] भद्रे ! मयापि पदास्तिता अस्तिव्यम् । यतः ।

पात्रविशेषे न्यस्तं मुखान्तरं प्रजति शिल्पमाधातुः ।

जलमिव समुद्रशुक्लौ युक्ताफलतां पयोदस्य ॥६॥

बहुभावनिका—अज्ज ! कहि वाणि धो सिस्ता । (पार्यं । कृपेवावी वः सिध्या ।)

गणदास—इदानीमेव पञ्चाङ्गावकर्मभिनयमुपदिश्य मया विधम्यतामिदमभिहितं  
वैभिकावलोकनगबाधमता प्रयातमासेवमाना तिष्ठति ।

गणदास—भद्रे ! महाराजीछे कह देता कि वह बड़ी बतुर और समझदार है । और  
यदा कहें, मैं जो जो बात उसे सिखाता हूँ उन्हे जब वह और भी सुन्दरताके साथ करके  
बिलाने लगती है तब ऐसा जान पड़ता है मानो वह जस्टे मुझे ही सिखा रही हो ॥५॥

बहुभावनिका—[मन ही मन] जान पड़ता है कि वह इरावतीको भी पछाव ही देगी ।  
[अकट] परम है आपकी वह सिध्या जिसके मुह उससे इतने प्रसन्न है ।

गणदास—भद्रे ! ऐसे शिष्य मिलते कहीं हैं ! इसीलिये तो मैं तुमसे पूछता हूँ कि  
देवीको यह मिल कहाँसे गई ?

बहुभावनिका—देवीके एक वीरसेन नामके बूरेके भाई हैं जन्हे महाराजने जर्मदा तीरपाते  
अन्तपाल दुर्गकी देव-देवता नाम लीव रक्खा है । उन्हेही ही अपनी अदिन धारिणी देवीके पास  
इस बन्ध्याको यह कहलाकर भेज दिया है कि यह माने बलानेका नाम भवती भाँति धोख भकेगी ।

गणदास—[मन ही मन] पर रूप-रबसे तो यह किसी ऊँचे परानेको जान पड़ती है,  
क्योंकि सिखानेवालेको बला पड़े ही सिध्याके पास पहुँचकर उस प्रकार खिचती ॥ जैसे  
यादतवा जल समुद्रकी लीपीमे पहुँचकर भीतो बन उठता है ॥६॥

बहुभावनिका—क्यों मार्य ! आपकी सिध्या इस समय है कहाँ ?

गणदास—अभी उसे यहाँ प्रतीक्षा भगिनय सिताकर मैंने उसे थोड़ा विश्राम करनेको  
कहा है । इसलिये वह तरोवरकी ओरवाली सिङ्कीपर बंठी बवार से रही है ।

बकुलावलिका— तेषु हि पुराणो प्रणवास्याद्भु मं प्रज्यो । जाव ह्यं प्रज्यस्त परितोरलिषेवरोस्य  
उस्तर्हं बद्धेमि । (तेन हि पुनरनुजानातु मामार्यः) यावदस्या आर्यस्य परितोपनिवेशेनोत्साहं  
वर्धयामि ।)

गणदासः— हृदयतां सती । अहमपि सख्यसखः स्वगृहं गच्छामि ।

[इति निष्क्रान्ती ।]

## ॥ मिश्रविष्कम्भकः ॥

[एतत् प्रविशत्येकान्तस्थितपरिजनो मन्त्रिणा सेसहस्तेनान्वास्यमानो राजा ।]

राजा—[मनुवाचितैलममात्यं विलोक्य] बाहूतक ! किं प्रतिपद्यते वंदनं ?

अमात्यः—देव आत्मविनाशम् ।

राजा—सदिसमिधानीं श्रोतुमिच्छामि ।

अमात्यः—इन्द्रासिधानीमनेन प्रतिविक्रितम् । पूज्येनाहमादिष्टः । भक्तः पितृव्यपुत्रः कुमारो  
माघवसेनः प्रतिश्रुतसबाग्धो मनोभान्तिकमुपसंपन्नन्तरा स्वदीयेनान्तपालेनापस्कन्ध गृहीतः । स एवमा  
मदनेनया सकलप्रसोदयो भोक्तव्य इति । एतन्ननु यो विदितम् । यत्सुत्यामिजनेषु राज्ञां वृत्तिः ।  
अतोऽत्र मयस्यः पुण्यो भवितुमर्हति । सोवरा पुनरस्य ग्रहणविष्यवे विनष्टा । तदवैपल्याय  
प्रपतिये । अथवा अथशयमेव माघवसेनो मया पूज्येन शोचयितव्यः भूयतामभिसंधिः ।

बकुलावलिका—तो आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं उसे यह कहकर उस्तर्हित करूँ कि आप  
उससे हटने प्रसन्न हैं ।

गणदास—हाँ हाँ, जाकर निम्ने अपना सलीसे । मैं भी छुट्टी पाकर अपने घर जा रहा हूँ ।  
[दोनों जाते हैं ।]

## ॥ मिश्र विष्कम्भकः ॥

[एकागत्यै अने सभासदीके साथ राजा बंठे हुए हैं और मंत्री अपने हाथमें एक पत्र लिए  
हुए हैं ।]

राजा—[मंत्री जब पत्र वाँच चुके तब] कवी बाहूतक ! विद्वान्के राजा बाहूते क्या है ?

अमात्य—अपना उत्पाशाश, देव ।

राजा—अच्छा, पढ़कर तो सुनाओ उनका संदेश ।

अमात्य—उन्होंने लिखकर भेजा है आपने जो मुझे यह आज्ञा दी थी—कि "आपके चचेरे  
भाई कुमार माघवसेन पहलेसे पदके लिए संबंधके अनुसार मुझमें अपने बहुत व्याहृतेके लिये जब  
पले आ रहे थे तो बीचमें ही आपके राजकी सीमाके रखवालीने उन्हें पकड़कर बाँध लिया है ।  
उन्हें आप मेरे कहनेसे स्त्री और बहानेके साथ छोड़ दीजिए ।" इस संबंधमें मुझे यह कहना है कि  
आप दखें हैं और यह भी आप मनी शक्ति जानते हैं कि समान बंधवाले राजाओंके भयसे कैसे  
निपटने चाहिए । इसलिये आप चाहें तो हम लोपोका बीच-बधाव कर सकते हैं । हाँ, इस  
घर-पकड़ने माघवसेनकी बहुत कहीं खो गई है । मैं उसे खोजनेका जतन करूँगा और आप

मौर्यसचिवं विमुञ्चति यदि पूज्यः संयतं मम श्यालम् ।  
मोक्ता माधवसेनस्ततो मया बन्धनात्सद्यः ॥७॥

इति ।

राजा—[शरोपम्] कथं कायविनिमयेन मयि व्यवहरत्यनात्मज्ञः । बाहूकः । प्रकृत्यग्नित्र  
प्रतिहूलकारी च मे चैतर्धं । तच्छात्रवृत्ते स्थितस्य पूर्वसफलितसमुन्मूलनाय धीरसेनमुत्त  
वपत्रचक्रमाज्ञापय ।

धर्मात्य — यथाज्ञापयति देवः ।

राजा—अथवा किं भवामन्यते ।

धर्मात्य — शास्त्रहृष्टमाह देवः ।

अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरुढमूलत्वात् ।

नयमंरोपखशिक्षितस्तरिव सुकरः समुद्धतुम् ॥८॥

राजा—तेन ह्यविद्यया तत्रकारवचनम् । इत्येतेन वचनं विनिश्चयुपाशयं समुद्योज्यतां  
सेनापियति ।

धर्मात्य — तथा । [इति निष्कान्तः]

[परिजनो यथाभ्यापारं राजानमभित स्थितः ।

[प्रतिस्थः ।]

भी यदि भापयसेमको सुमाना चाहते हो तो आप मेरी इसकी बात मान लीजिए कि आपने जिसे  
छाते मौर्य सचिवको जो पकड़ रक्ता है उसे यदि आप छोड़ दें तो मैं भी माधवसेनको मनी छोड़  
दूंगा ॥७॥

राजा—[शरोपके] क्या वह ठीक मुझसे इस प्रकार बदलेका व्यवहार करना चाहता है । देखो  
बाहूक । यह विद्वानका राजा स्वभावसे ही मेरा शत्रु है और जो कुछ मैं कहता हूँ, उसका ठीक  
संज्ञा ही किया करता है । इसलिये वीरसेनके मायकत्वमे जितनी सेवा है उसे आज्ञा दो कि जाकर  
उसे जबसे उसका फँके, क्योंकि हम लोग पहले ही संज्ञा कर चुके हैं कि ऐसे छोटे शत्रुको उखाड़  
फेंकना ही ठीक है ।

धर्मात्य—जैसी देवकी आज्ञा ।

राजा—पर इसने आपकी क्या सम्पत्ति है ?

धर्मात्य—देवने जो पहले ही शास्त्रकी बात कह दी है—जो शत्रु धर्मोपर बैठा हो और  
जो मनी प्रकार अपनी प्रजासे नष्ट न जमा सका हो वह नये रोपे हुए दुर्बल पौधेके समान बड़ी  
सरलताके साथ उखाड़ा जा सकता है ॥८॥

राजा—तब तो शास्त्रकी बात यहाँ ठीक लागू हो रही है । इसलिये शास्त्रके इसी वचनके  
आधारपर सेनापतिको संसार करो ।

धर्मात्य—मन्त्री बात है ।

[चला जाता है ।]

[सब देवक राजाके चारों ओर सटे हुए धपता धपता काम कर रहे हैं ।]

विदूषक—आलस्येऽपि वसतमववा रण्डाः । गौरवम् । किन्तेहि दास उवाच । जह मे  
अदिच्छाविदूष्यदिकिदो यात्रविद्या पञ्चस्ववसला होविति । मद् अ त तहा किं दास से एष्येवेमि ।  
( भाङ्गन्तोऽसि तत्र भवता राजा । मोतय चिन्तय तावदुपायम् । यथा मे महच्छादप्रतिरुक्तिर्मात्र-  
विका प्रत्यक्षदर्शना भवतीति । मया च सत्तया कृत तावत्स्वमे निवेदयामि । ) [ इति परिक्रामति । ]

राजा—[ विदूषक दृष्ट्वा । ] अयमपर कर्मन्तरसचिवोऽस्मान्मुपस्थितः ।

विदूषक—[ उपसम्य । ] यद्गच्छु माव । ( यथता भवाद् । )

राजा—[ सतिर कम्पम् । ] इत आस्यताम् ।

[ विदूषक उपविष्टः । ]

राजा—अपि कश्चिदुपेयोपायदर्शने ध्यायत से प्रजापत्यु ।

विदूषक—यसोऽस्तिर्हि पुच्छ । ( प्रयोगविधिं पृच्छ । )

राजा—कथमिव ।

विदूषक—[ कथं ] एवमिव । ( एवमिव । )

राजा—तामु मयस्य निपुलमुपकात्तम् । इदानीं सुरदिगमसिद्धास्वप्तिस्मन्तारम्भे ययमाश्रयामहे ।

कुत—

अर्थे सप्रतिमन्त्रं प्रभुरधिगन्तुं सहायवानेव ।

। दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन विना सञ्चरुरपि ॥६॥

[ नेपथ्ये ]

विदूषक—[ पाकर ] मुझे महाराजने आज्ञा दी थी कि गौरव । कोई ऐसा उपाय सोच निकालो  
कि जिस मातृविकाको मैंने प्रजापक विप्रमें देस लिया है उसे मैं प्रपनी भाँधोसे तो देस पाऊँ ।  
मैंने उसके लिये जो ठग निकाला है उसकर उसे अभी महाराजको बताता हूँ । [ दृष्ट्वा है । ]

राजा—[ विदूषककी देखकर ] थो हमारै दूसरे काथोके मयी भी या पहुँचे ।

विदूषक—[ पास पहुँचकर ] यथाई है ।

राजा—[ सिर हिलाकर ] धायो यहाँ बैठो [ विदूषक बैठ जाता है । ]

राजा—कहो जिससे मिलनेके लिये हम तय रहे हैं उतसे मिलनेका कोई उपाय तुम्हारी  
बुद्धिमें माना या नहीं ?

विदूषक—धरौ, यह सुझिए कि हमने काम बनाया कैसे है ।

राजा—कैसे, कैसे ?

विदूषक—[ कानसे ] ऐसे ।

राजा—बाहू मिन ! तुमने जहाँ चतुराईका काम किया है । यह काम है जो बड़ा टेढ़ा,  
पर तुमने ऐसा धारन किया है उससे तो कुछ कुछ आज्ञा हो जाती है । क्योंकि अमरुतवासे  
कामोंमें जब कोई साधी मिल जाय तो समझ लेना चाहिए कि अब काम बन गया । क्योंकि  
पार्लोवासा भनुष्य भी अंधेरेमें बिना दीपकके कुछ नहीं देख सकता ॥६॥

[ नेपथ्यमें ]



भक्त गद्ग विफर्य्य । राज्ञः समसमेवावयोरचरोत्तरयोर्ध्वंतिष्ठन्विध्यति ।

राजा—[ पाकण्यं । ] सते । त्वत्सुनीसिपावपस्य पुष्पमुद्गुन्तम् ।

विदूषक—फल वि अदरेण दक्षिणससति । ( पतनप्यविरेण प्रभवति । )

[ ततः प्रविशति कञ्चुकी । ]

कञ्चुकी—देव देव । अमात्यो विज्ञापयति । अनुष्ठिता प्रभोरामा । एतो पुनर्हृत्तगणवातो ।

उभाधमिनयाचार्यौ परस्परजयैपिण्णौ ।

त्वां द्रष्टुमुद्यतौ साक्षाद्भावाविश शरीरिखौ ॥१०॥

राजा—शक्येय तौ ।

कञ्चुकी—परास्तावयति देव । [ इति निष्क्रम्य साम्यां सह प्रविश्य । ] इत इतो भवन्ती ।

गणदास—[ राजान् विसोक्य । ] अहो कुरासतो राजनहिवा ।

न च न परिचितो न चाप्यरम्यश्चकितमुपैमि तथापि पारर्ष्यमस्य ।

सलिलनिधिरिव प्रतिक्षणं मे भवति स एव नवो नवोऽयमण्योः ॥११॥

बस पस, अपनी ककपाद रहने दो । अभी महाराजके सामने ठीक-ठीक निर्णय हो जाता है न, कि हम दोनोंमें कौन छोटा है कौन बड़ा ।

राजा—[ मुनकर ] तो मित्र ! सुन्हारी नीतिके पेशमे फूल तो दिखाई देने लगे ।

विदूषक—पौष्टी हो देरमे फल भी बेलिएगा ।

[ कञ्चुकी भाता है । ]

कञ्चुकी—देव ! मनीषी कहते हैं कि धारकी आशाका वासन ही गया । धर्मिनयके दोनों भाषायें हृदय और गणदास भावसमे एक दूसरेकी हृदयकी आनकर भाषते मिलनेके लिये बाहर आते ऐसे मम रहे हैं मानो स्वयं नाटकके भाव ही सचैर धारण करके बने आए हों ॥१०॥

राजा—मेे धामो दोनोंको भीतर ।

कञ्चुकी—बसो देवकी भाता [ बाहर आकर दोनोंको ले भाता है । ] दधरते मादए भाव सोग, इपरसे ।

गणदास—[ राजाकी देहाकर ] वाह, क्या कहने हैं राजाके सेबके भी ! इनके तो यासतक पहुँचना दूसर मार रहा है क्योंकि—ऐसी बात नहीं है कि इनसे पहलेते जान-पहचान न हो या मेे देखनेमें भयनर लगते हों, फिर भी न जाने क्यों मुझे इनके पास आते हुए बड़ी हियर हो रही है । समुदने सपान ज्योके लो रहते हुए भी ये मेरी प्राणिको पल-पलमें मने-मने से दिखाई पड रहे हैं ॥११॥

हरदत्त.—महत्सु पुत्रवाकारमिदं ज्योतिः । तथाहि ।

द्वारे नियुक्तपुरुषाभिमत्प्रवेशः सिंहासनान्तिकचरेश्च सहोपसर्पन् ।

तेजोभिरस्य विनिवर्तितदृष्टिपातैर्वाक्यादृते पुनरिव प्रतिवारिताऽस्मि ॥१२॥

कञ्चुकी—एष देवः । उपसर्पतां भवन्ती ।

दामो—[ उपेश्य ] विजयतां देवः ।

राजा—स्वार्थं भवद्भ्याम् । [ वरिजिन विज्ञोक्त्वा । ] आसने तावदप्रभवतोः ।

[ दामो परिजनोंपरीतपोपासनयोःपविष्टीः । ]

राजा—किमिदं शिष्योपदेशकान्ते सुगणशाधार्याभ्यापचोपदमानम् ।

गणदासः—देव ! भूयसात् । मया सुनोर्वासिमन्वविद्या सुशिक्षिता । वक्तव्यो गभ्रात्मि ।

देवेन देव्या च परियुहीतः ।

राजा—बाढ भाते । ततः किम् ।

गणदासः—सौहृदमुक्त्वा हरदत्तेन प्रथामपुत्रसमक्षमय मे न पादरजसापि तुस्य हृत्पमिक्षितः ।

हरदत्तः—देव ! मयमेव प्रथम परिचारकतः । अथमवतः किल मम च तदुत्पत्तत्त्वयोर्दि-  
घातरमिति तत्रमवानिर्भं मां च शास्त्रे प्रयोगे च विपुस्तु । देव एव नो विशेषतः प्राभिकः ।

हरदत्त—पुत्रपके रूपमे राजाका तेज सचमुच बडा प्रभावशाली है । क्योंकि यद्यपि द्वारपालने मुझे यहाँतक पहुँचा दिया है और मैं इनके सिंहासनके पास रहनेवासे कञ्चुकीके साम ही भीतर भी आया हूँ फिर भी इनके तैयारी मेरी आँखें इनकी चौपियों पर हैं मानो बिना रोगे ही मैं बड़नेसे पीक दिया गया होऊँ ॥१२॥

कञ्चुकी—सीजिए ये हैं देव ! आप लोग आये बढ जाइए ।

दामो—[ आने बढकर ] देवकी अव हो ।

राजा—आप लोगोका स्वागत है । [ सेवकी देखकर ] आप लोगोंके लिये आसन तो लामो ।

[ तैयारीके साथ हुए आसनोंपर दामो बैठते हैं । ]

राजा—कहिए, यह सो शिष्योंको पढ़ानेका समय है । इस समय आप दोनों साधारण एक साथ कैसे भा पहुँचें ?

गणदास—सुनिए देव ! मैंने बड़े योग्य मुझे विद्या सीखी है और इतने दिनोंसे सिखा गी रहा हूँ । देव और देवोने मेरी विद्याका आदर गी किया है ।

राजा—हाँ, यह तो मैं जानता हूँ । तो हुमा क्या है ?

गणदास—भात इन हरदत्तजीने एक बड़े राजपुत्रपके आने यह डीव हाँकी है कि गणदास तो मेरे पँरोकी धूलके बराबर भी नहीं हूँ ।

हरदत्त—देव ! इन्होंने ही पहले मेरी विद्या की है और यह कहा है कि हमारे और हरदत्तमें तो समुद्र और गङ्गीका भन्सार है । इसलिये अब आप ही इनके और मेरे शास्त्र ज्ञानकी और प्रयोग दिखानेकी चतुराईकी स्वयं परीक्षा कर लें । क्योंकि आप ही परीक्षक होकर यह बता सकेंगे कि हम दोनोंमे कौन बढकर है ।

विदूषक—समर्थं यदणुत्सवं । ( समर्थं प्रतिज्ञातम् । )

गणदास—प्रथमः कल्पः । अपहितो देवः शोतुमर्हति ।

राजा—सिद्धं यावत् । यत्नयन्तश्च देवो मन्यते । तदस्याः पण्डित-कौशिकीसहितायाः समलमेव  
स्याप्यो व्यवहारः ।

विदूषक—गुट्टु भव भलादि । ( कुम्भु भवन्मण्डलितः । )

प्राचार्यो—यद्देवाय रोचते ।

राजा—मोदुगत्य ! धाम प्रस्ताव निवेद्य पण्डितकौशिकया सार्यमप्युयतां देवी ।

कञ्जुकी—यवात्तापयति ब्रह्मः । [ इति निष्क्रम्य सपरिप्रायिकया देव्या सह प्रविष्टः । ] इति  
इती भवती ।

पारिया— [ परिप्रायिका विजोषय । ] भगवदि ! हरदत्तस्त गणदासस्त अ संरम्भं क्व  
पैरसति । ( भगवति ! हरदत्तस्य गणदासस्य च संरम्भे क्व पश्यति । )

परिप्रायिका—असं शक्यसाधनान्कुर्या । न परिहीयते प्रतिवादिनो गणदासः ।

पारिया—अहं वि एव तहं वि रामपरिग्रहो महासत्तल जयहरदि । ( यद्यप्येव तथापि  
रात्रपरिग्रहं प्रधानत्वमुपहरति । )

परिप्रायिका—अपि । राजीशब्दभाजनभातमन्मपि चिन्तयतु भवती । एव ।

अतिमात्रभासुरत्वं पुष्यति भानोः परिग्रहादन्तलः ।

अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि निशापरिगृहीतः ॥१३॥

विदूषक—बात ही ठीक कही ।

गणदास—यही सही । ठी देव तावपान होकर मुनें ।

राजा—अमी ठहरे । यदि हम निर्णय करेंगे तो देवी समझेंगी कि हमने पक्षपात किया है  
इसलिये उनके पीर पंडिता कौशिकीके सामने ही निर्णय किया जाना चाहिए ।

विदूषक—यह ही आप ठीक कह रहे हैं ।

दीनों प्राचार्य—जैसा देव ठीक समझे ।

राजा—मोदुगत्य ! पंडिता कौशिकी पीर महाराजनीकी सब बातें बताने पर यहाँ बुला तो  
सामो ।

कञ्जुकी—जैसी देवकी आज्ञा । [ जाता है पीर परिप्रायिका तथा महाराजनीकी लेकर जाता  
है । ] इतरसे भाषण देवी इतरसे ।

पारिया— [ परिप्रायिकाकी पीर देखकर ] क्यों भगवती ! हरदत्त पीर गणदासके भ्रातृमें  
आप बिचकी बीच खीचती हैं ?

परिप्रायिका—आप अपने पतके हारकी तो बात ही न सोचिए । गणदास कभी अपने  
भोजनवालेके नहीं हार खडते ।

पारिया—यह ही ठीक है । फिर भी राजा जिसपर कृपा करें, वह भी बीच ही जायगा ।

परिप्रायिका—अनी ! आप यह स्मरण रहिए कि आप भी महाराजनी हैं । देखिए—जैसे  
सूर्यकी इपासे अग्निमें बहुत समय आ जाती है, वैसे ही रातकी कृपा पाकर चन्द्रयामें भी  
बहुत समय आ जाती है ॥१३॥

विदूषकः—घट उषाद्विवा देवी पीठमदिकां पण्डितकौशिकीं पुरोकार्द्रम तत्तभोवी पारिणी ।  
(मयि ! उपस्थिता देवी पीठमदिका पण्डितकौशिकी पुरस्कृत्य तत्रभवती पारिणी ।)

राजा—वश्याभ्येनाम् । यथा—

मङ्गलालं कृता भाति कौशिकया यतिवेषया ।

त्रयी विग्रहवत्येव सममध्यात्मविद्यया ॥१४॥

परिप्राजिका—[उपेक्ष्य] चिन्वतां देवः ।

राजा—भगवति अभियादमे ।

परिप्राजिका—

महासारप्रसवयोः सदृशस्रमयोर्द्वयोः ।

धारिणीभूतधारिसयोर्भव भर्ता शरच्छतम् ॥१५॥

पारिणी—जेदु जेदु अज्जउत्तो । (अयदु जयत्वार्यपुत्रः ।)

राजा—स्वागतं देव्ये । [परिप्राजिका चिन्तोक्य ।] भगवति ! क्रियतामात्मनपरिग्रहः ।

[सर्वं उपविशन्ति ।]

राजा—भगवत्प्रभवतोर्हंरत्नमण्युजासयोः परस्पर विज्ञानप्राप्त्यपिखीर्भगवत्या प्राशिनक-  
पदमप्यासितव्यम् ।

परिप्राजिका—[सस्मितम्] मलमुपासन्नेन । एतन्ने सति प्राप्ते रत्नपरीक्षा ।

विदूषकः—लो, महाराजो पारिणीची भयनी साधिन पढिता कौशिकीको साप लिए हुए हृदय पर  
पत्तो सा रही हैं ।

राजा—हाँ, देव तो रहा हूँ कि साधुकोके देवताली कौशिकीके साप सुन्दर बदन भीर  
माभूषणोसे सजी हुई महाराजनी ऐसी दिखाई गड रही हैं माको अध्वारम-विद्याके साप तोनों देवो-  
की देवी शरीर पाएए किए हुए पकी सा रही ही ॥१४॥

परिप्राजिका—[पात जाकर] देवीकी जय हो ।

राजा—भगवती ! अभियादन करता हूँ ।

परिप्राजिका—सँकड़ों शरदोताक, महादेवस्त्वियोको उत्पन्न करनेवाली जन पुण्यी और पारिणी  
देवीके भाप स्वामी बने रहे जिनमें सहन करनेकी शक्ति एक जँतो ही है ॥१५॥

पारिणी—जय हो, प्रार्थपुत्रको जय हो ।

राजा—देवोका स्वागत है । [परिप्राजिकाकी ओर देखकर] धाइए, बँटिए भगवती !

[सब बँटते हैं]

राजा—भगवती ! साधारण हृदय और गणदात भाज एक भगड़ा लेकर भाए हूँ कि हम  
दोनोंमें कौन अधिक योग्य है । घब घापही इनका भगवता निपटाइए ।

परिप्राजिका—[मुसकराकर] ठिठोली न कीजिए । मया नभरके होते हुए कहे राजको परछ  
यादमे की जाती है ?

- राजा—नैतरेषम् । पण्डितकीशिकी खलु भययती पक्षपातिनावहं देवो च ।  
 प्राचार्यो—सम्यग्गृह्ण देवः । मध्यस्था भगवती नौ गुणदोषतः परिच्छेत्तुमर्हति ।  
 राजा—तेन हि प्रस्तुयतां विचारः ।  
 परित्राजिका—देव प्रयोगप्रधान हि नाट्यज्ञास्त्रम् । किमत्र धाम्यवहारेण । कर्म या देवो  
 मन्यते ।  
 देवी—अहं मं पृच्छसि तवा एवाखं विचारो एष्व ए मे रोमदि । (यदि मा पृच्छसि तर्दंतमो-  
 विचार एव न मे रोपते ।)  
 गणदास—देवि ! न मां समानविद्यया परिमथनीयमवगम्यतुमर्हसि ।  
 विदूषकः—भोदि केवलायो उदरभरितंबाह । किं मुहा वेप्रलङ्कारेण एवेणं । (भवति पश्याम  
 उदरभरितवादाद् । किं मुया वेतनवानेनैतेषाम् ।)  
 देवी—एषं कस्तहृत्पिभोसि । (मनु कनहृत्प्रियोर्षि ।)  
 विदूषकः—मा एष्वं । चण्डि ! अण्णोष्णकनहृत्पिभारं मतहृत्प्येणं एङ्कदरसि सलिजिदे  
 कुदो उषतामो । (यैवम् । चण्डि ! अन्वोन्यकनहृत्प्रियदोर्यत्तहृत्स्विनोरेकहृत्स्मिन्ननिर्भते कुत  
 दयतामः । )  
 राजा—गनु स्वाङ्गुलीष्यतिप्रममुनयोर्दृष्टयती भययती ।  
 परित्राजिका—अथ किम् ।  
 राजा—तविद्यानीमताः परं किमाभ्यां प्रयापयितव्यम् ।

- राजा—नही, ऐसी बात नहीं है । आप ठहरी पंडित कीशिकी, धीर हूँ तथा देवी ठहरे  
 प्राचार्योके पक्षपाती ।  
 दोनों प्राचार्य—यह तो देवने ठीक कहा । पक्षपातसे दूर रहनेवाली भगवती ही हमारे गुण-  
 दोष ठीक-ठीक जान सकेगी ।  
 राजा—तो आप लोग आश्चर्य क्या हुए ।  
 परित्राजिका—देव ! नाट्यज्ञास्त्रकी भाँव तो करके दिखानेके शीली है । इसलिये कोरी  
 बात भीतसे लाभ क्या होगा ? क्यों देवी ! ठीक है न ?  
 देवी—मुझे पूछा जाय तो मुझे इनका भगवा ही नहीं सुझता है ।  
 गणदास—देवी ! आप यह न समझें कि मैं नाट्य विद्यामें निसीसे पीछे रह जाऊँगा ।  
 विदूषक—तो देवी ! देव ही क्यों न सिधा जाय इन दोनों पेटुभोजन करतब ? नहीं तो  
 इन्हें वेतन द-देकर पसनेसे लाभ ही क्या है ?  
 देवी—हाँ, हाँ तुम्हें तो सदाई-रुबडा ही अच्छा लगता है ।  
 विदूषक—नहीं, ऐसा न कहिए बही ! इन दो सदाई ह्रावियोगे से जबतक एक की हार  
 नहीं हो जायगी तब तक ये ठडे कँठे हूँगे ?  
 राजा—भगवती ! आपने तो इन लोगोंके समितयनी चतुरता देखी ही होगी ?  
 परित्राजिका—हाँ, देगी है ।  
 राजा—उब इपसे बड़कर ये अपनी चुरचुरावा धीर क्या प्रयास देगे ।

परिचाजिका—तदेव वपुस्तुकागामि ।

रिल्लटा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संकान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता ।

यस्योभयं साधु स शिचकाखां घुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ॥१६॥

विदूषक.—सुखं भग्नेर्हि भग्नवदोए वधसं । एषो पिच्छित्तयो जवदेत्तरसखावो लिप्साभो  
सि । (युतमार्याग्या भगवत्या वचनम् । एष पिच्छित्तार्थं उपदेशदर्शनान्निर्णय इति ।)

हरदत्त.—परमभिमतं नः ।

गणदास—देवि । एवं हिषतधु ।

देवी—जवा जल मन्मथेषा तिस्रसा जवदेशं भित्तरोन्ति सहा भापरिमत्स ए दोसो ।

(यदा पुनर्मन्मथेषा शिष्या उपदेशं गतिनयन्ति तदाऽऽचार्यस्य न दोष ।)

राजा—देवि । एवमापन्नते । विनेतुरज्ज्वपरिग्रहोऽपि बुद्धिसापत्यं प्रकाशयतीति ।

देवी—[जनान्तिकम् ।] कर्हं वारिण । [गणदास विलोचय प्रकाशम् ।] परं प्रकाशवत्स

ज्जाहाकारणं मणोरुहं प्ररिभ । विरम शिरस्यभावो धारणाशो । (कपदिदानीम् । असमा-  
यंयुषस्योत्साहकारण मनोरथ प्ररवित्वा । विरम निरर्थकादारम्भात् ।)

विदूषकः—सुदुष्ट भोवो भण्णदि । भो गणदास ! संगीतपरं तन्मिष सरससईए उवाभण्णभो-  
दण्णं जावमारुत्स कि हे मुहलिण्ण्येस विवावेस । (सुदुष्ट-भवती भण्णदि । भो गणदास ! संगीत-  
परं लक्ष्या सरस्वत्युवायनमोदकास्तादत कि हे मुत्तनिग्रहेण विवावेन ।)

परिचाजिका—सं वताती हूं न ! देखिए ! कोई गुली तो ऐसे होते हैं जो अपने गुणको  
अपने प्राय भली भाँति जानते हैं । और कुछ ऐसे होते हैं जो अपने गुण दूसरोंको सिखानेमें  
बड़े चतुर होते हैं पर स्वयं गुणी नहीं हैं जिसमें वे दोनों बातें ही । और ऐसे ही गुलीवो  
अबले प्रच्छा समझना भी चाहिए ॥१६॥

विदूषक—[दोनों आचार्यसि] प्राय लोगोंने भगवतीकी बातें सुन लीं न ! इसका  
पर्यं यह निकला कि प्राय लोगोंने अपने शिष्योंकी जैसा सिखाया है वही देखकर प्राय  
लोगोंकी भ्रष्टाईभी जाँच करी जायगी ।

हरदत्त—यही तो हम भी चाहते हैं ।

गणदास—तो यही रहे देवी !

देवी—पर यदि कोई मोटी समझवाली शिष्या सिखाए हुए प्रयोग दिगाव दे तो इसमें  
आचार्यका क्या दोष है ?

राजा—देवी ! हमने कही पढा है कि यदि गुरु अपने विद्या देनेके लिये निकम्मा शिष्य  
पुने तो समझ लेना चाहिए कि गुरुको सो कुछ घाता जाता नहीं ।

देवी—[अलग] अब क्या हो ? [गणदासको देखकर प्रगट] आर्यपुत्रको उवाह दिलाने  
वासा यह टटा छोड़ो । तुम क्यों यह बेकामका काम तिर ले रहे हो ?

विदूषक—प्राय ठीक कहती हैं । देखो ! गणदास ! जब सुभ बँटे-बँटे संगीतने भ्रष्टाकर  
बने हुए, सरस्वतीजीकी बड़ाए हुए अड्ड सा ही रहे हों, तब तुम ऐसी औप ठीप मोन ही  
बनो लेते हो जिसमें सुन्दारा मुँह बन्द हो जाय ।

गणुदायः—सत्प्रसन्नमयमेवाप्यं देवीवाक्यस्य । श्रूयतामवसरप्राप्तमिवाानीम् ।

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तिविद्ममाणस्य परेष्व निन्दाम् ।

यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वशिष्ठं वदन्ति ॥१७॥

देवी—प्रदूरोवलीया दे स्तिस्ता । अवरिस्तिष्टिदस्त उववेसस्त उख प्रम्याप्यं पमातर्ण ।  
(अचिरोपनीता ते शिष्या । अपारंनिष्ठितस्योपदेवस्य पुनरन्याप्यं प्रकाशनम् ।)

गणुदायः—सत् एव मे निबन्धः ।

देवी—तेण हि कुवेति भ्रमवदीय उववेतं वंसेम । (तेन हि द्वावपि भगवत्यापुपदैर्द  
दर्शयत्म् ।)

परिवाजिका—देवि ! नतन्व्याप्यम् । सर्वतस्याप्येकाकिनो निरुंयाभ्युपगमो दीक्षाप ।

देवी—[वमान्तिरुम् ।] मूढे परिवाजिए ! न जागतिपि सुतं दिम करोति । (मूढे  
परिवाजिके ! मां जागतीमपि सुन्त,मित्र करोपि ।) [इति सासूर्यं वरावर्तते ।]

[राजा देवी परिवाजिकायं दर्शयति ।]

परिव्रजिका—

अनिमित्तमिन्दुवदने किमत्र मचतः पराद्मुखी भवति ।

प्रभवन्त्योऽपि हि भर्तृषु कारणकोपाः कुटुम्बिन्यः ॥१८॥

गणुदायः—महाराणीकी यातका तो सपमुच यही अर्थ निकलता है । जब बात भा ही  
पकी है तो मैं भी कहूँ देता हूँ । मुनि—तो अर्थात्क नोकरी वा सेनेवर सात्कारमेंसे भावता  
है, दूसरोंके संगमो उठानेपर भी खुप रह जाता है और केवल पेट पालनेके लिये विद्या  
पकाता है ऐसे लोग पंडित नहीं, बरतु ज्ञान देनेवाले बनिए कहवाते हैं ॥१७॥

देवी—मुन्हारी शिष्या अभी योके ही चिन्ति तो सोलने लगी है । इतलिये बिना  
पनकी किए उठे महीं प्रवीश करानेके लिये जाना सबपुन बहा प्रम्याप्य होया ।

गणुदाय—पर इन्हीं कारणसे तो मैं और भी उये यहाँ लानेका हठ कर रहा हूँ ।

राज्ञी—तो तुम दोनों अपने-अपने विस्तारिको चतुपाई बकेने भववतीको ही दिसाओ ।

परिवाजिका—जह ठीक नहीं होया देवी ! कोई कितना भी बदा पंडित क्यों न हो, पर  
यदि वह अपनेसे न्याय करने बंठता है तो उसके निरुंयमें भूल हो ही जाती है ।

देवी—[मलग] अभी मुझे परिवाजिका ! तू मुक जागतो इर्दको को सीतो इर्द वता  
वेना पाहती है । [बाहसे भूह फेर सेतो है ।]

[राजा परिवाजिकाको बंकेतसे रात्रीका भाव दिसाता है ।]

परिवाजिका—हे चंद्रमाके सगान मुखवाली ! तुम बिना बात ही महाराजसे क्यों भूह  
फेर बंठी हो । जो अपने खुसवाली खियां होती हैं उन्हें यद्यपि अपने पतिवोंपर सभी अधि-  
कार होते हैं फिर भी जब उन्हें स्थना होया है तो वे कोई न कोई कारण निकालकर ही  
अपने पतिसे स्थतो हैं ॥१८॥

विदूषकः—एहं सकारणं एव्य । अतएवो पस्यो रक्षितव्यो । [ गणदासं विबोधय । ]  
 त्रिद्विधा कोपव्याजेन देवोए परितापो भवं । सुसिद्धिस्तपो वि शय्यो चयदेवदंसणं एण्णुहोरो  
 होवि । ( मनु सकारणमेव । आत्मनः पक्षो रक्षितव्यः । दिष्ट्या कोपव्याजेन देव्या परितातो  
 भवान् । सुसिद्धिस्तोऽपि सर्वे उपदेशदक्षिणेन निष्ठातो भवति । )

गणदासः—देवि ! श्रुयताम् । एवं ज्ञानो गृह्णाति । तद्विदानीम् ।

विवादे, दर्शयिष्यामि क्रियासंक्रान्तिमात्मनः ।

यदि मां नानुजानासि परित्यक्तोऽस्म्यहं त्यया ॥१६॥

{ इत्यासनादुरथावुनिष्कति । }

देवी—[ स्वगतम् ] का गई । [ प्रकाशम् । ] यहूबहि भाषारिषो तिस्तनएस्त । ( का  
 पतिः ) प्रभवत्पापायः शिष्यजनस्य । }

गणदासः—चिरमपदेशनाङ्कितोऽस्मि । [ राजानमबबोस्य । ] अनुजानं देव्या । तदाज्ञापयतु  
 देवः कस्मिन्नभिनयवस्तुभि प्रयोगं दर्शयिष्यामि ।

राजा—प्रज्ञाविकसि ममवती ।

परिभाषिका—किमपि देव्या ममसि वर्तते ततः अङ्कितस्मि ।

देवी—भल्य पोस्यं । यहूबहि एतद् अस्तसो परिपालस्य । ( भए विराज्यम् । प्रभवति प्रभु-  
 रासनः परिजनस्य । )

विदूषक—वे कारणसे ही तो फट रही हैं । उन्हें अपने पस्यो ही रक्षा करनी ही चाहिए ।  
 [ गणदासको देखकर ] जाइए, बड़ा भाव्य है आपका कि महाराजीने स्तनके घटाने आपको  
 बचा लिया । पर देवो, चाहे कोई कितना भी बड़ा पठिक हो पर सबकी बतुराई उसके शिष्योंका  
 करतब देखकर ही जानी जाती है ।

गणदास—सुनिए देवी ! जब ऐसी-ऐसी बातें कही जा रही हैं तो अब मैं यही विजला देना  
 चाहता हूँ कि मैंने अपने शिष्योंकी अपनी विद्या कंसे लिखाई है । और यदि आप मुझे इस  
 समय भाशा नहीं देती तो मैं यही समझूँगा कि आपने मुझे अपने यहूबहि निकाल दिया ॥१६॥  
 [ अपने भावनेसे उठना चाहता है । ]

देवी—[ मन ही मन ] अब और चारा ही क्या है ! [ प्रकट ] शिष्य तो आपाओंके ही  
 आपमें है ।

गणदास—मैं हजनी देखे बर रहा था कि महाराजीने कही रोक न दें [ राजाको देखकर ]  
 देवीने भाशा दे दी है इसलिये अब देव भी भाशा दें कि मैं आपको कौनसा अभिनय दिखलाऊँ ।

राजा—ओ भववती कहें ।

परिभाषिका—देवी कुछ कहना चाहती है इसीसे मैं हिलक रही हूँ ।

देवी—नहीं आप निहर होकर कहिए । ऐबकीको तो अपने स्वामीकी आज्ञा माननी ही  
 होती है ।



राजा—मम चेति ब्रूहि ।

देवी—भगवति । भ्रष्टोदासीम् । ( भगवति । मष्टोदानीम् । )

परिप्राजिका—देव । तस्मिन्नाद्या कूर्ति चतुष्पादोत्पद्यन्निक दुष्प्रयोज्यमुदाहरन्ति । तत्रैका-  
यंशस्यसुभयो प्रयोगे पश्याम । तावता नापत एवाजभवतोऽपदेशान्तरम् ।

प्राचार्यो—यदाज्ञापयति भगवती ।

विद्वपक—तेण हि दुष्ये वि यस्या येकलाघरे सगीवरक्षल करिष्य तत्तमदयो दूढ पैतपह प्रहवा  
मुच्यन्तदो एष्य लो जन्मानइस्सदि । ( तेन हि द्वावपि वर्षो प्रेक्षागृहे सगीत्वरवगा कृत्वा तत्रभवतो  
दूढ प्रेपयत्म् । अथवा मृगञ्जस्य एव न सत्यापयिष्यति । )

हरदत्त—तथा । [ द्दुष्टिदुष्टि । ]

[ गणदासो चारिणीपक्षलोऽप्यति । ]

देवी—[ गणदास विलोप्य । ] किमर्थं मोदु भज्जा । ए विजयमग्निपणी प्रह भज्जत्स ।  
( विजयो भवत्वायं । तनु विजयाम्ब्यादिन्वहमायंस्व । )

[ प्राचार्यो प्रस्थितो । ]

परिप्राजिका—इतस्तापम् ।

प्राचार्यो—[ परिपुत्य । ] इतो एव ।

राजा—घोर मुझे आपकी आज्ञा माननी है यह भी थोड़ा बोलिए ।

देवी—भगवती ! अब आप कहें इसलिये ।

परिप्राजिका—महाशय ! तस्मिन्नाद्या कर्त्ताया कृत्वा चोपदोऽन्ता छन्निक नामक अभिनय  
बद्धा कठिन बतया जाता है । उन्नीके किसी एक भावने दोनोका अभिनय देख लेंगे घोर वसीसे  
यह जान लिया जायगा कि आप तीर्थोने अपने अपने शिष्योंको कैसे सिखाताया है ।

दोनो प्राचार्य—जैसी भगवतीकी आज्ञा ।

विद्वपक—तो आप दोनो नाटक घरमें चलकर सब सगीतका साथ जुटाइए घोर सब हो  
कुत्तैपर किसी दूतके यहाँ कहला बोलिएगा । या फिर मुदयकी भयक सुनकर ही हम लोग उठकर  
चले आयेगे ।

हरदत्त—अच्छी बात है । [ उठता है । ]

[ गणदास चारिणीकी घोर देखता है । ]

देवी—[ गणदासको देखकर ] आपकी विषय हो । मैं सचमुच चाहती हूँ कि आपकी  
विषय हो ।

[ दोनों प्राचार्य बानिको उचल । ]

परिप्राजिका—इधर तो सुनिए ।

दोनों प्राचार्य—[ लोटकर ] कहिए, या गए हय लोग ।

परिव्राजिका—निर्णयवाचिकारे यशोमि । सर्वाङ्गसौन्दर्याभिव्यक्तये विगतनेपथ्ययोः पात्रयोः प्रवेशोऽस्तु ।

शाश्वर्यो—नेत्रभाष्योरुपवेश्यम् । [ इति निष्कान्ती । ]

देवो—[ राजानमवलोच्य । ] अहं राक्षकज्येसु ईरिसो उवाचखिञ्जखदा भग्जवत्तस्त तदो लोह्ख भवे । ( यदि राजकार्येष्वोहृष्टपुपायनिपुणतार्यपुत्रस्य ततः शोभन मनेद । )

राजा—

अस्त्वमन्यथा शृष्टीत्वा न खलु मनस्विनि मया प्रयुक्तमिदम् ।

प्रायः समानविद्याः परस्परयशः पुरोभागाः ॥२०॥

[ नेपथ्ये मृदङ्गध्वनिः । सर्वे कर्णं ददति । ]

परिव्राजिका—हस्त । प्रवृत्तं संगीतम् । तथा ह्येषा—

जीमूतस्तनितविशङ्किमिर्मयूरैरुद्वृष्टीवैरनुरसितस्य पुष्करस्य ।

निह्नादिन्युपहितमध्यमस्वरोत्था भायूरी मदपति मार्जना मनांसि ॥२१॥

राजा—देवि । तस्याः सामाजिका त्वापः ।

देवो—[ स्वगतम् । ] अहो अविशमो भग्जवत्तस्त । ( अहो अविनय प्रार्थयुतस्य । )

[ सर्वं उत्तिष्ठन्ति । ]

परिव्राजिका—देविए, मुझे निर्णयका वाचिकार विया गया हे इसलिये मैं यह यता देना चाहती हूँ कि पात्रो के सब मनोके हाव-भाव ठीक-ठीक दिखाई देने चाहिएँ इसलिये प्रायः लोग अपने पात्रोंको बहुत लजा-धजाकर न लाएया ।

शौभो प्रार्थयं—यह कहनेकी आवश्यकता नहीं थी ।

देवी—[ राजाको देखकर ] यदि प्रार्थयुत्र अपने राज्यकी देखभाल करनेमें इतनी कला लगाते तो कितना अच्छा होता ।

राजा—देवी । तुम कुछ और न समझ बैठना । इसमें मेरा कोई हाथ नहीं है । देवो, जो लोग एक ही विद्यापाने होते हैं, ये कभी एक दूसरेकी मदती नहीं सह सकते हैं ॥२०॥

[ नेपथ्यमें मृदंगकी ध्वनि । सब चुनते हैं । ]

परिव्राजिका—अरे लो ! उन्होंने तो सङ्गीत खेड भी दिया । देवो । मृदंगके शब्दको मेमोकी गरज समझकर ये गोर लयर मूँह करके देखने लगे और दूरतक गुँजनेवाली यह मध्यम स्वर से उठी हुई भायूरी नामकी गमक मनको मतवाला बनाए बाध रही है ॥२१॥

राजा—बसिए देवी ! लजकर देखा जाय ।

देवो—[ मन ही मन ] अह ! प्रार्थयुत्र भी कंठे लोठ हैं !

[ सब उठ खड़े होते हैं । ]

विदूषक—[ अथवायं । ] भो घोर गण्ड । तत्तभोदो धारिणी विसमादइस्सदि । ( भो घोर गण्ड । तत्रभवतो धारिणी विसवादविध्यति । )

राजा—

धैर्यविलम्बिनमपि त्वरयति मां मुरजवाधरागोऽयम् ।

अवतरतः सिद्धिपथं शब्दः स्वमनोरथस्येव ॥२२॥

[ इति निष्कान्ता सर्वे । ]

॥ इति प्रथमोऽङ्कः ॥

विदूषक—[ अथवा ] भयो, धीरे-धीरे बसिए । कही देवी धारिणी सब गण्ड-योदाला न करे ।

राजा—मैं बहुत धीरे ही चल रहा हूँ फिर भी मुरजवे निकला हुआ यह राज मुझे इस प्रकार जल्दी चला रहा है यामो मेरा मनोरथ ही मुझे पुकारकर बुला रहा हो कि यामो तुम्हारा काम बन गया है ॥२२॥

॥ पहला अंक समाप्त हुआ ॥

## द्वितीयोऽङ्कः

[एवः प्रविशति संगीतरचनायां वृत्तांवाभासनस्थो राजा सवयस्यो धारिणी परिव्राजिका विमलतस्य परिवारः ।]

राजा—भवत्प्रथमवतोरत्नार्थयोः प्रथमं कतरस्योपदेशं । इत्यादि ।

परिव्राजिका—ननु समानेऽपि ज्ञानबुद्ध्याये धर्मोबुद्धत्वाद् यत्तुवातः पुरस्कारमर्हति ।

राजा—तेन हि भौद्ध्यत्वं एवप्रथमवतोरत्नैव स्थनियोग्यमशून्यं कुतः ।

कञ्चुकी—यदासाध्यति देवः । [दक्षि निष्क्रान्तः ।]

[प्रविश्य]

गणुदासः—देव ! क्षमिच्छन्वा कृतिर्लघमन्या चतुष्पदास्ति । तस्यास्तु छलिकप्रयोपमेकमत्रा श्रीतुमर्हति देवः ।

राजा—भाचार्य ! यद्गुणानामवहितोऽस्मि ।

[मिथ्यान्धो गणुदासः ।]

राजा—[यत्नात्तिकम्] ययस्य ।

नेपथ्यपरिगतायाश्चतुर्दर्शनसंस्तुतुकं 'तस्याः' ।

संहर्तुमधीरतया व्यवसितमिव मे विरस्करिणीम् ॥१॥

विदूषकः—[अपचार्यं] उच्यते लघमन्यु सतिहिवमस्मिन् य । ता अल्पवती वारिण देव ! [उपस्थितं यत्नमपु सतिहिवमस्मिन् य । तदप्रमत्त दानीपस्य ।]

### दूसरा अंक

[संगीतशास्त्रात् विदूषकके ताप राजा, परिव्राजिका, रानी धारिणी धीर]

राज-परिवार दिव्याई देता है ।]

राजा—इन दोनों भाचार्योंके पहले किसका खिलाया हुआ नाटक देखा जाय ।

परिव्राजिका—यद्यपि दोनोंको नाट्यशास्त्रका एक ही ज्ञान है फिर भी भाचार्य गणुदास मज्जामें बड़े हैं इसलिये पहले उन्हीको अवसर मिलना चाहिए ।

राजा—तो भौद्ध्यत्वं ! जामो, भाचार्योंको यह बात बतकर तुम अपना काम देतो !

कञ्चुकी—जैसी—देवकी आज्ञा । [यत्ना जाता है ।]

[गणुदासका प्रवेश]

गणुदास—देव ! क्षमिच्छामे प्रथम-सयने एक शोषणी बनाई है । प्रार्थना है कि देव स्वयं छलिकप्रयोपमेकमत्रा ।

राजा—भाचार्य ! मैं बड़े आदरसे ध्यान लगाए हुए हूँ ।

[गणुदास जसा बगवा है ।]

राजा—[यत्न] मिन ! परदेके पीछे जो मेरी धारी लगी है, उसे देखनेके लिये मेरी धारें ऐसी उठावली हो रही हैं जिनसे वे दस धारीस्तानें परदेको ही हटाने पर तुल गई हों ॥१॥

विदूषक—[यत्न] लीजिए न ! धारकी धारोंको मिटाई तो धारई पर मधुपवती भी पास ही बैठी है, इसलिये शीघ्र शोषणी के ऊपर देखिएना ।

{ शतः प्रविदन्त्याचार्यं प्रत्यवेदयमाद्याङ्गनोष्ठना मालविका । }

विदूषकः—[उत्ताग्निचक्रम्] देवस्तु भवं । एतं वयु मे पट्टिन्दुन्द्यादो परिहीर्षति महुरवा ।

{ परवयु मयावु । न क्षत्स्वत्याः प्रतिष्पन्द्यात्परिहीयते मधुरता । }

राजा—[अपचार्यं ] वयस्य ।

निव्रगतायामस्यां कान्तिविमंवादशङ्कि मे हृदयम् ।

सम्प्रति शिथिलसमाधि मन्ये येनेयमालिखिता ॥२॥

कलहदासः—अग्रे । मूर्च्छताम्बता सरवता भव ।

राजा—[आपददेषु] अहो सखंत्वानामवधता कर्णविवेकस्य । तपर्यह ।

दीर्घांशं शरदिन्दुक्रान्तिवदनं बाह्वन्तापसयोः

मंथिष्ठं निषिद्योन्नतस्तनमुरः पार्ष्वे प्रमृष्टे इव ।

मध्यः पाणिमितो नितम्बि तघनं पादावरासङ्गुली

छन्दो नर्तपित्तुर्यथैव मनसिरिलष्टं तथास्या वयुः ॥३॥

मालविका—[उत्तरागं इत्यस्य चतुष्पदवत्सु भावति ।]

दुन्दुहो पिभो मे तस्मि भव हिभ्रम्य गिरासं

भ्रमहो भ्रपद्मोम मे परिष्कुर किं वि वामभो ।

स्तो सो चिरदिदो कहँ उरा उवखइदज्जो ।  
साह मं पराहीणं तुह परिमाणं सतिसहम् ॥४॥

(पुनः श्रियो मे तस्मिन्भव हृदय निरास  
महो धयाज्ञो मे परिरपुरति किमपि वागः ।  
एष स चिरदृष्टः कर्म पुनरुपनेतव्यो  
साय मां पराधीनां स्वयि परिषत्तय सतुष्याम् ॥)  
[ततो यथारसमभिनयति ।]

विदूषकः—[जनान्तिकम् ।] भो बभूवस्त । अउपवस्तुमं कुवारीकरिअ तुह उषहाकिवी  
अप्या तत्तद्वोषीए । (भो बभूवस्त ! अउपवस्तुमं द्वारोकरव त्कमुपस्थापित धामा उषभवत्या ।)  
राजा—तते ! एषमेव भवति हृदयम् । मनया सतु ।

जनमिममनुरत्तां विद्धि भाथेति मेये बचनमभिनयन्त्याः स्वाङ्गनिर्देशपूर्वम् ।  
प्रययगतमहृष्ट्या धारिणीसंनिकर्पादहमिव सुकुमारप्रार्थनाग्याजमुक्तः ॥५॥  
[मासविका गीतान्ते निष्क्रमितुमारब्धा ।]

विदूषकः—भो विदु ! क्वि भो विमुनरिचो कम्मेवो । तं वाव पुच्छिस्तम् ।  
(भवति सिष्ठ । किमपि वो विरमृतः कर्मभेदः । तं तावदाश्रयामि ।)  
गणदासः—वत्से । अशनाभं रिपस्योपदेतविनुद्या यास्तसि ।  
[मासविका निवृत्य स्थिता ।]

राजा—[प्राप्तगतम्] अहो ! सर्वास्ववस्थानु चास्ता शोभास्तरं पुष्पति तथा हि—

बहुत दिनोंपर देस रही है पर कौंसे अपनाऊँ ।  
नाय बिकल है पर अपनी ही समझे मैं बखिजाऊँ ॥  
(गीतके भावके अनुसार नाट्य करती है ।)

विदूषक—(पश्य) भो बभूवस्त ! इन्होंने तो इस बार चरणबन्धे शीतके बहाने आपपर  
अपनेकी न्योछावर कर डाला ।

राजा—मैं भी यही समझता हूँ कि इसने 'नाय बिकल है पर अपनी ही समझे'—गीत  
गाते हुए अपनी ओर संकेत करने को अभिनय किया है वह इसीलिए कि महारानी पारिलीकी  
यास देखकर इसने समझ लिया कि प्रेम दिसानेका कोई दृष्टय उपाय तो है नहीं, इसलिये  
एक सुकुमार युवकके प्रेमकी शीश माँगनेके नाववाला यह शीत याकर इसने सवसुच मुझसे  
ही सब कुछ कहा है ॥५॥

[गा चुकनेपर मासविका यही वाता चाहती है ।]

विदूषक—ठहरिए देवी ! आप नीचमें कुछ भूत गई हैं, वही मैं पूछना चाहता हूँ ।

गणदास—वत्से ! थोड़ी देर एक जाओ धीर जन वहाँ सब शीघ्र तसोर्पाति समझ लें  
कि तुमने ठीकसे नाट्य सीस लिया है सची जाना ।

[मासविका लौटकर चली हो जाती है ।]

राजा—[मन ही मन] अहा ! ऐसे बिकल देवी, उतरके ही यह मनोहर अपने लगती है ।

वामं। संधिस्तिमितवलयं न्यस्य हस्तं नितम्बे

॥१॥ कृत्वा स्यामाविट्प सदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयम् ।

पादद्विगुणालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातितार्चं

नृत्तादस्याः स्थितमतिररा कान्तमृज्वायतार्धम् ॥६॥

देवी—ए गोरमवयस्य वि धरदो हिमए करोवि । (मनु योतमवचनमप्यार्यो हृदये करोति ।)  
गणदास—देवी ! मा मेवम् । देव प्रत्यवांस्रभाप्यते सूक्ष्म रक्षिता योतमस्य । पश्य ।

१ ॥११॥ मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपरिचतः ।

॥१॥ पद्मच्छिदः फलस्येव निकपेयायित्तं पयः ॥७॥

(विद्रूपक विलोक्य) लक्ष्यशुभो वय विवक्षितमावस्य ।

विद्रूपक—[गणदास विलोक्य ।] कोतिई वाव पुच्छ । पच्छा जो मए कम्ममेवो दिट्ठो  
त भणिएसु । [कोतिको हावःपुच्छ । पयवायो मया कम्ममेवो हृष्टस्त भणिएव्यामि ।]

गणदास—भयवति ! मया हृष्टमभियोपता गुणो वा होतीवति ।

परिभाषिका—यथा हृष्ट सर्वमनवच्छम् । कुत —

अङ्गैरन्तर्निहितवषणैः सूचितः सम्यग्मर्थः

पादन्यासो लयमनुगतस्तन्मयत्वं रसेषु ।

शाखायोनिमृदुरभिनयस्तद्विकल्पानुवृत्तौ

भावो भावं नुदति विपयाद्रागरन्धः स एव ॥८॥

इसने घपना बीदां हाव नितम्बपर रज भिया है, इसलिये हाव का कडा पहुँचपर एककर चुप हो गया है । पूनरा हाव स्वामाको डालीके समान बीजा मटका हुआ है । बीबी पार्सें किय हूए यह घपने परदे धंगुहेसे घरतीपर बिलरे हुए फूलोको सरका रही है । इस प्रकार कदी हीनेसे इनके ऊपरका दापीर लम्बा घोर सीधा हो गया है । नाबनेके समय भी यह ऐसी गुन्दर नहीं लगती थी जैसी भय लग रही है ॥६॥

। देवी—मया मार्वं गणदास श्री योतमकी यात सब मान बँडे ह ?

गणदास—देवा न बहिए देवी ! महाराजके साथ रहते रहते योतमकी पार्सें भी प्रलेपुकी ठीक पहचान करने मगो है । सुनिए विद्वानोकी सगतिमे बैठकर मूर्ख भी उधो प्रकार विद्वान् बन आता है जैसे निर्मलीके बीजसे मटव्यता पानी स्वच्छ हो जाता है ॥७॥ (विद्रूपकको देखकर) हूँ मी मुनें आप क्या पुछता चाहते थे ?

विद्रूपक—(गणदासको देखकर) आप बहुत बीविकोजीसे पूछ देखिए, में पीछे बतताऊँगा कि भूत कहाँ हुई है ।

गणदास—भयवती ! आपने जहाँ जँहा गुण या बोप देखा ही समय कह डानिए ।

परिशानिवा—मैंने तो जो देखा उसमें वही बोप दिखाई ही नहीं दिया । क्योंकि योतकी सब बातोंका डीक-डीक थप थपके समिनयसे मतीवति दिखा दिया गया है । इनके पर

- गणुदासः—देवः कर्म वा मन्यते ।  
 राजा—धर्मं स्वपदाशिषिणाभिमानाः संश्रुताः ।  
 गणुदासः—प्रसन्नतर्पितास्मि । युताः—

उपदेशं विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिनः ।-

श्यामायते न युष्मासु वा काञ्चनभिवग्निषु ॥६॥

देवी—विद्विषा अपरिष्ववारहखेल धग्जो धड्डइ । ( विद्विषाऽपरिष्वाराधनेनापीं यपते । )

गणुदासः—देवी परिग्रह एव मे बुद्धिहेतुः । [ विद्वपकं विनोदय । ] गीतन धेदेवानीं यत्ते-  
 ममसिवातेते ।

विद्वपकः—एवमोवधेसदंतले पवमं बग्दहस्त पूजा कावध्या । सा हं वो विदुमरिवा ।  
 ( प्रथमोपदेशवर्धने प्रथमं ब्राह्मणस्य पूजा कर्तव्या । ज्ञानगु वो विस्मृता । )

परिवाजिका—धृती ! प्रथोप्याम्पन्तरः प्रदयः ।

[ सर्वे प्रहसिताः मालविका स्मितं करोति ]

राजा—( घातप्रवृत्तम् ) उपासयारभ्यभुवा मे स्वविषयः । पत्नेन—

स्मयमानमायताक्ष्याः किञ्चदिभिव्यक्तदशनशोभि ह्रस्वम् ।

असमप्रलक्ष्यफेसरगुच्छ्वसदिव पङ्कजं दृष्टम् ॥१०॥

श्री धर्मके साध साध बल रहे थे । फिर गीतके रसमें भी वे लग्नय हो गई थी । धीरे इनके  
 धुरधने भी हुमें प्रेममें जग्न कर दिवा क्योंकि ठालके साध होमेवाते धर्मिनयमे मनेक प्रकारसे  
 र्णय चलाकर जो भाव दिखाए जा रहे थे वे ऐसे धार्कणक थे कि मन किसी धीरे जाने ही नहीं  
 पाता था ॥५॥

गणुदास—देव ! धाम इसे कैसा समझते हैं ।

राजा—इसे देखकर तो हमें अपने पक्षका भविमान कर्म होने लगा है ।

गणुदास—माल मे लक्ष्मण नूरयकलाका वण्डित हुआ हैं, क्योंकि वैसे प्रागमे डालनेसे सोना  
 कासा गहरी पड़ता जैसे ही जिस शिक्षकके सिखानेमे किसी प्रकारको भुव न बिलसाई पड़े उगे ही  
 सच्ची शिक्षा कहते हैं ॥६॥

देवी—अपने परीक्षकोंको अनुष्ठ करने के लिये धायकी बचाई है ।

गणुदास—देवीकी कृपासे ही मुझे यह मझ मिला है । (विद्वपकको देखकर) गौमत्र धर प्राप  
 भी अपने मनकी बात कह शानिष ।

विद्वपक—जब पहले-पहल अपनी सिखाई हुई विद्या सोगोंके धारि दिखाई जाती है तो सबसे  
 पहले ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिए । वह तो धाय सोग झूल हो गए ।

परिवाजिका—वाह, क्या माध्यकलाके भीतरकी बात पूछी है ।

[ सब हँसते हैं, मालविका मुसकराती है । ]

राजा—( मन हो मन ) मेरी धार्श्योंको तो चाही हुई वस्तु देखने को मिल गई । क्योंकि  
 प्राय मेरी धार्श्योंको इस बड़े बड़े नेर्षोवानीके मुसकराते हुए जब मुसका दर्शन मिल गया है  
 जिसमें कुछ-कुछ बात अलके पड़ रहे थे धीरे जो उस क्षिणते हुए कमलके समान जान पड़ता है  
 जिसमेके केसर पूरे-पूरे न दिखाई दे रहे हों ॥१०॥



गणदास.—ब्रह्मदास्यत्वं न कर्तुं प्रथमं नेपथ्यदर्शनमित्यम् । अन्यथा कथं त्वं शक्तिशीलं  
 मार्चमिष्यामः ।  
 विदूषकः—अप्य एतस्य सुखस्यप्रलम्बित्वे धन्तरिखे जलपात्रं इच्छित्वा चावसादस्य । ब्रह्मा  
 पश्चित्तर्गतोत्सवप्रदद्या एं मुक्ता काशी । अथि अलहोदीयै सोहर्षं अलिखं तसो इयं से परितीर्त्तिरं  
 पथस्यथि । (यथा नाम शुक्लपत्रार्थितोऽप्रतिखे जलपात्रमिच्छता चातकापितम् । यथया परिद्व-  
 सन्तोपद्रव्यया ननु मुह्यन्ति यतोऽप्रभवत्या सोधनं अलिखं तत् इदं ते परितोषिकं प्रयन्मथि ।)  
 [ इति राज्ञो हस्ताकटकमाकपंति । ]

देवी—चिदुवाच । गुरुभारं अजायन्तो किंचित्मितं सुम आहूयं देति । ( विदुतावत् । मुला-  
 न्तरमजानतुकिनिमित्त रवमाभरल ददासि । )

विदूषकः—परकेरप्रति करिअ । ( परकीर्यमिति कृत्वा । )

देवी—[आचार्यं वितोषय ।] अज्जगलदास ! एं शंतिदोबदेता दे तिस्ता । ( भायं गणदास !  
 ननु दमितोपदेता से विद्या । ]

गणदासः—अतो । इहि पथज्जगलदासो ।  
 [ गङ्गाचार्येण निष्काशा नाशविका । ]

विदूषकः—[यनागतिकम्] एतिसो ये मदिविह्वो यवलां सेविदुं । [एतावान्ते मतिविभवो  
 भवन्तं सेविदुम् । ]  
 राजा—असमलं परिक्रमेण । अथ हि—

गणदास—अरे आह्वय देवता ! ह्य लोप पहली बार तो नाटक दिखा नहीं रहे हैं । ऐसा  
 होता तो तुम्हारे जैसे गेट पूजापर जानेवाले बाह्यलको ह्य अन्त्री पूजा करते ।  
 विदूषक—तो क्या मैं कीरे गरबनेवाले बादलोसे प्यास मिटानेकी प्राण करदेवासे पनीश  
 ही बना रह गया ? पर भाई ! ह्यारे जैसे भूलोंकी तो ऐसी बात है कि यदि एक्लियोंको सन्तोष  
 हुआ तो समझे ह्ये भी सन्तोष हो गया । जब भगवतो कोसिकीमे इसे सुन्दर बता दिया है तो  
 मामो मैं भी भुलूँ यह पारितोषिक दे जानला हूँ [ राजाके हाथसे कथन विकासटा है । ]  
 देवी—उहरी तो । दूधरेका धनिगय जिना देसे सुम अशीसे इसे भाशूपुण्य क्यों पियु । इत  
 रहे हो ?

विदूषक—दूधरेका है न, यही समझकर दे दास रहा हूँ ।

देवी—( आचार्यको देखकर ) कहिए, प्रायकी सिजा अपना धनिगय दिखा चुकी न ?

गणदास—आओ कल्प ! अब ह्य सोच पतें ।

विदूषक—(पसग राजासे) जहाँ तक मेरी बुद्धिकी पहुँच थी यहाँतक तो मैंने प्रायका काम  
 कर जाता ।

भाग्यास्तमयमिवाच्छोर्हृदयस्य महोत्सवावसानमिव ।

द्वारपिधानमिव घृतेर्मन्ये तस्यास्तिरस्कुरिणीम् ॥११॥

विद्रूपकः—[जनान्तिकम्] बलिहो विघ्न प्रादुरो वेन्नेख भोसव वोमनाणं हृद्यति (दरिद्र  
दवापुरो वेन्नेनोदप दोमनाणमिच्छति ।)

(प्रविश्य)

हरदत्तः—देव ! मशोमनिवाणी प्रयोगमवलोकयितुं क्रियतां प्रसादः ।

राजा—[आत्मगतम्] अक्षसितो दशंगार्यः । [दाक्षिण्यमयलम्ब्य प्रकाशम्] [मनु वर्धुस्तुका एव  
वयम् ।

हरदत्तः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

वैतालिकः—अयत्तु अयत्तु देवः । उपाकरो मय्याह्नः । तपाहि—

पत्रच्छायासु हंसा सुकुलितनयना दीर्घिका पथिनीनां

सौघान्यत्यर्थतापाद्बलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि ।

चिन्दुचेपान्पिपासुः परिसरति शिखी भ्रान्तिमद्वारियन्त्र

सर्वैरुक्षैः समग्रैस्त्वमिवनृपगुणैर्दाप्यते सप्तसप्तः ॥१२॥

राजा—बहुत दोष न रचो । उसका सर्वेके पीछे धिपना मुझे ऐसा लग रहा है मानो मेरी  
प्राणिका भाग फूट गया हो, जोका हुलास ठग पट गया हो और बीरज पर ताता लग  
गया हो ॥११॥

विद्रूपक—(मलय) तो गया बिना संकेवाने रोषीके समान यह चाहते हो कि बंध ही भापको  
धपने पाससे प्रीपय भी दे दे ।

हरदत्त—(भाकर) देव ! अब मेरा सिलामा हुआ अभिनय भी देखनेकी कृपा कीजिएगा ।

राजा—(मन ही मन) जो देखना था वह तो देख चुके । (उदारता दिखानेके लिये प्रकट)  
हाँ-हाँ हम लोग तो देखनेकी उत्सुक बँडे हैं ।

हरदत्त—बड़ी कृपा है मुझपर ।

(नेपथ्यमें)

वैतालिक—अब हो, देवकी अब हो । दोषहर हो गया है, क्योंकि बावडियोंमें कमलकी  
पलडियोंकी छायामें हंस आँख मूंदकर विश्राम कर रहे हैं । घूपसे भजन ऐसा तेज गया है कि धूम्रोंपर  
कनूतर तक नहीं बँट रहे हैं । पखते हुए रहटते उड़तली हुई पानी की बूँदों पीनेके लिये और उसके  
पारो प्रौर चक्कर काट रहे हैं और सूर्य अपनी सब किरणों लेकर जमी प्रकार धमक रहा है जैसे  
भाप धपने राजकी मुखेचि चमकते हैं ॥१२॥

विदूषक—प्रविहा प्रविहा । अन्हाएँ एह मोमएवेता उचहुवा । एतएवबो उअन-  
 वेताएवकमे विदूषणमा शोसं उअहएरनि । [हरदत विमोअ] हरदत ! कि बाएल मएलति ।  
 (प्रविषा प्रविषा । अरमाक पुनभौरनवेतोपतिषता । अरमअत उअतवेसातिक्रमे चिकित्सका  
 दोषमुदाहृणति । हरदत ! किमिदानीं मएलति ।)

हरदत—अस्ति अघनस्यान्वयाभावकसोऽय ।

राजा—तेषु हि स्वसौप्रमुखदेशं श्रोतव्यं प्रत्यागमः । विरमसु भवान् ।

हरदत—अदाज्ञावधति शेषः । [इति निष्क्रान्तः ।]

देवी—एतच्छब्दे अन्वयतो मगएलविद्विष्यु (निर्वर्तयतामंपुत्रो मअमनविधियु ।)

विदूषक—भोऽदि विमोऽसौ पारमोमलं सुअरखेहि । (मवति विमोऽसौ अरमोअनं अरम ।)

परिवाजिका—[अरपाम] अस्ति भवते । [इति अपरिजनया देव्या उह विष्क्रायाः ।]

विदूषक—भो अमरस ! ए केवलं इवे त्रिभ्ये च अमुसोअ मासविषा ।

(भो अमरस ! न केवलं एवे त्रिभ्येऽप्यद्वितीया मासविषा ।)

राजा—अमरस !

अध्याअमुन्दरी तां विधानेन ललितेन योजयता ।

परिकल्पितो विधात्रा षण्डा कामस्य विषदग्मः ॥१३॥

किं षण्डा । षण्डे । चिन्तयितव्योऽस्ति ।

विदूषक—अरे रे ! अर तो हन-सोपेके अमनका अमप हो अया हे । अयका अहना हे कि  
 अमप अर मोअन न करने से अहो हाति होती हे । अहो हरदत ! क्या अहते हे ?

हरदत—अर तुअ अहतेकी आत ही अहो एह जाती हे ।

राजा—तो अर अयका अरदशनं हय मोप कम देखिये । अय आकर विषाम करे ।

हरदत—अंतो देवकी आता । [अता जाता हे ।]

देवी—तो अरपेपुअ ! अमकर अर अह-सो अीअिये ।

विदूषक—देवी ! अर अटपट अमन-मानीअर मुअ अरिया अरमय करारए ।

परिवाजिका—[उठकर] अयका अरपणु हो । [देविकाओं और अनीके अय अनी  
 जाती हे ।]

विदूषक—अरस्य ! मुअअरिये हे अही अताये भी मासविका अर ही हे ।

राजा—अर पुसो अरस्य तो विधात्राने अर अह-मुन्दरी मासविकाकी अरित कलाका  
 आत अया अिया अानो उअने अरके अरपेने कामदेवका अिय मुअर माल देरिया हो ॥१३॥ अर अया  
 अहो अिय ! अर तुअ आकर अरे मुअ अिन्ता करो ।

॥ अज्ञाना । सत्ते चिन्तयितव्योऽस्मि ।

विदूषक.—भववा वि अहं । दिवं विपरिणकन्दु विम मे उधरान्मन्तरं दरभद । ( भववा प्यहम् । दृढ विपरिणकन्दुरिव मे उधरान्मन्तर दक्षिणे । )

राजा—एवमेव भवान्मुहुदर्व्येऽपि स्वरताम् ।

विदूषक—गहोदरक्षिणोऽस्मि । किं तु मेहावलीणिषद्धा भोण्हा विम पराहीखदंसणा तलहोदी प्राप्तविधा । भवं वि सुलापरिसरचरो विम गिद्धो अनिसलोत्तुपी श्रीरुपी अ । अञ्चंतादुरो विम कण्ठसिद्धि पश्यन्तो मे रोचसि । ( गृहोदरक्षिणोऽस्मि । किं तु मेघावलीनिषद्धा ज्योत्स्नेव पराधोनदखंता तपनवतो मालयिका । भवानपि सुलापरिसरचर इय गृध्रे प्राप्तिपलोलुपी श्रीरुपे । पश्यन्तादुर इव कार्येनिद्धि प्रार्थयमानो मे रोचसे । )

राजा—कथमनादुरो भविष्यामि ।

सर्वान्तःपुरचनिताभ्यापारप्रतिनिश्चयहृदयस्य ।

सा वामलोचना मे स्नेहस्यैकायनीभृता ॥१४॥

[ इति निष्क्रान्ताः सर्वे । ]

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥

विदूषक—प्राप मेरी विन्ता कीजिए । मेरा पैर इव समय हलवाईकी कद्दाबीकी भाँति बड़ा जला जा रहा है ।

राजा—तुम भी अब पढ़ने मित्रके लिये कोई उपाय खोज ही तोच निकालो ।

विदूषक—उसके लिये तो मैं प्रापसे पहले ही दक्षिणा से चुका हूँ पर गडबड ही यह है कि बादलोंसे छिपी हुई चाँदनीके समान शालविकाबीका दर्शन भी तो वृत्तरोंके हाथमे है । एकर प्राप माँस बेचनेवाले व्यापके घरपर भँदरनेवाले गिद्धके समान उसपर ताक भी लगाए बैठे हैं भोर सगप ही करते भी हैं । इतनी धनराहतके साथ मुझे काप करनेको कहते हुए प्राप शगते बडे मण्डे हैं ।

राजा—रत्ताभो, धनराहत क्यों न हो ? वह तिरछी चितवनवातो मेरे हृदयमें ऐसी प्रापरी है कि रनिवारकी सब रनियोसे मेरा मन एक दम उचट गया है ॥१४॥

[ सब चले जाते हैं । ]

॥ दूसरा अंक समाप्त हुआ ॥

## तृतीयोऽङ्कः

[सतः प्रविशति परिव्राजिकायाः पत्रिचारिका समाहितिका ।]

समाहितिका—आलस्यम् भयवशेण—समाहितिविण् ! देवस्त उवाच एतत्त्वं वीर्यकरं येनित्थं  
 प्राप्नुवन्ति । सा काव पनश्चलपातिषं मनुष्यरिषं प्रणेतोसामि । [परिब्रज्यावसोवय] एसा उद-  
 लीप्रातोषं प्रोत्तोभनो मनुष्यरिषा विदुवि । सा ज्ञान एं उपसृण्वामि । [प्राज्ञत्विम मयवत्या—  
 समाहितिके ! देवस्योपवपत्य वीर्यपूरकं युद्धैश्चावन्देति । उवाचत्प्रपदवनपातिष्वा मनुष्यरिषा-  
 मन्विष्यामि । एसा तपनोभ्रातोषमवसोपवती मनुष्यरिषा तस्मिन् । उवाचदेवामुपसृण्वामि ।]

[सतः प्रविशत्युद्यानपातिका ।]

समाहितिका—[उपसृण्व] मनुष्यरिष् ! अवि सुहो दे उज्जालुप्यावारो । [मनुष्यरिष् ! अवि  
 सुहस्त उद्यानव्यापार ।]

मनुष्यरिष्—अहो समाहितिका । सहि साप्यं दे । [अहो समाहितिका । सति स्वागतं दे ।]

समाहितिका—हता मयवतो मयलवेवि । अरितवाहिएसा मनुष्यरिषजलंलं तसहोरी देवी  
 देविस्वरव्या । सा वीर्यपूरण्य सुसृष्टिषु इन्द्राणि सि । [सति मयवत्याज्ञापयति । अरि-  
 पाणिनास्माहपजनैव उचनवती देवी दृष्टव्या । ततोऽनूपस्केण दुष्यगितुमिच्छामीति ।]

## तीसरा अङ्क

[परिव्राजिकाकी दासी समाहितिका घाती है ।]

समाहितिका—मयवतो कोमिकोने मुझे आज्ञा दी है कि समाहितिका । जायो, महाराजके  
 उपपनसे एक दिशोरिया नीवू तो ले जायो । तो चरूं मयदरमकी मानिन मनुष्यरिष्-  
 का पदा मयज्जे । [मुणकर देसती है ।] अरे, मुणहरे मयोरुकी मोर टकटककी खगाए यह क्या  
 खरो है । तो चरूं इसके पास ।

[मानिन मनुष्यरिष् घाती है ।]

समाहितिका—[बाध बाधर] अहो मनुष्यरिष् ! तुम्हारे उपपनका नाम तो टोक-टोक  
 कम रहा है न ?

मनुष्यरिष्—अरे ! तुम हो समाहितिका । जायो सखी, जायो, तुम्हारा स्वागत है ।

समाहितिका—सखी ! मयवतो कोमिकोने कहा है कि हमें छोड़े हाथ महाराजको ले निघने  
 नहीं जाना चाहिए इसलिये नीवू हो मेट करके उसके निग सूंये ।

मधुकरिका—एवं संनिहितं बीजपूरकं । कहेहि तव अण्डोष्णतंघरिस्तिदारं लट्टाभरिभारं  
उपवेशं देनितप्र कवरो भगवदोए परसितो । (ननु संनिहितं बीजपूरकम् । कथय तावदन्वोन्वतंपरितयो  
नटिधाचार्योऽपदेशं दृष्ट्वा कतरो भगवत्या प्रवचिवः ।)

समाहितिका—दुष्ये वि किल भागमिरा पप्रोभसिजला भ । किंतु तिस्रताए मासविषाए  
गुणबिसेसेए गणदासस उवदेशो परसितो । (द्वानपि किचागमिनो प्रदोषनिपुणो च । किंतु शिष्याया  
मासविकाया गुणविशेषेण गणदासस्योपदेशः प्रवसित ।)

मधुकरिका—अह मासविभाषवं कौलीयं कोरिसं सुखीषदि । (अथ मासविकायत कौलीनं  
कौहलं श्रूयते ।)

समाहितिका—याहं किल सति साहित्यो भट्ट । किंतु केवलं देवीए धारिणीए चित्तं  
रक्तालो भसलो पट्टए बसेदि । मासविभा वि इमेषु विषयेषु अण्डहवमुत्ता विष मासवीभासा  
मिताया सबलीषदि । अरो अवरं श जाखे । विसज्जेहि मं । (बाढ किञ्च तस्या साभिनायो भती ।  
किंतु केवलं देव्या धारिण्याधिवत् रक्षन्नात्मनः प्रभुत्व दर्शयति मासविकाप्येषु दिवसेष्वनुभूतमुपतेव  
मासवीभासा स्तान्ना लक्षयते । अतः परं न जाने । विद्युत्त माए ।)

मधुकरिका—एवं साहायननिर्घं बीजपूरकं मेव । (एतन्नासावसन्वितं बीजपूरकं गृहाण ।)

समाहितिका—तह । [इति नाट्येन बीजपूरकं गृहीत्वा] हला तुमं वि अरों पैसलवरं साट्टगण-  
मुस्सुसाए फलं पावेहि । (तथा । ससि त्यमन्वत देवसतरं सागुजनकुश्रुपायाः फलं प्राप्नुहि ।)  
[इति प्रसिप्ता ।]

मधुकरिका—सो, नीजू तो पास ही है । हाँ, यह तो बताओ कि वह जो दोनो नाट्या-  
पायों का झगडा चल रहा था उनमे से भगवतीमे किसे अच्छा बताया ।

समाहितिका—जो जो दोनो ही शास्त्रके पण्डित धोर अभिनयकसामे बहुर है पर  
गणदासमे अपनी शिष्या मासविकाको जैसा अच्छा बताया है उसे देख लेगेपर गणदास ही  
मास दोनों मे अच्छे ठहराए गए हैं ।

मधुकरिका—श्रीर कहो, ये मासविकाके सम्बन्धमें कौली-कौली बातें सुननेमें पा  
रही है ?

समाहितिका—हाँ, महाराज उसे चाहने तो बहुत लग गए हैं पर रानी धारिणीका मन  
रखनेके सिमे से छुमकर प्रेम नहीं दिखाताते । इधर इन दिनों मासविका भी पहनकर उठायी  
हुई मासवीकी मासके सभान मुम्हसाई जा रही है । अब इससे अधिक मैं कुछ नहीं  
जानती हूँ । अच्छा तो छुट्टी दो ।

मधुकरिका—हाँ, सो, यह ठासपर मूलतः हुआ नीजू तोडती ॥ जाओ ।

समाहितिका—अच्छ, [ नीजू तोडनेका अभिनय करके ] अच्छावतु करे सती ! साधुओंको  
ऐवा करनेवा तुम्हे इससे भी अच्छा फल मिले । [चलती है ।]

नपुंसकानां—हला शय् लेख्य मञ्जुम्ह । अद् वि इमस्त चिरात्प्रयाणकुसुमोगमस्त तवलोस-  
 सोमस्त दोहललितित्त वेवौए लिबेदेमि । (सखि ! समयेव मञ्जुम्हः प्रहृवप्यस्य चिरायमाणकुसुमोद्-  
 यस्त तपनीयाद्योक्तस्य दोहदनिमित्त देवं निवेदयामि ।)  
 समाहितिका—जुज्वद । ब्रह्मिमारो वधु तुद । (जुज्वले । प्रतिकार क्षनु तव ।)  
 [ इति निष्क्रान्ते ]

॥ इति प्रवेशकः ॥

[ ततः प्रविशति कामयमानावरुवो राजा विदूषकश्च । ]

राजा—[ वारमान विलोभव । ]

शरीरं चामं स्यादसति दयित्वालिक्ननसुखे  
 भवेन्मासं चक्षुः चक्षुमपि न सा दृश्यत इति ।  
 तथा सारङ्गाफया रमसि न कदाचिद्विरहितं  
 प्रसक्ते निर्वाणे हृदय परितापं व्रजसि किम् ॥१॥

विदूषक—सत भववो धोर उजिभ्रम चरिरेबिदेल विदु मय तस्यदोए मालविभाय विभलही  
 वजलतयसिभा । सुलाविवा म मय को भववा सदिदो । (प्रव भववो बोखायमिभया परिदेविनेन ।  
 इत्या मया तपनवया मालविभ्रम प्रियतसो वकुलावतिरा ( याविता पावं वो भवता इविदः । )  
 राजा—सत किमुक्तवतो ।

नपुंसक—सतो सतो । दोनों साथ ही चले । मुझे भी जबपर महारानीजीसे निवेदन  
 करता है कि यह सुनहा यथोक धमीरक फून ही नहीं रहा है, इसके फूलनेका कोई  
 वषाय किया जाना चाहिये ।  
 समाहितिका—ठीक ही है, तुम न बहोगो तो कौन कहेगा ?  
 [ दोनों बनी जाती है । ]

॥ प्रवेशकः ॥

[ विदूषकके साथ काम-पोष्टित चयस्वामे राजा बंटे दिसाई पड़े है । ]

राजा—[ अपनी धोर देखकर ] प्यारी को छालो न क्या पानेमे मेरे सरोरका सुखना भी  
 ठीक है धोर जे पन भरके बिये भी देख न पाने की चिन्तामे चाँसोका दरदबाए रहना भी  
 ठीक है, पर मेरे हृदय ! यह तो बताओ कि उस हरिखली छे फाँसोकासो धोर मेरा भी  
 उम्दा बन्देवासी प्यारीके उदा पास रहत हुए भी तुम क्यों इस प्रकार ब्रजे या  
 रहे हो ॥१॥

विदूषक—यह बपीर होकर रोजा-नसकना छोरिये । मैं मातृविकानो प्यारी सतो वकु-  
 लावतिकाते मिता या धोर पंने मारना पूरा सदेवा मुग्ध भी किया है ।  
 राजा—रुपर यह क्या बोली ?

विदूषक—विष्णुवायेहि भट्टारकम् । अनुग्रहोदम्हि इमिणा रिप्रोपण । किन्तु सा तवस्तिष्ठी  
वेयोए महिम् रवत्तभीए साभरविक्रयो विम रिहो ए सुहं समासावददव्या । तहपि अदरतं ।  
( विज्ञापय भट्टारकम् । अनुग्रहोतास्म्यनेन भियोगेन । किन्तु सा तवस्तिष्ठी देव्याधिर रक्षन्त्या  
सागरक्षित इव निधिनं सुख समासादयितव्या । तथापि यतिष्ये । )

राजा—भगवन् सकल्पयोने । प्रतिबन्धवत्स्वपि विप्लेव्यभिनियेष कि तथा ग्रहरसि यथा  
जानोऽयं न कालाग्रतरस्यो भवति । [ सविस्मयम् । ]

ॐ रुजा हृदयप्रमाथिनी क च ते विश्वसनीयमायुधम् ।  
मृदु तीक्ष्णतरं यदुच्यते तदिदं मनमय दृश्यते स्वयि ॥२॥

विदूषक.—ए भणामि तस्ति ताह्यिपणे किन्तो मए उवाचोवसेधो । ता पञ्जपरायवेदु  
भवं अण्णत्तं । ( ननु भणामि तस्विष्णुधनीये कार्ये कुतो मयोपायोपदोष । तत्पर्यवस्थाप्यदु  
प्रधानात्मानम् । )

राजा—अयेन विवसतोपमुचितव्यापारविपुत्तेन चेतसा एव नु एतु वापयामि ।

विदूषक—अत्र एव पदमावारमुह्यसि रत्तकुरयभाणि उपाधल वैसिन्न एववत्तापवार-  
व्यदेसेए इरावरीए रिउलिप्रामुहेए मयिदो भवं—इच्छामि अत्रमतेण सह बोलाहिरोहणं  
प्रच्छहियं त्ति । भवदा वि से परिष्ण्णत्त । ता पमदयलं एव पददम् । ( अदर प्रथमापत्तारगुगानि  
रत्तकुरवकाभुपायन प्रेष्य नभवत्त-सावतारव्यपदेसेनेरावत्या निपुणिकाभुनेन प्रापितो भवात्—इच्छा-  
म्यार्यपुनेण सह बोलाधिरोहणमनुभवितुमिति । भवताप्यस्य प्रतिज्ञातम् । तत्प्रमदवनमेव पददम् । )

विदूषक—उसने कहा—स्वामीसे निवेदन कर देना कि यह बाग चौपकर स्वामीने मुझपर  
बंदी हुआ भी है पर वह बेचारी महाराजकी बंसी ही कदी देख-देखने है बीधे सावकी देख देखने  
कोई निधि हो । इसनिधे यह सहजमे हाथ लगनेवाली नहीं है फिर भी मैं अतल बकूंगी ।

राजा—हे भगवान् कामदेव । पग पगपर बाधाबोले मरे हुए कारमें मुझे फँसाकर तुम  
मुझपर ऐसी चोटें क्यों किए जा रहे हो कि समय भी बाटे न बटे । [ अचरित्रके साथ ] हे  
कामदेव ! कहां तो एक घोर बीबी डाढ़स देनेवाला तुम्हारा बोधत फूँकोना पसुव घोर कहीं  
यह हृदयकी भी मध डालनेवाला प्रेमका रोग । यह बहाबत तुमपर तो पूरी पूरी पटती दिताई दे  
रही है कि जो जितने कोमल दिताई पढते हैं वे उतने ही बढते होते हैं ॥२॥

विदूषक— मैं कह तो रहा हूँ कि भापका मनोरथ पूरा करजका मैं सब उपाय कर पुरा हूँ  
इसनिधे भाप चिन्ता न कीजिए ।

राजा—अपने किसी काममें तो मेरा जी ही नहीं मग रहा है, इसनिधे यह तो उतापो कि  
भापका यह बधा हुआ दिन जिताया कहीं जाय ?

विदूषक—अरे सिके हुए सुहावने लाग करबबके फूलों भापने पास भेटने भेजकर राजी इरा-  
बतोंने भाज ही निपुणिकाके भूँहमे नये बन्सतके घानेवा बहाना सेजर बहनाया है कि मैं भाज  
घारंपुनके साथ झूमा झूजना पाहती हूँ, घोर भापने भी उनकी बात मानली है । इसनिधे पसिए-  
उपर प्रमदवनकी घोर ही बना जाय ।



राजा—न सममिदम् ।

विदूषक—कह विष । ( कणमिव । )

राजा—अपस्य निसर्गनिपुला स्त्रियः । कथमन्यसंकान्तहृदयमुपलासयन्तमपि ते सखी न मां सक्षयिष्यति । अतः पश्यामि ।

उचितः प्रणयो वरं विद्वन्तु बहवः स्वयङ्मनहेतवो हि दृष्टाः ।

उपचारविधिर्भनस्विनीनां न तु पूर्वाम्यधिकोऽपि भावशून्यः ॥३॥

विदूषक—हारिहरि भवं अन्तेऽरिद्वयं वक्षिष्ये एतदप्ये विदुषो काहुष । ( नार्हति भवान्तः-  
पुस्तियत दाक्षिण्यमेकपदे प्रकृतः कर्तुम् । )

राजा—[ विचिन्तय । ] केव हि प्रमदवचनार्थमावेक्षणम् ।

विदूषक—इदो इदो भवः । ( इव हतो भवान् । )

[ उभो अरिक्लमत्तः । ]

विदूषक—एवं प्रमदवचनं पश्यन्पश्यन्तार्हि पश्यन्पश्यन्तुसीहि तुवरेदि विष भवन्तं पश्येतिदुम् ।  
( नन्देतरप्रमदवचनं पश्यन्पश्यन्तार्हि पश्यन्पश्यन्तुमीतिरवयतीव भवतं प्रवेष्टुम् । )

राजा—[ स्पर्शं कथयित्वा ] अभिजातः जसु वसन्त । सते पश्य—

उन्मत्तानां श्रवणसुभयैः कूर्मितैः कोकिलानां

सासुक्रोशं मनमिजरुजः सद्यतां पृच्छतेव ।

अङ्गे चूतप्रसवसुरभिर्दक्षिणो मारुतो मे

सान्द्रस्पर्शः कर्तल इव व्यापृतो माधवेन ॥४॥

राजा—पर वहाँ चलना ठीक नहीं होगा ।

विदूषक—क्यों ?

राजा—देखो मित्र ! स्त्रियों स्वभावसे ही बड़ी चट होती हैं । वहाँ चलकर यदि मैं सखीके मनका नाम करने लूँ तो क्या वह माँव से देखी कि देखा मन कहीं प्रौर उलझता हुआ है ? इसलिये मैं समझता हूँ कि बहुत से इपर-उपरके बहाने बनाकर प्रेमकी उचित बात भी टाम जाना पण्डा है, पर चतुर स्त्रियोंके भागे बनावटी प्रेम दिखसाना पण्डा नहीं है ॥३॥

विदूषक—पर हम प्रचार रमिवावकी रमिबोके प्रेमका एकाएक निरादर करता भी तो ठीक नहीं होगा ।

राजा—[ तीचकर ] तो खलो । प्रमदवचनकी प्रौर ही से खलो ।

विदूषक—इपरसे भाइए देव ! इपरसे [ दोनों प्रुमते है ]

विदूषक—सीजिए, यह रहा प्रमदवचन । देखिए वासुदे हितते हुए बतोंकी उँगलियोंसे यह प्रमदवचन मानो झारकी बुला रहा है कि मटपट भीतर चले भाइए ।

राजा—[ वासुदेवके सुनकर नाट्य करते हुए ] उच्यते वक्ष्यते वा वदुवा है । देखो मित्र ! मत्तशमे कोकिलोंकी, वानकी सुझनेवाली कुबोमि मानो वसन्त ऋतु प्रुभयर बरी क्या दिखताते हुए यह पूछ रहा हो—क्यों प्रेमकी पीडा खली जा रही है ? इपर खिनी हुई मायकी मञ्जरियोंकी मन्ममें बसा हुआ दाँयाल वचन मेरे शरीरसे समता हुआ ऐसा जान पड़ता है मानो वसन्तने अपना धायन्त गुण देनेवाला हाथ मेरे ऊपर रख दिया हो ॥४॥

विष्णु गोदमन्थापलाशो दोतापरिष्कम्भट्टाए सखी मह चतखो । तुभं वाय बहुप्र तवलीप्राप्तोभस्त  
 वोहलं शिचट्टेहि ति । जइ सो पञ्चरत्नम्भन्तरे कुसुमं दसेदि तदो अहं अहिनापपुरदत्तधं पसारं  
 दावइसं ति । ता जाव विष्णोभूमि पदम यदा होमि दाव अणुपवं मह बलणालंकारहरपाए  
 यत्तलवलिप्राए प्राधन्त्य । ता परिदेवइसं ताव धीसईं मुहत्तमं । ( अविज्ञातहृदयं मतरिममि-  
 क्षणव्यारमनोऽपि तावत्त्वजे । कुनो विभव- स्त्रियस्य सखीजनस्येव वृत्तान्तमाख्यातुम् । न वानेऽ- )  
 प्रतिवारमुखा वेदना कियन्त बाल मदनी मा नेष्यतीति । आ कुय सतु प्रस्थितादिमि । पादिष्टास्मि  
 देव्या—मालविके गीतनचापनाहोवापरिध्रष्टायाः सखी मम चरणी । स्व तावदवस्था तपनीमासोकस्य  
 वोहद निर्वर्तंतेति । यद्यतो पञ्चरत्नाम्भन्तरे कुसुम अर्पयति ततोऽहमभिसापपुरदितुं प्रसाद शप-  
 विष्यामीति । तदावनिचोगभूमि प्रथम मता भवामि तावदनुपद मम अरणाचङ्कारहस्तया बहुसा-  
 धलिकपाऽगन्तव्यम् । तत्परिदेवविष्ये तावदित्यस्य मुहूर्तकम् ।

[ इति परिष्कामति । ]

विदूषक—[ इडा ] हो हो । अक्षस्त । एवं कतु सौहृपाशुष्येतिवस्त मन्त्रिष्वा उचरुवा ।  
 ( आश्रयंमाश्रयम् । वयस्य । एतन्ननु सोपुगानोहेतिवस्त मस्त्वष्टिकोपनता । )

राजा—अये ! किमेतत् ।

विदूषकः—एसा एादिपरिष्कदवेता ऊगुधधप्रणा एसाइली मालविद्या अदूरे वट्टि  
 ( एसा मासिपरिष्कदवेपोत्सुकवदनंकाविनी मासविकाऽदूरे वतंते । )

राजा—[ सहर्षम् ] कथं मालविका ।

विदूषकः—अह इं । ( अय विन् । )

शोक है । मुझसे देवी पारिष्कीने कहा है कि—मालविका ! बीसतके सटखटपनसे मैं भूमेसे गिर  
 पड़ी हूँ और मेरे दोनो पंरो मे खोट आगई है इधरिये तुम्हीं जाकर सुनहरे अडोकके फूलनेका उपाय  
 कर सामो । यदि पांच दिनोंके भीतर यह फूल उठेगा तो तुम्हें मुँह मीठा पुरस्कार दूँगी । मैं यहाँ  
 पहलेंसे ही पड़ी ब जाती हूँ क्योंकि अनुसारीनिका भी मेरे पीछे पीछे विष्णु लेकर आ रही होगी  
 जबतक मैं अकेले जी सरकर रो भी लूँगी ।

[ भ्रूभती है । ]

विदूषक—[ उसे देखकर ] हिः हिः ! [ भ्रूभती है । ] कैसे अचरजको वात है कि मित्र !  
 यदिपसे मगवाले मनुष्यको और अधिक सतवासा बनानेवासी कभी खीट भी आ पहुँची ।

राजा—अरे भौन-सी बरतु है ?

विदूषक—मह क्या पास ही धपगले कपड़े पहने मालविका अकेली उदास बैठी  
 हुई है ।

राजा—[ प्रहल्य होकर ] क्या मालविका है ?

विदूषक—भौर क्या ?

राजा — शक्यमिदानीं जीवितमवलम्बितुम् ।

त्वदुपलभ्य समीपगतां श्रियां हृदयमृच्छ्वसितं मम विवल्नम् ।

तरुवृतां पथिकस्य वलार्थिनः सरित्तमारसितादिव सारसात् ॥६॥”

अथ भव तत्र भवती ।

विदूषकः—एता तदराइमञ्जरावो लिखन्ता । इवो ज्वेद्य परिवृन्तो वीसइ । (एषा तदरा-  
नियम्पान्निष्क्रान्तेत एव परिवर्तमाना हस्यते ।)

राजा—[ विलोक्य सहर्षम् ] अथथ पश्याम्येषाम् ।

शिशुलं नितम्बदेशे मध्ये क्षामं समुन्नतं क्लृप्तपोः ।

अस्यायत्तं नयनयोर्मय जीवितमेतदायाति ॥७॥

सखे ! पूर्वस्नानादतिमनोहरायस्यान्तरमुपात्वा तत्रभवती । तथा हि—

शरकाण्डपाण्डु गण्डस्थलेयमाभाति परिमिताभरया ।

माधवपरिणतपत्रा कतिपयकुसुमेव कुन्दलता ॥८॥

विदूषकः—एता वि भवं विभ मप्रलम्बाहिसा परिमिटा भविस्सति । (एषापि भवानिव  
नवतन्त्राधिना परिमृष्टा भविष्यति ।)

राजा—सौहार्दमेवं पश्यति ।

मालविका—अन्नं सो ललिदसुखमालदोहतापेनको अणिहीवकुसुमणोवत्थो उक्लृष्टिवाए मह  
अण्णकरेहि असोओ । जाव एवस्त पण्णअसोरसे शिलापट्टए लिखण्ण अण्णालं विलोकेमि । (अथ स  
कालितकुसुमारवोद्दशापेशी अण्णहीतकुसुमनेपथ्य उत्कण्ठिताया मयाञ्जुकरोत्पसोकः । यावदस्य  
अण्णायसीतले शिलापट्टके विपण्णाल्माल विनोदयामि ।)

राजा—तत्र समझो कि धव मेरे प्राण यव जायेंगे । जैसे सारसका शब्द सुनकर प्यारे पथिकको  
भरोसा हो जाता है कि पेड़की छुर-मुटके पीछे कोई नदी होगी वैसे ही तुम्हारे मुँहस मह बाव  
सुनकर मेरे व्याकुल मनको बड़ा धीरज मिला है कि मालविका वास ही है ॥६॥ अच्छा वह  
है कहाँ ?

विदूषक—वह नया बुराके बीचसे होती हुई इधर ही जाती दिखाई दे रही है ।

राजा—[ देखकर प्रसन्नतासे ] देस रहा है भित्र ! यह बड़े-बड़े नितम्बोवाली, पतली कमरवाली,  
ठठे हुए स्तनवाली और बड़ी-बड़ी आँखीवाली मावो मेरी जान ही चली आ रही हो ॥७॥  
इसे जैसा मैंने पहले देखा था उससे कहीं बढ़कर सुन्दर तो यह अब लग रही है । ओर देखो—  
इने-विने भ्रातृपुत्र पहने हुए धीरे सरकटके समान पीछे आलोवालों यह सुन्दरो वेंसी ही दिखाई  
दे रही है जैसे वसंतसे पके हुए पत्तोंवाली किसी कुन्दलतासे इने-विने फूल बने रह गए हों ॥८॥

विदूषक—तो इन्हे भी आपके जैसा ही प्रेमका योग लग गया होगा ।

राजा—मित्रोको ऐसा ही मुझ करता है ।

मालविका—फूलोकी सजावटके सूना यह अशोक वृक्ष भी अपने मनकी गुहावनी ओर प्यारी  
धाव पूरी करानेके लिये मेरे ही समान अधीर हो रहा है । जो चरुँ तबतक इधरकी ठंठी धायके  
पलेःपरधरकी पटियापर बैठकर भी बहुधाऊँ ।

विदूषकः—सुखं भवता उषकच्छिदम्हि त्ति तत्तहोसो मन्तेरि । (धृतं भवता उत्कण्ठितास्मीति लज्जभवती मग्गवते ।)

राजा—नेतायता भवन्तं प्रसन्नतरुं मन्वे । कुतः—

घोडा कुस्वकरजसां किसलयपुटभेदशीकरानुगतः ।

अनिमित्तोत्कण्ठामपि जनयति मनसो मलयवातः ॥६॥

[मालविकोपविष्टा ।]

राजा—सखे ! इतस्तावदायां लज्जान्तरितो भवावः ।

विदूषकः—इरावदि विम भदूरे देकत्तामि । (इरावनीमिषादूरे प्रेले ।)

राजा—महि कमलिनो हृष्टवा प्राहमवेसते मतङ्गजः । [इति विलोकयन्निष्ठः ।]

मालविका—द्विषम लिखलम्बहादो भविसुमित्तिसुखो ते मणोरहादो विरम । किं मं प्राप्तासि । (हरम । निखलम्बनावतिभूमिसिक्तानो मनोरषाद्विरम । किं यामायास्य ।

[विदूषको राजानं वीक्षते ।]

राजा—प्रिये । मय वामत्वं स्नेहरम ।

धौस्तुक्यहेतुं विदूष्योपि न त्वं तस्यावयोर्धैरुफलो न तर्कः ।

तथापि रम्भोरु फरोमि लक्ष्यमात्मानमेपां परिदेवितानाम् ॥१०॥

विदूषकः—सर्वं भवदो लिखसत्तमं भविसखि । एषा अल्पिदमप्रलसवेता विचितो एं

विदूषक—तुना भावने ? वे कह रही है कि मैं बधीर हो रही हूँ ।

राजा—केवल इतनी-सी बातों में यह नहीं मान सकता कि तुम अकेल समझ गए हो । क्योंकि कुद्वरके परागमें बसा हुआ धोर लिली हुई कोपनाये जलकी बूँदें उड़ा से जानेवाला मतमका पवन बिना कारण ही मनमें चाह भर रहा है ॥६॥

[मालविका बैठ जाती है ।]

राजा—भामो मित्र ! वनो, हम सोच भी लताके पीछे छिप चलें ।

विदूषक—इरावतीजी भी अब प्रा ही रही होंगी ।

राजा—हापी मय कमलिनोको देख लेता है तब उसे जलमे छिपे हुए पड़ियाल नहीं घुभते हैं । [देखता रहता है]

मालविका—मरे हृदय ! तू ऐसी चाह क्यों करता है जिसपर न सो प्रपना कोई बरा ही है धीर न जहाँतक प्रपनी पहुँच ही है । मुझे सतानेमे तुझे मिल क्या रहा है ?

[विदूषक राजाकी धोर देखता है ।]

राजा—देखो प्यासी ! प्रेमकी जलती आल तो देखो । यद्यपि प्रमीतक तुमने प्रपनी व्याकुलताका कारण न तो सोसकर बताया धीर न अनुमानसे ही मुझे कुम्हारे नदकी ठीक ठीक पाह लग पा रही है फिर भी मैं तो यही समझ रहा हूँ कि तुम मेरे ही छिपे इतना रो-कसप रही हो ॥१०॥

विदूषक—प्रापना सदेह प्रमी दूर हुआ जाता है । सोबिष्ट, जिसके हाथ प्रापने सदेह

बहुलावलिप्रा उच्यते । (संपूर्णं मयतो निःशेषं भविष्यति । एवापितमदनसदेजा विविन्ते ननु बहुलावलिकोपस्थिता ।)

राजा—अपि इदरेवसावस्मदम्ययं नाम् ।

विदूषकः—किं दासि एसा दासोए दुहिता तुह गच्छं सर्वसं विमुमरेदि । अहं दास ए विमुमरेमि । (किमिदानोभेवा दास्या दुहिता तव गुरुकं संदेशं विस्मरति । अहं तावत्त विस्मरामि ।)

[प्रविश्य चरखानद्वारद्वस्ता बहुलावलिका ।]

बहुलावलिका—अपि सुहं सहीए । (अपि सुख सत्याः ।)

मासविका—अहो बहुलावलिप्रा उच्यते । हहि सामरं दे । उचयित । (अहो बहुलावलिकोपस्थिता । सति स्वागतं ते । उपविश ।)

बहुलावलिका—[उपविश्य] हला तुभं दासि भोगदाए स्थिता । ता एवकं दे कलए उच्येहि जाव सात्ततं सत्तुअं अ करेमि । (सति स्वनिदानो योग्यतया नियुक्ता । तस्मादेकं ते चरखमुपनय यावत्सालककं सत्तुअं अ करोमि ।)

मासविका—[आगतम्] हिअअ । अतं सुहिदाए उच्यते अहं विहयो । अहं दासि असाए मोक्षेअं । अहवा एव एव मे मित्तुमण्डलं भविस्तदि । (हृदय ! अतं सुहितया उपस्थितोऽयं विभवः । अर्पं वेदानोमात्मानं मोक्षयेयम् । अथवा एतदेव मे मृत्युपण्डनं भविष्यति ।)

बहुलावलिका—किं विचारैति । ऊसुप्रा अणु इमस्त तवलीप्रासोमस्त कुमुमोगमे देवी । (किं विचारयति । उत्सुका कल्पस्य उपनीयाकोऽस्य कुमुमोऽमे देवी ।)

राजा—अप्रमथोऽहोऽहनिमित्तोऽप्रमारब्धः ।

भेजा या यह बहुलावलिका भी यहाँ आकेलेमे उसके पास पहुँच गई है ।

राजा—पर उसे क्या हमारी बात खरख होगी ?

विदूषक—जब मैं तक नहीं पहुँच पाया हूँ, तब भला यह छोटी कही ऐसी भावश्यक बात पूछ सकती है ?

[पर सजामेकी सब सामग्री हाथमें लिए हुए बहुलावलिका आती है ।]

बहुलावलिका—कहो सखी, अच्छी तो हो ?

मासविका—अरे बहुलावलिका ! तुम आ गई स्वागत है सखी, आसो बैठो ।

बहुलावलिका—[बैठकर] सखी ! तुम्हें जो काम दिया गया है उसके लिये तुम्ही योग्य थी । साधो भयना एक पैर झर बहासो तो मैं उसमें महावर सबाकर बिचुए पहता हूँ ।

मासविका—[मन ही मन] अरे हृदय ! यह सम्मान देखकर बहुत पूजो मत । पर मैं इससे बच भी कैसे सकती हूँ । वह न कसूँ तो कही इसीसे देखा अन्तिय अिमार न हो जाय ।

बहुलावलिका—सोच क्या रही हो ? जानती हूँ, इस सुनहरे यशोकके पूजनके देवीको यही चिन्ता है ।

राजा—अच्छा तो गया यह सजामेक भयोके पूजनेके लिये की जा रही है ।

विदूषक—किं तु बभु ज्ञासति तुभं । पद्मं काललाते देवो मं भ्रन्ते उरलोपघनेण योज-  
इस्तदि त्ति । (किं तु बभु ज्ञासति त्वम् । मम कारलादेवोमामन्तःपुरलेपघ्येन योजयिष्यतीति ।)

मानविका—हता भस्तिहेहि दास्यं । (सति मयं न तावदेवम् ।) [इति पादनुग्रहरति ।]

बभुतापसिका—पद्मं सरोरसं त्ति मे । (धमि सरोरससि मे ।)

[इति नाट्येन चरन्तस्तस्कारमारभते ।]

राजा—

चरन्तान्तनिवेशितां प्रियायाः सरसां पश्य वयस्य रागलेखाम् ।

प्रथमामिव पल्लवप्रसृतिं हरदम्बस्य मनोमवद्रुमस्य ॥११॥

विदूषक.—चरन्त्यापुत्रयो ततकोटीयं प्रहिष्यते उर्वरिण्यतो । (चरन्त्यानुस्वस्तनमपराया  
पथिकार उपसिष्य ।)

राजा—सम्मयाह भवान् ।

नभस्किमलपरागेणोपपादेन धाला स्फुरितनरज्ज्वया द्वौ इन्तुमर्हत्पमेन ।

अकुत्तुमितमशोकं दोहदापेक्षया वाप्रथमितशिरमं वा कान्तमाद्रांपराधम् ॥१२॥

विदूषकः—पद्मिस्सति ततहोको मुयं उपवरद्म् । (प्रहरिष्यति तवभवतो त्वामपराधम् ।)

राजा—पुष्पां प्रसिगृहीत वचः सिद्धिर्दाम्बो ज्ञाह्यास्य ।

[ततः प्रविशति मुकुमवा इरावती बेटी ५ ।]

विदूषक—तो क्या आप सच कहेंगे कि महाशय्यादे मेरे लिये इहे रविवाचके सिंगारोंसे  
सनाया हौं ।

मानविका—तो सचो ! पर मुझे इसके लिये क्या करना । [पंर बाये करती है ।]

बभुतापसिका—वाह री ! तू कोई दुखी है । मैं तो मुझे अपनी देह-बैली ही प्यारी सम-  
झती हूँ । [पंर रंवेका शाय्य भरती है ।]

राजा—विज । प्यारीके पंरमें महाम्बरकी जो बीबी लकीरें बनी है वे ऐसी हिलाई पद्-  
खी हैं मानी महादेवकीके लोपसे नवे [ कामदेवके नृत्यमें नई-नई कोंपलें फूट पाई हो ॥११॥

विदूषक—प्यार नंसे इनके पंर है बीबा ही मय जो तो इन्हें शोष्य क्या है ।

राजा—यह तो शीघ्र कइ सुनने ! समबवाते हुए नखोंवासे प्यार नई कोंपलेंके पंजों-  
वाते इस सुन्दरीके नरए या ही कृपनेसे इच्छा करनेवाले द्य समझके धरकोपर पड़ने  
शोष्य है या प्रेममें समरथ करनेवाले शिर मुगह हुए पतिके शिरपर पड़ने योग्य है ॥१२॥

विदूषक—तो सच कहेंगे कि आप मो अपराध करेंगे तो बहो चरण धापदर मो  
पड़ेंगे ।

राजा—मनचाहा भविष्य भगनेवाने ज्ञाह्यलना धासोपार निरपाये ।

[बासीके बाव मरिध विप हुए रानी इरावती जाती है ५]

हरावती—हृज्जे लिखिए ! सुखोमि बहुतो बरो किल इतिथिभावहस्त वितितमण्डलं लि ।  
 मधि सखो एसो सोप्रवाओ । ( 'चेटि निपुणिके ! श्रुसोमि बहुसो मरः किल छीजनस्य विशेष-  
 मण्डनमिति । मधि सत्य एव शोकवादः ।

निपुणिका—पढमं भोधवाओ एव्य भञ्ज सखो संयुतो । ( प्रथमं शोकवाद एवाथ सत्यः  
 संयुतः । )

हरावती—असं मधि तिलेहेल । कहैहि कुदो दाएि भोममिदव्यं दोलाघरं पढमं गेओ  
 भटा ए वेत्ति । (अतं मधि स्नेहेन । कथय कुव हदनीमनवन्तव्यं दोलाघरं प्रथमं गतो मती  
 मं वेत्ति ।)

निपुणिका—भट्टिणीए भक्तिप्रदाओ पलमाओ । ( भट्टिन्या भक्तिप्रदातरणयात् । )

हरावती—असं 'सेवाए । भञ्जमयदं परिगाहिम भलाहि । ( अतं सेवया । भञ्जमयदो  
 परिग्रह मया । )

निपुणिका—असतोसयुवाघसलोलुकेल भञ्जमोदनेल कहिमं कुवरहु भट्टिणी लि ।  
 ( अतोसतोसयोपयनलोलुकेनार्यंगोतमेन कथितं स्वरता भट्टिनीति । )

हरावती—[ अलक्षणासहसं परिकल्प । ] हृज्जे ! मखेए किताममासं मताए भञ्जमसंख  
 वंसो हिमप्रं कुवरेवि । अलखा उल ख मह पसरन्ति । ( 'चेटि ! मदेन बलाभ्यमाजमाजमानार्य-  
 पुत्रस्य वसने हृदय स्वरवति चरली पुनरं मम प्रसरतः । )

निपुणिका—ए संपते 'मह दोलाघरं । ( मनु सप्रण्ये स्त्री दोलाघरम् । )

हरावती—लिखिए ! अलवजसो एव ॥ खोसदि । ( निपुणिके ! धार्यपुत्रोऽन न दृश्यते । )

निपुणिका—ए भट्टिणीए भोसोमहु । परिहाखलिमितं काहि वि अदिदंए भसुए

हरावती—निपुणिका ! मैं बहुत पुना करती हूँ कि यदिरा पीनेसे स्त्रियाँ बहुत सुन्दर लगने  
 लगती हैं । यह कहावत सच है क्या ?

निपुणिका—पहले तो यह कहावत ही थी, पर आज तो यह बात सच दिखाई दे रही है ।

हरावती—अस, अस । मूह-देखी मत कह । अच्छा यह बता कि यह पता कैसे चले कि  
 'स्वामी झूलेपरमे पहुँच गए हैं या नहीं ।

निपुणिका—भापका सखट प्रेम ही यह बता रहा है ।

हरावती—उत्तरसुहाती रहने दो ; सत्तो-चप्यो छोरकर सब-उप बता ।

निपुणिका—अन्तोखयकी पूजाकी मेठ पानेके लोगी धार्य गोतमने यह कहलाया है कि  
 'देवीको अटपट भेज दो ।

हरावती—[ मरने झूमकर चुपती हुई ] दासी ! अब इतना चढ़ गया है कि धार्यपुत्रको  
 देखनेकी प्रकृसाहट होनेपर भी मेरे घर आये नहीं अब रहे हैं ।

निपुणिका—सीजिए, झूलेपरमे तो भाप पहुँच गईं ।

हरावती—अरी निपुणिका ! धार्यपुत्र तो यहाँ कहीं दिखाई ही नहीं पड़ रहे हैं ।

निपुणिका—स्वामिसे देखिए स्वामिनी ! धार्यके किठोली करने के लिये स्वामी यहाँ फली

होवत्वं । अग्रे वि विप्रश्नुतदापरिविस्तृतं असोमसितनापट्टमं पवितामो । ( ननु भट्टिन्मवलोकयतु । परिवहाननिमित्तं कुत्राप्यदृष्टेन मर्ता भवितव्यम् । अथापि त्रियद्भुवतापरिक्षन्तमनोकसिसापट्टकं प्रविधाव । )

इरावती—तह । ( तथा । )

निपुणिका—[ विलोभ्य ] आसोमसु भट्टिणी ब्रूवद्भुकरं विचिन्वन्तीषुं पिपीत्सिर्पाहि वंसिदं । ( अथलोकयतु भट्टिनी ब्रूताद्भुकरं विचिन्वत्योः पिपीत्सिकामिदंष्टम् । )

इरावती—तह विद्य एवं । ( कथमिदम् । )

निपुणिका—एसा असोमपाददच्छात्राए मातृविकाए बडलावसिमा असणालंकारं शिष्यद्वैवि । ( एषाद्योक्ताशपण्ड्याया मातृविकाया उकुसायनिका चरणान्कार निर्वर्तयति । )

इरावती—[ शब्दा रूपवित्वा ] अमूमो इअ मातृविकाए ! कर्हं एत्थं तद्धंति । ( अमूमिरियं मातृविकाया । कथमत्र तर्कयति । )

निपुणिका—तद्धंति बोलापरिभ्रमसिदाए ससमचलणए देवीए असोमदोहलाहिभारे मातृविका शिष्यसेसि । अणह्हा कर्हं देवी सधं यारिसंलुवरजुमलं परिभणसस अममज्जाणिससि । ( तर्कयामि बोलापरिभ्रम्या ससमचलणया देव्याऽनोकदोहदाधिकारे मातृविका निपुण्येति । अन्यथा कथं देवी स्वयं धारितं नूपुरयुगलं परिवहनस्याभ्यनुज्ञास्यति । )

इरावती—महती बभु से संभावणा । ( महती अन्वयस्याः सम्भावना । )

निपुणिका—किं त्वा अण्णोसीअरि भट्टा । ( किं त्वान्विष्यते भर्ता । )

छिने बँडे हँवि । बाहए, हम लोग भी त्रियगुके लता मरुपमें चलकर असोकके तले परपरकी पटियापर बैठें ।

इरावती—ठीक है ।

निपुणिका—[ देखकर ] देखिए तो स्वामिनी ! हम चली भी आपकी कोंपलें बैठने और काट लिया कीटियेनि ।

इरावती—कैसे ?

निपुणिका—देखिए न । यहाँ बकुलावसिका, असोककी छाया में बैठी हुई मातृविकाके पूर रँग रही है ।

इरावती—[ कुछ सन्देह करके ] मातृविका तो इपर जाने नहीं पातो, भाव क्या बात ही गई है ?

निपुणिका—मैं समझती हूँ कि मूलेपरले बिर जानेके कारण महारानीके वरोंमें थोटा धा गई है इसलिये अशोकके फूलनेके लिये उसपर जात मारनेका काम मातृविकाको ही छोपा गया होगा । नहीं तो क्या महारानी कगो अपने वरके विषुए उठारकर अपनी दातियोंको पहननेके लिये मत्ता दे सकती हैं ?

इरावती—हाँ, हो न हो यही बात है ।

निपुणिका—तो क्या महाराजको न दूँडिया ?



इरावती—हला ए मे चलसा अण्णवो पवहन्ति । मदी मंविमारेवि । मासञ्चिरस्त दाव भन्त ममिस्तं । [ मासविका विवण्णं । निरुप्यात्सगतम् । ] ठाए वणु कातरं मे हिमम । ( सखि ! न मे चरणावन्वतः प्रवर्तते । मदी मां विकारयति । मासञ्चित्तस्म तावदात्तं ममिप्यामि । स्थाने अणु कातरं मे हृदयम् । )

बहुभाविका—[ मासविकार्यं परणं दक्षयन्ती । ] अवि रोमदि दे रामरेहादिण्णसो । ( अवि रोचते ते रामरेखाविन्यासः । )

मासविका—हला ! अराखो भत्तखं छि सज्जेमि खं पत्तंसिनुं । केण प्पवाहणकलाए महिणी-साति । ( सखि ! पारमनाअरण इति लज्जे एवं प्रवृत्तितुम् । केन प्रवायनकलापामभिनीतासि । )

बहुभाविका—एथ वणु भत्तुखो सोसम्हि । ( अथ अणु भर्तुः जिप्यासिम् । )

विदूषकः—दुपरेहि दाव खं मुदवमिस्तसाए । ( स्वरय तावदेना मुदवदिशार्यम् । )

मासविका—विट्ठिणा ख ममिबसाति । ( दिष्ट्या न गवितासि । )

बहुभाविका—अवदेताशुखा चलसा मम्मिअ अण्ण दाव यण्णिदा भविस्तं । [ यणं विणोदपारगतम् ] हन्त सिद्धो मे दण्णो । [ प्रकाशम् ] सखि एहस्त दे चलणस्त अण्णसिरो राण्णिसिरो । केवणं मुहमावरो लम्भारण्णो । अहवा पकारं एवं ठाए । ( अवदेताशुखी चरणी लम्भदाय तावद्वगविता भविष्यामि । हन्त सिद्धो मे दणः । सखि एकस्य ते चरणभ्यावसितो प्रागदिशेयः । केवणं मुहमाण्णो लम्भयितव्यः । अथवा प्रवावमेवरास्वानम् । )

राजा—सखे पश्य ।

आर्द्रालक्तकमस्याञ्चरणं मुखमारुतेन शोषयितुम् ।

इरावती—सखी, मेरे पैर हो धामे नहीं बट रहे हैं । एयर मय भी मुझे देहाल किए डाल रहा है, पर मेरे मनमे जो लटकन बँट गया है, यह तो बिटाना ही होया । [ मासविकाको देखकर और समझकर मन ही मन ] अ-ही सब बातें तो मेरा जो जल जाता है ।

बहुभाविका—[ मासविकाको उसका रंग हृष्या पैर दिखताओ है । ] कही महारानी रंगई तुझे प्रकळी लगी ?

मासविका—सखी ! अपने पैरकी प्रशंसा करते मुझे खान लगती है पर यह तो बताओ कि इतनी बढ़िया सिगारकी कत्ता तुम्हें सिखाई है किमने ?

बहुभाविका—भरो ! यह कत्ता तो मेने स्वयं महाराजसे सीखी है ।

विदूषक—जादू जादू, अण्णटकर इससे मुदवदिश्या तो मांय खीयिए ।

मासविका—अड़ी भावनाए हो कि इतनेपर भी तुम्हें अण्णिमान खू तक नहीं गया है ।

बहुभाविका—पर मेने जो कुछ सोखा है खैरी कला विल्लवानेके योग्य तुम्हारे चरण पाकर भाज तो मुझे प्रकश्य अण्णिमान हो रहा है । [ रंगईको देखकर मन ही मन ] वाह भाज ही तो मेरा अण्णिमान सधा हुआ है । [ प्रकट ] खो सखी ! तुम्हारा एक पैर तो रंग मया है मय रहे मुँहसे फूँककर खुशाना भर रह गया है, पर यहाँ तो बयार भी बस रही है ।

राजा—देखो मित्र ! गीसे महारजसे रवि हुए इसके पैरको खूँहकी फूँकसे सुभाकर इसकी

प्रतिपन्नः प्रथमतरः संप्रति सेवावकाशो मे ॥१३॥ ।

विदूषक—कुवी के प्रशस्तमो : एद भवदा चिरकमेण प्रशस्तविदम्ब । ( कुतस्तेऽनुशय । एतावद्भुवता चिरकमेणानुभवितम्बम् । )

बहुलावतिका—सहि ! प्रकलसतपत विप्र सोहदि दे पलख । सव्वहा भत्तुणो बद्धपरिष-  
ट्टिणो होहि । ( सधि प्रकलसतपतमिव धोमते ते चरखम् । सव्वंहा भर्तुरद्धपरिवतिनी मव । )

[ इरावती निपुणिकागमनेसते । ]

राजा—ममेदमागो ।

मालविका—हता वा अयमस्मीम भन्तेहि । ( सधि वा भवचनीय मन्त्रयस्व । )

बहुलावतिका—मन्तददस्य एव्य मगित्तद मए । ( मन्त्रयित्तव्यमेव मन्त्रित मया । )

मालविका—विप्रा वधु अह सव । ( प्रिया खखह तव । )

बहुलावतिका—ए केवल मह । ( न केवल मम । )

मालविका—कस वा अण्णस्स । ( कस्य वाग्यस्य । )

बहुलावतिका—मुण्णेषु अहिण्णिकेसणो भत्तुणो णि । ( मुण्णेष्वग्निवैसिनो भर्तुरपि । )

मालविका—अग्निम म तेसि । एद एव्व मइ खरिय । ( भलीक मग्गयसे । एतवेव मधि  
मासि । )

बहुलावतिका—सव सुद खरिय । भत्तुणो कित्तेणु सुन्दरपाण्डरेणु थोसद मग्गेणु । ( सव्य  
रमि मासि । मत्तं क्खेणु सुन्दरपाण्डरेणु हस्यतेऽङ्गणु । )

निपुणिका—पढम मखिव विप्र ह्हासए उत्तर । ( प्रथम परिणतमिव ह्हासाया उत्तरम् । )

सेवा करणका यह सबसे अच्छा अवसर मेरे हाथ लगा है ॥१३॥

विदूषक—टो पछतापे क्यों है ? आपके बहुत दिनोंतक ऐसी सेवा करनेको मिलेगी ।

बहुलावतिका—धरी सकी ! तेरा धर तो सात कमलके समान खिल। पर रहा है । मैं तो  
मनाती हूँ कि तू सदा महाराजकी गोदमे ही सेतो रहे ।

[ इरावती निपुणिकाको धीर देखतो है । ]

राजा—मैं भी वही भासीवादि दता हूँ ।

मालविका—सही ! ऐसी बे सिरपेरको बातें न कहा करो ।

बहुलावतिका—जो नहना चाहिए वही तो मैं कह रही हूँ ।

मालविका—मैं मुझारी प्याधि हूँ न ? इठीमिये ।

बहुलावतिका—केवल मेरी हूे नहीं ।

मालविका—धीर दूधरे किठीयो ।

बहुलावतिका—तेरे गुल्लोर रीके हुए महाराजकी नी ।

मालविका—तू नूठ बहती है । मुझरे जनरा खनिक धी प्रेम नहीं है ।

बहुलावतिका—हैं तपमुच तुमपर तो नहीं, पर महाराजके दुबंस, पीसे सुन्दर अंगोंपर वह  
प्रेम अमन्य दिखाई दता है ।

निपुणिका—इस खोटीन एसा उत्तर दिया है याना पहलसे ही छोने नंटी हो ।

मकुलावतिका—अच्छरामी अच्छरामस परिकितारव्यो त्ति सुप्रखण्डसखं यमालीकरेहि ।  
(अनुरागोऽनुरागेण परीक्षितव्य इति मुपनवपन प्रमाखोक्तुः ।)

मातविका—किं अस्तखो खन्नेख मग्नेति (किंमात्पनरखन्देन मन्वयति ।)

मकुलावतिका—खहि खहि । मत्खणो यणु एवाइं परणमिदुसाइं अखणराइं वतन्तरि-  
साइं । (महि नहि । मर्तुः कस्येतानि प्रखययुदुमाव्यखरखि मन्वन्तरिखानि ।)

मातविका—हता ! देवीं खन्तिम ख मे हिममं विस्ततदि । (खधि ! देवी विन्तदिखा न मे  
हृपय विखदिति ।)

मकुलावतिका—मुठे ! अमरसंपावो भविस्त्रदि त्ति वसन्ताववारसख्यसं किं ■ वृदम्पसवो  
भौदंसिखवो । (मुये ! अमरसंपावो मविण्यतीति वसन्ताववारसखंस्व किं न पूतप्रसवोऽवदधि-  
लम्पः ।)

मातविका—मुभं वाम कुञ्जावे मख्यतस्त सहायिणी होहि । (त्वं तावद् वुजति । मख्यतः  
सहायिनी भव ।)

मकुलावतिका—मिमहृपुरी सखसावलिखा यणु धहं । (विपईदुरभिवंकुलावतिका  
कल्पहृद् ।)

राजा—तामु मकुलावतिके साधु ।

मावज्ञानानन्तरं प्रस्तुतेन प्रत्याख्यते दक्षयुक्तोत्तरेख ।

वाक्येनेर्यं स्थापिता स्वे निदेशे स्थाने प्राणाः कामिनां दुत्पधीनाः ॥१४॥

मकुलावतिका—अच्छा सखमोकी एक वात खी तुम मान खी कि प्रेमकी परीक्षा प्रेमसे  
ही होती है ।

मातविका—क्या यह सब अपने मनसे बढती जा रही हो ?

मकुलावतिका—नही अपने मनसे नहीं । ये प्रेमभरे कामस अक्षर स्वयं महाराजने अपने  
मुखसे कहे हैं ।

मातविका—पर सखी ! उधर सहाराणीका व्यवहार देखती हैं तो सारी प्राणा ठडी पड़  
जाती है ।

मकुलावतिका—धरी वनधी । क्या बीरीके डरसे लोग अपने कामेनि वसन्तकी रानी  
वनी हूई मानकी मजरीकी पहने हो नहीं ?

मातविका—मुझपर कोई निपटा आवे तो तुम मुझे छोड़ न देना ।

मकुलावतिका—धरी मेरा जो नाम ही मकुलावतिका है । मैं तो जितनी ही अधिक  
मगली जाऊंगी उतनी ही अधिक मन्व दूंगी ।

राजा—वाह री मकुलावतिका वाह—इस समय इसके मनकी ठीक-ठीक पाह ले लेनेपर  
खी मेरे प्रेमका प्रस्ताव करके धीर इसके नहीं नहीं करनेपर भी इसे जोड़-तोड़का उत्तर  
देकर खी तुमने ह्ये पड़ा कर लिया है इससे मुझे विश्वास हो गया कि खचमुच प्रेमियोंके प्राण  
पूरियोंकी ही मुट्टीमे रहते हैं ॥१४॥

हरावती—हृदये ! पेवत्त कारित्व एव्य वटलावलिप्राए एवांसा पदु मालविद्याए । (यत्ति । पदय मारितमेव वकुलावलिर्कर्मतस्मिन्पव मालविकाया ।)

विपुत्रिका—भट्टिहि ! महिप्रारस्स उददो उववेसो । (मट्टिनि । अघिकाररपोवित्त उप-  
देस ।)

हरावती—ठाए क्खु सक्कि मे हिप्रस । यहीवत्था अएण्तर चित्तइस्स । (स्पाने अणु  
सक्कि मे ह्वयम् । सुहीतापान्तर चित्तमिष्णामि ।)

बकुलावलिका—एसो दुवीधो वि दे सिव्वुत्तपरिकम्भा चललो । जाव ए सएण्ण करेमि ।  
[इति नाट्येन वृत्तवृत्तनामुच्य ।] हवा ! उट्टेहि । अतोमविभासइस्सम वेधोए रिमोअ  
अएण्णिव्व । (एव द्वितीयोऽपि ते निवृत्तपरिकर्मा चरत् । पाचदेन सवपुर करोमि । इत्था उचित्त ।  
अशोकविकासविदुक् देष्पा वियोगपणुतिष्ठ ।)

[उभे उचित्तुत्त ।]

हरावती—सुदो देवीए सिम्मोमो । हेतु दासि । (युतो देव्या वियोग भवत्स्विदानीम् ।)

बकुलावलिका—एसो उवाण्णदराओ उममोअवत्तमो पुरदो दे अट्टइ । (एव उवाण्णराग  
अपमोअक्षम पुरतस्ते वतते ।)

मालविका—[सहृदम्] किं अट्टा । (किं भर्ता ।)

बकुलावलिका—[सस्मितम्] ए राव अट्टा । एसो अतोअसाहावत्तम्भी पत्तव-  
णुत्तमो । ओरसेहि ए । (न तावद्भर्ता । एपोऽशोकसाहावत्तम्भी पत्तवणुत्तम् । प्रयत्तसर्वम् ।)

[मालविका विषाद नाटयति ।]

विदूषक—सुद भवदा । (धुत्त भवता ।)

हरावती—देख लखी ! मालविकाको इतना सम्मान इस बकुलावलिकाने ही बिलाया है ।

विपुत्रिका—स्वामिनी ! इसे जसा विद्याया यथा होया वैसा ही तो कर रही है ।

हरावती—मुझ जो छटक या वह सब सब ही निकला । सब बातोंका ठीक ठीक ब्योप  
लेकर मैं इसका उपाय सोचूंगी ।

बकुलावलिका—तो तुम्हारा दूसरा पैर भी रँग गया । नाचो इसमें भी बिजुए पहना  
दूँ । [दानो बिजुए पहनानेका नाट्य करती है ।] अब उठो लखी ! महाराजने अशोकके फूलनेके  
लिये जो काम तुम्हें बोला है वह पूरा कर लखो [दोनों उठ सती होती हैं ।]

हरावती—तुमने महाराजकीया काम तुम सिधा न ! अच्छा इसे हो जाने दो ।

बकुलावलिका—सो, यह सब रगसे भर और आनन्द सूटने योग्य तुम्हारे धागे ही तो है ।

मालविका—[प्रसन्न होकर] कौन महाराज ?

बकुलावलिका—[मुसकुराकर] अरे महाराज नहीं । यह अशोककी साक्षामें छटकनेवाले  
पत्तोंका बुझा ! सो इसे जानोपर सजा दो ।

[मालविका दुखी होती है ।]

विदूषक—सुना आपने ।

राजा—सखे ! पर्याप्तमेतावता कार्मिनाम् ।

अनातुरोत्कथिततयोः प्रसिद्धयता समागमेनापि रतिर्न मां प्रति ।

( १ ) परस्परप्राप्तिनिराशयोर्वरं शरीरनाशोऽपि समानुरागयोः ॥१५॥

[ मातृशिक्षा रचितपत्न्यवतसा पादमञ्जोकाय प्रद्विष्टोति । ]

? राजा—वयस्य !

आदाय कर्णकिसलयमस्मादियमत्र चरणमर्पयति ।

उभयोः सदृशविनिमयादात्मानं वञ्चितं मन्ये ॥१६॥

\* बहुलावलिता—हला ! [ रिये देसो । रिगानुखो परं प्रसोप्रो जद कुमुभोऽग्नेदमभरो भवे जो दे वसएसह्वारं लम्भिष । ( मलि नास्ति ते जेवः । निर्नुखोऽपमलोको यदि कुमुभोऽग्नेदमभरो भवेत् यस्तोचरएसत्कार लम्भा । )

राजा—

अनेन तनुमध्या मुखरनूपुराराविद्या

नवाम्बुरुहकोमलेन चरणेन संभावितः ।

अशोक यदि सद्य एव मुकुलैर्न संपत्स्यसे

पृथा गृहसि दोहदं ललितकामिसाधारणम् ॥१७॥

सखे ! वचनानुसरणपूर्वकं प्रवेष्टुमिच्छामि ।

राजा—मित्र ! प्रेमियोंके लिये इतना भी बहुत है । देखो ! जहाँ एक मिलनके लिये व्याकुल हो और दूसरा मिलना ही न चाहता हो वहाँ उनका मिलना न मिलना बराबर है । पर जहाँ दोनों मिलनके लिये मधीर हो और दोनों एक दूसरेके मिलनके श्राव भी बैठे हों वहाँ प्राण भी दे देना पड़े तो बुरा नहीं है ॥१५॥

[ मातृशिक्षा वसोका मुख्या कानपर सटकाकर अशोकपर लाल जमाती है । ]

राजा—मित्र ! देखो इसने अपने कानोपर सनानेके लिये जो अशोकसे पत्तें लिए हो उसने बदलेमें इसने अपना पत्नी-जैसा चरण भी उठे बैठे दे दिया । इन दोनोंमें एक जैसी बरतुका बदला-बदला करके मुझे तो छत्रमुख कहोका न छोडा क्योंकि अन्न में इसने इस प्रकार प्रेमकी वस्तुमोकी बदला-बदली कैसे कर पाऊँगा ॥१६॥

बहुलावलिता—सखी ! यदि तुम्हारे चरणोंकी पूजा पाकर भी यह अशोक न फुले तो इसमें तुम्हें दोष नहीं लगेगा परन अशोक ही निकम्मा समझ जायगा ।

राजा—एच पठसो कभरवासी सुन्दरीका जो नये कभरके समान कोमल चरण विजुमोकी मंकारसे गूँज रहा है, उससे भावर पाकर भी यदि तुममें कविर्षा न फूट धाँदं खो मैं यही समझूँगा कि सुन्दरीकी लातसे फूल उठनेकी जो चाह मरत प्रेमियोंके मनमें होती है यह तुम्हारे मनमें स्थिर ही उरपन्न हुई ॥१७॥ मित्र ! हम लोगोंकी कोई बात चले तो हम यी श्रावे बढ पत्तें ।

विदूषक—एहि। एं परिहासइस्तं । (एहि एना परिहासविष्यामि ।)

[उभौ प्रवेशं कुरुतः ।]

निपुणिका—मट्टिणि मट्टिणि । मट्टा एतय पबिसवि । (मट्टिनि मट्टिनि । मर्ताऽत्र प्रविशति इरावती—इदं मय पदमं चिन्तितं हिमणसु । (एतन्मय प्रथमं चिन्तितं हृदयेन)

विदूषकः—[उपेत्य] भोदि । जुतं खाम भतहोवि पिप्रवप्रस्तो अयं भतोभो एं वामपात तावितं । (भवति । युक्त नाम अत्रभवति प्रियवपस्योऽयमशोको ननु वामपादेन तावयितुम् ।)

उभे—[सहप्रयत्नं] अम्हो मट्टा । (महो मर्ता ।)

विदूषक—अरत्तावतिण । गहोवायाए तुइ अतहोवो ईरिसं अविणमं करन्ती कोस लिधारिवा । (बहुनाशक्तिके । इहोत्तार्येवा स्वपानप्रवतीहयमविनयं कुर्वन्ती करवान् निवारिता

[मातृविका अय रूपयति ।]

निपुणिका—मट्टिणि येवत । कि पवरीं अम्हयोरमेण । (मट्टिनि । पश्य । कि प्रवृत्तम गीतमेव ।)

इरावती—वर्हं वतु यत्तुवाणु अम्होहा जीविस्तवि । (कथं सतु इहप्रभुदग्गया जीविष्यति

बहुभाषिनिवा—अम्ह ! एसा देवीए लिप्रोचं अम्हविदुदि । एदस्ति अविहमे परवती इ पत्तीरतु भददा । (आयं ! एसा देव्याः निवोगपनुतिष्यति । एतस्मिन्वृत्तिकमे परवतीयम् । प्रथं मर्ता ।) [इत्यात्मना सहैना प्रसिषात्तयति ।]

विदूषक—आइय । मी इते जय देवता हू न ।

[दोनों घामे बक्ते हैं ।]

निपुणिका—स्वामिनी ! स्वामिनी ! महाराज या रहे हैं ।

इरावती—मह लो मैं पहले ही छाह गई थी ।

विदूषक—[पाठ जाकर] बहिए देवी । क्या हमारे ध्यारे मित्र प्रलोकपर अपनी बाईं जमाकर घापने कीईं अम्हो काम विद्या है ?

दोनों—[पत्राकर] धरे ! महाराज !

विदूषक—क्यों खुलावमिका ! सब-कुछ जान-बूझकर भी तुमने इन्हें ऐसी दिठाईं क रोना क्यों नहीं ?

[पानविका अनेकान्नाय्य करतो है ।]

निपुणिका—स्वामिनी ! घापने कायं गीतमकी खान देवो ?

इरावती—ऐसा न करे तो इस बँसनीटिका पेट कैसे पले ।

बहुभाषिनिवा—घायं ! यह महाराजकी धाम्माका पामन ही हो रहा है । इसीतिथे ऐसी दिठाईं करनेसे परवच थो । महाराज समा करें ।

[घापने काय पानविकारको भी उनके पँरोसिं भुजाती है ।]

राजा—यद्येवमनपराधाति । उत्तिष्ठ भद्रे । [ हस्तेन भृहीत्वेनामुखापवति । ]

विदूषकः—जुज्जइ देवी एत्थमाएददग्घा । ( मुग्घते देव्यन्न मानपित्त्या । )

राजा—[ बिहस्य ]

किसलयमृदोर्विलासिनि कठिने निहतस्य पादपस्कन्धे ।

चरणस्य न ते बाधा संप्रति वामोरु वामस्य ॥१८॥

[ मासविद्य सज्जा नाटयति । ]

हरावती—महो एवएहीदकप्पहिअमो घण्णजसो । ( महो मयनोउरुत्पहृदय प्रार्थयुव । )

मासविका—अज्जावलिए । एहि । अणुद्धिअ अत्तणो एिअोअ देवीए एिअेदेग्घु ।

( बकुलावलिके ! एहि । अनुहितमात्मनो निबोध देव्यं निवेदयाव । )

बकुलावतिका—विण्णामेहि म्हाए पित्तज्जेहि त्ति । ( विहापय भर्तारं विशर्जयति । )

राजा—भद्रे धास्सति । अम तावहुत्पग्गावत्तरमार्थात्थं अ्यताम् ।

बकुलावतिका—अयत्तिवा सुत्ताहि । आएवेदु म्हा । ( भवहिता मृणु । आशापमदु भर्ता । )

राजा—

धृतिपुष्पमयमपि जनो बध्नाति न तादृशं चिरात्प्रभृति ।

स्पर्शासृतेन पूरय दोहदमस्याप्यनन्यरुचेः ॥१९॥

राजा—अच्छ, यह बात है वो कोई दोष नहीं । उठो भद्रे [ हाथके एकदकर मासविकाको चढाता है । ]

विदूषक—ठीक है, महाराजकी बात तो माननी ही चाहिए थी ।

राजा—[ देखकर ] क्यों पित्तगिनी ! तुम्हारा यह पत्तोके समान कीमल कीर्त्तों पर मसोरूपर मगमसे कही दुखने तो नहीं सवा है ? ॥१८॥

[ मासविका सज्जामेका नाट्य करती है । ]

हरावती—वाह, इस समय प्रार्थयुवका हृदय मयसज्जके सधान कीमल बन गया है ।

मासविका—माषी बकुलावतिका । महाराजकी सूचना दे प्रार्थे कि आपकी आशा पूरी कर दी गई है ।

बकुलावतिका—पहले महाराजसे तो यह प्रार्थना करो कि वे मुझे छोड दें ।

राजा—तुम जा सकती हो भद्रे । पर एक बात मेरी सुनती बाधो ।

बकुलावतिका—देखो, ध्यान देकर सुनो । हाँ महाराज ! आशा कीजिए ।

राजा—देखो सुन्दरी ! बहुत दिनोंसे इसी मसोरके समान ही मुझमें मो वीरजके फूल नहीं आ रहे हैं । इसलिये मुझे छोडकर और किसीसे प्रेम न करनेवासे मुझ सेबकके मनकी साथ भी अपने स्पर्शका अमृत पिलाकर आज तुम पूरी पर दो ॥१९॥

इरावती—[सहस्रोपसृत्य] पूरेहि पूरेहि । असोप्रो कुसुमं स दसेदि । अयं उख पुष्पदि एव ।  
( पूरय पूरय । असोकः कुसुमं न दर्शयति । अयं पुनः पुष्पत्वेव । )

[ सर्वे इरावतीं दृष्ट्वा सभ्रान्ताः । ]

राजा—[अपवर्ग] ययस्य । का प्रतिपत्तिरत्र ।

विदूषकः—किं अयं । जह्वावत् एव । ( किमन्यत् । जह्वावत्मेव । )

इरावती—अललावतिम् । तुण्णं साह उक्कन्तं । दाणिं सफलम्भरणं करेहि अज्जउत्तं ।  
( सकुमादलिके । एवमा सापुपकावत् इवानीं सफलाभ्यधिन् कुर्वायंपुत्रम् । )

सोमे—एसोददु भद्रिणी । कासो अन्हे भसुखो वल्लभपरिग्रहस्स । ( प्रसोददु भद्रिणी । के  
भावां भर्तुः प्रणयपरिग्रहस्य । ) [ इति निष्क्रान्ते । ]

इरावती—अविस्सलसोभा धुरित्ता । अन्तसो अञ्जलवपसं वमाखोकरिअ भादिअताए वाहू-  
अण्णोदगहीवभिसाए विअ हरिखोए एवं स विण्णारवं मए । ( अविश्वसनीयाः पुत्र्याः । आसपनी  
अञ्जनावचनं प्रनाणीकरयान्तिव्या व्यापजनगोतगृहीतचित्तयैव हरिण्यैतन्ना विशात मया । )

विदूषकः—[जनान्तिकम्] सो पश्चिपजेहि किपि उत्तरम् । अम्मगहीदेण वि कुम्भीसएण  
संघिच्छेदे तिअिअ सोमिअ ति वत्तय्वं होरि । ( सो प्रतिपद्यस्व किमप्युत्तरम् । कर्मगृहीतैनापि  
कुम्भीलकेन सघिच्छेदे तिअिताभवीति वत्तय्वं भवति । )

राजा—सुन्दरि ! न मे आसविख्या कथिअर्यं । मया त्वं अिरपसीति यथाकथंअिवात्मा  
विनीयिता ।

इरावती—[सहसा भागे बहकर] हाँ हाँ पूरी करो, पूरी करो । असोकमे अभी फूल नहीं  
आए हैं पर ये तो अभीसे फूले जा रहे हैं ।

[ इरावतीको देखकर सब चकरा पाते हैं । ]

राजा—[अलग] बहो मित्र ! अब क्या किया जाय ।

विदूषक—धोर क्या किया जायगा ! पहिले पैंरीका सहाय लिया जाय (भाग चला जाय ।)

इरावती—बयौरी अनुभाविका ! यह तुने अच्छ काम लिया है ? जा, अद कर न भाय-  
पुचरी साथ पूरी !

सोनी—सोप न बीजिए महारानी ! अन्ना हम कोन होती हैं महाराजकी साथ पूरी करनेवाली ।  
[ दोनों अभी जाती हैं । ]

इरावती—सचमुच पुष्पोंका कोई विश्वास नहीं है । मैं क्या आदती थी कि जैसे व्यापके भीत  
सुन्दर हरिणी सब सुप-सुप सोकर आसमें फंस जाती है वैसे ही मैं भी इनको चिकनी-  
पुचरी बातोंपर विश्वास करके इनके पन्देमें फँस जाऊँगी ।

विदूषक—[अलग] मनी, तुण्णं तो साह बटाइए । धोरी करते हुए पकड़ा हुआ धोर भी  
यह कह देता है कि मैं धोरी करनेके लिये अब नहीं लगा रहा था परन्तु यह देखना चाहता था कि  
मैंने भीत फोड़नेकी बिद्या ठीक ठीक सीख पाई है या नहीं ।

राजा—सुन्दरी ! मालविखासे हम क्या भेदा-देना है । तुम्हारे मानमें देर हो रही थी इसलिये  
पोड़ा बहुत थोड़ा बहसा रहे ये ।



हरावती—विस्तसखीप्रोति । ए भए विष्णुखं ईरिसं विणोदमुत्तं अज्जउत्तेण उवलद्ध ति । अणुहा बुबलमाइएोम् एम्भं ख करोमदि । ( विस्वसनीयोऽसि । त भया विज्ञातईहन तिनोदवृत्तान्तप्रार्थनोपलब्ध इति । अन्यथा दुःखमागिष्येवं न क्रियते । )

विदूषक.—भा बाब अतमोरो रक्किअणुस्स उवरोहं करेहि । समावदिट्टेण वेवोए परिचारिददियिआजणेन संकहावि जइ धारीमदि एव्य तुमं एम्भ यमाए । ( भा तावदनभवतो दाशियेहोपरोपं कुइ । समीपदृष्टेन देव्याः परिचारिस्त्रीजनेन सकथापि यदि वार्थे अत्र स्वमेव प्रयास्यम् । )

हरावती—ए संकहा खाम होइ । किंति अताएं आभासइरसं । ( ननु संकथा नाम भवतु । किंनिस्थात्मादमायातविष्यामि [ इति रूपा प्रस्थिता । ] )

राजा—[ मृगुसरणु । ] प्रतीवतु भवती ।

[ हरावती रत्नसंघारितवरणा व्रजत्येव । ]

राजा—सुन्दरि ! म शोभते प्रस्यमिनि जने निरपेक्षता ।

हरावती—शठ । अविस्वसणीप्रहिप्रप्रोति । ( शठ । अविस्वसनीवहृवयोऽसि । )

राजा—

शठ इति मयि तावदस्तु ते परिनयवत्पवधीरथा प्रिये ।

चरणपतितया न चण्डि ! तां विसृजसि मेखलयापि याचिता ॥२०॥

हरावती—इमं पि हवासा तुमं एम्भ अणुसरदि । ( इयमपि हताशा त्वानेवानुसरति । )

[ इति रत्नसंघारण राजान तावद्विदुमिच्छति । ]

हरावती—जी हा ! बड़े सच्चे हैं आप । मैं नहीं जानती थी कि धार्यपुत्रको मन बहसानेके लिये यही बस्तु मिली है, नहीं तो मैं धर्माग्नि जीधमे पड़ती ही बरों !

विदूषक—देखिए, आप महाराजको साधारण सिध्दाचार दिखानेके मत रोकिए । यदि आप यह चाहती हैं कि पाठ माई हुई महारानीकी दासियोके भी महाराज बात चीत न करें तो ठीक है, वही सही ।

हरावती—अच्छा तो हीने दीजिए बात-चीत, मैं क्यों अपना जी दुखाऊँ ! [ क्रोधमें भरी हुई जाती जाती है । ]

शेखा—[ पीछे-पीछे जाते हुए ] भरे मान जाओ देवी ।

[ हरावती वंदने फंसी हुई तगड़ीको पसोटी हुई बखनेको होती है । ]

राजा—सुन्दरी ! अपने प्यारे से रूठना तुम्हें योग्य नहीं देता ।

हरावती—भरे शठ ! तेरा मुझे तनिक भी विश्वास नहीं है ।

राजा—तुमने शठ कहकर जो मेरा निरादर किया है, यह तो कोई नई बात नहीं है । वर हे खंडी ! जब तुम्हारी तगड़ी भी तुम्हारे वंदोपर पड़कर कामा गाँव रही है तब भी क्या तुम अपने को भ्रम न छोड़ोगी ॥२०॥

हरावती—तो, यह निगोड़ी भी तुम्हारे ही पीछे जा रही है ।

[ तगड़ी लेकर राजाको मारना पाहती है । ]

पत्रा—द्वयम् । इयमिरावती ।

पाप्पामारा हेमकाञ्चीगुणेन श्रोणीविम्बादप्युपेवाच्युतेन ।

चण्डी चण्डी इन्तुमभ्युद्यता यां विद्युद्दाम्ना मेघराजीव विन्ध्यम् ॥२१॥

इरावती—[ किं सं एष्य भूयो वि चवर्द्धं वरेति । ( किं मामेव भूयोऽप्यपठतां करोषि । )

पत्रा—[ गरमन हस्तपञ्चतन्वपनि । ]

अपराधिनि मयि दण्डं मंहरसि किमुद्यतं कुटिलकेशि ।

वर्धयसि विलमितं त्वं दासवनायाय कुप्यसि च ॥२२॥

भूमिदहन्नुवाकम् । [ इति पारयोः पत्राति । ]

इरावती—[ एतु इमे मानविष्णवसरा वा हे हृदिमदोह तं पुरविस्तसि । ( न सखिभ्यो मानविकारणो यो ते हर्षदोहं पुरविस्तसः । )

[ इति निष्क्रान्ता सह चेत्या । ]

विदूषकः—उद्वेहि धरिद्रप्याधोऽग्नि । ( उद्विष्टः घटववसादीर्घसि । )

पत्रा—[ वापायेराकनीपचनम् । ] तावत्वं गतैव प्रिया ।

विदूषकः—वपसत । किञ्चिद्वा इमस्त धरिद्रप्यस्त धरिद्रप्यस्त गता प्रसा । ता वरं तिर्य्यं धरिद्रप्यस्त वाय धरिद्रप्यो वासि विर्यं धरिद्रप्यं परिगम्यं एव वरेदि । ( नम्यम् । दिष्ट्यानेनाधि-मनेनाइतान्ना वरं वा तद्वय धोऽप्यपचनमामः वावदन्नारयो उद्विधिवत्पुत्रं प्रतिपन्नं न करोति । )

पत्रा—[ मिये ] मीरोंदि मींनु मरे, ओपये सात ओर घपने विठन्नोंपरये मनादरके वारण्ट पूती हुई करवतीकी रोंरीके मुम्की पीटनी हुई यह इरावती, इस समय ऐसी लग रही है मानो वही वरकी विष्णवसरा विरिणी विष्णव वगे फाड़ने वर उगारू हो गई हो ॥२१॥

इरावती—[ वण्ट ! तो तुम मुझपर ही रोष मगाने बने हो ? ]

पत्रा—[ तनकी वरिद्र हाथ पकड़ लेगा है । ] हे भुंवराने बातोंबाती । तुम मुझ अपराध कावेकालेकी रंठ देते-देते बक बनों गई ? इस समय मुझ दाहरत वो तुम ओष कर रही हो एतने मुझारी मोया ओर भी बज गई है ॥२२॥ तो घातने मेरो वात्र मान तो है । [ वरों पर विष्णव है । ]

इरावती—[ ये मानविकाके रंठ मरी है तो तुम्हारे वनकी हाथ पूटी कर बने । [ दावीके हाथ बनी बनी है । ]

विदूषक—[ उद्वेहि ! घन ही टन टन मोयात ही यह दण्ड । ]

पत्रा—[ उद्वेहि इरावतीको न देसकर ] तो क्या ध्याती बनी ही गई ?

विदूषक—[ विष्णव ! वपसत वपसत ही वनयो वि दे वारकी विष्णव विष्णव वप की । वनी हूँ ओर भी दण्ड के वी-वी मुम्की ही वरिद्र के मदन टटके मयान वन्दी वात-वातकर विर इरी उद्वेहि न ओः वरि । ]

राजा—प्रहो मदनस्य वैयम्पम् ।

मन्ये प्रियाहृतमनास्तस्याः प्रशिपातलङ्घनं सेवाम् ।

एवं हि प्रणयवती सा शक्यमुपेक्षितुं कुपिता ॥२२॥

[इति निष्क्रान्त. सह वयस्येन]

इति तृतीयोऽङ्कः

राजा—भाह ! प्रेम भी कौस्तुभ कठोर होता है । ऐसे समय जब कि मातृविका भेदा मन हर ले गई हो, उस समय मेरे हाथ-पैर मोड़नेपर भी उसका कठकर चला आना अच्छा ही हुआ क्योंकि अब तो यह मुझसे कठ ही बँटी है इसलिये थोड़े दिनों तक तो इन प्रेमिकासे धसन रहा ही जा सकता है ॥२३॥

[मकने निज विदूषकके साथ चला जाता है ।]

॥ तीसरा अंक समाप्त ॥

## चतुर्थोऽङ्कः

[उत्त प्रविष्टि पर्वसुको राजा प्रतीहारी च ।]

राजा—[आत्मगतम्]

वामाश्रित्य श्रुतिपथ्यतामाशया वद्धमूलः  
संप्राप्तायां नयनविषयं रुद्रामप्रवालः ।  
हस्तस्पर्शैर्मुकुलित इव ध्यङ्करोमोद्गमत्वा-  
रङ्ग्यारिस्कान्तं मनसिजतरुर्मा रसज्ञं फलस्य ॥१॥

[प्रकाशम्] सते गीतम् ।

प्रतीहारी—नेदु नेदु भट्टा । सत्सिंहिहिदो गोदसो । [जयतु जयतु भर्ता । सत्सिंहिहिदो  
गीतम् ।]

राजा—[आत्मगतम्] वा. मातृविकारवृत्तान्दमाकाय मया प्रेषिताः ।  
विद्रुपक.—[प्रविष्टम्] बद्धदु जयं । [सर्वांगे भवाद् ।]

राजा—जयसेने । जानोहि तावत्कव देवीधारिणी सक्त्रवरणव्यतिनोद्यत इति ।

प्रतीहारी—जं देवी धारिणीवेदि । [मदेव माहाप्रवर्ति ।] [इति निष्प्रवृत्ता ।]

## चौथा अङ्क

राजा—[मन हो मन] अपनी प्यारीके सम्बन्धकी बातें बड़ी हुई माया हो जिसकी जड़ है,  
प्यारीकी देतनेसे जवा हुआ प्रेम हो जिसके पत्ते हैं धीरे प्यारीके हाथके रपड़से प्यारीमें उठे हुए  
रौंगटे ही जिसके फूल हैं, वह प्रेमका मूल ही मुझे उतका मोठा फल भी बचाये ॥१॥  
[प्रवृत्त] मित्र गीतम् ।

प्रतीहारी—जय हो, महाराजकी जय हो । पीठमनी यहाँ नहीं है ।

राजा—[मन ही मन] हाँ, ठीक है । मैंने ही तो उन्हें मातृविकारकी टोह देनेके लिये  
भेजा है ।

विद्रुपक—[आजर्] जयार् है आपकी ।

राजा—जयसेना । जाओ देखो लो, देवी धारिणी अपना चोट लगा हुआ पंर लिए कहीं  
भी बहना रहते हैं ।

प्रतीहारी—जैसी देवकी आज्ञा । [पत्नी जाती है ।]

राजा—गौतम ! को वृत्तान्तस्तत्रभवत्यास्ते सख्याः ।

विदूषकः—जो बिदालगहोवाए परतुविघाए । (जो बिदालगृहीतायाः परश्रुतिकथायाः ।)

राजा—[सविधादम्] कथमित्थं ।

विदूषकः—सा षणु तपस्वित्तयो तए ख पिङ्गलज्ज्जेए सारभाण्डभूघरणे पुहाए विप्र लिखित्ता ।  
(सा षणु तपस्विनी तया पिङ्गलाद्या सारभाण्डभूघरे मुहामागिव निदिपत्ता ।)

राजा—ननु मत्संपकंमुपतम्य ।

विदूषकः—महं इं । (मप किम् ।)

राजा—क एषं विमुत्तोऽस्माकम् येन चण्डीहता देवी ।

विदूषकः—मुत्ताणु भवं परिण्यानिघाए मे कहिं । द्विषो किल ततहीवी इरावती  
दमङ्गलतत्तए देवि सुहनुच्चिमा घामरा । (मूत्तोणु भवायु परिव्राजिकया मे कपमित् । ह्यः  
किञ्च तत्रभवतीरावती राजाङ्गलचरणां देवी मुजपृच्छिकागता ।)

राजा—ततस्ततः ।

विदूषकः—तहो सा देवीए पुच्छिमा । किं छ घोत्तोहरो बल्लहत्तलो सि । ताए उत्तं ।  
मग्गे को उपकारी जं परिज्जणे संक्रन्तं बल्लहत्तए ख चात्तोमदि । (ततः सा देव्या पुष्टा ।  
किञ्चदसोकितो बल्लमज्जम इति । उच्यते । मग्गे व उपचारः यत्परिज्जने संक्रान्तं बल्लमज्जं न  
ज्ञायते ।)

राजा—ग्रहो विषंदाहतेऽपि मालविकायाश्चमुपन्यासाः शक्यन्ति ।

राजा—कहो, गौतम ! तुम्हारी तली मालविकाके क्या समाचार है ।

विदूषक—रही जो दिल्लीके पजेमें पड़ी हुई कोदलके होते हैं ।

राजा—[डुकी होकर] कैसे ?

विदूषक—देवारी तपस्विनीको उस पीली घाँसवाली ने नीचके भंडारवाली कावकोठरीमें  
बन्ध कर रक्का है ।

राजा—मेरे प्रेमकी बात जाननेके कारण ही उसे बन्ध किया होगा ।

विदूषक—श्रीर क्या ?

राजा—ऐसा कौन हथारा बैरी है जिसने देवीको इतना भड़का दिया है ।

विदूषक—मुनि ! मुझसे परिव्राजिकाजी कह रही थीं कि कल परसे पोटा खाई हुई देवी  
पारिलीसे कुशल-मंगल पूछने दणवती यहाँ पहुँची थी ।

राजा—तब-तब ?

विदूषक—तब उनसे महाराजोंने पूछा—कहो, शिष्यतमसे दणर भेंट हुई थी ? दणर  
वे बोली—मध उन्हें प्रियतम न कहिए ! क्या भाप नहीं जानती कि ये सब दासिमति  
मैम करने लगे हैं ?

राजा—यद्यपि बात खोलकर नहीं कहों गई, फिर भी जान पड़ता है कि उन्होंने  
मालविकाको सख्य करके ही यह बात कही होगी ।

विदूषकः—शबो ताए अण्डबन्धिग्जमाखः सा भयदो अथिसुभं अन्तरेण परिगदत्या किव देवो । (तवस्तयानुदग्ध्यमाना सा भयतोऽविनयमन्तरेण परिगताया कृता देवो ।)

राजा—अहो दीर्घरोषता तत्रभवत्याः । अतः परं कथय ।

विदूषकः—किं अत्रं । मातृविद्या बडनायतिष्ठा अ पातामवासं लिगतपदोष्ठी अविदुसु-  
अशरं खागकण्णप्राप्ती विष्ण अस्तुहोन्ति । (किमपरम् । मातृविद्या बहुनायतिष्ठा अ पातामवासं  
निगतपदावहट्टसूर्यपाद नाभकन्यके इवानुभवतः ।)

राजा—कष्टं कष्टम् ।

मधुरस्वरा परभृता भ्रमरी च विदुद्धूतसङ्गिन्यौ ।

फोटरमकालवृष्ट्या प्रयत्नपुरोवात्तया गमिते ॥२॥

अप्यत्र कस्यचिदुपकमस्य गतिः स्यात् ।

विदूषकः—अहं भवस्तदि । न सादरभाण्डघरव्यावार्तिना मातृविद्या देवोए संविद्धा । मह  
पुंगुलीअममुद्धिं अदेरिअम ल मोत्तन्वा तुए इयासा मातृविद्या बडनायतिष्ठा अ लि ।  
(कपं अविष्पति । अट्टारभाण्ड गृह्भ्यापारिता मातृविद्या देव्या अविष्टा । ममागुलीयकमुद्रिका-  
महृत् न मोत्तन्वा त्यया हुतासा मातृविद्या बहुनायतिष्ठा चेति ।)

राजा—[नि शस्य सपरामर्शम् ।] सखे । किमत्र कर्तव्यम् ।

विदूषकः—[विचिन्त्य] अरिष एष्य उवाचोः । (अस्त्यशोपाय' ।)

राजा—अ इय ।

विदूषक—इसपर जब उन्होंने बहुत हठ किया तो इरावतीने महारानीके भागे भापका  
पूरा कथा बिद्धा खोलकर रस दिया ।

राजा—जान पड़ता है इरावती बहुत कुपित हो गई हैं । प्रन्ना, फिर क्या हुआ ?

विदूषक—श्रीर क्या होगा या ? मातृविद्या और बहुनायतिष्ठाके वरमे थैली ढालकर  
उन्हें नागकन्याओके समान ऐसे पाठासमें ले आकर रस दिया गया है जहाँ सूर्यकी किरणों  
में नहीं पहुँच सकती ।

राजा—यह तो बड़ा बुरा हुआ कि बोरे हुए धामके साथ रहनेवाली मिठबोली कोयल  
श्रीर श्रीर दोनोको, प्रचण्ड पुरवाई श्रीर असमगको बचनि वेठके खोसलेमे बन्द कर दिया  
॥२॥ कहो, अब उ-हे छुडानेका कोई उपाय हो सकता है या नहीं ?

विदूषक—उपाय क्या होगा । उस निचले भटारकी रसवाली मातृविद्याको देवीने यह  
कह दिया है कि इन अभागिन मातृविद्या और बहुनायतिष्ठाको बिना मेरे प्रेम्ठी देवे  
कमी न छोडना ।

राजा—[लंबी साँस लेते हुए कुछ सोचकर] क्या मित्र ! अब क्या किया जाय ।

विदूषक—[सोचकर] एक उपाय है ।

राजा—क्या ?

विदूषकः—[ सहृष्ट्येणम् ] को वि अचिद्धो सुखिस्सविः कण्ठे दे पहेमि । [ इत्युपरितप्य कर्णे ] एव्यं विम । ( कोप्यहृष्टः शोष्यति । कर्णे ते कथयामि एवमिव । ) [ इत्यावेदयति । ]

राजा—[ सहृद्यम् ] सुन्दु । प्रयुज्यतां सिद्धये ।

[ प्रविश्य ]

प्रतीहारी—देव ! पवादसभरसे देवी त्रिसण्णा रत्तचन्दनसुधारिणा परिषण्णहृत्पगविण्ण धनखेण पप्रवदीए क्हाहिं विण्णोविण्णभारणा चिट्ठवि । ( देव ! प्रवातप्रयने देवी निपण्णा रत्तचन्दनपाणिणा परिषण्णहृत्पगतेन धरणेन भगवत्या कथाविविनोद्यमाना तिष्ठति । )

राजा—तस्याहम्प्रत्येनायोम्योप्रभवतरः ।

विदूषकः—भो ! गच्छतु भवं । अहं वि हेवि वेवित्तुं अरिस्सपासी भवित्थं । ( भो गण्डतु भवान् । अहमपि देवी इन्द्रुगरितपाणिमविष्यामि । )

राजा—जयसेनायास्तायवस्महृत्स्यं विविर्त्तं सुव ।

विदूषकः—तह ! [ इति कर्णे ] एव्यं विम होवि । ( तथा । एवमिव भवति । ) [ इत्यशेष निष्क्रान्तः । ]

राजा—जयसेने ! प्रवातप्रयनभार्थभावेद्येव ।

प्रतीहारी—इवो इवो देवो ! ( इत इवो देवः । )

[ ततः प्रविशति जयसेना देवी परिप्रायिका विषयवचन परिवारः । ]

देवी—भद्रमहि ! रमणिज्जं क्हावाणु । तवो तवो । ( भगवति । रमणीयं कथावस्तु । ततस्ततः । )

विदूषकः—[ इधर-उधर देलकर ] कोई खियकर मुज न रह्य हो ? बाइए, फातमें कहूँ । [ परत सटकर कानमें ] यह हो तकता है । [ कानमें कह देता है । ]

राजा—[ प्रसन्न होकर ] बहुत बढ़िका । बस कर ही आलो ।

प्रतीहारी—[ आकर ] देव ! इस समय महाराजी बमारवाने भवनमें पनेंगपर बँटी हुई है, इनके पैरमें लाल चन्दन लगा हुआ है, दासियाँ पैरकी सेनाले हुए हैं और परिप्रायिकाजी कथा सुनाकर वनका जी बहला रही हैं ।

राजा—जो हमारे लिये वहाँ जानेका अच्छा अवसर है ।

विदूषक—अच्छा आप भसिए । मैं भी हाथमें कुछ भेंट लेकर महाराजीको देतने पारहा हूँ ।

राजा—जयसेनाको भी अपनी सब बातें समझा दो ।

विदूषक—अच्छा । [ जयसेनाके कानमें ] देखो ! ऐसे करता होगा ।

[ सब बतकर चला जाता है । ]

राजा—जयसेना ! बमारवाने भवनतक से ती चलो ।

प्रतीहारी—इपरसे भाइए देव ! इधरसे ।

[ पनेंगपर बँटी हुई देवी दिखाई देती है । वासने परिप्रायिका और बहुतसी दासियाँ बँटी हैं । ]

परिप्रायिका—यह तो बड़ी सुन्दर कथा कहो आपने । हाँ भगवती, तो धामे क्या हुआ ।

परिष्ठाजित—[ सहृष्टिद्वेषम् ] देवी । अत एव पुन कथमिच्छामि । अत्र भगवान्विदिशेश्वरः  
स प्राप्त ।

पारिखी—अहो भट्टा ( अहो चर्ता । ) [ अहो इत्युत्थातुमिच्छति । ]

राजा—अतमत्तनुपचारयन्महाया ।

अनुचितनृपूरनिरहं नार्हसि तपनीयपीठिकलम्बि ।

अरुणं रुजापरीतं कलमापिषि ! मां च पीडयितुम् ॥३॥

पारिखी—जेतु जेतु अजडतो । ( जयतु अमःकार्यपुत्र । )

परिष्ठाजिका—विजयतां देव ।

राजा—[ परिष्ठाजिका प्रणम्योपविश्य । ] देवि ! अपि सह्या देवता ।

पारिखी—अणम ज्ञायि मे विससो । ( अणमस्ति मे दिक्षेव । )

[ तत प्रविशति यज्ञोपवीतवद्धागुष्ठ सभ्रा-तो विदूषक ।

विदूषक—परिष्ठाभद्रु परिष्ठाभद्रु भव । सप्येणम्बि ह्यो । ( परिष्ठागठा परिष्ठापता भवात् ।  
सप्येणस्मि दष्ट । )

[ सर्वे विपण्या । ]

राजा—हृष्ट कष्टम् । अत्र भवान्परिष्ठाभक्त ।

विदूषक—देवैश्च देविभक्तस्तु त्तु प्राप्तायुष्कावहृणकारणानो वमदवत्त गतोम्बि । ( देवी  
द्रव्यामीत्याचारपुष्पप्रहृणकारणानःप्रमदवन गतोऽस्मि । )

परिष्ठाजिका—[ अस्मि भुमाकर ] देवी ! अत्र इत्येते प्रागे फिद कयो कर्तुमी । सीविय,  
विदिशाके महाराज या रहे हे ।

पारिखी—अरे ! स्वामी ! [ उठवा चाहती है ; ]

राजा—अह, मम, सिष्टाचार दिखसानेका कष्ट न करो । सोनेकी चौकीपर रखे हुए अपने  
उस चौटवाले वरतकी कष्ट देकर मुझे कष्ट न पहुँचाओ जो बिना कारण ही विदुषीका विद्यीह सह  
रहा है ॥३॥

पारिखी—अप ही, धार्यपुत्रकी अप ही ।

परिष्ठाजिका—आपकी विजय हो देव ।

राजा—[ परिष्ठाजिकानो प्रणाम करने बैठती हुए । ] कही देवी ! कुछ पीडा कम हुई ।

पारिखी—है आज तो बहुत कम है ।

[ अपने हाथके भंगूठेको जनेऊके बधि हुए पदलया हुआ विदूषक घाता है । ]

विदूषक—अरे देवाइए महाराज ! बचाइए ! मुझे रोकने काट विधा है ।

राजा—यह तो बड़ा बुरा हुआ । कहीं भूम रहे मे ?

विदूषक—मैं देवीको देखने घाने भया जो सोचा कि भेटके लिये दो-चार फुल ही लेता  
रहूँ । उसने लिये भी प्रमदवन चला गया था ।



पारिणी—हरो हरो । अहं एव्य बन्धुस्य जीवितसंशयनिमित्तं जादमिह । (हा धिक् हा धिक् । अहमेव ब्राह्मणस्य जीवितसंशयनिमित्तं जादमिह ।)

विदूषक.—तोहं अपोभत्ययप्रकाशलाभो पत्वारिणो दक्षिणसहृदोः । तवो कोटरस्यिग्यदेशे सप्तरुनेण कातेण ददोमिह । एवं एवसिण बुवे वंसरणवसिण । (तस्मिन्मन्त्रोक्तस्तवकाशलाभप्रकारितो दक्षिणसहृदोः । ततः कोटरनिवेनेन सर्पस्वेण कालेन ददोमिह । नन्वेते द्वे दधनपदे ।) [इति दशोऽङ्कः समाप्तः]

परिभाषिका—सैन हि दशज्जेवः पूर्वकर्मेति ध्रुयते । स तावदस्य क्षिप्रताम् ।

छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतेर्वा रक्तमोक्षणम् ।

एतानि दष्टमात्राणामायुष्याः श्रुतिपचयः ॥४॥

राजा—संप्रति विपवेधानां कर्म । जयसेने । श्रुत्वास्तिष्ठिः क्षिप्रमावीयताम् ।

प्रतीहारी—जं देवो पावेणुवि । (यदेव भाजापवर्षति ।) [इति निष्क्रान्ता ।]

विदूषक—अहो पावेण निष्पुण्य गहोदोमिह । (अहो पावेण मृत्युना दृष्टीतोऽस्मि ।)

राजा—सा काशरो भूः । अविषोऽपि कशाभिर्दृगो भवेत् ।

विदूषक—कहं एव भादस्य । सिमसिमा अन्ति मे मज्जाहं । (कर्म न मेध्यामि । सिमसिमा-अन्ति मेज्जामि ।) [इति विषयण क्लमति ।]

पारिणी—हा दसिर्दंशनुह विभासेण अवनम्बय बन्धुस्य । (हा दक्षिणस्युभ विभासेण अवनम्ब-यर्षं ब्राह्मणम्)

पारिणी—हाय ! हाय !! मेरे ही कारणे बेकारे ब्राह्मणके प्राण एकदमे पड़े हैं ।

विदूषक—यहाँ ज्यों ही मैंने भधीकने फूसोंका गुच्छा तोड़नेके लिये दाहिना हाथ फँसाया त्यों ही उसके सोसनेमेसे निकलकर सर्प बने हुए उस कासने भाकर काट दिया । यह देखिए उसके दाँतोंके चिह्न । [चिह्न दिखाता है ।]

परिभाषिका—सांपके डसनेपर जो पहला काम किया जाता है वह कर डालने, जहाँ साँपके काटा हो, उस भागको काट दिया जाय या जला दिया जाय या पावमेसे खूब निकाल दिया जाय जो साँपसे ठसे हुए मनुष्यके प्राण बच सकते हैं ॥४॥

राजा—मय जो निप उतारनेवाले बँधु भावें सभी काम बल सकता है । जयसेना ! जाभी अष्टपद श्रुत्वास्तिष्ठिको तो बुला लाधो ।

प्रतीहारी—जैसे देवकी आज्ञा !

विदूषक—हाय रे ! यह पापी मौत मुझे भाकर पकट बैठी है ।

राजा—यबराधो मत । कौन जाने साँप विप्लवा न भी हो ।

विदूषक—क्यों न भबराध, मेरे शँक-प्रेम जबड़े जा रहे हैं ।

[निप चढ़नेका माटव करता है ।]

पारिणी—हाय ! हाय !! इसकी दशा तो बिगडती जा रही है । कोई संभालो इस ब्राह्मणको ।

[परिभाषिका यबराधकर संभालती है ।]

[परिष्ठापिका सप्तममवलम्बते ।]

विदूषकः—[राजान विलोक्य] भो । भवतो वात्सादौ वि पिप्रवन्नस्तोम्हि । तं विप्रारिप्र  
द्रुपुता मे जगत्सीय जोगक्षमं चहेहि । (भो । भवतो वात्सादपि प्रियवयस्योऽस्मि । तं विचार्या-  
पुनया मे जनया योगक्षेम वह ।)

राजा—मा भंयौतम । स्थिरो भव । अचिरात्यां चंचत्रिकस्तिष्यति ।

[प्रविश्य]

जयसेना—देव । आणाचिदो ध्रुवसिद्धीविष्णवावेदि इह एव्य धार्योन्नतु सौ गोदमो ति । (देव ।  
माशावितो ध्रुवसिद्धिविज्ञापयति—इहेवानोयता स गौतम इति ।

राजा—सैव हि प्रतिगृहीतमेव सप्रमयतः सकाशं प्रापय ।

जयसेना—तदा । (तथा ।)

विदूषकः—[देवी विलोक्य] भोदि । जोषेन्नं वा ख वा । जं मए अस्तमवन्त सैयमाणेण ते  
अपराद्धं न मरितेहि । (अर्थात् । जोषेय वा न वा । यन्मवाप्रमयन्त सैवमानेन तेऽपराद्धं तन्मृष्यस्य ।)

धारिणी—दोहाऊ होहि । (दोषांपुन्यं ।)

[निष्क्रान्तो विदूषकः प्रतोहारी च ।]

राजा—प्रवृत्तिभोक्षतणस्यो ध्रुवसिद्धिमपि यथापंनमानं तिद्विपन्नं न मय्ये ।

[प्रविश्य]

जयसेना—वेदु जेदु भट्टा । ध्रुवसिद्धीविष्णवावेदि—उदकुम्भविहाणेण सप्यमुद्दिमं किपि  
कप्यिष्य । तं अण्णेतोअनुति । (जयतु जयतु मतां । ध्रुवसिद्धिविज्ञापयति—उदकुम्भविद्यानेन  
सर्पमुक्ति विमपि कल्पमितभ्यम् । तदम्पिप्यवानिति ।)

विदूषक—[राजाकी धोर देतवर] देखिए ! मैं बचपनसे घावका प्रिय मित्र रहा हूँ, इस नाते  
मेरी निपुली माँकी देखभाल करते रहिएगा ।

राजा—डरो मत गौतम । धीरज धरो । मरी बँस तुम्हें प्रकृषा कर दैगे ।

जयसेना—[जाकर] देव ! मैंने ध्रुवसिद्धीकी घावकी घाझा सुनायी । उन्हीने कहा है कि  
यही मे घावा जाय ।

राजा—तो इन्हें संभासकर उनके पास ले चलो ।

जयसेना—अच्छा ।

विदूषक—[महाराजाकी देतवर] देवो ! नीज जाने मैं जीऊँ या न जीऊँ । ऐसा करते हुए  
मुझ्से जो कुछ मूल-मूल हुई हो वह उसी जीविएया ।

धारिणी—जगवान बरे तुम बहुत दिन जीयो ।

[विदूषक धोर प्रतोहारी चले जाते हैं ।]

राजा—यद् देवाय स्वभावते ही इतना डरपोर है कि जँसा नाम बँसे पुण्णाने ध्रुवसिद्धपर  
भो इसे मरोषा नहीं होता ।

जयसेना—[घावर] जय हो, स्वामीजी जय हो । ध्रुवसिद्धिने कहा है कि पानोंके घडेके  
सहारे बिगो गेनी मस्तुसे विष उतारा जायया जितने नावमुद्रा बढी हुई हो इसलिये कोई ऐसी  
बानु ईइकर लामो ।

पारिणी — इबं सत्पुत्रिभं संगुलीसर्भ । पञ्चा मम हृत्ते देहि स्वं । (इदं सर्पमुद्रितमङ्गु-  
लीयकम् । पञ्चान्मम हृत्ते देहि तत् ।) [इत्यङ्गुलीयकं पदाति ।]

[प्रतीहारी वृहीत्वा प्रस्थिता ।]

राजा — जयसेने ! कर्मसिद्धायाश्च प्रतिपत्तमानम् ।

प्रतीहारी — जं देवो आसन्नेदि । (यद्देव भ्राजापयति ।)

परिब्राजिका — यथा मे हृदयमाचष्टे तथा निषिधो भीतमः ।

राजा — भूपदेवम् ।

[ प्रविश्य ]

जयसेना — जेहू देवो भूम् । एषुत्तबिलभेगो भोवन्नो मुद्रतेषु पकिदित्यो संकुतो ।  
(जयतु देवो मतां । निवृत्ता विपयवेगो गीतयो मुद्रतेषु प्रकृतिरवः संकुतः ।)

पारिणी — विद्विष्या वषणीषाचो मुत्तमिह । (विष्टया वषणीषाभ्युत्तमिह ।)

प्रतीहारी — एतो उल्ल बाहूतयो ममथो विष्टयेदि — राजकर्मन् बहु मन्तिदप्यं संसरोल्ल  
मङ्गलार्हं इच्छामि ति । (एष पुनर्वाहूतकोऽभात्यो विज्ञापयति — राजकार्यं बहु मन्त्रयित्थम्  
एतानेनानुब्रह्मिच्छामीति ।)

पारिणी — नचङ्गु मञ्जउत्तो कञ्जसिद्धीए । (नचङ्गुवायंपुत्रः कार्यसिद्धये ।)

राजा — देवि । भ्रातृवाक्यन्तोऽयमुद्देशः शीतश्रिया चास्या राजः प्रजस्ता । तद्व्यस्य भीयतां  
धामनम् ।

देवी — भ्रातिगायो । मञ्जउत्तवमर्षं मञ्जुबिहूह । (शान्तिकाः कार्यपुत्रवचनमनुसिद्धत ।)

पारिणी — जो लो । मेरी संगुठीमे नापमुद्रा जडी हुई है । काय हो जानेपर मुझे ही  
झीटा देना ।

[संगुठी निकालकर देती है । प्रतिहारी सेकर चली है ।]

राजा — जयसेना ! काय हो जानेपर झीटा हो सजावार देना ।

प्रतीहारी — जैतो देवकी भाषा । [चली जाती है ।]

परिब्राजिका — मेरा मन तो कह रहा है कि भीतमका विष उतर गया ।

राजा — आपकी ही बात सच्ची हो ।

जयसेना — [भाकर] देवकी जय हो । गीतमका विष थोड़ी ही देरमें उतर गया और मम  
के मले-चने हो गए हैं ?

पारिणी — बड़ी बात हुई कि मैं कर्मकते बच गई ।

प्रतीहारी — मंत्री माहूतकने कहलाया है कि राज-काजकी बहुत-सी बातोंपर विचार करना  
है, इसलिये यहाँनको कृपा चाहता है ।

पारिणी — जाइए कार्यपुत्र ! राज-काज देखिए ।

राजा — देवी ! यहाँ जो धूप था गई है । ऐसे रोपमे ठठ हो मन्थो होतो है । इसलिये  
मपना पलंग दूसरी ओर उठवा लीनिए ।

पारिणी — सङ्कियो ! कार्यपुत्र जो कह रहे हैं वैसे ही करो ।

परिजनः—तह । (तया ।)

[ निष्कान्ता देवी परिव्राजिका परिव्रजन्त्र । ]

राजा—जयसेने ! मां युद्धेन यथा प्रमदयन् प्राप्तय ।

जयसेना—इदो इदो देवो । (इत इतो देवः ।)

राज—जयसेने ! मनु सत्ताञ्जकाम्यो गौतमः ।

जयसेना—अह इं । (अथ किम् ।)

राजा—

इष्टाधियमनिमित्तं प्रयोगमैकान्तसाध्यमपि मत्वा ।

संदिग्धमेव सिद्धौ कातरभाशङ्कते हृदयम् ॥५॥

[ प्रविश्य ]

विदूषकः—बहुतु भर्बं । सिद्धाणि दे मङ्गलकम्माणि । (वर्षतां यवान् । विद्वानि ते मङ्गल-  
कर्माणि ।)

राजा—जयसेने ! त्वमपि त्वं नियोगमयुग्मं युच ।

जयसेना—अं देवो आलुषेदि । (यद्देव आजापयति ।) [इति निष्कान्ता ।]

राजा—गौतम ! शुभ्रा भाषयिष्य । न कसु किञ्चिद्विचारितमनया ।

विदूषकः—देवोए मगुत्तोमममुहिंमं वेविसस्र क्त्वं विचारदि । (देव्या मद्गुत्तोमकमुद्रा  
दृष्टा कर्षं विचारयति ।)

वातिपां—मच्छा ।

[ महाराजो, परिव्राजिका और वातिपां, सब बसी जाती हैं । ]

राजा—जयसेना ! मुझे और-मार्गसे प्रमदयन तो ले चली ।

जयसेना—इधरसे आइए देव, इधरसे ।

राजा—जयसेना ! गौतमने भयन्त काम तो पूछ कर लिया होया न ?

जयसेना—जी हाँ ।

राजा—मपनी प्यारीको पानेके लिये हमने जो उपाय रखा है उसे पक्का समझते हुए भी मेरा हृदय ऐसा सन्देहो और धयोर है कि उसे भयोउक काम पूरे होनेमें चटका बना ही हुआ है ॥५॥

विदूषकः—[ धाकर ] अघाई है घापकी । घापके सब काम सध गए ।

राजा—जयसेना ! जाओ शुभ भी भयना काम देखो ।

जयसेना—रंसी देवकी धाजा । [ बसी जाती है । ]

राजा—बहो गौतम ! भाषविना तं बड़ी चट है । उनने कुछ भाया पीछा तो नहीं किया ?

विदूषक—देवकी भंगुठी देग तेनेवर बह बना धाया-पीछा करतो ?

राजा—न क्षुद्रमुद्रामधिकृत्य ज्ञोमि । एतयोर्द्वयोः किनिमित्तो मोक्षः । किं वा देव्याः परिजनमतिक्रम्य भवान्संविष्ट इत्येषामनया प्रष्टव्यम् ।

विदूषकः—एतं पुच्छिदोग्निह ! मुखो मन्त्रस्त मे तस्मिन् यन्पुष्पमृषा भवति । ( ननु पुष्टीर्जसिम् । पुनर्मन्दस्व मे तस्मिन्प्रत्युत्पन्ना मतिः । )

राजा—कथ्यताम् ।

विदूषकः—भरिदं मए । देव्यचिन्तार्हं विश्वाविदो रासा—सोवसर्गं यो शकसत् । ॥ अशसं सखदन्धमोपलो करीध्रदु त्तिः । ( भरिण भया । देवचिन्तर्कविज्ञापितो राजा—तोपसर्गं यो नक्षत्रम् । तदवश्यं सव्येन्धमोक्षः क्षिपतामिति । )

राजा—[ सहर्षम् ] ततस्ततः ।

विदूषकः—तं सुशिष्यं देवीए इरायवोद् क्षितं रक्षन्तोए रासा किल मोएहि त्ति अहं तंविद्वी त्ति । तवी क्षुजवि त्ति ताए एव्यं संपादितो धरयो । ( तच्छ्रुत्वा देव्या इरावत्याभिरतं रसान्त्या रासा किल मोचयतीत्यहं सविष्ट इति । ततो युज्यत इति तथैवं सम्पादितोऽर्थः । )

राजा—[ विदूषकं परिष्कृत्य ] सखे ! त्रिवोर्ज्ञं क्षुद्रं तव ।

नहि बुद्धिशुणेनैव सुहृदामर्थदर्शनम् ।

कार्यसिद्धिपथः सूक्ष्मः स्नेहेनाप्युपलभ्यते ॥६॥

राजा— मैं भ्रूंगुठीकी बात नहीं पूछ रहा हूँ । उन दोनोंको तुमने सुझाया क्या कहकर ? उसने यह तो पूछा ही होगा कि इतने शैबकोके रहते हुए भी देवीने धापकी ही क्यों भेजा ?

विदूषक—हाँ, यह तो पूछा था । पर उसी समय मुझ मुल्लकी बुद्धि पेट गई थीर मेरे भ्रूंगुसे ध्यानक एक अच्छी बात निकल रही ।

राजा—बस ?

विदूषक—मैंने कहा कि वयोतिपयोने महाराजसे कहा है कि धापके यह विषये हुए हैं इसलिये इस समय सब बन्दियोंकी सुझवा सीजिए ।

राजा—[ प्रसन्न होकर ] तब तब ?

विदूषक—जब देवीने ज्योतिषियोंकी यह बात सुनी, तब उन्होंने सोचा कि यदि हम अपने शैबकीको सुझानेके लिये किसी औरको सेजिये तो इरावतीजी बुरा मान पावेंगे । इसलिये उनका मन रखनेके लिये उन्होंने मुझे ही बुझाकर यह काम सौंप दिया, जिससे इरावती यह समझे कि राजा ही बन्दियोंको सुझा रहे हैं, मैं नहीं सुझा रह्यो हूँ । भाषणिया इते सब मान बैठी थीर उन्हें छोड़ दिया ।

राजा—[ विदूषकको गले घगाकर ] मित्र ! सबमुच तुम मेरे बड़े प्यारे हो । क्योंकि केवल बुद्धिके बसये ही कोई अपने मित्रोका काम नहीं कर देता । अपने सिर कोई काम लेकर उठे धन्तवक निमा देना सबमुच ऐसा टेढ़ा होता है कि वह तभी पूरा हो पाता है जब काम करनेवाला अपने मित्रसे फफका स्नेह भी करता हो ॥२॥

विदूषकः—सुबरतु भवं । समुद्रघरणं सहीतहितं मातृविषं तविविष भवन्तं पशुमुपदोषिह ।  
 ( स्वरजं गलात् । समुद्रघृहे सञ्जीतहितं मातृविका स्यापयित्वा भवन्तं प्रत्युद्भवोऽग्रिम । )  
 राजा—सहमेमां संभावयामि । गच्छप्रतः ।

विदूषकः—एतु भवं । [ परिक्रम्य । एवं समुद्रघरं । ( एतु गवात् । इदं समुद्रघृहम् । )  
 राजा—[ सायङ्कम् ] पणस्य । यथा कुमुदापयव्यव्यग्रहस्ता सस्यास्ते परिवारिका बन्धिका  
 सनिष्कृतमापच्छति । इतस्तावदापो भित्तिपूठो गवाकः ।  
 विदूषकः—सहो ! कुम्भोलसहि कामुपूहि च परिहरलीप्रा वसु धन्दिप्रा । ( ग्रहो कुम्भोरकैः  
 वामुकैश्च परिहरातोप्य वसु बन्धिका । )  
 राजा—गौतम ! कथं तु ते सली कां प्रतिपालयति । एहि । एषो गवादमापिये  
 बिलोपयामः ।  
 विदूषकः—तह् । ( तथा । )

[ उभो विचोवङ्गो निष्ठतः । ]  
 [ ततः प्रविशति मातृविका बहुलावतिरा प । ]  
 बहुलावतिका—सहि ! पलम भट्टारं । [ सति । प्रणम भर्तारम् । ]  
 मातृविका—एते के । ( ममते । )  
 राजा—साहके मे प्रसिद्धितं निविशति ।  
 मातृविका—[ सहर्षं शारपवलीक्य सविषादम् ] हता ! मं विपयन्तेति । [ सति । मां  
 विप्रसन्नयति । ]

विदूषकः—गच्छ । यद्यथा प्रष्टव्यं त्विह पर्वोकि ये समुद्रघरं बहुलावतिका घोर  
 मातृविकाको बँडाकर तव घावके पात घावा वा ।  
 राजा—बसो, मैं धनी उठे बनकर मना मेठा हूँ । चलो बागे-बागे ।  
 विदूषकः—भाइए घाव [ घूमकर ] यह रहा समुद्रघर ।  
 राजा—[ बसते हुए ] देखो मित्र ! तुम्हारी सली इरावतीकी वाली बन्धिका पूत बुनगी  
 हुई इमर ही चली घा रही है । चलो इस भीतके पीछे चिप रहा जाय ।  
 विदूषकः—हाँ, चोरीं घोर वारोको बन्धिकाये बचते ही रहना चाहिये ।  
 [ दोनों भीतके पीछे छिप जाते हैं । ]

राजा—भायो गौतम ! एष विदूकीये से देखा जाय कि तुम्हारी सली मातृविका मेरे लिये  
 कंते बाट जोह रही है ।  
 विदूषकः—गच्छ । [ दोनों विदूकीये से जाते हैं । ]

बहुलावतिका—हसी । स्वामीको प्रणाम करो ।  
 मातृविका—घावको प्रणाम है ।  
 राजा—जान पड़ता है यह मेरा विष दिखा रही है ।  
 मातृविका—[ प्रणमनाके घाव द्वार तोलती है, फिर दुखी होकर ] गच्छा सली ! तुम'भो  
 मुझे बना रही हो ?

राजा— हृषीकेशादाभ्यामप्रभक्त्याः श्रीतोऽस्मि ।

सूर्योदये भवति या सूर्यास्तमये च पुण्डरीकस्य ।

वदनेन सुवदनापास्ते समवस्थे चण्डादृढे ॥७॥

बकुलावसिका—एतौ विसपदो मट्टा । ( नन्वेय चित्रगतो भर्ता । )

उभे—( प्रशिपरय । ) वेदु मट्टा । ( जयतु भर्ता । )

मातविका—हस्ता ! तवा संगमबिद्धे भट्टिलो रुये जहा ख बित्तिहृग्हि तहा धरजवि मए भाविवो धवित्तिहृहंसरयो भट्टा । ( सति ! तदा संभ्रमहृष्टे भर्तुं रुये यथा न वितृष्णास्मि तपा-  
द्यानि मया भावितोऽवितृष्णदर्शनो भर्ता । )

विदूषकः—सुबं भयदा । तत्तहोदि—चित्ते जहा विद्धो ख तहा विद्धो भवं सित मनेदि । मुहा  
वालि मञ्जूता विध्न रम्यरमण्यं कोपवलागव्यं वहेसि । ( द्युतं भयता । तत्रभमती—विध्नं यथा  
दृष्टो न तथा दृष्टो भवानिति मन्त्रवति । मुपेदानो मञ्जूपेय रत्नमाण्ड यौवनवर्षं पहति ।

राजा सखे । कुतूहलवानपि निसर्गंशासोमः श्लेजनः । पाप—

कार्त्स्न्येन निर्वर्णयितुं च रूपमिच्छन्ति तत्पूर्वसमागमानाम् ।

न च प्रियेष्वप्यतलोचनानां समप्रवृत्तीनि विलोचनानि ॥८॥

मातविका—हस्ता ! का एता पात्रपरिउत्तमुहेल भट्टिणा स्त्रिण्डाए विदुए लिञ्जार्दधवि ।  
( सति । कंया पात्रपरिवृत्तमुद्येन भर्ता मे स्त्रिण्डया हृष्टया निष्पायते । )

राजा—इत समय इनका प्रसन्न होना और दुःखी होना दोनों मुझे बड़े प्यारे लगते हैं ।  
सूर्यके निकलते और छिपते समय कमल जैसे-जैसे सिलता और मुरझता है, ठीक वैसे-वैसे ही  
भक्तक शाय भरमे इस सुन्दरीके मूँहपर दिलाई पड गई है ॥७॥

बकुलावसिका—पर विधने भी तो स्वामी ही हैं ।

दोनों—[ प्रणाम करती हुई ] स्वामीकी जय हो !

मातविका—सती ! उस दिन हठहठीमे महाराजकी मैं बिलना नहीं देख पाई उनका प्राण  
इस विधने जी भरकर महाराजका रूप देखकर भी मैं घपः नहीं रही हूँ ।

विदूषक—प्राप कुछ समझे ? उनके बहनेका धर्यं यह है कि जैसे गुन्दर प्राप बिनमें दिखाई  
दे रहे हैं वैसे प्राप सभमुप नहीं दिखाई दिए थे । इसलिये जैसे रत्नकी धूँँदी पिढारी भी घपनेकी  
रत्नोंकी कहकर झूठे ही एँठनी है वैसे ही प्रापमे भी कुछ है-बं नहीं, प्राप झूठे ही घपने घोबनकी  
शेग हाँवते हैं !

राजा—मित्र ! घपने प्यारोसे मिलनेके लिये उठावजो होती हुई जियाँ स्वभावसे ही बरी  
सजीली होती है ! देखो—जियाँ जिस पुरुषसे पहले रहस मिलती है उसे वे जो भयकर देग तो  
मेना पाइती है पर उन बड़ी बड़ी प्राँलोवालो मुन्धरियोंकी प्राँयें घपने प्यारकी घोर छीबते उठ  
ही नहीं पाती ॥८॥

मातविका—क्यों सती ! वे शीन देवी हैं जिनकी घोर महाराज मूँह पुयावर बरी प्रेमनरी  
बिठपनसे देग रहे हैं ।

बहुलावनिवा—एँ इमं पातयन्वा इरावतो । ( नन्दिव पातयंग्तेरावतो । )  
 मालविका—सहि । अरविशरयो विष मट्टा मे पदिनादि ओ सध्वं देवोजलं उज्जिष्य एकाए  
 पुहे बटलपत्तो । ( सहि ! अरविशर इव मर्ता मे प्रतिभाति यः सर्वं देवोजलमुज्जिष्यर्वनस्या पुते  
 बटलपत्त्य । )

बहुलावनिवा—[ आत्मयत्नम् ] वित्तमदं मट्टारसं परमावलो संकल्पिष्य प्रसुपरि । होडु ।  
 कीद्वित्तं शश एदाए । [ अशाशम् ] हुवा अट्टिखो मत्तहा एसा । [ विषमत्तं मर्तारं पट्पाप्यतः  
 संकल्पमासूयति । प्रबन्धु । कीद्विष्णामि तावदेतया । सहि । मनुर्वत्नमेया । )

मालविका—तयो किं वारिणं प्रसालं आत्मातद्गतं । ( ततः किमिदानीवात्मानमायासदि-  
 ध्यानि । ) [ इति आसूय वशावसते । ]  
 राजा—सत्ते । पश्य ।

भ्रूमङ्गभिन्नतिलकं स्फुरिताघरोष्ठं साक्ष्यमाननमितः परिवर्तन्त्या ।  
 कान्तापराधकुपितेध्वनया विनेतुः मंदशितेष ललिताभिनयस्य शिक्षा ॥६॥

विदूषक—अच्छरावतामो वारिणं होहि । ( अनुभवजग इदानीं भव । )  
 मालविका—अजगोवमो एव एव संशेषि खं । ( आर्यगीतमोडनं संशेषत एताम् । )  
 [ पुनः स्वामान्तराभिमुखो अभितुमिच्छति । ]  
 बहुलावनिवा—[ मालविका स्वप्ना । ] एव वन्धु कुबिवा वारिणं वुभं । ( न वन्धु कुपितेदानीं  
 वम् । )

बहुलावनिवा—ये महाराजके पास इरावतोजो बंटी हुई हैं ।  
 मालविका—क्यों सखी ! महाराजका प्रेम सज्जर एक-ता नहीं बिखारै पकटा, क्योंकि वे  
 सब रात्रियोंको छोड़कर बस एकका ही मुँह देखे जा रहे हैं ।  
 बहुलावनिवा—[ मग हो मग ] यह भीसी, बिचमे घने हुए महाराजकी सचमुच महाराज  
 समझकर उनपर स्टी जा रही है । घञ्जी बात है । मैं भी इसे बनावती हूँ । [ प्रगट ] सखी !  
 ये ही तो महाराजकी ध्याती है ।  
 मालविका—तब मैं क्यों तिल-तिल अपनी बेह जसाऊँ । [ दाहते मुँह केर लेती है । ]  
 राजा—देखो मित्र । इजने दाहते अपना मुक पुपय लिया है । जोहोंके पदागेषे हटो हुई इसके  
 भावकी बिन्दी घोर इसके फटकते हुए निजने घोटको देखनेसे ऐसा जग पडता है भागो स्वामीके  
 अथरापर स्तनेकी जो जिला अपने मुफसे नो है बहो प्रमिन्व करके दिखता रहे हो ॥६॥  
 विदूषक—जो वसिए । अब मनानेके लिये तयार हो काइए ।  
 मालविका—आर्यं योतय भी तो यहाँ बैठे इनकी सेवा कर रहे हैं ।  
 [ वहसि फिर वहीं घोर हट जाना चाहतो है । ]  
 बहुलावनिवा—[ मालविकासे रोककर ] मेरे तुम रुककर तो नहीं जा रहो हो ?



मालविका—अह चिरं कुर्वितं एष्व मं मण्डलेति एषो पञ्जालीयति कोवे । (यदि चिरं कुर्वितमेव मां मन्यसे एव प्रत्यानीयते कोपः ।)

राजा—[उपेत्य]

कृप्यसि कुयलयनयने चित्रार्पितचेष्टया किमेतन्मे ।

ननु तव साक्षादयमहमनन्यसाधारणी दासः ॥१०॥

बहुलावणिका—जेहू जेहु भट्टा । (जयतु जयतु भर्ता ।)

मालविका—[धारयन्तम्] कर्हं चित्तगदो भट्टा मए भट्टारो । (कपं चित्रगती भर्ता मया दूषितः ।) [प्रकाश सप्रोदवदनमञ्जलि करोति ।]

[राजा मदनकातर्यं कथयति ।]

विदूषकः—किं भवं उवासीसो विम्व डोसह । (किं अवागुवासीन इव दृश्यते ।)

राजा—अविश्वसनीयत्वात्तव्यास्तव ।

विदूषकः—अतहोदोए ममं कर्हं तुह अविस्तासो । (अथमवस्थाभवं कथं उवाविरवासः ।)

राजा—भूपताम् ।

पथि नयनयोः स्थित्वा स्थित्वा तिरोभवति ज्ञाना-

त्सरति सहसा बाह्योर्मध्यं गतापि सखी त्वय ।

मनसिजरुजा क्लिष्टस्यैवं समागममायया

कथमिव सखे विस्मयं स्यादिमां प्रति मे मनः ॥११॥

मालविका—यदि तुम समझती हो कि मैं बहुत रुझी ही रहती हूँ तो लो मैं रुठ ही जाती हूँ ।

राजा—[दास पहुँचकर] हे कमलनयनी ! दिनभरे बने हुए मेरे भावको ही देखकर तुम मुझसे क्यों रुझी जा रही हो । तुम्हारा यह मनन्य दास तो तुम्हारे सामने ही खड़ा है ॥१०॥

बहुलावणिका—जय हो, स्वामीको जय हो ।

मालविका—[मन हो मन] वो क्या मैं खदमुच चित्रमें बने हुए स्वामीसे रुझी हुई थी ।

[अजाती हुई हाथ जोड़ती है । राजा प्रेयमें व्याकुल होनेका नाट्य करते हैं ।]

विदूषक—भाप चुपचाप क्यों खड़े हो गए हैं ?

राजा—माई ! तुम्हारी सखीपर भरोसा नहीं हो रहा है ?

विदूषक—क्यों, इसपर सरोसा क्यों नहीं हो रहा है ?

राजा—सुनी ! ये मेरी धार्मिकी बंटो-बंटो देखते-देखते थोकर हो जाती है भीर मेरी बांहोंमें आकर भी प्रचानक निकल जाती है । इस मित्तनकी मायामे फँसे हुए मेरे प्रेयके रोपी मनकी इनपर कँठे भरोसा हो ॥११॥

बहुलावतिका—सहि ! यहुषो यजु भट्टा विप्लवद्धो । ता तुए प्रता विसससिण्णो करीप्रदु ।  
(सधि । यहुसः किल मर्ता विप्रलब्धः । सत्वयात्मा विद्वसन्नोयः क्लिप्तताम् ।)

मालविका—सहि ! भह उण मग्धनगाए सिचिण्णसमाप्रभो सि भट्टिणो दुल्लहो प्राप्ति ।  
(सहि ! मय पुनमग्धमाग्यायाः स्वप्नसमाप्रभोऽपि मर्तुर्दुर्लभ आसीत् ।)

बहुलावतिका—भट्टा । कहेदु से उत्तरं । (मर्ता कथयत्वस्या उत्तरम् ।)

राजा—

उत्तरेण किमात्मैव पञ्चवास्याग्निसाक्षिकम् ।

तद्य सख्यै मया दत्तो न सेव्यः सेविता रहः ॥१२॥

बहुलावतिका—अणुपहोदग्धि । (मनुयुहोतादिम् ।)

विदूषकः—[परिक्रम्य ससन्नम्] यबलावलिण्ण ! एषो बग्धातोपरकलस्त पल्लवाहं लद्धेदि  
हरिणो । एहि णिवारेम खं । (बहुलावतिके ! एष बग्धातोऽकृतस्य पल्लवादि मद्धपति हरिणः ।  
एहि, निवारयाम एतम् ।)

बहुलावतिका—सह । (तथा ।) [इति प्रस्थिता ।]

राजा—वदस्य । एवमेवास्मिन्प्रसङ्गस्येऽप्यहितेन स्वया भवितव्यम् ।

विदूषकः—एवमं सि गोवमो सन्विसेप्रवि । (एवमपि गौतमः सन्विष्यते ।)

बहुलावतिका—[परिक्रम्य] मग्ध गोवम । अहं अण्णमासे चिट्ठामि । तुमं दुवाररकको  
होहि । (पार्यं गौतम । अहमप्रकासे तिष्ठामि । त्व द्वाररकको भव ।)

12

बहुलावतिका—सखी तुमने महाराजको बहुत सज्जया है । अब कुछ ऐसा तो करो कि ये  
तुमपर मरोसा करके लगे ।

मालविका—सखी ! मुझ सभागिनीकी तो स्वप्नमे भी महाराजके सेंट नहीं हुई ।

बहुलावतिका—महाराज ! इसका तो धाप ही उत्तर दे सफेते हैं ।

राजा—उत्तर क्या, मैं तुम्हारी सखीसे सेवा नहीं कराया जाहता । मैं तो त्रेपसी शान्तिको  
शाही बनाकर अपनेसेमे ही उनको सेवा करनेके लिए अपनेको ही इनके हाथ सींचे देता हूँ ॥१२॥

बहुलावतिका—बड़ी कृपा हुई मुझपर ।

विदूषक— [धूमकर भयंकरहटके साथ] शरी बहुलावतिका ! देख-देख, इन नग्धे-नग्धे भयानकके  
पत्तोंको हरिण भरे जा रहा है । चल, इसे मगा तो दँ ।

बहुलावतिका—चलिण्ण । [जाता चाहती है ।]

राजा—देखो मित्र ! तुम इसी प्रकार सावधानीसे हमारी देलमाल करते रहना ।

विदूषक—नया यह बात भी गौतमको समझनी होगी ।

बहुलावतिका—[धूमकर] पार्यं गौतम ! मैं इधर शिपकर बँठती हूँ । तुम जाकर द्वारपर  
धोरुतो करो ।

बिहूपक.—बुज्ज ! (मुज्जते ।)

[निष्क्रान्ता मकुलावतिका ।]

बिहूपक—इमं दाव फलितहृदयम् अरिसदो होमि । [इति तथा श्रुत्वा] महो सुहृत्परि-  
सदा तिलावितेसस्त । ( इमं दावत्स्फटिकस्तम्भगाधितो भवामि । महो सुलस्यसंता क्षिप्ता-  
वियेषस्य । ) [इति निद्रावते ।]

[मालविका समाश्रयता तिष्ठति ।]

राजा—

विस्तृत सुन्दरि संगमसाध्वसं तव चिरात्प्रभृति प्रणयोन्मुखे ।

परिशुद्धाण गते सहकारतां स्वभतिमुक्कलताचरितं मयि ॥१३॥

मालविका—देशीए भएण प्रसन्नो वि विन्न काद् ए पारेमि । (देव्या मयेनात्मनोऽपि  
प्रियं कर्तुं न पारयामि ।)

राजा—अपि ! न केतव्यम् ।

मालविका—[सोपालम्बम्] जो एव भाषरि सो मए भट्टिखीसं विद्वतामत्पो भट्टा ।  
(सो न विभेति न मया भट्टिनीदरुनि दृष्टतामप्यो भर्ता ।)

राजा—

दादित्यं नाम विम्योष्ठि नायकानां कुलवतम् ।

तन्मे दीर्घाक्षि ! ये प्राणास्ते त्वदाशानिवन्धनाः ॥१४॥

बिहूपक—पचली बात है ।

[मकुलावतिका बली जाती है ।]

बिहूपक—सबतक इत स्फटिकके सभेके सहारे चलकर बैठवा हूँ । [बैठता है ।] बाह !  
कौसी ठंडी और बिकली शिखा है ।

[ऊँघने लगता है ।]

[मालविका डरो-झी झडी रहती है ।]

राजा—हे सुन्दरी ! मेरे गले लगनेसे डरो मत । न जाने कितने दिनोंसे मैं तुमसे मिलनेको  
पधीर हो रहा था । देखो ! जैसे माधवी लता भागले लिपट जाती है वैसे ही भाभी,  
तुम भी मुझसे लिपट जाओ ॥ १३॥

मालविका—मुझे महारानीसे बड़ा डर लगता है इसलिये चाहते हुए भी ऐसा नहीं कर  
सक रही हूँ ।

राजा—भली ! डरनेकी क्या बात है ?

मालविका—[चलहना देने हुए] जो हूँ, आज जो नहीं डर रहे हैं, उन महाराजका साहस,  
उस दिन देवी इरावतीकी जानेपर मैं बली भाँति देख चुकी हूँ ।

राजा—हे शिवाके समान ज्ञान-ज्ञान श्रोत्रोवाली ! प्रेमी शोब यो दिखानेके लिये सभीमे  
प्रेम करते हैं, पर हे भली-बली शौलोवाली ! मेरे प्राण तो तुम्हें ही पानेकी प्राणापर लटके

तदनुश्रुतां चिरानुक्तोऽयं जनः । [इति संस्नेपमुपजगमति ।]

[भालविका माख्येन परिहरति ।]

राजा—[प्रायगतम्] रमणोयः सज्जु नयाङ्गनानां सदनविद्यमावतारः । तथा हि इयम्—

हस्तं कम्पयते रुषद्भि रक्षनाव्यापारलोलाङ्गुलीः ।

सौ हस्तौ नयति स्तनावरयतामलिङ्गयमाना बलात् ।

पातुं पद्मलनेत्रमुन्मयतः साचीकरोत्याननं

व्याजेनाप्यभिलापपूरणसुखं निर्वर्तयत्येव मे ॥१५॥

[ततः प्रविशतीरावती निपुष्टिका च ।]

इरावती—हृषीं लिउलिणः । सखं तुमं परिणवत्वा वन्दिप्राए । समुद्वपरप्रतिगवसइयो  
एपाई प्रजगोदमो विट्टो ति । (हृषीं निपुष्टिके ! तव्यं त्व परिणवतार्वा वन्दिप्राए । समुद्वप्राहः  
निन्दवामित एकाकी मार्यगोत्रमो इष्ट इति ।)

निपुष्टिका—अणुहा कर्हं भट्टिखीए विण्सावेमि । (अण्वा कर्पं वट्टिन्वं विज्ञापयामि ।)

इरावती—तेण हि तौह एव्य मण्णम्ह ससप्रावो भुसं विअवसत्तं पुषिद्वं म । (तेन  
हि तर्णय मण्णमः सपयाम्मुक्तं प्रियमवत्ये षण्ठु च ।)

निपुष्टिका—सावतेतं विअ भट्टिखीए वसत्तं । (सावयेपमिव भट्टिन्या वचनम् ।)

इरावती—अण्णं म विअणव अण्णउत्त पत्तवेवुं । (अण्णव विअवतमार्यपुत्र प्रसादयितुम् ।)

हृष्ट है ॥१५॥ इसलिये तुम्हारे प्रेममे इतने दिनोसे हूये हुए इत दासपर अब तो कृपा करो ।

[एते लगनेको बड़टे हैं, भालविका माख्यसे अपनेको पुझाती है ।]

राजा—[मन ही मन] गई मयेलियोकी प्रेमभरो धटकमटक भी कितनी सुन्दर होती है । क्योंकि इनके हाथ काँप रहे हैं, अपनी खुसी हुई छगडोको ये अपनी बचल प्रँगु-सिबोसे घामे जा रही हैं । जब मैं बचपूर्वक गले लगने चलता हूँ तो दोनों हाथोसे ये अपने स्तन डक लेती हैं और जब मैं इनके सुन्दर पलकोकी छाँवोवाता मुँह चुमनेको बढता हूँ तौ ये अपना मुँह केर लेती हैं । इस हाथ-वाईमे मेरे हाथ कुछ भी नहीं लग रहा है, फिर भी मुझे यँदा ही सुख मिस रहा है मानो मेरी सब इच्छाएँ पूरी होतो जा रहे हो ॥१५॥

[इरावती धीरे निपुष्टिका आती है ।]

इरावती—बयोगी निपुष्टिका ! क्या वन्दिप्राये सखमुच तुमको कहा था कि प्रायं गोत्रम, समुद-परने बाहर अपनेसे छोए है ।

निपुष्टिका—मैं स्वामिनोसे भूठ बोदे हो बोलती ।

इरावती—तौ पमो यहीं पवनर मित्त बिडूपकडे पूए लिया जाय कि अब वे ठीक हो गए हैं या नहीं धीरे.....

निपुष्टिका—स्वामिनो ! आप कुछ धीरे बहना चाहती थीं ।

इरावती—हाँ, यही कि यहाँ बचकर चित्रमे बने हुए धार्यपुत्रको भी मना लिया जाय ।

निपुणिका—यह वारिह कर्ह ॥ भट्टा एषं प्रच्छसीधरि । ( भवेदानी कथं नु भर्तव्यमनुनीयते । )  
 इरावती—मुठे ! जारिसो चित्तयदो खं तारिसो एव्य प्रच्छसंकन्तहिषधो भणजउत्तो ।  
 केवलं उवघारादिक्कमं पमज्जिदुं धमं धारम्भो । ( मुग्धे ! यादृशञ्चिन्नगतो ननु नाट्य एवान्य-  
 संभ्रान्तहृदय धार्यपुत्रः ) केवलमुपचारातिक्रम प्रमाञ्जितुमवमारम्भः । )

निपुणिका—इदो इदो भट्टिखी ( इत इतो भट्टिनी । )

[ उभे परिक्लामतः । ]

[ प्रविश्य ]

वेदी—जेतु जेतु भट्टिखी भट्टिखि ! देवो भण्णादि—ए मे भच्छररस एसी कालो । तेण वल्लु  
 बहुमाण वद्धेदुं वधस्ताए तह खिण्णसङ्गवख खिवा मानविषया । जइ अष्टमण्णसि अज्जजवत्तस  
 विधं कावुं तहा करेमि । अं तुह इच्छिणं तं मे भण्णाहिं सि । ( जयतु जयतु भट्टिनी । भट्टिनी ।  
 देवी भण्णसि—न मे मत्सरस्यंय कालः । तेन वल्लु बहुमाणं वर्धयितुं उवस्यया सह निगडवन्धने  
 कृता मातृविका । मत्तनुमन्धसे प्रार्थयुवस्य श्रिय कर्तुं तथा करोमि । यत्तमेष्टं सन्धे भण्णसि । )

इरावती—खामरिए । विण्णायेहि देवी—का वधं भट्टिखी खिण्णो जेतुं परिमण्णसिण्णो  
 धंसिरो मह अण्णमहो । कस्स वा पत्तावेण धमं जलो वद्धदिं सि । ( नागरिके । विजापय  
 वेदीम्—का वधं भट्टिनी नियोजयितुम् । परिणमनिग्रहेण दणितो मय्यनुग्रहः कस्य वा प्रसादेनायं  
 जनो वर्धत इति । )

वेदी—सह । ( तथा । ) [ इति निष्क्रान्ता । ]

निपुणिका—तो धाप वनकर महाराजको ही क्यों नहीं मना लेती ।

इरावती—परी पगली ! दूसरोसे प्रेम करनेवासे धार्यपुत्र हमारै जिये वैसे ही हैं जैसे  
 उनका मित्र । उस दिन मैंने उनके मनानेपर भी वो उनकी बात न माननेकी ठिठार कर री है  
 उसीको धोनेके लिये मैं यह सब कर रही हूँ ।

निपुणिका—इपरसे धाए स्वामिनी, इपरसे ।

[ दोनों धूषती है । ]

वेदी—[ धाकर ] जय हो, स्वामिनोकी जय हो । महाराजीने कहाथा है कि अब हम लोगोंको  
 महाराजसे रुठे नहीं रहना चाहिए । मैंने तुम्हारी बात रखनेके लिये ही मातृविका धोर उसकी  
 राखीको बांध रखना है । यदि धार्यपुत्रको मनानेकी बात तुम्हें भी अच्छी हो तो मैं उतका उपाय  
 करूँ । तुम्हारी जो इच्छा हो वह मुझे कहना देना ।

इरावती—देखो नागरिका ! महाराजीसे जाकर कह देना कि उनके काम करानेवाली हम  
 कौन होती है । अपनी दातियोको बांधकर उन्होंने मुग्धपर कृपा दिखाई है । उनकी कृपा न हो तो  
 हम लोगोंका इतना मान कैसे हो ।

वेदी—मन्था । [ चती जाती है । ]

निपुणिका—[ परिक्रम्यावलीक्य च ] भट्टिणि । एते दुबावहेसे समुद्रपरप्रस्त विपणिको  
विष वलीवहो घग्जगोवधो आसीसो एव सिद्धाभदि । ( भट्टिनी । एम द्वारोहेसे समुद्रपृहस्य  
विपणिकत इव वलीवदं आसंगोत्तम आसीन एव निद्रायते । )

हरावती—अन्वाह्रिद । ए वधु सावसेसो विसविभारो ह्ये । ( अत्याहितम् । न धनु साव-  
रोपो विपविकारो भवेत् । )

निपुणिका—पतण्णमुहवण्णो वीसह । अयि अ धुवसिद्धिणा चिद्वन्दो । त ते अतज्जुण्णज्ज  
पाव । प्रपन्नमुसभणो हरयते । अयि अ ध्रुवसिद्धिणा चिकित्तिव । तदस्पावज्जुणीय पापम् । )

विदूषक—[ उस्वप्नायते ] भौदि मालविण् । ( यथंति मालविके । )

निपुणिका—सुध भट्टिणीण् । कस्त एते अतण्णिप्रोअसपादलो विससत्तण्णिणी हवातो ।  
अवपात्त इवो एव सोत्थिवाअससमोदएहि तुणिस पुणिरिअ सपव मालविअ सिवियावेदि । ( ध्रुव  
भट्टिन्या । कस्तए धाअमनियोगसन्गादने विअवसनीयो हतात्त सर्वकालमित एव स्वत्तिवाअनमोदके  
मुनि पूरयित्वा साम्प्रत मालविण् स्वप्नायते । )

विदूषक—हरावती अविह्वलती होहि । ( हरावतीपतिवायती भय । )

निपुणिका—एद अन्वाह्रिद । इम धुमज्जुभोरअ अह्वयण्ण् इमिया धुअण्णुविलेख अण्णकट्टेण  
अन्नपरिदा भाअहस । ( एतदव्याहितम् । इम सुअपमीअ अह्वयण्णुपनेन धुअण्णुविलेखेण अण्ण-  
काण्णेअ अन्नान्तरिता भाययिण्णामि । )

हरावती—अरिहृदि एव किरणो उअहवस्त । ( अर्हत्येव कृत्स्न उपरवस्य । )

[ निपुणिका विदूषकस्योपरि अण्णकाण्ड पाठयति । ]

निपुणिका—[ धूमकर धीर देसकर ] यह देखिए स्वामिनी ! जैसे हाटमें सेटा हुआ चींच  
नींद लडा है वैसे ही धूम गीनमभी समुद्रपरके द्वारपर बंटे से रहे हैं ।

हरावती—यह तो बडा कुप हुआ । कहीं विपका विकार अभी क्या न रह गया हो ।

निपुणिका—पर इनका मुँह तो बडा प्रसन्न दिखाई दे रहा है धीर फिर स्वयं प्रवृत्तिदिने  
इनका विष उतारा है । इसनिमे पवरावती कीई बात नहीं है ।

विदूषक—[ स्वप्नमें उठबटाता हुआ ] हे देवी मालविका !

निपुणिका—सुना स्वामिनी ? अन्ना काय करानेक सिव इस अभागेका कौन विश्वास  
करेगा । क्या तो यह आधक दिए हुए पूजाके सद्वृत्तसे पेट भरा करता है धीर प्राज्ञ स्वप्नमें  
इस मालविका मूक रहती है ।

विदूषक—धुम हरावतीसे भी भागे बट जायो ।

निपुणिका—यह तो बडी बुरी बात है । साँपसे डरनेवाले इस नामनको अब इसी साँप-  
जैसी देड़ी समझाव भोटमें लडी होकर डराती हैं ।

हरावती—ऐसे कृत्स्नके साथ ऐसी ही कुचान बननी चाहिए ।

[ निपुणिका विदूषकके ऊपर सनडी गिर देती है । ]

विदूषकः—[ सहसा प्रभुष्य ] अविद्या भविता । भो वधस्त । सप्यो मे उपरि पडियो ।  
( भविषा भविषा । भो वयस्य । सप्यो मे उपरि पतितः । )

राजा—[ सहसोपमृत्युम् ] सखे न भेतष्यं न भेतप्यम् ।

मालविका—[ मनुसृत्य ] भट्टा । मा दाव सहसा खिक्कम । सप्यो सि भखीप्रदि ।  
( भतः । मा तावत्सहसा निष्काम । सपं इति भष्यते । )

हरायती—हूँ हूँ । भट्टा दबो एण्य भाववि । ( हा भिक् हा विक् । भतं इत एव भावति । )

विदूषकः—[ सप्रहासम् ] कहं बण्डकट्टु एवं । भहं उल जाळे नं मए केवईकण्टएहि वंसं  
करिम सप्यसा उपरि घससो किवं सं मे कसिवं सि । ( कयं इण्डकाठमेतद् । भहं पुनर्वाणि  
पौममा केतकीकण्टकईदं कुरवा सपंस्योपर्ययथाः फूत तन्मे कलितमिति । )

[ प्रविश्य पटाक्षेपेत् । ]

मकुलावतिका—मा दाव भट्टा पवित्तु । इह कुडिलपदं सप्यो विम धीसदि । ( मा  
तावद्वर्ता प्रविद्यतु । इह कुडिलगतिः सपं इव हस्यते । )

हरायती—[ स्तम्भाभरिता राजानं सहसोपेरम् ] भवि सिधिविषयमसोरहो विवासकेयो  
मिठुणस । ( भवि निविघ्नमनोरथो दिवासज्जेतो मिठुणस्य । )

[ सर्वे हरायती इष्टा संभ्रान्ताः । ]

राजा—प्रिये ! अपूर्वोऽप्यमुपचारः ।

हरायती—यउतावलिए । विट्ठिया बुकाहिघारविसत्ता संपुण्णा दे पइण्णा । ( मकुलावतिके ।  
दिण्ठया कुर्याभिसारविषया संपुण्णां ते प्रतिज्ञा । )

विदूषकः—[ सहसा जाणकर ] हाय, हाय । घरे मित्र ! मुझपर साँप भा गिरा है ।

राजा—[ सहसा प्रागे बहकर ] बरो मत मित्र ! बरो मत ।

मालविका—[ पीछे-पीछे ] स्वामी ! ऐसे न जाइए । वह कहा रहा है कि साँप है ।

हरायती—हाय, हाय ! स्वामी इधर ही दीजे भा रहे हैं ।

विदूषकः—[ हँसकर ] घरे ! यह तो सक्दी है । मैं तो समझ था कि मैंने केतकीके काँटिसे  
साँपके दाँतोंका चिह्न बनाकर जो साँपपर कसक लगाया था उसीका मुझे फल मिल रहा है ।

मकुलावतिका—[ चर्चा छूटते हुए भाकर ] स्वामी ! ऊपर न जाइए । यहाँ टेडा खलता  
हुआ कुछ साँप-जैसा दिखार्द दे रहा है ।

हरायती—[ खंभेके पीछे छिपी हुई राजाके पास भाकर ] कहिए ! दिनमें मिलनेका संकेत  
करनेवाले जोड़ेके भक्की साथ पूरी हो गई न ।

[ सब हरायती को देखकर पचका जाते हैं । ]

राजा—प्यारी ! यह तुम कँसी धनोधी बात कर रहो हो ।

हरायती—मकुलावतिका ! मुझे बगार्द है । इन दोनोंको मिलानेकी जो तुने प्रतिज्ञा की थी  
वह भाज पूरी हो गई ।

। दधुसावतिका—पत्नीदधु जट्टिणी ! कि मए किअं त्ति देवो पुच्छिअण्यो । उदुदुरा वाहरन्ति त्ति कि देवो पुहोपेणं चरिअत्तं विरमदि । ( प्रतीदधु भट्टिनी ! कि मया इत्तमिति देवः प्रष्टव्यः । उदुदुरा व्याहरन्तीति कि देवः पूषिण्या वयित्तं विरमति । )

। विदूषकः—मा दाव । भोदीए वंत्तएमत्तेए अत्तअवं परिणयात्तल्लएणं विमुमरिदो । तुमं उए अज्जदि एसादं ए गेहंति । ( मा तावत् । भवत्या दशनमात्रेणाववात्रान्त्रिणातल्लनं विस्मृतः । त्वं पुनरजापि प्रयादं न वृह्णासि । )

इरावती—कुविदा दाएि अहं कि करिस्सं । । ( बुपितेदामीअहं कि करिष्यामि । )

राजा—एवमेतदस्थाने कोप इत्यनुपपन्नं त्वयि । तथा हि ।

कदा मुखं वरतनु कारणादत्ते त्वागतं अणमपि कोपपात्रताम् ।

अपर्वणि ग्रहयन्तुपेन्दुमण्डला विभावरी कथय कथं भविष्यति ॥१६॥

इरावती—पट्टणो त्ति सुदुहु वाहरिअं अज्जउत्तेए । अण्णसंक्कत्तेसु अण्णएणं मामहेएसु अह उए कुपेअं ततो ए अहं हस्सा भवेअं । ( प्रस्थान इति मुष्णु व्याहृतवार्थपुत्रेण । अण्यत्तत्रा-नोप्यस्माकं भागपैत्रेषु यदि पुनः कुप्येयम् ततो मन्वहं हास्या भवेवम् । )

राजा—न्यमगमया वल्लवसि । अहं पुनः सायमेव कोमस्थानं न पश्यसि । कुतः—

नार्हसि कृतापराधोऽप्युत्सवदिवसेषु परिजनो बन्धुम् ।

इति मोचिते मयैते प्रणिपतिहं मामुपगते च ॥१७॥

बधुमावतिका—प्रोप न करे स्वामिनी ! मैंने क्या किया है ? देवसे ही पूछ लीजिए । वही भला पृथ्वीपर पानी बरसानेके लिये देव मेंदुबोंकी टरं-टरंकी बाट खोदे ही जोहते हैं ।

विदूषक—भयो ! ऐसा न कहिए । उस दिन महाराज न चापके वीरों पडे, हाथ जोड़े, पर चाप टगने मत न हुई, कठकर पत दीं और इधर महाराजकी आज्ञापनसाहस देखिए कि चापकी देखते ही इन्हींने पिछली छप बाणें उठाकर एक घोर रस दी, फिर भी चाप प्रतीतक लिची हुई हैं ।

इरावती—लिची होकर भी मैं इनका क्या कर लूंगा ?

राजा—पर बिना चातके छटना जो तो तुम्हें घोमा मही देता । क्योंकि सुन्दरी ! वलाघो तो हमने पहले क्या बभो तुम्हारा मुह बिना बारणके लख भरके लिये भी सात हुमा है ? भला बलाघो बिना प्रहणवो रात घाए क्या बभो बन्द-प्रहण सग सजता है ॥१६॥

इरावती—अह तो चापपुत्रने ठीक कहा कि मैं बिना बारणके रूठ रही हूँ । हमारे स्वामी वही घोर मन लगावें घोर उलपर हूए रूठने भयें, यह तो उचयुज जग हूँआई की बात है ।

राजा—तुम तो सब बाणें उल्टी ही मगमनो हो । मुझे तो सबमुष इसमें छठनेकी कोई बात दिताई ही नहीं देती है । क्योंकि मैंने तो इन दोनोंकी इसीलिये छोड़ दिया कि आपने मेभकोंको रासवके दिन अथराए कश्मेपर भी बांधकर नहीं रसना चाहिए । वहाँ से छूटनेपर मे दोनों मुझे प्रणाम करनेके लिये ही वहाँ बनी घाई थीं ॥१७॥



इरावती—खिन्नशिष्ट ! गच्छत । देवीं विष्णुणावेहि—द्विट्ठोमधवीए पक्खवत्तो एं धञ्जत्ति ।  
(निपुणिका ! गच्छ । देवी विज्ञापय—दृष्टो भक्त्याः पक्षपातो गन्वचेति ।)

विपुणिका—तह । (तथा ०) [इति निष्क्रान्ता ।]

विदूषक—[प्रातःपगतम्] भहो अस्त्यो संपद्दिवो । बन्धसुबन्धो गिहकयोवो विहातिप्राए  
प्राप्तोए पद्दिवो । (ग्रहो धनर्थः संपत्तितः बन्धनशब्दो गृहकपोतो विहातिकाना प्राप्तोके पत्तितः ।)

निपुणिका—[प्रविश्यापवार्थं] भट्टिस्सि ! जविज्जाविट्ठाए माह्विअए आचविअदं एव्वं षण्णु एदं  
सिअव्वुसंत्ति । (भट्टिनि महच्छादष्टया मापविकयास्यातम्—एय खस्वेतमिर्वृत्तमिति ।) [इति  
कण कथयति ।]

इरावती—[प्रातःपगतम्] उव्वयक्खं । सक्खं भक्खं एतय बह्मभण्डुणा किंओ पधोअ । [विदूषकं  
दिलोस्य प्रणाशम्] इक्खं इमस्स कामतन्तसच्चियस्स खीवी । (उपपन्नम् । एतन्नदमन्न प्रह्लादशुना  
कृतः प्रयोगः । इयमस्य कामतन्तसच्चियस्य नीतिः ।)

विदूषक—भोवि ! जवि खोद्विअं एवकं वि अरसरं पठेअं एं सए अस्तभक्खं वेतिरो हवे !  
(भवति ! यदि नीतिगतमेकमप्यक्षर पठेय मनुष्याश्चमया-प्रेपितो भवेत् ।)

राजा—[प्रातःपगतम्] कथं नु अस्त्यन्मासञ्जुटादातमानं भोचविष्णामि ।

[प्रविश्य]

जयसेना—देव ! कुमारी चतुस्रस्त्री कन्धुअं अणुआवन्वी पिङ्गलवारारेण बलीअं तात्तिहा  
अञ्जुसिअण्णा देवीए पवावकिससअं विअ वेअभाणा स खिअि पकिअि पडिअवज्जइ । (देव ! कुमारी  
चतुस्रस्त्रीः कन्धुकमनुष्यास्त्री पिङ्गलवारारेण चतस्रस्रसिताञ्जुनिपण्या देव्याः प्रयासकिससपमिअ  
वेपमाना न किञ्चिःप्रकृतिं प्रतिपद्यते ।)

इरावती—निपुणिका ! जाओ तो, महाराजीसे कह प्राप्नो कि आप हमें जैसा मानती है,  
वह भाव हमने वैसा लिया ।

निपुणिका—जी अच्छा । [पत्नी जाती है ।]

विदूषक—[मन ही मन] भरे यह तो सब गडबड घोटाला ही क्या । दिनडेसे छूटा हुआ  
कञ्जुतर दिल्लीके सामने झा पड़ा है ।

निपुणिका—[प्राकर भ्रमण] स्वामिनी ! बनी मापविका मुझे पिनी थी, उसने बतलाया  
कि यह सब ऐसे हुआ है । [कान्धे कहती है ।]

इरावती—[मन ही मन] समझ गई, यह सब इसी सोमनकी करलूत है । [विदूषकको देखकर  
प्रसट] यह सब इसी श्रेम-नीतिके मनीची भास है ।

विदूषक—देवि ! यदि मैं नीतिका एक अक्षर भी पढा होता तो क्या महाराजको मैं कभी  
ऐसे फँसने देता ।

राजा—[मन ही मन] अब इस सकटसे कैसे छुटकारा पाया जाय ।

जयसेना—[प्राकर] देव ! कुमारी चतुस्रस्त्री बँदके पीछे दौड़ रही थी कि दतनेमे ही एक  
पीसा बन्दर वहाँ झा पहुँचा । उसे देखकर कुमारी बहुत डर गई है और देवीकी गोदमें पड़ी  
हई, माँपीसे हिलते हुए पक्षके उमान भर-भर नाँप रही है । अभीतक उन्हें चेत नहीं हुआ है ।

राजा—कष्टं कष्टम् । कातरौ बालभावः ।

इरावती—[सावेगम्] तुवरदु प्रज्ज्वलतो एवं समासतिवुं । मा ॥ संतासजणितो विमारी  
वड्डदु । (स्वरतीमायंपुत्र एवा सयाश्वाप्तयितुम् । मास्याः सत्रासजनितो विमारी वर्धताम् ।)

राजा—अपनेनामहं संसत्पयामि । [इति सत्वरं परिक्रामति ।]

विदूषकः—साधु रे विद्वत्तवाखर साधु । परित्तादो तुए सपक्खो । (साधु रे ! विद्वत्तवानर  
साधु । परित्राउस्त्वया स्वपदाः ।)

[निष्क्रान्तौ राजा विदूषकश्च इरावती निपुणिका प्रतीहारी च ।]

मालविका—हला देवि चिन्तिष्य देवदि मे हिषधं । ए जाणो षडो वरं किं वा अणुहविहव्यं  
हविस्तदि ति । (सक्ति । देवो चिन्तयित्वा देवते मे हृदयम् । न जानेऽहः परं किं वानुभवितव्यं  
भविष्यतीति ।)

[निष्यथे]

अश्वरिषं अश्वरिषं अणुणो एव्य पंचरत्ते रोहसस्त मुउत्तेह् संलद्धो सवणीभासोभो जाय देवीए  
एणिवेदेमि । (भाअर्येमाअर्येम् । अणुणं एव पंचरत्तने रोहसस्त मुकुर्वः संगदस्तपतीयायोः यावद्देव्यं  
निवेदयामि ।)

[उभौ धृत्वा प्रहृष्टे ।]

बहुलावलिका—मास्तसितु सही । सचव्यहम्प्या देवोः । (पाशयितु सही । सत्यप्रतिज्ञा  
देवी ।)

राजा—बड़ा दुःख हुआ, बड़ा दुःख हुआ । बच्चोंका तो डरनेका स्वभाव ही होता है ।

इरावती—[एवराकर] बसिए धार्यपुत्र ! अटपट चलकर उसे संभालिए । कहीं इस  
पहराहटमें उसे घोर दुःख न हो जाय ।

राजा—मैं चलकर अभी उसे लेतने लाता हूँ । [अटपट धूपते है ।]

विदूषक—वाह रे पीले बन्दर ! वाह, धाम तो तुझने हमारे महाराजकी सचमुच बचा लिया ।

[राजा, विदूषक, इरावती, निपुणिका, प्रतीहारी सब चले जाते हैं ।]

मालविका—उभौ ! जब महाराजकीका ध्यान आता है तो मेरे रोगटे सने हो जाते हैं धब  
न जाने क्या-क्या दह भोगना बदा है ।

[निष्यथे]

बहा धार्यं है ! बड़ा धार्यं है । अभी इस मुजहरे अश्वीकके रोहस [वाह] पूरे हुए, पांच रातों  
भी नहीं बीठ पाई कि उसमें कसियां फूट आई है । धर्व, महाराजकीको बचा धार्यं ।

[उभौ मुनकर प्रसन्न होतौ हैं]

बहुलावलिका—सो सखी ! पीरन परो । देवी जो एक बार बह देती है उधरो पीछे नहीं  
हटती ।

मालविका—तेछ हि श्मश्वरुणपालिकाय् चिट्टदो होमि । (तेम हि श्मश्वरुणपालिकायाः पृष्ठतो नयामि ।)

बकुलावसिका—तह । (तथा ।)

[इति निष्क्रान्ते]

॥ इति चतुर्थाऽङ्कः ॥

मालविका—वो चलो, हम सोच भी प्रमदवनकी मालिनके पीछे-पीछे वही जमी चलें ।

बकुलावसिका—चलो ।

[दोनों चली जाती हैं ।]

चौथा अङ्क समाप्त हुआ ।

## पञ्चमोऽङ्कः

[ततः प्रविशत्युद्यानपालिका ।]

उद्यानपालिका—उबलितो मए किदसङ्कारविहिरणो तवणोधातोमस्त वेदिभावन्यो जाव  
अप्राद्विदलिनोभ्रं घत्ताणं देवोए शिवेवेमि । [परिकल्प्य] अहो देवस्त अशुकम्पणीया मातविधा ।  
तस्ति तह अण्डिधा देवो इमिल्या अतोअशुकुमुमनुत्तनेण पत्तावमुमुहो हविस्सदि काह्णु ख अलु देवो हवे ।  
[विलोक्य] अहो एसो देशीए परिअलम्बन्तरो किवि अशुकुमुदान्तद्विर्बं मंजुतं गेण्हिम अशुस्तालायो  
कुम्भो सारसिभो लिङ्गावदि । पुण्ड्रवदावणं । [ततः प्रविशति ययामिदिष्टहस्तः कुम्भः ।]  
सारसिभ काह्णु वत्पिहोसि । (उपक्षिप्तो मया कृतवल्कारविधित्तपनीयाशोकस्य वेदिकावन्धः ।  
यावदनुच्छिन्ननियोगगारगानं देव्यं निवेदयामि । अहो देवस्यानुकम्पनीया मातविधा । तस्यां तथा  
अण्डो देव्यनेताशोककुमुमवृत्ताम्भम प्रतावसुमुञ्जो अविध्यति । कुत्र नु अलु देवो भवेद् । अहो एष  
देव्याः परिजनाम्भस्तर, किमपि अशुकुमुद्राशान्छिता भन्नुया गृहीत्वा अशुगलातः कुम्भः सारसिको  
निष्कामति । प्रस्यमि सावदेनम् । सारसिक । कुत्र प्रस्वितोऽश्रित् ।)

सारसिक.—महप्रिए विज्जाभरिभाणं अहालाणं खिन्ववदिसिण्णं भासिहं पुरोहिदस हार्यं  
पावहसं । (मयुकरिके । विद्याभरिताला आहाणाना वित्पदक्षिणा भासिकी पुरोहितस्य हस्तं  
प्रापदिष्यामि ।)

मयुकरिका—अह किंछिनितं । (अथ किमितिम् ?)

## पाँचवाँ अङ्क

[मासिन घाटी है ।]

मासिन—मिने सब पास-पास निकालकर इस गुनहारे अशोककी घेठ ठीक इंगले बाँध दी है ।  
मह सहीका काम सब ठीक हो गया है । पशु देवोको बता भाऊ [धूमकर] भगवानने बेचारी  
मासिनकाकी साज रखली । उसपर बिगडो बँठी हुई महाराजोको, अब अशोकके फूलनैका  
उमानार मिलेगा तो वे मिलत उठेंगे । पर इस समय महाराजो होंगे कहाँ ? [दिलकर] अरे !  
यह महाराजोके रनिवासका नुवडा सेवक सारसिक साँघसे नन्दकी हुई पिटारी लिए हुए, रनिवाससे  
निकला चला आ रहा है । पशु, शरीसे पूछ देखूँ । [हाथसे पिटारी लिए हुए कुबडा दिखाई  
देता है ।] कहो सारसिक ! कियर पसे ?

सारसिक—मयुकरिका ! विद्या आहाणोंको सदा महीने-महीनेपर जो दक्षिणा दी जाती है  
अहो एत बाँटेके सिधे पुरोहितोंको सौंपने जा रहा हूँ ।

मयुकरिका—अह दक्षिणा क्यों बाँटी जा रही है ?

सारसिकः—अश्वत्थवृक्षे सेखावदो जण्डलुरंगरवखलो त्रिदत्तो मृदुदारयो वसुमित्तो तवपत्रवृक्षे तस्मै भाउसखिषितं शिखुसदसुवन्धपरिमाखं वखिलखं देवो दखिलखोएहि परिमाहेवि । (यतःप्रभृति येनापतियेज्जतुरंगरखलो निमुक्तो अतुंदारको अमुमित्तस्ततः प्रभृति उत्यामु-निमित्तं निष्कसतसुवर्णपरिमाणा दक्षिणां देवो दक्षिणीयैः परिव्राहपति ।)

मधुकरिका—अहं कहि देवो । किं वा अश्वत्थिवृक्षे । (अथ कुत्र देवो । किं वानुतिष्ठति ।)

सारसिकः—मंगलपरे भाउसख्या भविष्य विदम्भकित्तावो भादुरा । वीरसेखेण पेतितं लेहं सेहकरेहि वाइअमाण मुखावि । (मङ्गलगृह प्राशनस्था भूत्वा विदम्भविषयाद्भ्रात्रा वीरसेनेन प्रेषितं लेखं लेखकरैर्दक्ष्यमानं शृणोति ।)

मधुकरिका—को उख विदम्भराअपुत्तलो सुखीअवि । (कःपुनर्विदम्भराजवृत्तान्तः श्रूयते ।)

सारसिकः—वसोकिदो वसु वीरसेखपत्रवृक्षेहि मसुषो विजयदंटेहि विदम्भलाही । मोइवो से वाअवो माहवसेखो इवो थ सेख महासाराखि रअसखि अहणखि सिपपारिमा-भूषणं परिमलं जवाअणीकरिअ अट्टिणो सभाअं पेतितो त्ति । (वसोहितः किञ्च वीरसेन-प्रमुखैर्नर्तुद्विजयदण्डैर्विदम्भलायः । मोचितोऽस्य वावावो भावयसेनः । वृत्तञ्च तेन महासाराखि रत्नानि वाहनानि शिल्पकारिकासूयिष्ठं परिजनमुपायनोक्त्य भवुः । एकार्णं प्रेषित इति ।)

मधुकरिका—अच्छ अश्वत्थिवृक्षे अत्तलो सिखोअं । अहं वि देवि पेतितस्तं । (गण्ड्यानु-तिष्ठान्तो विदोगम् । अहमपि देवो प्रेषिष्ये ।)

[इति निष्कारणो ।]

॥ प्रवेशकः ॥

सारसिक—जबसे अश्वमेध यज्ञके घोडोंकी रक्षाके लिये राजकुमार वसुमित्र सेनापति बनाए गए हैं, तभीसे उनके चिरंजीवी होनेके लिये योग्य ब्राह्मणोंको चार सौ हजार-मुद्राओंके बराबर धन दक्षिणामे दिया जाता है ।

मधुकरिका—अच्छा यह तो बताया कि महाराजनी है कहीं वीर क्या कर रही है ?

सारसिक—महाराजनीके भाई वीरसेनने विदम्भसे जो पिट्टी भेजी है, उसीको वे मंगल-पत्रमें बँधी हुई अपने लेसकसे बँधवाकर सुन रही हैं ।

मधुकरिका—विदम्भके राजाका क्या समानार मिला ?

सारसिक—महाराजको विजयिनी सेना लेकर वीरसेनने विदम्भके राजाको जीत लिया है वीर उनके चचेरे भाई भावयसेनके कुछा लिया है । साथ ही उन्होंने एक दूतके साथ बहुत-से मनमोल रत्न, हथौड़ी, घोड़े और बहुत अच्छे-अच्छे कलाकार सेवक, महाराजके पास भेजने भेजे हैं ।

मधुकरिका—अच्छा, भाग्यो, तुम जो अपना काम कर भाग्यो मैं भी अभी महाराजनीके दर्शनको जाती हूँ । [दोनों जाते हैं ।]

॥ प्रवेशकः ॥

[ततः प्रविशति प्रतिहारी ।]

प्रतीहारी—आएतम्हि असोमसङ्कारवापुदाए देवीए—विष्णवेहि अज्जउत्तम् । इच्छामि अज्जउत्तेए सह असोमसङ्खस्त पसुणुमिच्छे पञ्चसीकम् त्ति । ता ज्ञाय यम्माएण गवं देवं परिबालेमि । (आज्ञाप्यास्यतोऽसोमकारव्यापृतया देव्या—विज्ञापयाम्यपुत्रम् । इच्छाम्याम्यपुत्रेण सहोऽसोमवृत्तस्य प्रधूनतश्चो प्रत्यक्षीकतुमिति । उवाचदमसिनपतं देव प्रतिपालयामि ।)

[इति परिक्रामति ।]

[नेपथ्ये वंतासिकी]

प्रथम—विजयतां विजयतां देवः । विख्या दग्दरेव रिपुसिरेःसु वर्तते देवः ।

परभृतकलव्याहरेषु त्वमात्तरतिर्मघु नयसि विदिशातीरोद्यानेष्वमङ्ग इवाङ्गवान् ।

विजयकरिष्यामालानत्वं गतैः प्रबलस्य ते वरद वरदारेष्वोष्ट्रवैः सहावनतो रिपुः॥१॥

द्वितीयः—

विरचितपदं धीरप्रीत्या सुरोपमसुरिभि-

श्चित्तममयोर्मप्येकृत्य स्थितं ऋषकैशिकान् ।

तव हृतवतो दण्डानीकैर्विदर्भपतेः श्रियं

परिषगुरुभिर्दोर्भिर्विष्योः प्रसन्न च रुक्मिणीम् ॥२॥

[प्रतीहारी धात्री है ।]

प्रतीहारी—मशोककी पूजाकी घूम-घाममे लगी हुई महारानीमे आज्ञा दी है कि यामो महाएजते कह दो कि मैं चाहती हूँ आर्यपुत्रके नाम ही बतकर फूले हुए मशोककी घोषा देखूँ । तो चलूँ न्यायासनपर बंटे हुए महाराजके पास पहुँचूँ । (घूमती है ।)

[नेपथ्यमे दो वंतासिक]

पहला—जय हो, देवकी जय हो । वधाई है महाराजकी कि आपने अपनी शक्तिये अपने शत्रुघोँकी परी तले रौंद दिया ! हे मनवाहा यर देनेवाले राजा ! आप तो इधर सादाए कामदेवके समान, कोयलकी सुन्दर कूक सुनते हुए विदिशाके तीरपर फँसे हुए उपवनमें घटना वसन्त बिता रहे हैं उधर भाषका बलवान् जन्तु घरदाके तीरपर सड़े हुए उन वृत्तोंके साप-साप भुका दिया गया है जो धन माषको सेनाके विजयो हाथियारके बीपनेके सृष्टि वने सहे हैं ॥१॥

दूसरा—हे देवताओंके समान राजा ! विदर्भमें दो ही तो बली-बली घटनाएँ हुई हैं । एक तो भाषका अपनी सेना भेजकर विदर्भके राजाकी हराना, इएरी, भगवान् श्रीकृष्णजी-द्वारा उनरी भग्नताके समान बली बली मुनाघोंके रुक्मिणीजीका हरा जाना । धीरोति प्रेम रखनेवाले रुक्मिणी कोम धन इन दोनों घटनाओंके गीत बना-बनाकर गा रहे हैं ॥२॥

प्रतीहारो—एसो जअसहसुइइवपत्त्याखो भट्टा इदो एख ध्याअच्छदि । अहं कि वाव इमत्स प्मुहादो सोप्रादो प्रोसरिष्य खन्भान्तरिवा होमि । ( एष जयशब्दसूचितप्रस्थानो भर्तव एवागच्छति । अहमपि तावदस्य प्रमुखात्त्वोपादयसृत्य स्तम्भान्तरिता भवामि । [ इत्येकाते स्थिता । ]

[ प्रविश्य सवयस्यो राजा ]

राजा—

कान्तां विचिन्त्य सुलभेतरसंप्रयोगां श्रुत्वा विदर्भपतिमानमितं पलैश्च ।  
धाराभिरातप इवाभिहतं सरोजं दुःस्त्रायते मम मनः सुखमश्नुते च ॥३॥

विदूषकः—जह घहं पैबिवागि तह एकुन्तसुहिबो भवं हविस्सदि । ( यथाह प्रेक्षे तथा एकागतसुखितो भवान्भविव्यति ।

राजा—कथमिद्य ।

विदूषकः—अज किल देवोए एत्वं पंडितकोत्तई भणित्ता—अधरवदि । जं तुमं पत्ताहृणगव्वं अहति तं वंसेहि मालविघ्नाए सरोरे विवाहरोवायं ति । ताए सविसेतामंकिवा मालविभा । तत्तहीदी कथाभि पूरए भयरोवि मणोरहं । ( अद्य किल देव्यं पण्डितकीतिको भणित्ता— भगवति । यत्त प्रसाधनमवं अहति तद्व्यं मालविकायाः खरीरे विवाहनेप्यमिति । तथा सविरोपासंकृता मालविका । तत्रभवती कथाचित्पूरयेज्जवतोऽपि सरोरपम् । )

राजा—सखे ! मयपेक्षामनुप्राप्य अनया धारिष्या पूर्वचरितैः सभाप्यत एवंपत् ।

प्रतीहारी—इत जयजयकारसे जान पडता है कि महाराज वहाँसे उठकर इधर ही चले पा रहे हैं । मैं भी उनके साथे साथे चलती हुई भीड़से नचकर सभेके पीछे खड़ी हो जाती हूँ ।

[ एक ओर खड़ी हो जाती है । ]

[ विदूषकके साथ राजा भाते है । ]

राजा—एक ओर जब मैं उस दुर्जन प्यारीकी बात सोचता हूँ और दूसरी ओर जब मैं सुनता हूँ कि मेरी सेनामे विदर्भके राजाकी हरा दिया है तो मेरा मन उस कगलके समान एव साम तुलाँ भरि खुशी होता है जिसपर बर्बाद हुए भी यह रही है और साथ साथ पानी भी बरस रहा हो ॥३॥

विदूषक—मैं तो समझता हूँ कि अब आपकी पूरा सुल ही सुल मिलेगा ।

राजा—कैसे ?

विदूषक—आज पंडिता फोसिकीसे महारानीने कहा था कि अपवती आपको सिंगार करनेकी विद्याका जो धमक है वह आप मालविकाको विवाहके सिंगारसे सजाकर दिखाइए । इसपर उन्होंने मालविकाकी बड़े गुहाबने डंभसे सजा दिया है । कौन जाने ये ही आपकी साथ पूरी कर दें ।

राजा—हाँ बिन ! महारानी धारिखीने पहले भी मेरे मनकी बहुत सी बातें की है इसलिये यह भी परदेँ तो कोई अचरन नही है ।

प्रतीहारी—[ उपसृज्य ] हेतु हेतु भट्टा । देवी विष्णोवैवि—तवलीभातीप्रस्त कुमुमसह-  
वंसखेह मह भारम्भो सफलो करोष्यु सि । ( जयतु जयतु यती । देवी विज्ञापयति—तपनीया-  
चोक्तस्य कुमुमसहस्रधनेन यमारम्भः सफलः क्रियतामिति । )

राजा—तनु तत्रैव देवी तिष्ठति ।

प्रतीहारी—ग्रह इं । जहरिहसंघासुहिषं घन्तेउरं विसज्जिध मातविप्रापुरोएण भक्तशो  
परिघाणेण राह देवं पडियातेवि । ( अथ किम् । यथाहंभ्यान्सुखितमन्त.पुरं विभुज्य भासविका-  
पुरोनेत्तारमन. परिजनेन सह देव प्रतिपादयति । )

राजा—[ सहस्रं विद्रूपकं विलोक्य ] अयसेने । गच्छप्रतः ।

प्रतीहारी—एतु एतु देवो । ( एत्वेतु देवः । ) [ इति परित्यज्यति । ]

विद्रूपकः—[ विलोक्य ] ओ यमस्य । किञ्च परिपुत्तजोष्यलो विध वसन्तो यमववणै  
सखीमवि । ( ओ वयस्य । किञ्चिपरिकुसयोवन इव वसन्तः प्रमववने सख्यते । )

राजा—दधाह भवात् ।

अग्ने विकीर्णकुरवकफलजालकमिद्यमानसहकारम् ।

परियामामिष्टुखमृतोरुत्सुकयति यौवनं चेतः ॥४॥

विद्रूपकः—[ परिभ्रम्य ] अहो । अन्नं तौ विखलयेवत्यो विध कुमुमःपवएहि तवलीभा-  
तीश्री । भोलोमनु भवं । ( अहो । भवं स वत्तनेपथ्य इव कुमुमस्तवकैस्वपनोयाशोकः । यवतोकां  
भवाद । )

प्रतीहारी—[ पाश जाकर ] जय हो, स्वामीकी जय हो ! देवीने कहवाया है कि मेरे साथ  
बलकर उस फूलें हुए गुनहरे शशोकको देखकर मेरा सब अस्व सफल कर दीजिए ।

राजा—क्या देवी बहीवर है ?

प्रतीहारी—जी हाँ ? रजिवासकी सब रजिवासकी उपायोग्य आदर करके के मालविका और  
दासियोंके साथ बंठी महाराजके लिये बात जोह रही है ।

राजा—[ प्रसन्न होकर विद्रूपककी ओर देखकर ] जयसेना ! बतों तो भागे-भागे ।

प्रतीहारी—आइए देव ! जने आइए । [ प्रुगती हे । ]

विद्रूपक—देखो मित्र ! जान पड़ता है कि प्रयत्नवशमे वसन्तकी ख्याती फिर लौट  
आई है ।

राजा—शोक बहते हो तुम । इस बीतते हुए वसन्तमे भी विश्वरे हुए कुरवकने फूल, गर्भ  
वहानीकी सहरे उठने लगे हैं ॥४॥

विद्रूपक—[ कुम्भर ] कुम्भके मुखसे सदा हुआ यह गुनहृष्ट भक्तो देवा जान पड़ता है  
यानी इसका भी निश्चिने स्तिगार कर दिया हो । देखिए तो ।



राजा—रूपाने खतु प्रसवमग्न्यरोऽप्यवभुत् । यदिवानीमनन्यसाधारणीं शोभामुद्बुहति । पश्य—  
सर्वाशोकतरुणां प्रथमं सूचितवसन्तविभवानाम् ।  
निर्वृचदोहदेऽस्मिन्संक्रान्तानीव कुसुमानि ॥५॥

विदूषकः—तह । भो धीमत्तो होदि । मग्नेषु संलिहियेसुवि धारिणी यासपरिवट्टिणीं मातविभ्रं  
अप्यमग्न्येवि । (तथा । भोः विभ्रज्जो मव । अस्मासु सनिहितेष्वपि धारिणी पार्श्वपरिवर्तिनी  
मातृविकामनुमग्नये ।)

राजा—[सहर्षं] सते । पश्य—

मामिधमभ्युत्तिष्ठति देवी विनयादनुत्थिता प्रियया ।  
विस्तृतहस्तकमलया नरेन्द्रलक्ष्म्या यमुमतीव ॥६॥

[ततः प्रविशति धारिणी मातृविका परिव्राजिका विभवसञ्च परिचारः ।]

मातृविका—[आरमगतम्] जाखानि लिमितं कोनुभामंकारसा । तह ॥ मे विधमं विस्तिण्णो-  
पत्तगदं विभ्र सत्तिलं वैषदि । अवि ॥ वविन्नलेवरं वि मे खणलं म्हुतो कुरदि । (जागामि निमित्तं  
कोतुकामंकारस्य ) तथापि मे हृदय विस्तिणीवन्नवतपिय सत्तिलं वेपते । अवि च रक्षिणोत्तरमपि मे  
मपनं बहुतः स्फुरदि ।)

विदूषकः—भो अमस्त । विवाहलोभायैव सविसेसं ॥ सोहृदि मातृविकाम् । (भो वयस्य ।  
विवाहनेपथ्येन उषिणोयं धालु योमते मातृविका ।)

राजा—इसका बैरो फूलना अन्धा हो हुआ, क्योंकि जब इसके भागे सब दुलोंकी शोभा  
पीकी लगने लगी है । देखो ! ऐसा जान पड़ता है कि जिन प्रसोकके वृत्ताने पहले फूलकर  
बसन्तके धामकी सुवता थी थी, उन सबने अपने-अपने फूल इस अशोकके वृत्तकी बे दिए हैं जिसके  
फूलनेका उपाय अभी योड़े दिन हुए किया गया था ॥३॥

विदूषक—हाँ जीबिष्ट, अब आपका काम बन गया क्योंकि हम लोगोंके भा पहुँचनेपर भी  
महारानी धारिणी, मातृविकाको अपने पास ही बैठनेके लिये कह रही हैं ।

राजा—[असन्न होकर] देखो मित्र ! मेरा धावर करनेके लिये उठी हुई महारानीके पीछे,  
अपने कमल-जंघे दोनों हाथ खोले खड़ी हुई मेरी प्यारी मातृविका, ऐसी लग रही है मानो  
पृथ्वीके पीछे राजसदमी खड़ी हुई हो ॥६॥

[धारिणी, मातृविका, परिव्राजिका और जननी दासियाँ दिखाई देती हैं ।]

मातृविका—[मन ही मन] मैं इस बनाव-सिंघारका धर्म तो समझ रही हूँ, फिर भी न  
जाने क्यों मेरा हृदय कमलिनीके पत्तेपर पड़ी हुई पत्तकी बूंदके समान अचोतक काँप रहा है ।  
पर मेरी सार्द धाँप भी धाव बहुत फटक रही है ।

विदूषक—बहो मित्र ! विवाहके सिंगारोंसे सजी हुई मातृविका बिलनी मुन्दर जंचने लगी है ?

राजा—पर्याभ्येवात् । धैरा—

अनतिलम्बिदुकूलनिवासिनी बहुभिरामरस्यैः प्रतिभाति मे ।

सदुगसौरुदयोन्मुखचन्द्रिका हृषिकैरिव चैत्रविभावरी ॥७॥

धारिणी—[उत्प्रेत] जेहु जेहु अन्नवततो । (जयतु जयत्वार्थगुणः ।)

विदूषकः—बहदहु भोरो । (वर्षता भवती ।)

परित्राजिका—बिलपतो देवः ।

राजा—भयवति अभियारथे ।

परित्राजिका—अभिप्रेततिद्विरस्तु ।

धारिणी—[सस्मितम्] अन्नजल ! एत ते अग्नेहि तरणोक्तमहाप्रसन्न प्रसोभो संकेवपरी कनिषो । (धार्यपुत्र ! एव तेस्माभिस्तदस्योन्नतधृष्ट्याशोकः संकेतपूर्व कल्पितः ।)

विदूषकः—भो धारहिभोसि । (भोः धारधितोऽसि ।)

राजा—[सद्वीर्यमशोकमनितः परिक्रामन् ।]

नार्यं देव्या भाजनत्वं न नेयः सत्काराशामीदृशानामशोकः ।

यः सावज्ञो माधवश्रीनियोगे पुष्पैः शंसत्यादरं स्वत्प्रपत्ने ॥८॥

विदूषकः—भो धीरवदो माधव कुर्म जीभलवदं हसं वेत्सु । (भो विदग्धो भूत्वा त्वं धीवतवतीमिमा पश्य ।)

राजा—हो, देख दो रहा हूँ कि सिरपर एक छोटी सी धीरनी घोड़े हुए और नीचेके ऊपर तक धीरेके प्रकारके सिगाटीके सबी हुई यह चैतकी तब रातके समय दिखाई पड़ती है जिसमें कोहुदा हट जानेके सारे बिल बाए हों और बाँदनी भी उस निकलने ही वाली हो ॥७॥

धारिणी—[पाप पहुँचकर] जय हो धार्यपुत्रकी जय हो ।

विदूषक—धारको बधाई है ।

परित्राजिका—देवकी जय हो ।

राजा—प्रणाम करता हूँ भगवती ।

परित्राजिका—धारके मनकी साथ पूरी हो ।

धारिणी—[मुस्कराकर] धार्यपुत्र ! सीजिए यह धारके लिये प्रसोक का ऐसा प्रेमविलनहा घर बना दिया गया है जहाँ धार युवतियोंके अनेनेमें मिल सकते हैं ।

विदूषक—सीजिए महाप्राज ! देखीने तो धारकी धनचाही पर दी ।

राजा—[जवाबे हुए अशोकके चारों ओर घूमते हैं] देखीके हाथों इस अशोकका ऐसा आदर होना ही चाहिए, क्योंकि यह भी वसन्तकी सवनीका बहना न मानकर और बसन्तमें न फूलकर देवीके प्रदत्त करनेपर फूल उठा है ॥८॥

विदूषक—धर धार सम्हालकर इस धीवतवतीको देखिए ।

घारिणी—कं । ( काम् । )

विदूषकः—भोदि तबखोभातोघस्त कुसुमसोहम् । [ भवति । तपनीयाशोकस्य कुसुमशोभाम् । ]

[ सवं उपविशन्ति । ]

राजा—[ मासविका विलोक्य आत्मगतम् ] कष्टः खलु संनिधिविधोषः ।

अहं रथाङ्गनामेव प्रिया सहचरीव मे ।

अननुज्ञातसंपर्का घारिणी रत्ननीष नौ ॥६॥

[ प्रविश्य ]

कञ्चुकी—विज्ञप्रतां देवः ! अमाशो विज्ञापयति—विदभंविषयोवापने द्वे शिल्पकारिके मार्गपरिष्कारादलपुत्ररारे इति पूर्वं न प्रवेशिते । संप्रति देवीपस्यानयोप्ये संकुले । तवातां देवो वातुमहंतीति ।

राजा—प्रवेशय ते ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । [ इति निष्कम्य ताभ्यां सह प्रविश्य । ] इत इतो भवत्यौ ।

प्रथमा—[ जमान्तिकम् ] हला भवसिए । अपूर्वं इवं राधजलं पविसन्तीए पतीवधि मे हिप्रमं । ( सखि नदानिके । अपूर्वविद राजकुलं प्रविशन्त्याः प्रसीदति मे हृदयम् । )

घारिणी—कित्ते ?

विदूषक—देवी ! इस सुनहरे पषोकके फूलोंकी शोभाकी ।

[ सब बैठ जाते हैं । ]

राजा—[ मासविकाको देखकर मन ही मन ] इतने पासमे रहते हुए भी असम बैठना बड़ा कष्टकसा है । चकवा भीर चकवीकी भाँति इतने पास बँडे हुए भी हम दोनोंको, ये रात्रि बनी हुई घारिणी भिससे नहीं दे रही हैं ॥६॥

कञ्चुकी [ आकर ]—देवकी जय हो । मंत्रीजीसे कहलाया है कि विदभंसे जो कसा जानेवाली दो स्त्रियाँ बँटके रूपमें घाई थीं वे उस समय चकी होनेके कारण महाराजके पास नहीं पाई जा सकी थी । अब वे महाराजके सामने साईं जा सकती हैं । उसके लिये देवकी आज्ञा चाहिए ।

राजा—ले घारो ।

कञ्चुकी—जैसी देवकी आज्ञा । [ बाहर जाकर उन दोनोंके साथ पाठा है । [ इपरते पाइए पाय इपरते । ]

पहली—[ प्रथम ] खली गदनिका ! हम पहले कभी इस राज-कुलमें नहीं पाई हैं, फिर भी न जाने क्यों यहाँ प्राते ही हवाय ची सिला जा रहा है ।

द्वितीया—श्रोत्रिणी । अस्ति षड् सोपम्यवायो प्राप्तामि सुहं दुखं वा हिप्रमततवःवा  
कहेवि त्ति । ( ज्योतिस्त्रिके । अस्ति सनु जोकप्रवाद भगामि सुख दुःख वा हृदयसमस्या  
कथयतीति । )

प्रथमा सो सत्त्वो टारिण होदु । ( स सत्य इदानी भवतु । )

कञ्चुकी—एष देव्या सह देवस्तिष्ठति । उपसर्पतां भवत्यो ।

[ उभे उपसर्पतः । ]

[ मालविका परिव्राजिका च वेष्टी विलोक्य परस्परमवसोकायतः । ]

उभे—[ प्रणिपत्य ] जेदु जेदु भदटा । जेदु जेदु भद्विदली । ( जयतु जयतु भर्ता । जयतु  
जयतु भद्विनी । )

[ उभे राजाज्ञया उपविष्टे । ]

राजा—कस्यां कलायामभिविधीते भवत्यौ ।

उभे—भदटा । सवीर्य अममन्त्ररेम्ह । ( भर्तः । शरीरकेऽभ्यन्तरे स्वः । )

राजा—केचि । गृह्यतामनयोरेकतरा ।

धारिणी—मालविक । इयो पेवस । कहरा दे सवीर्यहृधारिणी रक्षधि । ( मालविके ।  
इतः पश्य । कहरा ते सगीतसहकारिणी रोचते । )

उभे—[ मालविका इष्टु ] अहो भद्वदारिणा । जेदु जेदु भद्वदारिणा । ( अहो भर्तु-  
धारिका । जयतु जयतु भर्तुधारिका । ) [ छति प्रकम्प्य तया तद् वाण्य विभ्रुजतः । ]

[ उभे सविस्मय विलोकयन्ति । ]

दूतरी—वयोस्त्रिका । कहा जाता है कि प्रथमा मन, प्राये प्रायेवाले सुख या दुःख सभी  
बता देता है ।

पहली—भगवान् करें वह कहसक पात्र रात्र हो जाय ।

कञ्चुकी—देखिए, यह महारानीके साथ महाराज बंटे हुए हैं । भाप दोनों प्राये भव जाइय ।

[ दोनों बट जाती हैं । ]

[ मालविका और परिव्राजिका इन दोनों काशिकीके देखकर एक दूसरेकी ओर देखती हैं । ]

दोनों—[ प्रणाम करके ] जय हो, स्वामीकी जय हो । जय हो, स्वामिनीकी जय हो ।

[ राजाके गहनेसे दोनों बँट जाती हैं । ]

राजा—प्राय शीशिकी स्त्रो-शो वस्ता प्राती है ?

दोनों—स्वामी ! हम सोचेंगे सगीत सीखा है ।

राजा—सो देनी, इनमेसे किते चाहो उठे अपने लिये चुन लो ।

धारिणी—मालविका ! इधर देखो सगीतमें सुन्दाराय साथ बनेके लिये इनमें से चुन्दे  
वीन-ठी पन्दी लगती है ।

दोनों—[ मालविकाओ देखकर ] अरे, राजकुमारी ! जय हो राजकुमारी, जय हो ।  
[ प्रणाम करके उभसे उभे भित्तनर पेने लगती हैं । ]

[ सब घबरजसे देखते हैं । ]

राजा—के भवत्यौ । का येवम् ।

उभे—भट्टा ! एसा अम्हणें भट्टारिआ । (भतः । एवास्माकं भट्टुंवारिका ।)

राजा—कथमिय ।

उभे—सुखातु भट्टा । जो सी भट्टिया विजयवन्देहं विदग्धस्यार्हं वसोवर्षिष बन्ध-  
खातो भोदस्यो कुमारो माह्वसेखो एषाम तस्य कर्म कस्लीषती भट्टस्यो मासविधा एषाम ।  
(श्रुणोतु भर्ता । य स भर्ता विजयवन्देहं विदग्धनाय वसोवर्षिष बन्धनाम्नोचित, कुमारो भाववसेनो  
नाम तस्येय कनीयसी भविषी मासविका नाम ।)

पारिखी—कहूं रामशरिआ इअं । चन्दरं त्रुणु मए पादुषोयसोएख वृत्तिव । (कथम्  
राजशरिकेयम् । चन्दन खतु यया पादुकोपयोगेन वृत्तितम् ।)

राजा—प्रयात्रभवती कथगिरवभूता ।

मासविका—[नि.श्रवणारमगतम् ।] विहिसिभोएख । (विधिनियोगेन ।)

द्वितीया—सुखातु भट्टा । वाघावयसंगवे अट्टवारए माह्वसेखे तस्य अमन्वेण अज्जमुनभिला  
अम्हारिं परिमए उविअण गूढ आलीया एसा । (श्रुणोतु भर्ता । वायात्रवशात्ते भट्टुंवारिके  
माधवसेने तस्यानाश्वेनार्थमुपतिनास्मादस्य परिजनमुजिअत्वा वृद्धमानीतं पत्नी ।)

राजा—श्रुतपूर्वं मयैतत् । तत्तस्तत् ।

द्वितीया—भट्टा । मयो वरं ख आस्तामि । (भतः । भत. पर न जानामि ।)

परिद्राजिका—तत्त. पर मन्धभागिनी कथकिय्यामि ।

उभे—भट्टवारिए । अज्जकीतिहिए विम सरसंजोभो । खं सा एअव । (भट्टुंवारिके ।  
भार्यकौशिनया इव स्वरसयोगः । ननु संव ।)

राजा—आप लीग कौम हूँ और ये कौम हूँ ?

दोनों—स्वामी ! ये हमारी राजकुमारी हैं ।

राजा—कैसे ?

दोनों—सुनिए स्वामी ! आपकी विजयी सेनाने विदग्धके राजाको जीतकर जिन कुमार  
माधवसेनको बन्धनसे छुटाया है, उन्हींकी ये छोटी बहिन मासविकाकी है ।

पारिखी—भरे ! तो क्या ये राजकुमारी है । भेने सचमुच चन्दनसे सजाऊँवा वाम  
सेकर बड़ा पाप किया है ।

राजा—तो वे इस रूपसे यहाँ कैसे आगईं ।

मासविका—[ लकी राई खेवर मव ही मन ] आग्यके फेरसे ।

दूसरी—सुनिए महाराज ! जब राजकुमार माधवसेनको उनके अचेरे भाईने पकड़  
लिया था, तब उनके मंत्री भार्य सुपतिजी इन्हे, हम नोबोप हटाकर, यहाँ खिचा कर ले आए ।

राजा—यह तो मैं पहले सुन चुका हूँ । तब क्या हुआ ?

दूसरी—इसके पीछेकी बात मैं कुछ नहीं जानती हूँ स्वामी ।

परिद्राजिका—इसके पीछेकी बचा मैं अभागिन बताती हूँ ।

दोनों—राजकुमारी ! यह तो भार्य कौशिकी-जैसी बोली लज रही है । वे ही हैं क्या ?

मालविका—अहं इयं । (दृष्ट्वा किम् ।)

उभे—अविद्येस्यारिणो षड्जकोत्तिर्दुःखेषु विभावोभवत् । भगवति । एषो वे ।  
(यतिवेषारिण्यायंकोशिकी दुःखेन विभाव्यते । भगवति । नमस्ते ।)

परिशाजिका—स्थिति भवतीभ्यम् ।

राजा—कथम् । आह्वययोऽयं भगवत्या ।

परिशाजिका—एकमेतत् ।

विदूषक—तेषां हि कहेतु भगवती अस्तहोवीए सुकृता वाच असेत् । (तेन हि कथयतु  
भगवत्यनभक्त्या वृत्तान्तं तावदद्येषम् ।)

परिशाजिका—[सर्वबलभ्यम्] साधय्यु मत्ताम् । माधवसेनतन्त्रिणं समाश्रयं सुमतिमवगच्छ ।

राजा—उपससितः । तत्तस्तत् ।

परिशाजिका—स इमा तथामतभ्रातृका मया साध्वमपवाह्य भवत्सम्बन्धापेक्षया पथिकतायं  
विदितागामिनमभुप्रकृष्टः ।

राजा—तत्तस्तः ।

परिशाजिका—स आह्वयन्तरे निविष्टो यथाप्या अस्मिन्महा ।

राजा—तत्तस्ततः ।

परिशाजिका—तत्त. किञ्चान्यत् ।

मालविका—धोर क्या ?

धोनी—अन्यासिनीका वेष बना सेनेसे कोशिकीपी बडी कठिनाईसे पहचानमें आती  
हूँ । आपको प्रणाम है भगवती ।

परिशाजिका—तुम धोनीका कल्याण हूँ ।

राजा—क्यों, क्या ये भी आपकी ही बेलियाँ हैं ?

परिशाजिका—जी हाँ, हे वी ।

विदूषक—उब आप ही इनकी पूरी क्या सुना आवि ।

परिशाजिका—[दुष्मि होकर] ठो गुनिए । माधवसेनके मनी सुमति धेरे बडे माई ये ।

राजा—अच्छ समझ गए । हाँ, तब ।

परिशाजिका—माधवसेनके पकड़े जानेपर इनके माई आपके साथ इनका विवाह करदेके  
विचारसे इसे धोर भुन्के साथ लेकर विदिताकी धोर आते हुए एक व्यापारी दलके साथ ही बिए ।

राजा—तब तब ?

परिशाजिका—थोडो दूर तक खुली सड़कर खल चुकनेपर उन्हें जवलमें होकर जाना पड़ा ।

राजा—तब क्या हुआ ?

परिशाजिका—फिर क्या ? मनामन कर्नोपर लूण्डीर बसे हुए, पीठपर लडे लडे पंख

तूष्णीरपट्टपरिणद्धभ्रुजान्तरालमापार्णिलम्बिशिखिर्बर्हकलापधारि ।  
कोदण्डपाणि विनदत्प्रतिरोधकानामापातदुष्प्रसहमाविरभूदनीकम् ॥१०॥

[ मातृविका मयं स्वयति । ]

विदूषकः—भोरि । मा भयाहि । अविद्वन्तं वचु सत्तहोयो कहेवि । ( भवति । मा विमेहि ।  
प्रतिक्रान्तं खलु तवभवती कवपति । )

राजा—ततस्ततः ।

परिप्राजिका—ततो मुहूर्ते बद्धापुयास्ते पराङ्मुखीभूताः साधंवाह्मोद्धारद्वारस्तस्करः ।

राजा—हस्त । हस्तः परं कष्टतरं श्रोतव्यम् ।

परिप्राजिका—ततः स मत्तोदयः

इमां परीप्सुर्दुजति परामिमवकातराम् ।

मत्प्रियः प्रियैर्भर्तुरानृणयमसुमिर्मयतः ॥११॥

प्रयना—हा हृषी सुमती । ( यहो हस्तः सुमतिः । )

शिवीया—तवो वचु हर्षं भद्रवारिभाए समवत्वा संवृत्ता । ( ततः शक्तिमयं भद्रवारिकायाः  
समवत्वा संवृत्ता । )

[ परिप्राजिका श्रापं विष्चति । ]

राजा—भगवति ! तनुयजामोहशी शोकयात्रा । न शौच्यस्तप्रभवान्ताफलोक्तमनुविष्टः ।  
ततस्ततः ।

वैषे हुए धोर हापमें भनुय-बाण लिए हुए कुछ डाकू ऐसे लज्जकारते हुए हमपर दूट पडे कि सगळे  
सककर बीतना बडा कठिन हो गया ॥१०॥

[ मातृविका उरनेका नाट्य करती है । ]

विदूषक—डरिए मत देवी ! यह तो भीती हुई बातें भापको सुना रही हैं ।

राजा—तव, तव ?

परिप्राजिका—तव धौडी ही देरमे, व्यापारियोके साथ चलनेवाले सब सदाकोही शत्रुप्रोने  
मार मगाया ।

राजा—है, है । क्या इससे भी बढकर तु सदायी बात सुनानेवाली है ।

परिप्राजिका—तव मेरे भाईने तव विपत्तिमे शत्रुके आक्रमणसे घबराई हुई इन मातृविकाको  
ब बानेके लिये अपने प्राण देकर अपने स्वामीका मार चुका दिया ॥११॥

पहली—धरे ! तरे क्या सुमतिभी धारे गए ?

दूसरी—इसीसे हमारी राजकुमारी बेचारीकी ऐसी दुर्दशा हुई ।

[ परिप्राजिका रोने लगती है । ]

राजा—भवति ! सभी नाशवानु प्राणियोको यह संसार इसी प्रकार छोड़ना ही पडता है  
धोर फिर सगहोने तो अपने स्वामीका घमन सुफल कर दिया है, इशतिये उनके लिये रोना  
चाहिए । हाँ, फिर क्या हुआ ?

परिवाजिका— ततोऽहं धीहृद्युपगता यावत्संज्ञा तमे तावद्वियं दुर्तंगवशना संयुता ।

राजा— महत्तनु कृष्णमनुभूतं भगवत्या ।

परिवाजिका— ततो भ्रातुः शरीरमाग्निष्ठात्कृत्वा पुनर्नयोऽकृतवैषम्यदुःखया मया स्वदीपं  
देशमवतीर्षं इमे शायामे गृहीते ।

राजा— पुत्रः सखजनरमेव पन्थाः । ततस्ततः ।

परिवाजिका— सेयमाटविकेस्यो शीरसेनं शीरसेनाच्च देवो गता । देवीपुत्रे तस्यप्रवेशया मया  
घामग्नरं दृष्टेऽयेतदवसानं कथायाः ।

मानविका— [ आश्रयवक्ष्यम् ] किं सु श्चु संपदं भद्रं भणति । ( किं नु श्चु संप्रतं भर्ता  
भणति । )

राजा— ग्रही परिभयोपहारिणो विमिश्रताः । युक्तः—

प्रेम्यभावेन नामेर्यं देवीशब्दश्चमा सती ।

स्नानीयवस्त्रक्रियया पत्रोर्णं वोपयुज्यते ॥१२॥

वारिणी— भद्रवति ! तुष्टं प्रमिज्जलवर्दि मानविसं प्रणावस्त्रन्तीष्टं प्रसंपदं, किम्पु ।  
( भगवति । स्वयामिज्जकपती मानविकामनाचक्षुष्याऽऽप्राप्तं कृतम् । )

परमाजिका— तास्तं पापम् । केमाचित्परलोगं जलु मया संसृज्यमयतम्बितम् ।

वारिणी— किं विषं तं कारणम् । ( निमित्तं तत्कारणम् । )

परिवाजिका— यह देखकर मैं ही मूर्च्छित हो गई और जब मुझे चेतना आई तो देखती क्या  
हूँ कि मानविकावा नहीं पता नहीं है ।

राजा— बड़ा बच्चा आपको मीनना पडा ।

परिवाजिका— तब अपने भाईके शरीरवा घातित संस्कार करके अपने विषयापनके दुःखकी  
किर फटा करके मैंने आपके देशमें आकर येदमा रंगा लिया ।

राजा— गज्जनोंको यही चाहिए थी । फिर क्या हुआ ?

परिवाजिका— फिर शीरसेनके मानविकाको जल दाकुपोंसे धीनकर यहाँ देवीके पास पहुँचा  
दिया । यहाँ देवीने पास आनेपर ही मैंने दन्द देखा । इतनी-सी ही मेरी कथा है ।

मानविका— [ अत ही मम ] देखें, महाराज इसपर क्या कहते हैं ?

राजा— देखिए ! विपत्ति घातेपर कितना घनादर हो जाता है, क्योंकि जो सती कहलाने  
योग्य राखी थी, जगने दाखीपर काम लिया जा रहा था । यह बात ठीक ऐसी ही हुई है जैसे  
श्रीई ज्जनने कपड़ेके देह पोंछनेका काम है ॥१२॥

वारिणी— भगवती ! यह बात विद्वान्पर अपने अण्ड नहीं किया कि मानविका इतने कठिने  
घामिनी है ।

परिवाजिका— नहीं, ऐसा न कहिए । मैंने बहुत समय-समयपर ही ऐसी विद्वाराई की थी ।

वारिणी— यह क्या बात थी ?



परिधाजिका—इयं पितरि जीवति केनापि देव्याप्रागतेन सिद्धादेशकेन साधुना मत्समभ्रं समादिष्टा—घातं वत्सरमात्रमियं श्रेयभाषमनुभूय ततः सद्दृशमर्तुं मामिभौ भविष्यतीति । तदेवं मा-  
दिनादेशमस्यास्त्वरत्नावशुभ्रुषया परिश्रममगवेक्ष्य कासप्रतीक्षया मया साधु कृतमिति पश्यामि ।

राजा—युक्ता प्रतीक्षता ।

कञ्चुकी—देव ! कथाम्तरेखान्तरितम् । अमात्यो विज्ञापयति—विदर्भगतमनुच्छेदमनुष्ठितम-  
भूत् । देवस्म तावदभिप्रायं श्रोतुमिच्छामि ।

राजा—मोक्षय । तत्रभवतोर्वंशतेनमाधमसैनयोर्ह्यराज्यमिदानीमवस्थापयितुकामोऽस्मि ।

तौ पृथग्भरदाकूले शिष्टानुत्तरदक्षिणे ।

नक्तं दिवं विमज्ज्योभौ शीतोष्णकिरणाविव ॥१३॥

कञ्चुकी—हेव ! एषमसात्यपरिचये नियेवयामि ।

[ राजाहगुल्फानुपगतते । ]

[ निष्क्रान्तः कञ्चुकी । ]

प्रथमा—[ जगान्तिकम् ] भद्रुदारिण । शिष्टिमा भद्रिस्ता भद्रिदारमो मद्ररज्जे पडिडु'  
गमइस्तदि । ( भद्रु'दारिके । दिष्ण्या मर्ता भद्रु'दारकोऽयं राज्ये प्रतिष्ठा गमयिष्यते । )

मानविका—एवं बाध षड् भग्निवध्व ज जीविदससप्रायो मुतो । ( एतत्साम्बद्धमस्तभ्यन्  
गम्भीनितसप्तपान्मुक्तः । )

परिधाजिका—जिन दिनों इनके पिता जीवित थे उन दिनों देवतायामे एक ऐसा साधु आगया  
जो मायिकी बात बतलाया करता था । उसने मेरे घावे ही कहा कि—इसे एक वर्षतक तो दासी होकर  
रहना पड़ेगा, पर उसने पीछे बड़े योग्य पतिसे इसका विवाह हो जायगा । जब मैंने देखा कि यह  
प्रियपत्नीकी भावके नरलीकी सेवा करते हुए पूरी हो रही है तो मैं कुन्वी सगा गई और इसीलिये  
मैं समझती हूँ कि मैंने अच्छा ही किया ।

राजा—यह घुप रहना अच्छा ही हुआ ।

कञ्चुकी—देव ! इस कथाके बीचमे एक बात छूट गई । मन्वीयोंने कहाया है कि विदर्भके  
लिये जो प्रणय करना था, वह सब कर दिया गया है, पर मैं महाराजको इच्छा भी जान लेना  
चाहता हूँ ।

राजा—मोक्षय ! मैं चाहता हूँ कि मन्वेसे और भाषवसेन दोनों, बरदा नदीके उत्तर और  
दक्षिण दोनों तरफ़ पर अपने अपने अलग-अलग राज बनाकर जैसे ही सुखसे राज करें जैसे सूर्य  
और चन्द्रमा रात और दिनको आपसमे बाँटकर अलग-अलग चमकते हैं ॥१३॥

कञ्चुकी—मैं अमात्य-परिचयसे यही बात यह आया हूँ देव ।

[ राजा अंगलीसे स्वीकृति दे देते ॥ कञ्चुकी सदा आता है । ]

पहली—[ प्रसन्न ] राजकुमारी ! यह बड़ी अच्छी बात हुई कि राजकुमारको महाराज भाये  
रानपर बैठा रहे हैं ।

मानविका—यह इतना ही बहुत समझे ॥ उनके प्राण बच गए ।

[प्रविश्य]

कञ्जुकी—विद्यमर्ता देव । देव धर्मात्यो विद्यापति—कन्यासो देवस्य बुद्धिः । मन्त्रिपरि-  
पदोऽप्येतदेव दर्शनम् । कुण —

द्विधा विभक्तां श्रियमुद्ब्रहन्तौ धुरं रथारवाक्चि संग्रहीतुः ।

तौ स्थास्यतस्ते नपतेर्निदेशे परस्परोपग्रहनिर्विकारौ ॥१४॥

राजा—तेन हि मन्त्रिपरिषदं ब्रूहि—तेनाग्ये वीरतेनाय लेख्यतामेवं कियतामिति ।

कञ्जुकी—यथाज्ञापयति देवः । [इति निष्क्रम्य सम्राट्क सेख गृहोत्था पुनः प्रविष्टः ।]  
प्रमुञ्चिता प्रवीरता । अथ देवदय सेनापतेः पुष्यमित्रस्य सभायास्तौत्तरीयप्रानुत्तको सेखः प्राप्यः ।  
प्रत्यक्षोक्तोत्वेन देवः ।

[राजोपपाय सम्राट्क सेखं सोपचार गृहीत्वा पश्चिमापार्ययति ।]

[परिजनो सेख नाट्येनोद्घाटयति ।]

मारिणी—[मात्स्यगतम्] अहो । तवोमुहं एष्व लो ह्यिषयं । कुलस्यं वाच पुष्टस्यस्य कुलना-  
ल्लस्यं वसुमितस्य कुलतं । प्रतिपौरे वसु पुलसो सेनापतिना रिजसो । (पदो । तवोमुद्यमेय नो  
हृदयम् । शोष्यादि तावदनुकूलनस्य कुलनागन्तर वसुमित्रस्य वृत्तान्तम् । प्रतिपौरे खलु पुनः  
सेनापतिना निपुक्तः ।)

राजा—[उपविश्य सेखं सोपचार गृहीत्वा वाचयति ।] स्थिति यत्प्रदरणासेनापतिः पुष्यमित्रो  
संविद्यार्थं पुत्रमापुष्पगतमग्निमित्रं स्नेहापरिष्वग्येवमनुवर्षयति । विदितमस्तु । वीरसौ

कञ्जुकी—[शाकर] देवकी जय हो । देव ! ममात्यने वह्मयाया हे कि महाराजने बहुत ठीक  
सोपा हे वीर ममात्य-परिपद्वी भी यही सम्यति हे, क्योंकि जैसे रममें चलनेवाले दो घोड़े  
पारकोके हाथमें ठीकसे चलते हैं, वैसे ही महाराजकी देख-नेछमें ये दोनों भाई भी पापसका बँर  
छोड़कर दो भागोंमें बँटि हुए, अपने राजको घुरेको बडे सुखसे संग्रह लकेंगे ॥१५॥

राजा—सो जाकर ममात्य-परिपद्वे कह दो कि सेनापति वीरसेनको लिख भेजें कि वे देवा  
ही ग्रहण करदें ।

कञ्जुकी—जैती देवकी आज्ञा । [बाहर जाता है वीर भेंटके साथ पत्र लिए हुए फिर जाता  
है ।] वाचकी आज्ञा कह चुनाई । भीमानु सेनापति पुष्यमित्रके पाससे उत्तरीय धारि भेंटकी  
सावधिपौरे साथ-साथ पत्र भी थाया है । इसे महाराज देवनेही कृपा करें ।

[राजा बटकर बडे घादरवे साथ भेंटकी छासघो घोर पत्र लेकर अपने सेवकको दे देते हैं ।  
बहु उग पत्रको मोसनेका नात्य करता है ।]

मारिणी—[अन ही मन] घरे ! मेरा नो भी इसे सुननेको छटपटा रहा है ! वहाँका सुख  
ममापार सुनकर फिर वसुमित्रका सभाचार सुनूंगी । सेनापतिने मेरे बहनेको बडे घटका काम  
सौं दिया है ।

राजा—[भेंटकर बडे घादरवे पत्र मेरर पकृते हैं ।] वाचका कत्याए हो । विदितार्थे प्राप्त  
हूँ । वीरवीरो पुत्र प्रणिमित्रो स्नेह्ये गने भेंटकर अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा लिए हुए  
सेनापति पुष्यमित्र सिख रहे हैं—हम यह बताना चाहते हैं कि अश्वमेधकी दीक्षा लेकर मैंने

राज्यतादीक्षितेन मया राष्ट्रपुत्रसत्परिवृत्त यमुनिप्र शोभारमादिभ्य वत्सरोपासनिधमो निरर्गल-  
स्तुरङ्गो विमृष्टः स सिन्धोर्दक्षिणरोपधि चरन्नश्वानोकेन ययनेन प्रार्थितः । ततः जनयोः  
सेनयोर्महानासीरसमर्षः ।

[देवी विवाद नाटयति ।]

राजा—कवनीह्न संवृत्तम् । [शेष पुनर्वाचयति ।]

ततः परान्परान्तित्य वसुभिरेण धन्विना ।

प्रसह्य हियमाणो मे वाजिराजो निर्विततः ॥१५॥

पारिष्ठी—इमिला वाससिध मे हियम । (भनेनास्वस्त मे हृदयम् ।)

राजा—[शेष पुनर्वाचयति ।] सोऽहमिवासीमशुभता सगरपुत्रेणैव प्रत्याहृताश्वो पश्ये ।  
तद्विदानीमकालहोम विगतरोपजेतसा भवता यजुनेन सह यज्ञसेवनाया गन्तव्यमिति ।

राजा—अनुपुट्टीतोऽस्मि ।

परिप्राजिका—विप्राया पुत्रविजयेन वम्पतो वयंसे ।

भर्त्रासि वीरयत्नीनां स्लाभ्यानां स्थापिता धुरि ।

वीरसुरिति शब्दोऽयं तनयात्त्वाद्गुपस्थितः ॥१६॥

पारिष्ठी—भगवति ! परितुट्टिह क पितरं अशुजादो मे वच्छप्री । (भगवति ! परि-  
तुष्टासि परितरमनुजातो मे वत्सक ।)

एक वर्षकी प्रबधि बाँधकर जो सुना पोडा छोडा था और जिसकी रक्षाके लिये संकडो  
राजकुमारोके साथ बहुभिनको भेजा था, वह पोडा जब सिंधु नदीके दक्षिण तटपर पर  
रहा था तो बृहस्पति सेनाके एक ययनेने उसे पकड लिया । इसपर दोनों सेनाप्रीने बडी  
पनधोर लडाई हुई ।

[देवी दुलो होनेका नाट्य करती है ।]

राजा—मेरे ! क्या यहाँतक बात बढ गई ? [बना हुआ फिर बँधता है ।] तब धनुष-  
धारी बहुभिनने बडी वीरतासे शत्रुधोको मार भयाथा और छिने हुए पोडोकी फिर लोटा  
लिया ॥१५॥

पारिष्ठी—अब, मेरे जीमे जी आया ।

राजा—[बधा हुआ फिर पडता है ।] इसलिये अंसे धनुषान द्वारा पोडा सुडा खाने  
पर सगरने यज्ञ किया था, वैसे ही मैं भी यज्ञ कर रहा हूँ । इसलिये अब तुम तत्काल वाग्वचिष्ट  
होकर बहुधोको साथ लेकर यज्ञ देखनेके लिये चले आओ । वय इतना ही ।

राजा—बडी कुभा हुई शुभसर ।

परिप्राजिका—पुत्रकी विजयके लिये भाप दोनोको बधाई है । अबतक भाप संसारकी  
सब प्रससनीय वीर पालियोकी सिरसोर थी, पर भापके पुत्रने भापके भायके साथ वीर-  
याताको मदवी भी जोड दी है ।

पारिष्ठी—भगवती ! मुझे तो यही सुख है कि मेरा बच्चा पिताके समान ही पराक्रमी  
निकला ।

राजा—मोदुगत्य । ननु कतमेन यूपपतेरनुकृतम् ।

कञ्जुकी—देव । अयं कुमारः—

नैतापता वीरविवृम्भितेन चित्तस्य नो विस्मयमादधाति ।

यस्याप्रधृष्यः प्रमवस्त्वमुच्चैरग्नेरपां दग्धुरिवोरुजन्मा ॥१७॥

राजा—मोदुगत्य । यज्ञतेनश्यासपुरीकृत्य भोषयन्तां सर्वे बन्धनस्थाः ।

कञ्जुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः ।)

धारिणी—अयसेरो । गच्छ । इरावतीप्रमुहार्णं अग्रेपुराणं पुतस्तं पुतन्तं एतैवेहि ।  
(अयसेने ! गच्छ । इरावतीप्रमुहेश्रोत्रोऽप्यु पुरेभ्यः पुत्रस्य वृत्तान्तं निवेदय ।)

[प्रतीहारो प्रस्थिता ।]

धारिणी—एहि वाव । (एहि तावत् ।)

प्रतीहारो—[प्रतिभिवृत्त ।] इमं म्नि । (इयमस्मि ।)

धारिणी—[जनास्तिकम्] जं मय अतोषबोहृत्तलिमोए मातविक्राए पद्मलाभं तं ते अभिजनं च एतैवेदिष मह बभ्रलोए इरावतिं अश्लोहि—सुए अहं सचवावो ॥ विवर्त्ति-  
शब्दे ति । (यन्मयाशोकबोहृदनिवोने मातविक्रायं प्रतिज्ञातम् तदस्या अभिजनं च निवेद्य मम वचनेनेरायतीमनुनय—सत्यान्तं विवर्त्तयित्येति ।)

प्रतीहारो—अं देवी अश्लोवेदि । [इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य] भट्टिणि ! पुतद्विनम-

राजा—मोदुगत्य ! उदयुष्य इह हापीके बन्धने तो हाचिपीके नापकका काम करेता ।

कञ्जुकी—देव ! कुमारकी इस बीरतासे मुझे कोई बड़ा भयजन नहीं हो रहा है, क्योंकि जैसे समुद्रको जला डालनेवाले बडवाननका जन्म उदरजन्मा (भीरु) ज्ञापिते हुआ है वैसे ही इनका भी जन्म आपसे हुआ है जो भावतक किलीसे नहीं हारे हैं ॥१७॥

राजा—मोदुगत्य ! बायो, यज्ञसेनके सानेके साथ-साथ धोर भी मिलने बन्दी हों उनको छोड़ दो ।

कञ्जुकी—देवकी जैसा आज्ञा । (यथा जाता है)

धारिणी—बायो, अयसेना । इरावती मादि रनिवासकी सब रागियेति ह्मारे पुत्रके विवपरी बात कह तो बायो । [प्रतीहारो जाना चाहती है ।]

धारिणी—धोर मुनी !

प्रतीहारो—[ओटकर] जो कहिये ।

धारिणी—[अनय] देखो ! अग्रेके कूलनेके लिये मैंने मातविक्रासे जो प्रतिज्ञा की थी वह बात धोर इनके लिये धरानेकी बात कहकर मेरी धोरसे इरावतीसे विनय करता कि देखो ! यह बात कोई ऐसी बात न कर बैठें कि मुझे धराने कथनसे हटना पड़े ।

प्रतीहारो—जैसी देरीसे आज्ञा । [बाहर जाकर फिर आ जाती है ।] स्वामिनो ! आपके

लिमितेण परितोतेण अन्तेवराणं आहरणाणं मञ्जुपत्ति संवृता । ( यद्देव्याज्ञापयति । मट्टिनि । पुनविजयनिमित्तेन परितोवेशान्तपुराणानामभरणाना मञ्जुपत्ति संवृता । )

पारिली—एवं किं भञ्जवरिषं । साहारणो मञ्जु तासं भद्रं अममं अममुदयो । ( एतकि-  
माश्रयंम् । संधारणः सन्तु तासा मम चायममुदयः । )

प्रतीहारी—[ अनान्तिकम् ] मट्टिलो ! इरावती जग किण्णवेदि—सरितं देवीए पद्मवन्तीए ।  
सुता यथाए संकपिण्णं ए ज्जुअदि अण्णहा फादुं ति । ( मट्टिनि ! इरावती पुनविज्ञापयति—सहस्रं  
देव्याः प्रभवन्त्याः । तव वचनं संकल्पित न युज्यतेऽन्यथाकर्तुमिति । )

पारिली—अप्रकदि ! तुए अण्णमहा इण्णामि अण्णसुमदिहा पदमसंकल्पदं मासविषं  
अण्णज्जसरा पडिवादेदुं । ( भगवती । ररावामुमतेच्छाम्यायंमुमतिना प्रथमतकल्पिता मासविकामाय-  
पुत्राय प्रतिपादयितुम् । )

परिदाजिका—इरान्तेमपि त्वमेवास्याः प्रभवसि ।

पारिली—[ मासविकं हस्ते युहोत्वा । ] इवं अण्णउत्तो पिमण्णिवेवणाण्णुणं पारिलीसिणं  
पडिण्णदु ति । ( इदमायंपुत्रः प्रियनिवेशनानुसृत्यं पारिलीपिकं प्रतीच्छति । )

[ राजा शोभां नाटयति । ]

पारिली—[ सस्मितम् ] किं अण्णधीरेदि अण्णउत्तो । ( किमवधीरवादायंपुत्रः । )

विदूषकः—भोदि ! एसी सोअण्णवहारे । सण्णो राववरो सण्णजुरो होदि ति । ( भवति ।  
एय सोअण्णवहारः । सण्णो मववरो सण्णजुरो भवतीति । )

[ राजा विदूषकमवेक्षते । ]

पुषकी विजय सुनकर मुन्डर पुरस्कारों की इतनी खोजार हुई कि मैं रजियासके गहनोंकी पिढारी  
ही बन गई हूँ ।

पारिली—इसमे अचरबकी क्या बात है, इससे तो उनका भोर मेरा दोनोंका समान ही  
गौरव है न ।

प्रतीहारी—[ घसस ] स्वामिनी ! इरावतीमे यह भी कहनाथा है कि आपने अपने गौरवके  
मनुष्य ही बात सोधी है । जो कुछ आप कह चुकी हैं उसे पूरा कोजिए ।

पारिली—भगवती ! धार्य मुमतिमे धार्यपुत्रसे मासविकाका विवाह करानेका जो पहले  
विचार कर रखा था उसे मैं आपकी सम्मतिमे पूरा कर देना चाहती हूँ ।

परिदाजिका—अब भी तो आप ही इनकी सब कुछ हैं ।

पारिली—[ मासविकाका हाथ पकडकर ] धार्यपुत्र ! कुमारकी विजयका प्यारा समानार  
मुमानेका यह प्यारा पारिलीपिक तो सोजिए ।

[ राजा खडा बाहे है । ]

पारिली—[ मुसकराकर ] क्या धार्यपुत्र मेरे भेंट नहीं स्वीकार करना चाहते ?

विदूषक—देवी ! यह तो लोक व्यवहार दिखा रहे हैं । सगरे मये हूल्हे ऐसे समय खड़ाया  
ही करते हैं ।

[ राजा विदूषककी ओर देखते हैं । ]

विदूषकः—अहं देवीए एख् क्दिदम्पणअवितेसं दिण्णदेवीसहं मालविणं अत्तमयं वडिण्णहीदुं इच्छदि । ( अयं देव्यैव कृतप्रणयविशेषां दत्तदेवीसम्बन्धा मालविकामत्रभवत्प्रतिग्रहोभुमिच्छति । )

धारिणी—एवाए राजदारिण्णए अहिज्जखेख एख् दिण्णो देवीसहो किं पुण्णस्तेण । ( एतस्या राजदारिकाया अभिजनेनेव दत्तो देवीसम्बन्धः किं पुनश्चतेन । )

परिभाजिका—मा भवम् ।

अप्याकरसमुत्पन्नो रत्नजातिपुरस्कृतः ।

जातरूपेण कल्पायि ! मण्डिः संयोगमर्हति ॥१८॥

धारिणी—[ स्मृत्वा ] गरिसेवु भद्रवद्यो । अम्मुदमकहाए उद्व ए लविज्जहं । जमसेरो । मय्य शब्द । कोसेअपत्तोण्णजुअल उअणेहि । ( मय्यवतु भगवति । अम्मुदयकवपोचितं तं लक्षितम् । अयमेते । गच्छ तामत् । कोसेयपत्रोसंयुगलमुपमय । )

प्रतीहारी—अं देवी आण्णेवि । [ इति निष्क्रम्य पत्रोच्छं गृहीत्वा पुनः प्रविश्य ] देवी ! एरम् । ( गृह्येभ्याश्चापमति । देवि । एतद् । )

धारिणी—[ मालविकामत्रमुपलभती कृत्वा ] अन्वजसो । वारिण्ण इयं पडिअण्णु । ( धार्य-पुत्र । इदानीमिमा प्रतीच्छतु । )

राजा—एवञ्चात्तनाअप्रवृत्ता एय वयम् । [ अपवच्यं ] इत्य प्रतिगृहीता ।

विदूषकः—अहो देवीए अरुऊलडा । ( अहो देव्या अनुकूलता । )

[ देवी परिजनमवलोकयति । ]

विदूषक—अजि मालविकाको महारानीमे ही इतने प्रेमसे देवी बना दिया है, उन्हें महाराज क्यों न स्वीकार कर लेंगे ।

धारिणी—इन राजकुमारीके ऊँचे घरानेके ही इन्हें रानी बना दिया है । उन्हें दुहरानेकी क्या बात है ।

परिभाजिका—गद्दी ऐसी बात नहीं है । जानते निकले हुए सबसे अच्छे महिलाको भी सौतेलें गद्दनेकी आवश्यकता तो पडती ही है ॥१८॥

धारिणी—[ कुछ स्मरण करके ] क्षमा कीजिए भगवती ! कुपारकी इस विद्रोहके हुलासमें एक बड़ी भावश्यक बात तो मैं भूल ही गई । जयसेवा ! आ, उन्नी रेशमी जोडा तो ले आ ।

प्रतीहारी—जैसी देवीकी आज्ञा । [ जाती है घोर बख्श सेनर फिर आती है ] यह कीजिए देवी !

धारिणी—[ मालविकाके चिरपर उदाकर ] धार्यपुत्र ! अयं इते स्वोकार कीजिए ।

राजा—आप जो कहेंगी, वह तो मानना ही पड़ेगा । [ अथ ] प्रची ने तो इसे पहले ही स्वीकार कर चुका है ।

विदूषक—वाह ! महारानी भी कंठी अच्छी हैं ।

[ रानी दासियोंकी घोर देखती है । ]

प्रतीहारी—[ मानविकाभुपेत्य । ] जेडु भट्टिखी । ( जयतु भट्टिनी । )

[ देवी परिव्राजिकां निरीक्षते । ]

परिव्राजिका—नैतन्मित्रं त्वयि ।

प्रतिपक्षेणापि यतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाः साध्व्यः ।

११; अन्यसरितामपि जलं समुद्रगाः प्रापयन्त्युदधिम् ॥१६॥

[ प्रविश्य ]

निपुणिका—जेडु भट्टा । इरावती विण्णवेदि—जं उचचारतिक्कमेण तदा भट्टिणी प्रवण्टा  
सं सधं एव्व भत्तुखो षण्णुज्जलं शास भए धाधरिखं । संघदं पुण्णमखोरुहेण भत्तुखा पसाइमसंण  
संभावइव्वेति । ( जयतु भर्ता । इरावती विण्णायति—यदुपचारतिक्कमेण तदा भर्ते प्रपरादा  
तस्त्वयमेव भर्तुरुक्कम नाम मयापरितम् । सांघतं पूखंमनोरपेण भर्ता प्रसावमाणेण  
संभावयित्तव्वेति । )

धारिणी—शिखणिए । भयसं से सेविदं मज्जउत्तो जाणित्तसिदि । ( निपुणिके । प्रवण  
मस्याः सेवित्तमार्थपुत्रो जास्यति । )

निपुणिका—अण्णमहीदम्हि । ( भनुण्णोतासिम् । )

परिव्राजिका—देव । ममुणा पुक्कसंघापेण चरित्तार्थं मायवसेनं सभावयित्तुं गच्छामः ।

धारिणी—भयवदीए स जुत्तं घम्हे हरिचइदुं । ( भगवत्या न मुक्कनस्ताम्परिश्यवट्टम् । )

राजा—भगवति । मदीवेण्णेव सेलेपु तदभयतस्त्वामुद्दिश्य सभावजनाक्षराणि पातयिष्णामः ।

प्रतीहारी—[ मानविकाके पास जाकर ] स्वामिनीकी जय हो ।

[ महाराजो परिव्राजिकाको ओर देखती हैं । ]

परिव्राजिका—भापकी यह उदारता देखकर मुझे तबिक भी अचरज नहीं हुआ । क्योंकि  
पतिको प्यार करनेवाली स्त्रियाँ अपने लिये सीत लोकर भी पतिका मन रक्खा करती हैं ।  
देखिए, समुद्रमे जानेवाली नदियाँ अपने साथ साथ दूसरी नदियोंका पानी भी समुद्रमे पहुँचा  
देती हैं ॥१६॥

निपुणिका—[ आकर ] स्वामीकी जय हो । इरावतीजीमे कहलाया है कि मैंने महाराजकी  
बात मे मानकर जो अपराध किया था, वह सब जान-बूझकर महाराजका काम बनानेके  
लिये ही रूपक रखा था । अब तो महाराजके मनकी साथ पूरी हो गई है । इसलिये आशा है  
भाप मुझे भवण्य क्षमा कर देंगे ।

धारिणी—भरी-निपुणिका ! उन्होंने मर्त्यपुत्रकी जो सेवा की है उसका ध्यान रखेंगे ।

निपुणिका—बड़ी श्रमा है ।

परिव्राजिका—देव ! इस सुन्दर विवाह-सम्बन्धको सुनकर मायवसेन तो फूले न समावेंगे ।  
इसलिये मैं उन्हें बधाई देनेके लिये जाना चाहती हूँ ।

धारिणी—हमें छोड़कर भापका जाना ठीक नहीं है ।

राजा—भगवती ! हम अपने ही पत्रमें भापकी ओर से बधाई लिखाकर भिजवा देंगे !

परिजातिका सुबहोः स्नेहात्परवानमं जनः ।

चारिणी — धम्मज्ज ! किं ते सुधो वि पिच्चं उवहरामि ।

धर्मपुत्र ! किं ते भूयोऽपि प्रियधुपहरामि ।)

राजा—

त्वं मे प्रसादसुमुखी ! भव देवि नित्यमेतावतेव हृदये प्रतिपालनीयम् ।

तथाप्येवमस्तु ।

( भरतवाक्यम् )

आशास्यन्तीतिविभमप्रभृतिप्रजानां संपत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे ॥२०॥

. [ इति निरुक्तान्ताः सुषे । ]

॥ इति पञ्चमोऽङ्कः ॥

॥ समाप्तमिदं श्रीकालिदासकृतौ मालविकाग्निमित्रं नाम नाटकम् ॥

परिजातिका — मैं तो आप दोनोंके स्नेहमें बँधी ही हुई हूँ ।

चारिणी— धर्मपुत्र ! क्या मैं आपकी कुछ चीर मनवाही बात कर सकती हूँ ।

राजा— देवि ! मैं तो बत इतना ही चाहता हूँ कि तुम सदा मुझपर प्रसन्न रहो ! फिर भी इतना भीर हो जाय कि—

[ भरतवाक्य ]

प्रसन्नक अग्निमित्र राज्य करें तबतक सबकी अवामें किसी प्रकारके उपद्रव चाहि न हों ॥२०॥

[ सब चले जाते हैं । ]

॥ पाँचवाँ अङ्क समाप्त हुआ ॥

॥ महाकवि श्रीकालिदासका रचा हुआ मालविकाग्निमित्रम् नामका नाटक पूरा हुआ ॥



## ❀ श्रीमन्महाकविकालिदास-नाटक-प्रशस्तिः ❀

‘काव्ये नाटकमस्ति रम्यरुचिरं तत्रापि शाकुन्तलम्’

इत्युक्तं रसिकैर्वचोऽतिललितं भूयो विवेक्तुं न्विदम् ।

श्रीमन्महाकविकाग्निविक्रमलसत्सन्नाटकधोच्छलत्

स्वर्वाक्षीरसनाऽमृतं सरसयत् सम्मोहयेत्संसृतिम् ॥

—श्रीशः ।

[ ‘काव्योमें नाटक ही सुन्दर होता है और नाटकोमें अभिज्ञान शाकुन्तल ही सबसे सुन्दर है, यह बात रसिकोंने बड़ी सचची कही है, पर ये इस बातको ठीक-ठीक स्पष्ट नहीं कर पाए कि काव्यमें नाटक ही क्यों सुन्दर होता है । इसी बातको स्पष्ट करनेके लिये अभिज्ञान-शाकुन्तलके साथ साथ महाकविकाग्निविक्रम तथा विक्रमोर्वशीय नाटक भी प्रस्तुत किए जा रहे हैं कि इनमें छलकता हुआ सस्कृतका मधुर अमृत सृष्टिके सब प्राणियोंको इतना रसभग्न कर दे कि लोगोंको ससारके और दूधने काव्योंको पढ़नेकी मुय ही न रह जाय । ]

—श्री ईशदत्त पाण्डेय ‘श्रीश’

# तीसरा खण्ड

---

महाकवि कालिदासकी रचनाओंके सन्मग्यमे समष्टि रूपसे प्रपया उनके किसी विशिष्ट ग्रन्थ प्रपया किसी विशिष्ट पक्षपर विभिन्न विद्वानोंने जो पांडित्यपूर्ण विचार दिये हैं, उन्हींका संग्रह आयेके लेखोंमें किया गया है। इसमें महाकवि कालिदासके ग्रन्थोंमें आए हुए व्यक्तियों, वस्तुओं, स्थानों आदिका अभिधान कोपमे परिषय है और कालिदास-कालीन भारत का मानचित्र है।

---

समीक्षा-निबन्ध

## —निबन्ध-सूची—

१. विक्रमादित्य—डा० राजबली पाठेय, एम० ए०, बी० लिट् ।
२. विक्रम और उनके मवरत्न—स्व० यो इंधवत पाठेय "श्रीर" साहित्याचार्य, साहित्यरत्न ।
३. कालिदासके पन्नोंकी उपादेयता—प० सीताराम जयराम जोशी, एम० ए०, साहित्याचार्य ।
४. कालिदासके शब्द-प्रयोग—पं० पार्ष्णिक्काप्रसाद उपाध्याय, व्याकरणशास्त्रार्थ ।
५. कालिदासके कवित्तयकी पूर्णता—स्व० श्रीमन्मध्वसुप्रदायाचार्य श्रीदामोदरसाराज्ञी गोस्वामी ।
६. कालिदासकी मूर्तियाँ—डा० धमरनाथ झा, एम० ए०, बी० लिट् ।
७. कालिदासका संदेश—प० बलदेव उपाध्याय, एम० ए०, साहित्याचार्य ।
८. कालिदास और प्रकृति—पं० कदवापति त्रिपाठी, एम० ए०, व्याकरणशास्त्रार्थ, बी० टी० ।
९. निरर्णकम्या ककुत्सला—डा० वेत्सेनवर, पूजा ।
१०. योषवांसिद्धमे निघण्टु—डा० श्री० सा० आग्नेय०, एम० ए०, बी० लिट् ।
११. जपना कालिदासत्व—डा० गोदे, पूजा ।
१२. कालिदासकी छन्दबोजना—प० रामगोविन्द दुक्त, ग्याय-व्याकरण-साहित्याचार्य ।
१३. अभिपान-कोष—( कालिदासके काव्योंमे आए हुए शक्तियों, शीबों,  
वस्तुबो धोर स्थानोंका परिचय ) ।
१४. कालिदास-सम्बन्धी लेखों और समीक्षाओंकी तालिका—डा० रामधुमार शीबे, एम० ए० ।

## विक्रमादित्य

[डा० राजवती पाण्डेय, एम्० ए०, डी०, लिट्०]

### जनश्रुति

मर्षादापुरुषोत्तम राम और कृष्णके पश्चात् भारतीय जनताने जित घासकको अपने हृदय-तिहासनपर धारुड किया है वे विक्रमादित्य हैं। उनके प्रादुर्भूत न्याय और लोकसुखी कृतानुयायी भारतवर्षमें सर्वत्र प्रचलित हैं और आबालवृद्ध सभी उनके नाम और यशसे परिचित हैं। उनके सन्वाद्यमें यह प्रसिद्ध जनश्रुति है कि वे उज्जयिनीनाथ मन्धर्वसेनके पुत्र थे। उन्होंने दासको परास्त करके अपनी विजयके उपलक्ष्यमें सर्वज्ञा प्रवर्तन किया था। वे स्वयं काव्यमर्मज्ञ तथा कालिदास प्रादि कवियोंके आश्रयदाता थे। भारतीय ज्योतिष गणनासे भी इस बातकी पुष्टि होती है कि ईसासे ३७ वर्ष पूर्व विक्रमादित्यने विक्रम-संवत्का प्रचार किया था।

### मनुश्रुति

भारतीय साहित्यमें अधिक मनुश्रुतिने भी उपर्युक्त जनश्रुतिकी किसी न किसी रूपमें स्वीकार किया है। इनमेंसे कुछका उल्लेख भीचे किया जाता है—

(१) मनुश्रुतिके मनुसार विक्रमादित्यका प्रथम उल्लेख साषासप्तशतीमें इस प्रकार मिलता है—

सकाहण सुहरत तोसिएण दमोत्तुहकरे सवसम् ।  
असखेण विक्रमाइत्तपरिभ अणुसिभिसय तिससा ॥३१५

इसकी टीका करते हुए गदाधर तिलके हैं—“पक्षे सकाहण सकाधनम् । सखण्य सक्षम् । विक्रमादित्योऽपि भूयस्कृत्केन अत्रसुखायनेन मृष्ट म् अष्टम्य करे सखम् अश्लीगम्यम् ।” इससे यह प्रकट होता है कि याथाके रचना कालमें यह बात प्रसिद्ध थी कि विक्रमादित्य नामक एक प्रतापी तथा उदार शासक थे जिन्होंने जम्बूद्वीप विजय पानेके उपलक्ष्यमें मृत्योंको लालीका उपहार दिया था। साषासप्तशतीका रचयिता सातवाहन राजा हान प्रथम यथादि ईश्वरीमें हुआ था। परत विक्रमादित्यकी ऐतिहासिकता इसके पूर्व ही सिद्ध होती है। इस ऐतिहासिक तथ्यका प्रतिपादन महागहोपाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्रीने बली भाँति किया था। (एशियाटिका इण्डिका, निल्ड १२, पृ० ३२०)। इसके विरुद्ध डा० देवदत्त रामकृष्ण आगरकरने माया सप्तशतीमें सात् हुए ज्योतिषके सकेतोके आधारपर कुछ आपत्तियाँ उठाई थीं (भाष्यारकर स्मारक ग्रन्थ, पृ० १८७-१८९ किन्तु इनका निराकरण प० म० प० गौरीचकर हीराचंद मोहाने बली भाँति कर दिया है (प्राचीन लिपिमाला, पृ० १६८)।

(२) जैन दक्षिण मेरुगुणाचार्ये रचित पटावलीमें लिखा है कि नमोवाहनके पश्चात् गर्दभिल्लने उज्जयिनीमें तेरह वर्षतक राज्य किया। उसके अत्याचारके कारण कासकाचार्यने शत्रुको युवाकर उसका उन्मूलन किया। शत्रुने उज्जयिनीमें चौदह वर्षतक राज्य किया। इसके पश्चात् गर्दभिल्लने पुत्र विक्रमादित्यने शत्रुसे उज्जयिनीका राज्य छीटा लिया। यह घटना महावीर निर्वाणके ५७०वें वर्षमें (५२७-५७० = २७ ई० पू०) हुई। विक्रमादित्यने साठ वर्षतक राज्य किया। उनके पुत्र विक्रमचरित उपनाम वर्मादित्यने ५० वर्षतक शासन किया। तत्पश्चात् भंसल, गंसल तथा माह्वने क्रमशः ११, १५ तथा १० वर्ष राज्य किया। इस समय महावीर-निर्वाणके ६०५ वर पश्चात् (६०३-६२७ = ७८ ई० पू०) शक सवत्का प्रवर्तन हुआ।

(३) प्रय-रवोपके अनुसार महावीर-निर्वाणके ५७० वर्ष पश्चात् (५२७-५७० = ५७ ई० पू०) विक्रमादित्यने सवत्का प्रवर्तन किया।

(४) अनेखरदूरी विरचित शत्रुक्षय महात्म्यमें इस बातका उल्लेख है कि वीर (महावीर) सवत्के ५६९ वर्ष बीत जाने पर विक्रमादित्यका प्रादुर्भाव होगा। उनके ५७७ वर्ष पश्चात् शिला-दित्य अथवा भोज शासन करेगा। इस वर्षको रचना ५७७ विक्रम सवत्में हुई जब कि बलभीके राजा शिलादित्यने सुराष्ट्रसे दौड़ोको सट्ट कर कई तीर्थोंको उनसे छीटा लिया था। (देखिए हा० भावदा जी, जर्मन ग्रीक बोम्बे एशियाटिक सोसाइटी, विल्ड ६, पृ० २६-३०)।

(५) सोमदेव बृह-विरचित कथामरिसावर (अध्याय १८, तरंग १) में भी विक्रमादित्यकी क्या बातें हैं। इसके अनुसार विक्रमादित्य उज्जयिनीके राजा थे। इसके पिताका नाम महेन्द्रादित्य तथा माता का नाम मौम्यदर्शना था। महेन्द्रादित्यने पुत्रको कामवासि शिवकी धारारामना की। इस समय पृथ्वी म्लेच्छाशान्त थी। धन, इसके बालके लिये देवताभोगे की शिवसे प्रार्थना की। शिवजीने अपने गण माल्यवात्रकी<sup>३</sup> युवाकर कहा कि पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये तुम मनुष्यका व्यवहार लेकर उज्जयिनी नाम महेन्द्रादित्यके यहाँ पुत्र रूपसे उत्पन्न हो। पुत्र उत्पन्न होनेपर शिवके आदेशानुसार महेन्द्रादित्यने उसका नाम विक्रमादित्य तथा उपनाम (शत्रु संहारक होनेके कारण) विपमशील रखा। बालक विक्रमादित्य पढ़ लिखकर सब शास्त्रोंमें पारंगत हुए और राज्यविक्रम होनेपर उसका अभिषेक किया गया। वे बड़े ही प्रजावत्सल राजा हुए। इसके विषयमें लिखा है—

॥ पिता पितृदोषानां बन्धुनाथ स भान्धवः ।

अनाथानां च नाथ स प्रजानां च स माधवः ॥१८॥१६६

[वे पितृदोषोंके पिता, बन्धुरहितोंके बन्धु और पनाथोंके माधव थे। प्रजाने: तो वे सर्वेश्वर ही थे।] हमने मन्तर विक्रमादित्यकी विस्तृत विजयो और अद्भुत कृत्योंका अतिरजित वर्णन है।

कथामरिसावर अनेखाहन वर्माशील धर्म होते हुए भी अनेकतन्त्रित बृहस्पतिगजरी और धनगोमरा मूलाचार्य (गुणाध्य रचित)पर अवसिद्ध है। गुणाध्य सातवाहन राजका समकालीन था जो विक्रमादित्यसे लगभग १०० वर्ष पीछे हुआ था। अतः, सोमदेव द्वारा कथित धनुष्युति । कथा अतिरिक्त शीघ्रसे 'मय' से मय-राज और 'माल्यवात्र' से माल्य नामिका अग्रभाग मिलता है।

विक्रमादित्यके इतिहासमें सर्वथा घननिष्ठ नहीं हो सकती। सोमदेवके मन्वन्तमें एक और बात ध्यान देनेकी है। वे उज्जयिनीके विक्रमादित्यके प्रतिरिक्त एक दूसरे विक्रमादित्यको जानते हैं जो पाटलिपुत्रका राजा था। 'विक्रमादित्य इत्यासीदना पाटलीपुत्रके' (लम्बक ७, तरंग ४)। इसलिये जो प्राधुनिक ऐतिहासिक मगधाधिप पाटलिपुत्र-नाथ गुप्त सम्राटोंको केवल उज्जयिनीनाथ विक्रमादित्यमें मगध समझते हैं वे अपनी परम्परा और धनधुतिके साथ बसाहकार करते हैं।

(६) दार्दिशरपुत्रसिद्धा, राजावनी आदि घन्नों तथा राजपूतानेमें प्रचलित (श्रीरके राजस्था-नमें संरक्षित) धनुष्युतियोंमें उज्जयिनीनाथ अकारि विक्रमादित्यकी अनेक कथाएँ मिलती हैं।

साधारण जनताकी जिज्ञासा इन्हीं अनुयुतियोंसे उत्पन्न हो जाती है और वह परम्परासे परिचित लोक-प्रसिद्ध विक्रमादित्यके सम्बन्धमें अधिक मगधेयता करनेकी चेष्टा नहीं करती। किन्तु प्राधुनिक इतिहासकारोंके लिये केवल धनुष्युतिका प्रमाण पर्याप्त नहीं। वे देखना चाहते हैं कि मगध साम्राज्य-का ज्ञात इतिहासमें परम्परा और धनुष्युतिकी पुष्टि होती है या नहीं। विक्रमादित्यकी ऐतिहासिकताके सम्बन्धमें वे निम्नलिखित प्रश्नोंका समाधान करना चाहते हैं—

ऐतिहासिक प्रश्न—

(१) विक्रमादित्यके जिस संवत्का प्रवर्तन किया था उसका प्रारम्भ कबसे होता है ?

(२) क्या प्रथम उत्तादि ई० पू० में कोई प्रसिद्ध राजवंश यथा महापुरुष मालवा प्रान्तमें हुआ था या नहीं ?

(३) क्या उस समय कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना हुई थी जिसके उपसह्यमें संवत्का प्रवर्तन हो सकता था ?

इन प्रश्नोंको लेकर अत्यन्त प्रायः जो ऐतिहासिक अनुसंधान होते रहे हैं उनका सारास संक्षेपमें हम प्रकार दिया जाता है—

(१) यद्यपि ज्योतिष-गणनाके अनुसार विक्रम संवत्का प्रारम्भ ३७ ई० पू० में होता है किन्तु ईसाकी प्रथम बई समाश्रित्योक्त साहित्य तथा उल्लेखों देखीये इस संवत्का कहीं प्रयोग नहीं पाया जाता। मानना प्रान्तमें प्रथम स्थानीय संवत् मानवराज सिध्ति-काल था जिसका पता मगधोर प्रसन्न-लेखमें लगा है— मानवाना गणस्थिता याते संवत्सुष्टये। (पत्नीटः—गुप्त उल्लेखों से। स० १८) यह लेख पाँचवी उत्तादि ई० का है।

(२) प्रथम उत्तादि ई० में किसी प्रसिद्ध राजवंश यथा महापुरुषका मालवाप्रान्तमें पता नहीं।

(३) इन कालमें कोई ऐसी क्रांतिकारी घटना मानवप्रान्तमें नहीं हुई जिसके उपसह्यमें संवत्का प्रवर्तन हो सकता था।

उपर्युक्त श्रोत्रोंमें यह परिस्थिति निराना तथा है प्रथम उत्तादि ई० पू० में विक्रमादित्य नामक कोई शासक नहीं हुआ। उत्तानीय विक्रमादित्य कल्पना-प्रसूत है। संभवतः मालवसंवत्का प्रारम्भ ई० पू० प्रथम उत्तादिमें हुआ था। पीछे विक्रमादित्य उपाधिधारी किसी राजाने अपना दिग्द इसके साथ जोड़ दिया। इस प्रकार संवत्के प्रवर्तक विक्रमादित्यकी ऐतिहासिकता बहुतसे विद्वानोंके महत्तम धसिद्ध हो जाती है। इस प्रक्रियाका फल यह हुआ कि कतिपय प्राच्यविद्या-

विचारदोने प्रथम सन् १८६० ई० के सप्तम इतिहासम प्रसिद्ध राजाधोको विक्रम-संवत्का प्रवर्तन सिद्ध करनेकी चेष्टा प्रारम्भ की।

श्रानुमानिक मत—

(१) फर्गुसनने एक विचित्र मतका प्रतिपादन किया। उनका कथन है कि जिसको १७ ई० पू० में प्रारम्भ होनेवाला विक्रम संवत् चले है वह वास्तवमें १४४ ई० में प्रचलित किया गया था। उज्जयिणीमें राजा विक्रम हर्षन १४४ ई० में म्लच्छोकी (सकोकी) कोरके युद्धमें हराकर विजयके उपसहस्रमें सवत्का प्रचार किया। इस सवत्को प्राचीन और आदरणीय बनानेके लिये इसका प्रारम्भकाल  $६ \times १००$  (षषया  $१० \times ६०$ ) = ६०० वर्ष पीछे फेंक दिया गया। इस प्रकार ५६ ई० पू० में प्रचलित विक्रम संवत्को इसको अभिन्न नाम दिया गया है। किन्तु धर्मो ६०० वर्ष ही गणन इत्यादि प्रारम्भ होनेसे दिया गया इत्यादि समाधान पर्युत्तनके पास नहीं है। इससे प्रतिरिक्त १४४ ई० के पूर्व माना नवत् १२६ (महेश्वर प्रस्तर अभिलेख, पत्नीट—गुप्त उत्कीर्ण लेख सं० १८) तथा विक्रम-संवत् ४३० (बाबो अभिलेख इटि० एंदि० वर्ष १८७६; पृ० १५२) के प्रयोग मिल जानेसे फर्गुसनके मतका भवन ही घराघायो हो जाता है (फर्गुसनके मतके नियम देखिए इतिहास ऐंदि०केरी, वर्ष १८७६, पृ० १८२)

(२) डी० पत्नीटका मत था कि १७ ई० पू० में प्रारम्भ होनेवाले विक्रम संवत्का प्रवर्तन कनिष्कके राजपरोहण कालसे प्रारम्भ होता है (अरनत धीक ही खेयल एशियाटिक सोसाइटी, वर्ष १६०७ पृ० १६६)। अपने मतके समर्थनमें उनका तर्क यह है कि कनिष्क भारतीय इतिहासका प्रसिद्ध विजयी राजा था। उसने अन्ताराष्ट्रिय साम्राज्यकी स्थापना की। बौद्ध धर्मके इतिहासमें भी अगोचरके पञ्जात् उत्कीर्ण स्थाप है। ऐसे प्रवाची राजाका संवत् चलना सर्वथा स्वाभाविक था। परन्तु यह मत डी० पत्नीटके प्रतिरिक्त प्रायः अन्य किसी विद्वान्को मान्य नहीं है। प्रथम तो अगोचरके कनिष्कका समय ही अनिश्चित है। दूसरे एक विदेशी राजाके द्वारा देशके एक कोनेमें प्रवर्तित संवत् देशव्यापी नहीं हो सकता था। तीसरे यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि कुपण्डनि पत्नीट तथा पञ्जाटमें क्रिम संवत्का व्यवहार किया था, यह पूर्व प्रचलित सप्तमि संवत् था जिसमें महान्त तथा गतके अर्थ सुप्त है। यदि यह बात अमान्य भी समझी जाय तो भी कुपण्ड संवत् पतागत था और कुपण्डके पञ्जात् पश्चिमोत्तर भारतमें इसका प्रचार नहीं मिलता।

(३) धी वेनडे गोपाल ऐयरने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारतका तिथिक्रम' (कौन्सीलीवी पीएच एरिएट इण्डिया, वृत् १७३) में इस मतका प्रतिपादन किया है कि विक्रम संवत्का प्रवर्तक गुराण्टा महान्त का पुत्र था। 'विक्रम संवत् वास्तवमें मानव-संवत् है। मन्दवार प्रस्तर-लेखमें स्पष्ट रूप से कहा है कि मानव जन्मके मघटन कालसे इसका प्रचलन हुआ (पालवाना गण्टिपत्या धर्मो धर्मपुत्रे)। पत्नीट गुप्त उत्कीर्ण लेख सं०—१८)। कुपण्डों द्वारा इस संवत्का प्रवर्तन नहीं हो सकता था। एक ही कनिष्कका समय विक्रमकालीन नहीं। दूसरे यह बात सिद्ध नहीं कि उक्तका अर्थ अगोचर और अन्ताराष्ट्रिय था ही फेंका था। तृतीयके प्रतिरिक्त किसी अन्य कोपण्डकी राजवत्तका पता नहीं चलता जिसका मानव प्रस्तर धार्मिकत्व ही और जिसको सद्वत्ता प्रवर्तक माना जा रहा। जब इस इन सब बातोंकी ध्यानमें रखते हुए रचनामधुने गिरनार लेखमें

पडते हैं कि सब बलों ने अपनी रक्षाके लिये उसको अपना अधिपति चुना था (संबंर्णोर्गमगम्य पतित्वे ब्रूतेन—एपिप्राकिया इडिया बिल्द न, पृ० ४७) तब यह बात हम स्वीकार करते हैं कि मालवा और गुजरातकी सब जातियोंने उनको उसी प्रकार अपना राजा चुना था जिस प्रकार इसके पूर्व उन्होंने रुद्रदामनके पिता जयदामन् और उसके पितामह चाण्डनको चुना था। प्राचीन ग्रन्थ ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है कि पश्चिमके सभी राजाघोका अधिपक स्वराज्यके लिये होता है और उनको उपाधि स्वराट् होती है। इन स्वतंत्र जातियोंने एकतामें शक्तिका अनुभव करते हुए तथा मानवकताके प्राणे सिर झुकाकर अपने ऊपर विजयी चाण्डनके अधिपत्यमें अपनेको एकत्र करके संपटित किया। यही महान् घटना—एक बड़े शासकके अधिपत्यमें मालव जातियोंका संपटन—७५ ई० पू० में सबके प्रवर्तनमें उपलब्धित हुई। सबसे यह सबद् मालवामें प्रवर्तित है। चाण्डन और रुद्रदामन्ने मालवके पड़ोसी प्रान्तों पर भी शासन किया इसलिये सबद्का प्रचार विष्णुपर्वतके उत्तरके प्रदेशोंमें भी हो गया।

ऐसरे महोदयका यह कथन, स्वतः सिद्ध है कि विक्रम-सबद् वास्तवमें मालव संबद् है। कमिष्णके विक्रम-सबद्के प्रवर्तक होनेके विरोधमें उनका तर्क भी युक्तिरहित है। किन्तु कमिष्णके कर्त्तृ स्वरूपसत्त्वाधी प्रान्तीय विदेशी धनप, जिसके साथ राष्ट्रीय जीवनका कोई घास संलग्न नहीं था, सबके प्रवर्तनमें कैसे गारण हो सकता था, यह बात समझमें नहीं जाती। रुद्रदामन्के अभिप्रेक्षामें सब बर्णों-डारः राजाके चुनावका उत्प्रेक्ष केवल प्रवर्तित मात्र है। प्रत्येक शासक अपने अधिपकारको प्रजा-सम्मत करनेकी नीतिका प्रयोग करता है। इसके प्रतिरिक्त यदि रुद्रदामन् लोकप्रिय ही भी गया हो तो उसका यह गुण दो पीढी पहले चाण्डनमें, संपर्ककी नवीनता तथा हीनताके कारण, नहीं था सकता था। श्री ऐसरेजी यह युक्ति धर्यम्ब उपहासास्पद जान पडती है कि मालवगणने चाण्डनके अधिपत्यमें अपना संपटन किया और उसके उपलक्ष्यमें सबद्का प्रवर्तन किया। राजनीतिका यह एक साधारण नियम है कि कोई भी विदेशी शासक विजित जातियोंको सुग्त संपटित होनेका अवसर नहीं देता है। फिर अपने पराजयकासरो मालवोंने सबद्का प्रारम्भ किया हो, यह बात भी असाधारण जान पडती है।

(४) स्व० डॉ० काशीप्रसाद जायसवालने जैन अनुधुतिके आधारपर यह निष्कर्ष निकाला कि "जैन वाचाओ और लोकप्रिय कथाओका विक्रमादित्य नीतगपुत्र शातकर्ण था। प्रथम शातान्वि ई० पू० में मालवमें मालवगण वर्तमान था, जैसा कि उसके प्राप्त सिद्धोपे सिद्ध होता है। शातकर्ण और मालवकी सयुक्त शक्तिये लकोको पराजित किया। इसलिये लकोकी पराजयमें मुख्य माग सेनेवाके शातकर्ण 'विक्रमादित्य' के विरुद्धे विक्रम सम्वत्का प्रवर्तन हुआ। मालवगणने भी उसके साथ सन्धिके विशेष ठहराव (स्थिति, आम्नाय) के अनुसार अपना इस समय सपटन किया और इसी समयमें मालवगण-स्थिति काल भी प्रारम्भ हुआ। (बरतल मोक्ष विहार ऐण्ड लीघीया रिसर्च सोसायटी, बिल्द १६, वर्ष १९३०)।

उपर्युक्त कथनमें मालव सातवाहन सघका बनाना तो स्वाभाविक जान पडता है (यदि इस समय साम्राज्यवादी सातवाहनोंका अस्तित्व होवा संभव हो) किन्तु शातकर्ण विक्रमादित्य (?) की विजयमें मालवगण गौरवान्वित हुआ और उसके साथ संधि करके मालव संबद्का प्रवर्तन किया, यह बात पूर्ण रूपमें कल्पनिक और असंगत है। इसके साथ ही यह भी ध्यान देनेकी बात है कि



गौतमीयुग शातकर्णिके न केवल दशवर्षी द्वारा वा वरज् शक, छहरण, ध्वन्ति, भावर प्रादि धनेक प्रान्तोपर धयना धाधिपत्य स्थापित किया (मासिक उत्कोष् लेख, एपिग्राफिया इंडिका, बिल्ड ८, पृ० ६०)। उसकी विभिन्नय नो घटना मासवगण-दियतिने बहुत पीछेकी जान पड़ती है। साहित्य तथा उत्कोष् नख विस्तीसे भी इम बातका प्रमाण नहो मिलता कि किसी सातवाहन राजाने कभी विक्रमादित्यको तपाधि धारण नो थी। सातवाहन राजाशोधा विदिशम धभोतक धनिधित है। धयने विभिन्न सत्तोकी सिद्धिके लिये धिदानोने उसको धयनेमे ढाल रखा है। किन्तु बहुधम्मत सिद्धांत नह है कि कन्धो के पञ्चात् साभ्राज्यवादी सातवाहनोका प्राधुमधि प्रथम घाताधी ई० पू० के धयरादंमे हुआ। इसलिये धाध्र बधका तेईसवा राजा गौतमीयुग शातकर्णिके प्रथम घाताधी ई० पू० न नहो रक्का जा सक्ता। सातवाहन राजाधोने सेधोमे जो तिधिया की हुई है वे उनके राजधयधोके हैं, उनमे विक्रम-सवत् या धन्य किसी क्रमबद्ध सवत्का उल्लेख नही है। श्रीजामसवालके इस सत्तेके सम्बन्धमे सबसे धधिक निर्णायक गाथासप्तशतीका प्रमाण है। धाध्र बहाक सत्रहवें राजा हासके समयमे लिखित यह धन्य विक्रमादित्यके धस्तित्व धीर यद्युते-परिचय है, धत इस नधवा तेईसवा राजा गौतमी-युग शातकर्णिके लो किधी धवस्थामे भी विक्रमा-दिय नहो हो सकता।

सीधा ऐतिहासिक प्रयत्न—

इस प्रकार विक्रमादित्यके धनुसन्धानमे प्राध्व विद्या-विशारधोमे धयनी उर्वर कल्पना-धातिका परिचय दिया है। किन्तु इस प्रकारके प्रयत्नमे विक्रमादित्यकी ऐतिहासिकताकी समस्या हल नही होती। यदि परम्पराने समुचित धाधरके साथ सोधो ऐतिहासिक खोज को जाय तो सवत्-प्रवर्तक विक्रमादित्यका घता सरलतामे सम सकता है। वास्तविक विक्रमादित्यके लिये निम्नलिखित धातीको पूरा करना मावश्यक है —

- (१) मासवा प्रदेश धीर उज्जयिनी राजधानी।
- (२) धकारि होला।
- (३) ५७ ई० पू० मे सवत्का प्रवर्तक होना धीर
- (४) काशिदासका धान्यदाता होना।

धनुसीलन—

(१) यह बात धव ऐतिहासिक खोजसे सिद्ध हा गई है कि प्रारम्भमे मासवाप्रदेशमे प्रचलित होनेवाला सवत् मासवगणना सम्बत् वा। सिक्धरके भारतीय धाक्रमणके समय मासव धाति पनाबमे रहती थी। मासव धुद्धक गणधयने सिक्धरका विरोध किया था, किन्तु पास्वरिक कूटके कारण मासवगण भकेला सडकर युनाधियोसे हार यमा। इसके पश्चात् धोयोके कठोर धियभणसे मासवधाति निम्प्रभ-सी होगई। गौर्य-साभ्राज्यके धातिध धासमे जय धरिन्धोत्तर भारतपर धातिधधोके धाक्रमण प्रारम्भ हुए तब उत्तरपणकी मासवाधि नई नखधातिधो नहति धूर्धो राज-पूताना होते हुए मध्यभारत धूर्धो धीर गहोवर उ-होने धयने जये उधनिधेध स्थापित धिए। समुद्र-धुल्लके प्रयाग-प्रधरिध लेखसे सिद्ध है कि धोयो घाताधी ई० पू० के पुवाधंमे उसके साभ्राज्यकी दशिलु-धरिध धाधर कई नख-राष्ट्र वर्तमान थे। किन्तु इसके पहले प्रथम धितीय घाताधी ई०

पू० में मालवजाति आकर आगन्ति (मालव प्रान्त) में पहुँच गई थी, यह बात मुद्रा-शास्त्रसे प्रमाणित है। यहाँपर एक प्रकारके सिक्के मिले हैं जिनपर ब्राह्मी अक्षरोंमें 'मालवानां जयः' लिखा है (इण्डियन म्यूजियम क्वार्टरन्स जिल्ड १, पृ० १६२; कनिष्क—आर्किमैतीलिकल रिसर्च रिपोर्ट, जिल्ड, ९, पृ० १६३—७४)।

(२) ई० पू० प्रथम शताब्दीके मध्यमें मगध-साम्राज्यका अन्तर्भाव कान्योको क्षीण शक्तिके रूपमें पूर्वी भारतमें बचा हुआ था। बाह्यजनोंके पश्चात् पश्चिमोत्तर लकोके आक्रमण होने लगे। शक जातिने सिन्धु प्रान्तके भागमें भारतवर्षमें प्रवेश किया। यहाँसे उसकी एक शाखा सुराष्ट्र होते हुए अगन्ति आकरकी ओर बढ़ने लगी। इस बढावमें मध्यभारतके गजराष्ट्रमें शकोंका संघर्ष होना सर्वथा स्वाभाविक था। बाहरी आक्रमणके समय गजराजसिंहालय अनाकर लक्ष्मीं थी। इस संघर्षका नेतृत्व मालवराजने किया और शकोंको पीछे धकेलकर सिन्धु-प्रान्तके छोरतक पहुँचा दिया। कालकाचार्य-कथामें शकोंको विमलराज देवा, अगन्तिके ऊपर उनका प्रस्थायी प्राधिपत्य और अन्तमें विक्रमादित्यके द्वारा उनका निर्वासन—इस सभी घटनाओंका प्रेरक इतिहासकी उपर्युक्त धारासे बँठ जाता है।

(३) शकोंको पराजित करनेके कारण मालवराज-मुख्यका शक्ति एक दिग्द हो गयी। यद्यपि इस घटनासे शकोंका आतंक सदाके लिये दूर नहीं हुआ, तथापि यह एक क्रान्तिकारी घटना थी और इसके फलस्वरूप लगभग डेढ़सौ वर्षोंतक भारतवर्ष शकोंके प्राधिपत्यसे सुरक्षित रहा। इसलिये इस विजयके उपलक्ष्यमें सत्तुका प्रवर्तन हुआ और मालवराजके हृदय होनेसे इसका गणनाम भास्वराज स्थिति में मालवराज काय पडा।

(४) अब यह विचार करना है कि मालवराज मुख्य कालिकाके आश्रयदाता हो सकते हैं या नहीं? मनिमान-शाकुन्तली की कतिपय प्राचीन प्रतिधियोंमें कान्योके अन्तमें लिखा मिलता है कि इस नाटकका अन्तमें विक्रमादित्यकी परिधमें हुआ था। 'सूत्रधार—आर्ये इय हि रसभाव-विशेषीनापुरोविक्रमादित्यस्याभिरुपभूमिष्ठा परिधत्। अस्यान्व कालिदासप्रथितवस्तुना नवेनाभितानशाकुन्तलनामधेयेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्याभि। तत् प्रतिपादनाधीयता अस्त'। नाटके ।' (जीमानन्द विद्यासागर संस्करण, कलकत्ता, १९१४ ई०)। आर्य अर्थात् विक्रमादित्य एकतांत्रिक राजा ही हमने ज्ञाते रहे हैं। किन्तु कान्यो-विश्वविद्यालयमें हिन्दी विभागके अध्यक्ष स्वर्गीय प० केशवप्रसाद मिश्रके पास सुरक्षित अभिज्ञानशाकुन्तलीकी एक हस्तलिखित प्रति, प्रतिलेखन काल-भगहनसुदी ३, सवत् १९२९ वि०) में विक्रमादित्यका गणना अन्वय अर्थक कर दिया है। इसके निम्नांकित अन्तरण ध्यान देने योग्य हैं—

(अ) आर्ये ! रसभानविशेषदीक्षापुरो विक्रमादित्यस्य साहसाद्भूत्या-भिरुपभूमिष्ठेय परिधत्। अस्यान्व कालिदासप्रमुक्तेनाभिज्ञानशाकुन्तलेन नवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्याभि. (नान्द-ते)।

(आ) भवतु तव विठोनाः प्राण्यवृष्टिः प्रजासु  
स्वगणि विततयतो वज्रिणु भावयेयाः।  
गणनापरिधरेवमन्दीवकृत्य-

नियतमुभयलोकाभुहृत्स्नापनीयेः ॥ (भरतवाक्य)  
उपर्युक्त पदतरणोंमें रेखांकित पदोंसे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि जिन विक्रमादित्यका यहाँ निर्देश है उनका व्यक्तिगत नाम विक्रमादित्य और उपाधि 'साहसाद्' है। भरतवाक्यका 'गण' शब्द

श्रुत काव्यकारका होना सम्भव था। 'शुद्धरथान' मत्तके मुख्य प्रवर्तक यैशसमूलर थे। पीछेकी ऐतिहासिक सोचसे यह मत अस्तिष्ठ हो गया है [विस्तृत विवेचनके लिए देखिए डा० जी० भूषण, इंडियन ऐंटीक्वरी, वर्ष १९१३]। 'बौद्धकाल' में न तो वैदिक धर्म सुप्त हुआ था और न संस्कृत साहित्य ही। शुद्धकालके पहले ईसाकी दूसरी शताब्दीमें सुराष्ट्रके महाजनपद्वदामयुके गिरनार अभिलेखमें यश-काव्यका बड़ा ही सुन्दर उदाहरण मिलता है ..... 'पञ्चमेनेकाण्यप-भूतायामिव पृथिव्या कृताया.....' युगनिघण्टुसदृशपरमधोरवेयेन वायुना प्रमणित सखिलविनिपुत्र-जरीकृताव.....' एपिघ्राप्तिमा इतिवत्, सिद्ध ८, पृ० ४७। राजकीय व्यवहारका सुद्ध गद्यकाव्य अथवा ही उस युगमें वर्तमान पद्य-काव्यके अनुकरणपर लिखा गया होगा। ई० पू० पूर्व कासमें रचित पातञ्जल महाभाष्यमें उद्धृत उदाहरणमें काव्यकी शैली और छन्द पाए जाते हैं। (कोल-हीनः महाभाष्यका संस्करण)। इसके प्रतिरिक्त रामायण तथा महाभारत-जैसे महाकाव्योंके प्राथिकाव्य भाग ई० पू० में लिखे गए थे। मनु तथा याज्ञवल्क्य-स्मृतियाँ ईसाकी पारसर्वाती शताब्दियोंमें लिखी गई थी। काव्यकी उपर्युक्त पाठके प्रकाशमें प्रथम शताब्दी ई० पू० में कालिदासके नाटकों और काव्योंकी रचना पूर्णतः असम्भव नहीं जान पड़ती।

(२) कालिदासके काव्यो और बौद्ध पण्डित अश्वघोषके बुद्धचरित नामक काव्यमें प्राथमिक साम्य है। कथामककी वृष्टि और विकास, वर्णन-शैली, धर्मकारोका प्रयोग, छन्दोंका चुनाव, शब्दविभ्यासादि में दोनों गानाकारोंमें से एक दूसरेसे अत्यन्त प्रभावित हैं। इसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

**रघुवंश**

ततस्तदाकोकन उपपराणां  
सौधेषु शमीकरजासवरुहः।  
अनूभुरिखं पुरपुरदरीणां  
श्वत्तान्यकार्याणि विवेष्टितानि ७।५।।

**बुद्धचरित**

ततः कुमरः शत्रु मण्डलीति  
श्रुत्वा स्थिवः प्रेय्य जनारप्रवृत्तिम्।  
दिदक्षया ह्यमृततामि जन्तुः  
पत्नेन मान्देन कृताम्पनुजः ॥३।११

महं तो प्रायः सभी विद्वान् मानते हैं कि कालिदासकी रचना दोनोंमें श्रेष्ठ है। परन्तु उनमेंसे कतिपय यह भी मान लेते हैं कि संस्कृत काव्यके विकासमें अश्वघोष पहले हुए। कालिदासने उनका अनुकरण कर अश्वी शैलीका विकास और परिष्कार किया। अश्वघोष हुए सत्राष्ट कीर्त-युके समकालीन थे, जिनका समय प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी ई० है। इसलिये कालिदासका काल तीसरी शताब्दीके पश्चात् संभवतः मुक्त कासमें होगा चाहिए (२० बी० कोवेल-अश्वघोषका बुद्धचरित, भूमिका)। विचार करनेपर यह युक्ति-परम्परा सर्वथा अयोग्य जान पड़ती है। यह बात विदित है कि प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य पालि भाषाके लिखा गया था। पीछे संस्कृत साहित्यके प्रभाव और उपयोगिताको स्वीकारकर बौद्ध लेखकोंने संस्कृतको अपने साहित्य और दर्शनका माध्यम बनाया। इसलिये संस्कृतकी काव्यशैलीके प्रचलित और परिष्कृत हो जानेपर उन्होंने उसका अनुसरण किया। अतः, स्पष्ट है कि अश्वघोषने कालिदासकी शैलीका अनुसरण किया। यदि उनकी कला अश्वघोषकी हीन है तो यह अनुकरण का दोष है। प्रायः अनुकरण करनेवाले अपने मॉडलकी समता नहीं कर पाते।

(३) कालिदासको पाँचवी या छठी शताब्दी ई० में खीच लानेमें एक प्रमाण यह भी दिया जाता है कि उनके ग्रन्थोमें यवन, दक्ष, पल्लव, हूणारि जातियोंके नाम आते हैं। हूणोंने ५०० ई० में भारतवर्षपर आक्रमण प्रारम्भ किया। अत इसका उल्लेख करनेवाले कालिदासका समय इसके पश्चात् होना चाहिए (सिन्दरेरी रिमेन्ड ग्रीफ डा० भाऊदाजी, पृ० ४६।) परन्तु ध्यान देनेकी बात सी यह है कि रघुवशमे हूणों यथवा अन्य जातियोंका वर्णन विदेशी विजेताके रूपमें नहीं आता। रघुने अपनी दिग्गजयमे उनको भारतकी सीमाके बाहर पराजित किया था, अत कालिदासके समयमें हूणोंको भारतकी पश्चिमोत्तर सीमाके पास नहीं रहना चाहिए। चीन तथा मध्य एशियाके इतिहासके प्रमाणित हो गया है कि ई० पू० पहली तथा दूसरी शताब्दीमें हूण पामीरके पूर्वोत्तरमें आ चुके थे। (गुहट्य लेक—चीनका इतिहास, जिल्ड १, पृ० २२०)।

(४) ज्योतिषमें बहुतसे सकेत कालिदासके ग्रन्थोमें आए हैं। कई एक विद्वानोंका मत है कि क्रुपण-कालके पश्चात् भारतीयोंने ज्योतिषमें बहुतेरे सिद्धान्त युगल और रोमसे सीखे थे। इसलिये कालिदासका समय इसके बहुत पीछे होना चाहिए। परन्तु इस बातको माननेवाले इस समयकी भूल जाते हैं कि स्वयं यूनानियों ने कई शताब्दी ई० पू० में बैबिलोनियाके लोगोंसे ज्योतिष-शास्त्र सीखा था। (मैक्समूलर—इण्डिया, प्लूट कंन इट टोप थस, पृ० ३६१)। चौथी पाँचवीं शताब्दी ई० पू० में भारतीय सम्पर्कमें भारतवर्ष भर्षी-मति आ गया था, अत, वह बैबिलोनिया और आस्टियाका ज्योतिष सीखे सरलतासे सीख सकता था (प्रो० एच० बी० शील्ड—भारतीय ज्योतिषका प्राचीन इतिहास, पृ० १५७)। इसलिये बहुत पहले रचित रामायणमें ज्योतिषके सिद्धान्तोंका अधिक प्रयोग किया गया है—

महाभेदिति दैवस्ये रवीच्यसस्येषु पचसु ।

ग्रहेषु बर्कटे स्ये वाक्यता विदुना सह ॥

(बा० का०, सर्ग १८, श्लो० ६)

पुष्ये जातसु भरती मीनसग्ने प्रसन्नपी ।

सर्पे जाती तु सीमिनी मुसीरेऽम्मुदिते रषो ॥

(बा० का०, सर्ग १८, श्लो० १५)

उदिते विमले सूर्ये पुष्ये चाम्बान्तेऽहनि ।

सग्ने बर्कटेने प्राप्ते जन्म रामस्य च स्थिते ॥ यादि ।

(प्रयो०, सर्ग १५, श्लो० ५)

(५) पराह्निद्विषको तथावदित समवासीनतासे भी कालिदासका समय पाँचवी शताब्दी ई० में निर्णित किया जाता है। ज्योतिर्विदाभरणमें निर्णयित उल्लेख है—

पञ्चमरितरगुणामरसिंहदृक्केसाचमृष्टपटपररवासिदासा ।

रगतो पराह्निद्विषधे मुपतेः समायो रागानि चै मरदखिनं च विप्रमस्य ॥

इस पञ्चमरितके सबभयें प्रथम दो यह कहना है कि जिस ग्रन्थमें इसका उल्लेख है वह कालिदासकी रचना नहीं है। दूसरे एक दो भी दोहरा यह कहते हैं कि जिस ग्रन्थमें एकत्रिय

गए हैं वे समकालीन नहीं। तीसरे यह अनुश्रुति पीछेकी और केवल एक ही है; अन्यत्र कहीं भी इसकी चर्चा नहीं। अतः, बराहमिहिरकी कानिदाससे समकालीनता उसी प्रकार कल्पनाजन्य जान पड़ती है जिस प्रकार कानिदास और भवभूतिके एक समयमें एकत्र होनेकी किंवदन्ती।

इस प्रकार कानिदासकी गुप्तकालीन और इस कारणसे विक्रमादित्यको गुप्त-सम्राट् सिद्ध करनेकी मुक्तिवां तकसिद्ध नहीं जान पड़ती हैं। विक्रमादित्यके गुप्त-सम्राट् होनेके विरुद्ध निम्न-लिखित कठोर प्रामाण्य हैं—

(१) गुप्त-सम्राटोका अपना वंशगत सवत् है। उनके किसी भी उत्कीर्ण लेखमें माल्य भयवा विक्रम-सवत्का उल्लेख नहीं है। जब उन्होंने ही विक्रम-सवत्का प्रयोग नहीं किया तो पीछेसे उनके गौरवास्तके पञ्चात् जनताने उनका सम्बन्ध विक्रम-सवत्से जोड़ दिया ही, यह बात समझमें नहीं आती।

(२) गुप्त-सम्राट् पाटलिपुत्र नाम थे, किन्तु अनुश्रुतियोंके विक्रमादित्य उज्जयिनी-नाथ थे। यद्यपि उज्जयिनी गुप्तोंकी प्राचीन राजधानी थी, किन्तु वे प्रधानतः पाटलिपुत्राभीष्टवर और मगधाधिप थे। मुगल सम्राट दिल्लीके अतिरिक्त आगरा, साहौर और श्रीनगरमें भी रहते थे। फिर भी वे दिल्लीद्वर ही कहलाते थे। इसके अतिरिक्त सोमदेवमठने अपने कथासरित्सागर में स्पष्टतः दो विक्रमादित्योंका उल्लेख किया है—एक उज्जयिनीके विक्रम तथा दूसरे पाटलिपुत्रके। उनके मनमें इस सम्बन्धमें कोई भ्रम नहीं था।

(३) उज्जयिनीके विक्रमका नाम विक्रमादित्य था, उपाधि नहीं। कथासरित्सागरमें लिखा है कि उनके पिताने जन्म-दिनको ही उनका नाम शिवजीके धारैणानुसार विक्रमादित्य रक्खा। अभिषेकके समय यह नाम भयवा विघ्नके रूपसे पीछे नहीं रक्खा गया। इसके विरुद्ध किसी गुप्त सम्राट्का नाम विक्रमादित्य नहीं था। द्वितीय चन्द्रगुप्त तथा स्कन्दगुप्तके विरुद्ध क्रमशः विक्रमादित्य और विक्रमादित्य (कहीं-कहीं विक्रमादित्य भी)। समुद्रगुप्तने तो यह उपाधि कभी धारण ही नहीं की। कुमारगुप्तकी उपाधि महेंद्रादित्य थी, नाम नहीं। उपाधि प्रचलित होनेके लिये यह आवश्यक है कि उसके नामका कोई लोक-प्रसिद्ध व्यक्ति हुआ हो जिसके अनुकरणपर पीछेके महाकाशी लोग उस नामकी उपाधि धारण करें। रोमने सीधर उपाधिधारी राजाओंके पहले सीधर नामक सम्राट् हुआ था। इसी प्रकार विक्रम उपाधिधारी गुप्त नरेशों के पूर्व विक्रमादित्य नामधारी शासक भवष्य ही हुआ होगा और यह महापराक्रमी माल्यगण-मुख्य विक्रमादित्य साहसात् ही था।

## विक्रम और उनके नवरत्न

( स्त्र० प० दशरथ शास्त्री 'श्रील' साहित्यवर्धनाचार्य, साहित्यरत्न )

सा रम्या नगरी, महान् स नृपति, सामन्तचक्र च तद्,  
पादवे तस्य च सा विदग्धपरिपत्, साम्प्रद्विग्धानना  
उन्मत्त च च राजपुत्र-निवह, ते यन्-दन, ता कथा,  
सर्वे यस्य वशावगात् स्मृतिपथ, कासाय तस्मै नम ॥

—भर्तृहरि

[ वह जयमालती राजधानी । वह महान् सम्राट् । वह सामन्तोंका उपगृह । वह पडे-पडे  
कामा-कोविदोंके विभूषित राज-दरबार । वे पद्ममुखी नलगाएँ । वह मन्दोम्मत्त राजकुमारोंका  
गुम्ह । वे प्रसस्ति-पाठक चारण । वे बाते !—वह सब कुछ जिसकी कृपासे विस्मृतिके गहरे  
गर्भमें दूब गया, उस काम भगवान्‌को बार बार नमस्कार है । ]

जब जब हम अपने २००० वर्षों के सांस्कृतिक अतीतके अन्वेषणमें प्रवृत्त होते हैं तब-तब  
भर्तृहरिकी इस मूलिनी और अम अकस्मात् आकृष्ट हो जाता है । जिस महान् विक्रमादित्यका  
स्वर्णिम शासन हमारे घर गहल भावनाओंकी आघार मिला है, जिसके उदात्त दया वाक्षिप्य तथा  
अपाह्य शीर्ष वीर्यकी आभाएँ हमें रोमांचित करती रहती हैं—आज हममें से बहुतोंकी इनके  
अस्तित्वका अन्वेषण करना पड़ता है, यह काम भगवान्‌की पहिमा नहीं, वो बरा है ?

प्रस्तावित विक्रम-समत् प्रवर्तक, एक-समुद्र घोषक, सम्राट् विक्रमादित्यकी कीर्ति पीति-मन्थिप्य-  
पुषण, कथासरितामर, गृहरक्षाम-रक्षे, मयसाहसकचरित, प्रबन्धचिदानुधि, ज्योतिर्विद्याभरणम्,  
कालवाचार्थ मयानन, विक्रमार्कचरितम्, आदि अनेक ग्रन्थोंमें अनेक आकृति-प्रवृत्तिमें मिलती है ।  
वह हमारी सत्प्र शक्तिपर निर्भर है कि हम सूक्ष्म अज्ञापोह शक्ति-द्वारा विवेचनपूर्वक साहित्यक-  
पटनाओं पर प्रकाश डालें । नवरत्नोंमें सम्बन्धकी कुछ बातें यहाँ थोड़ेसे दी जाती हैं, पाठक स्वयं  
व्याप्योचित निरूपण कर सकते हैं—

पद्मन्तरि—

नवरत्नोंमें सर्व-प्रथम इन्हींका उल्लेख किया गया है । किन्तु, सूक्ति-नुमायित सप्रहोमे इनका  
एक भी पद नहीं मिलता । अशिश-वरपरामें तो ये समुद्रसे निकले हुए भगवान् पद्मन्तरि ही  
सम्भे जाते हैं । अनुसुवासे इनके ९ अर्थोंका पता लगता है, जो सभी आयुर्वेदिक विद्वत्सा-  
धारणसे सम्बद्ध हैं । इन अर्थोंमें “पद्मन्तरि निपट्ट” को ९ अर्थोंमें बँटा हुआ है, अर्थोंका  
महान् उपचारक और अतिशक्तिशाली प्रणेतृ भगवान्‌के प्रणेतृ भगवान्‌के ये अति प्राचीन हैं

घोर इनका बनाया कोई "रत्नधासा" कोश भी था—इसका पता खीरस्वामीकी तिली "अमर-कोश" की टीकासे लगता है ।

धपणक—

इनके नामसे ही प्रतीत होता है कि ये बौद्ध सन्ध्याही थे, किन्तु कुछ लोग इस मतके विरुद्ध हैं । इनका लिखा कोई विशेष ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है । भिष्मटन काव्यसे इनकी एक रचना उद्धृत की जाती है ।

नीतिभूमिभुजां, नतिर्गुणवती, ह्योरङ्गनाना, रतिः  
धर्मरयोः, शिष्यो गुरुस्य, कविता बुद्धेः, प्रसादो विराम् ।

सावय्य ममुद., श्रुति, सुमनसां, सातिहिनस्य, समा  
घान्तस्य, ब्रविण गृहाद्यमवतां, धील सता मण्डनम् ॥

राजाधो, गुणियो, स्थियो, पति-परिनयो, मकानो, बुद्धि, वाखी, धरोर, प्रतमगमो, ब्राह्मणो, उपस्थियो, गृहाभिनयो, घोर सज्जन पुत्रयोके मलकार क्रमः नीति, विनय, सज्जा, रति, बालक कविता, प्रसादगुण, सौख्यं, वेदज्ञान, धार्मि, समा, मन, शील (सरस्वभाव) ये गुण हैं । एक विद्वान्का कहना है कि "अमरकोश" भी इन्हींकी रचना है ।

अमरसिंह—

1. सस्कृतका समाज इन्हीं जैन विद्वान्के रूपमें ही जानता है । इसका मुख्य कारण 'कविकल्पलताके' प्रयोगका भी इसी नामका होना है । इस ग्रन्थका सङ्गन प्रसिद्ध भाष्येक विद्वान् राहुल साङ्गरामने अनेक प्रमाणों से किया है । बोधगयाके वर्तमान बुद्ध मन्दिरसे प्राप्त एक शिलालिखित सात होता है कि इस मन्दिरके निर्माता यही थे । एक मात्र 'अमरकोश' ग्रन्थसे इस प्रकारका प्रमाण प्राप्त करना इनकी पुण्य-प्रबलताका द्योतक है । भारतीय पण्डितोंने यह उक्ति प्रख्यात है—महाध्यायी जगन्माताअमरकोशो जगत्पिता । पालिनिकी महाध्यायी घोर अमरसिंहका कोश ये जगत्के (पालिकके लिये माता-पिताके समान) उपकारक हैं ।

'अमरकोश' तीन काण्डोंमें लिखा गया संस्कृतका सर्वश्रेष्ठ उपयोगी कोश-ग्रन्थ है । इतने बड़े पैमानेपर भाष्य ही किसी दूसरे कोश-ग्रन्थका प्रचार ही । इस लोकप्रिय कोशपर कुल भिष्मक ४० टीकाएँ हैं । तिब्बती घोर बोधी भाषाधोमे भी इसका रूपान्तर हो चुका है ।

यद्यपि इनका कोई काव्य-ग्रन्थ नहीं प्राप्त होता है, तथापि 'अमरकोश' की सरस प्रवाह शैली अपने निर्माताके अन्तरमें सुसरित कवित्वकी अमुरिम धाराकी छिपा नहीं सकी है । 'सकुत्तिकर्णामृत' में इनके समबन्धमें लिखा है,—

प्रयोगम्युरपतो प्रतिपदविशेषायंकरणे

प्रसन्नो धाम्नीये रसवति च काव्यार्थं रचने ।

अगम्यायामन्वेदिशि परिणतानर्थं यत्रयो-

मैत वेदस्याक बविरमरसिंहो विजयते ॥

प्रयोगीकी सुद्धतामे, प्रत्येक पदके अर्थके प्रकाशनमे, प्रवाद गुणमे, भाषाकी गम्भीरतामे

रसशास्त्रिणी कविताकी रचनामें, शब्द और अर्थके अन्यजनदुर्लभभाव—परिपाकमें ( यदि मेरी बात मानी जाय तो) अमरसिंह कवि ही सर्वोत्तम हैं ।

शकु—

मदशलोमें अमरसिंहके अन्तर छन्द नाम लिया जाता है । वास्तवमें इनका 'शकु' है । "काव्य प्रकाश" नामका साहित्य-शास्त्रके विद्युत्तनाथ ग्रन्थमें उसके रचयिता मम्मटमट्टने रस निरूपणके प्रकरणमें मट्ट सोल्लटके बाद इनके मतका उल्लेख किया है । काश्मीरवासी 'कल्हण' की "राजतरङ्गिणी" यह पद्यनेगे धाता है—

अथ मम्मोरपमशोकसूददास्तौ रसः ।

रङ्गप्रवाहा यथासीद् बितस्ता सुमर्द्वतः ॥

कविर्बुधमनः तितुतताद् अशुकामिधः ।

अमुद्दिष्टाकरोत्काव्यं भुवनाम्बुदवाभिधम् ॥

मम्म और उसके इन दोनों राजाओंमें ऐसी लड़ाई हुई कि उसमें मरे हुए वीर सैनिकोंकी सोपोंसे बितस्ताका (भेलम) प्रवाह रुक गया !—उस युद्धको लेकर पण्डितों के तृपयक्यों 'शकु'के अन्तर्मा शकु कविने "भुवनाम्बुदयम्" नामक काव्य लिखा । इससे सिद्ध होता है कि "शकु" का "भुवनाम्बुदयम्" किसी समय प्रसिद्धिकी पराकाष्ठाको प्राप्त था । किन्तु, काल-क्रमसे 'ह्लासके वाप्य'के पत्रकर यह अपने अस्तित्वको भी खो बैठा और प्रायः पुरातत्त्वका विषय बन गया ! अथ तो प्रथम करनेपर सुवित-समूहोंमें इनकी कुछ रचनाएँ पाई जा सकती हैं । इनकी तरह कहनेका अंग सप्त-कवियों में विरलेमें ही मिलेगा—

दुर्वासः स्मरमार्गलाः, प्रियतमो वरे, भनोजसुहृक

गाढं प्रेम, नवं नयोऽति कठिनाः प्राणु कुर्व निर्मलम् ।

स्त्रीत्व, वैश्वविरोधि, मम्मसुहृत् कालः, कुलातीश्यामी

श्री अस्मदचतुराः कथं नु विरहः सोढव्य इत्यं मया ॥

[कामदेवके बाण अणूक निन्त्याना मार रहे हैं, प्राणनाथ परदेतामें हैं उनके लिये मन उत्कण्ठित हो गया है, मनुराग गाढ है, प्रवस्था तवीन है, (प्राण कठोर है जल्दी निराल नहीं जाते), कुल पवित्र ठहरा, स्त्रीका स्वभाव कभी धोरन नहीं भरता, प्रायःकलका समय (वसन्त ऋतु) 'पञ्चबाण' का पक्षा मिन है, मृदु कित्तोको क्षमा करना जानती नहीं, सखियाँ चतुर नहीं, (जो पतिये बिलने वा प्रबन्ध करती) ऐसी विधिविमें यह विरह रहा कैसे जाय ? छोटे-से-छोटे पदमें सुन्दर-से-सुन्दर गावोंके गुणमें ये अद्वितीय, अद्भुत और आश्चर्यजनक कलाकार थे ।

वेतालभट्ट—

विक्रम और वेतालके सम्बन्धमें जोता और बस्ताके रूपमें दोनोंकी कहानियाँ अपने देसमें प्रायण्डित-नामर प्रसिद्ध हैं । पण्डित लोग भी बात-बातमें "पुनर्वेतासतत्त्वैव रमते" के मुहावरेका प्रयोग करते देखे जाते हैं । "वेताल पञ्चविधति" (वेताल पन्धेरी) का प्रचार इन्हीं कथाओंकी लेकर है परन्तु निर्माताके रूपमें इनका नहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता ।



घटसर्प—

कहा जाता है कि इनकी प्रतिभा थी कि धनुषाक्ष और यमः में जो कवि मुझे पराजित करेगा मैं उसके यहाँके फूटे घड़ेसे पानी भर करूँगा ! यह एक ऐसी बात हुई कि इनका वास्तविक नाम सुप्त हो गया—उसके स्थानपर अग्रकृत नामकी ही स्थापति हुई। इनका बनाया हुआ “घटसर्प काव्यम्” (सप्तकाव्य) प्राप्त है। इस काव्यमें कुल मिलाकर २२ श्लोक हैं। सभी चमक-भरे मोतीके दाने हैं। धनुषाक्ष और यमकके प्रयोगके लिए कविमें परिष्कृत प्रतिभा और लोकोत्तर क्षमता है।

माधामुरकवज्रिता-सुरतः शपेय  
मानस्य चाम्बुतुपित. करकोत्तपेयम् ।  
शोयेम येन कविना यमकः परेषु  
सस्मं बहेयगुदक घट-सर्परेण ॥

शब्द-सर्प, भाव-भावा, मुल-रीति, रत्न-अनकार, इन सभी कव्यके उपादेय गुणोंका इनके द्वारा—मयास्थान उचित नामसे उपयोग किया गया है।

नीलदास्यमति भाति कोमल  
वारि विपति च पातकोऽमलम् ।  
मम्युरः श्लिषिगणो विनासते  
का रति. प्रिय ! मयाविनाऽप्यते ॥

[इस ऋतुमें हरी-हरी मृदु-मृदु बूबोंका (चारों तरफ) बिलोना बिछा हुआ है, चातक (पपीहे) पानी (स्याती) की बँदोंका पीचसे पान कर रहा है [पन गर्जें मुनकर मयूर केका-स कर रहे हैं—लेकिन मेरे प्राण नाथ ! मुझे तुम्हारे वियोगमें यह सब तनिक भी नहीं सुझाता है।]

हसा नदन्येयमयाद् द्रवन्ति  
निशामुलाम्बरा न चन्द्रवन्ति,  
नयाम्मुमसाः शिलिनो नदन्ति  
मेवावमे क्रुन्दसमानदन्ति ॥

[हे कुन्द (कुल) के समान (उज्ज्वल) शीतों वाली ! इस समय, (वर्षा ऋतुमें) गरजते हुए मेघोंके समते—इस भावसे लगते हैं, सायकास चन्द्रोदय देखनेमें ही नहीं धाता, गरजते हुए बावलों की गुहायनी छटापर मुग्ध होकर मयूर बोलते हैं।]

विप्रलम्भ-शृंगारका रसाभूत परिभाषा जिस प्रकार कालिदासके मेघदूतमें मिलता है उसी प्रकार घटसर्पके प्रकृत सप्तकाव्यमें भी सर्वोप शृङ्गारका सुन्दर विवरण मिलता है। इनके एक और ग्रन्थ “नीतिसार” का भी उल्लेख मिलता है।

कालिदास—

जैसा कि हम पूर्वमें लिख चुके हैं, महाकवि कालिदास, सम्राट् विक्रमादित्यके प्राणप्रिय कवि-मित्र थे। भवश्य ही स-होने यपनी रचनायोंमें विक्रमने व्यक्तित्वका उज्ज्वल स्वरूप-निरूपण किया है। इनके निम्नलिखित एक ही उदाहरणसे इनकी विक्रम-कालीनता स्पष्ट सिद्ध होती है—

ततः पर दुष्यसह द्विपद्भिरुप निशुक्ता प्रतिहारभूमौ ।  
 निदसंवासात् विद्येपहृद्यमिन्दु नवोत्पानमिनेःदुगर्ष्य ॥  
 भवन्तिनाथोऽयमुदप्रवाहूपिशासवक्षास्तनुवृत्तमप्यः ।  
 आरोग्य चन्द्रमभ्युत्थेजास्त्वप्येव मरुतोस्तिष्ठितो विधाति ॥  
 अस्य प्रयाणेषु समग्रजप्तेरश्वैरैर्वाजिभिरुपितानि ।  
 युधन्ति सामन्तविद्यामखीना प्रभाप्ररोहास्तमय रजाति ॥  
 क्षभी महाकामनिषेत्तनस्य बसन्तदूरे विस चन्द्रमौलिः ।  
 तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नापत्तो निविशति प्रदोषात् ॥  
 अनेन यूना सह पाषिषेन रंभोक कृष्चन्मनसो यचित्ते ।  
 किंप्रातरप्लुताभिरुक्कम्पितस्तु दिहर्तुमुद्यत्परस्परत्सु ॥  
 तस्मिन्मिषोतिष्ठवग्धुपदमे प्रतापसञ्ज्ञोपितसङ्घुपङ्के ।  
 कस्य सा मोक्षमसोकुमार्या कुमुदयो भामुमतीव भावम् ॥  
 [ रघु० ६ उ० ३१-३६ ]

[सय द्वारपालिका 'कुमुन्दा' ने 'इन्दुमती' को मने उने हुके इन्दुके समान दर्शनीय, रात्रुमौलिके प्रमक्ष प्रतापवाले 'भवन्तिनाथ' को दिखावा घोर कहा देखो ! बड़ी-बड़ी बाहोवाले मोल घोर घृष्ट कठिदेश-घारी, बोडे-बसिष्ठ छातीवाले ये भवतीके राधा हैं । इनका घरीर-सौष्ठव इतना ममल-रमणीय है कि अनुमान होता है कि 'दिश्वकर्मा' ने अपने "चक्रभ्रम" पर चढाकर इनके सौन्दर्यको यत्न-पूर्वक भ्रमकाया है । जब ये अपनी समस्त 'समर-बाहिनी' के साथ प्रयाण करते हैं तो सेनाके ठठी धूलके बोडे-बड़े घाममौलिके मौलि-फुफुट मलिन हो जाते हैं । ये भगवान् 'चन्द्रमौलि-महापति' के निकट रहते हैं अतएव बृहस्पतिसे भी अपनी स्थितिके साथ निर्य-पूर्णिमाका मानस लेते हैं । हे इन्दुमति ! इस युवा राजाने ऊपर तुम्हारी कुछ प्रीति हो तो सिप्राकी तरङ्गो से उठे हुए पवनसे कम्पित जयान-रथणीमें विहार करो ।]

किन्तु अपने प्रहापसे रात्रु-पक्षुकी खोजनेवाले घोर बग्धु-कम्पको खिला देनेवाले, 'भवन्ती-पति' पर उत्तम सुकुमारी 'इन्दुमती' का भाव नहीं ठहर सका ।

### वराहमिहिर—

भारतीय ज्योतिष-शास्त्र इनसे औरवास्तव हो गया है । इन्होंने "बृहज्जातक" "बृहस्पति संहिता" और "पथतिदात्री" इन निम्न ग्रन्थोका निर्माण किया किन्तु "सकल-तरंगिणी" में भारतीय ज्योतिषके अत्यन्त आधुनिक आचार्य महामहोपाध्याय प० सुधाकर द्विवेदीने इनके मतिरिक्त-  
 "सप्त-जातक", "समाप्त संहिता", "विवाह-पटल", "शोष-भाषा", नामक ग्रन्थोंका भी उल्लेख किया है । इनमें बृहज्जातक और सप्तजातकका वास्तु और विषयामे प्रचुर प्रचार है । मनु उत्पल नामक विद्वान्ने जिनसे ज्ञान है कि यथम उल्लेख होनेवाले भावदोषीय प्राह्मण्यवचन में धलनार में : वाग्मिन्स्य तमरो (वर्तमान 'वात्सपी') में वास्यापत्या बोठी, वहीं अध्ययन किया और

मगवाद् सर्वसे वरदान स्वरूप ज्योतिषशास्त्रका प्रशस्तिद्वन्द्वी पण्डित्य प्राप्त किया । इनके पिताका नाम भ्रादित्यदास था । इनके पुत्रपुत्र नामका एक विद्वान् पुत्र भी था । अपनी मगवा विद्वत्तासे इन्होंने प्रचुर पद और पद अर्जन किया । ये उज्जयिनीके सम्राट् विक्रमादित्यके साश्रयमें रहते थे । वहीं इन्होंने अपनी मदनबोधेशानिनी प्रतिभाके सहारे अरबी फारसीका भी प्रशस्तनीय अभ्यास-कर लिया । एक स्थानमें इन्होंने ज्योतिष शास्त्रकी महिमाके प्रसंगमें यह भी लिखा है—

भ्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम् ।

ऋषिदत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्देवविद्विज् ॥

[ यवन तो भ्लेच्छ ठहरे, परन्तु इनमें भी इस शास्त्रका प्रचार है और इस कारण वे ऋषियोंके सरस पूजाके योग्य माने जाते हैं, तब उस ब्राह्मणका क्या कहना है जो ज्योतिष शास्त्रका पण्डित है—वह तो सर्वथा पूजनीय है । ]

वररश्मि—

ये बड़े ही पुण्य-श्लोक कवि थे । अधिकसे अधिक ८—१० श्लोक इनके मिलते हैं जिन्हें सहस्रप पाठक "सुशुक्तिफलाभृत", "सुभाषितावलि" और "शाङ्गधर-सहिता" में पा सकते हैं । इतने पर भी इनकी गणना उत्कृष्टके नामाङ्कित कवियोंमें होती है । इस नामके तीन व्यक्ति मिलते हैं ।

१—पारिपुनीय व्याकरणपर शास्त्रकार वररश्मि कात्यायन ।

२—'प्राकृत-प्रथमा' के प्रणेता वररश्मि ।

३—सूक्ति-ग्रथोंमें प्राप्त इसी नामके कवि । इनमें प्रथम और सृतीयके वररश्मि एक ही मान लिये गये हैं । प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ डा० काण्ठारकरके मतसे इनका गोत्र "कात्यायन" और नाम "वररश्मि" है । पण्डित समाज इन्हे "वासिष्ठात्य" ही जानता है, किन्तु इधर इन्हें 'मैथिल' पगड़ी पहनानेके लिये "भाटोपमय" प्रमाण देवार दिए गए हैं । मस्तु—ऐसे विषयके जिज्ञासुओंको—'कथा सरिसागर' और 'सुशुभिसुनि-कल्पतरु' देखना चाहिए ।

ये व्याकरण-शास्त्रके प्रसिद्ध विद्वान् और सर्व उपाध्यायके उत्कृष्टतम शिष्य थे । सम्भवतः काण्ठार पतञ्जलिके सतीर्थ भी । पतञ्जलिने अपने महाभाष्यमें एक स्थानपर 'पाररश्मि काण्ड्यम्' कहकर इनके किसी वाक्यका निर्देश भी किया है । राजशेखरने अपनी "काण्ड्य मीमांसा" में लिखा है—

"श्रूयते च पाठान्तरि व्याकरणकार-परीक्षा—

अत्रोपवर्ष—वर्षाविह पाणिनिविह व्याधि,

वररश्मि-पतञ्जलि इह परीक्षिता स्यात्सिमुपजग्मु ॥

इस उद्ध-वाक्यमें पूर्वोक्त सन्दर्भकी पुष्टि होती है ।

बहुतसे मनीषियोंका अनुमान है कि पतञ्जलिके द्वारा वररश्मिके जिस वाक्यको इमित किया गया है, उसका नाम सम्भवतः "कण्ठप्रवरण" हो सकता है । क्योंकि राजशेखरने लिखा है—

यथायंता क्व नाग्नि याभूद् धररश्मेरिह ।

व्यपत्त कण्ठप्रवरण य सदारोहशप्रिय ॥

किन्तु इस रामक तो इस काव्यका दर्शन ही नहीं होता । इसके दलोकोंमें गूढ भाषा, स्वच्छ धर्म शोध रसपरिपाकवा पूर्वो मानन्द मिलता है ।

कलम पलभासतिगुरुमूर्धतया धनैः ।

निनताभातिकोदमूल समाघ्रातुमिवोत्पलम् ॥

[ अगहनका पान, फलोत्ते लदकर घीरेसे एक तरफ झुक गया है, यानी उस धोर पासमें खिने हुए कमलके फूलको सूपना चाहता है । ]

धस्या भगोहराकारकशरीमारनिजिताः ।

मञ्जयेद वन बास चक्रवर्चमरर्षिहृण् ॥

[ इस नायिकाके सुयोग्य केश-कलापकी छटासे परालिप्त होकर ही सज्जके मारे मयूरीने वनवास ले लिया । ]

वामन ! फलमरपुष्पासक्तो मक्तोपनीतमुपलम्ब ।

युक्तं यत्त तृष्यसि इष्यसि यंतत्तु क्षास्यत्रम् ॥

[ ऐ धौने ! ( भलेमानम ! ) इस बहुत ऊँचे पेड़से ( अचानक ) हवाके झलारेसे टपके हुए फलको पानर जो टुप्य होते हो ( यहाँ तक तो ) सो ठीक है, लेकिन ( फल छोड़नेका ) जो गर्व-कर रहे हो—इससे बढ़कर हँसनेकी बात और क्या हो सकती है !! ]

# कालिदासके ग्रन्थोंकी उपादेयता

(पं० सीताराम जयराम जोशी, एम० ए०, साहित्याचार्य)

किसी ग्रन्थकी उपादेयता, उस ग्रन्थकी लोकप्रियतापर विशेष निर्भर होती है। जो ग्रन्थ विद्वान् तथा पविद्वान् दोनोंको समान रूपसे भ्रिय होते हैं वे ही ग्रन्थ प्रशंसनीय होते हैं और उन्हींको उपादेयता भाग्य होती है। कालिदासके सभी ग्रन्थोंके इस प्रकारके होनेसे उनकी उपादेयता स्वतः सिद्ध है।

कालिदास और उनके ग्रन्थ संस्कृतके सभी विद्वानोंको पूर्ण परिचित हैं। उनके निमित्त रघुवंश तथा कुमार-सम्भव नामके दो महाकाव्य, मेघदूत नामका अष्टकाव्य तथा मातृशिकाभिनय, विक्रमोर्वशीय और प्रणिहासशाकुन्तल नामके तीन नाटक आबाल-पुढोको ज्ञात हैं। संस्कृत साहित्यका अध्ययन उन्हींके ग्रन्थोंसे आरम्भ होता है और यह कह दें तो गी कोई प्रतिशयोक्ति न होगी कि संस्कृत साहित्यके अध्ययनकी परिचयापत्ति भी उन्हींके रन्थोंकी टीका-टीक समझनेसे ही हो सकती है। प्रसिद्ध विद्वान् टीकाकार मल्लिनाथके प्रस्ताविक श्लोकोमें बड़ी ही सुन्दरताके साथ इस उक्तिको पुष्टि की गई है। मल्लिनाथ संस्कृतभाषामें विद्यमान पञ्चमहाकाव्योंपर सर्वोत्तम टीका लिखनेवाले माने गए हैं। वे अनेक शास्त्रोंके पण्डित थे जैसा कि उन्हींके श्लोकोसे पता चलता है—

बाणौ कालुभुजोमनीमल्लदवाऽशतीञ्च वैशाखिणीम् ।  
 अन्तरतन्मनररत पद्मयकीशुम्भेयु बाजापरिद ॥  
 बाषामाकलयद्रहस्यमखिल यथाशवादस्फुराम् ।  
 लोकेऽभूद्यदुपजमेव विदुषा लौक्यत्रय यद्यः ॥  
 मल्लिनाथ कवि, सोऽयं मन्दारमानुशिषुसया ।  
 व्याचष्टे कालिदासीय काव्यत्रयमनाकुलम् ॥

कालाद-मुनिके वैशेषिक दर्शन, वादशास्त्र व्यासकीके वेदान्त, पतञ्जलि मुनिके व्याकरण महाभाष्य और अश्ववदके न्याय आदि शास्त्रोंका उन्हींने अध्ययन किया था और वे सभी परंगत थे। इसके अतिरिक्त वे अन्धे कवि थे और साहित्य-विज्ञानके अन्धे पण्डित थे। ये ईस्वी सन्की १५ वीं शताब्दीमें विद्यमान थे। कालिदासके तीनों काव्योंपर इनके पूर्ववर्ती अनेक टीकाकार हुए हैं और विशेषकर रघुवंशकी टीका लिखनेवाले १८ अन्धे पण्डित नामतः ज्ञात हैं। उन टीकाकारोंमें कुछ विद्वान् विशेष योग्यतावाले भी हैं तथापि मल्लिनाथने अपने प्रस्ताविक श्लोकमें कहा है—

भायती कालिदासस्य दुर्ब्यास्या विपभूर्निन्दता ।  
 एषा संजीविनी टीका तामजोजीनविप्यति ॥

[कालिदासकी वाणी दोषपूर्ण टीकास्वी विषये गूँझित हो चुकी है। मेरी यह सजीविनी टीका उसमें जीवनता संचार करेगी।] इस उक्तिसे यह अनुमान सही प्रकार सिद्ध है कि उनके पूर्ववर्ती टीकानार कालिदासके ग्रन्थोंको अच्छी तरह नहीं समझ पाए थे। उक्त श्लोकके पूर्वमें जो मलिनताय कहते हैं—

कालिदासविद्या सार कालिदाससरस्यती ।

षतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ने तु माह्व्य ॥

[कालिदासकी वाणीके सारको केवल सायतक तीन व्यक्तियोंने समझा है, एक तो विद्याता ब्रह्माने, दूसरे वादेवी सरस्वतीने और तीसरे स्वयं कालिदासने। मेरे सद्यः प्रवृत्त उनको टीका समझनेमें सर्वथा पक्षमर्थ हैं।] जब मलिनवाचकी कोटिके विद्वान् कालिदासकी रचनाओंको टीका-टीक नहीं समझ पाते हैं, तब कालिदास की योग्यताके विषयमें पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। उनके ग्रन्थ इस प्रकार रहस्यमय होते हुए भी इतने सरल हैं कि उनको छोड़कर दूसरा कोई भी ग्रन्थ प्रारम्भिक छात्रोंके लिये पाठ्य विषय नहीं हो सकता। इसलिये इन ग्रन्थोंके विषयमें महाकवि भवभूतिकी उक्ति 'वज्रावधि कठोरशिखि मृदुनि कुमुदादि । लोकोत्तराणां येतासि को नु विद्यातुमर्हति' [सत्तारसे निदाने उन महापुरुषोंके मनको कौन बान सकता है जो वाचसे भी अधिक कठोर और फूलते भी अधिक बौमल होते हैं।] परित्याग हो सकती है।

सस्कृत साहित्य और कालिदास इन दोनोंका सम्बन्ध गहृत है। सस्कृत साहित्यका सौष्ठव और सौरभ बहुत कुछ इन्हींके ग्रन्थोंपर निर्भर है। जिस प्रकार रामायण और महाभारत ये दो भागं भाव्य सारे सस्कृतके कवियोंके उपज्योष्य हैं वही प्रकार कालिदासके काव्य, नाटक उनके पदवा-इती सही कवियोंके लिये अनुकरणीय बने हैं। यदि सस्कृत साहित्यसे कालिदासको हुटा विद्या जाय तो उनमें ग्रन्थ ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंके रहते हुए भी उस शिवांगु-वाणीकी लोकाग्रियतामें क्या प्राजायनी। अमेरिकाके पाइडर नामके विद्वान्ने कालिदासकी श्रेष्ठताकी अनेक प्रकारसे स्थापित करते हुए अन्तमें यही कहा है कि—

'बो भी दैट कालिदास वाज ए ग्रेट पोएट, बिकोज दि वर्डर् हैंव नोट वीम एविल टु लीव हिम एलोग ।' [हम जानते हैं कि कालिदास महान् कवि थे क्योंकि सत्तारने उनको उपेक्षित नहीं छोड़ा।]

कालिदासने बिना सस्कृत साहित्यका अध्ययन ही नहीं हो सकता। हम कालिदासकी छोट नहीं सवते और श्लोकवर सतोष नहीं पा सकते।

अन्तोंने जगतप्रसिद्ध विद्वान् और कवि गेटे भी कालिदासके आकृन्तसने अनुबाधको पदपर धान-द-वेगसे बागलगे हो गए और उन्होंने उस ग्रन्थकी विलसाख प्रशंगा करते हुए यह कह डाला—  
उड्ट दाउ दि बन्ड ईषसं न्नीसम्प एण्ड फूड्स घोफ इट्स डिक्वाइन,  
एण्ड घोत बाइ द्विग दि सोल इज पामर्ट, एर्रेण्ट पीस्टेड् एण्ड फेड् ।  
उड्ट दाउ दि थर्च एण्ड हैविग इट्सेल्फ इन वन सोम नेम बम्बाइन,  
माइ नेम थो, थो गहुन्तता । एण्ड घोत ऐट् वन्स इज सेट् ।'

[यदि तुम पुत्रावस्थाने फूष और प्रोडावस्थाने फल और अन्य ऐसी सामग्रियाँ एक ही स्थान पर सोजना चारों त्रिनसे पालना प्रभावित होना हो, वृष्ट हँ ता ही और घात्रि पाता हो धर्पाए यदि

तुम स्वर्ग और मर्त्यलोकको एक ही स्थानपर देसना चाहते हो तो मेरे मुखसे सहसा एक ही नाम निकल पड़ता है—सकुन्तला ।]

कविकी वाणी प्रायः उसके हृदयका प्रतिबिम्ब होती है । कालिदासके विषयमें मल्लिनाथका यह कहना सर्वथा सत्य है कि कालिदासके ग्रन्थोंमें ऐसे कौन बात है जिसपर सभी दार्शनिक, तान्त्रिक कवि, तथा अन्य विद्वान् मुग्ध हैं । यदि ऐसा कहे कि उनके ग्रन्थोंमें चारों पुरुषार्थोंका प्रतिपादन कान्ताको सो मधुर वाणीमें किया गया है तो रामायण महाभारतादि धार्मिक कान्य उनसे कम नहीं हैं । उपनिषद्, भगवद्गीतादि धर्मशास्त्र तथा गोक्षेत्रज्ञके ग्रन्थ, महाभारतके अनेक पर्वों एवं पुरुषार्थोंमें और स्वतन्त्र रूपसे भी विद्यमान धर्मशास्त्र और कामशास्त्रके ग्रन्थ—ये सब कालिदासके ग्रन्थोंके उपजीव्य हैं । इतना ही नहीं, परन्तु उनके ग्रन्थोंमें सगीतादि अन्याय्य शास्त्रोंके विषय भी पाए जाते हैं । तथापि इतनेसे ही कालिदास हमें इस प्रकार प्रिय नहीं हो सकते जैसा हम इनकी पाते हैं । यह भी मान लिया कि कालिदास निसर्गसे समरस थे, अतः उनके ग्रन्थोंमें निसर्ग प्रपणा प्रकृतिका बर्णन अनुभव हो उठा है । अलंकारोंमें भी विशेष उपमा अलंकारके बर्णनमें तो वे अद्वितीय ही हैं । मातृगुणके बतलाए हुए तीनों प्रकारके रस कालिदासके ग्रन्थोंमें पाए जाते हैं—

रसास्तु त्रिविधाः वाचिकनेपथ्यस्वभावजाः ।  
 रसानुर्लभैरानार्थैः श्लोकैर्वीर्यैः परैस्तथा ॥  
 कर्म-रूप-वयो-वासि-देह-कान्तानुवर्तिभिः ।  
 मात्स्यभूपणवस्त्रादीः नेपथ्यरस इष्यते ॥  
 रूपवीचन—सावग्य—स्वैर्य—धर्मादिभिर्गुणैः ।  
 रसः स्वामाधिको ज्ञेयः स च नाट्ये प्रचल्यते ॥

[रस तीन प्रकारके होते हैं—वाचिक, नेपथ्य और स्वभावज । रसके अनु रूप धातवीच, श्लोक वाच्य और पद कहना तो वाचिक रस है; कर्म रूप, वयो, वासि, देह और कालके अनु रूप भाषा, मात्स्यभूषण, वस्त्र आदि आरक्षण करना नेपथ्य रस है और रूप वीचन, सावग्य, स्वैर्य, धर्म, आदि गुणोंसे स्वामाधिक रस जानना वाचिक और नाटकमें बहुत प्रशंसनीय समझा जाता है ।

उनमें पहला है वस्तु मात्रा में रङ्गमाला स्वामाधिक रमणीय रस और दूसरा अतिरस है जिसे कवि, योग्य शब्द-सीष्टवके द्वारा तथा उचित नेपथ्य-बर्णनसे प्रस्तुत करता है । ये सब कालिदासके ग्रन्थोंमें प्रचुर मात्रामें मिलते हैं । इतना होते हुए भी उनकी एक विशेषता यह भी है कि ये अनुभवकी भूमिकामें स्थित होकर हमारी सभी प्रकारकी वास्तुवाच्यकी धारणाको सुन्दर एवं सूक्ष्म रूपसे चित्रित करते हैं जिसकी पढ़ते समय पाठक तन्मय होकर कान्यके उस परम प्रयोजन अर्थः परनिवृत्तिका अनुभव करने लगता है जिसके सबधमें मन्मथ मट्टने अपने 'कान्यप्रकाश' में बताया है कि काव्यरसका आस्वाद्य करते ही सब विषयोंकी भूलकर मन केवल ध्यानन्दमय बन जाता है । इसी ध्यानन्दको स्थायी रूपसे प्राप्त करनेके लिये सारा सारा प्रयत्नशील है । ध्यानन्द ही धात्माका वास्तविक स्वरूप है । अतः, जबतक मनुष्यकी सच्चा ध्यानन्द प्राप्त नहीं होता जबतक उसे शान्ति और समाधान प्राप्त नहीं हो सकता ।

कालिदासका ग्रन्थ-निर्माणात्का प्रधान अग्रिप्राय जनार्दन-रूपी जनताका धारापना ही प्रतीत होता है। इस लक्ष्यको उद्देश्यने स्वयं विषय किया है। मासविक्रमिभिर जनका पहला नाटक है। उसमें उद्देश्यने नाट्यके प्रयोगको सुन्दर रूपसे प्रकट किया है—

देवानामिदमामन्वन्ति भुक्तय- धान्तं कर्तुं चाक्षुषम् ।  
रुद्रेषोदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विमर्कं दिषा ॥  
मंगुभ्योऽद्रवमय सोकपरित नानारस इवधते ।  
नात्ये भिन्नस्वेज्जंस्य बहुषाप्येक सवारांशकम् ॥

[देवतापोकौ यत्त प्रिय होवा है। उनके नैजोकौ लुप्त करेवासा परम प्रिय दम इस नाट्य-कलाका धामिनय है, ऐसा भुक्तियोकौ मत है। छद्म महादेवजीने मगनो भर्ताङ्गिनो उमाजीके साथ इस नाट्ययज्ञको अपने ही शरीरसे द्विषा विभाजित करके ताण्डव घोर सास्य नामकी पुरयकलाभोकौ प्राविर्भूत किया। सत्य, रज घोर तम इन तीन गुणोसे निर्मित इस वृष्टिभे दिद्यमान भ्रिगुणात्मक लोक-परितको ही समैक प्रकारके रसोने नाटकमे प्रकट किया जावा है। अतः, भिन्न-भिन्न अभिचचि वानो जनताको प्रसन्न करनेके लिये एक मात्र साधन नाट्यकला ही है।]

रघुवंश काव्यके धारम्भमे महाकविने रघुकुलके राजाशोकौ महत्त्व एवं जनकी योग्यताका वर्णन करनेके बहाने प्राणिमात्रके लिये कितने ही प्रकारके रमणीय उपदेश दिए हैं। जिस कार्यको कोई बड़ासे बड़ा सुचारक चारों घोर घूमकर, उपदेशोंकी झकी जपाकर कर सकता है उसे कवि, सत्कारके एक कोनेमे बैठा हुआ अपनी सेखनीके बन्धे सदाके लिये कर दिखाता है—

सोऽहमाजन्मधुदानानामालोक्यकर्मणाम् ।  
प्रासमुद्रसिद्धीशामात्यागाकरवपरमनाम् ॥  
यथाविबिहुताम्बीना यथाकामार्चितार्थिनाम् ।  
यथापराभदण्डाना यथकाद्यप्रवोधिनाम् ॥  
रवागव्य समुत्तार्थिना सत्याय मितभाषिणाम् ।  
यद्यत्ते विनिगीपूरुता प्रशार्थं गृहमेधिनान् ॥  
संशयेऽभ्यस्तनिधाना शोचन विपर्यपिणाम् ।  
वार्थके मुनिवृत्तीना धोमेतान्ते तनुत्यशाम् ॥  
रघुणामन्वयं वक्ष्ये.....

[मैं उन प्रतापी रघुवर्तियोकौ वर्णन करने बैठा हूँ जिनके चरित्र जन्मसे लेकर मन्वन्तक सुद्ध घोर पक्षिय रहे, जो किसी कामको उठाकर उसे पूरा करके ही छोड़ते थे। जिनका राज्य समुद्रके घोर खोरतक फैला हुआ था, जिनके रथ पृथ्वीसे स्वयं तक घापा-जाया करते थे, जो शास्त्रोके नियमके अनुहार यत्न करते थे, यौगनेवालोकी मनचाहा दान देते थे। धरराधियोकौ उचित दण देते थे। समयपर उठते थे, दान करनेके लिये धन भटोरते थे, सत्यको रक्षाके लिये कम बोलते थे, यत्केलिये विगय करते थे, सन्तानोपत्तिके लिये विवाह करते थे, दानकरणमे पड़ते थे, तद्व्याईने सात्कारिक भोग मोषते थे, बुद्धायेमें मुक्तियोकै समान रहते थे और मन्तने योगके द्वारा घरीर धारुव थे।]



इस प्रकार रघुवंश काव्यमें कालिदासने रघुवंशी राजाओंको विभित्त बनाकर उपात्तरहित पुरुषोंका स्वभाव पाठकोंके सामने रक्खा है। जनका यह धर्मिप्रथा नहीं है कि लोग उनके सदस होनेके लिये बाध्य हैं। क्योंकि ऐसा होना अतन्मय है। किन्तु यदि हम विचार करें तो ज्ञात होगा कि इस संसारमें कोई ऐसा पुरुष नहीं है जो अपनेको उन्नत न बनाता चाहता हो क्योंकि उन्नतिकी इच्छा करना आत्माका धर्म है। परन्तु प्रायः सांसारिक जीवोंकी इन्द्रियाँ विषयोंके अधीन होती हैं और इसलिये त्रिगुण स्वभावके अनुसार वे उदात्त ब्रह्म रहते हैं। पर आत्माकी स्वाभाविक प्रवृत्ति अपने स्वरूपकी ओर करनेकी ओर होती है इसलिये उसको ऐसे उदात्तरहितोंका पर्युन ही प्रिय होता है और उसके पहलेमें यज्ञाव रूपसे मन तन्मय होकर अनुभव भ्रान्त्यका अनुभव करता है। ऊपर दिए हुए दोकोशमें जो कंठी गुन्वर कल्पना भरी हुई है। सूर्यवंशकी सन्तान जन्मसे ही पवित्र और निष्कलंक होती थी। पवित्र कुलमें जन्म लेना एक स्पृहणीय धर्म प्रवच्य है जिसमें कालिदासको प्रसन्न श्रद्धा थी। आत्माकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करनेवालोंको हताश होनेका कोई कारण नहीं। रघुवंशी राजाओंके वृत्तसे यह सिद्धा प्रसिद्धी है कि वे फलकी प्राप्तिपर कर्म करते जाते थे। गुणवीर राज्य करते थे तो साधारण राजाओंकी तरह नहीं बरतू अपने राज्यकी सीमाकी समुद्रतक पहुँचाते थे। उनके रथोंकी वृष्टि दसों दिशाओंमें स्वयंसे ही थी। इतने ब्रह्मत् होनेपर भी वे धर्मकार और दुर्धर्मिमानसे प्रसन्न नहीं होते थे, बरतू शास्त्र-विधिका पालन करते हुए देवताओंका पूजन और हवन बराबर किया करते थे जो दासक होकर उनके पास पहुँचते थे उनकी प्रभिलापाओंकी पूरा करके उनको समुष्ट किया करते थे। राजाका कर्तव्य दुष्टोंका दमन करना है, इसलिये अपराधके अनुरूप दण्ड देनेमें कमी भूकते न थे। यह सब होनेपर भी उनमें विलास-प्रियता न थी। वे जितेन्द्रिय होते थे। इस बातको एक ही उद्यममें उन्होंने भक्तकाया है—'यथा-कालप्रबोधिनाम्', यर्थात् लौकर उच्छेका समय उनका कभी टलता न था (जो जिस कामका प्रवसर होता उस समय वह काम करते थे वे धन इकट्ठा करते थे परन्तु योग्य पात्रको उसका दान कर देते थे। वे नित्यमायो होते थे जितथे सत्यका अवलम्ब न हो। विषयों होनेकी इच्छासे ही दिग्बिभय किया करते थे और उसका मुख्य हेतु चारों दिशाओंमें अपने दसको फैलाना था। केवल संततिकी इच्छासे ही गृहस्थाश्रमकी स्वीकार करते थे, विषय-सृष्टिके लिये नहीं। वास्त्यावस्थामें ही धर्म्यधन समाप्त कर लेते थे। जीवनमें विषयोंका उपभोग होता था किन्तु वह विषय-रहित मनमाना नहीं होता था प्रत्युत शास्त्रविधिके अनुसार, जिससे 'शोभे रोगमय' भी न पाए और जवानी बीतनेके पहले ही मुनिका आचरण भङ्गोकार कर लेते थे और योगबलको पाकर देह-स्यागके धनन्तर ब्रह्म-निर्वाणरूपी मोक्ष पा लेते थे। इन सब विषयोंका संकलन केवल रघुवंशमें ही जिसकी वस्तु स्वभाव-सुन्दर होनेके कारण उसको इस खेप्ट कविने अपनी अनुपम वाणीके सामर्थ्यसे और उचित वेद-भूषादि योजनाके द्वारा उस काव्यकी विविध रसोंसे मोतप्रोत कर दिया। कालिदासके अन्य ग्रन्थ भी इस प्रकारके तथा अन्य प्रकारके गुणोंसे पूर्ण होनेसे अत्यन्त मनोमग्न और लोकप्रिय बन गए हैं।

पारंपारिकोंने उपदेशके तीन प्रकार बताए हैं। अनुसम्मित, मित्रसम्मित और कान्तासम्मित। सम्मित पारंपरिका धर्म तुल्य है। अनुसम्मित उपदेश धात्राके रूपमें होता है। वह जिस पुरुषके लिये होता है उसको विषय होकर उपदेशका पावन करना आवश्यक हो जाता है। जैसे माता-पिताका

उपदेश वास्तविकी प्रति होता है। यह घोषके समान प्रारम्भमे भ्रमिय होनेपर भी अन्तमे पुष्टकारी होता है। वेद, उपनिषद्, शास्त्र आदि धर्म-ग्रन्थोका उपदेश इसी प्रकारका माना गया है। दूसरा उपदेश मित्रसम्मिष्ठ है जो कि पुराणादि ग्रन्थोसि ज्ञात होनेवाला है, जैसे कोई मित्र दूसरे मित्रको कुमार्गसे हटानेके लिये कुछ कह रहा हो उसी समय उसके मनमे यह विश्वास भी रहता है कि मेरा मित्र मेरे उपदेशको मान ले तो उसका कल्याण होगा, यदि नहीं मानेगा तो हम उसे बाध्य नहीं कर सकते। किन्तु तीसरा उपदेश कान्ता-सम्मिष्ठ है जो अन्धे काण्डोका प्राणरूप होकर कभी विकल नहीं होता। इस उपदेशमें कान्ताके समान पुष्ट्यको सर्वदा प्रसन्न रहते हुए उसकी अन्धे पथपर जानेके लिये ऐसा अर्त्तिकृत उपाय है कि जब वह अपनेको सुपरा भ्रमा पाता है तब वह उस अमकारको देखकर मन ही मन शक्ति हो जाता है। कालिदासके ग्रन्थोंमे यह तीसरे प्रकारका उपदेश हमान स्थानपर मिलेगा। कालिदासके स्वभावकी विशेषता यह है कि किसीके घृणा करना तो दूर रहा, उल्टे सभी प्रकारके ऊँच नीच चानोकी प्रकृति प्रस्तुत करके उनके अन्धे धीरे धीरे परिणामीका मधुर लब्धोमे वर्णन करते चलते हैं। उचित होगा पर अतुचित इसका निर्णय उन्हीने पाठको पर छोड़ दिया है जिसके पाठकोको कालिदास पर लूट होनेका भवसर कभी नहीं मा सकता। सारे उद्यार की सहज प्रकृति विषयसुखकी धीरे रहती है। विषयसुखकी वासना कितनी प्रबल होती है धीरे अपनेको राजपि भित्ति-द्रव्य मतलागेवाले भी वासनासे कँठे विषय हो जाते वे धीरे साथ ही उल्टे अस्पन्द व्यक्त होनेपर अर्थक मार्गपर चलकर अर्थ और कामको वे कितना हँस लमकते थे, इसका सूत्र धीरे सुन्दर चित्रण हमें कालिदासके ग्रन्थोमे मिलता है, जिसे पढ़कर पाठक समझ जायेंगे कि 'साधारण' जवला कण्ठ और क्लेशोसि अर्थके लिये विषयके अर्थोमे हो जाती है परन्तु साधारण अर्थोकि जन प्राणवन्धे भी अर्थमें और अन्त्याके प्रलोभनकी बीतनेकी चेष्टा किया करते हैं। इस विषयमें तीनों नाटकोंके उदाहरण हमारे सामने हैं। अभिज्ञानसाकुन्तलके प्रथम अङ्कमें जब अकुन्तलको राजा प्रथम बार देण लेते हैं तब उसके सौन्दर्यपर मुग्ध हो जानेपर भी मनमें विचारने लगते हैं कि यह अद्वि कन्या स्वशंसनरसन है अथवा अर्थिन, और सत्यताके निर्दिष्ट होनेके पहले ही आत्म-विश्वासपर निभर होकर इस निष्णयपर पहुँच जाते हैं कि इस सुन्दरका मन आजतक कुपयकी धीरे कदापि नहीं भुका है इसलिये अकुन्तलके प्रति इच्छा अर्थमें नहीं हो सकती। इसके एक बात निश्चित हो जाती है कि यदि किसी बातमें धर्मका विरोध न हो तो उसकी प्राप्तिके लिये किसी उपाय अथवा प्रयत्नका अवलम्बन करना प्रसक्तनीय है। मनके विचारीको बधमे करनेका सरल ढंग बालजिकानिनिमित्त और विक्रमार्थशीघ्र सनीमे देखनेको मिलता है। कालिदासके प्रत्येक काव्य या नाटकमे नायक धीरे नायिकाएँ भिन्न कोटिकी दर्शाई गई हैं। जैसे कुमारसम्पने अत्युच्चकोटिके नायक खिन्नो, पार्वतीके सौन्दर्यपर मुग्ध नहीं होते हैं तब पार्वतीकी 'मरुत्सहस्रं गदन्त्य निग्रहात्' (कामका निग्रह करनेवाले शङ्कर मत्ता रूप-दारा जैसे रिहाय अ सजते हैं ?) को भ्रान्तमे रखकर कठिन से कठिन उपदेशों करनेके लिये उद्यत हो जाती है धीरे शङ्करको दास बनना पड़ता है।

अथमृत्यवन्वाङ्मि : तन्वास्वि दास

कौतस्तपोधिरिति धादिनि चन्द्रमौली ।

—कुमारसम्प, सर्ग ३, श्लो० ८६ ।

शकरजीने कहा—[“याजसे हे देवि ! मैं तुम्हारे तपसे मोल लिया हुआ तुम्हारा दास हूँ । ]  
 इस प्रकार काम-पुरुषार्थका बहुत ऊँचा चित्र उन्होंने अपने काव्यमें रीना है । ऐसे ही मनेष  
 सूक्ष्म भावोंको मधुर सा-इ सृष्टियोंके द्वारा बखेंन करते हुए उनको धृति मनोहर बना दिया है और  
 भगवद्गीताके ‘धर्माधिकृतो भूतेषु कालोऽस्ति भरतवंश’ का चारिताव्यं मुचाव रूपसे सिद्ध किया  
 है और स्वयं कामरूपी भगवान्के उपासक थे इसके भी ऋलकाया है । काम पुरुषार्थको निसर्ग-  
 दुर्लभता और उसको प्राप्त करनेके मनेष सरल सुखम उपाय तथा उस पुरुषार्थका उपभोग करनेवाले  
 विविध व्यक्तियोंके स्वभाव बर्णन आदि सब विषय मालावृद्ध समीको स्वभावसे ही प्रिय हैं तथा  
 उनके रोग्योमे उपलब्ध होते हैं और यही उनकी उपादेयताका कारण है ।

द्वि-जगत्में कालिदासका मौलिक स्थान है । त्रिवर्गके विषय धर्म, धर्म और काम, जिनका  
 प्रतिपादन शास्त्रोंमें सुमार तर्प और अनुभवसे किया गया है, उनकी रोचक बर्णनोंके साथ प्राबल-  
 वृद्धके हृदयमें प्रविष्ट करा देना और उनकी निश्चयित्तोने तन्मयताकी सहजमें जीन करा देना अच्छे  
 ब्रिकका ही धर्म है और उसकी ही कृतिको विद्वानोंने ‘काव्य’ बताया है । हृदय और श्रम्य को  
 प्रवारका काव्य होता है । कालिदासने दोनोंपर लेकनी चलाई है । ऐसी रचनामोंकी मौलिकता  
 प्राञ्जल भाषा-द्वारा पूर्वोक्त उचित लेपम्यके साथ वस्तु प्रतिपादन-पर निर्भर रहती है । कालिदासने  
 नाट्यकालमें प्रवीणता प्राप्त करके विचक्षण जनत्के सामने अपनी प्रथम रचना रखी जिसे  
 मालविकाग्निमित्र कहते हैं । उस नाट्यके उपक्रमसे शाय होता है कि उन्हें इस बातका विदवास नहीं  
 था कि वह रमणध पर सरा उतरगा । क्योंकि उनके पूर्ववर्ती भास, सौमिल, कविपुत्र आदि  
 मनेक नाटककार प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे तथापि कालिदासमें इतना धारमविश्वास धवरय था कि  
 उन कवियोंके नाट्योम जो श्रुतें नहीं पाई जाती हैं वे मालविकाग्निमित्रमे दर्शनीको मिल सकती  
 हैं । इसलिये वे कहते भी हैं—‘पुराणनिरवेव न साधुसर्व—’

न चादि काव्य नवमित्यवयम् ।

मालविकाग्निमित्र १।२

[पुराना होनेसे ही कोई काव्य प्राह्य नहीं हो सकता और नवीन होनेके कारण त्याज्य भी नहीं  
 हो सकता ।] अच्छे समामोचक इस नाटककी समामोचना करते समय एक बातको धूल बाते हैं  
 कि कालिदासने इस नाटकके लिये ऐसा नायक चुना जो कालिदासके समयकालीन राजामोंमेंसे था ।  
 अग्निमित्र दृग वसके एक साधारण राजा थे । उनके कई वल्लिर्वा थीं तथापि उनकी काम-बाधना  
 दूतन सुन्दरीको देखनेसे जागरित हो जाती थी और वह वस्तु यदि सुप्राप्य रहती थी तो उसकी  
 प्राप्तिके लिये कोई भी यान बना नहीं ररखा जाता था । हमारी दृष्टियें यह उसी समयका गरिज-  
 गिनण है और इसीको उन्होंने नाटकका प्रधान विषय बनाया है । वेचसपियरने भी कहा है कि  
 ‘नाटक’ जगत्के व्यवहारोका प्रतिबम्ब है (होतिय गिरर अष्टु वेचर) । कालिदास इसे मली भाँति  
 जानते थे कि महाभारत और रामायणमें बलिष्ठ राजपिके ध्यान अग्निमित्र उन्नत चरित नहीं थे  
 तथापि ये नायकके सभी साधारण गुणोंसे सम्पन्न धवश्य थे ।

ये धीरोशक्त थे, दखण थे और मालविकासे प्रेम करते हुए भी विवाहिता रानियोंके साथ  
 भी साधारणतिकन नहीं करते थे । मालविकाके साथ एकान्त सेवनरूप जो मानुष-सहज दुर्लभता  
 कालिदासने अग्निमित्रमें दिखलाई है, उसके कारण साधुविक कविषय विद्वानोंने उन्हें बहुत ही

हीन-चरित्र बताया है एवं उनकी निन्दा भी की है परन्तु कासिदासकी दृष्टिमें अग्निमित्रका मानविकाके साथ एकाग्र समागम केवल मानविकाको स्मर-पीडाकी आश्रयान्तक प्रवृत्तियोंसे बचानेके लिये ही था। नाटकमें इस स्थितिको कविने बड़ी कुशलतासे चित्रित किया है। अन्तमें रामपुत्रीके सम्बन्धको जानकर देवी चारिल्लीके द्वारा ही मानविकाको देवी पद प्रदान कराया गया है। इसी प्रकार इस नाटकमें परिव्राजिका, यागनाचायं, विद्वयक तथा अन्य कुल-स्त्रियोंका वर्णन विनयाण पात्रुरीके साथ किया गया है और उपर्युक्त आचिक, नेपथ्य और स्वामाधिक तीनों रसोंका परिपोष इतना मनोज्ञ बना दिया गया है कि उसे पढ़ तथा देखकर पाठक एवं दर्शक मुग्ध हो जाते हैं और नख, रज एवं तम इन तीनों गुणोंके अनुकूल धनेक प्रकारके रसका आस्वाद्य करते हैं।

भासविकाग्निमित्र नाटकके पञ्चाङ्ग अग्निमित्र-जन्तुमें अवतरित कासिदासका दूसरा नाटक अथवा नाटक विप्रमोर्षीय है जिसमें अनुभव-भूमिकापर स्थित कराकर राजपि और दिव्यांगनाका ऐसा वर्णन किया है कि कदाएँ विप्रलम्ब शृङ्गारके प्रतिविस्मयजनक रस, विमल्लण माया-सौन्दर्य और संगीत-शास्त्र रहस्यमय पदोंके साथ अत्यन्त मनोहर बन गया है। कथा, केवल येशमें वर्णित सारोक्त रूपमें ही है। इना और सुन्दर पुत्र तथा चन्द्रयाके यौव राधा पुरुखा देवांगना सर्वशोकके साथ प्रणय करते हैं, फिर विवोग हो जाता है और फिर मिलन भी हो जाता है जिससे एक पुत्र उत्पन्न होता है। यही सामान्य कथा कवि-कौशलसे बहुत ही रचणीय बन गई है। इस नाटकमें विविध पात्रोंकी मनोभावनाएँ सूक्ष्मसे सूक्ष्म विविध संपीत-विज्ञानके साथ प्रकट करके कासिदासने नाट्य-कलामें दूसरा प्रथंसाधन पाया। ऐसी शुद्ध कथामें कासिदासके प्रतिरिक्त अन्य कोई भी कवि इतना जीवन् नहीं काम सकता था।

तीसरा नाटक सबसे सर्वानन्दपर उपदेनांति गयी हुई, मानवस्वभावकी विचित्रताकी प्रदर्शित करने वाली सभी देवी और कालिके अनुकूल कमनीय अग्निमित्र-कलापूर्ण कृति, अग्निज्ञान-शाकुन्तलके रूपमें प्रकट हुई और उक्तने नाटक-जगत्में उसके लिये सर्वत्र यथेष्ट स्थान प्राप्त कर लिया। पाश्चात्योंके भारतमें परिचित होनेके कुछ कालके अनन्तर संस्कृत भाषाके सम्मान्य ग्रंथोंके साथ इस नाटकका भी अनुवाद योरोपीय भाषाओंमें हुआ। हम पहले कह चुके हैं कि केवल इसके अनुवादको पढ़कर योरोपके विद्वान् कवि ग्रेट्टे इसका मूढ होकर हर्षातिरेकके साथ इसका धादरपूर्वक अग्निमित्र किया। विद्वानोंमें यह श्लोक प्रसिद्ध ही है—

काम्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्यां शाकुन्तला।

तत्रापि च पतुषांन्द्रुस्तत्र श्लोकपतुष्टयम् ॥

[ब्रिटने काव्यके प्रकार है उनमें नाटक विशेष सुन्दर होता है। प्रसिद्ध नाटकों में काव्य-सौन्दर्यकी दृष्टिसे अग्निज्ञान-शाकुन्तला मूर्धन्य स्थान है। अग्निज्ञान-शाकुन्तलमें भी पतुषं प्रकृत और इस षट्ठुमें भी भार श्लोक मनोहर हैं।] अस्कन्त-चारिल्ली शाकुन्तलाको देखकर दुष्यन्तका हृदयोद्गार इस रूपमें निरमा—‘इयमधिभ्रमजोत्रा वल्लभेनापि तन्वी किमिह हि मधुराणां मण्डनं नाहृती-नाम्’ [यह मनेसी तो अत्यन्तमें भी बड़ी खोली लगती है; स्वभावसे ही रमणीय अतुषोंकी शोभा बाह्य उपकरणोंपर निर्भर नहीं होगी] अत्युक्त समुन्दर वेध-भूषा भी उनकी सहज कमनीयतामें पाया नहीं जासकी। उनकी शोभा प्रविष्टण नवीन ही रूप धारण करती है। यदि सर्वानन्द-मुन्दर

अभिधान साकुन्तलके आशान्तरमें लिए गए अनुवादोंकी समीक्षा करते समय दुष्यन्तकी इसी उक्तिका उपयोग किया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। जीवन ही है, धाम्यन्तर-सौन्दर्य बाह्य उपादानके अनुपपुक्त होनेपर भी जयमगता ही रहेगा। यह नाटक किसी भी रूपमें रहे, इसकी हृदयहारिता ज्यों की रयी बनी रहेगी। हमने सुना है कि इस विश्वनाथी घोर लगामके कुछ मास पूर्व इस बीसवीं शताब्दीमें आस्ट्रेलिया द्वीपखण्डमें इस नाटकके धाम्य भावानुवादका अभिनय करके वहाँकी जनता आनन्द लेती थी। इसमें चौथा अङ्क सब प्रकारसे सुन्दर तो है ही, उसके चार श्लोक किसी देशमें सशक लेिये शोको उपादेय हैं। अधिक क्या कहा जाय साकुन्तलकी एक पक्ति भी शोचस्त नहीं है। इतना ही नहीं, प्रत्येक पक्तिमें एक न एक विशेषता है। इस नाटकके सभी पात्र जीवन्त लेकर दुष्यन्तक अपने-अपने उचित रमणीय रूपमें अनेक रसोंका परिपोष करते हैं।

कालिदासके तीनो काव्योका अथना-अथना अलग वैशिष्ट्य है। कालिदास धर्मनारी-नटेश्वर शङ्कर भगवाण्के उपासक थे। यह बात उन्होंने अपने ग्रन्थोंके मूल दलीलोंमें भूलकाई है। तथापि ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनोंके प्रति उनके अनेक भक्ति भुक्ति थी। विशिष्ट कार्योंके कारण एक ही परतस्वके तीन प्रकारके अभिधानके मूल प्रकृतिके गुणोंके अनुसार तीन नाम हैं। सज्जन, पालन और सहरण, राजस सारिक और तामस प्रकृतिके कार्य होनेके कारण कार्यभेदसे एकाही परतस्वकी ब्रह्मा, विष्णु, और महेश से तीन प्रतीक मूर्तियाँ हैं। सास्यकी प्रकृति और पुण्यकी कालिदासने उसी परतस्वका आविर्भाव माना। उसी तस्वकी योगीजन अपने हृदयमें स्थित ज्योतिके रूपमें पाकर हृत्पार्थ होठे हैं। इस प्रकार कालिदासने सारे विश्वकी साठ मूर्तियोंमें विभक्त करके उन समयको अपने उपास्य देवताका ही पृथक् पृथक् मङ्गल माना है। इस वाचनिक सिद्धान्तका प्रतिपादन स्वाम स्वानपर उन्होंने किया है। शङ्कर भगवाण्के धर्मनारी-नटेश्वरके रूपमें उनके उपास्य देव होनेके कारण प्रथम जहाँकी प्राराधनाके रूपमें कुमार सम्भवका प्रवचन प्रतीत होता है। जयमगता और अक्षयिताका काम-पुरुषार्थ—समोय तथा विश्वभारतक उन्नयन—शुभारम्भका मनोह बल्लेन शान्त रसमें सपन्न होकर सुखित प्राराम-दका देनेवाला होता है। यथाए, कालिदासके अतिरिक्त दूसरा कौन कवि है जो इसे इतनी सफलताके साथ वर्णन कर पाता? यहाँपर अचेतन सृष्टि सचेतन ही उठी है। दिनालय कालिदासकी सृष्टिमें जब पर्वत नहीं है प्रत्युत वह देवतारमा है जहाँ पर सब देवता सदाके लिये वास करते हैं। पार्वतीजीके तपोवनमें बढनेवाले पेड़ उनके पुत्रोंसे काम लय माग्न नहीं थे। जगम प्राणियोकी तो क्या ही क्या—उस तपोवनमें व्याघ्र और द्विरग अपने शत्रु भावकी शयनकर शान्त विस्तसे विचरण करते थे, वहाँ स्थावर वृद्ध-मत्तार्थ भी प्राणधारी बंधकर पत्थरके बलरूपी स्तन्यका पान किया करते थे। इन कमनोसे कालिदासने दर्शनके उदात्त तत्व सतन्यका सर्व-व्यापित्व नदी रमणीयतासे भूलकाया है। शिवजी योगीश्वर थे ह्योनिये वे पार्वतीजीके सौन्दर्यपर सुख होनेबासे नहीं थे। यही कारण था कि पार्वतीजीने अपने रूपको हेय माना और कठिन तपके द्वारा विश्वकी वशमें किया—

हृदय सा कर्तुमवन्मरुत्पता

समाश्रियास्याय तपोविरात्मनः ।

अवाप्यते वा कथमन्यथा ह्य

तथाविध प्रेम पतिरच साहसः ॥

—कुमारसंभव, ५।२.

[ पार्वतीजीने निरामित रूप से सपत्न्या के द्वारा समाधिक प्रण्यास प्रारम्भ कर दिया क्योंकि वंसा देवी प्रेम और वंसा पति मिल करे सकता है ? ]

बस, कालिदासका सारा प्रयत्न प्रेम और समाधि दोनोंको एकही जगह दिखानेका था । इसका उद्देश्य और कोई नहीं, क्योंकि प्राणित्वात्रका परम पुरुषार्थ समुद्रम और निश्चयस इन् दोनोंको एकत्र बानेमें ही है । यह खिया हमे कालिदासके श्रयोसि मिलती है । कुमारसम्भवका पञ्चम सर्ग पूराका पूरा इसी भावसे सरा हुआ है ।

बच्चके बर्णनका रहस्य व्यञ्जना व्यापारसे उपदेश देनेका रहता है ; धातुशुद्धिक हम् बतलाते हैं कि भारे रामायणका प्रयोजन 'रामादिव्यवृत्तित्थ्य न रावणोदिवद्' ( राम तथा तत्सदृश पुरुषोकी भाति काम किया जाय, रावण इत्यादिकी भांति नहीं ) है । कुमारसम्भवके दिव्य नायकका दिव्य करित बलिष्ठ है परन्तु लौकिक काम और शूङ्गार रस की सूक्ष्म भावनाओंका बर्णन करनेके लिये उन्होंने नैपथ्य लिल्ला जिसम यह बर्णन किया है कि अर्जुनके समरस होते हुए भी प्राणोकी मनुष्य-मुलक विपत्ति और वियोगसे मूलम भावनाओंका अनुभव किस प्रकार होता है और कैसे होना चाहिए । नैपथ्य काव्यकारी कल्पनाका फल नहीं है जिसमे निरर्गके समुपम बर्णन तथा शूङ्गार-रावेवको कालिदासने अपने प्रयत्न समुत्तम अग्राजान्ता वृत्तमें भर दिया है । यत्की प्रतिम हार्दिक इच्छा यही है कि 'हे प्रेम'—

माभूदेव क्षणमपि न से विवृता विप्रयोग ॥

—उत्तरमेघ, ३५

1 [ हे प्रेम ! इस प्रकार तुम्हारा कामी बिजलीके वियोग न हो । ]

इस प्रकार कालिदासके प्रयोका जब हम सूक्ष्म निरीक्षण करेंगे तब विदित होगा कि कालिदासके प्रयोके अत्यन्त उदात्त करिज शूङ्गार भगवान् तथा भगवान् रामचन्द्रसे लेकर साधारण राजा भनिमित्त प्रादि तथा उनके साथ साथ कृष्टिके सभी अर्थ नीच प्रकारके व्यक्तियों का विविध प्रकारका बर्णन पाया जाता है जो भिन्न भिन्न रसोकी पुष्टि करता है । धर्म, धर्म, काम, मोक्ष इन चारोष बर्णन तो है ही साथ ही चारों पुरुषार्थों की जो सदृष्टि प्रयोक् कामरूपी भगवान् है, उनकी अन्तना जहाँ जहाँ पाई जाती है—

'स धामिदमाप्नोति न कामकामी' ( गीता )

मुमुक्षु भी मोक्षका कामी ही होता है । इस लोकेमें जितने देवधारी होते हैं वे किसी न किसी कामके उपासक हैं । कोई धर्म कामी है तो कोई धर्म-कामी, बहुतसे काम-कामी हैं तो कोई मोक्ष-कामी भी है और ऐश भी बहुतसे मिलेंगे जो धर्म अथ और काम इस दिवसको समान रूपसे चाहें और दूसरे भोगके साथ चतुर्थोंको और कुछ केवल धर्म-कामसे समुष्ट रहेंगे । कालिदासने हम इन सभीके प्रतीक दिए हैं । केवल धर्म काम सीता देवी और रामचन्द्र, केवल धर्म-काम दत्तात्रेय और राजा दत्तरथ, केवल काम कामी अग्निवर्ण तथा रामण; केवल मोक्ष कामी राजा रघु तथा धर्म, धर्म तथा काम दोनोंके उपासक राजा पुरुवता और दुष्यन्त, धर्म, धर्म और काम तीनों के उपासक राजा अग्निवर्ण, और इन सभी प्रकारके कामोंको पूर्ण मष्ट करके धारण स्थित होने वाले शूङ्गार भगवान् जो पुरुषोत्तमके सुन्दर प्रतीक हैं और उनको भी अपनी उपोमत्तिसे

दास बनानेवाली महाभक्त पार्वतीजी मूस प्रकृतिकी प्रतीक—इन सभीका सुन्दर वल्लभ पाठक वहाँ पायेंगे। असारके किसी ग्रन्थ में इतनी विविध प्रकारकी बातोंका इतना अनुपम विवेचन नहीं पाया जा सकता।

कालिदासकी ओर देखनेकी एक ओर दृष्टि है, 'वह है सब पर निर्वृति—सात्वतिक परमानन्द की जो काव्योंके पढ़नेके साथ ही मिलता है। कालिदास इस विषयमें पार्वतीजीकी ओर संकेत कर रहे हैं। तात्पर्य यह है कि सत्त्व, रज ओर तम इन तीन गुणोंमें उत्कृष्ट चरित्र नामा रसोंमें अर्थात् भाव (अथवा नी) प्रकारके रसोंमें जो परिपुष्ट हो रहा है वह क्षणिक होता है, कदापि शाश्वतिक नहीं होता है। क्षणिक रस अथवा शाश्वतिक रसके ही अन्त हैं। शाश्वतिक रस शांत रस है जो आत्मामें सर्वदा स्थित है, जिसको प्राप्त करनेके उपरान्त उसमें श्रेष्ठ कोई वस्तु प्राप्त करने योग्य रह नहीं जाती। यही आत्मानन्द है। अत आत्मानन्दको हम शांत रसका स्थायी भाव मानते हैं। दूसरे विद्वानोंने काम तुल्य क्षयमुख आदिकी शान्तरसका स्थायी भाव माना है परन्तु वे सभी इसी आत्मानन्दके भीतर आ जाते हैं, यह आत्मानन्द ही साक्ष्य आत्ममें निदिष्ट पुण्यका धर्म है। किन्तु पुण्य जब प्रकृतिके अधीन हो जाता है तब प्रकृतिके तीनों गुणोंमें निकलनेवाले उसी एक ही शान्त रसके भाव प्रकार शृङ्गार, वीर, करुण, हास्य, भयानक, रोद्र, बिस्मय और अद्भुत हो जाते हैं। अत शान्त रसको इन आठोंका प्रथम अथवा उदय स्थान मानना चाहिए, अन्य पुण्य नहीं। कालिदासका अर्थवा यही प्रयत्न है कि इन्हीं आठों रसोंके द्वारा उन-उन आत्मन्वोंको प्रकट करते हुए अन्तमें उस शाश्वतिक आनन्दको ही निरुपाधि बनाकर प्राप्त करा दें जो शान्तिके रूपमें आत्मामें स्थित है। यह त्रिगुणातीत होकर पार्वतीजीके पदपर स्थित होकर माना है। 'तयोविध प्रेम पतिभ्य साहय'। यही भगवान्के विषयमें अमितम्प प्रेमसे परमरूप प्रभुको प्राप्त करना है। यह तत्पुर्वक समाधिके बिना नहीं प्राप्त हो सकता है। यही ध्वनि-काव्यका उत्तम गुण अथवा व्यापार, कालिदासके सभी प्रयोगोंमें अनुस्यूत है, अतएव वे सर्व-उपादेय बन गए हैं।

## कालिदासके शब्द-प्रयोग

(पं० भाष्यिकाप्रसाद उपाध्याय व्याकरणशास्त्रार्थ १)

कविशुद्धतिलक, कविता-कामिनीके कमनीय कान्त कवि कालिदास प्रतीकिक चमरकृति-सम्पादक काव्य-संसारके विद्याता थे। उनको प्रतिभा दृश्य तथा श्रव्य दोनों प्रकारकी काव्य-रचनामें समतिहत थी। कविका स्थान जगतमें क्या है इसका भाभास इसीसे मिल जाता है कि भगवान् भी अपनेको "कवि पुराण" कहकर 'कवि' शब्दसे ही सङ्केतित करते हैं। 'कवि' शब्द बिलसण्य प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तिका बोधक है, उसीकी चमत्कार-जगत् रचनाका नाम 'काव्य' है। काव्यके मुख्य भाषार शब्द तथा अर्थ हैं। इसीसे काव्यका सहाय करते हुए सभी पाषाणोंने शब्दादर्पकी प्रदानता स्वीकार की है। जैसे, (१) उभापौ काव्यम् (काव्यात्तद्भार), (२) तद्वीपौ काव्यार्थौ (काव्यप्रकाश), (३) रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् (रस-गङ्गापर), (४) वाक्यं रत्नारमकं काव्यम् (साहित्यदर्पण), (५) इष्टार्थशब्दचिह्नया पदान्वलिः काव्यम् (काव्यादर्श) और (६) निर्दोषालसखण्वती सरीतिर्गुणगुम्फिता। शासंकाररसामेक-वृत्तिर्वाक् काव्यनामनाम् (चन्द्राक्षोक)।

इन दोनोंमें भी अर्थविलया 'शब्द' की ही प्रदानता प्रतीत होती है। इसलिये कविका शब्दोंपर अधिकार होगा निहान्त भावबलक है। उसके निमित्त शब्द-शास्त्रका पूर्ण पाण्डित्य अपेक्षित होना निर्विवाद है। इस दृष्टिसे कवि-सम्राट् कालिदास शब्दशास्त्रमें पूर्णतया निष्णात थे, इसमें शेषमात्र भी शक्य नहीं है। उनके श्रमोंका प्रयत्नफल करनेसे ज्ञात होता है कि शब्द-शास्त्र उन्हें रात-दिनके व्यवहारिक विषयकी भाँति प्रम्यस्त था। यहाँतक कि उपनामविषयमें भी व्याकरणके विषय निर्योमित हैं उनकी प्रयोगशीली तथा शक्तिशालके पाण्डित्यका दिग्दर्शन ही पर्याप्त होगा। दो-चार उदाहरण लीजिए।

नामर्थाविन सन्मृच्छी पाणर्वप्रतिपत्तये ।

अथतः विद्यसी वन्दे पार्वतीपरमेस्वरौ ॥

रघुवंश, सर्ग १। १॥

यहाँ शब्दादर्प-सम्बन्ध उपमान तथा पार्वती-परमेस्वर उपमेय हैं। व्याकरणमें शब्द और अर्थका भेद है, दोनों एक हैं। जैसे 'नीलो घटः' में 'नील' और 'घट' का भेद है। ऐसे ही 'अर्थ घटः' दरयमान 'व्यक्ति' अर्थ घोर 'घट' शब्दका भेद है। इसीलिये 'अर्थ घटः' में दोनों शब्द उमानाधिकरण प्रथमान्त है। यदि भेद होता तो 'शब्दः पुण्यः'की तरह यही विभक्ति होती, पर 'अर्थ घटः' या 'अर्थ घटस्य' प्रयोग नहीं होता। 'रामेति द्वयसर नाम मानञ्जः पिनाकिम्', 'वृद्धिरादेच्' इत्यादि स्थलोंमें भी उमानाधिकरण प्रयोग ही हुआ है। 'वाग्यार्थविव' समाससे तथा 'वितरो' एकशेषसे, 'खेन समासो विभक्त्यबोधप्र' सात्त्विकी घोर 'विता-मात्र' सूत्रकी स्मृति हो जाती है।



(२) रघुवंशके बारहवें सर्गके अष्टादशवें श्लोकमें 'वालि' के स्थानपर सुग्रीवके प्रतिद्वेषित होनेका वर्णन करते हुए कहा गया है 'घातोः स्थान इवादेशं सुग्रीवं संन्यवेशयत्' जैसे 'घसू' के स्थानपर 'सू' प्रादेश होता है, और 'इद्य' के स्थानमें 'या' होता है वैसे ही 'वालि' के स्थानपर 'सुग्रीव' प्रतिद्वेषित किए गए । कितनी सटीक उपमा है जैसे 'स्वामी' के अर्थका वाचक प्रादेश होता है । वैसे ही बालिका सब कार्य सुग्रीव करने ।

(३) रघुवंशके पन्द्रहवें सर्गके छठवें श्लोकमें रघुकुलकी सराहना करते हुए लिखा है:—

यः कल्पन रघुणां हि परमेकः परन्तपः ।

अपवाद इवोस्तर्गं प्वावर्तयितुमीश्वरः ॥

[रघुकुलका कोई एक ही, जन्म-समुदायको वैसे ही दूर कर सकता है, जैसे अपवाद अनेक वासियोंको अवावृत्त करता है ।]

कुमारवर्मनके द्वितीय सर्गके सत्तारहवें श्लोकमें यही भाव और सुन्दर रूपमें प्रामा है—

सम्प्रतिष्ठाः प्रथमं पूर्वं किं बलवत्तरैः ।

अपवादैरिवोत्सर्गाः कृतव्यावृत्तपः परैः ॥

[पहलेये सम्प्रतिष्ठ प्राप लोग क्या बलवत्तर जन्मबोधे बाधित हो रहे हैं ? जैसे अन्यत्र हरि-त्तार्य उत्सर्ग 'इको यणुषि', 'या हिंस्यात् सर्वा भूतानि' को बलवत्तर (गिरनकास) अपवाद 'अकः सख्यौ शीर्षः', 'अग्निष्टोमोयं वशुमालयेत्' इत्यादि व्यावृत्त कहते हैं ।] 'अपवादो बलवादु' आ गिरन-कासो विधिर्वाकः' व्याकरण-नियमका उपद्रुक्त व्यवहार हुआ ।

(४) रघुवंशके पन्द्रहवें सर्गके नवम श्लोकमें सबखासुरकी शीतने के लिये सेना लेकर जन्मुष्णके प्रस्थानका वर्णन करते हुए कानिदास लिखते हैं—

रामादेशादनुगतं सेना हर्यार्थचिद्वये ।

पञ्चादश्विनार्थस्य धातोर्धिरिवाभवत् ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी प्राज्ञाने अर्थ (अथ) सिद्धिके लिये सेना पीछे चली, जिस प्रकार अर्थ सिद्धिके लिये मध्यमार्थ 'इद्'धातु के पीछे 'अधि' उपसर्ग लग जाता है । 'अधि' उपसर्गके बिना केवल 'इद्' धातु अर्थ-बोधन करनेमें समर्थ नहीं ।

(५) वारकासुरसे बल देववशु पितामहके पास गए और उनको अपनी कदम कहानी सुनाई । पितामहने उसका उत्तर चारो मुखोंसे दिया । इसका वर्णन कुमारसम्भवके दूसरे सर्गके १७वें श्लोकमें इस प्रकार है—

पुराणस्य कवेस्तस्य चतुर्मुखासमीरिता ।

प्रवृत्तिरासौच्छ्रयाना चरितार्था चतुष्टयो ॥

पुराणे कवि ब्रह्माके चारो मुखोंसे उच्चरित वाणीने "चतुष्टयो शब्दानाम्प्रवृत्ति" को चरितार्थ कर दिया । मुझे ब्रह्माके मुख चार और उनसे शब्द भी निकले चार ।

पंचाकरणोंके सिद्धान्तानुसार वाली चार प्रकारकी होती है—(१) परा (२) परमन्ती (३) मध्यमा तथा (४) बैधरी ।

परा वाङ्मूलचक्रत्वा पश्यन्ती नाभि-सस्थिता ।

हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैश्वरी कण्ठदेशगा ॥

जो दाणी हम लोग बोलते और गुनते हैं, उसे 'वैश्वरी' कहते हैं। जो हृदयदेशस्थ है उसे 'मध्यमा', जो नाभिदेशस्थ है उसे 'पश्यन्ती' और जो मूलचक्रस्थ है उसे 'परा' कहते हैं। यदि 'चतुष्टयी' का अर्थ यह न मानें तो अथवाच्य पञ्चम्यति-कथित 'चतुष्टयी' शब्दानाम् प्रवृत्तिः, जाति-शब्दा, गुणशब्दाः, क्रिया-शब्दाः, यहञ्ज्ञा शब्दाः । अर्थ लेना चाहिए। शब्दोंके अर्थबोधनमें पार प्रवृत्तियाँ विहित हैं—(१) जाति-शब्दास्तुत्यादि (२) गुण-शुक्तादि। (३) क्रिया-मध्यमा-नादि धीर (४) यहञ्ज्ञा-दिरथ कथित आदि। व्याकरणके नियमोंका काव्यमें फंसा उपयोग किया गया है।

यही गरी, काश्मिदासने न्याकरणछिद्र वैकल्पिक रूपोंका प्रयोग भी अत्यान्तरसे करके उसका बोध करानेका प्रयत्न किया है। जैसे—ईपदचक्र 'कृ' शब्दके स्थान पर 'कृ' तथा का प्रादेश विकल्पते होने हैं। रघुवंशके प्रथम सर्गके ६७वें श्लोकमें पहले 'कपोष्णम्', पीछे ८४ वेंमें 'कोष्णम्' का प्रयोग किया गया है।

व्याकरणके नियमोंका उपमान रूपमें प्रयोग करेबाना व्याकरणके नियमोंका उल्लङ्घन करके उसे यह सम्भव नहीं प्रतीत होता। इसलिये काश्मिदासके उन प्रयोगोंपर भी विचार कर लेना प्रसंग प्राप्त है जिसपर व्याकरणकी दृष्टिसे निरनुशाः कवयः कहकर आक्षेपका समाधान किया जाता है। अद्यमें पहले रघुवंशके अन्तर्ग श्लोकाकार श्रीमत्स्थिनायकके ही आक्षेपपर विचार कीजिए—

स संन्यपरिधीयेण गजदानमुपनिषदा ।

कानेरी सरितापत्युः शङ्कनीशानिवाकरीत् ॥—रघुवंश, ४।५५

इस पद्यके गजदान-मुगनिषदा' अर्थकी टीका करते हुए वे लिखते हैं—'गन्धस्त्रेःवादिना इकारः उपासाम्। यद्यपि गन्धस्त्रेवे तदेकान्तग्रहण कर्त्तव्यमिति नैसर्गिकान्प्रविशदशामाने-धारादेशः, तथापि निरनुशाः कवयः। तथा माधकाव्ये 'श्वरयुष्मदरनुष्णमुपन्यम्' (सततगाः) । नैषवेप्रवि—'अपि हि कृत्वाय न वारिधारा स्वादु सुगन्धिः स्वरते तुपाय । न कर्मधारयान्श्वर्धोम इति निवेपानिप्रःअपयधोऽपि जपय एव।' भाव यह है कि 'सुगन्धि' पदमें बहुव्रीहि समास करके गन्ध शब्दके अर्थ अकारको समासाम् इकारादेश होना है, परन्तु जहाँ गन्ध स्वभाविक हो वही 'इत्वं' होता है जैसे, 'सुगन्धि पुष्पम्'। अतमें गन्ध स्वाभाविक नहीं है, इससे यहाँ इकारादेश नहीं होना चाहिए। यह कविकी निरनुशाता है। भाव कविने चायुकी गणमें तथा नैषकारके अन्तर्ग गणमें इकारादेश करके निरनुशाता दिखलाई है। यदि 'सुगन्ध' का कर्मधारय समास करके मरवर्धोम प्रथम 'इनि' करे तो भी अनुचित है क्योंकि—ऐसा नहीं होता—'न कर्मधारयान्श्व-र्धोमः'। अस्तुतः 'वात्तन'ना अर्थ बँसा है नहीं जैसा समझ गया है। 'वात्तिक' वा अर्थ है कि जहाँ 'गन्ध गन्धवाच्य पृथक् न दिताई पढ़ें वहाँ इकारादेश होता है। इसलिये यहाँ 'गणका अर्थ 'गन्ध-क' है वही, जैसे 'सुगन्ध आपरिष्क' में इकारादेश नहीं होता क्योंकि 'दूकान' में गन्ध पृथक् दिताई पठवी है अतः तथा चायुके अर्थ पृथक् नहीं दिताई गली, इसलिये इकारादेश होगा। अतएव टीकात्रयीमें जो उदाहरण दिए—'सुगन्धि पुष्पं सत्तिलं च सुपन्धिषाम्।' वे ही वात्तिका-वृत्तिवाच्यो भी अभिमत थे। वे लिखते हैं—'एव एवेति किम् तीव्रगन्धावात्।' यहाँ 'दूकान' नहीं

दूषा । यदि नैसर्गिक शब्दोंमें इकारादेशका नियम होता तो यहाँ वायुमें शब्द नैसर्गिक नहीं है । महर्षि पतञ्जलियो भी यही सम्मति है । कैयटजी इस यातिककी व्याख्यामें स्पष्ट लिखते हैं—  
 “यथाविभाषापन्त कुङ्कुमादि देवदत्तादौभवति तदा इत्वमतस्त्वत्वाद्भवत्येति” । जल तथा वायुमें गन्धका वर्णन करते हुए सबसे ‘इत्वं’ किया है । मलिनानाम्ने माषमें ही ‘गुण्डमुगन्धव वाता’ की टीका करते समय इस विषयकी चर्चा तब नहीं की । यही वर्षों माषके छठे सर्गके १२ वें श्लोकमें ‘शिली-ध्रमुगन्धिभि वायुभि’ की टीका करते हुए वे स्वयं लिखते हैं—“शिली-ध्राणा कदलीकुसु-मानामुगन्ध अस्ति वेपा ते शिली-ध्रमुगन्धिन्स्युं गन्धत्वेत्ये तदेकान्तत्वाभावोदिति प्रत्ययाक्षयणम् ।” अब क्या कहा जाय । यद्यपि मट्टिकाश्लेषके टीकाकार जयमङ्गलमें ‘माध्यायिवान् मन्पवह पुगन्ध’ की टीकामें नैसर्गिक शब्दमें ‘इत्वं’ होता है कहकर ‘गुगन्ध’ प्रयोगका समर्थन किया है परन्तु व्याकरण तथा महाकविप्रयोगके विषय होनेसे यह सर्वसम्मत नहीं । अब कहिए किसे निरदुष्ट कहा जाय । क्या यधि की ।

दूसरा आक्षेप स्वर्गीय प० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीका है । वह इस प्रकार है—रघुवन्दके प्रथम सर्गके मन्वन्तलीसर्वे श्लोकमें ‘महिषी सख’ प्रयोग माया है । यहाँ यदि ‘महिष्या सखा’ विग्रह करें तो महिषीकी प्रधानता होगी और राजा सहायक होगा, इसलिये बहुव्रीहि होना चाहिए, जैसा गृह्यो-पहाय’ में हुआ है । पर यहाँ बहुव्रीहिमें समाधान न होया । यह आक्षेप भी सारगर्भ नहीं प्रतीत होया । यहाँ तो किसीकी प्रधानता या प्रप्रधानता विवक्षित ही नहीं है, केवल इतना ही विवक्षित है कि दूसरा कोई सहायक न था । इसीलिये मलिनानाम भी लिखते हैं—‘सहायान्तराजोऽप्येव’ । अतएव तत्पुरुष समास करनेसे अर्थभेद नहीं होता ।

तीसरा आक्षेप यह है कि रघुवन्दके दसवें सर्गके बारहवें श्लोकमें मणवान्ने वर्णन ‘हेतिनिश्चेत-नावङ्गिस्त्वोरितनयस्त्वन्म्’ में ‘हेति’ शब्द पाणिनिके ‘ऊतिपूर्तिपूर्तिस्मार्तिर्त्थेऽन्त्य’ सूत्रके स्वीकृत है । यदि ऐसा है तो विशेषण बोधक पद —‘चेतनावङ्गि’ न होकर ‘चेतनार्त्तानि’ होना चाहिए । यह आक्षेप भी निःसार है । एक तो स्वयं भाष्यकारने भास्करजीके निज्ञानामक नहीं माना ‘निज्ञमशिष्य लोकाधमत्वात्निज्ञस्य’ । निज्ञ वस्तुतः लोक-मणोके दर्शन है । इन्से, मोक्ष में ‘हेति’ शब्दकी पुस्तिक भी माना है । ‘हेति रत्नीयके’ अनुसार २१ वन्द इत्येव नपुंसक निज्ञ नहीं है ।

चतुर्थ आक्षेप कुमारसम्बन्धके एक शब्दपर है । यहाँ कविने लिखा है—‘नवन कम्पा मरमावशेष मदन पकार’ शर्त्त ३।७२ । यहाँ ‘हरनेवज्जम्भा’ कहना चाहिए ‘मदनका मन्’ करना है तो उत्तररथ-वर्ष ‘मय’ का प्रयोग अनुचित है । एक तो ‘मय’ कृति सजा है, इन्से कोई योग्य प्रतीत नहीं होता मन्वया सहारण्य पत्निका ‘विय’ या ‘मय’ नाम ही न हो सकता । दुन्दे, नायक तो ‘वह्नि’ है, ‘मय’ तो नायक नहीं, प्रस्तुत घग्निका उत्पादन है, इसलिये ‘मय’ शब्दका ही प्रयोग उचित है । तीसरे, मरमावशेष मदनकी फिरसे उत्पत्ति होगी, इन्से ‘मय’ शब्दका प्रयोग करना ही स्वाभाविक है ।

इस प्रकार कवि कालिदासपर व्याकरण नियमोत्पन्नता का दोष अनुचित नहीं है । वे तो स्वयं व्याकरण सिद्धान्त तथा प्रक्रियायत्ने वेत्ता थे ।

'प्रह्लादतः पञ्चभिरुच्यते धर्मरसूर्यसं' — इत्यादिसे ज्योतिषके होरास्कन्धकी विचक्षणता, ५२वें पलोकमें रघुकी 'धानीकेस्विति' के द्वारा अनुवेदना, ८वें सर्गके २१वें श्लोकमें अजने 'पण्यन्पादि' वर्णनसे नीतिप्रवीणता सूचित होती है, एव सभी सर्गोंके तत्त्वस्थकोमे यज्ञ पद्धति-उपनिषत्सिद्धान्त-धर्मशास्त्र पुराणेतिहास राजनीति समाजनीतिगार्हस्थ्यचर्चा अन्यायधाचार प्रभृतिबोधके निष्णातधरा परिचय अश्लेष मिलता है। कुमारसमयमें भगवतीकी तपःप्रार्थना वर्णनमें—

स्थिता क्षण एवमुत्तान्तितापरा

पयोधरोत्तेपनिपातभूयिता ।

यद्यपि तस्या स्थासिता प्रपेदिरे

चिरैषु नामि प्रथमोदकिन्धव ॥३॥२४॥

यह पद्य भी श्रियाताकी बहुदक्षिताका प्रथम साक्षी है, इसमें शोषताक्ष ने जो समाधिमें नासाऽप्रदृष्टि, मुखका खुला न रहना, नेत्रदण्डको उन्नत रखना, निश्चल रहना उपदिष्ट किया है, इनमेंसे प्रथम वर्णनमें दृष्टि बिन्दुको पलकोपर स्थिति द्वारा पलकीरा अर्द्धो मीसन ध्वनित किया, इससे उनमें निविडता ध्वनित हुई जिससे यामुद्रिणीक मुलक्षण व्यक्त हुआ, अर्द्धोन्मीलनसे साक्षिकाऽप्रदर्शन भी लक्ष्य हुआ गया, क्षण शब्दसे पलकोमें वसुणता सूचित हुई तादृश पदसे पपरमें कोमलता ध्वनकी, अक्षरसे श्रुत बिन्दुको कुचोपर ही गिरनेसे मुख-सङ्घटित तथा हिलर जाने के द्वारा उनकी कठिनता व्यङ्गित हुई साथ ही त्रिकोणति भी ध्वनित हुई। वहाँसे गिरकर निबलीसे, फिसलने-द्वारा उनकी चिकनाई, स्पष्टता, मुलक्षणता भी प्रत्यापित हुई, वहाँसे हटे बिन्दुकी नामिमे प्राप्तिवर्णनसे उसकी गभीरता रूप सञ्चिह्नकी व्यक्ति हुई। इस भाँति सप्तदशकम-स्वैत' धमकी पदगत वस्तुस्थितिको भगवतीका अलौकिक सो-दय वस्तुध्वनि उपरकृत हुआ, जो सबका मजूरी है। सुतराम् उपस्कारको साथ अज्ञान-भाव उकर हुआ, उक्त अज्ञानध्वनिमें परस्पर कोई संपृष्ट है, कोई एकस्वज्ञकामुप्रविष्ट सकीर्ण है।

अतुसहारे में जो कर्ताकी लौकिक वस्तु-व्यवहारोकी अभिज्ञता है वह भी साहित्य-केवियोंको प्रबिदित नहीं है।

अभिज्ञानसाकृन्तलसे एक उदाहरण देखिए। शकुन्तलाके उल्लसक-प्रयुक्त निश्वासादिमें नैसर्गिक शौरमते ध्राए हुए मतवाले प्रथमका व्यापार देखकर महाराज दुष्यन्तकी वेदनामयोक्तिका पित्रण जो कबिने इस पद्यमें किया है—

वत्सापाङ्ग हृष्टः स्पृष्टासि बहुयो वैपयुधर्तौ—

रहस्यास्वायीव स्वनसि मृदु कर्णांतिवचर ।

करी भ्यापुन्वत्या विवसि रतिवर्षस्वमघर—

वय तस्या-वैपांगमधुकर हतास्त्र खलु कृती ॥

वाकुन्तल, अंक १।२२

उसकी निजनी प्रसन्नता की भाव सब कम ही है। यद्यपि इसके आरम्भमें 'वत्सापाङ्गी हृष्टिम्' ऐसा पाठ मुद्रित पुस्तकोंमें और प्रायुनिक टीकाग्रामोंमें मिलता है, किन्तु यह पाठ निदान्त महत्त्व है। इस पाठसे "धपस अपाङ्गवाने कौण्ठे नेनीको पूता है" यह अर्थ होता है, और ऊपर लिखित

# कालिदासकी सूक्तियाँ

(स्व० डॉक्टर पण्डित रामरनाथ झा, एम्० ए०, डी० लिट्०)

दिक्रमके मय रत्नोने अमूल्य रत्न कविपुसगुरु कालिदासने अपने काव्य-चमत्कारतो समस्त संसार मे क्याति प्राप्त की है। दूर-दूर देशोमे, नाना भाषा-भाषियोने इनके ग्रन्थोको पढ़कर, उनका रसा-स्वादन करके, इनके गुणोसे मुग्ध होकर, इनको मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की है। इनके पद-साहित्य, इनके रचना-भावो, इनको कल्पनाशक्ति, इनके प्रकृति-वर्णन, इनके चरित्र-चित्रण, इनके काव्यकी सरसता इत्यादि गुणोका मान सुनकर भारतवर्षका प्रत्येक निचारी प्रकुल्ल होता है परन्तु कालिदासोमे विचार-गाम्भीर्य भी है, उनके पदोस उपदेश भी मिलता है, उनकी उक्तिवाँ मूल भी हमारा पय-प्रदर्शन कर सकती हैं। इन वाक्योमे सत्तरका अनुभव है, जीवनके बहुमुख्य सिद्धांत हैं। वहाँ कुछ ऐसी उक्तिओका संग्रह किया गया है जिनके पढ़नेसे धीर जिनके अनुसरणसे हम प्राज्ञ भी ज्ञान उठा सकते हैं। पचास उक्तिवाँ पाठकोकी सेवामे प्रस्तुत की जा रही है।

(१) एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्द्रोः किरलोप्विवाहूः ।

(जैसे धर्मकाकी ज्योतिमें उलका कलक छिप जाता है, वैसे ही गुणोके समूहमे एक दोष भी छिप जाता है।)

(२) क्षुद्रेषु तुमं शरणां प्रपन्ने अमरत्वमुच्चैः शिरसां सतीव ।

(शरणगत क्षुद्र जन्मे प्रति भी महात्माका-अमरत्व-भाव वंसा ही रहता है जैसा सज्जनके प्रति।)

(३) विकारहेतो सति विक्रियन्ते येषां न चेत्सति स एव धीराः ।

(मयापंमे धीर पुरुष तो वे ही हैं जिनका चित्त विकार उत्पन्न करनेवाली परिस्थितिमें भी स्थिर नहीं होता।)

(४) दान्येस् प्रथपकारेण धोपकारेण दुर्जनैः ।

(दुष्टको उपकारसे नहीं, अपकारसे ही दान्त करना चाहिए।)

(५) विपवृत्तोऽपि सवर्ष्य स्वय क्षेपुमसाम्प्रतम् ।

(मपने हाथसे सीधे हुए विप-वृत्तको अपने ही हाथसे काटना उचित नहीं।)

(६) ॥ वासपो-मूलननाकिरहः शिलोचये मुञ्चति मास्तस्य ।

(वासु वेदको जड़से उखाड़ सकता है, पर पहाड़को नहीं हिला सकता।)

(७) शस्त्रेण रक्षं गदशनपरस न तवशः शस्त्रमृता क्षिणोति ।

(जिसको शस्त्रोसे रखा हो ही नहीं सकता, उसकी यदि शस्त्रधारी रक्षा न कर सके तो इतने उसका भयपना नहीं होता।)

(८) पयः श्रुतेर्दक्षयितार ईश्वरा मसीमसामावकते न पद्वितम् ।

(पवित्र मानके प्रदत्तक देवतागण स्वय पापधारका अनुसरण नहीं करते।)

(९) पद हि सर्वत्र गुणविधायते ।

(गुण सब स्थानोपर अपना धावर करा देता है।)

- (१०) प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् ।  
 (महात्माः प्रोके क्रोधको ज्ञान्ति उनको प्रणाम करनेसे होती है ।)
- (११) घादानं हि विस्मयति सदा चारिमुचामिव ।  
 (बादलोंके समान सज्जन भी विस्मय वस्तुको ग्रहण करते हैं उसका दान भी करते हैं ।)
- (१२) निर्गन्धिताम्बुगर्भे धरद्वज्ज्वालि चतुर्भोजि वि ।  
 (घातक भी सरदके घूने बादलके प्राये घातनाद नहीं करता है ।)
- (१३) सूर्ये तपश्चावरणाय हृष्टे कल्पेत् सोकस्य कर्म तमिता ।  
 (जब सूर्य रोशिनवान् हो तब लोगोंकी धार्मिक सामने संघेरा कंसे छा सकता है ।)
- (१४) स्रष्टव्यमन्वयात्पञ्चनियोगाच्छ्रैयं हि वस्तु प्रकृतिर्जसस्य ।  
 (सुप्त मयवा प्राणसे पानीसे स्रष्टव्यता भा जो जाती है वस्तु जीतलता ही इसकी मयार्थ प्रकृति होती है ।)
- (१५) भवितव्यताना द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ।  
 (भावीको सर्वत्र द्वार खुला मिलता है ।)
- (१६) किमिदं हि मधुरास्य मध्वनं नाकृतीनाम् ।  
 (जो स्वयं सुन्दर है उसका सौन्दर्य किसी वस्तुसे नहीं बढ़ जाता ।)
- (१७) सता हि सन्धेहृषदेपु वस्तुपु प्रमाणमन् करण-प्रवृत्तयः ।  
 (जहाँ सन्धेहृ हो वहाँ सज्जनके प्रवृत्त करणकी प्रवृत्ति ही सत्यका निर्देश करती है ।)
- (१८) न प्रभातरत्न ज्योतिर्येति बहुधाततात् ।  
 (सज्जन वस्तुकी उत्पत्ति उच्च स्थानसे ही होती है—विद्युत्की ज्योति वृषभोरससे नहीं सरल होती ।)
- (१९) प्रकृतार्थेण मन्त्रिणे रतिमुभवप्राभेना कुले ।  
 (मित्र यदि विफल भी हो तो भी एक दूसरेकी उत्कण्ठसे प्रसन्नता होती है ।)
- (२०) कामी स्वता पश्यति ।  
 (मैत्री सब बहनुषोंको अपने अनुकूल ही समझता है ।)
- (२१) सन्धेत् वा प्रार्थयिता न वा श्रिय श्रिया दुरापः कथमीशितो भवेत् ।  
 (प्रार्थना करनेपर संभव है धी मिले वा न मिले, परन्तु जब धी स्वयं कोई हृष्टता प्रकट करे तब उसके प्राप्त करनेसे क्या कठिनता हो सकती है ?)
- (२२) शपयति यथा शशाङ्क न तथा हि कुमुदती दिवसः ।  
 (दिवसे कुमुदतीके फूलका इतना ह्रास नहीं होता है जितना चन्द्रमाका ।)
- (२३) इष्टप्रदास्रजितान्यबलावनस्य दुःखानि वृत्तमतिमात्रमुत्सहति ।  
 (प्रेमीके प्रदाससे भवताको बससु कष्ट होता है ।)
- (२४) गरुडमिष (गुरुऋषि) विरहदुःख भाषावन्यो सहायेदि (साहयति) ।  
 (कठिन विरह भी मिलनकी मायासे उल्ला हो जाता है ।)
- (२५) अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीत्रमुष्णं  
 समयात् परिष्ठाप सामया सविज्ञानाम् ।

(३६) स्त्रीणामाद्य प्रणयवचन विभ्रमो हि त्रियेषु ।

(स्त्रियोका हाव-भाव प्रेमीके साथ बातचीतका पहला स्वरूप है ।)

(४०) मन्दायन्ते न सन्तु सुहृदामभ्युपेतार्थवृत्त्या ।

(जिसने मित्रका कार्य सम्पन्न करनेका वचन दिया है वह उसके समाप्त होनेतक टिलाई नहीं करता ।)

(४१) धनवप्रातिप्रशमनफला सम्पदो ह्युत्तमानाम् ।

(सत्तम दुष्टवर्गीय सम्पत्तिका मुख्य प्रयोजन यही है कि उससे सुखियोंकी विपत्तिका नाश हो ।)

(४२) क या न स्यु परिचयपद निष्कलारम्भयत्ना ।

(निष्कल यत्न करने वालोंकी जगतने कब नहीं हँसाई हुई ।)

(४३) प्राय सर्वो भवति करुणामृत्तिराद्रन्तिरसता ।

(सर्व हृदय जन होते ही हैं, बहुधा मृदुल स्वभाव ।)

(४४) सीमन्तिनीना कामोदगत सुहृदुपगत सङ्गमार्त्तिकविदूत ।

(पत्तिके मितनेत्रे स्त्रीकी जो धान-र प्राप्त होता है उससे कुछ ही कम धान-र मित्र द्वारा उसका रँदिसा पाकर होता है ।)

(४५) भूताना हि समिपु करणेष्वाद्यमाश्रास्यनेतत् ।

(काल सब प्राणियोंके चिरघर है, इसलिये पहले कुछ प्रवृत्तना चाहिए ।)

(४६) कस्यात्यन्त मुक्तमुपगत दुःखमेकान्ततो वा

मीर्षागच्छत्युपरि च दशा पत्रनेमिक्तमेणु ।

(किसीकी केवल कुछ भयका एकमात्र दुःख नहीं मिलता—दुःख घोर दुःख रथके पहिएकी प्रतीति सभी ऊपर घोर कभी नाथे रहा ही करते हैं ।)

(४७) स्नहानाहुः किमपि विरहे च्वसिगस्ते त्वशोवात् ।

दृष्टे चसुन्युपचितरसा प्रेमराशी भवन्ति ॥

(यद्यपि कहा जाता है कि विरहमे प्रेम कुम्हना जाता है, तथापि वस्तुतः वियोगमे प्रेमका प्रयोग न होनेसे यह सचित होकर राशीमूत हो जाता है ।)

(४८) निशम्योर्ध्वं प्रदिरति जल वाचित्प्रातवश्यं ।

प्रयुक्तं हि प्रणयिणु सतामीप्सितायक्रियं च ।

(कुग बिना गरजे हुए भी चातकनी वर्षाजलसे तृप्त करते ही । सज्जनका यही स्वभाव है कि बिना कुल भई दासकोंकी मीम पूरी करे ।)

(४९) शेषां न स्यादभिमताफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ।

(सज्जनसे भी हुई प्रार्थना कब सफल नहीं होती ।)

(५०) पुराणमिरयेव न सापु सर्वम् ।

(कोई वस्तु केवल इस बारण्य प्राण्य घोर उच्चम नहीं हैं कि वह पुराणो हैं ।)

# कालिदासका सन्देश

(धोमुक् पं० बलदेव उपाध्याय साहित्याचार्य)

ममृष्टदोषा नसिनीव दृष्टा हारायवीव श्रिता गुणीषः ।

प्रियाङ्गुपालीव विमर्द्धया न वासिदासादपरस्य पाणी ॥

—धीकृदण कवि ।

महाकवि कालिदास हमारे राष्ट्रीय कवि थे । वे भारतीय सभ्यता तथा संस्कृतिके प्रतीक थे । इस विशाल तथा विराट् देवकी संस्कृति कालिदासकी पाणीमें बोलती है तथा उनके नाटकोमें अपना मनोहर भण्य रूप दिखलाकर मानवमात्रका मनोरञ्जक करती है । अँगरेजोंके प्रथम समागम के समय भाषासे लगभग दो सौ वर्ष पहले यह भारतवर्ष सभ्यताकी दृष्टिमें संस्कृतिविहीन अधकारपूर्ण देश समझा जाता था, परन्तु कालिदासके 'पद्मिज्ञानशाकुन्तल' ने ही भारतके प्रति विश्वका आदर जगानेका एसायनीय कार्य किया । भाषाके ठीक १५५ वर्ष पहले सन् १७०९ ई० में सर विलियम जोन्सने शाशु-तलका अनुवाद अँगरेजी भाषामें किया तथा इसी अनुवादका जर्मन भाषामें अनुवाद जोर्ज फोरेस्टरने दो सौत पीछे सन् १७६१ में किया । इसी अनुवादकी पढ़कर जर्मनोंके सर्वश्रेष्ठ महाकवि गेटेने अपना जो हृदयोद्धार प्रकट किया था वह साहित्यके प्रेमियोंसे छिपा हुआ नहीं है । केवल संस्कृतके ज्ञाता पण्डितजन इस संस्कृतानुवादकी पढ़कर उस विदेशी कविके अभिप्रायकी गली भाँति समझ सकते हैं—

वासर्त्तं कुमुम गल न मुगपद् श्रीस्मस्य सर्वं च यत्

यच्चान्यमनसो रसायनमत सन्तर्पण मौहनम् ।

एकौभूतमभूतपूर्वमथवा स्वसौकभूलोकयो—

रंभयं यदि वाच्छसि प्रियरासे । साकुन्तल सेव्यताम् ॥

इस अनुवादाने हमारा बड़ा उपकार किया । पाश्चात्य जगत्ने भली भाँति समझा कि भारतीयोंकी संस्कृति बड़ी ऊँची है तथा हृदयके कोमल भावोंको प्रकट करनेको निपुणता उसके कवियोंमें विद्यमान है । इस प्रकार कालिदासका अर्थ हमारे ऊपर बहुत ही अधिक है ।

हमारी राष्ट्रीय भावनासे और विश्व कल्याणकी भावनासे किसी प्रकारका विरोध नहीं है । भारतीय कवि राष्ट्रका गङ्गल चाहता है और उसके साथ ही साथ वह सभ्यताकी मङ्गल-कामना भी किया करता है कालिदासके काव्योंमें इस सामञ्जस्यका मनोरञ्जक रूप दृष्टिगत होता है । इस महाकविकी पाणीमें जिस प्रकार आदि-कवि वात्स्यिकिकी रसययी पारा प्रवाहित होती है उसी प्रकार गीता तथा उपनिषदोंका सध्यात्म ज्ञान भी मञ्जुल रूपमें अपनी अधिष्ठाता वा रहा है । भारतीय अधिष्ठाता द्वारा प्रचारित चिरन्तन तथ्योंकी मनोभिराम शब्दोंमें भारतीय जनताके हृदयमें उतारनेका काम कालिदासकी कविताने मुचारा रूपसे किया है । इस कविताने का प्रयोजन मानव हृदयकी शाश्वत



प्रवृत्तियों तथा भावोंका घालमेल लेकर किया गया है। यही कारण है कि इसके भीतर ऐसी उद्दीप्त उदात्त भावना विश्राम है जो पारसीयोंको ही नहीं, अत्युत्त मानव मानको सदा प्रेरणा तथा स्फूर्ति देती रहेगी। इस भारतीय कविकी वास्तुमें इतना रस है, इतना शीघ्र गद्य हुआ है कि दो सहस्र वर्षोंके दीर्घ कालने भी उसमें किसी प्रकारका फीकापन नहीं धाने दिया। उसकी मधुरिमा आज भी उसी प्रकार मानुषके हृदय रसमय करती है जिस प्रकार उसने अपनी उत्पत्तिके प्रथम क्षणमें किया था। वैदिक धर्म तथा संस्कृतिका जो भय्य रूप इन काव्योंमें दिखाई देता है वह निरालम्ब नहीं है। मानव-कल्याणके लिये इन काव्योंमें मधुर छन्दोंमें स्थान-स्थानपर उपदेश भी दिए गए हैं। शासका मानव-समाज परस्पर कसह तथा संनयनसे धिग-भिन्न हो रहा है। प्रबल समरानन्दके भीतर संसारकी अनेक जातियाँ अपना सर्वस्व स्वाहा कर रही हैं। विश्व नितान्त उद्विग्न है। मानवताके लिये यह महात् सङ्कटक समय है। विचार करनेको बाध है कि कानिदास क्या इस सम्बन्धमें भी कोई सन्देश देते हैं।

मानव-जीवनमें शैशव्यकाण्डके लिये स्थान नहीं है। जो लोग इसे मायिक घतसाकार निःसार तथा व्यर्थ मानते हैं उसका कवन किसी प्रकार प्रामाणिक नहीं है। जो जीवन हम पिता रहे हैं तथा जिससे हम अपना धम्मपुत्र प्राप्त कर सकते हैं उसे सारहीन क्यों मानें? कानिदास का कहना है कि देहधारियोंके लिये मरण ही प्रकृति है, जीवन ही विकृतिमान है। यदि जन्तु स्वास लेता हुआ एक क्षणके लिये भी जीवित है तो वह उसके लिये लाभ है—

मरणं प्रकृति, शरीरिणा विकृतिर्जीवितमुष्यते युयुः।

राजमन्व्यवतिष्ठते क्षणम् यदि जन्तुं तु लाभदायकम् ॥

—रघु० वा०७

इस जीवनको महान् लाभ मानना चाहिए तथा इसे सज्ज बनानेके लिये धर्म, धर्म तथा कामका सामाज्यरूप उपस्थित करना चाहिए। इस निबन्धमें धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है (निबन्धकारः प्रति-भाति मानिनि—हुनार० ५।३५)। परन्तु धर्म और काम अपनी स्वयं-मत्ता और सत्ता बनाए रखनेके लिये धर्मका विरोध करते रहते हैं। धर्मकी दवाकर धर्म अपनी प्रयत्नता चाहता है और धर्मकी प्रवृत्तकरके काम भी अपना प्रभाव जमाना चाहता है इस विषयमें आज धर्म-विरोधी धर्म और कामका मान गूढ हो रहा है। धर्म कहीं दृष्टिकोण नहीं होता। परन्तु भगवान् बुद्धके शब्दोंमें 'धर्मो धर्मविद्वद् कामो धर्मो मरतपमं'—इस पीता-वाक्यकी उत्पत्ता अनेक प्रकारसे प्रमाणित की है।

मदन-दहनका उद्देश्य नहीं है। मदन चाहता है कि पार्वतीके सुन्दर रूपका आशय लेकर समाधि-निरत संकरके हृदयपर 'चोट करे'। प्रकृतिमें वसन्तका प्रागमन होता है। सदा वृषापर कूज कूजकर अपना प्रेम अठाने लगती है। एक ही कुतुम्भधर्ममें अपनी अपनी सहचरके साथ मधुपान करती हुई गद्य हो जाती है। व्यापिके समान मदन संसारकी प्रत्य करके लगता है। वह अपनी धारणा बढ़ाता है और संकरपर आक्रमण कर बैठता है। जयलूने कल्याण, धारणिक मञ्जुलका नाम संकर है। विद्व-कल्याण मदनकी उपासनामें नहीं है, अत्युत्त उसके धर्म-विरोधी रूपके हवानेमें है। काम अपनी प्रवृत्ता चाहता है। विद्व-कल्याणपर अपना मोहन बाण छोड़ता है। संकर अपना

तृतीय नेत्र खोलते है। तृतीय नेत्र ज्ञाननेत्र है। यह प्रत्येक मनुष्यके अस्मृष्टमें विद्यमान है। परन्तु गुप्त होनेसे हमें उसके अस्तित्वका पता नहीं चलता। शंकरका यह नेत्र जाग्रत है। इसी ज्ञानकी ज्वालासे मदनका बहून होता है। धर्मसे विरोध करनेवाला काम भस्मकी राशि बन जाता है। शंकरकी वचने करनेके लिये पार्वतीजी उपस्था करती हैं। धर्म-सिद्धिका प्रथम साधन है— उपस्था। बिना उपना शरीर तथा बिना हृदय-स्थित दुर्वासना जलाए धर्मकी भावना-आधारित नहीं होती। कालिदासने कामका जलना दिखाकर यही चिरन्तन तप्य प्रकट किया है। पार्वतीने धीरे उपस्था करके अपना मनोवृत्त प्राप्त किया। इस प्रकार कालिदासकी दृष्टिमें काम तथा धर्मके परस्पर संधर्भमें हमें कामकी दबाकर उसे धर्मानुकूल बनाना ही वैशेष। जगत्का कल्याण इसी भावनासे सिद्ध होता है।

शक्ति तथा समाजका गहरा सम्बन्ध है। व्यक्तिकी उन्नति साम्प्रदायीय वस्तु है, परन्तु इसकी वास्तविक स्थिति समाजकी उन्नति पर अवलम्बित है। व्यक्तिबोधके अनुदायक ही नाम समाज है। कालिदास वैयक्तिक उन्नतिकी अपेक्षा सामाजिक उन्नतिके पक्षपाती हैं। उनका समाज श्रुति-स्मृतिकी पद्धतिपर निर्मित समाज है। वह स्वायत्तके लिये घबड़ा करता है। उसके लिये परिमित भाषण करता है। उसके लिये विजयकी अभिलाषा रहता है, शत्रुियों तथा शत्रुओंकी पददलित करनेके लिये नहीं। शत्रुस्थीमें गिरत होता है सन्तान उत्पन्न करनेके लिये, कामवासनाकी पूर्तिके लिये नहीं। कालिदास-द्वारा चित्रित नरगत भारतीय समाजका अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करते हैं। वे संशयसे विश्वासका अभ्यास करते हैं, जीवनमें विषयके अभिलाषी हैं, वृद्धावस्थामें मुनिवृत्ति धारण करके सारे प्रपञ्चसे मुंह मोड़कर निवृत्ति-मार्गके अनुयायी बनते हैं तथा आत्ममें योगद्वारा अपना शरीर छोड़कर परम पदमें सीन हो जाते हैं। यह आदर्श भारतीय समाजकी अपनी विशेषता है—

स्वानाम सनृतावर्णिना सत्याय मितभाषिणाम् ।  
 यस्मै विजिगीषुणा प्रजायं गृहमेधिनाम् ॥  
 संतवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयं पिणाम् ।  
 यार्थके मुनिवृत्तीनां योवेनान्ते सनुत्यजाम् ॥

—रघुवज, ११७-८

उपनिषदोंमें धर्मसे हीन एकत्र प्रतिपादित है—यश्च, अय्ययव धीर दानः। इनके अतिरिक्त 'तपः' की महिमासे भारतीय धार्मिक साहित्य भरा पड़ा है। कालिदासने इन ऋषियोंका विवेचन स्वाम स्थानपर यही मनोरम भावनासे किया है। यज्ञका महत्त्व वे स्वीकार करते हैं। पुरोहित यज्ञके रहस्योंका ज्ञाता होता है। राजा दिसीप यह बात भली भाँति जानते हैं कि ब्रह्मिष्ठजीके यथा-विधि सम्पादित होमके द्वारा जलकी ऐसी वृष्टि होती है जो अकालसे सूखे शस्यको हरा-भरा कर देती है—

हृद्विरावर्जित होतस्त्वया विधिवदन्विषु ॥

सृष्टिर्भवति शस्यानामवग्रहविश्रोषिणाम् ॥

—रघु० ११६२

नरराज तथा देवराज—दोनोंका काम परस्पर सहयोगसे मानवोंकी रक्षा करना है। नरराज पृथ्वीको दूहकर—उससे सुन्दर वस्तुएँ प्राप्त करके यज्ञ सम्पादन करता है और देवराज इसके बदलेमें

उत्पन्न होनेके लिये आकाशको दूतकर पुष्पक्ष वृष्टि करता है । इस प्रकार ये दोनों अपनी सम्पत्तिका विनिमय करने समय सोचना बन्धाण करते हैं—

दुदोह या स यज्ञाय दत्ताय मधवा दिवम् ।

सपद विनिमयेनोभौ दधनुर्मुषनद्रथम् ॥

—रघु० १।२६

पक्षपूत जलने द्वारा धनेष धर्मोचित कदाचोको निधि हमारे महाकविको गान्य है । रघु सर्वस्व-दक्षिणा-यज्ञके मनमन्त्र कोरमकी माप्या जूरी करनेके लिये जिस रखपर बँठते हैं वैसे यक्षिण्ठीमे मन्त्र पूत करने धर्मिभित्त कर दिया है और उसमें आकाश, नदी, पहाड़ सादि सब विकट तथा विषम मागोंपर चलने की क्षमता है । (रघु० १।२७) इस प्रकार काश्मिदासकी दृष्टिमें सामाजिक कल्याणके मापनोंमें मन्त्रका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

दानकी गौरव गाथा गाते हुए हमारे महाकवि कभी आस नहीं होते । समाज आदान-प्रदानकी भित्तिपर ध्वस्तमित्त है । धनी-मानो व्यक्तिका सचित धन केवल उन्हींकी मात्ररयकता प्रथवा व्यतान पूरा करनेके लिये नहीं है, प्रत्युत उसका सदुपयोग उन निर्धनोंको उबर-ज्वाला शान्त करनेमें भी है जो समाजके विशेष पङ्क हैं । बृहदारण्यक उपनिषद्में उकेकी चोट कहा गया है कि देवी वाम् मेघपर्जनये रूपमे मदा पुकारती है—दास्यत (धनी इन्द्रियोंकी बखम रखो), दत्त (दान दो) तथा दयस्वम् (दया करो) । यदि हम लोग उन्हीं बाणोंकी पुकार सुनकर भी धनसुनी कर देते हैं तो यह मगराम हुमाउ है । दानके बिना समाज छिन्न-भिन्न होकर ध्वस्त हो जायगा, हममें सन्देह नहीं । काश्मिदासने रघुवचके पन्चम सर्गमें दानका बड़ा ही उज्ज्वल दृष्टान्त प्रस्तुत किया है । वरतनुने शिष्य बीरम मुददक्षिणाय लिये एक रघुने पाव प्राते हैं जब उन्होंने अपनी सारी भित्त सम्पत्ति यज्ञमें दे डाली है । रघु अलङ्कारो पर चढ़ाई करके यदाराज कुचेरने धन पानका उद्योग करते हैं । इतनेमें कोपने सोनेकी वृष्टि होती है । राजाका आग्रह है कि शिष्य सपूर्ण धन ले जाय और उपर शिष्यका आग्रह है कि वह अपने काममें धनिक एक कोडे भी न लूएगा । राजा और यहीताका यह आग्रह आश्चर्यजनक वस्तु है । यह दृश्य दस भारत-महीके इतिहासमें भी दुर्लभ है, पाय देनीकी तो क्या ही गया ।

सब भारतीय मनुष्यिका मूल मन्त्र है । इसकी धाराधनामे मनुष्य अपनी सारी कामनाओंकी ही प्रति नहीं करना प्रस्तुत पधेपधारने लिये यथावत् योग्यता भी धरन करता है । अपनी महिमारे हमारा साहित्य मग गया है । काश्मिदासने इसका महत्त्व बड़े ही मजबूत शब्दोंमें धर्मिव्यक्त किया है । मदन-दहनके प्रसन्नर मन्मनोरथ पार्वतीनीने उपकी ही अपनी एषमाय धनलम्बन बनाया । जगन्को समग्र धाराएँ धोडकर वे इसको छिट्टिमें सग गई । उनकी उपस्था इतनी कठोर थी कि कठिन गरीरने उदात्त मुनिवोंकी उपस्था उसके सामने निहाल्य प्रबाहोन तथा प्रभावविहीन जाय पड़ी थी । प्रकृतिने नामा प्रधारने विषम कष्ट म्नेकर वे अपनी वाचना-सिद्धिमें सकन होनी हैं । काश्मिदासने पार्वतीके लक्ष्य उद्घृत विशेष रूपमें प्रकट किया है—

इमेव सा कर्तुमवन्ध्यव्यर्ता समधिमात्प्राय सप्रीरितारमन ।

धवाध्वे वा कवपन्वया द्वय तथाविध प्रेम पतिम साहस ॥

पार्वतीकी तपस्याका फल था—'तथाविध प्रेम', अधीकृत उत्कट कोटिका प्रेम और 'तादृशः पति' उस प्रकारका, मृत्युको जीतनेवाला महादेवरूप पति । जबतक समस्त पति मृत्युके बंधा है, मृत्युक्षय एक ही व्यक्ति है । महादेव ही मृत्युको भी जीतकर अपनी स्वतन्त्र स्थिति धारणकर सदा विराजते हैं । राजतक कोई भी कन्या मृत्युक्षयको पति रूपमें पानेमें समर्थ न हुई । और वह प्रेम भी कौनसा ? कालिदासने 'तथाविध' शब्दके भीतर सम्भौर भयंकी अभिव्यक्ति की है । लज्जुने पार्वतीको अपने मस्तकपर स्थान दिया है । भादरकी भी एक क्षीमा होती है । पत्नीको इतना उच्च स्थान प्रदान करना सत्कारका महान् उत्कर्ष है, भादरकी पराकाष्ठा है । धन्य देवताओंमेंसे किसीने अपनी पत्नीको इतना घोरव नही प्रदान किया । भारतीय कन्याओंके लिये गौरवका यह साधना अनुकरणीय वस्तु है । यही कारण है कि हमारी कन्याओंके सामने एक ही महान् भावार्थ है और वह है पार्वतीका । भारतीय समाजमें गौरीपूजाका रहस्य इसी महान् स्वार्थवागके भीतर छिपा हुआ है । तपस्याने गौरीको इतना महत्त्वपूर्णा स्थान दिया है । तपस्या करनेवाले ऋषियोंके भीतर विशिष्ट ढंग छिपा रहता है । ये स्वयं क्षान्तिमें रहते हैं, सूर्यकान्त मणिकी भांति वे धूममें बड़े कीमल हैं, परन्तु दूसरे तेजके द्वारा समिभूत होते ही वे जलता हुआ तैल बमन करते हैं । वे किसीकी धरणा सह नहीं सकते । यही तपस्याका प्रभाव है—

असप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहारमकमस्ति तेजः ।

स्पर्शानुभूना इव सूर्यकान्तास्तदन्यदेवोऽभिभवाद्गमन्ति ॥

—शाकुन्तल, २।७

भाष्यकालकी समर-उपलामे दग्ध होनेवाले संसारके लिये कालिदासका सन्देश विशेष रूपसे उपादेय है । विद्वन्-मानवोंको चाहिए कि यह सुन्दर सन्देश सुनकर अपने जीवनमें उसका अर्थिक करें । इस सन्देशको हम तीन तथारथि समझने प्रकट कर सकते हैं—स्वाध, तपस्या तथा तपोवन । विद्वन्वी क्षान्ति मन करनेवाली वस्तुका नाम स्वार्थवरागसुखा है । समस्त जातियाँ अपने पटव्यनका स्वप्न देखती हुई अपने धुंध स्वार्थकी सिद्धिमें निरत दिखाई पड़ती हैं । अमानक संघर्षका यही निदान है । इसका निवारण स्वान और तपस्याकी साधनाके बिना कबमपि सम्भव नहीं हो सकता । पात्रात्प जगत्तै नपरको विशेष महत्त्व दिया और उसका अनुकरण करके पूर्वी जगत् भी भाग्यिक सम्पत्ताकी उपासनामें दक्षिण हो गया । परन्तु कालिदासकी सम्पत्तिमें तपोवनकी गोबधे पत्नी हुई सम्पत्ता मानवका सदा भंगल कर सकती है । जिसने हमारे देशको भारतवर्ष जैसा मञ्जुल नाम प्रदान किया उस दीप्यन्ति भरतना जन्म भारीके आश्रममें हुआ । गोपररक्षाका फल रघुके जन्मके रूपमें प्रकट हुआ । दिलीपने अपनी राजधानीका परिग्राम करके वसिष्ठके आश्रममें निवास किया तथा गुरुकी गायकी विनिवद् परिचर्या की । उसीका फल हुआ इन्द्र-जैसे वज्रवादीके गानमदंन कीरका उदय । तपोवनमें शक्तिक्षान्ति तथा शक्तिका साम्राज्य छाया रहता है । प्रकृति निश्चिन्त विपमला दूर कर सगताके अस्यासमें निरत रहती है । हिस पशु भी वैदिक क्षान्तिके कारण अपनी प्रकृति भूलकर परस्पर संबंध-भावसे निवास करते हैं । कालिदासकी दृष्टिमें प्रपंचके पक्षमें पवने-मरनेवाला भीय दयाका पात्र है । सुखमें प्राप्त जीवको तपस उसी दृष्टिसे देखता है जिससे तैल-मदंन करनेवाले व्यक्तिकी स्वान क्रिया हुआ व्यक्ति, अशुचिकी शुचि, सुप्त व्यक्तिकी प्रयुक्त, धर पुत्रकी स्वच्छन्द गतिवासा पुरुष—

अभ्यक्तमिव स्नातः शुभिरणुषिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम् ।

बद्धमिव स्वैर्यातिर्जनमिह सुखसङ्घिनमवमि ॥

—शाकुन्तल, ५ । ११ ।

जब तक यह सत्कार त्याग धीरे तपस्याका आश्रय लेकर तपोवनकी घोर न मुदेगा, तब तक इसकी अज्ञानि कमी न बुझेगी, पारस्परिक कलह कमी न समाप्त होगा तथा वैमनस्यका नाश कभी न होगा ।

कालिदासका सन्देह उनकी सर्वश्रेष्ठ रचनाके अन्तिम श्लोकमें एक ही पद्यके रूपमें प्रकट किया जा सकता है—

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पायिकः

सरस्वती श्रुतिमहती महोयताम् ।

मयापि च क्षपयतु नीलतोहितः

पुनर्मथ परितस्त्याक्तिरात्मभूः ॥

—शाकुन्तल, ७ । ३५ ।

राजा प्रजाके हित-साधनमें लगे, शास्त्रके अभ्ययनसे महत्त्ववाली विद्यामौखी वाणी सर्वत्र पूजित ही, शक्ति-सम्पन्न भगवान् शङ्कर समग्र जीवोंका पुनर्जन्म दूर करदें । इसमें सुन्दर सन्देह धीरे क्या हो सकता है ? राजाका प्रधान कार्य प्रजाका धनुस्मरण है । अराजक राज्यके दुर्गुणोंसे हटा भती भाँति परिवर्तित हैं । राजाके बिना समाज उन्मिन्न हो जायगा, परन्तु राजाका प्रधान कर्तव्य होना चाहिए समाजकी रक्षा । राष्ट्रको उत्पत्ति तथा अस्त्युदयके मार्गदर्शक से जानेवाले उसके विद्वज्जन ही होते हैं । यतः उनकी सरस्वतीका पूजन तथा सन्नाह हमारा पवित्र कार्य है । राजा क्षम बलका प्रतीक है तथा विद्वज्जन ब्राह्मणके प्रतिनिधि हैं । इन दोनोंके परस्पर सहयोगसे ही देशका सच्चा बस्याण हो सकता है । ब्रह्मदेव तथा क्षामबलका सहयोग पवन तथा अग्निके समागमके समान निताम् उपादेय तथा फलप्रद है—

॥ यभूव दुरासवः परैर्गुणैः। सर्वविधा कृताक्रियः ।

पवनान्निस्समागमो ह्ययं सहितं ब्रह्म यदज्जतेजसा ॥

—रघुवंश, ८ । ४

समाजकी मुख्यवस्था होनेपर व्यक्ति अपनी प्राथमिक सम्बन्धि कर सकता है । इस प्रकार समाज तथा व्यक्ति परस्पर अस्त्युदय भारतीय संस्कृतिका चरम लक्ष्य है । सम्राट् विक्रमकी समाके रान महाकवि कालिदासका यह त्याग धीरे तपस्याका सन्देह जगती-वनपर प्रत्येक प्राणीके हृदयको सदन तथा सहानुभूतिमय बनावे, यही अन्तमें हमारी अग्रगण्ये प्राप्ति है ।

# कालिदास और प्रकृति

[ व्याकरणशास्त्र, साहित्यशास्त्री पंडित कक्षरापति त्रिपाठी, एम० ए० बी० टी०, (हिन्दी-संस्कृत)  
 प्राध्यापक काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय ]

विश्वके विशाल साहित्यमें शेषसापथरको लोग अन्तर्जगत्का सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार मानते वने पाते हैं और कालिदासको वास्तु जगत्का । वास्तु जगत्के चित्रणमें, प्राकृतिक वर्णनमें कालिदासने जो मनोरम काव्य-रचना की है, वह साहित्य-जगत्में अद्वितीय है । इनके प्रकृति-वर्णनमें इतनी यजीवता है, इतनी रमणीयता है तथा इतनी भव्यता और स्वाभाविकता है कि पाठको और श्रोताओंके मन बरबस ही इनमें रम जाते हैं । इनके प्रकृति-व्यंजना अनुमान मेघदूतके इस एक ही श्लोकसे लगाया जा सकता है—

हस्ते सीतानगलमलके बानकुन्धानुविद्ध

नीला सोमप्रसन्नरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ।

चूडापाशे मधुकुरजक चाप कर्णे शिरोप

सीमन्ते च त्वदुपपमज यम नीप बधूनाम् ॥

—उत्तरमेघ, २ ।

इस श्लोकमें जो वर्णन है वह शकुन्तला-जैसी किरती तपोवनवासिनी स्त्रीका वर्णन नहीं है वरन् मनपति कुबेरकी उस अलकापुरीकी पतिश्रिणोका वर्णन है जहाँ महापथ आदि नवो निधियाँ सब निवास करती हैं, जहाँकी भूमि मणि की बनी है, जहाँ गगनचुम्बी प्रसाद करते हैं, जहाँ सित-मणियोंमें हर्म्यस्थल हैं, बानकमय सिक्ता है, अमर-प्रापित बयकन्याएँ जहाँ दिनरात मणियोंसे खेल खेल करती हैं, रामिमें जहाँ रत्न प्रदीप जला करते हैं, चन्द्रकान्ता-भित्ताओंका बाहूल्य है, जहाँके तासाओंकी सीढियों मरकत आदि मणियोंकी बनी है, हेम-कमलोंने बंधूयं मणिके दास हैं, इन्द्र-नीलके शीशा शिलर है और अन्य सभी बहुमूल्य तथा देवदुर्लभ सम्पत्तियाँ विखरी पड़ी हैं और फिर कल्पवृक्षोंसे समस्त सम्पत्ति और समस्त विभूति भी सुप्राप्य है । इतना सब होनेपर भी वहाँकी अमर-प्रापित भङ्गनाओंके शृङ्गारकी सामग्रियाँ प्रकृतिकी विभूतियाँ हैं व कि जड़ मणि शिलाओंके टुकड़े । यह वर्णन सूचित करता है कि प्रकृतिके पुजारी मानुष कविकी अन्तस्सत-दृष्टिको इन प्राकृतिक पदार्थोंमें जो सुपमा ललित होती है वह सुपमा रत्नमुत्तम-ललित काचनके भाभूयणोंमें नहीं दिखाई पड़ती ।

इस महाकविकी शकुन्तला भी मानो-साक्षात् प्रकृतिकी कन्या है । तपोवनके पावन वातावरणमें पत्नी हुई शकुन्तला जिस समय प्राथम-उरुषोको सींचती हुई हमारे सम्मुख पाती है, उस समय प्राथम-वृषोके प्रति शकुन्तलाका स्नेह-देसा जान पड़ता है मानो वे उसके गण कुटुम्बी ही हो । प्राथम वृषोकी इस भाँति मनोषोम-पूर्वक सेवा करनेवाली शकुन्तला, शत्येव वृषाको मनुराग-पूर्वक

पीचनेवाली शकुन्तला, उपोवनकी किन् सताघोषे स्ववक कव प्रकट हुए, कव उनमे मञ्जरियाँ दिखाई पड़ीं, इन सब बातोंका ध्यानपूर्वक निरीक्षण करनेवाली कण्व-सालिता शकुन्तलाका अद्भुत प्रकृति प्रेम उस समय लक्षित होता है 'जव स्वय महर्षि कण्व जावी हुई शकुन्तलाको निर्दिष्ट करके वृक्षोंकी घोर देखते हुए कहते हैं—

पारु न प्रथम व्यवस्यति जल कुम्भास्वपीतेषु वा  
नादते प्रियमण्डनाऽपि भवता स्नेहेन या पल्लवम् ॥  
साधे व शुभुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सव  
सैव याति शकुन्तला पतिशृह सर्वैरनुजायताम् ॥

—शकुन्तल, ४१६

शकुन्तलाने इस चरम प्रकृति प्रेमका प्रभाव यह होता है कि उपोवनके समस्त जड़-पेतेन उसके ऐसे अनन्य धनुरागी हो जाते हैं कि उसकी बिदाईके समय वहाँके बन-वेवताओं और तरलताघोषे प्रलीकित वनभाभूपर्यादि तक उसके त्रिवे उपहारमे प्रदान कर जाते ।

ऐसा जान पड़ता है कि कविकुल-गुरुणी समस्त वृत्तियाँ प्रकृतिके सौंदर्य-निरीक्षणमे, उनकी प्रारम्भिक अवस्थासे ही रम गई थी । उनका ऋतुसंहार जो उनका प्रारम्भिक काव्य माना जाता है—प्रकृतिपी मदीहर सुन्दरताओंके सूक्ष्म एवं सहृदय निरीक्षणका एक ज्वलन्त साक्षी है । यद्यपि ऋतुघोषाका भाष्य लेकर प्रकृतिकी सहज विशेषताओंका वर्णन ऋतुसंहारमे उद्दीपन विभावके अन्तर्गत हुआ है तथापि उसका प्रथम श्लोक—

प्रचण्डसूर्य स्पृहणीयचन्द्रमा सबावसाहसतदारिसचय ।  
दिगान्तरन्योऽभ्युपसान्तमन्मयो निदापकननोज्यमुपापव त्रिवे ॥

ऋतुसंहार, ११९

इस वाक्य पर्याप्त प्रमाण है कि सरस्वतीके लाहले पून कवलिदासके वर्णन, हृदिये मोर भलभार-शास्त्रीय परम्पराओंके बोरे निर्वाह मान नहीं, बरह आत्मानुसूति-अन्य है । फिर—

कास्यमंहो शिशिरसीधतिना रजन्यो हसंभसानि सरिता कुमुदै सरासि ।  
सप्तचन्द्रै कुमुमभारनतैर्बनाम्ना धुकीहताभ्युपवगानि च मानतीभि ॥

—ऋतुसंहार, ३१२

यह मारणा वर्णन कविनी व्यापन दृष्टि और उनके भारतविक तन्म्य-निरीक्षणका परिचापक है । सप्तचन्द्रे बायुजा वर्णन करते हुए कवि बहुला है—

पावम्यनु नुमुगिता सहृदारजावा  
विस्तारयद् परभूतस्य वचासि दिद्यु ।  
शामुविवाति हृदयानि हरत्नराखा  
नीद्वारपातविगमात् मुमयो नसन्ते ॥

—ऋतुसंहार, ६१२४

इस वर्णनमे यद्यपि बहुत ही सामारण्य बाज करी गई है तथापि इससे यह सूचित होता है कि मोर हुए साधो सामने नैटन मतवासी कोनिकी बूज गुनवर धपना उन-भन निछावर कर

देनेवाले कविने ही यह लिखा होगा। इसी भाँति ऋतुसंहारके प्रत्येक सर्गमें घादि और अन्तके ऋतु-वर्णन-विषयक एव इतने सरस, सुन्दर और साथ ही इतने गन्ध हैं कि उन्हे पढते ही या सुनते ही हृदयमें उन ऋतुसौक्य चित्रका चित्र जाता है।

कुमार सम्भव तो प्रकृति-नटीके ललित वास्तवकी रमणीय रङ्गशास्त्रा है। प्रथम सर्गका हिमालय-वर्णन सस्कृत साहित्यमें क्या, समस्त विश्व-साहित्यमें एव देदीप्यमान रत्न है। कुछ उदाहरण नीचे—

यथाप्सरो विधमगण्डनाना सम्पादयित्री शिखरंविगति ।  
यत्ताह्व च्छेदविभक्त रागामकालसन्ध्यामिव घातुमत्ताम् ॥४॥  
कपोलबन्धु करिभिर्जिनेतु विषद्विताना सरसद्रुमाशाम् ।  
यत् स्रुवसीरताया प्रसूत सानूनि गन्ध सुरभीकरोति ॥६॥  
भागीरथीनिर्भरसीपराखत बोद्ध मुहु कण्ठितदेवदाह ।  
यद्वागुरन्विष्टमृगे किरालैरासेष्यते सिन्धुविजिष्ण्वहं ॥१३॥

ऐसा सुन्दर और स्वाभाविक पर साथ ही साथ सरस वर्णन तबतक सम्भव नहीं हो सकता जबतक कविका हृदय प्रकृतिकी मनोरम शीलामोको देखकर मुग्ध न हो गया हो।

भाग्य चलकर तृतीय सर्गमें पुन वसन्तका वर्णन और अष्टम सर्गमें सन्ध्या तथा चन्द्रोदयका वर्णन भी अत्यन्त मोहक है। महाकविनी अनेक विशेषताओंमें यह भी एक विशेषता है कि जहाँ वे एक और प्रकृतिके स्वाभाविक सम्बन्धित विगतिमें प्रवीण प्रवीण हैं, वहाँ वे दूसरी ओर अपनी नव-नवोन्मेषशालिनी कल्पनामयी प्रतिभाके सहारे असीमिक और विष्व विभूषितोका वर्णन भी बड़ी विपुलताके साथ करते हैं। जहाँ एक ओर हिमालयका अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन करनेमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है, वही दूसरी ओर शोषधिप्रस्थ पुरीके, हिमालय-निवासी पक्षी, गन्धर्वों, किन्नरों और अप्सराओंके, भक्तके सुमेरुके और गन्धमादनादिके काल्पनिक वर्णनमें भी उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। उनही सूक्ष्म निरीक्षण-शक्तिके उदाहरण सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। पर्वतके भ्रमणपर दिग्गम समय जब सूर्यकी किरणें पड़ती हैं तब उनमें इन्द्रधनुष चमकने लगता है, पर सम्भ्याने समय पूर्वके लटक जानेपर उनमें इन्द्रधनुष नहीं दिखाई पड़ता। इसीका कवि वर्णन कर रहा है—

सीमरव्यतिकर मरीचिभिर्दूरत्यवधनते चिवस्वति ।

इन्द्रधनुषपरिवेपथुम्यता निर्भरास्तव पितुर्वंजन्यमी ॥८॥३१

किन्तु भरनोमें इन्द्रधनुष के न दिखाई पड़नेपर भी वास्तविके जलमें लटकते हुए सूर्यकी रमणल कान्ति पढ़नेसे ऐसा जान पड़ता है मानो उनके ऊपर सोनेका पुल बना हो—

पश्य पश्चिमदिगन्तसम्बिन्ना निर्मित मितकथे विबरवता ।

सम्पया प्रतिमया सरोम्भसा तापनीथमिव सेतुवन्धनम् ॥८॥३२

इतिहास अनुसरण करनेवाले कविका ये उक्तियाँ नहीं हो सकतीं, वरन् ये उसकी उक्तियाँ हैं जो कि मुग्ध दृष्टिके प्रदृष्टिनी शोभा देखते हुए सब कुछ भूल जाता है।

इसी प्रकार रघुवशामे भी तपोवनका वर्णन, प्रभात-वर्णन, भसन्त-वर्णन, समुद्र-वर्णन घादि भी अनुभव हैं—



सेकान्ते भुवि न्याभिस्तत्साखीन्मिमतवृक्षानम् ।  
विश्वासाय विह्वानामालवालाम्बुपायिनाम् ॥

—रघुवश, १।५१

वृताच्छलय हरति पुष्पमनोवहाना  
ससृज्यते सपुत्रैरस्साद्युमिनी ।  
स्वाभाविक परगुणेन विभ्रतिवायु  
सौरभ्यमीषुरिष ते भुक्षमास्तस्य ॥  
ताम्रोदरेषु पतित तरपत्त्वनेषु  
दिप्यतिहागुलिका विशद हिमाम्म ।  
आभाति सम्पत्प्रागतायाधरोष्ठे  
शीलात्मित सदशनार्त्तरिष त्वदीयम् ॥

—रघुवश, ५।६६-७०

अमदयन् मधुगन्धसनायया फिन्दलबाधरसगतया मन ।  
बुधुमसभूतया मयमस्तिका स्मितरथा तत्त्वाहविज्ञासिनी ।

—रघुवश, ६।४२

ससरवमायाय नदीमूलान्म समीक्षयन्तो विवृताननत्वाद् ।  
अनी शिरोभिस्त्रियम सरन्त्रं कर्ष्यं वित-वन्ति जलप्रवाहाद् ।

—रघुवश, १३।१०

तथापरस्पाद्यु विदुमेषु परंस्तमेतत्साहसोभिनेपाद् ।  
ऊर्ध्वान्दुरप्रोत्तमुल क्वचित्स्तेषांरूपम्भवति क्षययूपम् ।

—रघुवश, १३।१३

इसी सर्गमें प्रागे जलकर गंगा-यमुनाके संगमका कितना सज्जिष्ट बख्शन है । सम्भवत गंगा-यमुनाके संगमका देगा मम्म दिन ससृजत साहित्यमें उपलब्ध नहीं है । सोलहवें सर्गमें कुशकी जलक्रीडाके प्रसरपर नदीका तथा मार्गके अन्ध्यान्व दृश्यका कितना मनोहर पर्यन है । इस प्रकार केवल रघुवशमें ही प्रकृतिके न जाने कितने सन्तित एवं मनोरम दृश्योंके सरपन्त कलापूर्व विधा-रणक बर्णन भरे पड़े हैं ।

मेघमूत तो मानो प्रकृति रमणीके सान्त्वित्यपूर्ण मनोरम किलास-चेष्टाधोना आगार ही है । पूर्व-मेघमें धारम्भमें सेवर शब्द तक कर्ण अनुपम प्रकृतिषा बर्णन है । वर्षाके धारम्भका एक दर्शन नीम्नि—

मन्द मन्द नुदति पवनान्मनूरोसो यथा स्वा  
वामधाय नदति मधुर चातवस्ते सगन्धः ।  
यर्मापानसणपरिषयान्मूलमायदपासा  
शेषिप्यन्ते नयनसुभग से मवन्द जलावा ॥

—पूर्वमेघ, १०

शीघ्र ऋतुके बाद पहले-महल वर्षाकी बूंदोके पडनेपर वरसी भर तपो हुये पत्थरवाले विन्ध्यादि पहाडोसे जो भाप निकलती है उसका बर्णन खोजिए—

काले काले भवति भवतो यस्य समयमेत्य  
स्नेहभक्तिप्रचिरचिरहृत्, मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ॥

—पूर्वमेघ, १२

इसी भाँति कौनियेणै ऊपर मकड़ीके जालो और नीचे घासपर पत्ती हुई शीतकी बूंदोपर या वर्षाकी बूंदोपर दिखाई पडनेवाले इन्द्रके धनुषके समान इन्द्रधनुषकी धामा पडनेसे मेघकी कान्ति कौसी हो उठती है—इसे देखिए—

रसनच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्तात्  
वस्पीकाघ्रातप्रभवति घनु रुद्रमाखण्डलस्य ।  
देन श्याम वपुरतितरु कान्तिमापस्मते ते  
बहुरोव स्फुरितरुचिना शेषशेषस्य विप्लो ॥

—पूर्वमेघ, १५

वर्षाके आरम्भमे जब जलकी बूंदोके चिरनेपर भूमिसे सोधी-सोधी गन्ध उठती है उस समय मरुत कृष्णक बालाएँ नितने स्नेहसे श्यामल धन्मुवाहोको देसती है—

श्वभ्यामस्त कृपिफलमिति भ्रूविस्त्रासानभ्रि  
प्रीतिदिनर्ग्वर्जनपदवधूतोषर्न पीपमान ।  
सद्य सीरोक्यल्लगुरभि क्षेत्रवावह्य माल  
किञ्चित्पञ्चाद्दृज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥

—पूर्वमेघ, १६

रेवाका बर्णन खोजिए—

रेवा इक्षयस्मुपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णा ।  
भक्तिच्छेदैरिव विरचिता श्रुतिमङ्गु गजस्य ॥

—पूर्वमेघ, २०

कण्ठ-ज्वालित विन्ध्यके निचले भागमे बहती हुई रेवा सने हुए हाथीके भङ्ग-सी जान पडती है । एन और सुन्दर बर्णन खोजिए—

नीप दृष्ट्वा हरितकपिश केसरैरधंरुदे-  
रुविभूतप्रयममुकुला कन्दलीरवानुकन्धम् ।  
अम्बारण्येष्वधिकगुरभि गन्धमाध्राय पोष्यै  
सारङ्गास्ते जलतवमुच सूचयिष्यन्ति मायम् ॥

—पूर्वमेघ, २२ ।

एत प्रकार समस्त पूर्वमेघ धरन्त यन्त्र और रमणीय प्राकृतिक दृश्य-विशेषे भर पडा है । प्रकृतिके किसी एक भङ्गके नही बरन् समस्त भङ्गोके बर्णनमे वे बडे सिद्ध-हस्त हैं । मेघदूतमे

हम देखते हैं कि उनका प्रवृत्ति-वर्णन एक ओर तो प्राकृतिक सुन्दरताओंका अन्व-चित्रानुक्रम है और दूसरी ओर बाह्य जगत्का अन्तर्बन्धकी साथ सम्बन्ध दिखानेवाला है। उन प्राकृतिक दृश्योंको देखकर केवल कविके, यत्ने या अनुप्राणित मेघके हृदय भाव ही नहीं गंछित हैं, वरन् ग्रामवधुओ, पक्षिकों और विरहियोंके भावोंका भी अत्यन्त मनोरम चित्रण है। इतना ही नहीं, वरन् चातको, मयूरो, चगुनों तथा हसाकी भी उन चेट्याओंका वर्णन है जिनमें उनकी अन्तरानुभूतियोंकी छाया झलकती है। जगु-जगत्की मनोहर चेट्याओंके चित्रणमें तो कालिदास सिद्ध-हस्त हैं। दुष्यन्त बाण तथा हरिश्चन्द्रे पीछे रघु वीर्य रखे हैं और बहु गर्दन टेढ़ी कर-करके पीछे निहारता और गोकडी मारता नाग रहा है, शय जानेके कारण उसकी छाँट फूल रही है और मुँह चुन गया है, इस कारण माथी पदाई हुई कुशा उसके मुँहसे गिर रही है और पौचडीके वेगसे वह उड़ता या जान पड़ रहा है—

श्रीबान्धाभिराम मुहुर्नुपतति स्यन्दने षडहृष्टि \*  
 पद्माब्जैः प्रविष्टैः चरत्तनमयाद्भ्रुपसा पूर्वबायम् ।  
 दम्बरधौकलीडैः श्रमविवृतमुलभ्रपिभिः शीर्षपत्नी  
 पद्मोदप्रस्फुत्तवाद्रियति यद्वृत्त स्तोकेषुष्यैः प्रयाति ॥

—साकुन्तल, ११७

महापवि जो मुझ निकले थे वह उनकी शैवलिङ्ग धनुप्रति और निरीक्षणका परिणाम होता था। साकुन्तलके प्रथम अङ्कमें तपोवनकी जिन परिपूत विशेषताओंका वर्णन वहाँ किया है, वे मानो उनके अनेक बारके देने हैं—

तीवरा सुकर्मपोटरमुलभ्रष्टास्तकृष्णामघ  
 प्रसिन्ध्या क्वचिद्विगुदीपलभिद सूप्यन्त एवोपसा ।  
 विस्वामोपगमादमिन्गगतय शब्द सहन्ते मृगा—  
 स्तोत्राधारस्पादय यत्नतशिलानिप्यदरेसाङ्कित ॥

—साकुन्तल, ११४

दृत्वाभोमि प्रमृद्विचपने क्षामिनी शीतमूसा  
 मिन्नी राग विसलयश्चामाज्यभूषोद्भवेन ।  
 एते चार्वाणुषवनभुविच्छिन्नदर्भाङ्गुत्पा  
 मृष्टान्द्रा हरिश्चन्द्रियानो मन्दमन्द चरन्ति ॥

—साकुन्तल, ११५

महापविने वर्णनको यह एक अनुपम विशेषता है कि यदि उसका वर्णन दिव्य पाशो और पत्नीके अतिशयि सम्बद्ध नहीं है तो उसके स्थावचित्रता और भोगोलिक सत्यता अत्यन्त रहती है। भारविने गमान् द्विमानपम के भोनीका वर्णन नहीं करते। जिस देश, जिस पाल और जिस परिस्थितिमें उनकी प्रवृत्ति चित्रित होती है वह उसी देशकालके पूरुष धनुस्वरुप होती है। रघुने दिग्विजयका वर्णन करते हुए कवि, जिस मार्गसे और जिन समय जिस देशमें वे चलता है, उस समय वहाँकी जो बातें उसने वर्णनमें आती हैं, वे भोगोलिक विचारसे पूरुष वास्तविक हैं। पादे

वे प्राच्य समुद्रके तटस्थ श्यामल छातीवनका वर्णन करता है, चाहे बङ्गालके कमलका निर्देश करता है, चाहे महेन्द्राद्रिने नागवल्ली-बलो और नारिकेलासकका चित्र खींचता है, चाहे मारीच-वनमें परिभ्रान्त हारीतवाले मलयाद्रिकी उपत्यकाकी कथा सुनाता है। चाहे पाण्ड्य देशकी ताम्रपर्णिकी बात बतता है चाहे 'केरल' की मुरला नदीके पुलिनस्थ केवकीके पुष्प-परागोंकी गाथा गाता है, चाहे भारतने पत्तनमी सीमा-प्रान्तके अय्यूरसे व्याप्त प्रदेशका वृत्तान्त कहता है, चाहे काश्मीरके ककुम-केसरकी कहानी कहता है, चाहे हिमालयके भोजपत्रोका मर्मर, मृगोकी कस्तूरी, सरल और देवदासके तद और गंगाके शीकरसे मिश्रित शीतल अम्लिके भीत गाता है अथवा लीहित्य नदी पार करनेपर कामरूपके अय्यूर वृक्षोंकी सम्प्रतिष्ठा वर्णन करता है, सब कुछ भौगोलिक और प्राकृतिक वास्तविकता और वायातव्यसे परिपूर्ण है। रघुदिम्बिजयके अतिरिक्त इन्दुमती-स्वयंवर और मेघदूतमें मेघके मार्ग-वर्णन आदिमें भी ऐसे अनेक उदाहरण भरे पडे हैं, जहाँ दक्षिण विभोपलाभिकि प्राकृतिक वर्णनमें बलि पूर्ण रूपसे यथार्थ है।

भौगोलिक तथ्य—वर्णनके अतिरिक्त महाकवि कालिदासके प्रकृति-वर्णनकी दूसरी विशेषता यह है कि अस्तुतकी अमूर्त विभोपलाभो और सुप्रभा-सम्बन्धी विशदशृङ्गाओंके आभार साक्षात्कारके लिये वह प्रकृतिके अस्तुत प्रसङ्गोंको निर्वाचन सहायता लेता है। शकुन्तलाकी अश्रुनिम सुप्रभाकी अलित कल्पनाको मूर्तकपमें चित्रित करनेके लिये वह कहता है—

रारसिजममुमिद्ध लीनतेवापि रम्य  
मलिनमपि हिमाश्लोलेषु लक्ष्मी तनोति ।  
इयमभिकमनोगा मत्कलेनापि लक्ष्मी  
किमिष हि मधुराखा मध्वन गारुवीनाम् ॥

—शकुन्तला १।१६

इसमें शकुन्तलाकी सहज रूपसम्पत्तिका मूर्त प्रत्यक्षीकरण करनेके लिये सेवारसे पिरे हुए कमल और सकलकू कलाभरकी सहायता ली गई है। इसी भाँति शकुन्तलाके अश्रुतपूर्व जीवनकी अभिव्यक्तिके लिये, उसके अङ्गने मौनकी मनोहरताके प्रतिपादनके लिये, कवि अस्तुतकी सहायता लेकर कह उठता है—

अनाघ्रात पुष्य किसलयमकुल कररुहै-  
रनाषिद्ध रत्न मयु मधमनास्वास्तिरसम् ।  
अक्षय्य पुष्पाना फलमिष च तद्रूपमनघ  
न जाने शोकार कर्मिह समुपस्थासति विधि ॥

—शकुन्तला २।१०

अनाघ्रात पुष्पादिको वर्णन हमारे अन्मुख उसकी अश्रुत रूपसम्पत्तिका बड़ा अन्व और प्रभाव-शाली चित्र उपस्थित कर देता है। इस चित्रकी सहायतासे अमूर्त भावनाके मूर्त आलात्करणमें अत्यन्त तीव्रता भा जाती है, हृदयपर उसकी बड़ी मधुर और अमिट छाप पड जाती है।

रमणी-सौन्दर्यकी देखकर अनेक लक्ष्योंके मन आकृष्ट होते रहते हैं, पर इतना कह देना कि मधुव गुन्दरीनी देखकर अश्रुत युषवना मन मुग्ध हो गया, पर्याप्त नहीं होता। केवल इतनेमें न

तो कोई साहित्यिक समीक्षक जान पड़ता है और न इसका कोई प्रभाव ही पड़ता है। अतः, उर्वशीका स्वर्गीय सोन्दर्य देखकर पुरुरवाका हृदय जब मुग्ध हो गया तब उसीका प्रभावशाली वर्णन करते हुए कवि कहता है—

एषा मनो मे प्रसन्न घरीरात् यितु पद मध्यममुत्पतन्ती ।

सुराङ्गना कर्मेति खण्डितायाल्लूत मृणालादिव राजहसी ॥

—बिक्रमोर्वशीम् १।२०

[जैसे मृणालके दो खण्ड करके एक खण्डसे दूसरे टुकड़ेके दूर किए जानेपर भी उत्तमसे निकलता हुआ सूक्ष्म शोभाका सम्बन्ध बनाए रखता है, उसी भाँति उर्वशीके चले जानेपर भी महाराजकी भाँति और समस्त प्रसन्नवृत्तियाँ उसी ओर लगी हैं।] इसी प्रकार विरहिणी यक्षिणीकी मलिन मूर्तिका विश्रामक साक्षात्करण करनेके हेतु कविले उसे शिशिरमयिता पश्चिमीके तुल्य कहा है। भाषे उर्वशीका वर्णन करते हुए कविपुल-कमल-विवाकर कहते हैं—

नून तस्या प्रबलश्रितोच्छ्रवनेन प्रियामा

नि श्यासानामाशिशिरतया भिन्नवर्णाचरोष्ठम् ।

हृताग्नस्त मूलमसकलध्याति सम्बालकत्वा—

दिन्दोर्दे-य रश्मिभुसरशुक्तिर्यत्कान्तेविभक्ति ॥

मेषदूत (उत्तरमेघ)—२४

यहाँ भी अग्रस्तुत काग्र मह पूषित करता है कि सहज-सुन्दर यक्षिणीका मूल वियोगके वादलोसे कान्दिहीन हो गया है। इस रीतिसे महाकविके काव्योमे अग्रस्तुत रूपमे भी प्रकृतिका अत्यन्त प्रभावशील और विश्रामक हृदयोत्थापक वर्णन पग-पगपर भरा पडा है।

मधुपि कालिदासके प्रकृति-वर्णनमे अनेक विशेषताएँ हैं तथापि उन सबका वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है, अतः यहाँ केवल एक और विशेषताके सम्बन्धमे कुछ विवेचन कर देना है।

बिक्री दृष्टिमे मानवके चारो ओर फैली हुई विशाल प्रकृति, अनगिनती तारोसे जगमगाता हुआ अनन्त अन्धर, अगाध समुद्र, विधाव वन, सता, वृक्ष, पत्त्वक, प्रभून, फलादि, नदी, मधुपयी तथा अन्य अनन्त प्रकृतिके पदार्थ केवल जड या बुद्धि और भावनासे हीन साधारण वस्तुएँ नहीं हैं, बरन् उसकी भावुक कल्पना-वस्तुओके सम्मुख ये सभी शैल जान पड़ते हैं, वे सभी भावनाशील हैं और मानव जगत्के प्रति उनके हृदयमे सहानुभूति है, मानवपीडासे वे व्यथित होते हैं और मानव-गुणसे खुशी। इससे अन्य और विशद उदाहरण एक नहीं, महाकविके काव्यमे अनेक हैं। बिक्रमोर्वशीयके अतुल्य अद्भुत उर्वशीके वियोगमे विलाप करते हुए पुरुरवाको देखकर मानी समस्त प्रकृति सहानुभूतिसे घायुल हो उठती है, और पुरुरवाको भी क्षारी प्रकृति सजीव और मानव-गुणमामे व्याप्त दिखाई पड़ती है। सम्पूर्ण प्रकृतिको अपने प्रति समानुभूतिपूर्ण और अरम देखाकर ही पुरुरवाके द्वारा कवि अपने हृदयका भाव उनके प्रति व्यक्त करता है।

इसी भाँति अनुच्छता भी मानो प्रकृति-सुन्दरीकी, नैसर्गिक शोभाययी वनदेवीकी दुलारी पुत्री है। तपोवनके मुक्त तथा अन्य पशु-पक्षिमामे प्रति उसका हृदय दान्यक-स्नेहसे घायुल है। नैसर्गिक वन-मुपमासे उसने वनेवग्ने भरतु अलु निर्मित और परिपालित हैं। कविके कथनानुसार

अनुसार जो अनुन्तपा तफलतादिको बिना सीचे जल पीना भी उचित नहीं समझती भी उस अनुन्तपाकी विदाइके समय समस्त तपोवन निरुद्धकुल हो उठता है, तो क्या आश्चर्य ।

उगन्निभ्रदन्गनवसा मिधा परिवन्तखण्डला मोरा ।

श्रोत्तरिभ्रपण्डुपता मुभ्रन्ति भ्रसू विभ्र नदाभो ॥

अनुन्तपा—४।१२

धर्मपिता ऋष्य और अन्य तपोवनवासियोंकी निरुद्ध-व्याकुलता तो ठीक ही है, पर जब और मूक प्रकृतिकी शोककातरता तथा व्यथा व्याकुलता उठी कविके अन्तःकरणके साथ स्पन्दित हो उरती है जिसके हृदयकी बीरुणके सार प्रकृतिचे व्यापारसे बच उठा करते है ।

महाकविके द्वारा जट प्रकृतिका चेतनीकरण मेघदूतमे आदिसे अन्ततक प्रतिबिम्बित बिलाई पहला है । यद्यपि मेघको धपना दूत बनाकर धपनी प्रियतमाके पास भेजता है । मेघकी सेवा मार्गमे यलावा ( धन-वृत्ति ) करेगी, किसलयका पायेय लिए हुए राजहंस मार्गमे उसका साथ देगे, जानेके समय 'रामगिरि' भी धाँसू बहायगा, मार्गम सुन्दर रैवा नदी मिलेगी, मयूर स्वागत करेगे, विदिसामे पहुँचनेपर कामुकेच्छा पूर्ण होगी और वेनवतीके चञ्चल-तरङ्ग-भ्रुकुटियोंवाले मुलका वह शुभमन करेगा तथा प्रकृति चेतन मानवके समान भाषण करेगी ।

यहाँ एक और कवि मनुष्यके बाह्य धारोत्तरि सुन्दरताकी प्रभावशील पीर तीव्र अनुभूतिके लिये प्रकृतिके मनोरम और सलिल उपादानोकी सहायता लेता है, वही दूसरी ओर वह प्राकृतिक रमणीयताकी प्रभावशीलता तथा तीव्रता बढ़ानेके लिये प्रकृतिमे भी मानव-सौन्दर्यका आरोप करके अस्तुत रूपसे मानपीय सुन्दरता तथा भावामिन्वितिकी सहायता लेता है —

वीचिधीमस्तनितविहगभ्रैलिकास्त्रीगुलाया

सुसर्पन्त्या स्खलितगुणग दनितावर्तनामे ।

निदिन्ध्याया पथि भव रसाभ्यन्तर सन्निपथ

स्त्रीलाभाद्य प्रणयवचन विभ्रमो हि प्रियेषु ॥

मेघदूत (पूर्वमेघ)—१०

महाकविके सम्मुख सुरत भ्रान्तिको दूर करनेवाला शिप्रानिल मानो प्रार्थना-चाटुकार प्रियतम है । इसी प्रकार गम्भीरा नदीका 'चटुतशफरोद्धर्तन ही उसके कटाव है । अतः, मेघसे यक्ष कहता है —

तस्या विचिक्करवृत्तमिन्व प्राक्तवानीरसाद्य

हरवा नील सलिलवसन मुक्तरोधोनितम्बम् ।

भ्रस्थान ते वयमपि सखे चम्बयानस्थ नाथि

जातास्वादो विवृतजघन को निहातु समर्थ ॥

मेघदूत (पूर्वमेघ)—४५

इस दलीलसे हमे ज्ञात होता है कि चित्त शक्ति एवं किलास प्रिय कामकला-निपुण नायकके हृदयमे 'विवृतजघना' रमणीको देखकर उसके प्रति आकर्षण होता है, उठी शक्ति वपकालीन गम्भीराकी उपर्युक्त यक्ष उदा देखकर कविधा जी वही रम जाता है और वह अब कुछ भूलकर उसे निहारनेम मस्त हो उठता है ।

कविकुल-गुरु कालिदासके सभी काव्योंमें और विद्येयत. मेघदूतमें इस भाँतिके वर्णन भरे पड़े हैं। अतः, चाहे प्रस्तुत रूपमें ही भगवा अस्तुत रूपमें, कविका प्रकृति-निरीक्षण और उसका वर्णन अनुभव है। पर यहीतक उसका प्रकृति-प्रेम समाप्त नहीं हो जाता। हमारे चारों ओर जो विद्याल प्रकृति अपने अत्यन्त सौन्दर्यके नैभवमें अज्ञात रहस्यका आवरण डाले दिखाई पड़ती है, उसकी अपार महिमाके सम्मुख धृष्टा और भक्तिये मस्तक झुकाता हुआ महाकवि अभिज्ञान शाकुन्तलके आरम्भमें कह उठता है—

या मृष्टिः सप्टराषा बहति विधिहृत या हविर्वा च होमी,

ये द्वे काल विपत्त श्रुतिविषयमुखा या स्थिताम्याप्य विश्वम् ।

यामाह. संपंथीजप्रकृतिरिति यया प्राखिन प्राणवन्त

प्रपक्षामि. प्रपन्नस्तनुभिरवत् वस्ताभिरष्टाभिरिणः ॥

अभि० शाकुन्तल—१११

अर्थात् परमेश्वर भी कहीं अन्यत्र नहीं है। ससारमें, प्रकृतिमें दिखाई पड़नेवाली महिमामयी अष्टविभूतियाँ ही भगवात् अष्टभूतिकी आठ प्रत्यक्ष सूतियाँ हैं।

इसीलिये कवि कुमारसम्भवमें भी कहता है—

इयं सपाठफटिन. स्फूत. सूक्ष्मो लघुगुण ।

म्यक्तो प्यक्तेतरश्वासि प्राकाम्भ से चिभूतिपु ॥

कुमारसम्भव—२१११

यही परमेश्वर पूर्णबी आदि प्रकृतिके रूपमें इस सपत्त अष्टाचर विश्वको आरण्य किए हैं।—

असितान्द्योग्यसामंभ्ये. मृष्टिव्यादिभिरात्मभिः ।

येनेद अभयते विश्व सुयंयानिमिदाभवनि ॥

कुमारसम्भव ६१७६

अस्तु, ईश्वरकी परम मुखमयी प्राकृतिक विभूतियोंके अनन्य उपासक महाकवि कालिदासकी कवितामें प्रकृतिका महत्त्वपूर्ण तथा परमरमणीय चित्रण तनिक भी आश्चर्यकारक नहीं कहा जा सकता।

## निसर्ग-कन्या शकुन्तला

[शॉ० एस० के० वेल्चेलकर, ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना ।]

धोंगरेज कवि बहूँ सवर्षोंमें किसी हस्तुतीका वर्णन करते हुए लिखा है—

“थी ईयर्स शी व्यू इन सन ऐण्ड शीवर,  
 ईन् नेचर सेड् “ए लवलिघर फ्लौवर  
 मोन अर्थ वाग् नेचर सोन,  
 दिस वाइल्ट माइ टु माइसैल्फ विल टेक,  
 श्री शील वो माइन, ऐण्ड माइ विल मेक,  
 ए लेटी शीफ माइ मोन,  
 माइसैल्फ विल टु माइ डार्सिङ्ग थी  
 वोम ली ऐण्ड इम्पल्स; एण्ड विद थी  
 दि वर्ल इन रीक ऐण्ड प्लेन,  
 इन अर्थ ऐण्ड हैबिन, इन ग्लेड ऐण्ड बीवर  
 शील फील एन्ड मोवर-सीईंग पीवर  
 टु किडिल और रैस्ट्रन,”

[तीन वर्ष तक वह धूप और वर्षा में पत्नी । तब निसर्गने कहा—इससे अधिक सुन्दर फूल इस पृथ्वीपर कभी उगाया ही नहीं गया । इस कन्याको मैं स्वयं ले लूँगा । वह मेरी रहेगी और इसे मैं अपनी प्रेयसी बनाऊँगा ।

“मैं ही अपनी इस प्रेयसीका नियम और भाव बनूँगा; और मेरे ही साथ यह कन्या चट्टानों और मैदानोंमें, मार्ग और स्वर्गमें, वनपथों और कुम्होंमें मगको उकसानेवाली या संयम करनेवाली दिव्य शक्तिका अनुभव करेगी ।”]

‘टिटन एबीसे कुछ मील ऊपर’ ग्नी हुई अपनी दूसरी वनितामें वही कवि कहता है कि मैं किस प्रकार—

“इन नेचर ऐण्ड दि लम्बेज शीफ सैन्त,  
 दि ऐन्डुर शीफ माइ प्योरेस्ट थोट्स, दि नर्स,  
 दि ग्राइड, दि गार्डियन थीफ माइ हार्ट, ऐण्ड सोल  
 थीफ शील माइ गौरल बीईंग,”—

[“निसर्ग और भावकी भावामें, अपने सबसे पवित्र विचारोंको याच रखनेवाली, अपनी धारी, अपनी गन्ध-प्रदशिका, हृदयपर शासन करनेवाली और अपने समस्त तंत्रिक शक्तित्वके धारता.....”] को पहचाननेमें समर्थ हुआ । और अपनी ‘शेर’ (दि एन्सकर्सन) शीर्षक कवितामें उसने मानव और प्रकृतिके बीच स्थापित हो सनेवाले सम्बन्धके कई रूपों और अवस्थामोका



धरुंन विद्या है। आलोचक-गण्य इस बातपर सहमत हैं कि जो कुछ बहूँसवर्षने इनमे तथा धर्म रचनाप्रोमे बर्णन क्रिया है वे उस भाव-मक्रान्ति विघ्नमके उदाहरण मात्र नहीं हैं जिसके द्वारा मनुष्य अपनी निजी अनुभूतिमे, उदगारा और भावोको अचेतन पदार्थोमे आरोपित करता है। मनुष्यको प्रकृतिसे जो विचार और प्रेरणाएँ मिलती हैं उसे प्रदान करनेकी शक्ति सचमुच प्रकृतिमे है, क्योंकि मनुष्य और प्रकृतिके बीच वही आत्मा या चेतना व्याप्त है जिससे दोनोंमे परस्पर मान्तरिय सम्बन्ध उत्पन्न हो शीघ्रतासे और आवश्यक रूपसे भव्य है जैसा कि परस्पर प्रेम करनेवाले दो मित्रोमे होता है, और ऐसे सम्पर्कके लिये सदा व्यक्त भाषानी आवश्यकता हुआ भी नहीं करती।

यह समझा जाता है कि उपर्युक्त प्रकृतिवाद बहूँसवर्षका ही चलाया हुआ है और वह उसमें पूर्णतः विश्वास भी करता था। इसका दार्शनिक आधार हमारे बैदातये उस रूपमे बहुत कुछ मिलता-जुलता है जहाँ यह माना जाता है कि एक ही आत्मा मनुष्य, पशु, वनस्पति और समस्त सृष्टिमे व्याप्त है। यह भी निश्चय है कि यही कालिदासका भी ध्येय मत था। किंतु यदि इसके लिये शब्द-प्रमाणकी आवश्यकता हो तो उर्बन्धोका यह कथन सबसे अधिक प्रमाणिक होना भी उचित मता होनेका दाप पाकर और फिर अपना पूर्व रूप धारण करके अपनी जगती प्रवस्थाके अनुभवका लेजा हमारे लिये गुरसित रख छोड़ा है—

अन्तर्गतकरणे मय पञ्चस्योक्तिपुस्तको क्व महाशयो। (मैंने अपनी भीतरी इन्द्रियोति महाराजकी सब बातें जान ली थी।)

—विक्रमोर्वशीयम्, अङ्क ४, श्लोक ७१ के पश्चात्

वास्तवमे हिन्दुधर्मि पुनर्जन्म और आत्मोत्थमणकी भावनाके आधारपर यह तथ्य ऐसे ध्वंसरका सामान्य अनुभव माना जा सकता और इसके यह निष्पत्त्यपूर्वक कहा जा सकता है कि प्रकृतिके पदार्थ भी ठीक मनुष्योके समान ही अनुभव कर सकते हैं और अपने विचारोका आदान-प्रदान कर सकते हैं। इसका मटीक उदाहरण कालिदासके अविज्ञानघानुन्तलकी गायिका उस घानुन्तलामे पाया जाता है जो मोक्षमे उपरतक प्रकृतिकी सखी कन्या थी और जिसे कविने केवल शब्दोमे ही वर्णन नहीं किया है बरन् उसे हमारे समझ रक्त-माससे निमित्त शरीर रूपमे भी लाकर रख दिया है और वह बोलती भी है, अनुभव भी करती है, नाच भी करती है और ठीक उठी प्रकार पाचरण करती है जैसे उस बाघावरणमे उत्पन्न किसी बच्चेसे माया की जा सकती है और इसीमे हमारे निम्नादिष्ट अनुसन्धानका वास्तविक कौतुक निहित है।

• शानुन्तलाका जन्म स्वर्गीय अम्बर मेनकाके गर्भसे और उन विश्वामित्र ऋषियो हुआ जिनके भयङ्कर तपसे स्वर्गमे स्वामी इन्द्र इतने डर गए कि उन्होंने ऋषियो सुमाने और उनकी तपस्या भंग करनेके लिये मेनकाको नीचे मार्यनोवर्षमे भेजा। कन्याके उत्पन्न होते ही माता उसे वनमे छोड़कर स्वर्ग लौट जाती है। इस प्रकार अर्धसित छोटी हुई बालिकाकी दैतमाल बनके पक्षी करते हैं और उसका उवतक पोषण करते हैं। उवतक कम्ब ऋषि उसे आकर उठा नहीं ले जाते। वे उसका नाम शानुन्तला (पक्षियो द्वारा पोषित) रख देते हैं और उसे अपनी पालिता कन्या बना लेते हैं।

कचने अपनी पालिता कन्याके लिये बाल-सत्सियोके रूपमे धनयूया और प्रियवदा नामकी दो सत्सियो भी दे दी जिनके नाम ही सुविहित रूपसे उनके भिन्न स्वभावोकी सूचना देते हैं।

इतना ही नहीं धरम उसके लिये कण्ठसे गाधयो, प्रतिमुक्तन और सबसे अधिक शकुन्तलाकी महन नवमासिना भी दे दी थी जिसका उसने प्रेमसे चन-ज्योत्सना नाम रख दिया था, और चतुल, केसर, सहकार और दूसरे स्नेह और सावधानीसे रोपे और पाले हुए वृक्ष दिए थे, और हरिण, मृग, मोर, हंस, कोकिल, चक्रवाक आदि पशु-पक्षी भी दे दिए थे और उनके देवी-देवता तो उसके साथी थे ही। इन सभी आश्रम निवासियोंको उत्पन्नसे पालना, पानी देना, पोषण करना, इन सबके मुखवा ध्यान रखना और समय-समयपर आए हुए अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करना, ये सब निरत्यके कार्य कण्ठसे शकुन्तलाको सौंप दिए थे और उसे थोड़े ही दिनोंमें ये काम अपने भी लगे और इन कामोंमें उसे सेवाया सखा आनन्द भी मिलने लगा था। देखिए—

एष केवल तावतिश्रोमो । ध्रित्य ममादि शोबरसिखेहो एदेसु ।

(मैं केवल नितालीकी ही आजासे इच्छे नहीं सीचती हूँ । मैं स्वयं भी इनको सगे भाई महन जैसा प्यार करती हूँ ।)

या चतुर्मं भवमे कण्ठका यह प्रतिष्ठ श्लोक देखिए—

पातु न प्रथम ध्यवस्यति जल मुष्मास्वपीतेषु वा ।

तादत्ते प्रियमण्डनापि भवता स्नेहेन या पत्नवम् ।

प्रापे न कुसुमप्रवृत्तिसमये यस्या भवत्युत्सवः ।

एष याति शकुन्तला पतिगृह सर्वरनुग्रावताम् ॥

—शाकुन्तलम्, ४११

उसके ये पशु और वनरपति-जगत्के सभी साथी अपने निष्ठी व्यक्तित्व और जीवनसे अनुप्राणित हो उठे और इनके व्यक्तित्व और जीवनमें अनसूया और प्रियमन्दसे कुछ कम विशेषता नहीं थी। मत यह स्वाभाविक था कि उन्होंने शकुन्तलाको अपनी अपनी परिस्थितियोंके अनुसार सेवा और मैत्रीके लिये प्रेरित किया तो शकुन्तलाको केवल प्रतिदिन लताशोभे पानी देना और उनका पोषण ही नहीं करना पड़ता था बल्कि जब बगीचे उनके उभरते हुए पौधनका सफल दिखाई देता था तब उन्हें उपयुक्त पुर्वोक्ति सहारे पढ़ाना भी पड़ता था अथवा यदि शकुन्तलाके समान ही बटोरी प्रतीक्षा बिना दिए वे स्वयम्पर या आत्मनिर्णयसे अपना सम्बन्ध कर लेती थी तो भी कण्ठसे कम उनके सौभाग्यपर उत्सव तो अवश्य ही मनाना पड़ता था। इसी प्रकार इन्हें मृगछोतनी भी सावधानीमें देखरेख आवश्यक होती थी विशेषतः जब, जब पहले-पहल घास चराते समय उनके मुहं कट जाते थे। एक ऐसा मृगछोतन वहाँ था भी, जिसकी माँ उसके जन्मते ही मर गई थी। शकुन्तला ही इस छोटीकी माँ बन गई थी उसने प्रेमसे इसका नाम रखा था—दीर्घापाग (बड़ी-बड़ी माँसोवाला)। यह छोटे-छोटे उस छोटीके गटे हुए ओठोपर तेल लगाती और लचमुच वह उसे दुलार करनेवाली वैसी ही माँ समान सब काम करती थी जैसे प्रकृति माताने स्वयं शकुन्तलाका उस समय पालन किया था जब उसकी कठोर-हृदया माता मेनका उसे छोड़कर चली गई थी। चतुर्मं भवमे शकुन्तलाके उद्देश्यपर विचार तो कीजिए—

'बन्धु' कि सहवासपरिषदादिति न भययुरसि । अचिरम्पसूयाए षण्णशीघ्र विद्या बद्धिदो एव ।  
शांति पि मए विरहिद तुम तावो चित्तइस्सदि ।'

\* सदान्वितिका \* अर्थां अहं स्वै च संप्रति शीतचिन्ता ।

(यन्त्रे ! मुझ राश छोड़कर जानेवालीके पीछे-पीछे तू कहाँ जा रहा है ? तेरी माँ जब तुझे जन्म देकर मर गई थी उस समय मैंने तुझे पाल-पोसकर बड़ा किया । अब मेरे पीछे पिताजी तेरी देखभाल करेंगे ।)

प्रियवा इसके पहलेका श्लोक देखिए जहाँ बड़ी मानुषतासे बन्ध चलान करते हैं कि शकुन्तला किस प्रकार अपना छोड़ोका पालन-पोषण किया करती थी—

मस्य स्वया ब्रह्मविरोधमभिन्दु दीना

सैल न्यपिच्यत मुचे कुनसूचिबिन्दे ।

दयानाकमुष्टिपरिवापिताको जहाति

सोज्य न पुनकृतक पदवी मृगस्ते ॥

—शकुन्तल, ४।१४

इस सहानुभूति और सेवाके ऐसे अद्विज और स्थिर आदान-प्रदानसे यह आशा की जाती है कि शकुन्तला और उसके ये सब सज्जी-साथी परस्पर एक दूसरेकी भावस्पर्शताओं और भावोंकी भली भाँति समझते होंगे और एक दूसरेके विचारोंको पहलेसे ही समझकर उनकी व्यक्त या अत्यक्त इच्छाओंको पूरा करनेके लिये योद्यता करते होंगे । इसलिये जब शकुन्तला वनज्योत्स्नाके यौवनेमें पानी देती हुई उसकी धीरे धीरे देखती है उस समय शकुन्तलाके मनकी बात प्रियववा समझ जाय तो कोई आश्चर्य नहीं—

मणसूपा ! जाणसि किण्णिमित्तं सज्जन्ता मणुजोसिण्णिं धरियेत्तं पेक्खदि ।... जहा मणुजोसिणी मणुज्वेण पाभवेण सग्गं, अवि श्याम एव्व अहं दि अत्तखो मणुसुखं वयं सहेमं ति ।'

(मनसूपा ! जानती हो शकुन्तला इतनी भग्न होकर वनज्योत्स्नाको क्यों देख रही है ?... जैसे इस वनज्योत्स्नाको अपने योध्य वृक्ष मिल गया है, वैसे ही मुझे भी मेरे योध्य वर मिल जाय ।)

किन्तु यहाँ भी यह प्रश्न उठाना क्या बँसा ही उचित न होगा कि क्या शकुन्तलाकी सता-पहन वनज्योत्स्ना भी शकुन्तलाके लिये वैसा ही नहीं सोच सकती थी और जिस प्रकार मनसूपा और प्रियवदाने दुष्यन्तके लिये शकुन्तलासे यह प्रेमभाव पत्र लिखवाकर नायक और नायिकाया परस्पर मिलन करनेके उपाय दूढ निकाले थे—

'तं सुमणो गोविदं करिअ देवदासेतावदेसेण हत्वम पावदस्स ।'

(उसे पूनोमि छिपाकर देवताका प्रसाद गृहकर उन्हें दे भाया जाय ।) वैसे ही क्या इस प्रकारसे मिलन करनेकी कोई ऐसी ही विधि बकुल या केसरका वृक्ष या वनज्योत्स्ना लता नहीं सोच सकती थी ? जिस प्रकार कानिदासने शकुन्तलाके आश्रम-संसाधोका विषय किया है, उस दृष्टिसे इन प्रकारका प्रयत्न करना अव्यक्त न होगा, क्योंकि पीछे जब शकुन्तला अपने पतिके घर जानेको उद्यत होती है उस समय वेनस मनसूपा और प्रियवदा ही निम्नलिखित मञ्जुल साज नहीं जुटाते हैं—

'गोरोधण, तिरपमिच्छिम, दुब्बाविहससमासि ति मञ्जुलसमानम्भर्यासि ।' (गोरोधन, तीर्थ-मृत्तिका, दूबके पत्तें आदि मञ्जुल सामग्रियाँ) और वे बकुल (केसर) के फूलोंकी यह माला भी नहीं, मूखी हैं जिसे मनसूपाने इस भावसरके लिये भतय रस छोड़ा था—

'एदस्सि भूदधाट्ठवत्तमिन्दे शारिणलसमुण्ण एदं सिमिधं' एव्व कालन्तरत्तना सिमिधत्ता

मए केसरमाविद्या (वह जो आमकी आंखों पर नाचियत सटक रहा है उसम मैंने बहुत दिनोतक सुगंधित रहनेवाली बकुलकी मावा आंखके ही लिये रख छोटी है।)

[—वरुण जसा भानिदासने भी जान-बूझकर कहा है—आश्रयके चुनौने भी शकुन्तलाके विवाहके लिये भट दी थी—

शोम केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माञ्जुल्यमाविष्टत

निष्पत्तश्चरणोपगोगयुलभो साधारस केनचिद् ।

शन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभाभोऽपि

दंताम्बाभरक्षामि तत्किमसयोऽङ्गप्रतिद्विभिः ॥

—शकुन्तल, ४१४

यह मेरी पहली समस्या है।

इसी प्रकार यदि दुष्पन्तके प्रति शकुन्तलाका प्रेम जगनेके पहले मनसूया और प्रियदा प्राप्तने बड़ी उत्कण्ठासे इन बातपर विचार कर सवती है कि राजा सचमुच शकुन्तलाके प्रेयका उचित भविष्यारी हो सकेगा या नहीं—

'मरणमुमे । वृषभन्महा भक्तमा इम कालहरणस्त । अस्मि बद्धभावा एता सो क्षलामभूषो पीरवाण । पुत रो अहितासो पहिलामेदु ।'

(मनसूया । इसकी प्रेम-व्यथा इतनी बढ गई है कि कोई उपाय सोच ही करना चाहिए । सचमुच इस बातकीतो सराहना करनी ही पडेगी कि शकुन्तलाके प्रेम किया तो पुश्तके भूषण दुष्पन्तसे ही ।)

और फिर जब राजा स्वम भनामास रङ्गमञ्चपर आ पहुँचाते हैं, उस समय भी यदि वे ही दोनो सखियाँ स्वयं प्रेम-श्रीटाके सफल परिणामकी सिद्धिके लिये सभी उपायोका अवलम्बन करती हुई इस प्रकार बहती हैं—

'वधस्त । बहुवल्गहा रामाणो भुलीमन्त्रि । न्ह शो विभवही बन्धुघाउसोभ्रिण्णता ए ह्रीदि तह खिण्वाहेहि ।' (सयस्य । सुनते हैं कि राजाओंके बहुत सी रानियाँ होती हैं । तो हमारी प्यारी सखीके लिये कुछ ऐसा प्रबन्ध कीजिएगा कि हम सगे-साथियोंकी फिर पक्षतावा न पडे ।)

—तो क्या हमें यह आशा करनेका अधिकार नहीं है कि यजिने वनस्पति और पशु वर्गमेंसे शकुन्तलाकी जिन सखियोंका वर्णन किया है उनके द्वारा भी कवि, शकुन्तलाके भावी भगवतके लिये उसी प्रकारकी उत्कण्ठा प्रदर्शित करावे ?

यह मेरी दूसरी समस्या है ।

भन्तमे उत प्रसिद्ध और मुक्तगण्डो प्रशंसित चतुर्ष अङ्गके विदावाले हयमे, जहाँ सम्पूर्ण प्रकृति शकुन्तलाके जाते समय उसके वियोगसे दुखी है—

उमसिददम्भकवला मिधा परिवतरखचला मोरा ।

घोस्रिप्रपण्डुपला भुमन्ति मरयू विन्न सदायो ॥

[उदयतितवगंभवला भूया परिवत्तनत्तना मयूरा ।

अपसुतपाण्डुपना भुञ्चन्त्यथूसीव तता ॥]

—शकुन्तल, ४१२

और जहाँ दुर्वासके जापके बयानने परिणामका विचार करने विदाईके अन्तिम समय भी वे दोनो सखियाँ शकुन्तलाके तात्कालिक व्यापसे थोडा बचा देनेके बुद्ध बहानेसे दुष्पन्तकी श्रेयुठीका

स्मरण कराते हुए प्रसंगवश इतना भर पहुँची है कि जब आवश्यकता पड़े तो मँगूठीका प्रयोग कर लेना पर मूर्खता नरके घापनी बात दिखा लेती हैं—

‘रविसदव्या ननु पकिदिपेलया पिमसही ।’

( उस बेमेल स्वभाववाली प्यारी सखीकी रखा तो करनी ही होगी । ) और अपनी पुत्रीकी भावी विपत्ति और ध्यवानो पहलेसे जाननेकी दिव्य दृष्टि वाले पिता कब भी कोई ऐसा स्केच या चेतावनी नहीं देते और यह बात केवल उस नीतिके उपदेशमे ही नहीं है जिसे वे विदोष रूपसे शत्रुन्तलाको सुनाते हैं—

‘द्युधुपरव गुह्यं बुद्ध प्रियतसोवृत्ति सपत्नीजने ॥’ प्रादि

शाकुन्तल—४।१५

परन्तु क्षीर-वृत्तके तले बैठकर दुष्यन्तके लिये उन्होंने जो संदेश धरमल सोच-समझकर कहा—

अस्मान् साधु विचिन्त्य समयधनानुषर्षं कुल चात्मन-

रत्यम्यस्या क्वमप्यथाम्बवकृता संह्रवृत्ति च ताम् ।

शाकुन्तल—४।१७

उत्तम भी उन्होंने अपनी पुत्रीका लिए किसी विशेष कृपाकी याचना न करते हुए केवल यही कहा है कि उसे सप्त भाग्यना निर्लभ्य करके लिये समान धनसह और समान स्वतन्त्रता मिले—

सामान्य प्रतिपत्तिपूर्वकमिव दारेषु हृदया स्वया ।

भाग्यामत्तमत पर न खनु उदाष्य बधुबन्धुभि ॥

शाकुन्तल—४।१७

यै पुत्र दुहरणा है कि इस विदाहि हृदयमे जहाँ हम शत्रुन्तलाकी अपनी सुप-दुप छोड़कर, विरसाधनरी भासाते, उसे नगारकी और बहत हुए देखते हैं<sup>१</sup> और जहाँ ( यद्यपि भिन्न-भिन्न परिश्रामेन ) उसकी सतिपति और पिताम मानो आपसमे यह मनसा कर ली है कि वे उसके शिरपर सटकती हुई सतिपतिपति गम्भीरता और निकटतासे उसे बिलकुल धनगत न होने देंगे— और विदोषपर पिता तो व्यर्थ ही अपने सौबपूखें विचारोंको दबानेका प्रयत्न कर रहे हैं<sup>२</sup> वहाँ हम लोग ऐसी कबो न बताना करें कि मायिनानी मनुष्येवर सतिशोम से कुछ तो ऐसी निकलें

१ 'एषा सभावात् प्रत्यजमेतत् तत्र भवति कथंनरव ।

२ 'अत्रम क्रममे शाकुन्तलाक रण्य बधिप—

परिदप मन्त्र सदसो । कुरो दारिण मे दूरादितोहिया ममा ।

( कात्तुनको ॥३३ विवाहमे ही कन्देद दो रहा है एव तो मैंने और बर्न-बर्नी माशा<sup>३</sup> बीर रक्ती भी उनका ल निर टिखना ही बर्नी है । )

३ 'इतिहा सने ब<sup>३</sup>या प्रमाय यद् अयो<sup>३</sup> है—

अधिपत्यो न<sup>३</sup> अ<sup>३</sup> उ<sup>३</sup> पिता मुनिमद

विमवृत्तिन ३३३३३३ अ<sup>३</sup>पुष्टम कुना ।

जो श्रुतिके मतकी बात समझकर अपनी श्रांति, शक्ति और गतियोगी भाषामे वामसे कम योही देखके दिने तो शकुन्तलाको रावधान कर दें, भले ही वह पीछे किसी बाह्य परिस्थितिके वश भूल जाय । इस अज्ञानका परिणाम यह होता है कि दुष्कृतकी राजसगामे जब वह पहुँचती है तो यह उस शय्यसे एकदम अनभिज्ञ रहती है जो उसके ऊपर प्रचानक गहरा जाता है ?

यह मेरी तीसरी समस्या है ।

कालिदासके अभिज्ञान-शकुन्तलके इतने वर्षोंके अध्ययनसे मेरे मनमे यह बात बलवी तरह बैठ गई है कि यदि अत्यवस्थित रूपसे सम्पादित किए हुए संस्करणोंके शकुन्तलको छोड़कर हमारे सामने यह वास्तविक शकुन्तल अपने उरी मौलिक रूपमे होता जैसा उसे कालिदासने रचा था, तो उपर्युक्त सभी समस्याधोके उत्तर तत्पक्ष ठीक-ठीक मिल जाते । किन्तु परिस्थिति ऐसी गहरी है । शकुन्तलकी समस्या उसी प्रकार हल की जानी चाहिए जिस प्रकार हलम्बद्ध महा-भारतकी समस्या हल की जा रही है । दोनों दशाधोमे पाठ-सुधारके आधारभूत सिद्धान्त एक ही हैं, गहनपूर्ण अन्तर केवल यह होया कि यो० भो० भार० इस्टीमेटके उस गृह्य धीर-काव्यके संस्करणके वर्तमान सुविचारित पाठकी रचना करते हुए, 'उच्च कोटिकी बालोचना' नामकी वस्तु तो नहीं-कहीं देखनेमे आती है पर कालिदासकी इस महान् कृतिमे इसे अधिक विस्तारपूर्वक कामने जाना होगा, क्योंकि नाटकमे यह समस्या अपेक्षाकृत कम जटिल है । स्थानकी कमीके कारण मैं सूचित किये हुए पाठसम्बन्धी सुधारोंका यहाँ वर्णन नहीं करूँगा किन्तु इतना ही कहकर सतोष करूँगा कि यदि सुभारे हुए पाठको कुछ मान लिया जाय तो हम लोग शकुन्तलाकी निसर्ग-सन्निभोके विषयमे बैसे ही निष्कर्ष निकालनेमे समर्थ हो सकते हैं जैसा कोई भी कालिदास-जैसी उच्च सत्त्व हिन्दूसे प्राणा कर सकता है जो प्रकृतिके सभी पदार्थोंको जीवन और चेतनतासे अनुप्राणित समझता था ।

सर आशुतोष मुखर्जी सिल्वर जुबिली ओरियन्टलियाके द्वितीय खण्डके १४६ से १५६ पृष्ठोंमे मीने एक लेखने अपना यह मत प्रदर्शित किया था कि अभिज्ञानशकुन्तलके प्रथम अङ्ककी दात-पौतका प्रथम वेपथ्यमे नायिकके इस कथन—

'इसो इसो विप्रसहीमो' । [ इधर आओ, इधर आओ, प्यारी सखियों ! ] से प्रारम्भ होकर बतगमोसनाके बाबलेसे औरिके निवालने तकका भाग—

तनवमाचिरात् प्राचीनकर्म प्रवृत्त न पावनं

सम विद्वाना न ॥ नरो गुण गणानियमि ॥

जो यद्यपि शकुन्तलाको बहुत श्राने और प्रयत्न करनेके अधिप्राप्तो ही कहा गया है फिर भी शोकधुलक कण्ठ-भीलके समान इतनी घट्टमे खल दिवा गया है । और यह जान-बूझकर किया हुआ कवि-कर्म है, जिसका मत हमारासे नज आता है कि इन नाटकमे केवल तीन ही स्तोत्र पैसे हैं जो इस अन्दरमे रखे गए हैं, और सचमुच वे अपने स्थानपर बड़े उपयुक्त आते हैं ।

‘धम्मो । सलिलसेयसभमादो सौमानिघ्न उज्जिम्भ वमण मे महम्मरो ग्रहिवट्टदि ।’ [भरे रे । जल पड़नेसे धवरानर उठा हुआ यह भीरा नई चमेलीको छोड़कर भरे ही मुँह पर मँडराने लगा है।] —प्राजवलके सस्करणोमे उल्टा हो गया है । नवीन बगाली सस्करणमे इस स्थल पर ३५ सम्भाव दिए गए हैं, काश्मीरी नव सस्करणमे २७ और कँपलर-द्वारा सपादित दक्षिण-भारतीय सस्करणके साथवाले नागरी सस्करणमे केवल २२ । इन सबानेमे धार्द हुई कथा तीन घटनाभोका वर्णन करती है—शकृतनाके कसे हुए वस्त्रोको धोना करना (वल्लभशिषितीकरण), केसर वृक्षके कल्प-नारमक सभेतपर शकृतनाका उत्तके पास जाना (केसरसमीप-गमन) ।

‘एसो वादेरिरपवणवाफुवीहिं पुवरेदि विघ्न म केसर-स्वसभो । जाव वा सम्भावेमि ।’ [यह केसरका वृक्ष पवनके भोजोसे हिलती हुई पत्तियोनी उँगलियोसे मानो मुझे भटपट बुला रहा है । वरूँ इसका भी मन रल लूँ ।]

— और शकृतनाके हाथो गवमातिवा सताका सीखा जाना (गवमातिकासेवन) । प्राप्त मुद्रित सस्करणोमे वल्लभ शिषितीकरणका प्रथम केसर-समीप-गमनके पहले है । केवल उस नवीन सस्करणमे, जो एकनाथ भोजपत्र पांडुलिपि (बीन्वे गवन्नेष्ट कसेवतल न० १६२) सन् १८५७ मे मिली (और जो अब बी० प्रो० प्रार० इस्टिट्यूटमे जमा कर बी गई है), केसर-समीप-गमन-वाली घटना पहले बी गई है । उसी पांडुलिपिसे हमे यह भी पता चलता है कि राजा इसी केसर-वृक्षके पीछे छिपे हुए थे । तो इस दशानेमे प्राश्न्य नहीं कि एक अपरिचित व्यक्तिको महष्टपूर्व उपस्थितिसे केसरका वृक्ष भ्रममे पड गया हो और शकृतनाको (जिसे सभी प्रागतुकोपर ध्यान रखनेका भार हीपा गया था) इच्छितसे भगनी और बुलाने लगा हो । यदि ऐसी बात न होती हो शकृतनाके यो ही चलती हुई वजार से केसरके पत्तोकें हिलने-थानसे यह क्यों सलभ लिया कि पेड उठे बुला रहा है ? पासनी एक पत्ती भी बिना किसी अभिप्रायके नहीं हिल सकती यही हिनू-कविके विश्वासका आधार था । दूसरे स्थलपर कालिदासने यह कहलाया भी है कि वृक्ष, प्रायः पक्षियोंके द्वारा (और हम इतना और जोड दें कि भोरके उठने और पत्तियोने हिलने-डोलनेके द्वारा) अपने विचार प्रकट किया करते हैं । उदाहरणार्थ—

अनुमत्तगमना शकृतना तर्धभिरय वनवासवधुभि ।

परभृताविरत वल मया प्रतिपत्तोडुतमेभिरात्मन ॥

—साकुबल, ४१०

केसर वृक्षके पास शकृतनाके जानेका वर्णन इन सस्करणोमे ‘तथा करोति’ के नाटकीय संकेत द्वारा किया गया है । केवल नौनपनवाली पांडुलिपिमे ही ‘राज्ञ सन्निकर्षं प्रागच्छति’ लिखा है । इनमे प्राग्नात् जब नायिकाको इसी वृक्षके पासवाली नखाने समान बताया जाता है—

जाव तुए उवगदाए सदासण्णहो विघ्न यम केसरस्वसभो पावभादि ।

[जब तू पेडसे सगलर लगी होगी है तब यह केसरका वृक्ष ऐसा लपटा है मानो उससे कोई सता लिपटी हुई हो ]

—उसनी व्यनना, वही पूरी उतरती है जब राजा उसी वृक्षके पीछे हो, और यदि वल्लभशिषितीकरण भी उसी समय हो जब नायिका, नायकके (जिसनी उपस्थितिसे सजीने पांडुलिपि नहीं है) इतन पास हो, सभी उद्यम यह गृहकारना भाव पाता है जिसे वमके वम कालिदास जैसे

कवि तो छोड़ ही नहीं सकते थे। अतः, इस नाटकीय संकेतमें कुछ ऐसी बात प्रवेश है जिससे सिद्ध होता है कि बाण्डुलिपिमें कर्मसे कम कुछ शन्दर्भ तो मौलिक पाठसे अवश्य मिल सकते हैं। केवल मूर्ख या पश्चिममन्य लोग ही उपर्युक्त नाटकीय संकेतको शेष संस्करणोंके नीरस 'तथा करोति' के रूपमें परिचित करनेकी बात सोचेंगे।

इसके पश्चात् रोचन-दृश्यमें जो संवाद आते हैं और विशेषतः शकुन्तलाके ये शब्द—

'हुला । रमणीए कबु वाले इनस्त लदावादनभिदुखस्त बइमरो सबुतो । खवकुमुमजोव्वणा पाणोसिणी, बढपल्लवदाए उवभोघनखमो सहमारो ।'

[राजो । तबमुच दस लता और वृक्षका मेल बड़ा मध्नी घड़ी हुआ है। इधर यह वनज्योत्सना फूलवर नयनोचना हुई है और उधर पत्तोंसे लदा हुआ आमका वृक्ष भी उभारपर भाया हुआ है।]

—शकुन्तलाकी भीखरी मनोउत्तियीकी पूर्ण रूपसे सूचना देते हैं। प्रियवदाका अनुमान ठीक सम्भवपर पड़ता है और नायिकाको भ्रममें डाल देता है। किन्तु क्या दूसरी निसर्ग-शक्तियाँ और विशेषकर जिस वनज्योत्सनाके विषयमें यातायात हो रहा था, वह इसी प्रकार नहीं ताड़ सकती थी ? अवश्य ताड़ सकती थी ? और लतामें घटे ही सुन्दर ढंगसे यह बात जताई भी। वह शकुन्तलाके पहले विवाहित हो चुकी थी इसलिये जब उसने छिपे हुए राजाको देव स्त्रियाँ और उसे शकुन्तलाके योग्य समझ लिया तब उसने अपनी छोटी बहन शकुन्तलाको उसके भावी पतिसे मिलानेका काम उसी प्रकार पूरा किया जैसे घड़ी बहन अपनी छोटी बहनके लिये किया करती है। अतः हम लोगोको यही मागना चाहिए कि नीरसी जनमानसका काम उब लताने ही किया। रात दिन प्रातःकाल शकुन्तलाने न जाने कितने घूसी और लताधोके सीधा जा, तो केवल वनज्योत्सनाके ही पाँवनेसे भ्रमरदो कर्म निकलना चाहिए था ? कुछ लोग उत्तर देंगे—'देवत संयोग' किन्तु जिस जगत्में एक शक्त्यर्थापिनी शक्तिका वाता माना जाता है वहाँ संयोगके लिये स्थान ही कहाँ है ? मैं अपनी प्रथम समस्याको इसी प्रकार हल करना चाहता हूँ।

दूसरी समस्याका सतीपञ्चन समझान करनेकी क्षमता रखना मानो कालिदासकी शकुन्तलाके स्वभावको समझनेकी अपनी शक्तिको खरी करीटीपर कसना है। पञ्चम पात्रके परित्याग-दृश्यमें जब शकुन्तला आश्चर्य चकित होकर देखती है कि मुद्रिका जनमानसमें खो गई है तो राजाकी मुष्क स्मृतिकी जगानेके लिये यह अन्तिम तीव्र प्रयत्नके रूपमें, दीर्घापागवासी घटनाका वर्णन करने अपनी बुद्धिमानीका परिचय देती है—

ए एङ्गदिभहे सोपानिभामण्डवे रुनिणीपत्तभाणणवद उदम तुह हल्ये गण्हिल भासि । तवजण सो मे पुत्तकिदभो दीहणज्जो शाण हरिणपोदमो उवद्धिदो । तुए—अथ शव पढम पिणउत्ति भणुमणिरा उवन्धन्दिदो उदण्ण । ए उण दे थपरिचमादो हल्यग्गास उवपदो । पच्छा तस्सि एव मए गहिदे सलिले शेख किदो पखमो । तदा तुम इत्थ पहंसिदो सि । सण्णो सण्णेषु विस्स-सदि । दुवे वि एत्थ मारण्णमा ति ।'

[एक दिन आप नवमासिकाके कुजमें अपने हाथमें पानीसे गरा कमलके पत्तेका दोना लिए हुए थे। इतनेमें ही यहाँ मेरा पुत्रके समान पाला हुआ दीर्घपाञ्च नामका मृगचौना भी आ पहुँचा। आपने उसपर दया करके कहा—पहले इसे जब भी लेने दो। यह कहकर आप उसे जल पिलाने



'वणञ्जोक्तिणि । चूदसगदावि पन्नालिङ्ग म इदोगदाहि साहावाहाहि ।'

(धारी वनज्योत्स्ना । तू अपने वृक्षसे लिपटी होनेपर भी अपनी इधर फैली हुई शाखकी बांहोंसे मुझसे भेद तो कर ले ।)

शौर अपने मन ही मन राजा दुष्यतके साथ अपने वैवाहिक जीवनका मुताबिक चित्र खींचती है । इसके पश्चात् उसका ध्यान उस हरिखीपर जाता है जो स्वयं शकुन्तलाके समान घोड़े दिनोंमें ही माता बननेवाली थी—

'तदा । एता उद्वजपञ्चनवारिणी गन्गामन्वरा मित्रवहू उदा अणुधम्पराया हीह तदा मे कपि पिप्रशिबेवइत्तम विमिजइस्सह ।' (तात् । आश्रममें चारों ओर गर्भके भारसे मजसानी हुई बत्तनेवाली इस हरिखीको जब सुलसे बधा हो जाय तब किसीके हाथ वह प्यारा समाचार मेरे पास भिजना दीजिएगा ।)

उसकी शैरके तिये वह पत्नी शौर रानीवाले अपने प्रारभिय चित्रको भूलकर अपनेको माताके रूपमें देखने लगती है और हम कल्पना कर सकते हैं कि उस समय शकुन्तला अपने मन ही मन यह सोच रही है कि मेरी माँ मेनकाने मेरे साथ कैसा व्यवहार किया था और मैं अपने भायी पुत्रके साथ कैसा व्यवहार करूँगी—ठीक इसी मन स्थितिमें अचानक उसका पालित पुत्र वीर्षापान्न उसके बदन कीचकर माने यह प्रकटा है कि मुझे छोड़कर क्या तुम अपनी माँ मेनकाकी अपेक्षा कुछ अच्छा व्यवहार कर रही हो ? मैं तो यह सोचता हूँ कि वीर्षापान्नको यहाँ इकलिये उपस्थित करमा गया है कि वह अपनी धर्म-माताको फिरसे विषाईके राग उर दुष्यतके सम्बन्धमें दूसरी चेतावनी दे दे जिसके विषयसंचालना पता मोली-भाली मनुष्योंको भी चल गया था—

'एव्य एाम विसरपरमुहस वि वणस्स ए ए ए विविध चथा तेख रण्णा सचन्दत्ताए अण्णज प्राप्रिद ।' (यद्यपि मैं प्रेमकी बातें कुछ भी नहीं जानती फिर भी इतना तो अवश्य कह सकती हूँ कि उस राजाने शकुन्तलाके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया ।)

यदि शकुन्तलाका मन चलनाके मधुर स्वप्नोंमें भग्न न होता तो संभवतः वह अपने निसर्ग-साथियों द्वारा दी हुई इन चेतावनियोंको अवश्य समझ जाती । यही मेरी दूसरी समस्याका समाधान है । यदि हम जिज्ञासु भावसे कान्तिदासके इस प्रमुख प्रश्नको पढ़नेका धम्याए डालें तो हमें रौगायबरा, इधर-उधरकी छोटी-मोटी बातोंको छोड़कर विभिन्न पाठोंकी समस्या इस परिणामतक पहुँचनेमें बाधा नहीं आती ।

सन् १९२३ ई० में एशिया मेजरके द्वितीय सम्मले ८४ से ८७ पृष्ठमें मैंने अपनी तीसरी समस्यापर एक लेखमें पूर्ण विस्तारसे विचार किया है । इसका सम्बन्ध पशुर्व भ्रमकी शकशाकवाली घटनासे है । इस घटनासे संबंध रखनेवाले तीन प्राकृत सवाद हैं जिनमें पहलेको छोड़कर दूसरा और तीसरा सवाद देवनागरी संस्करणमें मिलता है, बंगाली संस्करणमें पीछेके दो सवादोंको छोड़कर केवल पहला सवाद मिलता है, कश्मीरी पांडुलिपिमें तीनों सवाद मिलते हैं और वही सच्यो रामोक्षाकी कसोटीपर ठीक उतरता भी है । ठीक क्रमसे ये सवाद इस प्रकार हैं—

१ भगनूया—सहि । स सो असग्रपदे मस्थि नितवन्तो जो तए विरहिन्तो भज ए ऊमुधो वदो । पैवस ।

पुठइहि वतन्तरिअ वाहरिओ शास्युवाहरेदि पिय ।

मुहउव्वदमुणालो चइ दिट्ठि देद षड्दामो ॥

[सवि ! न म धाश्रमपदेऽस्ति चित्तवान् यस्त्वया विरह्यामानोऽथ नोत्सुव कृतः । प्रसन्न ।

पचिनीपवान्तरिता व्याहृतो नानुव्याहृति प्रियाम् ।

गुणोद्बूढमृष्टान्तस्त्वयि हृष्टि यदाति भववाक्य ॥]

(सगी । यही आश्रममें कीन ऐसा प्राणी है जो तुम्हारे विद्योहसे दुखी नहीं है । देखो ।—  
कमलिनीने पत्ते की घोटमे बैठा हुआ चकवा अपनी प्यारीके कुलानेपर भी उसका उत्तर नहीं दे  
रहा है और चौधमे कमलपी ठठल पकड़े हुए तुम्हारी ही ओर टकटकी लगाए देस रहा है । )

१ गनुन्तला—हवा । देख ।

रात्रिसौवत्तन्त्रिज एसा यिज सहभर धपेनलन्ती ।

भारदह पङ्कवाई बुकुरमहम करेमि ति ॥

(सगी ! देख तो । कमलिनीने पत्तानी घोटमे छिपे हुए अपने ककड़ेको न देख सकनेसे यह  
ककड़ी घबरारर किल्ला रही है । इसलिये मैं जिस कामसे जा रही हूँ वह पूरा होता नहीं दिखाई  
देता । )

२ प्रियवदा—बहि ! मा एव मन्तेहि ।

एसवि पिण्ण विखा गनेह र्भाणि विसादवीहभर ।

गम्भ पि विरहदुगम प्रासावग्यो सहावेदि ॥

(गरि ! एसा नहीं सोचना चाहिए । जानती हो ? यह ककड़ी विरहकी लम्बी रातों अपने  
प्यारे बिना अपने ही काट देती है क्योंकि मिलनेकी घास बहेसे बटे विरहके दुःखमे भी ठारस  
बैधानी रहती है । )

यहाँपर यह पूरी घटना गनुन्तलाको यह समझानेके लिये खाई गई है कि भागे-तुम्हारे भाग्यमे  
क्या दशा है । ककड़ी पृथ्वरी है विन्तु पञ्चवान उत्तर नहीं देता, क्योंकि उत्तर न देनेके कारणोंपर  
उगता बोई बन नहीं है, उमगा हृदय गनुन्तलाके वियोगसे भरा हुआ है । इसी प्रकार लीला ही  
गनुन्तला भी पृथ्वरीके ओर दुःखमे भी उगता उत्तर नहीं देता । अनभूया अपनी लकीको साहबना  
देती है और यह विस्वासेन साथ सान्त्वना दे भी सकती थी क्योंकि उसने हापमे सापना भक्त  
करीमकी घँगूटी को भी है । इसीलिये टीक इस घटनासे घल्ले एकादमे ने सजिमां गनुन्तलाको  
घँगूटीका स्मरण करा देती है । दूसरी दृष्टिसे हम यह कहने हैं कि ककड़े अपने जिस शोषको  
प्रत्यर्तनी होने दिया जमीनो पकटावने एक प्रकारसे देवी परिजानगे समझकर गनुन्तलाको भावी  
विर्गिणी ओर दुःखी भेजावनी दे दी ।

उपसुंता मीमासामे यह मनो र्भाणि स्पष्ट हो गया कि कानिदासने गनुन्तलाकी उस सच्ची  
निर्गम-क्याके भाग्य विचिन किया है किसे प्रकृतिके उन पदावोंने साथ चान्त पदिष्ट व्यवहार  
को सम्भव गगोरा अधिकार भिना या जिनके बीचमें वह परो थी । जस्तक हम पविने  
“प्रकृति-भाग्य” को नहीं समझ लेते तबतक कानिदासकी गनुन्तलाके भीतरी महत्वको हम ठीक-  
ठीक समझ नहीं सकते । विवेक, पाठनपर तथा वैदिकसे प्रति पादर प्रदमित करने हुए भी मैं यह  
कहता हूँ कि तबतक हम तबकी ओर गोपोंका पर्वान्ध्यान न बानेका यही कारण है कि अभी  
तक हम नाटक की सामाजिक घानोचना-गुणो भन्तरण तैयार नहीं हो सके हैं ।

## योगवासिष्ठमें मेघदूत

[प्रो० डा० श्रीरत्नलाल श्यामेष, एम० ए०, डी० लिट्० भूतपूर्व अध्यक्ष दर्शन तथा मनोविज्ञान,  
राजी हिन्दू विश्वविद्यालय]

योगवासिष्ठ महाराजस्य निर्वाण-प्रकरणे उक्तसदृके ११६ वें सर्गमें मेघदूतका निर्गमोद्घुत-  
मण्डलं प्राता है—

वसपारयेप पथिकं यस्य मन्दरमुत्तमैः । प्रियायादिचरत्तम्याया वृत्ता विरह्यवयाम् ॥१॥

एकप पूर्णं विं वृत्तमाप्तवर्षमिदमुत्तमम् । दातु त्वाश्रिते व्रतमहं चिन्ताम्वितोऽयमम् ॥२॥

अस्मिन्महाप्रलयकालसमने विद्योये यो मा तवेह मम याति गृहं स न स्वात् ।

नैवास्त्यती अगतिं य परदुःखान्तर्यं प्रीत्या निरन्तरं चरत्त मत्त ॥३॥

या एष म्निपरे मेव स्मरन्त इव सनुत ।

विद्युत्तता पिप्तासिन्या वलितो रथिक स्थित ॥४॥

भ्रातर्मैय महेंद्र पापमुचित भ्यालम्ब्य कण्ठे मुणु नीर्षर्गजं मुहूर्तकं कुच दया सा वात्पपूर्णेक्षण ।

याना वात्पमृणाल कोमलतनुस्तन्वी न सोढुं सता सा यदा मुगते मयज्जलतवीराश्यासमारामानिलं ॥५॥

चित्तभूलिकया श्योमिनि मिलित्वाऽर्पितकिङ्किता सती ।

न जाने क्वापुर्नयेत पथोद दयिता गता ॥६॥

[—देखाएँ ! यह पथिक मन्दर पर्वतके गुह्यमें चिरवाजते विद्युत्क पत्नीको पाकर उगते अपने

पूर्वशालके विरहकी कथा इस प्रकार कहता है—इस मेरे एक दिने उतम तथा आर्यवर्जनप

वृत्तातको मुनो । एक दिन तुम्हारे निकट अपना वृत्तात्म भेजनेके लिये दूतकी चिन्ता करते हुए

मैंने यह कहा कि इस महाप्रलय कालके समान विद्योयके दुःखमें ऐसा वीर दूत है जो मेरे इस वृत्ता-

त्मको मेरे पर जाकर मेरी प्रियाके कण्ठ, क्योंकि इस सखारमें ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो प्रीतिके

दूतके दुःखकी चिन्तनके लिये सरल भावसे प्रयत्न करे । इतनेमें मुझे स्मरण हो आया कि इस पर्वतके

शिखरपर दूतके दुःखकी चिन्ता देनेवाला रथिक मेघ अपनी विनासनी विद्युत् स्त्री प्रियासे गद्युक्त

स्थित है । इसलिये उससे मैंने कहा कि हे इन्द्रपुत्र स्त्री सुन्दर माना अपने गतेमें पहले हुए

मार्द मेघ ! मेरी जिस पत्नीकी प्राप्तिमें जब मद्य हुआ है, उसके पास जाकर धीरे परजना

क्योंकि वह कमलकी मानके समान कोमल शरीरवाली कमल बाला है धीरे तुम्हारा बठोर या

ऊँचा गर्जन सुननेमें अत्यन्त है । उसे अपने जलरगुणसे मुक्त मन्द मन्द पदमके भौंभौंते जगाना ।

मैंने अपनी प्रियाकी हृदयभाषामें चित्तस्त्री सपनीसे लिखकर जो आदिद्वन्द्व किया तो न जाने हे

मेघ ! यह तरंगण कहाँ चली गई ।]

श्रीयोगवासिष्ठ महाराजस्येण एव श्रोतेने "मेघदूत" के वर्णनको यदि हम महानवि वालि-

दासके प्रसिद्ध काव्य "मेघदूत" से तुलना करके अभ्यस्य करे तो जान पड़ता है कि दोनोंमें वर्णनमें

बहुत ही समानता धीरे एवता है । पाठकोंके सामने यहीपर हम कवि कवितारागने मेघदूतकी उन

परीक्षो धीरे बारकोको उद्घुष्ट करने हैं जिनमें यह समानता विशेष रूपसे पाई जाती है ।

योगवासिष्ठ—

'प्रियायादिचरत्तम्याया वृत्ता विरह मनयाम्' ६२०।११८

मेघदूतम्—

“कान्ता विरहगुण्या” १११

योगवासिष्ठ—

“दातु त्वन्निकटे दूतमह चिन्तान्वितोऽब्रवत्” ६३० ११११२

मेघदूतम्—

“धीभूतेन स्वकुशलमयी हारयिष्यन्प्रवृत्तिम्” ११४

योगवासिष्ठ—

“अस्मिन्महाप्रलयकालसमे विद्योगे यो मा तयेह मय याति गृह स क स्यात् ।

नैयास्त्यसो जयति य परदुःखधान्यं प्रीत्या निरन्तरतर सरल यतेत् ॥” ६३०।१११२ २३

मेघदूतम्—

“सतताना त्वमसि शरण्य तत्पयोद प्रियाया सदेव मे हर” । ११७

योगवासिष्ठ—

“या एष दिग्गरे मेघ स्वरपव इव सयुत” । ६३०।१११६।४

मेघदूतम्—

“ मेघवासिष्ठसाम् ।

वप्रकीटा-परिणत-गज-श्रेणोष वदस्य ॥ ११२

योगवासिष्ठ—

“विद्युत्सता बिलासिन्या बनिधौ उरिष्य स्थित”

मेघदूतम्—

‘विद्युद्भवं २१४०

“मा भूतेन सख्यमपि य ते विद्युता विप्रयोग” २१५५

योगवासिष्ठ—

“भ्रातर्मेघ भहेन्द्रबाणमुचित व्यासम्य कष्टे गुण

भीर्त्वं गंजं गुरुर्त्तं क वुह दया सा बाष्पपूर्वक्षणा ।

बाला बालमृणालकोमलतनुस्तन्वी न सोढु सया

ता गत्वा मुपति गलञ्जलतलवैरादवाप्तपात्मानिवि ॥” ६३०।१११५

मेघदूतम्—

“तामुत्पाप्य स्वञ्जलकणिका-उत्तलेनानिलेन

प्रत्यादवस्ता सममभिनवैर्जलकैर्मासितोनाम् ।

विद्युद्भवं स्तिमितनयना स्वत्सनाये गवाक्षे

बन्तु धीर स्तनितवचनैर्मानिनी प्रकमेवा” ॥२।४० ॥

योगवासिष्ठ—

“चित्तपूजिकया व्योम्नि सितित्वाऽऽनिङ्गिता सती ।

न जागे क्रीयुर्वैत पयोद दयिता गता” ॥ ६३०।१११६।५

मेघदूतम्—

“स्वामालिन्ध प्रणयकुपिता घातुरागं शिलाया-

मात्मान ते चरण गतिता यावदिन्द्रायि वर्तुम् ।

असं स्थावन्मुहुष्मचित्तैर्हृष्टिरानुप्यते मे

ऋस्तस्मिन्नपि न सह्ये सगम नो वृथान्त ॥ २१७ ॥

योगवासिष्ठ महारामायणके निर्वाण प्रकरणके उत्तरार्द्धके ११६ वें सर्गके ३२ वे श्लोककी

इन—

“अस्या प्रागभवत्पति स मुनिना शपेन वृक्षी कृतो ।

वर्षद्वादशक खदेव गणयन्त्येपञ्च साञ्च स्थिता ॥”

की पत्नियोकी तुलना भी मेघदूतकी इन पत्नियोसे कीजिए —

कश्चित्कान्ता विरहं पुरुषास्त्वाधिकारात्प्रपन्न ।

शपेनास्तर्थात्तमहिमा खर्वभोग्येष भर्तुं ॥ १११ ॥

मेघदूतमे ही नहीं, महाकवि कालिदासके अन्य काव्य कुमारसम्बद्धम भी कुछ पत्नियाँ ऐसी हैं जोकि योगवासिष्ठ महारामायणमे पाई जाती हैं ।

अब्राह्मणार्थ देखिए—

योगवासिष्ठ—

अथ तामतिमात्रविह्वला स कृपाञ्जलाश्रमवा सरस्वती ।

अफरी हृदयोप विह्वला प्रथमा वृष्टिरिवान्वकम्पत ॥

कुमारसम्बद्ध—

इति वैह विमुक्तये स्थिता रतिमाकाशमवा सरस्वती ।

अफरी हृदयोपविह्वला प्रथमा वृष्टिरिवान्वकम्पत ॥ ४१३१ ॥

इन दोनों श्लोकोंमे ये शब्द—‘आकाशमवा सरस्वती । अफरी हृदयोपविह्वला प्रथमा वृष्टिरिवान्वकम्पत ॥’ पुरातन एक ही हैं । अतएव यह कहना ठीक नहीं है कि ऊपर दिखाई हुई समताएँ आकस्मिक हैं । अवश्य ही योगवासिष्ठकार और कालिदास दोनोंमे से किसी एकमे दूसरेके भाष्यी और विचारोक्त प्रयोग किया है । विद्वानोंके अभी तक य तो महाकवि कालिदासका ही और न योगवासिष्ठ रामायणका ही समय पूरे ढंगसे निरूपित कर पाया है । अतएव यह कहना कठिन है कि दोनोंमे से किसको मौलिक कहा जाय । ऐतिहासिक-प्रमाणकी यदि माना जाय तो योगवासिष्ठ महारामायण आदिकवि श्रीवाल्मीकिजीकी कृति है और मेघदूत और कुमारसम्बद्धके लेखक महाकवि कालिदास आदि विद्वान् सत्पादके (५७ ई० पू०) मवरत्नोमे से एक थे जो सबसे केवल दो सहस्र पूर्व भारतपर शासन करते थे । कवि वाल्मीकि अवश्य ही कवि कालिदासके पूर्ववर्ती माने जाने चाहिएँ । किन्तु भाष्यकारके विद्वानोंके मतमे शम्भुका योगवासिष्ठ—जैसा कि वह भाष्यकार भिन्नता है—इतना पुराना ग्रन्थ नहीं है जितना वह बताया जाता है । उसमे बहुत सा भाग बहुत पीछेका है और अवश्य ही कालिदासके समयके पीछे का है । निर्वाण प्रकरणका उत्तरार्द्ध पीछे का जान ही पड़ता है । जिसमे “मेघदूत” की कल्पना की गई है । अतएव यह सभव है कि योगवासिष्ठकारके ऊपर कालिदासके विचारो और प्रयोगोकी कुछ छाप पड़ गई हो । कुछ भी हो, विद्वानोंके सिध यह बात विचारणीय है । आशा है कि पुरातत्वके कोई विद्वान् इस सगस्याकी और ध्यान देकर इसको मुलमानेका यत्न करेंगे ।

# मेघदूतकी महत्ता

[ भानार्थ सीताराम चतुर्वेदी ]

जिसी प्राचीन जीवन रसिक, सहृदय पुरुषने अपने जीवनकी उत्कट अभिलाषामोका वर्णन करते हुए बड़ी तन्मयतासे साथ कहा है—

कानिदास-कविता नव वय माहिन दधि मशकरं वय ।

एसमासमयता सुकोमला समवन्तु मम जन्म-अन्वभि ॥

(मुझे इस मयपरकमे चाहे जितनी बार जन्म लेना पड़े तब भी मुझे स्वीकार है यदि प्रत्येक जन्ममे मुझे कालिदासकी कविता, नई चटती हुई जपानी, नैसका जमा वही, शक्कर पडा हुआ दूध, हरिणका मांस और कोमल नवेली प्राण्य होती रहे ।) पारसीके प्रसिद्ध कवि उमर खैय्यामने भी कुछ इसी प्रकारकी इच्छा प्रकट की है कि मेरे पाठ साकी हो, वृषकी छाया हो, मदिरासे भरी हुई सुराही और प्याला हो और हाथमे पुस्तक हो । किन्तु उमर खैय्यामने उस पुस्तकका नाम स्पष्ट नहीं बताया है । किन्तु मुझे विश्वास है कि यदि उमर खैय्यामने कालिदासकी कविताका अनुवाद पडा या सुना होगा तो निश्चय ही उसने मेघदूतकी घोषी ही चाही होगी । जिस भारतीय रसिकने अपनी सपूर्ण जीवनकी अभिलाषामोके सर्वप्रथम रचान कालिदासकी कविताकी दिया है उसने निश्चय ही रघुवरा और कुमार-नभब नहीं, अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मासविक्रान्त-मित्र भी गही, ऋतुसंहार भी नहीं, केवल मेघदूत ही यौया होगा क्योंकि कविता तो मेघदूत ही है और तो महावाक्य हैं या नाटक हैं या स्फुट मुक्तक हैं ।

विश्वनाथ कविराजने अपने साहित्य-सर्पणमे 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' कहकर काव्यकी ओ परिभाषा बताई है और पंडितराज जगन्नाथने अपने रस-नगाधरमे जिस काव्यको 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द' कहकर स्मरण किया है वह निश्चय ही कोई अलौकिक चमत्कार और रससे पूर्ण कृति ही हो सकता है जिसके सम्बन्धमे कहा गया है—

संशोनाद, कवित्तरस, सरस राग, रतिरस ।

मनबूडे बूडे, तरे, जे बूडे सब धय ॥

[संशोनाद, कविताका रस, मनोहर राग और नामश्रीदामे जो नहीं हूय वे ही हूय गए, उनका नाम निरर्पण हुआ और जो उनमे भरपूर हूय गए, रम गए उनकीका जीवन सार्थक है ।]

मयीं हारय, अद्भुत, नरख, वीर, रौद्र, भयानक, बोमरस और दाम्ब भी रस बहुलाते और माने जाते हैं किन्तु शृङ्गार तो रसराज है एव मात्र रस है । 'शृङ्गारं रसः' । इय शृङ्गारते धीतप्रोत परि कालिदासका कोई काव्य है तो वह एतमान मेघदूत है । वाक्यशास्त्र-मर्मज्ञ मनीमोति जानते हैं कि शृङ्गारने दो पत्र होते हैं—सयोज और वियोग । केवल सयोज शृङ्गारने हमारे यहाँ मधुरा और बचना माना गया है—

न विना विषयोपन सयोज भुष्टिमस्तुते ।

वपापिते हि वचनादो भूयावु रागो विवर्धते ॥

[ विप्रलम्भके बिना सयोग शृङ्गार गुण्ट ही नहीं होता क्योंकि वस्त्र धादिकी जितने कर्तले परदारमें दुबो लिया जाता है उतना ही अञ्छा उसपर राम चढता है ] इसी का समर्थन करते हुए एक उर्वके कविने कहा है—

जो मन्दा इन्तजारमे देखा,  
यह नहीं नस्लेयारमे देखा ।

[ प्रियवी प्रतीक्षामे जो आनन्द है वह उससे मिलनेमे नहीं है । ] सस्कृतके एक कविने किसी विरहीसे कहलाया है ।

सगम-विरह-विकल्पे यरमिह विरहो न सपमस्तस्या ।  
अपिरह काने सैका त्रिभुवनमपि तन्मय विरहे ॥

[ सगम और विरहमेसे यदि मुझे कोई एक चुनना हो तो सगमकी प्रेम्णा में विरहको ही अञ्छा समझता हूँ क्योंकि सगमके समय तो यह केवल एक ही होती है किन्तु विरहमे तो यह सपूर्ण त्रिभुवन ही प्रियामय प्रतीत होने लगता है । ] उसकी अवस्था यह हो जाती है—'जिपर देखता हूँ उभर दू ही दू है ।' प्रियानी इस महत्ताका वर्णन करते हुए उर्वके एक कविने तो पराकाष्ठा दिखला दी है—

मादुलके जलपैनी महारमे कोई देते ।  
अल्लाह भी मजदूको सैना नदर आता है ॥

[ प्रियका प्रभाव देखना हो तो प्रलयके अन्तमे न्यायके दिन देते । सब भी प्रेमीकी मिष्ठा इतनी प्रबल होती है कि मजदूवो ईश्वर भी सैना ही प्रतीत होता है । ऐसा ही अंधीर अन्तय और अज्ञात प्रेमी यह यक्ष था जिसका नाम भी कालिदासने नहीं लिया है, केवल कश्चित् (कोई) कहकर उसका सकेत भर दे दिया है क्योंकि हमारे यहाँ नीति शास्त्रमे कहा गया है—

शुद्धेपी कृतान्दध कृपणो क्षप्तहिरकरी ।  
निन्दक्रीभत्य-विक्रंता न ह्येताव नामत. स्परेत् ॥

[ गुधे डेप करनेवाले, कृतघ्न, आग्रस्त, हिंसक, कृपण, दूसरोंकी मिष्ठा करनेवाले और सन्तान-विक्रंता इनका सभो नाम नहीं लेना चाहिए । ] मेघदूतका यक्षभी 'शापेनास्तगमित-महिमा' (शापके कारण समाप्त हो गई हुई महिमावाला) था, जो 'अन्यतिल्लोपविरलेपित' (कुवेरके क्रोधके कारण एक बर्षने लिए अपनी प्रियासे विमुक्त होकर रामगिरि पर पड़ा हुआ था, जिसका वर्णन कालिदासने अत्यन्त कल्पनाके साथ किया है ।

कश्चिदकान्ता विरहगुण्णा स्वाधिकारात्प्रभत ।  
शापेनास्तगमितमहिमा वर्षभोग्येषु मर्तु ॥  
यदावपल्ले पनकतनया-स्नानपुष्पोत्प्रेषु ।  
दिग्धञ्चावातभ्यु वसति रामगिरिश्रमेषु ॥

[ पू० मेघ० १ ]

[ अपनी कान्तामे अतिशय अनुरक्त कोई यक्ष अपना कर्तव्य-हीन प्रकार पालन नहीं कर पाता था । (वार्तिक दुस्त की देवोत्पान्या एकवधीके दिन) इसने अपने स्वामी कुवेरके नयने

ऐसी डिलाई कर दी कि उसे कुबेरने शाप दे डाला कि जिस कान्ताके मोहमे पटकत तू अपने कर्तव्यमें प्रमाद करता है उससे तू एक वर्षतक दूर पड़ा रह ।] यह घटना देवीत्याग्या एकादशीको ही हुई थी । इसका प्रगाण स्वयं मेघदूतके अन्तमें दिया गया है—

शापान्तो मे भुजबभ्रयनादुल्लिते घाहृगंपाणौ ।

मासानन्यान् वषम चतुरो चोचने मीलयित्वा ॥

[उ० मेघ० ५।३]

[देतो । काली देवउठनी एकादशीको जब विष्णु मगवान् सेपसप्यासे उठेगे उसी दिन मेरा शाप भी समाप्त हो जायगा । इसलिये इन चार महीनोको भी किसी प्रकार मौलें मूँदकर बिता डालो ।]

और वह शाप भोगनेके लिए गलफासे चलकर कैलास, मागसरोवर, कौचरभ्र, कनकल, ब्रह्मावर्त, कुण्डदेरा, ब्रह्मपुर, उज्जयिनी, दसाह्य, अयन्ती, वेत्रवती, चर्मण्वती, प्राञ्जकूट, रेवा, नीच पर्वत और गालदेश होता हुआ कामरुगिरि चित्रकूट (रामगिरि) पहुँचा और वही रह गया—

तस्मिन्मद्रीकठिचिववलाचिप्रपुक्त स कामी ।

नीत्वा मातान् वनकवलयभ्रसरिक्वप्रबोष्ठ ॥

[उस पर्वत पर अपनी पत्नीसे विजुडे हुये उस कामीने कुछ महीने काट दिए जिसके हाथका सोनेका कंगन विरहने डीले होनेके कारण निकल गया ।]

यहाँ पुन कामी कूहकर पत्नीसे उसकी श्रासक्ति और भी दृढ करके स्पष्ट कर दी है । गोस्वामी तुलसीदासजीने भी परम निष्ठाके लिये कामीको ही भावसं माना है और रामसे अपनी निष्ठाका स्वल्प स्पष्ट करनेके लिए उग्हंनि यही कहा है—

कामिहि मारि पियारी जिति, लोभिहि जिति प्रिय राम ।

श्री रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागइ मोहि राम ॥

[देहे कामीको स्त्री प्यारी होती है, लोभीको पैसा प्यारा होता है, उसी प्रकार श्रीराम भी मुझे प्यारे लगे ।]

इसीलिये बालिदासने भी उसे 'कामी' से विशेषण-विनिष्ट करके उदकी एवान्त भावकित्तो स्पष्टकर दिया है । और इसी कामिताके कारण ही अपनी सुख-बुध भूले हुए पसने मेघको ही अपना दूत बना डाला ।

इस विरही पसने अपने विरहके दिन काटनेके लिये रवाना भी चुना रामगिरि । बहुसते विद्वानोका मत है कि यह रामगिरि वास्तवमें चित्रकूट नहीं बरन् नागपुरके पालकी 'रामटेक' पहाडी या रीवा राज्यकी 'रामगढ़' पहाडी है किन्तु यह उनका भ्रम है । उसका कारण यह है कि 'जनकनया-म्यानपुण्योदकेपु' और 'तिग्मन्दागा-सरपु' वाले प्राश्न चित्रकूट पर ही हैं, रामटेक पर नहीं । सुन्दर ताव, मन्दाकिनीका प्रवाह, पहाडी धाराएँ, पने वृक्ष, हरियाली कुजें और श्रुपियोंके प्राथम चित्रकूट पर ही हैं, रामटेक पर नहीं, क्योंकि रामटेक तो सुखी पहाडी है यहाँ नभी-नभी जसके भी दर्जन नहीं होने हैं । ऐसी सुखी पहाडीपर यज्ञ नथो रहने जायगा । इस मन्वन्वमें उद्दिभना यह सोहा भी विचारणीय है—



चित्रकूट नै रमि रहै, रहिभन भवध-नरेश ।

चापर विपदा परत है, वो भावत इहि देख ॥

[अथयके नरेश (रहीम) चापर चित्रकूटपर बस गए क्योंकि जिसपर विपत्ति पडती है वह यही आता है ।]

इस दोहेमें जहाँ अथय-नरेश (अथयने नवाव) शब्दुरहीम शानस्थानाने अपने भापत्कायके निवासकी सूचना दी है वही विपद्ग्रस्त अथय-नरेश राम और मेघदूतके विमुक्त पक्षकी ध्वनि भी समाविष्टकी है ।

इतिहास भी इसीका साक्षी है । वाल्मीकीय रामायणके अनुसार प्रयोध्यामे चलकर राम चित्रकूटमें रहे और फिर भरतको अपनी पादुका देने-नेके पश्चात् वे ऋषियोंके साथ अश्विके आश्रममें पहुँचे । यहाँसे दशवारध्वमे प्रविष्ट होकर विराटका वध करते हुए शरभय ऋषिके आश्रममें पहुँचे । यहाँसे चलकर सुतीरगणे आश्रममें एव रात्रि निवास करते फिर अर्धभृत मुनिसे पाद रहकर, माडपण्डि-द्वारा निर्मित पचाप्तर नामक (पचासठ) सरोवरका प्रभाव सुनकर ऋषियोंके आश्रममें रहते हुए फिर सुतीरगणके आश्रममें लौटे और वहाँसे अगस्त्यजीके आश्रममें पहुँचे । फिर अगस्त्य मुनिजी आज्ञासे वे गोदावरी के तीरपर पंचवटीमें रहने लगे । इस प्रसंगमें वही भी रामदेव या किसी अन्य ऐसे स्थानका विवरण ही नहीं आया जहाँ सीताजीने स्नान किया हो और जिसकी भेङ्गलाभर रामके चरण धरित हो । ऊपर किन ऋषियोंका वर्णन है उगमसे किसीका आश्रम भी रामदेवकी ओर नहीं था ।

यदि अतः साक्ष्यी दृष्टिसे विचार किया जाय तो स्पष्ट कालिदास ही इस सम्बन्धमें सबसे बड़े प्रमाण हैं । उन्होंने स्वयं प्रथममें लिखा है—

चित्रकूटवनस्थ च कश्चित्स्वर्गतिर्गुरो । [रघु० १२।१५]

रामस्त्वासन्न्देसत्याद्भरतायमन पुन ।

आशकयोत्सुकसारगा चित्रकूटस्थसी पत्नी ॥ [रघु० १२।२४]

इसमें भी चित्रकूटमें ही रहनेकी बात आई है [चित्रकूटमें ही उन्होंने अपने पिताके स्वर्गवासका समाचार सुना और चित्रकूटका परिव्याग भी उन्होंने इसलिए किया कि वह प्रदेश प्रयोध्याके पास था । उन्हें आज्ञावा भी कि भरत फिर न वही आ जायें] वे चित्रकूट छोड़कर जब किए और फिर अनेक ऋषियुक्तोंमें होते हुए, अत्रि मुनिका दर्शन करते हुए विराटका वध करते हुए अगस्त्यजीकी आज्ञाके अनुसार गोदावरीके तीरपर पंचवटीमें रहने लगे । अतः वाल्मीकि और कालिदास दोनोंने रामके निवासके लिये दो ही स्थान माने हैं और वे हैं चित्रकूट और पंचवटी । दूसरा प्रमाण यह है कि कुटज (इन्द्रजय) का फूल केवल विन्ध्य-मेखला में ही होता है रामदेवपर उसका नाम तक नहीं है । अतः यशना प्रवास स्थान निश्चय ही चित्रकूट है । यह भी विचित्र बात है कि कालिदासने 'रामगिरिप्रभेषु' और 'ब्रूया एव तव सहचरो रामगिरिप्रभमस्थ' दोनों स्थानोंपर 'रामगिरिका' ही नाम दिया है, चित्रकूटका नहीं और उसका कारण यही है कि अभिज्ञत यज्ञके निवासके कारण महाकवि चित्रकूटकी सर्पादाकी रक्षाके लिये उसका नाम उसके सम्बन्धमें लेकर उसे रामगिरि कहते हैं । अतः-ताया-स्नान पुण्योदयेषु और 'वन्दे पुष्करपुत्रविमदेरभित मेखलासु' कहकर भी चित्रकूटका ही परिचय दिया गया है क्योंकि राम

जब लफाये घोट रहे हैं तब भी उन्होंने अत्यन्त भावुक होकर चित्रकूटका ही वर्णन करते हुए कहा है—

पारस्वनोदगारिदरीमुतोद्यो श्रुयाप्रसन्नाम्बुदवप्रपक ।  
व्यनाति मे वन्दुरगात्रिचक्षुहृत्तवन्दुमानिव चित्रकूट ॥

[रघु० १३।४७]

[हे गुन्दरी ! भरत साँठके समान यह पित्रकूट मुझे बड़ा सुहावना लग रहा है। गुफा ही इसका मुस है, जलको पारा की ध्वनि ही डकार है, छोटी ही सीमें हैं और छाए हुए बादल ही सींगोंपर लगा हुआ बीच है।]

अब इसे मिलाए—‘अप्रबोधपरिप्लवणजप्रेक्षणीय ददर्श ।’ अन्तर इतना ही है कि भेषकृतमे हाथी की वस्त्र शोभाका वर्णन है और रघुवचने कील-कीलवाले साड का। अतः, निश्चय ही वह यथा चित्रकूट पर ही या रामटेकपर नहीं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि चित्रकूटके प्राप्त-भास गायामि रहने बाने प्राजभी उसे रागमिरि कहते हैं, चित्रकूट नहीं।

उस चित्रकूटपर उताने भाठ महीनें कितनाए। उस दशमे वह सुलकर काँटा हो गया और इतना दुबला हो गया कि सोनेका बड़ा चमके हाथसे निकल गया। मिरहमे कूटताका वर्णन निश्चयके सभी साहित्यमे किया गया है। और इस कृशताकी स्पष्टता करनेके लिये अतिशयोक्ति या मुवालाफा प्रयोग किया गया है। सीताजीकी विरह-वधाका वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजीने भी सीताजीसे कहासाया है—

अब जीवन कं है वपि प्राप्त न कोइ ।

वनगुरिया के मुंदरी कगन होइ ॥ [भर०-रामा०]

[हे हनुमान ! अब जीवन की कोई प्राप्ति नहीं है, क्योंकि विरहजन्य दुर्बलताके कारण अनिश्चिता टंगलीकी झँपूठीको अब कगन बन गई है।]

अब प्रपंचे एक वक्रिने तो प्रति ही कर दी है और कहा है—

वामनु उद्दामन्ति भए, पितु दिदुव सहस्रात् ।

अदा बनया मरिहि गय, अदा वृष्टि तदति ॥

[ अपने प्रियके शापमनेके अनुके लिये कोई विरहिणी कौशा उठा रही थी। उस उठाने मे हाथ फटकने हुए दुर्बलताके कारणे प्राची हाथकी चूटियाँ हाथसे निरसकर बाहर गिर गईं। इनमेम महता विदेग गया हुआ पति सीटा हुआ दिनाई पड गया। वह नागिका हंपसे पूली नहीं मनायी और सह्या इगरी मोठी हो गई कि हाथ मे बधी हुई प्राची चूटियाँ मोटाईके कारणे लपकने पड गईं। ]

उर्दुं एव वक्रिने तो विरही कृशताके वर्णनमे सीमा पार करती है। एक विरही अपनी विरह-वधाका वर्णन करते हुए निमीसे कह रहा है—

इन्द्राए साधरीमे अब नखर प्राया न में ।

हंगने यो बहने लगे बिस्तरको ग्राहा चाहिए ॥

[ इन्द्राजी पराकाष्ठाके कारणे अब मैं अपने प्रियके दिनाई नहीं पडा तो प्रियके बहा कि बिस्तर भारी तो फिरने पर दिनाई पड जायेंगे । ]

किन्तु महाकवि कालिदासने इस प्रकारकी हास्यास्पद अतिशयोक्ति का प्रायशः न लेकर केवल यही कहा—अपने हाथका कटा निकलकर गिर जाने से सूनी पहुँची वाते पक्षमे कुछ महीने निवस दिए :

‘भीत्वामासान्कनकपलयभ्र शरित्तु प्रकोष्ठ. ।

इस प्रकार वहाँ पाठ महीने बिताते हुए आपाङ्कके प्रथम दिन यह क्या देलता है कि चित्रकूटकी चोटोपर लिपटे हुए बादलोसे चित्रकूट देखा प्रतीत हो रहा है कि मानो कोई हाथी मट्टीके टोलेको ढाहनेका प्रयत्न कर रहा हो। बहुतासे विद्वानोंने बभ्र-कीडा-परिणत-गज-प्रेक्षणीयमे बादलोको हाथी मना है और चित्रकूटको बभ्र, किन्तु यदि कोई चित्रकूटमे हनुमान-धारापर बैठकर आपाङ्कके पहले दिन चित्रकूट पर जाए हुए बादलका दृश्य देखते तो उसे प्रतीत होगा कि वास्तवमे चित्रकूट ही भरतक उल्लेख हुए गजके समान है और बादल ही बभ्र (टीला) है। स्वयं कालिदासने अपने रघुवधमे भृङ्गाबलम्बाम्बुववप्रपक, ककुदमानिव चित्रकूटः [रघु० १३।४७] बताने के स्पष्ट कर दिया है कि चित्रकूट उस साँसेके समान है जिसकी थोड़ी पर जाए बादल ऐसे लगते हैं मानो उसके सींगपर टोलेकी मिट्टी लगी हो।

मेघदूतकी कुछ प्रतियोगे आपाङ्कस्य प्रथम-दिवसेके बदले ‘प्रथम-दिवसे’ पाठ मिलता है किन्तु वह पाठ सफ़ास भी है और भ्रामक भी। आपाङ्कके प्रारम्भमे बादल अपनेकी वाह उत्तर भारतके सम्पूर्ण प्राय-भीतोमे व्याप्त है—

पठत मसाढ गवन यन छाए  
चमचम चपला धी उरपाए ।  
विव विन मोकी कपु न सुहाए ॥  
साजन सीतल पर विसवाए ।  
कृपु न सुहाए, बादल छाए ॥

गुजरातके मयभ्रंश साहित्यमे मृणालवतीने मूज को सदेव ही भेषा है—

मुञ्ज पडल्ला दीरडी पैपलेति न गम्मारि ।  
भापादि चखु गञ्जीई चिनिचल होंसे वारि ॥

{ हे गँवार मुज ! तू प्रेमकी डीसी डोरीको समझ नहीं रहा है। जब मायादेमे बादल गुजरने तयमे तब भागमे पानी ही पानी भर जायगा, तब कंठे भा पावेगा । }

हमारे देसी साहित्यमे जो अनेक बारहमासे लिखे गए हैं या लिखे जाते हैं उन तयमे आपाङ्क चले ही बादल मानेका वर्णन है। न्योतिष शास्त्रके अनुसार भी आपाङ्कके पहले पक्षमे मेघ-दर्शन भावश्यक है मन्वथा दो मास तक अनाजुष्टिकी भासका होती है—

आपाङ्कमासे प्रथमेच पक्षे निरञ्जहृष्टे रविमठले न ।

बिद्युन्पञ्चैरप्य नैव मेघा मासदप तत्र न नर्पंख स्यात् ॥

[आपाङ्कके पहले पक्षमासेमे यदि सूर्य खुला, बिना बादलके रहे और न बिजली चमके-गरे, न वायु हो तो दो मास तक वर्षा नहीं होती ।]

और फिर वह तो प्रत्यय दृश्य है जिसे कोई भी चित्रकूटपर जाकर देख सकता है ।

मेघदूतका अध्ययन करनेसे पूर्व यह समझ लेना चाहिए कि कालिदास कोई भूगोलकी पुस्तक नहीं लिख रहे हैं, काव्यकी पुस्तक लिख रहे हैं और मेघकी मर्यादाके अनुसार (त्वत्प्रयाणानुरूप) मार्ग समझा रहे हैं। ग्रन्थया 'यत्र' पन्थाका प्रश्न ही न उठता। किन्तु उस काव्यका यही चमत्कार है कि उसके भूगोल की सटीकता, जीव-विज्ञान तथा वनस्पति-विज्ञानकी प्रागाणिकता और इतिहासकी वास्तविकता सब उपस्थित है। आषाढके पहले दिन कामदेविरिके तिसिर पर लटके हुए मेघकी देखते ही यह कान्ता-विरही कर्मी यक्ष विरहसे व्याकुल हो उठा और जिस मेघकी देखकर दूर देशस्थ पदिक भी अपने पर लौटनेको उत्सुक हो जाता है उस समय शापग्रस्त यक्षकी क्या दशा हुई होगी यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। उसकी इस स्वाभाविक चाकुरता का समर्थन करते हुए कालिदासने कहा है—

मेघालोके भवति सुतिनोग्र्यन्वयावृत्तिचेतः ।

कठान्तेषप्रणमिनि जने कि पुनर्दूरसंस्थे ॥

[बादलको देखकर जब तुम्हो लोगका मन डोल जाता है तब उस वियोगीका तो कहना ही क्या, जो दूर देशमें पड़ा हुआ अपनी प्यारीके गले लगानेके लिये दिन-रात तड़पा करता है।]

सबूके कविके अनुसार—

तोबा की थी मैं न पिऊँगा कभी शपथ ।

बादलका रग देखके नीयत बदल गयी ॥

[मैंने प्रतिशपथ की थी कि कभी मदिरा नहीं पीऊँगा। किन्तु बादल उठे हुए देखकर संकल्प टूट गया।]

यह अपनी प्रियतमाके लिए छटपटाने लगा और फिर तत्काल उसने सोचा कि शपथके कारण भलवा लौट जाना तो धर्मो सम्भव नहीं है इसलिये क्यों न सदेत भेज दिया जाय। कही ऐसा न हो कि बादलको देखकर वह विरहकी व्याकुलतामें प्राण दे दे। अषाढ'सके एक कविने इस स्थितियों की मानिकताके साथ कहा है—

बद य सण्ठी तो मुझ पर धीर निलेह ।

विद्रह परारेहि वरिहि धरा कि गजबहि खल मेह ॥

[यदि यह प्रिया मुझसे स्नेह करती होगी तो तुम्हारा मर्ज न गुनकर उसने अपने प्राण छोड़ दिए होंगे और यदि वह जीवित है तो निश्चय ही उसके मनमें मेरे लिये स्नेह नहीं। इसलिये यह तो दोनों प्रकारसे मेरे हाथसे जाती रही। दुष्ट मेघ! अब तू क्या करके जा रहा है।] इसीलिए उम नामी कविने गोवा कि क्यों न इसी मेघसे ही सदेत भेजा जाय।

तुम्हीने दर्द दिया है तुम्ही दवा देना ।

यही मेघ तो जाकर प्राण लेनेवाला है, क्यों न इसीके हाथ सन्देश भेज दिया जाय, क्योंकि इससे पहले कोई पट्टेन नहीं पानेया और शयसे योग्य कोई सदेशवाहक भी नहीं मिलेया। क्यों ?

पट्टेने विश्वासने कहा है कि मेघने हाथ सदेत भेजना प्रत्याभाविक है। यह बात कालिदास भी जानते थे। दर्शनमें उल्टेने कहा भी है—

धूमज्योति सलिलमस्ता सन्निपात नव मेघ  
सदेशार्था नव पट्टवर्यं प्रापस्यै प्रापसीया  
इत्योत्सुवधादपरिगणयस्फुल्लस्त यथाचे  
वामार्ता हि प्रवृत्तिरुपलब्धवेतनाचेतनेषु ॥

(यही तो पुत्राँ, अग्नि, जल और वायुसे बना हुआ मेघ और कहीं बहुत लोगोसे पहुँचाया जानेवाला राक्षस । 'किन्तु कामार्तमे इतनी समझ कहीं यह जाती है कि यह जब और वेतनवा भेद कर सके ।) यह तो कालिदासका अपना अर्थान्तरन्यास है । किन्तु यद्यपि अपने इस दूतके चुनावको बहुत ठोस बजाकर किया है । वह कहता है—**जासौ बसे भुवनविहिते पुष्करावर्तमानाम् । जानानि त्वा प्रवृत्तिरुपय कामरूप मधोज । तेनाधित्व त्वयिचिधि बधाद्द्वन्द्वबन्धुर्गंतोहम् यात्रामोषावरमधि-गुणै नाधमे मग्धनामा ॥** कि तुम विश्व-प्रसिद्ध पुष्कर और भावर्तक बसने उत्पन्न हुए हो, तुम इनके कामरूप अर्थात् इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाले प्रकृति-रूप अर्थात् मर्यादा विश्वस्त पुत्र्य हो इसलिये मैं तुमसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ क्योंकि किसी गुणीके प्राप्ति हाथ फैलाकर निष्कल लौटना अच्छा है किन्तु अशर्मसे इच्छित फल पाना भी अच्छा नहीं है । नीतिशास्त्रोमे दूतके जो अनेक गुण बताए हैं उन सभीका दर्शन यद्यपि मेघमे किया है । दूत कुलीन होना चाहिए, मेघ कुलीन है, पुष्कर और भावर्तक कुलमे उसका जन्म हुआ है । सबसे बड़ी बात यह है कि यह विश्वस्त होना चाहिए मेघ साक्षात् देवराज इन्द्रका विश्वासपात्र है । दूत ऐसा हो कि जब जैसी आवश्यकता हो वैसा रूप धारण करले ये । गुण मेघमे स्वभावतः विद्यमान हैं । जब रामके दूत बनकर सीताजीकी खोज करने हुआम गए थे उस समय इनकी भी यही परीक्षा अपनी माता सुरसाने जी पी और देख लिया कि ये बुद्धिमान है, निर्भीक है, विश्वस्त है, जब चाहे जैसा बड़ा पा छोटा रूप धारण कर सकते हैं ।

व्योतिप-तरङ्गके अनुसार वादलोके चार कुल बताये गये हैं—

भावर्तं निजली मेघ सवर्तं च बहुद्वय ।

पुष्करो दुष्करजलो द्रोण सस्यप्रपूरक ।

[भावर्तं मेघ निजल होता है । सवर्तंमे बहुत फल होता है । पुष्करसे कठिनाईसे बोझ-सा होता है और द्रोण तो घान्य-वर्धक होता है ।]

इनम सन्वर्तं नामक बहुद्वय भादलको छोड़ दिया कि कहीं बलकासे पहुँचकर धुमांधार वाली ग बरसाने लगे और सस्य-प्रपूरक द्रोणको भी छोड़ दिया कि यदि उसे सदेश-वाहक बनाकर भेजा तो लोग बिना भ्रमने मर जायगें । इसलिए बसने दुष्कर जलवाले पुष्कर और भावर्तक कुलके निर्जल मेघको चुना कि उन्हें चाहे जितने दिनों तक इधर-उधर निश्चिन्तताके साथ घुमाया जा परता है । मेघोकी इसी प्रवृत्तिके कारण कामिवाद्यने उन्हें बीच बीचमे पदनेवाली नदियोका शल पीते पदनेवा परामर्श दिया ।

मेघको दूत बनानेवा एक और भी कारण है जो यद्यपि स्पष्ट कर दिया है—

'सन्तपानास्त्वसि धरस्यम् ।'

[तुम गतवन्त सोमानो धरस्य देनेवाले हो ।] पनाकन्द या वह सर्वथा तो प्रसिद्ध ही है—

पर-कारख देहको घारे फिरी परजन्म मयारय हूँ दरती ।  
निपि-नोर मुवाके समान करी सब ही विधि सज्जनता सरसी ॥  
घनघानेद जीवनदायक हो, कबो मेरिसो पीर हिये परसी ।  
कदहूँ वा बिसारी मुजानके धाँगन मो संसुवानहूँ ले बरसी ॥

धीर फिर किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिको दूत बनावा होता है तो जयकी बडी चाटुकारी की जाती है । उसे यह विश्वास दिलाया जाता है कि मैं किसी ऐसे बड़े स्थानपर किसी वीहड मार्गसे नहीं भेज रहा हूँ, किसी अवाञ्छनीय व्यक्तिके पास नहीं भेज रहा हूँ । इसीलिये मक्षने पहले स्थानका निर्देश देते हुए भलकाका परिषय दिया—

यन्तन्वा सं बसठिरसकानामयलेस्वराणा ।

बाह्योपानस्थितहरासिरसचन्द्रिणा धीतहर्म्या ॥

यक्षने यतलाया कि 'मिम ययोद । तुम्हे बलेश्वरकी उस भलका नामकी दस्तीकी जानैको यह रहा है जिसकी बाहरसे ही देखकर मुम फटक उठोगे क्योंकि बाहर उद्यानमे स्थित महादेवजीके सिरपर स्थित चन्द्रमाके प्रणयसे वहाँके भवन बाहरसे मास चमपमाते रहते हैं । इसके पश्चात् भलकाका मार्ग बताते समय यक्षने बड़े मनोबंशानिक ढंगसे वादलको नोजन, विभ्राम, दृढनीय स्थल, रमणीय दृश्य आमोद-श्रमोद, मनोरञ्जन, धीर देव-दर्शनके साथ बीचमे पढनेवाले नद, नदी, पर्वत, प्रवेद्य, नगर, पशु, पत्नी, वृक्ष, पुष्प, जलवायु, पुरप, स्त्री, देवता और ऐतिहासिक घटनामोका बडा सतिषट् वर्णन करते हुए उस मार्गसे जानेका प्रलोभन दिया है क्योंकि यह मेपको कहुता है कि 'खलमयाद्यातुत्पम्' तुम्हारे पदके भनुवार माय बता रहा हूँ । धीर विचिन बात यह है कि यह सम्पूर्ण विवरण सम्पूर्ण जड प्रकृति कानिदाक्षने शृङ्गारपयी दिखाई है कि कही रसमय मेघ विरल न हो जाय इसलिये यह नदियों और पर्वतोंको भी मानव रूपमे यतनीय सौन्दर्यसे पूर्ण ही देखता है ।

मेपको प्रारम्भमे ही प्रलोभन देने हुए यक्ष कहता है कि तुम्हारा उचचार केवल मैं ही यही मानूँगा वरन् अन्य पबिक-बनितार्ण भी मानेगी—

त्वाभास्वपवनपदवीमुद्गुहीतालवान्ध

प्रेक्षिष्यन्ते पबिक-बनिता प्रत्वयादाश्वसन्त्य ।

न सन्द बिर्हविधुरा त्य्युपेक्षेत यथा

न स्यादम्पोष्यहमिव जनी न परायोनवृत्ति ॥

[यथा कहुता है कि तुम्हे उठा हुआ देखाकर धपने वालीपर कैंसे हुए बाल हटाकर धटे विश्वासके साथ परदेसियोंकी पत्नियों तुम्हारी और देखने लगेंगी क्योंकि मेरे जैसे परायोनको छोड़कर और वीन होगा जो ऐसे समय अपनी बिरहणी फनीरी अपेक्षा कर सके ।

निरहणी दगामे दिन गिजनेकी बडी सामिल स्थितिवा वर्णन मिलता है—

जे श्रु दिग्वा विषहदय ददर्ष पवसन्तेषु ।

दास्य यणन्तिष्ट भगिनत जञ्जिरिषाज न्द्रेषु ।

[मेरे श्रियने परदेस जाने समय जो लोटनेकी प्रवधि बताई थी उसे गिनते-गिनते उंगलियोंके पीर तार लगानेी ग्यरने शीज गए है] इसलिये यक्ष कहता है—

ता भावदयं दिव्यतमसुनाततरामेवपत्नी  
 भव्यापत्न्यावबिहृतगतिर्द्वयसि भ्रातृजायाय् ।  
 भाशावन्य कुमुदसहस्रप्रामञ्जोह्यनाना  
 सस्य यातिप्रणयिहृदय विप्रयोये ह्यसिद्धि ॥

[ तुम जाकर अपनी उस भाभी से अवश्य मिलना जो वहाँ बैठे दिन दिन रही होगी और  
 जिससे प्राण दसी आशा पर टिके होंगे कि अभी फिर भेंट तो होगी ही । ]

दीहाजीने भी हनुमानजीसे अपने प्राण बिरहमे न छोड़नेका कारण बताते हुए कहाथा था—

नाम पाहूँ दिवस निसि, ध्यान तुम्हारे कण्ठ ।  
 लोचन प्रदुपद-जन्वित, प्राण जाहि केहि बाट ।

[ रात दिन आपका नाम स्मरण हो पहरा देता है, ध्यानके किवाड़ सने हैं । भाँजो पर आपके  
 कारण कमलका ताला लगा है फिर भला प्राण किस मार्गसे निकल सकते हैं । ]

इससे परवाह पहले भारतीय विद्वानके अनुसार अच्छे शकुनका भी निर्देश करते हुए प्रोत्साहन  
 दिया है—

मन्द मन्द मुदति पवनश्चानुपूलतो यथा त्वा  
 कामश्चाम नदति मधुरश्चातकस्त्री सगन्ध ।  
 गर्भाधानक्षणपरिचयान्मूनमाचक्रमात्ता  
 सेविष्यन्ते मयनमुभग से भवन्त यत्नायाः ॥

[ मन्द मन्द पवन तुम्हें धाये जो बड़ा रहा है । बाईं धोर काममत्त चातक मधुर बोल रहा है  
 और गर्भाधानके समय का परिचय पाकर निश्चय ही अनुसिधियाँ आकाशमे भरपन्त तपसागिराम  
 शकमात्ता बनाकर तुम्हारी सेवा करेंगी ] और ये ही श्यो ।

यत्तुमन्व प्रभवति महीमुच्छ्रितीगन्ध्रायवन्व्या  
 तच्छ्रुत्वा ते श्रवणमुभग गजित मानसोरका ।  
 मार्कलासाद्बिसकिसलयच्छेदपाथेयवयस्य  
 सम्पश्यन्ते नभसि भवती राजहृषा सहाया ॥

तुम्हारा गर्जन सुनकर कुकुरगुले निकल आवेंगे, भरती हरी भरी हो उठेंगी । और मान-सरोवर  
 पानेकी उत्सुक राजहृष भी तुम्हारे घाम बँलास तक उठे चले जायेंगे । ]

और यह मैं नहीं महत्ता कि तुम गूँट चलदो । अभी धाए हो, ठहरो, बैठो । अपने मित्र  
 चित्तकूटसे गले मिल लो, कुशल मगल पूछ लो क्योंकि यह साधारण पर्वत नहीं है । यह भगवान्  
 रामके वरण-कमलसे भक्तिमेखलावाला वह पर्वत है जिसकी लीम वन्दना किया करते हैं । ]

आपृच्छस्व प्रियससभम्, तूगमार्जिन्य खैल  
 वन्दे पुसा रघूपतिपदैरकित मेखलासु ।  
 बाने-काले भवति मयतो यस्य उपयोगमेत्य  
 स्नेह्यव्यक्तिश्चिरविरहज युचतो बाष्पमुप्लुम् ॥

यश इतने मनोवैज्ञानिक दगसे मेफसे अपना नाम करानेके लिये उपचारका प्रयोग करता है—

गरीबसानेमे लिस्ताह दो धड़ी बैठो ।  
 बहुत दिनोंमे तुम धाये हो इस गनीकी तरफ ॥

जरायो देर ही हो जायगी जो क्या होया ।  
 घटी-घटी न उठायो नजर पहीनी तरफ ॥  
 जो कोई पूछे तो पग्याह क्या है वह देना ।  
 चले गए थे टहलते हुए किसीकी तरफ ॥

[भगवानके लिये इस कुटिया में थोड़ी देर बैठे क्योंकि इस मलीकी घोर बहुत दिनोंमें धारा हो । थोड़ी देर हो हो जायगी तो कोई बात नहीं है । बान-बार पहीकी घोर दृष्टि न दीशायो । जो कुछ पूछने भी सगे तो कोई चिन्ताकी बात नहीं है, कह देना टहलते हुए किसीकी घोर चले गए थे ।]

घोर इस उपचारके परचाय भी वह भीधे हृदयहीमें प्रपन्ना सदेव नहीं वह सुनाता । पहले मार्ग बताता है और कट्या है—

मार्गं तावच्छ्रु कथयतन्वदप्रयागानुत्तम  
 सदेवाम्ने तदनु जतर । धोव्यसि शोचयेयम् ॥

यक्ष कहता है कि [पहले तुम अपने अनुभव अर्थात् जिस मार्गसे किसी मले व्यक्तिको भेजा जा सकता है वह समझ लो उस में तुम्हें वह शोचयेय (कानैसि पीया जा सकनेवाला, रसीला) सदेव सुनाऊंगा जिसे सुनकर तुम फटक उठोगे] अब यक्ष सीधा मार्ग न बता कर बादमें प्रयागानुत्तम मार्ग बता रहा है और वही मार्ग बता रहा है जिस मार्गसे होकर यक्ष स्वयं चलकर चलकर चित्रकूट तक घामा है ।

मार्ग बतानेमें भी वह अपने दूतकी पूरी सुविधाका ध्यान रखता है । पुष्कर घोर घाबतक बादमें अस नहीं होता इसलिये यक्ष उन्हें समझाता है कि—

सिन्धु सिन्धु सिन्धुरिपुष्य न्यस्य गन्तासि यक्ष ।  
 क्षीण क्षीण परिसम्पुष्य, सौतसा चोपभुज्य ॥

जब परावत हो तो पर्यतोकी चोटियोपर उड़ते जाना घोर ध्याय लपती चले तो भरणोका हुन्का-हुन्का जन पीठे जाना । यह नहीं कि बिना लाए-पिए सोधे हरकारेके समान चलते चले जायो क्योंकि हनुमानकीके समान दूत मित्रता तो बड़ा कठिन है जो यह बड़े कि—

‘राम-काञ्च भीन्हे बिना, मोहि नहीं बितराम ॥

[रामका कार्य अर्थात् सीताजीकी सौत्र लिए बिना मुझे विश्वास करनेका अवकाश नहीं है ?]

यक्ष यक्ष मार्ग बताने हुये उस शोचने पहनेवाले अनुभवोना सकेत देते हुए समझाता है कि जब तुम इस वेंगेसे लदी हुई पहाडीसे ऊपर उठोगे तो पिढोकी मोसी-माली पत्थियाँ नकिल होकर बटेंगी कि नहीं पहाडकी थोटी हो तो नहीं उठी जा रही है । इस प्रकार उठते समय दिङ्नागोत्री मूर्छोकी चटवारें बनेसने हुए धागे बंद जाना । दिङ्नागाना पथि परिहरन्शूल-हस्तायमेतद् । इससे बुद्ध विद्वानोंने कल्पना की है कि कालिदासने प्रमाण-समुच्चयके प्रसिद्ध बौद्ध लेखक दिङ्नागपर आशेष किया है जिसे भन्तिनाथने कान्तिदासका प्रतिद्वन्द्वी बताया है ।

यक्ष यक्ष सामने उठते हुए इन्द्र चतुसुयी घोर देख रहा है घोर वहीमें सुन्दर मार्गके अनुभवका शीघ्रसे करता है । यह इन्द्रचतुष या तो मातृकात दिगार्द देता है या शायबाल घोर यदि



वादनके ऊपर विमानसे देया जाय तो इन्द्र चक्र दिखाई देता है, इन्द्र-धनुष नहीं। इस इन्द्रधनुषसे यक्षों वायुनका नीला शरीर ऐसा जान पड़ता है जैसे 'गौर-भुवुट सपाए कृष्ण ।'

'यहँखेव स्पृखितरुचिना मोपवेधस्य विम्बो ।' [पूर्वमेघ, १५]

यव विज्ञानोकी परिचयोना परिषय देखा हुआ यक्ष कहता है कि तुम उड़कर चलोगे तो कितानोगी ये भोली भाली पलियाँ बहो आजासे तुम्हारी गौर भाँखें उठाकर देखेगी जिन्हे भी पत्ताकर रिझाना नहीं आता—'अभिल्लासानभिर्त्त'। तुम वहाँ मात्र देशके क्षेत्रपर वरस जाना जिससे वहाँकी भूमि शीथी यक्षसे बनकर उठेगी। फिर पश्चिमकी ओर उड़कर उत्तरकी ओर चल देना। वहाँ घात्रकूटकी भाग बुझाकर उसकी चोटो पर उठकर जाना जो पके हुए फलोसे लदे हुए फामके वृक्षोसे घिरा हुआ है। उस समय देव-दम्पतिवो वह पर्वत स्तनद्वयद्वय (दृष्टीके स्तनके समान) प्रतीत होगा। उस वनमे जगनी द्विषयी भूया करती हैं इसलिये वहाँ उठकर क्या करोगे डग बहापर चल देना। जल बरसा देनेसे तुम्हारी देहका भारीपन भी दूर हो गया रहेगा जिससे चाल भी बढ जायगी। भागे चलकर किम्ब्याचसके ऊबड़ लाबड पठार पर अनेक धाराओमे फैली हुई रेवा नदी ऐसी प्रतीत होगा जैसी मधुतसे चीठी हुई हाथीके देह हो। वहाँ जगनी हाथियोके मध्ये बसा हुआ और जामुनवो कुजोमे बहता हुआ रेवाकाजल पीकर तब भागे बढना क्योंकि—

रिक्त सर्वो भवति हि लघु पूर्णता गीवाप । [पूर्वमेघ—२१]

[जिसके हाथ रीते रहते हैं उसे सब दूरदुरासे ही चींग जो भर-भूरा होता है उसका सभीभावर परते हैं।]

इसके भागे प्रथमके हरे-पीले वदम्ब पर बँडराते हुए भँरि, नई फूली हुई चान्दलीकी पत्तियोको भरते हुए हरिण और जगती परतीकी खीला गध धँचते हुए हापी तुम्हे मार्ग दिखाते चलेगे। उत रामस सिद्ध नोग धपनी पत्तियोके छाष ऊपर ही ऊपर बँड पूँडगे-वाले बातकोकी ओर पाँत बाँधकर उबठी हुई वगुत्तियोका दृश्य देख रहे होगे। अब, वहाँ तुम गरजे कि ये स्त्रियाँ उरकर गट अपने पतियोसे विपट जायँगी और वे सिद्ध नोग तुम्हारा बरा उपकार मानेंगे—'मान-विष्यन्तिःसिद्धा ।

यक्ष कहता है—यद्यपि मैं जानता हूँ कि मेरे कामके लिए तुम पीछ ही जाना चाहोगे किन्तु ऐसी कोई बात नहीं है। तुम कटुभ (धनुँन) सुगन्धित फूलोसे लदे हुए उन पहाको पर उठते हुए मस्ती लेते हुए जाना जहाँ कि गौर अपनी कूबसे तुम्हारा स्वागत करेंगे। वहाँसे चलकर तुम भागे दशाक्ष देवमे पहुँच जाओगे वहाँ के उपवनोकी बाड फूले हुए केवडोमे उजली हो उठी होगी। गायोके मन्दिरोमे कीचे घोसले बना रहें होगे। सारा जगल काली-नाली जामुनोसे लदा मिलेगा और इस भी कुछ दिनेके लिए जहाँ आ बसे होये। वहाँकी राजधानी विदिशामे तुम्हे बिलासकी सब सामग्री मिल जायगी। वहाँ सहाराठी हुई वेप्रकतीका जल पीते हुए तुम्हे ऐसा जगेगा जैसे किसी बटीली भीहोवाली माषिनी का रस पी रहे हो।

वहाँसे चलकर नीच नामकी पहाडी बकावट मिटानेके लिए रुक जाना। वहाँ फूले हुए कदम्ब ऐसे जान पडेँगे जैसे तुमसे मिलनेके कारण सबके रोम-रोम ऊरकरा उठे हो। इतना ही नहीं चराकी मुकामोमे वहाँके क्षेत्रोका भी राग-रव देखना।

सपत्न्यप्रीतिपरिवृतोद्धारिभिर्नागराणां

उद्गमनि प्रपति गितावेदमभिर्बोवनानि । [पूर्वमेव २७]

[उनी पहारोंकी सुपाशांमिने उन सुगन्धित पदार्थोंकी संघ निबन्ध रही होगी जो वहाँके फीले, वेदपाषाणोंके साथ रनि करनेके समय काममें लाते हैं । इसके तुम यह भी जान आयोगे कि वहाँके नागरिक नितनी पुन्नस्युन्ना जयानीका रम लेते हैं ]

हैं ही गिता-वेदमको भावननके बहुतेके विद्वानोंने भरत-द्राघा निरिष्ट नाद-गृह तफ बना दिया है ।

पद्यने समझाया है कि वहाँ टहरकर ब्रह्मोपी पुत्रधारियोंको सीबते हुए उन मालिकोंके सुखपर ध्याना करने हुए उनमें हेत-जेल बगते हुए जाने का जाना जिनके काममें लूँते हुए फलत उनके मानके परीनेसे सँभे पड गये हों ।

इसके पदनाम् पद्यने केषते कहा है कि तुम्हें थोडा चक्र तो पडेगा किन्तु कोई बात मरी है—

सक कथा मदपि भवतः प्रसिधत्स्योत्तराना

सौभोत्सवप्रसुतिविभिवुवो मात्स्यभूद्वज्रमिन्याः ।

विमुद्गामन्सुरितचरितैस्तथ पीरागवतानाम् ।

मोनायार्गैर्वदि न रजने मोर्धनैर्विचितीति ॥

[पूर्वमेव, २९]

मान देवकी 'भ्रूविनासानभिर्भ' भोनी-भाली नास्तिमि भिन्न हैं उज्जयिनीकी नास्तिमि । [सद्यः सुम्हारा मार्ग कुछ टेडा पडेगा किन्तु तुम वहाँके विद्याय खबनोंसे लिपटना न भूलना मीर सुम्हारी रिजयिनी कामने डरकर जो वहाँकी नवेतिनी बचन बिनकन कलापोंकी उदय न भीभे गो कामको सुम्हारा पक्षिण छकाग्य गया ।]

ही, उधर जाने हुए निकम्मा नदी का रम से-सेना जियकी सहरोपर बनरम करते हुए काम ही मेरातके गमान धीर नंबर ही नाभिवे समान प्रतीत होंगे । सब समझ लेना कि बरत-मदक दिगावर सुम्ह गिना रही है क्योकि—

त्रोम्गामाद्य प्रणयवचन विभ्रमो हि प्रियेणु । [पूर्वमेव, ३०]

[गिरदी बरत-मदक दिगावर ही कामने प्रियियोंको अपने प्रेयकी बान यह देती हैं ।]

उन गिरिणी दुर्बल निविन्ध्यावो जयने मरुत्सुय धीविनासा विद्याला उज्जयिनी मे पद्वै ब्रामा वहाँके मीरीके लेने बहूने बड़े-बड़े नीय हेले जो उदयनकी बचारी मनी प्ररार माले ।

शास्त्रान्नीमुदयवधायोविद्वेषामुद्गाम्

पुर्वोद्गाम्पुत्रपुत्री योर्विद्याना विद्यानाम् ।

ग्वन्तोप्री सुपरितरने रज्जिगया मां वनाती

रिंही पुर्वोद्गामिनादि वात्रिधनुषद्वेजम् ॥

[पूर्वमेव, ३२]

[उनी देवम पद्वैवर सुम धन-वान्धे मरी हुई उध विद्याना मरीकी धोर बते जाना

जिसकी चर्चा मैं पहले ही कर चुका हूँ और जहाँ गाँवके बड़े-बूढ़े लोग, महाराज उदयनकी कथा भली प्रकार जानते बूझते हैं। वह नगरी ऐसी लगती है मानो स्वयं अपने पुण्यका फल भोग करनेवाले पुण्यात्मा लोग, पुण्य समाप्त होनेसे पहले ही, अपने बचे हुए पुण्यके बदले, स्वर्गका एक चमकीला भाग लेकर उसे अपने साथ घरतीपर उतार आए हो।]

ऐतिहासिक दृष्टिसे यह श्लोक बड़े महत्त्व का है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कालिदासकी उज्जयिनी बहुत प्रिय थी और इस नगरसे उसका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था— वह सम्बन्ध चाहे जन्मका हो या कर्मका। दूसरी बात यह है कि मेघदूत उस समय लिखा गया जब बालराज उदयन द्वारा कास्यदेशके हरण-शाली कथा बहुत पुरानी नहीं हुई थी और जिसकी चर्चा उस समय तक दार्ढ्य मौर्य साम्राज्यके क्षीण होनेका प्रसङ्ग थी।

उज्जयिनीके सौन्दर्य के कारणके सम्बन्धमें कालिदासने जो कल्पनाकी है वह अद्भुत है। हमारे यहाँ माना गया है—'सीसे पुण्ये मर्त्यलोके विद्वान्ति।' इसी आधारपर कालिदासने कहा है कि स्वर्गमें गये हुये लोगोंने सोचा कि अन्तमें मर्त्यलोकमें वो जाता ही पड़ेगा इसलिये उन्होंने बहुत दिनों तक स्वर्ग-सुख भोग करनेपर जब थोड़ा पुण्य बच रहा तब वे अपने बचे हुए पुण्यके बदले स्वर्गका जो सुन्दर लक्ष भाग लेने आए वही उज्जयिनी है। यह भी एक बड़ा प्रमाण है कि कालिदास उज्जयिनीके थे।

यहाँके सम्बन्धमें मेघकी समझते हुए वे कहे हैं कि उज्जयिनीमें सारसोशी मीठी बोलती गुनाई पड़ेगी, कमलकी गन्धमें बसा हुआ शिप्राका 'प्रियतमइव प्रार्थना-चाटुकार' पवन वहाँ 'मुरतग्लानि' हर रहा होगा। अगरेके घुएसे तुम्हारा शरीर बड़ेगा, पालतू मीर नाच-नाचकर तुम्हारा अभिनन्दन करेंगे और झूलोकी गंधसे महकते हुए उन भवनोंकी सजावट देखकर तम अपनी पकावट गिटाना जिनमें सुन्दरियोंके चरणोंमें नगी हुई महापरसे साल पैरोकी छाप बनी हुई होगी।

इसके प्रचाए उसे महाकालके मन्दिरमें जानेका निर्वेध करता हुआ यश कहता है कि महाकालके पवित्र मन्दिरमें शिवजीके गण तुम्हें अपने स्वामी शिवजीके कठके समान ही मीठा देखकर तुम्हें बड़े आदरसे दिहारेंगे। सुवर्णोंके स्नानसे सुगन्धित और कमलके पन्थमें बसी हुई गन्धर्वती नदीकी ओरसे भागेवाला पवन इस मन्दिरके उपवनकी बार-बार झुला रहा होगा यहाँ तुम महाकालकी साम्प्रभारती में गजकर उनके गगाबेका साथ देना। वहाँ नृत्य करती हुई बेरयाभोंके नक्षत्राक्षरोंपर जब तुम्हारी ठड़ी-ठड़ी बूँदें पड़ेंगी तब वे तुम्हारी ओर भीरेके समान अपनी चित्तपन बलाजेंगी। सप्याकी भारती ही झुझने पर जब महाकाल ताडव रूथ करने लगे तब वृक्ष रानी उनके उठे हुए बाहूओं पर सँकरी सताई लेकर तुम छा जाना जिससे शिवजीने अपने हाथोंकी खाल धो देने को इच्छा पूरी हो जाय। यह दृश्य देखकर पहले तो पावतीजी डर बाधेंगी किन्तु फिर तुम्हें देखकर और पहचानकर वे तुम्हारी ममिताका आदर करेंगी। उज्जयिनीमें जो कृष्णामिसारिकाएँ अपने प्रियतमोंसे मिलनेके लिए भँवेरी रातमें निकले उन्हें तुम विजली जगवाकर ठीक मानं दिवा देना, गरजना-बरसना मत नहीं तो वे धवरा उठेंगी। फिर तुम दिन निकलते ही यहाँसे चल देना क्योंकि अपने मित्रोंका काम करनेका जो बीड़ा उठाता है वह बालस्य नहीं करता—

[पन्थायन्त न सतु सुदृगमम्भुषेतायैतया ।] खनेच होनेपर सखिता नायिवाभारि प्रिय भी अपनी

प्रियतमाप्रोके प्राप्नु चोद्ध रहे होंगे और सूर्य भी अपनी प्रियतमा कपलिनीके मुंह पर पड़ी हुई मोक्ष पीछे रहा होगा, उस समय तुम उनके हाथ न रोकना, नहीं तो वे बुरा मान जायेंगे ।

इसने पश्चात् यक्षने गभारा नदीका विनय अत्यन्त सहृदयता और रसिकताके साथ करते हुए उसे विवस्त्रा नायिकाके रूपमें चित्रित किया है और कहा है कि जो जबानोका रस ले चुका है वह खुनो हुई जापोवानोको मत्ता कैसे बिना भोगे छोड़ देगा । 'आतास्वादो विवृतजपना को विहातु समयं ।' यहाँसे चलकर येषको देविगिरि पर्वतकी ओर भेजते हुए बताया है कि शिष्टावृत्ते हुए हाथी वहाँ परतीकी गध पी रहे होंगे और उनके मूलर पकने लग गए होंगे वहाँ गदा निपात करनेवाले स्कन्ध भगवान पर जस चढ़ाकर गजन करना जिससे स्वामि-कार्तिकेयका मोर नाथ उठेगा । उनकी पूजा कर, बुकनेपर भागे बढ़ोगे तो अपनी पत्थियोंके साथ जाते हुए सिद्ध शोध मिलेंगे जो अपनी बीछा भीयनेके इच्छे तुमसे दूर ही दूर हट दिवाई देंगे । फिर कुछ धाने जा कर तुम चर्मखवती नदीका जल पीनेके लिए उतर जाना जो राजा रत्नदेवके गयालभ यक्षकी पीति मनी हुई यह रही है । यहाँ तुम धाकाचकारी सिद्धो और मन्धकोको ऐसे प्रतीत होंगे जैसे किसी एकलदे हारने मोटोरी इन्द्रनील मणि पोह सी गई हो । चर्मखवती (बबल) नदी पार करने तुम ददापुरकी ओर चले जाना जहाँको रक्षियोंकी भीहे कुन्वपर मंडरानेपाले भीरीके समान चमक रही होगी । यहाँसे चलकर सीधे प्रह्लादवर्षण छाया करते हुए कुवक्षेत्रपर उड़ते चले जाना जो कौरवो और पांडवोंकी परेषु बडाईके कारण कुर्तम है और जहाँ घाटीक-वारी प्रसूनने राजापोपर उठी प्रकार अपरिपुत बाण बरसाये थे जैसे तुम अपनी जलपात्र बरसाते थे । यहाँ सरस्वती नदीका वह शीतल जल पीकर तुम्हारा मन चमत्ता हो जायगा जिसे यक्षराजने भी मदिरा छोकर प्रहण किया था । यहाँसे चलकर तुम बनखल पहुँच जाया जहाँ हिमालयके उत्तरी हुई गगाजी मिस्रोंगे जिन्होंने अपने पुमोरी स्वयं नहुँचा दिया और जो अपनी लहरोके हाथ चन्द्रमापर टेकर मानो शिवजीकी बेन परम्पर पारंगीजीयो बसा रही हो कि शिवजी मेरी मुद्रामे हैं । वहाँ जल पीते समय गगाजी पर चलती हुई तुम्हारी छाया एसी प्रतीत होनी मानो प्रयाग पहुँचने से पहले ही गगासे यमुना मिल गई हो । यहाँसे तुम गगौकी पहुँचकर अपनी यकाष्ठ मिटावेना जहाँकी शिलाएँ बस्तूरी मूर्तोंने बँटनेसे सदा महफती रहती है ।

अथस्यध्वयमविलपने तस्य श्रुणे निपथ्यु ।

शोभाशुभ्रिनयनवृपोत्यात-मकोपभेयाम् ॥

[पूर्वमेप, १६]

[उम सप्तम पर्वतकी पीटी पर बठे हुए शूम जैसे ही दिवाई दोने जैसे महादेवजीने जजने साँझी सीमों पर मिट्टीने टीलो पर टक्कर मारनेसे नीचड जम गया हो]

देगो भेप ! जब चम्पट चलनेसे देवदारु वृक्षोंकी छाँसे जगलमे धाग लपने लगे और उसकी चिनागियाँ मुरगायके लक्ष्मे-लक्ष्मे रोयें जलाने लगे तब तुम पुर्णधार पानी बरसाने उठे दुम्न देना बयोकि ।

'आपशानिप्रदमापना मपदो हातमानाम् ।' [पूर्वमेप, १७]

[भने मोर्गों पाम जो कुन होया है पर रीत-मुगिवावा दुग मिटावेके लिये ही होना है]—

हिमालयपर जब शरभ जातिके घाठ पैरो वाले हरिण बहुत उछलने-कूदने लगे और तुमपर सींग चलानेकी झपटें उब तुम धुप्राधार ओले बरसाकर उन्हें तितर-बितर कर देना क्योंकि के ना न खु परिमवषद निष्कारनमपला ।' [पूर्वमेघ, ५८]

[वैशामपा काम करने वालोकी ऐसे ही ठीक करना चाहिए—]

यहाँ पर्वतकी एक शिखरपर शिवजीके जिन पैरोंकी छापपर सिद्ध लोग पूजा बढ़ाते है वहाँ तुम भी भक्ति-भावसे झुककर प्रदक्षिणा कर केना न्यायि यद्वावान लोगोंने पाप उनके दर्शनसे ही धुल जाते हैं । यहाँ के पोले-पोले बाँधोंमे वायु भरनेसे बज उठने वाले भीठे स्वरोंने साथ किन्नरोंकी स्त्रियाँ जब त्रिपुर-विजयका गीत गाने लगे तब तुम भी मृदगके समान गजंन करके सींगसे सब प्रण पूरे कर देना । हिमालय पर्वतके घासपास सब गुन्दर स्थान देसकर तुम उस शीशु रश्मिसे होकर उत्तरपी ओर बढ जाना जिसमेसे होकर इसोवे समूह मानसरोवरकी ओर जाया करते हैं और जिते छेदकर गरपुरामजी भयर हो गए हैं । उस चँकरे मार्गमे तुम पैसे ही सबे और तिरछे होकर जाना जैसे बलिचो छलनेके समय विष्णुका छावला चरण लवा और तिरछा हो गया था । वहाँसे ऊपर उठकर तुम उस वैसास पर्वतपर पहुँच जाओगे जिसकी चोटियोंके जोड़-जोड़ राखणके बाहुओंमे हिंसा आसे थे, जिसमे देवताओंकी स्त्रियाँ प्रपन्न मुँह देवती हैं और जिसकी कुमुद-जैसी उजली चोटियाँ भाकासमे इस प्रकार फैली हैं मानो —

राशीमूला प्रतिदिनमिय भववस्वाहहास । [पूर्वमेघ, ६२]

[शिवका इकट्ठा किया हुआ शिवजीका भद्रहास ही ।] कालिदासकी उपमाओंमे यह उपमा बड़े महत्वकी और प्रप्रथिम समझी जाती है । इतना ही नहीं, तुल्य काटे हुए हाथी-दाँतके समान गोरे कंलासपर प्रपन्ना धिकने घुटे हुए प्राँजके समान काला रूप लेकर तुम भी ही मुहावने लगीके जैसे बलरामके कन्धोपर पड़े हुए चटकीसे कामे बसत ।' इसी प्रसवसे मेघको यश समझाता है कि उस कंलासपर जब महादेवीजीके हाथोंमे हाथ आसे पार्वतीजी टहल रहीं हो तब तुम बरसना मत, वरन् सीढीके समान मन जाना जिससे उन्हें ऊपर चढ़नेमे गुविधा हो ।' शिवजीके सम्बन्धमे कालिदासका इतना भक्तिपूर्ण उत्प्रेष इस बातका भी साक्षी है कि कालिदास निरश्चय हो पवने गैब थे ।

इतना भक्ति-श्रवक निर्दोष कर खुवनेके परचासु यश पुन श्रुत्कारकी ओर प्रवृत्त हो कर पहुँचा है कि वहाँ पर्वतपर जब प्रप्यरामे अपने गग-जडे कंधासे नव कुम्भकर तुम्हारे शरीरसे धाराएँ निकालने लगे और तुम्हें छुड़ाए न छोडे तो तुम कान फोड़नेवासा गजन मुत्ताकर उन्हें उडा देना, वहाँ पहुँचकर वहाँसे तो तुम मुनहरे कमलसे भरे हुए मानसरोवरका जल पीना, फिर बपडेके समान बोधी देर ऐरावतने मुँह पर छाँकर उसका मन बहलाना, तब बस्यद्भुके बोगल पत्ते हिंसाते हुए वैसास पर्वतपर जाँ भर कर घुमना ।

फलकारा पण्डित करते हुए यश कहता है कि उस कंलास पर्वतकी गोदमे बड़ी हुई प्रसन्ना पैसी ही लगी है जैसे किसी प्रियतमकी गोदमे बालिनी हो और वहाँसे निवृत्ती हुई गगाजी ऐसी प्रतीत होती है मानो उस बालिनीके शरीरपर ये सरकी हुई उसकी छाटी हो ।'

इसने परचाट् मयने फलकापुत्रीका विस्तृत, सलिलपट, भावपूर्ण तथा मध्य परिचय देत हुए बताया है कि प्रनदास जैसे भवन, मुन्दगी नारिणी, भननाम रवविरने चित्र, गगीत और मृदगकी

धूमधाम, मीलमसे जड़ी हुई घरती और गवन-चुवी अटारियां विद्यमान हैं। वहाँकी कुल-वधुओंके हाथोंमें कमलके आभूषण, चोटियोंमें कुन्दके फूल, मुँह पर लौधके फूलोंका पराग, सूँठमें कुरवक (कटसरैयाका फूल), कानोंपर सिरसके फूल, और माँगमें कदम्बके फूल दिखाई देंगे। यहाँ सदा फूलनेवाले वृक्ष, बाग्जमासी कमल और कमलिनियाँ सदा बसे रहनेवाले हंस, चमकीले पखोवाले पालतू मोर तथा सदा प्रसन्न यक्ष और यक्षिणियों की भरमार है। यहाँके प्रसन्न यक्ष नित्य अपने भवनोंमें अपनी प्रियाओंके साथ बैठकर वह सधु पीते हैं जो बाजोंके बजनेके कारण कल्पवृक्षसे निकला करता है। वहाँकी सुन्दरी कन्याएँ मन्दाकिनीके तट पर रत्नसे खेलती हैं, चन्द्रपान्त मणियोंसे उपकृता हुआ जल वहाँ स्त्रियोंको पकावट दूर करता है। मयाह सपत्तिवाले यक्ष आसराप्रो और बिल्लरोके साथ वहाँके वैभ्राज उपवनमें निवास करते हैं, कल्पवृक्षसे उठे सब शूद्राएँ भी वस्तुएँ मिलती रहती हैं, पत्तोंके समान सविले वहाँके घोड़े, रथ और बालमें सुमके घोड़ोंको कुछ नहीं समझते। पहाड़-नेसे ऊँचे हाथी वहाँ मर बरसाते चलते हैं। रायणसे लडनेवाले वीर मोग पावके चिल्लोंको ही आभूषण समझते हैं और शिवजीका निवास यहाँ होनेके कारण कामदेव भी अपना मौरीकी डोरीबाला धनुष न बढाकर खड़ीखी कामिनीयोंकी बाँकी चितवनसे ही काम निकाल लेता है। कालिदासने अलकाकी वनस्पति और जीव धनुषीयोंको जो वर्णन किया है वह वनस्पति शास्त्र और प्रकृति शास्त्रके सर्वथा विपरीत है क्योंकि हिमालयके उस प्रदेशमें बहूल, कुन्द, कदम्ब, मोर, घोड़े और हाथी नहीं हो सकते किन्तु वहाँतो देवी सृष्टि ही जिसके लिये वनस्पति शास्त्र प्रमाणीत नहीं है।

इस प्रकारका स्थान किसी भी सहृदय व्यक्तिके मनमें उसे देखने की उत्कण्ठा उत्पन्न कर सकता है, इसीलिए यक्षने पहले अलकाका वर्णन किया और इसके पश्चात् वह अपने घरका वर्णन करने लगता है—

'कुन्दके भवनसे उत्तरकी ओर इन्द्रधनुषके समान सुन्दर मोल फाटक-वाला मेरा घर दूरसे दिखाई पड़ेगा जिसके पास ही फूलोंके गुच्छोंसे नवा और नीचेतक भूसा हुआ कल्पवृक्ष खड़ा है। भीतर कानेपर नीलम बड़ी हुई सीङ्गियोंवाली बाबडी है जिसमें बिकने वैदुर्य मणिकी-सी डडलबासे सुन्दर बमल लिले हैं। उसके जसमें बसे हुए हंस इतने सुखी हैं कि मानसरोवर पास होनेपर भी और तुम्हें देखकर भी वे वहाँ नहीं जाना चाहेंगे। इस बाबडीके तीर पर मौलमणियोंकी चोटी वाला बनाबटी पहाड़ है जिसके चारों ओर सोनेके केल्ले लये हुए हैं। इस पर्वतपर कुरवकके वृक्षोंसे घिरे हुए माधवी मठके पास एकमे कचनके से पत्तोवाला लाल अशोकका वृक्ष है और दूसरा मौलसिरीका वृक्ष है। जवसे अशोक तो मेरी प्रियाके बाँएँ परबनी ठोकर सानेके लिए और मौलसिरीका पेठ उसके मुँहसे छोड़े हुए मंदिरके छोटे पानेके लिए तरस रहा होगा। उन दोनोंके बीचमें चमकीले मणियोंकी चौकीपर बनी हुई स्फटिकभरी चौकीपर पटिया पर जड़ी हुई सोनेकी खरपर तुम्हाएँ मित्र मोर नित्य साँझको आकर बैठ करता है जिसे मेरी पत्नी अपने पुष्पस्वार बड़ेवाले हाथोंसे तातियाँ बजा-बजाकर नचाया करती है। मेरे द्वार पर यक्ष और यक्षके निहत्त देखनर तुम मेरा घर अवश्य पहचान लोगे जो मेरे बिना बड़ा उदास दिखाई पड़ रहा होगा। वहाँ हाथीके बच्चेके समान छोटे बनकर पहाड़ोंकी मुहाण्नी चौटीपर बैठकर धुपुनुओंके समान अपनी भाँखें मिचका कर घरके भीतर फाँकता।

रमणीक मार्ग, मध्य पुरी तथा मनोरम भवनके बरखुंनसे मेघमे वहाँ जानेकी उत्कठा जगाकर यक्षने अपनी पत्नीके रूपका वर्णन किया है जिससे मेघको यह विश्वास हो जाय कि जिसके पास मुझे भेजा जा रहा है वह कुदरसन (असुन्दर) नहीं है—

उन्वी श्यामा विसरदशना पक्ववियापरोष्ठी ।  
मध्मेक्षामा चक्रितहरिशीप्रेशणा निम्ननाभिः ॥  
योत्सीभारादलसगमना स्तोकनभ्रा स्तनाभ्या ।  
या तत्र स्थाद्युबतिविषये वृष्टिराद्येव वातुः ॥

[उत्तरमेघ, २२]

[वहाँ बुबली-पतली, नन्हे बाँतो-बाली, पके हुए बिब-कलके उमान साल हीठोवाली, पतली कमरवाली, ढरी हुई झालोवाली, गहरी नाभिवाली, निवबोके बोभसे धीरे-धीरे चलनेवाली और स्तनोके भारसे कुछ भागेको झुको हुई जो युवती तुम्हे दिलाई दे वही मेरी पत्नी होगी । उसकी सुन्दरता देखकर ऐसा जान पड़ेगा मानो वहाकी सबसे बढिया कारीगरी वही हो ।] भागे उस विरहिणीका परिचय देते हुए यक्ष कहता है 'विरहिता चकवीके समान चकैली और कम बोलनेवाली उस प्रेयसीको देखकर तुम समझ लोगे कि वह मेरा दूसरा प्राण ही है । विरहने उसका रूप इतना बदल गया होगा कि उसे देखकर तुम्हे पानेसे मारी हुई कमलिनीका भ्रम हो सपता है । रोते-रोते उसकी आँखें 'सूख भाई होयीं, गरम जसाँसे उसके होठोका रंग फीका पक गया होगा । चिन्ताके कारण मालपर हाथ धरने से और मुँह पर बाल धा जानेसे उसका अपुरा बिलार्ड देने वाला मुँह भेचसे ढके हुए चन्द्रमाके समान उदास बिलार्ड देने लग गया होगा ।'

अपनी प्रियतमाकी विरह-किगाप्रोग्न वर्णन करते हुए यक्ष कहता है कि 'या तो वह पूजा खटाती मिलेगी या मेरा चिन बनाती मिलेगी या मैंना से पूछ रही होगी कि तुम अपने पतिको स्मरण करती हो या नहीं या मैंने कपडे पहने गोबने सीखा लिए ऊँचे स्वरसे मेरे नामके गीत गायी होगी । उस समय मेसुधीमे उसे रागके उतार-चढावका भी ध्यान न रहता मिलेगा या देहली पर रनसे हुए फूलोको देखकर शापके बने हुए दिन चिन रही होगी या मन ही मन पिछली मधुर स्मृतिमीका भाजन्ड ले रही होगी । उसकी प्यारी सजियाँ बिनमे उसका घाप नहीं छोडती होगी इसीलिए उसके पसके पासवाली झिठकीपर जा बैठना और जब उसकी सब सखियाँ सो जायँ तब उसके पास पहुँच जाना और बूँड लेना । वह एक करयट पडी होगी, भाँसू बह रहे होंगे और बडे हुए नशोंवाले हाथसे वह अपने गालोपर छामे हुए रुधे और उलभे हुए बाल हटा रही होगी । विरहके कारण चन्द्रमाकी किरणों भी उसे कष्ट देती होगी । भाजन्ड वह बोरे जलसे नहा रही होगी इसलिए उसके रुधे बाल मुँहपर लटक कर उसके पतले होठोको छपानेवाली साँसेमे हिलते जा रहे होंगे । वह स्वप्नमे मुभसे मिलनेके लिए नींद बुलाती होगी पर बहते हुए भाँसू उसकी आँखें नहीं जगने देते होंगे ।

फिर यक्ष उसे बड़े कौशल और मनोवैज्ञानिक ढंगसे धर्मकी बात घपति करनेसे देनेकी रीति, भूमिका और सन्देश की बात समझाता है कि 'हे मेघ ! तुम्हारे पहुँचनेपर यदि उसे कुछ नींद

यह भाषाबद्ध शुभल एकादशीको अलंकार पहूँच जाता है। इसीलिए यश कहता है कि आश्वते योग चार मास तुम किसी-किसी प्रकार बाँध भूँद कर बिता लो।

हनुमानजी जब सीताजीकी खोजमें निकले थे तो उनके भगवान् श्रीरामने अपनी भंगूठी पहचानके लिए दो चीं बिल्लु बसाने केवल गोत्रस्मरणकी एक पंढनाका उल्लेख पहचानके लिए सन्देशके साथ मेघको बता दिया है जिससे यक्षिणीको भविष्यवास्त न हो। आगे कालिदासने भी विरहमें ही प्रेमकी प्रायुषिका वर्णन करते हुए कहा है—

स्नेहानाह किमपि विरहे ध्वसिन्स्ते त्वज्योगात् ।

दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशोभवन्ति ॥

[उत्तरमेघ, ५५]

[न जाने लोग क्यों कहा करते हैं कि विरहमें प्रेम कम हो जाता है। लक्ष्मी बात तो यह है कि जय पाही हुई वस्तु नहीं मिलती तभी उसके पानेके लिए प्यास बढ़ जाती है और प्रेम ठेर होकर इकट्ठा हो जाता है।]

यह सबेरा देकर उसने मेघसे प्रार्थना की है कि मेरी प्रियतमाको डाँढ बँधाकर उसके कुशल-समाचार पाकर और उससे अभिज्ञान लेकर तुम वहाँ लौट आना और मेरे प्राणोंकी रक्षा करना।

यश इतना बतुर है कि वह मेघको स्वीकृतियों भी बिल्व नहीं करता और पूछता है—  
हे मेघु ! तुमने मेरा काम करना निश्चय किया है या नहीं। पर इससे यह न समझ बैठना कि तुम्हारी स्वीकृति लेकर ही मैं तुम्हें इस कामके योग्य समझूँगा क्योंकि तुम तो चातकके माँगे पर बिना कुछ कहे ही जल दे देते हो इसलिए—

प्रयुक्त हिं प्रणयिपुस्तानीपिसतार्थकिर्षेव ।

[उत्तरमेघ, ५७]

[सज्जनोकी रीति ही यह है कि दूसरोंका काम पूरा करना ही उनका उत्तर होता है।] और इसके पश्चात् वह भगल बामना करता हुआ कहता है कि 'चाहे चित्रताके माते चाहे मुम्भर कृपा परने तुम पहले मेरा प्यारा काम कर देना और फिर अपना बरसाती रूप लेकर जहाँ मन चाहे वहाँ पुनना। मैं यही मनाता हूँ कि प्यारी विष्वतीके एक क्षणके लिए भी तुम्हारा वियोग न हो।

इस प्रकार 'भाषाबद्ध प्रथम दिवसे' चित्रकूट पर्वत पर छाने हुए मेघको देखकर यशके मनमें कालिदासने उसे दूत बनाने के भावना जगाकर विश्वमें—विशेषतः भारतीय साहित्यमें— दूत-काव्यकी अत्यन्त स्पृहणीय परंपरा बाँध दी जिसके अनुसरणपर अनेक कवियोंने अनेक दूत-काव्य लिखे बिल्वु शृङ्गार रसके ओजश्रोत बनस्पति और मानव प्रकृति तथा जट प्रकृतिकी सूक्ष्म निरीक्षण भावनासे भरा हुआ यदि कोई दूत-काव्य ससारमें सफल हो सका और लोकप्रियता प्राप्त कर सका तो यह महाकवि कालिदासका अद्वितीय काव्य मेघदूत ही है।



## मेघदूतका अध्ययन—शिवका स्वरूप

[श० श्रीवासुदेवसरण धर्मवाल, प्राध्यापक, बाघी हिन्दू विश्वविद्यालय]

पश्चिमोक्त दृष्टिमें मेघदूत-नायिका सबमें कुछ भी हो, स्वयं कालिदासने मेघदूतने बड़े कीर्तनसे शिवके स्वरूपका अभिवेश कर दिया है। उसके उद्भवदिनांके वर्णनमें महाकवय शिवके पुष्यधामका शिवके गणोंका, उनके नीलकण्ठ युगुका, शिवजीके नृत्यका तथा उसके आरम्भमें गजामुरकी कृतिके परिधानका उल्लेख है [मे० ११४०] शकरको सूनी कहकर उनके त्रिघूलकी ओर भी संकेत है। गङ्गी, यमुना और गौरीके गाय भी हैं। शिवजीके घट्टहासका [मे० ११६२], उनकी जटाशोभि बल्लोल करती हुई जल्लु तथावाका तथा पार्वतीके साथ गणके उपलब्धि-भावका भी वर्णन है [मे० ११५४]। शत्रुके युगगाथा, पार्वतीके साथ उनके विहारका, [मे० ११६४], कुवेरके साथ उनकी मंत्रीका, मित्ररिषोन्धरा उनके यज्ञोपानका, त्रिपुरकी विजयका एव उनके वृषभका भी वर्णन है। शिवजी भिनयन हैं [मे० ११२६], उनके ललाटपर द्वितीयके चन्द्रमाकी बला है [मे० ११२६], मदनका वे दहन कर चुके हैं, इसलिये जहाँ शिवका निवास है वहाँ कामदेव जानेसे डरता है। देवागनामंके दर्पणके समान काममें आनेवाले रजतगिरि कीलासके उत्सर्गमें तो शालकापुरी ही बसी हुई है। शिवजी पशुपति हैं [११६०], उनके चरण स्यासकी परिक्रमा और दर्शन करके भङ्गानु जन स्थिर पद पर्याप्त भनाकृतिसमय मोक्ष पानमें समर्थ होते हैं [मे० ११२६] जो शिवके प्रथम शक्ति गणोंका स्थान है।

स्वामिशक्तिकेय और उनके जन्मका भी उल्लेख कविने किया है। शक्तिकेय स्कन्द क्या है ? शिवजीका जो सूर्यसे भी अधिप प्रमायासी तेज है वही शक्तिके मुखमें संचित होकर कुमारके रूपमें प्रकट हुआ है। शक्त्यादित्य दृढबहमुखे समृत तद्धि तेज, मे० ११४७]। कुमारका निवास स्थान देवगिरि है, मेघको वहाँ जाकर गुप्ताकार जलविन्दु बरसानेका आदेश है क्योंकि स्कन्दका जन्म देवामुर-राज्यमें देवसेनानी रक्षाके लिये हुआ था, इसलिये वे पूजाकी प्रशस्तिके अधिकारी हैं। कालिदासने स्कन्दके मयूरको भी स्मरण किया है। पुत्रके शक्तिसय प्रेमके कारण भवानी पार्वती कुमारके वाहन मयूरके गिरे हुए पक्षको कान्ता शलकार बनाने पहनती हैं। उस मयूरकी शृङ्गके द्वारा भानन्दित करनेका भी मेघको परामर्श है। इस प्रकार अनेक प्रकारसे वृषभकोतन शिवके स्वरूपका निर्देश कालिदासने मेघदूतमें किया है। इस स्वरूपपर विस्तृत विचार करनेकी आवश्यकता है।

कविने अनुसार मेघ तो कामरूप पुरुष है और हलने अपने कीर्तनसे कामको भस्म कर दिया था, इसलिये भी शिव और कृपात्मक मेघका प्रतिष्ठ सम्बन्ध है। वस्तुतः कालिदासका सम्पूर्ण दार्शनिक विज्ञान शिवके स्वरूपके पीछे छिपा हुआ है। शिव, पार्वती और कुमार कौन हैं, इसपर सूक्ष्म विचार कर लेनेसे हम केवल कालिदासके ही नहीं, चरन् अन्य भारतीय साहित्यके

विद्वान्त्वोरों भी नहानुसूतिके साथ समझ सकेंगे। कालिदास उदृष्ट मोटिके अद्वैतवादको माननेवाले थे। वेदान्त-प्रतिपादित ब्रह्मको ही वे शिव कहते हैं। ब्रह्मकी शिव सजा वेदोंमें भी गई स्पष्टोपर आई है—

नमः रामभावाय च भयोभवाय च नमः रामराय च भवस्वराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

[मनु १६।४१]

यहाँ शिवके शम्भु, शबर, महाकर, भयोभव नाम आए हैं। कालिदासने शिवकी अष्टाष्ट सत्ताका अरावर गुणवान किया है। जो ब्रह्म सब लोकोंका अधिष्ठाता है, जिसकी आत्मशक्ति अपने गुणोंके मुक्त होकर प्रकृतिकी रचना और उसके निरर्जनका कार्य करती रहती है, वही अम्ब्यात्मा, भज स्वयम्भू, अष्टमूर्ति, [रघुपंच २।३६] भूतपति महेश हैं। जिन अष्ट स्वरूपोंकी स्तुति कालिदासने शकुन्तलाके अमल-सलोचना की है वे ही शीताने की हैं—

भूमिरापोऽजलो वायुः स मनो बुद्धिरिव च ।

अह्वार इतीय मे गिम्वा प्रकृतिरष्टधा ॥ ७।७॥

[पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन बुद्धि और अह्वार, इन आठ रूपोंमें शैवी प्रकृति विभाजित है।] शिवके स्वयम्भू, विष्णु और शिव, इस त्रिमूर्तिके अर्द्ध भागका भी प्रतिपादन किया है। ब्रह्माका वर्णन करते समय उन्होंने अष्ट कहा है कि वे शिव, ब्रह्मा और विष्णुमें कोई भेद नहीं मानते [कुमारसंभव २।४]।

कालिदासके दार्शनिक मतमें एक अष्टाष्ट सुख और अर्द्धत ब्रह्म ही परम तत्त्व है। उनको निवेद-शुभिकी अन्वितपक्षके उमान ब्रह्माका अष्टाष्ट और निर्भीक प्रतिपादन करने वाली हैं। रघुपंचके दशम सर्गमें [१६ से ३२ तक] शीरसापर-शिवक अनाङ्गनस-शोचर शेषाश्रीव विष्णु भगवानको प्रणाम करके देव लोग उनकी स्तुति करते हैं।

शिव, विष्णु और ब्रह्माने जो गृह्य-गृह्य-वर्णन कालिदासने किए हैं उनमें भी अन्वोन्व-सम्बन्धित भाव और पर है। शिवका अर्द्धत स्वरूप कुमारसंभवके अनेक श्लोकोंमें आया है—

कलितान्मोन्वसामर्ष्यं पृथिव्यादिभिरारम्भि ।

येनेद प्रियते विरवः पुर्योर्मानमिवाभ्यनि ॥ [कुमार-संभव, ६।७६]

शिव विरवगुणैर्बुद्ध [कु० ६।८२], विरवात्मा [कु० ६।८८], शैवीकनद-अन्व [कु० ७।५४] और शोचिकारके अन्वपद [कु० ७।४८] हैं। वह शिव किसीकी स्तुति नहीं करता, उसकी शक्त स्तुति करते हैं, यह किसीकी अन्वना नहीं करता, उसकी शक्त अन्वना करते हैं [कु० ६।८३], वह अन्वना अन्वना और मनोरमोका अधिपति है। [कु० ६।१७], बाप्री मन और बुद्धिकी वहाँ पद्वि नहीं हैं, उसकी शक्त अन्वना प्राप्त करता है ?

वि देवः सृजति व्यनभूतं येन विप्रयि तत् ।

अथ विदवस्य महर्णा भागः नम एष ते ॥ [कु० म०, ६।३२]

अन्वने अर्द्धतका प्रतिपादन करके कालिदास आगे बढ़ते हैं। जो अन्वत पुरुष लोक-लोकान्तर्गता अधिष्ठाता है, वही हमारे आत्म-तत्त्वके प्रतिष्ठित है शीताने जिसे अन्वत कहा है [अमर परम अ. ७. ७। ८। ९] उसमें और हृदय-देवके अन्वित आन्तरिकके अर्द्ध भेद नहीं है। शीताने शोच-शोचन विचार कालिदासको मान्य है—

इदं शरीरं क्रीन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।  
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विद्वि ॥ [गीता, १३।१]  
क्षेत्रज्ञ चापि मा-विद्वि सर्वं क्षेत्रेषु भारत ।  
क्षेत्र-क्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥२॥

[हे प्रजुन ! इसी शरीरको क्षेत्र कहते हैं । इस क्षेत्रको जो जानता है उसे इस शास्त्रको जानने-  
वाले क्षेत्रज्ञ कहते हैं । हे भारत ! सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ मुझे ही समझो ; क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका जो  
ज्ञान है वही मेरा ज्ञान माना गया है ।] इस प्रकार गीताके अधर, क्षेत्रज्ञ, तद्विद् प्रादि शब्द  
भी काहिदाने के लिए हैं—

यमदार क्षेत्रविदो विदुस्तमास्मानमात्मन्यवलोकयन्तम् । [कुमार०, १।५०]  
योगिनो यं विचिन्वन्ति क्षेत्राभ्यन्तरवर्तिनम् ।  
धनामृतमय यस्य पदमाहुर्मनीषिणः ॥ [कुमार०, १।७७]

कानिवाचने उसी योगसाधना-साधका वर्णन किया है जिसका प्रतिपादन गीतामें है—

'योग्यासी पुरुष एषे शुद्ध आसनपर ध्यना स्थिर प्रायण जगामे जो न बहुत जेना हो न नीचा ।  
उत्पर पहले दर्भ और फिर भृमल्लासा और यस्य विद्यारवे । वहाँ विस और इन्द्रियोका व्यापार  
रोषकर तथा मनको एकाग्र करके आत्म-बुद्धिके लिये आसनपर बैठकर योगका धम्यास मारे ।

काय धर्मात् पीठ मस्तक और धीवाको सम करके स्थिर होता हुआ, दिवाप्रौको न बने और  
नासिकासे अग्र भागपर दृष्टि जमावे । मायुर्हित स्थानसे रक्ते हुए बीपकनी ज्योति जैसे निश्चल  
होती है, वही उपमा चित्तको समत करके योग्याग्र करनेवाले योगीकी भी दी जाती है । योगातु-  
ष्टानसे निश्चल हुआ चित्त स्वयं आत्माको देखकर आत्मामे ही समुष्ट हो रहता है.....।

इसकी तुलना कुमारसभ्य [ १ । ४४-५० ] से करनी चाहिए—

स देवदाहद्रुमवेदिकाया शार्दूलचर्मव्यवधानवत्याम् ।  
भासीनभासप्रशरीरपातस्वाम्बक सयमिन ददर्श ॥  
पर्मकवम्बस्थिरपूर्वकायमृज्जामत सन्मितीयपासम् ।  
उत्तानपाण्डुवसन्निवेशात् प्रकृत्स्वराजीवमिवाकमण्ये ॥  
शुजगमोप्रद्वजकलाप कण्विसक्त द्विगुणससूनम् ।  
कठप्रभा-सम-विशेषनीला कृष्णत्वच यन्पिमती दधाम् ॥  
निभिरप्रभाशानिमितोन्नारैर्ध्रुविक्रियाया निरतप्रसवं ।  
नेत्रैरविस्फन्दितपस्ममार्तलंघनीवृत्तप्राणमधोमधूर्ध्व ॥  
ममृष्टिसरम्भमिवाभ्यान्नुवाहमपामिवाधारमनुत्तरणम् ।  
अन्तरचरणम मरुता निरोधानिर्वातनिष्पन्पमिव प्रदीपम् ॥  
एपासनेवान्तरस्यमार्गज्योतिं प्ररोहैरदित्ति विरस्त ।  
मृणालभूत्राधिक सोपुमार्गं वासत्य लामो म्लपयन्तमिन्दो ॥  
मनोनवडारनिगिद्धृगिं हृदि व्यस्तथाप्य सपाधिवस्यम् ।  
यमदार क्षेत्रविदो विदुन्ममात्मानमात्मन्यवलोचयन्तम् ॥

“ आसन-मृत्यु वामने देवदारभोवे धनोभागमे वनी हुई वेदीपर बाधाम्बर विछानर बैठे हुए समाधिनिष्ठ शिवकी देखा । वे बीरासनसे धरीरने ऊर्ध्व भागको निश्चल करके मेरुदण्ड सीधा ताने हुए थे, उनके दोनो हाथ-अदेश कुछ भागेकी झुने हुए थे, हथेलीके ऊपर रखी हुई हथेलीको प्रकुन्त कमलमे समान धनमे धारण किए हुए थे । भुजगोसे लिपटी हुई जटाभोवाले, वानोसे लटकती हुई दुहरी रत्नाश मालाभोवाले नीलकण्ठी प्रभाके मिलनेसे विवृद्ध वान्तिवामी वृष्ण भृगु-छात्रा गलेमे गाँठ लगाकर पहने हुए धाकरबी, नीचे छूटती हुई प्रवाहाकी विरणोवाले उन नेत्रोसे नासिकाके धम्रभागको देख रहे थे, जिन मन्द प्रकाशसे मुक्त नेत्रोकी उग्र पुतलियाँ निश्चल थी, जो भू-विशेषमे धनासक्त थे तथा जिनका नियोग्मेय वायं भी बन्द था । वृष्टि-सशोभसे रहित भेषके समान तथा तरंग रहित तालके समान प्राणापानादि धारीरूप बाधुभोवा निरोध करके वे निष्काम्य प्रवोपकी भाँति स्थित थे । कपालस्य विवृष्टि मार्गसे भीतर प्रवेश पाकर सिरपर फूटती हुई तेजकी किरणें बमलसे भी अक्षिज कोमल हनुकी काँठकी फीकी कर रही थी । इस प्रकार प्रक्षिप्तमानसे धामे किये हुए मनपने, समस्त इन्द्रियोकी वृत्तियोसे हटाकर, हृदय देशमे अधिष्ठित करने उस परमात्म-वत्त्वको आत्माने ही प्रत्यक्ष कर रहे थे, जिसे क्षेपविद् लोग 'दूदध' ब्रह्म कहते हैं ।

शिव, विष्णु और ब्रह्माका अद्वैतभाव, शिव और ब्रह्मके धारमाका सादारण्य और योग-द्वारा उस धार ब्रह्मका साक्षात्कार ही पानिदानका धार्शनिक मत है ।

### शिवके द्वारा मदन-दहनका रहस्य

शिव जिस समय धारम-प्रत्यक्ष करना चाहते हैं, उस समय काम उनके मार्गमे विघ्न करता है । उस कामको वे रूपमे धामे करते हैं । मोधि-नाम करनेसे पूर्व भगवान् बुद्धको भी मार-विषय करना पडा था । काम और शिवका सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है । कामकी सभा वृष है, वृष नाम नैमवा है । मेघ ही वृषाकाभि इन्द्रका कामरूप पुत्र्य है, पर्वत वृष, पाग भीर मेघ एक ही वत्त्वके नामान्तर हैं । जिस भेषको दूत कल्पित करने का अपने बायोहारोर प्रवास करता है, उसको धारम्भार परामना है कि वह शिवको प्रसन्न करे भक्तिते नया होकर हर-वराणम्भासकी परिग्रमा करे तथा अपना स्निग्ध वभीर घोष, पशुपतिके सगीत-साजके धामे लाये । कामका निषह करनेवाले । शिव, कामके किस प्रकार प्रसन्न हो सकते हैं, इसका उत्तर शिव-धार्शनिका विधातु है । पार्वती सुपुम्णा नाडीका नाम है । मेरुदण्ड हिमालय है, इसीके भीतर सुपुम्णा है । इस मेरुदण्डमे द्वाद पक्ष और तंतीष पर्व यह अस्ति-धोर हैं । वे धोर एक दूसरेके सटे रहते हैं । मेघ ही पर्वत है [पर्वतिह सन्वस्य] । उस पर्वतके भीतर रहनेवाली सुपुम्णा पर्वतराजकी पुत्री पार्वती है । अस्ति धोरके भीतर एक छिद्र है, पर्वति परस्पर मिलनेमे वह रुद्र, दीर्घ नविकावार हो जाता है । इसीके भीतर सुपुम्णा नाडी है । वह नाडी अस्तिरूपमे होती हुई वृष्ट-धामे धवस्तूत होकर सरो नीचेके भूताधार तक तब आती है । पर्वतिरूपके भीतर पहले रवेत, फिर विभूति गणका

१. शक्तिमी पानी ताके चरणाउर एव च ।

२. महाशिव भूतानि ब्रह्मभूतानि उच्यते ॥ श्री १२१.५६

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।  
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विद्वि ॥ [गीता, १३।१]  
क्षेत्रज्ञ चापि मा-विद्धि सर्वं क्षेत्रेषु भारत ।  
क्षेत्र-क्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥२॥

[हे अर्जुन ! इसी शरीरको क्षेत्र कहते हैं । इस क्षेत्रको जो जानता है उसे इस शास्त्रको जानने-वाले क्षेत्रज्ञ कहते हैं । हे भारत । सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ मुझे ही समझो । क्षेत्र और क्षेत्रज्ञता जो ज्ञान है यही मेरा ज्ञान भाग्य गया है ।] इस प्रकार गीताने भयार, क्षेत्रज्ञ, तद्विद्वि आदि शब्द भी कालिदासे से लिए हैं—

यमक्षर क्षेत्रत्रिदो विदुस्तयात्मानमात्मन्यवलोकयन्तम् । [कुमार०, १।५०]  
योगिनो य विचिन्वन्ति क्षेत्राम्यन्तरवर्तिनम् ।  
अनाश्रुत्समम यद्य पदमाहुर्मनीषिणः ॥ [कुमार०, १।७७]

कालिदासेने उसी योगसाधना-मार्गका वर्णन किया है जिसका प्रतिपादन गीताने है—

योग्याम्नासी पुरुष एते शुद्ध भासनपर मपना स्थिर भासन लगावे जो न बहुत ऊँचा हो न नीचा । उसपर पहले दर्भ और फिर मृगछाला और वस्त्र विछावे । वहाँ चित्त और इन्द्रियोंका व्यापार रोककर तथा मनको एकाग्र करके आराम-शुद्धिके लिये आसनपर बैठकर योगका अभ्यास करे ।

बाय धर्मात् पीठ मस्तक और श्रोत्रोंको सम करके स्थिर होता हुआ, दिशाओंको न देखे और नासिकाके धम्र भागपर दृष्टि जमावे । वायुरहित स्वानमे रखे हुए दीपककी ज्योति जैसे निश्चल होती है, यही उपमा चित्तको तपत करके योग्याभ्यास करनेवाले योगीकी भी दी जाती है । योगानुष्ठानसे निरुद्ध हुए चित्त स्वयं आत्माको देखकर आत्माने ही सतुष्ट हो रहता है . . . ।

इसकी तुलना कुमारसम [ ३ । ४४-४० ] से करनी चाहिए—

त देवदारुद्रुमवेदिकाया धारूलचर्मव्यवधानवत्त्वाम् ।  
भासीनमासप्रदाधैरपातस्थान्यक सयमिदं ददर्श ॥  
पर्यकत्रयस्थिरपूर्वकाममृज्वायत सन्नमितौ भवाद्यम् ।  
उत्तानपाशिद्वयसन्निवेशात् प्रफुल्लराजोवमिवाकृषण्ये ॥  
भुजगमोप्रद्वजटानलाप पर्याविसक्त द्विगुणासयूत्रम् ।  
कठप्रमा-सन विशेषनीला कृष्णत्वण यन्निभती दधानम् ॥  
किञ्चित्प्रकाशरितमितोश्चतारैर्भूर्निक्रियाया निरतप्रसंगे ।  
नेत्रैरविस्पन्दितपलममालैर्लक्ष्मीकृतप्राणमधोमसूत्रे ॥  
अश्रुष्टिसरम्भमिवाभुवाहमपामिवाधारात्मनुत्तरगम् ।  
अन्तश्चराणा मस्ता निरोधान्निर्वृतिनिष्कम्पमिव प्रदोषम् ॥  
कपालनेत्रान्तरलन्वमार्भ्योति प्ररोहैश्चित्त शिरस्त ।  
मृणालसूत्राधिकसौकुमार्या बालस्य लक्ष्मी व्यपयन्तमिन्दो ॥  
अनोनवद्वारनिषिद्धवृत्ति हृदि व्यवस्थाप्य सपाधिवस्यम् ।  
यमदार क्षेत्रत्रिदो विदुस्तयात्मानमात्मन्यवलोकयन्तम् ॥

“ भ्रातृन्-मृत्यु कामने देवदास्योके श्रयोभागमे वनी हृई वेदीपर बाधाम्बर विद्यावर बँटे हुए समाधिनिष्ठ शिवको देखा । वे बीरसन्तो शरीरके ऊर्ध्व भागको निश्चल करके मेरुपट्ट सीधा ताने हुए थे, उनके दोनों रक्षण-प्रदेश गुच्छ धागेनो झुके हुए थे, हृयेलीके ऊपर रक्खी हृई हृयेलीको प्रफुल्ल वमलने समान शवमे धारण किए हुए थे । भ्रुजगोसे लिपटी हृई जटाधोवाले, कानोसे लटकती हृई दुहरी रत्नाक्ष माताधोवाले नीलकण्ठी प्रभाके मिलनेसे विबुद्ध वाग्निवासी कृष्ण भृगु-प्राप्ता गलेमे गौठ कपाबर पहने हुए धकरजी, नीचे छूटती हृई प्रकाशकी विरगोवासे उन नेवाँसे वायुकाके मग्नभागको देस रहे थे, जिन भन्द प्रकाशसे युक्त नेत्रोकी जय पुतलियाँ निरलत थी, जो भ्रूविशेषने भ्रनासक्त थे तथा जिनका निवेद्योन्मेष कार्य भी भन्द था । वृष्टि-सक्षोमसे रहित मेघने समान तथा तरंग रहित साक्षके समान प्राणोपागादि शरीररूप भाद्रुधोवा निरोध करके वे निष्काम्य प्रदीपकी भाँति स्थिता थे । कपालरूप विद्युत्ति-मार्गसे भीतर प्रवेश पाकर सिरपर फूटती हृई शैलकी किरणें जलसे भी शमिव कोमल इन्दुवी वाग्निशो फीकी कर रही थी । इस प्रकार प्रशिधानसे वसने निवेद्ये हुए गणको, रामस्त इन्द्रियोकी वृत्तिशोसे हटाकर, हृवय-वेशमे श्रधिष्ठित करके उस परमात्म-तत्त्वको आत्माने ही प्रत्यक्ष कर रहे थे, जिसे शैशविद् शोग फूटस्थ<sup>१</sup> ब्रह्म कहते हैं ।

शिव, विष्णु और ब्रह्माका भद्रतभाव, शिव और ब्रह्मस्य शरधाका तदात्म्य और योग-द्वारा उस श्रधार ब्रह्मका साक्षात्कार ही कामिदासका शार्थनिब मव है ।

### शिवके द्वारा मदन-दहनका रहस्य

शिव जिस समय श्रात्य-श्रगण करना चाहते हैं, उस समय काम उनके मार्गमे विघ्न करता है । उस कामको वे अपने वशमे करते हैं । शोवि-न्नाश करनेसे पूर्व भगवाद् बुद्धको भी मार-विजय करणा पडा था । काम और शिवका सम्बन्ध श्रात्यलत पलिप्त है । कामकी सत्ता वृष है, वृष नाम नेत्रवा है । मेघ ही वृषाकपि इन्द्रका कामरूप पुरुष है, शर्वाव् वृष, काम और मेघ एक ही तत्त्वके नामान्तर हैं । जिस मेघको ब्रूत श्ररिषत करके यज्ञ श्रपने कामोद्धारोका प्रकाश करता है, उसको श्रात्मन्वार परामर्श है कि वह शिवको प्रसन्न करे भक्तिसे गल होकर हर-चरगुन्यासकी परिष्कारा करे तथा श्रपना श्रिग्न्य शभीर शोप, पशुपतिके सपोत-सायके काममे लावे । कामका निषह करलेवाले । शिव, कामसे किस प्रकार प्रसन्न हो सक्ते हैं, इसका उत्तर शिव-पार्वतीका विवाह है । पार्वती सुपुम्या नाडीका नाम है । मेघदद हिमात्म्य है, इकीके भीतर सुपुम्या है । इस मेघददमे छद्म चक्र और तैतीस पर्व या श्रस्वि-गोर हैं । वे गोर एक दूसरेसे सटे रहते हैं । मेघ ही पर्वत है [पर्वशि सन्वस्य] । उस पर्वतके भीतर रहनेवाली सुपुम्या पर्वतराजकी पुत्री पार्वती है । श्रस्वि-शरीरके भीतर एक छिद्र है, पर्वति परस्पर मिलनेसे वह रध्र, दीर्घ श्रलिकाकार हो जाता है । इतीके भीतर सुपुम्या नाडी है । वह नाडी श्रस्विच्छके होती हृई वृष्ट-वसामे श्रवस्फूत होकर सबसे नीचेके मूलाधार चक्र तक आती है । पर्वतिशके भीतर पहले श्वेन, फिा विभूति श्रगण

२. श्रस्विनी वृषी लोक श्रगात्र श्रव न ।

पर- श्रवनि भूशानि ब्रूतलाडपर उ-वोडे ॥ शो २१।१६।

भूरा मज्जामय पदार्थ भरा रहता है जो मस्तिष्कके कोशोंमें भी पाया जाता है। इसी मज्जामय सुपुम्प्याके भीतर एक भूषम विवर है जो नीचेसे ऊपर तक भायते रहता है। सुपुम्प्याके नाईं और दबा और दक्षिण ओर विंगला नाम की नाडियाँ हैं जो सुपुम्प्यासे सबद्ध रहती हैं और सहस्र जालसे फैलती हुई अन्तमें कपालस्थ धात्राचक्रमें सुपुम्प्यासे मिल जाती हैं। ये नाडियाँ सब प्राणकी वाहिका हैं और प्राण ही जीवन-तत्त्व है।

भौतिक पक्षमें इस प्राणके आधार में सब नाडी-जाल और पद् चक्र हैं। नाडियोंकी सूक्ष्मताकी कोई सीमा नहीं है। उनकी संख्या योग-शास्त्रके अनुसार ७२००० है। वस्तुतः प्राथमिक शरीर-शास्त्रीके लिये भी समस्त नाडी-संख्याका निर्धारण कठिन है। इन सबमें मुख्य सुपुम्प्या ही है। सूक्ष्म-शरीर-विज्ञान जीवन-तत्त्वके भौतिक आधारका ही परिचय पा सका है, उसका भोग्यतन [किजियो लौजिकल] रूप प्रयोग-साध्य है। परन्तु योग-विद्या मानसिक पक्षमें भी प्राणकी गतिका निर्देश और सूक्ष्म परिचय कराती है। इसीलिये भौतिक प्रयोगसे जिस वस्तुका ज्ञान नहीं हो जाता, ध्यानमें इन्हीं शारीरिक रहस्योंका मानसिक क्रियामोके साथ प्रत्यक्ष हो जाता है। तन्मन्मोमें इसके दो प्रकारसे वर्णन मिलते हैं। कहीं उसे भोग्यवर्तन-पक्षमें शरीर सपठनमें जीवन-तत्त्वका अधिष्ठान हमभागेके लिये सुपुम्प्या आदि सजाओसे काम लिया जाता है और कहीं उस वर्णनको प्राग्भारिक स्वरूप बेकर धिय, पार्यती, कुमार, प्रमथ आदि सजाएँ कल्पित करके योग-प्रत्यक्षको धर्मो-द्वारा प्रकट किया जाता है। पद् चक्रोंका स्थान और क्रम इस प्रकार है—

१. मूलाधार [फोस्फीजियल रीजन]—इसका संयोग गुदासे है। इसमें चार पर्व (वटि-दल) हैं जो कि ऊपरके पर्वोंकी अपेक्षा छोटे और बगुणें दशांगे हैं। वे चारों पृथक् पृथक् स्फुट स्वरूपके न होकर एक ही अस्तिसे प्रतीत होते हैं जिसे श्रेयंजीमे कौण्डिनस कहते हैं। कौण्डा अस्ति भी यही बात होती है। कूटलिनी शक्ति यही निवास करती है। शिव-भारवतीके विवाहमें कूटलिनीको जगाकर ही ब्रह्मांड या मस्तिष्कमें ले जाते हैं। इसीको योगकी परिभाषामें सर्पिणी कहते हैं क्योंकि यह सर्पिणीकी भाँति कूटल मारकर छोड़ी रहती है। मूलाधारमें धृष्यी तत्त्वका स्थान है।

२. स्वाधिष्ठान [सेकल रीजन]—इसका अधिष्ठान त्रिगुमे है। इसमें पाँच पर्व हैं। ये पाँचों भी एक ही अस्तिमें जुड़े रहते हैं जिसे श्रेयंजीमे सेकल कहते हैं। इन्हीं दोनो अस्तिमोके ती पर्वोंको निकालकर प्राथमिक शरीर-शास्त्री, मेरुदण्डमें २४ अस्तिमोरोखी गणना करते हैं। पर भारतीयोंने इस शक्तिको तीसरी पर्वति युक्त ही माना है। स्वाधिष्ठान चक्रमें जल-तत्त्वका अधिष्ठान है।

३. मणिपूर [सम्बर रीजन]—इसका स्थान नाभि है और मेरुदण्डके इस भागमें ५ पर्व हैं। तेज इसका तत्त्व है। इन तीन चक्रोंका भेद कर केनेपर योगी विराट् भावमें युक्त हो जाता है, उसकी मोह-निद्रा टूट जाती है।

४. अनाहत [ओसंज रीजन]—मेरुदण्डमें १२ पर्वोंवाला यह चक्र हृदयमें स्थित है। यहाँ वायु तत्त्वका स्थान है।

५. विशुद्ध चक्र [सर्विक रीजन]। इसमें सात पर्व हैं और यह शीथामें स्थित है। यहीवे प्राणसुगुणक शब्दका जन्म होता है। इसके भेद करनेपर योगीमें आकाश तत्त्वपर विषय प्राप्त हो जाती है।

६. मायाचक्र—मस्तिष्क प्रदेशके भ्रूमध्य या त्रिबुदीये योगी इसका स्थान मानते हैं। यहाँ सुषुम्णाका भ्रन्त हो जाता है। यहाँ मन, बुद्धि और महत्कारका निवास है। इसी स्थानपर जान-पशु है जो तृतीय नेत्र है। यही शिवका वास है।

जब योगी पाँच चक्रोंको सिद्ध कर लेता है, तब उसे काम-बाधा नहीं सता सकती। शिवके शिष्ये कालिदासने कहा—‘अरुणहार्थं मदनस्य निग्रहात्’, अर्थात् मदनके निग्रहके कारण रूप मा सौन्दर्यं जाने चित्तको महो हृत् एकता। पहले शिवने मदनको भस्म कर बाधा है [गस्तावसेप मदन चकार] तभी ये पार्वतीके साथ विवाह करके पद्मानन कुमारको जन्म देते हैं। धारा-चक्रसे ऊपर सहस्ररत्न-कमल [सिरेपल रीजन] है जहाँपर साक्षात् शिव निवास करते हैं।

कुमारका जन्म शिवके स्पन्दित तेजसे होता है। यह तेज पार्वती रूपी सुषुम्णामें निक्षिप्त होकर क्रमशः अक्षी चक्रों के द्वारा पृष्ठ और साहित होता हुआ कृपा स्कन्दको जन्म देता है जो इसी कारण अहं माताओंके पुत्र या पाण्डातुर कहे गए हैं। कालिदासने भेद्युक्तमें स्कन्दके जन्मका रहस्य सूत्र रूपमें मिल दिया है—

उत्र स्कन्द नियतवर्षति पुष्पमेपीकृतात्पा  
पुष्पासारं रनपयतु भवाग्योभवगावसार्त्रं ।  
रसाहेतोर्नवदामिमृता वासवीना चमूना-  
मत्यादित्य हुतवहमुखे सभृत तद्वि तेज ॥१५७॥

[यहाँ देवगिरिपर बसनेवाले कुमारको अपना अन्न-पुष्पात्मक रूप बनाकर प्राकाशगगने सीधी हुई पुष्पवृद्धिसे स्नान कराना। देवसेनाकी रसाके हेतु पावकके मुखमें सचित सूर्यसे भी अधिक प्रभाशाली शिवका तेज ही कुमार है —

आर्मादित्य हुतवहमुखे सम्भृत तद्वि तेज ।]

यही स्कन्दकी परिभाषा है। हुतवह अर्थात् अग्नि नामक सुषुम्णाके मुखमें सूर्यसे भी अधिक प्रकाशित शिवका तेज ही स्कन्द है। क्रोधमें स्कन्दकी पत्नीका नाम देवसेना है। इन्द्रियोंकी सापेक्ष और सामसिक वृत्तिमोहा इन्द्र देवासुर-संग्राम है। जब अज्ञानुखी इन्द्रियाँ कामसे हारने लगती हैं, तब वे समाधिमें बैठे हुए शिवसे प्रार्थना करती हैं कि वे उन्हें एक सेनापति दें। देवोंने भी यही कहा है—

१. सुसुम्नः। सुसुम्नः—आनन्दः। पुत्र अग्निने फलसे सुसुम्न बनता है। स्कन्द के मेरुके पर्याप्त स्कन्द अम शेष है। लोकमें स्कन्दका सम-व्यक्त की संकल्पसे है—वदानन, स्कन्द-पत्नी। आकाशकला जो चित्र भी आधर एतेलने दिवा है उनमें कुमार वदानन दिखाए गए हैं।

२. स्कन्द सुषुम्णा नासोमें ही रहते हैं। शरीर विज्ञानमें सुषुम्णाके पाँच स्वाभाविक विभाग दो बंध हैं, दादा सबसे ऊपर है जहाँ सुषुम्णा (स्वायत्त कोर्ट), कौन रज (मैगनाम फोरमेन, अर्थात् बने वेद) में दोरी हुई मस्तिष्क या मत्तारतमें फैल जाती है। इस पाँच चक्रोंकी शक्तिप्रवाहिनियों शक्तिशाली सम्बन्ध क्रमशः गुहा, जिग, नाभि, हृदय और कण्ठमें है। उदाहरणके लिये मस्तिष्क चक्र, नाभि देहाका नियन्त्रण करता है जो उसका स्थान सुषुम्णा में हो है। इसी प्रकार अन्यत्र भी है।



तदिच्छामो विभो स्रष्टु सेनान्य तस्य ज्ञान्तये । [ कुमार०, २।३१ ]

[ उस असुरकी परास्त करनेके लिये हम लोग एक सेनापति चाहते हैं । ] शिवजीने मदनकी भस्म क्रिया, तदुपरान्त जगन्नी तपस्यासे सुपुत्र्या नाडी-प्राय योगकी साधनासे शिव धीर पार्वतीका विवाह हुआ अर्थात् व्यक्तिकी चिदात्मिका शक्ति जो अधोमुखी थी वह अन्तर्मुखी होकर सहस्रारदलमें स्थित पर-बिन्दु शिवसे समुक्त हो जाती है, फिर विपयोंसे उसे कोई भय नहीं रहता । जो इन्द्रियाँ और तत्वोंको भय देती हैं, वे ही प्रमथोंके रूपमें शिवके पार्षद [ परिपदि साधु ] होकर रहती है । 'अस्यादित्य, हुतयह मुखे समृष्ट तद्वि तेज' जो समभनेने लिये तीनों नाटियोंके नाम जान लेंगे पाहिएँ । सुपुत्र्या=बलि स्वरूपा, सरस्वती, सोहित-गर्णा । इरा=बन्द-स्वरूपा, गगा, सतोगुणी, समृष्ट विग्रहा, पीत पर्णा । विंगला=सूर्य-स्वरूपा, सजसदर्णा, रौद्रादिमया, यजिणी धनुना, राजयो ।

सुपुत्र्याका नाम बलि या हुतयह है । इसीमें प्रपना तेज हवन करनेसे शिव यज्वा कहलाते हैं । साधनामें पुरपका तेज इसी बल्लिने मुखमें लक्षित होता रहता है और जब छोटी पत्रोका भेद पूरा हो जाता है तभी उस कुमारका जन्म होता है जिसकी अव्ययतामें देवताका कभी नहीं हारती । दुष्टाणिके अनुवार कुमार वे हैं जो आजन्म शङ्खचारी है ।

सहस्रारदलमें जो शिव है वे ही अक्षर तत्व हैं । वही समस्त ब्रह्मांडकी चिद्-शक्ति हैं । मूलाधार चक्रमें शक्तिपीठ है जहाँ व्यक्तिकी शक्ति निवास करती है । शक्तिके तीन फोण कहे गए हैं— इच्छा, ज्ञान और क्रिया । इहोका नाम त्रिपुर है । इनके मध्यमें बसनेवाली शक्ति त्रिपुरसुन्दरी वही गई है । इसी त्रिपुर या शिकोणमें कुटल मारकर शान्त बहनेवाली शक्ति की ध्वजगत कल्पना सर्पिणीकी है । इसीसे शिवके शरीरमें भुवय लिपटे रहते हैं धीर शिवको अहिलय धारण करीयाना कहा गया है । कालिदासने कहा है—

हिरवा ठस्मिन् भुवग-वलय शम्भुना दत्तहस्ता ।

श्रीठासंभे यदि च विनरेत् पादचारेण शरीरे ॥ [ मेघ०, १।६४ ]

मूलाधारमें यह सर्पिणी शिवरूप ज्योतिके चारों ओर लिपटी रहती है, परन्तु प्राज्ञानक्रममें पहुँचकर जब शिव-पार्वतीका संयोग हो जाता है तब यह कुडकिली पूरी खुल जाती है, मानो शिवजीने अपने सर्ववलयको त्याग दिये हों । जहाँतक शरीरशास्त्रमें प्रत्यक्ष करनेका विषय है वहाँतक इस प्रकार शिवोणात्मिका शक्तिके रूपको जल्पशास्त्रके द्वारा हम नहीं देख सकते । मानस-प्रत्यक्षसे सम्पन्न रहनेवाली वस्तु, मत्र द्वारा कैसे जानी जा सकती है ? इसका दर्शन योगपक्षमें ध्यान

१ न उच्येतासा जलकी रचना आकाश शक्ति है । तब तन्नु समृद्ध, शक्ति नि तुओं और प्रतुधोमें शक्ति दोमेवामे संवेदनात्मक मया संकल्प तबक बादका टीस ठीक पना आकाशक नहीं तब तब है । कुछ आरपर्व नहीं यदि भारतमें योना ध्यानमें इयना कवड क संके हो । यह जो अमरथ रखना चाहिये कि जेवनाका वा भौतिक आधार है वह उनके बहुत ओके मया वा स्वरूपा परिचय करता है । कुछ साग भोगायन पक्षमें जेवनाका आधार ल वाकर ज्योती मयको ही संवेदक मान बैठते हैं । जेवना [चिरात्मक शक्ति] मन्वेविधानसे सम्बध रहता है, भौतिक रचनामें तबवा मयूस आधार मिलना है इयनिये भौतिक रानाको उपाक प्रमाण दण्ड नहीं मान सकते ।

द्वारा ही हो सकता है। ज्योति या तेज स्फुलिंगके आकारका चिबलिंग इसीका प्रतीक है। शिव इसी शक्तिके त्रिकोण या त्रिपुरणी विजय करते हैं, इससे उनकी राज्ञा त्रिपुर-विजयी है। मेरुदण्ड स्त्री पर्यन्तके त्रिरेपर उसीके एक प्रदेशका नाम कंसास है। मेरुदण्डका ऊर्ध्व गिरा ही कंसास है जहाँ आशाचक्र है। वहाँ यंसासपर ही अलवापुरी है। कानिदास कहते हैं कि यहाँ कामदेव अपने पापपर धर नहीं चढ़ाता—

मस्या देव धनपतिसस यत्र साक्षाद्वसन्त ।

प्रायश्चाप न नहति भयान्मन्मय पदपदवधम् ॥ [ मे०, २।१५ ]

[ कंसासके उत्सवमें वसी हुई अलवाके त्रिपुरा साक्षात् विवाह जानकर वही कामको अपना भीरोपी डोरीवाला धनुष धाममें सानेका ग्राह्य नहीं होता। ] ठीक भी है, आशा-चक्र-वत् सिद्धि प्रायः योगीको धाममाया नहीं सता सकती। इसीलिये यहाँ त्रिपालपमें ही किन्नरियाँ मिलकर त्रिपुर-विजयके गीत गाती है—

सताभिन्नित्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः । [ मे०, १।६० ]

वही धनपतिका मत किन्नर गाते है क्योंकि त्रिव और धनपतिके सख्य-भाव है—

उद्गायन्तु धनपतिवसा किन्नर्येभ सार्धम् ॥ [ मे०, २।१० ]

धनपति कुबेरका धनुषर वल्ल भवसर पाते ही अपने कामरूप पुरुषको शिवकी उपासना करनेका आदेश देता है। पार्यसीकी राज्ञा गृह, स्कन्दकी गृह और यज्ञीकी गृहणक है। इससे भी इनके परस्पर सम्बन्ध का संकेत मिलता है। यद्य कामको भूति है। उसने मेनेसे ही कामदेव टपका करता है। इस प्रकार पाण्डवे भरा हुआ पुरुष धनपति ही गुह्यक या रक्षा करने योग्य है। वह अपनी रक्षाके लिये उस देवकी शरणमें जाता है जिसने कामको भस्म कर दिया है, तथा फिर जिसके धनपतिद रूपसे वैश्वानो गृहका जन्म हुआ<sup>१</sup>। शिवकी पिता-पति है—

अरुण-हृदयं मदनस्य निगृह्यत् पिनाकपाणि पतिमाप्नुमिच्छति । [ कुमार०, ५।४३ ]

पिनाकको शिवका धनुष कहते हैं। निगृह्यत् पिनाकके धर्य है—

रम्भ पिनाकमिति ददस्व । [ नैगम का० ३।४ ]

पर्यात् रम्भ और पिनाक दण्डके नाम है। वही यह भी सिखा है—

कृत्तिवासा पिनाक-हस्तोऽज्यततपन्वेत्यपि निवभो भवति ।

पिनाक नाम मेरुदण्डका ही है। यही शिवका धनुष है। इस दण्डकार धनुषकी दो कोटियाँ, त्रिरे हैं। नीची कोटि गूलाकार भवभे हैं। वहाँ जो कूटलिनी गयी है, उसीको पिनाककी प्रत्यक्षा कल्पित करके उसके दूसरे त्रिरेको शिव आशा-चक्रमें ले जाते हैं। यही धनुषकी प्रत्यक्षा चढ़ाना या भवतत-धन्वा होना है। प्रायः धनुषकी प्रत्यक्षा खुला रहती है और ये दण्डकार होते हैं। जो पुरुष धनुष पर चित्त [ डोरी ] चढ़ा सकता है, वही उस धनुषका स्वामी माना जाता है। पिनाकको सबसे प्रथम शिवने प्राधिप्य किना, इसलिये वे ही उस धनुषके स्वामी हैं।

१. गुरति रजि देवनेनाभिते सुर । द कम्भ अधिपु कम्भ म यत् । [ मासुता दक्षित ] [ देवसेनाकी जो रक्षा करता है वह गृह दे और किन्हीं भीलोंमें काम मरा रहता है वह यत् है । ]

शिवजीकी सजा खटपरशु है—

भूतेषु खटपरशुगिरीशो विरिणो मृद । [धर्मकोष]

घोर यही सजा भृगुपतिकी भी है। भृगुपतिकी सजा कौबदारण कालिदासने ही दी है—  
हृदयार भृगुपतिवशोवर्त्मं मत्कौबदारणम् [मे०, १।६१]। कौबदारण सजा स्वमिकातिकेय<sup>१</sup> की भी है। इस प्रकार शिव, भृगुपति और कुमारका सम्बन्ध भी स्थापित होता है। शिव और कुमारने कोई भेद नहीं है क्योंकि शिवका ही तेज कुमार है। यह भी प्रसिद्ध है कि कुमारको उत्पत्तिमें किसी स्त्रीके गर्भसे प्रायस्सकल गढ़ों हुईं। अस्तुतः कालिदासने कुमारको अम्बिके मूत्रमें सभृत तेज लिखा है। फिर जो पिताशिवके पास है, यही अम्बिक नामक शिव-धनु खट परशुरामके पास भी था। इस प्रकार इन तीनोंमें सम्बन्ध प्रतीत होता है। योगकी साधनामें पदचक्रके भेदनके समय प्राणको जिस रूपमें होकर सुषुम्णा मस्तिष्कमें प्रवेश करती है वह द्वार ही कौब-रूप है सुषुम्णा [स्वाहनल कौट] इसके घोर विभूति यण पदापंकी बनी हुई नाडी है। वह मूलाधार चक्रके उदर, मापके चार चक्रोंमें होती हुई विदुडि-पक्ष [सर्विकल रीजद] को पारकर मस्तिष्कमें फँस जाती है। सर्विकल रीजलने प्रथम पश्चिम-पर्वतको धरणीमें ऐतसह बहा जाता है, जो अपने ऊपर आकाश या सुतोक्को उठाए हुए था। यहाँसे सुषुम्णा नाडी स्वाहनल बल्लने होकर मस्तिष्कमें जाती है। इसीसे कौब पर्वत ही स्वाहनल बल्ल है जिसे मेहुला घोबलौगाडा भी कहते हैं। इसीसे कौब-रूप या बडा देव है जिसे धरणीमें शीतलन प्रोसामेन कहते हैं। इसी विवरने तिमगायामके माय धर्मात् तिरछी भुनकर सुषुम्णा प्रवेश करती है। कूर्जलनी शक्ति जिस समय मूलाधारके जापकर शिव नामक आज्ञाचक्रमें जाती है, उसे भी इसी द्वारमें होकर जाना पड़ता है। इस रूपका दारण करना भृगुपतिके लिये बडा यत्सवी कार्य है, इसीसे कालिदासने इसे भृगुपतिवशोवर्त्मं [मे०, १।६१] कहा है। अतोयादि या हिमाद्रि धर्मात् पर्वणात् पृथुपसके उपातरने ही यह कौबद्वार बताया गया है। भृगुपति, शिवका नामान्तर है। कौब-दारण, खट-परशु, कुमार, भृगुपति, घोर शिव ये एक ही चैतन्यके नामान्तर हैं जो विशेष मुणुंकि कारण कल्पित किये गए हैं।

कौबगडसे तुल्य आगे सुभ बँनास ही सजा है [मे०, १।६२]। योगकी परिभाषामें विदुडि-चक्रने अनन्तर माताचक्र है वहाँ शिवरुप ज्योतिष्का प्रकाश है। मूलाधार-चक्रसे योग-साधनाके लिये शिव रूपका प्रारम्भ होता है उसकी सिद्धि होनेपर शिवजी बध-घट्टहास करते हैं, वही मानो सुभ बँनासने रूपमें धनीनृत हो गया है—

राशोभूत प्रतिदिनमिदं श्यामरुम्पाट्टहास [मे०, १।६२]

इसी बँनासना नाम राजगिरि है। यहाँ एक मण्डि-तट है। उसपर शिवजी, गोपीके साथ आरोहण करना चाहते हैं। मेधको चाहिए कि वह स्वमिगान्जनीच [अपने जनवत्सकी भीतर गेक गलेधाना] होकर अपने गरीरकी सीडी बनाकर शिवको वहाँ आरोहण करनेसे सहपाया दे।

१ पदनाशु/ सौबदारण-कुमार. कौबदारण। धर्मकोष।

बँनासे धर्मगान्जनीच और सौबदारणके मूलाधारको।

२ मेधो दि मन्दासु-को इत्येव स्वमिगान्जनीचः। [महिम्नच]. कर्णैश्च बहु तेज शबरका मन्दासु-दारण है।

इस मण्डितक<sup>१</sup>वा योग-ग्रन्थोमि विशद वर्णन है। पादुका-पत्रक नामक तन्त्रयोगके ग्रन्थमें मण्डितककी-बड़ी महिमा कही गई है। मस्तिकामे जो परम चिन्मय सहजदल-नभस है उसमें अ-क-य त्रिकोण है। उक्त त्रिकोणमें मण्डितक है, उसपर शुभ रजताद्रिके जमान भ्रमन्तगुह शिव सुशोभित हैं प्रथवा प्रकृति पुरुषके सयोग रूप शिव-गौरी विराजते हैं। मेघदूतमें वामरूप पुरुषको स्तम्भित करके शिव उक्त मण्डितक-पर चढ़ते हैं। इस मण्डितककी प्रभा तद्विच्छविको समानेवाली है [पटु तद्विद-वर्धारिम-स्पष्टमान मण्डितकप्रथमम्]। कानिदासेन न केवल कौबेर-ग्रहके पश्चात् कैलासका ही धरुण आवरणक सम्भवा, वरन् धरुणके मण्डितक भी नाम लिखा है। इससे इनकी योग-परिभाषाका सकेत स्पष्ट सिद्ध है—

श्री भवस्या विरचितकपु स्तम्भितान्तर्गमौष ।

सोपानत्वं कृत्वा मण्डितकरोहणायाम्प्रायी ॥ [मे०, १।६४]

[हे मेघ ! तू भागे बढ़कर अपना जन भीतर रोककर शिवके मण्डितकपर चढ़नेके लिये सोपान बन जाना ।] इन पण्णोमें कविने काम्यके ज्ञान-प्राप्त योगशास्त्रके उन धनुभक्तोंका भी पूरा समन्वय किया है।

मस्तिकानामने क्रीडाशैल [मे०, १।६०] का अर्थ बताते हुए शम्भु रहस्यका पत्रपरण देकर लिखा है—

कैलास कनकशिखरं मन्दरी गन्धमावन ।

क्रीडार्थनिमित्ता शभोर्दंभं क्रीडाशैलमभवत् ॥

[देवताभेदि शम्भुकी क्रीडाके लिये कैलास (रजताद्रि), मन्दरी (मेघ, सुमेध, हेमगिरि, महा रजतगिरि), मन्दर और गन्ध-मावन पर्वत बनाए थे, इसलिये ये सब क्रीडाशैल कहलाते हैं ।]

मेघ पर्वत या मेरुदक और उतके समीप स्थित क्रीडाशैल कैलासका परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट प्रतीत होता है। कैलासकी ध्युत्पत्ति ही क्रीडा-स्वप्न है—कैलीया समूह कैलम् [सत्य समूह इत्यण]। तेन आस्यतेऽत्र [आसू-नीला] इति कैलास [मानुषी दीक्षित], अर्थात् शिवकी क्रीडाप्रोक्ता स्थान कैलास है। यहीं कुबेर रहते हैं, यही यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध और चारण्योक्ति निपुण बिहार करते हैं, यही ध्वानावस्थित होकर योगी बकर तथा करते हैं और फिर धावती-शक्तिये विवाह करके क्रीडा करते हैं। वस्तुतः यहाँ एक ही मेरुदकके पर्वत कल्पित करके उसके भिन्न भिन्न नाम दिए हैं। इस मेरुदकका जो भाग मूलाधार-वक्रमें स्थित है उसका नाम चित्रकूट है क्योंकि चित्रा नाम सुपुम्पणा या कूटचित्री<sup>२</sup>का है, और यह चित्रिणी, मूलाधार-वक्रके धामारपर उद्वीर्य हुई ॥ चित्राका कूट ही चित्रकूट है। यही रामगिरि है क्योंकि शिवधनुको शिवकी भाँति सापने

१ शैलीका महामन्त्र—<sup>२</sup> मण्डितकके दु—इसे मस्तिकी और सकेत करता है। काली। [शानकी पुरी, शिवके पाग] में मण्डितकका पाठ है जहाँ महानेरी अथवा भाव त्यागनेसे मोक्ष होता है। मण्डितक—सहस्रारक्ष कर्मकी कथिका ।

२ भूरे और उकेन दो शब्दोंके सयोगके कारण कुण्डलिनीको कलिता या चित्रा नाम दिया गया है। ये मन्दर और हारट मन्दरके मिलनेसे चित्र वर्षा बनता है—देविएर आर्षर षण्मेवज्ञत 'सर्पेत् वावर', पादुका-पत्रक भाग, पृष्ठ ११५ ।

भी अधिज्य किया था। यहीसे काम-मुख्य उठकर कंवासकी मोदमे बसी अलकामो जाता है। मेरुदडकी एक कोटिपर विव और दूसरीपर राम हैं, इन्हीसे बीचमे यह अजगव धनुष तना हुआ या अमृतत है। कुण्डलीके विरहको सहस्रार पद्य ढके हुए है। कुण्डलीके विवर [स्वाह्नल कौलमके अन्तर्गत स्वादनल केनास] से सात्सर्ष उक्त मार्गसे है जिसके द्वारा भूलाधारमे शिव-तेजके पारो और प्रमुष्ण कुण्डलिनी प्रमुद्ग होकर ऊपर चढ़ती हुई शिवसे मिल जाती है। त्रिचिणीके भीतर ही यह मार्ग है। चित्रिणी उक्त कलिकाको समग्रता चाहिए जिसके भीतर यह विवर है। जिस प्रकार कमल अपनी नासके सिरेपर रोमिभित होता है, वैसे ही चित्रिणी और सहस्रार तन्मा हायशदल कमलका सम्बन्ध है। चित्रिणी या कुण्डलिनी परम चैतन्य ज्योति है। यही यह स्पन्दनात्मक शक्ति है जिससे सब रचना होती है। इसीकी दृष्टा, ज्ञान और मायामयी निगुणारिमया मूर्ति जीवो [पशुमो] मे सत्त्व, रज और तम रूपमे प्रकट होती है। उसीके सरोच और प्रकर्मके स्फुरणसे क्रीडा-शरीर बनता है। अन्वेदमे इसी प्रदिति धातिले भाठ पुन मत्ताए गए है। शैव दर्शनसे भी शिवकी भाठ मूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं।<sup>१</sup> योप-साधनामे सर्वाप [पनेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि], कुण्डलिनी-रूपिणी उमा और शिवके बीचमे पहकर इनका विवाह-सम्बन्ध स्थिर करते हैं। अब शिवका पारंतीके साथ विवाह एषामा जाता है तब वे सातो ऋषि विवाह-बनके सम्बन्धु बनते हैं। इस यशमे यदि इनकी मनुमति और शुभाधीर्वाद होगा तभी यह सम्पन्न हो सकता है। शिवजी कहते हैं—

विवाह यजे विततेऽय युवमर्ष्ययव पूर्ववृत्ता मयेति । [कुमार०, ७।४७]

[ विवाह-यज्ञका वितान होनेपर पहले ही मैंने आप लोगोंको अपना अर्घ्यम् वना लिया था । ]

मेपदूतमे शिवके माहन वृषका [१।५६] और कुमारके वाहन भयूरका [१।४५] भी उल्लेख है। वृष या इन्द्र, इन्द्रियकी शक्तिका कारण है। पारिणि भी इन्द्रिय शक्तिकी व्युत्पत्तिका इन्द्रसे ही करते हैं<sup>२</sup> [५।२।६३] वृष, इन्द्र और कामका भनिष्ठ सम्बन्ध है। शिवजी जिस समय तीसरे नेत्रसे उल्लेख धातिले कामको भस्म कर देते हैं तब मानो वे वृष [काम] पर आरोहण करते हैं। इस वृषपर आरोहण करनेके लिये वे कुम्भोदर सिंहकी सहायता सेते हैं, यथा -

कंवासपीर नृपमारुक्षो पादारंशानुपहृतपृष्ठः ।

अवेहि मा किंकरमष्टमूर्ते कुम्भोदर नाम निकुम्भ मियम् ॥ [रघु०, २।३५]

[कंवासके सहस्र पुत्र वृषपत् आरोहण करनेकी इच्छासे जिसकी पीठपर पैर रखकर शिव चढ़ते हैं वह मैं अष्टमूर्तिका किंकर कुम्भोदर नामका सिंह हूँ ।] काम-शक्तिका वर्णन गीतामे भी यही है—

महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।

[कामदेव बड़े भोगवाला है ।] काम और खानाका सदा साथ है, क्योंकि जो जलतरव

१ श्री चित्तिरतिदेव पारमेस्वरर काम किया मात्र शक्ति-निवन्धन अमिभ्रातिवादिपरे खुतिता मद्भोचमकर्मा मन्वरात्रमोक्ष मीग रररर अर्वा [शब्द लिखें ५० ३७] । अष्टमूर्त योग अपनी विद् शक्तिसे स्फुरते ही सब मगारको अर्षिदि : मान्य है [ अर्षिदिवागार ] ।

२ इन्द्रियमे अ-मर्षम-दृष्टकिंदरार्थमे द्रु तर्षम-दरर्षमेत वा । [ अष्टाध्यायी, १।२।६३ ]

स्वाधिष्ठान-चक्रका अधिष्ठाता है, वही जिह्वामे बसता है। मूषपर चढ़नेके लिये कुम्भोदरकी पीठ-पर पैर रखना आवश्यक है। स्कन्दका वाहन मयूर है। हम बता चुके हैं कि स्कन्दका सम्बन्ध छ की सरपासे है, उसका वाहन मयूर भी पद्म स्वर सवादी<sup>१</sup> है। सर्पस्व कुण्डलिनीका स्वाभाविक ढेर मयूरसे है। परन्तु शिवकी साधनासे जन्मे हुए कुमारका वाहन होकर मयूर, कुण्डलिनी-स्वपी सपिण्डीका मित्र हो जाता है। शिवके मुटुस्थले सर्प और मोर ढेर त्याग कर बसते हैं। तात्पर्य यह कि पहले मनुष्य कुण्डलिनीके यथायं स्वरूपको न जानकर उसे विनाशकारी मार्गमें सगाता है पर 'कुमार' स्वन्दके अन्वये पश्चात् वह अपने पदचक्रोंके सममूर्ख विनियोगको जान जाता है। कामका पञ्चम्य रेतसे है, कामका निवास स्वाधिष्ठान-चक्रमे है। इसी चक्रमे जलदा निवास है, जैसा कहा है—आप रेतो भूत्वा शिकम् प्राविशत् [ऐतरेय ङ० १।२।४]। आपूर्वदेके मतसे पीयंका जलवत्त्वे सम्बन्ध है। निरुत्तमे ठूपा घट्टल साहित्यमे भी जलके ही विष और अमृत दो नाम हैं। शरीररूप रेत, हिरण्यके समान भास्वर तेजवाना है। जिस समय ईवी वृत्तियाँ आयुरो वृत्तियोंसे ढबी रहती हैं, उस समय रेत, विष स्वरूप होकर सब इन्द्रियोंके तेजको जीयाँ कर देता है। उस विषको सहने, पचाने और धारण करनेकी शक्ति किसी इन्द्रियाधिष्ठाता देवतामे नहीं है। जबतक शिव विषको नहीं पीते तबतक इन्द्रियरूपी देवता उसकी सपटोसे झुलसे हुए रहते हैं। गोसाईंजीने ठीक कहा है—

जस्त सकल गुरुवृन्द, विषम गरम जेहि पान किया ।  
भजति न तेहि मतिमन्द, को कृपालु धकर-सरिस ॥

शिव ही भोग-समाधिके कारण उस विषम पान कर सकते हैं। पाँचो चक्रोंको भेदकर जब पहले शिव इस रेतके दुर्निपाह तेजको विमुक्त-पत्र प्रर्षत् कठमे स्थापित कर लेते हैं, तभी सब देवता अमृतका भाग पाते हैं। शिवके विषपानके पश्चात् वही रेत अमृत रूप होकर इन्द्रियोंके धारण-तेजका सवर्द्धन करता है। शिवका विषपान प्रकारान्तरसे भोग साधनाके फलका वर्णन है।

पक्षमे भेषसे एक काम और लिया है—

मृत्यारम्भे हर पशुपतेर्याईनागानिनेष्णाम् ।

शाम्भोद्देगस्तिमितनयन इहभक्तिर्भवान्मा ॥ [मे०, १।३५]

[हे मेघ ! सामकालके समय नवीन जपा-मुष्पकी सालीके सहस रक्तिमासे सम्पन्न आपसे पडलके शिवकी गुजापीपर इस प्रकार तान देना कि अपने नावके धारम्भसे उन्हें गजामुरकी गीती लालकी इच्छा न रहे। उस डेरी शिव-भक्तिको उस समय गार्वती भी निरचल नयन होकर देखेंगे।]

सक्षेपमे तन्त्रके अनुसार इसका अर्थ यह है कि जिस मूनाधार चक्रका धृष्यी तत्त्व है उसमे एक सप्तशुद्ध गजाकार ज्योति है जिसकी पीठपर शिव-तेजके चारो ओर बसित कुण्डलिनी स्थित रहती है। जिस समय भोग-साधनकी इच्छासे [मृत्यारम्भे] शिवजी इस चक्रको भेदते हैं, तब इस गजनी मानो मृत्यु हो जाती है। जिस व्यक्तिये कामको चरामे नहीं किया है ऐसा कोई व्यक्ति इस गजको परास्त नहीं कर सकता ।

<sup>१</sup> पद्म सर्पदिनी केका दिया शिवका शिखरिणि । मनु० ३।३३

पद्म मयूरे बदात - इति मातंग ॥

ज्ञाना-धरुमे प्रणवका प्रत्यक्ष होता है। यहाँ ही चन्द्राकार ज्योतिका दर्शन होता है। यही सूर्य, चन्द्र, और अग्निके तीन बिन्दु हैं जिनके नामान्तर शिव, विष्णु और ब्रह्मा तत्र-ग्रन्थोंमें प्रतिष्ठ हैं। यहाँ साधकको चन्द्रकी किरणोंसे टपकनेवाली गुणके घास्वादाका आनन्द मिलता है। इसी-लिये शिवजी नवमश्रिभूत [मेघ० १।४७] और इन्दुसेखर [कुमार० ५।७८] हैं। मोगशास्त्रमें शिवके रूपका बड़ा विस्तार दिया गया है। शिवपुराण, स्कन्दपुराण,<sup>१</sup> तथा तत्रोने इसे बड़ाकर कथाओंमें रूपमें प्रकट किया है। कालिदासका यह कहना बहुत ठीक है—

न सन्धि यायाप्यंविद । पिनाकिल । [कु०, ५।७७]

न विश्वमूर्तेरवघायंते षणु । [कु०, ५।७८]

[शिवके स्वरूपका ठीक-ठीक निर्धारण कौन व्यक्ति कर सकता है<sup>१</sup>] पशुपतरास्त्रमें<sup>२</sup> शिव, विष्णु और ब्रह्माके धर्मोंके मानवर जीवात्माके साथ परम नित्य शक्तिका तारात्म्य बिलामा है। वह चित्त-शक्ति-रूप परमहंस शिव सहस्रार-पथमें प्रतिष्ठित है। उस पर बिन्दुतक पहुँचनेका मार्ग, योग साधना-द्वारा कुटिलिनीको जपाकर ब्रह्माहमे ले जाना है। जबतक वृषकेतु, वृषारूचन, शिव-रूप आत्माके दर्शन नहीं होते, तबतक काम-बाधा चित्त-वृत्तियोंको धमोमुखी रखती है। वृषपति शिवकी सामना और भक्ति [मेघ० १।५६] प्राप्त करना प्रत्येक कामरूप पुरुषके लिये अत्यन्त आवश्यक है। कालिदासके अनुसार योगके द्वारा परमात्म-संज्ञक परम-ज्योतिका दर्शन करना ही जीवनकी परम सिद्धि है।

योगात्स आन्त परमात्मसंज्ञ इष्ट्वा पर ज्योतिस्कारणम् । [कुमार०, ३।५८]

शिवके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान ही कालिदासके दर्शन और काव्य-साधनाका ज्ञान है।

।

१. इसका कथा एक-द मराठपुराणान्तर्गत कारीसटके ३८ में अच्छीतरहों से दी हुई है। गमासुत्रमें ब्रह्मासे वर पाया था— कि कदप-नशाभूत किसी व्यक्तिके हाथ उनकी मृत्यु न होया। पारंगीने जिन समय ब्रह्मादेव से खनेखर लिए [महिषासुरधरिणी शिव] का माहात्म्य सुना उसी समय गमासुत्र अपने कलकाम्य उपाय होकर प्रार्थना निवेदन करते शिवकी ओर आया। कदम रथिनी ब्रह्मादेवने नाम आनेपर उसे विशलसे देकर शून्यमें डाल दिया। ब्रह्मादेवने मन्त्रपर अपने अच्छा खरीर वृषकी शक्ति पैला लिखा था। जब अपने शिवकी बहुत शक्ति की तब शिवने वर देना चाहा। गमासुत्रने कहा कि आप मेरे खरीरका चयन पदम साबिए। इसमें शिवनी कुत्सिवाय ब्रह्माप ।

२. अत कार्य है, इसका नाम पशु है। इश्वर आरथ है, वही पशुपति है। पशुपतिमें चित्तकी समाधि ही योग है। भाग, विष्णु, श्वाण आदि उपरबवा विधि है। सोच इसका प्रयोग है। उस सोचका फल है सका अन्त है। वही स उपमें पशुपत-शास्त्र है।

# महाकवि कालिदासकी उपमाओंका

## मनोवैज्ञानिक अध्ययन

[ श्री पी० के० गोडे, सचलालभाष्यस्य, भांडारकर धोरिवण्डल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना ]

सस्कृत-साहित्यका प्रत्येक विद्यार्थी उस श्लोकोत्तं पुरांतः परिचित है जो 'उपमा कालिदासस्य' से प्रारम्भ होता है—

उपमा कालिदासस्य भारवेरपंगौरवम् ।

दण्डिन. पदलाजित्य माये सन्धि नयो गुणाः ॥

—श्रीर यद्यपि इस उद्धरणके महत्वको कालिदासके बहुतसे अध्येताओंने समझ भी लिया है फिर भी किसीने उनकी उपमाओंका यह आलोचनात्मक रूप सामने लाकर नहीं रखा, जो केवल अलंकार-शास्त्रके विद्वानोंके लिये ही नहीं अपितु साहित्यके साधारण प्रेमीके लिये भी अत्यन्त आकर्षक और शक्तिकर होता । मैं स्वतन्त्र आधारोंपर उपर्युक्त कथनकी परीक्षा करना चाहता हूँ परन्तु ऐसा करनेमें मेरा ध्येय मुख्यतः मनोवैज्ञानिक विस्तारण ही है । मैं केवल कविकी पर्यवेक्षण-परिधि, उसकी धान्दयानुभूति और उसके विस्तृत ज्ञानकी ही और संकेत करना नहीं चाहता, अपितु उसकी उपमाधेयशुकी विभिन्न शक्तिके उन विभिन्न रूपोंका विस्तारसे वर्णन करना चाहता हूँ जो 'शैक्षिक जीवनके दृप्त स्तम्भ' माने जाते हैं ।

मैं 'उपमा' शब्दका यहाँ विस्तृत अर्थ ग्रहण कर रहा हूँ । इसलिये इसमें केवल समानतापर आधारित अलंकार ही नहीं सम्मिलित किए गए हैं बरन् और भी बहुतसे ऐसे अलंकार इमीने सम्मिलित हैं जो भारतीय आलंकारिकों द्वारा यौथी हुई सीमाओंके बाहर हैं, उदाहरणार्थ—  
रुद्रोत्पत्तौ [ सहावती ] का जीवनकी विशेष परिस्थितियोंके लिये प्रयोग करना भारतवर्षे तुलना ही तो है, इसीलिये मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे मैं उन्हें उपमार्थ ही सम्मिलित करना ठीक समझता हूँ ।

मैंने केवल 'सकुन्तला' की उपमाओंकी आलोचनामें ही अपने प्रयत्नोंपर परिमित रखा है क्योंकि पहले तो यह महाकवि कालिदासकी सर्वश्रेष्ठ रचना है और दूसरे, नाटकीय रचना होनेके कारण उसमें उनके काव्योत्की अपेक्षा मानव-जीवनका प्रथिक सच्चा चित्रण है ।

इस आलोच्य अन्धमें सब मिलाकर १८० उपमाएँ हैं । यद्यपि प्रथम और पष्ठ अंक विस्तारमें लगभग बराबर हैं, फिर भी पहला तो उपमाओंसे धूम्य-सा है और उसमें लगभग आठ उपमाएँ हैं जबकि दूसरा उनसे एकदम बरा हुआ प्रकाशमान-सा है, और उसमें सब मिलाकर ५१



उपमाएँ हैं। इसका कारण बहुत स्पष्ट है। प्रथम अद्भुत तो पूरी रचनाकी प्रायः मूलिका है और कवि 'जीवनकी प्रालोचना' की अपेक्षा बखुन करनेमें अधिक व्यस्त है—मुख्य जीवनकी वह प्रालोचना, जो जिसी भी हृद्य भाव्यमें नाटककारका मुख्य काम है। छठे अंक्रमे कवि कुछ मानस प्रभावशक्ति सिद्धिमें राफन हुआ है जो मानव-चरित्रके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और इसके विस्तृत व्यक्तीकरणके लिये बहुत आवश्यक है। दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें अंक्रमे क्रमशः १३, १७, २७ और २६ उपमाएँ हैं। छठे अंक्रमे प्रायः सख्यामें वृद्धि नहीं ॥ अपितु निरन्तर रूपसे ह्रास है और सातवेंमें केवल ३४ हैं। नाटकका उपग्रहण सातवें ही अंक्रमे प्रारम्भ होगा है और उतीने पूर्ण भी हो जाता है। इसीलिये इसमें उपमाभोगी कमी है वास्तवमें इसमें दो सत्व मानो छींचा-सानी कर रहे हैं। नाटकके प्रारम्भमें वर्णनात्मक सत्यकी प्रघातता है जो कमी से प्रत्यक्ष रहता है और कमी प्रचञ्चल। प्रालोचनात्मक ठर्रा वहाँ एकदम गीण हो गया है। इसलिये चौथे अंक्रमे विशेष रूपसे ऐसा तात होता है कि कवि पूर्ण मनहूकार भावनाको रियर रखनेमें असमर्थ है। ऐसी ही परिस्थितिमें उपमाभोगी प्रादुर्भाव धारण हो जाता है। इस स्वतन्त्र मोमल भावनाका पूर्ण अभिप्रेक्ष्य है और मन भावावेगमें झूलने लगता है। इस अन्वयी शैली विशेषतः भावार्थक है, विवेचनात्मक नहीं और इसीलिये उपमाभोगी सख्यामें क्रमिक ह्रास दिखाई देता है क्योंकि यह रचना मुख्यतः कविके हृदयको उपज है, न कि उसके मस्तिष्ककी।

इस निबन्धका मुख्य लक्ष्य मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है, परन्तु मैं सब उपमाभोगी उनके मूल-स्रोतोंके अनुसार पहले विभाजित कर लेना चाहता हूँ। मनुष्य और वस्तुओंके सम्बन्धमें कविका ज्ञान-जगद् जितना विस्तृत है उतने ही विस्तृत उपमाभोगी मूल स्रोत हैं—

१ स्वर्ग और आकाश—सूर्य अपने अनेक रूपमें अधिकतर सुखनाके लिये प्रयोगमें लाया गया है। जलको पीना देनेवाला प्रीम ऋतुकी तप्तवाता वर्णन तीसरे अंक्रमे दसवें श्लोकमें मिलता है। उसका शक्तिशाली प्रकाश चन्द्रमाकी मन्द कर देता है (अंक ३, श्लोक १५)। एक साथ ही चन्द्रमाका उदय और सूर्यका अस्त होना सखारकी एक साथ होनेवाली समृद्धि और दोनताका द्योतक है (अंक ४, श्लोक २)। एक प्रकाशमान पुत्रका जन्म पूर्वमें सूर्योदयके समान है (अंक ४, श्लोक १६)। सूर्य हमारे सामने कर्तव्य-श्रमणके रूपमें रस्ता गया है क्योंकि लोगोंको प्रकाश देनेके कर्तव्यमें वह नहीं पीकता (अंक ५, श्लोक ४)। वह अन्धकार दूर करनेवा सबसे बड़ा साधन है (अंक ५, श्लोक १४) ऐसा होनेपर भी रात्रिका अन्धकार दूर करनेमें वह असमर्थ ही रहता है (अंक ६, श्लोक ३०)। अरण्य या प्रातःकालीन सन्धिबेलाको उसका मधुद्रव (या मधुद्रवी) बताया गया है (अंक ७, श्लोक ४)। सूर्य ही कमलोंको खिलाता है (अंक ५, श्लोक २८)।

जैसा कि निम्नादिष्ट उद्धरणोंसे स्पष्ट है, चन्द्रमाके विविध रूप और उरानी विशेषताएँ ससृज-भावमें प्रायः ऋ हो गई हैं—

पारदी पत्रिका बहुत ही धारपन होती है (अंक ३, श्लोक १३ के पदवाच्य)।

'व' इसानी धरीरनिर्वापिनी पारदी ज्योत्स्ना पदान्तेन वारयति ।'

वह सूर्यसे प्रगर प्रजायके सम्मुख फीकी पठकर महत्त्वहीन हो जाती है (अंक ३, श्लोक १५)।

चन्द्रोदय इस जगतके कुछ व्यक्तियोंके चमकते हुए ऐदवर्षका सूचक है (श्रक ४, श्लोक २) । केवल यही रात्रिने पन्धवारको दूर करनेमें समर्थ है (श्रक ६, श्लोक ३) । चन्द्रग्रहणका वर्णन श्रक ७, श्लोक २२ में है । चन्द्रके चरातलके काले पक्षोंकी चर्चा श्रक १, श्लोक १६ में की गई है । कमल-नाभ जतना ही कोमल होता है जितनी चन्द्र-किरण (श्रक ६, श्लोक १८) । शकुन्तलाका उसकी दो सक्षियोंकी ओर व्यक्तियुक्त भावपूर्ण उसी भावपूर्ण, जैसा बताया गया है जिससे कि विशाला-सारण-मण्डलको चन्द्रमा अपनी ओर खींचता है—

'विमम चित्र यदि विशाले क्षयाकलेखामनुवर्त्तते ।' (श्रक ३)

चन्द्रकी किरणें मर्यापि स्वयं दीप्त होती हैं फिर भी काम-पीडित जनको तो जलाती-सी ही हैं (श्रक १, श्लोक १) । दिनमें चन्द्रमाकी अनुपस्थिति, कुमुदिनियोंकी समस्त मनोहारिणी सुन्दरताका मग्नहरण कर लेती है (श्रक ४, श्लोक ३) । चन्द्रमा ही कुमुदिनियोंकी खिलानेका कारण है (श्रक ३, श्लोक ७८) ।

उपग्रहोत्री चर्चा नाट्यमें बहुत कम है । विशाला उपग्रह चन्द्रमा-द्वारा खींचा जाता है (दिलो ऊपर) । चन्द्रमण्डलकी उपग्रह रोहिणी मयने प्रेमी चन्द्रमासे चन्द्र-ग्रहणके पदपाव मिलती है (श्रक ७, श्लोक २२) । आकाश-मंडलके सभी ग्रह-विण्डोंके ग्रहणोंमें केवल चन्द्रमाकी ही चर्चा है (श्रक ७, श्लोक २२) । आकाशमेंके चरातलकी चर्चा श्रक ७, श्लोक ७ में की गई है । प्राणाग और पृथ्वीके भूयभ्यमें स्थित पक्षियोंके विचरण करने-योग्य स्थानकी चर्चा श्रक ३, श्लोक २२ में की गई है ।

२ पृथ्वी आकाश के निष्प्राकृत व्यापारोका प्रयोग सुलताके लिये किया गया है—

समयत विमुक्ष्यती पचां उस काँफो और चमकते हुए प्रकाशके रूपमें की गई है जिसका उद्भव मर्यापिच है (श्रक १, श्लोक २४) । प्रातःकालीन धरण प्रकाश, मग्धकारको दूर करनेमें इसलिये समर्थ होता है कि वह सूर्यसे प्रकाश लेता है (श्रक ७, श्लोक ४) । वायुका भविराम गतिमें बहना कर्त्तव्य-निष्ठानर घोटक है (श्रक २, श्लोक ४) । मघदसे बिना हिले-डुले पर्वत सदा स्थिर रहते हैं—'ननु प्रघातेऽपि निष्पम्पा गिरय ।' (श्रक ६) वायु, कोमल ललाटोंके रस भरे हरे-हरे पत्तोंसे सुषा देता है (श्रक ३, श्लोक ८) । एवंत-श्रेणी, पदिचमी क्षितिजपर सन्ध्याके मेघोंके गरजोठके समान दिसाई देती है—'खान्ध इव मेघपरिच सावुमानाशोकयते (श्रक ७) ।

भूरे रगके राशस सन्ध्याके धारणोंके समान प्रकट होते हैं (श्रक ३, श्लोक २५) । पृथ्वी पर झुके धीर पानीसे भरे हुए मेघके समान ही नम्र गुण्य होते हैं (श्रक ३, श्लोक १२) । दुष्पन्तने अपनी प्रजाकी सहायताके लिये जो विश्वास दिया उसका उतने सामयिक व्यक्ति समान स्वागत विद्या—'बाले प्रवृष्टनिवाभिनन्दित देवरय धासनम् (श्रक ६) ।

समुद्रका एक बड़ी नदीसे सीधा धीर भविष्यन्त सम्बन्ध, पुष्यशमेके प्रसिद्ध उत्तराधिकारीके प्रति शकुन्तलाके हृदयकी प्राकृतिक धीर उचित अभिलाषाश्लोको अभिव्यक्त करता है—'तपुक्त-मस्या अभिलापोऽग्निनन्दितुम् ।' (श्रक ३)

पृथ्वीको मान्यदित्य करनेवाला समुद्र उसका वक्ष कहा गया है (श्रक ३, श्लोक १८) ।

किसी षट्पानसे दो धाराधोमे विभाजित होकर वेगसे बहती हुई नदी राजाके दुविचामे पड़े हुए वित्तकी अभिव्यक्त करती है ( अक्ष २, श्लो० १७ ) । बड़ी नदियाँ समुद्रसे पूर्ण रूपसे सम्यग् होती हैं—'सागरमुग्मिभ्रवा कुत्र वा महानचवतरति ।' ( अक्ष ३ )

नदीकी वेगवती धार, अपने कगारपर स्थित वृक्षोको नीचे गिरा देती है ( अक्ष ५, श्लो० १० ) । हमदी हुई नदी और भुग-मरीचिकाकी नियमताका प्रयोग अक्ष ६, श्लोक १९ में मिलता है । निराशाकी तुलना भुग-मरीचिकासे दी गई है—'अपि नाम भृगुहृत्पिण्डकेव नाममानप्रस्ताव ।' ( अक्ष ७ ) । नदीके बहती हुई धारासे वेगसे उसमे उभे हुए नरकट भुक जाते हैं—'यद्देतस' भुञ्जलीषा विदम्बयति तारिकमारुपन प्रभावेण उत नदीवेगेन' ( अक्ष २ ) ।

सरोवरमें स्नान करनेकी कल्पना अक्ष ७, श्लोक १ में है और अपने कगारोपर उफनाती हुई नदीकी कल्पना अक्ष ५ में है जहाँ वि एक नील आवासेशसे उफनाता सा कहा गया है—'अद्दो रागपरियाहिनी गीति' ।

घाँसे भरे हुए और धानवातिरेक सूचित करनेवाले मैत्रिके चलनका भाव भी सूक्त कुछ ऐसा ही है ( अक्ष ४ ) जल नीचेसे ऊपर नहीं जा सकता । यह प्रवृत्ति का नियम उक्तुत्ताके प्रति स्थिर किए हुए दुष्यन्तके प्रेमको प्रवट करता है ( अक्ष ३ ) । हृष परनीकी तनी झलक करता है जब कि वह दूमरे मिलकर उसे दिया जाय ( अक्ष ६, श्लो० २८ ) । कोमल सताघोपर गर्म पलका नाशकारी प्रभाव अक्ष ४ में वर्णन किया गया है ।

पर्वतोकी विशाल शक्तिन बर्णन केवल एक उपयामे किया गया है । अम्भावातके अत्यधिक झोपसे भी वे अचल स्थिर रहते हैं ( अक्ष ६ ) । पृथ्वी-सतली ऊँचाई-निचाईना सकेत अक्ष ६ में है जहाँ पृथ्वीसतले एक पित्रका वर्णन है ।

घाटसे वना हुआ नुन उता मनुष्यसे समान है जिसने सखताका धान धारण किया हो ( अक्ष ५ ) । पृथ्वीका धरातल बिजली उत्पन्न करनेमें असमर्थ है ( अक्ष १ ) । एक मन्द बुद्धिकी तुलना मृत्पिण्डसे की गई है ( अक्ष ६ ) । पृथ्वीना भार देयनाय भगवान् बहन करते हैं ( अक्ष ५ ) । पृथ्वी, घासन करनेवाले राजाकी पत्नी बही गई है ( अक्ष ३, श्लो० १८ ) ।

सर्वाज-अगत्ये बहुत कम उपमाएँ दी गई हैं, परन्तु जो हैं, उनमें से अधिचारण एकदम मौलिक है । अमनीला रात, अक्षि अमकर्म अग्निसे मिलता-जुलता है, फिर भी हाथसे स्वर्ण किया जा सकता है ( अक्ष १ ) । सूर्यकी किरणें जब सूर्यवान्त-अग्निपर पड़ती हैं तब उसमें से जलानेवाली गर्मी निकलती है ( अक्ष २, श्लो० ७ ) । रत्नोंना वेष्टा जाना अक्ष २, श्लो० १० में वर्णित है । धातुमें पिण्डर छोटा कर देनेपर भी रत्नोंमें अत्यन्त अमक धा जाती है ( अक्ष ६, श्लो० ६ ) । शीवे शी-दर्पनी तुलना रत्नमें की गई है ( अक्ष २, श्लो० ६ ) ।

३—[ १ ] वनम्पति शोकन—इसकी उपमाएँ अमस्य हैं—

वाटिका और वनकी सताघोमि विषमता दिखाई गई है ( अक्ष १ ) । एक पत्नी भौटकी तुलना सताने की गई है ( अक्ष ३, श्लो० २३ ) । पत्नी और कोमल शी सताके समान होती है ( अक्ष ७ ) । मगार्ण अमन्त अस्तुम मिलती है ( अक्ष ७ ) । पूनोंमें चगी हुई सता मधुपर्को श्रिय अतिविशेष रूपमें पाकर अस्तुम होती है ( अक्ष ६ ) । उपोवनके श्रुतसे अस्तुमलाकी विदाई

सगम सताएँ सधुपात करती हैं ( अङ्क ४, श्लोक १२ ) । एक ध्यानावस्थित साधुकी गर्दनके चारों ओर लतामोची कुण्डली बन गई है ( अङ्क ३ ) ।

विशेष पीधो और लतामोचि भी उपमाएँ ली गई हैं । बहूया कोमलता तथा सौन्दर्यके हैं । लिये उनका सन्निवेश किया गया है—

धर्मो-लता काटनेमें बड़ी कड़ी होती है ( अङ्क १ ) और शरीरकी सड़कीमें स्वयं अग्नि उत्पन्न करनेकी क्षमता होती है ( अङ्क ४, श्लोक ४ ) । वायुसे माधवी-लता सूख जाती है ( अङ्क ३ ) । अतिमुक्तव सता पत्तोंके भारसे झुकी होती है और सहकार वृक्षसे लिपटी रहती है ( अङ्क ३ ) । मयपालिकाके फूलकी कोमलता अधिनत्तर शकुन्तलाके लिये प्रयुक्त हुई है ( अङ्क १ ) सूर्यकी किरणोंसे नवपालिका फूलपर कालिमा छा जाती है ( अङ्क २, श्लोक ८ ) । कौन ऐसा मनुष्य है जो नवपालिका सतापर चर्म धारो छोड़ना चाहे ? ( अङ्क ४ ) । फूली हुई वनरपोत्सना सताका वर्णन अङ्क १ में मिलता है । उसे शकुन्तलाकी भविनी कहा गया है ( अङ्क ४ ) ।

कुछ फूलोंका भी उपमाओंके लिये प्रयोग किया गया है—

उप कालमें भोसकण्ठसे भरा हुआ कुन्द-गुण्य मधुगण्डो सलचाठा है, परन्तु ठडे भोसके कारण वह उसका रस लेनेसे रोव दिया जाता है ( अङ्क ५, श्लोक १६ ) । नील जलजयी कोमलता और चामीकी कठोरतामें विषमता दिखाई गई है ( अङ्क १ ) । शंखालसे पिरा हुआ कमल मनोहर शील पडता है ( अङ्क १ ) । कमलसे पते पङ्खा भलनेके लिये प्रयुक्त होते हैं ( अङ्क ३, श्लोक १६ ) । राजमांसकी धूल कमलके कोमल परागकेचरके समान है ( अङ्क ४ ) । मधुपका स्वाभाविक वास-स्थान कमल है ( अङ्क ५, श्लोक १ ) । सुन्दर हाथ रत्न कमलनालके समान शील पडता है ( अङ्क ६ ) । किसी शिकुका कोमल हाथ उप कालमें जिले हुए कमलके समान दिखाई देता है ( अङ्क ७, श्लोक १६ ) । सूर्यका कुमुदिनीपर हाविकारक प्रभाव पडता है ( अङ्क ३, श्लोक १५ ) । चन्द्रमाके न रहनेपर कुमुदिनीसे भरे हुए सरोवरकी सचमुच दयनीय दशा होती है । ( अङ्क ४, श्लोक ३ ) उसकी उपस्थितिमें वे जिल जाती हैं ( अङ्क ५, श्लोक २८ ) । कमल केवल सूर्यकी उपस्थितिमें जिलते हैं ( अङ्क ५, श्लोक २८ ) । मुवावस्था उतनी ही आकर्षक है जितना कि कोई फूल ( अङ्क १, श्लोक १६ ) । जिस सौन्दर्यका ध्यान नहीं किया गया वह मानो बिना सुंघा हुआ सुगन्धित फूल है ( अङ्क २, श्लोक १० ) । मधुप एक नवीन पुष्पसे मधु भूसठा है ( अङ्क ३, श्लोक २२ ) । वह फूलोंसे मधु घुरानेवाला घोर है ( अङ्क ६, ) । वसन्तसे लताघोकें सयोगकी सूचना वसन्तकी कली देती है ( अङ्क ७ ) । फूलोंका दिखाई देना युवावस्थाकी सूचना देता है ( अङ्क १ ) । ओठ उतने ही झाल होते हैं जितने कि वृक्षोंके ताल पते ( अङ्क १, श्लोक २० ) । किसी युवतीका अघर इतना ही सुन्दर दीख पडता है, जितना कि हाथसे न छुए हुए वृक्षोंके कोमल पते ( अङ्क ६, पृ० २२, श्लो० ) । किसी युवतीका निष्कलक सौन्दर्य मत्पृष्ट कोमल कोपलके समान होता है । ( अङ्क २, श्लोक १० ) हृपेलिपोका रग वृक्षोंकी नवीन शालामोसे होड लेता है ( अङ्क ४, श्लोक ५ ) । जाल कोपलो और सूखी हुई पक्षियोंमें विषमता दिखाई गई है ( अङ्क ५, श्लोक १३ ) । एक हीनहार पक्षिनाली नवपुष्पकी तुलना विशाल वृक्षकी प्रशाखासे की गई है ( अङ्क ७, श्लोक १६ ) । वृक्षोंकी

पतिर्मां मानो जननी उगलियां हं जो दशकोको अपने पास आनेके लिये बुला रही हैं ( अंक १ ) । वृक्षोकी शालाए उनकी भुज,रें हैं जिनसे वे शकुन्तलाका आनिष्कन करती हैं । ( अंक ४ ) । फलोके भारसे झुके हुए वृक्ष, रूपानु मनुष्यकी नम्रता प्रकट करते हैं ( अंक ५, श्लोक १२ ) । प्रात्मिक विचारोमे लीन व्यक्ति, वृक्षके उनके समान मौन होता है ( अंक ७ ) वृक्षोकी जड़ें तपस्विधोके निवास-स्थान हैं ( अंक ७, श्लोक २० ) ।

वृक्ष शकुन्तलाके मित्र हैं ( अंक ५, श्लो० १० ) । वे सूर्यका अत्यधिक ताप सहन करते हैं और अपने नीचे घाए हुए लोकोको शरण देते हैं ( अंक ५, श्लो० ७ ) ।

पाइए, एक कुछ विशेष वृक्षो और मौषोपर विचार करें । केवल सहकार मा आन्नवृक्ष ही अतिमुक्तका भार सहन कर सकता है । वह बनज्योत्सना सत्ताका भी प्रेमी है ( अंक १ ) और नवमासिकाका भी ( अंक ४ ) । कल्पमे अपना निवास-स्थान बना सेनेपर भ्रमर आन्नमशरियोकी हानिक भी चिन्ता नहीं करता ( अंक ५, श्लो० १ ) । ये तो वसन्तके प्राण ही हैं ( अंक ४ ) । ये भ्रमरोपर मादक प्रभाव डालती हैं ( अंक ६ ) । नदीकी पारामोके वेगवान् प्रवाहसे मरकट झुज जाते हैं ( अंक २ ) । ईसको चर्चा अंक ३ मे की गई है । बन्दन वृक्ष, यद्यपि अपने पास आनेवाले सभी जीवोको प्रसन्न करता है तथापि अपने भीतर वृष्य सर्प रसनेके कारण वह स्वयं निन्द्य समझा जाता है ( अंक ७, श्लो० १८ ) । जब शकुन्तला केदार-वृक्षकी जड़के पास बैठती है तो वह ऐसा लगता है मानो उससे कोई नवा लिपटी हो ( अंक १ ) । असुरोकी तुलना कांटोसे की गई है ( अंक ७, श्लोक ३ ) ।

हापि सम्बन्धी उपमाएँ बहुत कम हैं—

समयपर जोए हुए बीज बहुत अधिक धन्न उत्पन्न करते हैं ( अंक ६, श्लो० २४ ) ।

( २ ) पशु-जीवन—पशु-जीवन अपने साथ पशु-शरीरके सभी विचार भी साता है । इनका भी उपमाओंमें प्रयोग किया गया है—

दुष्मन्त एक रोगसे दुखी कहा गया है और वह रोग 'शकुन्तला' है ( अंक ६ ) । दुष्मन्तकी दशा लगभग पूर्णतः निराशा-जनक है । एक फोडेके ऊपर छोटी कुन्तीका होना अंक २ मे दिलाया गया है । विद्रूपककी प्रचलन मूल उसे ही लाए डाल रही है ( अंक ६ ) ।

अपन्मामोमे कुछ पशुमोका प्रयोग इतलिये हुआ है कि अन्य पदार्थोके समान उनमे स्पष्ट मिलनेवाले गुणोकी व्याख्या की जा सके—

हरिण, सहृदय काश्यमे तुलनाका साधारण मापदण्ड है । शकुन्तलाके मन हरिणोके नेत्रोके समान हैं ( अंक १, श्लोक २४ ) और वे हरिणके नेत्रोके समान भी हैं ( अंक ६, श्लो० ७ ) । शकुन्तलाके कटासोके समान दिखाई देनेवाले मृगीके सुन्दर कटास, राजाको उसे मारनेसे रोवते हैं ( अंक २, श्लोक ३ ) । मृग-शावकको शकुन्तलाका पोष्य पुत्र कहा गया है ( अंक ४, श्लो० १४ ) । भगवत्पुत्र मृगया प्रेमके कारण पर्वतोपर भ्रमण करते हुए राजा, बनेले हाथीके समान जान पड़ते हैं ( अंक २, श्लो० ४ ) । दिनके कृत्योको समाप्त करके विश्राम करता हुआ राजा हाथियोके उस स्वामीके समान दोस पड़ा है जो उन्हें अपने चरगाहोमे छोडकर एक पीतल-स्थानमे बैठकर विश्राम कर रहा हो ( अंक ५, श्लो० ५ ) । विद्रूपककी भच्छी तरह हजामत बनाकर मातलि, अपनी तुलना उस वापसे करता है जो किसी छटपटाते हुए पशुपर भपटा हो ( अंक ६,

श्लो० २७) । शिली-द्वारा पकटा हुआ बूझा जीवनेसे निराश हो जाता है ( श्रक ६ ) । सर्प जब क्रोध करता है, तब अपना फल फेंक देता है ( श्रक ६, श्लो० ३१) । कृष्ण-सर्प अपनी उपस्थितिसे चन्दन वृक्षको घावित् करता है ( श्रक ७, श्लो० १८ ) । घायलके वृक्षोपर जमी हुई धूल टिड्डी-दलके समान दिखाई देती है ( श्रक १, श्लोक २६ ) । नोमल घाम्र-मञ्जरियोको देखकर प्रसन्नतासे मस्त हो जाता है ( श्रक ६ ) । वृक्षोसे भाता हुआ कौकिलका मधुर कूजन, गानो शकुन्तलाके, पतिवृह जानेके समय भावेक है ( श्रक ४, श्लोक १० ) । कोकिला कौमोके धोसलेमे पत्नी हुई मानी गई है ( श्रक ५, श्लोक २२ ) । कहीं पक्षीकी चर्चा श्रक ३ से की गई है । उसकी 'पी कहीं' की ध्वनि उसने जोड़ेके विगोचके दुःखकी सूचना देती है ( श्रक ४ ) । मधुप बड़ी शानधानी और कोमलतासे निरी पूषका मधुर-रस चूसता है ( श्रक ३, श्लोक २२ ) । इसके लिये यह भी कहा गया है कि यह घाम्र-मञ्जरियोको चूसकर कमलमे प्रवेश कर जाता है ( श्रक ५, श्लोक ८ ) । वह शत कालकी मोखले बरे हुए कुल्य पूषकर रस नहीं ले सकता है ( श्रक ५ ) । यह पूषकोसे युक्त शताना बहुत ही श्रिय पतिवि है ( श्रक ६ ) । भ्रमरी, भ्रत्यभिच प्रेमके कारण बिना अपने प्रेमोके मधु नहीं पी सकती ( श्रक ६, श्लोक १६ ) । किसी स्थानपर मखिलमोवा न रहना यहाँ पूर्ण शान्तिका द्योतक है ( श्रक २, श्रक ६ ) ।

४ वृह-जीवन—ज्ञानके इस विभाषसे ही गई उपमाएँ अनेक प्रकारकी और परेख हैं—

जिस मनुष्यकी सखूरसे मरिच हो गई है, वह इसी खानेकी इच्छा कर सकता है ( श्रक २ ) । राघु मधुकी चर्चा श्रक २, श्लोक १० से की गई है । कामिनी जियाँ मधुर मोली बोलती हैं ( श्रक ५ ) । राजाको भी मधुर-भाषी कहा गया है ( श्रक ५ ) । ईशका दर्शन छठे प्रकमे मिलता है । तुल-राशिको जलाकर नष्ट करनेके लिये अग्निकी एक चिनगारी पर्वान्त है ( श्रक १, श्लोक १० ) । अग्निसे छेड़नेपर वह चमकती हुई शिलामे बल उठती है ( श्रक ७, श्लोक ३१ ) । अग्निके प्रतिरिक्त और कोई साधन बस्तुओको नष्ट करनेवाला नहीं है ( श्रक ४ ) । दीपकके पास रहनेपर भी यदि उसे परसे ढक दिया जाय तो मनुष्यको अन्धकार ही दीख पड़ता है ( श्रक ४ ) । जल नीचेसे ऊपर उसी प्रकार नहीं जा सकता जिस प्रकार राजा का हृदय शकुन्तलाकी ओरसे नहीं फिर सकता ( श्रक १ ) । राज्य शासनकी तुलना उस छत्रसे की गई है जिसका दण्ड हावमे पारण किया हुआ हो ( श्रक ५, श्लोक ६ ) । गर्से भरा हुआ दर्पण स्पष्ट प्रतिबिम्ब नहीं देता है, परन्तु यही स्वच्छ कर देनेपर वही सरलतासे स्पष्ट छाया प्रतिबिम्बित करता है ( श्रक ७, श्लो० ३२ ) । इन्द्रका बन्ध किसी ओके भाभूपणके समान था, क्योंकि मधुरोके मुठमे वह व्यर्थ शिष्ट हुआ ( श्रक ७, श्लोक २६ ) । एक रेशमी कड़ा पीछेकी ओर फरफराता है यद्यपि शयन दण्ड धारणकी ओर ले जाया जाता है, ठीक यही दशा राजाके मनकी भी उस समय थी जब वह शकुन्तलासे प्रथम प्रेम करके अपनी राजधानीकी ओर लौट रहा था ( श्रक १, श्लोक ३१ ) । उपस्था उपस्थिमोवा धन है ( श्रक ४, श्लोक १ ) । मन और शरीरका समय स्वय एक बोध है ( श्रक ४, श्लोक १७ ) । बन्धा धरोहर है ( श्रक ४, श्लोक १२ ) । शारदत और विलासी नागरिकोमे बही सम्बन्ध है जो स्नान किए हुए और तेल लगाए हुए में, धुब और मधुब अर्द्धमे, पूषेत जगे हुए और सोए हुएम और अन्धन-युक्त उपा स्वतन्त्र मनुष्यमे है ( श्रक ५, श्लोक ११ ) ।

मनुस्मिन् सम्बन्धावा भो प्रयोग उपमासोमे हुआ है । उस अन्धमे छोटे पमानेपर प्राचीन

भारतीय जीवनका अनेक रूपोंमें धादतों विषय खीचा गया है, अतः, यह स्वाभाविक ही है कि इन सम्बन्धोंको महत्त्वपूर्वक स्थान दिया जाय। पत्नीका पतिपर स्वाभाविक प्रभाव अंक ७, श्लोक ३२ में वर्णित है। प्राग्भ्रवृद्ध, नवमातिकाका पति है (अंक ४, श्लोक १३)। पृथ्वी, धाराककी पत्नी है (अंक ४, श्लोक २०)। अमर-अमरीकी चर्चा अंक ६, श्लोक २० में की गई है।

पैतृक-प्रेमका निरूपण करनेवाली उपमाएँ निम्नांकित हैं—

पशुओंको सन्तान सम्भालना चाहिए (अंक ७, श्लोक १६)। एक मृगशावक ती शकुन्तलाका पोष्य पुत्र था (अंक ४, श्लोक १४)। राजा अपनी प्रजाकी रक्षा अपनी सन्तानके समान करता है (अंक ४, श्लोक २)।

प्राण सम्बन्धको सूचित करनेवाली उपमाएँ भी ध्यान देने योग्य हैं—राजाको प्रजाका बन्धु कहा गया है (अंक ५, श्लोक ७ और अंक ६, श्लोक २४)।

५ सामाजिक जीवन—प्राचीन भारतमें प्रतिधि-संस्कार बहुत बड़ा धर्म माना जाता था। इन्द्र-द्वारा दुष्यन्तके सम्मानका विषय वर्णन अंक ७ में मिलता है। मधुप, फूलोंसे भरी हुई लताओंका प्रिय प्रतिधि है (अंक ६, श्लोक १६)। व्यक्तिओंको पुकारनेके विद्याधारका वर्णन अंक ५ में मिलता है। बिना दूतके हृदयको मली भाँति समझे, जो मित्रता की प्रतापने की जाती है वह भवस्य शत्रुतामें परिणत हो जाती है (अंक ५, श्लोक २४)। सज्जन सदा अपने मित्रोंकी कृपा-हृदिते देखते हैं (अंक ६, श्लोक २६)। कृपाके धादतों रूपकी उपमा कितनी मनुष्यको धूलोंसे उतारकर हाथीपर बसा देनेसे की गई है (अंक ६, श्लोक २)।

कुछ मित्रता विरोधी उपमाओंका विषय कथत है—

राजाकी उपमा मधुरभाषी बपटीसे की गई है (अंक ५)। उसकी तुलना चोरसे भी की गई है (अंक ५, श्लोक २०)। अमरको ऐसा चोर कहा गया है जो फूलोंसे मधु चुराता है (अंक ५, श्लोक १०)। जनसकुला नगरीकी उपमा भीष्मके पिरे हुए उस परसे की गई है जिसमें धान लग गई हो (अंक ५, श्लोक १०)। बन्दी होनेकी भावना अंक ६, श्लोक २० में निहित है, जहाँ राजा उस अमरके ईर्ष्या करता है जिसे बन्दिने शकुन्तलाके मूँहपर भँबराते हुए चित्रित किया है। राजा चाहता है कि मैं भी कमसमें बन्द हो जाऊँ। जान-बूझकर दुष्टता करनेसे कुछ लोगोंको जो प्रसन्नता होती है उसका वर्णन दैनिक जीवनकी तद्दृष्ट पट्टनासे किया गया है—अर्थात् किसी मनुष्यकी धाँत इस प्रकार धोद देना कि उसमें प्राण निकलने लगे और फिर उसमें इसका कारण पूछना (अंक २)। सैनिक-जीवन, मृगया और अन्य सेमोंसे सम्बन्ध रखनेवाली उपमाएँ भी मिलती हैं। सूत्रधार अपनी प्रियाके मनोहर आलापसे उसी प्रकार आनन्दित किया जाता है जिस प्रकार दुष्यन्त सवेग दोहनेवाले हरिणसे (अंक १, श्लोक ५) पुनः अंक १, श्लोक ६ में दुष्यन्तकी तुलना जिनसे की गई है जो हरिणका पीछा कर रहे हैं। किसी दिग्वाताघातीके दिशावदी पर्याचरणकी तुलना बचने की गई है (अंक ५)। किसी पद्मास्तप करते हुए हृदयके जोशीदार बँसे हो हैं जैसे उस हृदयसे होते हैं जो विष-कुंठे बाणपत्रसे बेधा गया हो (अंक ३, श्लोक ६)। ऐसा बाणपत्र किनासा किया जाता है तो जैसा सुख उस मनुष्यको होता है जिनसे हृदयसे वह बाण निनाला जाता है उसका वर्णन अंक ७ में मिलता है। पशुद्वारकी तुलना किसी बन्धुपुत्रके पर्यन्तसे की गई है (अंक ३, श्लोक १)।

पृथ्वीकी कल्पना एक ऐसी गंदेने समान की गई है जो भाकाशमे ऊंचे फेंक दी गई हो (श्रक ७, श्लोक ८) ।

६ धार्मिक जीवन—शोम्य पति पानेके लिये शकुन्तलाको उसकी सखियाँ उस समुचित घटनासे उपमा देती हुई बघाई देती हैं जिसमे होता द्वारा घुएँगे डकी हुई अग्नि न देखी जानेपर भी हृष्य टोक यज्ञकी अग्निमे ही गिरता हो । शकुन्तलाकी उपमा अन्धे शिष्यको दिए हुए ज्ञानसे दी गई है, क्योंकि ऐसे ज्ञानके नष्ट होनेकी चिन्ता कर्ताको नहीं करनी पडती (श्रक ६) मातलि-द्वारा बडी कठोरतासे पकडे जानेपर विदूषक अपनी तुलना उस बलि-शुशुते करता है जो भव मारा ही जाने-धाता हो (श्रक ६) ।

निम्नांकित उपमारें, कर्म और मोक्षके दो धार्मिक सिद्धांतोंको स्पष्ट करती हैं—

पूर्व जन्ममे किए गए कर्मोंका फल पकता है (श्रक २, श्लोक १०) यदि किसी साधुको अप्साराभेनि मोहित कर लिया तो उसके लिये मोक्ष पानेकी अवदान सम्भावना नहीं है (श्रक ५) ।

७ पुराण और अन्व साहित्य ज्ञानके मूलसे ली गई उपमाभोगे स्पष्ट हो जाता है कि पौराणिक कथाओं और कहानियोंकी प्राचीन पुस्तकोंका कालिदासको बहुत गम्भीर ज्ञान था ।

शिवजीका हरिणके पीछे दोहलेको कल्पना पुराणोंसे ली गई है (श्रक १, श्लोक ६) । लक्ष्मीजी, जो सौन्दर्यका केवल एव ही माप-दण्ड है, यदि बढ कर नहीं तो शकुन्तलाकी समतामे रखी हुई जान पडती है (श्रक २, श्लोक १) दुविधामे पडे हुए किकर्तव्यविमूढ चित्तकी सटीक तुलना स्वर्ग और पृथ्वीके बीचमे लडके हुए मिनकुसे की गई है (श्रक २) विशाखा उपग्रह और चन्द्रकलाकी अर्धा (श्रक ३) का मूल यह व्योतिप तथ्य है कि विशाखा उपग्रह चन्द्रमाके पास उस समय दिखाई देता है जब कि भाकाश फल रहता है और बहुत तीव्रता चमकता है अर्थात् यशाख और ज्येष्ठके महीनेमे ।

प्राचीन पौराणिक कथासे यथाति और अभिज्ञाका उल्लेख किया गया है (श्रक ४, श्लोक ७) । कामनाभोगपर प्राधिपत्य करनेवासे साधुओंके विरुद्ध मोहनेवाली मुक्तिषोका प्रयोग करनेके लिये शक्ति अप्सराराशोका कर्ण श्रक ५ मे मिलता है ।

रश्मे जोड़े हुए घोंडेके साथ सूर्यका और पृथ्वीका भार वहन करनेवाले शेषनागका कर्ण श्रक ५, श्लोक ४ मे मिलता है । सूर्यके साथ घोंडे हैं, इसकी अर्धा श्रक ६, श्लोक १० से की गई है । सूर्यके सारथी अश्वके विषयमे कहा गया है कि वह अपने स्वामीके शक्ति लेकर अश्वकारावता माया करता है (श्रक ७, श्लोक ४) ।

विषोका विष कालकूट, राखाके रनिवासके विषयमे प्रभावकी बतलाता है (श्रक ६, श्लोक २१) ।

दुष्यन्त अपने उन पूर्व पुरयोका काल्पनिक निज खीचते हैं जो पुत्रके न रहनेपर भावदरक पिण्डोदक नहीं पानेगे (श्रक ६, श्लोक २५) । दुष्यन्त और इन्द्रमे इसके अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं है कि इन्द्रका रथ पृथ्वीपर उसे बिना स्पर्श किए चलता है और दुष्यन्तना स्वर्ग करते हुए चलता है । मारोचके आश्रयमे रहते हुए दुष्यन्त अपनेको गहरे अमृत-सरोवरमे डेठा हुआ समझते हैं, क्योंकि स्वानका वायुमण्डल आतन्वसे भरा हुआ है (श्रक ७, श्लोक १) । रोहिणी और चन्द्रमाके प्रेमसे सम्बद्ध कथाके साथ-साथ चन्द्रग्रहणके पौराणिक अभिप्रायका प्रयोग श्रक ७, श्लोक २२ मे किया गया है, जिसमे शकुन्तला और दुष्यन्तका वियोग और



सयोग दिखाया गया है। शक ७, श्लोक २८ में दुष्यन्तकी तुलना इन्द्रसे, उनके पुत्रकी इन्द्रके पुत्र जयन्तसे और शकुन्तलानी पौलोमीसे की गई है।

दुष्यन्तने इन्द्रके बंसी अयुरीके कुलना नाश कर दिया, अतः उनकी तुलना विष्णुके नाथे भवतार नृसिंह से की गई है ( अङ्क ७, श्लोक ३ )।

८ सलित बजाएँ—कालिदासके ग्रन्थमें सलित कलाप्रति सम्बन्ध रखनेवाले उद्धरण इस बातको तिष्ठ करते हैं कि कवि होनेके अतिरिक्त उनको काव्यसे सम्बद्ध पित्रविद्या और गायन प्रादि अन्य कलाओंका भी बहुत गम्भीर ज्ञान और उत्सव्यन्धी आलोचनात्मक अन्तर्दृष्टि थी।

प्रेक्षाग्रहने रङ्गमञ्चके मधुर गानोंको उत्सुकता और ध्यानसे सुननेवाले श्रोताओंको चित्र-सचित्र व्यक्तियोंका समूह कहा गया है ( अङ्क १ )। किंच प्रकार कोई कलाकार एक भावसे विचित्र चित्रित करते समय उसमें सभी सुन्दर रंग निहित करनेका प्रयत्न करता है इसका बहुत अच्छा वर्णन अङ्क २, श्लोक ६ में मिलता है जहाँ राजा, शकुन्तलाके अपार सौन्दर्यसे चौंथिया कर उसकी उत्पत्तिके विषयमें अनेक प्रकारकी भावावेशपूर्ण कल्पनाओंमें मीन हो जाता है। चित्र-कलाका दूसरा सिद्धान्त कि चित्रने बनाई हुई वस्तुएँ अपनी अँवार्द्ध-निर्वाहके अनुसार होनी चाहिए, अङ्क ६ में समझाया गया है, जहाँ राजा इराज बनाया हुआ चित्र विस्तारसे दर्शित है। उसी चित्रके वर्णनमें कहा गया है कि यह तपोवनके पीपोंको खीपनेके कारण किञ्चिद् अशान्त चित्रितकी गई है। ( अङ्क ६ )।

गायन-उन्मन्धी उपमाएँ 'शकुन्तला' में बहुत कम हैं, यद्यपि कालिदासके अन्य ग्रन्थोंमें और अधिक मिल जायेंगी। गायनका भावेशमय रूप शक ५ में निहित है जहाँ राजा अपनी प्रथम कृपा-पात्रा हसपदिकाके गायनकी बड़ी प्रशंसा करता है।

९ मानसिक दशाएँ—परिप्लूत मस्तिष्क या विहृत मस्तिष्ककी दशाओंका वर्णन करनेवाली उपमाएँ और साथ ही साधारण अनुभवोंसे सम्बन्ध रखनेवाली उपमाएँ भी मिलती हैं—

पावनके प्रतापमें अनुभवकी भासा नहीं की जा सकती ( अङ्क ४, श्लोक १ )। कानोमत्त विचारोंके भावेशने अपनी शंखुडीसे बातचीत करते हुए राजा की तुलना पाण्डसे की गई है ( अङ्क ६ )। अन्धा मनुष्य अपने खिरपर फँकी हुई भावा को भ्रम-रस मर्ष समझता है ( अङ्क ७, श्लोक २४ )। स्वप्नमें अनुभव किए हुए, एक तान्त्रिक द्वारा उत्पन्न किए गए भ्रमका मस्तिष्ककी तस्तीनवाची कमीसे पैदा हुए मति-भ्रमोंकी ओर शक ६, श्लोक १० में संकेत किया है।

पृथ्वीकी ओर सीमे उतरते हुए इन्द्रके रथकी अत्यन्त द्रुति गति एवं प्रकारका ऐसा भ्रम उत्पन्न करती है मानो भ्रमानक दृष्टिपथमें घाते हुए पर्यंत गिरातेसे पृथ्वी स्वयं नीचे उतर रही हो ( अङ्क ७, श्लोक ८ )। निरवसनीय साध्यपर प्राप्त निष्कर्षके द्वारा किसी वस्तुके विषया ज्ञानसे अल्पज्ञानमें होनेवाले परिवर्तनका वर्णन शक ७, श्लोक ३१ में किया गया है। शक ७, श्लोक ३१ से हम जानते हैं कि कुछ विषयोंमें हमारी निजी अमिर्त्तचि किंच प्रकार मृत वस्तुओंको भी जीवित कर सकती है।

१० भाव-जगत्—किसी भी ग्रन्थमें उपमाओंके प्रयोगका मुख्य कारण यह है कि स्पष्ट उदाहरणों द्वारा सूक्ष्म भाव स्पष्ट किए जायें। परन्तु ऐसी प्रादि कुछ भाग्य कवियोंकी भाँति कालिदासको भी हम इस उपायन पद्धतिके विच्छेद पाते हैं। बहुधा व्यतीकृत भाव उपमाका भाव-रस ही जाता है। भाव-सम्बन्धी उपमाओंके निम्नादि उदाहरण हैं—

राजाके रथसे उग्वर एव हाथी, कण्ठके पवित्र सता-वितानमे इस प्रकार घुसता है मानो यह उनकी उपस्थाका मूर्तिमानः विध्व हो ( अंक १, श्लोक ३० ) । अंक ७, श्लोक १३ मे शकुन्तला, जो वास्तवमे राजाकी कामनाका लक्ष्य थी, स्वयं कामना-रूपमे अंकित की गई है । दुष्यन्त, शकुन्तला और उनके पुत्रः सर्वदमनके प्रेम-मिलनकी उपमा विश्वास, भाग्य और कर्मके प्राकृतिक योगसे दी गई है ( अङ्क ७, श्लोक २६ ) । शकुन्तलाके निर्दोष शोन्दर्यकी तुलना महात् कृत्योंके पूर्ण फलसे की गई है ( अङ्क २, श्लोक १० ) । पश्चात्ताप करता हुआ राजा शकुन्तलासे अपने प्रथम प्रेम-प्रदर्शनकी तुलना उतने ही कम पारितोषिकसे करता है ( अंक ६, श्लोक १० ) ।

दूसरे व्यक्तीकृत भावोंके उदाहरण भी प्राय मिल जाते हैं—

शोषोके धारण बहुतसे अनिष्ट होते हैं ( अंक ६ ) । भाग्य एकमुच उर्वध्यापी है ( अङ्क ६ ) महाममाकी महत्वाकाशाएँ वास्तवमे ऊँचे उठा करती हैं ( अङ्क ७ ) दुष्यन्तकी प्रतिबिम्बित स्वर्गके धरातल-नर विपत्त है ( अङ्क ७ ) । भूख विभूषकको प्राय छा गई है ( अंक ९ ) ।

११ काव्य-सम्बन्धी या अन्य रुचियाँ—

सभी सस्कृत-साहित्य-भेगियोंका साथ कवम है कि बहुतासी भावनाएँ जो प्रारम्भमे प्रादेश और श्लोके भरि हुई थी उनमे यद्यपि अतिसयोक्ति थी फिर भी वे पिछले शैकेके कवियोंके हाथमे पढ़कर सर्वथा रुचियल और निर्णय-सी हो गईं । अत इसमे सन्देह नहीं कि हमकी कुछ स्वर्ण-के साथ-साथ कालिदासकी रचनाश्लोके कुछ निम्न कोटिकी यासुघोका मिश्रण भी मिलता है यद्यपि उनमे कल्पनाकी क्रीमिमा भी पर्याप्त है ।

काम-शीलित मनुष्यपर चन्द्रमाकी शीतल किरणें अग्निकी वर्षा करती हैं ( अङ्क १, श्लोक ३ ) । काम-शीलित मनुष्योका रुच्य चलन 'शकुन्तला' मे भी वैसा ही है जैसा प्राचीन पुस्तकोमे मिलता है, यद्यपि धनसूया यह भावोचना करती हुई पाई जाती है कि उपर्युक्त चलन उतकी उखी शकुन्तलाके लिये उपयुक्त हो है ( अङ्क ३, श्लोक १४ ) । सतारके साथ भौतिकी तुलना बहुत पुरानी है ( अङ्क ३, श्लोक १३ ) । कुमुदिनिचोपर चन्द्रमाका प्रभाव प्राय सभी सस्कृत-नाट्योंमे डबुल है, यह उपमाश्लोके सबसे अधिक नीरस है ( अङ्क ३, श्लोक १५ ) । पृथ्वी, राजाकी पत्नी एगनी गई है ( अंक ३, श्लोक १८ ) । चक्रवा-वक्रवीका विमोह एकदम रुचियल है ( अंक ३, श्लोक ३ ) । कन्दर कृतके कल-रत्न नलय श्वेतका जलन अंक ४, श्लोक १२मे मिलता है । जोकिलाके बन्धोका पालन पोषण शोषोके पोखलोमे होता है ( अंक ५, श्लोक २२ ) । अग्न प्रकृतिकापी ही इस उक्तिके सरपकी जांच करे । कामदेवका धनुष और बाणसे सुसज्जित दिक्षलानर योरोपीय और सस्कृत शाण्डमे समान है ( अंक ५, श्लोक २३, अंक ६, श्लोक ४ ) । आश्रमञ्जरी कामदेवका छठा प्रज है ( अंक ६, श्लोक ३, अंक ६, श्लोक ८ ) । आश्रमञ्जरियोंको देखकर अमरोंका मदमस्त होना यद्यपि स्वाभाविक है फिर भी यह वाक्य-शोन्दर्य प्राप्त करनेके लिये एक प्रवेश-द्वार सा हो गया है ( अंक ६ ) । दूध और जलके मिश्रणसे केवल दूध चूस लेना और जलको छोड़ देना हस्त-पक्षीका विशेष गुण है । यह एक शोषकात्मिक स्वोक्ति है ( अंक ६, श्लोक ८ ) ।

कुछ साधारण निष्कर्ष—

उपरिलिखित निम्नोकी कारिणों से शक्ती गाँठि स्पष्ट हो जायगा कि साधारण बातोंमे धरा-धारणके प्रति कालिदासकी प्रायुक्तता बहुत ही तीव्र थी । अपने विश्लेषणके निष्कर्षोंसे भी मुझे यह

दिलानेमें प्रसन्नता है कि उनकी बुद्धि सचमुच विस्तृत थी और इस बुद्धिने अपने धेरेमें घाई हुई प्रत्येक वस्तुको उचित स्थान दिया। उनका प्रकृति-ज्ञान एकदम नया था। दुष्मन्तके प्रथम प्रेमने एक स्थायी स्थान बना लिया है। वह कहता है—

न च निम्नादिव सलिल निवर्तते मे उतो ह्रुदयम् ।

[ अपने प्रेम-नाथ को छोड़ना मेरे लिये उतना ही असम्भव है जितना कि नीचे बहते हुए जल को ऊपर-चढ़ा ले जाना । ]

शब्द चित्रने कोई उपमा, पहले पशुओंकी सुरसे उठाई गई थी और फिर कण्ठके तपोदानके वृक्षोपर स्थित धूलसे अधिक कलाका प्रदर्शन नहीं करती। धूलके जमावकी तुलना टिड्डी दलते की गई है—

जलमसमूह इव रेणु... पतति । क्या यह उपमा कानिदासके प्राकृतिक दृष्टिकोणकी नवीनता नहीं सूचित करती ? क्या उनमें प्रत्यक्ष सकेतो द्वारा यस्तु प्रदर्शित करनेकी विचित्र शक्ति नहीं है जिनको टेनिसन या प्राउनिफुड या अन्य कवि और अधिकतयाे दिलाताते हैं ?

उनके प्राकृतिक ज्ञानके सम्बन्धमें दूसरी ध्यान देने-योग्य बात यह है कि उन्होंने मनुष्य और प्रकृतिके बीच कोई विनाशज-रेखा नहीं खींची है। समाजमें मनुष्योका सम्बन्ध पौषिक पारस्परिक सम्बन्ध-द्वारा समझाया गया है। विशेषतः 'शकुन्तला' में वनस्पति और पशु-जीवनके सभी अन्तर विलुप्त निकाल दिए गए हैं और पूर्ण जीवन हमारे समक्ष रक्खा गया है।

दुष्मन्तके सम्पूर्ण मनुष्यका अर्थान विस्तारसे करनेके लिये कल्पनाके बहुत ही उत्कृष्ट रूपकी आवश्यकता है। उदाहरणार्थ—किस प्रकार नीचे उतरते समय पृथ्वी दुष्मन्तकी ओर झुकवा दी गई थी जान पड़ती है, इसका प्राकृत अर्थान-प्रक ७, श्लोक ८ में किया गया है। कानिदासके समयमें वासुदेव नहीं थे फिर भी विचित्रता यह है कि पूराका पूरा अर्थान, एष० जी० वेल्स-द्वारा अपने केषामे दिए गए उस अर्थानसे शिक्षा रथाने शिक्षा मिल जाता है जिसमें उन्होंने अपना प्रथम वैमानिक अनुभव होने बताया है।

फिर भी मैं इस बातपर अर देता हूँ कि सभी उपमाएँ बुद्धिसत्ताकी मूल नहीं हो सकती। सत्तारकी अग्य अरतुओंमें समान उपमाओंका भी अभाव किसी सौन्दर्य होता है। प्रथम तो उन्हें उचित होना चाहिए। जब किसी पण्डितमानोने किसी अर्थाने योनारको देखकर इस प्रकार आलोचनाकी "यह गृहका अर्थान निरर्थक वाक्याथ है" तो अपने सबभुव शिशुता या कवि होनेकी अपनी अयोग्यता प्रकट की।

कानिदासकी उपमाओंमें यह अर्थान निश्चय ही है, इसका विवरण कुछ उदाहरणोंसे पल जायगा। प्रियम्बदा अपनी सभी शकुन्तलाकी योग्य पति पानेपर अघाई देते हुए कहती है :—

दिव्या प्रमातुनितट्टेरेविय यजमानस्य पावक एवाहुति पतिता ।

श्लो । मुनिप्यपरित्ता विधेयाजोचनीपाति सवृता ।

उपमाओंका अर्थान और सौन्दर्य इस अर्थाने समझा जाता है कि कविमें यह शक्ति ही कि यह अर्थान अर्थान उदाहरण लेकर आचारिक सम्बन्धको समझ दे ।

दूसरी ओर विद्रूपकके हाथमें पडकर प्रत्येक गम्भीर और पवित्र विचार घससकृत और हास्यास्पद हो जाते हैं। जब मातलि उसे इसी प्रकार पीट चुकता है तो वह कहता है—

इष्टिपशुमारं मारितः ।

दूसरे स्वप्नपर दुःखन्तके प्रेमोन्मत्त हो जाने पर वह कहता है—

‘सिद्धिं एव भूयोर्षिं सकुन्तभाव्याधिना’ ।

वस्तुतःका हास्य-सिद्धान्त विद्रूपककी चरित्र-वृद्धिमें नती भाँति दिखाया गया है, क्योंकि आत्माके विषयमें मातपीत करते हुए यह सर्वदा शरीर और उसके असकृत प्रेमकी ओर ही निर्देश करता है।

उपमाओंके अर्थ युग जैसे वैचित्र्य, वैविध्य आदिका विशेष रूपसे वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे ऊपर दी हुई उपमाओंके मूल स्रोतोंके विभागोंसे स्पष्ट हो गए हैं।

अंगरेजी साहित्यका विद्यार्थी मिस्टन अथवा होमरमें अधिकतासे मिलनेवाली लम्बी पूछोवाली उपमा न पाकर आश्चर्यमें पड़ जाता है। किसी विचारको जान-बूझकर पीट-पाटकर बसाना, कुत्रिमता ही सूचित करता है, चाहे वह कितनी ही चतुराईसे क्यों न किया जाय, क्योंकि मौलिक रचनाके लिये वह किसी प्रकार भी सहायक नहीं है। बनावट कभी मौलिक रचनाके समकक्ष ही भी नहीं सकती। कालिदासकी प्रायः सभी उपमाएँ सीधी-सादी हैं और वे भारतीय मस्तिष्कपर अपना प्रभाव डालती हैं क्योंकि वे उस भारतीय सम्प्रदायका चित्रण करती हैं जिसका पालन-पोषण बनने हुआ है न कि यूनानी और रोमन सम्प्रदायकी भाँति नगरकी पहार-दीवारोंके भीतर। अतः उन सभीमें वह स्वातन्त्र्यकी अन्तक दिखाई देती है जो प्रकृतिके घातिकासी प्रभावके वैज्ञानिक सम्पर्कसे ही सम्भव है।

## कालिदासकी छन्दोयोजना

[ श्री पण्डित रामगोविन्द शुक्ल, स्थाय-व्याकरण-साहित्याचार्य, काशी ]

जैसे विभिन्न प्रकारके उच्चारणके लिये विभिन्न प्रकारके षष्ठानुके अंगिपाठोका विधान है और जैसे विभिन्न प्रकारके वर्ण पृथक् पृथक् रस, भाव तथा प्रत्यार आदिसे स्पष्टक है वैसे ही उन-उन रसोके व्यञ्जनाके लिये भिन्न-भिन्न छन्दोका या विधान है जैसे शृङ्गार रसके व्यञ्जनाके लिये द्वारा ही शृङ्गार रसकी सिद्धि होती है जैसे ही छन्दोके विषयमें भी यह विचार किया गया है कि किस छन्दमें रसा हुआ काव्य किस रसकी पुष्टिके लिये अधिक उपयुक्त होगा। उसका तात्पर्य यह है कि केवल छन्द-योजना ही काव्यमें रस-सिद्धिके लिये पर्याप्त नहीं होता, उसमें लिये छन्दोयोजना भी उतनी ही अधिक अपेक्षित है। महाकवि शोभेन्द्रने अपने सुवृत्त-विलकने कहा है कि—

काव्ये रसानुसारेण वर्णानुसुलेन च ।  
शुचीतं सर्ववृत्तानां विनियोगं विभाषयिषु ॥

(काव्यमें रस तथा वर्णोक्त वस्तुके अनुसार छन्दोयोजना ठीक समझकर छन्दोका विनियोग करना चाहिए ।)

छन्दोयोजनाका परिणाम तो उन महाकवियोंके काव्योंमें ही सम्भव है जिनकी वाग्मराय अधिक प्रवाह-द्वारा साहित्य तथा साहित्यकारोके कृत करती रही है। आचार्य मम्मट भट्टने कहा है कि काव्य-निर्माणकी शक्ति होनेपर भी 'काव्यशक्तिमान्वाच' की आवश्यकता रहती ही है। अतएव नये कवि अपने पूर्ववर्तों के बड़े बड़े कवियोंके बनाए हुए मार्गपर ही चलना उचित समझते हैं और उद्गुणार ऐसी परिपाटी बना लेते हैं जिससे पीछे जानेवाले कवि-माला अटवते न दिरें, अतएव उही मार्गपर सावधानीसे पैर रखते हुए बढ़े चले जावें। इसीलिये महाकवि शोभेन्द्रने अपने सुवृत्तविलक नामक ग्रन्थमें छन्दोयोजनाके विषयमें नियम लिखते हुए कहा है—

कारम्भे उगंबन्धस्य कथाविस्तारवग्रहे ।

समोचदेसवृत्तान्ते सन्त शसन्त्यनुष्टुभम् ॥

शृङ्गारसम्बन्धोदारलायिनाएपवर्णनम्

वसन्तादि सरङ्ग च सन्ध्यमपुष्यातिभिः ॥

रपोठठा विभावेषु भव्या चन्दोदवादिषु ।

भारगुण्यप्रगुणा नीतित्वमस्येन विराजते ॥

वसन्तानिक माति सरङ्गरे नीरसोदयो ।

शुचीतं उगंस्य पयंने मातिनी दुताशुनव ॥

उपपन्ने परिच्छेदकाले शिखरिणी मता ।

श्रीदार्यंश्चिरोचित्य-विचारे हरिणी मता ॥

साक्षेपकौशिक्यकारे पर पृथ्वीभरक्षमा ।

प्राकृतप्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते ॥

शौर्यस्तये नृपादीना शार्दूलक्रीडत मताम् ।

सावेगपदनादीना वर्णने लम्बरा मता ॥

शोककौटुकनर्कटमुक्त मुक्तपन्नेव विराजति सूत्रम् ।

निर्निषयस्तु रसादिषु तेषां निविषमत्र सदा विनियोगः ॥

शेषाणामप्यनुपाना वृत्ताना विषय दिना ।

वैचित्र्यमात्रपात्राणां विनियोगो न दर्शित ॥

इत्येव यद्यवचसा सर्वकृत-प्रसंगिनाम् ।

अदो विभाग सद्वृत्तविनियेषे विश्लेषभाद् ॥

महाकवि क्षेमेन्द्रकी दृष्टिमें कालिदासकी छन्दोयोजना इस प्रकार की है —

सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवर्धयति ।

सयश्वदम् ? स्येव काम्बोजतुरगाङ्गना ॥

सुवशाहं प्रबन्धेषु यथास्थान-विवेशिनाम् ।

रत्नानामपि वृत्ताना भवत्यम्बुविका रुचिः ॥

[ किसी संगके प्रारम्भमें, कयाके विस्तारका सङ्ग्रह करनेमें उपदेश या वृत्तान्त कथनमें अनुष्टुप् छन्दके प्रयोगकी प्रशंसा सम्बन्ध सौग करते हैं । शृङ्गारके भासम्बन्ध-स्वरूप उदार नामिकाके वर्णन और शृङ्गारके भगभूत वसन्त भाविका वर्णन उपजाति छन्दमें करना चाहिए । भय चन्द्रोदय भादि विभाषीका वर्णन रघोद्वतामें और पाङ्गुध्व भादि नीति सम्बन्धी विषयोंका वर्णन बघास्य छन्दमें शोभन होता है । और और शीतके मेलमें बसन्ततिलका छन्द ठीक होता है और सर्गके अन्तमें द्रुत तानके समान मालिनी छन्दका प्रयोग करना चाहिए । अध्यात्मकी प्रशंसा करने या प्रारम्भ करते समय शिखरिणी छन्द उचित होता है । उदारता, रुचि और भौचर्य भादि गुणोंके वर्णनके लिये हरिणी छन्द ठीक है । भाक्षेप, क्लेश और चिह्नारके लिये पृथ्वीभरक्षमा छन्द उचित है । वर्षा, प्रवास, विपत्ति भादिके वर्णनके लिये मन्दाक्रान्ता छन्द उपयुक्त है । राजाओंके शौर्यकी स्तुतिके लिये शार्दूलविक्रीडित तथा भाषी-बबदरके लिये लम्बरा ठीक है । मुत्तर सूत्रियाँ दोषक, सोटक तथा नर्कट छन्दमें मन्दी लक्ष्मी हैं । विलम्ब छन्दोंके प्रयोगका वर्णन नहीं किया गया है उनके विषय और प्रयोगके भौचित्यका विचार कर लिया जा सकता है । कवि सौग उचित प्रकारसे यथा स्थान उनका प्रयोग कर ही लेते हैं । ]

महानवि क्षेमेन्द्रका यह निर्देश सर्वथा सराहनीय है और छन्दोंके विषयमें पूर्णरूपसे यह विभाग बन जाना चाहिए कि जिस छन्दका वहाँ प्रयोग करना उचित और नहीं अनुचित है

जिसमें नये शब्दोंका उचित 'पथ' प्रदर्शन हो सके। रीति-ग्रन्थकारोंने काव्यदोष गिनते हुए 'हृतवृत्तता' नामक दोष भी लिखा है। उनका कहना है कि जो वृत्त उसके स्वभावसे विपरीत पड़ता हो उसका प्रयोग उस उसके लिये करना ही हृतवृत्तत्व दोष है। इस विषयपर ऐसे पृथक् निबन्धकी आवश्यकता है जिसमें विभिन्न रसोंके अनुसूख विभिन्न छन्दोंकी योग्यता विस्तारसे समझाई जाय। इस समय केवल यही विचार किया जा रहा है कि महाकवि कालिदासने अपने शब्दोंमें किन रसों, भावों तथा वर्णनोंके लिये किन छन्दोंका प्रयोग किया है—

छन्द

विषय-भाव या इस

१. उपाजाति—वगाथएनं, तपस्या तथा सायक-नायिकाया शौर्यं ।
२. अनुष्टुप्—सम्बो श्यावो सक्षिप्त करने तथा उपदेश देनेमें ।
३. पदस्य—वीरताके प्रकरणमें, चाहे युद्ध हो या युद्धकी रीतारी हो रही हो ।
४. वैतालीय—कहला रसमें ।
५. हुतपिलम्बित—समृद्धिके वर्णनमें ।
६. रघोदत्ता—जिस वर्णनका परिणाम खेदके रूपमें परिणत हो चाहे वह खेद रति-जनित हो, दुष्पक्ष-जनित हो या पश्चात्ताप-जनित हो। अतः कामक्रीडा, भानुदेव सादिवा वर्णन इसी छन्दमें है ।
७. मन्दाक्रान्ता—प्रवास, विपत्ति तथा शर्पाके वर्णनमें ।
८. मालिनी—सफनताके साथ पूर्ण होनेवाले वर्णनमें छन्दमें ।
९. प्रहर्षिणी—हर्षके साथ पूर्ण होनेवाले वर्णनमें छन्दमें। यदि वर्णनमें भी यही इच्छा प्रयोग है तो यही भी दुःखकी घोरताके हर्ष या हर्षकी धारामें हर्षातिरेक ही पशुित है ।
१०. हरिणी— जब नामवचा धम्युत्पान हो या तीभाग्यका वर्णन हो ।
११. वरुणपत्तिका—कार्यकी उपरतापर । अनु-वर्णनमें भी पुरर्षोंकी उपरता या अनुष्ठीय उपरतापर तभी विद्व हो छाड़ी है जब उसका उपभोगा उन वस्तुओंका कामोप कर रहा हो ।

इसी प्रकार छन्दान्तरे लिये प्रस्थान या प्राप्तिमें चर्यवन्तस्य पुष्पिताम्र, निराशाके साथ विवृतिमें तोंक, वृत्तस्यैवमे मालिनी, युवा वीरता-प्रदर्शनमें शोषन्दसिन्ध, प्रीत्याके वर्णनमें ( चाहे शान्तीका हो या धन्य शौका हो ) रघोदत्ता, संयोगसे स्वर्धरास विपत्ति या सम्पत्तिमें रवागता, चरुत्पदमें मत्तमयूर, प्रसन्नोका परिश्याय करनेमें मारस्य तथा वीरता धारिते वर्णनमें शार्ङ्गविर्द्धातिरका प्रयोग किया गया है ।

यहाँ यही समझना प्रस्ताव किया गया है कि किस प्रकारकी घटनाओं तथा विद्व प्रकारके विचारोंका वर्णन किस किस छन्दमें किया है। निश्चय स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि कालिदासने अपने शब्दोंके वर्णन-कार्य पर भी विद्व करने और सम्मानना प्रयत्न किया है कि इन एतदोका प्रयोग किछ रसमें करना चाहिए। जिस वर्णनकी घटनाओंमें शोष-दुःखपर भाव बढ़ता है या

घटना बदली है ठीक उसीके अनुसार कविने छन्दों भी बिन करके हा परिवर्तन किया है जिससे यह भी मानना अनुचित न होगा कि कविने अपने कामके द्वारा स्वर्णि अनुकूल छन्दोयोजनाकी सिधा भी दी है ।

छन्दोका प्रयोग समझने धीरे उनका प्रकरण जाननेके लिये छन्दोकी कालिका भागे दी जाती है जिसके द्वारा पीछे लिखी हुई बातोंकी पुष्टि हो सकेगी—

### रघुवंश

प्रथम सर्ग	छन्द	संख्या
१ से ६४ तक	मनुष्टुप्	सप्तुस्वाव् पवन यत्र सुखप्लवङ्गं सतमम् । द्वितुसंपादयोह्लं स्वमप्याधर मनुष्टुभम् ।
६५ वां	प्रह्वर्षिणी	स्त्री श्री गच्छिदापति प्रह्वर्षिणीम् ।
द्वितीय सर्ग		
१ से ७४	उपजाति	उपेद्रकथापदव्यतानि मदीन्द्रवज्रावरस्यानि च स्तु । उदोपजाति कथिता कवीर्द्वैर्भेदाभवतीह चतुर्दशास्या ।
७५ वां	मात्सिनी	नमममपुतेय मात्सिनी भोगितोके ।
तृतीय सर्ग		
१ से ६६ तक	मसस्थ	जती धु मसस्थमुदीरित जरी ।
७० वां	हरिणी	रसयुगह्वयैर्हो स्त्रीस्तौ गो यदा हरिणी तदा ।
चतुर्थ सर्ग		
१ से ८६ तक	मनुष्टुप्	( ऊपर देखो )
८७ से ८८ तक	प्रह्वर्षिणी	( ऊपर देखो )
पंचम सर्ग		
१ से ६२ तक	उपजाति	( ऊपर देखो )
६३ से ७३ तक	मस-उत्तिलवा	उल्ला मस-उत्तिलवा ठमना कथीम् ।
७४ से ७५ तक	मात्सिनी	( ऊपर देखो )
७६ वां	पुष्पिताशा	अयुजिनमुनरेकतो यवारो युधि च न जीकरताश्च पुष्पिताशा ।
षष्ठ सर्ग		
१ से ८४ तक	उपजाति	( ऊपर देखो )
८५ वां	मात्सिनी	( ऊपर देखो )
८६ वां	पुष्पिताशा	( ऊपर देखो )
सप्तम सर्ग		
१ से ६६ तक	उपजाति	द्वितीय सर्गमें,
७० से ३१ तक	मात्सिनी	द्वितीय सर्गमें,



## अष्टम सर्ग

१ से ६० तक      वैतालीय      निपमे यदि पट्टनवासमेऽप्यौ त्युस्ता इह नो निरन्तरा ।  
न समात्र पराश्रिता क्वा वैतालीयेऽन्ते रली गुह ।

६१ वां      तोटक      इह तोटकमम्बुधिसं प्रथितम् ।

६२ वां      प्रहृषिणी      प्रथम सर्गमे      ( ऊपर देखो )

६३ से ६४ तक      वसन्ततिलका      पचम सर्गमे      ( ऊपर देखो )

६५ वां      मन्दाक्रान्ता      मन्दाक्रान्ता बलपिण्डमभंगितौ तद्गुरुचेत् ।

## नवम सर्ग

१ से ५४ तक      द्रुतविलम्बित      द्रुतविलम्बितमाह नभो भरो ।

५५ से ६३ तक      वसन्ततिलका      पचम सर्गमे      ( ऊपर देखो )

६४ से ६५ तक      मासिनी      मासिन्पुस्त्य म्बो तयो मोम्पिकोर्क ।

६६ वां      औपच्छन्दसिक      चरमे यदि रेफयो भवेतामौपच्छन्दसिक दलद्वये तत् ।

६७ वां      मासिनी      द्वितीय सर्गमे      ( ऊपर देखो )

६८ वां      रघोदत्ता      रान्तराबिह रघोदत्ता सगी ।

६९ से ७० तक      पुष्पिताया      पचम सर्गमे      ( ऊपर देखो )

७१ से ७३ तक      स्वागता      स्वागतारनभयैर्वुरत्या च

७४ वां      वैतालीय      अष्टम सर्गमे      ( ऊपर देखो )

७५ वां      मत्तमयूर      वेदं रश्मिस्तो यसमा मत्तमयूरम् ।

७६ से ८२ तक      वसन्ततिलका      पचम सर्गमे      ( ऊपर देखो )

## दशम सर्ग

१ से ८५ तक      अनुष्टम्      प्रथम सर्गमे      (ऊपर देखो)

८६ वां      मासिनी      द्वितीय सर्गमे      (ऊपर देखो)

## एकादश सर्ग

१ से ६१ तक      रघोदत्ता      नवम सर्गमे      (ऊपर देखो)

६२ वां      वसन्ततिलका      पचम सर्गमे      (ऊपर देखो)

६३ वां      मासिनी      द्वितीय सर्गमे      (ऊपर देखो)

## द्वादश सर्ग

१ से १०१ तक      अनुष्टम्      प्रथम सर्गमे      (ऊपर देखो)

१०२ वां      मासिनी      द्वितीय सर्गमे      (ऊपर देखो)

१०३ वां      वसन्ततिलका      पचम सर्ग मे      (ऊपर देखो)

१०४ वां      नाराय      इह नवरश्तुष्वमृष्टं तु नारायमाचरति ।

## त्रयोदश सर्ग

१ से ६७ तक      उपजाति      द्वितीय सर्गमे      (ऊपर देखो)

६८ से ७८ तक      वसन्ततिलका      पचम सर्गमे      (ऊपर देखो)

७९ वां      प्रहृषिणी      प्रथम सर्गमे      (ऊपर देखो)

षट्पदा सर्ग १ से २६ तक २७ वाँ	उपजाति मन्दाक्रान्ता	द्वितीय सर्गमें अष्टम सर्गमें	(ऊपर देखो) (ऊपर देखो)
पंचदश सर्ग १ से १०२ तक १०३ वाँ	अनुष्टुप् मन्दाक्रान्ता	प्रथम सर्गमें अष्टम सर्गमें	(ऊपर देखो) (ऊपर देखो)
षोडश सर्ग १ से २५ तक २६ वाँ २७ से ३६ तक	उपजाति वसन्तविलका मन्दाक्रान्ता	द्वितीय सर्गमें पचम सर्गमें अष्टम सर्गमें	(ऊपर देखो) (ऊपर देखो) (ऊपर देखो)
सप्तदश सर्ग १ से २० तक २१ वाँ	अनुष्टुप् मन्दाक्रान्ता	प्रथम सर्गमें अष्टम सर्गमें	(ऊपर देखो) (ऊपर देखो)
अष्टादश सर्ग १ से ५१ तक ५२ से ५३ तक एकौतविंशति सर्ग १ से ५५ तक ५६ वाँ ५७ वाँ	उपजाति वसन्तविलका रघोदत्ता वसन्तविलका मन्दाक्रान्ता	द्वितीय सर्गमें पचम सर्गमें नवम सर्गमें पचम सर्गमें अष्टम सर्गमें	(ऊपर देखो) (ऊपर देखो) (ऊपर देखो) (ऊपर देखो) (ऊपर देखो)

### कुमारसम्भव

#### प्रथम सर्गमें

१ से ५६ तक ६० वाँ	छन्द उपजाति माहिनी	वसन्त द्वितीय सर्ग द्वितीय सर्ग	रघुवध "
दूसरा सर्ग १ से ६३ तक ६४ वाँ	अनुष्टुप् माहिनी	प्रथम सर्ग द्वितीय सर्ग	"
तीसरा सर्ग १ से ७४ तक ७५ वाँ ७६ वाँ	उपजाति वसन्तविलका माहिनी	द्वितीय सर्ग पचम सर्ग द्वितीय सर्ग	" " "

## घोषा सर्ग

१ मे ४४ तक ४५ वां ४६ वां	वैतालीय वसन्ततिलक पुष्पिताम्बा	षष्ठम सर्ग रघुवंश पञ्चम सर्ग पञ्चम सर्ग	॥ ॥ =
पार्ष्णी सर्ग १ मे ८४ तक ८५ मे ८६ तक	वधस्य वसन्ततिलक	तृतीय सर्ग पञ्चम सर्ग	॥ ॥
सडा सर्ग १ से ६४ तक ६५ वां	भद्रुद्वय पुष्पिताम्बा	प्रथम सर्ग पञ्चम सर्ग	॥ ॥
सातवां सर्ग १ से ४३ तक ६४ से ६५ तक	उपजाति मानिनी	द्वितीय सर्ग द्वितीय सर्ग	॥ ॥
भाटवां सर्ग १ मे ६० तक ६१ वां	रघोदत्ता मानिनी	नवम सर्ग द्वितीय सर्ग	॥ ॥
मर्वां सर्ग १ से ५१ तक ५२ वां	उपजाति पुष्पिताम्बा	द्वितीय सर्ग पञ्चम सर्ग	॥ ॥
बलवां सर्ग १ मे ३६ तक ३७ वां	भद्रुद्वय मन्दाकारा	प्रथम सर्ग षष्ठम सर्ग	॥ ॥
प्यारहवां सर्ग १ मे ४६ तक ४७ वां	उपजाति हर्गिणी	द्वितीय सर्ग तृतीय सर्ग	॥ ॥
बारहवां सर्ग १ मे ३६ तक ३७ वां	उपजाति हर्गिणी	द्वितीय सर्ग तृतीय सर्ग	॥ =
तेरहवां सर्ग १ मे ३० तक ३१ वां	उपजाति मर्वां सर्ग	तृतीय सर्ग द्वितीय सर्ग	॥ ॥

कालिदास के काव्यों में निर्दिष्ट  
स्थलों से युक्त  
भारत का मानचित्र



सा ग र

सा ग र

# अभिधान-कोष

[पण्डित सीताराम शुक्लदेवी]

प्र

**अशुभान**—सूर्यवंशी राजा सगरका पौत्र  
सप्तमजसका पुत्र । (देखो सगर)

**अक्षत**—पावसके समूचे दाने जो देवपूजाके  
भागमें आते हैं ।

**अगस्त्य**—१ ऋषि, जिनका अर्य षडेसे  
हुमा था, जिनहोने समुद्र सोल लिया था और  
जिनके कहनेसे विन्ध्यपर्वत भेट गया था । 'अग  
विन्ध्याचल स्त्याययति इति अगस्त्य ।' ऋग्वेदके  
समुद्रार मन्त्रके अंतमें उर्वशीको देखकर विभ और  
बहुतका वीर्य स्खलित होकर मग्नके कुम्भमें जा  
गिरा, उसीसे दक्षिण और अगस्त्यकी उत्पत्ति  
हुई । सोपामुद्रासे अगस्त्यका विवाह हुमा ।  
अगस्त्यका आश्रम गौदावरीके उत्तर तटपर  
दण्डकारण्यमें विदर्भ (बर्तमान बरार)की पूर्वोत्तर  
सीमापर था । देवताओंके अतुरोधसे इन्होंने समुद्र  
सोख डाला, इन्धन और यातापि अतुरोको बन्द  
कर डाला । जब विन्ध्याचलने सूर्यका पथ रोक  
लिया था, उस समय इन्होंने उसे नीचे सिटा  
दिया था ।

विद्वानोंका विश्वास है कि अगस्त्यको स्मरण  
करते हुए यह श्लोक पढ़नेसे अजीर्ण दूर हो  
जाता है—

आशापी मारिती येन वातापी च महान्वल ।  
समुद्र सोपितो येन स मज्जस्त्य प्रसीदतु ॥

२—तारा जो दक्षिण दिशामें और भाद्रपद  
मासके षष्ठहवें दिन उदय होता है । यह तारा  
जब उदित हो जाता है तब वर्षा समाप्त हो  
जाती है ।

३—वृष, जिसमें द्वितीयाके चन्द्रमाके  
आकारके धूल लगते हैं ।

**अमुच**—सुमन्वित काष्ठ । इसके घुँसे  
महिलाएँ अपने केश सुमन्वित करती हैं । अगर  
बन्दव । यह देखनेमें काला, पर परतपरत घिसनेसे  
सुन्दर पीले रंगका हो जाता है । इसका पैठ बहुत  
बड़ा होता है और सिलहटके पहाड़ी जगलमें  
जगता है । इसीके पुराने वृक्षसे गुग्गुलु-जैसी एक  
प्रकारकी गोद निकलती है जिसे पीतबर आगपर  
डालनेसे मीठी सुगंध निकलती है ।

**अग्नि**—आग्नेय-कोण (दक्षिण-पूर्व दिशा)  
के अग्निष्ठाता बेबतर । अग्निमें तीन प्रकार हैं—  
दावाग्नि, जठराग्नि, वाडवाग्नि ।

**आवाग्नि**—सकड़ीकी आग, (जठराग्नि,  
पेट की आग जो भोजन पचाती है, वाडवाग्नि  
समुद्रकी अग्नि ।)

**अग्निहोत्र**—यज्ञ विशेष । एक मासमें इस  
यज्ञका उवाचन किया जाता है फिर पावजीवन  
यह यज्ञ करनेसे प्रात और संध्याको होम करना  
पड़ता है ।

**अद्भु**—किसी बातकका एक कार्य जितने  
असम्भूल्य होता है उसे अद्भुत कहते हैं ।

**अक्षय**—वे बरि जो गोदमें रखकर बजाए  
जाते हैं । जैसे—मृदग, बोलक, पखावज ।

**अधराग**—वे सब सुमन्वित पदार्थ—चन्दन,  
कभूर, अगर, पराग, धालता आदि जिन्हे लेप  
करनेसे शरीरमें सुगन्ध और शोभा आती है ।

**अगिरा** या **अगिरस** ऋषि—ब्रह्माके  
द्वितीय पुत्र । इनकी पत्नी शुभा और पुत्र  
गृहस्पति हुए । एक बार महर्षि अगिराने इतना  
कठोर तप किया कि उनकी ज्योतिसे सप्तर  
बर गया । उन्ही दिने अग्निदेव भी तपका

कर रहे थे। जब अगिराके तेजसे अग्निकी अपना तेज मन्द जान पटने लगा तब उन्होंने सोचा कि क्या प्रह्लादने दूसरी अग्निवा निर्माण विन्या है, तब अगिरान अग्निसे कहा कि आप अपना अधिहार से लौजिए, मैं आपका पुत्र बनूंगा। तभीसे बृहस्पतिके नामसे वे अग्निके पुत्र बने।

(देखो अग्नि गो)

**अजगर**—'अज छाग गिरति निवति । जो साँव बकरेकी भी निगल जाय । यह पहारी साँव एधिया और अकोबामे होता है। इसे अग्नेजीमे पाइयन और अमेरिका मे, 'बोया कस्टि-बटर' कहते हैं। यह बकरे, भेडे हरियल, भैंसे और कीदतपकी निगल जाता है या त्रिपटकर उन्हें अकडकर मार डालता है।

**अञ्जना**—सुमेध पर्वतके पासवाले प्रदेशके रहनेवाले बानरराज केचरी (या केसरी) नामके बानरकी पत्नी थी। इनके गर्भसे पवनके सम्बन्धसे हनुमानजीका जन्म हुआ। वे बड़ी धीर, धीर नारी थी। जब सना किजयके परभाव हनुमानजी इनसे मिलने गए तब इन्होंने हनुमानजीको डाँटते हुए कहा कि तू रायख-जैसे अत्यन्त सामान्य व्यक्तिके पुत्र बनने क्यों गया। तुझे तो चाहिए था कि अपने बच्चे मछीके राजकुमारे बच्चे सिद्ध भोज लागे, अमोहवनके साथ सोताकी सागर रामने पास पहुँचा देना और अपना शरीर पँनाकर समुद्रपर पुल बना देना।

**अञ्जलि**—दीनो हाथोरी हृषिकेशी धीर उदगिषोकी मिलाकर जो इस प्रकार बना सेना कि उसमे पानी या खोई बगु मरो जा सके।

**अट्टहास**—'अट्टन अट्टिनयेन हास ।' ठग-कर या टट्टाया मारकर हँसना।

**अलिभा**—यह एक देवके सिद्धि है जिसके गध या गार मनुष्य अत्यन्त शूलभ अथ बना उद्वग है इसी भाँडे सिद्धियाँ हैं—

अलिभा सधिया प्राप्ति प्रावाम्य महिमा तथा ।  
ईशित्वञ्च वशित्वञ्च तथा कामयसायिता ॥

[अलिभा, सधिया, प्राप्ति प्राकाम्य, महिमा, ईशित्व, वशित्व तथा कामयसायिता (गरिमा)]

**अतिबला**—बला और अतिबला नामकी दो विद्याएँ विद्वामिदजीने राम लक्ष्मणको उस समय सिखाई थी जब वे विद्वामिदजीके साथ उनके यज्ञकी रक्षाके लिये चले जा रहे थे। इन विद्याओंके ग्रहण करनेसे भलाबद, भूल, प्यास, गर्मी कुछ नहीं उठावी, कोई कुछ हानि गही कर सक्ता अपार दत्तवीर्य मिलता है, सीमाय, उदारता ज्ञान, विज्ञान सब मिल जाता है। मार्गमे इनका पाठ करनेसे कोई भय नहीं होता ये तेजस्विनी विद्याएँ पितृमह प्रह्लाकी बन्पाएँ हैं।

**अतिमुक्त (सता)**—तिनसुनेका पेठ, मापकी सता, मोगरा।

**अत्रि**—सप्तश्रियोंनेसे एव श्रुति जो प्रह्लाद केचरुसे उत्पन्न हुए थे। बर्दम श्रुतिकी पुत्री अन्नमुपासी इनकी पत्नी हैं। दत्तात्रेय दुर्वासा और अन्न इनके पुत्र हैं। मनुसे उत्पन्न दस प्रजापतियोंमे से ये एक थे—

मरीचिमभ्यङ्गिरसो पुलस्त्य पुत्रश्च यतु ।

प्रचेतस वशिष्ठञ्च भृगु भारदमय च ॥

[मनु० १।३५]

जिन सप्तश्रियोंने इनकी गिनती होती है वे हैं—

मरीचिरभ्यङ्गिरसो पुलस्त्य पुत्रश्च यतु ।

ब्रह्मरुषी मानस्य पुत्रश्च वशिष्ठश्चैति सप्त त ॥

**अति**—ये दक्षकी पुत्री और मरीचिके पुत्रकी पत्नी मानी जाती हैं। वे देवमाता और दासापत्नी कहलाती हैं।

**अतपुर**—रतिदास। राजभवासे शनिपों के त्रिवास धीर बिट्टारकर रथान।

प्रतयाव (दुर्ग)—राज्यकी सीमापर बना हुआ वह दुर्ग जिससे राज्यपर बाहरके अनुप्रोके आक्रमणसे रक्षाकी जा सके। अन्त सीमान पालयति इति अन्तपाल ।

अतर्धान—तपने भीतर छिप जाना। अहरण हो जाना।

अनुया—अग्नि मुनिकी पत्नी तथा कर्दम ऋषिकी पुत्री। (देखो अग्नि)

अनुदात्त—(स्वर) जब कोई स्वर दल देकर तथोला जाय तब उसे अनुदात्त कहते हैं। नीचैरनुदात्त जैसे उ। शिक्षाशास्त्रमे लिखा है—उदाराभ्यानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरात्म्य। दीर्घो ह्रस्वोऽप्युत्तरैवेति पालतो नियमस्त्वचि ॥

(उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये तीन स्वर होते हैं, जो उनके उच्चारणमे लगनेवाले समयके अनुसार दीर्घ, ह्रस्व और प्युत्त कहलाते हैं। इसके अनुसार अ, इ, उ, अनुदात्त हैं, आ, ई, ऊ उदात्त, हैं तथा ए, ऐ, औ, ऊ स्वरित हैं।)

अधक—दितिके गर्भसे और कल्पके धौरस (बीज) से इस धैर्यका जन्म हुआ था। इसने भ्रायाचारसे ऊबकर महादेवजीने इसे मार डाला था।

अपराजिता (विद्या)—वह विद्या जिसके सीधे सेनेपर कभी हार न ही।

अप्सरसीर्य—या अप्सरासीर्य—१ वह सीर्य या स्थान जहाँ अप्सराएँ रहती हो। २ आकाश गंगाका वह पाट जहाँ अप्सराएँ स्नान करती हैं। ३ अप्सराके समान रूपवाली।

अभिनय—'अभिनयति हृन्वतभ्रायान्प्रकाशयति।' नाटकमे निर्दिष्ट पात्रके अनुसार वेद-भूषा धारण करने उससे निर्दिष्ट याख्यापर और प्रियाभोगा अनुकरण करके दिखाना अभिनय कहलाता है। अभिनय चार प्रकारका होता है भागिक, धार्मिक, सात्त्विक और आहार्य, ये चार

सिद्ध, हास्य, पैर आदि-वर्ण चलाकर अभिनय करता भागिक कहलाता है। बाणोके उतार-चढ़ावसे बोलनेका अभिनय धार्मिक कहलाता है। मांस, काम, पसीना निबलने आदि का अनुकरण सात्त्विक कहलाता है और नाटकीय पात्रके अनुसार वेदभूषा धारण करना आहार्य कहलाता है।

अभिसारिका—'अभिसारति, अभिसारयति वा सकेतस्थानम्।' किसी निश्चित स्थानपर मिलनेका सकेत करके अपने प्रेमीके पासजानेवाली नायिकाको अभिसारिका कहते हैं।

अभिसारयति काण्य या मन्मथेऽस्य प्रसवदा। स्वयंवाअभिसारयेणा धीरैश्चक्राभिसारिका ॥ (साहित्य दर्पण)

जो स्त्री काम-पौडित होकर अपने प्रियकी सहेत या सकेत-स्थल को भेज दे या स्वयं वहाँ जाय उसे अभिसारिका कहते हैं। ये तीन प्रकार की होती हैं, १-दिवाभिसारिका, जो दिनमे प्रियके मिलने जाय, २-सुस्ताभिसारिका (ज्योत्स्ना-भिसारिका) जो श्वेत वस्त्र पहनकर चाँदनी रातमे मिलने जाय और ३-कुण्डाभिसारिका (अधक-अभिसारिका) जो अंधेरी रातमे काले कपड़े पहनकर मिलने जाय।

अमरावती—अमरा देवा विद्यन्ते यस्या सा इन्द्रपुरी, विश्वकर्मि सुमेघ पर्वतपर इसका निर्माण किया, यहाँ कितीको बुडाया, मृत्यु, शोक और ताप कुछ भी नहीं सताता। यही कामधेनु गो, ऐरावत हाथी, उष्णीषा घोडा, अप्सराएँ और नन्दनवनके पाँच प्रकार वृक्ष हैं—मन्डार, पारिजात, सतान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन। इस पुरीके भीतरसे अलकनन्दा बहती है, इन्द्र यहाँके स्वामी हैं। विद्वानोका अनुमान है कि तुमिस्तानमे वोखाराके पास इन्द्रालय नामक स्थान ही अमरावती और वर्तमान भोक्तास नदी ही अलकनन्दा है।

अमात्य-परिषद्—राजाकोही सहायताके

लिये मन्त्रमन्त्र, जो विभिन्न विषयोंपर राजाको सहायता करता था ।

**धमृत**—वृद्धराजके भयसे पृथ्वीने गोरूप धारण किया था । देवोंने इन्द्रको बरत धनाकर सुरस्यं पात्रमे गोरूप पृथिवीको दूहा । उसके स्तनमे धमृत निषत्ता था । पीछे दुर्वासके धारणे वही धमृत समुद्रमे जा गिरा । तब देवताओं और धमुरेदि घोरनागको रस्सी घोर मदरखलको मयानी बनापर क्षीरसागरको मया, जिनसे १४ रत्न निकले जिनमे धमृतका बलच भी था ।

**धमृतकिरण**—धन्द्रमा, जिसकी किरणमे धमृत रहता है । धन्द्रमाको धोपथीनां पति, करने है और यह माना जाता है कि जड़ी-बूटियों में धन्द्रमानी किरणोंमे ही गुण आता है ।

**धमिका**—दुर्गा वा पावतीका एक रूप ।

**धयोध्या**—सूर्यवनी राजाओंकी राजधानी । यहूनि राजाओंको बुद्धमे बोर्डे परास्त नहीं कर सपता था इमोचै इयना नाम धयोध्या बंधा । यह शरयु नदीके तटपर स्थित बोधालकी राजधानी थी । यह उस समयकी तात मुख्य पुरिवीमे थी ।

**धयोध्या मधुरा** माया काशी काशी स्वर्गिता ॥

पुरी द्वारापती धंय श्यैता पुरय स्मृता ॥

**धरणि**—यह सगरी जिसे रगहनेमे धाय गिने । मन्त्रमे एव लक्ष्मीपर बरमेके समान दूगरी मन्त्री रगरी जाती थी जिनसे धमि उगम होती थी । इनमे दो भाग होते हैं — धधगर्गाय धीर उत्तरागर्गि धीर यह धर्ममे उठेयाने पीगमने संसार होगी है । उत्तरागर्गि (उत्तरागर्गी मन्त्री) को धधधरणि (नीचेयानी धरणि) के देव मे धधधर मन्त्रीके समान रगरीके धधधर देवके धीमे रगा दूया कुन धध धध है धीर धरी धरणि-मन्त्रमे निष्पी हुई धध धध धध धध है ।

**धरुण**—१—सूर्यका शरधि, २—सूर्य ३—श्रात कास की चालिना ।

**धरुण्यती**—१—वर्षाजलीकी पत्नी तथा वर्द्धन श्रुतिकी हन्या । २—भाकासमे सप्तपियोके बधिष्ठतारेके पास एक छोटसा तारा, जो ऐसे सोर्योकी नहीं दिखाई देता जिनकी धायु समाप्त होनेवाली हो ।

**दीपनिर्वाण-गग्धश** गृहदवायमरुग्धतीम् ।  
न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति यतायु ॥  
[ जिनकी धायु पूरी हो चलती है वे न तो बुझाए गए दीपककी लक्ष सूँय पाते हैं, न गिमो-की लक्ष सुन पाते हैं और न धरुण्यतीको देख पाते हैं । ] जिह्वा का नाम भी धरुण्यती है इसलिये मुखु समीप धामेपर जिह्वाया धधभाग भी नहीं दिखाई देता है । ]

**धर्यसा**—द्वारके निवाड हन्ध करने उसके पीछे लक्ष्मीका मूखन जो द्वारमे दोनों धीरधामे छेदोंमे धार-धार बाल दिया जाता है जिससे साकत खुमे रहनेपर भी धधवा देनेसे द्वार न खुमे ।

**धर्य**—१—धधने धर धाय हुए धधधि या देवताको ह्यय धोनेके लिये जो जल देते हैं उसे धर्य कहते हैं । २—गूजनवे लिये जल, दूध, कुसुमी पुनपी, दही, सरसों, धायल धीर जो । ३—बही-नहीं दुब धीर धायल धादि पूजाकी सामग्री ।

**धधुंम (धध)**—इयका वेद धधधरने वेद जैसा होता है धीर धधकी पत्नी धीर धाल भी धधध जैसी होती है । इनके छोटे धीर देवा पूरांमे बरी तीर्थो धीर धीठी गध होती है । इयका वेद धधधरने वेदमे धधुल बधा धधध, बधान, धधधधरत धीर धधधधमे धधुल होता है । इमे धधुम धीर धधधध भी धधु है । इधकी सात रंधकी धध धधध धधधध होती है । यह धधधकी धधध धधधे एव धधध



रगनेके काम खाती है। यह हृदय रोगकी औषधि है। इसके काढ़से घो देनेपर पाव सूख जाता है और हृद्दी दूटनेपर इसका जूला फँकनेपर पीडा कम हो जाती है और हृद्दी जुट जाती है।

**धर्म (पुरुषार्थ)**—धर्म, धर्म, काम, मोक्ष नामक चार पुरुषार्थमिसे एत। धर्म, संपत्ति। धर्म तीन प्रकारका होता है—शुचल, शकल और कृष्ण। धर्मने-धर्मने बर्तुके अनुसार कार्यके द्वारा उपाजित धर्मको शुचल, धर्मनेसे नीच बर्तुकी वृत्ति द्वारा कमाया हुआ शकल और जुधा, चोरी छपी, परपीठन आदिसे उपाजित किया हुआ कृष्ण कहलाता है।

**धर्मचन्द्र (याण)**—एत प्रकारका बाण, जिसका फल धामे चन्द्रमाके आकारका होना है।

**धनकापुरी**—हिमालयपर बसी हुई कुबेरकी नगरी जिसमे शिवजी भी रहते हैं। इसका बर्तुन उत्तर मेघदूतमे देखिए।

**धवन्ति (देव)**—मालव देश और उसकी राजधानी उज्जयिनी। विशाला, धवन्ति और उज्जयिनी तीनों इसके नाम हैं। धवन्ति नगरी धिप्रा (सिप्रा)के तटपर मालवामे बसी हुई है वही महाकाल महादेवजीका प्रसिद्ध मंदिर है। ईशानके जन्मसे ५७ वर्ष पूर्व महाराज विक्रमादित्य महर्कियाका ये। यही सान्दीपनि आप्तार्थ भी रहते थे जिनके यहाँ यत्तराम और श्रीकृष्ण ब्रह्म-विद्या सीखने गए थे। धिप्रा नदीका भी यत्तरा नाम धवन्ती है।

**धशोक (वृक्ष)**—एक प्रकारका वृक्ष जिसके पीलापन लिए हुए लहरिया हरे पत्ते तथा फूल सास और पीसा होता है। धशोक दो प्रकारके होते हैं—रक्तधशोक और पीताशोक। चँच शुक्ल भण्डमीको धशोककी आठ कलियाँ खा लेनेसे धीक नहीं रहता। साथे समय स्त्रीके पड़े—

त्वामशोक हुरामीट, मधुमाससमुद्भव।

पिबामि शोकसन्ततो मामशोक सदा कुप ॥

कहा जाता है कि स्त्रियोंकी सात पहनेसे धशोक फूल उठता है—'पादापादाशोक'। इसे बेजुल, वजुल, चिन भी कहते हैं। यह सीनी या नागके शरके पेठ जैसा होता है और बसन्तमे फूलता है। इसके पत्ते लहरियादार होते हैं जो उत्सवोमे खजानेके काम खाते हैं। इसके फल गुण्डेदार हलके मुलासी रंगके होते हैं। इसकी छाल ठण्डी और कड़वी होती है जिससे प्यास, जलन, पेटके पीडे, सुषापन और विष दूर होता है। स्त्रियोंके रजोदोषमे इसकी छालका काढ़ा किया जाता है।

**धश्वमेध**—जो लोग स्वर्गका राज्य चाहते हैं वे सो धश्वमेध यज्ञ करते हैं। इसमे नियम यह है कि एक घोडा छोड़ दिया जाता है और वह पंच घोरो घोरते घूमकर आता है तब उसका बलि दी जाती है। इस यज्ञका बड़ा माहुरभ्य संभर जाता है। इस यज्ञके घोडे इषामकल धश्वत्तु वाले मानवाले होते हैं।

**धश्विनी**—(दशकन्या, चन्द्रपत्नी)—२७ नक्षत्रोमे पहला नक्षत्र। यह चन्द्रकी पत्नी मानी जाती है। दशकी ६० कन्याओमे दो भगिराको, दो कुशाश्वको, १० धर्मको और २७ चन्द्रको ग्याही गई। धश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुषाधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, अश्लेषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती, ये चन्द्रकी २७ पत्नियाँ मानी गई हैं।

**धश्विनीकुमार**—सूर्यके जुड़वाँ पुत्र, जो सूर्यके औरस और विष्वकमाकी पुत्री सजासे उत्पन्न हुए हैं। ये देवताओके बँध हैं जिनका योग्य और सौन्दर्य शरवत है। सजाका दूसरा नाम धश्विनी भी है अतः ये धश्विनीकुमार कहलाते हैं।

अष्टमूर्ति—शिव । जिनकी आठ मूर्तियाँ हैं—जल, अग्नि, होता, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी और वायु ।

अस्ताचल—पश्चिम दिशामें कल्पित पर्वत जहाँ सध्याके समय सूर्य अस्त होता माना जाता है ।

अश्व—१—फेककर भारे जानेवाले हथियार, बाण, बछ्वाँ, चक्र आदि । २—धनुष, करवाल तथा अन्य हथियार ।

असिधार—(या असिधारा व्रत) जिसने कोई सुन्दर दुवा अपनी युवती परनेके साथ पतिभावसे रहते हुए भी धामभावसे सग न करे । इस व्रतके द्दन्दनेपर गरक असिधार अर्थात् तलवार की पारकी चोट लगती है । जैसे कोई तलवारकी धारपर चलकर बिना चोट खाए नहीं रह सकता, वैसे ही इस व्रतमें भी अश्रित रहना मडा कठिन है । इतीतिथे किसी बठिन कामके प्रयत्नको असिधारा-व्रत कहते हैं ।

अहत्या—पौरुष ऋषिनी पानी अहत्याके नाम जपनेसे महापाप नष्ट हो जाते हैं—

अहत्या औपवी कुन्ती तारा मदोदर्ये तथा ।  
पचनद्वा स्मरेन्नित्य महापातकनाशनम् ॥  
[ये वृद्धास्वर्षी कन्या वी इन्द्रने छलसे गौतम-का रूप धारण करने अहत्याका पातिप्रत्य धर्म नष्ट किया इसपर गौतमने इन्द्रको शाप दिया कि तुम्हारे शरीर भरमें मौनि हो जाय और अहत्या की शाप देकर पत्थर बना दिया । वेतमें राम-के चरणस्पर्शसे अहत्याका भाग छूटा ।]

आ

आवागमना—१—आवागमन रहनेवाली गणा । आवाग नदी भी इसी अर्थमें प्रयुक्त होता है २—नशन मशन विदोष—यह आवागमन उत्तरमें दक्षिण तथा विन्वृत्त है । आभीख लोग इसे आवाग-जनेऊ, हाथीवी मूँड या प्रेत मार्ग कहते हैं ।

आदित्य—आइ पूर्वार्ध वाडे दीप्यते वा । आदित्य १२ है—विबस्वान्, धर्ममा, पूषा स्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, परण, मित्र, वरक एव उपक्रम ।

आन्वीक्षिकी—१—अन्वीक्षिकी तर्कविद्या-शंखास्त्रयो ॥

२—गौतम प्रणीत आर्येण विद्या । अक्षपादने पाँच अध्यायमें इसे पूरा किया है । प्रथममें प्रमासु प्रमेय, सहाय, प्रयोजन, दृष्टान्त, अवयव, तर्क विरुध्य, वाद, पल्प, वितडा, हेत्वाभास, छल, जाति, और विग्रह । इन सबके तत्त्वज्ञानसे मोक्ष मिलता है ।

आश्रकूड—अमर कण्ट नामक पर्वत जो बुदेलसाइके रीवाँ राज्यमें पडता है । शोण और नर्मदा नदी इसीसे निकली हैं । यही नर्मदा नदी-के चारो ओर मंदिर बने हैं । यह विष्णुचलके सातपुत्र पर्वतका एक भाग हिन्दुकी वा पवित्र तीर्थ है और यही प्रतिवर्ष मेला लगता है ।

आसिन्ध (वाद्य)—जो हाथमें लिपटाकर शरीरसे चिपटाकर बजाया जाता है । मृदग, ढोल, महुगनी और मसक आदि ।

आश्व-१—मुनियो का स्थान, २—मठ ३—उपो-वन, ४—भुक्त व्यक्ति (परसेस्वरमें लीन रहने तथा अन्न न रहनेसे भुक्त व्यक्तिसे भी आश्व कहते हैं ।

५—अहाचारी, यहूत, बानप्रस्थ और संन्यासी का आश्रित धार प्रकरणा धर्म विशेष ।

आसन (मुवा) या असन वा अशन—पौरुषात्तवृष । इसे मारवाडीमें आसन, हिन्दीमें सज्ज और उडियामें पिशासल कहते हैं । इसका पेड बहुत बडा होता है । इसकी ऊपरी लकड़ी थूरी वाले वागवाली, अत्यन्त बठोर और पक्की होती है । आसनकी पक्की लकड़ीमें पोलिश अच्छे लगती है । इसके भीतरकी लकड़ीमें लाल दूष होता है । नेपालीमें इसे पगी काठ कहते

। इसकी लकड़ी मुथले रखी, सखली प्रोर मोमल होती है। एव प्रकारका और भी भासन वृक्ष होता है जिसे पजावमे पावर कहते हैं। इसकी भी लकड़ी मुथले रखी होती है। भीय जाने या कच्ची रहनेपर इसमे पीला दाग पड जाता है। पजाव, दक्षिण और ब्रह्मामे भासन नामकी एक लकड़ी होती है, जो ऊपर श्वेत और लाल होती है तथा भीतरतो भूरी, काली, कठोर और लहरदार रेखावाली होती है। पिमला पहाडपर भी बैजूल नामका भासनका पेड होता है जिसे पजाबीम सफेदा या भासन कहते हैं।

**भासव**—एक प्रकारका वृक्ष, चीनी या मूडकी ताजा शराब। भापूर्वेदीय घोषप।

**भाह्वनीम**—‘भाह्वयते हृषणीम हविरप।’ मन्त्रकी अग्नि विशेष यह गार्हपत्य अग्निसे लेकर अन्य होमादिके लिए प्रस्तुत किया जाता है।

**भाह्वति**—मन्त्र-शारा स्वाहा कहकर देवताके उद्देश्यसे पूतमादिका अग्निमें निरोध करना भाह्वति कहा जाता है।

**इक्ष्वाकु**—नैवस्वत मनुके पुत्र जो सर्व प्रथम अयोध्याके राजा थे। इनके एक ही पुत्र थे जिवम सबसे बड़े विकुक्षि थे; अर्थात्-पुत्रोत्तम धीरामचन्द्रकी इन्हीके वंशज थे।

**इन्द्र**—१-इन्द्र। देवराज, वेदोक्त प्राचीन देवता। इन्द्र लिट्टीपीके पुत्र है। इसकी माताने इन्हे सहस्रों वर्ष गरम रोक रखा था। उसके पश्चात् इन्द्रने स्वयं वीर्यपूर्ण होकर जन्म ग्रहण किया, इनकी माता का नाम एकष्टका था। जन्मके समय इनकी माता प्रसन्न हो गई थी। इन्द्रने अपने पिताके दोनो पैर, पकड़कर उन्हें मार डाला। २-स्वर्गके राजा।

**इन्द्रपुत्र**—इन्हे उत्सवामिके भेधे मनु इव। इसे इन्द्रायुष भी कहते हैं। वर्षाकालम

सूर्यनी विपरीत दिशामे दिखाई पड़ता है।

**इन्द्रनीलमणि**—एक मणि जिसे दूधमे डालनेपर दूधका रंग काला पड जाता है। यह अग्निग्रहको प्रिय है। इससे शार्दीय अन्त हो जाते हैं। इसका रंग काले मेव जैसा होजा है। यह मध्यम कोटिका रत्न है।

**इन्द्रलोक**—इसे अमरावती कहते हैं। स्वर्ग की दशका नाम है। (देखो अमरावती)

**इमलो**—यह दक्षिण भारत तथा अमीकामे अपने आप उत्पन्न होती है। इसका वृक्ष बहुत बड़ा होजा है। इसके फल लट्टे होते हैं यह प्राय सर्वत्र पाई जाती है।

**उर्ध्व अक्षा**—समुद्र-मग्नसे उत्पन्न हुआ श्वेत रंगका सात भुंवाला घोडा, जिसके कान सदा सधे रहते हैं, जो अत्यन्त गमीर स्वरमें हिनहिनाता है। यह घोडा इन्द्रकी दे दिया गया था।

**उज्जयिनी**—मध्यभारतमे नालवाली पुरानी राजधानी सिन्धु नदीके दक्षिणी तटपर बसी हुई थी। आजकल इसे उज्जैन कहते हैं। इसका प्राचीन नाम अवन्ती है। इसे विशाला और पुष्प-कराडिनी (शूनोकी उजियी) कहते हैं। उज्जयिनी हिन्दू तीर्थ भी है। स्वर्ग्य पुराणके अवन्ति शब्दमे उज्जयिनीका विस्तृत विवरण मिलता है। वहाँ महाकालका ज्योतिर्लिंग भी है जिसे अमन्तकल्पेश्वर भी कहते हैं। इस लिंगके कारण उज्जयिनीको पीठस्थान भी कहते हैं।

**उत्तरा काशुनी**—२७ नक्षत्रमेसे १२ वां नक्षत्र। जिसमे दक्षिणमे उत्तरकी ओर पलेगकी आकृति बनाते हुए दो तारे होते हैं। इस नक्षत्रमें जन्म लेनेसे मनुष्य दाता, दयालु, सुशील, कांति-मानु, सुमति योष्य, धीर और अत्यन्त मृदु स्वभावका होता है। इसके पहले चरणमे सिंह और शेष तीन चरणो मे कन्या-राशि पडती है। इसे उत्तराफाल्गुनी भी कहते हैं।

उत्तरायण—यकर सक्रान्तिसे ६ मासतक सूर्य उत्तरायने रहते हैं। उत्तरायणमें तिशिर, चतान्त और शीष्म ऋतुएँ पड़ती हैं। जन पृथिवीके गोलेकी ककरेखा सूर्यकी धोर सीधी हो जाती है और सूर्यकी किरणें विपुबत रेखासे सीधी पडने लगती है तब सूर्य उत्तरायण में कहे जाते हैं। उत्तरायणमें मृत्यु होनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है। श्रीजन्मे इसीलिये दक्षिणायणमें प्राण नहीं छोडे।

वसराय—कमरके ऊपर घोटनेका बल हुपट्टा, मोठनी, वाटर।

उदयन—इसाके ६०० वर्ष पूर्व वत्स (वर्तमान प्रयाग) देशके राजा थे। इनकी परलोक नाम वासवदत्ता और पुत्रका नाम नरवाहन था। बौद्धाग्दीमें (प्रयागके पास) इनकी राजधानी थी। ये भीरा बजाकर हाथी फेंगानेकी विद्यामें बडे निपुण थे। अयन्तिके राजा अरधप्रोतने यनावटी हाथीके द्वारा इन्हे बदी कर लिया और इन्हे अपनी कण्ठा वासवदत्ताका घोषा-सिंहाक बना दिया। बहूदि एक दिन वासवदत्ताके साथ नल-गिरि हाथीपर चढकर निवल भाए और वासवदत्ताके साथ विवाह कर लिया। ये वत्स देशके राजा थे इसीलिये इन्हें वत्सराज उदयन भी कहते हैं।

उवात (श्वर)—उज्वेददात (पा० १। २।२६) मुजमे ठालु भादि उज्वेभापसे उज्व-रित होनेवाला श्वर।

उज्व (नदी)—एक नदीका नाम।

उपसर्ग—वे अथ्यय लट् जो सातुस्रीके पहले जोड देनेसे विभिन्न अर्थ प्रकट करते हैं। सस्कृतमें निम्न लिखित उपसर्ग हैं—प्र, परा, ध्य, सप्त, अनु, भव, निष, निर, दुस, दुः, वि, माद्, नि, सधि, भवि, भति, सु, उत, भवि, प्रति, परि, उप।

उरुग्रमा—भीम ऋषि जिन्होंने अपना हृदय मयकर अत्यन्त उवातापूर्ण ध्योनिज पुत्र

उत्पन्न किया और जिसे समुद्रमें बढवाके मुसमें छोड दिया जो निरन्तर जल पीता रहता है। ये ऋषि गृगुवध के थे। यह बढवा सूर्यकी पत्नी थी जो घोडीका रूप धारण करके सूर्यके तापसे और उसके तेजसे दरती हुई जन्मे तपस्या करती थी।

उष-काम—उडकेका समय, जब आकाश में पूर्वकी धोर हलका उजाला होता है जिसे पौ फटना कहते हैं।

ऊ

ऊर्ध्वक—वे वाजे जिनका मुख ऊपरकी धोर हुता है। जैसे १-नरसिंह, २-बह मृदग जिसका बहुत तीखा श्वर होता है।

ऊ

असवाव—यह पर्वत गण्डोयाना देशमें है और रवसक पर्वत से निकला है। यह सप्त-कुलाचल अर्थात् सात परिवारके पहाडोके बीच का पर्वत है।

अतु—एक प्रकारके जलमायुके समय को अतु कहते हैं। भारतमें ६ अतुएँ होती हैं। युयुतके मतसे भाष फाल्गुनमें शिशिर, चैत्र-वैशाखमें वसन्त, ज्येष्ठ-भाषाहमें शीष्म थावण भाद्रमें वर्षा आश्विन आतिकमें शरद, आषाढयण पीपमें हेमन्त। ऋक् संहितामें ५ ही अतुएँ मानी गई हैं। योरपमें चार अतुएँ मानी जाती है। जाडा, जसन्त, गर्मी, वर्षा, वादमें हेमन्त, तिशिर-के एक ही अतु माना है। साधारणतः लोग तीन ही अतु मानते हैं—जाडा, गर्मी, बरसात।

अतिवज—पुरोहित। वेदके मन्त्रोसे यज्ञमें नर्मेवाण्ड करानेवाला। प्राय यज्ञोमें चार अतिवज् प्रपात होते हैं—हीता, उडाता, अथ्यर्मु और श्ला।

अथ्यभृ ग—अथ्यस्य मृगस्य श्रममिव श्रु बभस्य। एक मुनि। विभाषत्र नामक कथ्य

वसीय ऋषिका वीर्य उर्वशीको देखकर जलमे गिर गया जो मृगी-रूप धारिणी वापन्नष्टा देव-कन्याने पी लिया । उसके गर्भसे ऋष्यशृङ्गका जन्म हुआ । उनको सिरपर एक हिरण्यका सीम भी था । दशरथकी शान्ता नामकी कन्या ऋष्यशृङ्गके भ्रात्री थी । इन्हीं ऋष्यशृङ्गने दशरथको पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था ।

ऐ

ऐन्द्र (अक्ष) — इन्द्र-द्वारा दिया हुआ वह अक्ष जिसके चलानेसे भयकर जन बरसता है ।

ऐरावत — १ इन्द्रहस्ती — यह सफेद घोड़ा चार बाँतोवाला हाथी समुद्र-मथनके समय निकला था । यही पूर्व दिशाका दिग्गज है जो इन्द्रको दे दिया गया था और इसलिये वह इन्द्र पाहुन कहलाता है । 'इरावान् समुद्र तन भव ऐरावत ।'

ओ

ओषधिप्रत्य — हिमालयमे मगर, जिसके पास एक चोटीपर गंगाभी पहले-पहल ब्रह्मपुरीके उत्तरकर निरी थी । 'ओषधि-बहुल प्रस्थ रातुर्वन' जहाँ ओषधियोंसे भरी चोटी हो ।

यत्र गङ्गा निपठिता पुरा ब्रह्मपुराश्च वृता ।  
ओषधिप्रत्यनगररवाद्दूरे रातुर्वनम् ॥

(कनिकापुराण, ४१ अ०)

क

ककुत्स्थ — सूर्यवंशमे शशाङ्कके पुत्र पुरञ्जय नामके राजा जिन दिनों पृथ्वीपर शासन कर रहे थे उन्हीं दिनों देवताओंने देवसेहि हारकर विष्णुकी शरण ली । उन्होने सम्मति दी कि राजा पुरञ्जयकी सहायता ली । पुरञ्जय तैयार हो गए । इन्द्रने कृपण (साँठ) का रूप धारण किया । उधीपर चबनर पुरञ्जयने देवोंको हराया । इसी लिये उनका नाम ककुत्स्थ (ककुदि विजयीति — जो साँठपर बैठा हो) पट गया ।

ककुन (कूल) — मर्चुन नामक वृक्ष और उसका फूल ।

ककुकी अथवा कञ्जुकी — राजाके भक्त पुरणा रक्षक । भरतने उसका सहाय वताया है —  
भन्तपुरचरो वृद्धो विश्वो गुणगणान्वित ।  
सर्वकार्यार्थकुशल कञ्जुकीत्यभिधीयते ॥  
रनिवासमे भ्रा-जा सकनेवाला जो वृद्ध बाह्यण सब गुणोमे पूरा हो और सब कामोमे सब डगकी बातोमे चतुर हो वह ककुकी कहलाता है ।

कम्प — येनका द्वारा छोधी हुई कन्या शकुन्तला का पालन करनेवाले कश्यप गोत्रके कम्प काश्यप ।

कदम्ब — १ वृक्ष, जो भारत, ब्रह्मा और सिंहलमे होता है । इसकी लम्बाई ७० से ८० फुट होती है । यह नित्य हरित वृक्ष है । इसके पत्ते यहूदके पत्ते जैसे होते हैं । वर्षा ऋतुमे यह फूलता है । इसका फूल गेदके समान गोल होता है । इस परतो जब पीली कैसर फल जाती है तब यह फूल ही पककर फल बन जाता है जो खानेमे सटमिट्टा लगता है । इसीसे कादम्बरी मरिच बनाई जाती है । २ कलहस, राजहस पक्षी ।

कनकल — हरिद्वारसे दक्षिण प्राये कोसपर गंगाके पश्चिमी तटपर बसा हुआ है । यही पर दखने या किया था जहाँ सतीमे अथना शरीर छोड़ दिया था और त्रिबलीके गणोने दश दिग्बस कर दिया था । यह पवित्र तीर्थ माना जाता है —  
हरिद्वारे कुशावर्त्तं विन्धके नीलपर्वते ।  
स्वात्वा कनकले तीर्थे पुनर्वन्य न विद्यते ॥

(सहाभा० अनु० २५ अ०)

ककली — (पत्ती) — एक प्रकारका गुल्म या पौधा जिसकी आदियाँ फैलती हैं । २ कुकुरपुत्रको भी कदली-कुसुम कहते हैं ।

कन्दाराभि — मेघ, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, नृशिक, घन, मन्तर वृष तथा मीन



**कम्बोज**—वर्तमान अफगानिस्तानका वह भाग जो कन्दहारके पास है। सत्तिसगम तमने लिखा है—

पाञ्चालदेशमारम्य म्लेच्छाहृषिणुपूर्वत ।  
काम्बोजदेशोदेवेशि शालिराशिपरायण ।

[पञ्चालके लगाकर म्लेच्छ अर्थात् घरब देशसे दक्षिणपूर्व कम्बोज है जहाँ घोड़े बहुत होते हैं।]

रघुवशमे जो कम्बोजका वर्णन आता है वह बाहुजने उत्तरका कम्बोज था।

**कलिंग**—वीर्धतमाके औरस और बलिकी पत्नी सुदेव्याके गर्भसे कलिंगने जन्म लिया। इन्होंने अपने नामपर बहु जलपद बसाया जो जगन्नाथपुरीके पूर्व भागके कृष्णा नदीके तीर तक फैला हुआ है। मेदिनीपुर, उड़ीसा, और राजाग प्रदेश कलिंगके भाग हैं। महाभारत और हरिश्चन्द्र पुराणके समय वैतरणी नदीसे गोदावरी तक कलिंग था। इसे पौण्ड्र भी कहते हैं।

**कल्पलता**—स्वर्गकी कल्पित लता जिससे जो माँगो मिल जाता है। सुवर्ण-निर्मित, लताको भी कल्पलता कहते हैं।

**कल्पवृक्ष**—यह समुद्र मन्थनके समय निकला था। कल्प लता यह वृक्ष बन रहता है। चौबहू रत्नोभेसे यह पत्त है।

**काम्यप**—ब्रह्मनिःमानसपुत्र अरेचिके औरस और कलाके गर्भसे अजयपत्नी जन्म हुआ था। वेदोके मतसे हिरण्यगर्भ ब्रह्मासे कश्यपका जन्म हुआ था। इन्होंने १७ कन्याओंसे विवाह करके देव, दैत्य, दानव, असुर, गन्धर्व, राक्षस वृक्ष, यक्षरा, सर्प, घृध्र, श्वापद, जल-जन्तु, गरुड, भस्त्र, मरु, फलय और खलज जल्पन्व निय। मार्कण्डेय पुराणमें इनकी १३ पत्नियों-अर्धति, दिति, दनु विमला, खजा, कद्रु, मुनि, त्रोषा, अरिष्टा, इरा, तात्रा, इला और प्रथ्विगिर्वाई गई हैं। कश्यपकी पत्निया (ऊपर देखो)

**कस्तूरी**—कस्तूरी मृगकी नाभिये निकलता हुआ सुगन्धित पदार्थ। कस्तूरी हिरण्यके सींग नहीं होते किन्तु इसका आकार हरिणोसे मिलता चुसता है। इसकी आँसोमें आँसुके छेद नहीं होते। इसके मुँहमें दो-तीन घण्ट दो गजदन्त बाहर निकले रहते हैं और इसके बाल कड़े होते हैं। इसकी खंभाई लगभग २॥ फीट और रज काला होता है जिसमें दोन-तीनके छाल चकरो पडे होते हैं। इनका गला पीला और पूँख बहुत छोटी होती है। केवल नर हिरण्यसे ही कस्तूरी निकलती है। यह मृग गर्भमें समुद्रतली घाट हुआ फीट ऊँचे स्थानो पर साइदेरिया, मध्य एशिया, हिमाचल और आसाममें मिलता है। इसमेंसे तिब्बतका मृग सबसे भच्छा होता है कस्तूरी तीन रगकी होती है—सैपाल की कपिला, कश्मीरकी पिपला और कामरूपकीकाशी होती है। इनमें कामरूपकी सर्वश्रेष्ठ सैपालकी मध्यम और कश्मीरकी साधारण होती है।

**काम्यप**—मस्ताकके दोनो ओर बालोको विकनारीसे गिँदिकी ओर केरकर कहाए रक्षता। इसीको पटे बहाना भी कहते हैं।

**काम्य**—१ चार पुष्पायों (घर्म, पर्यं, काम, मोक्ष) मेसे एक। २ इच्छा। ३ कामदेव। शास्त्रकारोंने कामदेवके ५० भेद बताए हैं। स्मरदेवीपंचांगं कहा गया है—प्रतिपदाको वैरके अंगुठेमें, द्वितीयाको गुल्फने, तृतीयाको बाँधमें, चतुर्थीको भ्रमने पञ्चमीको नाभिये, षष्ठीको स्तनने, सातमीको हृदयके अष्टमीको कुक्ष (बगल) में, नवमीको वडके दशमीको धोठेमें, एकादशीको गालोपर, द्वादशीको नेत्रोमें,त्रयोदशीको नानोपर, चतुर्दशीको ललाटपर, अमावस्या और पूर्णिमाको मस्तकपर कामदेव रहता है। कामदेवके पास राध, पद्म पद्म्य और वाण है। उसके नारण उसकी आँखें कुछ-कुछ बन्द रहती हैं। उसके भण्डेपर मकर

है। रति, प्रीति, शक्ति और उज्याला नामकी उसकी चार स्त्रियाँ हैं। जब बहाने दक्ष आदि मानसपुत्र उत्पन्न किए उस समय सप्या नामकी मन्वा भी हुई थी। उसी कन्वासे कामदेवका जन्म हुआ और फिर दक्षसे उत्पन्न रति नामकी सुन्दरीसे कामदेवका विवाह हुआ। तारकामुरके उत्पात करनेपर जब देवताओंने कामको महादेवजीके पास उन्हे काम पीठित करनेके लिए भेजा तब कामदेव उनके क्रोधसे जल मरा। पार्वतीके साथ शिवजीका विवाह हो जानेपर कामको फिर शरीर मिल गया। प्रगते जन्मने कृष्णके शरीर और शक्तिमयीके गर्भसे कामदेवका जन्म हुआ। महाभारतमें कामदेवको धर्मका पुत्र माना गया है। कामदेवके ये पक्ष हैं—

शरविषमशोक व धूतञ्च नवमस्त्रिका ।  
नीलोत्पलञ्च पञ्चैते पञ्चबाणा प्रकीर्तित्वा ॥  
(शरविन्द, धमौक, धामघने मजरी, नवमस्त्रिका और नीलोत्पल ।)

कामदेव—देजो (नाम)

कामधेनु—स्वर्गकी गाय। इस गायसे इच्छानुसार जो वस्तु माँगें वही मिलती है। दक्षकी कन्या सुरभिसे गर्भसे कश्यपके शरीरसे रोहिणीका जन्म हुआ। उस रोहिणीसे उपोनिधि धूरसेन नामकय मुके शरीरसे कामधेनु-जन्म हुआ। इसका बर्ण श्वेत है, चारों वेद ही उसके पारो पैर हैं, उसके चारो स्तनोंसे धर्म, धर्म, काम और मोक्ष बहा करते हैं। यौवनमें कामधेनुकी सुन्दरता देखकर एक बंशालने नृप बनाकर उससे सभोग किया था। जिससे एक बड़ा विशाल नृप उत्पन्न हुआ जो अपनी सपत्न्याके बलसे महादेवजीका बहान बना।

कार्तवीर्य—वन्द्यवीर्य हृत्वीर्य राजाका पुत्र सहस्रार्जुन। माहिष्मतीपुरी कार्तवीर्यकी

राजधानी थी। इसने दत्तात्रेयकी धाराधना की जिससे दत्तात्रेयने प्रसन्न होकर इसे सहस्र भुजा-वाली बना डाला। अपने पराक्रमसे उसने समुद्र-पर्यन्त भूमिपर अधिकार कर लिया। तत्कारके राजा रावणको भी इसने हराकर बन्दी बना लिया था तब पुलस्त्य मुनि जाकर उसे छुड़ा लाए। कार्तवीर्यने जमदग्नि ऋषिके माधवसे ब्रह्मके सहित कामधेनुको भी चुरा लिया था। जमदग्निके पुत्र परशुरामने इसे मार डाला और वेनु मौटा लो।

कार्तिकेय—जब तारकामुरके भ्रत्याचारसे पीठित होकर देवताओंने महादेवजीसे पुत्र माँगा तब महादेवजीका तेज अग्निमें, अग्निसे गंगाजीमें और गंगाजीसे छहो कृतिकाओंमें जा पहुँचा। वही तेज रावणपने कार्तिकेय हुए और जहाँनि ही तारकामुरका बध किया। वे मरूपर बैठते हैं। उनके छ मूँह और दो भुजाएँ हैं। वे देवताओंकी सेनाके सेनापति हैं। देवसेना ही उनकी पत्नी है जिन्हें पष्ठी भी कहते हैं। इन्हें सेनापति, कुमार, पद्मसुत, सुब्रह्मण्य, श्रीश्वदारण और स्वामीकार्तिकेय भी कहते हैं।

कालनेमि—१ यह रावणका मामा था और जब लक्ष्मणको दक्षि लगनेपर हनुमानजी शोखाचलपर घोषित लेने गए थे तब यह भी बीचमें बाधा देने पहुँचा और बाहता था कि हनुमानजीको एक मयरी निगल जाय किन्तु हनुमानजीने मयरीको मारकर धाप मुक्त कर दिया और कालनेमिने भी मार डाला।

२ हिरण्यवशिपुका पुत्र एक राक्षस जिसका शरीर मन्दार पर्वतके समान विशाल और गौर-वर्ण जिसके सो हाथ और सौ मुख, धुरके रगका बाल, हठी भूख-खाड़ी और बड़े-बड़े बाहर निकले हुए दाँत थे। इसने देवताओंको हराकर स्वर्ग जीत लिया था और फिर अपनी देहको



चार भागमें बँटकर स्वर्गवा राज्य नलाया था। विष्णुने हाथ मारे जानेपर यही कस हुआ।

कासागुड—काले अथवाका पेठ या कासा अगार। इसे संस्कृतमें कृष्णकाष्ठ, गड़ और शृङ्गार भी कहते हैं। (दिसो अगार)।

कालिका—जब शुभ और निशुभ देवोंने एग्रादि देवोंको रूष्ट किया तब इन सौगोने महा-माया देवीकी स्तुति की। देवीने पूछा—युग यहाँ क्यों आए हो। तब उनके बारीरसे ही एक शैवीमूर्तिने प्रकाट होकर कहा कि ये देव लोग निशुभ और दुःखका यथ चाहते हैं। इन्हीं देवोंका नाम कालिका या क्योकि इनका रंग काला था। इनकी घाठ योगिनियाँ हैं—महाकाली, व्हाणी, उषा, भीमा, घोरा, भमरी, महाराजि और मंत्रो।

कालियनाग—गरुडसे युद्धमें हारकर यह नाग दमुनाके कुण्डमें छिपकर रहता था इसीसे इसे कालिय कहते हैं। 'के अजे, भालीमते इति कालिय।' इसी नामको श्रीकृष्णजीने नाशकर भेज दिया था।

कालीयक—१ काला अगार, २ पीत पदक, ३ रास हल्दी, ४ मलेन्द्री काष्ठ, या एक प्रकारका दीपदार।

कावेरी—दक्षिणापथकी प्रसिद्ध महानदी। भार्यश्रव्योमें यह पूर्यतीया मायी गई है। स्वानके समय इसका स्मरण किया जाता है।

यसे थ दमुने अंब गोदावरि सरस्वती।  
नर्मदे सिन्धु कावेरी जनेप्रसिन्धु सन्निधि कुरु।  
यह नदी पश्चिमो घाट पर्वतमें ब्रह्मरुगिरसे निकलकर महापुर घाटीमें से होती हुई बदासके दक्षिणमें बंगालकी खाड़ीमें ब्रा गिरती है।

कास—काँच, बर्षा बीतनेपर यह खनी पास फूल उठती है।

किन्नर—देवयोनि में एक प्रकार के देव जिनका मुख भद्रके समान और शरीर मनुष्यके समान होता है। इन्हे किंपुरुष, प्रश्वमुख और गीतघोदी भी कहते हैं। ये प्रत्यत संगीत प्रेमी होते हैं और निरंतर गाते रहते हैं।

किन्नरी—विन्नर जातिकी स्त्री—

किरात—१ तप्त कुण्डसे निकर रामसेवागत पर्वन्त किरात देश है। यह विषयगतमें तिपत है। (शक्तिराम वन)

२ बह्य देशकी और किरातोंका विषरण भिन्नता है। नेपालमें भी किरात रहते हैं जो घराग तक फिरे हुए हैं। ये लोग कन्या मोल लेकर विवाह करते हैं। यह सारी जाति लडाकू है और वायु बलानेसे प्रसिद्धीय है।

किरीट—मुकुटके नीचे बाँधी जानवाली पपड़ी या मुकुट।

कुङ्कुरमुत्तै—वर्षके दिनोंमें गोबर प्रादि तथा कृषेपर धो छतरीघार पीषा सा निकल जाता है। इसे संस्कृतमें कदलीकुसुम भी कहते हैं।

कुकुप केसर—यह कपरीरमें उत्पन्न होता है और एक फूल का किञ्चक है जिसके पीसे छोटे होते हैं। यह क्यारियोमें बोया जाता है। साल, बारीक तथा कमलकी गंधवाला केसर लक्ष्मि अथवा अन्ध्रा जाता है।

कुटब—कुरैया या कुरषाका पीषा। इसे साधारण बोलीमें इन्द्रजव भी कहते हैं। इसका फूल खेस, सम्भा और युगधित होता है।

कुड—देवलाठ, होमके लिये जहाँ प्रणि स्थापित की जाती है उसे कुण्ड कहते हैं। कर्म-काण्डमें इसके निर्माणका बडा विधान है। प्रत्येक यज्ञमें अलग-अलग प्रकारके कुण्ड बनाए जाते हैं और कुण्ड ठीक न बननेपर बडा शोष भी होता है। कुण्डका सात प्रथिक होनेसे शोषी, अल्प होनेसे धनसय, टेडा होनेसे

दुःख, छिन्न-मडल होनेसे मृत्यु, मेखलाशून्य होनेसे जोक, मेखला अधिक लगानेसे घननाथ, योनिशून्य होनेसे स्त्रीनाथ और कण्ठ नाथ होनेसे पुत्र नाथ होता है ।

शुक्र—६ पल्लविषोका छोटा अत्यन्त धवल कूट जिसे शुक्र पुष्प, मकरन्द और मदा-पुष्प भी कहते हैं । यह पुष्प शिबजीपर चढ़ाया जाता है । इसके व्यवहारसे सिरका रोग और विष-पित्त भी दूर हो जाता है ।

कुबेर—विश्वनाथके पुत्र रावणके भाई कुबेर की माताका नाम हिलायिखा था । उनकी बुद्धि-गत्तासे प्रसन्न होकर ब्रह्मजीने धनपति और सर्वपूज्य होनेका आशीर्वाद दिया । वे अपनी तपस्यासे लौकपाल हुए और ब्रह्माने उन्हें पुष्पक विमान दिया । उनके पिता महामुनि विश्वनाथने उन्हें लकापुरीमें राज्य करनेका आदेश दिया किन्तु रावणके भयसे वे लकापुरी छोड़कर क्रीताश्रमके पास भलकापुरीमें यज्ञ किन्नर आदिपर शासन करते हुए रहने लगे । उनका बर्ण श्वेत आठ बाँत और तीन पैर है । इसे विनयागतके कारण उन्हें कुबेर कहते हैं—'कुबेर कुञ्जरी-त्वान् गाम्ना देगाममद्भूत' उनके पुत्र का नाम मलदूरर है । उनकी वैश्रवणी नामक विस्तारण सभाके परिचय है—विश्वामनु, हाहा, इह, तुदुःख, पर्वत, निवाशन, चित्ररथ और चक्रधर्मा ।

कुमुद—१. पुष्प इसे बेसी भावामे करक, बीजा, बीई कहते हैं । यह रातको जलमें विलगा है । इसकी पत्रादियाँ थोड़ी त्रिजु ययस से छोटी होती है । यह श्वेत होता है । इसे धवलतिलक, करक और चन्द्रवान्ध भी कहते हैं । २. नाथ जो सतपुत्रमें था ।

कुमुदिनी—रातको जलमें गिन्धनेवाला धमनेके रूपका फूल, जिसकी पत्रादियाँ छोटी

और सम्बी होती हैं । बेसी भावामे इसे कोई कहते हैं ।

कुभोनसी—यह रावणकी बहिन और लवणासुरकी माँ थी ।

कुम्भक—पटसरवाका फूल जिसे एक गिष्को, कुरिया या महुवा भी कहते हैं । इसका फूल सात होता है ।

कुररी—कौंच या साररा या करकुल नामका पक्षी जो कष्ट जानेपर अत्यन्त कवणसे रोता है ।

कुक्षेत्र—दण्डवतीके उत्तर और सरस्वती नदीके दक्षिण कुक्षेत्र है जो आजकल दिल्लीके मास-मास पढ़ता है । कुक्ष नामके राजपूने उस क्षेत्रको जोता था, अतः उसका नाम कुक्षेत्र पड़ गया । वही महाभारत का प्रसिद्ध युद्ध हुआ था ।

कुत्रा—कुत्रा—पश्चादिके वाममें मालेवाली सम्बी पवित्र घास जिसकी बड़में तीक्ष्ण पाँटे होते हैं । इसे दधं दाध, डाग भी कहते हैं ।

कुमुभ—(फूल) इसे कुमुम्भ भी कहते हैं । इसके छोटे-पेपेमें छोटे-छोटे जल फूल लगते हैं जिन्हे आयामे सावधानीसे सुखाते हैं । इसके फूलसे सात रंग बनता है । कुमुभके फूलका रंग सात प्रकारका होता है, उनमें प्याजी गुलाबी, उजवा गुलाबी, गहरा सात तो उसका अग्रगण्य रंग होगा है । सङ्घटना फूल मिलानेसे सुतहवा और नारगी रंग आ जाता है । हल्दी मिलानेसे पीली चमकवा गहरा सात और नील मिलानेसे जंगली रंगका हो जाता है । इसके तीन भेद हैं—महानुमुम्भ, ह्रस्वनुमुम्भ और धननुमुम्भ ।

कुमुम्भो—(फूल) १. (देखो कुमुभ) २. सातरण ।

कुटनीति—षष्ट नीति । ऐसी चाल जिससे विना भेद सुजे काम बन जाय ।

कुटशास्त्रमती (यमवा धरु)—यमकी गदा ।

**कृत्तिका**—तीसरा नक्षत्र । चन्द्रकी पत्नी कृत्तिकामें ६ तारे हैं । चन्द्रमाके आपसे कृत्तिका नक्षत्रमें माना रचित है । एक बार भरखी, कृत्तिका, आश्लेषा, मघा, उत्तरा, फाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा और उत्तर आश्विनमें चन्द्रमाको बहुत टाँदा कि तुम हमसे स्नेह नहीं करते हो केवल रोहिणीसे ही प्रेम करते हो । इसीपर चन्द्रने इन्हें शाप दिया कि तुमने हमें दुर्बलन कहे हैं इस कारण तुम उग्र और तीव्र कहलाओगी और तुम्हारे भोग्य किनोने जो शाप करेगा उसका प्रतिष्ठ होगा ।

**कृत्तिकापुं**—इन ६ कृत्तिकाओंमें कर्त्तिकेय का पालन किया था ।

**केकय**—केकयदेश । सतलु (सतलज) नदीसे पश्चिम और विपाशा (व्यास) नदीके उत्तरमें था जिसका कुछ भाग कश्मीरमें पड़ता है । केकयके राजा प्रत्यपति ही कँकेयीके पिता, दशरथके स्वसुर और भरतके नाना थे । प्राककन भी केकयवासे कनका कहलाते हैं ।

**केतकी**—केवडा । इसके पत्ते लम्बे, उबले, फोमल और घिकने होते हैं । इन्हीं पत्तोंके बीच ते फूल निकलता है । इसके पत्ते काटेदार होते हैं । इसकी जड़में प्रायः साँप रहते हैं । केतकीके फूल शिबजीपर नहीं चढ़ाए जाते । केतकी दो रंग की होती है—सफेद और पीली ।

**केरल**—दक्षिण भारतमें पश्चिमकी पट्टी केरल कहलाती है । आजकल योर्कसे लेकर गुमारी प्रन्तरीय तक का भाग केरल कहलाता है ।

**केवडा**—(देखो बेतकी)

**केसर**—१. नागकेसरका फूल ।

२. मौलसिरी । ३. कश्मीरमें उत्पन्न होनेवाला सुगन्धित फूल । (देखो केसर)

**केसो**—(राक्षस)—जो कसके कहनेसे बुन्दावन पहुँचकर भत्याचार करने लगा और जिसे वृष्णजीने मारा ।

**केसर**—फूलोंके भीतर छीननेसे जो पतले तंतु निकले रहते हैं, उन्हें केसर कहते हैं ।

**केसर (वृक्ष)**—१. मौलसिरीका पेड़ ।

२. पुन्नागका वृक्ष ।

**केसर (सिंहके)**—सिंहके कन्धेपर पीते हुए बड़े बड़े बाल या श्रयान ।

**कँकेयी**—(देखो केकय)

**कौलास**—असिद्ध पर्यंत, महारथ और यज्ञापिप कुबेरका शासकभाग, भगेक रत्नामय भृङ्गयुक्त हिमालयके पृष्ठपर है । यह राक्षस तालाब या रावण-दुन्दसे ५० बीस दूर है । इसीसे सिंधु, इन्द्र, फल्गुन नद उत्पन्न हुए हैं । मोट लोच इसे 'विशि' कहते हैं । कौल केशीना समूह आस्त्येज इति कौलास —भानन्द तथा श्रीशका स्थान ।

**फोई**—(देखो कुमुदिनी)

**कौशल या कौशल**—काशीसे उत्तर प्रयोष्या सहित सरयूके तीरका एक भाग । यह सूर्यवंशी राजाओंका राज्य था और प्रयोष्या इसकी राजधानी थी ।

**कौरव**—कुल नामक ऋषिके पुत्र और महर्षि परतन्त के शिष्य ।

**कौशिक**—मेखलासे बँधकर कटिमें पहना जानेवाला कपडा । इसे कच्छा, कच्छादिका, कला, और घटी भी कहते हैं । इसीसे पोता शब्द बना ।

**कौशल्य**—कौशल-राजकी बाम्या, महाराज दशरथकी बनी रागी, रामकी माता । इनके पिता पर्यमान मध्यप्रान्तमें दक्षिणी भागके राजा रहे होंगे ।

**कौशिक (गोत्र)**—राजर्षि कुशिकके पुत्र । इन्हींका नाम नाशिक या इन्होंने ही कौशिक गोत्र पलाया ।

**कौरवुध (परिष्)**—समुद्र-मयनमें जो चोदह रत्न निकले उनमें यह परिष् भी थी जो भगवान् विष्णुको दे दी गयी और जिते विष्णुने

खत—गटर घासकी जड़ । जिसमें सुगन्ध  
घाती है । गर्मीमें इसकी टट्टियाँ बनाकर पानीसे  
भिगोकर द्वारपर टांग दी जाती हैं जिससे घर  
ठंडा रहता है । इसके पत्ते भी बनते हैं, पान  
भी बचाए जाते हैं और फुलेल भी बनता है ।  
इसे पीसकर मारुपर भोज देनेसे पागलपन  
बचछा हो जाता है । यह पास १-६ फीट लंबी,  
भारत और ब्रह्मामे बहुत उत्पन्न होती है । इसे  
लचीर भी कहते हैं ।

ग

गङ्गा—भारतकी प्रसिद्ध नदी, जिसका  
अक्षय गंगोत्री में हुआ है । जब भगवाद् विष्णुमें  
बलिको छलकर अपने तीनो पैरोसे तीनो  
लोकोंको मापनेके लिये त्रिविक्रमका रूप धारण  
किया था, उस समय ब्रह्माजीने उनके मल  
धीकर उस जलको अपने कमंडलुम रस लिया  
था । वही ब्रह्मतीय धार-वसज भागीरथके रूपसे  
महादेवजीकी जटाधामे झाकर गिरा और वही  
जलकी धारा गंगा कहलाई जिसने भगीरथके  
पीछे-पीछे चलकर कपिलसे कोपसे भस्म सगरके  
साठ सहस्र पुत्रोका उद्धार किया । यह नदी  
भारतके उत्तर-पूर्वी प्रदेशमे बहती हुई बंगालकी  
खाड़ीमे समुद्रसे मिलता है । इन्होने इस प्रदेशको  
मदभूमि होनेसे बचा लिया है इसीलिये गंगाको  
माता मानते हैं और बिश्वास करते हैं कि गंगाका  
नाम लेनेसे और उसमे स्नान करनेसे सब पाप  
दूर हो जाते हैं ।

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद् योगवाना धर्तरपि ।  
पुण्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोक ॥ वन्द्यति ॥  
गंगाजलकी यह विशेषता है कि वह कभी  
बिगड़ता नहीं, उसमे कभी कीड़े नहीं पडते ।

गंगासागर—यह स्थान जहाँ गंगावी  
समुद्रसे मिलती है । मकर-संक्रान्तिके दिन, यहाँ  
बहुत बड़ा मेला होता है । यहाँके स्नान, ध्यान,  
दानवा बड़ा पुण्य है ।

हरिद्वारे प्रयागे च गंगासागर-संगमे ।

सर्वत्र दुर्लभा गंगा त्रिस्थानेषु सुदुर्लभा ॥

गन्धमुक्ता—पुराने हाथीके माथेमे पाया  
जानेवाला मोती । किन्तु आजके वैज्ञानिक  
आजकन हाथीके मस्तकमे मोती नहीं पा सके ।  
इसलिये वे गन्धमुक्ताको नल्पित मानते हैं और  
बड़े मोतीको ही गन्धमुक्ता मानते हैं । हमारे यहाँ  
मुक्ता उत्पन्न होनेके साठ स्थान माने हैं—गज,  
मेघ, सूकर, चक्र, मत्स्य, सर्प, सीपौ और गंस ।  
करोन्द्र-जीभूत-वराह-सद्य-

मत्स्यदि-सुवत्सुद्रव-वेसुजानि ।

मुक्ताफलानि प्रथितानि सौके

तेषाम्बु सुवत्सुद्रवमेभभूमि ॥

गन्धमादन—एक पर्वत जो रोमक पत्तन  
(रोम नगर) के उत्तरमे केतुमाल और इलावृत्त  
बर्षके बीचमे नील और निपपत्तक केजा हुआ है ।  
विष्णुपुराणके मतसे यह सुमेरुके दक्षिणमे है,  
जिसपर अश्वि नामका केतु वृक्ष है । इसके पूर्वमे  
चंद्रपद, दक्षिणमे गन्धमादन, पश्चिममे वैभ्राज,  
उत्तरमे नन्दन नामके चार मनोहर उपवन हैं  
जिनमे देवता विहार करते हैं । गन्धमादनपर  
विशेषत बिभुष्य या किन्नर और किन्नरी,  
सिद्ध, चारण्य, विद्याधर और विद्याधरियाँ विहार  
करती हैं । इस पर्वतपर महाभद्र नामका बहुत  
बड़ा सुन्दर सरोवर भी है । किन्तु सिद्धान्त  
त्रितोमाणिके अनुसार मानसरोवर पर ही गन्ध-  
मादन पर्वत है ।

गन्धर्व—यह धरतल सुन्दर जातिकी देव-  
योनि है जो देवताओंको रामामे गान, नाच  
और नाट्य करते हैं, इनकी दो जातियाँ हैं—  
दिव्य और मर्त्य । जो मनुष्य इस कल्पमे अपने  
पुण्य-वत्तसे गन्धर्व हुए हैं वे मर्त्य हैं, जो इस  
कल्पके प्रारम्भसे गन्धर्व हैं वे दिव्य हैं ।  
हरिवंशके मतसे स्वारात्रिप मन्वन्तरसे धरिष्ठाके  
गर्भसे गन्धर्वोंका जन्म हुआ ।



गोत्र—यद्यपि जिस पूर्व पुरुषसे किसीके पुत्रकी उत्पत्ति होती है उस कुलके सब लोग उस पूर्व पुरुषने गोत्रके समझे जाते हैं।

गोद—गोदावरी नदीके पासका स्थान।

गोदान—विवाह आदि मंगल नाशमें सज्जता गो देनेका बड़ा पुण्य लिखा है। मृत्युके समय जो गोदान करते हैं उन्हें साक्षात् स्वर्ग-शोक मिलता है।

गोदावरी—दूसरा नाम गौतमी नदी है। तीर्थ यात्राको खाते हुए ब्राह्मणोंसे एक कामुकने बसपूर्वक रमण किया और जब उससे पुन उत्पन्ना हुआ तब उसे परिव्राम्य कर दिया। इससे दुखी होकर ब्राह्मणोंने तप किया और गोदावरी नदी बन गई। जम्हई प्रान्तके नासिक जिलेके अश्वमेध गाँवके पास बहाइते यह नदी निगलती है और दक्षिण पठारको पार करती हुई बंगालकी खाड़ीमें समुद्रसे जा मिलती है।

गोमत्तर—सरजूके तीरेपर जिस स्थानपर रामने अपना पांचमीतिक शरीर त्याग किया था वही गोमत्तर या गोमत्तार तीर्थ कहलाता है।

गोरोचन—या गोरोचना, भीमे रवका सुप्रसिद्ध शय्य जो गौँके माथेसे निकलता है। इसीसे तब और वैभवाशोकके मजबूत विशे जाते हैं।

गोदपंत—गृन्दावनने पास प्रसिद्ध पर्वत जिसे श्रीकृष्णने अपनी उँगलीपर उठाया था।

ग्रह—सूर्य, चन्द्र, मीन, बुध, शुक्र, शुक, शनि, राहु और केतु। इनमें सेवका सूर्य, बुधव चन्द्र, शुकका मंगल, कन्याका बुध, बर्कन बृहस्पति, मीनका शुक, तुला का शनि उन्न या भ्रंष्ट होता है। तुलाका सूर्य, वृश्चिनका चन्द्र, बर्कन मंगल, मीनका मंगल मकरका बृहस्पति कन्याका शुक, मेघका शनि नीच होता है। प्लूटो यूरेनस और नेपचून नामक तीन और भी ग्रह खोजे गए हैं।

ग्रहण—जब पृथ्वी और सूर्यके बीच चन्द्रमा आ जाता है तब सूर्यग्रहण होता है और जब चन्द्रमा और सूर्यके बीच पृथ्वी आ जाती है तब चन्द्रग्रहण लगता है।

ग्राह—गहर (गहर) या गडियाल।

घ

घडियाल—जसजमु जिलका रूप छिपकली के समान किन्तु आकार इतना बड़ा होता है कि यह पाप और भ्रंशको नियमा जाता है इन्हे नाकू, नाका (नका) या गहर भी कहते हैं।

चक्रवाक—चक्रवा जलके पास रहनेवाला एक पक्षी जो देखनेमें हंसके समान होता है। इसकी सम्बाई २५-२६ इंच होती है। कहा जाता है कि दिनमें चक्रवा और चक्री दोनों चोंच मिलाकर बैठते हैं और साप-साप जलमें डूबते हैं किन्तु रातमें अलग अलग हो जाते हैं इनके माथेकी चोटी और दोनो पक्षोका रंग बेरसा होता है, छाती तथा पीठका रंग चना नारियला होता है। इनकी गर्दनमें नीचे और ऊपरके ऊपरके हिस्सेमें तीन बार मंगुल चौड़ा एक चमकीला काले रंगका पीठासा होता है जो छातीसे लगाकर पीठके ऊपरसे घूमा हुआ रहता है। यह चक्रवाके होता है, चक्रीको नहीं, कुछ चक्रवाको भी नहीं होता है। पीछेका निचला भाग कुछ-कुछ पीलापन लिए साफ होता है। कुछ चक्रवाके इस स्थानपर लाल और काले डोरे भी होते हैं। इसके पल और पैर आदि अन्य रंगोंके भी होते हैं। चक्रवाकी देहका रंग पीला और ललाई लिए हुए ज्वेत होता है। मस्तक और गर्दनका रंग चूहेके रंगवा तथा चोंच और पैर काले होते हैं। ये बड़े सजग रहने हैं। इसलिये घड़ेरी लोग इन्हें जल्दी मार नहीं पाते हैं। भारतमें जाड़ेके दिनोंमें दिमाई करते हैं।

चक्री—(देखो चक्रवाक)

**घञ्**—एक प्रकारका अक्ष जो लोहेके पहिए के आकारका तीर्थी धारवाला होता है । मुञ्जीरिने प्रनुमार घाठ अरो-वाला उत्तम, ६ याता मध्यम और चारवाला अधम बहुराता है । युवको निये १६ अगुलका उत्तम, १४ का मध्यम और १२ का निवृष्ट समझा जाता है । इसकी परिधि या पुट्टीकी चौड़ाई तीन अगुल उत्तम, दार्द अगुल मध्यम और दो अगुल अधम समझी जाती है । इसका बिनास जाने धोरोसे तीग्ना पैना होना चाहिए ।

**घञ्जती**—एक समुद्रसे दूसरे समुद्र तक फैले हुए राज्याके राजा, जिन्हें दूसरे राजा लोग बर देने हों । ऐसे राजा अञ्जती राजा माने गए हैं—भरत, सहस्रार्जुन, मान्धाता, भगीरथ, मुषिष्ठर, लहर और मनुष्य ।

भरतार्जुनमान्धातुभगीरथमुषिष्ठराः ।

मगने मनुदन्वैष सन्तीते अक्षयिके ॥

**घञ्जी**—दुर्गा ।

**घञ्जवाला मलि**—एक प्रकारका रत्न जो पूर्णिमाके पन्द्रमाके नामसे वाचर इवित होता है । मुक्ति-मन्त्रमें लिखा है—

पूर्णादुत्तरमन्त्रादिभूत यवति अष्टानुः ।

वाङ्मना तदाभ्यास दुर्गम तत्तन्त्री मुने ॥

**घञ्जहार**—जैसेमें पट्टनेका गोनेका आभूषण त्रिगमे अष्टाऊ नाम ही ।

**घञ्जाल**—राजकुमार अरण्य ।

**घञ्जनी**—जबम नदी । इसका दूसरा नाम घञ्जवाला और निर-नर भी है । प्राचीन दाम्पुत्र नाम दुर्गाके लक्षण था । महाराज अजितके अजितिन अशममम अर्थात् बई को ईर नामका आशुल और अजितियोंकी गिलाहो से । जो बंगीके अमरे और पगीमेमे इन नदीकी उत्पत्ति हुई । अमरवाती महाराज मदी इन्दीय गान्धे महाराज अर्थात् अजितनर अमृतमे विन गई है ।

**घातक**—पपीहा । यह पानी स्वातिके जलके प्रतिरिक्त कोई दूसरा जल नहीं पीता । चातकके सरोरके धामेका भाग हरा और पक्ष वाले होते हैं । पक्षकी जड़मे सफेद और वाता मिला हुआ, कथेपरके पक्ष स्वेत और पूँछ काली होती है ! चातकीका रंग भी ऐसा ही होता है किन्तु उसकी पूँछका रंग पना वाला होता है किन्तु पक्ष चातक के पक्षोंके समान लाला नहीं होता । चातक और चातकी दोनोकी चोच और पैरोका रंग कुछ नीला और भूरा होता है । पैर स्वेत और घुघने रंगके होते हैं । यह लगभग ५॥ इंच लंबा होता है । इसके पक्ष लगभग २॥ इंच, पूँछ २ इंच और चोच तीन इंचकी होती है । कहा जाना है कि इसके गलेमे एक छेद होता है और जब यह पानी पीने लगता है तो बहुत सा पानी इसके गलेसे निकल जाता है ।

**घामर**—मृग—सुरा गाय । नामर—सुरा गायकी पूँछ बिनासे खँवर बनाया जाता है । सुरागायको चमरी या चामर मृग कहते हैं । कहा खँवर दुसवानेमे दीर्घायु, छोटेसे भय और विनाश, उत्रनेसे धन तथा नीति और गनेसे वपश मिलती है ।

**घारल**—राजाघोरेः यहाँ उनकी मग-कीतिना विवरण इतनेवाले और अक्षरपर अवितामे कीति बहूनेवाले लोग । इन्हें कुमीपव, भाट और अयोजन भी कहते हैं ।

**घिन्नरूट**—अपारमे इक्षारुमे मन्दाविनी नदीके लहर अथवा पर्वत जो उत्तर प्रदेशके बाँस जिलेमे पहाड़ है । ननवागने प्राग्भिनर दिनामे राम इसी पर्वतका रहे हकीरिये इसे रामगिरि भी कहते हैं ।

**घिन्ना**—२७ नक्षत्रोंमे यह १४वाँ नक्षत्र अथवा उग्रम प्रत्यावाला है । इसमें एक भाग है । यह पूर्ण दिग्गमे निरवका और अक्षयमे अमृत होता है । घिन्नामे उग्रम हुआ

मनुष्य समुद्योगो वस्तु रचता, नीति-शास्त्रमे  
निपुणं श्रीर अनेक शास्त्रोपमा गच्छतु होता है ।  
पुराणमें अनुसार यह दश प्रजापतिनी चौदहवीं  
कन्या श्रीर अन्द्री पत्नी है । अंगरी पूर्वसिमाको  
चन्द्रमा इसीका भोग करता है । विश्वामे यात्रा  
निर्गम है ।

भूदापति—शिरपर पहननेवा सीधपून  
नामका गहना जो माथेके ऊपर ठीक बीचमें  
भागपर पहना जाता है ।

अच्यवन—ऋषि । इनके पिता महर्षि भृगु  
श्रीर माता पुलोमा थी । जब ये माताके गर्भमें  
थे तब समय एक राक्षस इसकी माताको  
हरण करनेको आया । अच्यवो माताकी रक्षा  
करनेके लिये इन्होंने तत्काल गर्भसे निरन्तर  
उठे मार डाला, इसीलिये इन्का नाम अच्यवन  
पडा । एक बार तपस्वा करते-करते इनके  
शरीरपर बल्मीक का बाँधी उठ पाई । केवल  
बोनों घननीली झालें चुकी रह गई । एक  
दिन राजा शर्मतिवी पुत्री शुक्रव्याने कुतूहलवश  
उनमें गति बुझा दिए । महर्षिके क्रोधसे  
शर्मतिने सामन्तोका मल-मूत्र रक गया । तब  
शर्मतिने शमा मांगपर अपनी बन्धा उन्हें  
ब्याह की । गुणाया इसकी साक्षी थी कि जब  
शर्मिणीपुनारने परीक्षा लेनेके लिये इन्हे  
पुसलामा तब भी ग हड रही । इससे प्रसन्न  
होकर इनके पति अच्यवनकीको शर्मिणी-  
कुमारने गुदर पुष्पा बना दिया । इसके  
बदलेमें अच्यवन ऋषिने शर्मिणीकुमारकी  
यज्ञमे गोम रस दिया । इसपर इन्द्र यह हो गए  
श्रीर इनपर क्रोध बनाया । अच्यवनने अपने मन्त्र-  
बलने यज्ञको रोक दिया और उनका नाम  
करनेके लिए एक विश्वराम समुग्धी सृष्टि की ।  
तब इन्द्र भयभीत होकर अच्यवनकी गरखने  
धाय श्रीर इन्द्रकी मुक्ति मिली । उस विश्वराम  
समुग्धी अच्यवनने चार भागोंमें बाँटकर स्त्री,  
मत्त, पुत्र, और मृदनामे प्रतिष्ठित कर दिया ।

छ

छतिवन (सप्तपर्ण)—भारतके सभी  
शीतप्रधान प्रदेशोंमें होनेवाला वृक्ष । इसके  
एक-एक पत्तेमें कई दल होते हैं । इसका पेट  
बड़ा होता है और टहनियोंसे द्रुम निरालता  
है । इसका द्रुम कोड़े को अच्छा कर देता है  
श्रीर जेलमें फिलाकर कानमें टासनेसे दर्द दूर  
हो जाता है ।

छतिक—एक प्रकारका रूपक या नाटक  
जिसमें दर्शकोंसे किसी प्रकारका छल लिया  
जाता है, उन्हें मूर्ख बनाया जाता है या जिसका  
सक्य छल करना होता है ।

ज

जटासु—प्रसिद्ध वृद्ध पत्नी जो सूर्यके  
शरणी बनकर श्रीरस तथा इष्येनीके गर्भसे  
उत्पन्न हुए थे । इनके बड़े भाईका नाम सपत्नी  
था । जब सूर्यखने सोदाका हरण किया तब  
जटासुने सबलसे युद्ध किया और उसके हाथो  
मारा गया । रामने अपने पिताका मित्र  
समझकर उसका दाह सत्कार किया ।

जनक—निर्मि बनमे हृस्वरोमाके पुत्र,  
मिथिलाके राजा, सीताके पिता । मिर्मिने  
अपने पुरोहित यशिष्ठकी उपेक्षा करते यज्ञ किया  
था । इसपर यशिष्ठने क्रुद्ध होकर मष्ट होनेका  
पाप दे दिया । तब ऋषिमोंने मृत निर्मिकी  
देहको गया जिससेसे यमित होकर उत्पन्न  
होनेके कारण मिर्मि नामका पुत्र हुआ ।  
इन्हीका दूखत नाम जनक था । इन्होंने द्वारा  
स्थापित देव मिथिला कहनाया । ये ब्रह्म-  
जानी श्रीर बिरक्त थे । इसलिये विदेह कहलाते  
हैं और उपदेष्टा होनेके कारण राजपि कहलाते  
हैं । मिर्मिनाके सभी राजा ब्रह्मजानी होते  
थे और इन्होंने सभी जनक कहलाने हैं ।

जनपद—एकही बोनों बोनेवाले लोग  
जिनके प्रदेशमें बसते हो उसे जनपद करते हैं ।



जन्मस्थान—(१) दण्डकारण्य । (२) दण्डकारण्यके पासका स्थान । इहवाकु बशके राजपुत्र दण्डने जब शुक्राचार्य की कन्या भरवासे बलात्कार किया तब सुक्राचा ने शाप दिया कि तुम सात रात्रिगे भस्म हो जाओगे । चन्दीके नाम-पर इस वनका नाम दण्डवन पड़ा और उसमे जिस स्थानपर रहनेसे तपस्विगोपी रक्षा हुई थी उसे जन्मस्थान कहते है । (३) दण्डकारण्यका यह स्थान जिसमे रावणकी सेना लेकर सर, वृषश आदि रहते थे ।

शयन—इन्द्रका पुत्र ।

जया—पार्वतीजीकी सखी जो वपस्याके समय उनके साथ थी ।

जलधुवकुंड—पनटुखी नामक पसी जो जलमे डूबकर मछली आदि जीव निकालकर खाता है । मुरगाबी ।

जातकर्म—जस सस्कारोमेसे भीषा सस्कार । इत्यादि विधान यह है कि पुत्रके जन्मका समाचार सुनते ही पिताको यह कहना चाहिए—नाभि या वृन्तल, स्तन न भावदत्त । (नार न फाटना, स्तन न पिलाना) और फिर सवस्र स्नान करके पशु, मार्कण्डेय और मोदसमाप्तृकाका पूजन करके बसुंधरा तथा तान्दीमुख आदि कार्य करना चाहिए । सब किसी ब्रह्मचारी, कुमारी, गर्भवती या वेदान्ति ब्राह्मणसे एक सत्वरकी श्रद्धा कुलचक्र करवाहिते हाथकी धनामिका और धनुस्से धावस और जो लेकर 'कुमारस्य विद्वा निमीष्टि शयमाका' कहकर कुमारको दुष्माना चाहिए । फिर सोनेकी सलादसे धी जेवर मयाविधि मन्त्रोके साथ ब्राह्मणकी जीभपर लगाया चाहिए और 'नाभि वृन्तल स्तन न दत्त' (नार देखो, स्तन पिलाओ) कहकर वाहर भसा जाना चाहिए ।

जाम्बी—जनकका पुत्री, रामकी भयंपत्नी । इनको बंधेही, मैथिली सेता और धरणीसुता भी कहते है । येत जोतने हुए राजा जनकको

हलन्ती फालसे टकराए हुए एक मिट्टीके घडेमे मिली थी । अतः, ये जनककी भयोनिजा कन्या थी और हलसे उत्पन्न होनेके कारण सीता कह-साई । इनका जन्म वंशास सुवसा अष्टमीको हुआ था । जब रावणने ऋषियोसे भी कर माँगा तो चन्दीने अपने अंगूठे चौरकर उसके रक्तसे घडा भर कर रावणके पास यह कहकर भेज दिया कि इसमे तुम्हारा विनाश निहित है । रावणने वह घडा मिथिलाके खेतमे गडवा दिया । वही ऋषियोका रक्त सीताके रूपमे उत्पन्न हुआ और उन्हीके कारण रावणका विनाश हुआ ।

जन्मस्थान—(दसौ दस)

जुही—सफेद धमेबीसे मिलते जुलते छोटे छोटे फूल जो हिमालयकी ढालपर भाडिपेमे होते है और फुलवारियोमे लगाए जाते है । इसका पीषा कुन्वसे मिलता है और बरसातमे फूलता है । इसे सस्कृतमे मूषिका कहते है क्योंकि ये मुरके भंड चुब्बोमे लपते है ।

ज्वार—प्रतिदिन समुद्रमे दो बार पानी घटता बढ़ता है । इस बढ़ाव-उतारको ज्वार-भाटा कहते है । जब पानी बढ़ता है तब ज्वार होता है, जब उतरता है तब भाटा होता है । ज्वारको सस्कृतमे वेला कहते है । प्राय १२ घंटे २५ मिनटपर ज्वार आता है ।

ज

जंज—(दस) जपली मच्छर, डंस । इस मच्छरके काटनेपर बड़े-बड़े कमीरे पड़ जाते है और बड़ी खुजलाहट होती है ।

त

तसक—याठ नामोसे एक नाम । इसका जन्म बरष और कट्टके गर्भसे हुआ था । यह साण्डव वनमे रहता था और इसने ही शृङ्गी ऋषिका शाप सफल करनेके लिये राजा परीक्षित को काट लिया था जिससे क्रुद्ध होकर जन्मेजयने

सर्प-यज्ञ किया था। यज्ञमा समाचार सुनकर तदाकने इन्द्रकी शरणा ली और वासुकीने यज्ञ रोकनेके लिए शास्तीककोभेजा, राजा जनमेजयने तदाकको इन्द्रका शरणागत जानकर ऋत्विजोसे कहा कि तदाकके साथ इन्द्रकी भावृति कर शक्ति। फलत 'इन्द्राय तदाकाय स्वाहा' नहते ही तदाकके साथ इन्द्र भी अग्निकी ओर धावृष्ट हो गए। तब इन्द्रने डरकर तदाकको छोड़ दिया और अग्निकी ओर गिरने लगा। इसी समय शास्तीकाने अपनी ध्यान देकर महाराज जनमेजयसे तर्प मंत्र बन्द करनेकी भिक्षा मांगी। और तभीसे यह प्रसिद्ध है कि शास्तीकका नाम जनमेजयसे सर्प-भय नहीं रहता। सर्प दूर करनेका मंत्र यह है—

सर्पापसर्पं बद्रन्ते दूर मन्त्र महाविष ।  
जनमेजयस्य यज्ञान्ते शास्तीक वचन स्मर ।  
शास्तीकवचन भुक्त्वा य सर्पो न निवर्तते ॥  
शतधा भिद्यते भूर्ध्वि विशावृत्तफल मया ।  
विशवाच किया जाता है कि यह माग इच्छा-  
नुसार मनुष्य शरीर धारणकर सकता था ।  
बैद्यक ग्रन्थोमे लिखा है—

मदूर निम्बपत्र च योर्जित मेघमते रवी ।  
प्रतिरोपान्वितस्त्वस्म तदाक किंकरिष्यति ॥  
बैशालमे जो मदूरके साथ नीमके पत्ते खाता है उपाय क्रोध करके तदाककी कुल नहीं बिगाड सकता मर्बाद् उन्हें कोई विष नहीं बढ सकता ।  
घाठ प्रधान नाग ये हैं—अनन्त, वासुकि, पद्म, महापद्म, तदाक, कर्कोटक, शय और शेष ।

तपोवन—नदीके किनारे हरे-शरै छाछ-फलोसे युक्त जिस वनमे महीं सोय उपस्था करते थे ।

तमसा—टोस या छोटी सरयू नदी । जिस के स्मरण करनेसे पाप नाश हो सकका नाम तमसा है—यस्या स्मरणश्रुताम्यति पाप सा तमसा । वन जाते समय रामने पहली रात इसी

नदीके तीरपर बितायी । यह नदी उत्तर प्रदेशके आजमगढ और वलिय जिलेमेसे होती हुई बलियाके पास गगामे मिल गई है ।

तमाल—यह वृक्ष बीससे सठ्ठाईस फुट तक ऊंचा होता है । दखनेग महदा हरा और सुन्दर होता है । बंशासने इसमे यड़े-यड़े श्वेत फूल लगते हैं और बलमी नीवू जैसा एक फल लगता है जिसका दिल्का बलके समान बिकना और पीला होगा है किन्तु यह दूतना खट्टा होता है कि एक बार खानेसे कई दिनतक दांत खट्टा रहता है । खियार इसे बहुत खाते हैं । इसके पत्ते तेज-पातके समान होते हैं और इसकी छाया बढी बनी होती है । इसे नीलताल बलताल और नीलध्वज भी कहते हैं । या तो भारतमे सभी स्थानोपर यह वृक्ष होता है किन्तु समुद्रके तटपर भी बहुत पाए जाते हैं ।

तमोगुण—धत्व, रण, रग तीन गुणोमेसे एक, जिसमे तमोगुण विशेष होता है वह क्रोधी और दुष्कर्मी होता है ।

तर्पण—अपने पितरोको जल-दान देकर तृप्त करनेका कार्य । यह तर्पण विशेष विधानके साथ किया जाता है । तर्पणना यह कल लिखा है—कि तर्पण करनेवालेको किसी प्रकारका दुःख नहीं होता ।

ताडका (ताडका)—यह मुक्तेनु नामक परा-क्रमी यक्षकी कन्या थी जिसे उसने ब्रह्मसि बरके रूपमे पाया । इसमे एक सहस्र हाथियोका बल था, यह जन्मके पुत्र सुन्दसे ब्याही थी । जब अश्वत्थ ऋषिने सुन्दको मार टाला तब यह अपने पुत्र मारीचको साथ लेकर अश्वत्थ ऋषिको जाने दोही, किन्तु उनके जापसे बोने राक्षस हो गए । तभीसे यह राक्षसी अश्वत्थजीका तपोवन नष्ट करने लगी और बहूँके सब ऋषियोको खाने लगी । इसीलिए यह जन्त ताडका जन्म कहलाता है । जब यह विश्वामित्रजीके यज्ञमे भी विघ्न करने लगी

तब वे राम-सहस्रनामों से ध्याए और रामने उनका वष किया। स्त्री समझ कर जब राम भिन्न रहे थे तब विश्वामित्रने कहा था—'जो स्त्री बोरके समान बुद्ध बने, सखा और नीमलता का त्याग करे, उसे मारनेमें स्त्रीबधका दोष नहीं लगता।

**ताण्डव**—युगलोंके नृत्यको ताण्डव और क्रिपोंके नृत्यको साम्य कहते हैं। यह नृत्य शिवजीको धरत्यन्त प्रिय था। १. किसीके मतसे इस नृत्यके प्रवर्तक शिव हैं। २. तण्डु नामक ऋषिने पहले-महल इसकी शिखा दी थी। अतः, इसका नाम ताण्डव पड़ा।

**ताम्ररणी**—१. यह नदी मद्रास प्रान्तके तिल्लेवेनि जिल्लेमें है। इसे उग भाषामें 'पसने' कहते हैं। यह पश्चिमी घाट पर्वतमें निक्षलकर बहानकी गाड़ीमें जा गिरती है। २. इसीके घाटपाव ताम्ररणी नामकी एक और नदी जो पश्चिमकी ओर बहती है। ३. बम्बई प्रान्तके बेनगार जिल्लेकी एक छोटी नदी।

**तारनापुर**—यह ईश्वर तारण नामका समुद्रका पुत्र था। गृहणी बंधन त्याग करने पर इसने मस्तकमें ऐसी शक्ति प्राप्त की जिसे देखादि देवता जानने लगे। देवताओंमें यह वृष्णाण बह्मणसे बड़ा। तत्काल बह्मणों तारनापुरके पास गए। बरदानके रूपमें उसने दंड कर मांगे। १. मेरे समान कोई बर्तन नहीं। २. शिवके पुत्रके चरित्रित शिर्षाके म मांग जाऊँ। कर पाकर कर करों पर भावा। सब धनुषोंने उसका शरणागिर्य किया। वह मथारमें मद्रा प्रजापति काजाकार करने लगा। इससे देवता बहुत दुःखी हुए। तब शिवके पुत्र चरित्रेयने उसका वष किया। (देवी चरित्रेय)।

**ताप**—पश्चिमके सप्तमी शिखरी प्रदेसकी एक समतल भूमि है जिसे तापकी जो तापी बर्तन आती है अथवा सूर्य, मन्त्रों धारि पर

विशेष बोलोंमें बँधे हुए जो विभिन्न कठिणोंके समझकी अभिव्यक्ति की जाती है उसे ताप कहते हैं। ऐसी तापों अनेक हैं। तापकी उत्पत्ति महादेवजीके ताण्डवके "ता" और पार्वतीजीके लास्यके "न" से हुई। यह दो प्रकारकी होती है—मार्गी और देवी। भरतने ६० प्रकारकी मार्गी ताप १२० प्रकारकी देवी तापोंका विवरण दिया है जिनमेंसे प्रायःसब कुछ शीघ्रसे ताप प्रयुक्त होते हैं।

**तिली**—नीवार या मुग्घन। यह एक प्रकारका चावल होता है जो अपने प्रायःसब शीघ्रसे उदरन हो जाता है। प्रायःसबमें शीघ्र इसीका प्रयोग करते हैं।

**तिल**—यह छोटा पतला, शिपटा बीज होता है जो बाला, सफेद और सास रचना होता है जवली तिल भी होता है। तैल शब्द इसी तिलके तैलने लिये प्रयुक्त होता है। यह भाङ्ग-शर्करादिमें अधिक काम आता है। इसने पूलकी उभमा मापने दी जाती है जो सफेद रचना, गिलासने मथारकर, ऊपर चार इत्तोंमें विभक्त रहता है जिसपर भीतरकी ओर बंधनी पारियाँ होती हैं। इसका चौथा पार छुटतक ऊँचा होता है। इसका पत्ते ८, १० धनुष सम्ये और ३४ धनुष चौड़े होन हैं जिससे बिनारे डो मने होन हैं।

**तिलक** १—सन्तान, मेरार धारिमें निजके पुत्रके समान भाषे, शरीर या हाथपर जो धोता प्रायः उने तिलक कहते हैं। १—सामरा पेट। १—मुद्रापरकी आरिषा पर, शिखर समान शत्रुमें लोके धारणाके पून लगे हैं।

**विश्वामित्र**—धरने पितृगणोंके मृत करनेके लिए तारुणके समय जलमें तिल कामकर प्रप्रति रवा।

**शौच**—शरीरमें शक्य, सट धरणा धरने शिर्षा मथारुणक जग्य मथार। मथारा शिर्षा

पवित्र घटनाके स्थलको तीर्थ कहते हैं जहाँ स्नान करने, निवास करने या दर्शन करनेसे पाप दूर हो जाते हैं। तीन प्रकारके तीर्थ बताये गये हैं—जगम, मानस और स्थावर। ब्राह्मण और सन्त लोग जगम तीर्थ हैं। सत्य, धामा, इन्द्रिय-निग्रह, दया, ऋजुता, दान, दम, सन्तोष, यज्ञधर्म, त्रिवेदादिता, ज्ञान, धर्म और उपस्था ये मानस तीर्थ हैं। गया, काशी आदि स्थावर तीर्थ हैं।

सुशीर—हरकृष्ण। चाणु रखनेका सोस। शौ बाहिले कन्धेकी ओर पीठसे रेंपा रहता है।

सूर्य (सुरही)—मुँहसे धूमकर बजाए जाने-वाला एक षष्ठा यन्त्र।

त्रयी—ऋग्वेद, यजुर्वेद और साम वेद। सृष्टिके आदिमें ऋग्वेदमय ब्रह्मा, स्थितिके यजुर्वेदमय विष्णु और लयके सामवेदमय रुद्र ही त्रयी हैं।

त्रिकूट—तीन शिखरोंवाला पर्वत। ऐसा पर्वत एक जगहमें है, दूसरा क्षीरसागरमें है, तीसरा गुजरातमें गिरिनार पर्वतमें है जिसे पार करके रघु सिन्धुकी ओर गए थे।

त्रिपुर-विजय—तारकासुरके तीन पुत्र-तारकासुर, कमलासुर और विष्णुमालीने तपस्या करके ब्रह्मासे यह वर ले लिया कि हम तीनों तीन पुरोंमें रहकर पूजित हो और जब एक साथ मिला जायें तब जो एक समय बाणसे तीनों पुरोंका नाश कर दे, उसीके हाथसे हमारी मृत्यु हो। मंत्र दानवोंने इनके लिये स्वर्गमें सोनेका, भस्तरिदामे चाँदीका और मर्मलोकमें सोड्डेवा सोन दसाया। इन दानवोंने वरके कारण देवताओंपर भद्राभार प्रारम्भ कर दिए। तब महादेवजीने सब देवताओंका प्राया-प्राया धन लेकर ब्रह्माजीको सारथी बनाकर विश्व-कर्मके बनाए रूपपर चढ़कर दिव्य धनुष खींचकर त्रैलोक्य-तार-भूत-बाण छोड़ा जिससे त्रिपुर नष्ट हो गए और उन्होंने तीनों पुरोंसे जलानर पश्चिम तागरम पंज दिया।

त्रिपुराकर तीर्थ—ब्रह्माका बनाया एक तीर्थ, जहाँ तीन तासाव है।

त्रिशङ्कु—ये सूर्यवंशी राजा सप्तरीर स्वर्ग जानना चाहते थे। जब वसिष्ठ और उनके पुत्रोंने ऐसा यज्ञ करना स्वीकार नहीं किया तब त्रिशङ्कुने विष्वामित्रकी शरण ली। विष्वामित्रने जो यज्ञ किया उसमें कोई देवता नहीं आए। तब विष्वामित्रने क्रोधसे त्रिशङ्कुसे कहा—नेरी तपस्या-के फलसे ही तुम सप्तरीर स्वर्गमें चले जाओ। स्वर्गकी ओर भाते देखकर इन्द्रने उसे टकेलकर कहा—तुमपर नुस्का छाप है, तुम भीमे मुँह होकर छोट जाओ। जब वह भीचे गिरने लगे सब विष्वामित्रने उन्हें भीचने रोक दिया। तबसे त्रिशङ्कु वही भीचे छिर किए हुए लटके हैं।

त्रिदूल—तीन फलबाला महादेवजीका मन्त्र।

त्रैता—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग नामक चार युगोंमेंसे एक। कालिव युगका नवमीको त्रेता युग प्रारम्भ हुआ। इस युगमें बारह साल छानवे हजार वर्ष होते हैं। इसमें मनुष्यकी आयु १० सहस्र वर्षकी होती है, लम्बाई १४ हाथ होती है। इसमें तीन चरण पृथ्वी और एक चरण पाप होता है, चाँदीके पात्र ही काममें आते हैं। इस युगमें रामचन्द्र, परशुराम और राम-का अवतार होता है। मनुके अनुसार इस युगमें मनुष्योंकी आयु ३०० वर्षकी होती है।

त्रोटक—यह ५, ७, या ६ प्रकका एक नाटक होता है। जिसमें स्वर्ग और पृथ्वी दोनोंके नियम बखाने किए जाते हैं। शृङ्गाररस प्रधान होता है और नायक कोई दिव्य मनुष्य होता है। विक्रमोद्वेगीय नाटक त्रोटक ही है।

द

दत्त—धार्मिके पिता और प्रजापति। इन्होंने अपनी १० कन्याएँ धर्मको, १३ कश्यप-के, २७ चन्द्रमाको, दोन्दो मृगु, अगिरा और

घ

धनुष्यज्ञ—सीताजीके विवाहके लिये जनकजीने प्रण किया था, जो महादेवजीका धनुष उठाकर उसपर डोरी बँधा देगा उसीके साथ सीताजीका विवाह होगा। यद्यपि बहुत राजाधोने धनुष उठानेका प्रयत्न किया किन्तु रामके अतिरिक्त कोई भी धनुष नहीं उठा सका इसीलिये सीताजीका विवाह रामसे हुआ।

धर्म—जिस वामसे इस लोकमें अमृत्युदय और परलोकमें मोक्ष मिले वही धर्म है। यनोऽमृत्युदय नि धर्मोऽसिद्धिः स धर्मः। परहिं तरिस् धरम नहिं भाई।

धर्मसत्तम—राजा या न्यायाधीश जिस आसन पर बैठ कर न्याय करता है।

धातु—वह मूल क्रियारूप जिससे क्रियाके धनेर रूप बनते हैं—जैसे धत्, ह, धादि।

धूमकेतु—(दिलो पुच्छलतारा)

ध्वजा—१ झंडीका डंडा। २ झण्डा।

न

नक्षत्र—मन्त्रिणी आदि २७ तारक-समूह। (देसो कृत्तिका)

नक्षत्रत—रतिदानमें प्रियसौके सरीसर प्रियतम-द्वारा बनाए जानेवाले नक्षके पिछे। कामनाधने इसका विस्तारसे वर्णन किया गया है।

नदी—मूत्रधार या नटकी पत्नी।

नन्दनवन—इन्द्रका वह उद्यान जिसमें मनुष्य अपना भोगवात्त पूरा करके विहार करते हैं। यह वृष्टिभरके सब स्थानोंमें सुन्दरतम माना गया है। यहाँ भाकः७ गगामे मुनहूले कमल खिलते हैं। भूमिपर कल्पवृक्ष फलता प्रभता है, कामधेनु यथेन्द्र फल देती है और यहाँ पहुँचकर लोग अप्सराओंके साथ विहार करते हैं।

नन्दिधाम—धर्मोभ्यासे चार शीशपर एव गौद जहाँ भरतने रामके नियोगमें १४ वर्षतक लप किया था।

नन्दिनी—देव सुरभि कामधेनुकी कन्या और वशिष्ठकी भी जिसे प्रसन्न करके दिलीपने पुत्र पाया था। एक दिन केत लेकर विश्वामित्रजी वशिष्ठके यहाँ गए। वशिष्ठने नन्दिनी गौके प्रभावसे जनक इच्छानुसार सत्कार किया। विश्वामित्रने उनसे यह गौ माँगी। जब वशिष्ठने अस्वीकार कर दिया तब वे बलपूर्वक गौको ले चले भागमें नन्दिनीके बिल्लानेसे उसके विभिन्न अंगोंमेंसे म्लेच्छों और यवनोंकी इतनी सेनाएँ निकल पड़ी कि विश्वामित्र हार गए।

नन्दी—१ घातव्याण्य नामक शिवजीके द्वारपाल। २ शिवजीके एक प्रकारके गण जिनके तीन भेद होते हैं—वनवन्दी, गिरिनन्दी और शिवनन्दी।

नमुचि—१ एक दानव जो दुग्ध और विदुग्धका तीसरा भाई था और कश्यपकी दनु नामक पत्नीसे उत्पन्न हुआ था। २ विप्रचित नामक दानवका पुत्र, जो इन्द्रका मित्र था, जिसने सोमरसके साथ इन्द्रका बल हर लिया था और जिसे इन्द्रने सरस्वती और अग्निनीकुमारसे बध लेकर मारा था। इन्द्रने इसने प्रतिज्ञा की थी कि मैं न तो तुम्हें दिनमें मारूँगा और न रातमें न सुखे अरुसे न गीले अरुसे। इसीलिये इन्द्रने धाक या मदारके समान एक बच्चाजसे उत्सक बध किया।

नमोद—एक प्रकारका पुन्नाग वृक्ष। इसे हिन्दीमें मुल्तानी अम्पा कहते हैं। इसका फूल बड़ा-बड़ा चात चात होता है जिसमेंसे भाग्यन्त सुन्दर गंध निकलती है।

नरकट—सरकटे (शरपत्र) के समान दलदलमें होनेवाली एक पास, जिसमें पीरदार छद्मी निरन्तरी है जिससे जिसनेके कलम बनाए जाते हैं। इसका बीधा बँटने समान, पत्तियाँ बौलकी पत्तियोंके समान और डटल या छटी पोती होती है जिसकी टुकड़ोंकी निगालियाँ,

टोकरी और मुँहे भी बन्दते हैं। इसे नरकुल भी कहते हैं।

**भमरा (नदी)**—यह रीवाँ राज्यके भमर-कण्ठक पहाड़से निकलकर भदोयके पास धरन सागरसे गिर जाती है। यह विन्धके दक्षिण ६०० मील तक बहती है। भमरकण्ठकसे निकलकर माल भूमिसे थुंभकर यहसे ७० फुट नीचे गिरकर बपिसपारा प्रपात बनाती है। इस नदीसे इतना करनेका बड़ा पुण्य बताया गया है क्योंकि यह धारणी देहसे उत्पन्न हुई है।

**भद्रबुधर—बुदेरवा पुत्र**, मणिपीथका भाई। एक बार यह कैलास पर्वतपर मदिरा पीकर त्रिभुके साम विहार कर रहा था तब नारदने शाप दिया, जिससे यह वृक्षावतमे वनलार्जुन हुआ था।

**भक्तगिरि—(हाथी)** उज्जयिनीके राजा चक्रवर्तीका प्रसिद्ध वेगशील हाथी।

**भक्तमलिका—** १. चमेली, २. मेवारी।

**भद्रव—**ये पन्द्रवती राजा आयुके पुत्र और पूषराके पीत थे। ये बड़े प्रतापी धकवर्ती राजा थे। जब वृषासुरको गारुडपर ब्रह्महत्याके बरसे इन्द्र कमलनालने छिप गए, तब बृहस्पतिने भद्रवको ही इन्द्र बना दिया। इन्द्राणीपर मोहित होकर जब इन्होंने उन्हें पास बुलाना चाहा तब इन्द्राणीने कहासाया कि आप सन्तपियेकि कन्धेपर पासकीपर चढ़कर भाइए। पासकीपर चढ़कर हठबटोमें इन्होंने सन्तपियोसे कहा—‘सर्प, सर्प’ धर्मार्थ जस्टी-अन्टी चलो। इसपर भगस्त्वनीने इन्हे शाप दे दिया कि जायो, सर्प ही जायो। किन्तु प्रार्थना करनेपर भगस्त्वने कहा—मुषिन्धर तुम्हे शाप मुक्त करेगे। इसीसे वे बहुत बिनो सर्प बनकर ईशवतमें पड़े रहे और जब इनकी एकदखे योगको पुत्रानेने लिये मुषिन्धर भाए तब इनकी मुक्ति हुई।

**नाग—**कश्यपकी कन्या नामच खीसे प्रनन्त, वासुकि, कम्बस, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शत्रु, कुम्भिक और अषरानित नामके नाग उत्पन्न हुए। ये नाग, भूमिके नीचे रमणीयक डीपमे रहते थे।

**नागकन्या—**नागजातिकी कन्याएँ जो बहुत सुन्दर बनाई गई हैं।

**नागपाश—**दक्षिणा भल जिससे वे शत्रुभोको बाँध लेते हैं। मेघनादने इन्द्रसे यही भल प्राप्त किया था। तनके अनुसार जाई फेरके बन्धनका नाम नागपाश है।

**नागरमोघा—नागरमुस्ता—**एक प्रकारकी घास जो जपनी सूधर बहुत साते हैं।

**नाग्वी—**नाटकके प्रारम्भमे देवताभोको प्रसन्न करनेके लिए जो प्रार्थनाएँ की जाती हैं। साहित्यदर्पणके अनुसार यह घाठ या १२ पदोंमें होनी चाहिए किन्तु भरतने १० पदोंकी भी बताया है। नाग्वीका पाठ मन्मम स्वरने होना चाहिए।

**नारद—**अपने पितरको सदा जलदान देनेके कारण इनका नाम नारद पडा। ये ब्रह्माके मानस-पुत्र उनके कण्ठसे उत्पन्न हैं। और देवपियोसे प्रमान माने जाते हैं।

**नारायण—(नर-नारायण)** एक बार शरभरूपी महादेवने अपने दाँतसे नरसिंहके दो टुकड़े कर चासे जिसने उनके नररूपसे तपस्वी मुनि नरकी उत्पत्ति हुई और सिंहरूपि देहसे नारायण का। ये नर और नारायण हिमालय-पर बदरिबाध्यमे तपस्या करने लगे। वहाँ उनके तपसे डर कर इन्द्रने बाधा देनेके लिये अश्वराएँ भेजी। उन्हें लज्जित करनेके लिये नर-नारायणने अपनी जपासे उर्बशी उत्पन्न करके लड़ी कर दी।

**निधुल—**एक प्रकारके व्रतका पेड़।

**निधिवुल—**निधिताबराको स्थापित करनेवाले और इस्वाहुने पुत्र निधिले यह विदेह

यथा चलाया। एक बार निम्नने वशिष्ठजी बुलाया किन्तु वशिष्ठजी इन्द्रका यज्ञ करने चले गए। तब निम्नने दूसरे ऋषिभोजो बुलाकर यज्ञ प्रारंभ कर दिया। इसपर वशिष्ठने आप दिया कि मेरी अवज्ञा करनेके कारण तू दोन होगा और तेरा शरीर नहीं रहेगा। निम्नने भी वशिष्ठको आप दिया कि बिना समझे वृषे आप देनेके कारण आपका भी शरीर नहीं रहेगा। यह कहकर निम्नने शरीर छोड़ दिया और उनकी वेह लेलने रस दी गई। उपर वशिष्ठजी शरीर छोड़ कर मित्रावरणके तेजसे समा गए और फिर मित्रावरणके धोरमसे उर्वशीके द्वारा उत्पन्न हुए। यज्ञके समाप्तिपर एष देवतामोने मृतक विमिशे पर माननेके लिए कहा तब उन्होने उत्तर दिया—मैं जोना नहीं चाहता। किन्तु मही चाहता हूँ कि मैं प्राचीनपर हूँ। तब से वे सबकी पलकोपर रहते हैं। उनकी मृत वेहको गणवर एक पुत्र उत्पन्न किया गया जिसका नाम जनक रखा गया और इसी मयनेसे उत्पन्न होनेके कारण उनका नाम विमि भी था। उसी समयसे विमि सबकी पलकोपर रहते हैं और सबकी पलके उठी रहती हैं। उहीना पुत्र विमिना जल कहलाया है।

**विमिग्या—विमिग्यावससे विपत्ती हुई एक नदी।**

**नीच—पहाडी जो विमिग्यानी ही एक प्रदाया है।**

**नीति—पट-नीति—खन्य, विग्रह, याम, घासन, मथय, द्वीधीभाव।**

**नीवार—(देगी तिथी)**

**पुपुर—(देगी विष्टए)**

**नैर्द्धत—१ एक राधास। २ नैर्द्धत्यकोए के दिनपाल।**

**नैर्द्धत्य—वज्रम-दक्षिण कोएको दिता।**

**नैमिपारण्य—**वर्तमान नीमसार नामका तीर्थ जो भवपके सीतापुर जिलेमें है। यहाँ गौमुख मुनिने निमिपमात्रमे प्रसुरोको भस्म कर दिया था इसीलिसे इसका नाम नैमिपारण्य पडा। देवी गामवतमे लिखा है—जब कलिकालके भयसे ऋषि लोग ब्रह्माके पास गए तब उन्होने मनोमय चक्र लेकर कहा कि जहाँ इसती नैमि (पैरा) चूर-चूर हो जाय वही पवित्र स्थान संगमकर रहना। वही नैमिपारण्य है। यहाँ गोमती नदी बहती है।

**नैमिपेय यज्ञ—**निमिपारण्यने किया हुआ यज्ञ।

**स्थापासन—(दे० चर्चरान)**

प

**पल—**प्रतिपक्षमे १५ दिनका समय। कृष्ण पक्षमे चन्द्रमा निश्च एक कला पडता है शुक्ल पक्षमे नित्य एक कला बढ़ता है।

**पञ्चतत्व—**पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, इन्ही पाँच तत्वोंके सयोगसे सारी सृष्टि बनी है।

**पञ्चवटी—**१ पीपल, जैल, बड़ प्राँवला और भयोरके वृक्षोंका समूह। इनमें पीपलकी पूर्य, जैलको उत्तर, बड़की पश्चिम, प्राँवलेकी दक्षिण और भयोरको आग्नेय कोएने लगाकर पाँच धन बाद इस पञ्चवटीकी प्रतिष्ठा करनी चाहिए और इसके बीचमें चान हार लकी-थोड़ी वेदी बनानी चाहिए। २ बण्डकारण्यमें नासिकके पास मोदावरीके तटपर एक धन जिसमे मनवायने समय राम, लक्ष्मण, सीताने निवास किया था जहाँ धूर्पलखाके नाक पान बाटे गए थे और सीताहरण हुआ था।

**पञ्चबाण—**१ कामदेव २ कामदेवके पाँच बाण—द्रवण, शोषण, वापन, मोहन, और उन्मादन। कामदेवके पाँच बाण ये हैं—यमल, घण्टीय, घामनी मन्त्री, नयमत्तिका (चमेली) और नीला यमल।

अरविन्दमनोरथ शूतश्च नवमस्तिवा ।  
नीलोत्पलश्च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायवा ॥  
पञ्चाक्षर—(पञ्चाक्षर) जहाँ चातर्वाण  
मुनि तपस्या करते थे । इनका तप भंग करनेके  
लिये इन्द्रने पाँच अस्त्राएँ भेजी थी ।  
रामायणमें इन्हे भाग्य-भूमि लिखा है ।

परांबुटी—परासे छाई हुई कूटिया या  
भोगटी । वनवासके समय लक्ष्मणने पञ्चवटीने  
रामके लिए बड़ी गुंहर परांबुटी बनाई थी  
जिसकी प्रशंसा वाल्मीकिने की है ।

पताका—भण्डी । भण्डीका यपडा ।

पञ्चराग—ज्ञान रमया 'नाल' नामक  
मणि । इहा आता है कि जब इन्द्रने अशुरोको  
मारते समय उनका रक्त पृथ्वीपर न गिरने  
देनेके लिये पूर्वकी मियुक्त विद्या और जब  
रावणने उरते पूर्व गिर गए तब अशुरोका रक्त  
तिहा देवमें रावण गया नदीमें जा गिरा ।  
उसीसे तीन प्रकारके सालमणिकी उत्पत्ति  
हुई—गुणधि, पुटविन्द, और पचराम । पच-  
रामका रंग कमल-जैसा, बमब जुगुनू-जैसी,  
बोगल सारस या शंशोर-जैसी और देखनेमें  
साल-जैसा होता है ।

पचासन—बाएँ जेके ऊपर दाहिना जया  
पदावर, छातीपर मंगूटा रक्तकर नागिकाके  
पदभागकी देताना पचासन कहलाता है ।  
इस भागकी सामनेसे किसी प्रकारकी कोई  
व्याधि नहीं होती ।

पना—इसे ही भरवत्त कहते हैं । इसका  
रंग हरा जज्जल होता है । कहा जाता है जिस  
समय ईश्वरनिशा पित्त सेवर भाग-रात्र बासुकी  
धने का रू ये उस समय मरुत उसे प्रसन्नकी  
लंगर हुए । उसी समय बासुकीने वह पित्त  
सुराज दाने परतरी पाटिघोरर पंच दिया ।  
घोर बही मरुत-उमणि का पना वन गया ।  
फोमें यह मुगु है कि लंबका जो निय घोषधि

या मन्त्रसे दूर न हो वह इतने दूर ही जाता  
है । पना पारण करनेमें सब पाप क्षय हो जाते  
हैं, वनपाण्यकी वृद्धि, बुद्धिमें विजय, विश्व  
रोगोका नाश होता है ।

पचाक्षर—(देखो पञ्चाक्षर) दाहिणमें पना  
नदीके किनारे घोर अष्टमभूक पर्वतके पास एक  
सालाव है । वर्तमान वनमलय नदी ही पना नदी  
जान पड़ती है और पश्चिमी घाट ही अष्टमभूक  
पर्वत है । यही भनग श्रृपिका प्राथम भी था ।

परमानन्द—निर्दिपत्त्व समाधिके समय  
योगीको त्रिपुटीमें जब परा ज्योतिष्का प्रकाश  
दिलाई पढ़ने लगता है वही परमानन्दकी प्रवत्पा  
है । इसे ब्रह्मानन्द भी कहते हैं ।

परशुराम—जमदग्निके पौरससे रेगुनके  
पुत्र । ये अपने पाँच भाइयोमेंसे सबसे छोटे थे ।  
इन्के चाई थे—रमणानु, मुनेण, यमु और  
विभावगु । चैत्र शुक्ल कृतीमा पुनर्वसु नक्षत्रमें  
इनका जन्म हुआ था । इन्होंने गन्धगाहन पर्वत  
पर तपस्या करने महादेवजीसे मूत्र विद्या सीखी  
और मल्लेश्वरीके परशुविद्या सीखी इसीलिये  
परशुराम कहलाते हैं । एक बार इनकी माता  
रेगुनाने नदीमें विनमरपकी अपनी छीके साथ  
विहार करते देखा और वहाँसे बामोद्भिन्न होकर  
पर छाई । जमदग्निको इसपर शोक हुआ और  
उन्होंने बारी-बारीसे अपने पुत्रोंकी भाजा दी कि  
भाताका वध कर डालो । अन्य चारों भाइयोंने  
तो विताका कहना नहीं माना पर परशुरामने  
पिताकी आज्ञासे भाताका शिर काट डाला ।  
इसपर प्रसन्न होकर जमदग्निने वर मागनेके लिये  
कहा । परशुरामने कहा— मेरी माताको जिला  
दीजिए । उन्हे परमानु दीजिए, मेरे भाइयोंको  
पेनन वर दीजिए और ऐगा बीजिए कि मुझमें  
मेरे सामने कोई न बट । जमदग्निने ऐगा ही वर  
दिया । एक बार हैहय राजा चार्त्वीर्य सह्यायानुं  
जमदग्निने प्राथममें आया । रेगुनाने उसका



स्वागत किया किन्तु यह मदान्ध होकर वृद्धोको उजाड़कर होमघेनुका बड़दटा लेकर चल दिया। परसुरामको ज्ञात हुआ तो उन्होंने तुरन्त आकर कासंबार्थको सहस्रो भुजाएँ काट डाली। इसके बदलेमे कासंबीयोंके कुटुम्बियोंने जयदम्निको मार डाला। इसपर क्रुद्ध होकर परसुरामने क्षत्रियोंके नाशका प्रण किया और सब क्षत्रियोंको मार डाला। जब इस क्रूरताकी निन्दा ब्राह्मणोंने लगी तब वे तपस्याके लिये वनमें चले गए। वहाँ इनके पीन परावक्षुने यह कहकर इन्हें उत्संजित किया कि प्रयातिके यज्ञमे अभी बहुतसे राजा आए थे इसलिये प्राणकी प्रतिज्ञा व्यर्थ हुई है। इसपर उन्होंने पुन क्षत्रियोंका नाश प्रारम्भ किया और यह सब कर चुकनेपर सारी पृथ्वी कश्यपको दानमें दे दी। कश्यपने बचे हुए क्षत्रियोंकी रक्षाके लिये परसुरामसे कहा— यह पृथिवी हमारी हो चुकी, अब मुम जाकर दक्षिणमें रहो। तब वे दक्षिणमें (वर्तमान केरलमें) समुद्रके तटपर घुर्पारक नामक स्थानमें रहने लगे। परसुरामने २१ बार भूम्यीको निक्षत्रिय करके समन्तपञ्चक (५ ताल) रुधिरसे भर दिए और उन्ही तालोंसे तपंच करके अपने पितामह महर्षि ऋषीकका दर्शन पाया था जिसने ऋषीकने परसुरामको क्षत्रिय-व्रम करनेसे रोक दिया। बनारस जिलेमे तुर्तीपारके पास वीराण्डका नामक भागंबपुर है। कहा जाता है कि यहीं परसुरामका अन्ध हुआ था और यहाँसे हीन कोस पश्चिममें रत्नार्द नामक तालमें ही सहस्राजुनका वध हुआ था। इनमें ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों षड ये क्योंकि इनके पिता ब्राह्मण थे और माता क्षत्रिया। इनका कथन था—

अप्रतभ्रतुगेदेदा वृष्ठन सनरप्यनु ।

एद बाह्यमिद क्षाम क्षापादपि चरादपि ॥

पर—१. नाभि-रूपी भूनाधार षडमे

पहले-पहल निकलनेवाली बाणी जो परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरीमेंसे सबसे पहला है। २ ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करानेवाली उपनिषद् विद्या या ब्रह्म विद्या।

परिक्रमा—१ जिसी मूलनीय व्यक्ति, देवमूर्ति या स्थानके चारों ओर दाहिनी ओरसे घूमना। २. देवमन्दिरके चारों ओर घूमनेके लिये बनी हुई नली।

पारिपासर्भक—सूत्रधारके पास रहनेवाला नट। इसे पारिपासिर्भक भी कहते हैं।

परिवह—वह पवन जो प्रातः कालीन वायुपर रहता है, प्राणवायु-मगको बहाता है और शुक्र तारेको घुमाता है। साठ प्रधान पवन ये हैं— भावह, प्रवह, उदह, सम्पह, सुवह, परिवह और परावह।

पलाश—बाक या किंशुक। इसके पत्ते चौड़े, मोस और एक डठलमे तीन लगते हैं। गर्ममे इसमे सात फूल लगते हैं जिसे टेसू कहते हैं, इसे पकानेसे पीला रंग निकलता है। उब पीने रंगसे लोभ होती खसते हैं। इसके पत्ते और जड़में बड़ा गुण होता है।

पवन—( पाँच ) प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। साकने स्थित पवन प्राण, गुदा आदि स्थानीय अपान, भ्रम्य जलादिनी पचानेवाला समान, कण्ठमे उदान और सब नाडियोंमे व्याप्त पवन व्यान है। साक्ष्यके साधामणि नाग, कूर्म, वृक, देवदत्त और धनजय नामक पाँच वायु माने हैं। जगलानेवाले वायुका नाम नाग, धीरे खोजनेवालेका नाम कूर्म, भूल उत्पन्न करनेवालेका नाम वृक, जैभाई उत्पन्न करनेवालेका नाम देवदत्त और शरीर पोषण करनेवाले वायुका धनजय।

पवन—(४६) प्रलयकालमे उनवास पवन।

पश्यन्ती—भूनाधारसे पहले उठा हुआ वह नागरूप वरुण या वायु जो हृदयमें पड़ने जाता है।

पाटन—१. मुलाबका पूतः । २. मुलावी रण ।

पाताल—पृथ्वीके नीचेने सात सोनोमेसे सातवां लोक । ये लोक हैं—अताल, नितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल ( पथ-पुराण ) । पाताल भी सात माने गए हैं—अतल, नितल, बितल, गभस्तिमव, सल, सुतल और पाताल । ( शब्दरत्नावली ) ये पाताल अनेक भवग, उद्यान, ठगवन आदिसे सुशोभित हैं । ये सब स्वर्गलोकसे भी बढकर हैं । इनमें महाभाग और सर्प निवास करते हैं । यहाँ नन्दना और सूर्य प्रकाश देते हैं, गर्मी सर्दी नहीं होती ।

पाण्ड्य—भारतमें धुर दक्षिणका भाग जिसमें वर्तमान तिरुपराकूर, मद्रासका दक्षिणी भाग और कोचीनका राज्य पडता है ।

पातिपात्य—अपने पतिमें शुद्ध निष्ठा रखकर पतिको ही देवता और सर्वस्य माननेका भाव ।

पाद्य—वीर पुलानेके लिये जल ।

पारसिक (पारसीक)—भारतके पश्चिममें पारस व ईरान देशमें निवासी जो पहले अग्नि-पूजक थे और अब मुसलमान हैं ।

पारिजात—समुद्र-मण्डलसे निकला हुआ वृक्ष । यह द्रुपकी मगरी भ्रमरावतीमें लगा दिया गया था जिसे श्रीकृष्णजी सत्यभामाके कहनेसे द्वारिका ले आए ।

पिण्डदान—पितरोंको तुष्ट करनेके लिये दूधमें पके भात, मद्य, शक्कर, तिल और धोका पिण्ड ।

पिनाक—महादेवजीका धनुष जो उन्होंने प्रसन्न होकर जनकको दिया था ।

पिशाच—१ नरका भांस खानेवाले । २ एक हीन देवयोनि । ये अत्यन्त अपवित्र और गन्दे बताने गए हैं ।

पुंसयम—गर्भके तीसरे चहरीमें पुत्र उत्पन्न प्रसव करनेके लिये यह सस्वार कराया जाता है ।

पुच्छततारा—धुन्नकेतु । एक प्रकारका अत्यन्त चमकदार तारा जिसके पीछे सभी पृथ्वी दिखाई देती है । कहा जाता है कि जब यह दिखाई देता है तब पृथ्वीपर कोई न कोई अप-द्रव होता है ।

पुत्रेष्टि—(यज्ञ) पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा से किया हुआ यज्ञ ।

पुत्रबन्धु—२७ नक्षत्रोंमेंसे सातवां नक्षत्र । इसकी साहसिक धनुषके समान है और इसमें पाँच तारे हैं । इसके पहले तीन चरणोंमें जन्म लेनेसे मिथुन राशि, और चौथे चरणमें कर्क राशि होती है । इस नक्षत्रमें जो जन्म लेता है वह बहुत भिन्नवाला, शाक पडनेवाला, रत्नोंसे प्रेम करनेवाला, शाका, प्रवापी और भूस्वामी होता है ।

पुत्र—पयाविके सबसे छोटे पुत्र जिन्होंने अपने पिताको अपना योग्य अर्पित किया था । इन्हींसे पन्द्रहवीं सपिण्यकी उत्पत्ति हुई है ।

पुरोहित—जो हित करनेवाला, वेद स्मृति जाननेवाला, सत्यवादी, पवित्र, ब्राह्मण-कर्म करनेवाला, निर्मल आचरण करनेवाला, आपत्ति दूर करनेवाला सौम्य होता है ।

पुस्तस्य—ब्रह्माके मानस पुत्र और सप्त-पिण्डोंमेंसे एक ऋषि जिनकी गिनती प्रजाप-तियोंमें भी होती है । इन्होंने ब्रह्मासे ऋदि पुराण सुनकर सबका प्रचार पृथ्वीपर किया था । ये विश्वनाके पिता तथा कुबेर और रावणके पितामह थे ।

पुण्यव—कुबेरका विमान, जो इच्छानुसार चलता था । रावणने यह विमान कुबेरसे छीन लिया था किन्तु रावणने रावणवधके उपरान्त कुबेरके लौटा दिया था ।

पुण्ड्रारवर्तक—पुण्ड्र अर्थात् जलाशय, आर्षर्तक अर्थात् समुद्र या नदीमें पड़ी हुई भँवर जिनमें भाप उठनेसे बादल बनते हैं । ज्योतिष

तत्वमे भावतं, सम्बतं, पुष्कर प्रौर द्रोण नामक चार प्रकारके मेथोका उल्लेख किया गया है। इनमेंसे भावतं-मेथ निजंत, सबतं बहुत जलवाला, पुष्कर भयकर जलवाला, प्रौर द्रोण सब प्रकारके धान्योपेो वदानेवाला होता है—

भावतो निजंतो मेथ सम्बर्णेषु बहुदक ।

पुष्करो पुष्क-जलो द्रोण सत्य-प्रपूर्वा ॥

[ कालिदासेने भावर्णं वशके निजंत मेथ प्रौर पुष्कर नामक दुष्कार जल वाले मेथको ही ब्रूत बनाकर भेजा है। क्योंकि दोनों ही प्रजाके लिये निरर्थक हैं। ]

पुण्य—१७ नक्षत्रोंमें आठवाँ नक्षत्र। इनकी आकृति बाणके समान है। सब पुण्य कार्य इसी नक्षत्रमें किए जाते हैं। यह नक्षत्र कर्क राशिमें पठता है। इसमें जन्म लेनेवाला बुद्धिमान, इच्छक, धनधाम्यपुक्त, परम विद्वान्, भास्तिक, पिता-माताका भक्त, अभिनय-बुद्धान् और सम्पन्न होता है। इस नक्षत्रमें गणगन्तान करनेसे करोड़ो कुलीका वृद्धार हो जाता है।

पृथु—त्रेसायुषके सूर्यपत्नी पाँचवें राजा। जब राजा बेभृका नि सन्तान देहान्त हो गया तब ब्राह्मणोंमें इनके दोनो हाथ हिलाए जिससे इनके दाहिने हाथसे पृथु और बाएँसे एव अर्चि नामकी पत्निया हुई जिसका परस्पर विवाह कर दिया गया। जब पृथुका राज्याभिषेक हुआ तब पृथ्वीसे अन्न उत्पन्न होना बन्द होगया। पृथुने भट भ्रमन धनुषपर बाण चढ़ाकर पृथ्वीको दीघाया और कहा—तुम अन्न क्यों नहीं उत्पन्न करती हो। तब पृथ्वीने कहा—ब्रह्माने मुझपर जो ओपधियाँ धादि उत्पन्न की थी उनका लोग दुरुपयोग करते सगे। प्रजापालन और लोकहितका निर्याको ध्यान नहीं है इसी कारण मैं तब ओपधियोंकी धपने उबरने रख दिया है। अब आप राजा हो गए इसलिय बौर्द बरसा, दुहनेन बतन और दुहनवाला सश

कीजिए। मुझे ऐसा समतल बना दीजिए कि सर्पाका बल गिरकर समान रूपसे फैल जाय। तब पृथुने प्रनुको बद्धवा बनाया और अपने हाथपर सब ओपधियाँ बूह ली। इसके पश्चात् अनेक ऋषियोंने अनेक प्रकारसे अनेक वस्तुओंको बद्धवा बना-बनाकर पृथ्वीको दूहा। हिमालयको बद्धवा बनाकर पर्वतोंमें भी अनेक रत्न दुह लिए थे तभीसे पृथ्वीका नाम दुहिया पडा और पृथ्वी धान्यपूर्ण हो गई। यह सब करके पृथुने २६ वर्षभर यज्ञ किए। जब सौवाँ यज्ञ कर रहे थे तब इन्द्र उनका घोडा लेकर भागे। पृथुके पीछा करनेपर इन्द्रने जो अनेक रूप धारण किए उन्हींसे बैन, बीठ, कापालिक आदि मतोंकी सृष्टि हुई। किन्तु पृथुने इन्द्रसे घोडा छीन लिया और इनका नाम विविधारण पडा। इस यज्ञमें पृथुने इन्द्रको मन्त्रद्वारा भस्म करना बाह्य पर ब्रह्माने धाकर मेल करा दिया। यज्ञ समाप्त करके पृथुने सनत्कुमारसे ज्ञान प्राप्त किया।

पौलोमि—(देखी शची)

प्रसव—घोकार। अकारसे विद्यु, उकारसे महेश्वर और अकारसे प्रह्ला। प्रत, मोकार कहनेसे तीनोंका स्वरण होता है। मनुके प्रनुसार वेद पाठके पहले और पीछे प्रसवका उन्धारण कर लेना चाहिए। आकार और अर्च ये दो अन्त शब्दाना अन्त छेदकर बाहर निकले थे इसीसे ये मंगल-जनक बहे जाते हैं। प्रसवके नारण भत्र और क्रियाके सब दोष दूर हो जाते हैं।

प्रतिपदा—प्रत्येक पक्षकी पहली तिथि (प्रतिपद्)। प्रतिपद् तिथिका नाम गदा भी है। प्रतिपद्को ठेक लगावा, बाल बनवाना और कीहटा (बुधाङ) साना निषिद्ध बताया गया है। प्रतिपदाकी जो अन्य सेता है वह मरि

धादिसे सयुक्त, मनोहर कान्तिवाला, प्रतापशाली और कुलवा उदारक होता है ।

**प्रतिष्ठानपुरी**—चन्द्रवशी राजा पुरुरवाकी राजधानी गया-अमुनके समनपर थी जहाँ अब भूंगी है ।

**प्रतिहार (प्रतीहार)**—१. द्वारपाल । २. राज कर्मचारी जो सदा राजाओंके पास रहते थे और सब प्रकारके समाचार गुमाया करते थे । वे प्रायः पठे-लिखे दाह्यरु या राजपरिवारके होते थे ।

**प्रतीहारी**—( देखो प्रतिहार ) एसी प्रतिहारी कहलाती है ।

**प्रत्यय**—वह अक्षर जो शब्दके अन्तमें जोड़ देनेसे शब्दकी विशेषता उत्पन्न करता है । जैसे 'समर्थ' शब्दमें 'ता' लगा देनेसे 'समर्थ' गुणका बोध कराता है ।

**प्रदक्षिणा**—देवभूति या पूज्य पुरुषके बाहिनी ओरसे उक्तके चारो ओर घूमना । देवीकी प्रदक्षिणा एक बार, सूर्यकी सात बार, विनायककी तीन बार, विष्णुकी चार बार और महादेवकी साधी बार करनी चाहिए । कालिका पुराणमें लिखा है कि दाहिना हाथ फेला और फिर झुकाकर देवताकी दाहिनी ओर करके एक या तीन बार उनकी परिक्रमा की जाती है ।

**प्रद्योत**—उज्जमिनीने राजा जो विक्रमकी शताब्दीसे लगभग ६०० वर्ष पूर्व राज्य करते थे । इनका नाम शण्ड-प्रद्योत भी है । इन्हींके कन्या वासुदेवताका हरण बत्सरज उदयने किया था ।

**प्रमथ**—१ महादेवजीके मुखकी फेनसे बनीस कठोर प्रमथोनी सृष्टि हुई है । २ महादेवजीके श्लेष्म-बूद और विहारमें सहायता देनेवाले उनके गण । ये सब विचित्र धामरसोसे मलकृत, जवाबूट और अर्धचन्द्र चरण किए हुए उज्ज्वे वृक्षपर चढ़े हुए उमाके समान मुन्दरी

कामिनियोको साथ लेकर पार्वती और महादेवके पीछे पीछे उनके विहारमें साथ रहते हैं और अब महादेव-पार्वतीजी एवान्त विहार करते हैं तब ये द्वारकी रक्षा करते हैं । ३ शिवके पार्षद ओ हास्यरसके शभिष्ठाता देवता कहलाते हैं ।

**प्रमथ-वन**—रनिवासकी कुलवारी ।

**प्रमोह-वन**—पानन्द या विहार करनेका उपवन ।

**प्रलय**—१. सम्पूर्ण सृष्टिका विनाश । यह चार प्रकारके होता है—दित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और भात्यन्तिक—

दित्य नैमित्तिक सब प्राकृतात्मनिको तथा ।

दित्य सकीर्यते भाष्ता मुनिभि प्रति क्षणर ॥

लोकमें जो बराबर क्षय हुआ करता है वह दित्य प्रलय है । कल्पके अन्तमें तीनों लोकोंका जो क्षय होता है वह नैमित्तिक या ब्राह्म प्रलय कहलाता है । जिस समय प्रकृतिके महाबलि विशेष तत्त्व बिलीन हो जाते हैं वह प्राकृतिक प्रलय कहलाता है । ज्ञानकी पूर्णविस्था प्राप्त होनेपर ब्रह्म या चित्तमें लीन हो जाना भात्यन्तिक प्रलय है ।

**प्रवेशक**—बाटकमें यह स्थल जहाँ दो धकोंके बीचकी घटनाका परिचय कोई पात्र अपने वार्तालाप द्वारा सूचित करता है ।

**प्रवाल**—१ भूंगा । २. पत्थकी मोपलें ।

**प्रान्योत्तिथि**—प्रधान देश जो भारतवर्षमें पूर्वकी ओर अवस्थित है ।

**प्राणायाम**—नाबन्धे प्राणवायुको भीतर खीचना, (पूरक) रोचना (कुम्भक) और बाहर निवाल देना (रेचन) प्राणायाम कहलाता है । इसका नियम यह है—यदि ३२ गिनते हुए साँस भीतर खींची जाय तो ६४ तक गिनकर उसे रोक रचना चाहिए और १६ गिनकर उसे धीरे-धीरे छोटना चाहिए । साँस छोड़ते हुए या छोड़ते हुए

शीघ्रता नहीं करनी चाहिए अथवा बड़ी हानि होती है और अनेक रोग हो जाते हैं ।

प्रियमु—एक प्रकारकी सुवन्निव जड़ी, जिसे सस्कृतमें फलिनी और पीता भी कहते हैं । यह भारतके पश्चिमी तटके देशोंमें और सिपल, सिगापुर, जावा, सुमात्रा, मलायामें होता है । इसका फल पीठा होता है ।

प्रियाल—इसे सस्कृतमें प्रसट्ट । स्नेहबीज तापस प्रिय भी कहते हैं । शोषण बीज रिरीजी कहलाता है । इसका वृक्ष विषमों जगलोमें होता है । इसमेंसे कड़िया घोंद भी निकलता है ।

व

सकुल—मालसिरीका पेट । इसके फूलोंकी सुगन्धि बड़ी मीठी होती है । यह भारतमें प्रायः सभी स्थानोंमें पाया जाता है । इसके साल सबसे देसमी और सूखी मण्डे री जाते हैं । यह गर्ममें फूलता है और इसमें फूल निरंतर भङ्गते रहते हैं । इसमें फल लपटा है जो पकनेपर स्वादिष्ट भी लगता है ।

वदवानल एक बार महर्षि शीर्ष अयो-निव पुत्रकी इच्छासे धपना पक्षस्थल मयने लगे । इससे जो श्वाभामय पुरुष उत्पन्न हुआ उसने पितासे प्रार्थनाकी कि मैं भूलते व्याकुल हूँ, मुझे जगद् नक्षत्र करनेकी आज्ञा मिले । ब्रह्माजी यह मुनवर शीर्षके पास गए और उनसे कहा कि अपने पुत्रको संभालिए । शीर्षने कहा—भापही कुछ उपाय निकालिए । ब्रह्मा बोले—समुद्रमें इन्द्रपत्नी भरवाके मुखमें इसका पास होगा और समुद्रके जलरूपी हविषे इसकी पूल मिटेगी और यह वदवानल कहलायेगा । गृष्टिने धर्ममें यही वदवानल देवामुरींको भक्षण कर जायगा ।

वदरिकाधन—हिमालय पर्वतपर कण्ठाधम और नन्द पर्वतने बीच वैष्णव तीर्थ है जहाँ नर-

नारायण प्रज्जने तपस्या की थी और श्रीकृष्ण भी उनके साथ थे । (देखो नर-नारायण)

बन्धुजीए—(बन्धुक) दुपहरियाका फूल । दुपहरियाका पौधा । यह फूल चार प्रकारका होता है—नीला, श्वेत, पीला और लाल । छोटी कटोरीके आकारका यह अत्यन्त लाम फूल लगभग ६ से १० इंच तक लम्बी शाखाओंमें लगता है, पत्ते छोटे-छोटे और मोमल होते हैं, इसे सस्कृतमें रक्त जीवन, बन्धुक, बन्धुल, मध्वन्दिन, हरिप्रिय रक्तपुष्प और मोच्छपुष्प भी कहते हैं ।

बन्धुक—(बेला बन्धुबीज)

बलराम—श्रीकृष्णजीके षडे भाई जो रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । वसुदेवकी पत्नी रोहिणी योहुलमें रहती थी । जब देवकीको कारावासमें सातवाँ गर्भ हुआ तब महाभामने कसके भयसे यह गर्भ रोहिणीके उदरमें पहुँचा दिया । इसी गर्भके सकर्णके कारण इनका नाम सकर्ण भी पडा । इनका नाम बलदेव था । 'यत्नेन, दीव्यसीति बलदेव ।' शेषनामके अर्थसे जन्म लेनेके कारण शेषनामकार, हल पाण्य करनेके कारण हली, नीला पक्ष पहननेके कारण चितियास भी कहते हैं । इनकी पत्नीका नाम देवती था । गर्भ मुनिने इनका नामकरण किया था और सान्दीपनि मुनि इनके गुरु थे । यदुकुल स्वस हो जानेपर जब इन्होंने योगासन साधा तब इनके शरीरमेंसे सहस्र लाल फलोंवाला बटासा श्वेत शर्ष निकलकर समुद्रमें बला गया । कुरुक्षत्र युद्धोपन इनका शिष्य था । इनका ध्यान इस प्रकार विधा जाता है—

बलदेव दिवाहृन्व दशपुन्देन्दु-सन्निभम् ।

नामे ह्यनुपचर मुसल ददाम्ये वरे ॥

हस्तावीच नीलपक्ष्म तैलावत स्मरेत्परम् ।

बला—(विद्या) यह विद्या ब्रह्मकन्या मानी जाती है । विद्यामिथने उमरको यह विद्या

सिपाई की जितने प्रभावसे युद्धमें योद्धाको भ्रम प्यास नहीं लगती थी। वना और प्रतिबला विद्या समस्त ज्ञानकी मातृस्वरूपिणी है। (देखो प्रतिबला)।

बलि—१ देवता, पितर, यज्ञ, भूत-प्रेत धार्मिके निमित्त जिनके विशेष स्थानपर किसी विशेष कामनासे जो पढ़ाया जाता है उसे काम्य-बलि कहते हैं। २ किसी देवताके लिये किसी विशेष उद्देश्यके किसी जोषका यज्ञ किया जाता है उसे भी बलि कहते हैं। दक्षिणमार्गी लोग भूमिपाठ धादि पाठकर बलि चढ़ा देते हैं। ३ ब्रह्माण्डके पीन, विरोचनके पुत्र तथा पातालके राजा बलि जिन्हें ब्रह्मने लिये स्वयं विष्णु भगवान्के यामत रूप धारण किया था। बलिनै भस्वनेत्र करके जब बहुत दान देना प्रारम्भ किया तब विष्णु भगवान् यामनरूप धारण करके वहाँ आए और उन्होंने तीन पैर भूमि माँगी। पुष्पाचार्य तस्मान् पदुपान गण और बलिको दान देनेसे रोका विन्दु बलिनै कहा—मैं यज्ञ के चुका हूँ। मैं भस्वय दान दूँगा। तब पुष्पाचार्यने धाप दिया कि मेरे बचनोकी भवजा करोके कारण तू श्रीभद्र हो जा। किन्तु बलिनै धमिबलित होकर विष्णुकी पूजा की और कहा—भूमि माप लीजिए। विष्णु भगवान् धरने सगे और उन्होंने एक परसे समस्त भूमि, शरीरको अनाद्य, दोनों भुजाओंके दिशाओंको घूम दूसरे परसे स्वयं नाप किया—तीसरे परके लिये कोई स्थान नहीं मिला। तब विष्णुने कहा—तुम्हारे बचन पूर्ण गही हुए इसलिए तुम नरक जानेकी तैयारी करो। बलि बोले—मैं भस्वय नहीं बोलता। धरने स्वयं बपट रूप धारण किया है। घत, तीसरा चरण मेरे मातङ्गपर रख लीजिए। विष्णु चडे प्रखल हुए और उन्होंने कहा—मैं तुम्हें यह स्थान दूँगा जो देवताओंको भी अस्वाप्य है। तुम विश्वकर्मा द्वारा बनाए हुए गुप्ततमे जानर

रहो, मैं श्रीगुप्तकी गदासे तुम्हारी रक्षा करूँगा और तभीसे विष्णु भगवान् बलिके यहाँ द्वारपाल बनकर रहते हैं।

बाज—भटमैले रक्कन काली पीठ और जाल भाँसो-यान्ना चीससे छोटा एक चिकारी पक्षी जो आकाशमें उठती हुई चिड़ियोंके झपटकर पकड़ लेता है। पक्षियोंका शिकार करनेवाले इसे पानते हैं। सत्कृतमें इसे श्येन कहते हैं।

बारहसिया—हरिणकी जातिका एक पशु जो तीन-चार फुट ऊँचा और ७-८ फुट लम्बा होता है। नर-हरिणकी सींगोंने कई धाराएँ निकलती हैं इसीसे बारहसिया कहलाते हैं। इन सींगोंपर कोयल बमझ रहता है जो प्रति वर्ष फलजुन या चैत्रमें उतरता है और सींगोंसे एक नई धारा निकल जाती है जो बवार, कार्तिक तक पूरे बढ़ जाती है। नादाके सींग गही होते। वे चैत्र वैशाखमें बच्चा देती हैं।

बालविल्य (श्ववि)—ब्रह्मणे रोमरूपसे उत्पन्न होनेवाले साठ सप्त स्रुति जो बोलबोलमें अँगूठने बराबर हैं। (महानारत विष्णु पुराण) के सब बड़े तपस्वी और ऊर्ध्वरेता हैं और ब्रह्मणी भार्या सन्तानिके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। ये सूर्यकी भार्या दिखाने चलते हैं।

बालि—मेर पर्वतपर योगाम्यास करते समय ब्रह्महारी धीमते सहस्र भ्रातृकी बृद्ध उपजनेसे अक्षरान नामका बानर उत्पन्न हुआ जिसे ब्रह्मने सुमेरु पर्वतपर फल-फूल खाने और अन्न पात रहनेको कहा। एक दिन यह बानर प्यासके मारे सुमेरुके सरोवरके धरनी धाम्य देखकर सोचने लग्य—यह मेरा शत्रु है। यह भट पानीमें डूब पडा और निकलनेपर सुन्दर स्त्री बन गया। दन्द्र और सूर्य उसपर मोहित हो गए। इन्ने जवने भस्वयपर और सूर्यने उसकी श्रीदापर अपना वीर्य छोडा। इसी

इन्द्रने भीमंते बालिका जन्म हुआ और सुपेने भीमंते मुदीय । कुछ दिनमें वह फिर यानर हो गया और दोनो पुत्रोको लेकर बहाने पास पहुँचा । प्रजाने उन दोनो पुत्रोको विविध्यामे राज्य बननेकी आज्ञा दी जहाँ विदवाविप्रने एक सुन्दर नगरी बना गयी थी । अपनी गनी ताराने माय बालि और प्रपरी को रोमाने माय मुदीय वहाँ रहने लगे । एक दिन वहाँ एक देव्य माया । इनमे लक्ष्मी हुआ बालि पर्वतकी पुत्राने पुत्र गया । जब बहुत दिन बीत जानेपर भी बालि नहीं लौटा और उस सोहमेमे तबकी धार निबन्धी तब मुदीयने गमना नि बालि पारा गया । यह पुत्रके द्वारा एक पत्थर रणकर विविध्याका राजा हो गया और उगने ताराने विचार कर दिया । जब बालि लौटा तो उसी राज्य भी छोड़ दिया और अपनी पत्नी के साथ-साथ मुदीयकी पत्नी भी छोड़ गी । इसके पारे मुदीय तनने धाधममे जाकर गृही गया । उसी बीच एक बार रावण जमे जगमेंके विदे उगने तब पहुँचा एक रावणकी बानमे राजा बालि मर्या करता रहा । इसी समय एक दिन प्रयाग जाकर शायल भाग निकला । भीमाकी हँसने हुए जब तब वहाँ पहुँचे तब उन्होंने मुदीयके भिन्नता की और बालिका दक्षक बर्तावा राज्य मुदीयको दे दिया । बालिका पुत्र प्रणद भी बड़ा दासानी था । उनके माता-पिता मुद्रमे राजकी बनी गतान्ता की ।

विष्णु—नीकी पुत्रि-सोके पत्नी श्री-बाने एकबार काहुण्ड को बपनेके समय बरने है । सुत्र ।

विष्णु—दुन्दुभ नामका एक जो पत्ने-दा लता लता हो जाता है । इसकी उरमा दुन्दुभिको लोभने दी जाती है ।

भीमावृत्ती—दरान्द वृत्तीकी संवसदे

निवत्तपर रोपनेवासा एक कीडा जिसका ऊपर माय गहरे जाल रमके मलमली रोपेसे ढँका होता है । इसे इन्द्रबधु, भीरवधूटी और राम की मुद्रिया भी कहते हैं ।

बुध—जबपहले चौथा ग्रह । कहा जाता है कि चन्द्रमाने देवगुरु बृहस्पतिनी पत्नी ताराको हर किया था । प्रजा तथा देवविपोजने चन्द्रको बहुत समझाया पर वह नहीं माना । देवकोके गुह पुत्र भी चन्द्रने सहायक हुए और उनके कारण सभी प्रधान दानव भी चन्द्रके पक्षमे आ गए । बृहस्पति और चन्द्रमे बड़ा युद्ध हुआ किन्तु प्रजाने बीच-बचाव करनेसे बृहस्पतिको तारा दिया दी गई । किन्तु वह गर्भिली थी । बृहस्पतिने कहा कि हमारे क्षेत्रमे दूसरेपा पुत्र पारण करना तुम्हें उचित नहीं है । यह गुनवर ताराने मूखने पूजेमे वह गर्भ गिरा दिया जिससे अत्यन्त तेजस्वी बुध उत्पन्न हुए । जब देवताओंने ताराके पुत्र कि यह मान विचरनी है तब ताराने भजिता होकर कहा—पत्र की ! तब प्रमन्न होकर चन्द्रने बुधमे कहा—तू बुद्धिमान है इसलिये तेरा नाम बुध है । इस कहना रम दूबके सपान गहरा हुए है । रवि और बुध इतने भिन्न हैं, पत्र मानु है । इसकी धारुनि अनुपने गमान है । यह २० दिनमे एक गतिका भोग करता है । बुधके नवाममे उगना होनेवाला वायव्य सूर्य, धीर, शीघ्रता, दयानु, सारमेरी, प्रमत्त, अनुद, बुद्ध्यालक, धनेव केसपानी तथा गतान्द होता है । १०वें धममे उत्पन्न अनुप्य प्राक्क सुगी, दीर्घानु और बुद्धिमान् होता है । १३वें धममे उगम अनुप्य धरान्द ऐन्द्रवंजनी, सुगी तथा धनी होता है । कुछ सोपोंका मत है कि बुधकी मन्त्राका नाम मोहृत्ती है ।

बध—पत्र, रज और तम गुणोंके पने, विष्णु, विष्णु-बन्ध, चन्द्र-बन्धन बन्ध या

ज्ञानमय परमात्मा जो सम्पूर्ण सृष्टिवा कारण है वही केवल सत्य है ।

ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचर्य, गार्हपत्य, वानप्रस्थ संन्यास, इन चार आश्रमोंमेंसे पहला आश्रम । पहले २५ वर्ष तब ब्रह्मचर्य धारण करने शुद्धमुख्य विद्याध्ययन करते थे । अष्टाव मनुष्यसे बचता ही इतनी विनोपता है । आठ मनुष्य से है—भरत, कीर्ति, वेत्ति, प्रेशण, गुह्यभाषण, सबल, अघ्नयताय, त्रियानिर्गति ।

ब्रह्मदेव—ब्राह्मणकी तपस्वात्मा देव ।

ब्रह्मदि—ब्राह्मण शक्ति ।

ब्रह्मवर्त—बुद्ध, मत्स्य, वांधाव, ब्रह्मवर्त देश, सरस्वती और इण्डोस नदियोंके बीचका देश । वैयनित्त होनेके कारण अत्यन्त पवित्र माना जाता था और यहीनी ब्राह्मण धादि जातिपोक आशरण ही सदाचार बहलाता था ।

ब्रह्मण—एक विशेष प्रकारका सत्य अस्ति श्रेष्ठ अस्ति जो मन्त्रसे पवित्र करने पताया जाता था ।

अ

अभोरप—अधुमानके पीछे और दिवोपके पुत्र । पवित्रके सागसे एक सगरके सौठ सहस्र पुत्र भ्रम हो गए तब उनका अडार करनेके लिये गंगाकी ये पृथ्वीपर लाए, इसीलिये यथाका नाम आभोरपी भी है ।

अब्रह्मती—दुर्गाकी एक विशेष मूर्ति जो शीघ्र हावमाती है, जिन्हींमें महिषासुरकी मार कर जो सदा अपने अरण्यपर रहकर पूजित होनेका ब्रह्मदान दिया था—(वाग्निपुत्रण)

अब्रह्म—सत्रविहासन या बहुविहासन विजय बंदापर सत्रा या देवताका अभिषेक किया जाता है ।

अभरत धारण—अभरतके धर्मों जो मंगलात्मक आशीर्वाद या कामलाय-बचन होगा है ।

आभोरपी—(दिवो दगा और अवीर्य) ।

अभ्र—एक नदी ।

भुक्तवन्ध—सुखयोगे पहला जानेवाला विद्यायुक्त या 'अनन्त' नामक भाभूषण । यह आभूषण श्री और पुरप दोनों पहनते हैं । इसे वाङ्मन्द या अगद भी कहते हैं ।

भुवन—ब्रह्मण्य स्य महः अग सप और सत्य ये सात स्वर्गलोक और अतल, मुदल, वितल, अश्विस्तम्ब, महाजल, रसावध, पाताल । ये पाताल लोक हैं ।

भूत—भरनेके पश्चात् मनुष्यका आत्मा प्रेत-योगिमें जाकर अनेक प्रकारके उपद्रव करता है और लोकोको बह पड़ता है । उसकी पीडन इस प्रकार है । श्वेत अथवाजिपोक मूलको आकलने छोड़ हुए पानीमें पीसकर जमीन नस्य सेनेसे भूतका उपद्रव आग हो जाता है । मिर्चके साथ अथवा पुष्पका नस्य भी भूतके उपद्रवको छान्त करता है ।

भृगु—१ भगवान् रत्नने बारखीमूर्ति पारण करके एक यज्ञका अनुष्ठान किया—इस यज्ञको देखनेके लिये तप, यज्ञ, दीक्षा, व्रत, विषपति, वैश्वान्या तथा देवपत्नी आई थी । अज्ञा जग समय आहुति कर रहे थे । आहणी देवता ब्रह्मका वीर्य स्थान हो गया । सूर्यने उन वीर्यको अग्निमें लीन दिया । ब्रह्मका वीर्य अग्निमें आहुति होने ही उसकी शक्तसे भृगु, तपून् अथारने अगिदा, निर्धूम अथारने अगिदी जगति हुई । महादेवकीने ब्रह्म—यज्ञका अभिषेकता में है । ये तीनों पुत्र मेरे हैं । यह सुकर अग्निने ब्रह्म कि ये मेरे अगते उत्पन्न हुए हैं अग मेरे पुत्र हैं । ब्रह्मने ब्रह्म—मेरे वीर्यमें इनकी जगति हुई अत, ये मेरे पुत्र हैं । तब सब देवोंने मितार एक अगने का इस प्रकार अगिदा किया । भृगु महादेवको, अगिदा अग्निकी और ब्रह्म ब्रह्मकी दे दिए गए । (भागवत च= पूर्व) २. ये ब्रह्मके मान्य पुत्र और दम प्रजापतियोंमेंसे एक हैं । दक्षकी बन्धा



रुपातिके साथ इनका विवाह हुआ। इनके गर्भसे लक्ष्मी नामकी बच्ची तथा घाटा और विधाता नामके दो पुत्र हुए। महारामा भेरुकी प्रायति और निपति नामकी दो बन्ध्याओंके साथ इन दोनों पुत्रोंका विवाह हुआ। धीरे-धीरे इनका वध विस्तृत होकर भागवत नामसे प्रसिद्ध हुआ। श्रुगु धनुर्विद्याके प्रवर्तक भी थे।

**मृद्ध**—१. भृङ्गी, घजनहारी या विली नामका कीड़ा। यह धर्म कीड़ोंको पकड़कर उनके सामने गूँथता हुआ उन्हें भी अपने समान बना लेता है। २. इन्द्र आदि देवताओंके सारकासुरके बधके लिये महादेवों उमाके गर्भ और महादेवजीके भौरससे एक पुत्रको प्रार्थना की। महादेवजीने उसे स्वीकार करके उमाके साथ महासुरत क्रीडा प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार १२ वर्ष बीत जानेपर सब देवता घबरा उठे। भरतन्व भयभीत होकर वे महादेवके पास गए और कहा कि इस महासुरत क्रीडासे उमाके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होगा वह हम लोगोंके लिये सारकासुरसे भी बड़कर ब्यावहृ होगा। तब महामै इन्द्र और देवताओंके साथ महादेवजीके पास जाकर प्रार्थना की। महादेवजीने महासुरत क्रीडा रत्यागकर इन देवोंके घानेका कारण पूछा। देवताभंति कहा—हे महाराज। आपकी इस महासुरत क्रीडासे तीनों लोक बाँप गए हैं। अतः, आप महामंथुन रत्यागकर रति मानना अवलम्बन कीजिए। महादेवजीने कहा—मह सब मैं प्राण ही लोगोंके लिये कर रहा हूँ फिर भी प्राण लोगोंके बटनेसे उस महामंथुनका परिचाय कर दूँगा। प्राण लोग इस महामंथुन-प्रभूत तेजको भारणकर गतनेवाले एवं देवतानोंका देग दीजिए। सब देवोंने अग्निसे तैयार किया और महादेवजीने अग्निमें घपना तेज छोड़ा। अग्निमें छोड़े गए महादेवजीने तेजमेंसे दा परमाणु के बराबर तत्र परंतके विभरपर

गिरा। उससे दो पुत्र उत्पन्न हुए। उसमेंसे एक भौरके समान कृष्ण वर्णका था। अतः, उसका नाम ब्रह्माने भृङ्गी रखा और दूसरा मले हुए अजन जैसा काला या अत, उसका नाम महाकाल पड़ा। महादेवजीने उन दोनोंका पालन प्रमय आदि पणों द्वारा कराया और अणरुति विधेय यज्ञसे उनका पालन किया। बादमें महादेवजीने इन दोनोंको गणाधिपति बनाकर द्वारपर नियुक्त कर दिया।

—(कालिकापुराण)

**भेद**—ताम, शाम, इण्ड और भेद नामके शत्रुको बध करनेके चार उपायोंमेंसे तीसरा, जिस उपायके द्वारा शत्रु-बलमेंसे किसीको बहकाकर अपने दलमें मिला लिया जाय।

**भोजपत्र**—एक प्रकारके मछोले प्रकारके वृक्षकी छाल, जो हिमालयपर बहुत होता है।

म

**मगध**—बनारससे पूर्वका प्रदेश। वर्तमान बिहारकी मगध है। तीर्थ-यात्राके प्रतिरिक्त यहाँ शाना निषिद्ध है।

**मगरमच्छ**—१. मगर या पडियाल नामका प्रसिद्ध जलजन्तु। (दे० पडियाल) २ एक बड़ी मछली।

**मगलसूत्र**—यह तामा जो किसी शुभ अवसर पर देवताके प्रसादके रूपमें हाथमें बाँधा जाता है।

**मगलावरण**—जो पीठ-पाठ किसी शुभ-कार्यके पहले किया जाता है। ग्रन्थ लिखनेके पहले इतोलिये मगल किया जाता है कि उसकी निविष्ट समाप्ति हो। "धर्मातिकामो मगल-मागरेदिति श्रुतिः।" कार्यारम्भ, कार्यमप्य, कार्यसमाप्ति, इन तीनोंमें भी मगल हो शकता है फिर भी नार्थरम्भमें मगल करना शोभन है।

**मञ्जरी**—१. छोटे पीपे या लता आदिकी बर्द निचली हुई बनिर्वा तथा गोपलें। २. बुद्ध

विशेष वृद्धोंमें एक सीकेमें सगे हुए बहुतेरे छोटे-छोटे फूलोंका समूह ।

मरिचबन्ध—हाथकी कलाईमें जो धातुपुस पड़ना जाता है उसे मरिचबन्ध कहते हैं ।

मंडल—चन्द्र-सूर्यके चारों ओर पड़नेवाले क्षेत्र ।

मंसंग—( ऋषि )—एक ऋषि जो ब्राह्मण स्त्रीके गर्भसे और मापितके वीर्यसे उत्पन्न हुए थे । ब्राह्मणने अपना ही प्रीरस समझकर इनका जन्मजात उत्कार किया । पिताके कहनेपर एक दिन वे यज्ञीय सामान लेनेके लिये गधेपर चढ़कर गए । इधर-उधर चलनेके कारण वन गधेको इन्होंने खूब पीटा । उस गधेकी माता भीने उसकी चोट देखकर कहा कि यह ब्राह्मणका लड़का नहीं है यह धूर्तका लड़का है क्योंकि ब्राह्मण इतना निर्दयी नहीं होता । यह सुनकर इन्हे बड़ा पश्चात्ताप हुआ । उसी दिनसे वे ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेके लिये तपस्या करने लगे । इन्होंने बार-बार स्नान करवान देनेको कहा पर इन्होंने ब्राह्मण्यके अनिश्चित दूसरा वर नहीं माँगा । इन्होंने यह वर देनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की । अन्तमें इन्होंने यह वर माँगा कि मुझे ऐसा वस्त्र बना दोजिसे जिसकी सभी पर्यांवाले पूजा करे । इन्होंने यही वर दिया और वे छन्दोदेवके नामसे प्रसिद्ध हुए ।

मन्—हाथियोंके मध्यस्थलसे बहनेवाला रस ।

मदार—मदार या भाक, इसका बीजा बालुकात्म्य प्रदेशमें प्राय पाया जाता है । घरसातमें इसकी पत्तियाँ भड़ जाती हैं । इसका दूसरा नाम भकवद् या भाक भी है । महादेवजीपर इसका फल पढ़ाया जाता है ।

मध्यमा—पानी में प्रभुत्वियोंके बीचवाली उँगली ।

मध्यम लय—गीतकी यह लय जो न प्रति तीव्र हो न प्रति मन्द ।

मध्यलोक—पृथ्वी । यह स्वर्ग और पातालके बीचमें पड़ती है इसी से इसे मध्यलोक कहते हैं ।

मन-शिक्षा—(दिलो मैनसिल)

मनु—ब्रह्माके पुत्र और मानव जातिके प्रादि पुरुष, जो प्रजापति और धर्मशास्त्र-वक्ता होते हैं । प्रत्येक कल्पमें १४ मनु होते हैं—स्वामनुष्य, रवारीषिय, उत्तम, तागस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्ष सावर्णि, ब्रह्म-सावर्णि, पर्य-सावर्णि, छत्र-सावर्णि, देव-सावर्णि और इन्द्र-सावर्णि । इस समय वैवस्वत मनुका पुत्र पन्न रहा है । वे सावरे मनु विवस्वादेके पुत्र आदित्य हैं । इनके पुत्र दक्षवाक्य, नभग, घृष्टसर्वाति, नरिष्यन्त, गम्भाग, विष्ट, कल्प, पूषण और वसुमान् हैं ।

मन्त्र—मन्त्र्यते गुप्त परिभाष्यते इति मन्त्रः । ऐसे वचन या शब्दसमूह जिनके लप या उच्चारणसे कोई कार्य सम्पन्न किया जाय । मन्त्र केवल अधिकारीको ही शिक्षाया जाता है अतः इसे मन्त्र कहते हैं । मन्त्र, तन्त्र और यन्त्रमें त्र्यसे अधिक शक्तिशाली मन्त्र ही माना जाता है । प्राह्मिक उत्सवमें शिक्षा है । "मन्नात् त्रायते यस्मात्तस्मान्मन्त्र प्रकीर्तितः ॥" जिसके अर्थमें रखा हो उसे मन्त्र कहते हैं । प्रत्येक व्यक्तिको मन्त्रसे शिक्षित होना चाहिए । अर्दीशितके हाथका अन्न विद्याके समान और जल मूत्रके समान है और उनका किया हुआ सब कार्य निष्फल समझा जाता है ।

मदरारस—यह पर्वत जिसे कच्छपकी पीठ पर खड़ा करके शीरसावर मया गया था । यह पर्वत ११ सहस्र योजन नीचे गड़ा हुआ था । विष्णुके कहनेपर वासुकि इसे उखाड़ लाए और रागुद्र मयनेने समय मयानो बनाकर खड़ा किया ।

मन्वाग्निनी—१ नदी जो चित्रवूटके पास होकर बहती है। यह चित्रवूट पर्वतसे ही निकली है। २ स्वर्गका इसकी लम्बाई १० सहस्र योजन और चौड़ाई १ योजन है। इसका जल दूधके समान उजला और ऊँची सहरोबाला है। यह धारा बंधुपुच्छसे होती हुई स्वर्गलोक तक चली गई है।

माहार—एक देवगुप्त विशेष। यह वृक्ष बहुत जल्दी बजता है। इसका साकार मध्यम होता है। इसने अपनेके समय फाँटे रहते हैं। बड़े हो जानेपर फाँटे भङ्ग जाते हैं। यह वृक्ष भारतमें पानपी लता तथा मिर्च वृक्षके पारो और केरतने वाम प्राता है। यह पित्तनाशक है। इसने बाललते धाँवके सभी प्रकारके रोग नष्ट हो जाते हैं। इसका रस कृमिनाशक तथा रेचक है तथा गान, शनिके मसूडेकी पीठामें लाभ पहुँचाता है।

मरकत—मणि विदेश। (दली पत्ता)

मरीचिका—भृगुगुप्ता। जल या जलकी सहरोकी यह मिथ्या प्रतीति जो कभी-कभी मरु-भूमिमें बड़ी धूप पडनेके समय होती है। मरीचि-विर्ममि जप यागुरी तहाना धनरव उष्णताके कारण प्रसमान होता है तब पृथ्वीके निकटका वायु क्षिप्य गर्मिसे ऊपर उठना चाहता है, परन्तु ऊपरवाली ठह उगे उठने नहीं देती। इसी कारण उग वायुरी सहरो पृथ्वीके समानान्तर घटन लगती है। यही सहरो दूरसे देगनपर जनकी धारा भी दिसाई पडने लगती है। मृग-दमने प्राय गोमम सागर उगे पीनेके लिये दीयते हैं। इसीसे इमे मृगगुप्ता, भृगुजन और मृग-मरीचिकर भी कहने हैं।

मलयवायु—दक्षिण दिशाका वायु। दक्षिण-दिशि गिरिसे चन्दन वृक्षाी मुख्यतः यह वायु बहता है।

मलयबर्दुर—पश्चिमी घाटकी दो पहाडियाँ जो कानेरीके दक्षिणमें पडती हैं।

मससाचल—मलय पर्वत।

मस्तिका—वेत्ता। जिस समय वामदेव महादेवजीका ध्यान तोडनेके लिये आए तो महा-देवजीने अपने तृतीय नेत्रसे उसे जला ढाला। कामदेवके भस्म होते ही उसका धनुषबाण पृथ्वीपर गिरकर पाँच भागमें बँट गया। इसी धनुषकी भूठसे मस्तिकन भाँडि वृक्षोकी उत्पत्ति हुई। (शामनपुराण ६, ४०)

महाकाल—उज्जयिनी नगरीमें विप्राके पूर्व और पिशाचमुखेस्वरघाटके दक्षिणसे महाकाल या विशाल मन्दिर है। महाकालके दर्शनसे करोडो मन्वमेव यज्ञा फल होता है।

महानाल ततो गन्धर्व नियतो निमताशन।  
चोडितीर्थमुपस्पृश्य हयमेघफल लभेत् ॥  
शालिवादेवीकी पूजाके पश्चात् दाहिनी ओर महानालकी पूजाका विशेष माहात्म्य है। श्याम-पुबंभ महाकायका मन्त्र अपनेसे सब प्रकारकी सिद्धि होती है—मन्त्र है—हूँ क्षी का रा हा वा को महाकाल भैरव सर्वविघ्नात् नाशाय नाशाय ह्रीं षट् स्वाहा—

महाकाल यजेद् यत्नस्तु परवादेवी प्रपूजयेत्।

महामोक्षी—एक नदीका नाम।

महामणि—एक मूल्यवान् रत्न।

महेन्द्र—एक पर्वत। यह सात श्रेण्डे पर्वतोंमें गिना जाता है।

हनुमानजी इसी पर्वतको सौपनर लका गए थे। दक्षिणमें तिन्नेपल्लोके समीप इस पर्वत प्राठमें निचैनगुडो नगर गोपुरयुक्त सुन्दर मन्दिरमें गोविन्द है तथा पश्चिममें विश्वराकर और मन्दन मिानरी घोडास्टीका प्राचीन शाराग नगर-शोधित स्थल है। पर्वतपर पर्यटकी गेतीके लिये जयसतन बहुत भाग बाट दिया गया है।

मातलि—इन्द्रका सारथी ।

माताएँ—[सात]

शाही गार्हपत्यरी चैत्री रोत्री वारहिकी तथा ।  
बावेटी चंद्र श्रीमारी, बाउर सम्प्रकीर्तिता ।  
ये ही सात माताएँ है ।

माथथी—पुण्यलता । यह चमेलीका एक भेद है । इसमें घबड़ो गन्ध देवोवाले पुष्प होते हैं ।

मानसरोवर—हिमालयके उत्तरमें पंचाश पर्वतके दक्षिण भागमें राजन नामक पर्वतके निकट वैदुत प्रदेशमें मानसरोवर पड़ता है । इसीसे सरयू गरी निकली है । इसके किनारे वैभाज नामका उपवन है । यही प्रह्लापाव नामका राक्षस रहता है । सिन्धु, पातहु, ब्रह्मपुत्र नदियाँ यहींसे निकलती हैं । ब्रह्ममें ३० योजन विस्तृत इस तरोवरकी स्थापना की थी । इसके अनुपम सौन्दर्यको देखकर ऋषियोंने इसे स्वर्ग कहा है ।

माया—स्वप्न और इन्द्रजालके समान जिराका फल प्रचिन्तनीय है उसीको माया कहते हैं—

विचित्रकार्यकारणा अचिन्तितपलब्धता ।  
स्वप्नेन्द्रजासवत्सोके माया तेव प्रकीर्तिता ॥  
प्रकृति, भविष्य, प्रज्ञान, प्रधान, शक्ति और भजा भी इसीको कहते हैं ।

माया मृग—सीताना हरण करनेके लिये राबणने अपने मामा मारीचको स्वर्णमृग बना कर भेजा था जिससे सीताभी उसकी धात मैनेके लिये मृग हो गई । यह रामको बहुत दूर तक ले गया । अन्तमें रामने हाथसे मारा गया । वह मारीच, मुन्का औरस पुत्र ताडका राक्षसीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था ।

मायूरी—समीतमें एक प्रकारकी मूर्च्छना ।

भारिय—नाटनवा सुनधार भयवा चंद्र भक्ति ।

मारीच—१ मरीचिके पुत्र कश्यप ।

२. ताडकाका पुत्र (देखो माया-मृग) ।

मरम—रीवाँ राज्यका यह प्रदेश जो नर्मदा नदीके उद्गमसे प्रारम्भ होकर विन्ध्यके पासतक फैला हुआ है ।

मालती—एक प्रकारका श्वेत पत्रादियों वाला फूल, जिसकी दृष्टम लगभग एक इन्चकी होती है । जब फूल ऋट जाते हैं तो वृक्षके नीचे फूलोका विष्णोना-सा बिंदु जाता है । इसका पीया वर्षाके प्रारम्भमें लयाया जाता है । पद्य-पुराणमें लिखा है कि गौरी, लक्ष्मी और धन्वा ये तीन देवियाँ हैं यात्री, यामती और तुलसी वृक्षके रूपमें प्रवर्तित हुई हैं । मा घर्षात् लक्ष्मी-से उत्पन्न होनेके कारण इक्ष्वा नाम मालती पडा । यह लता उद्यानोमें लगाई जाती है और किसी बड़े वेद या मण्डपपर चढा दी जाती है ।

मालिनी—१ बनदेवी, जो पार्वतीजीकी सखा थी । २ लवी, जिसके तटपर महापि कण्ठका आधम था और जो हिमालयकी तराईमें बहती है । उत्तर प्रदेशके विजयनौर जिलेमें अभीतक यह नदी है ।

मास्ययाम्—[ पर्वत ] बम्बई प्रदेशके रत्नागिरि जिलेका एक भाग जिसके बीचमें जयलोते पिरो हुई पहाडियाँ हैं ।

मिथिलापुरी—महाराज अतकली नगरी । (देखो जनक और निमि ।)

मुग्धा—बहु नायिका जिसको अपने यौवनके प्रागमनका ज्ञान न हो । इसके दो भेद हैं [१] रथीया या स्वकाया [२] परकीया ।

मुष्कन—१६ सस्कारोमेंसे एक सस्कार, जिसमें बालकाका सिर मूढ दिया जाता है । यह सस्कार यज्ञोपवीतसे पहले होता है ।

मुस्ता—[नदी] नर्मदाका दूसरा नाम ।  
मुस्ता—(देखो नायरमोया)

भोती—१ एक प्रसिद्ध बहुमूल्य रत्न, जो खिलने समुद्रोत्तरे भ्रमवा देखीले तटोके पास सीपीमेरे निकलता है।

मोषा—[घात] १ मुस्तक, नामरुषोवा नामक घात। २ उपर्युक्त घातकी वज्र जो मोषघिकी भक्ति प्रयुक्त होता है। यह तुल्य जलाशयोमे पैदा होता है। इसकी पत्तियाँ कुपाकी पत्तियोकी तरह लम्बी-लम्बी और गहरे हरे रंगकी होती हैं। इसकी जड़ बहुत पोटो होती है जिसे घूमर लोहकर खाते हैं।

(देखो मुस्ता)

मौलसिरी—[देखो बज्र] इस प्रकारका बड़ा सबाबहार देव। इसकी लज्जी अन्दरसे खाल होती है।

य

यजमान—१ वह जो यज्ञ करता हो। दक्षिणा भादि देकर ब्राह्मणोसे यज्ञ, पूजन भादि धार्मिक कृत्य करानेवाला। २. वह जो ब्राह्मणोको दान देता हो। ३ महादेवकी घाठ भूतियोमेसे एक भूति।

यज्ञ—जिसमे सभी देवताओका पूजन, भयवा भूत भादि द्वारा हवन हो उसे यज्ञ कहते हैं।

यज्ञाशाला—यज्ञस्थान। वह भवन जहाँ यज्ञ होता है।

यज्ञोपवीत—यज्ञपूज, जलेक। यथा विहित यज्ञ करके यह उपवीत पहनना होता है इसीसे इतनी यज्ञोपवीत पहने है। सोलह संस्कारोमेसे एक संस्कार है। इसका मूल उद्देश्य उपजयन मर्पात् संस्कार करके मुफके पास विश्वाभ्यशन करनेके लिये भेजना है।

यम—१ समय, मन इन्द्रिय भादिको नजमे या रोके रचना। २ भारतीय धार्मिक प्रसिद्ध-देवता जो दक्षिण दिशाके विष्णाल कहे जाते हैं। मानकल ये मृत्युके देवता माने जाते हैं, पापी

और पुण्यात्माके पाप पुण्यवा विचारकर पापीको नरकमे और पुण्यात्माको स्वर्गमे भेजते हैं।

यमराज—(देखो यम)

यमुना—१ उत्तर भारतमे प्रवाहित यह पुण्यतोया नदी यमुनात राजके मध्य हिमालय क्षेत्रके यमुनोतरी शृङ्खले बाई कोस उत्तर और पाँचवाँहर शृङ्खले चार कोस उत्तर-पश्चिम प्रकट हुई है। हिमालयसे लेकर प्रयागतक झरनेक छोटी नदियाँ इसमें आकर मिली हैं और प्रयागमे पहुँचकर त्रिवेणी सगमपर यह स्वयं भी यमाजीमे मिली है। २ भारतीय पुराणमे लिखा है कि यमुनाजी सूर्यकी कन्या और यमकी भगिनी हैं। यम और मनुना माताके गर्भसे यमक उत्पन्न हुए। इनका बहुत काला था।

ययाति—गह्वर राजाके एक पुत्रका नाम। महाभारतमे उनका उपाख्यान इस प्रकार लिखा है कि एक दिन ये सिकार करने जगलमे गए। वहाँ उन्होने कुर्मे गिराई हुई देवयानीको देखा और बाहर निकाल लिया। पीछे एक दिन मुककी कन्या देवयानी अपनी शर्मिष्ठा भादि बी सहस्र दासियोके साथ जलविहार कर रही थी। इसी समय ये वहाँ पहुँच गए और जल गंगने लगे। देवयानीके राजनि कथा—मैं राजपुत्र हूँ, मेरा नाम ययाति है, मैं गह्वरपर्यं धारण करके देवका अभ्ययन करता हूँ। सिकार करते-करते एक कथा है। देवयानीके कथा—दो सहस्र कन्याओ और दासी शर्मिष्ठाकी स्वामिनी मैं आपका पररण करना चाहती हूँ। ययातिने कहा, तुम ब्राह्मण-नन्या हो, मैं क्षत्रिय हूँ, विवाह कैसे हो सकता है। देवयानीने यह वृत्तान्त अपनी दासीके द्वारा अपने पिता मुकमे कहला भेजा कि इन्होंने मेरा हाथ पकड़कर कुर्से बाहर निकाला था। यम आपसे प्रार्थना है कि मेरा विवाह इनके साथ करनेकी आज्ञा दें। धुकाचार्यके

लवली—एक फल विशेष, जिसे हरपत्ररे-  
यरी कहते हैं।

सास्य—कोमल नृत्य, जिसकी रचना  
पार्वतीजीने की। भाव और तात्कालिक कोमल  
भावोंके द्वारा विदोषत स्त्रियोंके द्वारा शृङ्गार  
आदि घोमल रखके उद्दीगमके लिये यह नृत्य  
होता है। इसके दो भेद हैं, क्षुरित और योवत।  
इसके दस भग हैं—पेयपद, स्थितपाठ, धासौन,  
पुष्पगण्डिका, प्रच्छेदक, निगूढ, सैन्धवाख्य  
द्विगूढक, उत्तमोत्तम और युक्तप्रत्युक्त।

सू—गर्भिकि दिनमें चलनेवाली गर्भ हवा  
जिसके लगनेपर तीक्ष्ण उष्ण हो जाता है और  
मृत्यु भी हो जाती है। सू लगनेपर कृष्ण भ्राम  
भूतकर उसकी सुगन्धि बनाकर शरीरपर लेप  
करनेसे और कृष्ण भ्राम भ्रूणपर उसका पत्र  
बनाकर पीनेसे भी सू का प्रभाव कम हो जाता  
है। साधने प्याज रखनेसे भी सू नहीं लगती।

सोक—(सात) देखो बुवग।

लोकपाल—घाटो दिनाशोकके अणव-भक्षण  
कोबपाल हैं। (देखो दिक्पाल।)

सोकालोक—(पर्वत)—यह पर्वत पृथ्वीके  
चारों ओर परकोटेके समान सजा है। इसके  
कुछ भागमें सूर्यका प्रकाश दिखाई देता है और  
कुछमें नहीं, इसीलिये इसका नाम सोकालोक  
है। प्रकाने इस पर्वतपर चारों ओर ऋषभ,  
पुष्पपूड, वामन और अपराजित नामके चार  
दिग्गज स्थापित किए हैं।

सोप—[सोप]—एक नृप जो भारतके  
सभी जगलोंमें होता है। इसका दिलका चमटा  
सिंभाने और रंगने नाम होता है। यह पेट  
१० से १२ फुट जंजा होता है। इसकी बरके  
पूँजसे भविर बनता है।

सौहित्य [नदी] का अद्भुत-शान्तनु मुनि  
यह हरियाणमें हिरण्यगर्भ मुनिजी बन्या समोधाके  
साथ रहते थे तभी एक दिन समोधाको मनेली

पाकर ब्रह्मा उस पर मोहित होकर उसपर  
बलात्कार करनेके लिये उद्यत हो गए किन्तु  
समोधा घरमें घुस गई और ब्रह्मा अपना वीर्य  
वही छोड़कर चले गए। जब शान्तनु मुनिने  
सौटकर यह सब देखा-मुना तो उन्होंने अपनी  
पत्नीको ब्रह्मा वीर्य पी जानेको कहा। बहुत  
बेरतक पत्नीसे याद-विवाद करनेके पश्चात्  
शान्तनु उसे पी गए। कुछ दिनके पश्चात् वह तेज  
समोधाके गर्भसे जलराशि बनकर उत्पन्न हुआ  
जिसके बीचमें नीलाम्बर, रत्नमाला तथा किरीट  
पहने चतुर्भुज गौर दण्डमाला मगर पर  
षडा हुमा एक पुत्र दिखाई दिया। यह जल  
कलास, सवतक, गन्धमादन और जाशधि नामक  
गहानोके घाटीके बीचमें रख दिया गया। जब  
परशुरामअपनी मातृहत्याका पाप छुड़ाने उस  
कुम्भमें स्नान करने गए तब लोकहितके लिये  
उन्होंने पहाड काटकर उस जलको नदी बनाकर  
वहा दिया। सौहित्य सरोवरसे निकलनेसे उसका  
नाम सौहित्य पड गया और ब्रह्माका मग  
होनेसे ग्रहपुत्र कहलाया।

व

वख—इन्दने दधीवित्री हृद्दीसे विश्व-  
कर्मके द्वारा नृशसुरको मारनेके लिये जो प्रज  
बनवाया उसे वख कहते हैं।

वसत [देश]—प्रयागके चारों ओरका देश  
जिसकी राजधानी प्रतिष्ठानपुरी (वर्तमान  
मुंबी थी।)

वनायु [देश]—अरव्य देश, जहाँके घोडे  
प्रसिद्ध होते थे।

वन्धी—अपने आश्रयदाता राजाघोरी  
निष्ठावली कहने वाले भाट।

वराह—विश्वपुत्रा तीर्थरा मयतार। जब  
प्रलय सागरमें पृथ्वी डूब गई तब ब्रह्माकी  
नाकसे प्रभूठे भरका मूत्र वराह-सोतन निकला  
जो निवर्तत ही आवासानक बढ गया। उन्होंने

अपने दांतोंसे पृथ्वीको पकड़कर बाहर निकालता और उस दैत्य हिरण्याक्षको मारा जो पृथ्वीको नीचे ख़ातमने ले गया था ।

परतन्तु [श्रुति]—जिन्होंने अपने त्रिपुत्र शैलसे इतनी मुक्त-दक्षिणा माँगी कि वह उस मुक्त-दक्षिणाके लिये रघुके पास पहुँचा और रघुने जिसे चुका दिया ।

बरदा [नदी]—हिमालयसे निकली हुई नदी जिसके तटपर अष्टारह भुजावाली बेनीकी मूर्ति है ।

बर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र ।

बर्णमाला—बारह खड़ी । असे लेकर ह तक बर्ण ।

बकल—१. पेड़की छाल । २. पेड़की छालसे बने हुए बक ।

बसिष्ठ या बसिष्ठ—मुनि । ये ब्रह्माके प्राणसे उत्पन्न हुए थे । कईमन्त्री पुत्री भरु-भती इतनी पत्नी थी । ऋषेयके सप्तम मन्त्ररा अधिकांश बसिष्ठकी कृति है । जब मिन और अरुणाका भीम बसतीचर नामक मन्त्रकृमि गिरा उससे अगस्त्य और बसिष्ठकी उत्पत्ति हुई । [ देखो अगस्त्य ] इन्होंने इसलिये सूर्यमन्त्रका पीरोहित्य स्वीकारा था कि उस बस्ये राम जन्म लेंगे ।

बपद्—यज्ञोमे माहुति देने समय इसका उच्चारण किया जाता है । देवताओंको स्वाहा, औपद्, वीपद्, वपद् और स्वधा शब्दोंके साथ माहुति दी जाती है ।

बसन्तोत्सव—फाल्गुनकी पूर्णिमाके दिन यह उत्सव मनाया जाता है । उस दिन बसन्त ऋतुमें जो चन्दनके साथ आमकी भजरी खाता है वह निश्चय हाँ सौ वर्षतक सुखसे जीवन बिताता है ।

बामन—विष्णुका पाँचवाँ अवतार । ( देखो बलि )

बायव्य [अश्व]—मगसे चलाया हुआ वह वाण जिसके चलाते ही शीघ्री चलने लगती है ।

बार्ता—वैश्यवर्ग अर्थात् वृषि, गोरक्षा, व्यापार और नुसीद (महाजनी) ।

बादशाह—मगसे चलाया हुआ वह वाण जो जल बरसा दे ।

वाल्मीकि या वाल्मीक—प्रभेदा श्रुतिके यशसे बतव पुरुष । रामसाके तटपर इनका आश्रम था । ये प्रारम्भमें ब्राह्मण-मुनि होते हुए भी किरातका काम करते थे । शूद्रासे विवाह करके इन्होंने उससे कई सन्तान उत्पन्न की । एक बार इन्होंने श्रुतिको भी बेर लिया । उन्होंने कहा कि जो पाप तुम करते हो उसमें तुम्हारे परिवारवाले भागी है या नहीं । जब परिवार वालोंने अस्वीकृति दे दी तब इन्हें ज्ञान हुआ और इन्होंने मुक्तिका उपाय पूछा । उन्होंने 'राम' नाम जपनेको कहा तो ये उलटा करके 'मरा मरा' जपने लगे यहाँ तक कि उनके शरीरपर बाँबी उठ गई । सबसे इनका नाम वाल्मीकि या वाल्मीकि हुआ । इन्होंने राग-जन्मसे बहुत पहले रामायणकी रचना कर दी थी । प्रथम कवि होनेके कारण इन्हें आदिकवि भी कहते हैं । सीता वनवासके समय इन्होंने ही रामके पुत्र लव और कुचको शिक्षा-बोधा दी थी ।

वाखवदत्ता—प्रवृत्तिके राजा अठ प्रयोत्तकी कन्या जिसे पत्ताराज उदयन हर ले गया था ।

वासुकि या वासुकी—नागोंका राजा । आठ प्रधान नागोंमेंसे एक । (देखो नाग) ।

विद्याधर—एक देवगोत्रि, जिसके अन्तर्गत खेचर, गन्धर्व और बिन्दर प्राते हैं ।

विष्णु—सृष्टिका भरण-पोषण करनेवाले देवता जो खीरसागरमें क्षेपनागपर शयन करते हैं और जिनकी नाभिसे उत्पन्न कमलमेंसे ब्रह्माजी उत्पत्ति हुई है ।

विजया—१ पावंतीकी राखी जो गौतमकी कन्या थी । २ वनदेवी ।

विजित्वर—वह रथ जिसपर चढ़कर विजय भवश्य मिलती है ।

विदभं [ देव ]—इतंगान हैवरावादिके उत्तरमे वरार प्रवेश ।

विदूर [ पर्वत ]—वह पर्वत जहाँ बैदूर्यमण्डि मिलती है ।

विद्ययापल—भारतके मध्यमे पूर्वमे पश्चिम तक फैला हुमा पर्वत ( देखो अण्डस्तव । )

विदराध—[ राक्षस ] इसके किताका नाम सुपुत्रेण और माताका नाम सतहृदा था । पिछले जन्ममे यह तुम्बक नामका गन्धर्व था जो वैश्रवणके दापसे राक्षस हो गया था । लक्ष्मणके हापसे इसकी मृत्यु हुई ।

बिल—१ एक प्रकारके घोड़े, २ उर्ध्व अथवा घोड़ा ।

बिशासा—सत्ताईस नक्षत्रमेसे सोलहवीं नक्षत्र । इसका रूप तीरछाकार है और इसमे चार तारे हैं । यह नक्षत्र दो भागोंमे बँटा है इसलिये इसके दो देवता हैं—इन्द्र और अग्नि ।

विश्वरर्षा—देव शिल्पी जो सब प्रकारके शिल्प-शास्त्रमे प्राविण्यता माने जाते हैं । ये प्रनास नामन बभुके औरत तथा बृहस्पतिकी ब्रह्मचारिणी बहिनके भगते उत्पन्न हुए थे । इन्होंने ही देवताओंके लिये विमान बनाए थे ।

विश्वामिदु—वह यज्ञ जिसमे सब कृष्य दक्षिणामे दे दिया जाता है ।

विश्वामित्र—इन्होंने सत्रियवतमे जन्म लेकर ब्राह्मणत्व प्राप्त किया और सात ब्रह्म महर्षियोंमे गिने जाने लगे । इनके पिताका नाम पाणि था ।

विश्वामनु [ गन्धर्व ]— भमरावतीका निवासी गन्धर्व ।

विष्कम्भक—गाटकके किसी मच्छके प्रारम्भमे तक्षेपते जो विषय कहा जाता है उसे विष्कम्भक कहते हैं । जहाँ एक या दो मध्यम पात्रोंसे कहलाया जाता है वहाँ द्रुढ, जहाँ नौच तथा मध्यम पात्रोंसे कहलाया जाता है वहाँ सक्तीर्ण या विमिश्र कहा जाता है ।

वीरसा—वह वारदा बाजा जिसके दोनो ओर दो सुम्बियां होती हैं और बीचके डबेर सप्त तार टिके रहते हैं । महादेवकी वीणा सन्वी, सरस्वतीकी कन्दपी, नारदकी महती और मुन्धुरकी बलावती कहलाती है ।

वीरसन—( देखो पद्मसन ) इस भासनसे बैठकर साथक साधना करते हैं ।

बृहस्पति—अग्निराके पुत्र और देवताओंके गुरु । धर्मशास्त्रके प्रयोक्ता और नवग्रहोंमे पचम ।

वेत्रवती—वेतवा नदी जो मालवासे निकलकर कालपीके पास यमुनामे मिली है ।

वेद—ऋग्, यजु, साम, और अथर्व ।

वेदाय—[ ६ ] किरा, कल्प, शिक्त, छन्द, प्रवृत्ति और व्यकरण ।

वेदान्ती—वेदान्त जाननेवाला । विरक्त ।

वेदी—यज्ञके लिये स्वच्छ की हुई भूमि । जो विशेष भागके धनुसाद लम्बी, चौड़ी, गहरी और ऊँची बनाई जाती है ।

वेला—(देखो ज्वार)

वैलसी—दृष्ट्ये उत्पन्न होनेवाली वाणी जो उर्ध्व व गम्भीर सुनाई पड़े ।

वैजयन्ती—एक प्रकारकी याजा जो पाँच रंगोंकी और घुटनों-जै सटकी होती है । इसे श्रोत्रुष्णकी पहनते थे ।

वैतालिक—चारण या दन्वी जो प्रातः काल मञ्जुल-गोत तथा बाब बबानर राजाओंको जगाते थे ।

वैदूर्ध्व [ मण्डि ]—पीले रंगकी मण्डि जिसके देवता केतु हैं । इसके धारण करनेसे



केतुका दोष नष्ट हो जाता है। इसे महसुनिया कहते हैं।

संभ्राज—(देखो नन्दन-धन)

संघाकरण—ध्याकरण ज्ञाननेवाला।

संघणव [ बाण ]—विष्णुका बाण।

स्यूह—शत्रुसे रक्षा करनेके लिये जो सेनाका विशेष तगठन किया जाता है उसे स्यूह कहते हैं। यह स्यूह चार प्रकारका होता है, सप्प, भोग, मग्दल और असहल और इनके भी बहुतसे भेद हैं।

स्रत—किसी विशेष परंपर विशेष प्रकारका आहार-विहार-सम्बन्धी आचारका पालन करना।

श

शक्रावतार—युगाके सप्तम वह तीर्थ जहाँ शकुन्तलाकी भंगूठी गिर पड़ी थी। वर्तमान सरोरो को बदामू जिलेमें है।

शुक्लार—नवरत्नोमे प्रथम। इसे भरतने रत्नराज माना है। इसमें दो आलम्बन होते हैं नायक और नायिका, सभी सवारियों और नवो मनुभावोका प्रयोग होता है। इसका स्थायी भाव रति है—पुंस स्त्रिया स्त्रिय पुंसि सयोग प्रति या स्पृहा। ए शुगार इति रयाता रति-श्रीशक्ति वारणम् ॥ इसके दो भेद हैं—विप्रलम्भ और सभोग। जहाँ नायक या नायिकाका मनुष्यसे परिपूर्ण रहनेपर अपने अपने अस्मित लोकीने साथ सयोग नहीं होता वहाँ विप्रलम्भ शुक्लार होता है। जिस समय दम्पतिने दर्शन, स्पर्शन, पुष्पन एव परिरम्भण आदिका सघटन होता है, उस समय सभोग शुक्लारकी उत्पत्ति होती है। बिना विप्रलम्भ सम्भोग नयी परिपुष्ट नहीं हो सक्ता।

न बिना विप्रलम्भ सम्भोग पुष्टिमनुते।

नपामिने हि वस्त्रादी भूयान्द्रामो विवर्षते ॥

शकुन—सुभाशुभ-सूचक लक्षण—जिन चिह्नों को देखनेसे शुभ और अशुभ जाना जा सके।

शक्ति [ शस्त्र ]—वर्षा जो फेंकर मारा जाय।

शची [ पीतोमि ]—इन्द्रकी पत्नीका नाम जो दानवराज पुलोमकी कन्या थी।

शतघ्नो—वर्षा, एक प्रकारका शस्त्र। यह चिह्नों बड़े पत्थर या लकड़ीके बुन्देमें बहुतसे फील काँटे ठोककर बनाया जाता है। इसका व्यवहार युद्धके समय शत्रुको पर फेंककर होता था। यह शस्त्र दुर्गके चारों ओर रक्ता जाता था।

शुगंध परिशोषेत चयाद्वालक-समुत्तम्।

शतघ्नी-यत्रमुख्यश्च शतशाश्च समायुतम् ॥

शन्दयेथी [ बाण ]—एक प्रकारका बाण।

शब्दोच्चारणके साथ ही जो तालु छेदन ऊपर निकलता है।

शम्भुक—भूत तपस्वी, जिसकी तपस्याके कारण वेता-युगमें रामराज्यमें एक ब्राह्मणका पुत्र अकाल मृत्युको प्राप्त हुआ था। उसे रामने मारकर मृत ब्राह्मण पुत्रको पुन-रुज्जीवित किया।

शमी—एक प्रकारका वृक्ष, जो यज्ञके काममें घाता है। भारतके प्राय सभी प्रदेशोंमें पाया जाता है। बंगाल और बिहारमें अश्वत्थ होता है। इसकी लकड़ी खदिर जैसी होती है। इस जातिके साल पत्तेपाले पृक्ष अग्निदग्मं कहलाते हैं।

शरत्—आश्विन और कार्तिक मासमें यह ऋतु मानी जाती है। यह काल उष्ण, पित्त-वर्द्धक और मानसोंके लिये बलप्रद होता है। परत्कालमें वायु प्रचलित और पित्त प्रकुपित होता है। इस कालमें जन्म लेनेवाला मनुष्य उत्तम वार्य करनेवाला, तेजस्वी, पवित्र, सुशील, शुणवान्, सम्मानी और धनी होता है।

शरभ—एक प्रकारका मृग जिसके घाठ पैर होते थे। यह सिंहसे भी अधिक बसवान् होता था। अपने लम्बे कठोरे मह कुँएँमें मुँह डालकर पानी पी लेता था। इसकी जाति नष्ट हो गई है।

शरभग—ये महर्षि दक्षिणमें रहते थे। वनवासके समय भगवान् रामने इनका दर्शन किया था।

शर्मिष्ठा—[ देखो ययाति ]।

शलकी—शलईका पेड़। ( देखो शाक )

शक्र—बृहस्पति या तलवार। जो हाथसे पकड़ कर चलाया जाय उसे शक्र और जो फेंककर चलाया जाय उसे शक्र कहते हैं।

शाकशक्ति—ये ऋषि पचास्यार नामके श्लोका-सरोवरमें तप करते थे। पहले ये तप करते समय मृगोंके साथ घास चरते थे। तब इन्द्रने पाँच भस्त्रास्रोको भेजकर इन्हें तपसे विरत कर दिया।

शाप कहित कामना-सूचक शब्द, जो ऋषि या सपत्नी लोग किसी पर रख होकर कहते थे और जो अवश्य पूरा होता था।

शान्तिजल—जो जल पूजाके पदपाद शान्तिके निमित्त धरके रहनेवाले शक्तियों पर छिड़का जाता है।

शाङ्ग [ शत्रुघ्न ]—विष्णुके हाथमें रहनेवाला मनुष्य जो दभीचि ऋषिनी हृद्दीप्ति बना था।

शाक—पालका गेहूँ। हिमान्यकी तराईमें सतलजसे शाकाम-रक्त तथा मध्य भारतमें इसके पत्ते जंगल हैं। यह वृक्ष घोघा बना बढता है। और इसने पत्ते बड़े-बड़े होते हैं। इसकी छालमें छेद करने-पर गुग्गुलु निकलता है। इसने नुलमें छोट-छोटे फूलसे मुञ्जे लगते हैं जिन्हे चोहकर कोल त्रिपां सम्पापो अपने जूटेमें धोस लेती हैं।

शाकमली—( देखो सेगर या सेमल )

शास्त्र—ये प्राचीन ग्रन्थ जिनमें मनुष्योंके लिये अनेक प्रकारके कर्तव्य बताए गए हैं तथा अनुचित कर्तव्योंका निषेध किया गया है। हमारे यहाँ ये ही शास्त्र श्रामाणिक माने गए हैं जो वेद-मूलक हैं। इनकी संख्या १८ है— सिद्धा, कल्प, व्याकरण निरुक्त, ज्योतिष, छन्द, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, मीमांसा, न्याय, पुराण, प्रायुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, और अयंशास्त्र। इन १८ शास्त्रोंको १८ विद्याएँ भी कहते हैं।

शिप्रा [ शिप्रा या शिप्रा ]—उज्जैनके पास बहनेवाली नदी। जब दशिष्ठने द्रक्ष्यतीके साथ विवाह किया उस समय ब्रह्मा, विष्णु और महादेवने उन्हे शान्तिजल और आशीर्वाद दिया। वह शान्तिजल पहले मानस पर्वतकी कन्दरामें और पीछे सात घाराओंमें विभक्त होकर मानस-पर्वतसे हिमालय पर्वतकी गुहा, शिखर और सरोवरमें पुषक्-पुषक् भावसे गिरा। उससे शिप्रा सरोवर बहुत बढने लगा। पीछे विष्णुने बरक-द्वारा गिरिशृङ्गकी काटकर उस प्रवृत्त जल-राशिको पुण्यदारा नदी बनाकर पृथिवीपर भेजा। शिप्रा सरोवरसे शक्ती उत्पत्ति हुई, इसीसे इसका नाम शिप्रा हुआ। इसमें नहानेसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। कार्तिक भासकी पूर्णिमा तिथिके इसमें नहानेका विशेष माहात्म्य है।

शिरोध—शिरसका पेट जिसके फूल बड़े रोमस होते हैं।

शिशानोत—पहाडमें उत्पन्न होनेवाली शीतल विषेय। गर्मके दिनोंमें घूमकी किरणों द्वारा सन्तप्त पर्वतोंको जो धातुसार निकलता है, उसीको शिशानोत कहते हैं। यह चार प्रकारका होता है—१ शीतल जो जवा पुष्पकी तरह लाल बटु, मधुर, शीत, शीतवीर्य और कटुविपाक होता है। २, राजत जो स्थितवर्ण,

पातवीर्य, कटुरस, शीर-गण्डु विपाक होता है । तावस जो मयूर कण्ठके समान प्रमायिष्ट, तीक्ष्ण और उष्णवीर्य होता है । ४ धामस जो जटायुके पथ जैसा धामायिष्ट, तीक्ष्ण, तबखरस कटुविपाक, शीर जीतवीर्य होता है । यही सबसे श्रेष्ठ है ।

**गुण [ग्रह]**—भयग्रहमे पाँचवाँ ग्रह । वह शुभग्रह है । यदि गुरे स्थानमे न हो तो मानवका बन्धन करता है । सुख, धी, विलास, भूपण, विज्ञान-शास्त्र, भगिनी, छो, समीत और कविता शक्ति देनेवाले हैं ।

**गुणधर्म**—ये देवताके मुख और शृणु श्रुतिके गुण थे । इनकी बन्धना नाम देवताकी तथा पुत्रीका पथ और धर्मका था । देवगुण बृहस्पतिके पुत्र बनने इनसे सजीवनी विद्या सीपी थी [देखो यथाधि और कन] ।

**गुणधर्म**—रावणकी बहिन । विधवा थापिके शीरस और शीरसीके गर्भसे इसका जन्म हुआ था । भगवान् रामचन्द्र जब हनुमान्के समक्ष वे उस समय नाम-दीप्ति होकर रावणके पास व्याह करनेकी इच्छासे भाई थी । रामके सकेतसे सम्भरणसे इसने नाक फाट जाने । इसीका बदला लेनेके कारण रावणकी छाप बैरा बनाकर सीताको हरण करना पया । इसका नल सुगके रामान था ।

**हूनी**—श्रीरैकी वह गोकदार किसी जितपर भगवादीकी मुद्राकी शीरसे टंगते थे और वह नियन्त्रण गर जाता था ।

**शोकात्मिका**—एक प्रकारका पुष्प विशेष । परशुनाभमे इसमे पूजा सगते है । इस शत्रुके प्रतिरिक्त इसका पुष्प पूजामे पढ़ाना निषिद्ध है । इसके पत्तेका रस सेवन करनेसे सभी प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं । इसकी गन्ध बरुकी और मीठी होती है । इसकी प्रलेख सीकने धरहरकी पतितोने धमान पाँच पाँच पतियाँ होती हैं ।

जिसका ऊपरी भाग नीला और नीचेका भाग सफ़ेद होता है । इसकी अनेक जातियाँ हैं । किसीमे वाले शीर किसीमे सफ़ेद गुप्प सगते हैं । पूजा धामके मोरके मजरीके समान सगते हैं और केसरिया रणके होते हैं । इसकी मात्रा प्रणयी जनोको बहुत प्रिय है ।

**शेषनाग**—जब यह जगत् प्रलय काळमे नष्ट हो जाता है तब भगवान् लक्ष्मीके साथ शीर-सागरमे शेषके पक्षकी छायामे शयन करते हैं । ये अपना पूर्व पण फैलाकर समस्त पुण्यसे उन्हें आच्छादित करते हैं, उत्तर फणसे भगवान्के सिर एवं दक्षिण फणसे पाँच ठके रहते हैं, पश्चिम फणको फैलाकर भगवान् पर पला फलते हैं, दैवान फणके द्वारा राज, चक्र, भद्र, खड्ग, दोनो सुखीर तथा गडडको डकते हैं एवं आनन्द फणके द्वारा गदा, पद्म प्रभृति पारण किए रहते हैं । इस प्रकार भगवान् विष्णु प्रलयके समय शयन किया करते हैं ।

**शेषशय्या**—(दे०—शेषनाग)

**श्रेय**—(देखो साध)

**श्राद्ध**—शास्त्र विधानके अनुसार पितरोंको तृप्त करनेके लिये जो कर्म किया जाता है उसे श्राद्ध कहते हैं । इसमे धर्मशास्त्रिके दानका विशेष महत्त्व है ।

संस्कृत-व्यजानादयश्च पयोदधिश्रुताश्वितम् ।  
श्राद्धया दीयत यस्मात् श्राद्धं तेन निगद्यते ॥

**श्रीवत्स**—विष्णु ने वशरवल पर भगुण्डके वरावर स्नेह नालकोना दक्षिणावर्त भीरी-वासा चिह्न जो भृगुके चरण प्रहारका चिह्न माना जाता है ।

**श्रुति**—वेदको श्रुति और धर्मशास्त्रको स्मृति कहते हैं । जहाँ वेद और धर्मशास्त्रके विरोध पठना है वहाँ श्रुति ही प्रमाण मानी जाती है । श्रुतिद्वये स्मृतिद्वये श्रुतिरेव गरीयसी ।

॥

पदज—समीक्षमें सत्यवका पहला स्वर ।  
भोरका शब्द पदज माना जाता है ।

॥

संस्कार—घट्टि दूर करनेकी क्रिया ।  
शास्त्रोंने अनुत्तर इस प्रकारके संस्कारसे जीवकी  
घुट्टि होती है—सर्पाधान, पुतबन, सीमन्तो-  
घ्नन जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण,  
अन्नप्राशन, शूडाकर्म, कर्णपेष, वेनाम्न,  
पशोपवीत, वेदारम्न, समानर्तन, विवाह,  
गार्हपत्य, और अन्वेषि नामक १६ संस्कार  
माने गए हैं ।

सगर—सूर्यवंशमें बाहु नामक प्रतापी राजा  
थे । इनकी स्त्रीका नाम यादवी था । एक दिन  
प्रवृत्तात् इनके ऊपर शत्रुओंने चढ़ाई कर दी ।  
युद्धमें बाहु परास्त हुए और पत्नीके साथ जम-  
ने भाग गए । इस समय इनकी पत्नी गर्भरथी  
थी । यादवीकी सपत्नीकी जब हात हुआ कि  
यादवी गर्भरथी है तो उसने उसे विष पिना  
दिया पर उससे कोई घबिष्ट नहीं हुआ । राजाकी  
मृत्यु जगन्में ही हो गई । रागी जब राजाके  
घाथ साती होने जा रही थी उसी समय शीर्ष  
श्रुतिने वहाँ धाकर उसे रोक दिया । समय  
पूरा होने पर एक पुत्र उत्पन्न हुआ । शीवने-  
उत्सका जात उत्कार किया और विषकर्म पान  
करनेके कारण उसका नाम सगर रखा । शीवने  
ही उ हे वेद शास्त्र और धर्म विद्याकी शिक्षा  
दी । उन्होंने हीहय आदि शत्रुओंको मार हावा ।  
राजा सगर इस प्रकार शत्रुओंको परास्त करके  
शर्वासिंहासन पर बैठे । इनकी दो रानियाँ  
थी—वैदर्भी और शैव्या । उन्हें उकरवी ने  
व विद्या था कि एक पत्नीसे ६० स स पुत्र  
होगे तथा उनका नाम होगा । एक बन्धुपुत्र पुत्र  
होगा । कुछ दिन पश्चात् वैदर्भीके गर्भसे एक  
कृष्णाट (कद्दू) उत्पन्न हुआ और शैव्याके

गर्भसे वीरवंशान पुत्र । राजा उस कृष्णाट  
(कद्दू) को पँउने जा रहे थे कि भ्रायादावाणी  
सुनाई दी 'हे राजन् इसमें तुम्हें ६० सहस्र  
पुत्र उत्पन्न होंगे ।' राजाने उस कद्दूसे एक  
एक बीज निकलवानर घृत कुण्डमें रख दिया  
और उसकी रक्षाके लिये एक घात्री नियुक्त  
कर दी । कुछ दिन पश्चात् उसमेंसे एक-एक  
करके ६० सहस्र बलिष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए । ये  
योग देवताओंके प्रति भ्रायादाचार करने लगे ।  
बुद्ध बिन पश्चात् राजा सगरने प्रथमेश यज्ञ  
प्रारम्भ किया । योजने साथ उनके ६० सहस्र  
पुत्र रखाके लिये चले । कुछ दूर पर घोडा घुस  
हो गया । राजपुत्रोंने राजासे सब पटनाएँ कही ।  
राजाने उन्हें सोचनेकी आज्ञा दी । ये सब  
सोचते-सोचते कपिल मुनिके प्राश्रममें पहुँचे ।  
यही वंश हुए शोडेवों देशकर इन लोगोंने उन्हें  
कपिलजीको दुत्कारना प्रारम्भ किया । श्रुतिवी  
अपेक्ष-पुण्ड्र दृष्टिसे वे ६० सहस्र पुत्र बही जलकर  
भस्म हो गए । फिर राजा सगरके पौत्र तथा  
असमरजसके पुत्र राजा भगीरथ कठिन तपस्या  
करके गङ्गाको साथ और इन सयवा उद्धार  
किया ।

राजीवनी—१ शीवम देनेवाली शोपधि ।

२ एक विद्या जिसके प्रभावसे मृतक भी जी  
उठता है । युक्राचार्यको यह विद्या घाती की  
इससे कोई रक्ष्य मरता ही नहीं था । तब देव-  
ताओंने वृहस्पतिके पुत्र कपको युक्राचार्यके पास  
यह विद्या सोपाने भेजा । वहाँ देवोंने कई बार  
कपका वध किया किन्तु युक्राचार्यने उसे जिला  
दिया । तब असुरोंने उसे मारकर उसका भाँस  
युक्राचार्य को खिला दिया । तब युक्राचार्यके  
भन्वसे कप उनका पेट फाटकर निकल प्राया  
और फिर उसने अपने गुरको भी जिला दिया ।  
सतोपुत्र या सरवपुत्र—सत्य, रज और  
सम नामक तीन पुत्रोंमें से एक । यह पुत्र जिसमें

होता है वह प्रसन्न, प्रेमी, धैर्यशाली और मेधावी होता है ।

सन्धि—[नाटककी ५ सन्धियाँ] मुख-सन्धि प्रतिमुख-सन्धि गर्भ-सन्धि, विमर्श-सन्धि, विवहल-सन्धि ।

सन्निपात—बहु घबस्वा, जब नक्त, वात पित्त विग्न जाते हैं और मनुष्य ज्वरसे बकने-मरने लगता है ।

सपास—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ धानप्रस्थ और सपास नामक चार आश्रमों में चौथा आश्रम । ७१ वर्षकी अवस्थामें घरबार छोड़कर केवल ईश्वर प्राप्तिमें लगना ।

सप्तमातृका—(देखो मातृकाएँ) ।

सर्पापि—कश्यप, अग्नि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमशनि, भरद्वाज तो इस शैवस्वत मन्व, सारके सर्पापि हैं । प्रारम्भिक सर्पापि ये हैं जो ब्रह्माके मातृक पुत्र थे—मरीचि, अग्नि, पुलह, पुनरस, ऋषु, अगिरा और वसिष्ठ । प्रत्येक मन्वन्तरमें भलग-भलग सर्पापि होते हैं ।

समिध—यज्ञ करनेके लिये अन्न, पलाश या पूररसी प्रादेश भरकी [अगूठेसे तर्जनी तकके तापकी] उस दहनीको कहते हैं जिसमें भागे फूलकी पत्ते हो और पूरा छिलका हो । यह समिधा अगूठेके बराबर मोटी होनी चाहिए और हरी होनी चाहिए । निक्षीण समिधसे हवन करनेसे प्रायुक्षय, निष्पन्नसे पुत्रनाश, छोटीसे पत्नीनाश, टेडी होनेसे बन्धुनाश, कीटा सारि होनेसे रोग, दो टुकड़ोंमें फटी होनेसे विद्वेष, घी होनेसे पशुनाश और अधिक मोटी होनेसे श्वाश होता है । रविके होममें अकंठी, मित्रके पलाशरसी, ममलकेमें शैरकी, बुधकेमें श्याम या चिरचित्केकी, शुक्रकेमें गीपलकी, क्रिकेमें पूररकी, अतिकेमें श्यामीकी, राहुकेमें दांगी और नेतुके होममें कुशाकी समिधा गमने लानी चाहिए ।

समुद्र—[घात] सवण, इक्षु, दुग्ध, दधि, गुरा, घृत, महासमुद्र ।

सम्पाति—[पक्षी] श्येनीके गर्भमें पक्षिका पुत्र, बटापुष्पा बंठा भाई । जब इन्द्रने वृत्रासुरको मार डाला, तब यह इन्द्रको जीतनेके लिये सुरपुर गया । वहाँ जब सूर्यकी ज्वालासे बटापुष्के पक्ष जलने लगे तब सम्पातिने उसपर छाया कर ली । तब सम्पातिके भी पक्ष जल गए और यह विध्याचलपर भा गिरा । जब हनुमान आदि सौठाकी बूँदने जा रहे थे वहा समय समुद्र तटपर सम्पातिने ही उन्हें लकावा मार्ग विज्ञाया था और उठी समय उसे पक्ष भी निकल आए थे ।

सम्मोहन—बहु मज्ज जिसके पलानेसे सब जठवत् हो जायें ।

सरकड्या—सरपतकी जातिकी एक भावी जिसके बीचसे गँठवाली छईयाँ निकलती हैं ।

सरस्यती—१ देवी, शुक्लवर्ण, शीष्ण-धारिणी, वेद-शास्त्रकी जननी, विद्याकी देवी । ये ब्रह्माकी मानस-पुत्री हैं । २ नदी, जो पंजाब-में सिरमूर राज्यकी पहाडीसे निकलकर बानेश्वर और कुश्नोप होती हुई सिरसा जिलेकी कागार [हथहत्ती] नदीमें मिली हो गई है । यह पहले प्रयागमें त्रिवेणी पर गङ्गा-यमुनासे मिल जाती थी और अब कहल जाता है कि यह वहाँ अन्तर्सलता अर्थात् धरती के नीचे होकर बहती है ।

सर्ज—[वृक्ष] शालका पेठ (देखो घाल) ।

सहस्राबाहु—[देखो कालंबोध] ।

सह्य—ताप्ती नदीसे कन्याकुमारी-तक फैली हुई पश्चिमी घाटकी पहाडियाँ सहाद्रि कहलाती हैं ।

सारथ—बगनेके रूपका चार फुट लम्बा पथी जिम्का ऊपरी भाग लाल, धरिीर धूरा, और टाँगें सन्धी वाली होती हैं । यह सेतके

बीज, मेटक और घोंघे खाता है। इसके दर्शनसे मात्रा सिद्ध होती है।

सारिका—(देखो मैना)

साहित्य—कवियों-द्वारा लिखित तथा सुरक्षित वाङ्मय।

सिद्धि—[ घाठ ] अग्निमा, महिमा, लक्ष्मिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, यशस्व। जिन्हे ये सिद्धियाँ मिल जाती हैं उन्हें कोई वस्तु तथा कोई बायें दुर्लभ नहीं होता।

सिन्धु—[ नद ] यह नद हिमालयसे निकल कर मद्रमीर, पंजाब और सिन्धुमें होता हुआ अरब सागरमें गिरता है।

सिन्धुवार—निर्गुण्टी या सिन्धुवार।

सुग्रीव—यासिका भाई (देखो वारि)।

सुतीक्ष्ण—अगस्त्य मुनिके भाई जो बनवासके समय रामसे मिले थे।

सुप्रतीक—देवताओंका हाथी जो ईशान कोल्लाका दिग्गज है। (देखो दिग्गज)।

सुबाहु—मारीचका भाई जो ताडकाके हाथ रामसे लड़ने आया था।

सुमत्र—राजा दशरथसे मन्त्री और पारथि। ये ही रामको रथपर बैठाकर बनवासके समय बुद्ध द्वार छोड़ कर आए थे।

सुमित्रा—राजा दशरथकी पत्नी, लक्ष्मण और लक्ष्मणकी माता।

सुमेध—[ पर्वत ] (देखो मेध)

सुरागाय—(देखो चंवर)।

सुहृद्—[ देव ] वर्तमान राज देव जो बगानो पश्चिममें दामोदरसे उत्तरी भागमें है।

सुल—आश्वपदाया गजाधोत्री स्तुति करने-वाले चारण, जो स्तुति गाकर राजाओंको प्राप्त बना जाता थे।

सुनपार—गाढाका प्रकण्य करनेवाला।

सुपं—[ दंतो घारि ] बरखणें औरखने दिंडों गंधमें इनकी उत्पत्ति हुई।

सूर्यकान्त—[ मणि ]—विन्तीरी पत्थर, जिसे सूर्यके सामने रखनेसे उसमें भाग निकलती है।

सेमर या सेमत—शात्मलोका पेठ। इसका बहुत बड़ा पेठ होता है जिसमें मोटी पखडियो-वाले लाल फूल जगते हैं और जिसके फलो या डोडोमेंसे कोमल रई निकलती है।

सोमतीर्थ—वर्तमान कन्नडके पास पिडपुरीके पास है जहाँ सोमने तपस्या की थी।

सोरीघर—बहु प्रकोष्ठ जिसमें ली चालकका प्रयत्न करके धुड़ होने तक रहती है।

स्कन्द—[ देखो वारिचकेय ]

स्कटिक—विन्तीरी पत्थर जो पारदर्शी होता है। (देखो सूर्यकान्त)

स्मृति—१५ स्मृतिमें मानी गई हैं। अनुभूत ज्ञान। महर्षिभिर्बेदाभिर्द्विगुण स्मृति। महर्षियोने वेदके धर्मका जिस प्रकार विस्तृत किया वही स्मृति है। इसे धर्मशास्त्र या धर्म-संहिता भी कहते हैं। कलियुगमें पाराशर स्मृति मान्य समझी जाती है। 'कली पाराशरस्मृति।'

सुया—खैरकी लकड़ीका बना हुआ धमका जिससे हवनमें धी डाला जाता है।

स्यधवर १ वह उत्सव, जिसमें कन्याका पिता अनेक सुवर्णको एषण करता है और कन्या उमरमें किसी एषणो सुन लेती है। २. स्वयं धरणा कर धुन लेनेका धर्म।

स्मरित—[ देखो उदात्त और अनुदात्त ]

स्वधा—[ देखो वाद् ] पितृभ्य स्वधा नहृकर पितरोको धर्मो यस्तुई दी पातो है। इसके बिना नहे यदि पितरोकी कोई वस्तु दी जाती है तो ये प्रहण नहीं करते।

स्वयं—देवताओंका सोव जहाँ नन्दन, स्वयंका बल्यवृद्ध, घण्टा, विमान, अमृत प्रादि सब धानन्द विहारके पदार्थ हैं जिन्हु वह नरवर सोव है। पुष्य सोछ होनरर वहीच छि

सौटना पड़ता है । "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके  
विराजति ।"

स्वामिकार्तिकेय—[ देखो कार्तिकेय ]

स्वाहा—[ देखो यपद् ] देवताओंको इस  
शब्दके साथ आहुति दी जाती है ।

ह

हंस—[ देखो राजहंस ]

हनुमान या हनुमान—पवनके घोर  
प्रवृत्तके गर्भसे इनका जन्म हुआ था । ( देखो  
मनसा ) जन्म लेते ही ये क्षुधापुर होकर  
बाल विन्यासल समझकर सूर्य पर उछले । यह  
देखकर देव-दानव, सब समीपे हाहाकर मच  
गया । सूर्यके तापसे बचानेके लिये पवनदेवने  
पीलव बाणके द्वारा इनकी रक्षा की । उस समय  
एहु सूर्यको प्रसने जा रहा था । इस निशुके  
पूर्वनेपर राहु उरकर नाम गया और इन्द्रसे  
जाकर कहा कि आपने मुझे सूर्यको प्रसनेके  
लिये भेजा था परन्तु एक दूसरे व्यक्तिको भी  
वहाँ आपने भेज दिया । इसपर इन्द्र बहुत क्रुद्ध  
हुए और उन्होंने जाकर पञ्जाससे उस पर प्रहार  
किया जिससे उनका वामहनु टूट गया । पवन  
उसे बचकर गुफामे ले गए । पवनदेवने क्रुद्ध  
होकर सभी बाणुओंको रोक दिया । इससे चारों  
भोर हाहाकार मच गया । देवोंने जानकर ब्रह्मासे  
कहा । ब्रह्माने जानकर उस बच्चेको आशीर्वाद  
दिया । सभी देवोंने आकर उसे प्रमोध कर  
दिया । इस प्रकार देवताओंसे वर प्राप्त करके  
हनुमानकी ऋषियोंको सत्ताने लगे । ऋषियोंने  
शपथ दिया कि जिस बच्चेके गवित्त होकर हम  
सोपोतो कष्ट दे रहे हो उसे तुम भूल जाओगे ।  
अब कोई स्मरण दिता देगा तब तुम्हारा बच  
वर्षगा । हनुमान ऋषियोंके शपथसे ससहीन होकर  
आपमर्मे विचरने लगे । ऋक्षराजके करनेपर  
बासि राजा हुआ । बासि घोर सुभीके परस्पर

कसह होनेपर हनुमानने सुभीकेका साथ दिया ।  
इन्होंने ही आनकीजीकी खोज का थी और  
रामकी आबन्ध सेवा की । ये भ्रमर हैं । सात  
भ्रमर पुरुष ये हैं—

अश्वत्थामा बलिब्यासो हनुमांश्च विमोपशः ।  
कृपः परशुरामश्च सर्पते घिरजीविनः ॥

हृषरसा [ हस्तावाप ]—बाण फलाते  
समय धनुषकी छोरीकी फटकार धारें हाथमे  
फलातेके ऊपर पड़ती रहती है जिससे घट्टे पड  
जाते हैं । उस फटकारसे हाथको बचानेके लिये  
चमड़ेकी जो पट्टी बांधी जाती थी उसे हृषरसा  
या हस्तावाप कहते थे ।

हरिताल—[ सं० स्त्री० ] १—एक खनिज  
पीतलवर्ण उपधातु । वैद्यक-शास्त्रमे लिखा है कि  
हरिके धीर्यसे हरिताल तथा लक्ष्मीके रजसे भगः  
जित्ताकी उत्पत्ति हुई थी, राज, भाल और तासक  
ये तीन नाम हरितालके हैं । हरिताल दो प्रकार  
का होता है : १. पत्र हरिताल और २. पिण्ड  
हरिताल । इनमेसे पत्र-हरिताल सर्वश्रेष्ठ और  
पिण्ड-हरिताल गुणहीन होता है । पत्र-हरिताल  
सुनहला, भारी, चिकन्वा, अमरक जैसा तहवाना,  
श्रेष्ठ, पुष्पदायक और स्वादन होता है । पिण्ड-  
हरिताल पिण्ड-जैसा, स्तरहीन, स्वल्पस्व,  
अल्पगुण-युक्त लघु और रजोनाशक होता है ।  
श्रीषघादिके व्यवहारमे इसका सशोधन कर लेना  
होता है । सशोधित हरिताल क्षामप्रद तथा  
अशोधित रोमप्रद होता है ।

हरिचन्दन—१. एक प्रकारका चन्दन ।  
२. स्वर्गके पाँच बृद्धोंमेसे एक । शेष चार बृद्धोंके  
नाम ये हैं—पारिजात, मन्दार, सतान और  
कल्पवृक्ष । ३. पीतचन्दन । ४. पारिभाषिक  
चन्दन । तुलसीकी लकड़ीको घिसकर कपूर  
और अमर अथवा केदार मिलानेसे उसको हरि-  
चन्दन कहते हैं । ५. कुकुम-केशर, ६. रक्त-  
चन्दन ।

हृषिकेश—होमबुद्ध, हवनी ।

हस्तावाय—[देखो हथरखा] ।

हाथभाय—छिन्नेकी बहू चेट्टा जिससे पुरुषोक्ता चित्त आकृष्ट होता है । नाब-नक्षत्र ।

हिगोट—हिगनवेर । इगुदी वृष ।

हिमालय—भारतवर्षके उत्तरमें सदा हिमसे ढका रहनेके कारण इसका नाम हिमालय पडा है । इसमें अनेक प्रकारके घातुज पदार्थ तथा श्लेषधियाँ मिलती हैं । अतः धीरे धीरे नदीके मध्यस्थित पर्यंतपर लोहा, जस्ता बहुतायतसे मिलता है । हिमालयपर इराण और तुर्क नामकी दो आदि-जातियाँ रहती हैं । उत्तर भारतवर्षको अत्यन्तममला बनानेवाली नदियाँ हिमालयके पश्चिम धीरे पूर्वसे निकली हैं—सेलम, चेनाव, रावी, व्यास, सतलज, यमुना, गङ्गा, घाघरा, गडक, कीसी, तिस्ता, बहूपुत्र, और विहङ्ग । इसके सबसे उच्च शिखरका नाम गौरीशंकर है । भगवान् शंकरकी यही लीला-रूपिणी है ।

हिरण्यवर्ष—बहु ज्योतिर्मय अण्ड जिससे ब्रह्मा धीरे धीरे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई ।

हूण—प्राचीन जाति । ये चौथी सदीमें एशियासे दो बलोंमें विभक्त हो गए—एक चलने

यूरोपमें जानने अपना आधिपत्य जमाया और दूसरा दल पाँचवी सदीमें भारतके उत्तर-पश्चिम प्रदेशसे होता हुआ मध्य, श्यामल भारतमें समस्त क्षेत्रमें पहुँचा और यहाँ शासकोंको अपने प्रबल पराक्रमसे भयभीत करने लगा । गुप्त सम्राट् स्वन्दगुप्तने इन लोगोको अपने पराक्रमसे परास्त किया । हूणोंका आधिपत्य अफगानिस्तानमें भी था । कुछ दिनों पश्चात् गान्धा और पेशावरके भाग लेकर हूणोंने गुप्त साम्राज्यको तहस-नहस कर डाला । पञ्जाबका शाकल या वर्तमान सिवालकोट उनका राजधानी रहा । पञ्जाब वर्षों भी ऊपर हूणोंके भारतवर्षपर शासन रहा । उस समय उत्तर भारतमें शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंकी शक्ति बोलती थी ।

हैमकूट—हिमालयके उत्तरका एक पर्वत जो भारतवर्षकी सीमापर स्थित है । इसका कल्पित सम्बाई नब्बे सहस्र योजन और चौड़ाई दो सहस्र योजन मानी गई है ।

होता—होम करनेवाला । यह चार प्रधान ऋषियजोमे हैं जो ऋग्वेदके मन्त्र पढ़ता ही देवताओंका आवाहन करता है । इसके तीनों सहायक होते हैं—अश्वपु, उदगाता और ब्रह्मा ।



# कालिदास सम्बन्धी पुस्तकों तथा निबन्धोंकी सूची

[ डा० रामबुमार चौबे ]

नोट—कालिदास सम्बन्धी निबन्धोंकी सख्या इतनी अधिक है कि उसकी पूरी सूची इस पन्ना पर बनाना दुस्तर् है। तथापि मुख्य पुस्तकों और निबन्धोंका विवरण ही नीचे दिया जा रहा है।

## पुस्तकें

डॉब्रिख	• A History of Sanskrit Literature.
र	: A History of Indian Literature
एरिन्स	: A History of Indian Literature
प	: The Sanskrit Drama
	: A History of Sanskrit Drama
	: Classical Sanskrit Literature
एम्पावाप्यार	• History of Classical Sanskrit Literature
एम्पावाप्यार, के. सी	• Sanskrit Drama and Dramatists
दोरीप्रसाद द्विवेदी	कालिदास
मदन	Hindu Theatre
मार्सो सेवी	The Theatre of the Indians (French)
एचिन्द घोष	The Age of Kalidasa
एचिन्द घोष	A Peep into the early History of India
एचिन्द घोष	Early History of the Deccan
—	कालिदास और भवभूति
विश्वनाथ राय	कालिदास
एचिन्द घोष, के. सी	The Date of Kalidasa
एचिन्द घोष	The birth-place of Kalidasa
एचिन्द घोष	Kalidasa and Vikramaditya
एचिन्द घोष	Early History of India.
एचिन्द घोष	Studies in Gupta History
एचिन्द घोष	Social Life in Ancient India
एचिन्द घोष	कालिदासकी प्रतिष्ठा और उसके समय तथा
एचिन्द घोष	विशेषता पर एक नवीन दृष्टि।
एचिन्द घोष	Kalidasa (German)
एचिन्द घोष	Padmapurana and Kalidasa
एचिन्द घोष	2 Die Zeit des Kalidasa

- साहित्य : Kalidasa Annual, Rep of the Ges für Vaterländische Kultur (Breslaw 1903)
- याकोबी (Jacobi) Kalidasa Vo J III p 127
- साताचार्य Ist Verse of Raghuvansha JASB XXI and oriental Conf Proc III (Madras)
- शिवप्रसाद मट्टाचार्य Analysis of Raghuvansha JASB XXI  
Proceedings 4th oriental Conference  
Studies of Ritusanhara Karma yogin Journal
- मोक्ष Kalidasa Z D M G LXVI  
Kalidasa J R A S 1913 401  
Kalidasa J R A S 1912
- स्ट्रेग्जलर Kalidasa Z D M G XLIV
- सरविन्द घोष Kalidasa's Seasons
- वेन्डेल Kalidasa in Ceylon J R A S (1880)
- प्रियसंग Are Kalidasa's heroes monogamists J A S B XLVI p 39
- Some Notes on Kalidasa JASB XLVIII (32-48)
- लेमोन्दई Further proof of Polygamy of Kalidasa's heroes JASB XLVI p 160
- प्राणनाथ पंडित Morals of Kalidasa JASB XLV p 352
- विभक्तन Legend of Kalidas preserved in Ujjain JAOS XXII p 331  
Time Analysis of Drama of Kalidasa JAOS XX p 341-59  
Bibliography of Kalidasa's plays JAOS XXII p 237  
XXIII p 937
- द्वन्द्व, मा धी Traditional Account of Kalidasa IA VII p 115
- होमले Kalidasa and Kamandaki IA XLI p 156
- चक्रवर्ती, जे बी Kalidasa the great Indian poet Journal of Mythic Soc VIII p 261
- श्रीसहाचार्यार Life of Kalidasa J of Mythic Soc VIII p 273
- कृष्णदास्त्री Formative influences of Kalidas J My S IX p. 557
- भद्रुट मुन्बय्या Kalidasa's Sociological Ideals J My S Ibid 95
- भद्रुट रमनय्या Some Views of Kalidasa's philosophy and Religion J M Y S Ibid 98
- कृष्ण पायगर Kalidasa and Shakespeare J My Soc Ibid 151
- मडारकर, डी मार Soleasms of Shankaracharya & Kalidasa (I A XLI 214)
- 1941 Kalidas's Religion and Philosophy ( IA, XXXIX 236)

- सोपानी, पी. सी. : Essay on Society in the time 'of Kalidasa ( in Malavati)
- रामदासी, भलगराजू : Heroines of Kalidasa (Sah XXII, 45)
- शर्मा, ए. सी. : Kalidasa, his poetry and mind (M. R. XI alood Calcutta)
- कृष्णगोपाचार्यार : Kalidasa and Bhavabhuti (Sah XVIII)
- रामानुजाचार्यार : Kalidasa's date (Sah XIX)
- रामाचार्यार : Kalidas's Love for deers ( SahXXIV ) (Sahrīdaya, a Sanskrit Journal of Madras)
- शैलिंगिरि दासनी : Kalidasa (I A. I 340)
- शुक्लस्वामी धर्म्यर : Poetry of Kalidasa (I. R. XIV 899)
- शिवे : Notes on Kalidasa (I AXLXII)
- हरिचन्द : Les Citations des Kalidasa dans le traites d' Alankara (J. A. VII. No 1, 11)
- : Kalidasa et la poetique de l' inde Paris Reviewed in (J. R. A. S. 1981)
- पेंड, सी. वि. : Pandyas and the date of Kalidasa
- वसुधेश्वर, के. जी. : Vatsyayana and Kalidasa (IA XLVII 195)
- : Kalidasa and Kamandaki (IA XLVI 220)
- वर्मा जी. के. : Poet Kalidasa and sea voyage (Journal Dep. of Letters Calcutta XVI)
- प्रानन्द शील : Birth place of Kalidasa (Journal of Indian His. VII 345)
- वसुधेश्वर धर्म्यर : Kalidasa his philosophy of Love (JOR. III 349)
- वैकुण्ठ रामय्या सी. के. : Kalidasa and Bhasa in the light of western Criticism (J My XVII 125)
- एस्वामी सरस्वती : Kalidasa J. My. XV 269 XVI 98.
- गोह, ए. : Kalidasa and Kautalya (J. My. Soc. XI 42, X 303)
- : Astronomical date in the dramas of Kalidasa (Proceedings, All India Oriental Congress 1924)
- गोहर, धर्म्यर के. जी. : Vikrama theory of Kalidasa's date (J. My, XI 188)
- शशवती : Date of Kalidasa J. R. A. S. (1891) 330
- शोभाजी : On the Sankrit Pact Kalidasa (J. B R. A S. VI 1920)
- सुब्रह्मदार पी. सी. : Date of Kalidasa (J. B. O. R. S II 388)
- एकर, धर्म्यर के. जी. : Yasodhaman's theory of Kalidas's date (J. B O. R. S VII 60)

- के. वैकुण्ठ रमय्या : Kalidasa and Bhasa in the light of western Criticism  
J. My. S XVIII 127
- सुव्यापव शास्त्री : Kalidasa's flowers (Bharati)
- वैकुण्ठ रमय्या : Was Kalidasa a votary of Kalidasa (Bharati V 688)
- रामकृष्ण मय्या : Ritusanhara, Bharati V 387
- विषय शास्त्री : Megha Sandesha Bharati V 678
- रामदास्य : Megha Sandesha, Bharati V 20
- प्रमो पन्तासू : Kalidasa, Bharati VIII 19
- रामकृष्ण राव : Kalidasa and Bhavabhuti (Bharati III 15)
- सुततनमय शास्त्री : Kalidasa patrauchityam (Bharati V 326)
- शिवराम कृति : Kalidasa and painting (J O R VII 160)
- वैकुण्ठराम शास्त्री : Mystical elements Kalidas (J. O. R. VII 357)
- मजुमदार : Birth place of Kalidasa IA XLVII 264
- दामस : Birth place of Kalidasa J. R. A. S 1918 p 118
- के. एस. के : Kalidasa I IL Q 1940 385 ff
- रामनाथ शर्कर : The authorship of Nalodaya (J R A. S 1925)
- गोखले, पी डी : The Mangalashtaka of Kalidasa
- मजुमदार, पी एन : Kalidasa and music Annals, B O B I 1925-26VI
- मजुमदार, पी एन : Date of Kalidasa Annals BORI VIII p II
- हरदत्त शर्मा : Padmapurana and Kalidasa Cal O S, No 17-1923
- एई फिनो : Kalidasa in China (I H Q 1933, 829, 834)
- स्टाइन कोनो : Kalidasa in China (IHQ 1934 566 ff)
- प्रबोधचन्द्र सेन गुप्त : Date of Kalidasa Sahitya parishad patrika Benga  
XLI No, 2
- चट्टोपाध्याय, के. सी : Kalidasa and the Hunes Jour Ind His XV pt  
भगवतशरण उपाध्याय. : Educations and Learning as depicted by Kalidasa  
and Fine as Arts depicted in Kalidasa Journal B O  
Uni I VI—3
- राघवन, पी. : Women characters in Kalidasa's dramas (Annals  
Oriental Research Uni. Madras IV 1939-40
- कुन्दन राजा : Studies in Kalidasa (Annals Oriental Res Uni  
Madras V pt 21940-41
- सखदश्याय, ए पी. : Nature Poetry in Kalidasa's Raghvansha J. Anna  
Univ. III 1934 and 35